अथ श्रीमद्देवीभागवत भा० टी० पञ्चम स्कन्ध

(विष्णुकी अपेक्षा शिवकी श्रेष्ठताका वर्णन) मुनिगण बोले—हे सूतजी ! आपने यह बहुत ही उत्तम कथा सुनायी, जिसमें सर्वपापनाशक भगवान कृष्णके दिव्य चरित्रोंकी चर्चा थी ॥ १ ॥ किन्तु हे महाभाग ! हे महामते ! आपने भगवान वासुदेवकी कथाओंको बहुत संक्षेपमें कहा है । अतएव मेरे मनमें कई प्रकारके सन्देह उत्पन्न हो गये हैं ॥ २ ॥ सर्वप्रथम सन्देह तो यही है कि साक्षात् विष्णु भगवानके अंशावतार वासुदेव श्रीकृष्णने वनमें जाकर दुष्कर तप करके शिवजीकी आराधना क्यों की ? दूसरा सन्देह यह है कि जगज्जननी, पूर्णा और साक्षात् श्रीदेवीकी अंशस्वरूपा भगवती पार्वतीने श्रीकृष्णको वरदान क्यों दिया ? ॥ ३ ॥ ४ ॥ जब भगवान कृष्ण स्वयं ईश्वर थे, तब उन्होंने शिव-पार्वतीकी आराधना क्यों की ? क्या उनकी अपेक्षा भगवान कृष्णमें किसी प्रकारकी कमी थी ? यही मेरा सन्देह है ॥ ५ ॥ सूतजी बोले—हे महाभाग मुनियो ! इसका कारण मैंने व्यासजीसे जैसा सुना था, वह भगवान कृष्णकी गुणगरिमासे परिपूर्ण कथा आप लोगोंको सुना रहा हूँ, सुनिए ॥ ६ ॥ व्यासजीके मुखसे उपर्युक्त वृत्तान्त सुनकर राजा जनमेजयका सन्देह और भी बढ़ गया । तब उस परम

॥ ऋषय ऊचुः ॥ भवता कथितं सूत महदाख्यानमुत्तमम् ॥ कृष्णस्य चरितं दिव्यं सर्वपातकनाशनम् ॥ १ ॥ संदेहोऽत्र महाभाग वासुदेवकथानके ॥ जायते न प्रोच्यमाने विस्तरेण महामते ॥ २ ॥ वने गत्वा तपस्तप्तं वासुदेवेन दुष्करम् ॥ विष्णोरंशावतारेण शिवस्याराधनं कृतम् ॥ ३ ॥ वरप्रदानं देव्या च पार्वत्या यत्कृतं पुनः ॥ जगन्मातुश्च पूर्णायाः श्रीदेव्या अंशभूतया ॥ ४ ॥ ईश्वरेणापि कृष्णेन कुतस्तौ संप्रपूजितौ ॥ न्यूनता वा किमस्त्यस्य तदेवं संशयो मम ॥ ५ ॥ सूत उवाच ॥ शृणुध्वं कारणं तत्र मया व्यास श्रुतं च यत् ॥ प्रब्रवीमि महाभागाः कथां कृष्णगुणान्विताम् ॥ ६ ॥ वृत्तान्तं व्यासतः श्रुत्वा वैराटीसुतजस्तदा ॥ पुनः पप्रच्छ मेधावी संदेहं परमं गतः ॥ ७ ॥ जनमेजय उवाच ॥ सम्यक्सत्यवतीसूनो श्रुतं परमकारणम् ॥ तथापि मनसो वृत्तिः संशयं न विमुंचति ॥ ८ ॥ कृष्णेनाराधितः शंभुस्तपस्तप्त्वाऽतिदारुणम् ॥ विस्मयोऽयं महाभाग देवदेवेन विष्णुना ॥ ९ ॥ यः सर्वात्माऽपि सर्वेशः सर्वसिद्धिप्रदः प्रभुः ॥ स कथं कृतवान्घोरं तपः प्राकृतवद्धरिः ॥ १० ॥ जगत्कर्तुं क्षमः कृष्णस्तथा पालयितुं क्षमः ॥ संहर्तुमपि कस्मात्स दारुणं तप आचरत् ॥ ११ ॥ व्यास उवाच ॥ सत्यमुक्तं त्वया राजन्वासुदेवो जनार्दनः ॥ क्षमः सर्वेषु कार्येषु देवानां दैत्यसूदनः ॥ १२ ॥ तथापि मानुषं देहमाश्रितः परमेश्वरः ॥ कृतवान्मानुषान्भावान्वर्णाश्रमसमाश्रितान् ॥ १३ ॥ वृद्धानां

बुद्धिमान् राजाने फिर पूछा ॥ ७ ॥ राजा जनमेजयने कहा—हे सत्यवतीपुत्र व्यासजी ! आपने परम कारणस्वरूपा भगवतीकी महिमासे ओत-प्रोत बड़ी सुन्दर कथा सुनायी । किन्तु तब भी मेरे मनकी वृत्तियाँ सन्देहको नहीं त्याग पातीं ॥ ८ ॥ हे महाभाग ! साक्षात् देवदेव विष्णुभगवानके अंशावतार श्रीकृष्णने अतिशय दारुण तपस्या करके शिवाजीकी आराधना की । यह सुनकर मुझे बड़ा विस्मय हो रहा है ॥ ९ ॥ जो जगतीतलनिवासी सब जीवोंके आत्मा थे, जो सबके ईश्वर थे, जो अपने आराधकोंको सिद्धियाँ प्रदान करते थे, उन प्रभु भगवान कृष्णने साधारण प्राणीके समान घोर तपस्या क्यों की ? ॥ १० ॥ भगवान कृष्ण समस्त विश्वकी सृष्टि, पालन और संहार करनेमें समर्थ थे । तब उन्होंने इतना दारुण तप क्यों किया ? ॥ ११ ॥ व्यासजी बोले—हे राजन् ! आपका कथन यथार्थ है । दैत्योंके नाशक भगवान वासुदेव सब देवताओंका कार्य स्वयं कर सकते थे ॥ १२ ॥ फिर परमेश्वर होते हुए भी उन्होंने मनुष्य-

देह धारण करके वर्णाश्रम धर्मका पालन करते हुए मानव स्वभावके अनुसार ही सब कार्य किया था ॥१३॥ इसी कारण उन्होंने एक आदर्श मनुष्यके समान वृद्धोंकी पूजा की, गुरुजनोंके चरणोंकी वन्दना की, ब्राह्मणोंकी सेवा की और देवताओंका आराधन किया ॥१४॥ शोकके अवसरपर उन्होंने शोक प्रदर्शन किया और हर्षके समय हर्षका भाव दिखलाया। अवसर आनेपर उन्होंने दीनता भी दिखायी, नाना प्रकारके लोकापवाद सहे और अपनी स्त्रियोंके साथ विषयभोगका भी यथेच्छ आनन्द लिया ॥१५॥ जैसे मनुष्योंमें काम, क्रोध और लोभके भाव समय-समयपर उदित होते रहते हैं, उसी प्रकारके भावोदय उनके हृदयमें भी हुए। मनुष्यका शरीर धारण करके वे निर्गुण कैसे हो सकते थे? ॥ १६ ॥ सुबलकन्या पतिव्रता गान्धारी तथा अष्टावक्र ब्राह्मणके शापसे यादवोंका विनाश हुआ और भगवान कृष्णको शरीर त्यागना पड़ा ॥ १७ ॥ हे राजन्! श्रीकृष्णकी पत्नियोंका अपहरण हुआ और उनका खजाना लुट गया। लुटेरोंपर वीर अर्जुनके शस्त्रास्त्रोंका प्रयोग विफल हो गया ॥१८॥ उनके घरसे प्रद्युम्न और अनिरुद्धका अपहरण हो गया, किन्तु उन्हें कुछ पता नहीं लगा। मनुष्यदेह धारण करनेपर उनकी

पूजनं चैव गुरुपादाभिवंदनम् ॥ ब्राह्मणानां तथा सेवा देवताराधनं तथा ॥१४॥ शोके शोकाभियोगश्च हर्षे हर्षसमुन्नतिः ॥ दैन्यं नानापवादाश्च स्त्रीषु कामोपसेवनम् ॥१५॥ कामः क्रोधस्तथा लोभः काले काले भवंति हि ॥ तथा गुणमये देहे निर्गुणत्वं कथं भवेत् ॥ १६ ॥ सौबलीशापजा-द्दोषात्तथा ब्राह्मणशापजात् ॥ निधनं यादवानां तु कृष्णदेहस्य मोचनम् ॥ १७ ॥ हरणं लुण्ठनं तद्वत्तत्पनीनां नराधिप ॥ अर्जुनस्यास्त्रमोक्षे च क्लीबत्वं तस्करेषु च ॥ १८ ॥ अज्ञत्वं हरणे गेहात्तत्प्रद्युम्नानिरुद्धयोः ॥ एवं मानुषदेहेऽस्मिन्मानुषं खलु चेष्टितम् ॥ १९ ॥ विष्णोरंशावता-रेऽस्मिन्नारायणमुनेस्तथा ॥ अंशजे वासुदेवेऽत्र किं चित्रं शिवसेवने ॥ २० ॥ स हि सर्वेश्वरो देवो विष्णोरपि च कारणम् ॥ सुषुप्तस्थाननाथः स विष्णुना च प्रपूजितः ॥ २१ ॥ तदंशभूताः कृष्णाद्यास्तैः कथं न स पूज्यते ॥ अकारो भगवान्ब्रह्माऽप्युकारः स्याद्धरिः स्वयम् ॥ २२ ॥ मकारो भगवान्रुद्रोऽप्यर्धमात्रा महेश्वरी ॥ उत्तरोत्तरभावेनाप्युत्तमत्वं स्मृतं बुधैः ॥ २३ ॥ अतः सर्वेषु शास्त्रेषु देवी सर्वोत्तमा स्मृता ॥ अर्धमात्रा स्थिता नित्या याऽनुच्चार्या विशेषतः ॥ २४ ॥ विष्णोरप्यधिको रुद्रो विष्णुस्तु ब्रह्मणोऽधिकः ॥ तस्मान्न संशयः कार्यः कृष्णेन शिवपूजने ॥ २५ ॥

सभी चेष्टायें उसी तरह हुईं, जैसे साधारण मनुष्योंकी होती हैं ॥१९॥ तब भगवान विष्णु तथा साक्षात् नारायणके अंशज श्रीकृष्णने यदि शंकरजीकी आराधना की तो इसमें कौन-सी आश्चर्यकी बात हो गयी? ॥ २० ॥ भगवान शंकर सबके ईश्वर हैं। वे विष्णुकी उत्पत्तिके भी कारण हैं। वे सुषुप्तस्थान अर्थात् कारणशरीरके स्वामी हैं। इसीसे विष्णु भगवान भी शिवजीका पूजन करते हैं ॥२१॥ तब उन्हीं विष्णुके अंशावतार राम-कृष्ण आदि अवतारी पुरुष शंकरजीकी पूजा क्यों न करेंगे? ॐकारका 'अ' ब्रह्माका रूप है, 'उ' विष्णुका स्वरूप है, 'म्' भगवान् रुद्रका रूप है और अर्धमात्रा अर्थात् चन्द्रबिन्दु साक्षात् भगवती महेश्वरीका स्वरूप है। विद्वानोंके कथनानुसार ब्रह्मासे श्रेष्ठ विष्णु, विष्णुसे श्रेष्ठ शिव और शिवजीसे श्रेष्ठ भगवती हैं ॥२२॥२३॥ इसीलिए सब शास्त्रोंमें देवीजीको ही सर्वोत्तम बताया गया है। क्योंकि भगवती मूर्धन्य स्थानमें विराजमान अनुच्चरित अर्धमात्रा (चन्द्रबिन्दु) स्वरूप तथा नित्य हैं ॥२४॥ शंकरजी विष्णुसे

श्रेष्ठ हैं और विष्णु ब्रह्माजीसे श्रेष्ठ हैं। अतएव श्रीकृष्ण द्वारा शिवपूजनके विषयमें किसी प्रकारका संशय नहीं करना चाहिए ॥२५॥ पूर्वकालमें सृष्टिकार्यके लिए जब ब्रह्माजीने शिवजीकी उपासना की, तब वरदान देनेके लिए शिवजी उन्हींके मुखसे प्रगट हो गये। वे रुद्रमूल कहलाये। उनके अंशसे द्वितीय रुद्र उत्पन्न हुए। वे रुद्रदेव भी सबके पूज्य हैं। तब मूलरुद्रके विषयमें क्या कहना है? देवीतत्त्वके निकट रहनेके कारण ही शिवजीको इतना महत्त्व मिला है ॥२६॥२७॥ भगवती योगमायाकी प्रेरणासे भगवान विष्णु प्रत्येक युगमें विभिन्न अवतार लिया करते हैं। इस विषयमें विशेष विचार करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है ॥ २८ ॥ जो भगवती अप्रत्यक्षरूपसे पलक गिरने जितने थोड़े समयमें भलीभाँति विश्वका सृजन, पालन और संहार कर देती हैं। वे ही ब्रह्मा, विष्णु तथा शिवजीको विविध अवतार लेनेके लिए प्रेरित करती रहती हैं ॥ २९ ॥ भगवती योगमायाने ही कृष्णको सौरीघर (कारागार) से निकालकर गोपराज नन्दके भवनमें पहुँचाया और उनकी रक्षा की। वे ही कंसका विनाश करानेके लिए उन्हें मथुरा ले गयीं। जब श्रीकृष्ण जरासन्धसे भयभीत हो गये, तब भगवतीने ही उन्हें

इच्छया ब्रह्मणो वक्त्राद्वरदानार्थमुद्भवौ ॥ मूलरुद्रस्यांशभूतो रुद्रनामा द्वितीयकः ॥ २६ ॥ सोऽपि पूज्योऽस्ति सर्वेषां मूलरुद्रस्य का कथा ॥ देवीतत्त्वस्य सान्निध्यादुत्तमत्वं स्मृतं शिवे ॥ २७ ॥ अवतारा हरेरेवं प्रभवन्ति युगे युगे ॥ योगमायाप्रभावेण नात्र कार्या विचारणा ॥ २८ ॥ या नेत्रपक्ष्मपरिसंचलनेन सम्यग्विश्वं सृजत्यवति हन्ति निगूढभावा ॥ सैषा करोति सततं द्रुहिणाच्युतेशान्नानावतारकलने परिभूयमानान् ॥ २९ ॥ सूतीगृहाद्व्रजनमप्यनया नियुक्तं संगोपितश्च भवने पशुपालराज्ञः ॥ संप्रापितश्च मथुरां विनियोजितश्च श्रीद्वारकाप्रणयने ननु भीतचित्तः ॥ ३० ॥ निर्माय षोडशसहस्रशतार्धकास्ता नार्योऽष्टसंमततराः स्वकलासमुत्थाः ॥ तासां विलासवशगं तु विधाय कामं दासीकृतो हि भगवाननयाप्यनंतः ॥ ३१ ॥ एकाऽपि बंधनविधौ युवती समर्था पुंसो यथा सुदृढलोहमयं तु दाम ॥ किं नाम षोडशसहस्रशतार्धकाश्च तं स्वीकृतं शुकमिवातिनिबंधयंति ॥ ३२ ॥ सात्राजितीवशगतेन मुदान्वितेन प्राप्तं सुरेन्द्रभवनं हरिणा तदानीम् ॥ कृत्वा मृधं मघवता विहृतस्तरूणामीशः प्रियासदनभूषणतां य आप ॥ ३३ ॥ यो भीमजां हि हृतवाञ्छिशुपालकादीञ्जित्वा विधिं निखिलधर्मकृतो विधित्सुः ॥ जग्राह तां निजबलेन च धर्मपत्नीं कोऽसौ विधिः परकलत्रहृतौ

द्वारका बसानेकी प्रेरणा प्रदान की ॥३०॥ उन्होंने ही अपनी शक्तिसे सोलह हजार पचास रानियों तथा आठ पटरानियोंकी रचना करके उनके हाव-भाव तथा प्रेमालापमें फँसाकर भगवान कृष्णको स्त्रियोंका दास बना दिया ॥ ३१ ॥ केवल एक सुन्दरी नवयुवती मनुष्यको अपने हाव-भावसे वासनारूपिणी लौहमयी सुदृढ़ जंजीरमें बाँध सकती है। फिर जिसके पास सोलह हजार पचास सुन्दरियाँ हों, तब क्या कहना। उस पुरुषको तो वे पालतू सुग्गेकी तरह मनमाना नाच नचा सकती हैं ॥ ३२ ॥ सत्राजित्की पुत्री सत्यभामाके तो वे इतने वशीभूत हो गये थे कि उनके कहते ही प्रसन्नतापूर्वक इन्द्रभवनमें जा पहुँचे। उस समय इन्द्रके साथ लड़ाई करके तरुराज कल्पवृक्ष छीन लाये और उससे उन्होंने अपनी प्रियतमाके महलकी शोभा बढ़ायी ॥३३॥ धर्मोंके प्रवर्तक और सब प्रकारके धार्मिक कृत्योंको विधिवत् करनेके इच्छुक भगवान कृष्णने शिशुपाल आदि वीरोंको परास्त करके पहलेसे ही वाग्दत्ता रुक्मिणीका अपहरण कर लिया और अपने

बलके भरोसे उन्हें अपनी धर्मपत्नी बना ली। कोई बताये तो सही कि परस्त्री अपहरण करनेकी यह कौनसी नवीन विधि निकल पड़ी ? ॥३४॥ इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि भयानक अधःपतन करानेवाले मोहजालमें पड़ तथा अहंकारके वशवर्ती होकर सभी मनुष्योंको भला या बुरा काम करना ही पड़ता है ॥ ३५ ॥ क्योंकि मूलप्रकृतिसे ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि प्रधान देवताओंकी उत्पत्ति हुई है। उसी प्रकृतिके तामस अहंकारसे इस स्थावर-जङ्गमात्मक जगत्की सृष्टि होती है ॥ ३६ ॥ जब ब्रह्माजी अहंकारको सर्वथा त्याग देते हैं, तब वे सृष्टि-रचनाके प्रपंचसे मुक्त हो जाते हैं। जब अहंकारके वशमें होते हैं, तब सृष्टि करते हैं ॥ ३७ ॥ जो प्राणी अहंकार त्याग देता है, वह सांसारिक बन्धनसे मुक्त हो जाता है। जो अहंकारके अधीन होता है, वह बन्धनमें पड़ जाता है। स्त्री, धन, गृहस्थी और सहोदर भाई बन्धनके कारण नहीं होते। बल्कि मुख्य बन्धनकारी तो प्राणीका अहङ्कार ही होता है। 'मैं ही सब कुछ करता हूँ' मैं ही बलवान हूँ और अपने पराक्रमसे मैंने अमुक काम कर लिया' ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ 'अमुक कार्य बाकी है, उसे भी मैं पूर्ण करूँगा' ऐसी-ऐसी अहङ्कार भरी धारणायें कर-करके

विजातः ॥ ३४ ॥ अहंकारवशः प्राणी करोति च शुभाशुभम् ॥ विमूढो मोहजालेन तत्कृतेनातिपातिना ॥ ३५ ॥ अहंकाराद्धि संजातमिदं स्थावरजंगमम् ॥ मूलाद्धरिहरादीनामुग्रात्प्रकृतिसंभवात् ॥ ३६ ॥ अहंकारपरित्यक्तो यदा भवति पद्मजः ॥ तदा विमुक्तो भवति नोचेत्संसारकर्मकृत् ॥३७॥ तन्मुक्तस्तु विमुक्तो हि बद्धस्तद्वशतां गतः ॥ न नारी न धनं गेहं न पुत्रा न सहोदराः ॥३८॥ बंधनं प्राणिनां राजन्नहंकारस्तु बंधकः ॥ अहं कर्ता मया चेदं कृतं कार्यं बलीयसा ॥ ३९ ॥ करिष्यामि करोम्येवं स्वयं बध्नाति प्राणभृत् ॥ कारणेन बिना कार्यं न संभवति कर्हिचित् ॥४०॥ यथा न दृश्यते जातो मृत्पिंडेन विना घटः ॥ विष्णुः पालयिता विश्वस्याहंकारसमन्वितः ॥ ४१ ॥ अन्यथा सर्वदा चिंतांबुधौ मग्नः कथं भवेत् ॥ अहंकारविमुक्तस्तु यदा भवति मानवः ॥ ४२ ॥ अवतारप्रवाहेषु कथं मज्जेच्छुभाशयः ॥ मोहमूलमहंकारः संसारस्तत्समुद्भवः ॥४३॥ अहंकारविहीनानां न मोहो न च संसृतिः ॥ त्रिविधः पुरुषः प्रोक्तः सात्त्विको राजसस्तथा ॥ ४४ ॥ तामसस्तु महाराज ब्रह्मविष्णुशिवादिषु ॥ त्रिविधस्त्रिषु राजेंद्र काजेशादिषु सर्वदा ॥ ४५ ॥ अहंकारः सदा प्रोक्तो मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ अहंकारेण तेनैव बद्धा एते न संशयः ॥ ४६ ॥ मायाविमोहिता

प्राणी स्वयं अपने आपको बन्धनमें बाँध लेता है। बिना कारणके कोई कार्य नहीं होता ॥ ४० ॥ जैसे मिट्टीके लोंदेके बिना घड़ा नहीं बन पाता। उसी प्रकार जब विष्णु अहंकारके वशवर्ती होते हैं, तभी वे विश्वका पालन कर पाते हैं ॥ ४१ ॥ जब वे अङ्कारहीन हो जाते हैं, तब चिन्तारूपी समुद्रमें डूबे रहते हैं। उसी प्रकार जो प्राणी अङ्कारसे छुटकारा पा जाता है तो वह भी चिन्तापरायण हो जाता है ॥४२॥ यदि ऐसा न होता तो भगवान कृष्ण जैसे निर्मल अन्तःकरणवाले परम पुरुष अवतारके प्रवाहोंमें पड़कर क्यों डूबते-उतराते ? अज्ञानका मूल कारण अङ्कार ही है और अहङ्कारसे ही संसारकी उत्पत्ति हुई है ॥ ४३ ॥ जो प्राणी अहङ्कार त्याग देता है, उसके पास न अज्ञानकी पहुँच होती है और न सांसारिक बन्धन ही बाँध पाते हैं। इस जगत्में तीन प्रकारके पुरुष होते हैं—सतोगुणी, रजोगुणी और तमोगुणी। हे महाराज जनमेजय ! ये तीनों गुण सृष्टि, पालन तथा संहारकार्यका सम्पादन करनेके लिए क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु और शिवजीमें पाये जाते हैं ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ इन्हीं तीनों महान् देवताओंमें अहंकार भी निहित रहता है। ऐसा तत्त्वज्ञानी महर्षि कहते हैं। अतएव यह बात निर्विवाद सिद्ध हो

गयी कि ये तीनों देवता अहंकारके बन्धनमें आबद्ध हैं ॥ ४६ ॥ मायासे मोहित और बुद्धिहीन कुछ वैष्णव विद्वान् कहते हैं कि भगवान विष्णु स्वेच्छासे अनेक अवतार लेते हैं ॥ ४७ ॥ किन्तु जब कोई मूर्ख मनुष्य भी अतिशय दुःखपरिपूर्ण गर्भमें निवास करना नहीं पसन्द करता, तब भगवान् विष्णु स्वेच्छासे अवतार लेना कैसे पसन्द करेंगे ? ॥ ४८ ॥ उन्हीं विद्वानोंका यह भी कहना है कि भगवान् विष्णु स्वेच्छासे कौसल्या तथा देवकीके मल-मूत्रसे परिपूर्ण गर्भमें आये थे ॥ ४९ ॥ तनिक सोचिए तो सही, वैकुण्ठभवन त्यागकर गर्भवासमें उन्हें कौनसा सुख प्राप्त हुआ होगा? विषतुल्य दुखदायी गर्भवासके समय तो उन्हें करोड़ों प्रकारकी चिन्तायें सताती रही होंगी ॥ ५० ॥ जब एक साधारण प्राणी भी तप करके, विविध यज्ञ करके और नाना प्रकारके दान देकर उनका यही फल चाहता है कि अत्यन्त दुखदायी गर्भमें फिर न निवास करना पड़े ॥ ५१ ॥ तब यदि भगवान विष्णु स्वतंत्र होते तो भला गर्भवासको क्यों पसन्द करते ? उनका वश चलता तो वे अपनेको ऐसे संकटमें क्यों डालते ? ॥ ५२ ॥ अतएव हे महाराज ! आप यह बात निश्चित समझिए कि समस्त जगत् भगवती योगमायाके ही अधीन

मंदाः प्रवदंति मनीषिणः ॥ करोति स्वेच्छया विष्णुरवताराननेकशः ॥ ४७ ॥ मंदोऽपि दुःखगहने गर्भवासेऽतिसंकटे ॥ न करोति मतिं विद्वान्कथं कुर्यात्स चक्रभृत् ॥ ४८ ॥ कौसल्यादेवकीगर्भे विष्ठामलसमाकुले ॥ स्वेच्छया प्रवदंत्यद्धा गतो हि मधुसूदनः ॥ ४९ ॥ वैकुंठसदनं त्यक्त्वा गर्भवासे सुखं नु किम् ॥ चिंताकोटिसमुत्थाने दुःखदे विषसंमिते ॥ ५० ॥ तपस्तप्त्वा क्रतून्कृत्वा दत्त्वा दानान्यनेकशः ॥ न वांछंति यतो लोका गर्भवासं सुदुःखदम् ॥ ५१ ॥ स कथं भगवान्विष्णुः स्ववशश्चेज्जनार्दनः ॥ गर्भवासरुचिर्भूयाद्भवेत्स्ववशता यदि ॥ ५२ ॥ जानीहि त्वं महाराज योगमायावशे जगत् ॥ ब्रह्मादिस्तंबपर्यन्तं देवमानुषतिर्यगम् ॥५३॥ मायातंत्रीनिबद्धा ये ब्रह्मविष्णुहरादयः ॥ भ्रमंति बन्धमायान्ति लीलया चोर्णनाभवत् ॥५४॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

॥ राजोवाच ॥ योगेश्वर्याः प्रभावोऽयं कथितश्चातिविस्तरात् ॥ ब्रूहि तच्चरितं स्वामिञ्छ्रोतुं कौतूहलं मम ॥ १ ॥ महादेवीप्रभावं वै श्रोतुं को नाभिवांछति ॥ यो जानाति जगत्सर्वं तदुत्पन्नं चराचरम् ॥ २ ॥ व्यास उवाच ॥ शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि विस्तरेण महामते ॥ श्रद्दधनाय शांताय न ब्रूयात्स तु मंदधीः ॥३॥ पुरा युद्धमभूद्घोरं देवदानवसेनयोः ॥ पृथिव्यां पृथिवीपाल महिषाख्ये महीपतौ ॥४॥ महिषो नाम राजेन्द्र चकार तप

रहता है। ब्रह्मासे लेकर तृण-गुल्म पर्यन्त सभी देवता, मनुष्य और पशु-पक्षी योगमायाके ही वशवर्ती रहते हैं ॥ ५३ ॥ जैसे मकड़ी स्वयं जाल बनाती और उसीमें फँस जाती है, उसी प्रकार ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि देवता उन भगवतीके मायारूपी बन्धनमें पड़कर चक्कर काटा करते हैं ॥ ५४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते पंचमस्कन्धे भाषाटीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

(महिषासुरका जन्म और वरप्राप्ति) राजा जनमेजय बोले—हे स्वामिन् ! आपने भगवती योगेश्वरीका चरित्र विस्तारके साथ बताया। अब आप फिर उन महामायाका चरित्र वर्णन करिए। उसे सुननेकी मेरी प्रबल आकांक्षा है ॥१॥ और फिर जो इस बातको जानता है कि स्थावर-जङ्गमात्मक समस्त जगत् महामायासे ही उत्पन्न हुआ है, वह उन महादेवीके प्रभावको क्यों न सुनना चाहेगा ? ॥ २ ॥ व्यासजी बोले—हे राजन् ! मैं विस्तारपूर्वक महामायाके चरित्र वर्णन करता हूँ, सुनिए। हे महामते ! जो वक्ता श्रद्धालु तथा शान्त श्रोताको भगवतीकी कथा

नहीं सुनाता, वह मूर्ख है ॥ ३ ॥ हे भूपाल ! जिस समय पृथिवीपर महिषासुर राज्य करता था, तब देवताओं और दानवोंमें बड़ा विकट युद्ध हुआ ॥ ४ ॥ हे राजेन्द्र ! एक समय उस महिष नामके दानवने सुमेरुपर्वतपर जाकर उग्र तपस्या की । जिसे देखकर देवता चकित हो गये ॥ ५ ॥ उसने पूरे दस हजार वर्षतक मनमें अपने इष्टदेवका ध्यान करते हुए तप किया । हे महाराज ! तब ब्रह्माजी उसपर प्रसन्न हुए ॥ ६ ॥ हंसपर आरूढ़ चतुर्मुख ब्रह्माजीने उसके पास जाकर कहा--हे धर्मात्मन् ! वरदान माँगो ; मैं तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण करूँगा ॥ ७ ॥ महिषासुरने कहा--हे देवदेव ! हे प्रभो ! हे लोकपितामह ! मैं अमर होना चाहता हूँ । हे पितामह ! आप ऐसा वर दीजिए कि जिससे मुझे मृत्युका भय न रह जाय ॥८॥ ब्रह्माजी बोले--जो जन्म लेता है, उसे मरना ही पड़ता है और जो मरता है, उसका पुनर्जन्म निश्चित है । संसारके सभी प्राणियोंमें जन्म और मरण अवश्य विद्यमान रहते हैं ॥ ९ ॥ हे दैत्यवर्य ! समय आनेपर सब प्राणियोंका विनाश होता है । यहाँ तक कि बड़े-बड़े पर्वत और समुद्र भी नष्ट हो जाते हैं ॥ १० ॥ अतएव हे राजन् ! अमर होनेकी बात छोड़कर और तुम्हारी जो भी

उत्तमम् ॥ गत्वा हेमगिरौ चोग्रं देवविस्मयकारकम् ॥५॥ वर्षाणामयुतं पूर्णं चिंतयन्हृदि देवताम् ॥ तस्य तुष्टो महाराज ब्रह्मा लोकपितामहः ॥६॥ तत्रागत्याब्रवीद्वाक्यं हंसारूढश्चतुर्मुखः ॥ वरं वरय धर्मात्मन्ददामि तव वांछितम् ॥७॥ महिष उवाच ॥ अमरत्वं देवदेव वांछामि ब्रूहि प्रभो ॥ यथा मृत्युभयं न स्यात्तथा कुरु पितामह ॥८॥ ब्रह्मोवाच ॥ उत्पन्नस्य ध्रुवं मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च ॥ सर्वथा मरणोत्पत्ती सर्वेषां प्राणिनां किल ॥ ९ ॥ नाशः कालेन सर्वेषां प्राणिनां दैत्यपुंगव ॥ महामहीधराणां च समुद्राणां च सर्वथा ॥ १० ॥ एकं स्थानं परित्यज्य मरणस्य महीपते ॥ प्रब्रूहि तं वरं साधो यस्ते मनसि वर्तते ॥११॥ महिष उवाच ॥ न देवान्मानुषाद्दैत्यान्मरणं मे पितामह ॥ पुरुषान्न च मे मृत्युर्योषा मां का हनिष्यति ॥१२॥ तस्मान्मे मरणं नूनं कामिन्याः कुरु पद्मज ॥ अबला हंत मां हंतुं कथं शक्ता भविष्यति ॥ १३ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ यदा कदाऽपि दैत्येंद्र नार्यास्ते मरणं ध्रुवम् ॥ न नरेभ्यो महाभाग मृतिस्ते महिषासुर ॥१४॥ व्यास उवाच ॥ एवं दत्त्वा वरं तस्मै ययौ ब्रह्मा निजालयम् ॥ सोऽपि दैत्यवरः प्राप निजं स्थानं मुदान्वितः ॥१५॥ राजोवाच ॥ महिषः कस्य पुत्रोऽसौ कथं जातो महाबली ॥ कथं च माहिषं रूपं प्राप्तं तेन महात्मना ॥१६॥ व्यास उवाच ॥ दनोः पुत्रौ महाराज विख्यातौ क्षितिमंडले ॥ रम्भश्चैव करम्भश्च द्वावास्तां दानवोत्तमौ ॥१७॥ तावपुत्रौ महाराज पुत्रार्थं तेपतुस्तपः ॥ बहून्वर्ष-

इच्छा हो, वह वरदान माँग लो ॥ ११ ॥ महिषासुरने कहा--हे पितामह ! यदि अमर होना सम्भव न हो तो आप मुझे यह वरदान दें कि मैं पुरुषजातिके किसी भी देवता, दानव तथा मनुष्यके हाथों न मरूँ । इस प्रकार कोई पुरुष मुझे न मार सकेगा, तब भला कोई स्त्री मुझे क्या मारेगी ? ॥ १२ ॥ अतएव हे कमलयोनि ! यदि मृत्यु अनिवार्य ही हो तो किसी स्त्रीके हाथों मेरी मृत्यु निश्चित कर दीजिए । अबलायें मुझे क्या मार सकेंगी ? ॥१३॥ ब्रह्माजी बोले--हे दैत्येन्द्र ! किसी समय स्त्रीके हाथोंसे ही तुम्हारी मृत्यु होगी । हे महाभाग महिषासुर ! किसी पुरुषसे तुम नहीं मरोगे ॥ १४ ॥ व्यासजी बोले--इस प्रकार वर देकर ब्रह्माजी चले गये और महिषासुर भी अपने स्थानपर जा पहुँचा ॥ १५ ॥ राजा जनमेजय बोले--वह महिषासुर किसका पुत्र था ? वह इतना बलवान् क्यों था और उसे महिष (भैंसे) का रूप क्यों मिला था ? ॥ १६ ॥ व्यासजीने कहा--हे महाराज ! दनुके रम्भ और करम्भ नामके दो विश्वविख्यात

ख्यात पुत्र थे ॥ १७ ॥ उन दोनोंके कोई सन्तान नहीं थी । अतएव सन्तति प्राप्त करनेके लिए करम्भने पुनीत पञ्चनदके जलमें डूबकर बहुत वर्षोंतक कठिन तप किया और रम्भनामक दानव रसालवटवृक्षके नीचे पंचाग्नि तापता हुआ तप करता रहा ॥ १८ ॥ १९ ॥ बहुत समयतक रम्भने पंचाग्नि तापा तो इस बातको जानकर देवराज इन्द्रको बहुत दुःख हुआ और वे उन दोनों दानवोंके पास गये ॥ २० ॥ पञ्चनदके जलमें इन्द्र ग्राह (मगर) रूपसे घुसे और तपःपरायण करम्भका पैर पकड़ लिया ॥ २१ ॥ तत्पश्चात् उस दुष्ट करम्भको वृत्रासुरका वध करनेवाले इन्द्रने मार डाला । अपने भ्राताके निधनका समाचार सुनकर रम्भ दानव बहुत कुपित हुआ ॥२२॥ अतएव उसने अपने हाथों अपना सिर काटकर अग्निमें होम कर देनेकी इच्छा की । इस विचारके अनुसार उसने अत्यन्त क्रोधके साथ बायें हाथसे केश पकड़कर दाहिनी भुजामें तलवार ले ली और मस्तक काटनेको उद्यत हुआ, तैसे ही अग्निदेवने प्रगट होकर उसे ऐसा करनेसे

गणान्कामं पुण्ये पंचनदे जले ॥१८॥ करंभस्तु जले मग्नश्चकार परमं तपः ॥ वृक्षं रसालवटं प्राप्य रंभोऽग्निमसेवयत् ॥१९॥ पंचाग्निसाधनासक्तः स रंभस्तु यदाऽभवत् ॥ ज्ञात्वा शचीपतिर्दुःखमुद्ययौ दानवौ प्रति ॥ २० ॥ गत्वा पंचनदे तत्र ग्राहरूपं चकार ह ॥ वासवस्तु करंभं तं तदा जग्राह पादयोः ॥२१॥ निजघान च तं दुष्टं करंभं वृत्रसूदनः ॥ भ्रातरं निहतं श्रुत्वा रंभः कोपं परं गतः ॥२२॥ स्वशीर्षं पावके होतुमैच्छच्छित्वा करेण ह ॥ केशपाशे गृहीत्वाऽऽशु वामेन क्रोधसंयुतः ॥ २३ ॥ दक्षिणेन करेणाग्रं गृहीत्वा खड्गमुत्तमम् ॥ छिनत्ति शीर्षं तत्तावद्वह्निना प्रतिबोधितः ॥२४॥ उक्तश्च दैत्य मूर्खोऽसि स्वशीर्षं छेत्तुमिच्छसि ॥ आत्महत्याऽतिदुःसाध्या कथं त्वं कर्तुमुद्यतः ॥ २५ ॥ वरं वरय भद्रं ते यस्ते मनसि वर्तते ॥ मा म्रियस्व मृतेनाद्य किं ते कार्यं भविष्यति ॥ २६ ॥ व्यास उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं रंभः पावकस्य सुभाषितम् ॥ ततोऽब्रवीद्वचो रंभस्त्यक्त्वा केशकलापकम् ॥ २७ ॥ यदि तुष्टोऽसि देवेश देहि मे वांछितं वरम् ॥ त्रैलोक्यविजयी पुत्रः स्यान्नः परबलार्दनः ॥ २८ ॥ अजेयः सर्वथा स स्याद्देवदानवमानवैः ॥ कामरूपी महावीर्यः सर्वलोकाभिवंदितः ॥ २९ ॥ पावकस्तं यथेत्याह भविष्यति तवेप्सितम् ॥ पुत्रस्तव महाभाग मरणाद्विरमाधुना ॥ ३० ॥ यस्यां चित्तं तु रंभ त्वं प्रमदायां करिष्यसि ॥ तस्यां पुत्रो महाभाग भविष्यति बलाधिकः ॥ ३१ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्तो

रोका ॥ २३ ॥ २४ ॥ उन्होंने कहा--हे दैत्यवर ! तुम बड़े मूर्ख हो, जो अपना सिर काटना चाहते हो । आत्महत्या बहुत दुःखसाध्य काम है, किन्तु तुम उसे भी करनेको उद्यत हो गये ? ॥ २५ ॥ तुम्हारी जो इच्छा हो, वह वरदान माँगो । मरो मत । मरनेसे तुम्हारा क्या बनेगा ? ॥ २६ ॥ व्यासजी बोले--अग्निदेवके सुन्दर वचन सुनकर रम्भने बायें हाथसे पकड़ा हुआ केशकलाप छोड़ दिया और कहा--॥२७॥ हे देवेश ! यदि आप मेरे ऊपर प्रसन्न हों तो यही वरदान दीजिए कि मुझे त्रैलोक्यविजयी और शत्रुसेनाका विनाश करनेवाला पुत्र प्राप्त हो । देवता-दानव-मानव इनमेंसे कोई भी उसे परास्त न कर सके । वह जब जैसा रूप धारण करना चाहे, कर ले । वह असाधारण बलवान् हो और सब लोग उसकी वन्दना करें ॥२८॥२९॥ अग्निदेव बोले--हे महाभाग ! तुम्हारी इच्छा पूर्ण होगी और तुमको वैसा ही पुत्र प्राप्त होगा । अब तुम मरनेका विचार त्याग दो ॥ ३० ॥ हे रम्भ ! जिस स्त्रीपर तुम्हारा मन आसक्त होगा, उसीसे

तुम्हें वह बलवान् पुत्र प्राप्त होगा ॥ ३१ ॥ व्यासजी बोले—हे राजन् ! अग्निदेवके इस प्रकार मनभावने वचन सुनकर रम्भने उन्हें साष्टांग प्रणाम किया और वहाँसे चल पड़ा ॥ ३२ ॥ चलते-चलते वह एक ऐसे रमणीक और श्रीसम्पन्न स्थानपर पहुँचा, जहाँ यक्षोंका निवास था। वहाँ ही एक महिषीको देखकर वह उसपर आसक्त हो गया ॥ ३३ ॥ यद्यपि वहाँ बहुतेरी रूपवती युवती और मदमाती स्त्रियाँ थी, किन्तु उन सबको त्यागकर वह उसीपर आसक्त हुआ और वह भी बड़ी प्रसन्नतापूर्वक चाहती हुई उसके साथ सम्भोग करनेको तैयार हो गयी ॥ ३४ ॥ भाग्यसे प्रेरित होकर रम्भने उसीके साथ संभोग किया। जिससे वह गर्भवती हो गयी ॥ ३५ ॥ तदनन्तर वह उसे लेकर मनोहर पाताललोकमें चला गया। वह वहाँके महिषोंसे अपनी प्रियतमाका रक्षा करता हुआ रहने लगा ॥ ३६ ॥ एकदिन एक महिष कामातुर होकर उस महिषीकी ओर लपका। यह देखकर रम्भ दानव उसे मारने दौड़ा और अपनी पत्नीकी रक्षाके लिए उसपर कठोर प्रहार किया। कामार्त महिषने भी अपनी सींगोंसे रंभको मारना आरंभ किया ॥३७॥३८॥ उसने अपनी तीखी सींगोंसे रम्भके हृदय प्रदेश-

वह्निना रंभो वचनं चित्तरंजनम् ॥ श्रुत्वा प्रणम्य प्रययौ वह्निं तं दानवोत्तमः ॥ ३२ ॥ यक्षैः परिवृतं स्थानं रमणीयं श्रियान्वितम् ॥ दृष्ट्वा चक्रे तदा भावं महिष्यां दानवोत्तमः ॥ ३३ ॥ मत्तायां रूपपूर्णायां विहायान्यां च योषितम् ॥ सा समागाच्च तरसा कामयंती मुदान्विता ॥ ३४ ॥ रंभोऽपि गमनं चक्रे भवितव्यप्रणोदितः ॥ सा तु गर्भवती जाता महिषी तस्य वीर्यतः ॥ ३५ ॥ तां गृहीत्वाऽथ पातालं प्रविवेश मनोहरम् ॥ महिषेभ्यश्च तां रक्षन्प्रियामनुमतां किल ॥३६॥ कदाचिन्महिषश्चान्यः कामार्तस्तामुपाद्रवत् ॥ स्वयमागत्य तं हंतुं दानवः समुपाद्रवत् ॥३७॥ स्वरक्षार्थं समागत्य महिषं समताडयत् ॥ सोऽपि तं निजघानाशु शृंगाभ्यां काममोहितः ॥ ३८ ॥ ताडितस्तेन तीक्ष्णाभ्यां शृंगाभ्यां हृदये भृशम् ॥ भूमौ पपात तरसा ममार च विमूर्छितः ॥३९॥ मृते भर्तरि सा दीना भयार्ता विद्रुता भृशम् ॥ सा वेगात्तं वटं प्राप्य यक्षाणां शरणं गता ॥ ४० ॥ पृष्ठतस्तु गतस्तत्र महिषः कामपीडितः ॥ कामयानस्तु तां कामी बलवीर्यमदोद्धतः ॥४१॥ रुदती सा भृशं दीना दृष्टा यक्षैर्भयातुरा ॥ धावमानं च तं वीक्ष्य यक्षास्त्रातुं समाययुः ॥ ४२ ॥ युद्धं समभवद्घोरं यक्षाणां च हयारिणा ॥ शरेण ताडितस्तूर्णं पपात धरणीतले ॥ ४३ ॥ मृतं रंभं समानीय यक्षास्ते परमं प्रियम् ॥ चितायां रोपयामासुस्तस्य देहस्य शुद्धये ॥४४॥ महिषी सा पतिं दृष्ट्वा चितायां रोपितं तदा ॥ प्रवेष्टुं सा मतिं चक्रे पतिना

पर ऐसा कठिन प्रहार किया कि जिससे वह मूर्च्छित होकर गिरा और मर गया ॥ ३९ ॥ पतिके मर जानेपर वह दीन महिषी भयभीत होकर वहाँसे भागी। बड़े वेगसे भागती हुई वह एक वटवृक्षके निकट निवास करनेवाले यक्षोंकी शरणमें जा पहुँची ॥ ४० ॥ वह कामार्त महिष भी उसका पीछा करता हुआ उस स्थानपर पहुँचा और बल-वीर्यकी अधिकताके कारण मदोद्धत होकर उस महिषीके साथ छेड़-छाड़ करने लगा ॥ ४१ ॥ उस महिषके अनाचारसे पीड़ित तथा भयभीत होकर वह महिषी रोने लगी। इस दशामें बहुतेरे यक्ष उसकी रक्षाके लिए आगे बढ़े ॥ ४२ ॥ तब उस महिषके साथ यक्षोंका घनघोर युद्ध हुआ और अन्तमें यक्षोंके बाणसे घायल होकर महिष धराशायी हो गया ॥४३॥ तदनन्तर यक्षगण परम प्रिय रंभके मृत शरीर को उठा लाये और शुद्धिके निमित्त उसे चितापर रख दिया ॥ ४४ ॥ वह महिषी अपने मृत पतिको चितापर सुलाया देख स्वयं भी अग्निमें जलकर उसके साथ सती होनेको तैयार

हो गयी ॥ ४५ ॥ यक्षोंके बार बार रोकनेपर भी वह अपने प्रिय पतिके शवको लेकर ऊँची-ऊँची विकराल लपटोंवाली धधकती चितामें कूद पड़ी ॥ ४६ ॥ उसी समय चितासे एक महिष तथा अन्य शरीर प्राप्त करके पुत्रप्रेमी महाबली रम्भ भी निकल पड़ा ॥ ४७ ॥ वह संसारमें रक्तबीज नामसे विख्यात हुआ। उसका पुत्र महिष भी असाधारण वीर हुआ। कुछ समय बाद दानवोंने महिषासुरका राज्याभिषेक कर दिया ॥४८॥ हे महाराज! रक्तबीज महान् पराक्रमी दैत्य हुआ। देवता, दैत्य और मनुष्य इनमेंसे कोई भी उसका वध नहीं कर सकता था ॥४९॥ हे राजन्! इस प्रकार मैंने आपको महात्मा रक्तबीजके जन्म तथा वरप्राप्तिका वृत्तान्त विस्तृतरूपसे कह सुनाया ॥५०॥ इति श्रीदेवीभागवते पंचमस्कन्धे भाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

(देवताओंके साथ युद्धकी तैयारी) व्यासजी बोले—हे राजन्! वरदान पाये रहनेके कारण महिषासुर बड़ा अभिमानी हो गया। उस महाबली दानवने राज्य पाकर कुछ ही

सह पावकम् ॥ ४५ ॥ वार्यमाणाऽपि यक्षैः सा प्रविवेश हुताशनम् ॥ ज्वालामालाकुलं साध्वी पतिमादाय वल्लभम् ॥४६॥ महिषस्तु चितामध्यात्समुत्तस्थौ महाबलः ॥ रंभोऽप्यन्यद्वपुः कृत्वा निःसृतः पुत्रवत्सलः ॥४७॥ रक्तबीजोऽप्यसौ जातो महिषोऽपि महाबलः ॥ अभिषिक्तस्तु राज्येऽसौ हयारिरसुरोत्तमैः ॥ ४८ ॥ एवं स महिषो जातो रक्तबीजश्च वीर्यवान् ॥ अवध्यस्तु सुरैर्दैत्यैर्मानवैश्च नृपोत्तम ॥४९॥ इत्येतत्कथितं राजञ्जन्म तस्य महात्मनः ॥ वरप्रदानं तथा च प्रोक्तं सर्वं सविस्तरम् ॥५०॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे महिषासुरोत्पत्तिर्नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

॥ व्यास उवाच ॥ एवं स महिषो नाम दानवो वरदर्पितः ॥ प्राप्य राज्यं जगत्सर्वं वशे चक्रे महाबलः ॥ १ ॥ पृथिवीं पालयामास सागरांतां भुजार्जिताम् ॥ एकच्छत्रां निरातंकां वैरिवर्गविवर्जिताम् ॥ २ ॥ सेनानीश्चिक्षुरस्तस्य महावीर्यो मदोत्कटः ॥ धनाध्यक्षस्तथा ताम्रः सेनाऽयुतसमावृतः ॥ ३ ॥ असिलोमा तथोदर्को बिडालाख्यश्च बाष्कलः ॥ त्रिनेत्रोऽथ तथा कालबंधको बलदर्पितः ॥ ४ ॥ एते सैन्ययुताः सर्वे दानवा मेदिनीं तदा ॥ आवृत्य संस्थिताः काममृद्धां सागरमेखलाम् ॥ ५ ॥ करदाश्च कृताः सर्वे भूमिपालाः पुरातनाः ॥ निहता ये बलोदग्राः क्षात्रधर्मव्यवस्थिताः ॥ ६ ॥ ब्राह्मणा वशगा जाता यज्ञभागसमर्पकाः ॥ महिषस्य महाराज निखिले क्षितिमंडले ॥ ७ ॥ एकातपत्रं तद्राज्यं कृत्वा स महिषासुरः ॥

समयमें समस्त विश्वको अपने वशमें कर लिया ॥ १ ॥ वह अपने भुजबलसे समुद्र पर्यन्त समस्त पृथिवीपर एकछत्र राज्य करने लगा। उसे वैरियोंका कुछ भी भय नहीं रह गया था ॥ २ ॥ उसका सेनापति चिक्षुर बड़ा मदमत्त और पराक्रमी था। उसका कोषाध्यक्ष ताम्र था, जिसके पास दस हजार सेना रहती थी ॥ ३ ॥ असिलोमा, उदर्क, बिडालाख्य, बाष्कल, त्रिनेत्र और बलसे उन्मत्त कालबन्धक, इन प्रधान-प्रधान दानवोंने अपनी-अपनी सेनाओं द्वारा सारी ससागरा पृथिवीको घेरकर अत्यन्त समृद्ध राज्य स्थापित किया ॥ ४ ॥ ५ ॥ जितने भी पुराने राजे थे, उन सबसे वे कर लेने लगे। उनमें भी जो स्वाभिमानी थे और क्षात्रधर्मके अनुसार जिन राजाओंने उनका सामना किया, वे मार डाले गये ॥६॥ हे महाराज! महिषासुरके साम्राज्यमें रहनेवाले सब ब्राह्मण उसके अधीन हो गये और उसे यज्ञका भाग देने लगे ॥ ७ ॥ इस प्रकार एकछत्र राज्य स्थापित करनेके बाद वरदानसे गर्वित महिषासुरने स्वर्गपर

विजय प्राप्त करनेका मंसूबा बाँधा ॥ ८ ॥ तदनुसार शीघ्र दूतको बुलाकर दैत्यपति महिषने कहा—हे वीर ! हे महाबाहो ! हे अनघ ! तुम मेरा दूतकार्य करो । तुम बेखटके स्वर्गमें देवताओंके पास जाकर इन्द्रसे मेरी जबानी कहो—॥ ९ ॥ १० ॥ हे सहस्राक्ष ! तुम शीघ्र स्वर्ग छोड़कर जहाँ इच्छा हो, वहाँ चले जाओ या कि महात्मा महिषासुरकी नौकरी करो ॥ ११ ॥ यदि तुम उनकी शरणमें चले जाओगे तो वे अवश्य तुम्हारी रक्षा करेंगे । हे शचीपते ! अच्छा तो यही हो कि तुम उनकी शरणमें चले जाओ ॥ १२ ॥ यदि महिषासुरका आदेश स्वीकार न हो तो हे बलसूदन (बल दैत्यके नाशक) ! अपना वज्र सम्हालकर युद्धके लिए तैयार हो जाओ । हमारे पूर्वजोंने तुम्हें कई बार परास्त किया है । हम तुम्हारा पुरुषार्थ जानते हैं ॥ १३ ॥ हे अहल्याके साथ व्यभिचार करनेवाले देवसंघके अधिपति इन्द्र ! तुम्हारे बलको मैं भलीभाँति जानता हूँ । अब तुम या तो मेरे साथ युद्ध करो अथवा स्वर्ग त्यागकर जहाँ जी चाहे, वहाँ भाग जाओ ॥ १४ ॥ व्यासजी बोले—दूतके वचन सुनकर इन्द्र क्रुद्ध हो गये । फिर भी हे नृपश्रेष्ठ ! उन्होंने मुसकाकर कहा—॥ १५ ॥ हे अतिशय तुच्छबुद्धि दैत्य ! मुझे इस बातका

स्वर्गं जेतुं नमश्चक्रे वरदानेन गर्वितः ॥ ८ ॥ प्रणिधिं प्रेषयामास हयारिस्तु शचीपतिम् ॥ स संदेशहरं शीघ्रमाहूयोवाच दैत्यराट् ॥ ९ ॥ गच्छ वीर महाबाहो दूतत्वं कुरु मेऽनघ ॥ ब्रूहि शक्रं दिवं गत्वा निःशंकः सुरसन्निधौ ॥ १० ॥ मुञ्च स्वर्गं सहस्राक्ष यथेष्टं गच्छ माचिरम् ॥ सेवां वा कुरु देवेश महिषस्य महात्मनः ॥ ११ ॥ स त्वां संरक्षयेन्नूनं राजा शरणमागतम् ॥ तस्मात्त्वं शरणं याहि महिषस्य शचीपते ॥ १२ ॥ नोचेद्वज्रं गृहाणाशु युद्धाय बलसूदन ॥ पूर्वैर्जितोऽसि चास्माकं जानामि तव पौरुषम् ॥ १३ ॥ अहल्याजार विज्ञातं बलं ते सुरसंघप ॥ युध्यस्व व्रज वा कामं यत्र ते रमते मनः ॥ १४ ॥ व्यास उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य शक्रः क्रोधसमन्वितः ॥ उवाच तं नृपश्रेष्ठ स्मितपूर्वं वचस्तदा ॥ १५ ॥ न जानेऽहं सुमंदात्मन् यतस्त्वं मददर्पितः ॥ चिकित्सां संकरिष्यामि रोगस्यास्य प्रभोस्तव ॥ १६ ॥ अतः परं करिष्यामि मूलस्यास्य निमूलनम् ॥ गच्छ दूत तथा ब्रूहि तस्याग्रे मम भाषितम् ॥ १७ ॥ शिष्टैर्दूता न हंतव्यास्तस्मात्त्वां विसृजाम्यहम् ॥ युद्धेच्छा चेत्समागच्छ त्वरितो महिषीसुत ॥ १८ ॥ हयारे त्वद्बलं ज्ञातं तृणादस्त्वं जडाकृतिः ॥ शृंगयोस्ते करिष्यामि सुदृढं च शरासनम् ॥ १९ ॥ दर्पः शृंगबलात्तेऽस्ति विदितं कारणं मया ॥ विषाणे ते परिच्छित्त्वा संहरिष्यामि तद्बलम् ॥ २० ॥ यद्बलेनातिपूर्णस्त्वं जातोऽसि बलदर्पितः ॥ कुशलस्त्वं तदाघाते न युद्धे महिषाधम ॥ २१ ॥

पता नहीं कि तुम्हें इतना घमण्ड क्यों हो गया है । लेकिन फिर भी मैं तुम्हारे स्वामी महिषासुरका अभिमानज्वर उतारनेकी चिकित्सा करूँगा ॥ १६ ॥ इसके बाद मैं उस रोगको जड़से नष्ट करनेका उपाय करूँगा । हे दूत ! अब तुम अपने स्वामीके पास लौट जाओ और मैंने जो कुछ कहा है, उससे कह दो ॥ १७ ॥ भले लोग दूतका वध नहीं करते । इसीलिए मैं तुम्हें छोड़े देता हूँ । तुम मेरी ओरसे कह देना—हे महिषीपुत्र ! यदि लड़नेकी इच्छा हो तो आ जाओ ॥ १८ ॥ हे महिषासुर ! तुम घास खानेवाले जड़ प्रकृतिके पशु हो । सो तुम्हारा बल मुझे मालूम है । मैं तुम्हें मारकर तुम्हारी सींगोंसे मजबूत धनुष बनाऊँगा ॥ १९ ॥ तुम्हें अपनी सींगोंके बलपर बड़ा अभिमान है, यह भी मुझे ज्ञात है । सो उन सींगोंको काटकर मैं तुम्हारा गर्व खर्व कर दूँगा ॥ २० ॥ अरे अधम महिष ! उन्हीं सींगोंके बूतेपर तू इतना इतराता है, किन्तु केवल उन्हींसे आघात करनेका कौशल तुझमें है । तू युद्ध करनेमें निपुण नहीं हो

सकता ॥ २१ ॥ व्यासजी बोले--हे राजन् ! देवराज इन्द्रके वचन सुनकर दूत तत्काल लौट पड़ा और उन्मत्त महिषासुरके पास जा तथा प्रणाम करके बोला ॥२२॥ दूतने कहा--हे राजन् ! देवराज इन्द्र आपको किसी गिनतीमें नहीं मानते । देवसेनासे सम्पन्न होनेके कारण वे अपनेको पूर्ण शक्तिशाली समझते हैं ॥ २३ ॥ उस मूर्खने जो बातें कही हैं, उन्हें मैं कैसे कहूँ ? क्योंकि सेवकका यह धर्म है कि वह अपने स्वामीसे मृदु और सत्य वाणी बोले ॥ २४ ॥ अपना कल्याण चाहनेवाले भृत्यको चाहिये कि स्वामीके समक्ष प्रिय लगनेवाली ही सच्ची बात कहे । यही नीति सुखदायी होती आयी है ॥ २५ ॥ लेकिन यदि केवल चिकनी-चुपड़ी ही बात कहूँ तो आपका काम नहीं बनेगा । क्योंकि नीतिशास्त्र कहता है कि अपना भला चाहनेवाला भृत्य प्रभुके समक्ष कोई कडुई बात न बोले ॥ २६ ॥ हे नाथ ! जिस तरह शत्रुके मुखसे विषैली बातें निकलती हैं, वैसी बातें किसी सेवकके मुखसे कैसे निकलेंगी ? ॥ २७ ॥ हे महाराज ! इन्द्रने जैसी-जैसी बातें कही हैं, उन्हें मेरी जिह्वा कदापि न सह सकेगी ॥ २८ ॥ व्यासजी बोले--दूतके रहस्यभरे वचन सुनकर उस घास खानेवाले महिषासुरका सारा शरीर

व्यास उवाच ॥ इत्युक्तोऽसौ सुरेन्द्रेण स दूतस्त्वरितो गतः ॥ जगाम महिषं मत्तं प्रणम्य प्रत्युवाच ह ॥ २२ ॥ दूत उवाच ॥ राजन्देवाधिपः कामं न त्वां विगणयत्यसौ ॥ मन्यते स्वबलं पूर्णं देवसैन्यसमावृतः ॥ २३ ॥ यदुक्तं येन मूर्खेण कथमन्यद्ब्रवीम्यहम् ॥ प्रियं सत्यं च वक्तव्यं भृत्येन पुरतः प्रभोः ॥ २४ ॥ प्रियं सत्यं च वक्तव्यं प्रभोरग्रे शुभेच्छुना ॥ इति नीतिर्महाराज जागर्ति शुभकारिणी ॥ २५ ॥ केवलं चेत्प्रियं ब्रूयान्न ते कार्यं भविष्यति ॥ परुषं च न वक्तव्यं कदाचिच्छुभमिच्छता ॥२६॥ यथा रिपुमुखाद्वाचः प्रसरंति विषोपमाः ॥ तथा भृत्यमुखान्नाथ निःसरंति कथं गिरः ॥ २७ ॥ यादृशानीह वाक्यानि तेनोक्तानि महीपते ॥ तादृशानि न मे जिह्वा वक्तुमर्हति कर्हिचित् ॥ २८ ॥ व्यास उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य हेतुगर्भं तृणाशनः ॥ भृशं कोपपरीतात्मा बभूव महिषासुरः ॥२९॥ समाहूयाब्रवीद्दैत्यान्क्रोधसंरक्तलोचनः ॥ लांगूलं पृष्ठदेशे च कृत्वा मूत्रं परित्यजन् ॥ ३० ॥ भो भो दैत्याः सुरेंद्रोऽसौ युद्धकामोऽस्ति सर्वथा ॥ बलोद्योगं कुरुध्वं वै जेतव्योऽसौ सुराधमः ॥ ३१ ॥ मदग्रे को भवेच्छूरः कोटिशश्चेत्तथाविधाः ॥ न बिभेम्येकतः काम हनिष्याम्यद्य सर्वथा ॥ ३२ ॥ शूरः शान्तेष्वसौ नूनं तपस्विषु बलाधिकः ॥ बलकर्ता हि कुहको लंपटः परदारहृत् ॥ ३३ ॥ अप्सरोबलसंमत्तस्तपोविघ्नकरः खलः ॥ छिद्रप्रहरणः पापो नित्यं विश्वासघातकः ॥ ३४ ॥ नमुचिर्निहतो येन

क्रोधसे लाल हो गया ॥ २९ ॥ मारे क्रोधके उसके नेत्र अरुण हो उठे । उसने पूँछ उठाकर पीठपर रख ली और मूत्र त्याग करने लगा । तत्काल उसने दैत्योंको बुलाकर कहा--॥ ३० ॥ हे दैत्यों ! देवराज इन्द्र हमसे लड़ना चाहता है । सो आप शीघ्र सेनाका संगठन करिए । हमें उस देवाधमको जीतना होगा ॥ ३१ ॥ उसके जैसे करोड़ों वीर मेरे समक्ष आ जायँ, तो भी मैं न डरूँगा, तब उस अकेले इन्द्रको क्या समझता हूँ । अब मैं उसे अवश्य मार डालूँगा ॥ ३२ ॥ वह शान्त पुरुषोंपर अपनी वीरताका प्रदर्शन और तपस्वियोंपर बलप्रयोग करता है । परस्त्री-अपहरण, व्यभिचार और छल करनेमें ही वह कुशल है ॥ ३३ ॥ उसे अपनी अप्सराओंके बलपर बड़ा अभिमान है, वह तपस्वियोंकी तपस्यामें विघ्न डालता है, शत्रुको कमजोरा देखकर प्रहार करता है, वह सदाका पापी और विश्वासघाती है ॥ ३४ ॥ पहले तो भयके मारे उस दुष्ट छलियाने विश्वास उत्पन्न

करनेके लिए विविध प्रकारकी कसमें खायीं। जिससे नमुचि दैत्यने उससे सन्धि कर ली। बादमें वह सन्धि तोड़ डाली और विश्वासघात करके उसने नमुचिको मार डाला ॥ ३५ ॥ उसके छोटे भाई विष्णु कपटके आचार्य, छलिया और झूठी कसमें खानेमें बड़े बहादुर हैं। वे तरह-तरहके रूप बना लेते हैं, धीरे-धीरे शक्ति संचय करते रहते हैं और ढोंगियोंके सरदार हैं ॥ ३६ ॥ उन्होंने सूकरका रूप धरके हिरण्याक्षका वध किया और नृसिंहका रूप धारण करके हिरण्यकशिपुको मार डाला ॥ ३७ ॥ हे दनुके वंशजो! मैं तो निश्चय कर चुका हूँ कि उसका वशवर्ती कदापि न होऊँगा और कभी भी देवताओंपर विश्वास न करूँगा ॥ ३८ ॥ विष्णु और बलवान् इन्द्र, वे दोनों ही मेरा क्या कर लेंगे? जिस समय मैं रणभूमिमें डट जाऊँगा, उस समय रुद्र भी मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकेंगे ॥ ३९ ॥ मैं इन्द्र, वरुण, यम, कुबेर, अग्नि, चन्द्रमा और सूर्यको जीतकर स्वर्गपर अधिकार कर लूँगा ॥ ४० ॥ इस प्रकार सब देवताओंको परास्त करके हमलोग यज्ञका भाग पायेंगे और सोमरस पान करके दानवोंके साथ स्वर्गमें विहार करेंगे ॥ ४१ ॥ हे दानवो! वरदान प्राप्त किये रहनेके कारण मुझे देवताओंका कुछ भी

कृत्वा संधिं दुरात्मना ॥ शपथान्विविधानादौ कृत्वा भीतेन छद्मना ॥ ३५ ॥ विष्णुस्तु कपटाचार्यः कुहकः शपथाकरः ॥ नानारूपधरः कामं बलकुहंभपंडितः ॥ ३६ ॥ कृत्वा कोलाकृतिं येन हिरण्याक्षो निपातितः ॥ हिरण्यकशिपुर्येन नृसिंहेन च घातितः ॥ ३७ ॥ नाहं तद्वशगो नूनं भवेयं दनुनंदनाः ॥ विश्वासं नैव गच्छामि देवानां कुत्र कर्हिचित् ॥३८॥ किं करिष्यति मे विष्णुरिंद्रो वा बलवत्तरः ॥ रुद्रो वापि न मे शक्तः प्रतिकर्तुं रणांगणे ॥ ३९ ॥ त्रिविष्टपं ग्रहीष्यामि जित्वेन्द्रं वरुणं यमम् ॥ धनदं पावकं चैव चंद्रसूर्यौ विजित्य च ॥४०॥ यज्ञभागभुजः सर्वे भविष्यामोऽद्य सोमपाः ॥ जित्वा देवसमूहं च विहरिष्यामि दानवैः ॥ ४१ ॥ न मे भयं सुरेभ्यश्च वरदानेन दानवाः ॥ मरणं न नरेभ्यश्च नारी किं मे करिष्यति ॥ ४२ ॥ पातालपर्वतेभ्यश्च समाहूय वरान्वरान् ॥ दानवान्मम सैन्येशान्कुर्वंतु त्वरिताश्चराः ॥४३॥ एकोऽहं सर्वदेवेशान्विजेतुं दानवाः क्षमः ॥ शोभार्थं वः समाहूय नयामि सुरसंगमे ॥ ४४ ॥ शृंगाभ्यां च खुराभ्यां च हनिष्येऽहं सुरान्किल ॥ न मे भयं सुरेभ्यश्च वरदानप्रभावतः ॥४५॥ अवध्योऽहं सुरगणैरसुरैर्मानवैस्तथा ॥ तस्मात्सज्जा भवंत्वद्य देवलोकजयाय वै ॥ ४६ ॥ जित्वा सुरालयं दैत्या विहरिष्यामि नंदने ॥ मंदारकुसुमापीडा देवयोषित्समन्विताः ॥ ४७ ॥ कामधेनुपयोत्सिक्ताः सुधापानप्रमोदिताः ॥ देवगंधर्वगीतादिनृत्यलास्यसमन्विताः ॥ ४८ ॥ उर्वशी मेनका रंभा

भय नहीं है। पुरुषमात्र मेरा वध नहीं कर सकते। फिर स्त्री मेरा क्या बिगाड़ सकेगी? ॥ ४२ ॥ हे मेरे गुप्तचरो! जो उच्चकोटिके दानवसरदार पाताल तथा पर्वतोंपर रहते हों, उन्हें तत्काल यहाँ बुलवा लो और उनको सेनाध्यक्ष बनाकर मेरी सेना तैयार करो ॥ ४३ ॥ हे दानवो! यद्यपि मैं अकेला ही सब देवताओंको पराजित करनेमें समर्थ हूँ। तथापि रणभूमिकी शोभावृद्धिके लिए आप सबको इस लड़ाईमें बुलाकर ले चलूँगा ॥ ४४ ॥ मैं अपनी तीक्ष्ण सींगों और अपने खुरोंसे देवताओंको मारूँगा। वरदानके प्रभावसे मैं देवताओंसे तनिक भी नहीं डरता ॥ ४५ ॥ मैं सभी देवताओं, दैत्यों और मनुष्योंसे अवध्य हूँ। अतएव आप लोग शीघ्र देवलोकपर विजय प्राप्त करनेके लिए सुसज्जित हो जायँ ॥४६॥ हम देवलोकपर विजय प्राप्त करनेके बाद मन्दारपुष्पकी मालायें पहनकर देवाङ्गनाओंके साथ नन्दन वनमें विहार करेंगे ॥ ४७ ॥ वहाँ कामधेनुका दुग्ध पान करके अमृत पीयेंगे। उसके बाद देवताओं और गन्धर्वोंका विविध

हाव-भावपूर्ण नृत्य देखेंगे ॥ ४८ ॥ उर्वशी, मेनका, रम्भा, घृताची, तिलोत्तमा, प्रमद्वरा, महासेना, मिश्रकेशी, मदोत्कटा और विप्रचित्ति आदि जितनी भी नृत्य-गीतमें निपुण अप्सरायें हैं, वे नाना प्रकारकी मदिरायें पिला-पिलाकर आप लोगोंका मनोरंजन करेंगी ॥ ४९ ॥ ॥ ५० ॥ यदि आप लोगोंको पसन्द आये तो देवलोकपर आक्रमण करने तथा देवताओंके साथ युद्ध करनेके लिए उत्तम प्रकारका मंगलाचार करके आप सब सुसज्जित हो जायँ ॥ ५१ ॥ भृगुवंशी मुनिराज शुक्राचार्यको बुलवाकर उनका पूजन करें और इस युद्धमें विजय प्राप्त करने तथा दैत्योंकी रक्षाके लिए यज्ञ आरम्भ करके उन्हें उसका आचार्य बना दें ॥ ५२ ॥ व्यासजी बोले—हे राजन् ! पापी महिषासुर इस प्रकार दैत्योंको आदेश देकर बड़ी प्रसन्नताके साथ जल्दीसे अपने घर चला गया ॥ ५३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

(देवसभामें देव-दानवयुद्धसम्बन्धी विचार) व्यासजी बोले—हे महाराज ! दूतके चले जानेपर इन्द्रने यम, वायु, धनपति कुबेर और वरुण आदि देवताओंको बुलाकर कहा—

घृताची च तिलोत्तमा ॥ प्रमद्वरा महासेना मिश्रकेशी मदोत्कटा ॥४९॥ विप्रचित्तिप्रभृतयो नृत्यगीतविशारदाः ॥ रंजयिष्यंति वः सर्वान्नानासवनिषेवणैः ॥ ५० ॥ सर्वे सज्जा भवंत्वद्य रोचतां गमनं दिवि ॥ संग्रामार्थं सुरैः सार्धं कृत्वा मंगलमुत्तमम् ॥ ५१ ॥ रक्षणार्थं च सर्वेषां भार्गवं मुनिसत्तमम् ॥ समाहूय च संपूज्य स्थाप्य यज्ञे गुरुं परम् ॥५२॥ व्यास उवाच ॥ इति संदिश्य दैत्येन्द्रान्महिषः पापधीस्तदा ॥ जगाम त्वरितो राजन्भवनं स्वं मुदान्वितः ॥ ५३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे दैत्यसैन्योद्योगो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

॥ व्यास उवाच ॥ गते दूते सुरेंद्रोऽपि समाहूय सुरानथ ॥ यमवायुधनाध्यक्षवरुणानिदमूचिवान् ॥ १ ॥ महिषो नाम दैत्येन्द्रो रंभपुत्रो महाबलः ॥ वरदर्पमदोन्मत्तो मायाशतविचक्षणः ॥ २ ॥ तस्य दूतोऽद्य संप्राप्तः प्रेषितस्तेन भोः सुराः ॥ स्वर्गकामेन लुब्धेन मामुवाचेदृशं वचः ॥ ३ ॥ त्यज देवालयं शक्र यथेच्छं व्रज वासव ॥ सेवां वा कुरु दैत्यस्य महिषस्य महात्मनः ॥ ४ ॥ दयावान्दानवेन्द्रोऽसौ स ते वृत्तिं विधास्यति ॥ नतेषु भृत्यभूतेषु न कुप्यति कदाचन ॥ ५ ॥ नोचेद्युद्धाय देवेश सेनोद्योगं कुरु स्वयम् ॥ गते मयि स दैत्येंद्रस्त्वरितः समुपेष्यति ॥ ६ ॥ इत्युक्त्वा स गतो दूतो दानवस्य दुरात्मनः ॥ किं कर्तव्यमतः कार्यं चिन्तयध्वं सुरोत्तमाः ॥ ७ ॥ दुर्बलोऽपि न चोपेक्ष्यः शत्रुर्बलवता सुराः ॥

॥ १ ॥ रम्भपुत्र महाबली दैत्यराज महिषासुर वरदान पाकर बड़ा उद्धत हो गया है । वह सैकड़ों प्रकारकी माया जानता है ॥ २ ॥ हे देवताओं ! उसका भेजा हुआ दूत आज मेरे पास आया था । उस राज्यलोभी दैत्यको अब स्वर्गपर विजय प्राप्त करनेकी इच्छा हुई है ॥ ३ ॥ उसने कहलाया है कि हे इन्द्र ! तुम देवलोक त्याग दो । हे वासव ! तुम्हारी जहाँ इच्छा हो, वहाँ जाओ अथवा महात्मा महिषासुरके यहाँ नौकरी कर लो ॥ ४ ॥ दानवराज महिष बड़े दयालु हैं । यदि तुम उनकी शरणमें चले जाओगे तो वे तुम्हारी जीविकाका कोई प्रबन्ध अवश्य कर देंगे । जो लोग नतमस्तक होकर उनकी शरणमें जाते हैं और सेवकाई स्वीकार कर लेते हैं, उनपर वे कोप नहीं करते ॥ ५ ॥ हे देवराज ! यदि मेरा प्रस्ताव स्वीकार न हो तो युद्धके लिए आप शीघ्र सेनाका संग्रह करिए । क्योंकि मेरे वापस लौटते ही दैत्यराज महिष तुरन्त देवलोकपर आक्रमण कर देंगे ॥ ६ ॥ ऐसा कहकर उस दुरात्मा दानवका दूत चला गया ।

हे श्रेष्ठ देवताओ ! अब हमें क्या करना चाहिए ? इस विषयपर आप लोग विचार करें ॥७॥ हे देवताओ ! बलवान् राजाको चाहिए कि अत्यन्त निर्बल शत्रुकी भी उपेक्षा न करे। विशेष करके ऐसे शत्रुसे तो और भी सतर्क रहना चाहिए जो सदा युद्धोद्योगमें लिप्त रहे, बलवान् हो और अपने बलपर अभिमान करता हो ॥८॥ अतएव अब अपने बल और अपनी बुद्धिके अनुसार हमें उद्योग करना चाहिए। वैसे तो जय-पराजय सदा दैवके अधीन रहता है ॥९॥ इस विषयमें सन्धिकी भी संभावना नहीं है। क्योंकि दुष्ट राजाके साथकी हुई सन्धि व्यर्थ हो जाती है। सन्धि तो भलीभाँति विचार करके अच्छे लोगोंके साथ ही सन्धि करनी चाहिए ॥१०॥ सहसा आक्रमण कर देना भी उचित न होगा। अतएव पहले शत्रुके मर्मकी टोह लेनेवाले गुप्तचर भेजे जायँ, जो जाकर उन दैत्योंमें घुल-मिल जायँ और शीघ्र सब बातें मालूम करके लौट आयें ॥ ११ ॥ वे गुप्तदूत ऐसे होने चाहिए जो संकेतको समझते हों, सब तरह बेलाग हों, लालची न हों और सत्यवादी हों। वे वहाँ जाकर यह देखें कि सेनाकी गति-विधि कैसी है, कहाँ-कहाँ उनका जमाव हो रहा है और सेनाकी सही संख्या कितनी है ॥ १२ ॥ वे यह भी देखें कि शत्रुके

विशेषेण सदोद्योगी बलवान्बलदर्पितः ॥ ८ ॥ उद्यमः किल कर्तव्यो यथाबुद्धिर्यथाबलम् ॥ दैवाधीनो भवेन्नूनं जयो वाऽथ पराजयः ॥ ९ ॥
संधियोगो न चात्रास्ति खले संधिर्निरर्थकः ॥ सर्वथा साधुभिः कार्यं विचार्य च पुनः पुनः ॥ १० ॥ यानमप्यधुना नैव कर्तव्यं सहसा पुनः ॥
प्रेक्षकाः प्रेषणीयाश्च शीघ्रगाः सुप्रवेशकाः ॥११॥ इङ्गितज्ञाश्च निःसंगा निःस्पृहाः सत्यवादिनः ॥ सेनाभियोगं प्रस्थानं बलसंख्यां यथार्थतः ॥१२॥
वीराणां च परिज्ञानं कृत्वा यांतु त्वरान्विताः ॥ ज्ञात्वा दैत्यपतेस्तस्य सैन्यस्य च बलाबलम् ॥१३॥ करिष्यामि ततस्तूर्णं यानं वा दुर्गसंग्रहम् ॥
(विचार्य खलु कर्तव्यं कार्यं बुद्धिमता सदा ॥) सहसा विहितं कार्यं दुःखदं सर्वथा भवेत् ॥ १४ ॥ तस्माद्विमृश्य कर्तव्यं सुखदं सर्वथा बुधैः ॥
नात्र भेदविधिर्न्याय्यो दानवेषु च सर्वथा ॥१५॥ एकचित्तेषु कार्येऽस्मिंस्तस्माच्चारा व्रजंतु वै ॥ ज्ञात्वा बलाबलं तेषां पश्चान्नीतिर्विचार्य च ॥१६॥
विधेया विधिवत्तज्ज्ञैस्तेषु कार्यपरेषु च ॥ अन्यथा विहितं कार्यं विपरीतफलप्रदम् ॥१७॥ सर्वथा तद्भवेन्नूनमज्ञातमौषधं यथा ॥ व्यास उवाच ॥
इति संचिंत्य तैः सर्वैः प्रणिधिं कार्यवेदिनम् ॥ १८ ॥ प्रेषयामास देवेंद्रः परिज्ञानाय पार्थिवः ॥ दूतस्तु त्वरितो गत्वा समागम्य सुराधिपम् ॥१९॥

पास कितने वीर योद्धा हैं। इस प्रकार उस दैत्यपतिकी सेनाके बलाबलका पता लगाकर वे शीघ्र लौट आयें ॥ १३ ॥ इन बातोंकी भली भाँति जानकारी हो जानेपर यदि उचित जँचेगा तो हम अपनी किलेबन्दीके काममें जुट जायँगे। (बुद्धिमान् मनुष्यका कर्तव्य है कि सदा भलीभाँति विचार करके ही कोई काम करे।) क्योंकि सहसा कोई काम कर डालनेसे दुःख ही उठाना पड़ता है ॥१४॥ अतएव बुद्धिमानोंको चाहिए कि खूब सोच-विचारकर सुखदायक काम करें। दानवोंमें फूट डालनेकी भेदनीति भी सफल होनेकी आशा नहीं है। क्योंकि वे सब संघबद्ध हैं। अतएव पहले गुप्तचर ही भेजे जायँ। उनके द्वारा शत्रुका बलाबल जान लेनेके बाद विचार करके नीति निर्धारित कर ली जायगी ॥ १५ ॥ १६ ॥ हम देवताओंमें जो बड़े-बड़े नीति-शास्त्रके धुरन्धर विद्वान् हैं, वे उन कर्मठ दैत्योंपर अपनी नीतिका विधिवत् उपयोग करें। यदि हम नीतिपथसे विचलित होंगे तो हमको वैसे ही विपरीत फल भोगना पड़ेगा ॥१७॥ जैसे कोई किसी औषधिका गुण जाने बिना उसका प्रयोग करके दुःख उठाता है। व्यासजी बोले—हे राजन् ! इस प्रकार देवताओंसे परामर्श करके देवराज इन्द्रने शत्रुपक्षकी टोह लेनेके लिए एक कार्य-

कुशल गुप्तचरको भेजा। तदनुसार दूत तत्काल चल पड़ा और वहाँके सैनिक बलाबलका भेद लेकर इन्द्रके पास लौट आया ॥१८॥ १९ ॥ उसने दैत्यपक्षका समस्त वृत्तान्त यथार्थ रीतिसे कह सुनाया। दैत्योंके युद्धोद्योगका हाल सुनकर इन्द्रको बहुत आश्चर्य हुआ ॥२०॥ तुरन्त उन्होंने देवताओंको सैनिक तैयारी करनेकी आज्ञा दे दी और मंत्रणानिपुण देवगुरु बृहस्पतिको बुलाकर उनसे सलाह करने लगे ॥ २१ ॥ जब अंगिरागोत्रके सर्वश्रेष्ठ कर्णधार बृहस्पति आसनपर विराजमान हो गये, तब इन्द्रने कहा। इन्द्र बोले—हे देवगुरो! हे विद्वान्! अब हमें क्या करना चाहिए? सो बताइए ॥२२॥ आप सर्वज्ञ हैं। ऐसी विकट परिस्थितिमें एकमात्र आप ही मेरे सहायक हैं। महिषासुर बड़ा वीर और बड़ा अभिमानी है ॥ २३ ॥ वह बहुतेरे दानवोंको साथ लेकर हमपर आक्रमण करने आ रहा है। आप मंत्रणाकार्यमें अत्यन्त निपुण हैं। अतएव कोई ऐसा उपाय बताइए कि जिससे उनके आक्रमणका प्रतीकार किया जा सके। यह सर्वसम्मत बात है कि जैसे दैत्योंपर आये संकटको शुक्राचार्य टालते हैं, उसी प्रकार देवताओंपर आयी बाधाओंको आप दूर करते हैं। व्यासजी बोले—इन्द्रकी यह बात सुनकर देवगुरु

निवेदयामास तदा सर्वसैन्यबलाबलम् ॥ ज्ञात्वा तद्बलमुद्योगं तुराषाडतिविस्मितः ॥२०॥ देवानचोदयत्तूर्णं समाहूय पुरोहितम् ॥ मंत्रं मंत्रविदां श्रेष्ठं चकार त्रिदशेश्वरः ॥ २१ ॥ उवाचांगिरसश्रेष्ठं समासीनं वरासने ॥ इन्द्र उवाच ॥ भो भो देवगुरो विद्वन्किं कर्तव्यं वदस्व नः ॥ २२ ॥ सर्वज्ञोऽसि समुत्पन्ने कार्ये त्वं गतिरद्य नः ॥ दानवो महिषो नाम महावीर्यो मदान्वितः ॥ २३ ॥ योद्धुकामः समायाति बहुभिर्दानवैर्वृतः ॥ तत्र प्रतिक्रिया कार्या त्वया मंत्रविदाऽधुना ॥ २४ ॥ तेषां शुक्रस्तथा त्वं मे विघ्नहर्ता सुसंयतः ॥ व्यास उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं प्राह तुरासाहं बृहस्पतिः ॥२५॥ विचिन्त्य मनसा कामं कार्यसाधनतत्परः ॥ गुरुरुवाच ॥ स्वस्थो भव सुरेंद्र त्वं धैर्यमालंब्य मारिष ॥ २६ ॥ व्यसने च समुत्पन्ने न त्याज्यं धैर्यमाशु वै ॥ जयाजयौ सुराध्यक्ष दैवाधीनौ सदैव हि ॥ २७ ॥ स्थातव्यं धैर्यमालंब्य तस्माद्बुद्धिमता सदा ॥ भवितव्यं भवत्येव जानन्नेव शतक्रतो ॥२८॥ उद्यमः सर्वथा कार्यो यथापौरुषमात्मनः ॥ मुनयोऽपि हि मुक्त्यर्थमुद्यमैकरताः सदा ॥ २९ ॥ दैवाधीनं च जानंतो योगध्यानपरायणाः ॥ तस्मात्सदैव कर्तव्यो व्यवहारोदितोद्यमः ॥ ३० ॥ सुखं भवतु वा मा वा दैवे का परिदेवना ॥ बिना पुरुषकारेण कदाचित्सिद्धिमाप्नुयात् ॥ ३१ ॥ अंधवत्पंगुवत्कामं न तथा मुदमावहेत् ॥ कृते पुरुषकारेऽपि यदि सिद्धिर्न जायते ॥ ३२ ॥ न तत्र दूषणं तस्य

बृहस्पतिने कार्य-कारणके सम्बन्धमें मन ही मन भलीभाँति विचार करके कहा। बृहस्पति बोले—हे देवराज! आप चिन्ता त्याग दीजिए। हे महानुभाव! धीरज धरिए ॥ २४–२६ ॥ विपत्ति आ पड़नेपर सहसा धैर्य नहीं खो देना चाहिए। हे सुरेन्द्र! जय और पराजय सदा दैवके अधीन रहते आये हैं ॥ २७ ॥ अतएव हे देवराज! बुद्धिमान्‌का यह कर्तव्य है कि सदा धैर्यका अवलम्बन करके सब कार्य करे। यह तो आप जानते ही हैं कि होनी होकर ही रहती है ॥ २८ ॥ अपनेमें जितना पौरुष हो, उसीके अनुसार कार्य करना चाहिए। बड़े-बड़े मुनि भी मोक्षप्राप्तिके निमित्त सदा उद्योग करते रहते हैं ॥ २९ ॥ यद्यपि वे भी जानते हैं कि मुक्ति दैवके अधीन रहती है, फिर भी वे योग तथा ध्यानमें लगे ही रहते हैं। अतएव अपनी सामर्थ्यके अनुसार जहाँतक सम्भव हो, वहाँतक सदा उद्योगमें लगा रहे ॥ ३० ॥ सुख मिले या दुःख, दैवके भरोसे रह तथा विपत्तिमें पड़कर झंखना

ठीक नहीं है। यदि आप सोचें कि पुरुषार्थ न करना पड़े और सफलता मिल जाय तो सिद्धि प्राप्त होना असम्भव है॥ ३१ ॥ जैसे अन्धे और पंगुको सफलताका सुख शायद ही कभी मिलता हो। इसी प्रकार पुरुषार्थ करनेपर भी यदि सफलता न मिले तो उसमें अपना कोई अपराध नहीं है। क्योंकि प्रत्येक शरीरधारी सदा दैवके अधीन रहता है। सिद्धि न सेनासे मिलती है, न मन्त्रसे मिलती है और न मंत्रणासे मिलती है॥ ३२ ॥ ३३ ॥ हे देवेन्द्र! रथों और आयुधोंसे भी सफलता नहीं मिलती। क्योंकि सफलता सदा भाग्यके अधीन रहती है। संसारमें प्रायः देखा जाता है कि बलवान् दुःख भोगता है और निर्बल सुख पाता है॥ ३४ ॥ बुद्धिमान् भूखा सोता है और निर्बुद्धि आनन्द भोगता है। कायर विजय प्राप्त कर लेता है और शूरवीर पराजित हो जाता है॥ ३५ ॥ जब समस्त संसार दैवके अधीन रहता है, तब इसके लिए विषाद करना व्यर्थ है। अतएव हे सुराधीश! सबसे उत्तम उपाय तो यह है कि उद्योगमें ही भाग्यको जोड़ दे॥ ३६ ॥ फिर उसके बाद उद्योग करनेसे दुःख प्राप्त हो या सुख, उसपर कुछ ध्यान न दे। दुःख पड़नेपर

दैवाधीने शरीरिणि॥ कार्यसिद्धिर्न सैन्येऽस्ति न मंत्र न च मंत्रणे॥ ३३ ॥ न रथे नायुधे नूनं दैवाधीना सुराधिप॥ बलवान्क्लेशमाप्नोति निर्बलः सुखमश्नुते॥ ३४ ॥ बुद्धिमान्क्षुधितः शेते निर्बुद्धिर्भोगवान्भवेत्॥ कातरो जयमाप्नोति शूरो याति पराजयम्॥ ३५ ॥ दैवाधीने तु संसारे कामं का परिदेवना॥ उद्यमे योजयेन्नूनं भवितव्यं सुराधिप॥ ३६ ॥ दुःखदे सुखदे वाऽपि तत्र तौ न विचिंतयेत्॥ दुःखे दुःखाधिकान्पश्येत्सुखे पश्येत्सुखाधिकम्॥ ३७ ॥ आत्मानं हर्षशोकाभ्यां शत्रुभ्यामिव नार्पयेत्॥ धैर्यमेवावगंतव्यं हर्षशोकोद्भवे बुधैः॥ ३८ ॥ अधैर्याद्यादृशं दुःखं न तु धैर्येऽस्ति तादृशम्॥ दुर्लभं सहनत्वं वै समये सुखदुःखयोः॥ ३९ ॥ हर्षशोकोद्भवो यत्र न भवेद्बुद्धिनिश्चयात्॥ किं दुःखं कस्य वा दुःखं निर्गुणोऽहं सदाऽव्ययः॥ ४० ॥ चतुर्विंशातिरिक्तोऽस्मि किं मे दुःखं सुखं च किम्॥ प्राणस्य क्षुत्पिपासे द्वे मनसः शोकमूर्च्छने॥ ४१ ॥ जरामृत्युशरीरस्य षड्भिरिरहितः शिवः॥ शोकमोहौ शरीरस्य गुणौ किं मेऽत्र चिंतने॥ ४२ ॥ शरीरं नाहमथवा तत्सम्बन्धो न चाप्यहम्॥ सप्तैकषोडशादिभ्यो विभिन्नोऽहं सदा सुखी॥ ४३ ॥ प्रकृतिर्विकृतिर्नाहं किं मे दुःखं सदा पुनः॥ इति मत्वा सुरेश त्वं मनसा

यह न सोचे कि मुझपर संकटका पहाड़ टूट पड़ा है। इसी प्रकार सुख मिलनेपर यह भी न सोचे कि मुझे बहुत सुख मिल रहा है॥३७॥ जैसे वीर पुरुष पौरुष रहते शत्रुके हाथमें आत्मसमर्पण नहीं करता। उसी प्रकार बुद्धिमान् पुरुष अपने आपको सुख और दुःखके हाथों न सौंप दे॥ ३८॥ घबड़ाहटसे जितना दुःख मिलता है, उतना दुःख धैर्य धारण करनेसे नहीं होता। किन्तु समय आ जानेपर सुख और दुःख झेलना बड़ा कठिन हो जाता है॥३९॥ अतएव प्राणीको चाहिए कि अपनी बुद्धि इतनी दृढ़ कर ले कि उसपर सुख और दुःखका कोई प्रभाव पड़े। अपने मनमें यह भावना भरे कि दुःख क्या वस्तु है और किसे दुःख होता है? मैं तो गुणोंसे पृथक् अविनाशी तत्त्व हूँ॥४०॥ मैं चौबीस तत्त्वोंसे भिन्न आत्मतत्त्व हूँ। तब सुख-दुःख मेरे लिए क्या चीज हैं? क्योंकि प्राणको भूख-प्यास लगती है और मनको शोक और मोहका सामना करना पड़ता है॥ ४१ ॥ शरीरको वृद्धावस्था तथा मरणका क्लेश भोगना पड़ता है, किन्तु मैं तो प्राण-मन तथा शरीरसे भिन्न और शोक, मोह, जरा, मृत्यु, क्षुधा और पिपासासे रहित शिवस्वरूप हूँ। शोक और मोह तो शरीरके गुण हैं। मुझे उनके विषयमें कुछ सोचनेकी क्या आव-

श्यकता ? ॥४२॥ मैं न शरीर हूँ और न उसका सम्बन्धी जीव ही हूँ। मैं तो महदादि सातों विकृतियों, एक प्रकृति और षोडश विकारोंसे परे रहनेवाला सुखस्वरूप हूँ ॥४३॥ जब मैं न प्रकृति हूँ और न विकृति । तब मुझे दुःख किस बातका ? हे देवेश ! ऐसा निश्चय करके आप अपने मनसे ममता दूर करके निर्मल बन जाइए ॥४४॥ हे सौ यज्ञ करनेवाले इन्द्र ! आपके दुःख नष्ट होनेका यह प्रधान उपाय है। ममता ही सबसे बड़ा दुःख है ॥ ४५ ॥ हे शचीपते ! सन्तोषसे बढ़कर सुखका कोई भी स्थान नहीं है । अथवा यदि ममता दूर करनेमें आपका ज्ञान असमर्थ हो तो हे देवराज ! आप अपने ज्ञानको भाग्यपर केन्द्रित करिए । यह निश्चित समझिए कि भोगे बिना प्रारब्ध कर्मका नाश नहीं हो सकता ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ जो होना रहता है, वह होकर ही रहता है । तब सुख-दुःखके विषयमें क्या चिन्ता ? यदि सब देवता आपकी सहायता करें या केवल आपकी बुद्धि ही सहायता करे । फिर भी होनहार नहीं टलनेका ॥४८॥ हे लोक-पूज्य ! सुखप्राप्तिसे पुण्यका नाश होता है और दुःखसे पापका नाश होता है । अतएव सुखका नाश होनेपर बुद्धिमान् लोगोंको सर्वथा हर्षित ही होना चाहिए ॥४९॥ अथवा यदि आपकी

भव निर्ममः ॥ ४४ ॥ उपायः प्रथमोऽयं ते दुःखनाशे शतक्रतो ॥ ममता परमं दुःखं निर्ममत्वं परं सुखम् ॥४५॥ संतोषादपरं नास्ति सुखस्थानं शचीपते ॥ अथवा यदि न ज्ञानं ममत्वनाशने किल ॥ ४६ ॥ ततो विवेकः कर्तव्यो भवितव्ये सुराधिप ॥ प्रारब्धकर्मणां नाशो न भोगाल्लक्ष्यते किल ॥ ४७ ॥ यद्भावि तद्भवत्येव का चिंता सुखदुःखयोः ॥ सुरैः सर्वैः सहायैर्वा बुद्ध्या वा तव सत्तम ॥ ४८ ॥ सुखं क्षयाय पुण्यस्य दुःखं पापस्य मारिष ॥ तस्मात्सुखक्षये हर्षः कर्तव्यः सर्वथा बुधैः ॥ ४९ ॥ अथवा मंत्रयित्वाऽद्य कुरु यत्नं यथाविधि ॥ कृते यत्ने महाराज भवितव्यं भविष्यति ॥ ५० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

॥ व्यास उवाच ॥ इति श्रुत्वा सहस्राक्षः पुनराह बृहस्पतिम् ॥ युद्धोद्योगं करिष्यामि हयारेर्नाशनाय वै ॥ १ ॥ नोद्यमेन बिना राज्यं न सुखं न च वै यशः ॥ निरुद्यमं न शंसंति कातरा न च सोद्यमाः ॥ २ ॥ यतीनां भूषणं ज्ञानं संतोषो हि द्विजन्मनाम् ॥ उद्यमः शत्रुहननं भूषणं भूतिमिच्छताम् ॥ ३ ॥ उद्यमेन हतस्त्वाष्ट्रो नमुचिर्बल एव च ॥ तथैनं निहनिष्यामि महिषं मुनिसत्तम ॥ ४ ॥ बलं देवगुरुस्त्वं मे वज्रमायुध-

इच्छा हो तो मंत्रणा करके विधिवत् प्रयत्न करिए । लेकिन हे महाराज ! प्रयत्न करनेपर भी जो होनहार होगा, वह होकर ही रहेगा ॥ ५० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृत 'पीताम्बरा' भाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

(देव-दानवसंग्राम और ताम्रकी पराजय) व्यासजी बोले—हे महाराज जनमेजय ! ये बातें सुनकर हजार नेत्रोंवाले इन्द्रने बृहस्पतिसे कहा—हे गुरुदेव ! मैं तो महिषासुरका विनाश करनेके लिए युद्धकी तैयारी करूँगा ॥ १ ॥ क्योंकि उद्योगके बिना न राज्य मिलता है, न आनन्द प्राप्त होता है और न यश ही मिलता है । कायर लोग ही निरुद्योगिताकी सराहना करते हैं, किन्तु उद्योगपरायण लोग ऐसा नहीं करते ॥ २ ॥ जैसे साधु-संन्यासियोंके लिए ज्ञान आभूषण होता है और ब्राह्मणोंका सन्तोष भूषण होता है । उसी प्रकार अपनी उन्नति चाहनेवाले राजाओंके लिए शत्रुविनाशका उद्योग ही भूषण होता है ॥ ३ ॥ क्योंकि उद्योगसे ही मैंने पूर्वकालमें वृत्रासुर, नमुचि तथा बलनामक राक्षसका वध किया था ।

अपनी उन्नति चाहनेवाले राजाओंके लिए शत्रुविनाशका उद्योग ही भूषण होता है ॥ ३ ॥ क्योंकि उद्योगसे ही मैंने पूर्वकालमें वृत्रासुर, नमुचि तथा बलनामक राक्षसका वध किया था।

उसी प्रकार उद्योग करके मैं उस महिषासुरका भी वध करूँगा ॥ ४ ॥ आप देवगुरु और सर्वश्रेष्ठ शस्त्र वज्र ये दोनों मेरे प्रधान बल हैं। अवसर आनेपर विष्णुभगवान और अविनाशी शिवजी अवश्य हमारी सहायता करेंगे ॥ ५ ॥ हे महात्मन् ! मैं तो अब युद्धोद्योग कर रहा हूँ और महिषासुरके साथ युद्ध करनेके लिए उपयुक्त स्थलोंपर सैनिक शिविर स्थापित करनेका आदेश देने जाता हूँ। अतएव हे मानद ! अब आप विघ्न दूर करनेवाले मांगलिक वेदमंत्रोंका पाठ करिए ॥ ६ ॥ व्यासजी बोले—हे राजन् ! देवराजके ऐसा कहनेपर युद्धके लिए सर्वथा सन्नद्ध इन्द्रसे बृहस्पतिजीने मुस्कुराते हुए यह बात कही ॥ ७ ॥ बृहस्पतिने कहा—लड़ाई लड़नेसे आपकी जीत होगी या हार—यह विषय अभी सन्देहास्पद है। इसलिए न तो मैं आपको लड़नेके लिए कहूँगा और न इसी बातपर जोर दूँगा कि आप लड़ाई न लड़िए ॥ ८ ॥ हे इन्द्राणीपति ! ऐसा होनहार है, इसलिए आपका कोई दोष नहीं है। जो सुख या दुःख भाग्यमें लिखा होगा, उसे भोगना ही पड़ेगा ॥ ९ ॥ आपने जो मुझे सर्वज्ञ कहा, उसके सम्बन्धमें मुझे यह कहना है कि भविष्यमें सुख मिलेगा या दुःख—इसकी जानकारी मुझे नहीं है। क्योंकि यदि मैं सर्वज्ञ

मुत्तमम् ॥ सहायस्तु हरिर्नूनं तथोमापतिरव्ययः ॥ ५ ॥ रक्षोघ्नान्पठ मे साधो करोम्यद्य समुद्यमम् ॥ स्वसैन्याभिनिवेशं च महिषं प्रति मानद ॥ ६ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्तो देवराजेन वाचस्पतिरुवाच ह ॥ सुरेन्द्रे युद्धसंरक्तं स्मितपूर्वं वचस्तदा ॥ ७ ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ प्रेरयामि न चाहं त्वां न च निर्वारयाम्यहम् ॥ संदिग्धेऽत्र जये कामं युध्यतश्च पराजये ॥ ८ ॥ न तेऽत्र दूषणं किंचिद्भवितव्ये शचीपते ॥ सुखं वा यदि वा दुःखं विहितं च भविष्यति ॥ ९ ॥ न मया तत्परिज्ञातं भावि दुःखं सुखं तथा ॥ यद्भार्याहरणे प्राप्तं पुरा वासव वेत्सि हि ॥ १० ॥ शशिना मे हृता भार्या मित्रेणामित्रकर्शन ॥ स्वाश्रमस्थेन संप्राप्तं दुःखं सर्वसुखापहम् ॥ ११ ॥ बुद्धिमान्सर्वलोकेषु विदितोऽहं सुराधिप ॥ क्व मे गता तदा बुद्धिर्यदा भार्या हृता बलात् ॥ २१ ॥ तस्मादुपायः कर्तव्यो बुद्धिमद्भिः सदा नरैः ॥ कार्यसिद्धिः सदा नूनं दैवाधीना सुराधिप ॥ १३ ॥ व्यास उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं सत्यं गुरोः सार्थं शचीपतिः ॥ ब्रह्माणं शरणं गत्वा नत्वा वचनमब्रवीत् ॥ १४ ॥ पितामह सुराध्यक्ष दैत्यो महिषसंज्ञकः ॥ ग्रहीतुकामः स्वर्गं मे बलोद्योगं करोत्यलम् ॥१५॥ अन्ये च दानवाः सर्वे तत्सैन्यं समुपस्थिताः ॥ योद्धुकामा महावीर्याः सर्वे युद्धविशारदाः ॥ १६ ॥

या भविष्यवेत्ता होता तो पूर्व समयमें अपनी स्त्रीके हरणके अवसरपर जितना कष्ट उठाना पड़ा था—वह न उठाना पड़ता। सो आप जानते ही हैं ॥१०॥ हे शत्रुनिषूदन ! चन्द्रमाने मेरी स्त्रीको रख लिया। जिससे गार्हस्थ्यजीवन व्यतीत करनेमें मेरे सुखोंकी इतिश्री हो गयी और मुझे अपरम्पार कष्ट उठाना पड़ा ॥११॥ हे देवसेनानायक ! संसारमें मैं बड़ा बुद्धिमान् गिना जाता हूँ, लेकिन जब मेरी स्त्रीको जबर्दस्ती चन्द्रमाने हर लिया तो मेरी बुद्धि कहाँ चली गयी थी ? ॥ १२ ॥ इसलिए हे पुरन्दर ! समझदार लोगोंको चाहिए कि उपाय करनेमें न चूकें। क्योंकि कार्यकी सिद्धि तो दैवके अधीन है ॥ १३ ॥ व्यासजीने कहा कि जब इन्द्रने गुरु बृहस्पतिकी मतलबसे भरी हुई सच्ची बात सुनी तो ब्रह्माजीकी शरणमें जाकर सिर नवाया और यह बात बोले—॥ १४ ॥ हे पितामह ! हे देवताओंके अध्यक्ष ! महिष नामका दैत्य मेरे स्वर्गको हड़पनेके लिए बड़ी भारी सेना जुटा रहा है ॥ १५ ॥ जितने बड़े-बड़े दानव हैं, सभी लड़नेके

लिए उसकी सेनामें भरती हो चुके हैं। वे सभी युद्ध-सञ्चालनकलामें निपुण हैं और एक-से-एक बढ़कर महाबलशाली हैं ॥ १६ ॥ इसी कारण मैं अत्यन्त भयभीत होकर आपके पास आया हूँ। हे विशाल बुद्धिमान्! आप सर्वज्ञ हैं। अतएव आप मेरी सहायता करिए ॥ १७ ॥ ब्रह्माने कहा—अभी हमलोग कैलास चलें और फिर शिवजीको साथ लेकर उनके नेतृत्वमें बलशालियोंमें अग्रगण्य विष्णुके पास जायँ ॥ १८ ॥ तब सर्व-देवसम्मेलनमें सबकी सलाह लेकर और देश-कालका विचार करके निर्णय किया जायगा कि युद्ध करना चाहिए या नहीं ॥१९॥ क्योंकि जो लोग अपनी शक्ति तथा दुर्बलताको नहीं जानते और न उसपर विचार ही करते हैं एवं एकबारगी जोखिमका काम उठा लेते हैं तो उनके पतनकी पूरी सम्भावना बनी रहती है ॥ २० ॥ व्यासजीने कहा—यह बात सुनकर इन्द्र ब्रह्माजीके नेतृत्वमें (यम, अग्नि, कुबेर आदि) लोकपालोंको साथ लेकर कैलासकी ओर चले ॥ २१ ॥ वहाँ जाकर रुद्राध्याय-के वेदमन्त्रोंसे शङ्करजीकी स्तुति की। भगवान आशुतोषको प्रसन्न करके वे उनके नेतृत्वमें विष्णुलोक गये ॥ २२ ॥ उन देवाधिपतिकी स्तुति करनेके बाद अपने आनेका उद्देश्य बत-

तेनाहं भीतभीतोऽस्मि त्वत्सकाशमिहागतः ॥ सर्वज्ञोऽसि महाप्राज्ञ साहाय्यं कर्तुमर्हसि ॥१७॥ ब्रह्मोवाच ॥ गच्छामः सर्व एवाद्य कैलासं त्वरिता वयम् ॥ शंकरं पुरतः कृत्वा विष्णुं च बलिनां वरम् ॥१८॥ ततो युद्धं प्रकर्तव्यं सर्वैः सुरगणैः सह ॥ मिलित्वा मंत्रमाधाय देशं कालं विचिंत्य च ॥१९॥ बलाबल-मविज्ञाय विवेकमपहाय च ॥ साहसं तु प्रकुर्वाणो नरः पतनमृच्छति ॥२०॥ व्यास उवाच ॥ तन्निशम्य सहस्राक्षः कैलासं निर्जगाम ह ॥ ब्रह्माणं पुरतः कृत्वा लोकपालसमन्वितः ॥२१॥ तुष्टाव शंकरं गत्वा वेदमंत्रैर्महेश्वरम् ॥ प्रसन्नं पुरतः कृत्वा ययौ विष्णुपुरं प्रति ॥ २२ ॥ स्तुत्वा तं देवदेवेशं कार्यं प्रोवाच चात्मनः ॥ महिषात्तद्भयं चोग्रं वरदानमदोद्धतात् ॥२३॥ तदाकर्ण्य भयं तस्य विष्णुर्देवानुवाच ह ॥ करिष्यामो वयं युद्धं हनिष्यामस्तु दुर्जयम् ॥३४॥ व्यास उवाच ॥ इति ते निश्चयं कृत्वा ब्रह्मविष्णुहरीश्वराः ॥ स्वानि स्वानि समारुह्य वाहनानि ययुः सुराः ॥ २५ ॥ ब्रह्मा हंससमारूढो विष्णुर्गरुडवाहनः ॥ शंकरो वृषभारूढो वृत्रहा गजसंस्थितः ॥२६॥ मयूरवाहनः स्कंदो यमो महिषवाहनः ॥ कृत्वा सैन्यसमायोगं यावत्ते निर्ययुः सुराः ॥२७॥ तावद्दैत्यबलं प्राप्तं दृप्तं महिषपालितम् ॥ तत्राभूत्तुमुलं युद्धं देवदानवसैन्ययोः ॥२८॥ बाणैः खड्गैस्तथा प्रासैर्मुसलैश्च परश्वधैः ॥ गदाभिः पट्टिशैः शूलैश्चक्रैश्च शक्तितोमरैः ॥ २९ ॥ मुद्गरैर्भिन्दिपालैश्च हलैश्चैवातिदारुणैः ॥ अन्यैश्च विविधैरस्त्रैर्निजघ्नुस्ते परस्परम् ॥३०॥ सेनानीश्चि-

लाते हुए कहा कि महिषके कारण देवलोकको बड़ा खतरा पैदा होगया है और वरदान पा जानेसे उस दैत्यके मदका कोई ठिकाना नहीं है ॥ २३ ॥ जनसंकटकी यह बात सुनकर विष्णु-भगवान्‌ने देवताओंसे कहा कि हम देवताओंको महिषसे युद्ध करके उसका वध कर डालना चाहिए ॥ २४ ॥ व्यासजीने कहा—देव-सम्मेलनमें युद्ध करनेका ऐसा निर्णय करके ब्रह्मा, शिव, इन्द्र आदि देवता अपने अपने वाहनोंपर बैठकर चले ॥ २५ ॥ ब्रह्माजी हंसपर, विष्णु गरुड़पर, शिवजी बैलपर और इन्द्र ऐरावत हाथीपर बैठे ॥ २६ ॥ स्कन्दकुमार मोरपर और यमराज भैंसेपर बैठे। इधर सेनाकी पूरी तैयारी करके देवता लोग समर-भूमिमें आये ॥ २७ ॥ उधर महिषके प्रधान सेनापतित्वमें अहङ्कारसे भरे हुए दैत्योंकी सेना आयी। तब देवसेना और दानवसेनामें बड़ी घमासान लड़ाई छिड़ गयी ॥२८॥ तीर, तलवार, गदा, भाला, मूसर, फरसा, पटा, बनेठी, त्रिशूल, चक्र, बर्छी, गँड़ासा, ॥२९॥ मुँगरा, ढेलवाँस, हल और दूसरे-दूसरे बड़े

भयङ्कर हथियारोंसे एक दूसरेपर प्रहार करने लगे ॥ ३० ॥ तब महिषका सेनापति चिक्षुर हाथीपर चढ़कर लड़ने आया। उसने इन्द्रके ऊपर पाँच बाण चलाये ॥ ३१ ॥ इन्द्रने भी बड़ी फुरतीके साथ अपने बाणोंसे उसपर और उसके हाथीकी सूँड़पर अपने वज्रका प्रहार किया ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ वज्रके आघातसे घायल होकर हाथी भागा तो सारी सेनामें भगदड़ मच गयी। सेनाको भागते देखकर महिषासुर क्रुद्ध हो उठा और उसने उपसेनापति बिडालसे कहा—॥ ३४ ॥ हे वीर! हे महाबाहो! तुम जाओ और उस मदगर्वित इन्द्र तथा वरुण आदि अन्यान्य देवताओंको मारकर मेरे पास लौट आओ ॥ ३५ ॥ व्यासजी बोले—बलवान् बिडाल अपने स्वामीका वचन सुनकर एक मतवाले हाथीपर सवार होकर इन्द्रकी ओर चला ॥३६॥ उसे अपनी तरफ आते देख इन्द्रने अत्यन्त क्रुद्ध होकर नागोंकी तरह भयानक विषैले बाणोंसे उसपर प्रहार किया ॥ ३७ ॥ किन्तु वीर बिडालने अपने धनुषपर चढ़े बाणोंसे इन्द्रके

चुरस्तस्य गजारूढो महाबलः ॥ मघवंतं पंचभिस्तैः सायकैः समताडयत् ॥३१॥ तुराषाडपि तांश्छित्वा बाणैर्बाणांस्त्वरान्वितः ॥ हृदये चार्धचंद्रेण ताडयामास तं कृती ॥ ३२ ॥ बाणाहतस्तु सेनानीः प्राप मूर्च्छां गजोपरि ॥ करिणं वज्रघातेन स जघान करे ततः ॥ ३३ ॥ तद्वज्राभिहतो नागो भग्नः सैन्यं जगाम ह ॥ दृष्ट्वा तं दैत्यराट् क्रुद्धो बिडालाख्यमथाब्रवीत् ॥ ३४ ॥ गच्छ वीर महाबाहो जहीन्द्रं मदगर्वितम् ॥ वरुणादीन्परान्देवान्हत्वाऽऽगच्छ ममांतिकम् ॥ ३५ ॥ व्यास उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य बिडालाख्यो महाबलः ॥ आरुह्य वारणं मत्तं जगाम त्रिदशाधिपम् ॥ ३६ ॥ वासवस्तं समायांतं दृष्ट्वा क्रोधसमन्वितः ॥ जघान विशिखैस्तीक्ष्णैराशीविषसमप्रभैः ॥ ३७ ॥ स तु छित्त्वा शरांस्तूर्णं स्वशरैश्चापनिःसृतैः ॥ पंचाशद्भिर्जघानाशु वासवं च शिलीमुखैः ॥ ३८ ॥ तथेन्द्रोऽपि च तान्बाणांश्छित्त्वा कोपसमन्वितः ॥ जघान विशिखैस्तीक्ष्णैराशीविषसमप्रभैः ॥ ३९ ॥ स तु छित्त्वा शरांस्तूर्णं स्वशरैश्चापनिःसृतैः ॥ गदया ताडयामास गजं तस्य करोपरि ॥ ४० ॥ स्वकरे निहतो नागश्चकारार्तस्वरं मुहुः ॥ परिवृत्य जघानाशु दैत्यसैन्यं भयातुरम् ॥ ४१ ॥ दानवस्तु गजं वीक्ष्य परावृत्य गतं रणात् ॥ समाविश्य रथे रम्ये जगामाशु सुरान्रणे ॥ ४२ ॥ तुराषाडपि तं वीक्ष्य रथस्थं पुनरागतम् ॥ अहनद्विशिखैस्तीक्ष्णैराशीविषसमप्रभैः ॥४३॥ सोऽपि क्रुद्धश्चकारोग्रां बाणवृष्टिं महाबलः ॥ बभूव तुमुलं युद्धं तयोस्तत्र जयैषिणोः ॥ ४४ ॥ इन्द्रस्तु बलिनं दृष्ट्वा कोपेनाकुलितेन्द्रियः ॥

बाणोंको काट डाला और बड़ी फुरतीके साथ देवराजपर एक साथ पचास बाण छोड़े ॥३८॥ तब क्रुद्ध होकर इन्द्रने भी उसके बाणोंको काटकर सर्पके समान भयानक बाणोंकी वर्षा की ॥३९॥ किन्तु बिडालने अपने बाणोंसे इन्द्रकी बाणवर्षा व्यर्थ कर दी। तब अपनी गदासे इन्द्रने उसके हाथीकी सूँड़पर मारा ॥ ४० ॥ सूँड़पर गदाका आघात लगनेसे वह चिंघाड़ता हुआ भागा। उसके पैरोंसे कुचलकर बहुतेरे दैत्य मर गये और समस्त दानवी सेनामें खलबली मच गयी ॥ ४१ ॥ जब बिडालने देखा कि हाथी भाग खड़ा हुआ है, तब वह एक रथपर सवार होकर पुनः युद्धभूमिमें पहुँचा ॥ ४२ ॥ इन्द्रने उसे पुनः उपस्थित देखा तो सर्पके समान भयानक और तीक्ष्ण बाणोंसे उसपर आघात किया ॥ ४३ ॥ महाबली दानव बिडालने भी क्रुद्ध होकर भयावह बाणवर्षा की। इस प्रकार विजयके इच्छुक उन दोनों योद्धाओंमें घनघोर युद्ध हुआ ॥ ४४ ॥ जब इन्द्रने देखा कि बिडाल बहुत प्रबल पड़ रहा है, तब इन्द्र अत्यधिक कुपित हो

उठे। अब उन्होंने अपने पुत्र जयन्तको भी साथ ले लिया और बिडाल दैत्यसे लड़ने लगे ॥४५॥ जयन्तने भी अपने पाँच तीक्ष्ण बाणोंसे मदमत्त बिडालके वक्षःस्थलपर प्रहार किया ॥४६॥ उन बाणोंके आघातसे बिडाल मूर्छित होकर रथपर ही लोट गया। तब उसका सारथी रथको रणभूमिसे बाहर भगा ले गया ॥४७॥ इस प्रकार घायल होकर बिडालके चले जानेपर चारों ओर देवताओंकी जयजयकार और दुन्दुभीकी गड़गड़ाहट सुनायी देने लगी ॥४८॥ सब लोग प्रसन्न होकर शचीपति इन्द्रकी स्तुति करने लगे। इस प्रसन्नताके उपलक्ष्यमें गन्धर्व गाने लगे और अप्सरायें नाचने लगीं ॥ ४९ ॥ इस प्रकार देवताओंके जयजयकारका निनाद सुनकर महिष बहुत क्रुद्ध हुआ और उसने शत्रुका मद चूर्ण करनेवाले ताम्र नामके महान् असुरको इन्द्रसे लड़नेके लिए भेजा ॥ ५० ॥ बहुतेरे दानवसैनिकोंके साथ रणभूमिमें पहुँचते ही ताम्रने इस प्रकार बाणवर्षा आरम्भ कर दी, जैसे मेघ समुद्रमें जलवृष्टि करते हैं ॥ ५१ ॥ उसी समय

जयंतमग्रतः कृत्वा युयुधे तेन संयुतः ॥ ४५ ॥ जयंतस्तु शितैर्बाणैस्तं जघान स्तनांतरे ॥ पंचभिः प्रबलाकृष्टैरसुरं मदगर्वितम् ॥ ४६ ॥ स बाणाभिहतस्तावन्निपपात रथोपरि ॥ अतिवाह्य रथं सूतो निर्जगाम रणाजिरात् ॥ ४७ ॥ तस्मिन्विनिर्गते दैत्ये बिडालाख्येऽथ मूर्छिते ॥ जयशब्दो महानासीद्दुन्दुभीनां च निःस्वनः ॥४८॥ सुराः प्रमुदिताः सर्वे तुष्टुवुस्तं शचीपतिम् ॥ जगुर्गंधर्वपतयो ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥४९॥ चुकोप महिषः श्रुत्वा जयशब्दं सुरैः कृतम् ॥ प्रेषयामास तत्रैव ताम्रं परमदापहम् ॥ ५० ॥ ताम्रस्तु बहुभिः सार्धं समागत्य रणाजिरे ॥ शरवृष्टिं चकाराशु तडित्वानिव सागरे ॥ ५१ ॥ वरुणः पाशमुद्यम्य जगाम त्वरितस्तदा ॥ यमश्च महिषारूढो दंडमादाय निर्ययौ ॥ ५२ ॥ तत्र युद्धमभूद्घोरं देवदानवयोर्मिथः ॥ बाणैः खड्गैश्च मुसलैः शक्तिभिश्च परश्वधैः ॥ ५३ ॥ दंडेन निहतस्ताम्रो यमहस्तोद्यतेन च ॥ न चचाल महाबाहुः संग्रामांगणतस्तदा ॥ ५४ ॥ चापमाकृष्य वेगेन मुक्त्वा तीव्राञ्छिलीमुखान् ॥ इन्द्रादीनहनत्तूर्णं ताम्रस्तस्मिन्रणाजिरे ॥ ५५ ॥ तेऽपि देवाः शरैर्दिव्यैर्निशितैश्च शिलाशितैः ॥ निजघ्नुर्दानवान्क्रुद्धास्तिष्ठ तिष्ठेति चुक्रुशुः ॥ ५६ ॥ निहतस्तैः सुरैर्दैत्यो मूर्च्छामाप रणांगणे ॥ हाहाकारो महानासीद्दैत्यसैन्ये भयातुरे ॥ ५७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते पंचमस्कन्धे दैत्यसैन्यपराजयो नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

वरुणदेव पाश लिये और दंडधारी यमराज भैंसेपर सवार होकर आगे बढ़े ॥५२॥ उस समय देवताओं और दानवोंमें परस्पर बाण, खड्ग, मुशल तथा बर्छियोंका आघात-प्रत्याघात करते हुए भयानक युद्ध हुआ ॥ ५३ ॥ यमराजने अपने दण्डसे ताम्रपर भरपूर प्रहार किया, किन्तु उससे वह हिला भी नहीं ॥ ५४ ॥ उसने शीघ्र धनुषपर चढ़ा-चढ़ाकर अपने तीक्ष्ण बाणोंसे इन्द्र आदि देवताओंपर एक साथ प्रहार किया ॥ ५५ ॥ तब देवगण भी कुपित होकर सानपर चढ़े हुए अपने तीखे बाणोंकी वर्षा करके दानवोंको मारते हुए 'खड़े रहो-खड़े रहो' कहकर चिल्लाने लगे ॥ ५६ ॥ इस प्रकार देवताओंके सम्मिलित प्रहारसे घायल होकर ताम्र मूर्च्छित हो गया और उस भयानक दैत्यसेनामें हाहाकार मच गया ॥ ५७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृत 'पीताम्बरा' भाषाटीकायां पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

(अनेक देव-दानव-सेनापतियोंका युद्ध) ताम्र दैत्यके मूर्छित हो जानेपर महिषासुर मारे क्रोधके बौखला उठा और एक बहुत बड़ी गदा लेकर स्वयं समरभूमिमें देवताओंके समक्ष जा डटा ॥ १ ॥ उसने कहा—ओ देवताओ ! ठहरो । मैं अपनी गदासे तुम सबको मार डालूँगा । तुम बलिभाग खानेवाले कौओंमें बल ही कितना है ? तुम सदासे निर्बल रहे हो ॥ २ ॥ ऐसा कहकर वह मदगर्वित दैत्य हाथीपर बैठे हुए इन्द्रके समीप पहुँचा और उनके पखौरेपर अपनी गदाका निर्मम प्रहार कर दिया ॥ ३ ॥ देवराजने भी अपने वज्रकी मारसे उसकी गदाको चूर्ण कर दिया और मारनेकी इच्छासे तत्काल महिषके समक्ष जा पहुँचे ॥ ४ ॥ तब अतिशय कुपित महिषासुर भी अपनी चमकती तलवार लेकर महाबली इन्द्रपर प्रहार करनेके लिए झपटा ॥ ५ ॥ अब उन दोनों वीरोंमें विविध प्रकारके शस्त्रास्त्रोंका उपयोग करते हुए इतना भीषण युद्ध हुआ कि सब लोग दहल गये और मुनियोंको भी बड़ा आश्चर्य हुआ ॥ ६ ॥

व्यास उवाच ॥ ताम्रेऽथ मूर्छिते दैत्ये महिषः क्रोधसंयुतः ॥ समुद्यम्य गदां गुर्वीं देवानुपजगाम ह ॥ १ ॥ तिष्ठंत्वद्य सुराः सर्वे हन्म्यहं गदया किल ॥ सर्वे बलिभुजः कामं बलहीनाः सदैव हि ॥ २ ॥ इत्युक्त्वाऽसौ गजारूढं संप्राप्य मदगर्वितः ॥ जघान गदया तूर्णं बाहुमूले महाभुजः ॥ ३ ॥ सोऽपि वज्रेण घोरेण चिच्छेदाशु गदां च ताम् ॥ प्रहर्तुकामस्त्वरितो जगाम महिषं प्रति ॥ ४ ॥ हयारिरपि कोपेन खड्गमादाय सुप्रभम् ॥ ययाविंद्रं महावीर्यं प्रहरिष्यन्निवांतिकम् ॥ ५ ॥ बभूव च तयोर्युद्धं सर्वलोकभयावहम् ॥ आयुधैर्विविधैस्तत्र मुनिविस्मयकारकम् ॥ ६ ॥ चकाराशु तदा दैत्यो मायां मोहकरीं किल ॥ शांबरीं सर्वलोकघ्नीं मुनीनामपि मोहिनीम् ॥ ७ ॥ कोटिशो महिषास्तत्र तद्रूपास्तत्पराक्रमाः ॥ ददृशु सायुधाः सर्वे निघ्नंतो देववाहिनीम् ॥ ८ ॥ मघवा विस्मितस्तत्र दृष्ट्वा तां दैत्यनिर्मिताम् ॥ बभूवातिभयोद्विग्नो मायां मोहकरीं किल ॥ ९ ॥ वरुणोऽपि सुसंत्रस्तस्तथैव धननायकः ॥ यमो हुताशनः सूर्यः शीतरश्मिर्भयातुरः ॥ १० ॥ पलायनपराः सर्वे बभूवुर्मोहिताः सुराः ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशानां स्मरणं चक्रुरुद्यताः ॥ ११ ॥ तत्राजग्मुश्च काजेशाः स्मृतमात्राः सुरोत्तमाः ॥ हंसतार्क्ष्यवृषारूढास्त्रातुकामा वरायुधाः ॥ १२ ॥ शौरिस्तां मोहिनीं दृष्ट्वा सुदर्शनमथोज्ज्वलम् ॥ मुमोच तत्तेजसैव माया सा विलयं गता ॥ १३ ॥ वीक्ष्य तान्महिषस्तत्र

उसी समय दैत्यपति महिषासुरने सब लोगोंको मोहमें डालकर नष्ट कर देनेवाली और मुनिजनोंको भी विस्मित करनेवाली शाम्बरी माया फैलायी ॥ ७ ॥ उस मायाके फैलते ही महिषासुर जैसे आकार-प्रकारवाले और वैसे ही पराक्रमी करोड़ों महिषासुर विविध प्रकारके शस्त्रास्त्र लेकर देवसेनाका संहार करते हुए दिखायी पड़े ॥ ८ ॥ उस दानवी मायाको देखकर इन्द्र चकरा गये और उन्हें भय लगने लगा ॥ ९ ॥ वरुण, कुबेर, यम, अग्नि, सूर्य और चन्द्रमा भी भयभीत हो गये ॥ १० ॥ इस प्रकार सभी देवता मोहग्रस्त हो-होकर भागने और ब्रह्मा-विष्णु-महेशका स्मरण करने लगे ॥ ११ ॥ उनके स्मरण करते ही देवताओंको बचानेके लिए उत्तम आयुध धारण किये और हंस, गरुड़ तथा बैलपर सवार ब्रह्मा-विष्णु-महेश ये तीनों सर्वश्रेष्ठ देवता वहाँ पहुँच गये ॥ १२ ॥ उस मोहिनी मायाको देखते ही विष्णु भगवानने अपने चमकीले सुदर्शन चक्रको चला दिया । जिसके तेजसे तत्काल वह माया विनष्ट हो गयी ॥ १३ ॥ महिषासुर उन

सृष्टि-पालन-संहार करनेवाले तीनों देवताओंको देखते ही उनसे लड़नेके लिए अपना विशाल परिघ (मुद्गर) लेकर दौड़ा ॥ १४ ॥ तभी महावीर महिषासुर, सेनापति चिक्षुर, उग्रास्य, उग्रवीर्य, असिलोमा, त्रिनेत्र, बाष्कल तथा अन्धक आदि बहुतेरे वीर युद्ध करनेके लिए एक साथ चल पड़े ॥१५॥१६॥ जैसे भेड़ियोंका झुण्ड छोटे-छोटे बच्चोंको घेर ले, ठीक उसी प्रकार उन कवचधारी, धनुर्धर, रथारूढ़ तथा मदमत्त दैत्योंने चारों ओरसे देवताओंको घेर लिया ॥ १७ ॥ उन मदसे गर्वीले दानवोंने देवताओंपर बाणवर्षा आरम्भ कर दी । उसके उत्तरमें देवता भी बाण बरसाने लगे । दोनों ही पक्षके वीर एक दूसरेको समाप्त कर देनेके लिए उतावले हो रहे थे ॥ १८ ॥ उसी समय अन्धकासुर विष्णुभगवानके समक्ष जा पहुँचा और उसने सानपर चढ़े, जहरमें बुझे, कानतक धनुषकी डोरी खींचकर वेगसे छोड़े हुए भारी पाँच बाणोंको उनपर चलाया ॥ १९ ॥ भगवान विष्णुने भी बड़ी फुर्तीके साथ उन बाणोंको काटकर अन्धक-

सृष्टिस्थित्यंतकारिणः ॥ योद्धुकामः समादाय परिघं समुपाद्रवत् ॥ १४ ॥ महिषाख्यो महावीरः सेनानीश्चिक्षुरस्तथा ॥ उग्रास्यश्चोग्रवीर्यश्च दुद्रुवुर्युद्धकामुकाः ॥ १५ ॥ असिलोमा त्रिनेत्रश्च बाष्कलांधक एव च ॥ एते चान्ये च बहवो योद्धुकामा विनिर्ययुः ॥ १६ ॥ सन्नद्धा धृतचापास्ते रथारूढा मदोद्धताः ॥ परिवव्रुः सुरान्सर्वान्वृका इव सुवत्सकान् ॥ १७ ॥ बाणवृष्टिं ततश्चक्रुर्दानवा मदगर्विताः ॥ सुराश्चापि तथा चक्रुः परस्परजिघांसवः ॥ १८ ॥ अंधको हरिमासाद्य पंच बाणाञ्छिलाशितान् ॥ मुमोच विषसंदिग्धान्कर्णाकृष्टान्महाबलान् ॥ १९ ॥ वासुदेवोऽप्यसंप्राप्तान्विशिखानाशुगैस्तदा ॥ चिच्छेद तान्पुनः पञ्च मुमोच रिपुनाशनः ॥ २० ॥ तयोः परस्परं युद्धं बभूव हरिदैत्ययोः ॥ बाणासिचक्रमुसलैर्गदाशक्तिपरश्वधैः ॥ २१ ॥ महेशांधकयोर्युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् ॥ पंचाशद्दिनपर्यंतं बभूव च परस्परम् ॥ २२ ॥ इन्द्रबाष्कलयोस्तद्वन्महिषासुररुद्रयोः ॥ यमत्रिनेत्रयोस्तद्वन्महाहनुधनेशयोः ॥ २३ ॥ असिलोमावरुणयोर्युद्धं परमदारुणम् ॥ गरुडं गदया दैत्यो जघान हरिवाहनम् ॥ २४ ॥ स गदापातखिन्नांगो निःश्वसन्नवतिष्ठत ॥ शौरिस्तं दक्षिणेनाशु हस्तेन परिसांत्वयन् ॥ २५ ॥ स्थिरं चकार देवेशो वैनतेयं महाबलम् ॥ समाकृष्य धनुः शार्ङ्गं मुमोच विशिखान्बहून् ॥२६॥ अंधकोपरि कोपेन हंतुकामो जनार्दनः ॥ दानवोऽपि च तान्बाणांश्चिच्छेद स्वशरैः शितैः ॥२७॥

को अपने पाँच बाणोंका लक्ष्य बनाया ॥ २० ॥ इस प्रकार भगवान विष्णु और अन्धकासुर परस्पर तीर, तलवार, चक्र, मूसल, गदा, बर्छी तथा फरसेका प्रहार करते हुए लड़ने लगे ॥२१॥ इस तरह भगवान विष्णु और अन्धकासुरमें निरन्तर पचास दिनों तक रोंगटे खड़े कर देनेवाला भीषण युद्ध हुआ ॥ २२ ॥ उधर इन्द्र तथा बाष्कल, महिषासुर तथा शंकरजी, यमराज और त्रिनेत्र, महाहनु और कुबेरमें जमकर लड़ाई होने लगी ॥ २३ ॥ असिलोमा और वरुणका युद्ध बड़ा ही भीषण था । उधर विष्णु भगवानसे भिड़े अन्धकने गरुड़पर अपनी गदाका प्रहार कर दिया ॥२४॥ उसके आघातसे गरुड़ तिलमिला उठे और लम्बी साँस खींचकर रह गये । तब भगवानने दाहिने हाथसे सहलाकर उन्हें सान्त्वना दी ॥२५॥ महाबली गरुड़को इस प्रकार स्वस्थ करके विष्णुने अपना शार्ङ्ग धनुष उठाया और अत्यन्त कुपित होकर अन्धकासुरको मार डालनेके विचारसे एक साथ बहुतेरे बाणोंको चला दिया । किन्तु अन्धकासुरने अपने तीक्ष्ण

बाणोंसे उन सबको काट डाला ॥२६॥२७॥ इसके बाद उसने भगवानपर एक साथ पचास बाण छोड़े। भगवान विष्णुने तत्काल उन उत्तम बाणोंको भी विफल कर दिया ॥ २८ ॥ तब भगवानने अपना हजार धारवाला सुदर्शन चक्र अन्धकासुरपर चलाया, किन्तु उसने अपने चक्रकी मारसे सुदर्शनको विफल कर दिया ॥२९॥ हे महाराज जनमेजय! सुदर्शनचक्रको व्यर्थ करके अन्धकासुरने देवताओंको चकरानेके लिए बड़े जोरसे गर्जन किया। शार्ङ्गधनुर्धारी विष्णुके सुदर्शनचक्रको विफल होते देखकर सब देवता शोकाकुल हो उठे और दानवोंमें प्रसन्नताकी लहर दौड़ गयी। जब भगवान वासुदेवने देवताओंको शोकाकुल देखा ॥३०॥३१॥ तब अपनी कौमोदकी गदा लेकर अन्धकासुरपर झपटे और बड़े वेगसे उस मायावीके मस्तकपर वह गदा पटक दी ॥३२॥ उसके आघातसे अन्धकासुर जमीनपर गिरकर अचेत हो गया। उसे धराशायी देखकर महिषासुरका क्रोध भभक उठा ॥३३॥ अब वह अपने घनघोर गर्जनसे डराता हुआ भगवानकी ओर बढ़ा।

पंचाशद्भिर्हरिं कोपाज्जघान च शिलाशितैः ॥ वासुदेवोऽपि तांस्तूर्णं वंचयित्वा शरोत्तमान् ॥ २८ ॥ चक्रं मुमोच वेगेन सहस्रारं सुदर्शनम् ॥ त्यक्तं सुदर्शनं दूरात्स्वचक्रेण न्यवारयत् ॥ २९ ॥ ननाद च महाराज देवान्संमोहयन्निव ॥ दृष्ट्वा तु विफलं जातं चक्रं देवस्य शार्ङ्गिणः ॥ ३० ॥ जग्मुः शोकं सुराः सर्वे जहर्षुर्दानवास्तथा ॥ वासुदेवोऽपि तरसा दृष्ट्वा देवाञ्छुचाऽऽवृतान् ॥ ३१ ॥ गदां कौमोदकीं धृत्वा दानवः समुपाद्रवत् ॥ तं जघानातिवेगेन मूर्ध्नि मायाविनं हरिः ॥ ३२ ॥ स गदाभिहतो भूमौ निपपातातिमूर्च्छितः ॥ तं तथा पतितं वीक्ष्य हयारिरतिकोपनः ॥३३॥ आजगाम रमानाथं त्रासयन्नतिगर्जितैः ॥ वासुदेवोऽपि तं दृष्ट्वा समायान्तं क्रुधान्वितम् ॥ ३४ ॥ चापज्यानिनदं चोग्रं चकार नंदयन्सुरान् ॥ शरवृष्टिं चकाराशु भगवान्महिषोपरि ॥ ३५ ॥ सोऽपि चिच्छेद बाणौघैस्ताञ्छरान्गगनेरितान् ॥ तयोर्युद्धमभूद्राजन्परस्परभयावहम् ॥ ३६ ॥ गदया ताडयामास केशवो मस्तकोपरि ॥ स गदाभिहतो मूर्ध्नि पपातोर्व्यां सुमूर्छितः ॥ ३७ ॥ हाहाकारो महानासीत्सैन्ये तस्य सुदारुणः ॥ स विहाय व्यथां दैत्यो मुहूर्तादुत्थितः पुनः ॥ ३८ ॥ गृहीत्वा परिघं शीर्षे जघान मधुसूदनम् ॥ परिघेणाहतस्तेन मूर्छामाप जनार्दनः ॥ ३९ ॥ मूर्छितं तमुवाहाशु जगाम गरुडो रणात् ॥ परावृत्ते जगन्नाथे देवा इन्द्रपुरोगमाः ॥ ४० ॥ भयं प्रापुः सुदुःखार्ताश्चुक्रुशुश्च रणाजिरे ॥ क्रंदमानान्सुरान्वीक्ष्य शंकरः शूलभृत्तदा ॥ ४१ ॥ महिषं तरसाऽभ्येत्य प्राहरद्रोषसंयुतः ॥ सोऽपि शक्तिं मुमोचाथ शंकरस्योरसि स्फुटम् ॥ ४२ ॥

भगवानने भी उसे अति क्रुद्धभावसे अपनी ओर आते देख देवताओंको हर्षित करते हुए अपने धनुषका भयानक टंकोर किया और महिषासुरके ऊपर बाणोंकी झड़ी लगा दी ॥३४॥३५॥ उस दैत्यने अपने बाणोंकी मारसे भगवानके बाणोंको आकाशमें काट डाला। इस प्रकार हे राजन्! भगवान विष्णु और महिषासुरमें बड़ा भयानक युद्ध हुआ ॥३६॥ मौका पाकर भगवानने अपनी गदासे महिषासुरके मस्तकपर प्रहार किया। उस आघातसे मूर्छित होकर वह धरतीपर गिर पड़ा ॥३७॥ उसके गिरनेपर दैत्यसेनामें भीषण हाहाकार मच गया। किन्तु कुछ ही क्षणोंमें व्यथा भूलकर महिषासुर फिर उठ खड़ा हुआ ॥ ३८ ॥ तत्काल उसने एक परिघ लेकर विष्णुभगवान्के मस्तकपर प्रहार कर दिया। इस प्रहारसे व्यथित होकर भगवान् मूर्छित हो गये ॥ ३९ ॥ मूर्छित दशामें ही गरुड़ उन्हें रणभूमिसे बाहर निकाल ले गये। इस प्रकार जगत्पति विष्णुके रणभूमिसे लौट जानेपर इन्द्र आदि देवता भयभीत हो उठे और दुखी होकर रोने-चिल्लाने लगे। देवता-

ओंको इस प्रकार विकल देखकर शूलधारी शंकरजी बड़ी तीव्र गतिसे महिषासुरके पास जा पहुँचे और बड़े क्रोधसे उसपर प्रहार कर दिया। उस असुरने भी शंकरजीपर अपनी शक्ति (बर्छीका) प्रहार कर दिया ॥ ४०–४२ ॥ उस दुष्टने शंकरजीके त्रिशूलप्रहारको व्यर्थ कर दिया और जोरसे गर्जन करने लगा। उधर शंकरजी उस बर्छीकी चोट खा करके भी भयभीत नहीं हुए ॥४३॥ बल्कि वे और भी अधिक कुपित हो गये और आँखें लाल करके महिषासुरपर फिर अपने त्रिशूलसे प्रहार कर दिया। शंकरजीको इस प्रकार महिषासुरके साथ जूझते देखकर महिषके प्रहारसे उत्पन्न मूर्छा दूर हो जानेपर भगवान विष्णु भी वहाँ जा पहुँचे। उधर उन युद्धोत्सुक विष्णुभगवान एवं शिवजीको शूल-चक्र धारण करके लड़नेको तैयार देखकर महिषासुर मारे क्रोध के तिलमिला उठा ॥ ४४–४६ ॥ वह विशालबाहु दैत्य महिषरूप धारण करके और पूँछ उठाकर हिलाता हुआ संग्राम करनेके लिए उनके सम्मुख जा उपस्थित हुआ ॥ ४७ ॥ उसने देवताओंको भयभीत करते हुए भीषण गर्जन किया। मेघके समान भीमकाय वह दैत्य बार-बार अपनी सींगें फटकार-फटकारकर पर्वतोंकी बड़ी-बड़ी चट्टानें फेंक रहा था। उसे देखते

जगर्ज स च दुष्टात्मा वंचयित्वा त्रिशूलकम् ॥ शंकरोऽपि तदा पीडां न प्रापोरसि ताडितः ॥ ४३ ॥ तं जघान त्रिशूलेन कोपादरुणलोचनः ॥ संलग्नं शंकरं दृष्ट्वा महिषेण दुरात्मना ॥ ४४ ॥ आजगाम हरिस्तावत्त्यक्त्वा मूर्छां प्रहारजाम् ॥ महिषस्तु तदा वीक्ष्य संप्राप्तौ हरिशंकरौ ॥४५॥ युद्धकामौ महावीर्यौ चक्रशूलधरौ वरौ ॥ कोपयुक्तौ बभूवासौ दृष्ट्वा तौ समुपागतौ ॥ ४६ ॥ जगाम संमुखस्तावत्संग्रामार्थं महाभुजः ॥ माहिषं वपुरास्थाय धुन्वन्पुच्छं समुत्कटम् ॥४७॥ चकार भैरवं नादं त्रासयन्नमरानपि ॥ धुन्वञ्छृङ्गं महाकायो दारुणो जलदो यथा ॥४८॥ शृंगाभ्यां पार्वताञ्छृङ्गांश्चिक्षेप भृशमुत्कटान् ॥ दृष्ट्वा तौ तु महावीर्यौ दानवं देवसत्तमौ ॥४९॥ चक्रतुर्बाणवृष्टिं च दानवोपरि दारुणान् ॥ कुर्वाणौ बाणवृष्टिं तौ दृष्ट्वा हरिहरौ हरिः ॥ ५० ॥ चिक्षेप गिरिशृंगं तु पुच्छेनावृत्य दारुणम् ॥ आपतंतं गिरिं वीक्ष्य भगवान्सात्वतां पतिः ॥ ५१ ॥ विशिखैः शतधा चक्रे चक्रेणाशु जघान तम् ॥ हरिचक्राहतः संख्ये मूर्छामाप स दैत्यराट् ॥५२॥ उत्तस्थौ च क्षणान्नूनं मानुषं वपुरास्थितः ॥ गदापाणिर्महाघोरो दानवः पर्वतोपमः ॥५३॥ मेघनादं ननादोच्चैर्भीषयन्नमरानपि ॥ तच्छ्रुत्वा भगवान्विष्णुः पांचजन्यं समुज्ज्वलम् ॥५४॥ पूरयामास तरसा शब्दं कर्तुं खरस्वरम् ॥ तेन शब्देन शंखस्य भयत्रस्ताश्च दानवाः ॥५५॥ बभूवुर्मुदिता देवा ऋषयश्च तपोधनाः ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

ही विष्णु और शिव दोनों उसके ऊपर दारुण बाणवृष्टि करने लगे। विष्णु और शिवको बाणवर्षा करते देख महिषासुरने अपनी पूँछमें लपेटकर एक गिरिशृङ्ग उनके ऊपर फेंका। उस शिखरको आते देखकर भगवान विष्णुने उसे अपने बाणोंसे छिन्न-भिन्न करके उसपर अपना चक्र भी चला दिया। भगवानके चक्रसे आहत होकर दैत्यराज महिषासुर मूर्छित हो गया ॥४८–५२॥ क्षण ही भर बाद वह पर्वताकार महादारुण दैत्य हाथमें गदा लिये मनुष्यका रूप धारण करके उठ खड़ा हुआ ॥५३॥ वह देवताओंको डराता हुआ बड़ी जोरसे मेघके समान गर्जन करने लगा। सो सुनकर भगवान विष्णुने अपना देदीप्यमान पाञ्चजन्य शंख उठाया। उसे बजाकर उन्होंने उसकी कर्कश ध्वनिसे समस्त समरभूमिको गुंजरित कर दिया। उस शब्दसे सभी दानव दहल उठे ॥५४॥५५॥ किन्तु देवता और तपोधन मुनिगण आनन्दित हो गये ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे भाषाटीकायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

(देवताओंका परास्त होकर कैलासपर्वतपर जाना) व्यासजी बोले—हे महाराज ! महिषासुरने जब अपनी दैत्यसेनामें विषाद फैला देखा, तब महिषरूप त्यागकर उसने सिंहका रूप धारण कर लिया ॥ १ ॥ वह भीषणरूपसे दहाड़ करके अयाल फड़फड़ाता और पंजे दिखलाता हुआ भयभीत देवसेनापर झपटा ॥२॥ तत्काल उसने गरुड़को अपने नाखूनोंके आघातसे लहूलुहान कर दिया । तदनन्तर उस सिंहरूपधारी दानवने भगवान विष्णुकी भुजापर भी पञ्जा मारा ॥ ३ ॥ यह देखकर भगवान विष्णुने क्रोधपूर्वक अपना सुदर्शन चक्र उठाया और उसे बड़े वेगसे उस दैत्यपर चला दिया ॥४॥ महिषासुरको मारनेके लिए उन्होंने ज्यों ही चक्र चलाया, त्यों ही उसने सिंहरूप त्यागकर पुनः महिषरूप धारण कर लिया और बड़े वेगसे भगवानकी छातीपर सींग मारी ॥ ५ ॥ छातीपर सींगकी चोट लगनेसे भगवान विकल हो गये और बड़े वेगसे भागकर अपने विष्णुलोकको चले गये ॥ ६ ॥ विष्णुको भागते देखकर शंकरजी

व्यास उवाच ॥ असुरान्महिषो दृष्ट्वा विषण्णमनसस्तथा ॥ त्यक्त्वा तन्माहिषं रूपं बभूव मृगराडसौ ॥ १ ॥ कृत्वा नादं महाघोरं विस्तार्य च महासटाम् ॥ पपात सुरसेनायां त्रासयन्नखदर्शनैः ॥ २ ॥ गरुडं च नखाघातैः कृत्वा रुधिरविप्लुतम् ॥ जघान च भुजे विष्णुं नखाघातेन केसरी ॥ ३ ॥ वासुदेवोऽपि तं दृष्ट्वा चक्रमुद्यम्य वेगवान् ॥ हंतुकामो हरिः काममवापाशु क्रुधान्वितः ॥ ४ ॥ यावद्धयरिपुं वेगाच्चक्रेणाभिजघान तम् ॥ तावत्सोऽतिबलः शृङ्गी शृंगाभ्यां न्यहनद्धरिम् ॥ ५ ॥ वासुदेवो विषाणाभ्यां ताडितोरसि विह्वलः ॥ पलायनपरो वेगाज्जगाम भुवनं निजम् ॥ ६ ॥ गतं दृष्ट्वा हरिं कामं शंकरोऽपि भयान्वितः ॥ अवध्यं तं परं मत्त्वा ययौ कैलासपर्वतम् ॥ ७ ॥ ब्रह्माऽपि च निजं धाम त्वरितः प्रययौ भयात् ॥ मघवा वज्रमालंब्य तस्थावाजौ महाबलः ॥८॥ वरुणः शक्तिमालंब्य धैर्यमालंब्य संस्थितः ॥ यमोऽपि दंडमादाय यत्तः समरतत्परः॥९॥ ततो यक्षाधिपः कामं बभूव रणतत्परः ॥ पावकः शक्तिमादाय तत्राभूद्युद्धमानसः ॥ १० ॥ नक्षत्राधिपतिः सूर्यः समवेतौ स्थितावुभौ ॥ वीक्ष्य तं दानवश्रेष्ठं युद्धाय कृतनिश्चयौ ॥ ११ ॥ एतस्मिन्नंतरे क्रुद्धं दैत्यसैन्यं समभ्यगात् ॥ विसृजन्बाणजालानि क्रूराहिसदृशानि च ॥ १२ ॥ कृत्वा हि माहिषं रूपं भूपतिः संस्थितस्तदा ॥ देवदानवयोधानां निनादस्तुमुलोऽभवत् ॥ १३ ॥ ज्याघातश्च तलाघातो मेघनादसमोऽभवत् ॥ संग्रामे

भी डर गये । उन्होंने समझ लिया कि महिषासुर मारा नहीं जा सकता । अतएव वे भी कैलास चले गये ॥ ७ ॥ मारे डरके ब्रह्माजी भी तत्काल ब्रह्मलोक चले गये । किन्तु महाबली इन्द्र वज्र लिये समरभूमिमें डटे रह गये ॥८॥ वरुणदेव भी अपना पाशास्त्र लेकर रणभूमिमें खड़े रहे । यमराज भी अपना दण्ड सम्हाले युद्ध करनेके लिए सन्नद्ध होकर खड़े थे ॥ ९ ॥ यक्षोंके अधिपति कुबेरजी भी लड़नेको तैयार थे । अग्निदेव बर्छी लेकर युद्ध करनेको उत्सुक खड़े थे ॥ १० ॥ नक्षत्रोंके स्वामी चन्द्रमा और सूर्यदेव भी रणभूमिमें डटे थे और उस दानवको देखकर मारे क्रोधके लड़नेके लिए उतावले हो रहे थे ॥११॥ इसी समय क्रूर सर्पोंके समान विषैले बाणोंकी वर्षा करती हुई क्रुद्ध दैत्यसेना भी वहाँ आ पहुँची ॥ १२ ॥ राजा महिषासुर उस समय महिषका रूप धारण करके दैत्यसेनाका नेतृत्व कर रहा था। उस समय देवताओं तथा दैत्यवीरोंके गर्जनसे बड़ा कोलाहल मच गया ॥१३॥ देव-दानवसेनाके उस भयानक युद्धमें धनुषके टंकोर

और ताल ठोकनेकी आवाज मेघगर्जन जैसी लग रही थी ॥ १४ ॥ मदगर्वित और महाबली दैत्य महिषासुर देवसमूहपर अपनी सींगोंसे पर्वतशिखर बरसा-बरसाकर उन्हें मार रहा था ॥१५॥ रोषमें भरे हुए उस परम अद्भुत दैत्य महिषासुरने कितने ही देवताओंको अपने खुरोंसे कुचलकर और कितनोंको पूँछसे मार डाला ॥ १६ ॥ ऐसी दशामें सभी देवता और गन्धर्व भयभीत होकर भागने लगे । अन्तमें इन्द्र भी महिषासुरके समक्ष टिके नहीं रह सके और वे भी भाग खड़े हुए ॥ १७ ॥ इस प्रकार जब शचीपति इन्द्र समरभूमिसे हट गये । तब यमराज, कुबेर और वरुण भी भयभीत होकर निकल भागे ॥१८॥ इसपर महिषासुरने अपनी बहुत बड़ी विजय मानी और अपने घर चला गया । जाते समय इंद्र ऐरावत हाथी और उच्चैःश्रवा घोड़ा छोड़ गये थे । इन सबको उसने हस्तगत कर लिया। तदनन्तर अपनी सेनाके साथ जाकर उसने देवलोकपर अधिकार करनेका विचार किया ॥१९॥२०॥ तदनुसार तुरन्त देवलोकमें घुसकर उसने देवताओंके राज्यपर निर्विरोध कब्जा कर लिया । क्योंकि देवता पहले ही डरके मारे वहाँसे भाग गये थे ॥२१॥ अब महिष दानव परम रमणीक इन्द्रासनपर बैठा और उसने स्वर्गके राज्यमें

सुमहाघोरे देवदानवसेनयोः ॥ १४ ॥ शृंगाभ्यां पार्वताच्छृगांश्चिक्षेप च महाबलः ॥ जघान सुरसंघांश्च दानवो मदगर्वितः ॥१५॥ खुराघातैस्तथा देवान्पुच्छस्य भ्रामणेन च ॥ स जघान रुषाविष्टो महिषः परमाद्भुतः ॥ १६ ॥ ततो देवाः सगंधर्वा भयमाजग्मुरुद्यताः ॥ मघवा महिषं दृष्ट्वा पलायनपरोऽभवत् ॥ १७ ॥ संगरं संपरित्यज्य गते शक्रे शचीपतौ ॥ यमो धनाधिपः पाशी जग्मुः सर्वे भयातुराः ॥ १८ ॥ महिषोऽपि जयं मत्वा जगाम स्वगृहं ततः ॥ ऐरावतं गजं प्राप्य त्यक्तमिंद्रेण गच्छता ॥ १९ ॥ तथोच्चैःश्रवसं भानोः कामधेनुं पयस्विनीम् ॥ स्वसैन्यसंवृतस्तूर्णं स्वर्गं गंतुं मनो दधे ॥ २० ॥ तरसा देवसदनं गत्वा स महिषासुरः ॥ जग्राह सुरराज्यं वै त्यक्तं देवैर्भयातुरैः ॥ २१ ॥ इन्द्रासने तथा रम्ये दानवः समुपाविशत् ॥ दानवान्स्थापयामास देवानां स्थानकेषु सः ॥ २२ ॥ एवं वर्षशतं पूर्णं कृत्वा युद्धं सुदारुणम् ॥ अवापेंद्रं पदं कामं दानवो मदगर्वितः ॥२३॥ निर्जरा निर्गता नाकात्तेन सर्वेऽतिपीडिताः ॥ एवं बहूनि वर्षाणि बभ्रमुर्गिरिगह्वरे ॥२४॥ श्रांताः सर्वे तदा राजन्ब्रह्माणं शरणं ययुः ॥ प्रजापतिं जगन्नाथं रजोरूपं चतुर्मुखम् ॥ २५ ॥ पद्मासनं वेदगर्भं सेवितं मुनिभिः स्वजैः ॥ मरीचिप्रमुखैः शांतैर्वेदवेदाङ्गपारगैः ॥ २६ ॥ किन्नरैः सिद्धगंधर्वैश्चारणोरगपन्नगैः ॥ तुष्टुवुर्भयभीतास्ते देवदेवं जगद्गुरुम् ॥ २७ ॥ देवा ऊचुः ॥ धातः किमेतदखिलार्तिहरांबुजन्म जन्मा-

देवताओंके पदोंपर दानवोंको नियुक्त कर दिया ॥ २२ ॥ इस प्रकर पूरे सौ वर्षतक देवताओंसे दारुण युद्ध करके उस मदमत्त दानवने इंद्रपद प्राप्त किया ॥ २३ ॥ स्वर्गमें जो थोड़ेसे देवता रह गये थे, वे भी महिषासुरके सतानेपर भाग गये और बहुत वर्षोंतक पर्वतकन्दराओंमें छिपते फिरते रहे ॥ २४ ॥ हे महाराज जनमेजय ! इस प्रकार चक्कर काटते-काटते देवता जब बहुत थक गये । तब वे रजोगुणके मूर्तरूप, जगत्के नाथ, चतुर्मुख, प्रजापति ब्रह्माजीकी शरणमें गये ॥ २५ ॥ ब्रह्माजी कमलके आसनपर विराजमान थे और हृदयमें वेद धारण किये हुए थे । उनके पुत्र मरीचि आदि वेद-वेदाङ्गके पारंगत शान्त मुनि उन्हें चारों ओरसे घेरे हुए थे ॥ २६ ॥ किन्नर, सिद्ध, गन्धर्व, चारण, उरग और पन्नगगण उनकी सेवा कर रहे थे । दैत्योंसे डरे हुए देवता वहाँ पहुँचकर उन देवदेव एवं जगद्गुरुकी स्तुति करने लगे ॥ २७ ॥ देवगण बोले—हे धातः ! हे कमलयोने ! हे समस्त संसारके दुखियोंका दुःख

दूर करनेवाले ! असुरराज महिषासुरने रणमें पराजित करके हमें पराधीन कर दिया है । वह हमको बहुत सताता है । उसने हम सबको स्वर्गसे निकाल दिया है । इस समय हम पर्वतकी कंदराओंमें रहते हैं । हमारी यह दशा देखकर आपको दया नहीं आती ? ॥ २८ ॥ पुत्र सैकड़ों अपराध करके कहीं बुरी जगहपर जाकर फँस गया हो तो क्या पिता निर्दयी होकर उसे सर्वथा त्याग देता है ? उसी प्रकार आज हम देवगण भी दैत्यों द्वारा बेतरह सताये जा रहे हैं। हमारा सर्वस्व छीन लिया गया है। यह सब देखते हुए भी क्या आप हमपर दया नकरेंगे ? हमें केवल आपके चरणोंका ही सहारा है । आप हमारी उपेक्षा क्यों कर रहे हैं ? ॥ २९ ॥ महिषासुर स्वर्गराज्यकी राजधानी अमरावतीपर अधिकार करके खूब आनन्द ले रहा है । ब्राह्मणों द्वारा किये हुए यज्ञकी हविको वह स्वयं हड़प जाता है । वह पारिजातके पुष्पोंको उपयोगमें लाता है और क्षीरसागरसे उत्पन्न कामधेनुके दूधका उपभोग करता है ॥ ३० ॥ हे देवेश ! इस समय हम देवताओंपर जो बीत रही है, उसका वर्णन कहाँ तक करें ? आप दैत्योंकी गति-विधिसे भलीभाँति परिचित हैं। क्योंकि आप अपनी ज्ञानदृष्टिसे सब कुछ देख लेते हैं । अतएव हे प्रभो ! हम सब

भिवीक्ष्य न दयां कुरुषे सुरान् यत् ॥ संपीडिताञ्रणजितानसुराधिपेन स्थानच्युतान्गिरिगुहाकृतसन्निवासान् ॥ २८ ॥ पुत्रान्पिता किमपराधशतैः समेतान्संत्यज्य लोभरहितः कुरुतेऽतिदुःस्थान् ॥ यस्त्वं सुरांस्तव पदांबुजभक्तियुक्तान्दैत्यार्दितांश्च कृपणान् यदुपेक्षसेऽद्य ॥२९॥ अमरभुवनराज्यं तेन भुक्तं नितांतं मखहविरपि योग्यं ब्रह्मणैराददाति ॥ सुरतरुवरपुष्पं सेवतेऽसौ दुरात्मा जलनिधिनिधिभूतां गामसौ सेवते ताम् ॥ ३० ॥ किं वा गृणीमः सुरकार्यमद्भुतं जानासि देवेश सुरारिचेष्टितम् ॥ ज्ञानेन सर्वं त्वमशेषकार्यवित्तस्मात्प्रभो ते प्रणताःस्म पदयोः ॥ ३१ ॥ यत्रापि कुत्रापि गतान्सुरानसौ नानाचरित्रः खलु पापमानसः ॥ पीडां करोत्येव स दुष्टचेष्टितस्त्राताऽसि देवेश विधेहि शं विभो ॥३२॥ नो चेद्वयं दावमहाग्निपीडिताः कं शांतिकर्तारमनंततेजसम् ॥ यामः प्रजेशं शरणं सुरेष्टं धातारमाद्यं परिमुच्य कं शिवम् ॥ ३३ ॥ व्यास उवाच ॥ इति स्तुत्वा सुराः सर्वे प्रणेमुस्तं प्रजापतिम् ॥ बद्धांजलिपुटाः सर्वे विषण्णवदना भृशम् ॥ ३४ ॥ तांस्तथा पीडितान्दृष्ट्वा तदा लोकपितामहः ॥ उवाच श्लक्ष्णया वाचा सुखं संजनयन्निव ॥३५॥ ब्रह्मोवाच ॥ किं करोमि सुराः कामं दानवो वरदर्पितः ॥ स्त्रीवध्योऽसौ न पुंवध्यो विधेयं तत्र किं पुनः ॥३६॥ व्रजामोऽद्य सुराः सर्वे

देवता आपके श्रीचरणोंमें आ पड़े हैं ॥ ३१ ॥ हमलोग आत्मरक्षाके लिए जहाँ कहीं जाते हैं, वहीं वह पापमय विचार भरा एवं विचित्र चरित्रवाला दुष्ट दैत्य पहुँचकर हमें बहुत सताता है । अतएव हे देवताओंके प्रभु ! हमारे तो एकमात्र आप ही रक्षक हैं । हे विभो ! हमारा कल्याण करिए ॥३२॥ यदि आप हमारी चीख-पुकारपर ध्यान नहीं देंगे तो दैत्योंके दारुण दावानलरूपी कष्टपरम्परासे सताये हुए हम देवता आपके सदृश शान्तिदाता, अनन्त तेजस्वी, प्रजापति, देवताओंके पूज्य, आदिपिता तथा कल्याणकारी प्रभुको छोड़कर अन्य किस प्रभुकी शरणमें जायँ ? ॥ ३३ ॥ व्यासजी बोले—इस प्रकार हाथ जोड़े और उदासमुख उन देवताओंने ब्रह्माजीकी स्तुति की और साष्टांग प्रणाम किया ॥ ३४ ॥ देवताओंको इस प्रकार पीड़ित देखकर लोकपितामह ढाढ़स बँधाते हुए मधुर वाणी बोले ॥ ३५ ॥ ब्रह्माजीने कहा—हे देवताओ ! मैं क्या करूँ ? वरदान पाये रहने कारण ही वह दैत्य इतना उद्धत हो गया है । उसका बध स्त्री ही कर सकती है—पुरुष नहीं ? ऐसी स्थितिमें क्या किया जाय ? ॥ ३६ ॥ हे देवताओ ! अच्छा तो यह हो कि हम सब देवता कैलास पर्वतपर चलें । सब कार्योंमें निपुण शंकरजीको

वहाँसे अपने साथ लेकर वैकुण्ठ धामको चलें। जहाँ भगवान विष्णु निवास करते हैं। वहाँ ही हम सब सम्मिलितरूपसे कार्यसिद्धिके लिए मंत्रणा करेंगे ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ यह कह और हंसपर सवार होकर ब्रह्माजी वह महान् कार्य संपन्न करनेके लिए देवताओंके आगे-आगे कैलास पर्वतकी ओर चले ॥ ३९ ॥ उसी समय शिवजीको भी ध्यानयोगसे यह ज्ञात हो गया कि देवताओंके साथ ब्रह्माजी आ गये हैं, तब वे अपने भवनसे बाहर निकल आये ॥ ४० ॥ परस्पर एक दूसरेको देखकर उन्होंने प्रणाम किया। वे दोनों बहुत प्रसन्न हुए और सब देवताओंने उन दोनोंको प्रणाम किया ॥४१॥ तब गिरिजापति शंकर भगवान्ने अलग-अलग सब देवताओंको आसन दिया। उसके बाद वे स्वयं अपने आसनपर विराजमान हुए ॥४२॥ शिवजीने ब्रह्माजीसे कुशलप्रश्न किया और देवताओंके कैलास आनेका कारण पूछा ॥४३॥ शिवजी बोले—हे ब्रह्मन्! आप इन्द्रादि देवताओंके साथ यहाँ किस लिए आये हैं? इसका कारण बताइए ॥ ४४ ॥

कैलासं पर्वतोत्तमम् ॥ शंकरं पुरतः कृत्वा सर्वकार्यविशारदम् ॥३७॥ ततो व्रजाम वैकुंठं यत्र देवो जनार्दनः ॥ मिलित्वा देवकार्यं च विमृशामो विशेषतः ॥ ३८ ॥ इत्युक्त्वा हंसमारुह्य ब्रह्मा कार्यसमुच्चये ॥ देवांश्च पृष्ठतः कृत्वा कैलासाभिमुखो ययौ ॥ ३९ ॥ तावच्छिवोऽपि तरसा ज्ञात्वा ध्यानेन पद्मजम् ॥ आगच्छंतं सुरैः सार्धं निर्गतः स्वगृहाद्बहिः ॥४०॥ दृष्ट्वा परस्परं तौ तु कृत्वाऽभिवादनौ भृशम् ॥ प्रणतौ च सुरैः सर्वैः संतुष्टौ संबभूवतुः ॥ ४१ ॥ आसनानि पृथग्दत्त्वा देवेभ्यो गिरिजापतिः ॥ उपविष्टेषु तेष्वेव निषसादासने स्वके ॥ ४२ ॥ कृत्वा तु कुशलप्रश्नं ब्रह्माणं वृषभध्वजः ॥ पप्रच्छ कारणं देवान्कैलासगमने विभुः ॥ ४३ ॥ शिव उवाच ॥ किमत्रागमनं ब्रह्मन्कृतं देवैः सवासवैः ॥ भवता च महाभाग ब्रूहि तत्कारणं किल ॥ ४४ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ महिषेण सुरेशान पीडिताः स्वनिवासिनः ॥ भ्रमंति गिरिदुर्गेषु भयत्रस्ताः सवासवाः ॥४५॥ यज्ञभुङ्महिषो जातस्तथाऽन्ये सुरशत्रवः ॥ पीडिता लोकपालाश्च त्वामद्य शरणं गताः ॥ ४६ ॥ मया ते भवनं शंभो प्रापिताः कार्यगौरवात् ॥ यद्युक्तं तद्विधत्स्वाद्य सुरकार्यं सुरेश्वर ॥ ४७ ॥ त्वयि भारोऽस्ति सर्वेषां देवानां भूतभावनः ॥ व्यास उवाच ॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा शंकरः प्रहसन्निव ॥४७॥ वचनं श्लक्ष्णया वाचा प्रोवाच पद्मजं प्रति ॥ शिव उवाच ॥ भवतैव कृतं कार्यं वरदानात्पुरा विभो ॥ ४९ ॥ अनर्थदं च देवानां किं कर्तव्यमतः परम् ॥ ईदृशो बलवाञ्छूरः सर्वदेवभयप्रदः ॥ ५० ॥ का समर्था वरा नारी तं हंतुं मददर्पितम् ॥ न मे भर्या न ते भार्या संग्रामं गंतुमर्हति ॥५१॥

ब्रह्माजीने कहा—हे सुरेशान! स्वर्गनिवासी इन्द्र आदि देवताओंको महिषासुर बहुत सता रहा है। इस समय ये उससे भयभीत होकर पर्वतोंकी कन्दराओंमें छिपते फिर रहे हैं ॥ ४५ ॥ महिषासुर तथा अन्यान्य दानव इस समय यज्ञका भाग स्वयं ले लेते हैं और लोकपालगण सताये जाते हैं। इसी कारण ये सब आपकी शरणमें आये हैं ॥ ४६ ॥ हे शम्भो! कार्यके महत्त्वको ध्यानमें रखकर मैं ही इन्हें आपके घर लाया हूँ। हे सुरेश्वर! अब आप जैसे उचित समझिए, उस तरह देवताओंकी कार्यसिद्धि करिए ॥४७॥ हे भूतभावन! इन सब देवताओंका भार आप ही पर है। व्यासजीने कहा—ब्रह्माजीके वचन सुनकर शंकरजी मुसकाते हुए मधुर वाणी बोले। शिवजीने कहा—हे प्रिय ब्रह्माजी! आपने ही तो महिषको वरदान देकर यह बखेड़ा खड़ा किया है ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ इसीसे वह देवताओंपर अत्याचार कर रहा है। अब आप ही उपाय पूछ रहे हैं? वह महिषासुर इतना बलवान् और शक्तिशाली हो गया है कि सब देवता उससे

किया है ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ इससे वह देवताओंपर अत्याचार कर रहा है। अब आप ही उपाय पूछ रहे हैं ? वह महिषासुर इतना बलवान् और शक्तिशाली हो गया है कि सब देवता उससे

भयभीत हो उठे हैं ॥ ५० ॥ उस मदमत्त दानवको मारनेमें कौन-सी स्त्री समर्थ हो सकती है ? न हमारी और न आपकी ही स्त्री समरभूमिमें जा सकती है। क्योंकि वे युद्धविद्यासे अनभिज्ञ हैं ॥ ५१ ॥ यदि दोनों अपनी-अपनी स्त्रियोंको भेजें ही तो वे रणभूमिमें जाकर लड़ेगीं कैसे ? महाभागा इन्द्राणी भी युद्धनिपुण नहीं हैं ॥ ५२ ॥ तब उस पापी और मदमत्त दानवका वध करनेमें कौनसी स्त्री समर्थ होगी ? मेरा तो यही मन्तव्य है कि अभी हमलोग भगवान् विष्णुके पास चलें ॥५३॥ वैकुण्ठमें विष्णुकी स्तुति करके उन्हें शीघ्र देवकार्यसिद्धिके लिए तैयार कर लें। क्योंकि वे सबसे अधिक बुद्धिमान् और सब कुछ करनेमें समर्थ हैं ॥ ५४ ॥ भगवान् वासुदेवसे मिलनेके बाद ही हमलोग इस बातपर विचार करेंगे कि यह काम कैसे किया जाय। वे अवश्य कोई उपाय खोज लेंगे। यदि वैसे काम न बनेगा तो वे अपने बुद्धिबलसे कोई साधन जुटायेंगे ॥ ५५ ॥ व्यासजी बोले कि शंकरजीके वचन सुनकर 'यही उपाय ठीक है' यह कहकर सब देवता शिवजीके साथ चटपट उठ खड़े हुए ॥५६॥ और अपने-अपने वाहनोंपर सवार हो-होकर प्रसन्नतापूर्वक कार्यसिद्धि करनेवाले शुभ शकुन देखते हुए विष्णुलोकको चल

गत्वैव ते महाभागे युयुधाते कथं पुनः ॥ इन्द्राणी च महाभागा न युद्धकुशलाऽस्ति हि ॥ ५२ ॥ काऽन्या हंतुं समर्थाऽस्ति तं पापं मददर्पितम् ॥ ममेदं मतमद्यैव गत्वा देवं जनार्दनम् ॥ ५३ ॥ स्तुत्वा तं देवकार्याय प्रेरयामः सुसत्वरम् ॥ सोऽतिबुद्धिमतां श्रेष्ठो विष्णुः सर्वार्थसाधने ॥ ५४ ॥ मिलित्वा वासुदेवं वै कर्तव्यं कार्यचिंतनम् ॥ प्रपञ्चेन च बुद्ध्या स संविधास्यति साधनम् ॥ ५५ ॥ व्यास उवाच ॥ इति रुद्रवचः श्रुत्वा ब्रह्माद्याः सुरसत्तमाः ॥ उत्थितास्ते तथेत्युक्त्वा शिवेन सह सत्वराः ॥५६॥ स्वकीयैर्वाहनैः सर्वे ययुर्विष्णुपुरं प्रति ॥ मुदिताः शकुनान्दृष्ट्वा कार्यसिद्धिकराञ्छुभान् ॥ ५७ ॥ ववुर्वाताः शुभाः शांताः सुगंधाः शुभशंसिनः ॥ पक्षिणश्च शिवा वाचस्तत्रोचुः पथि सर्वशः ॥ ५८ ॥ निर्मलं चाभवद्व्योम दिशश्च विमलास्तथा ॥ गमने तत्र देवानां सर्वं शुभमिवाभवत् ॥ ५९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

॥ व्यास उवाच ॥ तरसा तेऽथ संप्राप्य वैकुंठं विष्णुवल्लभम् ॥ ददृशुः सर्वशोभाढ्यं दिव्यसद्मविराजितम् ॥ १ ॥ सरोवापीसरिद्भिश्च संयुतं सुखदं शुभम् ॥ हंससारसचक्राह्वैः कूजद्भिश्च विराजितम् ॥ २ ॥ चंपकाशोककह्लारमंदारवकुलावृतैः ॥ मल्लिकातिलकाम्रातयुतैः कुरबकादिभिः

पड़े ॥ ५७ ॥ उस समय शुभदायक, शीतल, सुगन्धित और शुभ सन्देश देनेवाली बयार बह रही थी। रास्तेभर पक्षिवृन्द शुभ वचन बोल रहे थे ॥ ५८ ॥ समस्त आकाशमण्डल तथा सभी दिशायें निर्मल थीं। विष्णुलोक जाते समय देवताओंके लिए सब कुछ शुभदायक दीख रहा था ॥ ५९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते पञ्चमस्कन्धे भाषाटीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

(देवताओंके तेजसे देवीकी उत्पत्ति) व्यासजी बोले—हे महाराज ! द्रुतगतिसे चलकर वे सभी देवता विष्णु भगवान्के प्रिय वैकुण्ठधाममें जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने देखा कि सर्वशोभासम्पन्न अगणित दिव्य भवन विद्यमान थे ॥ १ ॥ वे बड़े सुन्दर और सुखदायी थे। उनके आस-पास सरोवर, बावली और कृत्रिम नदियाँ बह रही थीं। जिनमें हंस, सारस और चकवे कलरव कर रहे थे ॥ २ ॥ वहाँवाले महलोंके उपवनोंमें चम्पा, अशोक, कह्लार (श्वेतकमल), मन्दार, मौलसिरी, मल्लिका, तिलक, आमड़ा और कुरबक (कठसरैया) के

वृक्ष लगे हुए थे ॥ ३ ॥ चारों ओर कोयलकी कूक सुनायी दे रही थी और मोर नाच रहे थे। वहाँके उपवनोंमें भौंरोंकी गुंजार सुनायी दे रही थी ॥ ४ ॥ सांसारिक वृत्तिसम्पन्न अनन्य भक्त तथा नन्द-सुनन्द आदि पार्षद बड़े भक्तिभावसे विष्णु भगवान्‌की स्तुति कर रहे थे ॥ ५ ॥ उस वैकुण्ठधाममें रत्नजटित भवन बने हुए थे। उनपर सुनहले काम किये गये थे। उँचाईमें वे आकाशको चूम रहे थे और उनमें अच्छे-अच्छे कमरे बने थे ॥ ६ ॥ देवता और गन्धर्व गा रहे थे, अप्सरायें नाच रही थीं और किन्नरगण अपनी सुरीली तानसे लोगोंका मन मोह रहे थे ॥ ७ ॥ शान्त और वेदपाठपरायण मुनिगण वैदिक सूक्तोंके द्वारा भगवानके उस सुन्दर धाममें स्तुति कर रहे थे ॥ ८ ॥ भगवान् विष्णुके द्वारपर पहुँचकर देवताओंने सुन्दर स्वरूपके दो द्वारपालों अर्थात् जय-विजयको पहरा देते देखा । जो सोनेकी छड़ी हाथमें लिये हुए थे ॥ ९ ॥ उनसे देवताओंने कहा कि आप दोनोंमें कोई एक जाकर भगवान्‌से यह

॥ ३ ॥ कोकिलारावसन्नादैः शिखंडैर्नृत्यरंजितैः ॥ भ्रमरारावरम्यैश्च दिव्यैरुपवनैर्युतम् ॥ ४ ॥ सुनंदनंदनाद्यैश्च पार्षदैर्भक्तितत्परैः ॥ संस्तुवद्भिर्युतं भक्तैरनन्यभववृत्तिभिः ॥ ५ ॥ प्रासादै रत्नखचितैः कांचनैश्चित्रमंडितैः ॥ अभ्रंलिहैर्विराजद्भिः संयुतं शुभसद्मकैः ॥ ६ ॥ गायद्भिर्देवगंधर्वैर्नृत्यद्भिरप्सरोगणैः ॥ रंजितं किन्नरैः शश्वद्रक्तकण्ठैर्मनोहरैः ॥ ७ ॥ मुनिभिश्च तथा शान्तैर्वेदपाठकृतादरैः ॥ स्तुवद्भिः श्रुतिसूक्तैश्च मंडितं सदनं हरेः ॥ ८ ॥ ते च विष्णुगृहं प्राप्य द्वारपालौ शुभाकृती ॥ वीक्ष्योचुर्जयविजयौ हेमयष्टिधरौ स्थितौ ॥ ९ ॥ गत्वैकोऽप्युभयोर्मध्ये निवेदयतु संगतान् ॥ द्वारस्थान्ब्रह्मरुद्रादीन्विष्णुदर्शनलालसान् ॥ १० ॥ व्यास उवाच ॥ विजयस्तद्वचः श्रुत्वा गत्वाऽथ विष्णुसन्निधौ ॥ सर्वान्समागतान्देवान्प्रणम्योवाच सत्वरः ॥ ११ ॥ विजय उवाच ॥ देवदेव महाराज रमाकांत सुरारिहन् ॥ समागताः सुराः सर्वे द्वारि तिष्ठन्ति वै विभो ॥ १२ ॥ ब्रह्मा रुद्रस्तथेंद्रश्च वरुणः पावको यमः ॥ स्तुवन्ति वेदवाक्यैस्त्वाममरा दर्शनार्थिनः ॥ १३ ॥ व्यास उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं विष्णुर्विजयस्य रमापतिः ॥ निर्जगाम गृहात्तूर्णं सुरान्समधिकोत्सवः ॥ १४ ॥ गत्वा वीक्ष्य हरिर्देवान्द्वारस्थाञ्छ्रमकर्शितान् ॥ प्रीतिप्रवणया दृष्ट्या प्रीणयामास दुःखितान् ॥ १५ ॥ प्रणेमुस्ते सुराः सर्वे देवदेवं जनार्दनम् ॥ तुष्टुवुश्च सुरारिघ्नं वाग्भिर्वेदविनिश्चितम् ॥ १६ ॥ देवा ऊचुः ॥ देवदेव जगन्नाथ सृष्टिस्थित्यंतकारक ॥

निवेदन कर दे कि आपके दर्शनार्थ ब्रह्मा-शिव आदि बहुतेरे देवता द्वारपर खड़े हैं ॥ १० ॥ व्यासजी बोले कि विजय उनकी बात सुनकर भगवान् विष्णुके पास गये और प्रणाम करके उन्हें देवताओंके आगमनकी बात बतायी ॥ ११ ॥ द्वारपाल विजयने कहा--हे देवदेव ! हे महाराज ! हे लक्ष्मीकान्त ! हे दैत्यनाशन ! हे विभो ! सब देवता आपके द्वारपर खड़े हैं ॥१२॥ ब्रह्मा, शिव, इन्द्र, वरुण, अग्नि, यम आदि देवता आपके दर्शनोंकी अभिलाषासे वेदवाक्यों द्वारा स्तुति कर रहे हैं ॥ १३ ॥ व्यासजीने कहा--हे महाराज ! लक्ष्मीपति विष्णु विजयकी बात सुनते ही देवताओंसे मिलनेके लिए आतुर होकर अपने भवनसे बाहर निकल आये ॥१४॥ द्वारपर आकर भगवानने उन देवताओंको श्रमसे कृश देखा। तब उन्होंने अपनी प्रेममरी दृष्टिसे निहारकर उन्हें आनन्दित किया ॥ १५ ॥ वे देवगण देवदेव, जनार्दन, वेदों द्वारा जानने योग्य और दैत्यविनाशक भगवान् विष्णुको प्रणाम करके स्तुति करने लगे ॥१६॥ देवता बोले--

हे देवदेव ! हे जगन्नाथ ! हे सृष्टिपालनसंहारकारी ! हे दयासिन्धो ! हे महाराज ! आप हम शरणागतोंकी रक्षा करिए ॥ १७ ॥ विष्णु भगवानने कहा—हे देवताओ ! आप लोग बैठ जाइए, फिर अपना कुशल-क्षेम कहकर यह बात बताइए कि किस उद्देश्यसे आप सब एक साथ यहाँ आये हैं ? ॥ १८ ॥ ब्रह्मा-शिव आदि आप सभी देवता चिन्ताकुल, दुःखित और उदास क्यों दीख रहे हैं ? मेरे योग्य यदि कोई कार्य हो तो तुरन्त बताइए ॥ १९ ॥ देवता बोले—हे महाराज ! पापी महिषासुर हमें बहुत दुःख दे रहा है । वह बहुत बड़ा दुष्ट है । वर प्राप्त किये रहनेके कारण वह अपनेको अमर समझकर किसीको कुछ नहीं गिनता ॥ २० ॥ ब्राह्मणोंके द्वारा देवताओंको प्रदत्त यज्ञभाग वह स्वयं खा लेता है । देवता उसके डरसे पर्वतोंकी कन्दराओंमें छिपते फिरते हैं ॥ २१ ॥ हे मधुसूदन ! ब्रह्माजीसे वरदान पाकर वह दुर्जय हो उठा है । उसपर प्रभाव डालनेका कार्य गुरुतर समझकर हमलोग आपकी शरणमें आये हैं ॥ २२ ॥ हे दैत्योंकी मायाके विशेषज्ञ ! आप ही हमारा उद्धार करनेमें समर्थ हैं । अतएव हे कृष्ण ! हे दानवमदमर्दन ! आप उसके वधका कोई उपाय करिए ॥ २३ ॥ ब्रह्माजीने उसे ऐसा

दयासिंधो महाराज त्राहि नः शरणागतान् ॥ १७ ॥ विष्णुरुवाच ॥ विशंतु निर्जराः सर्वे कुशलं कथयंतु वः ॥ आसनेषु किमर्थं वै मिलिताः समुपागताः ॥ १८ ॥ चिंताऽऽतुराः कथं जाता विषण्णा दीनमानसाः ॥ ब्रह्मरुद्रेण सहिताः कार्यं प्रब्रूत सत्वरम् ॥ १९ ॥ देवा ऊचुः ॥ महिषेण महाराज पीडिताः पापकर्मणा ॥ असाध्येनातिदुष्टेन वरदृप्तेन पापिना ॥ २० ॥ यज्ञभागानसौ भुंक्ते ब्राह्मणैः प्रतिपादितान् ॥ अमरा गिरिदुर्गेषु भ्रमंति च भयातुराः ॥ २१ ॥ वरदानेन धातुः स दुर्जयो मधुसूदन ॥ तस्मात्त्वां शरणं प्राप्ता ज्ञात्वा तत्कार्यगौरवम् ॥ २२ ॥ समर्थोऽसि समुद्धर्तुं दैत्यमायाविशारद ॥ कुरु कृष्ण वधोपायं तस्य दानवमर्दन ॥२३॥ धात्रा तस्मै वरो दत्तो ह्यवध्योऽस्ति नरैः किल ॥ का स्त्री त्वेवंविधा बाला या हन्यात्तं शठं रणे ॥ २४ ॥ उमा मा वा शची विद्या का समर्थाऽस्य घातने ॥ महिषस्यातिदुष्टस्य वरदानबलादपि ॥ २५ ॥ विचिन्त्य बुद्ध्या तत्सर्वं मरणस्यास्य कारणम् ॥ कुरु कार्यं च देवानां भक्तवत्सल भूधर ॥ २६ ॥ व्यास उवाच ॥ श्रुत्वा तद्वचनं विष्णुस्तानुवाच हसन्निव ॥ युद्धं कृतं पुराऽस्माभिस्तथापि न मृतो ह्यसौ ॥२७॥ अद्य सर्वसुराणां वै तेजोभी रूपसंपदा ॥ उत्पन्ना चेद्वरारोहा सा हन्यात्तं रणे बलात् ॥ २८ ॥ हयारिं वरदृप्तं च मायाशतविशारदम् ॥ हंतुं योग्या भवेन्नारी शक्त्यंशैर्निर्मिता हि नः ॥ २९ ॥ प्रार्थयंतु च तेजोंशान्स्त्रियोऽस्माकं तथा

वरदान दे रक्खा है कि जिससे वह पुरुषमात्रके हाथों नहीं मारा जा सकता । तब ऐसी स्त्री कौन होगी, जो रणमें उस शठको मार सके ? ॥२४॥ क्या भगवती पार्वती, लक्ष्मी, इन्द्राणी अथवा सरस्वती, उस अत्यन्त दुष्ट तथा वरदानकी प्राप्तिसे गर्वित महिषासुरका वध कर सकेंगी ? ॥२५॥ हे भक्तवत्सल ! हे भूधर (पृथ्वीको धारण करनेवाले) ! आप अपनी बुद्धिसे अच्छी तरह विचार करके उसके मरणका कोई उपाय सोचकर हम देवताओंका काम पूरा कर दीजिए ॥ २६ ॥ व्यासजी बोले कि यह वचन सुनकर मुसकाते हुए भगवान लक्ष्मीकान्तने कहा कि पहले भी तो हम उससे लड़ चुके हैं । फिर भी वह नहीं मरा ॥ २७ ॥ अब केवल एक यही उपाय है कि हम सब देवताओंके सम्मिलित तेजसे कोई सुन्दरी और वीर स्त्री जायमान हो तो वही अपने पराक्रमसे रणभूमिमें उसका वध कर सकती है ॥ २८ ॥ हम सबकी शक्तिके अंशसे निर्मित कोई वीर रमणी ही उस सैकड़ों मायामें निपुण और वरप्राप्तिके कारण मद-

मत्त महिषासुरको मार सकेगी ॥ २९ ॥ अतएव अब आप लोग उस परा शक्तिसे ऐसी प्रार्थना करिए कि जिससे वह हम लोगोंके तेजांशसे एक तेजःपुञ्जरूपिणी स्त्री बन जाय ॥ ३० ॥ उस स्त्रीको हम रुद्र आदि देवता दिव्य त्रिशूल-चक्र आदि सब आयुध दे देंगे ॥ ३१ ॥ इस प्रकार सब शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित और सर्वथा तेजोयुक्त वह नारी उस मदमत्त, पापी और दुराचारी दानवको मार डालेगी ॥ ३२ ॥ व्यासजी बोले--भगवान विष्णुके ऐसा कहते ही ब्रह्माजीके मुखसे अपने आप एक असह्य तेजोराशि निकल पड़ी ॥ ३३ ॥ उस तेजोराशिका आकार बड़ा सुन्दर था। पद्मराग (पुखराज) मणिके सदृश उसकी दीप्ति थी और उसका लाल रंग था। वह तेजोराशि कुछ ठंढी और कुछ गरम थी और उसकी किरणें चारों ओर फैल रही थीं ॥ ३४ ॥ हे महाराज ! भगवान विष्णु और शंकरजीने भी उस तेजको निकलते देखा। उसे देखकर वे दोनों आश्चर्यचकित हो गये ॥ ३५ ॥ तदनन्तर शंकरजीके भी शरीरसे चाँदी जैसा चम-

पुनः ॥ उत्पन्नैस्तैश्च तेजोंशैस्तेजोराशिर्भवेद्यथा ॥ ३० ॥ आयुधानि वयं दद्मः सर्वे रुद्रपुरोगमाः ॥ तस्य सर्वाणि दिव्यानि त्रिशूलादीनि यानि च ॥ ३१ ॥ सर्वायुधधरा नारी सर्वतेजःसमन्विता ॥ हनिष्यति दुरात्मानं तं पापं मदगर्वितम् ॥ ३२ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्तवति देवेशे ब्रह्मणो वदनात्ततः ॥ स्वयमेवोद्बभौ तेजोराशिश्चातीव दुःसहः ॥ ३३ ॥ रक्तवर्णं शुभाकारं पद्मरागमणिप्रभम् ॥ किंचिच्छीतं तथा चोष्णं मरीचिजालमंडितम् ॥ ३४ ॥ निःसृतं हरिणा दृष्टं हरेण च महात्मना ॥ विस्मितौ तौ महाराज बभूवतुरुरुक्रमौ ॥ ३५ ॥ शंकरस्य शरीरात्तु निःसृतं महदद्भुतम् ॥ रौप्यवर्णमभूत्तीव्रं दुर्दर्शं दारुणं महत् ॥ ३६ ॥ भयंकरं च दैत्यानां देवानां विस्मयप्रदम् ॥ घोररूपं गिरिप्रख्यं तमोगुणमिवापरम् ॥ ३७ ॥ ततो विष्णुशरीरात्तु तेजोराशिमिवापरम् ॥ नीलं सत्त्वगुणोपेतं प्रादुरास महाद्युति ॥ ३८ ॥ ततश्चेन्द्रशरीरात्तु चित्ररूपं दुरासदम् ॥ आविरासीत्सुसंवृत्तं तेजः सर्वगुणात्मकम् ॥ ३९ ॥ कुबेरयमवह्नीनां शरीरेभ्यः समंततः ॥ निश्चक्राम महत्तेजो वरुणस्य तथैव च ॥ ४० ॥ अन्येषां चैव देवानां शरीरेभ्योऽतिभास्वरम् ॥ निर्गतं तन्महातेजोराशिरासीन्महोज्ज्वलः ॥ ४१ ॥ तं दृष्ट्वा विस्मिताः सर्वे देवा विष्णुपुरोगमाः ॥ तेजोराशिं महादिव्यं हिमाचलमिवापरम् ॥ ४२ ॥ पश्यतां तत्र देवानां तेजःपुञ्जसमुद्भवा ॥ बभूवातिवरा नारी सुंदरी

कीला, अद्भुत, तीव्र, विशाल, दारुण तथा नेत्रोंमें चकाचौंध उत्पन्न करनेवाला तेज निकला ॥ ३६ ॥ वह तेज दैत्योंके लिए भयानक था और देवताओंके हृदयमें आश्चर्य उत्पन्न कर रहा था। उसका बड़ा भयानक और पर्वतके समान विशाल स्वरूप था। वह तमोगुणका मूर्तिमान् रूप था ॥ ३७ ॥ तत्पश्चात् भगवान विष्णुके शरीरसे सत्त्वगुणमय, श्यामवर्ण और अतिशय दीप्तिमान् तेज प्रगट हुआ ॥ ३८ ॥ कुछ क्षणों बाद इन्द्रके शरीरसे भी विचित्र आकार-प्रकारका असह्य, गोलाकार और त्रिगुणात्मक तेज प्रगटा ॥ ३९ ॥ उसके बाद कुबेर, यम, अग्नि तथा वरुणके शरीरसे भी एक साथ महान् तेजका आविर्भाव हुआ ॥ ४० ॥ इसी प्रकार अन्यान्य देवताओंके भी शरीरसे अत्यन्त देदीप्यमान तथा प्रज्वलित तेज समूह निकला ॥ ४१ ॥ दूसरे हिमवान् पर्वतके समान विशालकाय उस महादिव्य तेजपुञ्जको देखकर विष्णु आदि सभी देवता चकरा गये ॥ ४२ ॥ उन सब देवताओंके देखते-देखते उस तेजपुञ्जसे एक अत्यन्त

रूपवती, सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी और सब लोगोंको आश्चर्यमें डाल देनेवाली एक स्त्री प्रगट हो गयी ॥ ४३ ॥ सब देवताओंके तेजसे उत्पन्न त्रिगुणात्मिका, त्रिवर्णा एवं परम रमणीक नारी साक्षात् महालक्ष्मी थीं। उनके अठारह भुजायें थीं ॥ ४४ ॥ उनका श्वेत मुख था। काले-काले नेत्र थे। उनका अधरोष्ठ (नीचेका होंठ) लाल था। उनकी हथेली ताम्रवर्णकी थी। वे देखनेमें बड़ी ही सुन्दर लग रही थीं और दिव्य आभूषण पहने थीं ॥ ४५ ॥ वे भगवती सहस्रभुजधारिणी होती हुई भी दैत्योंका विनाश करनेके लिए अष्टादश भुजाओं युक्त होकर उन देवताओंके तेजसे निकली थीं ॥ ४६ ॥ राजा जनमेजय बोले—हे कृष्ण द्वैपायन ! हे देव ! हे महाभाग ! हे सर्वज्ञ ! हे मुनिसत्तम ! आप उनकी उत्पत्तिका वृत्तान्त विस्तारपूर्वक वर्णन करिए ॥४७॥ उन सब देवताओंके शरीरसे निकला हुआ तेज बादमें एकत्र हो गया अथवा अलग ही अलग रहा ? क्या उन महालक्ष्मीके अङ्ग-प्रत्यङ्ग उन विभिन्न देवताओंके तेजसे उत्पन्न विभिन्न रूप-रङ्गके थे या एक जैसे ही थे ? ॥ ४८ ॥ उनके शरीरके विभिन्न अङ्ग मुँह, नाक, आँख आदि अलग-अलग देवताके तेजसे बने थे अथवा सब तेज एक साथ मिलकर बने थे ?

विस्मयप्रदा ॥ ४३ ॥ त्रिगुणा सा महालक्ष्मीः सर्वदेवशरीरजा ॥ अष्टादशभुजा रम्या त्रिवर्णा विश्वमोहिनी ॥ ४४ ॥ श्वेतानना कृष्णनेत्रा संरक्ताधरपल्लवा ॥ ताम्रपाणितला कांता दिव्यभूषणभूषिता ॥४५॥ अष्टादशभुजा देवी सहस्रभुजमंडिता ॥ संभूताऽसुरनाशाय तेजोराशिसमुद्भवा ॥ ४६ ॥ जनमेजय उवाच ॥ कृष्ण देव महाभाग सर्वज्ञ मुनिसत्तम ॥ विस्तरं ब्रूहि तस्यास्त्वं शरीरस्य समुद्भवम् ॥ ४७ ॥ एकीभूतं च सर्वेषां तेजः किं वा पृथक्स्थितम् ॥ अंगानि चैव तस्यास्तु सर्वतेजोमयानि वा ॥४८॥ भिन्नभागविभागेन जातान्यंगानि यानि तु ॥ मुखनासाक्षिभेदेन सर्वत्रैकभवानि च ॥ ४९ ॥ ब्रूहि तद्विस्तरं व्यास शरीरांगसमुद्भवम् ॥ बभूव यस्य देवस्य तेजसोऽङ्गं यदद्भुतम् ॥ ५० ॥ आयुधाभरणादीनि दत्तानि यैर्यथा यथा ॥ तत्सर्वं श्रोतुकामोऽस्मि त्वन्मुखांबुजनिर्गतम् ॥५१॥ न हि तृप्याम्यहं ब्रह्मन्सुधामयरसं पिबन् ॥ चरितं च महालक्ष्म्यास्त्वन्मुखांभोजनिःसृतम् ॥५२॥ सूत उवाच ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा राज्ञः सत्यवतीसुतः ॥ उवाच मधुरं वाक्यं प्रीणयन्निव भूपतिम् ॥५३॥ व्यास उवाच ॥ शृणु राजन्महाभाग विस्तरेण ब्रवीमि ते ॥ यथामति कुरुश्रेष्ठ तस्या देहसमुद्भवम् ॥ ५४ ॥ न ब्रह्मा न हरिः साक्षान्न रुद्रो न च वासवः ॥ याथातथ्येन तद्रूपं वक्तुमीशः कदाचन ॥५५॥ कथं जानाम्यहं देव्या यद्रूपं यादृशं यतः ॥ वाचारंभणमात्रं तदुत्पन्नेति ब्रवीमि यत् ॥५६॥

॥ ४९ ॥ हे व्यासजी ! महालक्ष्मीके शरीर तथा अङ्गोंमेंसे जो-जो अङ्ग जिस-जिस देवताके तेजसे बने हों, वह सब विवरण विस्तारके साथ बताइए ॥ ५० ॥ उन्हें जिन-जिन देवताओंने जो-जो शस्त्रास्त्र तथा आभूषण प्रदान किये हों, सो सब बातें मैं आपके मुखारविन्दसे सुनना चाहता हूँ ॥ ५१ ॥ हे ब्रह्मन् ! मैं आपकी वाणीरूपिणी सुधाका पान करके और भगवती महालक्ष्मीके चरित्रको सुनकर तृप्त नहीं हो पाता ॥ ५२ ॥ सूतजी कहते हैं—हे मुनिवृन्द ! राजा जनमेजयके वचन सुनकर सत्यवतीसुत व्यासजी उनको प्रसन्न करते हुए मधुर वाणी बोले ॥ ५३ ॥ व्यासजीने कहा—हे राजन् ! हे महाभाग ! मैं अपनी बुद्धिके अनुसार विस्तारपूर्वक सब बातें बता रहा हूँ। हे कुरुश्रेष्ठ ! भगवती महालक्ष्मीकी उत्पत्तिका वृत्तान्त आप सुनें ॥ ५४ ॥ उन भगवतीके वास्तविक स्वरूपको ब्रह्मा, विष्णु, शिव और इन्द्र भी यथार्थ रीतिसे नहीं बतला सकते ॥ ५५ ॥ तब भला मैं कैसे जान सकता हूँ कि देवीका सच्चा

स्वरूप कैसा था ? क्योंकि वे भगवान विष्णुके संकल्पसे जायमान हुई थीं। फिर भी जहाँतक मेरी पहुँच है, मैं कह रहा हूँ ॥ ५६ ॥ वे भगवती नित्या हैं और सदा विद्यमान रहती हैं। वे एक होती हुई भी देवताओंकी कार्यसिद्धिके लिए अनेक रूप धारण कर लेती हैं ॥५७॥ जैसे नाटकका कोई नट एक होता हुआ भी रंगमंचपर जाकर लोगोंका मनोरंजन करनेके लिए अनेक रूप धारण कर लेता है ॥ ५८ ॥ उसी प्रकार निर्गुण (रूपरहित) होती हुई भी वे भगवती देवताओंका कार्य सम्पन्न करनेके लिए अपनी लीलासे अनेक सगुण रूप धारण कर लिया करती हैं ॥ ५९ ॥ किये जानेवाले कर्मके अनुसार धात्वर्थ-गुणयुक्त उनके बहुतेरे गौण नाम पड़ जाते हैं ॥ ६० ॥ हे नरपते ! देवताओंके तेजसमूहसे जिस प्रकार उन भगवतीका वह मनोहर रूप उत्पन्न हुआ था, वह मैं अपनी साधारण बुद्धिके अनुसार बता रहा हूँ ॥६१॥ शंकरजीके मुखसे जो तेज निकला था, उससे महालक्ष्मीका गौरवर्ण, सुन्दर और विशाल मुखकमल बना ॥ ६२ ॥ उनके कोमल, सुचिक्कण, घुँघराले, काले-काले और सुन्दर केशपाश यमराजके तेजसे बने ॥ ६३ ॥ अग्निके तेजसे महालक्ष्मीके तीनों नेत्र बने थे। वे तीनों नेत्र काले,

सा नित्या सर्वदैवास्ते देवकार्यार्थसिद्धये ॥ नानारूपा त्वेकरूपा जायते कार्यगौरवात् ॥ ५७ ॥ यथा नटो रंगगतो नानारूपो भवत्यसौ ॥ एकरूपस्वभावोऽपि लोकरंजनहेतवे ॥५८॥ तथैषा देवकार्यार्थमरूपाऽपि स्वलीलया ॥ करोति बहुरूपाणि निर्गुणा सगुणानि च ॥५९॥ कार्यकर्मानुसारेण नामानि प्रभवंति हि ॥ धात्वर्थगुणयुक्तानि गौणानि सुबहून्यपि ॥ ६० ॥ तद्धै बुद्ध्यनुसारेण प्रब्रवीमि नराधिप ॥ यथा तेजः समुद्भूतं रूपं तस्या मनोहरम् ॥६१॥ शंकरस्य च यत्तेजस्तेन तन्मुखपंकजम् ॥ श्वेतवर्णं शुभाकारमजायत महत्तरम् ॥ ६२ ॥ केशास्तस्यास्तथा स्निग्धा याम्येन तेजसाऽभवन् ॥ वक्राग्राश्चातिदीर्घा वै मेघवर्णा मनोहराः ॥६३॥ नयनत्रितयं तस्या जज्ञे पावकतेजसा ॥ कृष्णं रक्तं तथा श्वेतं वर्णत्रयविभूषितम् ॥ ६४ ॥ वक्रे स्निग्धे कृष्णवर्णे संध्ययोस्तेजसा भ्रुवौ ॥ जाते देव्याः सुतेजस्के कामस्य धनुषीव ते ॥ ६५ ॥ वायोश्च तेजसा शस्तौ श्रवणौ संबभूवतुः ॥ नातिदीर्घौ नातिह्रस्वौ दोलाविव मनोभुवः ॥६६॥ तिलपुष्पसमाकारा नासिका सुमनोहरा ॥ संजाता स्निग्धवर्णा वै धनदस्य च तेजसा ॥ ६७ ॥ दंताः शिखरिणः श्लक्ष्णाः कुंदाग्रसदृशाः समाः ॥ संजाताः सुप्रभा राजन्प्राजापत्येन तेजसा ॥ ६८ ॥ अधरश्चातिरक्तोऽस्याः संजातोऽरुणतेजसा ॥ उत्तरोष्ठस्तथा रम्यः कार्तिकेयस्य तेजसा ॥६९॥ अष्टादशभुजाकारा बहवो विष्णुतेजसा ॥ वसूनां तेजसांगुल्यो रक्तवर्णा-

लाल और श्वेत वर्णके थे। इस प्रकार वे तीनों तीन वर्णके थे ॥ ६४ ॥ दोनों संध्याओंके तेजसे महालक्ष्मीकी टेढ़ी, चिकनी तथा काली-काली दोनों भौंहें बनीं। उन भौंहोंसे तेज बरस रहा था और वे कामदेवके धनुष जैसी सुन्दर थीं ॥ ६५ ॥ कामदेवके झूलेकी तरह सुन्दर, न बहुत लम्बे और न बहुत छोटे उनके दोनों कान वायुदेवके तेजसे बने थे ॥ ६६ ॥ तिलपुष्पके आकार-प्रकारकी, सुन्दर और स्निग्ध उनकी नासिका कुबेरके तेजसे बनी थी ॥ ६७ ॥ हे राजन् ! नोकीले, चिकने, चमकीले, कुन्दपुष्पके समान उज्ज्वल और सँटे हुए उनके दाँत दक्ष प्रजापतिके तेजसे बने थे ॥ ६८ ॥ उनका अतिशय लाल अधरोष्ठ अरुणके तेजसे और परम रमणीक उत्तरोष्ठ (ऊपरी होंठ) स्वामिकार्तिकेयके तेजसे बना था ॥ ६९ ॥ भगवान् विष्णुके तेजसे अठारहों भुजायें और वसुओंके तेजसे उनकी लाल-लाल उँगलियाँ बनीं थीं। चन्द्रमाके तेजसे उनके दोनों ऊँचे-ऊँचे स्तन और इन्द्रके तेजसे उनके

भगवान् विष्णुके तेजसे अठारहों भुजायें और वसुओंके तेजसे उनकी लाल-लाल उँगलियाँ बनीं थीं। चन्द्रमाके तेजसे उनके दोनों ऊँचे-ऊँचे स्तन और इन्द्रके तेजसे उनके

त्रिवलीयुक्त शरीरका मध्यभाग बना था ॥ ७० ॥ ७१ ॥ वरुणके तेजसे जंघा तथा ऊरुप्रदेश और पृथिवीके तेजसे उनका सुविस्तृत नितम्ब बना था ॥ ७२ ॥ हे राजन्! इस प्रकार अन्यान्य देवताओंके तेजसे सुन्दर आकृतिवाली, सुरूपवती और मीठे स्वरवाली एक भव्य नारी जायमान हुई ॥ ७३ ॥ उस सर्वाङ्गसुन्दरी, सुन्दर दाँतों और आकर्षक नयनोंवाली स्त्रीको देखकर महिषासुरके द्वारा सताये हुए देवता निहाल हो गये ॥ ७४ ॥ उसी समय भगवान विष्णुने कहा—हे देवताओ! आप लोग इन्हें सब प्रकारके शुभदायक आभूषण और शस्त्रास्त्र अर्पण करिए ॥ ७५ ॥ आप सब अपने-अपने आयुधोंसे विविध प्रकारके शस्त्रास्त्र उत्पन्न करें और उनको अपने तेजसे युक्त करके इन्हें प्रदान कर दें ॥ ७६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे 'पीताम्बरा' भाषाटीकायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

स्तथाऽभवन् ॥ ७० ॥ सौम्येन तेजसा जातं स्तनयोर्युग्ममुत्तमम् ॥ ऐन्द्रेणास्यास्तथा मध्यं जातं त्रिबलिसंयुतम् ॥ ७१ ॥ जंघोरू वरुणस्याथ तेजसा संबभूवतुः ॥ नितंबः स तु संजातो विपुलस्तेजसा भुवः ॥ ७२ ॥ एवं नारी शुभाकारा सुरूपा सुस्वरा भृशम् ॥ समुत्पन्ना तथा राजंस्तेजोराशिसमुद्भवा ॥ ७३ ॥ तां दृष्ट्वा सुष्ठु सर्वांगीं सुदतीं चारुलोचनाम् ॥ मुदं प्रापुः सुराः सर्वे महिषेण प्रपीडिताः ॥ ७४ ॥ विष्णुस्त्वाह सुरान्सर्वान्भूषणान्यायुधानि च ॥ प्रयच्छंतु शुभान्यस्यै देवाः सर्वाणि सांप्रतम् ॥ ७५ ॥ स्वायुधेभ्यः समुत्पाद्य तेजोयुक्तानि सत्वराः ॥ समर्पयंतु सर्वेऽद्य देव्यै नानायुधानि वै ॥ ७६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते पंचमस्कन्धे देव्याः स्वरूपोद्भवो नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

॥ व्यास उवाच ॥ देवा विष्णुवचः श्रुत्वा सर्वे प्रमुदितास्तदा ॥ ददुश्च भूषणान्याशु वस्त्राणि स्वायुधानि च ॥ १ ॥ क्षीरोदश्चांबरे दिव्ये रक्ते सूक्ष्मे तथाऽजरे ॥ निर्मलं च तथा हारं प्रीतस्तस्यै सुमंडितम् ॥ २ ॥ ददौ चूडामणिं दिव्यं सूर्यकोटिसमप्रभम् ॥ कुंडले च तथा शुभ्रे कटकानि भुजेषु वै ॥ ३ ॥ केयूरान्कंकणान्दिव्यान्नानारत्नविराजितान् ॥ ददौ तस्यै विश्वकर्मा प्रसन्नेन्द्रियमानसः ॥ ४ ॥ नूपुरौ सुस्वरौ कांतौ निर्मलौ रत्नभूषितौ ॥ ददौ सूर्यप्रतीकाशौ त्वष्टा तस्यै सुपादयोः ॥ ५ ॥ तथा ग्रैवेयकं रम्यं ददौ तस्यै महार्णवः ॥ अंगुलीयकरत्नानि तेजोवंति च सर्वशः ॥ ६ ॥ अम्लानपंकजां मालां गंधाढ्यां भ्रमरानुगाम् ॥ तथैव वैजयंतीं च वरुणः संप्रयच्छत ॥ ७ ॥ हिमवानथ संतुष्टो रत्नानि विविधानि

(देवताओं द्वारा देवीकी स्तुति) व्यासजी बोले—हे महाराज! विष्णुभगवानके वचन सुनकर देवता बहुत प्रसन्न हुए और तुरन्त महालक्ष्मीको विविध वस्त्र, आभूषण और आयुध प्रदान करने लगे ॥ १ ॥ क्षीरसागरने भगवतीको महीन, नयी तथा लाल रंगकी साड़ी और दुपट्टा दिया। उसके साथ ही जड़ाऊ और निर्मल हार भी प्रदान किया ॥ २ ॥ विश्वकर्माने प्रसन्नतापूर्वक उन्हें करोड़ों सूर्यके समान चमकीला दिव्य चूड़ामणि, एक जोड़ा सुन्दर कुण्डल, स्वर्णनिर्मित बाजूबन्द, केयूर (तोड़ा) और विविध रत्नजटित कंकण प्रदान किया ॥ ३ ॥ ४ ॥ त्वष्टा देवताने सुन्दर आवाजवाले, चमकीले, रत्नजटित और सूर्यके समान प्रकाशसम्पन्न दो पायजेब पैरोंमें पहननेके लिए दिये ॥ ५ ॥ महासमुद्रने गलेमें पहननेका हार और अत्यधिक चमकीली रत्नजटित अंगूठी प्रदान की ॥ ६ ॥ वरुणदेवने कभी भी न कुम्हलानेवाले, सुगन्धित तथा जिसपर भौंरे मँडरा रहे थे, ऐसे कमलपुष्पकी माला और उपर्युक्त गुणोंसे अलंकृत वैजयन्तीमाला

दी ॥७॥ हिमवान् पर्वतने प्रसन्नतापूर्वक विविध प्रकारके रत्न तथा सुवर्णके समान चमकीले रंगका सिंह सवारीके लिए अर्पण किया ॥८॥ सभी सुलक्षणोंसे सम्पन्न सुन्दर जाँघवाली वह दिव्य रमणी देवताओं द्वारा प्रदत्त आभूषण पहन तथा सिंहपर सवार होकर बड़ी सुन्दर दीखने लगी ॥ ९ ॥ तब भगवान विष्णुने अपने चक्रसे उत्पन्न करके उन्हें एक ऐसा चक्र दिया, जिसमें सहस्र धारें थीं, जो अतीव तेजस्वी था और जिसमें अगणित दैत्योंके सिर काट लेनेकी सामर्थ्य थी ॥ १० ॥ शंकरजीने अपने त्रिशूलसे उत्पन्न करके एक ऐसा त्रिशूल प्रदान किया, जो देवताओंका भय दूर करनेमें समर्थ था ॥ ११ ॥ वरुणदेवने अपने शंखसे उत्पन्न करके उन्हें एक ऐसा शंख दिया—जो मंगलमय, अत्यन्त उज्ज्वल तथा घनघोर शब्द करनेवाला था ॥१२॥ अग्निदेवने उन्हें ऐसी शक्ति (बर्छी) दी, जो मनके समान वेगसे चलती थी और सैकड़ों शत्रुओंको नष्ट कर देने तथा अगणित दैत्योंका विनाश करनेमें समर्थ थी ॥ १३ ॥ भगवान विष्णुने महालक्ष्मीको बाणोंसे भरा तरकस तथा देखनेमें अद्भुत ढंगका ऐसा धनुष दिया, जो बड़ी कठिनाईसे खींचा जा सकता था और जिसका टंकोर बहुत कर्कश था ॥ १४ ॥ देवराज इन्द्रने

च ॥ ददौ च वाहनं सिंहं कनकाभं मनोहरम् ॥ ८ ॥ भूषणैर्भूषिता दिव्यैः सा रराज वरा शुभा ॥ सिंहारूढा वरारोहा सर्वलक्षणसंयुता ॥ ९ ॥ विष्णुश्चक्रात्समुत्पाद्य ददावस्यै रथांगकम् ॥ सहस्रारं सुदीप्तं च देवारिशिरसां हरम् ॥ १० ॥ स्वत्रिशूलात्समुत्पाद्य शंकरः शूलमुत्तमम् ॥ ददौ देव्यै सुरारीणां कृन्तनं भयनाशनम् ॥ ११ ॥ वरुणश्च प्रसन्नात्मा ददौ शंखं समुज्ज्वलम् ॥ घोषवंतं स्वशंखात्तु समुत्पाद्य सुमंगलम् ॥ १२ ॥ हुताशनस्तथा शक्तिं शतघ्नीं सुमनोजवाम् ॥ प्रायच्छत्तु प्रसन्नात्मा तस्यै दैत्यविनाशिनम् ॥ १३ ॥ इषुधिं बाणपूर्णं च चापं चाद्भुतदर्शनम् ॥ मारुतो दत्तवांस्तस्यै दुराकर्षं खरस्वरम् ॥ १४ ॥ स्ववज्राद्वज्रमुत्पाद्य ददाविन्द्रोऽतिदारुणम् ॥ घंटामैरावतात्तूर्णं सुशब्दां चातिसुन्दराम् ॥ १५ ॥ ददौ दंडं यमः कामं कालदंडसमुद्भवम् ॥ येनांतं सर्वभूतानामकरोत्काल आगते ॥ १६ ॥ ब्रह्मा कमंडलुं दिव्यं गंगावारिप्रपूरितम् ॥ ददावस्यै मुदा युक्तो वरुणः पाशमेव च ॥ १७ ॥ कालः खड्गं तथा चर्म प्रायच्छत्तु नराधिप ॥ परशुं विश्वकर्मा च तीक्ष्णमस्यै ददावथ ॥ १८ ॥ धनदस्तु सुरापूर्णं पानपात्रं सुवर्णजम् ॥ पंकजं वरुणश्चादाद्देव्यै दिव्यं मनोहरम् ॥ १९ ॥ गदां कौमोदकीं त्वष्टा घंटाशतनिनादिनीम् ॥ अदात्तस्यै प्रसन्नात्मा सुरशत्रुविनाशिनीम् ॥ २० ॥ अस्त्राण्यनेकरूपाणि तथाऽभेद्यं च दंशनम् ॥ ददौ त्वष्टा जगन्मात्रे निजरश्मीन्दिवाकरः ॥ २१ ॥ सायुधां

अपने वज्रसे उत्पन्न करके एक अति भयंकर वज्र और ऐरावत हाथीका घण्टा दिया, जो बड़ा सुन्दर था और उसकी आवाज बहुत तेज थी ॥ १५ ॥ यमराजने अपने कालदण्डसे उत्पन्न ऐसा दण्ड प्रदान किया, जिससे कालदेव सब प्राणियोंका अन्त करते थे ॥ १६ ॥ ब्रह्माजीने प्रसन्नतापूर्वक उन्हें गङ्गाजलसे भरा हुआ एक दिव्य कमण्डल प्रदान किया और वरुणदेवने अपना पाश दे दिया ॥ १७ ॥ हे महाराज जनमेजय ! कालने महालक्ष्मीको तलवार और ढाल दी । विश्वकर्माने उन्हें अतिशय तीक्ष्ण फरसा दिया ॥ १८ ॥ कुबेरने मदिरासे भरा हुआ पानपात्र (गिलास) दिया । वरुणने उन्हें मनोहर कमलपुष्प प्रदान किया ॥ १९ ॥ परम प्रसन्न त्वष्टा देवताने उन्हें कौमोदकी गदा प्रदान की, जिसमें सैकड़ों घण्टेकी आवाज हो रही थी और जो दैत्योंका विनाश करती थी ॥ २० ॥ त्वष्टाने ही भगवतीको अनेक अस्त्र तथा अभेद्य कवच दिया और सूर्यदेवने अपनी किरणें प्रदान कीं ॥ २१ ॥ इस

प्रकार सभी आयुधों और आभूषणोंको धारण किये देखकर देवता बहुत विस्मित हुए और त्रैलोक्यमोहिनी उन कल्याणमयी देवीकी स्तुति करने लगे ॥ २२ ॥ देवता बोले–हे शिवे! आप कल्याणी, शान्ति और पुष्टि हैं। आपको नमस्कार है। आप भगवती, देवी और रुद्राणीको हमारा नमस्कार है ॥ २३ ॥ आप कालरात्रि, अम्बा और इन्द्राणी हैं। आपको बारम्बार नमस्कार है। आप ही सिद्धि तथा वैष्णवी हैं। आपको पुनः पुनः नमस्कार है ॥ २४ ॥ हे देवी! आप पृथिवीपर स्थित रहती हैं। फिर भी पृथिवी आपको नहीं जानती। आप ही पृथिवीके भीतर रहकर पृथिवीका नियंत्रण करती हैं। सो आप परमेश्वरीकी मैं वन्दना करता हूँ ॥ २५ ॥ जो नित्य मायामें ही विद्यमान रहती है। फिर भी माया जिसे नहीं जानती। जो मायाके अन्तस्तलमें विराजमान होकर उसे प्रेरणा देती है, उस शिवा भगवतीको हम नमस्कार करते हैं ॥२६॥ हे माता! आप हमारा कल्याण करिए। शत्रुसे सताये हुए हम देवताओंकी रक्षा करिए। आप अपने तेजसे महिषासुरको मोहित करके मार डालिए ॥ २७ ॥ महिषासुर बड़ा खल, भयानक मायावी, केवल स्त्रीके हाथों मरनेवाला, वरदान प्राप्त करनेसे अभिमानी, सब देवताओंको

भूषणैर्युक्तां दृष्ट्वा ते विस्मयं गताः ॥ तुष्टुवुस्तां सुरा देवीं त्रैलोक्यमोहिनीं शिवाम् ॥ २२ ॥ देवा ऊचुः ॥ नमः शिवायै कल्याण्यै शान्त्यै पुष्ट्यै नमो नमः ॥ भगवत्यै नमो देव्यै रुद्राण्यै सततं नमः ॥२३॥ कालरात्र्यै तथाम्बायै इन्द्राण्यै ते नमो नमः ॥ सिद्ध्यै बुद्ध्यै तथा वृद्ध्यै वैष्णव्यै ते नमो नमः ॥ २४ ॥ पृथिव्यां या स्थिता पृथ्व्या न ज्ञाता पृथिवीं च या ॥ अन्तःस्थिता यमयति वंदे तामीश्वरीं पराम् ॥ २५ ॥ मायायां या स्थिता ज्ञाता मायया न च तामजाम् ॥ अन्तःस्थिता प्रेरयति प्रेरयित्रीं नुमः शिवाम् ॥२६॥ कल्याणं कुरु भो मातस्त्राहि नः शत्रुतापिताम् ॥ जहि पापं ह्यारिं त्वं तेजसा स्वेन मोहितम् ॥ २७ ॥ खलं मायाविनं घोरं स्त्रीवध्यं वरदर्पितम् ॥ दुःखदं सर्वदेवानां नानारूपधरं शठम् ॥ २८ ॥ त्वमेका सर्वदेवानां शरणं भक्तवत्सले ॥ पीडितान्दानवेनाद्य त्राहि देवि नमोऽस्तु ते ॥ २९ ॥ व्यास उवाच ॥ एवं स्तुता तदा देवी सुरैः सर्वसुखप्रदा ॥ तानुवाच महादेवी स्मितपूर्वं शुभं वचः ॥ ३० ॥ देव्युवाच ॥ भयं त्यजंतु गीर्वाणा महिषान्मन्दचेतसः ॥ हनिष्यामि रणेऽद्यैव वरदृप्तं विमोहितम् ॥ ३१ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्त्वा सा सुरान्देवी जहासातीव सुस्वरम् ॥ चित्रमेतच्च संसारे भ्रममोहयुतं जगत् ॥ ३२ ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशाद्याः सेंद्राश्चान्ये सुरास्तथा ॥ कंपयुक्ता भयत्रस्ता वर्तन्ते महिषात्किल ॥ ३३ ॥ अहो दैवबलं घोरं दुर्जयं सुरसत्तमाः ॥ कालः कर्ताऽस्ति दुःखानां सुखानां प्रभु-

दुखदायी, विविध रूपधारी और शठ है ॥२८॥ हे भक्तवत्सले! हम देवताओंके लिए एकमात्र आप ही शरण हैं। दानवराज महिषासुरसे पीडित हम देवताओंकी आप रक्षा करें। हम सब आपको नमस्कार करते हैं ॥ २९ ॥ व्यासजी बोले––इस प्रकार सब देवताओंके स्तुति करनेपर सर्वसुखदायिनी महादेवी मुसकाकर उन देवताओंसे यह शुभ वाणी बोलीं ॥ ३० ॥ देवीने कहा––हे देवताओ! आप लोग उस मन्दबुद्धि महिषासुरका भय त्याग दें। आज ही मैं उस वरदर्पित दानवको मोहमें डालकर रणमें मार डालूँगी ॥ ३१ ॥ व्यासजी बोले कि देवताओंसे ऐसा कहकर देवी बहुत जोरसे ठठाकर हँसने लगीं। वे यह सोचकर हँसीं कि संसारमें यह बड़ी विचित्र बात है, जो समस्त विश्व भ्रम और मोहमें पड़ा हुआ है ॥ ३२ ॥ ब्रह्मा, विष्णु, शिव और इन्द्र आदि बड़े-बड़े देवता महिषासुरसे डरते हैं–उसके नामसे काँपते हैं ॥ ३३ ॥ अहो श्रेष्ठ देवताओ! दैवबल बड़ा भयानक और दुर्जय है। काल ही दुःख और सुख देनेवाला प्रभु तथा

सबका ईश्वर है ॥३४॥ क्योंकि सृष्टि, पालन और संहारकी क्षमता रखते हुए भी आपलोग घबड़ा जाते हैं, नाना प्रकारके कष्ट भोगते हैं और महिषासुर द्वारा सताये जाते हैं ॥ ३५ ॥ ऐसा कहकर मुसकाती हुई वे देवी फिर ठठाकर हँसने लगीं। उनके अट्टहासका शब्द बड़ा भयानक था। उसे सुनकर दैत्य दहल गये ॥ ३६ ॥ वह शब्द सुनकर पृथिवी डगमगाने लगी, सब पर्वत चलायमान हो गये और परम पराक्रमी समुद्रमें खलबली मच गयी ॥३७॥ उस शब्दसे सुमेरु पर्वत हिल गया और वह शब्द दसों दिशाओंमें गूँज उठा। उस घनघोर निनादको सुनकर दैत्यगण भयभीत हो गये ॥ ३८ ॥ देवता प्रसन्न होकर 'जय' और 'पाहि' शब्दका उच्चारण करने लगे। मदगर्वित महिषासुर वह शब्द सुनकर क्रुद्ध हो उठा ॥ ३९ ॥ सशंक होकर उसने दैत्योंसे पूछा कि यह कैसी आवाज है ? तुमलोग दूतोंको भेजकर शीघ्र पता लगाओ कि यह शब्द कहाँसे आ रहा है ॥ ४० ॥ कानोंको कष्ट देनेवाला यह शब्द किसने उच्चरित किया है ? देवता या दानव जिसने भी ऐसा किया हो, उस दुष्टको पकड़कर मेरे पास ले आओ। मैं उस अभिमानी और व्यर्थ गर्जन करनेवाले दुराचारीको मार डालूँगा ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ उस मूर्खकी आयु समाप्त

रीश्वरः ॥ ३४ ॥ सृष्टिपालनसंहारे समर्था अपि ते यदा ॥ मुह्यंति क्लेशसंतप्ता महिषेण प्रपीडिताः ॥ ३५ ॥ इति कृत्वा स्मितं देवी साऽट्टहासं चकार ह ॥ उच्चैः शब्दं महाघोरं दानवानां भयप्रदम् ॥ ३६ ॥ चकंपे वसुधा तत्र श्रुत्वा तच्छब्दमद्भुतम् ॥ चेलुश्च पर्वताः सर्वे चुक्षोभाब्धिश्च वीर्यवान् ॥ ३७ ॥ मेरुश्चचाल शब्देन दिशः सर्वाः प्रपूरिताः ॥ भयं जग्मुस्तदा श्रुत्वा दानवास्तत्स्वनं महत् ॥३८॥ जय पाहीति देवास्तामूचुः परमहर्षिताः ॥ महिषोऽपि स्वनं श्रुत्वा चुकोप मदगर्वितः ॥ ३९ ॥ किमेतदिति तान्दैत्यान्पप्रच्छ स्वनशंकितः ॥ गच्छंतु त्वरिता दूता ज्ञातुं शब्दसमुद्भवम् ॥ ४० ॥ कृतः केनायमत्युग्रः शब्दः कर्णव्यथाकरः ॥ देवो वा दानवो वाऽपि यो भवेत्स्वनकारकः ॥ ४१ ॥ गृहीत्वा तं दुरात्मानं मत्समीपं नयंत्विह ॥ हनिष्यामि दुराचारं गर्जन्तं स्मयदुर्मदम् ॥ ४२ ॥ क्षीणायुष्यं मंदमतिं नयामि यमसादनम् ॥ पराजिताः सुराः कामं न गर्जन्ति भयातुराः ॥ ४३ ॥ नासुरा मम वश्यास्ते कस्येदं मूढचेष्टितम् ॥ त्वरिता मामुपायांतु ज्ञात्वा शब्दस्य कारणम् ॥ ४४ ॥ अहं गत्वा हनिष्यामि तं पापं वितथश्रमम् ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्तास्तेन ते दूता देवीं सर्वाङ्गसुन्दरीम् ॥ ४५ ॥ अष्टादशभुजां दिव्यां सर्वाभरणभूषिताम् ॥ सर्वलक्षणसंपन्नां वरायुधधरां शुभाम् ॥ ४६ ॥ दधतीं चषकं हस्ते पिबंतीं च मुहुर्मधु ॥ संवीक्ष्य भयभीतास्ते जग्मुस्त्रस्ताः सुशंकिताः ॥ ४७ ॥

हो गयी है। मैं उसको यमपुरी भेज दूँगा। देवता मुझसे पराजित होकर भयभीत हो गये हैं। सो उनमेंसे तो कोई गर्जन कर नहीं सकता ॥ ४३ ॥ कोई दैत्य भी ऐसा नहीं कर सकता। क्योंकि वे सब मेरे वशवर्ती हैं। तब आखिर यह किसकी मूर्खता है ? सो तुम लोग उस शब्दके कारणका पता लगाकर शीघ्र मेरे पास लौट आओ ॥ ४४ ॥ तब मैं स्वयं जाकर उस पापीको मार डालूँगा, जिसने व्यर्थकी यह विभीषिका खड़ी की है। व्यासजी बोले--महिषासुरका यह आदेश पाकर वे दूत शब्दके कारणका पता लगाते-लगाते उन सर्वाङ्गसुन्दरी देवीके पास जा पहुँचे ॥ ४५ ॥ उन्होंने देखा कि उनके अठारह भुजायें हैं, भुजाओंमें उच्चकोटिके शस्त्रास्त्र विद्यमान हैं, उनका दिव्य स्वरूप है, उनके अङ्गोंमें सब प्रकारके आभूषण सुशोभित हो रहे हैं, वे सभी शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न हैं ॥ ४६ ॥ उनके हाथमें मदिराका पानपात्र है और वे बारम्बार मदिरा पी रही हैं। उन्हें देखकर वे दूत भयभीत हो गये और सशंक होकर निकल भागे

है, वे सभी शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न हैं ॥ ४६ ॥ उनके हाथमें मदिराका पानपात्र है और वे बारम्बार मदिरा पी रही हैं। उन्हें देखकर वे दूत भयभीत हो गये और संशक होकर निकल भागे

॥ ४७ ॥ भागते हुए वे दूत महिषासुरके पास पहुँचे और उसे उस शब्दका कारण बताया। दूतोंने कहा—हे दैत्येश्वर ! वह कोई अपरिचित प्रौढ़ा स्त्री है और देखनेमें देवी जैसी लगती है ॥ ४८ ॥ उसके सब अङ्गोंमें आभूषण हैं और उन आभूषणोंमें सब प्रकारके रत्न जड़े हुए हैं। वह न मानवी स्त्री है और असुरवंशकी ही है। उसका रूप बड़ा दिव्य और मनोहर है ॥ ४९ ॥ वह विविध आयुधोंको धारण करके सिंहपर सवार है। उसके अठारह भुजायें हैं। ऐसा लगता है कि वह मदमाती स्त्री ही गर्जन करती है ॥५०॥ वह बराबर मधु पान कर रही है और ऐसा ज्ञात होता है कि अभी उसका विवाह नहीं हुआ है। आकाशमंडलमें विद्यमान देवता बहुत प्रसन्न होकर उसकी स्तुति कर रहे हैं ॥ ५१ ॥ हे स्वामिन् ! वे देवता बार-बार 'जय' और 'पाहि' शब्दका उच्चारण करते हुए कहते हैं कि 'हमारे शत्रुको मार डालो।' यह नहीं मालूम कि वह स्त्री कौन है और किसकी पत्नी है ? ॥५२॥ यह भी नहीं पता कि वह सुन्दरी किस लिए यहाँ आयी है और क्या करना चाहती है। हम उसे देखते ही उसके असाधारण तेजसे चकपका गये। अच्छी तरह उसकी ओर निहार भी नहीं सके ॥५३॥ उस अकेली

सकाशे महिषस्याशु तमूचुः स्वनकारणम् ॥ दूता ऊचुः ॥ देवी दैत्येश्वर प्रौढा दृश्यते काचिदंगना ॥ ४८ ॥ सर्वाङ्गभूषणा नारी सर्वरत्नोपशोभिता ॥ न मानुषी नासुरी सा दिव्यरूपा मनोहरा ॥ ४९ ॥ सिंहारूढाऽऽयुधधरा चाष्टादशकरा वरा ॥ सा नादं कुरुते नारी लक्ष्यते मदगर्विता ॥ ५० ॥ सुरापानरता कामं जानीमो न सभर्तृका ॥ अन्तरिक्षस्थिता देवास्तां स्तुवंति मुदान्विताः ॥ ५१ ॥ जयेति पाहि नश्चेति जहि शत्रुमिति प्रभो ॥ न जाने का वरारोहा कस्य वा सा परिग्रहः ॥५२॥ किमर्थमागता चात्र किं चिकीर्षति सुन्दरी ॥ द्रष्टुं नैव समर्थाः स्मस्तत्तेजःपरिधर्षिता ॥५३॥ शृंगारवीरहासाढ्या रौद्राद्भुतरसान्विता ॥ दृष्ट्वैवंविधां नारीमसंभाष्य समागताः ॥५४॥ वयं त्वदाज्ञया राजन्किं कर्तव्यमतः परम् ॥ महिष उवाच ॥ गच्छ वीर मयाऽऽदिष्टो मंत्रिश्रेष्ठ बलान्वितः ॥ ५५ ॥ सामादिभिरुपायैस्त्वं समानय शुभाननाम् ॥ नायाति यदि सा नारी त्रिभिः सामादिभिस्त्विह ॥५६॥ अहत्वा तां वरारोहां त्वमानय ममान्तिकम् ॥ करोमि पट्टमहिषीं तामरालभ्रुवं मुदा ॥५७॥ प्रीतियुक्ता समायाति यदि सा मृगलोचना ॥ रसभंगो यथा न स्यात्तथा कुरु ममेप्सितम् ॥ ५८ ॥ श्रवणा मोहितोऽस्म्यद्य तस्य रूपस्य संपदा ॥ व्यास उवाच ॥ महिषस्य वचः श्रुत्वा पेशलं

नारीमें शृंगार, वीर, हास्य, रौद्र और अद्भुत इन सभी रसोंका समावेश है। इस प्रकार उस ललनाको देख तथा बिना कुछ बात किये हमलोग लौट आये ॥५४॥ क्योंकि शीघ्र लौटनेके लिए आपका आदेश था। हे राजन् ! इसके बाद हमें क्या करना है ? महिषासुरने कहा—हे वीर ! हे मुख्य मन्त्री ! मेरे आदेशसे तुम सेना लेकर जाओ ॥५५॥ और साम-दानादि नीतियोंका उपयोग करके उस सुमुखीको यहाँ ले जाओ। यदि वह साम-दान-भेद इन तीनों उपायोंका उपयोग करनेपर भी न आये तो उसे बिना मारे बंदिनी बनाकर मेरे पास ले आओ। मैं उस तीखी भौहोंवाली सुन्दरीको प्रसन्नतापूर्वक अपनी पटरानी बना लूँगा ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ मेरी इच्छा है कि तुम कोई ऐसा उपाय करो कि जिससे वह मृगनयनी राजी-खुशी यहाँ चली आये और रसभंग न हो ॥५८॥ क्योंकि उसके रूपका बखान सुन करके ही मैं उसपर मोहित हो गया हूँ। व्यासजी बोले कि महिषासुरकी इन सरस बातोंको सुनकर प्रधान मन्त्री हाथी, घोड़े, रथ

साथ लेकर शीघ्र चल पड़ा। वहाँ पहुँचा तो कुछ दूर ही खड़ा होकर उस मनस्विनी नारीसे बोला ॥५९॥६०॥ उस मंत्रीने बड़ी नम्रताके साथ मीठी वाणीमें पूछा। प्रधानमन्त्री बोला--हे मधुरभाषिणी! तुम कौन हो? यहाँ क्यों आयी हो? ॥६१॥ हे महाभागे! यह बात मेरी जबानी मेरे स्वामीने पूछी है। वे सब देवताओंपर विजय प्राप्त कर चुके हैं ॥६२॥ हे सुनयनी! ब्रह्माजीसे वरदान प्राप्त किये रहनेके कारण उन्हें बहुत गर्व है। दैत्यराज महिष बड़े बलवान् हैं और जब जैसा चाहें, वैसा रूप धारण कर सकते हैं ॥ ६३ ॥ आप जैसी सुन्दर वेषवाली महिलाकी खबर पाकर मेरे प्रभु महाराज महिषासुर आपको देखना चाहते हैं ॥ ६४ ॥ यदि आप कहें तो वे स्वयं मनुष्यका रूप धारण करके आपके पास चले आयें। आपकी जैसी इच्छा हो, उसीके अनुसार काम करनेके लिए मैं तैयार हूँ ॥६५॥ हे बालमृग सरीखे निर्दोष नयनोंवाली सुन्दरी! तो आओ, उन बुद्धिमान् राजा महिषके पास चलें। यदि आप न चल सकें तो मैं

मंत्रिसत्तमः ॥ ५९ ॥ जगाम तरसा कामं गजाश्वरथसंयुतः ॥ गत्वा दूरतरं स्थित्वा तामुवाच मनस्विनीम् ॥ ६० ॥ विनयावनतः श्लक्ष्णं मंत्री मधुरया गिरा ॥ प्रधान उवाच ॥ काऽसि त्वं मधुरालापे किमत्रागमनं कृतम् ॥ ६१ ॥ पृच्छति त्वां महाभागे मन्मुखेन मम प्रभुः ॥ स जेता सर्वदेवानामवध्यस्तु नरैः किल ॥ ६२ ॥ ब्रह्मणो वरदानेन गर्वितश्चारुलोचने ॥ दैत्येश्वरोऽसौ बलवान्कामरूपधरः सदा ॥ ६३ ॥ श्रुत्वा त्वां समुपायातां चारुवेषां मनोहराम् ॥ प्रष्टुमिच्छति राजा मे महिषो नाम पार्थिवः ॥ ६४ ॥ मानुषं रूपमादाय त्वत्समीपं समेष्यति ॥ यथा रुच्येत चार्वङ्गि तथा मन्यामहे वयम् ॥ ६५ ॥ तदेहि मृगशावाक्षि समीपं तस्य धीमतः ॥ नो चेदिहानयाम्येनं राजानं भक्तितत्परम् ॥ ६६ ॥ तथा करोमि देवेशि यथा ते मनसेप्सितम् ॥ वशगोऽसौ तवात्यर्थं रूपसंश्रवणात्तव ॥ ६७ ॥ करभोरु वदाशु त्वं संविधेयं मया तथा ॥ ६८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे देवीमाहात्म्ये नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

॥ व्यास उवाच ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा प्रहस्य प्रमदोत्तमा ॥ तमुवाच महाराज मेघगंभीरया गिरा ॥ १ ॥ देव्युवाच ॥ मंत्रिवर्य सुराणां वै जननीं विद्धि मां किल ॥ महालक्ष्मीमिति ख्यातां सर्वदैत्यनिषूदिनीम् ॥२॥ प्रार्थिताऽहं सुरैः सर्वैर्महिषस्य वधाय च ॥ पीडितैर्दानवेन्द्रेण यज्ञभाग-

जाकर आपके भक्त महाराज महिषको ही यहाँ बुला ले आऊँ ॥६६॥ हे देवेशि! आपकी जैसी रुचि हो, मैं वही करूँगा। आपके रूपकी प्रशंसा सुनकर ही वे आपके वशीभूत हो गये हैं ॥६७॥ हे हाथीके बच्चेकी सूँड़ सदृश जाँघोंवाली सुंदरी! आप बताइए कि क्या चाहती हैं, जो कहेंगी वही करूँगा ॥ ६८ ॥ इति श्रीदे० भा० पञ्चमस्कन्धे भाषाटीकायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

(देवी और दैत्यके प्रधान मन्त्रीका संवाद) व्यासजी बोले--हे महाराज जनमेजय! दैत्यप्रधानमन्त्रीके वचन सुनकर सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी भगवती मेघके समान गंभीर वाणीमें बोली देवीने कहा--हे मन्त्रिवर्य! मैं देवताओंकी माता हूँ। मेरा नाम महालक्ष्मी है। मेरा काम दैत्योंका नाश करना है ॥ १ ॥ २ ॥ दानवराज महिषासुरके अत्याचारसे पीड़ित और यज्ञभागसे बहिष्कृत देवताओंने मुझसे महिषासुरका वध करनेकी प्रार्थना की है। हे प्रधानमन्त्री! इसी कारण मैं बिना कोई सेना साथ लिये अकेली ही उसका वध करनेके लिए

यज्ञभागसे बहिष्कृत देवताओंने मुझसे महिषासुरका वध करनेकी प्रार्थना की है। हे प्रधानमन्त्री! इसी कारण मैं बिना कोई सेना साथ लिये अकेली ही उसका वध करनेके लिए

यहाँ आयी हूँ ॥ ३ ॥ ४ ॥ हे पूतात्मन्! तुमने जो शान्तिपूर्वक मीठी वाणीमें मेरा सादर स्वागत किया है, उससे मैं तुमपर प्रसन्न हूँ ॥ ५ ॥ यदि तुम अकड़कर बात करते तो मैं अपनी कालाग्निसदृश भीषण आँखोंसे निहारकर ही तुम्हें भस्म कर देती। ठीक ही है, मीठे वचन किसको प्रिय नहीं लगते ॥ ६ ॥ अब तुम जाओ और मेरी जबानी उस पापी महिषासुरसे कह दो कि यदि जीवित रहनेकी इच्छा हो तो तुम अभी पाताललोकमें चले जाओ ॥ ७ ॥ नहीं तो मैं तुझ महान् अपराधीको रणभूमिमें मारूँगी। मेरे बाणोंके आघातसे तेरा शरीर छिन्न-भिन्न हो जायगा और तू सीधे यमराजपुर जा पहुँचेगा ॥ ८ ॥ यह मेरी दया है कि मैं तुझसे ऐसा कह रही हूँ। सो तू शीघ्र यहाँसे चला जा। नहीं तो तू मारा जायगा और स्वर्गका राज्य शीघ्र देवताओंका वापस मिल जायगा ॥ ९ ॥ ओ मूर्ख! मेरे बाण तुझपर नहीं छूटते, उसके पहले ही तू तत्काल ससागरा पृथिवीको त्यागकर अकेला ही पाताल चला जा ॥ १० ॥ अरे

बहिष्कृतैः ॥ ३ ॥ तस्मादिहागताऽस्म्यद्य तद्वधार्थं कृतोद्यमा ॥ एकाकिनी न सैन्येन संयुता मंत्रिसत्तम ॥ ४ ॥ यत्त्वयाऽहं सामपूर्वं कृत्वा स्वागतमादरात् ॥ उक्ता मधुरया वाचा तेन तुष्टाऽस्मि तेऽनघ ॥५॥ नोचेद्धन्मि दृशा त्वां वै कालाग्निसमया किल ॥ कस्य प्रीतिकरं न स्यान्माधुर्यवचनं खलु ॥ ६ ॥ गच्छ तं महिषं पापं वद मद्वचनादिदम् ॥ गच्छ पातालमधुना जीवितेच्छा यदस्ति ते ॥ ७ ॥ नोचेत्कृतागसं दुष्टं हनिष्यामि रणांगणे ॥ मद्बाणच्छुण्णदेहस्त्वं गंतासि यमसादनम् ॥ ८ ॥ दयालुत्वं ममेदं त्वं विदित्वा गच्छ सत्वरम् ॥ हते त्वयि सुरा मूढ स्वर्गं प्राप्स्यंति सत्वरम् ॥ ९ ॥ तस्माद्गच्छस्व त्यक्त्वैको मेदिनीं च ससागराम् ॥ पातालं तरसा मंद यावद्बाणा न मेऽपतन् ॥१०॥ युद्धेच्छा चेन्मनसि ते तर्ह्येहि त्वरितोऽसुर ॥ वीरैर्महाबलैः सर्वैर्नयामि यमसादनम् ॥ ११ ॥ युगे युगे महामूढ हतास्त्वत्सदृशाः किल ॥ असंख्यातास्तथा त्वां वै हनिष्यामि रणांगणे ॥१२॥ साफल्यं कुरु शस्त्राणां धारणे तु श्रमोऽन्यथा ॥ तद्युद्ध्यस्व मया सार्धं समरे स्मरपीडितः ॥१३॥ मा गर्वं कुरु दुष्टात्मन् यन्मेऽस्ति ब्रह्मणो वरः ॥ स्त्रीवध्यत्वे त्वया मूढ पीडिताः सुरसत्तमाः ॥ १४ ॥ कर्तव्यं वचनं धातुस्तेनाहं त्वामुपागता ॥ स्त्रीरूपमतुलं कृत्वा सत्यं हंतुं कृतागसम् ॥१५॥ यथेच्छं गच्छ वा मूढ पातालं पन्नगावृतम् ॥ हित्वा भूसुरसङ्घाद्य जीवितेच्छा यदस्ति ते ॥ १६ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्तः स ततो देव्या मंत्रिश्रेष्ठो बलान्वितः ॥ प्रत्युवाच निशम्यासौ वचनं हेतुगर्भितम् ॥ १७ ॥ देवि स्त्रीसदृशं वाक्यं ब्रूषे त्वं मदगर्विता ॥ क्वासौ

असुर! यदि युद्धकी ही इच्छा हो तो अपने महाबली वीरोंको साथ लेकर शीघ्र आ जा। मैं सबको यमपुर भेज दूँगी ॥११॥ अरे ओ महामूर्ख! युग-युगमें मैंने तुझ जैसे असंख्य दैत्योंका वध किया है। उसी तरह तुझे भी समरभूमिमें मार डालूँगी ॥१२॥ मेरा सामना करके तू मेरे शस्त्र धारण करनेके परिश्रमको सफल कर। नहीं तो यह श्रम व्यर्थ हो जायगा। यदि तू कामपीड़ित है तो आ, रणभूमिमें मेरे साथ युद्ध कर ॥ १३ ॥ अरे दुष्ट! तू यह सोचकर गर्व न कर कि मुझे ब्रह्माका वरदान प्राप्त है। ओ मूढ़! स्त्रीके द्वारा वध्य होनेके कारण तूने देवताओंको बहुत सताया है ॥१४॥ ब्रह्माजीका वचन पूर्ण करनेके लिए ही यह अनुपम स्त्रीका रूप धारण करके मैं तुझ अपराधीका वध करने आयी हूँ ॥१५॥ अतएव यदि जीवित रहनेकी इच्छा हो तो अभी स्वर्ग त्यागकर सर्पोंसे भरे पाताललोकको चला जा ॥ १६ ॥ व्यासजी बोले—देवीके वाक्य सुनकर अपनी सेनाके साथ उपस्थित महिषके मंत्रीने यह सहेतुक वचन

कहा—॥१७॥ हे देवि ! आप मदसे चूर होकर एक अल्हड़ स्त्रीके समान बात कर रही हैं। कहाँ आप और कहाँ महिषासुर ! मुझे तो यह युद्ध असम्भव ही दीखता है ॥ १८ ॥ आप अकेली कोमल बाला हैं और अभी जवानी आ रही है। इसके विपरीत महिषासुर भीमकाय दैत्य हैं। तब उनकी और आपकी तुलना कैसे हो सकती है ? ॥१९॥ उनके पास हाथी, घोड़े, रथ और विविध आयुधधारी पैदल सैनिकोंकी अपार सेना है ॥२०॥ जैसे किसी गजराजको मालतीका फूल मसल देनेमें कुछ परिश्रम नहीं करना पड़ता। उसी प्रकार हे सुजघने ! आपको मारनेमें वीर महिषको कुछ भी आयास न करना पड़ेगा ॥ २१ ॥ यदि आपको कुछ भी कठोर वचन कह दूँ तो वह शृंगाररसके प्रतिकूल होगा और मैं रसभङ्गसे डरता हूँ ॥ २२ ॥ हमारे महाराज महिषासुर देवताओंके वैरी हैं। फिर भी आप देवीपर वे मोहित हो गये हैं। इस लिए मुझे आपसे साम और दामनीतिपूर्ण बातें ही कहनी हैं ॥ २३ ॥ यदि ऐसा न होता तो व्यर्थ डींग मारनेवाली, मिथ्या अभिमानमें भरी, रूप तथा यौवनके भारसे गर्विता तुम जैसी नारीको मैं अभी अपने बाणसे समाप्त कर चुका होता ॥ २४ ॥ तुम्हारे अलौकिक रूपकी

क्व त्वं कथं युद्धमसंभाव्यमिदं किल ॥ १८ ॥ एकाकिनी पुनर्बाला प्रारब्धयौवना मृदुः ॥ महिषोऽसौ महाकायो दुर्विभाव्यं हि संगतम् ॥ १९ ॥ सैन्यं बहुविधं तस्य हस्त्यश्वरथसंकुलम् ॥ पदातिगणसंविद्धं नानायुधविराजितम् ॥ २० ॥ कः श्रमः करिराजस्य मालतीपुष्पमर्दने ॥ मारणे तव वामोरु महिषस्य तथा रणे ॥ २१ ॥ यदि त्वां परुषं वाक्यं ब्रवीमि स्वल्पमप्यहम् ॥ शृंगारे तद्विरुद्धं हि रसभङ्गाद्बिभेम्यहम् ॥ २२ ॥ राजाऽस्माकं सुररिपुर्वर्तते त्वयि भक्तिमान् ॥ साममेव मया वाच्यं दानयुक्तं तथा वचः ॥ २३ ॥ नोचेद्धन्म्यहमद्यैव बाणेन त्वां मृषावदाम् ॥ मिथ्याऽभिमानचतुरां रूपयौवनगर्विताम् ॥ २४ ॥ स्वामी मे मोहितः श्रुत्वा रूपं ते भुवनातिगम् ॥ तत्प्रियार्थं प्रियं कामं वक्तव्यं त्वयि यन्मया ॥ २५ ॥ राज्यं तव धनं सर्वं दासस्ते महिषः किल ॥ कुरु भावं विशालाक्षि त्यक्त्वा रोषं मृतिप्रदम् ॥२६॥ पतामि पादयोस्तेऽहं भक्तिभावेन भामिनि ॥ पट्टराज्ञी महाराज्ञो भव शीघ्रं शुचिस्मिते ॥ २७ ॥ त्रैलोक्यविभवं सर्वं प्राप्स्यसि त्वमनाविलम् ॥ सुखं संसारजं सर्वं महिषस्य परिग्रहात् ॥२८॥ देव्युवाच ॥ शृणु साचिव वक्ष्यामि वाक्यानां सारमुत्तमम् ॥ शास्त्रदृष्टेन मार्गेण चातुर्यमनुचिंत्य च ॥ २९ ॥ महिषस्य प्रधानस्त्वं मया ज्ञातं धिया किल ॥ पशुबुद्धिस्वभावोऽसि वचनात्तव सांप्रतम् ॥ ३० ॥ मंत्रिणस्त्वादृशा यस्य स कथं बुद्धिमान्भवेत् ॥ उभयोः सदृशो योगः कृतोऽयं विधिना

प्रशंसा सुनकर मेरे महाराज महिष तुमपर आसक्त हो गये हैं। उनको प्रसन्न रखनेके लिए ही मैं मीठी-मीठी बातें कर रहा हूँ ॥२५॥ जब महाराज महिष स्वयं आपके दास हो चुके हैं, तब उनका समस्त राज्य और धन आपका ही है। अतएव हे विशालनयनी ! आप मृत्युदायक रोष त्यागकर उनके प्रति प्रेमभाव प्रदर्शित करिए ॥ २६ ॥ हे भामिनी ! मैं भक्तिभावसे आपके पैरों पड़ता हूँ। हे सुन्दर मुसकानवाली सुन्दरी ! आप महाराज महिषकी पटरानी बन जायँ ॥२७॥ क्योंकि उनके पाणिग्रहण करते ही तीनों लोककी सम्पदा तथा संसार भरका सुख आपको अनायास प्राप्त हो जायगा ॥ २८ ॥ देवी बोलीं—हे मंत्री ! सुनो, अब मैं शास्त्रप्रतिपादित मार्गसे तुम्हारी चातुर्यपूर्ण बातोंका सारांशरूपमें उत्तर दे रही हूँ ॥ २९ ॥ तुम्हारी बातें सुनकर ही मैंने समझ लिया कि तुम महिषासुरके प्रधानमंत्री होनेके कारण पशु स्वभावके पुरुष हो ॥ ३० ॥ जिसके पास तुम्हारे जैसे मंत्री हों, वह राजा बुद्धिमान् कैसे हो सकता है ?

सुनकर ही मैंने समझ लिया कि तुम महिषासुरके प्रधानमन्त्री होनेके कारण पशु स्वभावके पुरुष हो ॥ ३० ॥ जिसके पास तुम्हारे जैसे मन्त्री हों, वह राजा बुद्धिमान् कैसे हो सकता है ?

विधाताने तुम दोनों मूर्खोंकी अच्छी जोड़ी मिलायी है ॥ ३१ ॥ हे मूढ़ ! जो तुमने कहा कि 'तुम स्त्रीस्वभाव हो' । इस बातपर तनिक विचार तो करो कि क्या मैं पुरुष नहीं हूँ ? वस्तुतः मैं स्त्रीवेषमें पुरुष ही हूँ ॥ ३२ ॥ तुम्हारे महाराज महिषने पूर्वकालमें जो स्त्रीके हाथों मरनेका वरदान माँगा था । उसीसे मैंने समझ लिया कि वह महामूर्ख है और वीरतासे बहुत दूर रहता है ॥ ३३ ॥ स्त्रीके हाथों मरनेसे नपुंसक सुख मानता है, किन्तु वीर पुरुषको इससे महान् दुःख होता है । महिष अर्थात् भैंसेकी जैसी बुद्धि हो सकती है, उसीके अनुसार उसने ऐसा बेढंगा वरदान माँगा था ॥ ३४ ॥ इसी कारण मैं स्त्रीका वेष धारण करके अपना काम पूरा करनेके लिए यहाँ आयी हूँ । तुम्हारे धर्मशास्त्रविरोधी वचनोंसे मैं डरनेवाली नहीं हूँ ॥ ३५ ॥ जब भाग्य विपरीत होता है, तब एक तृण भी वज्र बन जाता है । जब वह अनुकूल होता है, तब वज्र भी रुई सरीखा कोमल हो जाता है ॥ ३६ ॥ जिसकी मृत्यु समीप आ गयी हो, उसके लिए सेना तथा किलेबन्दी बेकार है । उसका सैनिक जमावड़ा किस काम आयेगा ? ॥ ३७ ॥ जन्मके समय जब जीव और देहका सम्बन्ध होता है, उसी समय सुख, दुःख तथा

किल ॥ ३१ ॥ यदुक्तं स्त्रीस्वभावाऽसि तद्विचारय मूढ किम् ॥ पुमान्नाहं तत्स्वभावाऽभवं स्त्रीवेषधारिणी ॥ ३२ ॥ याचितं मरणं पूर्वं स्त्रिया त्वत्प्रभुणा यथा ॥ तस्मान्मन्येऽतिमूर्खोऽसौ न वीररसवित्तमः ॥ ३३ ॥ कामिन्या मरणं क्लीबरतिदं शूरदुःखदम् ॥ प्रार्थितं प्रभुणा तेन महिषेणात्मबुद्धिना ॥ ३४ ॥ तस्मात्स्त्रीरूपमाधाय कार्यं कर्तुमुपागता ॥ कथं बिभेमि त्वद्वाक्यैर्धर्मशास्त्रविरोधकैः ॥ ३५ ॥ विपरीतं यदा दैवं तृणं वज्रसमं भवेत् ॥ विधिश्चेत्सुमुखः कामं कुलिशं तूलवत्तदा ॥ ३६ ॥ किं सैन्यैरायुधैः किं वा प्रपञ्चैर्दुर्गसेवनैः ॥ मरणं सांप्रतं यस्य तस्य सैन्यैस्तु किं फलम् ॥ ३७ ॥ यदाऽयं देहसंबंधो जीवस्य कालयोगतः ॥ तदैव लिखितं सर्वं सुखं दुःखं तथा मृतिः ॥३८॥ यस्य येन प्रकारेण मरणं दैवनिर्मितम् ॥ तस्य तेनैव जायेत नान्यथेति विनिश्चयः ॥ ३९ ॥ ब्रह्मादीनां यथा काले नाशोत्पत्ती विनिर्मिते ॥ तथैव भवतः कामं किमन्येषां विचार्यते ॥ ४० ॥ ये मृत्युधर्मिणस्तेषां वरदानेन दर्पिताः ॥ मरिष्यामो न मन्यंते ते मूढा मंदचेतसः ॥ ४१ ॥ तस्माद्गच्छ नृपं ब्रूहि वचनं मम सत्वरम् ॥ यदाज्ञापयते भूपस्तत्कर्तव्यं त्वया किल ॥ ४२ ॥ मघवा स्वर्गमाप्नोतु देवाः संतु हविर्भुजः ॥ यूयं प्रयात पातालं यदि जीवितुमिच्छथ ॥ ४३ ॥ अन्यथा चेन्मतिर्मंद महिषस्य दुरात्मनः ॥ तद्युध्यस्व मया सार्धं मरणाय कृतादरः ॥ ४४ ॥ मन्यसे संगरे भग्ना देवा विष्णु-

मृत्युको विधाता निश्चित कर देते हैं ॥ ३८ ॥ दैवने जिसकी जिस तरह मृत्यु निश्चित कर दी है, उसकी मृत्यु उसी प्रकार होगी । उसमें उलट-फेर नहीं हो सकता ॥ ३९ ॥ औरोंकी बात ही क्या है, ब्रह्मादिक देवताओंका भी जिस प्रकार जन्म-मरण निश्चित रहता है, समय आनेपर वैसा ही जन्म-मरण होता है ॥४०॥ जो उन मरणधर्मा ब्रह्मादिक देवताओंके वरदानसे अपनेको अमर समझकर घमण्ड करते हैं, वे मूर्ख हैं और उनकी बुद्धि मारी गयी है ॥४१॥ अतएव अब तुम लौट जाओ और अपने महाराजको मेरा अभिप्राय बता दो। उसके बाद वह जो आज्ञा दे, उसका पालन करो ॥ ४२ ॥ मेरा मन्तव्य है कि इन्द्रको स्वर्गका राज्य और देवताओंको यज्ञका भाग मिले । अतएव यदि तुम लोग जीवित रहना चाहते होओ तो अभी पाताललोकको चले जाओ ॥ ४३ ॥ हे मूर्ख ! यदि दुष्ट महिषासुरका विचार इसके विपरीत हो तो मरनेके लिए तैयार होकर मेरे साथ युद्ध करने आये ॥ ४४ ॥ यदि वह सोचता हो कि मैं विष्णु

आदि देवताओंको युद्धमें हरा चुका हूँ तो तबकी बात दूसरी थी। उस पराजयके दो कारण थे–एक तो विपरीत भाग्य, दूसरे ब्रह्माजीका वरदान ॥४५॥ व्यासजी बोले कि देवीकी बातें सुनकर मंत्री यह सोचने लगा कि अब मैं देवीके साथ युद्ध करूँ या जाकर राजा महिषको सब हाल कह सुनाऊँ? ॥४६॥ क्योंकि कामातुर होकर महाराजने यह आज्ञा दी थी कि जैसे भी हो, उसे विवाहमें लिए राजी करना। सो उस बातको नीरस करके मैं उनके पास लौटकर कैसे जाऊँ? ॥ ४७ ॥ किन्तु मुझे तो यही ठीक जँचता है कि बिना झगड़ा बढ़ाये मैं महाराजके पास लौट जाऊँ और उन्हें सब बातें बता दूँ ॥ ४८ ॥ उसके पश्चात् बुद्धिमान् राजा महिष अपने मंत्रियोंसे मंत्रणा करके जो उचित समझें, सो करें ॥ ४९ ॥ सहसा इस स्त्रीके साथ लड़ना उचित नहीं है। क्योंकि जय और पराजय दोनोंसे महाराजको दुःख होगा ॥ ५० ॥ यदि यह सुन्दरी मुझे मार डाले या मैं ही किसी उपायसे इसका वध कर दूँ तो राजा महिष कुपित

पुरोगमाः ॥ दैवं हि कारणं तत्र वरदानं प्रजापतेः ॥ ४५ ॥ व्यास उवाच ॥ इति देव्या वचः श्रुत्वा चिंतयामास दानवः ॥ किं कर्तव्यं मया युद्धं गंतव्यं वा नृपं प्रति ॥ ४६ ॥ विवाहार्थमिहाज्ञप्तो राज्ञा कामातुरेण वै ॥ तत्कथं विरसं कृत्वा गच्छेयं नृपसन्निधौ ॥ ४७ ॥ इयं बुद्धिः समीचीना यद्व्रजामि कलिं विना ॥ यथाऽऽगतं तथा शीघ्रं राज्ञे संवेदयाम्यहम् ॥ ४८ ॥ स प्रमाणं पुनः कार्ये राजा मतिमतां वरः ॥ करिष्यति विचार्यैव सचिवैर्निपुणैः सह ॥ ४९ ॥ सहसा न मया युद्धं कर्तव्यमनया सह ॥ जये पराजये वापि भूपतेरप्रियं भवेत् ॥ ५० ॥ यदि मां सुंदरी हन्यादहं वा हन्मि तां पुनः ॥ येन केनाप्युपायेन स कुप्येत्पार्थिवः किल ॥ ५१ ॥ तस्मात्तत्रैव गत्वाऽहं बोधयिष्यामि तं नृपम् ॥ यथाद्याभिहितं देव्या यथारुचि करोतु सः ॥ ५२ ॥ व्यास उवाच ॥ इति संचिंत्य मेधावी जगाम नृपसन्निधौ ॥ प्रणम्य तमुवाचेदं कृतांजलिरमात्यजः ॥ ५३ ॥ मंत्र्युवाच ॥ राजन्देवी वरारोहा सिंहस्योपरि संस्थिता ॥ अष्टादशभुजा रम्या वरायुधधरा परा ॥ ५४ ॥ सा मयोक्ता महाराज महिषं भज भामिनि ॥ महिषी भव राज्ञस्त्वं त्रैलोक्याधिपतेः प्रिया ॥ ५५ ॥ पट्टराज्ञी त्वमेवास्य भविता नात्र संशयः ॥ स तवाज्ञाकरो जातो वशवर्ती भविष्यति ॥ ५६ ॥ त्रैलोक्यविभवं भुक्त्वा चिरकालं वरानने ॥ महिषं पतिमासाद्य योषितां सुभगा भव ॥ ५७ ॥ इति मद्वचनं श्रुत्वा सा स्मया-

होंगे ॥ ५१ ॥ अतएव मैं वहाँ जाकर इस सुन्दरीकी कही हुई बातें बता दूँ। उसके बाद उनकी जैसी रुचि हो, वैसा करें ॥ ५२ ॥ व्यासजी बोले—ऐसा विचार करके मुख्यमन्त्री राजा महिषके पास लौट गया। उसको प्रणाम करनेके बाद हाथ जोड़कर उसने कहा ॥ ५३ ॥ मन्त्री बोला—हे राजन्! वह सुन्दरी देवी सदा सिंहपर सवार रहती है। उस परम रम्य नारीकी अठारह भुजाओंमें उच्चकोटिके शस्त्रास्त्र विद्यमान रहते हैं ॥ ५४ ॥ हे महाराज! मैंने उस नारीसे कहा--हे भामिनी! तुम महाराज महिषसे प्रेम करो। ऐसा करके तुम उन त्रिलोकीके राजाकी प्रिय पटरानी बन जाओगी। क्योंकि तुम्हीं उनकी पटरानी बनने योग्य हो। इसमें कुछ सन्देह नहीं है। महाराज महिष आज्ञाकारी दास बनकर सदा तुम्हारे अधीन रहेंगे ॥५५॥५६॥ हे सुमुखी! राजा महिषको पतिरूपमें पाकर तीनों लोककी सम्पदाका उपभोग करती हुई तुम समस्त स्त्रीजातिमें भाग्यवती समझी जाओगी ॥ ५७ ॥ मेरी बातें सुनकर

वह विशालनयनी सुन्दरी आवेशमें आकर मन्द-मन्द मुसकाती हुई बोली–॥ ५८ ॥ महिषके गर्भसे जायमान उस अधम पशु महिष (भैंसे) को देवताओंके कल्याणार्थ बलिदान करके मैं देवीको अर्पण कर दूँगी ॥ ५९ ॥ संसारमें ऐसी कौन मूर्ख स्त्री होगी, जो महिषको अपना पति बनाना चाहेगी ? तब हे मन्दबुद्धे ! मेरी जैसी स्त्री उस पशुकी प्रेमपात्री कैसे बन सकती है? ॥६०॥ सींगवाली और डकराती हुई भैंस ही उस शृंगधारी भैंसेकी स्त्री बन सकती है। मैं उसके योग्य शठ स्त्री नहीं हूँ ॥६१॥ मैं तो देवताओंके शत्रु महिषासुरको रणभूमिमें युद्ध करके मारूँगी। अरे दुष्ट ! यदि जीवित रहनेकी इच्छा हो तो अभी स्वर्ग त्यागकर पाताललोकको चला जा ॥ ६२ ॥ हे राजन् ! उस मदमत्त रमणीने ऐसी-ऐसी बहुतेरी कठोर बातें कहीं। उन्हें सुनकर बारम्बार विचार करनेके बाद मैं आपके पास चला आया ॥ ६३ ॥ आपका रस न भङ्ग हो जाय, यही सोचकर मैंने उसके साथ युद्ध नहीं किया। और फिर आपकी आज्ञाके

वेशमोहिता ॥ मामुवाच विशालाक्षी स्मितपूर्वमिदं वचः ॥ ५८ ॥ महिषीगर्भसंभूतं पशूनामधमं किल ॥ बलिं दास्याम्यहं देव्यै सुराणां हितकाम्यया ॥ ५९ ॥ का मूढा कामिनी लोके महिषं वै पतिं भजेत् ॥ मादृशी मंदबुद्धे किं पशुभावं भजेदिह ॥ ६० ॥ महिषी महिषं नाथं सशृंगा शृंगसंयुतम् ॥ कुरुते क्रंदमाना वै नाहं तत्सदृशी शठा ॥ ६१ ॥ करिष्येऽरं मृधे युद्धं हनिष्ये त्वां सुराप्रियम् ॥ गच्छ वा दुष्ट पातालं जीवितेच्छा यदस्ति ते ॥ ६२ ॥ परुषं तु तया वाक्यमित्युक्तं नृप मत्तया ॥ तच्छ्रुत्वाऽहं समायातः प्रविचिंत्य पुनः पुनः ॥ ६३ ॥ रसभंगं विचिंत्यैव न युद्धं तु मया कृतम् ॥ आज्ञां विना तवात्यंतं कथं कुर्यां वृथोद्यमम् ॥६४॥ साऽतीव च बलोन्मत्ता वर्तते भूप भामिनी ॥ भवितव्यं न जानामि किं वा भावि भविष्यति ॥ ६५ ॥ कार्येऽस्मिंस्त्वं प्रमाणं नो मंत्रोऽतीव दुरासदः ॥ युद्धं पलायनं श्रेयो न जानेऽहं विनिश्चयम् ॥ ६६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

॥ व्यास उवाच॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा महिषो मदविह्वलः ॥ मंत्रिवृद्धान् समाहूय राजा वचनमब्रवीत्॥ १ ॥ राजोवाच॥ मंत्रिणः किं च कर्तव्यं विश्रब्धं ब्रूत मा चिरम्॥ आगता देवविहिता मायेयं शाम्बरीव किम् ॥२॥ कार्येऽस्मिन्निपुणा यूयमुपायेषु विचक्षणाः॥ सामादिषु च कर्तव्यः कोऽत्र

बिना मैं व्यर्थकी लड़ाई कर ही कैसे सकता था ? ॥ ६४ ॥ हे राजन् ! उस रमणीको अपने पराक्रमपर बहुत अभिमान है। मैं भविष्यकी बात नहीं जानता कि क्या होनेवाला है ॥६५॥ इस विषयमें आप जो निर्णय कर दें, वह मुझे मान्य होगा। मैं नहीं समझ पाता कि इस प्रसंगमें युद्ध करना चाहिए या स्वर्ग त्यागकर पलायन कर जाना चाहिए। इन दोनों बातोंमें क्या करना श्रेयस्कर होगा, इस विषयमें कुछ परामर्श देना भी मेरे लिए दुरूह है ॥ ६६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते पंचमस्कन्धे 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

(दैत्योंकी मंत्रणा और युद्धके लिए ताम्रका प्रस्थान) व्यासजी बोले—हे महाराज ! मुख्य मन्त्रीके वचन सुनकर मदमत्त महिषने अपने बड़े-बूढ़े मन्त्रियोंको बुलाकर कहा ॥ १ ॥ राजा महिष बोला—हे मन्त्रिगण ! आप लोग शीघ्र यह निर्णय करें कि अब हमें क्या करना चाहिए। शाम्बरी मायाके समान विकराल उस स्त्रीको भेजकर देवताओंने कोई माया तो नहीं

फैलायी है ? ॥ २ ॥ आपलोग मंत्रणाके कार्यमें पूर्ण निपुण हैं । अतएव अब बताइए कि इस अवसरपर साम-दान आदि नीतियोंमेंसे किस नीतिका उपयोग किया जाय ? ॥३॥ मंत्रियोंने कहा—हे नृपसत्तम ! सदा सत्य और प्रिय बात ही कहनी चाहिए । विद्वान्‌का यह कर्तव्य है कि जिससे आत्मकल्याण होता हो, उसी बातको स्वीकार करे ॥ ४ ॥ हे राजन् ! सत्य वचन हितकारी होता है और प्रिय वचनसे हानि होती है । जैसे औषधि अप्रिय होती हुई भी रोगनाश करती है ॥ ५ ॥ हे पृथिवीपते ! सत्य वचन सुनने और माननेवाले प्राणी दुर्लभ होते हैं । क्योंकि मीठी बातें कहनेवालोंकी ही संख्या अधिक होती है ॥ ६ ॥ हे राजन् ! इस गहन विषयमें हमलोग कह ही क्या सकते हैं ? फिर समस्त त्रिलोकीमें ऐसा कौन प्राणी है, जो भविष्यमें होनेवाले शुभ या अशुभ परिणामको पहलेसे बता सके ॥ ७ ॥ राजा महिषने कहा—आप लोग अलग-अलग अपना-अपना विचार बतलायें । उन्हें सुनकर मैं स्वयं विचार करूँगा ॥ ८ ॥ क्योंकि कार्य-कालमें विद्वान्‌का यह कर्तव्य होता है कि बहुतेरे विद्वानोंके मन्तव्य सुन तथा उनपर पुनः पुनः विचार करके जिसमें अपना कल्याण देखे, वैसा कार्य करे ॥ ९ ॥ व्यासजी

मह्यं ब्रुवंतु च ॥ ३ ॥ मन्त्रिण ऊचुः ॥ सत्यं सदैव वक्तव्यं प्रियं च नृपसत्तम ॥ कार्यं हितकरं नूनं विचार्य विबुधैः किल ॥ ४ ॥ सत्यं च हितकृद्राजन्प्रियं चाहितकृद्भवेत् ॥ यथौषधं नृणां लोके ह्यप्रियं रोगनाशनम् ॥ ५ ॥ सत्यस्य श्रोता मंता च दुर्लभः पृथिवीपते ॥ वक्ताऽपि दुर्लभः कामं बहवश्चाटुभाषकाः ॥ ६ ॥ कथं ब्रूमोऽत्र नृपते विचारे गहने त्विह ॥ शुभं वाऽप्यशुभं वाऽपि को वेत्ति भुवनत्रये ॥ ७ ॥ राजोवाच ॥ स्वस्वमत्यनुसारेण ब्रुवंत्वद्य पृथक्पृथक् ॥ येषां हि यादृशो भावस्तच्छ्रुत्वा चिंतयाम्यहम् ॥ ८ ॥ बहूनां मतमाज्ञाय विचार्य च पुनः पुनः ॥ यच्छ्रेयस्तद्धि कर्तव्यं कार्यं कार्यविचक्षणैः ॥९॥ व्यास उवाच ॥ तस्यैवं वचनं श्रुत्वा विरूपाक्षो महाबलः ॥ उवाच तरसा वाक्यं रंजयन्पृथिवीपतिम् ॥१०॥ राजन्नारी बराकीयं सा ब्रूते मदगर्विता ॥ विभीषिकामात्रमिदं ज्ञातव्यं वचनं त्वया ॥११॥ को बिभेति स्त्रियो वाक्यैर्दुरुक्तै रणदुर्मदैः ॥ अनृतं साहसं चेति जानन्नारीविचेष्टितम् ॥१२॥ जित्वा त्रिभुवनं राजन्नद्य कांताभयेन वै ॥ दीनत्वेऽप्ययशो नूनं वीरस्य भुवने भवेत् ॥ १३ ॥ तस्माद्याम्यहमेकाकी युद्धाय चंडिकां प्रति ॥ हनिष्ये तां महाराज निर्भयो भव सांप्रतम् ॥ १४ ॥ सेनावृतोऽहं गत्वा तां शस्त्रास्त्रैर्विविधैः किल ॥ निषूदयामि दुर्मर्षां चंडिकां चंडविक्रमाम् ॥ १५ ॥ बद्ध्वा सर्पमयैः पाशैरानयिष्ये तवांतिकम् ॥ वशगा तु सदा ते स्यात्पश्य राजन्बलं मम ॥१६॥ व्यास उवाच ॥

बोले कि महिषकी बात सुनकर महाबली विरूपाक्षने महाराजको प्रसन्न करते हुए कहा ॥१०॥ विरूपाक्ष बोला—हे राजन् ! वह बेचारी नारी मदमत्त होकर जो ऐसी बढ़ी-चढ़ी बातें कहती है, वह केवल धमकी है ॥११॥ झुठाई और साहस ये दुर्गुण स्त्रियोंमें सदा पाये जाते हैं । इस बातको जानता हुआ भी कौन प्राणी उनकी युद्धसम्बन्धी तुच्छ धमकियोंसे डरेगा ? ॥ १२ ॥ हे राजन् ! तीनों लोकोंपर विजय प्राप्त करके अब आप उस स्त्रीसे मत डरिए । यदि उसकी अधीनता स्वीकार करिएगा तो संसारमें आपका बड़ा अपयश होगा ॥१३॥ अतएव हे महाराज ! मैं अकेला उस चण्डिकासे युद्ध करने जा रहा हूँ । अब आप निर्भय रहें, मैं उसे मारकर ही लौटूँगा ॥ १४ ॥ अपनी सेनाके साथ विविध शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित होकर मैं जाऊँगा और उस प्रचण्ड पराक्रमसम्पन्न स्त्रीको सदाके लिए समाप्त कर दूँगा ॥१५॥ अथवा नागपाशमें बाँधकर जीवित दशामें ही उसे आपके पास ले जाऊँगा । जिससे वह सर्वदाके लिए आपके वशमें हो जायगी ।

पराक्रमसम्पन्न स्त्रीको सदाके लिए समाप्त कर दूँगी ॥१६॥ अथवा नागपाशमें बाँधकर जीवित दशामें ही उसे आपके पास ले आऊँगी। जिससे वह सदाके लिए आपके वशमें हो जायगी।

हे राजन् ! आप मेरा पराक्रम तो देखिए ॥१६॥ व्यासजी बोले कि विरूपाक्षके वचन सुनकर दुर्धर दैत्यने कहा—हे महाराज ! बुद्धिमान् विरूपाक्षने ठीक ही कहा है ॥१७॥ आप स्वयं बुद्धिमान् हैं। अब मैं भी कुछ सुन्दर बातें कह रहा हूँ, सुनिए। अनुमानसे ऐसा ज्ञात होता है कि वह सुन्दर दाँतोंवाली सुन्दरी कामातुरा है ॥१८॥ प्रायः देखा जाता है कि ऐसी रूपगर्विता नायिकायें धमकाकर अपने चहीतेको वशमें करनेका उद्योग करती हैं। वैसे ही वह आपको अपने वशमें करना चाहती है ॥१९॥ शृंगाररसके अभिज्ञ लोग ऐसी मानिनी स्त्रियोंके हाव-भावको भली भाँति जानते हैं। अपनेपर आसक्त पुरुषके प्रति सुन्दरियाँ ऐसी उल्टी-सीधी बातें करती ही हैं ॥ २० ॥ कामशास्त्रके जानकार बिरले ही पुरुष उनका अभिप्राय समझ पाते हैं। जैसे उसने कहा है कि 'मैं युद्धभूमिमें तुम्हें बाणोंसे मारूँगी' ॥ २१ ॥ सो इस बातमें बहुत बड़ा भेद छुपा हुआ है। जिसे हेतुविद्याके निपुण विद्वान् ही समझ सकते हैं। उनके कथनानुसार तो सुन्दरियोंके बाण कटाक्ष ही होते हैं ॥ २२ ॥ उनके व्यंग्य वचनोंको पुष्पाञ्जलि समझना चाहिए। हे राजन् ! कटाक्षके सिवाय आपपर अन्य प्रकारके बाण भला वह क्या चलायेगी ?

विरूपाक्षवचः श्रुत्वा दुर्धरो वाक्यमब्रवीत् ॥ सत्यमुक्तं वचो राजन्विरूपाक्षेण धीमता ॥ १७ ॥ ममापि वचनं श्लक्ष्णं श्रोतव्यं धीमता त्वया ॥ कामातुरैषा सुदती लक्ष्यतेऽप्यनुमानतः ॥ १८ ॥ भवत्येवंविधा कामं नायिका रूपगर्विता ॥ भीषयित्वा वरारोहा त्वां वशे कर्तुमिच्छति ॥ १९ ॥ हावोऽयं मानिनीनां वै तं वेत्ति रसवित्तमः ॥ वक्रोक्तिरेषा कामिन्याः प्रियं प्रति परायणम् ॥२०॥ वेत्ति कोऽपि नरः कामं कामशास्त्रविचक्षणः ॥ यदुक्तं नाम बाणैस्त्वां वधिष्ये रणमूर्धनि ॥ २१ ॥ हेतुगर्भमिदं वाक्यं ज्ञातव्यं हेतुवित्तमैः ॥ बाणास्तु मानिनीनां वै कटाक्षा एव विश्रुताः ॥२२॥ पुष्पांजलिमयाश्चान्ये व्यंग्यानि वचनानि च ॥ का शक्तिरन्यबाणानां प्रेरणे त्वयि पार्थिव ॥ २३ ॥ तादृशीनां न सा शक्तिर्ब्रह्मविष्णुहरादिषु ॥ ययोक्तं नेत्रबाणैस्त्वां हनिष्ये मन्द पार्थिवम् ॥ २४ ॥ विपरीतं परिज्ञातं तेनारसविदा किल ॥ पातयिष्यामि शय्यायां रणमय्यां पतिं तव ॥२५॥ विपरीतरतिक्रीडाभाषणं ज्ञेयमेव तत् ॥ करिष्ये विगतप्राणं यदुक्तं वचनं तया ॥२६॥ वीर्यं प्राणा इति प्रोक्तं तद्विहीनं न चान्यथा ॥ व्यंग्याधिक्येन वाक्येन वरयत्युत्तमा नृप ॥ २७ ॥ तद्वै विचारतो ज्ञेयं रसग्रन्थविचक्षणैः ॥ इति ज्ञात्वा महाराज कर्तव्यं रससंयुतम् ॥२८॥ सामदानद्वयं

॥ २३ ॥ जब ब्रह्मा, विष्णु और शिव आपपर बाण नहीं चला सके, तब वह अबला कैसे चला सकेगी ? उसके कथनका तात्पर्य यह है कि हे मन्द (काम शास्त्रके अनभिज्ञ) ! मैं तुम्हें अपने कटाक्षबाणोंसे घायल कर दूँगी ॥ २४ ॥ यहाँसे गये हुए मुख्यमंत्री महोदय अरसिक थे। इसीसे उन्होंने उसकी बातका अर्थ उलटा समझा। उसने जो कहा कि मैं तुम्हारे स्वामीको रणमयी शय्यापर सुलाऊँगी ॥ २५ ॥ इसका वचन तात्पर्य यह हुआ कि मैं महिषासुरके साथ विपरीत रतिक्रीडा करूँगी। उसने जो कहा कि मैं उन्हें प्राणहीन कर दूँगी ॥ २६ ॥ इस बातका मतलब यह हुआ कि मैं उन्हें वीर्यहीन कर दूँगी। क्योंकि पुरुषमें वीर्य ही प्राण होता है। हे राजन् ! इस व्यंग्यमयी बातोंसे वह उत्तम कोटिकी स्त्री आपको पतिरूपमें वरण करना चाहती है ॥ २७ ॥ उसकी बातोंका मैंने जो मतलब बताया है, उसे कामशास्त्रके विद्वान् पुरुष सूक्ष्मरूपसे विचार करके ही समझ सकते हैं। हे महाराज ! इस प्रकार आपने उसका अभिप्राय समझ लिया। अब आप उसके प्रति सरस व्यवहार करिए ॥ २८ ॥ हे भूपते ! मधुर वचन तथा प्रलोभन ये ही दो उपाय मानिनी स्त्रियोंको वशमें करनेके हैं—तीसरा उपाय नहीं है। रुष्ट

तथा मदगर्विता स्त्रियाँ इन्हीं दो उपायोंसे वशमें होती हैं ॥ २९ ॥ सो मैं अपनी मीठी-मीठी बातोंसे भुलावेमें डालकर उसे आपके पास ले आऊँगा । हे राजन् ! बहुत कहनेसे क्या लाभ, जैसे भी होगा—उसे मैं वशमें कर लूँगा ॥ ३० ॥ अभी जाकर ऐसा उपाय करूँगा कि जिससे वह सदाके लिए आपकी दासी बन जायगी । व्यासजी बोले कि दुर्धरकी बातें सुनकर तत्त्वज्ञानी ताम्रने कहा—हे महाराज ! आप मेरी बात सुनिए । क्योंकि मेरी बातोंमें आपको तर्कशास्त्र, धर्मशास्त्र, वीररस तथा राजनीतिकी झलक मिलेगी ॥३१॥३२॥ हे मानद ! वह बुद्धिमती रमणी न कामातुरा है, न आपपर आसक्त है और न उसने व्यंग्यभरी बातें ही कही हैं ॥ ३३ ॥ हे महाबाहो ! सबसे विचित्र बात तो यह है कि वह सुन्दरी, अत्यधिक रूपवती और मनोहारिणी युवती बिना किसीसे सहायता लिये अकेली युद्ध करनेके लिए यहाँ चली आयी है ॥३४॥ आजतक तीनों लोकमें अठारह भुजाओंवाली पराक्रमसम्पन्न कोई स्त्री न कभी देखी गयी और न सुनी ही गयी है ॥३५॥ उसकी सभी भुजाओंमें बड़े-बड़े सुदृढ़ शस्त्रास्त्र विद्यमान रहते हैं । हे राजन् ! इन लक्षणोंसे तो ऐसा प्रतीत होता है कि समय अब हमारे विपरीत हो गया है ॥३६॥

तस्या नान्योपायोऽसि भूपते ॥ रुष्टा वा गर्विता वाऽपि वशगा मानिनी भवेत् ॥२९॥ तादृशैर्मधुरैर्वाक्यैरानयिष्ये तवांतिकम् ॥ किं बहूक्तेन मे राजन्कर्तव्या वशवर्तिनी ॥ ३० ॥ गत्वा मयाऽधुनैवेयं किंकरीव सदैव ते ॥ व्यास उवाच ॥ इत्थं निशम्य तद्वाक्यं ताम्रस्तत्त्वविचक्षणः ॥ ३१ ॥ उवाच वचनं राजन्निशामय मयोदितम् ॥ हेतुमद्धर्मसहितं रसयुक्तं नयान्वितम् ॥ ३२ ॥ नैषा कामातुरा बाला नानुरक्ता विचक्षणा ॥ व्यंग्यानि नैव वाक्यानि तयोक्तानि तु मानद ॥३३॥ चित्रमत्र महाबाहो यदेका वरवर्णिनी ॥ निरालंबा समायाति चित्ररूपा मनोहरा ॥३४॥ अष्टादशभुजा नारी न श्रुता न च वीक्षिता ॥ केनापि त्रिषु लोकेषु पराक्रमवती शुभा ॥ ३५ ॥ आयुधान्यपि तावंति धृतानि बलवंति च ॥ विपरीतमिदं मन्ये सर्वं कालकृतं नृप ॥ ३६ ॥ स्वप्नानि दुर्निमित्तानि मया दृष्टानि वै निशि ॥ तेन जानाम्यहं नूनं वैशसं समुपागतम् ॥३७॥ कृष्णांबरधरा नारी रुदती च गृहांगणे ॥ दृष्टा स्वप्नेऽप्युषःकाले चिंतितव्यस्तदत्ययः ॥ ३८ ॥ विकृताः पक्षिणो रात्रौ रोरुवंति गृहे गृहे ॥ उत्पाता विविधा राजन्प्रभवंति गृहे गृहे ॥ ३९ ॥ तेन जानाम्यहं नूनं कारणं किंचिदेव हि ॥ यत्त्वां प्रार्थयते बाला युद्धाय कृतनिश्चया ॥ ४० ॥ नैषाऽस्ति मानुषी नो वा गांधर्वी न तथाऽऽसुरी ॥ देवैः कृतेयं ज्ञातव्या माया मोहकरी विभो ॥४१॥ कातरत्वं न कर्तव्यं ममैतन्मतमित्यलम् ॥ कर्तव्यं सर्वथा युद्धं यद्भाव्यं

आजकल मैं रातको बड़े बुरे-बुरे सपने देखता हूँ । इससे ऐसा ज्ञात होता है कि अब हमारा विनाश शीघ्र ही होनेवाला है ॥३७॥ आज ही तड़के मैंने स्वप्न देखा है कि एक स्त्री काली धोती पहने घरके आँगनमें खड़ी रो रही है । इससे आपपर आनेवाले अमंगलकी सूचना मिलती है ॥ ३८ ॥ हे महाराज ! रात्रिके समय आजकल घर-घर बड़े विचित्र स्वरमें पक्षी रोया करते हैं । प्रत्येक दैत्यके घर नाना प्रकारके उत्पात होते दिखाई देते हैं ॥ ३९ ॥ इन सब लक्षणोंसे मेरा अनुमान है कि कोई अनर्थ अवश्य होनेवाला है । तभी तो युद्धका दृढ़ निश्चय करके वह युवती आपको निर्भीकभावके चुनौती दे रही है ॥ ४० ॥ हे विभो ! वह न मानवी, न गान्धर्वी और न आसुरी ही माया है । बल्कि वह देवताओं द्वारा निर्मित दैवी माया है । जो हम सबको मोहमें डालनेके लिए यहाँ आयी है ॥ ४१ ॥ अतएव मेरा यह दृढ़ मत है कि इस समय कायर न बनकर तत्काल युद्धघोषणा कर देनी चाहिए । बादमें जो होना होगा, सो

होगा ॥४२॥ भविष्यमें विधाता शुभ या अशुभ क्या करनेवाला है, इसे कौन जानता है ? अतएव विज्ञ लोगोंका यह कर्तव्य है कि धैर्य धारण करके समयकी प्रतीक्षा करें ॥४३॥ हे महाराज ! जीवन और मरण सदा दैवके अधीन रहता है । तीनों लोकमें कोई भी ऐसा प्राणी नहीं है, जो दैवके काममें उलट-फेर कर सके ॥ ४४ ॥ तब महिषासुरने कहा—हे महाभाग ताम्र ! युद्धके लिए तैयार होकर तुम्हीं जाओ और धर्मयुद्ध करके उस मानिनी सुन्दरीको पकड़ लाओ ॥४५॥ जब देखो कि युद्धमें हराकर वह नहीं पकड़ी जा सकती, तब उसे मार डालना । नहीं तो जहाँ तक सम्भव हो, तहाँ तक उसका सम्मान करना ॥ ४६ ॥ हे सर्वज्ञ ! तुम असाधारण वीर और कामशास्त्रके पंडित हो । अतएव जिस किसी भी उपायसे सम्भव हो, उस सुन्दरीपर अवश्य विजय प्राप्त करो ॥ ४७ ॥ हे वीर ! हे महाबाहो ! तुम विशाल सेना लेकर शीघ्र वहाँ जाओ और बारम्बार इस बातका अनुसन्धान करो कि वह सुन्दरी यहाँ किस लिए आयी है ? यह भी

तद्भविष्यति ॥ ४२ ॥ को वेद दैवकर्तव्यं शुभं वाऽप्यशुभं तथा ॥ अवलंब्य धिया धैर्यं स्थातव्यं वै विचक्षणैः ॥४३॥ जीवितं मरणं पुंसां दैवाधीनं नराधिप ॥ कोऽपि नैवान्यथा कर्तुं समर्थो भुवनत्रये ॥ ४४ ॥ महिष उवाच ॥ गच्छ ताम्र महाभाग युद्धाय कृतनिश्चयः ॥ तामानय वरारोहां जित्वा धर्मेण मानिनीम् ॥ ४५ ॥ न भवेद्वशगा नारी संग्रामे यदि सा तव ॥ हंतव्या नान्यथा कामं माननीया प्रयत्नतः ॥ ४६ ॥ वीरस्त्वमसि सर्वज्ञ कामशास्त्रविशारदः ॥ येन केनाप्युपायेन जेतव्या वरवर्णिनी ॥ ४७ ॥ त्वरन्वीर महाबाहो सैन्येन महता वृतः ॥ तत्र गत्वा त्वया ज्ञेया विचार्य च पुनः पुनः ॥ ४८ ॥ किमर्थमागता चेयं ज्ञातव्यं तद्धि कारणम् ॥ कामाद्वा वैरभावाच्च माया कस्येयमित्युत ॥ ४९ ॥ आदौ तन्निश्चयं कृत्वा ज्ञातव्यं तच्चिकीर्षितम् ॥ पश्चाद्युद्धं प्रकर्तव्यं यथायोग्यं यथाबलम् ॥ ५० ॥ कातरत्वं न कर्तव्यं निर्दयत्वं तथा न च ॥ यादृशं हि मनस्तस्याः कर्तव्यं तादृशं त्वया ॥ ५१ ॥ व्यास उवाच ॥ इति तद्भाषितं श्रुत्वा ताम्रः कालवशं गतः ॥ निर्गतः सैन्यसंयुक्तः प्रणम्य महिषं नृपम् ॥ ५२ ॥ गच्छन्मार्गे दुरात्माऽसौ शकुनान्वीक्ष्य दारुणान् ॥ विस्मयं च भयं प्राप यममार्गप्रदर्शकान् ॥ ५३ ॥ स गत्वा तां समालोक्य देवीं सिंहोपरि स्थिताम् ॥ स्तूयमानां सुरैः सर्वैः सर्वायुधविभूषिताम् ॥ ५४ ॥ तामुवाच विनीतः सन्वाक्यं मधुरया गिरा ॥ सामभावं समाश्रित्य विनयावनतः

देखना कि वह कामातुर है या हमसे वैरभाव रखती है ? यह भी पता लगाना कि यह किसकी चालबाजी है ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ऊपर कही हुई बातोंका पता लगानेके बाद यह सोचना कि वह क्या करना चाहती है । उसका बलाबल मालूम हो जानेके बाद ही उससे युद्ध करना ॥ ५० ॥ उसके समक्ष न कायरता दिखाना और न एकदम निर्दयी बन जाना। जैसा उसका मनोभाव देखना, उसीके अनुसार सब काम करना ॥ ५१ ॥ व्यासजी बोले—महिषासुरकी बातें सुनकर ताम्रने उसे प्रणाम किया और कालके वशीभूत होकर सेनाके साथ चल पड़ा ॥ ५२ ॥ चलते समय रास्तेमें उस दुष्टको यममार्ग दिखानेवाले बड़े भयानक अशकुन दिखायी पड़े । उन्हें देखकर वह बहुत विस्मित और भयभीत हुआ ॥५३॥ भगवतीके समीप पहुँचकर उसने देखा कि देवी सिंहपर सवार हैं, विविध प्रकारके शस्त्रास्त्र उनकी भुजाओंमें विद्यमान हैं और सब देवता उनकी स्तुति कर रहे हैं ॥५४॥ तब सामनीतिका अवलम्बन करके बड़े विनीत भावसे शान्ति-

पूर्वक मधुर वाणीमें उसने भगवतीसे कहा–।। ५५ ।। दैत्योंके अधिपति तथा विशाल शृङ्गधारी राजा महिष आपके रूप और गुणपर मोहित होकर आपके साथ विवाह करना चाहते हैं ।।५६।। हे विशालनयनी ! देवताओंके भी अजेय महाराज महिषसे आप प्रेम करिए । हे कोमल अङ्गोंवाली सुन्दरी ! उन्हें पति बनाकर आप अद्भुत नन्दन वनमें विहार करिए ।। ५७ ।। सब सुखोंके आगारस्वरूप इस सर्वाङ्गसुन्दर शरीरको पाकर आनन्द लीजिए और दुःखको ठोकर मारिए ।।५८।। हे करिशावक सदृश जाँघोंवाली सुन्दरी ! आपके कमल जैसे कोमल हाथ तो फूलके गेंद खेलने योग्य हैं । तब उनमें इन शस्त्रास्त्रोंको क्यों धारण कर रक्खा है ? ।। ५९ ।। भौंहरूपी धनुषके रहते आप यह दूसरा धनुष क्यों सम्हाले हुए हैं ? कटाक्षरूपी स्वाभाविक बाण तो पास थे ही, फिर आप बाण क्यों लिये हैं ? ।। ६० ।। इस संसारमें युद्ध बड़ी दुखदायी वस्तु है । जो इसका तत्त्व जानते हैं, वे युद्धसे सदा दूर रहते हैं । अधिकांश साम्राज्यलोभी लोग ही परस्पर युद्ध

स्थितः ।। ५५ ।। देवि दैत्येश्वरः शृंगी त्वद्रूपगुणमोहितः ।। स्पृहां करोति महिषस्त्वत्पाणिग्रहणाय च ।। ५६ ।। भावं कुरु विशालाक्षि तस्मिन्नमरदुर्जये ।। पतिं तं प्राप्य मृद्वंगि नंदने विहराद्भुते ।। ५७ ।। सर्वांगसुन्दरं देहं प्राप्य सर्वसुखास्पदम् ।। सुखं सर्वात्मना ग्राह्यं दुःखं हेयमिति स्थितिः ।। ५८ ।। करभोरु किमर्थं ते गृहीतान्यायुधान्यलम् ।। पुष्पकंदुकयोग्यास्ते कराः कमलकोमलाः ।। ५९ ।। भ्रूचापे विद्यमानेऽपि धनुषा किं प्रयोजनम् ।। कटाक्षा विशिखाः संति किं बाणैर्निष्प्रयोजनैः ।। ६० ।। संसारे दुःखदं युद्धं न कर्तव्यं विजानता ।। लोभासक्ताः प्रकुर्वंति संग्रामं च परस्परम् ।। ६१ ।। पुष्पैरपि न योद्धव्यं किं पुनर्निशितैः शरैः ।। भेदनं निजगात्राणां कस्य तज्जायते मुदे ।। ६२ ।। तस्मात्त्वमपि तन्वंगि प्रसादं कर्तुमर्हसि ।। भर्तारं भज मे नाथं देवदानवपूजितम् ।। ६३ ।। स तेऽत्र वांछितं सर्वं करिष्यति मनोरथम् ।। त्वं पट्टमहिषी राज्ञः सर्वथा नात्र संशयः ।। ६४ ।। वचनं कुरु मे देवि प्राप्स्यसे सुखमुत्तमम् ।। संग्रामे जयसंदेहः कष्टं प्राप्य न संशयः ।। ६५ ।। जानासि राजनीतिं त्वं यथावद्वरवर्णिनि ।। भुंक्ष्व राज्यसुखं पूर्णं वर्षाणामयुतायुतम् ।। ६६ ।। पुत्रस्ते भविता कांतः सोऽपि राजा भविष्यति ।। यौवने क्रीडयित्वाऽन्ते वार्धक्ये सुखमाप्स्यसि ।। ६७ ।। इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कंधे देवीमाहात्म्ये एकादशोऽध्यायः ।। ११ ।।

करते हैं ।। ६१ ।। अतएव पुष्पकी मारसे भी युद्ध न करना चाहिए । फिर तीक्ष्ण बाणोंके युद्धकी तो बात ही क्या है । व्यर्थ अपना शरीर बिंधवाना [illegible] किसको पसन्द आयेगा ? ।। ६२ ।। अतएव हे तन्वङ्गि ! तुम कृपा करो और देवताओं तथा दानवों द्वारा पूजित मेरे स्वामीको पतिरूपमें स्वीकार करो ।। ६३ ।। वे तुम्हारी सब काम[illegible] पूरी कर देंगे । उनसे प्रेम करके तुम महाराज महिषकी पटरानी बन जाओगी । इसमें कुछ भी संशय नहीं है ।। ६४ ।। हे देवि ! तुम मेरी बात मानो । इससे उत्तम सुख प्राप्त करोगी । संग्रामसे विजयमें सन्देह रहता है और कष्टका कोई वारापार नहीं है ।। ६५ ।। हे वरवर्णिनि ! आप राजनीति जानती हैं । अतः महिषको राजी करके करोड़ों वर्षतक राज्यसुख भोगिए ।।६६।। आपका सुन्दर पुत्र उत्पन्न होकर राज्यसिंहासनपर बैठेगा । इस प्रकार जवानीमें सुख भोगकर वृद्धावस्थामें भी आप बड़ा आनन्द पायेंगी ।। ६७ ।। इति श्रीदेवीभागवते पञ्चमस्कन्धे भाषाटीकायामेकादशोऽध्यायः ।।११।।

(राजा महिषके युद्धमंत्रिमण्डलका निश्चय) व्यासजी बोले—असुर ताम्रका वचन सुनकर जगदम्बाने मेघके समान गम्भीर वाणीमें हँसकर कहा ॥ १ ॥ देवी बोलीं—हे ताम्र ! तुम मरनेको उद्यत उस मन्दबुद्धि अपने स्वामी महिषके पास लौट जाओ। उसका ज्ञान लुप्त हो गया है। वह बड़ा कामी पुरुष है ॥२॥ तुम जाकर उससे कह दो कि जिस प्रकार घास खानेवाली प्रौढ़ा महिषी तुम्हारी माता थी, उस तरह लम्बी पूँछ, महान् उदर और बड़ी-बड़ी सींगवाली भैंस मैं नहीं हूँ ॥३॥ जब मैंने देवराज इन्द्र, विष्णु, शिवजी, कुबेर, वरुण और ब्रह्माजी जैसे बड़े-बड़े देवताओंको नहीं चाहा, तब एक पशुके किस गुणपर रीझकर मैं उसे अपना पति बनाऊँगी। ऐसा करनेसे तो संसारमें मेरी हँसी [illegible]ड़ायी जाय[illegible] ४ ॥ ५ ॥ मैं पति खोजनेवाली मामूली स्त्री नहीं हूँ। मेरे पति तो विद्यमान हैं। वे स्वयंप्रभु, विश्वकर्ता, सर्वसाक्षी, अकर्ता, निःस्पृह, स्थायी, निर्गुण, निर्मम, अनन्त, निरालम्ब, [illegible]श्रय, सर्वज्ञ, सर्वग, सर्वसाक्षी, पूर्ण, पूर्णाशय, शिव, सर्वावास, सर्वक्षम, शान्त, सर्वदृक् और सर्वभावगम्य हैं। उन्हें त्यागकर मैं उस मूर्ख महिषको क्यों अपना पति बनाना चाहूँगी ? ॥ [illegible]–८॥ अतएव अब तू उठ और युद्ध कर।

॥ व्यास उवाच ॥ तन्निशम्य वचस्तस्य ताम्रस्य जगदंबिका ॥ मेघगंभीरया वाचा हसंती तमुवाच ह ॥ १ ॥ देव्युवाच ॥ गच्छ ताम्र पतिं ब्रूहि मुमूर्षुं मंदचेतसम् ॥ महिषं चातिकामार्तं मूढं ज्ञानविवर्जितम् ॥ २ ॥ यथा ते महिषी माता प्रौढा यवसभक्षिणी ॥ नाहं तथा शृंगवती लंबपुच्छा महोदरी ॥ ३ ॥ न कामयेऽहं देवेशं नैव विष्णुं न शङ्करम् ॥ धनदं वरुणं नैव ब्रह्माणं न च पावकम् ॥ ४ ॥ एतान्देवगणान्हित्वा पशुं केन गुणेन वै ॥ वृणोम्यहं वृथा लोके गर्हणा मे भवेदिति ॥ ५ ॥ नाहं पतिंवरा नारी वर्तते मे पतिः प्रभुः ॥ सर्वकर्ता सर्वसाक्षी ह्यकर्ता निःस्पृहः स्थिरः ॥ ६ ॥ निर्गुणो निर्ममोऽनंतो निरालंबो निराश्रयः ॥ सर्वज्ञः सर्वगः साक्षी पूर्णः पूर्णाशयः शिवः ॥ ७ ॥ सर्वावासः क्षमः शांतः सर्वदृक्सर्वभावनः ॥ तं त्यक्त्वा महिषं मंदं कथं सेवितुमुत्सहे ॥ ८ ॥ प्रबुध्य युध्यतां कामं करोमि यमवाहनम् ॥ अथवा मनुजानां वै करिष्ये जलवाहकम् ॥ ९ ॥ जीवितेच्छाऽस्ति चेत्पाप गच्छ पातालमाशु वै ॥ समस्तैर्दानवैर्युक्तस्त्वन्यथा हन्मि संगरे ॥ १० ॥ कामं सदृशयोर्योगः संसारे सुखदो भवेत् ॥ अन्यथा दुःखदो भूयादज्ञानाद्यदि कल्पितः ॥११॥ मूर्खस्त्वमसि यद्ब्रूषे पतिं मे भज भामिनि ॥ क्वाहं क्व महिषः शृंगी सम्बन्धः कीदृशो द्वयोः ॥१२॥ गच्छ युध्यस्व वा कामं हनिष्येऽहं सबांधवम् ॥ यज्ञभागं देवलोकं नोचेत्त्यक्त्वा सुखी भव ॥१३॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्त्वा

में तुझे या तो यमलोक भेज दूँगी या मनुष्योंके लिए पानी ढोनेवाली गाड़ीका भैंसा बना दूँगी ॥ ९ ॥ अरे पापी महिष ! यदि जीवित रहनेकी इच्छा हो तो शीघ्र पाताल लोकको चला जा और अपने सभी साथी दानवोंको भी लेता जा। नहीं तो मैं उन सबको मार डालूँगी ॥१०॥ और फिर संसारमें समान कुल-शीलवाले पुरुषके साथ ही सम्बन्ध होनेपर सुख होता है। इसके विपरीत यदि किसीके दबावसे या बिना सोचे-समझे सम्बन्ध होता है तो वह बड़ा दुःख देता है ॥ ११ ॥ ओ महिष ! तू मूर्ख है, जो कहता है कि 'हे भामिनी ! तुम मुझे अपना पति बना लो।' कहाँ मैं और कहाँ तू सींग-पूँछवाला महिष (भैंसा) ? हम दोनोंमें सम्बन्ध कैसे हो सकता है ? ॥१२॥ अतएव अब तू भाग जा। अथवा युद्ध करनेकी अभिलाषा हो तो आ जा। मैं तुझे सपरिवार यमलोक भेज दूँगी। सबसे अच्छा उपाय तो यह है कि यज्ञके भागका अधिकार देवताओंको दे दे और देवलोक त्यागकर चला जा ॥१३॥ व्यासजी बोले कि ऐसा कहकर

भगवतीने खूब जोरसे अद्भुत प्रकारका गर्जन किया। वह प्रलयकालके समान भीषण गर्जन सुनकर दैत्यगण भयभीत हो उठे ॥ १४ ॥ उस गर्जनको सुनकर पृथ्वी हिलने लगी और पर्वत डगमगा उठे। उस गर्जनके शब्दसे कितने ही दैत्योंकी पत्नियोंके गर्भ गिर गये ॥ १५ ॥ ताम्र भी उस शब्दको सुनकर इतना डर गया कि वहाँसे भागकर सीधे महिषासुरके पास जा पहुँचा ॥१६॥ हे महाराज जनमेजय! उसके नगरमें जितने दैत्य थे, उनके मनमें बड़ी चिन्ता समा गयी और वे नगर छोड़-छोड़कर भागने लगे ॥१७॥ उसी समय क्रुद्ध होकर देवीके सिंहने भी भयानक ढंगसे गर्जन किया। सिंहकी दहाड़से दैत्योंका हृदय और भी दहल गया ॥ १८ ॥ ताम्रको अपने समक्ष उपस्थित देखकर महिषासुर चकरा गया। तत्काल वह मंत्रियोंको बुलाकर यह मंत्रणा करने लगा कि अब क्या किया जाय ॥१९॥ उसने कहा—हे दानववीरो! अब हमें किलेके भीतर रहकर आत्मरक्षा करनी चाहिए या रणभूमिमें जाकर लड़ना चाहिए अथवा निकल भागना उचित होगा? ॥२०॥ आप लोग बड़े बुद्धिमान्, दुराधर्ष (किसीसे न दबनेवाले) और सभी शास्त्रोंके ज्ञाता हैं। सो कार्यसिद्धिके लिए आपलोग गुप्तरूपसे परामर्श

सा तदा देवी जगर्ज भृशमद्भुतम् ॥ कल्पांतसदृशं नादं चक्रे दैत्यभयावहम् ॥१४॥ चकंपे वसुधा चेलुस्तेन शब्देन भूधराः ॥ गर्भाश्च दैत्यपत्नीनां सस्रंसुर्गर्जितस्वनात् ॥ १५ ॥ ताम्रः श्रुत्वा च तं शब्दं भयत्रस्तमनास्तदा ॥ पलायनं ततः कृत्वा जगाम महिषांतिकम् ॥ १६ ॥ नगरे तस्य ये दैत्यास्तेऽपि चिन्तामवाप्नुवन् ॥ बधिरीकृतकर्णाश्च पलायनपरा नृप ॥१७॥ तदा क्रोधेन सिंहोऽपि ननाद भृशमुत्सटः ॥ तेन नादेन दैतेया भयं जग्मुरपि स्फुटम् ॥ १८ ॥ ताम्रं समागतं दृष्ट्वा हयारिरपि मोहितः ॥ चिन्तयामास सचिवैः किं कर्तव्यमतः परम् ॥ १९ ॥ दुर्गग्रहो वा कर्तव्यो युद्धं निर्गत्य वा पुनः ॥ पलायने कृते श्रेयो भवेद्वा दानवोत्तमाः ॥२०॥ बुद्धिमंतो दुराधर्षाः सर्वशास्त्रविशारदाः ॥ मन्त्रः खलु प्रकर्तव्यः सुगुप्तः कार्यसिद्धये ॥२१॥ मन्त्रमूलं स्मृतं राज्यं यदि स स्यात्सुरक्षितः ॥ मंत्रिभिश्च सदाचारैर्विधेयः सर्वथा बुधैः ॥२२॥ मंत्रभेदे विनाशः स्याद्राज्यस्य भूपतेस्तथा ॥ तस्माद्भेदभयाद्गुप्तः कर्तव्यो भूतिमिच्छता ॥ २३ ॥ तदत्र मंत्रिभिर्वाच्यं वचनं हेतुमद्धितम् ॥ कालदेशानुसारेण विचिंत्य नीतिनिर्णयम् ॥२४॥ या योषाऽत्र समायाता प्रबला देवनिर्मिता ॥ एकाकिनी निरालंबा कारणं तद्विचिंत्यताम् ॥२५॥ युद्धं प्रार्थयते बाला किमाश्चर्यमतः परम् ॥ श्रेयोऽत्र विपरीतं वा को वेत्ति भुवनत्रये ॥ २६ ॥ न बहूनां जयोऽप्यस्ति नैकस्य च पराजयः ॥ दैवाधीनौ सदा ज्ञेयौ युद्धे जयपरा-

करें ॥ २१ ॥ क्योंकि मंत्रणा ही राज्यकी नींव होती है। अतएव सदाचारी मंत्रियोंका यह कर्तव्य है कि उस मंत्रणाको सदा गुप्त रक्खें। उसके सुरक्षित रहनेसे ही राज्यकी रक्षा होती है ॥ २२ ॥ मंत्रभेद होनेपर समस्त राज्य और राजा दोनों नष्ट हो जाते हैं। अतएव राज्यका अभ्युदय चाहनेवाले मंत्रियोंको चाहिए [illegible] मंत्रणाकी [illegible]को सदा गुप्त रक्खें ॥ २३ ॥ इस समय आप मंत्रिगण इस बातपर विचार करें कि देश-कालके अनुकूल अब हमें कौनसी नीति अपनानी चाहिए। इस बातका निर्णय करके आप हितकारी और सार्थक सलाह दें ॥ २४ ॥ साथ ही इस विषयपर भी विचार करें कि देवताओं द्वारा निर्मित वह प्रबल महिला बिना किसीकी सहायताके जो अकेली ही मेरे दानवराज्यमें घुस आयी है, उसका क्या रहस्य है? ॥२५॥ वह ललना होती हुई भी हमें युद्धके लिए ललकार रही है। इससे बढ़कर आश्चर्यकी बात और क्या हो सकती है? युद्धमें किस पक्षकी विजय होगी और किसकी पराजय, इस बातको तीनों

वह ललना होती हुई भी हम युद्धके लिए ललकार रही है। इससे बढ़कर आश्चर्यकी बात और क्या हो सकती है? युद्धमें किस पक्षकी विजय होगी और किसका पराजय, इस बातको तो

लोकमें कोई नहीं जानता ॥ २६ ॥ न किसीको बहुसंख्यक होनेसे विजय मिलती है और न अकेला होता हुआ कोई पक्ष पराजित होता है। क्योंकि युद्धमें जय और पराजय सदा दैवके अधीन रहती है ॥ २७ ॥ उपायवादी विद्वानोंका यह तर्क है कि भाग्य क्या वस्तु है? भाग्यवादी पण्डित जिसे अदृष्ट कहते हैं, उसे भला कभी किसीने देखा भी है? ॥ २८ ॥ यदि कोई कहे कि भाग्यका अस्तित्व है तो उसका प्रमाण क्या है? भाग्य तो केवल कायर पुरुषोंकी आशाका सहारामात्र है। सामर्थ्यसम्पन्न लोगोंको कभी नहीं दिखायी देता ॥ २९ ॥ वीर पुरुष उद्यमको प्रधान मानते हैं और कायर भाग्यपर भरोसा रखते हैं। इन सब बातोंपर आप लोग भली भाँति विचार करके आदरपूर्वक कार्य करें ॥ ३० ॥ व्यासजी बोले कि दैत्यराज महिषके सारगर्भित वचन सुनकर महायशस्वी दैत्य विडालाक्षने हाथ जोड़कर कहा—॥ ३१ ॥ हे महाराज! इस बातका पूर्ण तत्परताके साथ पता लगाना चाहिए कि वह विशालनयनी रमणी यहाँ क्यों आयी है? कहाँसे आयी है और किसकी पत्नी है? ॥ ३२ ॥ मेरा तो यह विचार है—जब देवताओंको यह बात भली-भाँति मालूम हो गयी कि स्त्रीके हाथों ही आपकी मृत्यु

जयौ ॥ २७ ॥ उपायवादिनः प्राहुर्दैवं किं केन वीक्षितम् ॥ अदृष्टमिति यन्नाम प्रवदंति मनीषिणः ॥ २८ ॥ तत्सत्त्वेऽपि प्रमाणं किं कातराशाऽवलंबनम् ॥ न समर्थजनानां हि दैवं कुत्रापि लक्ष्यते ॥२९॥ उद्यमो दैवमेतौ हि शूरकातरयोर्मतम् ॥ विचिंत्याद्य धिया सर्वं कर्तव्यं कार्यमादरात् ॥३०॥ व्यास उवाच ॥ इति राज्ञो वचः श्रुत्वा हेतुगर्भं महायशाः ॥ विडालाक्षो महाराजमित्युवाच कृतांजलिः ॥३१॥ राजन्नेषा विशालाक्षी ज्ञातव्या यत्नतः पुनः ॥ किमर्थमिह संप्राप्ता कुतः कस्य परिग्रहः ॥३२॥ मरणं ते परिज्ञाय स्त्रिया सर्वात्मना सुरैः ॥ प्रेषिता पद्मपत्राक्षी समुत्पाद्य स्वतेजसा ॥ ३३ ॥ तेऽपि छन्नाः स्थिताः खेऽत्र सर्वे युद्धदिदृक्षवः ॥ समयेऽस्याः सहायास्ते भविष्यंति युयुत्सवः ॥ ३४ ॥ पुरतः कामिनीं कृत्वा ते वै विष्णुपुरोगमाः ॥ वधिष्यन्ति च नः सर्वान्सा त्वां युद्धे हनिष्यति ॥३५॥ एतच्चिकीर्षितं तेषां मया ज्ञातं नराधिप ॥ भवितव्यस्य न ज्ञानं वर्तते मम सर्वथा ॥ ३६ ॥ योद्धव्यं न त्वयाऽद्येति नाहं वक्तुं क्षमः प्रभो ॥ प्रमाणं त्वं महाराज कार्येऽत्र देवनिर्मिते ॥ ३७ ॥ त्वदर्थेऽस्माभिरनिशं मर्तव्यं कार्यगौरवात् ॥ विहर्तव्यं त्वया सार्धमेष धर्मोऽनुजीविनाम् ॥ ३८ ॥ विचारोऽत्र महानस्ति यदेका कामिनी नृप ॥ युद्धं प्रार्थयतेऽस्माभिः ससैन्यैर्ब-

होगी, तब देवताओंने अपने तेजसे उस कमलनयनी रमणीका निर्माण करके यहाँ भेजा है ॥३३॥ सब देवता युद्ध देखनेकी लालसासे आकाशमण्डलमें छिपकर विद्यमान हैं। अवसर आनेपर वे युद्धमें उसको सहायता भी देंगे ॥ ३४ ॥ उस कामिनीको आगे करके विष्णु आदि देवता हम सब दैत्योंको मार डालेंगे और वह महिला युद्धभूमिमें आपका वध करेगी ॥ ३५ ॥ यही उन देवताओंकी योजना है, मुझे ऐसा आभास मिला है। किन्तु भवितव्य (होनी) के विषयमें मुझे कुछ भी पता नहीं है ॥ ३६ ॥ हे प्रभो! मैं यह नहीं कह सकता कि आप लड़ें या न लड़ें। अपनी समझके अनुसार मैंने देवताओंकी योजना बता दी। अब आप प्रभु हैं। हमें आदेश दें ॥ ३७ ॥ हम आपका गौरवपूर्ण कार्य सम्पन्न करनेके लिए मर मिटेंगे और सफलता मिल जानेपर आपके साथ सानन्द विहार करेंगे। क्योंकि अनुजीवियों (राजकर्मचारियों) का यही सच्चा धर्म है ॥३८॥ हे राजन्! सबसे प्रबल विचारणीय बात तो यह है कि बलके मदमें चूर

और विशाल सेनासे सम्पन्न हम लोगोंको वह अकेली महिला युद्धके लिए ललकार रही है ॥ ३९ ॥ दुर्मुखने कहा—हे राजन् ! मुझे पूर्ण विश्वास है कि युद्धमें विजय नहीं मिल सकेगी । फिर भी हमें भागना नहीं चाहिए । क्योंकि ऐसा करनेसे वीरोंकी कीर्तिपर धब्बा लगता है ॥ ४० ॥ पूर्वकालमें इन्द्र आदि देवताओंके साथ युद्ध छिड़ा था, तब हमने पलायन जैसा निन्दनीय काम नहीं किया । तब उस अकेली स्त्रीके सामनेसे क्यों भागें ॥४१॥ अतएव अब युद्ध छेड़ देना चाहिए । युद्धमें हमें मृत्यु मिले या विजय । इसपर विचार करना व्यर्थ है । जो होना होगा, सो होगा ॥ ४२ ॥ क्योंकि रणभूमिमें मरनेसे यश मिलेगा और जीत होगी तो अपार सुख मिलेगा । इन दोनों बातोंको मनमें रखकर हमें आज ही युद्ध छेड़ देना चाहिए ॥ ४३ ॥ युद्धसे भागनेपर हमको अपयश मिलेगा । आयु क्षीण होनेपर एक दिन हमें मरना पड़ेगा ही, तब युद्धभूमिमें मरनेका क्या भय ? अतएव जीवन-मरणके लिए शोक करना व्यर्थ है ॥ ४४ ॥

लदर्पितैः ॥३९॥ दुर्मुख उवाच ॥ राजन्युद्धे जयं नोऽद्य भविता वेद्मयहं किल ॥ पलायनं न कर्तव्यं यशोहानिकरं नृणाम् ॥ ४० ॥ इन्द्रादीनां संयुगेऽपि न कृतं यज्जुगुप्सितम् ॥ एकाकिनीं स्त्रियं प्राप्य को हि कुर्यात्पलायनम् ॥ ४१ ॥ तस्माद्युद्धं प्रकर्तव्यं मरणं वा रणे जयः ॥ यद्भावि तद्भवत्येव काऽत्र चिंता विपश्यतः ॥ ४२ ॥ मरणेऽत्र यशःप्राप्तिर्जीवने च तथा सुखम् ॥ उभयं मनसा कृत्वा कर्तव्यं युद्धमद्य वै ॥ ४३ ॥ पलायने यशोहानिर्मरणं चायुषः क्षये ॥ तस्माच्छोको न कर्तव्यो जीविते मरणे वृथा ॥ ४४ ॥ व्यास उवाच ॥ दुर्मुखस्य वचः श्रुत्वा बाष्कलो वाक्यमब्रवीत् ॥ प्रणतः प्रांजलिर्भूत्वा राजानं वाक्यकोविदः ॥४५॥ बाष्कल उवाच ॥ राजंश्चिन्ता न कर्तव्या कार्येऽस्मिन्कातराप्रिये ॥ अहमेको हनिष्यामि चंडीं चंचललोचनाम् ॥ ४६ ॥ उत्साहस्तु प्रकर्तव्यः स्थायीभावो रसस्य च ॥ भयानको भवेद्वैरी वीरस्य नृपसत्तम ॥४७॥ तस्मात्त्यक्त्वा भयं भूप करिष्ये युद्धमद्भुतम् ॥ नयिष्यामि नरेन्द्राहं चंडिकां यमसादनम् ॥ ४८ ॥ न बिभेमि यमादिंद्रात्कुबेराद्वरुणादपि ॥ वायोर्वह्नेस्तथा विष्णोः शंकराच्छशिनो रवेः ॥ ४९ ॥ एकाकिनी तथा नारी किं पुनर्मदगर्विता ॥ अहं तां निहनिष्यामि विशिखैश्च शिलाशितैः ॥ ५० ॥ पश्य बाहुबलं मेऽद्य विहरस्व यथासुखम् ॥ भवताऽत्र न गंतव्यं संग्रामेऽप्यनया समम् ॥ ५१ ॥ व्यास उवाच ॥ एवं ब्रुवति राजेन्द्रं बाष्कले मदगर्विते ॥ प्रणम्य नृपतिं तत्र दुर्धरो वाक्यमब्रवीत् ॥ ५२ ॥ दुर्धर उवाच ॥ महिषाहं विजेष्यामि देवीं देवविनिर्मिताम् ॥ अष्टदशभुजां रम्यां कारणाच्च समागताम् ॥ ५३ ॥

व्यासजी बोले कि दुर्मुखके विचार सुनकर बात करनेमें निपुण बाष्कलने विनम्रभावसे हाथ जोड़कर राजा महिषसे कहा ॥ ४५ ॥ बाष्कल बोला—हे राजन् ! इस अप्रिय कार्यके विषयमें कायर बनकर आप विशेष चिन्ता न करें । मैं अकेला ही उस चञ्चलनयनी चण्डीको मार डालूँगा ॥ ४६ ॥ हे नृपसत्तम ! वीररसका स्थायीभाव उत्साह है । भयानक रस वीररसका वैरी है । अतएव हमें उत्साही होना चाहिए ॥ ४७ ॥ मैं यम, इन्द्र, कुबेर, वरुण, वायु, अग्नि, विष्णु, शिव, चन्द्रमा और सूर्यसे भी नहीं डरता ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ तब उस अकेली मदभरी स्त्रीसे क्यों डरूँगा । पत्थरकी सानपर चढ़े हुए अपने तीखे तीरोंकी ही मारसे मैं उसे समाप्त कर दूँगा ॥ ५० ॥ आप सुखपूर्वक विहार करिए और मेरा बाहुबल देखिए । आपको रणभूमिमें उस अबलाके समक्ष जानेकी कोई आवश्यकता न पड़ेगी ॥ ५१ ॥ व्यासजी बोले—मदमत्त बाष्कलके ऐसा कहनेपर दुर्धरने राजा महिषको प्रणाम करके कहा ॥ ५२ ॥ दुर्धर बोला—

हे महाराज महिष ! मैं उस देवनिर्मित, अष्टादशभुजधारिणी, सुन्दरी और रहस्यमय ढंगसे आयी हुई रमणीपर विजय प्राप्त करूँगा ॥ ५३ ॥ हे राजन् ! आपको डरानेके लिए देवताओंने उस मायाका निर्माण किया है। उसे विभीषिकामात्र समझकर आप अपने चित्तकी बेचैनी दूर कर दीजिए ॥५४॥ हे राजन् ! यह हुई राजनीतिकी बात। अब मंत्रियोंका कर्तव्य सुनिए। मंत्री पूर्ण शक्तिसे अपने प्रभुका कार्यसाधन करते हैं ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ वे अपने प्रभुके कार्यमें बिना कोई बाधा डाले अपना कर्तव्य निभाते हैं, एकाग्र चित्तसे काम करते हैं, वे धर्मपरायण और मंत्रणाकार्यमें पूर्ण निपुण होते हैं ॥ ५७ ॥ राजस प्रकृतिके मंत्रीका मन सदा डाँवाडोल रहता है। वे सदा अपने स्वार्थसाधनमें लिप्त रहते हैं। जब कभी मनमें आता है, तब थोड़ा-बहुत स्वामीका कार्य भी कर देते हैं ॥५८॥ तामस स्वभावके मंत्री लोभी होते हैं और स्वार्थसाधन ही उनका मुख्य उद्देश्य होता है। वे अपने स्वामीका काम नष्ट करके अपना काम बनाते रहते हैं ॥ ५९ ॥ समय आनेपर वे परपक्षसे घूस खाकर राजाका भेद खोल देते हैं और अपने घरमें बैठे-बैठे अपनी कमजोरियाँ शत्रुको बता देते हैं ॥ ६० ॥ जैसे तलवार म्यानमें छिपी रहती है,

राजन्भीषयितुं त्वां वै प्रायैषा निर्मिता सुरैः ॥ विभीषिकेयं विज्ञाय त्यज मोहं मनोगतम् ॥ ५४ ॥ राजनीतिरियं राजन्मंत्रिकृत्यं तथा शृणु ॥ सात्त्विका राजसा केचित्तामसाश्च तथापरे ॥५५॥ मंत्रिणस्त्रिविधा लोके भवंति दानवाधिप ॥ सात्त्विकाः प्रभुकार्याणि साधयंति स्वशक्तिभिः ॥५६॥ आत्मकृत्यं प्रकुर्वंति स्वामिकार्याविरोधतः ॥ एकचित्ता धर्मपरा मंत्रशास्त्रविशारदाः ॥ ५७ ॥ राजसा भिन्नचित्ताश्च स्वकार्यनिरताः सदा ॥ कदाचित्स्वामिकार्यं ते प्रकुर्वन्ति यदृच्छया ॥ ५८ ॥ तामसा लोभनिरताः स्वकार्यनिरताः सदा ॥ प्रभुकार्यं विनाश्यैव स्वकार्यं साधयन्ति ते ॥५९॥ समये ते विभिद्यंते परैस्तु परिवंचिताः ॥ स्वच्छिद्रं शत्रुपक्षीयान्निर्दिशंति गृहस्थिताः ॥ ६० ॥ कार्यभेदकरा नित्यं कोशगुप्तासिवत्सदा ॥ संग्रामेऽथ समुत्पन्ने भीषयन्ति प्रभुं सदा ॥ ६१ ॥ विश्वासस्तु न कर्तव्यस्तेषां राजन्कदाचन ॥ विश्वासे कार्यहानिः स्यान्मंत्रहानिः सदैव हि ॥६२॥ खलाः किं किं न कुर्वंति विश्वस्ता लोभतत्पराः ॥ तामसाः पापनिरता बुद्धिहीनाः शठास्तथा ॥६३॥ तस्मात्कार्यं करिष्यामि गत्वाऽहं रणमस्तके ॥ चिन्ता त्वया न कर्तव्या सर्वथा नृपसत्तम ॥ ६४ ॥ गृहीत्वा तां दुराचारामागमिष्यामि सत्वरः ॥ पश्य मेऽद्य बलं धैर्यं प्रभुकार्यं स्वशक्तितः ॥६५॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

उसी प्रकार वे भी छिपे-छिपे अपने प्रभुके कार्यमें बाधा डालते हैं। जब युद्ध छिड़ जाता है, तब वे प्रभुको डराया करते हैं ॥ ६१ ॥ हे राजन् ! ऐसे मंत्रियोंपर राजाको कदापि विश्वास नहीं करना चाहिए। क्योंकि उनपर विश्वास करनेसे काम बिगड़ जाता है और मन्त्रभेद तो सदा होता ही रहता है ॥ ६२ ॥ विश्वासप्राप्त, लोभी, तमोगुणी, पापपरायण, बुद्धिहीन, शठ तथा खल मंत्री क्या-क्या अनर्थ नहीं कर गुजरते ? ॥ ६३ ॥ हे नृपसत्तम ! अतएव मैं स्वयं रणभूमिमें जाकर आपका कार्य सम्पन्न करूँगा। आप किसी बातकी चिंता न करें ॥ ६४ ॥ मैं उस दुराचारिणी रमणीको शीघ्र पकड़कर आपके पास ले आऊँगा। मैं अपनी पूरी शक्तिसे आपका काम करूँगा। आप मेरा बल और धैर्य देखें ॥ ६५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृत 'पीताम्बरा' भाषाटीकायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

(देवीके हाथों बाष्कल और दुर्मुखका वध) व्यासजी बोले—हे महाराज ! ऐसा कहकर मदान्ध और सभी शस्त्रास्त्रोंके उपयोगमें निपुण महाबाहु दैत्य बाष्कल और दुर्मुख चल पड़े ॥ १ ॥ वे मदोन्मत्त दानव देवीके पास पहुँचकर मेघसदृश गंभीर वाणीमें बोले—॥ २ ॥ हे देवि ! जिन महात्मा महिषने सब देवताओंको परास्त कर दिया है, उन सर्व-दैत्याधिपति महाराज महिषको आप अपना पति बना लें ॥ ३ ॥ वे सभी शुभ लक्षणोंसे युक्त मनुष्यका रूप धारण करके दिव्य आभूषण पहनकर आयेंगे और आपसे एकान्तमें मिलेंगे ॥४॥ हे सुन्दर मुसकानवाली सुन्दरी ! उन्हें पति बना लेनेपर आपको तीनों लोकका वैभव प्राप्त हो जायगा । अतएव हे कान्ते ! आप उनके प्रति आन्तरिक प्रेम करें ॥ ५ ॥ हे कोकिलवयनी ! महावीर राजा महिषको अपना पति बनाकर आप संसारका अद्भुत सुख प्राप्त करेंगी । क्योंकि स्त्रियोंको यही प्राप्त करनेकी लालसा रहती है ॥६॥ देवी बोलीं—क्या तूने मुझे कोई कामातुरा स्त्री समझ रक्खा है ? क्या मेरी बुद्धि और शक्ति लुप्त हो गयी है कि जो मैं उस शठ महिषको अपना पति बना लूँ ॥७॥ कुल, शील और गुण समान तथा रूप, चातुर्य, बुद्धि, शील तथा गुण

॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्त्वा तौ महाबाहू दैत्यौ बाष्कलदुर्मुखौ ॥ जग्मतुर्मददिग्धांगौ सर्वशस्त्रास्त्रकोविदौ ॥ १ ॥ तौ गत्वा समरे देवीमूचतुर्वचनं तदा ॥ दानवौ च मदोन्मत्तौ मेघगंभीरया गिरा ॥ २ ॥ देवि देवा जिता येन महिषेण महात्मना ॥ वरय त्वं वरारोहे सर्वदैत्याधिपं नृपम् ॥ ३ ॥ स कृत्वा मानुषं रूपं सर्वलक्षणसंयुतम् ॥ भूषितं भूषणैर्दिव्यैस्त्वामेष्यति रहः किल ॥ ४ ॥ त्रैलोक्यविभवं कामं त्वमेष्यसि शुचिस्मिते ॥ महिषे परमं भावं कुरु कांते मनोगतम् ॥ ५ ॥ कृत्वा पतिं महावीरं संसारसुखमद्भुतम् ॥ त्वं प्राप्स्यसि पिकालापे योषितां खलु वांछितम् ॥ ६ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ जाल्म त्वं किं विजानासि नारीयं काममोहिता ॥ मंदबुद्धिबलाऽत्यर्थं भजेयं महिषं शठम् ॥ ७ ॥ कुलशीलगुणैस्तुल्यं तं भजंति कुलस्त्रियः ॥ अधिकं रूपचातुर्यबुद्धिशीलक्षमादिभिः ॥ ८ ॥ का नु कामातुरा नारी भजेच्च पशुरूपिणम् ॥ पशूनामधमं नूनं महिषं देवरूपिणी ॥ ९ ॥ गच्छ तं महिषं तूर्णं भूपं बाष्कलदुर्मुखौ ॥ वदतं तद्वचो दैत्यं गजतुल्यं विषाणिनम् ॥ १० ॥ पातालं गच्छ वाऽभ्येत्य संग्रामं कुरु वा मया ॥ रणे जाते सहस्राक्षो निर्भयः स्यादिति ध्रुवम् ॥ ११ ॥ हत्वाऽहं त्वां गमिष्यामि नान्यथा गमनं मम ॥ इत्थं ज्ञात्वा सुदुर्बुद्धे यथेच्छसि तथा कुरु ॥ १२ ॥ मामनिर्जित्य भूभागे न स्थानं ते कदाचन ॥ भविष्यति चतुष्पाद दिवि वा गिरिकंदरे ॥ १३ ॥ व्यास उवाच ॥

अधिक होनेपर ही कुलवन्ती नारियाँ किसीको अपना पति बनाती हैं ॥ ८ ॥ और फिर कोई देवस्वरूपा नारी कामपीडिता होनेपर भी उस पशुरूपधारी तथा पशुओंमें भी अधम महिषको कैसे अपना पति बनायेगी ? ॥ ९ ॥ हे बाष्कल और दुर्मुख ! तुम तत्काल राजा महिषके पास जाकर हाथी सदृश भीमकाय तथा शृंगधारी उस दैत्यसे मेरा सन्देश कह सुनाओ ॥ १० ॥ उससे कहो—तुम या तो पाताल चले जाओ अथवा यहाँ आकर मेरे साथ युद्ध करो । युद्ध छिड़ जानेपर इन्द्र अवश्य निर्भय हो जायँगे ॥११॥ मैं तो तेरा वध करके ही यहाँसे लौटूँगी—अन्यथा नहीं । ऐसा समझकर अरे दुर्बुद्धे ! जैसी तेरी इच्छा हो, वह कर ॥ १२ ॥ मुझे पराजित किये बिना तुझे पृथिवी, देवलोक तथा गिरिकन्दरामें कहीं भी अपने चारों पाँव रखनेकी जगह न मिलेगी ॥ १३ ॥ व्यासजी बोले कि देवीके ऐसा कहनेपर क्रोधसे उन दोनों दैत्योंके नेत्र लाल हो गये । तत्काल धनुष-बाण धारण करके वे दोनों युद्ध करनेको तैयार

हो गये। तब भगवती घोर गर्जना करके निर्भय खड़ी रहीं और उन दैत्योंने तीव्र बाणवर्षा आरम्भ कर दी ॥ १४ ॥ १५ ॥ तदनन्तर देवताओंकी कार्यसिद्धिके लिए भगवती भी बहुत ही मधुर निनाद करके उन दैत्योंपर बाणवर्षा करने लगीं ॥१६॥ उन दोनों दैत्योंमेंसे पहले बाष्कल देवीके सामने गया और दुर्मुख प्रेक्षकरूपसे अलग खड़ा रहा ॥ १७ ॥ तब देवी महालक्ष्मी तथा बाष्कलमें बाण, तलवार और मुद्गरके प्रहार द्वारा बड़ा भीषण युद्ध आरम्भ हो गया। जिसे देखकर निर्बल हृदयवाले लोग काँप उठे ॥१८॥ कुछ देर बाद क्रुद्ध होकर जगदम्बाने पत्थरकी सानपर चढ़ाकर तीक्ष्ण किये हुए पाँच बाणोंसे युद्धके लिए मतवाले बाष्कलपर प्रहार किया ॥ १९ ॥ उस दानवने भी अपने तीखे बाणोंसे उन्हें काटकर सिंहपर सवार भगवतीपर सात बाण चलाये ॥ २० ॥ देवीने भी उसके बाणोंको काटकर पानी चढ़ाकर तीक्ष्ण किये हुए दस बाणोंसे बाष्कलपर प्रहार किया और बार-बार ठठाकर हँसने लगीं ॥ २१ ॥ तदनन्तर देवीने अपने

इत्युक्तौ तौ तया दैत्यौ कोपाकुलितलोचनौ ॥ धनुर्बाणधरौ वीरौ युद्धकामौ बभूवतुः ॥ १४ ॥ कृत्वा सुविपुलं नादं देवी सा निर्भया स्थिता ॥ उभौ च चक्रतुस्तीव्रां बाणवृष्टिं कुरूद्वह ॥ १५ ॥ भगवत्यपि बाणौघान्मुमोच दानवौ प्रति ॥ कृत्वाऽतिमधुरं नादं देवकार्यार्थसिद्धये ॥ १६ ॥ ययोस्तु बाष्कलस्तूर्णं संमुखोऽभूद्रणांगणे ॥ दुर्मुखः प्रेक्षकस्तत्र देवीमभिमुखः स्थितः ॥ १७ ॥ तयोर्युद्धमभूद्घोरं देवीबाष्कलयोस्तदा ॥ बाणासिपरिघाघातैर्भयदं मंदचेतसाम् ॥ १८ ॥ ततः क्रुद्धा जगन्माता दृष्ट्वा तं युद्धदुर्मदम् ॥ जघान पंचभिर्बाणैः कर्णाकृष्टैः शिलाशितैः ॥ १९ ॥ दानवोऽपि शरान्देव्याश्चिच्छेद निशितैः शरैः ॥ सप्तभिस्ताडयामास देवीं सिंहोपरि स्थिताम् ॥२०॥ साऽपि तं दशभिस्तीक्ष्णैः सुपीतैः सायकैः खलम् ॥ जघान तच्छरांश्छित्त्वा जहास च मुहुर्मुहुः ॥ २१ ॥ अर्धचन्द्रेण बाणेन चिच्छेद च शरासनम् ॥ बाष्कलोऽपि गदां गृह्य देवीं हंतुमुपाययौ ॥२२॥ आगच्छंतं गदापाणिं दानवं मदगर्वितम् ॥ चंडिका स्वगदापातैः पातयामास भूतले ॥ २३ ॥ बाष्कलः पतितो भूमौ मुहूर्तादुत्थितः पुनः ॥ चिक्षेप च गदां सोऽपि चंडिकां चंडविक्रमः ॥ २४ ॥ तमागच्छंतमालोक्य देवी शूलेन वक्षसि ॥ जघान बाष्कलं क्रुद्धा पपात च ममार सः ॥ २५ ॥ पतिते बाष्कले सैन्यं भग्नं तस्य दुरात्मनः ॥ जयेति च मुदा देवाश्चुक्रुशुर्गगने स्थिताः ॥ २६ ॥ तस्मिंश्च निहते दैत्ये दुर्मुखोऽतिबलान्वितः ॥ आजगाम रणे देवीं क्रोधसंरक्तलोचनः ॥ २७ ॥ तिष्ठ तिष्ठाबले सोऽपि भाषमाणः पुनः पुनः ॥ धनुर्बाणधरः श्रीमान्रथस्थः कवचावृतः ॥ २८ ॥

अर्धचन्द्राकार बाणसे बाष्कलका धनुष काट डाला। तब बाष्कल गदा लेकर देवीको मारने दौड़ा ॥२२॥ हाथमें गदा लिये उस मदमत्त दानवको अपनी ओर आते देखकर भगवतीने अपनी गदाका प्रहार करके उसे धराशायी कर दिया ॥२३॥ किन्तु मुहूर्त भर बाद वह फिर उठ खड़ा हुआ और उस प्रचण्ड पराक्रमी वीरने भगवतीपर अपनी गदा चला दी ॥२४॥ गदाको आती देखकर कुपित जगदम्बाने उसके वक्षःस्थलमें त्रिशूल भोंक दिया, जिससे वह गिरकर मर गया ॥ २५ ॥ बाष्कलके गिरते ही उस दुष्टकी सेना भाग गयी और आकाशमण्डलमें विद्यमान देवता भगवतीकी जयजयकार करने लगे ॥ २६ ॥ इस प्रकार बाष्कलका प्राणान्त हो जानेपर महाबली दुर्मुख क्रोधसे आँखें लाल करके रणभूमिमें देवीके समक्ष आया ॥ २७ ॥ उस समय वह 'अरी अबले! खड़ी रह-खड़ी रह' ऐसा कह रहा था। वह धनुष-बाण तथा कवच धारण करके रथपर सवार था ॥२८॥ उसे अपनी ओर आते देखकर देवीने शंखध्वनि की और उसको

कुपित करनेके लिए धनुषका टंकोर किया ॥२९॥ उनके समक्ष पहुँचते ही दुर्मुख सर्पके समान विषैले बाणोंकी वर्षा करने लगा । महामायाने उसके बाणोंको व्यर्थ कर दिया और गर्जन करने लगीं ॥ ३० ॥ हे राजन् ! उन दोनोंमें परस्पर बड़ा भयानक युद्ध हुआ । उस युद्धमें बाण, बर्छी, गदा, मुशल और तोमर (गँड़ासा) का खुलकर प्रयोग किया गया ॥ ३१ ॥ कुछ ही देर बाद रणभूमिमें रुधिरकी नदी बह चली । उसके तटपर गिरे हुए सिर ऐसे लग रहे थे, जैसे नये आगन्तुकोंको उस रणनदीमें तैरना सीखनेके लिए यमदूतोंने बहुतेरी तुम्बियाँ लाकर रख दी हों ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ रणमें कटकर गिरी लाशोंको भेड़िये आदि मांसाहारी पशु नोच-नोचकर खाने लगे और लाशोंकी अधिकतासे रास्तेपर चलना दूभर हो गया ॥ ३४ ॥ सियार, कुत्ते, कौवे, कंकपक्षी, लौहचंचु गिद्ध और बाज उन्हें खा रहे थे ॥३५॥ मुर्दोंके शरीरका स्पर्श करके बहनेवाली हवा बड़ी दुर्गन्धित थी और मांसाहारी पक्षियोंकी किलकारी सुनायी

तमागच्छंतमालोक्य देवी शंखमवादयत् ॥ कोपयंती दानवं तं ज्याघोषं च चकार ह ॥२९॥ सोऽपि बाणान्मुमोचाशु तीक्ष्णानाशीविषोपमान् ॥ स्वबाणैस्तान्महामाया चिच्छेद च ननाद च ॥ ३० ॥ तयोः परस्परं युद्धं बभूव तुमुलं नृप ॥ बाणशक्तिगदाघातैर्मुसलैस्तोमरैस्तथा ॥ ३१ ॥ रणभूमौ तदा जाता रुधिरौघवहा नदी ॥ पतितानि तदा तीरे शिरांसि प्रबभुस्तदा ॥ ३२ ॥ यथा संतरणार्थाय यमकिंकरनायकैः ॥ तुंबीफलानि नीतानि नवशिक्षापरैर्मुदा ॥ ३३ ॥ रणभूमिस्तदा घोरा बभूवातीव दुर्गमा ॥ शरीरैः पतितैर्भूमौ खाद्यमानैर्वृकादिभिः ॥ ३४ ॥ गोमायुसारमेयाश्च काकाः कंका अयोमुखाः ॥ गृध्राः श्येनाश्च खादंति शरीराणि दुरात्मनाम् ॥ ३५ ॥ ववौ वायुश्च दुर्गंधो मृतानां देहसंगतः ॥ अभूत्किलकिलाशब्दः खगानां पलभक्षिणाम् ॥ ३६ ॥ तदा चुकोप दुष्टात्मा दुर्मुखः कालमोहितः ॥ देवीमुवाच गर्वेण कृत्वा चोर्ध्वकरं शुभम् ॥ ३७ ॥ गच्छ चंडि हनिष्यामि त्वामद्यैव सुबालिशे ॥ दैत्यं वा भज वामोरु महिषं मदगर्वितम् ॥ ३८ ॥ देव्युवाच ॥ आसन्नमरणः कामं प्रलपस्यद्य मोहितः ॥ अद्यैव त्वां हनिष्यामि यथाऽयं बाष्कलो हतः ॥३९॥ गच्छ वा तिष्ठ वा मन्द मरणं यदि रोचते ॥ हत्वा त्वां वै वधिष्यामि बालिशं महिषीसुतम् ॥४०॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्या दुर्मुखो मर्तुमुद्यतः ॥ मुमोच बाणवृष्टिं तु चंडिकां प्रति दारुणाम् ॥ ४१ ॥ साऽपि तां तरसा छित्त्वा बाणवृष्टिं शितैः शरैः ॥ जघान दानवं क्रुद्धा वृत्रं वज्रधरो यथा ॥ ४२ ॥ तयोः परस्परं युद्धं संजातं चातिकर्कशम् ॥ भयदं कातराणां च शूराणां

दे रही थी ॥ ३६ ॥ तब कालके वशीभूत दुष्ट दुर्मुख अत्यन्त क्रुद्ध हो उठा । उसने गर्वके साथ दाहिनी भुजा उठाकर देवीसे कहा—॥ ३७ ॥ हे चण्डिके ! तुम यहाँसे भाग जाओ । नहीं तो ओ मूर्ख नारी ! मैं तुझे अभी मार डालूँगा । अथवा चलकर हे सुजंघे ! मदसे मत्त हमारे स्वामी राजा महिषकी सेवकाई करो ॥ ३८ ॥ देवी बोलीं—ऐसा मालूम होता है कि तेरी मृत्यु समीप है । तभी तू इस प्रकार प्रलाप कर रहा है। अभी मैं तुझे उसी प्रकार मार डालूँगी, जैसे बाष्कलको मारा है॥३९॥ अच्छा तो यह हो कि तू अभी भाग जा और यदि मरनेकी ही इच्छा हो तो खड़ा रहा । तुझे मारनेके बाद मैं मूर्ख महिषासुरको भी समाप्त कर दूँगी ॥ ४० ॥ देवीके वचन सुनकर मरणोन्मुख दुर्मुख भगवती चण्डिकाके ऊपर प्रबल बाणवृष्टि करने लगा ॥ ४१ ॥ भगवतीने भी अपने तीक्ष्ण बाणोंसे उसके प्रहारको व्यर्थ करके उस दुष्टपर उसी प्रकारका आघात किया, जैसे पूर्वकालमें इन्द्रने वृत्रासुरपर वज्रप्रहार किया था ॥ ४२ ॥ अब उन दोनोंमें

भगवतीने भी अपने तीक्ष्ण बाणोंसे उसके प्रहारको व्यर्थ करके उस दुष्टपर उसी प्रकारका आघात किया, जैसे पूर्वकालमें इन्द्रने वृत्रासुरपर वज्रप्रहार किया था ॥ ४२ ॥ अब उन दोनोंमें

बड़ा भीषण युद्ध आरम्भ हो गया। जिसे देखकर कायर काँप उठे और वीरोंका उत्साह बढ़ गया ॥४३॥ उसी समय देवीने बड़ी फुर्तीके साथ पाँच बाणोंसे दुर्मुखके हाथका धनुष काट डाला और उसके रथको चूर-चूर कर दिया ॥४४॥ रथ भग्न हो जानेपर महाबाहु दुर्मुख अपनी भयानक गदा लेकर पैदल ही भगवतीकी ओर झपटा ॥४५॥ उनके पास पहुँचकर उसने सिंहके मस्तकपर प्रहार कर दिया। किन्तु महाबली सिंह उसके गदाघातसे तनिक भी विचलित नहीं हुआ ॥४६॥ उसी समय जगदम्बाने गदा लिये दुर्मुखको समीप उपस्थित देखकर अपनी तीक्ष्ण धारवाली तलवारसे उसका किरीटमण्डित मस्तक काटकर गिरा दिया ॥ ४७ ॥ इस प्रकार मस्तक कट जानेपर वह दैत्य जमीनपर गिर पड़ा। उस समय देवताओंने मुदित होकर देवीकी जयजयकार की ॥४८॥ दुष्ट दुर्मुखके मर जानेपर आकाशमें विद्यमान देवताओंने स्तुति करते हुए जय-जयकार किया और देवीपर पुष्पवर्षा की ॥ ४९ ॥ रणभूमिमें उस महान् दानवका

बलवर्धनम् ॥ ४३ ॥ देवी चिच्छेद तरसा धनुस्तस्य करे स्थितम् ॥ तथैव पञ्चभिर्बाणैर्बभंज रथमुत्तमम् ॥ ४४ ॥ रथे भग्ने महाबाहुः पदातिर्दुर्मुखस्तदा ॥ गदां गृहीत्वा दुर्धर्षां जगाम चंडिकां प्रति ॥ ४५ ॥ चकार स गदाघातं सिंहमौलौ महाबलः ॥ न चचाल हरिः स्थानात्ताडितोऽपि महाबलः ॥ ४६ ॥ अंबिका तं समालोक्य गदापाणिं पुरः स्थितम् ॥ खड्गेन शितधारेण शिरश्चिच्छेद मौलिमत् ॥४७॥ छिन्ने च मस्तके भूमौ पपात दुर्मुखो मृतः ॥ जयशब्दं तदा चक्रुर्मुदिता निर्जरा भृशम् ॥ ४८ ॥ तुष्टुवुस्तां तदा देवीं दुर्मुखे निहतेऽमराः ॥ पुष्पवृष्टिं तथा चक्रुर्जयशब्दं नभःस्थिताः ॥ ४९ ॥ ऋषयः सिद्धगंधर्वाः सविद्याधरकिन्नराः ॥ जहृषुस्तं हतं दृष्ट्वा दानवं रणमस्तके ॥ ५० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कंधे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

॥ व्यास उवाच ॥ दुर्मुखं निहतं श्रुत्वा महिषः क्रोधमूर्छितः ॥ उवाच दानवान्सर्वान्किं जातमिति चासकृत् ॥ १ ॥ निहतौ दानवौ शूरौ रणे दुर्मुखबाष्कलौ ॥ तन्व्या तत्परमाश्चर्यं पश्यंतु दैवचेष्टितम् ॥ २ ॥ कालो हि बलवान्कर्ता सततं सुखदुःखयो ॥ नराणां परतंत्राणां पुण्यपापानुयोगतः ॥ ३ ॥ निहतौ दानवश्रेष्ठौ किं कर्तव्यमतः परम् ॥ ब्रुवंतु मिलिताः सर्वे सद्युक्तं कार्यसंकटे ॥ ४ ॥ एवं ब्रुवति राजेंद्रे महिषेऽतिबला-

मरण देखकर ऋषि, सिद्ध, गन्धर्व, विद्याधर और किन्नर आनन्दित हो उठे ॥ ५० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे भाषाटीकायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

(भगवती द्वारा ताम्र और चिक्षुरका वध) व्यासजी बोले—हे महाराज ! दुर्मुखके निधनका समाचार सुनकर महिष मारे क्रोधके पागल हो गया। तत्काल सब दानवोंको बुलाकर वह बारम्बार यही कहने लगा कि यह क्या हो गया ? ॥ १ ॥ मेरे दो प्रमुख दानववीर उस दुबली-पतली महिलाके हाथों मारे गये ! भाग्यका खेल तो देखिए। यह कितने आश्चर्यकी बात है ॥ २ ॥ समय बड़ा बलवान् होता है और वही सुख-दुःखका निर्माण करता है। मनुष्य तो पाप-पुण्यके प्रपंचमें पड़कर सदा परतंत्र रहता है ॥ ३ ॥ हाँ, तो वे दोनों श्रेष्ठ दानव मारे जा चुके। अब इसके बाद हमें क्या करना चाहिए ? ऐसे संकटकालमें जो कर्तव्य हो, उसे आप सब मिलकर निर्धारित कर लें और मुझे बतायें ॥ ४ ॥ व्यासजी बोले—हे राजेन्द्र !

महाबली महिषके ऐसा कहनेपर महारथी सेनापति चिक्षुरने कहा—हे राजन् ! मैं उसे मारूँगा । स्त्रीको मारना कौन बड़ी बात है ? ऐसा कहकर चिक्षुर रथपर सवार हुआ और अपने साथ विशाल सेना लेकर चल पड़ा ॥ ५ ॥ ६ ॥ अपने पृष्ठपोषकके रूपमें महाबली ताम्रको भी उसने साथ ले लिया । उसकी सेनाके कोलाहलसे समस्त आकाश और दसों दिशायें गूँज उठीं ॥ ७ ॥ उसे आते देखकर भगवती शिवाने अपना शंख तथा घण्टा बजाया और धनुषका विकराल टंकोर किया ॥८॥ उन तीनोंके एक साथ उठे हुए घनघोर निनादसे सभी दैत्य भयभीत हो गये । 'यह कैसा शब्द है ?' यों कहकर भयसे काँपते हुए वे सब भागने लगे ॥ ९ ॥ उन्हें इस प्रकार भागते देख चिक्षुरने अत्यन्त कुपित होकर कहा— तुम लोगोंके हृदयमें इतना आतंक क्यों समा गया ? ॥ १० ॥ मैं अभी इस मदोद्धत युवतीको अपने बाणोंसे मार डालूँगा । हे दैत्यवीरो ! तुम लोग निर्भय होकर समरभूमिमें डट जाओ' ॥११॥ ऐसा कहकर दानववीर चिक्षुर हाथमें धनुष लेकर अपनी सेनाके साथ रणभूमिमें पहुँचा और निर्भय होकर उसने देवीसे कहा—॥ १२ ॥ हे विशालनयनी ! तुम असैनिक लोगोंपर आतंक फैलाती हुई क्यों

न्विते ॥ चिक्षुराख्यस्तु सेनानीस्तमुवाच महारथः ॥ ५ ॥ राजन्नहं हनिष्यामि का चिंता स्त्रीविहिंसने ॥ इत्युक्त्वा स्वबलैर्युक्तः प्रययौ रथसंयुतः ॥ ६ ॥ द्वितीयं पार्ष्णिरक्षं तु कृत्वा ताम्रं महाबलम् ॥ महता सैन्यघोषेण पूरयन्गगनं दिशः ॥ ७ ॥ तमागच्छंतमालोक्य देवी भगवती शिवा ॥ चकार शंखज्याघोषं घंटानादं महाऽद्भुतम् ॥ ८ ॥ तत्रसुस्तेन शब्देन ते च सर्वे सुरारयः ॥ किमेतदिति भाषंतो दुद्रुवुर्भयकंपिताः ॥९॥ चिक्षुराख्यस्तु तान्दृष्ट्वा पलायनपरायणान् ॥ उवाचातीव संक्रुद्धः किं भयं वः समागतम् ॥ १० ॥ अद्यैवाहं हनिष्यामि बाणैर्बालां मदोन्नताम् ॥ तिष्ठंत्वत्र भयं त्यक्त्वा दैत्याः समरमूर्धनि ॥ ११ ॥ इत्युक्त्वा दानवश्रेष्ठश्चापपाणिर्बलान्वितः ॥ आगत्य संगरे देवीमित्युवाच गतव्यथः ॥ १२ ॥ किं गर्जसि विशालाक्षि भीषयन्तीतरान्नरान् ॥ नाहं बिभेमि तन्वंगि श्रुत्वा तेऽद्य विचेष्टितम् ॥ १३ ॥ स्त्रीवधे दूषणं ज्ञात्वा तथैवाकीर्तिसंभवम् ॥ उपेक्षां कुरुते चित्तं मदीयं वामलोचने ॥ १४ ॥ स्त्रीणां युद्धं कटाक्षैश्च तथा हावैश्च सुंदरि ॥ न शस्त्रैर्विहितं क्वापि त्वादृशीनां कदाचन ॥ १५ ॥ पुष्पैरपि न योद्धव्यं किं पुनर्निशितैः शरैः ॥ भवादृशीनां देहेषु दुनोति मालतीदलम् ॥ १६ ॥ धिग्जन्म मानुषे लोके क्षात्रधर्मानुजीविनाम् ॥ लालितोऽयं प्रियो देहः कृंतनीयः शितैः शरैः ॥१७॥ तैलाभ्यंगैः पुष्पवातैस्तथा मिष्टान्नभोजनैः ॥ पोषितोऽयं प्रियो देहो घातनीयः

गर्जन कर रही हो ? हे कोमलाङ्गी ! तुम्हारी इन चेष्टाओंको मैंने पहलेसे ही सुन रक्खा है । इसी कारण मैं तुमसे तनिक भी नहीं डरता ॥१३॥ हे सुनयनी ! स्त्रीका वध करनेसे दोष होता है और अपयश मिलता है । इसी कारण तुम्हें मारनेको मन नहीं करता ॥ १४ ॥ हे सुन्दरी ! स्त्रियोंका युद्ध तो कटाक्षों तथा हाव-भावोंसे होता है । किन्तु तुम जैसी सुन्दरी महिलाका इस प्रकार शस्त्रास्त्रसे सुसज्जित होकर युद्ध करनेकी बात मैंने कभी नहीं सुनी ॥१५॥ तुम्हें तो पुष्पोंसे भी युद्ध नहीं करना चाहिए । फिर तीक्ष्ण बाणोंसे लड़नेकी तो बात ही क्या है ? तुम जैसी सुन्दरियोंका कोमल शरीर तो मालतीकी पंखुड़ीसे भी दुखने लगता है ॥१६॥ इस मनुष्यलोकमें क्षात्रधर्मका अनुगमन करनेवाले लोगोंके जीवनको धिक्कार है । क्योंकि वे बड़े प्यारसे पले हुए अपने शरीरको तीक्ष्ण बाणोंसे छेदवाते रहते हैं ॥ १७ ॥ तेलकी मालिश, फूलोंकी हवा और सुस्वादु अन्नके भोजनसे पले हुए अपने प्रिय शरीरको वे शत्रुओंके तीखे बाणोंसे बिंधवाते हैं

हुए अपने शरीरको तीक्ष्ण बाणोंसे छेदवाते रहते हैं ॥ १७ ॥ तेलकी मालिश, फूलोंकी हवा और सुस्वादु अन्नके भोजनसे पले हुए अपने प्रिय शरीरको वे शत्रुओंके तीखे बाणोंसे बिंधवाते हैं

॥१८॥ लोग कहते हैं कि तलवारकी धारसे देह कटवानेवाले लोग ही धनका संचय कर पाते हैं। किन्तु ऐसे धनको धिक्कार है। जो पहले ही इतना दुखदायी होता है, वह धन बादमें भला क्या सुख देगा ? ॥१९॥ हे सुजंघे ! आप भी एकदम अज्ञ हैं। क्योंकि युद्ध करना चाहती हैं। सम्भोगजनित सुख त्यागकर आप युद्धमें कौन-सा गुण देखती हैं ? ॥२०॥ युद्धमें तलवारकी मार खानी पड़ती है, गदाकी चोट सहनी पड़ती है और बाणोंसे शरीर बिंधवाना पड़ता है और अन्तमें मर जानेपर सियारोंके मुखसे शरीर नोचवाकर अन्तिम संस्कार कराना होता है ॥२१॥ ऐसे दुःखदायी युद्धकी प्रशंसा करते हुए धूर्त कवि कहते हैं कि रणभूमिमें मरनेवालोंको स्वर्ग प्राप्त होता है। लेकिन उनके कथनमें तथ्य नहीं है ॥२२॥ अतएव हे सुंदरी ! आपका जहाँ जी चाहे, वहाँ चली जायँ। अथवा इच्छा हो तो मेरे स्वामी और देवताओंके विजेता महाराज महिषको अपना पति बनाकर उनकी सेवा करिए ॥२३॥ व्यासजी बोले—ऐसा कहते हुए दैत्य चिक्षुरसे भगवती जगदम्बाने कहा—अरे मूढ़ ! तू किसी बुद्धिमान् पण्डितके समान व्यर्थ क्यों बकवास कर रहा है ? ॥ २४ ॥ न तू नीतिशास्त्र जानता है और न तुझे

परेषुभिः ॥ १८ ॥ देहं छित्त्वाऽसिधाराभिर्धनभृज्जायते नरः ॥ धिग्धनं दुःखदं पूर्वं पश्चात्किं सुखदं भवेत् ॥ १९ ॥ त्वमप्यज्ञैव वामोरु युद्धमाकांक्षसे यतः ॥ सुखं संभोगजं त्यक्त्वा कं गुणं वेत्सि संगरे ॥२०॥ खड्गपातं गदाघातं भेदनं च शिलीमुखैः ॥ मरणांते तु संस्कारो गोमायुमुखकर्षणम् ॥ २१ ॥ तस्यैव कविभिर्धूर्तैः कृतं चातीव शंसनम् ॥ रणे मृतानां स्वःप्राप्तिरर्थवादोऽस्ति केवलः ॥ २२ ॥ तस्माद्गच्छ वरारोहे यत्र ते रमते मनः ॥ भज वा भूपतिं नाथं हयारिं सुरमर्दनम् ॥२३॥ एवं ब्रुवाणं तं दैत्यं प्रोवाच जगदंबिका ॥ किं मृषा भाषसे मूढ बुद्धिमानिव पंडितः ॥ २४ ॥ नीतिशास्त्रं न जानासि विद्यां चान्वीक्षिकीं तथा ॥ न सेवितास्त्वया वृद्धा न धर्मे मतिरस्ति ते ॥ २५ ॥ मूर्खसेवापरो यस्मात्तस्मात्त्वं मूर्ख एव हि ॥ राजधर्मं न जानासि किं ब्रवीषि ममाग्रतः ॥ २६ ॥ संग्रामे महिषं हत्वा कृत्वा रुधिरकर्दमम् ॥ यशःस्तम्भं स्थिरं कृत्वा गमिष्यामि यथासुखम् ॥ २७ ॥ देवानां दुःखदातारं दानवं मदगर्वितम् ॥ हनिष्येऽहं दुराचारं युद्धं कुरु स्थिरो भव ॥ २८ ॥ जीवितेच्छाऽस्ति चेन्मूढ महिषस्य तथा तव ॥ तदा गच्छंतु पातालं दानवाः सर्व एव ते ॥ २९ ॥ मुमूर्षा यदि वश्चित्ते युद्धं कुर्वन्तु सत्वराः ॥ सर्वानेव वधिष्यामि निश्चयोऽयं ममाधुना ॥ ३० ॥ व्यास उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य दानवो बलदर्पितः ॥ मुमोच बाणवृष्टिं तां घनवृष्टिमि-

आन्वीक्षिकी विद्या (आत्मशास्त्र) का ज्ञान है, न तूने वृद्धजनोंका सत्सङ्ग किया है और न धर्ममें ही तेरी आस्था है ॥ २५ ॥ तू सदा उस मूर्ख महिषकी सेवा करता है। अतएव तू भी मूर्ख हो गया है। तुझे राजधर्मका भी कुछ ज्ञान नहीं है। तब तू मेरे आगे क्या बक रहा है ? ॥२६॥ समरभूमिमें महिषको मारकर उसके रुधिरसे पृथ्वीपर कीचड़ करके उसी स्थानपर अपना कीर्तिस्तम्भ गाड़कर मैं सानन्द लौट जाऊँगी ॥२७॥ देवताओंको दुःख देनेवाले मदमत्त और दुराचारी महिषको मैं अवश्य मारूँगी। तू यहीं खड़ा रह और मेरे साथ युद्ध कर ॥२८॥ ओ मूढ़ ! यदि उस दुष्ट महिष तथा तेरी जीवित रहनेकी इच्छा हो तो सभी दानव तत्काल पाताल चले जायँ ॥२९॥ यदि तुम सब मरना ही चाहते हो तो शीघ्र आकर मेरे साथ युद्ध करो। मेरा यह दृढ़ संकल्प है कि मैं सभी दानवोंकी मार डालूँगी ॥ ३० ॥ व्यासजी बोले—देवीके वचन सुनकर बलमदसे चूर दानव चिक्षुर इस प्रकार भीषण बाणवर्षा करने लगा

कि जैसे कोई बादल जल बरसा रहा हो ॥३१॥ किन्तु भगवती जगदम्बाने अपने बाणोंसे उसके सभी बाणोंको काट डाला और सर्पके समान विषैले तथा भयानक बाणोंसे उसपर प्रहार किया ॥ ३२ ॥ उस समय उन दोनोंमें विस्मयजनक युद्ध हुआ । अवसर पाकर जगदम्बाने उसके ऊपर अपनी गदाका प्रहार करके उसे रथसे नीचे गिरा दिया ॥ ३३ ॥ इस गदाप्रहारसे आहत होकर चिक्षुर मूर्छित हो गया और दो मुहूर्ततक रथके पास अचेत होकर पड़ा रहा ॥३४॥ उसे इस प्रकार मूर्छित देखकर शत्रुसेनाका मान मर्दन करनेवाला ताम्र उतावला होकर चंडिकाके साथ युद्ध करनेके लिए रणभूमिमें जा पहुँचा ॥३५॥ उसे आते देखकर भगवती चण्डिकाने हँसकर कहा——आओ, हे दानवश्रेष्ठ! आओ । मैं तुम्हें भी यमलोक भेज दूँ ॥३६॥ तुम जैसे निर्बल और गतायु (जिनके जीवनके दिन पूरे हो चुके हैं) सैनिक रणभूमिमें क्यों आते हैं ? वह मूर्ख पशु महिष घरमें बैठा-बैठा जीनेकी कौनसी तदबीर कर रहा है ॥३७॥ अबतक वह

वापराम् ॥३१॥ चिच्छेद तस्य सा बाणान्स्वबाणैर्निशितैस्तदा ॥ जघान तं तथा घोरैराशीविषसमैः शरैः ॥३२॥ युद्धं परस्परं तत्र बभूव विस्मयप्रदम् ॥ गदया पातयामास तं रथाज्जगदंबिका ॥ ३३ ॥ मूर्छां प्राप स दुष्टात्मा गदयाऽभिहतो भृशम् ॥ मुहूर्तद्वयमात्रं तु रथोपस्थ इवाचलः ॥३४॥ तं तथा मूर्छितं दृष्ट्वा ताम्रः परबलार्दनः ॥ आजगाम रणे योद्धुं चंडिकां प्रति चापलात् ॥ ३५ ॥ आगच्छंतं तु तं वीक्ष्य हसंती प्राह चंडिका ॥ एह्येहि दानवश्रेष्ठ यमलोकं नयाम्यहम् ॥ ३६ ॥ किं भवद्भिः समायातैरबलैश्च गतायुषैः ॥ महिषः किं गृहे मूढः करोति जीवनोद्यमम् ॥३७॥ किं भवद्भिर्हतैर्मंदैर्ममापि विफलः श्रमः ॥ अहते महिषे पापे सुरशत्रौ दुरात्मनि ॥ ३८ ॥ तस्माद्यूयं गृहं गत्वा महिषं प्रेषयंत्विह ॥ पश्येन्मां सोऽपि मंदात्मा यादृशीं तादृशीं स्थिताम् ॥ ३९ ॥ ताम्रस्तद्वचनं श्रुत्वा बाणवृष्टिं चकार ह ॥ चंडिकां प्रति कोपेन कर्णाकृष्टशरासनः ॥४०॥ भगवत्यपि ताम्राक्षी समाकृष्य शरासनम् ॥ बाणान्मुमोच तरसा हंतुकामा सुराहितम् ॥ ४१ ॥ चिक्षुराख्योऽपि बलवान्मूर्छां त्यक्त्वोत्थितः पुनः ॥ गृहीत्वा सशरं चापं तस्थौ तत्संमुखः क्षणात् ॥ ४२ ॥ चिक्षुराख्यश्च ताम्रश्च द्वावप्यतिबलोत्कटौ ॥ युयुधाते महावीरौ सह देव्या रणांगणे ॥ ४३ ॥ कुपिता च महामाया ववर्ष शरसंततिम् ॥ चकार दानवान्सर्वान्बाणक्षततनुच्छदान् ॥ ४४ ॥ असुराः क्रोधसंमूढा बभूवुः

देवशत्रु दुराचारी पापी महिष नहीं मरता, तबतक तुम जैसे मूर्खोंको मारनेसे मेरा परिश्रम व्यर्थ जा रहा है ॥३८॥ अतएव तुम लोग लौट जाओ और महिषासुरको यहाँ भेज दो । जिससे वह दुष्ट भी देख ले कि अभी मैं ज्योंकी त्यों खड़ी हूँ ॥३९॥ भगवतीके वचन सुनकर ताम्रने कानतक धनुषकी डोरी खींचकर अतिशय क्रोधपूर्वक उनके ऊपर विकराल बाणवर्षा आरम्भ कर दी ॥४०॥ तब भगवतीने भी आँखें लाल करके अपने धनुषकी डोरी चढ़ायी और उस असुरको मारनेके लिए बड़े वेगसे बाण छोड़ने लगीं ॥४१॥ क्षणभर बाद ही बलवान् चिक्षुरकी भी मूर्छा दूर हो गयी और वह धनुष-बाण लेकर फिर भगवतीके सम्मुख जा डटा ॥४२॥ चिक्षुर और ताम्र दोनों बड़े बलवान् थे । वे दोनों महावीर दानव रणभूमिमें एक साथ भगवतीसे युद्ध करने लगे ॥४३॥ उस समय भगवती महामायाने इस प्रकार भीषण बाणवर्षा की कि जिससे सभी दानवोंके कवच छिन्न-भिन्न हो गये ॥४४॥ उन बाणोंकी मारसे वे सब असुर क्रोध

से पागल हो गये और किटकिटाकर देवीपर बाण बरसाने लगे ॥ ४५ ॥ उस रणभूमिमें भगवतीके बाणसे घायल राक्षस वसन्तकालमें पुष्पित किंशुक (टेसू) के समान लाल दीखने लगे

युद्ध करने लगे ॥४३॥ उस समय भगवती महामायाने इस प्रकार भीषण बाणवर्षा की कि जिससे सभी दानवोंके कवच छिन्न-भिन्न हो गये ॥४४॥ उन बाणोंकी मारसे वे सब असुर क्रोध

से पागल हो गये और किटकिटाकर देवीपर बाण बरसाने लगे ॥ ४५ ॥ उस रणभूमिमें भगवतीके बाणसे घायल राक्षस वसन्तकालमें पुष्पित किंशुक (टेसू) के समान लाल दीखने लगे ॥४६॥ इस प्रकार ताम्रके साथ महामायाका बड़ा भीषण संग्राम हुआ । उसे देखकर आकाशमें प्रेक्षकरूपसे विद्यमान देवता चकित हो गये ॥ ४७ ॥ उसी समय ताम्र एक लोहेका भयानक मुसल लेकर झपटा और उससे भगवतीके सिंहके मस्तकपर प्रहार करके गर्जन करने लगा ॥ ४८ ॥ उसे दहाड़ते देखकर भगवती कुपित हो उठीं और उन्होंने अपनी तीखी तलवारसे उसका मस्तक काट डाला ॥ ४९ ॥ मस्तक कट जानेपर भी वह वीर क्षणभर बिना मस्तकके ही हाथमें मुसल लिये घूमता रहा । उसके बाद वह रणभूमिमें गिर गया ॥ ५० ॥ ताम्रको इस प्रकार गिरते देखकर महाबली चिक्षुर हाथमें तलवार लेकर बड़े वेगसे महामायाकी ओर झपटा ॥५१॥ हाथमें तलवार लिये चिक्षुरको रणभूमिमें आते देखकर देवीने बड़ी फुर्तीसे उसे पाँच बाण

शरताडिताः ॥ चिक्षिपुः शरजालानि देवीं प्रति रुषान्विताः ॥४५॥ बभुस्ते राक्षसास्तत्र किंशुका इव पुष्पिणः ॥ शिलीमुखक्षताः सर्वे वसंते च वने रणे ॥ ४६ ॥ बभूव तुमुलं युद्धं ताम्रेण सह संयुगे ॥ विस्मयं परमं जग्मुर्देवा ये प्रेक्षकाः स्थिताः ॥ ४७ ॥ ताम्रो मुसलमादाय लोहजं दारुणं दृढम् ॥ जघान मस्तके सिंहं जहास च ननर्द च ॥४८॥ नर्दमानं तदा तं तु दृष्ट्वा देवी रुषान्विता ॥ खड्गेन शितधारेण शिरश्चिच्छेद सत्वरा ॥४९॥ छिन्ने शिरसि ताम्रस्तु विशीर्षो मुसली बली ॥ बभ्राम क्षणमात्रं तु पपात रणमस्तके ॥ ५० ॥ पतितं ताम्रमालोक्य चिक्षुराख्यो महाबलः ॥ खड्गमादाय तरसा दुद्राव चंडिकां प्रति ॥ ५१ ॥ भगवत्यपि तं दृष्ट्वा खड्गपाणिमुपागतम् ॥ दानवं पञ्चभिर्बाणैर्जघान तरसा रणे ॥ ५२ ॥ एकेन पातितं खड्गं द्वितीयेन तु तत्करः ॥ कंठाच्च मस्तकं तस्य कृंतितं चापरैः शरैः ॥ ५३ ॥ एवं तौ निहतौ क्रूरौ राक्षसौ रणदुर्मदौ ॥ भग्नं सैन्यं तयोस्तूर्णं दिक्षु संत्रस्तमानसम् ॥ ५४ ॥ देवाश्च मुदिताः सर्वे दृष्ट्वा तौ निहतौ रणे ॥ पुष्पवृष्टिं मुदा चक्रुर्जयशब्दं नभःस्थिताः ॥ ५५ ॥ ऋषयो देवगंधर्वा वेतालाः सिद्धचारणाः ॥ ऊचुस्ते जय देवीति चांबिकेति पुनः पुनः ॥ ५६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते पंचमस्कन्धे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

॥ व्यास उवाच ॥ तौ तया निहतौ श्रुत्वा महिषो विस्मयान्वितः ॥ प्रेषयामास दैतेयांस्तद्वधार्थं महाबलान् ॥ १ ॥ असिलोमबिडालाक्ष-

मारा ॥५२॥ उन पाँचोंमेंसे एक बाण द्वारा उसकी तलवार और दूसरेसे उसका हाथ काट गिराया । बाकी तीन बाणोंसे उसका मस्तक काटकर धड़से अलग कर दिया ॥ ५३ ॥ इस प्रकार रणोन्मत्त क्रूर चिक्षुर तथा ताम्र दोनों दानव भगवतीके हाथों मारे गये । इससे सैनिकोंमें आतंक छा गया और वे दसों दिशाओंमें भाग गये ॥५४॥ रणभूमिमें उन दोनोंका निधन देखकर देवता बहुत प्रसन्न हुए और भगवतीकी जयजयकार करते हुए आकाशमण्डलसे उनपर फूल बरसाने लगे ॥ ५५ ॥ सभी ऋषि, गन्धर्व, वैताल, सिद्ध और चारण कहने लगे—हे देवी ! हे अम्बिके ! आपकी जय हो, जय हो ॥ ५६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे 'पीताम्बरा' भाषाटीकायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

(भगवती द्वारा असिलोमा और बिडालाक्षका वध) व्यासजी बोले—हे महाराज ! चिक्षुर और ताम्रके मारे जानेका वृत्तान्त सुनकर महिषासुरको बड़ा आश्चर्य हुआ । अब उसने

अन्य महाबली दैत्योंको भगवतीका वध करनेके लिए भेजा ॥ १ ॥ उनमें उन्मत्त होकर लड़नेवाले असिलोमा तथा विडालाक्ष प्रमुख थे। वे अपने साथ बहुत बड़ी सेना, नाना प्रकारके शस्त्रास्त्र और युद्धके अन्यान्य सरंजाम लेकर रणभूमिमें गये ॥ २ ॥ वहाँ पहुचकर उन्होंने देखा कि जगदम्बा सिंहपर सवार हैं, उनका दिव्य स्वरूप है, उनके अठारह भुजायें हैं और उन भुजाओंमें ढाल-तलवार आदि आयुध लिये हुए हैं ॥ ३ ॥ तब बड़े विनीत भावसे मुसकाता हुआ असिलोमा दैत्योंका वध करनेके लिए उद्यत भगवतीके समक्ष जाकर शान्त वाणीमें बोला ॥ ४ ॥ असिलोमाने कहा—हे देवि ! आप मुझे सच-सच बताइए कि यहाँ किस लिए आयी हैं ? हे सुन्दरी ! आप निरपराध दैत्योंको क्यों मार रही हैं ? ॥ ५ ॥ यदि सही-सही कारण बता दें तो मैं आपके साथ सन्धि कर लूँगा। हे सुन्दरी ! तब आप तत्काल यहाँसे चली जायँ। आखिर आप युद्ध क्यों करना चाहती हैं ? इससे तो दुःख और सन्ताप ही बढ़ता है ॥ ६ ॥ ७ ॥ बड़े-बड़े महात्मा युद्धको सब सुख नष्ट करनेवाला रोग कहते हैं। आप फूलोंकी चोट सहनेमें असमर्थ अपने कोमल शरीरपर शस्त्रास्त्रोंका आघात क्यों सहती हैं ? यह देखकर मुझे आश्चर्य

प्रमुखान् युद्धदुर्मदान् ॥ सैन्येन महता युक्तान्सायुधान्सपरिच्छदान् ॥ २ ॥ ते तत्र ददृशुर्देवीं सिंहस्योपरि संस्थिताम् ॥ अष्टादशभुजां दिव्यां खड्गखेटकधारिणीं ॥ ३ ॥ असिलोमाऽग्रतो गत्वा तामुवाच हसन्निव ॥ विनयावनतः शांतो देवीं दैत्यवधोद्यताम् ॥ ४ ॥ असिलोमोवाच ॥ देवि ब्रूहि वचः सत्यं किमर्थमिह सुंदरि ॥ आगताऽसि किमर्थं वा हंसि दैत्यान्निरागसः ॥ ५ ॥ कारणं कथयाद्य त्वं त्वया संधिं करोम्यहम् ॥ कांचनं मणिरत्नानि भाजनानि वराणि च ॥६॥ यानीच्छसि वरारोहे गृहीत्वा गच्छ मा चिरम् ॥ किमर्थं युद्धकामाऽसि दुःखसंतापवर्धनम् ॥ ७ ॥ कथयंति महात्मानो युद्धं सर्वसुखापहम् ॥ कोमलेऽतीव ते देहे पुष्पघातासहे भृशम् ॥ ८ ॥ किमर्थं शस्त्रसंपातान्सहसीति विसिष्मिये ॥ चातुर्यस्य फलं शांतिः सततं सुखसेवनम् ॥ ९ ॥ तत्किमर्थं दुःखहेतुं संग्रामं कर्तुमिच्छसि ॥ संसारेऽत्र सुखं ग्राह्यं दुःखं हेयमिति स्थितिः ॥ १० ॥ तत्सुखं द्विविधं प्रोक्तं नित्यानित्यप्रभेदतः ॥ आत्मज्ञानं सुखं नित्यमनित्यं भोगजं स्मृतम् ॥११॥ नाशात्मकं तु तत्त्याज्यं वेदशास्त्रार्थचिंतकैः ॥ सौगतानां मतं चेत्त्वं स्वीकरोषि वरानने ॥ १२ ॥ तथापि यौवनं प्राप्य भुंक्ष्व भोगाननुत्तमान् ॥ परलोकस्य संदेहो यदि तेऽस्ति कृशोदरि ॥१३॥ स्वर्गभोगपरा नित्यं भव भामिनि भूतले ॥ अनित्यं यौवनं देहे ज्ञात्वेति सुकृतं चरेत् ॥ १४ ॥ परोपतापनं कार्यं वर्जनीयं सदा बुधैः ॥ अविरोधेन

होता है। चतुराईका फल शान्ति है और शान्तिसे बड़ा आनन्द मिलता है ॥ ८ ॥ ९ ॥ अतएव आप दुःखका मूल कारण संग्राम क्यों करना चाहती हैं ? इस संसारमें आकर सुख लेना और दुःखको त्यागना चाहिए। यही प्राचीन परिपाटी है ॥ १० ॥ वह सुख भी दो प्रकारका होता है—नित्य और अनित्य। जिसमें आत्मज्ञानका सुख नित्य और भोगजनित सुख अनित्य होता है ॥११ ॥ वेद-शास्त्रका यथार्थ तत्त्व जाननेवाले विद्वान् नाशात्मक, अनित्य और भोगजनित सुखसे दूर भागते हैं। हे सुमुखी ! यदि आप परलोकपर आस्था न रखनेवाले बौद्धोंके मतको मानती हों तो आपको ऐसी सुन्दर जवानी पाकर उच्चकोटिके भोग भोगना चाहिए। हे कृशोदरि (पतली कमरवाली) ! यदि आपको परलोकमें सन्देह हो तो इस पृथिवीपर ही सदाचारसे रहकर स्वर्गीय सुख भोगिए। यौवन अनित्य होता है, यह समझकर सदा भला काम करना चाहिए ॥ १२–१४ ॥ समझदार विद्वानोंका कर्तव्य है कि ऐसे कामोंसे सदा

पर ही सदाचारसे रहकर स्वर्गीय सुख भोगिए। यौवन अनित्य होता है, यह समझकर सदा भला काम करना चाहिए ॥ १२–१४ ॥ समझदार विद्वानोंका कर्तव्य है कि ऐसे कामोंसे सदा बचें, जिनसे किसी दूसरे प्राणीको कष्ट होता हो। उन्हें चाहिए कि उचित रीतिसे धर्म, अर्थ और कामका सेवन करें ॥ १५ ॥ अतएव हे कल्याणि ! आप भी अपनी बुद्धि धर्मकार्यमें लगायें ! हे अम्बिके ! आप बिना किसी अपराधके दैत्योंको मार रही हैं ? ॥१६॥ प्रत्येक पुरुषके शरीरमें दयारूपी धर्म विद्यमान रहता है और सत्यमें प्राण टिके रहते हैं। अतएव बुद्धिमान् लोगोंको चाहिए कि सत्य और दयाकी रक्षा करते रहें ॥१७॥ हे सुजघने ! अब आप बताइए कि आप दानवोंका वध क्यों करती हैं ? देवी बोलीं—हे महाबाहो ! तुमने पूछा कि मैं यहाँ क्यों आयी हूँ ? ॥१८॥ सो मैं अपने आने और दैत्योंके वधका कारण बता रही हूँ। हे दैत्य ! मैं प्राणीमात्रका न्याय और अन्याय देखती हुई सबकी साक्षी बनकर सब लोकोंमें सदा विचरती रहती हूँ। न कभी मुझे भोगकी इच्छा होती है, न लोभ सताता है और न कभी किसीके प्रति वैरभाव रहता है ॥१९॥२०॥ मैं संसारमें धर्म तथा साधुजनोंकी रक्षा करनेके लिए विचरण करती हूँ।

कर्तव्यं धर्मार्थकामसेवनम् ॥१५॥ तस्मात्त्वमपि कल्याणि मतिं धर्मे सदा कुरु ॥ अपराधं विना दैत्यान्कस्मान्मारयसेऽम्बिके ॥ १६ ॥ दया धर्मोऽस्य देहोऽस्ति सत्ये प्राणाः प्रकीर्तिताः ॥ तस्माद्दया तथा सत्यं रक्षणीयं सदा बुधैः ॥ १७ ॥ कारणं वद सुश्रोणि दानवानां वधे तव ॥ देव्युवाच ॥ त्वया पृष्टं महाबाहो किमर्थमिह चागता ॥१८॥ तदहं संप्रवक्ष्यामि हनने च प्रयोजनम् ॥ विचरामि सदा दैत्य सर्वलोकेषु सर्वदा ॥१९॥ न्यायान्यायौ च भूतानां पश्यंती साक्षिरूपिणी ॥ न मे कदाऽपि भोगेच्छा न लोभो न च वैरिता ॥ २० ॥ धर्मार्थं विचराम्यत्र संसारे साधुरक्षणम् ॥ व्रतमेतत्तु नियतं पालयामि निजं सदा ॥२१॥ साधूनां रक्षणं कार्यं हंतव्या येऽप्यसाधवः ॥ वेदसंरक्षणं कार्यमवतारैरनेकशः ॥ २२ ॥ युगे युगे तानेवाहमवतारान्बिभर्मि च ॥ महिषस्तु दुराचारो देवान्वै हंतुमुद्यतः ॥ २३ ॥ ज्ञात्वाऽहं तद्वधार्थं भोः प्राप्ताऽस्मि राक्षसाधुना ॥ तं हनिष्ये दुराचारं सुरशत्रुं महाबलम् ॥२४॥ गच्छ वा तिष्ठ कामं त्वं सत्यमेतदुदाहृतम् ॥ ब्रूहि वा तं दुरात्मानं राजानं महिषीसुतम् ॥ २५ ॥ किमन्यान्प्रेषयस्यत्र स्वयं युद्धं कुरुष्व ह ॥ संधिश्चेत्कर्तुमिच्छाऽस्ति राज्ञस्तव मया सह ॥२६॥ सर्वे गच्छन्तु पातालं वैरं त्यक्त्वा यथासुखम् ॥ देवद्रव्यं तु यत्किंचिद्धृतं जित्वा रणे सुरान् ॥ २७ ॥ तद्दत्त्वा यांतु पातालं प्रह्लादो यत्र तिष्ठति ॥ व्यास उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं देव्या असि-

यह मेरा निश्चित व्रत है और मैं सदा इसका पालन करती हूँ ॥२१॥ मैं समय-समयपर अनेक अवतार लेकर सज्जनोंकी रक्षा, दुष्टोंका संहार और वेदोंका संरक्षण करती हूँ ॥ २२ ॥ मैं प्रत्येक युगमें अवतार लेती हूँ। दुराचारी महिष देवताओंको समाप्त कर डालना चाहता है ॥२३॥ जब मुझे यह खबर मिली तो मैं यहाँ आ गयी। हे दैत्य ! मैं उस महाबली, देवताओंके शत्रु तथा दुराचारी महिषको अवश्य मारूँगी ॥२४॥ अब तुम जाओ या रहो। मैंने तुम्हें यथार्थ बात बता दी। अच्छा तो यह हो कि उस मलिनहृदय एवं महिषीपुत्र राजाको मेरा सन्देश सुना दो कि रणभूमिमें तुम अन्य दैत्योंको क्यों भेजते हो ? तुम स्वयं आकर मेरे साथ लड़ो। यदि तुम्हारे राजा महिष सन्धि करना चाहते हों ॥२५॥२६॥ तब देवताओंके प्रति वैरभाव त्यागकर सानन्द पाताल चले जायँ। पूर्वकालमें देवताओंको परास्त करके उनका जितना द्रव्य छीना है, वह सब लौटाकर पातालमें प्रह्लादके पास चले जायँ। व्यासजी बोले—

देवीके वचन सुनकर अपने समक्ष उपस्थित महाबली बिडालाक्षसे असिलोमाने बड़े प्रेमपूर्वक कहा। असिलोमा बोला--बिडालाक्ष! भवानीने जो कहा, उसे तुमने सुना? ॥ २७-२९ ॥ ऐसी परिस्थितिमें हमें युद्ध या सन्धि इन दोनोंमें क्या करना चाहिए? बिडालाक्षने कहा–युद्धमें मृत्युको निश्चित जानते हुए भी अभिमानी राजा महिष सन्धि नहीं करना चाहते ॥ ३० ॥ नित्य हम दैत्योंका संहार होते देखकर भी वे बराबर हम लोगोंको भेजते रहते हैं। दैवका अतिक्रमण कौन कर सकता है? (आज्ञाकारी, नित्य वशवर्ती और मानापमानहीन सेवकोंका धर्म बड़ा दुःसाध्य होता है। जैसे कठपुतली डोरेके सहारे नचायी जाती है, उसी प्रकार सेवक स्वामीके संकेतपर नाचते हैं॥) और फिर हम लोग राजा महिषके पास चलकर ऐसे कठोर सन्देशको कैसे कह सकते हैं?–॥ ३१ ॥ कि देवताओंके अपहृत समस्त धन-रत्न लौटाकर तुम पाताल चले जाओ। (क्योंकि राजाके समक्ष सदा मीठी बात ही कहनी

लमा पुरःस्थितः ॥२८॥ बिडालाक्षं महावीरं पप्रच्छ प्रीतिपूर्वकम् ॥ असिलोमोवाच ॥ श्रुतं तेऽद्य बिडालाक्ष भवान्या कथितं च यत् ॥ २९ ॥ एवं गते किं कर्तव्यो विग्रहः संधिरेव वा ॥ बिडालाक्ष उवाच ॥ न संधिकामोऽस्ति नृपोऽभिमानी युद्धे च मृत्युं नियतं हि जानन् ॥ दृष्ट्वा हतान्प्रेरयते तथाऽस्मान्दैवं हि कोऽतिक्रमितुं समर्थः ॥३०॥ (दुःसाध्य एवास्त्विह सेवकानां धर्मः सदा मानविवर्जितानाम् ॥ आज्ञापराणां वशवर्तिकानां पांचालिकानामिव सूत्रभेदात् ॥) गत्वा कथं तस्य पुरस्त्वया च मयाऽपि वक्तव्यमिदं कठोरम् ॥३१॥ गच्छंतु पातालमितश्च सर्वे दत्त्वाऽथ रत्नानि धनं सुराणाम् ॥ (प्रियं हि वक्तव्यमसत्यमेव न च प्रियं स्याद्धितकृत्तु भाषितम् ॥ सत्यं प्रियं नो भवतीह कामं मौनं ततो बुद्धिमतां प्रतिष्ठितम् ॥) न फल्गुवाक्यैः प्रतिबोधनीयो राजा तु वीरैरिति नीतिशास्त्रम् ॥३२॥ न नूनं तत्र गंतव्यं हितं वा वक्तुमादरात् ॥ प्रष्टुं वाऽपि गते राजा कोपयुक्तो भविष्यति ॥३३॥ इति संचिंत्य कर्तव्यं युद्धं प्राणस्य संशये ॥ स्वामिकार्यं परं मत्वा मरणं तृणवत्तथा ॥ ३४ ॥ व्यास उवाच ॥ इति संचिंत्य तौ वीरौ संस्थितौ युद्धतत्परौ ॥ धनुर्बाणधरौ तत्र सन्नद्धौ रथसंगतौ ॥ ३५ ॥ प्रथमं तु बिडालाक्षः सप्त बाणान्मुमोच ह ॥ असिलोमा स्थितो दूरे प्रेक्षकः परमास्त्रवित् ॥३६॥ चिच्छेद तांस्तथा प्राप्तानम्बिका स्वशरैः शरान् ॥ बिडालाक्षं त्रिभिर्बाणैर्जघान च शिलाशितैः ॥३७॥

चाहिए। फिर वह चाहे असत्य ही क्यों न हो। हितकारी बात बड़ी कड़ुई होती है। सत्य वचन कभी मीठा नहीं हो सकता। अतएव बुद्धिमानोंके लिए सबसे सुन्दर नीति यही है कि वे मौन रह जायँ॥) नीतिशास्त्र भी यही कहता है कि राजाके हृदयमें कोई कर्कश बात उतारनेकी चेष्टा नहीं करनी चाहिए ॥ ३२ ॥ हमें राजाके हितकी बात कहनेके लिए आदरपूर्वक भी उनके पास न जाना चाहिए। क्योंकि ऐसा करनेसे वे कुपित हो जायँगे ॥ ३३ ॥ ऐसा विचारकर प्राणसंशय रहते हुए भी हमें युद्ध ही करना चाहिए। स्वामीके कार्यको प्रधान मानकर हमको अपने प्राण तृणवत् समझना चाहिए ॥ ३४ ॥ व्यासजी बोले–इस प्रकार परस्पर विचार करके वे दोनों धनुर्धर रथपर सवार हो तथा शस्त्रास्त्रसे सुसज्ज होकर युद्धके लिए तत्पर हो गये ॥ ३५ ॥ पहले बिडालाक्षने आगे बढ़कर देवीपर सात बाण छोड़े। अस्त्रविद्याका परम मर्मज्ञ असिलोमा प्रेक्षककी तरह दूर जाकर खड़ा हो गया ॥ ३६ ॥ भगवती

महामायाने अपने बाणोंसे उसके सातों बाण व्यर्थ करके सानपर चढ़े तीन तीक्ष्ण बाणोंसे बिडालाक्षपर प्रहार किया ॥३७॥ इन बाणोंके आघातसे पीडित होकर वह रणभूमिमें गिर पड़ा और दैवयोगवश उसीकी वेदनासे अचेत होकर वह मर गया ॥ ३८ ॥ इस प्रकार देवीके बाणोंसे बिडालाक्षका मरण देखकर असिलोमा धनुष-बाण लेकर युद्धके लिए आगे बढ़ा ॥ ३९ ॥ उसने अपनी दाहिनी भुजा उठाकर कहा—हे देवि ! मैं जानता हूँ कि सभी दुराचारी दानव मारे जायँगे ॥४०॥ फिर भी पराधीन होनेके कारण हमें युद्ध ही करना पड़ेगा । क्योंकि मूर्ख महिष अपना हित-अहित नहीं जानता ॥ ४१ ॥ मैं उसके पास जाकर हितकारिणी, किन्तु कड़वी बात न कहूँगा । अब भला हो या बुरा, मैं वीरधर्मका पालन करता हुआ यहीं मर मिटूँगा ॥४२॥ आपके बाणोंकी चोट खाते ही दैत्य धराशायी हो जाते हैं । अतएव मैं दैवको ही प्रधान मानता हूँ । व्यर्थके पुरुषार्थको धिक्कार है ॥ ४३ ॥ ऐसा कहकर दानवश्रेष्ठ असिलोमा बाणवर्षा

प्राप्य बाणव्यथां दैत्यः पपात समरांगणे ॥ मूर्छितोऽथ ममाराशु दानवो दैवयोगतः ॥ ३८ ॥ बिडालाक्षं हतं दृष्ट्वा रणे शक्तिशरोत्करैः ॥ असिलोमा धनुष्पाणिः संस्थितो युद्धतत्परः ॥ ३९ ॥ ऊर्ध्वं सव्यं करं कृत्वा तामुवाच मितं वचः ॥ देवि जानामि मरणं दानवानां दुरात्मनाम् ॥ ४० ॥ तथापि युद्धं कर्तव्यं पराधीनेन वै मया ॥ महिषो मंदबुद्धिश्च न जानाति प्रियाप्रिये ॥ ४१ ॥ तदग्रे नैव वक्तव्यं हितं चैवाप्रियं मया ॥ मर्तव्यं वीरधर्मेण शुभं वाऽप्यशुभं भवेत् ॥ ४२ ॥ दैवमेव परं मन्ये धिक्पौरुषमनर्थकम् ॥ पतंति दानवास्तूर्णं तव बाणहता भुवि ॥ ४३ ॥ इत्युक्त्वा शरवृष्टिं स चकार दानवोत्तमः ॥ देवी चिच्छेद तान्बाणैरप्राप्तांस्तु निजांतिके ॥४४॥ अन्यैर्विव्याध तं तूर्णमसिलोमानमाशुगैः ॥ वीक्षिताऽमरसंघैश्च कोपपूर्णानना तदा ॥ ४५ ॥ शुशुभे दानवः कामं बाणैर्विद्धतनुः किल ॥ स्रवद्रुधिरधारः स प्रफुल्लः किंशुको यथा ॥ ४६ ॥ असिलोमा गदां गुर्वीं लौहीमुद्यम्य वेगतः ॥ दुद्राव चंडिकां कोपात्सिंहं मूर्ध्नि जघान ह ॥ ४७ ॥ सिंहोऽपि नखराघातैस्तं ददार भुजांतरे ॥ अगणय्य गदाघातं कृतं तेन बलीयसा ॥ ४८ ॥ उत्पत्य तरसा दैत्यो गदापाणिः सुदारुणः ॥ सिंहमूर्ध्नि समारुह्य जघान गदयाऽम्बिकाम् ॥ ४९ ॥ कृतं तेन प्रहारं तु वंचयित्वा विशांपते ॥ खड्गेन शितधारेण शिरश्चिच्छेद कंठतः ॥ ५० ॥ छिन्ने शिरसि दैत्येन्द्रः पपात तरसा क्षितौ ॥ हाहा-

करने लगा । किन्तु अपने पास आनेके पहले ही देवीने उन बाणोंको काटकर व्यर्थ कर दिया ॥ ४४ ॥ उसके बाद भगवतीने अन्य बाणोंसे असिलोमाके शरीरको बींधा । उस समय देवताओंने देखा कि भगवतीका मुख कोपसे लाल हो गया है ॥ ४५ ॥ उन बाणोंसे बिंधकर प्रबल रुधिरधारा बहाता हुआ दानव असिलोमा पुष्पित टेसूके वृक्ष सदृश सुन्दर दिखायी देने लगा ॥ ४६ ॥ उसी समय असिलोमा एक बड़ी भारी लोहमयी गदा लेकर बड़े वेगसे भगवतीकी ओर झपटा । समीप पहुँचकर उसने उस गदासे सिंहके मस्तकपर प्रहार कर दिया ॥ ४७ ॥ देवीके बलवान् सिंहने उस गदाघातकी कुछ भी परवाह न करके अपने तीक्ष्ण नखोंसे उसकी छाती फाड़ डाली ॥४८॥ तथापि वह गदाधारी दैत्य उछलकर सिंहके मस्तकपर चढ़ गया और वहींसे भगवतीके मस्तकपर गदाका प्रहार कर दिया ॥४९॥ हे महाराज ! उस आघातको बचाकर भगवतीने उसका सिर काटकर धड़से अलग कर दिया ॥५०॥ इस प्रकार मस्तक कट जानेपर वह बड़े वेगसे धरतीपर

गिर पड़ा। उसके गिरते ही उस दुष्टकी सेनामें हाहाकार मच गया ॥ ५१ ॥ हे महाराज! आकाशमण्डलमें विद्यमान देवता देवीकी जयजयकार करके उनकी स्तुति करने लगे। देवदुन्दुभियाँ बजने लगीं और किन्नरगण उनके गुण गाने लगे ॥ ५२ ॥ बिडालाक्ष तथा असिलोमा इन दोनों दैत्योंको रणभूमिमें मरा हुआ देखकर देवीके सिंहने उनके सैनिकोंको अपने पराक्रमसे मार डाला ॥ ५३ ॥ उनमेंसे बहुतेरे दैत्योंको वह खा गया। जिससे बड़ी भगदड़ मची और कुछ ही देरमें समस्त रणभूमि खाली हो गयी। कुछ अभागे दैत्य दुःखित होकर महिषके पास जा पहुँचे ॥ ५४ ॥ वहाँ जाकर वे त्राहि-त्राहि करते हुए बड़ी जोरसे रोने-चिल्लाने लगे। उन्होंने कहा--हे महाराज! असिलोमा और बिडालाक्ष दोनों वीर युद्धमें मारे गये ॥ ५५ ॥ हे राजन्! जो बचे-खुचे दैत्यसैनिक थे, उन्हें देवीका सिंह खा गया। ऐसा कहकर वे सब रोने लगे ॥५६॥ सैनिकोंके वचन सुनकर महिष अनमना हो गया। अब उसे चिन्ता सताने लगी

कारो महानासीत्सैन्ये तस्य दुरात्मनः ॥ ५१ ॥ जय देवीति देवास्तां तुष्टुवुर्जगदम्बिकाम् ॥ देवदुंदुभयो नेदुर्जगुश्च नृप किन्नराः ॥५२॥ निहतौ दानवौ वीक्ष्य पतितौ च रणांगणे ॥ निहताः सैनिकाः सर्वे तत्र केसरिणा बलात् ॥ ५३ ॥ भक्षिताश्च तथा केचिन्निःशेषं तद्गणं कृतम् ॥ भग्नाः केचिद्गता मंदा महिषं प्रति दुःखिताः ॥ ५४ ॥ चुक्रुशू रुरुदुश्चैव त्राहि त्राहीति भाषणैः ॥ असिलोमबिडालाक्षौ निहतौ नृपसत्तम ॥ ५५ ॥ अन्ये ये सैनिका राजन्सिंहेन भक्षिताश्च ते ॥ एवं ब्रुवंतो राजानं तदा चक्रुश्च वैशसम् ॥ ५६ ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तेषां महिषो दुर्मनास्तदा ॥ बभूव चिन्ताकुलितो विमना दुःखसंयुतः ॥ ५७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

॥ व्यास उवाच ॥ तेषां तद्वचनं श्रुत्वा क्रोधयुक्तो नराधिपः ॥ दारुकं प्राह तरसा रथमानय मेऽद्भुतम् ॥ १ ॥ सहस्रखरसंयुक्तं पताकाध्वजभूषितम् ॥ आयुधैः संयुतं शुभ्रं सुचक्रं चारुकूबरम् ॥ २ ॥ सूतोऽपि रथमानीय तमुवाच त्वरान्वितः ॥ राजन्रथोऽयमानीतो द्वारि तिष्ठति भूषितः ॥ ३ ॥ सर्वायुधसमायुक्तो वरास्तरणसंयुतः ॥ आनीतं तं रथं ज्ञात्वा दानवेन्द्रो महाबलः ॥ ४ ॥ मानुषं देहमास्थाय संग्रामं गन्तुमुद्यतः ॥ विचार्य मनसा चेति देवी मां प्रेक्ष्य दुर्मुखम् ॥४॥ शृंगिणं महिषं नूनं विमना सा भविष्यति ॥ नारीणां च प्रियं रूपं तथा चातुर्यमित्यपि ॥ ६ ॥

और दुःखकी अधिकताके कारण उसके चेहरेपर उदासी छा गयी ॥ ५७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

(देवी-महिषसंवाद) व्यासजी बोले--हे महाराज! उन सैनिकोंकी बात सुनकर राजा महिष क्रोधसे लाल हो गया। तत्काल उसने दारुकसे कहा कि मेरा अद्भुत रथ ले आओ ॥ १ ॥ उसके रथमें एक हजार गधे जुतते थे। वह ध्वजा-पताकाओंसे सजा रहता था। उसमें सब प्रकारके शस्त्रास्त्र विद्यमान रहते थे। उसके पहिये और जुए बड़े ही सुन्दर थे ॥ २ ॥ सारथीने तत्काल रथ लाकर कहा--हे महाराज! रथ आ गया और सुसज्जित होकर द्वारपर खड़ा है ॥ ३ ॥ उसमें सब आयुध धरे हैं और सुन्दर बिछौना बिछा हुआ है। रथके आनेकी बात सुनकर दानवराज महिष मनुष्यका रूप धारण करके युद्धभूमिमें जानेको तैयार हुआ। उसने अपने मनमें सोचा कि यदि मैं अपने महिषरूपसे जाऊँगा तो देवी मेरा शृंगयुक्त रूप

देखकर घृणा करेगी। क्योंकि स्त्रियोंको सुन्दर रूप और चतुराई ही भाती है ॥ ४-६ ॥ इसलिए अपना बहुत ही आकर्षक रूप बना तथा बड़ी चतुरतापूर्वक बन-सँवरकर मैं उसके पास

देखकर घृणा करेगी। क्योंकि स्त्रियोंको सुन्दर रूप और चतुराई ही भाती है ॥ ४–६ ॥ इसलिए अपना बहुत ही आकर्षक रूप बना तथा बड़ी चतुरतापूर्वक बन-सँवरकर मैं उसके पास जाऊँगा। जिससे देखते ही वह युवती मुझपर मोहित हो जाय ॥७॥ अन्य किसी स्वरूपसे मुझे आनन्द नहीं मिलेगा। मन ही मन यह सोचता हुआ वह महाबली दानवेन्द्र महिषरूप त्यागकर बड़ा सुन्दर मनुष्य बन गया। उसने सभी शस्त्रास्त्र तथा उत्तम आभूषण धारण कर लिये ॥ ८ ॥ ९ ॥ शरीरपर दिव्य रेशमी कपड़े, भुजाओंमें विजायठ और गलेमें फूलोंकी माला पहन तथा हाथमें धनुष-बाण लेकर जब वह रथपर बैठा, तब दूसरे कामदेवके समान सुन्दर दीखने लगा ॥ १० ॥ मानिनी सुन्दरियोंका मन हरनेवाला ऐसा सुन्दर रूप बनाकर वह मदोन्मत्त दैत्य अपनी विशाल सेनाके साथ देवीकी ओर चला ॥ ११ ॥ बहुतेरे वीरोंके साथ दैत्यराज महिषासुरको आते देखकर देवीने अपना शंख बजाया ॥ १२ ॥ शंखध्वनि सुनकर दानवोंको बड़ा विस्मय हुआ। तब मन्द-मन्द मुसकाता हुआ महिष देवीके पास पहुँचा और कहने लगा—हे देवि! इस संसारमें रहनेवाले सभी स्त्री-पुरुष सर्वथा सुख चाहते हैं ॥ १३ ॥ १४ ॥

तस्माद्रूपं च चातुर्यं कृत्वा यास्यामि तां प्रति ॥ यथा मां वीक्ष्य सा बाला प्रेमयुक्ता भविष्यति ॥ ७ ॥ ममापि च तदैव स्यात्सुखं नान्यस्वरूपतः ॥ इति संचिंत्य मनसा दानवेन्द्रो महाबलः ॥ ८ ॥ त्यक्त्वा तन्माहिषं रूपं बभूव पुरुषः शुभः ॥ सर्वायुधधरः श्रीमांश्चारुभूषणभूषितः ॥ ९ ॥ दिव्यांबरधरः कांतः पुष्पबाण इवापरः ॥ रथोपविष्टः केयूरस्रग्वी बाणधनुर्धरः ॥ १० ॥ सेनापरिवृतो देवीं जगाम मदगर्वितः ॥ मनोज्ञं रूपमास्थाय मानिनीनां मनोहरम् ॥ ११ ॥ तमागतं समालोक्य दैत्यानामधिपं तदा ॥ बहुभिः संवृतं वीरैर्देवी शंखमवादयत् ॥ १२ ॥ स शंखनिनदं श्रुत्वा जनविस्मयकारकम् ॥ समीपमेत्य देव्यास्तु तामुवाच हसन्निव ॥ १३ ॥ देवि संसारचक्रेऽस्मिन्वर्तमानो जनः किल ॥ नरो वाऽथ तथा नारी सुखं वांछति सर्वथा ॥ १४ ॥ सुखं संयोगजं नॄणां नासंयोगे भवेदिह ॥ संयोगो बहुधा भिन्नस्तान्ब्रवीमि शृणुष्व ह ॥ १५ ॥ भेदान्सुप्रीतिहेतूत्थान्स्वभावोत्थाननेकशः ॥ तत्र प्रीतिभवानादौ कथयामि यथामति ॥ १६ ॥ मातापित्रोस्तु पुत्रेण संयोगस्तूत्तमः स्मृतः ॥ भ्रातुर्भ्रात्रा तथा योगः कारणान्मध्यमो मतः ॥ १७ ॥ उत्तमस्य सुखस्यैव दातृत्वादुत्तमः स्मृतः ॥ तस्मादल्पसुखस्यैव प्रदातृत्वाच्च मध्यमः ॥ १८ ॥ नाविकानां तु संयोगः स्मृतः स्वाभाविको बुधैः ॥ विविधावृतचित्तानां प्रसंगपरिवर्तिनाम् ॥ १९ ॥ अत्यल्पसुखदातृत्वात्कनिष्ठोऽयं स्मृतो बुधैः ॥ अत्युत्तमस्तु संयोगः संसारे

यहाँ मनुष्योंके परस्पर संयोगसे ही सुख मिलता है। दूर-दूर रहनेसे सुखकी प्राप्ति नहीं होती। उस संयोगके अनेक भेद होते हैं। उन्हें मैं बता रहा हूँ, सुनिए ॥१५॥ उनमें सुप्रीति-संयोग प्रेमसे जायमान होता है। हेतूत्थ-संयोग कोई कार्य सिद्ध करनेके लिए उत्पन्न होता है। स्वभावोत्थ-संयोग अपने आप उत्पन्न हो जाता है। अब मैं अपनी बुद्धिके अनुसार प्रेमसे जायमान होनेवाले संयोगका विश्लेषण कर रहा हूँ ॥१६॥ माता-पिताका पुत्रके साथ होनेवाला संयोग नैसर्गिक प्रेमके कारण होता है। अतएव वह सर्वोत्तम माना जाता है। भाई-भाईका संयोग किसी मतलबसे होता है। इसलिए वह संयोग मध्यम श्रेणीका कहलाता है ॥१७॥ उपर्युक्त माता-पिताका पुत्रके साथ होनेवाला संयोग उत्तम प्रकारका सुख प्रदान करता है। इसलिए वह उत्तम कहा गया है। भाई-भाईके संयोगमें कुछ कम सुख मिलता है। अतएव उसे मध्यम दर्जेका संयोग कहा जाता है ॥ १८ ॥ विविध धन्धोंमें व्यस्त लोगोंका नाव आदिमें प्रसंगवश

मिलन स्वाभाविक संयोग कहलाता है ॥ १९ ॥ उस संयोगसे बहुत अल्प सुख प्राप्त होता है। अतएव उसे लोग निकृष्ट श्रेणीका संयोग कहते हैं। तात्पर्य यह निकला कि अतिशय उत्तम संयोग ही प्राणीको स्थायी सुख देता है ॥ २० ॥ हे कान्ते ! समान अवस्थावाले स्त्री-पुरुषके मिलनको लोग अति उत्तम संयोग कहते हैं ॥ २१ ॥ क्योंकि उससे अति उत्तम सुख प्राप्त होता है और उसमें चातुर्य, रूप, वेश-भूषा, कुल, शील और गुणोंका भली भाँति समावेश रहता है ॥२२॥ उसमें प्रिया और प्रियतम दोनों एक दूसरेके गुणोंका बखान करते हैं। अतएव यदि उस उत्तम संयोगकी आकांक्षा हो तो आप मेरे साथ सम्बन्ध करिए ॥ २३ ॥ ऐसा करनेसे आपको उत्तम प्रकारका सुख प्राप्त होगा। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। हे प्रिये ! मैं अपनी इच्छासे नाना प्रकारके रूप धारण कर सकता हूँ ॥२४॥ इन्द्र आदि सभी देवताओंको मैंने जीत लिया है। संसारमें जितने दिव्य रत्न हैं, वे सब मेरे घरमें भरे हुए हैं ॥ २५ ॥ हे सुन्दरी ! तुम मेरी पटरानी बनकर उन रत्नोंका मनमाना उपभोग करो और जिसे जो चाहो, सो दे दो। हे प्रिये ! मेरे ऊपर कृपा करो। मैं तुम्हारा दास हूँ ॥ २६ ॥ यदि तुम कहो

सुखदुःखदः ॥ २० ॥ नारीपुरुषयोः कांते समानवयसोः सदा ॥ संयोगो यः समाख्यातः स एवात्युत्तमः स्मृतः ॥ २१ ॥ अत्युत्तमसुखस्यैव दातृत्वात्स तथाविधः ॥ चातुर्यरूपवेषाद्यैः कुलशीलगुणैस्तथा ॥ २२ ॥ परस्परसमुत्कर्षः कथ्यते हि परस्परम् ॥ तं चेत्करोषि संयोगं वीरेण च मया सह ॥ २३ ॥ अत्युत्तमसुखस्यैव प्राप्तिः स्यात्ते न संशयः ॥ नानाविधानि रूपाणि करोमि स्वेच्छया प्रिये ॥ २४ ॥ इन्द्रादयः सुराः सर्वे संग्रामे विजिता मया ॥ रत्नानि यानि दिव्यानि भवनेऽस्मिन्ममाधुना ॥ २५ ॥ भुंक्ष्व त्वं तानि सर्वाणि यथेष्टं देहि वा तथा ॥ पट्टराज्ञी भवाद्य त्वं दासोऽस्मि तव सुन्दरि ॥ २६ ॥ वैरं त्यजेऽहं देवैस्तु तव वाक्यान्न संशयः ॥ यथा त्वं सुखमाप्नोषि तथाऽहं करवाणि वै ॥ २७ ॥ आज्ञापय विशालाक्षि तथाऽहं प्रकरोम्यथ ॥ चित्तं मे तव रूपेण मोहितं चारुभाषिणि ॥ २८ ॥ आतुरोऽस्मि वरारोहे प्राप्तस्ते शरणं किल ॥ प्रपन्नं पाहि रंभोरु कामबाणैः प्रपीडितम् ॥ २९ ॥ धर्माणामुत्तमो धर्मः शरणागतरक्षणम् ॥ त्वदीयोऽस्म्यसितापांगि सेवकोऽहं कृशोदरि ॥ ३० ॥ मरणांतं वचः सत्यं नान्यथा प्रकरोम्यहम् ॥ पादौ नतोऽस्मि तन्वंगि त्यक्त्वा नानायुधानि ते ॥३१॥ दयां कुरु विशालाक्षि तप्तोऽस्मि काममार्गणैः ॥ जन्मप्रभृति चार्वंगि दैन्यं नाचरितं मया ॥ ३२ ॥ ब्रह्मादीनीश्वरान्प्राप्य त्वयि तद्विदधाम्यहम् ॥ चरितं मम जानंति रणे ब्रह्मादयः सुराः ॥ ३३ ॥

तो मैं देवताओंसे वैर रखना छोड़ दूँगा। क्योंकि जिसमें तुम्हें सुख मिलेगा, मैं वही काम करूँगा ॥ २७ ॥ हे विशालनयनी ! तुम मुझे आज्ञा दो और मैं उसका पालन करूँ। हे सुनयनी ! मेरा मन तुम्हारे रूपपर मोहित हो गया है ॥२८॥ हे सुजघने ! मैं तुम्हें पानेके लिए बेचैन हूँ और इसी लिए इस समय तुम्हारी शरणमें आया हूँ। हे कदलीस्तम्भके सदृश जाँघोंवाली सुन्दरी ! मैं कामबाणसे घायल होकर यहाँ आया हूँ। मुझ शरणागतकी रक्षा करो ॥ २९ ॥ शरणागतकी रक्षा सब धर्मोंमें उत्तम धर्म है। हे श्यामनयनी ! मैं सब तरहसे तुम्हारा हूँ। हे कृशोदरी ! मैं तुम्हारा सेवक हूँ ॥३०॥ मैं मरण पर्यन्त कभी भी तुम्हारी कोई बात न टालूँगा। हे सुकुमारी ! अपने सब आयुधोंको त्यागकर मैं तुम्हारे पाँव पड़ता हूँ ॥ ३१ ॥ हे विशालनयनी ! मैं कामदेवके बाणोंसे झुलसा जा रहा हूँ। तुम मेरे ऊपर दया करो। हे सुन्दरी ! जन्मसे लेकर आजतक मैंने कभी किसीके आगे दीनता नहीं दिखायी ॥ ३२ ॥ ब्रह्मादिक

हे विशालनयनी ! मैं कामदेवके बाणोंसे झुलसा जा रहा हूँ। तुम मेरे ऊपर दया करो। हे सुन्दरी ! जन्मसे लेकर आजतक मैंने कभी किसीके आगे दीनता नहीं दिखायी ॥ ३२ ॥ ब्रह्मादिक

बड़े-बड़े देवताओंके समक्ष भी कभी मेरा मस्तक नहीं झुका। उसे आज तुम्हारे आगे झुका रहा हूँ। ब्रह्मा आदि सब देवता मेरे चरित्र और पराक्रमको भलीभाँति जानते हैं ॥ ३३ ॥ हे भामिनी ! इतना बड़ा वीर होते हुए भी मैं आपकी दासता स्वीकार करता हूँ। एक बार आप मेरा मुख तो देखिए। उसमें तुम्हारे लिए कितनी आकुलता निहित है। व्यासजी बोले—ऐसा कहते हुए दैत्य महिषासुरसे तनिक हँसकर भगवतीने कहा। देवी बोलीं—मैं परम पुरुष परमात्माके सिवाय और किसी पुरुषको नहीं चाहती ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ हे दैत्य ! मैं उस परम पुरुषकी इच्छाशक्ति हूँ। मैं ही समस्त विश्वकी सृष्टि करती हूँ। वह विश्वात्मा मुझे देख रहा है। क्योंकि मैं उसकी शिवा प्रकृति हूँ ॥ ३६ ॥ वे सदा मेरे समीप रहते हैं। इसीसे तो मुझमें चेतनाशक्ति विद्यमान रहती है। वैसे वास्तवमें मैं जड़ हूँ। उन्हींके संयोगसे मुझमें उसी प्रकार चेतना आती है ॥ ३७ ॥ जैसे चुम्बकके संयोगसे साधारण लोहमें भी चेतना आ जाती है। मेरे मनमें कभी भी ग्राम्यसुख (मैथुन) की इच्छा नहीं जागृत होती ॥ ३८ ॥ अरे मन्दबुद्धि ! तू मूर्ख है। इसी कारण स्त्रीप्रसंग करना चाहता है। क्योंकि स्त्री पुरुषको बन्धनमें

सोऽप्यहं तव दासोऽस्मि मन्मुखं पश्य भामिनि ॥ व्यास उवाच ॥ इति ब्रुवाणं तं दैत्यं देवी भगवती हि सा ॥३४॥ प्रहस्य सस्मितं वाक्यमुवाच वरवर्णिनी ॥ देव्युवाच ॥ नाहं पुरुषमिच्छामि परमं पुरुषं विना ॥ ३५ ॥ तस्य चेच्छाऽस्म्यहं दैत्य सृजामि सकलं जगत् ॥ स मां पश्यति विश्वात्मा तस्याहं प्रकृतिः शिवा ॥ ३६ ॥ तत्सान्निध्यवशादेव चैतन्यं मयि शाश्वतम् ॥ जडाऽहं तस्य संयोगात्प्रभवामि सचेतना ॥ ३७ ॥ अयस्कांतस्य सान्निध्यादयसश्चेतना यथा ॥ न ग्राम्यसुखवांछा मे कदाचिदपि जायते ॥ ३८ ॥ मूर्खस्त्वमसि मंदात्मन् यत्स्त्रीसंगं चिकीर्षसि ॥ नरस्य बंधनार्थाय शृंखला स्त्री प्रकीर्तिता ॥ ३९ ॥ लोहबद्धोऽपि मुच्येत स्त्रीबद्धो नैव मुच्यते ॥ किमिच्छसि च मंदात्मन्मूत्रागारस्य सेवनम् ॥ ४० ॥ शमं कुरु सुखाय त्वं शमात्सुखमवाप्स्यसि ॥ नारीसंगे महद्दुःखं जानन्किं त्वं विमुह्यसि ॥ ४१ ॥ त्यज वैरं सुरैः सार्धं यथेष्टं विचरावनौ ॥ पातालं गच्छ वा कामं जीवितेच्छा यदस्ति ते ॥४२॥ अथवा कुरु संग्रामं बलवत्यस्मि सांप्रतम् ॥ प्रेषिताऽहं सुरैः सर्वैस्तव नाशाय दानव ॥४३॥ सत्यं ब्रवीमि येनाद्य त्वया वचनसौहृदम् ॥ दर्शितं तेन तुष्टाऽस्मि जीवन्गच्छ यथासुखम् ॥४४॥ सतां सप्तपदी मैत्री तेन मुंचामि जीवितम् ॥ मरणेच्छाऽस्ति

बाँधनेवाली जंजीर कही गयी है ॥ ३९ ॥ लोहेकी हथकड़ी-बेड़ीमें बँधा हुआ मनुष्य कदाचित् बन्धनमुक्त हो भी सकता है, किन्तु स्त्रीके बन्धनमें बँधा प्राणी कभी नहीं छूटता। अरे मूर्ख ! क्या तू एक स्त्रीके मूत्रागार (योनि) का सेवन करना चाहता है ? ॥ ४० ॥ यदि तू सुख चाहता हो तो मनमें शान्ति रख। शान्तिसे ही सच्चा सुख मिलता है। स्त्रीसंगसे बहुत दुःख मिलता है। इस बातको जानता हुआ भी पागल क्यों बनता है ? ॥ ४१ ॥ तू देवताओंके साथ वैरभाव रखना छोड़ दे और पृथिवीपर इच्छानुसार विचरण कर। यदि जीवित रहनेकी अभिलाषा हो तो अभी पाताल चला जा ॥ ४२ ॥ अथवा अरे दानव ! आ, मेरे साथ संग्राम कर। क्योंकि इस समय मुझमें पूर्ण शक्ति विद्यमान है। सब देवताओंने मुझे तुझको मारनेके लिए ही यहाँ भेजा है ॥ ४३ ॥ तूने सद्भाव रखकर बात की है। इसलिए मैंने तुझे सच्ची बातें बता दी हैं। मेरी बात मानकर तू जीवित रहते हुए सुखपूर्वक पाताल जा सकता है ॥ ४४ ॥ केवल सात शब्दोंकी बातचीत होनेपर ही सज्जनोंके साथ मैत्री हो जाती है। इसी कारण मैं तुझे छोड़े दे रही हूँ। इसके विपरीत यदि मरनेकी इच्छा हो तो हे वीर ! तुम

मेरे साथ सानन्द युद्ध कर सकते हो ॥ ४५ ॥ हे महाबाहो ! मैं तुम्हें युद्धमें मार डालूँगी । इसमें कुछ भी संशय नहीं है। व्यासजी बोले--भगवतीके इन वचनोंको सुनकर वह कामातुर दानव सुन्दर शब्दावलीमें मीठी-मीठी बातें करता हुआ बोला—हे सुजघने ! हे सुमुखी ! मुझे तुम्हारे ऊपर प्रहार करनेमें भय लगता है ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ क्योंकि तुम बड़ी कोमल हो । तुम्हारे सब अङ्ग बहुत सुन्दर हैं । शिव-विष्णु आदि बड़े-बड़े देवताओं और सब लोकपालोंपर विजय प्राप्त करके समस्त पुरुषजातिको मोह लेनेवाली तुम जैसी नारीपर मैं प्रहार कैसे करूँ ? ॥ ४८ ॥ हे कमलनयनी ! क्या तुम्हारे साथ मेरा युद्ध करना उचित होगा ? हे सुन्दर अङ्गोंवाली सुन्दरी ! यदि तुम्हारी इच्छा हो तो तुम मेरे साथ विवाह कर लो और मौज करो ॥४९॥ नहीं तो तुम जहाँसे आयी हो, वहीं लौट जाओ । मैं तुम्हारे साथ मैत्री कर चुका हूँ । इसलिए तुमपर प्रहार नहीं करूँगा ॥ ५० ॥ यह मैंने तुम्हारे हितकी बात बतायी है । सबसे अच्छा उपाय यही है कि तुम्हारी जहाँ इच्छा हो, वहाँ चली जाओ । तुम जैसी सुनयनी और सुन्दरी रमणीका वध करनेसे मेरी कौन प्रतिष्ठा बढ़ जायगी ? ॥ ५१ ॥ स्त्रीहत्या और बालहत्याका

चेद्युद्धं कुरु वीर यथासुखम् ॥४५॥ हनिष्यामि महाबाहो त्वामहं नात्र संशयः ॥ व्यास उवाच ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा दानवः काममोहितः ॥४६॥ उवाच श्लक्ष्णया वाचा मधुरं वचनं ततः ॥ बिभेम्यहं वरारोहे त्वां प्रहर्तुं वरानने ॥ ४७ ॥ कोमलां चारुसर्वांगीं नारीं नरविमोहिनीम् ॥ जित्वा हरिहरादींश्च लोकपालांश्च सर्वशः ॥ ४८ ॥ किं त्वया सह युद्धं मे युक्तं कमललोचने ॥ रोचते यदि चार्वंगि विवाहं कुरु मां भज ॥४९॥ नोचेद्गच्छ यथेष्टं ते देशं यस्मात्समागता ॥ नाहं त्वां प्रहरिष्यामि यतो मैत्री कृता त्वया ॥ ५० ॥ हितमुक्तं शुभं वाक्यं तस्माद्गच्छ यथासुखम् ॥ का शोभा मे भवेदंते हत्वा त्वां चारुलोचनाम् ॥ ५१ ॥ स्त्रीहत्या बालहत्या च ब्रह्महत्या दुरत्यया ॥ गृहीत्वा त्वां गृहं नूनं गच्छाम्यद्य वरानने ॥५२॥ तथापि मे फलं न स्याद्बलाद्भोगसुखं कुतः ॥ प्रब्रवीमि सुकेशि त्वां विनयावनतो यतः ॥ ५३ ॥ पुरुषस्य सुखं न स्यादृते कांतामुखांबुजात् ॥ तत्तथैव हि नारीणां तस्माच्च पुरुषं विना ॥ ५४ ॥ संयोगे सुखसंभूतिर्वियोगे दुःखसंभवः ॥ कांताऽसि रूपसंपन्ना सर्वाभरणभूषिता ॥ ५५ ॥ चातुर्यं त्वयि किं नास्ति यतो मां न भजस्यहो ॥ तवोपदिष्टं केनेदं भोगानां परिवर्जनम् ॥ ५६ ॥ वंचिताऽसि प्रियालापे वैरिणा केनचित्त्विह ॥ मुंचाग्रहमिमं कांते कुरु कार्यं सुशोभनम् ॥ ५७ ॥ सुखं तव ममापि स्याद्विवाहे विहिते किल ॥ विष्णुर्लक्ष्म्या सहाभाति सावित्र्या च सहात्मभूः

पाप बड़ा भीषण होता है और उस पापका फल भोगना ही पड़ता है। हे वरानने ! वैसे तो मैं यदि चाहूँ तो तुम्हें जबर्दस्ती पकड़कर अपने घर ले जा सकता हूँ ॥५२॥ लेकिन बलात्कारसे वास्तविक सुख कैसे प्राप्त हो सकता है? अतएव हे सुकेशी ! मैं बहुत विनीतभावसे कह रहा हूँ कि जैसे पुरुषको अपनी प्रियतमाका मुख देखे बिना चैन नहीं मिलती। उसी प्रकार स्त्रियोंको भी अपने प्रियतमको निहारे बिना कल नहीं पड़ता ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ स्त्री-पुरुषके संयोगसे सुख उत्पन्न होता है और विछोह होनेपर अपार दुःख मिलता है । तुम सुन्दरी हो, रूपवती हो और सभी आभूषणोंसे आभूषित हो ॥५५॥ यह सब होते हुए भी तुम चतुर नहीं हो । तभी तो मुझ जैसे प्रेमीको पाकर भी तुम प्रेम नहीं करतीं । आखिर किसने तुम्हें इस प्रकार भोगोंको त्याग देनेकी सलाह दी है ? ॥५६॥ हे मधुरभाषिणी ! ऐसा करके किसी वैरीने तुम्हें धोखा दिया है। अतएव हे कान्ते! तुम यह दुराग्रह त्याग तथा सुखकी उपलब्धि करके अपनी भलाई

त्याग देनेकी सलाह दी है ? ॥५६॥ हे मधुरभाषिणी ! ऐसा करके किसी वैरीने तुम्हें धोखा दिया है। अतएव हे कान्ते ! तुम यह दुराग्रह त्याग तथा सुखकी उपलब्धि करके अपनी भलाई

करो ॥ ५७ ॥ यदि तुम मेरे साथ विवाह कर लो तो तुम्हें भी सुख मिले और मुझे भी । भगवान विष्णु लक्ष्मीके साथ, ब्रह्माजी सावित्रीके साथ, शंकरजी पार्वतीके साथ और इन्द्र शची (इन्द्राणी) के साथ विहार करते हैं । पतिके बिना कौन स्त्री शाश्वत सुख प्राप्त कर सकती है ? ॥५८॥५९॥ हे श्यामनयनी ! किस लिए मुझ जैसे सुन्दर पुरुषको तुम अपना पति नहीं बना रही हो ? हे कान्ते ! न जाने मन्दबुद्धि कामदेव कहाँ चला गया, जो उन्माद उत्पन्न कर देनेवाले अपने सुकोमल पंचबाणोंका प्रहार करके तुम्हें पीड़ित नहीं कर रहा है । हे सुन्दरी ! मुझे तो ऐसा मालूम पड़ता है कि कामदेव भी तुम्हारे ऊपर दयालु हो गया है ॥ ६० ॥ ६१ ॥ वह तुम्हें अबला समझ रहा है । इसी कारण अपने बाणोंसे प्रहार नहीं करता । समझमें नहीं आता कि वह मेरे साथ क्यों वैर साध रहा है ॥ ६२ ॥ तभी तो हे तिरछी चितवनवाली सुन्दरी ! वह तुम्हारे ऊपर अपने बाण नहीं छोड़ता । यह भी हो सकता है कि मेरे वैरी देवताओंने कामदेवको मना कर दिया हो ॥६३॥ मेरा सुख विध्वंस करनेवाले देवताओंने ही ऐसा कुछ कर दिया है कि कामदेव तुम्हारे ऊपर प्रहार नहीं करता । हे मृगशावकनयनी ! मुझे ठुकरा-

॥ ५८ ॥ रुद्रो भाति च पार्वत्या शच्या शतमखस्तथा ॥ का नारी पतिहीना च सुखं प्राप्नोति शाश्वतम् ॥ ५९ ॥ येन त्वमसितापांगि न करोषि पतिं शुभम् ॥ कामः क्वाद्य गतः कांते यस्त्वां बाणैः सुकोमलैः ॥६०॥ मादनैः पंचभिः कामं न ताडयति मंदधीः ॥ मन्येऽहमिव कामोऽपि दयावांस्त्वयि सुंदरि ॥ ६१ ॥ अबलेति न मन्वानो न प्रेरयति मार्गणान् ॥ मनोभवस्य वैरं वा किमप्यस्ति मया मह ॥ ६२ ॥ तेन च त्वय्यरालाक्षि न मुंचति शिलीमुखान् ॥ अथवा मेऽहितैर्देवैर्वारितोऽसौ झषध्वजः ॥६३॥ सुखविध्वंसिभिस्तेन त्वयि न प्रहरत्यपि ॥ त्यक्त्वा मां मृगशावाक्षि पश्चात्तापं करिष्यसि ॥६४॥ मंदोदरीव तन्वंगि परित्यज शुभं नृपम् ॥ अनुकूलं पतिं पश्चात्सा चकार शठं पतिम् ॥ कामार्ता च यदा जाता मोहेन व्याकुलांतरा ॥ ६५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे देवीचरित्रे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

॥ व्यास उवाच ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य देवी पप्रच्छ दानवम् ॥ का सा मंदोदरी नारी कोऽसौ त्यक्तो नृपस्तया ॥१॥ शठः को वा नृपः पश्चात्तन्मे ब्रूहि कथानकम् ॥ विस्तारेण यथा प्राप्तं दुःखं वनितया पुनः ॥ २ ॥ महिष उवाच ॥ सिंहलो नाम देशोऽस्ति विख्यातः पृथिवीतले ॥ घनपादपसंयुक्तो धनधान्यसमृद्धिमान् ॥ ३ ॥ चंद्रसेनाभिधस्तत्र राजा धर्मपरायणः ॥ न्यायदंडधर शांतः प्रजापालनतत्परः ॥ ४ ॥ सत्यवादी

कर तुम जन्म भर पछताओगी ॥ ६४ ॥ हे तन्वङ्गि ! जैसे मन्दोदरीने अपनी प्रकृतिके अनुकूल एक सुन्दर राजकुमारको पति नहीं बनाया । किन्तु बादमें जब वह कामपीड़ासे व्याकुल हुई, तब उसे एक शठ पुरुषको अपना पति बनाकर पछताना पड़ा ॥ ६५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

(मन्दोदरीकी कथा) व्यासजी बोले—हे महाराज ! महिषासुरकी यह बात सुनकर भगवतीने कहा—वह मन्दोदरी कौन थी ? उसने किस राजाको त्यागा था ? ॥ १ ॥ बादमें उसने जिसे पति बनाया, वह शठ पुरुष कौन था ? तत्पश्चात् उस महिलाको जो दुःख मिले हों, वह सब विस्तारके साथ बताओ ॥ २ ॥ महिषासुरने कहा—पृथिवीतलपर विख्यात सिंहल नामका एक देश है । उस देशमें बहुतेरे घने-घने वृक्ष हैं और वह धन-धान्यसे सर्वथा समृद्ध रहता है ॥ ३ ॥ वहाँ चन्द्रसेन नामका राजा राज्य करता था । जो बड़ा धर्मात्मा, शान्तस्व-

भाव, प्रजापालनमें तत्पर और न्यायपूर्वक शासनकार्य करनेवाला राजा था ॥४॥ वह सत्यवादी, कोमल, वीर, सहिष्णु, नीतिशास्त्रका सागर, शास्त्रवेत्ता, सब धर्मोंका जानकार और धनुर्वेदका प्रकाण्ड पंडित था ॥५॥ उसकी भार्या भी बड़ी सुन्दरी, रूपवती, सौभाग्यशालिनी, गुणसम्पन्ना, सदाचारिणी, सुमुखी और पूर्ण पतिपरायणा थी ॥६॥ उसका नाम गुणवती था। उसमें सभी अच्छे लक्षण विद्यमान थे। प्रथम गर्भसे उसने एक अतीव सुन्दरी कन्याको जन्म दिया ॥ ७ ॥ उसका पिता चन्द्रसेन भी उस मनोहारिणी कन्याको पाकर बहुत प्रसन्न हुआ और बड़े हर्षके साथ उसने उसका मन्दोदरी नाम रक्खा ॥ ८ ॥ वह कन्या भी चन्द्रमाकी कलाके समान दिन-दिन बढ़ने लगी। वह अत्यन्त सुन्दरी कुमारी जब दस वर्षकी हुई ॥ ९ ॥ तभीसे उसके वरके लिए राजा चन्द्रसेनकी चिन्ता अहर्निशि बढ़ने लगी। मद्रदेशका अधिपति और असाधारण वीर सुधन्वा नामका राजा था ॥१०॥ उस राजाका कम्बुग्रीव नामसे विख्यात पुत्र था। वह बड़ा बुद्धिमान् और लोकप्रसिद्ध पुरुष था। ब्राह्मणोंने राजा चन्द्रसेनसे कहा कि कम्बुग्रीव मन्दोदरीके योग्य वर है ॥ ११ ॥ क्योंकि उसमें सभी सुलक्षण विद्यमान हैं और वह सब विद्याओंका

मृदुः शूरस्तितिक्षुर्नीतिसागरः ॥ शास्त्रवित्सर्वधर्मज्ञो धनुर्वेदेऽतिनिष्ठितः ॥ ५ ॥ तस्य भार्या वरारोहा सुन्दरी सुभगा शुभा ॥ सदाचाराऽतिसुमुखी पतिभक्तिपरायणा ॥ ६ ॥ नाम्ना गुणवती कांता सर्वलक्षणसंयुता ॥ सुषुवे प्रथमे गर्भे पुत्रीं सा चातिसुन्दरीम् ॥ ७ ॥ पिता चातीव संतुष्टः पुत्रीं प्राप्य मनोरमाम् ॥ मन्दोदरीति नामास्याः पिता चक्रे मुदान्वितः ॥८॥ इन्दोः कलेव चात्यर्थं ववृधे सा दिने दिने ॥ दशवर्षा यदा जाता कन्या चातिमनोहरा ॥ ९ ॥ वरार्थं नृपतिश्चिन्तामवाप च दिने दिने ॥ मद्रदेशाधिपः शूरः सुधन्वा नाम पार्थिवः ॥१०॥ तस्य पुत्रोऽतिमेधावी कंबुग्रीवोऽतिविश्रुतः ॥ ब्राह्मणैः कथितो राज्ञे संयुक्तोऽस्या वरः शुभः ॥ ११ ॥ सर्वलक्षणसंपन्नः सर्वविद्यार्थपारगः ॥ राज्ञा पृष्टा तदा राज्ञी नाम्ना गुणवती प्रिया ॥ १२ ॥ कंबुग्रीवाय कन्यां स्वां दास्यामि वरवर्णिनीम् ॥ सा तु पत्युर्वचः श्रुत्वा पुत्रीं पप्रच्छ सादरम् ॥ १३ ॥ विवाहं ते पिता कर्तुं कंबुग्रीवेण वांछति ॥ तच्छ्रुत्वा मातरं प्राह वाक्यं मन्दोदरी तदा ॥ १४ ॥ नाहं पतिं करिष्यामि नेच्छा मेऽस्ति परिग्रहे ॥ कौमारं व्रतमास्थाय कालं नेष्यामि सर्वथा ॥ १५ ॥ स्वातंत्र्येण चरिष्यामि तपस्तीव्रं सदैव हि ॥ पारतंत्र्यं परं दुःखं मातः संसारसागरे ॥ १६ ॥ स्वातंत्र्यान्मोक्षमित्याहुः पण्डिताः शास्त्रकोविदाः ॥ तस्मान्मुक्ता भविष्यामि पत्या मे न प्रयोजनम् ॥ १७ ॥ विवाहे वर्तमाने तु पावकस्य च सन्निधौ ॥ वक्तव्यं

पारंगत विद्वान् है। यह सुनकर राजा चन्द्रसेनने अपनी रानी गुणवतीसे इस बातकी चर्चा की और कहा कि मैं अपनी सुन्दरी कन्या उस राजकुमारके साथ ब्याह दूँगा। पतिके वचन सुनकर महारानी गुणवतीने बड़े आदरपूर्वक पुत्री मन्दोदरीसे पूछा ॥ १२ ॥ १३ ॥ उसने कहा—मन्दोदरी! तुम्हारे पिताजी राजकुमार कम्बुग्रीवके साथ तुम्हारा ब्याह करना चाहते हैं। मन्दोदरी बोली—॥१४॥ माताजी! मैं विवाह नहीं करना चाहती। पतिप्राप्तिके लिए मेरी तनिक भी इच्छा नहीं है। मैं जन्मभर कुँवारी रहकर समय बिताऊँगी ॥१५॥ हे माताजी! इस संसारसागरमें परतन्त्रतासे बढ़कर और कोई दुःख नहीं है। अतएव मैं स्वतंत्रतापूर्वक सदा कठोर तप करूँगी ॥ १६ ॥ शास्त्रोंके जानकार विद्वानोंका कथन है कि स्वाधीनतासे ही मुक्ति मिलती है। अतएव मैं सदा मुक्त रहूँगी। पतिकी मुझे आवश्यकता नहीं है॥ १७ ॥ विवाहके अवसरपर अग्निको साक्षी बनाकर कन्याको यह प्रतिज्ञा करनी पड़ती है कि 'मैं सदा आप पतिदेवके

है। अतएव मैं सदा मुक्त रहूँगी। पतिकी मुझे आवश्यकता नहीं है॥ १७ ॥ विवाहके अवसरपर अग्निको साक्षी बनाकर कन्याको यह प्रतिज्ञा करनी पड़ती है कि 'मैं सदा आप पतिदेवके

अधीन रहूँगी' ॥१८॥ ससुरालमें सास और देवरकी गुलामी करनी पड़ती है। सदा पतिके इच्छानुसार चलना पड़ता है। यह कोई साधारण दुःख नहीं है ॥ १९ ॥ पतिदेवने यदि किसी दूसरी लड़कीके साथ ब्याह कर लिया तो सौतसे मिलनेवाला महान् दुःख झेलना पड़ता है ॥ २० ॥ तब पतिसे ईर्ष्या होने लगती है और झगड़ा होने लग जाता है। हे माताजी! संसारमें सुख कहाँ है? विशेष करके स्त्रियोंको कौन-सा सुख मिलता है? ॥ २१ ॥ यह संसार स्वप्ननगरके समान मिथ्या है। इस जगत्में नारीजाति स्वभावतः परतंत्र रहती है। हे माताजी! कुछ दिनों पहले मैंने सुना था कि महाराज उत्तानपादके पुत्र राजकुमार 'उत्तम' थे। वे सब धर्मोंके ज्ञाता और ध्रुवके छोटे-भाई थे। उन्होंने अपनी धर्मपरायणा, पतिव्रता, पतिकी सेवामें संलग्न और प्राणोंसे भी प्रिय सुन्दरी पत्नीको बिना किसी अपराधके वनमें छोड़वा दिया था। इस प्रकार कभी-कभी पतिके रहते हुए भी स्त्रीको तरह-तरहके कष्ट उठाने पड़ते हैं ॥ २२–२४ ॥ दैवयोगसे यदि पतिकी मृत्यु हो जाती है तो विधवा बनकर महान् दुःख सहना और यावज्जीवन शोक और सन्तापकी आगमें जलते रहना पड़ता है ॥ २५ ॥ यदि पति परदेश चला जाता

वचनं सम्यक्त्वदधीनाऽस्मि सर्वदा ॥ १८ ॥ श्वश्रूदेवरवर्गाणां दासीत्वं श्वशुरालये ॥ पतिचित्तानुवर्तित्वं दुःखाद्दुःखतरं स्मृतम् ॥ १९ ॥ कदाचित्पतिरन्यां वा कामिनीं च भजेद्यदि ॥ तदा महत्तरं दुःखं सपत्नीसंभवं भवेत् ॥ २० ॥ तदेर्ष्या जायते पत्यौ क्लेशश्चापि भवेदथ ॥ संसारे क्व सुखं मातर्नारीणां च विशेषतः ॥ २१ ॥ स्वभावात्परतन्त्राणां संसारे स्वप्नधर्मिणि ॥ श्रुतं मया पुरा मातरुत्तानचरणात्मजः ॥२२॥ उत्तमः सर्वधर्मज्ञो ध्रुवादवरजो नृपः ॥ पत्नीं धर्मपरां साध्वीं पतिभक्तिपरायणाम् ॥ २३ ॥ अपराधं विना कांतां त्यक्तवान्विपिने प्रियाम् ॥ एवंविधानि दुःखानि विद्यमाने तु भर्तरि ॥ २४ ॥ कालयोगान्मृते तस्मिन्नारी स्याद्दुःखभाजनम् ॥ वैधव्यं परमं दुःखं शोकसंतापकारकम् ॥ २५ ॥ परोषितपतित्वेऽपि दुःखं स्यादधिकं गृहे ॥ मदनाग्निविदग्धायाः किं सुखं पतिसंगजम् ॥२६॥ तस्मात्पतिर्न कर्तव्यः सर्वथेति मतिर्मम ॥ एवं प्रोक्ता तदा माता पतिं प्राह नृपात्मजा ॥२७॥ न च वांछति भर्तारं कौमारव्रतधारिणी ॥ व्रतजाप्यपरा नित्यं संसाराद्विमुखी सदा ॥ २८ ॥ न कांक्षति पतिं कर्तुं बहुदोषविचक्षणा ॥ भार्याया भाषितं श्रुत्वा तथैव संस्थितो नृपः ॥२९॥ विवाहो न कृतः पुत्र्या ज्ञात्वा भावविर्जिताम् ॥ वर्तमाना गृहेष्वेव पित्रा मात्रा च रक्षिता ॥ ३० ॥ यौवनस्यांकुरा जाता नारीणां कामदीपकाः ॥ तथापि सा वयस्याभिः प्रेरिताऽपि पुनः पुनः ॥ ३१ ॥ चकमे न

है, तब भी घरमें अकेली रहनेके कारण बड़ा दुःख होता है। स्त्री बेचारी कामाग्निमें जलती रहती है। तब आप ही बतायें कि उसे पतिके समागमका कौनसा सुख मिला? ॥ २६ ॥ अतएव मेरी तो यही सम्मति है कि कन्याको कभी विवाह न करना चाहिए। पुत्रीके विचार सुनकर मन्दोदरीकी माता राजरानी गुणवतीने अपने पतिसे कहा—॥ २७ ॥ मन्दोदरी बालब्रह्मचारिणी रहना चाहती है। उसे पतिकी कोई आवश्यकता नहीं है। वह संसारसे विरक्त रहकर सदा व्रत और जप करेगी ॥ २८ ॥ विवाहके अनेक दोष दिखलाकर वह किसीको अपना पति नहीं बनाना चाहती। भार्याके द्वारा कन्याका अभिप्राय जानकर राजा चन्द्रसेन भी चुप रह गये ॥२९॥ विवाहके सम्बन्धमें अपनी पुत्रीका रुख न पाकर राजाने उसके विवाहका विचार त्याग दिया और मन्दोदरी अपने माता-पिताके संरक्षणमें घर ही रहने लगी ॥३०॥ कुछ समय बाद उसके शरीरमें कामवासना जागृत करनेवाले यौवन-

के लक्षण उभड़ने लगे। उस समय उसकी सखियोंने पति चुननेका बारम्बार आग्रह किया ॥ ३१ ॥ किन्तु उसने ज्ञान-वैराग्यकी बातें करके साफ इनकार कर दिया। एक दिन वह सुन्दरी बड़े उमंगसे अपनी दासियोंके साथ बगीचेमें सैर करने गयी। वहाँ बहुतेरे वृक्ष थे और उनपर लतायें फूली हुई थीं। उन्हें देखकर वह पतली कमरवाली सुन्दरी मन्दोदरी वहाँ ही खेलने लगी ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ वह अपनी सखियोंके साथ दौड़-दौड़कर फूल चुन रही थी। संयोगवश उसी समय अवधनरेश वीरसेन नामसे अतिविख्यात राजा वहाँ जा पहुँचे। वे अपने रथपर अकेले बैठे थे और कुछ सेवक उनके साथ थे ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ पीछे उनकी सेना धीरे-धीरे आ रही थी। मन्दोदरीकी सखियोंने दूरसे ही राजाको देख लिया ॥ ३६ ॥ वे भागकर मन्दोदरीके पास गयीं और कहने लगीं कि दूसरे कामदेवके समान सुन्दर, रूपवान् तथा विशालबाहु एक मनुष्य रथपर सवार होकर इधर ही आ रहा है। मेरा ख्याल है कि वह कोई राजा है। जो संयोगवश

पतिं कर्तुं ज्ञानार्थपदभाषिणी ॥ एकदोद्यानदेशं सा विहर्तुं बहुपादपे ॥३२॥ जगाम सुमुखी प्रेम्णा सैरंध्रीगणसेविता ॥ रेमे कृशोदरी तत्रापश्यत्कुसुमिता लताः ॥ ३३ ॥ पुष्पाणि चिन्वती रम्या वयस्याभिः समावृता ॥ कोसलाधिपतिस्तत्र मार्गे दैववशात्तदा ॥ ३४ ॥ आजगाम महावीरो वीरसेनोऽतिविश्रुतः ॥ एकाकी रथमारूढः कतिचित्सेवकैर्वृतः ॥ ३५ ॥ सैन्यं च पृष्ठतस्तस्य समायाति शनैः शनैः ॥ दृष्टस्तस्या वयस्याभिर्दूरतः पार्थिवस्तदा ॥ ३६ ॥ मंदोदर्यै तथा प्रोक्तं समायाति नरः पथि ॥ रथारूढो महाबाहू रूपवान्मदनोऽपरः ॥ ३७ ॥ मन्येऽहं नृपतिः कश्चित्प्राप्तो भाग्यवशादिह ॥ एवं ब्रुवत्यां तत्रादौ कोसलेन्द्रः समागतः ॥ ३८ ॥ दृष्ट्वा तामसितापांगीं विस्मयं प्राप भूपतिः ॥ उत्तीर्य स रथात्तूर्णं पप्रच्छ परिचारिकाम् ॥ ३९ ॥ केयं बाला विशालाक्षी कस्य पुत्री वदाशु मे ॥ एवं पृष्टा तु सैरंध्री तमुवाच शुचिस्मिता ॥ ४० ॥ प्रथमं ब्रूहि मे वीर पृच्छामि त्वां सुलोचन ॥ कोऽसि त्वं किमिहायातः किं कार्यं वद सांप्रतम् ॥ ४१ ॥ इति पृष्टस्तु सैरंध्र्या तामुवाच महीपतिः ॥ कोसलो नाम देशोऽस्ति पृथिव्यां परमाद्भुतः ॥ ४२ ॥ तस्य पालयिता चाहं वीरसेनाभिधः प्रिये ॥ वाहिनी पृष्ठतः कामं समायाति चतुर्विधा ॥ ४३ ॥ मार्गभ्रमादिह प्राप्तं विद्धि मां कोसलाधिपम् ॥ सैरंध्र्युवाच ॥ चंद्रसेनसुता राजन्नाम्ना मंदोदरी किल ॥४४॥ उद्याने रंतुकामेयं प्राप्ता कमललोचना ॥ श्रुत्वा तद्भाषितं राजा प्रत्युवाच प्रसाधिकाम् ॥ ४५ ॥ सैरंध्रि चतुराऽसि त्वं राजपुत्रीं प्रबोधय ॥ ककुत्स्थवंशजश्चाहं राजाऽस्मि चारुलोचने ॥ ४६ ॥

इस राह आ निकला है। वे सखियाँ ऐसा कह ही रही थीं कि इतनेमें कोसलनरेश वहाँ आ गये ॥३७॥३८॥ उस श्यामनयनी मन्दोदरीको देखकर राजाको बहुत आश्चर्य हुआ। तत्काल रथसे उतरकर उन्होंने एक दासीसे पूछा—॥३९॥ यह विशालनयनी सुन्दरी कौन है? यह किसकी पुत्री है? मुझे शीघ्र बताओ। राजाके यह पूछनेपर दासीने कहा—आप कौन हैं? यहाँ क्यों आये हैं? क्या काम है? यह बताइए ॥ ४० ॥ ४१ ॥ दासीके यह पूछनेपर राजाने कहा—पृथिवीपर कोसल नामका एक परम अद्भुत देश है ॥ ४२ ॥ हे प्रिये! उसका मैं शासक हूँ। मेरा नाम वीरसेन है। पीछे मेरी चतुरंगिणी सेना आ रही है ॥ ४३ ॥ रास्ता भूल जानेके कारण मैं इधर आ निकला हूँ। दासीने कहा—हे राजन्! यह महाराज चन्द्रसेनकी पुत्री है। इसका नाम मन्दोदरी है ॥ ४४ ॥ इस समय यह कमलनयनी बागमें सैर करने आयी है। दासीकी बात सुनकर राजाने उस सैरन्ध्री (चोटी गूँथनेवाली दासी) से

पुत्री है। इसका नाम मन्दोदरी है ॥ ४४ ॥ इस समय यह कमलनयनी बागमें सैर करने आयी है। दासीकी बात सुनकर राजाने उस सैरन्ध्री (चोटी गूँथनेवाली दासी) से

कहा—॥ ४५ ॥ हे सैरन्ध्री ! तुम बड़ी चतुर हो। अतएव तुम राजकुमारीको बताओ कि मैं ककुत्स्थवंशमें उत्पन्न एक राजा हूँ ॥ ४६ ॥ हे कामिनी ! मेरी इच्छा है कि तुम मेरे साथ गान्धर्वविवाह करके मुझे अपना पति बना लो। हे शोभननितम्बे ! मैंने अभी विवाह नहीं किया है और आपकी भी जवानी उमड़ रही है ॥ ४७ ॥ मैं किसी रूपवती और कुलीन कन्याकी तलाशमें था। सो तुम मिल गयीं। यदि गांधर्वविवाह पसन्द न हो तो तुम्हारे पिता मुझे विधिवत् कन्यादान दे सकते हैं ॥ ४८ ॥ मैं सर्वथा तुम्हारे अनुकूल पति होऊँगा। महिषने कहा—राजा वीरसेनकी सब बातें सुनकर सैरन्ध्री मन्दोदरीके पास गयी ॥ ४९ ॥ कामशास्त्रमें निपुण सैरन्ध्रीने हँसकर मधुर वाणीमें कहा—हे मन्दोदरी ! ये सूर्यवंशमें जायमान राजा हैं ॥ ५० ॥ ये रूपवान्, बलवान्, सुन्दर और आपकी उम्रके हैं। हे सुन्दरी ! ये आपके ऊपर अत्यन्त मोहित हो गये हैं ॥ ५१ ॥ हे विशाल-नयनी ! आपके पिता भी आपकी विवाह योग्य अवस्था देख और विवाहसे विरागकी बात सुनकर बहुत दुःखी रहा करते हैं ॥ ५२ ॥ उन्होंने बारंबार लम्बी साँस लेकर मुझसे कहा था—

गांधर्वेण विवाहेन पतिं मां कुरु कामिनि ॥ न मे भार्याऽस्ति सुश्रोणि वयसोऽद्भुतयौवनाम् ॥ ४७ ॥ वांछामि रूपसंपन्नां सुकुलां कामिनीं किल ॥ अथवा ते पिता मह्यं विधिना दातुमर्हति ॥ ४८ ॥ अनुकूलः पतिश्चाहं भविष्यामि न संशयः ॥ महिष उवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तस्य सैरंध्री प्राह तां तदा ॥ ४९ ॥ प्रहस्य मधुरं वाक्यं कामशास्त्रविशारदा ॥ मन्दोदरि नृपः प्राप्तः सूर्यवंशसमुद्भवः ॥ ५० ॥ रूपवान्बलवान्कांतो वयसा त्वत्समः पुनः ॥ प्रीतिमान्नृपतिर्जातस्त्वयि सुंदरि सर्वथा ॥ ५१ ॥ पिताऽपि ते विशालाक्षि परितप्यति सर्वथा ॥ विवाहकालं ते ज्ञात्वा त्वां च वैराग्यसंयुताम् ॥ ५२ ॥ इत्याहास्मान्स नृपतिर्विनिःश्वस्य पुनः पुनः ॥ पुत्रीं प्रबोधयंत्वेतां सैरन्ध्र्यः सेवने रताः ॥ ५३ ॥ वक्तुं शक्ता वयं न त्वां हठधर्मरतां पुनः ॥ भर्तुः शुश्रूषणं स्त्रीणां परो धर्मोऽब्रवीन्मनुः ॥ ५४ ॥ भर्तारं सेवमाना वै नारी स्वर्गमवाप्नुयात् ॥ तस्मात्कुरु विशालाक्षि विवाहं विधिपूर्वकम् ॥ ५५ ॥ मन्दोदर्युवाच ॥ नाहं पतिं करिष्यामि चरिष्ये तप अद्भुतम् ॥ निवारय नृपं बाले किं मां पश्यति निस्त्रपः ॥५६॥ सैरंध्र्युवाच ॥ दुर्जयो देवि कामोऽसौ कालोऽसौ दुरतिक्रमः ॥ तस्मान्मे वचनं पथ्यं कर्तुमर्हसि सुंदरि ॥ ५७ ॥ अन्यथा व्यसनं नूनमापतेदिति निश्चयः ॥ इति तस्या वचः श्रुत्वा कन्योवाचाथ तां सखीम् ॥ ५८ ॥ यद्यद्भवेत्तद्भवतु दैवयोगादसंशयम् ॥ न विवाहं करिष्येऽहं सर्वथा परिचारिके

हे दासियो ! तुम सदा मन्दोदरीकी सेवामें रहती हो। सो तुम्हीं उसे समझाओ ॥५३॥ किन्तु आपको हठधर्मी देखकर हम कुछ नहीं कह सकीं। महाराज मनुने कहा है कि पतिसेवासे बढ़कर स्त्रीके लिए और कोई भी धर्म नहीं है ॥५४॥ पतिकी सेवा करनेवाली स्त्रीको स्वर्ग प्राप्त होता है। अतएव हे विशालाक्षी ! आप इनके साथ विधिवत् विवाह कर लीजिए ॥५५॥ मंदोदरीने कहा—मैं विवाह न करके अद्भुत तप करूँगी। हे बाले ! तुम जाकर राजा वीरसेनको मना कर दो। वे निर्लज्ज होकर मेरी ओर क्यों निहार रहे हैं ? ॥ ५६ ॥ सैरन्ध्रीने कहा—हे देवि ! कामदेवको जीतना बड़ा कठिन होता है और यौवनावस्था स्त्रीको बेकाबू कर देती है। अनएव हे सुंदरी ! आप मेरी उचित सलाह मान लीजिए ॥ ५७ ॥ नहीं तो मुझे पूर्ण विश्वास है कि आपको बड़े संकटका सामना करना होगा। सैरंध्रीके वचन सुनकर कन्या मन्दोदरीने कहा —॥ ५८ ॥ हे परिचारिके ! जो होनहार होगा, वह होकर ही रहेगा। फिर भी मैं विवाह

कदापि नहीं करूँगी ॥ ५९ ॥ महिष बोला—मन्दोदरीकी हठभरी बात सुनकर सैरन्ध्रीने राजा वीरसेनसे जाकर कहा—महाराज ! आप जाइए । कन्या आप जैसे अच्छे पतिको नहीं चाहती ॥ ६० ॥ दासीकी बात सुनकर राजाने उधरसे अपना मन हटा लिया और उदास होकर अपनी सेनाके साथ कोसलदेशको चले गये ॥६१॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृत'पीताम्बरा'भाषाटीकायां सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

(महिषासुरके वधकी कथा) महिषासुर बोला—मन्दोदरीकी एक छोटी बहिन थी, उसका नाम था इन्दुमती । वह सभी शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न और अनुपम रूपवती थी । जब वह विवाहके योग्य हुई, तब उसका स्वयंवर रचाया गया । उस स्वयंवरमण्डपमें अनेक देशके राजे आये ॥ १ ॥ २ ॥ इन्दुमतीने उनमेंसे एक बलवान्, सुन्दर, कुलीन, शीलवान् और सभी शुभलक्षणों युक्त राजाको पतिरूपमें चुन लिया ॥ ३ ॥ उसी समय दैवयोगसे मंदोदरी एक धूर्त राजाको देखकर कामातुर हो उठी । वह उस शठ और चतुर राजापर मोहित हो गयी ॥४॥

॥ ५९ ॥ महिष उवाच ॥ इति तस्यास्तु निर्बन्धं ज्ञात्वा प्राह नृपं पुनः ॥ गच्छ राजन्यथाकामं नेयमिच्छति सत्पतिम् ॥६०॥ नृपस्तु तद्वचः श्रुत्वा निर्गतः सह सेनया ॥ कोसलान्विमना भूत्वा कामिनीं प्रति निःस्पृहः ॥६१॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

॥ महिष उवाच ॥ तस्यास्तु भगिनी कन्या नाम्ना चेंदुमती शुभा ॥ विवाहयोग्या संजाता सुरूपाऽवरजा यदा ॥ १ ॥ तस्या विवाहः संवृत्तः संजातश्च स्वयंवरः ॥ राजानो बहुदेशीयाः संगतास्तत्र मंडपे ॥ २ ॥ तया वृतो नृपः कश्चिद्बलवान्रूपसंयुतः ॥ कुलशीलसमायुक्तः सर्वलक्षणसंयुतः ॥ ३ ॥ तदा कामातुरा जाता विटं वीक्ष्य नृतं तु सा ॥ चकमे दैवयोगात्तु शठं चातुर्यभूषितम् ॥ ४ ॥ पितरं प्राह तन्वङ्गी विवाहं कुरु मे पितः ॥ इच्छा मेऽद्य समुद्भूता दृष्ट्वा मद्राधिपं त्विह ॥५॥ चंद्रसेनोऽपि तच्छ्रुत्वा पुत्र्या यद्भाषितं रहः ॥ प्रसन्नेन च मनसा तत्कार्ये तत्परोऽभवत् ॥ ६ ॥ तमाहूय नृपं गेहे विवाहविधिना ददौ ॥ कन्यां मंदोदरीं तस्मै पारिबर्हं तथा बहु ॥ ७ ॥ चारुदेष्णोऽपि तां प्राप्य सुंदरीं मुदितोऽभवत् ॥ जगाम स्वगृहं तुष्टो राजाऽपि सहितः स्त्रिया ॥ ८ ॥ रेमे नृपतिशार्दूलः कामिन्या बहुवासरान् ॥ कदाचिद्दासपत्न्या स रममाणो रहः किल ॥ ९ ॥ सैरंध्र्या कथितं तस्यै तया दृष्टः पतिस्तथा ॥ उपालंभं ददौ तस्मै स्मितपूर्वं रुषान्विता ॥ १० ॥ कदाचिदपि सामान्यां रहो रूपवतीं नृपः ॥ क्रीडयँल्लालय-

उस सुंदरीने अपने पितासे कहा—हे पिताजी ! अब आप मेरा भी विवाह कर दीजिए । मद्रदेशके नरेशको देखकर मेरी भी विवाह करनेकी इच्छा हो गयी है ॥५॥ राजा चन्द्रसेन एकांतमें पुत्रीकी बात सुनकर मन ही मन हँसे और तत्काल ब्याहकी तैयारीमें लग गये ॥ ६ ॥ तदनन्तर मद्रनरेशको अपने घर बुलाकर उन्होंने वैवाहिक विधिके अनुसार मंदोदरी उसे सौंप दी और दहेजमें बहुत कुछ दिया ॥ ७ ॥ मद्रनरेश चारुदेष्ण भी सुन्दरी मन्दोदरीको पाकर बहुत प्रसन्न हुआ और सर्वथा सन्तुष्ट होकर नवपरिणीता वधूके साथ अपनी राजधानीको चला गया । महाराज चारुदेष्णने बहुत समय तक मंदोदरीके साथ भोग-विलास किया । एक दिन वह राजा किसी दासीके साथ भोग कर रहा था ॥८॥९॥ यह बात सैरन्ध्रीने मंदोदरीको बता दी और उसे ले जाकर दिखा भी दिया । यह देख मुसकाकर गुस्सेके साथ उसने राजाको उलाहना दिया ॥ १० ॥ तब भी उसकी कुटेव नहीं छूटी और दूसरे समय मन्दोदरीने उसे

बता दी और उसे ले जाकर दिखा भी दिया। यह देख मुसकाकर गुस्सेके साथ उसने राजाको उलाहना दिया ॥ १० ॥ तब भी उसकी कुटेव नहीं छूटी और दूसरे समय मन्दोदरीने उसे

फिर एक रूपवती दासीके साथ दुराचार करते और उसे दुलराते देखा। यह देखकर उसे बहुत दुःख हुआ ॥११॥ उसने सोचा—उस समय स्वयंवरमें जब मैंने इसे देखा था, तब नहीं समझ सकी थी कि यह इतना बड़ा दुष्ट होगा। मोहवश मैंने यह क्या किया ? इस राजाने मुझे धोखा दिया ॥१२॥ यह तो बड़ा निर्लज्ज, क्रूर और दुराचारी मनुष्य है। इसके साथ मेरी प्रीति कैसे निभ सकती है। मेरे जीवनको धिक्कार है ॥ १३ ॥ आजसे मैं पतिसहवासके सांसारिक सुखको त्याग रही हूँ। अब मैंने सन्तोष कर लिया है ॥ १४ ॥ जो मुझे नहीं करना चाहिए, मैं वह काम कर गुजरी। इसी कारण मुझे यह दुःख देखना पड़ा। यदि मैं पिताके घर चली जाऊँ तो वहाँ भी चैन न मिलेगी। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि वहाँ सखियाँ मेरी हँसी उड़ायेंगी ॥१५॥१६॥ अतएव वैराग्य धारण करके भोगविलाससे दूर रहते हुए यहीं जीवन बिताना ठीक होगा ॥१७॥ महिषने कहा कि ऐसा विचार करके वह नारी सांसारिक सुख तथा पतिका रंग-

न्दृष्टः खेदं प्राप तदैव सा ॥११॥ न ज्ञातोऽयं शठः पूर्वं यदा दृष्टः स्वयंवरे ॥ किं कृतं तु मया मोहाद्वंचिताऽहं नृपेण ह ॥ १२ ॥ किं करोम्यद्य संतापं निर्लज्जे निर्घृणे शठे ॥ का प्रीतिरीदृशे पत्यौ धिगद्य मम जीवितम् ॥ १३ ॥ अद्यप्रभृति संसारे सुखं त्यक्तं मया खलु ॥ पतिसंभोगजं सर्वं संतोषोऽद्य मया कृतः ॥१४॥ अकर्तव्यं कृतं कार्यं तज्जातं दुःखदं मम ॥ देहत्यागः क्रियते चेद्धत्याऽतीव दुरत्यया ॥ १५ ॥ पितृगेहं व्रजाम्याशु तत्रापि न सुखं भवेत् ॥ हास्ययोग्या सखीनां तु भवेयं नात्र संशयः ॥ १६ ॥ तस्मादत्रैव संवासो वैराग्ययुतया मया ॥ कर्तव्यः कालयोगेन त्यक्त्वा कामसुखं पुनः ॥१७॥ महिष उवाच ॥ इति संचिंत्य सा नारी दुःखशोकपरायणा ॥ स्थिता पतिगृहं त्यक्त्वा सुखं संसारजं ततः ॥१८॥ तस्मात्त्वमपि कल्याणि मामनादृत्य भूपतिम् ॥ अन्यं कापुरुषं मंदं कामार्ता संश्रयिष्यसि ॥ १९ ॥ वचनं कुरु मे तथ्यं नारीणां परमं हितम् ॥ अकृत्वा परमं शोकं लप्स्यसे नात्र संशयः ॥ २० ॥ देव्युवाच ॥ मंदात्मन्गच्छ पातालं युद्धं वा कुरु सांप्रतम् ॥ हत्वा त्वामसुरान्सर्वान्गमिष्यामि यथासुखम् ॥ २१ ॥ यदा यदा हि साधूनां दुःखं भवति दानव ॥ तदा तेषां च रक्षार्थं देहं संधारयाम्यहम् ॥ २२ ॥ अरूपायाश्च मे रूपमजन्मायाश्च जन्म च ॥ सुराणां रक्षणार्थाय विद्धि दैत्य विनिश्चितम् ॥२३॥ सत्यं ब्रवीमि जानीहि प्रार्थिताऽहं सुरैः किल ॥ त्वद्वधार्थं हयारे त्वां हत्वा

महल त्यागकर दुःख और शोकसे सन्तप्त रहती हुई क्लेशमय जीवन बिताने लगी ॥ १८ ॥ उसी प्रकार हे कल्याणी ! मुझ जैसे अच्छे पतिको ठुकराकर कामार्त होनेपर किसी कायर और मूर्ख पुरुषको पति बनाकर जीवनभर पछताओगी ॥ १९ ॥ अतएव स्त्रीजातिके लिए अत्यन्त हितकारी मेरी सलाहको तुम मान लो। यदि न मानोगी तो बादमें बहुत दुःख उठाओगी ॥ २० ॥ देवी बोलीं—अरे मन्दबुद्धि ! अब या तो तू पाताललोकको चला जा या मेरे साथ युद्ध कर। तुझे और तेरे साथके सब असुरोंको मारकर मैं सुखपूर्वक यहाँसे चली जाऊँगी। ओ दानव ! जब जब साधु पुरुषोंपर संकट आता है, तब-तब उनकी रक्षा करनेके लिए मैं अवतार लेती हूँ ॥२१॥२२॥ हे दैत्य ! वास्तवमें मैं निराकार और अजन्मा हूँ। तथापि देवताओं-की रक्षा करनेके लिए साकार होकर जन्म लेती हूँ। यह तू निश्चित समझ ले ॥ २३ ॥ देवताओंने तेरा वध करनेके लिए मुझसे प्रार्थना की थी। ओ महिष ! तुझे मारकर मैं सर्वथा

निश्चिन्त हो जाऊँगी ॥ २४ ॥ अतएव अब तू मेरे साथ युद्ध कर अथवा असुरोंकी निवासभूमि पाताललोकको चला जा । नहीं तो मैं तुझे मार डालूँगी । यह बात मैं सच कह रही हूँ ॥२५॥ व्यासजी बोले कि देवीके ऐसा कहनेपर महिषने हाथमें धनुष लिया और लड़नेके लिए मैदानमें जा डटा ॥ २६ ॥ देवीपर वह तत्काल बड़े वेगसे बाणवर्षा करने लगा । तब भगवतीने अपने लौहमुख बाणोंसे उसके बाणोंको व्यर्थ कर दिया ॥२७॥ अब देवी और दानव महिषमें भीषण संग्राम आरम्भ हो गया । उस युद्धको देखकर अपनी-अपनी विजय चाहनेवाले देवता और दानव दोनों दहल गये ॥२८॥ इसी समय दुर्धर नामका दैत्य रणभूमिमें आकर भगवतीको कुपित करता हुआ उनपर अतिशय दारुण और विषैले बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥ २९ ॥ तब भगवतीने बड़े क्रोधके साथ उसपर बड़े ही तीक्ष्ण बाणोंसे द्वारा प्रहार किया, जिससे दुर्धर धराशायी हो गया और उसके प्राण निकल गये ॥३०॥ दुर्धरको मरता देखकर शस्त्रनिपुण त्रिनेत्र रणभूमिमें आया और आते ही उसने देवीपर सात बाण चलाये ॥ ३१ ॥ वे देवीके पास पहुँच भी नहीं पाये थे कि बीच हीमें उन्होंने अपने बाणोंसे उसके सब बाण व्यर्थ कर दिये ।

स्थास्यामि निश्चला ॥२४॥ तस्माद्युध्यस्व वा गच्छ पातालमसुरालयम् ॥ सर्वथा त्वां हनिष्यामि सत्यमेतद्ब्रवीम्यहम् ॥ २५ ॥ व्यास उवाच ॥
इत्युक्तः स तया देव्या धनुरादाय दानवः ॥ युद्धकामः स्थितस्तत्र संग्रामांगणभूमिषु ॥ २६ ॥ मुमोच तरसा बाणान्कर्णाकृष्टाञ्छिलाशितान् ॥
देवी चिच्छेद तान्बाणैः क्रोधान्मुक्तैरयोमुखैः ॥ २७ ॥ तयोः परस्परं युद्धं संबभूव भयप्रदम् ॥ देवानां दानवानां च परस्परजयैषिणाम् ॥ २८ ॥
मध्ये दुर्धर आगत्य मुमोच च शिलीमुखान् ॥ देवीं प्रति विषासक्तान्कोपयन्नतिदारुणान् ॥ २९ ॥ ततो भगवती क्रुद्धा तं जघान शितैः शरैः ॥
दुर्धरस्तु पपातोर्व्यां गतासुर्गिरिशृंगवत् ॥ ३० ॥ तं तथा निहतं दृष्ट्वा त्रिनेत्रः परमास्त्रवित् ॥ आगत्य सप्तभिर्बाणैर्जघान परमेश्वरीम् ॥ ३१ ॥
अनागतांस्तु चिच्छेद देवी तान्विशिखैः शरान् ॥ त्रिशूलेन त्रिनेत्रं तु जघान जगदंबिका ॥ ३२ ॥ अंधकस्त्वाजगामाशु हतं दृष्ट्वा त्रिलोचनम् ॥
गदया लोहमय्याशु सिंहं विव्याध मस्तके ॥ ३३ ॥ सिंहस्तु नखघातेन तं हत्वा बलवत्तरम् ॥ चछाद तरसा मांसमंधकस्य रुषान्वितः ॥ ३४ ॥
तान्रणे निहतान्वीक्ष्य दानवो विस्मयं गतः ॥ चिक्षेप तरसा बाणानतितीक्ष्णाञ्छिलाशितान् ॥३५॥ द्विधा चक्रे शरान्देवी तानप्राप्ताञ्छिलीमुखैः ॥
गदया ताडयामास दैत्यं वक्षसि चांबिका ॥ ३६ ॥ स गदाऽभिहतो मूर्छामवापामरबाधकः ॥ विषह्य पीडां पापात्मा पुनरागत्य सत्वरः ॥ ३७ ॥

तत्पश्चात् जगदम्बाने त्रिनेत्रपर अपने त्रिशूलसे ऐसा भीषण प्रहार किया कि उसी आघातसे वह सदाके लिए समाप्त हो गया ॥ ३२ ॥ त्रिनेत्रका मरण देखकर अन्धक आया और आते ही उसने अपनी लौहमयी गदासे सिंहके मस्तकपर चोट की ॥३३॥ किन्तु उस प्रहारकी कुछ भी चिन्ता न करके सिंहने अपने तीक्ष्ण नखोंसे उसे फोड़ डाला और उसका मांस खाने लगा ॥३४॥ ऐसे-ऐसे सेनापतियोंका अविलम्ब वध होते देखकर महिषासुरको बहुत आश्चर्य हुआ । अतएव अब वह और भी वेगके साथ अतितीक्ष्ण और पत्थरकी सानपर चढ़ाये हुए बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥ ३५ ॥ किन्तु वे बाण भगवतीके पास पहुँचनेके पहले ही उनके बाणोंसे कटकर दो-दो टुकड़े हो गये । इसी समय जगदम्बाने महिषासुरकी छातीपर अपनी गदाका प्रहार कर दिया ॥ ३६ ॥ गदाके आघातसे वह देवताओंको दुःख देनेवाला दानव मूर्छित हो गया । किन्तु उस वेदनाको सहन करके वह पापी फिर उठ खड़ा हुआ और अतिशय

क्रोधपूर्वक बड़े वेगसे आकर उसने अपनी गदासे सिंहके मस्तकपर प्रहार कर दिया । सिंहने भी अपने नखाघातसे उस महान् असुरको आहत कर डाला ॥३७॥३८॥ तब महिषासुरने

प्रहार कर दिया ॥ ३६ ॥ गदाके आघातसे वह देवताओंको दुःख देनेवाला दानव मूर्छित हो गया। किन्तु उस वेदनाको सहन करके वह पापी फिर उठ खड़ा हुआ और अतिशय

क्रोधपूर्वक बड़े वेगसे आकर उसने अपनी गदासे सिंहके मस्तकपर प्रहार कर दिया। सिंहने भी अपने नखाघातसे उस महान् असुरको आहत कर डाला ॥३७॥३८॥ तब महिषासुरने मानव रूप त्यागकर सिंहका रूप धारण कर लिया और नाखूनोंसे नोचकर भगवतीके सिंहको घायल कर दिया ॥ ३९ ॥ उसे सिंहरूपमें देखकर क्रुद्ध देवी अपने लौहमुख, तीक्ष्ण एवं सर्प जैसे क्रूर बाणोंसे बींधने लगीं ॥ ४० ॥ तब सिंहरूप त्यागकर महिषासुरने मद बहाते हुए हाथीका रूप धारण कर लिया और अपनी सूँड़से एक विशाल शैलशिखर उठाकर चंडिकापर फेंका ॥४१॥ उसे अपने ऊपर आते देखकर भगवतीने अपार बाणवृष्टि करके उस शैलको तिल-तिल करके काट डाला और बड़ी जोरसे अट्टहास करके हँसीं ॥ ४२ ॥ उस समय देवीका सिंह उछलकर उस गजरूपधारी महिषके मस्तकपर चढ़ गया और अपने तीक्ष्ण नखोंसे उसे फाड़ डाला ॥ ४३ ॥ अब महिषने उस सिंहको मारनेके लिए हाथीका रूप त्यागकर अतिशय दारुण और बलवान्

जघान गदया सिंहं मूर्ध्नि क्रोधसमन्वितः ॥ सिंहोऽपि नखघातेन तं ददार महासुरम् ॥ ३८ ॥ विहाय पौरुषं रूपं सोऽपि सिंहो बभूव ह ॥ नखैर्विदारयामास देवीसिंहं मदोत्कटम् ॥ ३९ ॥ तं च केसरिणं वीक्ष्य देवी क्रुद्धा ह्ययोमुखैः ॥ शरैरवाकिरत्तीक्ष्णैः क्रूरैराशीविषैरिव ॥ ४० ॥ त्यक्त्वा स हरिरूपं तु गजो भूत्वा मदस्रवः ॥ शैलशृङ्गं करे कृत्वा चिक्षेप चंडिकां प्रति ॥४१॥ आगच्छंतं गिरेः शृङ्गं देवी बाणैः शिलाशितैः ॥ चकार तिलशः खण्डाञ्जहास जगदंबिका ॥ ४२ ॥ उत्पत्य च तदा सिंहस्तस्य मूर्ध्नि व्यवस्थितः ॥ नखैर्विदारयामास महिषं गजरूपिणम् ॥ ४३ ॥ विहाय गजरूपं च बभूवाष्टापदी तथा ॥ हंतुकामो हरिं कोपाद्दारुणो बलवत्तरः ॥ ४४ ॥ तं वीक्ष्य शरभं देवी खड्गेन सा रुषान्विता ॥ उत्तमांगे जघानाशु सोऽपि तां प्राहरत्तदा ॥ ४५ ॥ तयोः परस्परं युद्धं बभूवातिभयप्रदम् ॥ माहिषं रूपमास्थाय शृङ्गाभ्यां प्राहरत्तदा ॥ ४६ ॥ पुच्छप्रभ्रमणेनाशु शृंगाघातैर्महासुरः ॥ ताडयामास तन्वंगीं घोररूपो भयानकः ॥ ४७ ॥ पुच्छेन पर्वताञ्छृङ्गे गृहीत्वा भ्रामयन्बलात् ॥ प्रेषयामास पापात्मा प्रहसन्परया मुदा ॥ ४८ ॥ तामुवाच बलोन्मत्तस्तिष्ठ देवि रणांगणे ॥ अद्याहं त्वां हनिष्यामि रूपयौवनभूषिताम् ॥ ४९ ॥ मूर्खाऽसि मदमत्ताद्य यन्मया सह संगरम् ॥ करोषि मोहिताऽतीव मृषा बलवती खरा ॥५०॥ हत्वा त्वां निहनिष्यामि देवान्कपटपंडितान् ॥ ये नारीं पुरतः

आठ पैरोंवाले शरभका रूप धारण कर लिया ॥ ४४ ॥ महिषासुरको शरभरूपमें देखकर जगदम्बाने अतिशय क्रोधपूर्वक उसके मस्तकपर तलवार चलायी। तब बड़े वेगके साथ उसने भी भगवतीपर प्रहार किया ॥ ४५ ॥ अब उन दोनोंमें भीषण युद्ध होने लगा। उसी समय सहसा महिषरूप धारण करके उसने अपनी सींगोंसे देवीके ऊपर आघात किया ॥ ४६ ॥ अब वह भयानक रूपधारी महान् असुर पूँछ घुमा-घुमाकर अपनी सींगोंसे कोमलाङ्गी भगवतीको बुरी तरहसे मारने लगा ॥ ४७ ॥ वह अपनी पूँछसे पर्वतोंको उठाकर सींगपर रखता और बड़े वेगसे घुमाकर भगवतीके ऊपर फेंकता हुआ ठठाकर हँस पड़ता था ॥ ४८ ॥ बलसे उन्मत्त उस दानवने भगवतीसे कहा—हे देवि! तुम थोड़ी देर रणभूमिमें और ठहरो। अभी मैं रूप और यौवनसे मदमाती तुमको मार डालूँगा ॥ ४९ ॥ तुम मूर्ख और मदमत्त हो, जो मेरे साथ युद्ध कर रही हो। तुम व्यर्थ अपनेको बलवती समझकर डींग मारती हो ॥ ५० ॥

तुम्हें मारनेके बाद मैं उन सब कपटपंडित देवताओंको मार डालूँगा, जो शठ एक स्त्रीको आगे करके मेरे ऊपर विजय प्राप्त करना चाहते हैं ॥५१॥ देवी बोलीं—ठहर जा, अरे मूर्ख! व्यर्थ गर्व न करके रणभूमिमें कुछ देर और ठहर। आज तुझे मारकर मैं देवताओंको सदाके लिए निर्भय कर दूँगी ॥५२॥ अरे अधम! मैं अभी मधुकी बनी मीठी मदिरा पीकर देवताओंके लिए दुखदायी और मुनियोंको भयभीत करनेवाले तुझ दानवको काट डालूँगी ॥ ५३ ॥ व्यासजी बोले कि ऐसा कहकर भगवती अतिशय कुपित होकर उस दैत्यको मार डालनेके विचारसे मद्यभरा सोनेका पानपत्र (प्याला) लेकर बारम्बार उसे पीने लगीं ॥ ५४ ॥ वह मीठा द्राक्षासव पीकर बड़े वेगसे उन्होंने अपना त्रिशूल सम्हाला और देवताओंको हर्षित करती हुई उस दानवपर झपटीं ॥ ५५ ॥ उस समय देवता प्रेमपूर्वक स्तुति करते हुए फूल बरसाते और दुन्दुभी बजाते हुए देवीकी जयजयकार करने लगे ॥ ५६ ॥ सभी ऋषि, सिद्ध, गन्धर्व,

कृत्वा जेतुमिच्छंति मां शठाः ॥ ५१ ॥ देव्युवाच ॥ मा गर्वं कुरु मंदात्मंस्तिष्ठ तिष्ठ रणाङ्गणे ॥ करिष्यामि निरातंकान्हत्वा त्वां सुरसत्तमान् ॥ ५२ ॥ पीत्वाऽद्य माधवीं मिष्टां शातयामि रणेऽधम ॥ देवानां दुःखदं पापं मुनीनां भयकारकम् ॥ ५३ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्त्वा चषकं हैमं गृहीत्वा सुरया युतम् ॥ पपौ पुनः पुनः क्रोधाद्धंतुकामा महासुरम् ॥५४॥ पीत्वा द्राक्षासवं मिष्टं शूलमादाय सत्वरा ॥ दुद्राव दानवं देवी हर्षयन्देवतागणान् ॥ ५५ ॥ देवास्तां तुष्टुवुः प्रेम्णा चक्रुः कुसुमवर्षणम् ॥ जय जीवेति ते प्रोचुर्दुन्दुभीनां च निःस्वनैः ॥ ५६ ॥ ऋषयः सिद्धगंधर्वाः पिशाचोरगचारणाः ॥ किन्नराः प्रेक्ष्य संग्रामं मुदिता गगने स्थिताः ॥५७॥ सोऽपि नानाविधान्देहान्कृत्वा कृत्वा पुनःपुनः ॥ मायामयाञ्जघानाजौ देवीं कपटपंडितः ॥५८॥ चंडिकाऽपि च तं पापं त्रिशूलेन बलाद्धृदि ॥ ताडयामास तीक्ष्णेन क्रोधादरुणलोचना ॥५९॥ ताडितोऽसौ पपातोर्व्यां मूर्छामाप मुहूर्तकम् ॥ पुनरुत्थाय चामुंडां पद्भ्यां वेगादताडयत् ॥६०॥ विनिहत्य पदाघातैर्जहास च मुहुर्मुहुः ॥ रुराव दारुणं शब्दं देवानां भयकारकम् ॥६१॥ ततो देवी सहस्रारं सुनाभं चक्रमुत्तमम् ॥ करे कृत्वा जगादोच्चैः संस्थितं महिषासुरम् ॥ ६२ ॥ पश्य चक्रं मदांधाद्य तव कंठनिकृंतनम् ॥ क्षणमात्रं स्थिरो भूत्वा यमलोकं व्रजाधुना ॥६३॥ इत्युक्त्वा दारुणं चक्रं मुमोच जगदम्बिका ॥ शिरश्छिन्नं रथांगेन दानवस्य तदा रणे ॥६४॥

पिशाच, नाग, चारण और किन्नरगण आकाशमण्डलमें स्थित होकर हर्षपूर्वक वह महायुद्ध देखने लगे ॥ ५७ ॥ उधर वह कपटशास्त्रका पण्डित महिषासुर रणभूमिमें विविध प्रकारके रूप बदल-बदलकर महामायाके ऊपर प्रहार करने लगा ॥ ५८ ॥ तब क्रोधसे लाल नेत्र करके चण्डिकाने अपने तीक्ष्ण त्रिशूलसे उसकी छातीपर बड़ा करारा आघात किया ॥ ५९ ॥ उस आघातसे व्यथित होकर महिषासुर जमीनपर गिर पड़ा और उसे मूर्छा आ गयी। किन्तु मुहूर्त भर बाद वह फिर उठ खड़ा हुआ और पूर्ण शक्तिसे उसने देवीपर लात चलायी ॥ ६० ॥ इस प्रकार पदाघात करके वह बारम्बार हँसने लगा। फिर वह इतने भीषण रूपसे चिल्लाया कि उसे सुनकर सब देवता डर गये ॥६१॥ तदनंतर भगवतीने हजार धार और सुंदर नाभि (छिद्र) वाला एक उत्कृष्ट चक्र उठाया और अपने समक्ष खड़े महिषासुरसे कड़ककर कहा—॥ ६२ ॥ अरे मदान्ध! इस चक्रको देख ले। इसीसे मैं तेरा गला काटूँगी। तनिक देर और ठहरकर यहाँसे त

एक उत्कृष्ट चक्र उठाया और अपने समक्ष खड़े महिषासुरसे कड़ककर कहा—॥ ६२ ॥ अरे मदान्ध ! इस चक्रको देख ले । इसीसे मैं तेरा गला काटूँगी । तनिक देर और ठहरकर यहाँसे तू

सीधे यमपुरको पयान कर जायगा ॥६३॥ ऐसा कहकर जगदम्बाने वह दारुण चक्र चलाया । उस चक्रने तत्काल दैत्यराजका सिर काटकर रणभूमिमें गिरा दिया ॥६४॥ बरसातमें जैसे गेरूके पर्वतसे लाल पानीका झरना बहता है, उसी प्रकार उस असुरके गलेसे गरम रुधिरकी धारा बहने लगी ॥ ६५ ॥ उसका धड़ भी चक्कर खाकर जमीनपर गिर पड़ा । उस समय देवताओंने देवीकी सुखवर्धक जयजयकार की ॥ ६६ ॥ उधर भगवतीका अति बलवान् सिंह मानो भूखसे व्याकुल होकर रणभूमिसे भागते हुए दानवोंको पकड़-पकड़कर खाने लगा ॥ ६७ ॥ हे नृप ! क्रूर महिषासुरके मर जानेपर मरनेसे बचे हुए भयभीत दानव भागकर पाताल चले गये ॥ ६८ ॥ उसके मर जानेपर सभी देवता, मुनिगण, मनुष्य और पृथिवीतलके सब साधुजन बहुत आनन्दित हुए ॥ ६९ ॥ तब भगवती चण्डिका रणभूमिसे हटकर एक सुन्दर प्रदेशमें चली गयीं । देवता भी उनकी स्तुति करनेके लिए तत्काल वहाँ जा पहुँचे ॥ ७० ॥ इति श्रीदेवी-

सुस्राव रुधिरं चोष्णं कंठनालाद्गिरेर्यथा ॥ गैरिकाद्यरुणं प्रौढं प्रवाहमिव नैर्झरम् ॥ ६५ ॥ कबंधस्तस्य दैत्यस्य भ्रमन्वै पतितः क्षितौ ॥ जयशब्दश्च देवानां बभूव सुखवर्धनः ॥ ॥ ६६ ॥ सिंहस्त्वतिबलस्तत्र पलायनपरानथ ॥ दानवान्भक्षयामास क्षुधार्त इव संगरे ॥ ६७ ॥ मृते च महिषे क्रूरे दानवा भयपीडिताः ॥ मृतशेषाश्च ये केचित्पातालं ते ययुर्नृप ॥ ६८ ॥ आनंदं परमं जग्मुर्देवास्तस्मिन्निपातिते ॥ मुनयो मानवाश्चैव ये चान्ये साधवः क्षितौ ॥ ६९ ॥ चंडिकाऽपि रणं त्यक्त्वा शुभे देशेऽथ संस्थिता ॥ देवास्तत्राययुः शीघ्रं स्तोतुकामाः सुखप्रदाम् ॥ ७० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे महिषासुरवधो नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

व्यास उवाच ॥ अथ प्रमुदिताः सर्वे देवा इन्द्रपुरोगमाः ॥ महिषं निहतं दृष्ट्वा तुष्टुवुर्जगदंबिकाम् ॥ १ ॥ देवा ऊचुः ॥ ब्रह्मा सृजत्यवति विष्णुरिदं महेशः शक्त्या तवैव हरते ननु चांतकाले ॥ ईशा न तेऽपि च भवंति तया विहीनास्तस्मात्त्वमेव जगतः स्थितिनाशकर्त्री ॥ २ ॥ कीर्तिर्मतिः स्मृतिगती करुणा दया त्वं श्रद्धा धृतिश्च वसुधा कमला जया च ॥ पुष्टिः कलाऽथ विजया गिरिजा जया त्वं तुष्टिः प्रभा त्वमसि बुद्धिरुमा रमा च ॥ ३ ॥ विद्या क्षमा जगति कांतिरपीह मेधा सर्वं त्वमेव विदिता भुवनत्रयेऽस्मिन् ॥ आभिर्विना तव तु शक्तिभिराशु कर्तुं को वा

भागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृत'पीताम्बरा'भाषाटीकायामष्टादशोऽध्यायः ॥ १८॥

(देवताओं द्वारा देवीकी स्तुति) व्यासजी बोले—महिषासुरका संहार देखकर इन्द्र आदि देवता बहुत प्रसन्न हुए और जगदम्बाकी स्तुति करने लगे ॥ १ ॥ देवता बोले—हे जगदम्बे ! आपसे ही शक्ति पाकर ब्रह्मा जगत्की सृष्टि करते, विष्णु पालन करते और शिवजी प्रलयकालमें संहार करते हैं । यदि आपकी शक्ति न प्राप्त हो तो वे कुछ भी नहीं कर सकते । अतएव वास्तवमें आप ही संसारकी सृष्टि, पालन और संहार करती हैं ॥ २ ॥ आप ही कीर्ति, मति, स्मृति, करुणा, दया, श्रद्धा, धृति, वसुधा, कमला, जया, पुष्टि, कला, विजया, गिरिजा, जया, तुष्टि, प्रभा, बुद्धि, उमा और रमा हैं ॥ ३ ॥ इस संसारमें आप ही विद्या, क्षमा, कान्ति और मेधा आदि समस्त शक्तियाँ हैं । यह बात तीनों लोकमें विख्यात है । हे समस्त

लोकोंकी निवासभूमि ! इन शक्तियोंके अभावमें क्या कोई प्राणी कुछ कर सकता है ? ॥ ४ ॥ यदि आप धारणाशक्तिके रूपमें सहायता न करतीं तो कच्छपराज और शेषनाग पृथिवीको कैसे धारण करते ? यदि आप पृथिवीशक्तिके रूपमें विद्यमान न रहतीं तो इतने अधिक भारयुक्त यह संसार कहाँ टिकता ? ॥ ५ ॥ जो आपकी मायासे मोहमें पड़े हुए मनुष्य ब्रह्मा, विष्णु, शिव, चन्द्रमा, अग्नि, यम, वायु तथा गणेश आदि देवताओंकी स्तुति करते हैं, हे जननी ! क्या वे देवता आपकी कृपाके बिना कोई कार्य कर सकते हैं ? ॥ ६ ॥ हे अम्ब ! जो अग्निहोत्री लोग सुविस्तृत यज्ञमें इन्द्रादि देवताओंको पुष्कल हविकी आहुति देते हैं, वे मूर्ख हैं । क्योंकि यज्ञमें यदि स्वाहाके नामसे आपका आवाहन न किया जाय तो यह निश्चित है कि वे देवता आहुतिमें प्रदान किये हुए द्रव्यको नहीं पा सकते । तब वे मूढ़ श्रोत्रिय आपके अम्बायज्ञको ही क्यों नहीं करते ? ॥ ७ ॥ हे माता ! आप ही अपने अंशसे जगतीतलके समस्त चराचर जीवोंको जीवन प्रदान करती हैं । जिस प्रकार आप अपने प्रिय देवताओंका पोषण करती हैं, उसी प्रकार देवशत्रु दैत्योंका भी पालन करती हैं । इससे यह निश्चित हो गया कि आप

क्षमः सकललोकनिवासभूमे ॥ ४ ॥ त्वं धारणा ननु न चेदसि कूर्मनागौ धर्तुं क्षमौ कथमिलामपि तौ भवेताम् ॥ पृथ्वी न चेत्त्वमसि वा गगने कथं स्थास्यत्येतदंब निखिलं बहुभारयुक्तम् ॥ ५ ॥ ये वा स्तुवंति मनुजा अमरान्विमूढा मायागुणैस्तव चतुर्मुखविष्णुरुद्रान् ॥ शुभ्रांशुवह्नियमवायुगणेशमुख्यान्किं त्वामृते जननि ते प्रभवंति कार्ये ॥ ६ ॥ ये जुह्वति प्रविततेऽल्पधियोऽम्ब यज्ञे वह्नौ सुरान्समधिकृत्य हविः समृद्धम् ॥ स्वाहा न चेत्त्वमसि ते कथमापुरद्धा त्वामेव किं न हि यजंति ततो हि मूढाः ॥७॥ भोगप्रदाऽसि भवतीह चराचराणां स्वांशैर्ददासि खलु जीवनमेव नित्यम् ॥ स्वीयान्सुराञ्जननि पोषयसीह यद्वत्तद्वत्परानपि च पालयसीति हेतोः ॥ ८ ॥ मातः स्वयं विरचितान्विपिने विनोदाद्बंध्यान्पलाशरहितांश्च कटूंश्च वृक्षान् ॥ नोच्छेदयंति पुरुषा निपुणाः कथंचित्तस्मात्त्वमत्यतितरां परिपासि दैत्यान् ॥ ९ ॥ यत्त्वं तु हंसि रणमूर्ध्नि शरैररातीन्देवांगनासुरतकेलिमतीन्विदित्वा ॥ देहांतरेऽपि करुणारसमाददाना तत्ते चरित्रमिदमीप्सितपूरणाय ॥ १० ॥ चित्रं त्वमी यदसुभी रहिता न संति त्वच्चिंतितेन दनुजाः प्रथितप्रभावाः ॥ येषां कृते जननि देहनिबंधनं ते क्रीडारसस्तव न चान्यतरोऽत्र हेतुः ॥ ११ ॥ प्राप्ते कलावहह दुष्टतरे च काले न त्वां

ही देवता, दैत्य एवं सब चराचर प्राणियोंके लिए भोगदायिनी हैं ॥ ८ ॥ हे अम्बिके ! बगीचेमें मनोरंजनके लिए अपने हाथसे लगाये हुए वृक्षोंमेंसे यदि कुछ वृक्षोंमें फल अथवा पत्ते न लगें या किसी वृक्षका रस कड़ुवा निकल जाय तो बुद्धिमान् मनुष्य किसी भी तरह अपने हाथों उन वृक्षोंको काट डालनेके लिए तैयार न होगा । उसी प्रकार आप भी अपने ही बनाये हुए दैत्योंके अवगुण देख करके भी उनकी रक्षा करती हैं ॥ ९ ॥ हे माता ! आपका हृदय सदा करुणारससे ओत-प्रोत रहता है । आप जो रणभूमिमें अपने बाणोंसे असुरोंका वध करती हैं, वह भी उनका मनोरथ पूर्ण करनेके लिए ही वैसा करती हैं । क्योंकि उनकी यह इच्छा रहती है कि मरनेके बाद परलोकमें स्वर्गीया अप्सराओंके साथ सम्भोगका आनन्द प्राप्त हो ॥ १० ॥ हे जननी ! आश्चर्य तो इस बातका है कि आपके सोचते ही वे दैत्य नहीं मर गये और उन्हें मारनेके लिए आपको अवतार लेना पड़ा । इससे मालूम पड़ता है कि यह देह धारण करके आप उसके सहारे लीला करना चाहती थीं । इसके सिवाय और कोई कारण नहीं दिखायी देता ॥११॥ अहो ! ऐसे विकराल कलिकालमें भी जो लोग आपकी आराधना नहीं करते, इससे स्पष्ट

ज्ञात होता है कि धूर्त पुराणरचयिताओंने आपके ही द्वारा निर्मित विष्णु-शिव आदि देवताओंकी आराधनामें उलझाकर उन्हें बहुत बड़ा धोखा दिया है ॥ १२ ॥ जो लोग यह जानते हुए कि देवता दैत्यों द्वारा सताये जाते हैं और वे सदा भगवतीके अधीन रहते हैं, फिर भी श्रद्धापूर्वक जो उन्हीं देवताओंकी आराधना करते हैं। वे उसी प्रकार संसाररूपी अन्धकूपमें गिरते हैं, जैसे कोई मनुष्य हाथमें प्रकाश लिये हुए भी किसी जलविहीन भयानक कूपमें जा गिरे ॥ १३ ॥ हे माता ! आप ही प्राणियोंको सुखदायिनी विद्या और दुःखदायिनी अविद्या हैं। जो लोग आपकी आराधना करते हैं, वे जन्म-मरणके संकटसे छूट जाते हैं। हे अम्बे ! मोक्ष प्राप्त करनेकी लालसावश मुनिगण आपकी उपासना करते हैं और विषयभोगपरायण प्राणी आपकी आराधनासे दूर रहते हैं। क्योंकि उन मूर्खोंकी बुद्धि मारी गयी रहती है ॥ १४ ॥ स्वयं ब्रह्मा, विष्णु, महेश एवं अन्य देवता आपके शरणदायक चरणकमलोंका भजन करते हैं। किन्तु जो अल्पबुद्धि प्राणी आपकी मानसिक आराधना नहीं करते, वे पथभ्रष्ट होकर सदा भवसागरमें डूबते-उतराते रहते हैं ॥१५॥ हे चंडिके ! आपके चरणोंकी धूलि माथे चढ़ाकर ब्रह्माजी समस्त विश्वकी रचना

भजंति मनुजा ननु वंचितास्ते ॥ धूर्तैः पुराणचतुरैर्हरिशंकराणां सेवापराश्च विहितास्तव निर्मितानाम् ॥ १२ ॥ ज्ञात्वा सुरांस्तव वशानसुरार्दिताँश्च ये वै भजंति भुवि भावयुता विमग्नान् ॥ धृत्वा करे सुविमलं खलु दीपकं ते कूपे पतंति मनुजा विजलेऽतिघोरे ॥ १३ ॥ विद्या त्वमेव सुखदाऽसुखदाऽप्यविद्या मातस्त्वमेव जननार्तिहरा नराणाम् ॥ मोक्षार्थिभिस्तु कलिता किल मंदधीभिर्नाराधिता जननि भोगपरैस्तथाऽज्ञैः ॥ १४ ॥ ब्रह्मा हरश्च हरिरप्यनिशं शरण्यं पादांबुजं तव भजंति सुरास्तथाऽन्ये ॥ तद्वै न येऽल्पमतयो मनसा भजंति भ्रांताः पतंति सततं भवसागरे ते ॥ १५ ॥ चंडि त्वदंघ्रिजलजोत्थरजःप्रसादैर्ब्रह्मा करोति सकलं भुवनं भवादौ ॥ शौरिश्च पाति खलु संहरते हरस्तु त्वां सेवते न मनुजस्त्विह दुर्भगोऽसौ ॥१६॥ वाग्देवता त्वमसि देवि सुरासुराणां वक्तुं न तेऽमरवराः प्रभवन्ति शक्ताः ॥ त्वं चेन्मुखे वससि नैव यदैव तेषां यस्माद्भवंति मनुजा न हि तद्विहीनाः ॥ १७ ॥ शप्तो हरिस्तु भृगुणा कुपितेन कामं मीनो बभूव कमठः खलु सूकरस्तु ॥ पश्चान्नृसिंह इति यश्छलकृद्धरायां तान्सेवतां जननि मृत्युभयं न किं स्यात् ॥ १८ ॥ शंभोः पपात भुवि लिंगमिदं प्रसिद्धं शापेन तेन च भृगोर्विपिने गतस्य ॥ तं ये नरा भुवि भजन्ति कपालिनं तु तेषां सुखं कथमिहापि परत्र मातः ॥ १९ ॥ योऽभूद्गजाननगणाधिपतिर्महेशात्तं ये भजंति मनुजा वितथप्रपन्नाः ॥ जानंति ते न सकलार्थफलप्रदात्रीं त्वां

करते हैं, विष्णु पालन करते हैं और शिवजी संहार करते हैं। आपकी इतनी महिमा होते हुए भी जो लोग इस संसारमें आपका भजन नहीं करते, वे अभागे हैं ॥ १६ ॥ हे देवि ! सभी देवताओं और दैत्योंकी एकमात्र आप ही वाग्देवता हैं। यदि आप मुखमें बैठकर वाक्शक्ति न प्रदान करें तो बड़े-बड़े देवता भी कुछ नहीं बोल सकते। फिर साधारण कोटिके प्राणी आपसे वाक्शक्ति प्राप्त किये बिना कैसे बोल सकेंगे ? ॥ १७ ॥ हे जननी ! महर्षि भृगुने कुपित होकर भगवान विष्णुको शाप दे दिया। जिससे उन्हें बारम्बार मत्स्य, कूर्म, वराह, छलिया वामन और नृसिंहका अवतार लेना पड़ा। तब विष्णु जैसे देवताकी उपासना करनेवाले लोगोंको मृत्युका भय क्यों न बना रहेगा ? तात्पर्य यह कि जब भगवान विष्णु महर्षि भृगुके साधारण शापबन्धनसे अपने आपको मुक्त नहीं कर सके, तब वे भला अपने भक्तोंको भवबन्धनसे मुक्ति कैसे प्रदान कर सकते हैं ? ॥ १८ ॥ हे माता ! समस्त संसारमें यह बात प्रसिद्ध है

कि एक समय शिवजी भृगुवनमें नंगे घूम रहे थे। उन्हें महामुनि भृगुने शाप दे दिया। जिससे उनका लिंग कटकर गिर पड़ा। अतएव जो लोग ऐसे कापालिककी आराधना करते हैं, उन्हें इहलोक तथा परलोकमें सुख कैसे प्राप्त हो सकता है? ॥ १९॥ हे देवि! जो लोग उन शिवजीसे जायमान गणेशजीका पूजन करते हैं, उनकी बुद्धि भ्रममें पड़ी हुई है। क्योंकि वे नहीं जानते कि आप ही धर्म-अर्थ-काम-मोक्षरूपी चारों पदार्थ प्रदान करनेवाली समस्त विश्वकी माता हैं और आपकी आराधना बड़ी आसानीसे हो सकती है ॥ २० ॥ हे माता! आपमें यह बड़ी विचित्र बात देखी गयी कि अपने शत्रु दैत्योंपर भी दया करके उन्हें तीखे बाणोंसे मारकर आपने सीधे स्वर्गलोक भेज दिया। यदि आप ऐसा न करतीं तो वे नरकोंमें जाकर अपने कर्मफलोंको भोगते हुए भयानकसे भयानक यन्त्रणायें सहते रहते। उस नरकसे कभी उन्हें छुटकारा न मिलता ॥ २१ ॥ अहंकारवश जब ब्रह्मा-विष्णु-शिव भी भलीभाँति आपकी महिमा नहीं जानते, तब आपके अमित प्रभावशाली सत्त्वादि गुणोंसे मोहित मनुष्य भला आपकी माहिमाको कैसे जान सकेंगे? ॥ २२ ॥ जो मुनिगण भ्रमवश आपके पावन चरणकमलोंका ध्यान करते हुए आपकी उपासना नहीं करते। बल्कि सूर्य और अग्निको प्रत्यक्ष देवता मानकर उन्हींकी पूजामें तल्लीन रहते हैं। वे नाना प्रकारके दुःख भोगते हैं। क्योंकि वेदोंने

देवि विश्वजननीं सुखसेवनीयाम् ॥ २० ॥ चित्रं त्वयाऽरिजनताऽपि दयार्द्रभावाद्धत्वा रणे शितशरैर्गमिता द्युलोकम् ॥ नोचेत्स्वकर्मनिचिते निरये नितांतं दुःखातिदुःखगतिमापदमापतेत्सा ॥ २१ ॥ ब्रह्मा हरश्च हरिरप्युत गर्वभावाज्जानंति तेऽपि विबुधा न तव प्रभावम् ॥ केऽन्ये भवंति मनुजा विचितुं समर्थाः संमोहितास्तव गुणैरमितप्रभावैः ॥२२॥ क्लिश्यंति तेऽपि मुनयस्तव दुर्विभाव्यं पादांबुजं न हि भजंति विमूढचित्ताः ॥ सूर्याग्निसेवनपराः परमार्थतत्त्वं ज्ञातं न तैः श्रुतिशतैरपि वेदसारम् ॥ २३ ॥ मन्ये गुणास्तव भुवि प्रथितप्रभावाः कुर्वन्ति ये हि विमुखान्ननु भक्तिभावात् ॥ लोकान्स्वबुद्धिरचितैर्विविधागमैश्च विष्ण्वीशभास्करगणेशपरान्विधाय ॥ २४ ॥ कुर्वन्ति ये तव पदाब्जिमुखान्नराग्र्यान्स्वोक्तागमैर्हरिहरार्चनभक्तियोगैः ॥ तेषां न कुप्यसि दयां कुरुषेऽम्बिके त्वं तान्मोहमंत्रनिपुणान्प्रथयस्यलं च ॥ २५ ॥ तुर्ये युगे भवति चातिबलं गुणस्य तुर्यस्य तेन मथितान्यसदागमानि ॥ त्वां गोपयंति निपुणाः कवयः कलौ वै त्वत्कल्पितान्सुरगणानपि संस्तुवन्ति ॥२६॥ ध्यायंति मुक्तिफलदां भुवि योगसिद्धां

जिस परमार्थ तत्त्व अर्थात् ब्रह्मविद्याका प्रतिपादन किया है, उसे वे नहीं समझ पाते ॥ २३ ॥ मेरा तो ऐसा अनुमान है कि आपके सत्त्व, रज और तमोगुण मानव बुद्धिसे निर्मित विविध शास्त्रोंके झमेलेमें फँसाकर मनुष्योंको विष्णु-शिव-सूर्य-गणपति आदि देवताओंका उपासक बना देते हैं। ऐसा करके वे उन्हें आपके भक्तिभावसे सर्वथा विमुख कर देते हैं ॥ २४ ॥ हे अम्बिके! जो मनुष्य विष्णु तथा शिवकी पूजाको महत्त्व देनेवाले शास्त्रका उपदेश देकर ब्राह्मणोंको आपके चरणोंकी पूजासे पराङ्मुख कर देते हैं। उनके ऊपर आप कुपित नहीं होतीं। बल्कि उनपर भी दया करती हैं और उन मारण-मोहन-उच्चाटनमय मन्त्रशास्त्रके ज्ञाताओंको संसारमें अत्यधिक विख्यात कर देती हैं ॥२५॥ सत्ययुगमें सतोगुणका प्राबल्य था। अतएव उस युगमें असत् शास्त्रोंका लोप हो गया था और सर्वत्र आपकी पूजा होती थी। किन्तु इस कलियुगमें कवित्वका अभिमान रखनेवाले ब्राह्मण आपको भूलकर आपके द्वारा निर्मित ब्रह्मा-विष्णु आदि देवताओंकी आराधनामें लिपट जाते हैं ॥ २६ ॥ इस जगतीतलमें शुद्ध सतोगुणी मुनि लोग ही मुक्तिफल देनेवाली तथा योग द्वारा सिद्धि प्रदान करनेवाली आप परा

विद्याका ध्यान करते हैं। जो लोग आपमें ध्यानमग्न रहते हैं, उन्हें फिर माताके गर्भमें नहीं आना पड़ता अर्थात् वे मुक्त हो जाते हैं ॥ २७ ॥ आप ही चैतन्यस्वरूपा होकर परम पुरुष

विद्याका ध्यान करते हैं। जो लोग आपमें ध्यानमग्न रहते हैं, उन्हें फिर माताके गर्भमें नहीं आना पड़ता अर्थात् वे मुक्त हो जाते हैं ॥ २७ ॥ आप ही चैतन्यस्वरूपा होकर परम पुरुष परमात्मामें निवास करती हैं। तभी तो उनका नाम और उनकी आकृति व्यक्त होती है। उसके बाद वे सृष्टिकर्ता, पालनकर्ता और संहारकर्ता रूपमें प्रसिद्ध होते हैं। उन परमात्माके सिवाय और कौन पुरुष ऐसा है कि जो आपसे शक्ति प्राप्त किये बिना अपने ही पुरुषार्थसे जगत्की सृष्टि, पालन तथा संहारका काम सम्पन्न कर सके ? ॥ २८ ॥ हे जगदम्बे! यदि कहा जाय कि तत्त्व ही जगत्की उत्पत्तिके कारण हैं तो मैं कहूँगा कि यदि तत्त्वोंमें चैतन्यशक्ति न हो तो क्या वे जगत्की रचना करनेमें समर्थ हो सकेंगे ? क्योंकि तत्त्व तो स्वयं जड़ हैं। हे देवि ! गुण तथा मन आदि इन्द्रियाँ भी आपसे चैतन्यशक्ति प्राप्त किये बिना क्या सांसारिक कार्य सम्पन्न करने और शुभ-अशुभ कर्मोंका फल प्रदान करनेमें समर्थ हो सकती हैं ? कदापि नहीं ॥२९॥ हे अम्ब ! यदि स्वाहारूपसे आप मुख्य साधन न बनतीं तो क्या हम देवता मुनियों द्वारा विधिवत् किये गये यज्ञोंमें की हुई आहुति एवं यज्ञभाग प्राप्त कर पाते ? अतएव यह निश्चित हो

विद्यां परां च मुनयोऽतिविशुद्धसत्त्वाः ॥ ते नाप्नुवंति जननीजठरे तु दुःखं धन्यास्त एव मनुजास्त्वयि ये विलीनाः ॥ २७ ॥ चिच्छक्तिरस्ति परमात्मनि येन सोऽपि व्यक्तो जगत्सु विदितो भवकृत्यकर्ता ॥ कोऽन्यस्त्वया विरहितः प्रभवत्यमुष्मिन्कर्तुं विहर्तुमपि संचलितुं स्वशक्त्या ॥२८॥ तत्त्वानि चिद्विरहितानि जगद्विधातुं किं वा क्षमाणि जगदम्ब यतो जडानि ॥ किं चेन्द्रियाणि गुणकर्मयुतानि संति देवि त्वया विरहितानि फलं प्रदातुम् ॥ २९ ॥ देवा मखेष्वपि हुतं मुनिभिः स्वभागं गृह्णीयुरम्ब विधिवत्प्रतिपादितं किम् ॥ स्वाहा न चेत्त्वमसि तत्र निमित्तभूता तस्मात्त्वमेव ननु पालयसीव विश्वम् ॥ ३० ॥ सर्वं त्वयेदमखिलं विहितं भवादौ त्वं पासि वै हरिहरप्रमुखान्दिगीशान् ॥ कालेऽत्सि विश्वमपि ते चरितं भवाद्ये जानंति नैव मनुजाः क्व नु मंदभाग्याः ॥ ३१ ॥ हत्वाऽसुरं महिषरूपधरं महोग्रं मातस्त्वया सुरगणः किल रक्षितोऽयम् ॥ कां ते स्तुतिं जननि मंदधियो विदामो वेदा गतिं तव यथार्थतया न जग्मुः ॥ ३२ ॥ कार्यं कृतं जगति नो यदसौ दुरात्मा वैरी हतो भुवनकंटकदुर्विभाव्यः ॥ कीर्तिः कृता ननु जगत्सु कृपा विधेयाऽप्यस्तांश्च पाहि जननि प्रथितप्रभावे ॥ ३३ ॥ व्यास उवाच ॥ एवं स्तुता सुरैर्देवी तानुवाच मृदुस्वरा ॥ अन्यत्कार्यं

जाता है कि वस्तुतः आप ही समस्त विश्वका पालन करती हैं ॥ ३० ॥ हे संसारकी आदि ! सृष्टिके आरम्भकालमें आपने ही अखिल विश्वकी सृष्टि की है। आप ही ब्रह्मा-विष्णु आदि प्रमुख देवताओं तथा दसों दिक्पालोंकी रक्षा करती हैं। प्रलयकालमें आप ही इसे उदरस्थ कर लेती हैं। हे भगवती ! जब देवता भी आपके चरित्रको नहीं जान पाते, तब मन्दभाग्य मनुष्य भला उसे कैसे जान सकते हैं ? ॥ ३१ ॥ हे मातः ! आपने महिषरूपधारी इस दुष्ट दैत्यका वध करके हम देवताओंकी रक्षा की है। हे जननी ! सब वेद भी यथार्थ रीतिसे आपकी अगम्य गतिको नहीं जान सके, तब हम मन्दबुद्धि उसे कैसे जानेंगे और कैसे आपकी स्तुति करेंगे ? ॥ ३२ ॥ हे जननी ! हे विख्यात प्रभावशालिनी जगदम्बे ! आपने दुराचारी, तीनों लोकोंके लिए कण्टकस्वरूप तथा समस्त विश्वमें आतङ्क फैलानेवाले वैरी महिषासुरका वध करके देवताओंका बहुत बड़ा उपकार किया है। इससे आपकी कीर्ति दसों दिशाओंमें व्याप्त हो गयी है। अब आप सारे संसारपर कृपा रक्खें और हमारी रक्षा करें ॥ ३३ ॥ व्यासजी बोले—हे महाराज जनमेजय ! इस प्रकार देवताओंके स्तुति करनेपर भगवतीने मधुर वाणीमें उनसे कहा—हे सुर-

श्रेष्ठगण ! यदि आपका और भी कोई कष्टसाध्य कार्य हो तो उसे बताइये ॥ ३४ ॥ जब कभी भी आप देवताओंपर कोई संकट आये तो मेरा स्मरण करिएगा । मैं तत्काल आपका दुःख दूर कर दूँगी ॥ ३५ ॥ देवता बोले—हे देवि ! इस समय आपने हम सबके शत्रु महिषासुरको मारकर हमारा सब काम बना दिया है ॥ ३६ ॥ हे अम्ब ! अब आप हमें ऐसी शक्ति दें कि जिससे हम निरन्तर आपके चरणोंका स्मरण करते रहें और हमारे हृदयमें आपकी स्थिर भक्ति बनी रहे ॥ ३७ ॥ अपनी सन्तानके हजारों अपराध माता ही सहती है । ऐसा समझकर लोग आप जगदम्बाका भजन क्यों नहीं करते ? ॥३८॥ इस देहरूपी वृक्षपर जीवात्मा और परमात्मारूपी दो पक्षी निवास करते हैं । उन दोनोंमें बड़ी घनिष्ठ मैत्री है । लेकिन उनका कोई ऐसा तीसरा मित्र नहीं है, जो उनके अपराधोंको सह सके ॥ ३९ ॥ अतएव जीव यदि आप जैसे मित्रको पा करके भी आपका साथ छोड़ दे तो वह क्या करेगा ? आपसे बिछुड़कर वह पापी और

च दुःसाध्यं ब्रुवंतु सुरसत्तमाः ॥ ३४ ॥ यदा यदा हि देवानां कार्यं स्यादतिदुर्घटम् ॥ स्मर्तव्याऽहं तदा शीघ्रं नाशयिष्यामि चापदम् ॥ ३५ ॥ देवा ऊचुः ॥ सर्वं कृतं त्वया देवि कार्यं नः खलु सांप्रतम् ॥ यदयं निहतः शत्रुरस्माकं महिषासुरः ॥ ३६ ॥ स्मरिष्यामो यथा तेऽम्ब सदैव पदपङ्कजम् ॥ तथा कुरु जगन्मातर्भक्तिं त्वय्यप्यचंचलाम् ॥ ३७ ॥ अपराधसहस्राणि मातैव सहते सदा ॥ इति ज्ञात्वा जगद्योनिं न भजंते कुतो जनाः ॥ ३८ ॥ द्वौ सुपर्णौ तु देहेऽस्मिंस्तयोः सख्यं निरंतरम् ॥ नान्यः सखा तृतीयोऽस्ति योऽपराधं सहेत हि ॥ ३९ ॥ तस्माज्जीवः सखायं त्वां हित्वा किं नु करिष्यति ॥ पापात्मा मन्दभाग्योऽसौ सुरमानुषयोनिषु ॥ ४० ॥ प्राप्य देहं सुदुष्प्रापं न स्मरेत्त्वां नराधमः ॥ मनसा कर्मणा वाचा ब्रूमः सत्यं पुनः पुनः ॥ ४१ ॥ सुखे वाप्यथ वा दुःखे त्वं नः शरणमद्भुतम् ॥ पाहि नः सततं देवि सर्वैस्तव वरायुधैः ॥ ४२ ॥ अन्यथा शरणं नास्ति त्वत्पदांबुजरेणुतः ॥ व्यास उवाच ॥ एवं स्तुता सुरैर्देवी तत्रैवांतरधीयत ॥ ४३ ॥ विस्मयं परमं जग्मुर्देवास्ता वीक्ष्य निर्गताम् ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

जनमेजय उवाच ॥ अथाद्भुतं वीक्ष्य मुने प्रभावं देव्या जगच्छांतिकरं परं च ॥ न तृप्तिरस्ति द्विजवर्य शृण्वतः कथाऽमृतं ते मुखपद्म-

अभागा जीव देवताओं और मनुष्योंकी योनिमें बार-बार जन्म लेता और मरता रहेगा ॥ ४० ॥ जो मनुष्य दुर्लभ नरतन पाकर मनसा वाचा कर्मणा आपका स्मरण नहीं करता, वह मनुष्योंमें अधम मनुष्य है । इस बातको हम बारम्बार सच कह रहे हैं ॥ ४१ ॥ हे देवी ! सुख और दुःख दोनों समय आप हमारी अद्भुत ढंगसे रक्षा करती आयी हैं । अतएव आप अपने श्रेष्ठ आयुधों द्वारा सदा हमारी रक्षा करती रहें ॥ ४२ ॥ क्योंकि आपके चरणोंकी धूलिके सिवाय अन्यत्र कहीं शरण नहीं है । व्यासजी बोले—इस प्रकार देवताओंकी स्तुति सुनकर भगवती वहाँ ही अन्तर्धान हो गयीं ॥ ४३ ॥ इस प्रकार देवीको अन्तर्हित देखकर देवता बहुत विस्मित हुए ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे भाषाटीकायामेकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

(नवीन स्वातंत्र्यका प्रभाव) राजा जनमेजय बोले—हे मुने ! भगवतीके अद्भुत एवं समस्त संसारके लिए परम शान्तिदायक प्रभावको तो मैंने देख लिया । तथापि हे द्विजश्रेष्ठ !

आपके मुखारविन्दसे निःसृत पावन कथारूपी अमृतको अपने कर्णपुटसे पुनः पुनः पान करके भी मैं तृप्त नहीं होने आ रहा हूँ ॥ १ ॥ अब यह बताइए कि भगवतीके अन्तर्धान हो जानेपर देवताओंने क्या किया ? भगवतीका चरित्र बहुत पवित्र है। वह अल्प पुण्यवाले मनुष्योंके लिए सर्वथा दुर्लभ रहता है ॥ २ ॥ अभागे मनुष्योंको छोड़कर जिनके श्रवणपुट सत्कथायें सुननेको आकुल रहते हैं, वे जगदम्बाकी पुनीत कथाको बारम्बार सुनकर भी क्या कभी तृप्त हो सकते हैं ? जिस कथारूपी अमृतका पान करके प्राणी मनुष्यसे देवता बन सकता है। उसे जो लोग आदरके साथ नहीं पीते, उन मनुष्योंके जीवनको धिक्कार है ॥ ३ ॥ उन जगदम्बाकी अनोखी लीलायें और उनके पावन चरित्र समस्त देवताओं तथा महर्षियोंकी रक्षाके अमोघ साधन हैं। मनुष्योंको संसारसागर पार करानेके लिए तो वे जहाजके सदृश हैं। ऐसे कृतज्ञ पुरुष उन लीलाओं और चरित्रोंको कैसे त्याग सकते हैं ? ॥ ४ ॥ वेदोंके पारंगत विद्वानोंका कथन है कि जो जीवन्मुक्त हो चुके हों, जो मोक्ष पाना चाहते हों और जो रोगग्रस्त हों, उन्हें चाहिए कि भगवतीकी इस सर्वार्थदायिनी कथारूपी अमृतका अपने श्रवणों द्वारा पान करते रहें ॥५॥

जातम् ॥ १ ॥ अन्तर्हितायां च तदा भवान्यां चक्रुश्च किं देवपुरोगमास्ते ॥ देव्याश्चरित्रं परमं पवित्रं दुरापमेवाल्पपुण्यैर्नराणाम् ॥ २ ॥ कस्तृप्तिमाप्नोति कथामृतेन भिन्नोऽल्पभाग्यात्पटुकर्णरंध्रः ॥ पीतेन येनामरतां प्रयाति धिक्तान्नरान् ये न पिबंति सादरम् ॥ ३ ॥ लीलाचरित्रं जगदंबिकाया रक्षान्वितं देवमहामुनीनाम् ॥ संसारवार्धेस्तरणं नराणां कथं कृतज्ञा हि परित्यजेयुः ॥ ४ ॥ मुक्ताश्च ये चैव मुमुक्षवश्च संसारिणो रोगयुताश्च केचित् ॥ तेषां सदा श्रोत्रपुटैश्च पेयं सर्वार्थदं वेदविदो वदन्ति ॥ ५ ॥ तथा विशेषेण मुने नृपाणां धर्मार्थकामेषु सदा रतानाम् ॥ मुक्ताश्च यस्मात्खलु तत्पिबंति कथं न पेयं रहितैश्च तेभ्यः ॥ ६ ॥ यैः पूजिता पूर्वभवे भवानी सत्कुन्दपुष्पैरथ चंपकैश्च ॥ बैल्वैर्दलैस्ते भुवि भोग-युक्ता नृपा भवन्तीत्यनुमेयमेवम् ॥ ७ ॥ ये भक्तिहीनाः समवाप्य देहं तं मानुषं भारतभूमिभागे ॥ यैर्नार्चिता ते धनधान्यहीना रोगान्विताः संतति-वर्जिताश्च ॥ ८ ॥ भ्रमंति नित्यं किल दासभूता आज्ञाकराः केवलभारवाहाः ॥ दिवानिशं स्वार्थपराः कदाऽपि नैवाप्नुवंत्यौदरपूर्तिमात्रम् ॥ ९ ॥ अन्धाश्च मूका वधिराश्च खंजाः कुष्ठान्विता ये भुवि दुःखभाजः ॥ तत्रानुमानं कविभिर्विधेयं नाराधिता तैः सततं भवानी ॥ १० ॥ ये राजभोगा-

हे मुने ! धर्म-अर्थ-काम-परायण राजाओंको तो विशेष करके यह देवीचरित्र सुनना चाहिए। जब जीवन्मुक्त पुरुष भी सदा इस कथामृतका पान करते रहते हैं, तब मुक्तिविहीन संसारी जीव ऐसा क्यों न करें ? ॥ ६ ॥ मेरा अनुमान तो यह है कि पूर्वजन्ममें जो लोग सुन्दर कुन्दपुष्प, चम्पाके फूल तथा बिल्वपत्रसे भगवतीका पूजन किये रहते हैं, वे ही इस जन्ममें समस्त भोग्य पदार्थोंसे सम्पन्न राजा होते हैं ॥७॥ जो भारतवर्षकी इस पावन भूमिमें दुर्लभ मनुष्यशरीर पाकर धन-धान्यसे हीन, रोगी और निःसन्तान रहते हैं। उनके विषयमें मेरा अनुमान यह है कि उन भक्तिभावसे हीन लोगोंने पूर्वजन्ममें भगवतीकी आराधना नहीं की थी। इसीसे उनकी ऐसी दुर्गति हो रही है। इसी कारण वे औरोंके सेवक, आज्ञाकारी और भारवाही होकर सदा स्वार्थ-साधनमें संलग्न रहते हैं। फिर भी उन्हें कभी इतना अन्न-धन नहीं मिलता कि जिससे वे अपना पेट पाल सकें ॥८॥९॥ इस संसारमें जितने अन्धे, गूँगे, बहरे, लूले, लँगड़े, कोढ़ी और नाना प्रकारके दुःखोंसे विकल लोग दिखायी देते हैं, उन्हें देखकर कवियोंको यह अनुमान कर लेना चाहिए कि उन प्राणियोंने कभी भी भगवतीकी उपासना नहीं की थी ॥ १० ॥ इसके विपरीत

संसारमें जो लोग राजभोगयुक्त, सर्वथा समृद्ध और बहुतेरे सेवकोंके प्रभु होते हैं और जिनके पास समस्त वैभव विद्यमान रहता है, उन्हें देखकर यह अनुमान कर लेना चाहिए कि उन्होंने भली-भाँति जगदम्बाका पूजन किया है ॥११॥ अतएव हे सत्यवतीतनय ! अब कृपा करके मुझे देवीकी और कोई पुनीत कथा सुनाइए । क्योंकि आप बड़े दयालु पुरुष हैं ॥१२॥ उस पापी महिषासुरको मारनेके बाद देवताओं द्वारा पूजित होकर वे सब देवताओंके तेजसे उत्पन्न भगवती महालक्ष्मी कहाँ चली गयीं ? ॥ १३ ॥ हे महाभाग ! अभी आपने कहा है कि भगवती तुरन्त अन्तर्धान हो गयीं । तब वे वहाँसे स्वर्गलोकको चली गयीं या मृत्युलोकमें ही कहीं रह गयीं ? ॥ १४ ॥ अथवा वे वहीं विलीन हो गयीं या वैकुण्ठधामको चली गयीं ? या कि वहाँसे चलकर सुमेरु पर्वतपर जा विराजीं ? ॥१५॥ व्यासजी बोले—हे राजन् ! पहले तृतीय स्कन्धमें ही मैं रमणीक मणिद्वीपका वर्णन कर चुका हूँ, वह द्वीप उन्हें विशेष प्रिय है। इसलिए

न्वितऋद्धिपूर्णाः संसेव्यमाना बहुभिर्मनुष्यैः ॥ दृश्यंति ये वा विभवैः समेतास्तैः पूजिताऽम्बेत्यनुमेयमेव ॥ ११ ॥ तस्मात्सत्यवतीसूनो देव्याश्चरितमुत्तमम् ॥ कथयस्व कृपां कृत्वा दयावानसि सांप्रतम् ॥ १२ ॥ हत्वा तं महिषं पापं स्तुता संपूजिता सुरैः ॥ क्व गता सा महालक्ष्मीः सर्वतेजःसमुद्भवा ॥१३॥ कथितं ते महाभाग गतांतर्धानमाशु सा ॥ स्वर्गे वा मृत्युलोके वा संस्थिता भुवनेश्वरी ॥ १४ ॥ लयं गता वा तत्रैव वैकुण्ठे वा समाश्रिता ॥ अथवा हिमशैले सा तत्त्वतो मे वदाधुना ॥ १५ ॥ व्यास उवाच ॥ पूर्वं मया ते कथितं मणिद्वीपं मनोहरम् ॥ क्रीडास्थानं सदा देव्या वल्लभं परमं स्मृतम् ॥१६॥ यत्र ब्रह्मा हरिः स्थाणुः स्त्रीभावं ते प्रपेदिरे ॥ पुरुषत्वं पुनः प्राप्य स्वानि कार्याणि चक्रिरे ॥ १७ ॥ यः सुधासिन्धुमध्येऽस्ति द्वीपः परमशोभनः ॥ नानारूपैः सदा तत्र विहारं कुरुतेऽम्बिका ॥ १८ ॥ स्तुता संपूजिता देवैः सा तत्रैव गता शिवा ॥ यत्र संक्रीडते नित्यं मायाशक्तिः सनातनी ॥ १९ ॥ देवास्तां निर्गतां वीक्ष्य देवीं सर्वेश्वरीं तथा ॥ रविवंशोद्भवं चक्रुर्भूमिपालं महाबलम् ॥ २० ॥ अयोध्याऽधिपतिं वीरं शत्रुघ्नं नाम पार्थिवम् ॥ सर्वलक्षणसंपन्नं महिषस्यासने शुभे ॥२१॥ दत्त्वा राज्यं तदा तस्मै देवा इन्द्रपुरोगमाः ॥ स्वकीयैर्वाहनैः सर्वे जग्मुः स्वान्यालयानि ते ॥ २२ ॥ गतेषु तेषु देवेषु पृथिव्यां पृथिवीपते ॥ धर्मराज्यं बभूवाथ प्रजाश्च सुखितास्तथा ॥ २३ ॥

वे सदा वहाँ ही विहार करती रहती हैं ॥१६॥ वहाँ ही पहुँचकर ब्रह्मा, विष्णु और शिव पुरुषसे स्त्री हो गये थे और भगवतीकी कृपासे पुनः पुरुषत्व प्राप्त करके अपने-अपने काममें लगे थे ॥१७॥ वह परम रमणीक द्वीप सुधासमुद्रके मध्यमें विराजमान है। जगदम्बा विविध रूपोंमें नित्य वहाँ विहार किया करती हैं ॥ १८ ॥ महिषासुरका वध करनेके बाद जब देवता उनकी स्तुति और पूजा कर चुके, तब भगवती शिवा उसी मणिद्वीपमें चली गयीं । वहाँ वे सनातनी मायाशक्तिस्वरूपा जगदम्बा नित्य विहार करती रहती हैं ॥१९॥ सर्वेश्वरी भगवतीको अलक्षित देखकर देवताओंने सूर्यवंशमें उत्पन्न, महाबली एवं सर्वसुलक्षणसंपन्न शत्रुघ्न नामके वीर राजाको महिषासुरके सुन्दर राजसिंहासनपर बैठाया ॥२०॥२१॥ इस प्रकार शत्रुघ्नका राज्याभिषेक करके इन्द्रादि देवता अपने-अपने वाहनोंपर सवार होकर अपने-अपने स्थानोंको चले गये ॥२२॥ हे भूपाल ! देवताओंके चले जानेके बाद पृथ्वीपर धर्मराज्यकी स्थापना हुई। जिससे समस्त

करके इन्द्रादि देवता अपने-अपने वाहनोंपर सवार होकर अपने-अपने स्थानोंको चले गये ॥२२॥ हे भूपाल ! देवताओंके चले जानेके बाद पृथिवीपर धर्मराज्यकी स्थापना हुई। जिससे समस्त

प्रजा बहुत सुखी हुई ॥ २३ ॥ मेघ ठीक समयपर जल बरसाने लगे। जिससे पृथिवीपर अन्नका उत्पादन बढ़ गया। वृक्ष फल-फूलसे लद गये। जिससे लोगोंको अपार सुख मिलने लगा ॥ २४ ॥ गौओंका दूध इतना बढ़ गया कि जब जिसकी इच्छा होती, तब दुह लेता था। नदियाँ सीधी राह बहने लगीं। उनका जल स्वच्छ और शीतल हो गया। उनके तटोंपर पक्षियोंकी जमघट रहने लगी ॥ २५ ॥ ब्राह्मण वैदिक तत्त्वका ज्ञान प्राप्त करके यज्ञ-याग करने लगे। क्षत्रिय धर्मपरायण होकर दान और स्वाध्यायके काममें लग गये ॥ २६ ॥ वे शस्त्रविद्याके पारंगत होकर नित्य प्रजाका पालन करने लगे। अब उनका दण्डविधान न्यायके आधारपर चलने लगा और सभी राजे शान्तिके उपासक बन गये ॥ २७ ॥ सब प्राणियोंके हृदयसे वैर-विरोधका भाव जाता रहा। खानोंसे लोगोंको अपार धनराशि प्राप्त होने लगी और गोशालाओंमें गायोंका झुण्ड दिखायी देने लगा ॥२८॥ हे महाराज ! उस समय धरातलमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सभी जातिके लोग देवीके भक्त हो गये ॥ २९ ॥ उन दिनों ब्राह्मणों और क्षत्रियों द्वारा किये गये यज्ञोंसे समस्त पृथिवी व्याप्त हो गयी। सर्वत्र यज्ञस्तम्भ तथा सुन्दर

पर्जन्यः कालवर्षी च धरा धान्यगुणावृता ॥ पादपाः फलपुष्पाढ्या बभूवुः सुखदाः सदा ॥ २४ ॥ गावश्च क्षीरसंपन्ना घटोध्न्यः कामदा नृणाम् ॥ नद्यः सुमार्गगाः स्वच्छाः शीतोदाः खगसंयुताः ॥२५॥ ब्राह्मणा वेदतत्त्वाश्च यज्ञकर्मरतास्तथा ॥ क्षत्रिया धर्मसंयुक्ता दानाध्ययनतत्पराः ॥२६॥ शस्त्रविद्यारता नित्यं प्रजारक्षणतत्पराः ॥ न्यायदंडधराः सर्वे राजानः शमसंयुताः ॥२७॥ अविरोधस्तु भूतानां सर्वेषां संबभूव ह ॥ आकरा धनदा नृणां व्रजा गोयूथसंयुताः ॥ २८ ॥ ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्च नृपसत्तम ॥ देवीभक्तिपराः सर्वे संबभूवुर्धरातले ॥ २९ ॥ सर्वत्र यज्ञयूपाश्च मंडपाश्च मनोहराः ॥ मखैः पूर्णा धराश्चासन् ब्राह्मणैः क्षत्रियैः कृतैः ॥ ३० ॥ पतिव्रतधरा नार्यः सुशीलाः सत्यसंयुताः ॥ पितृभक्तिपराः पुत्रा आसन्धर्मपरायणाः ॥ ३१ ॥ न पाखण्डं न वाऽधर्मः कुत्रापि पृथिवीतले ॥ वेदवादाः शास्त्रवादा नान्ये वादास्तथाऽभवन् ॥ ३२ ॥ कलहो नैव केषांचिन्न दैन्यं नाशुभा मतिः ॥ सर्वत्र सुखिनो लोकाः काले च मरणं तथा ॥ ३३ ॥ सुहृदां न वियोगश्च नापदश्च कदाचन ॥ नोऽनावृष्टिर्न दुर्भिक्षं न मारी दुःखदा नृणाम् ॥ ३४ ॥ न रोगो न च मात्सर्यं न विरोधः परस्परम् ॥ सर्वत्र सुखसंपन्ना नरा नार्यः सुखान्विताः ॥३५॥ क्रीडंति मानवाः सर्वे स्वर्गे देवगणा इव ॥ न चोरा न च पाखण्डा वंचका दंभकास्तथा ॥ ३६ ॥ पिशुना लम्पटाः स्तब्धा न बभूवुस्तदा नृप ॥

यज्ञमण्डप दिखायी देने लगे ॥ ३० ॥ स्त्रियाँ पतिव्रता, सुशील और सत्यवादिनी हो गयीं और पुत्र धर्मपरायण होकर अपने माता-पिताकी सेवा करने लगे ॥३१॥ उस समय पृथिवीतलमें अधर्म तथा पाखण्ड कहीं भी नहीं रह गया। उन दिनों वेदवाद तथा शास्त्रवादके अतिरिक्त अन्य सभी वाद लुप्त हो गये ॥३२॥ न परस्पर किसीसे लड़ाई-झगड़ा होता था, न कोई गरीब था और न किसीकी बुरी नियत रह गयी। सब लोग सब तरहसे सुखी रहते थे और कभी किसीकी अकालमृत्यु नहीं होती थी ॥ ३३ ॥ मित्रोंमें विछोह नहीं होता था और उनपर कभी कोई विपत्ति नहीं आती थी। अनावृष्टि, दुर्भिक्ष और महामारीका भय भी नहीं रहता था—जिससे मनुष्योंको बहुत दुःख होता है ॥ ३४ ॥ न किसीको रोग होता था, न परस्पर विरोध होता था और न कोई किसीसे डाह करता था। सर्वत्र सभी स्त्री-पुरुष सुखी थे ॥ ३५ ॥ जैसे स्वर्गमें देवता सानन्द विचरा करते थे, उसी प्रकार उन दिनों सभी मनुष्य पृथिवीतलपर

सुखसे विचरते थे। चोर, पाखण्डी, धोखेबाज, ढोंगी, चुगलखोर और जड़ प्रकृतिके मनुष्य कहीं नहीं दिखायी देते थे। हे राजन्! वेदसे द्वेष करनेवाले पापी भी कहीं नहीं रह गये थे ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ उन दिनों सब लोग धर्मात्मा और ब्राह्मणोपासक थे। सृष्टिधर्म तीन प्रकारके होते हैं। अतएव तीन ही प्रकारके ब्राह्मण भी थे ॥ ३८ ॥ जैसे—सात्त्विक ब्राह्मण, राजस प्रकृतिके ब्राह्मण एवं तामस स्वभावके ब्राह्मण। सात्त्विक ब्राह्मण सत्त्ववृत्तिमें लगे हुए वेद और यज्ञ-यागादि कार्योंमें पूर्ण निपुण होते थे ॥३९॥ वे दान नहीं लेते थे, दयालु और संयमी होते थे। वे सदा धर्मपरायण रहते हुए सात्त्विक अन्नसे यज्ञ करते थे ॥ ४० ॥ वे यज्ञमें सदा पुरोडाश (खीरका) उपयोग करते थे और पशुहिंसा कभी नहीं करते थे। दान, अध्ययन और यज्ञ ये तीनों कर्म सात्त्विक ब्राह्मणोंमें बराबर दिखायी देते थे। हे राजन्! रजोगुणी ब्राह्मण वेदवेत्ता होकर राजाओंकी पुरोहिताई करते थे ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ वे विधि-विधानका पालन करते हुए ही मांसभक्षण करते थे। यज्ञ करना, यज्ञ कराना, दान देना, दान लेना, वेदोंका अध्ययन करना और अध्ययन कराना, इन छहों ब्राह्मणकर्मोंका वे सदा पालन करते थे। तमोगुणी ब्राह्मण

न वेदद्वेषिणः पापा मानवाः पृथिवीपते ॥ ३७ ॥ सर्वधर्मरता नित्यं द्विजसेवापरायणाः ॥ त्रिधात्वात्सृष्टिधर्मस्य त्रिविधा ब्राह्मणास्ततः ॥ ३८ ॥ सात्त्विका राजसाश्चैव तामसाश्च तथाऽपरे ॥ सर्वे वेदविदो दक्षाः सात्त्विकाः सत्त्ववृत्तयः ॥ ३९ ॥ प्रतिग्रहविहीनाश्च दयादमपरायणाः ॥ यज्ञांस्ते सात्त्विकैरन्नैः कुर्वाणा धर्मतत्पराः ॥ ४० ॥ पुरोडाशविधानैश्च पशुभिर्न कदाचन ॥ दानमध्ययनं चैव यजनं तु तृतीयकम् ॥ ४१ ॥ त्रिकर्मरसिकास्ते वै सात्त्विका ब्राह्मणा नृप ॥ राजसा वेदविद्वांसः क्षत्रियाणां पुरोहिताः ॥ ४२ ॥ षट्कर्मनिरताः सर्वे विधिवन्मांसभक्षकाः ॥ यजनं याजनं दानं तथैव च प्रतिग्रहः ॥ ४३ ॥ अध्ययनं तु वेदानां तथैवाध्यापनं तु षट् ॥ तामसाः क्रोधसंयुक्ता रागद्वेषपराः पुनः ॥ ४४ ॥ राज्ञां कर्मकरा नित्यं किञ्चिदध्ययने रताः ॥ महिषे निहते सर्वे सुखिनो वेदतत्पराः ॥४५॥ बभूवुर्व्रतनिष्णाता दानधर्मपरास्तथा ॥ क्षत्रियाः पालने युक्ता वैश्या वणिजवृत्तयः ॥ ४६ ॥ कृषिवाणिज्यगोरक्षाकुसीदवृत्तयः परे ॥ एवं प्रमुदितो लोको महिषे विनिपातिते ॥ ४७ ॥ अनुद्वेगः प्रजानां वै संबभूव धनागमः ॥ बहुक्षीराः शुभा गावो नद्यश्चैव बहूदकाः ॥ ४८ ॥ वृक्षा बहुफलाश्चासन्मानवा रोगवर्जिताः ॥ नाधयो नेतयः क्वापि प्रजानां दुःखदायकाः ॥ ४९ ॥ न निधनमुपयान्ति प्राणिनस्तेऽप्यकाले सकलविभवयुक्ता रोगहीनाः सदैव ॥ निगमविहितधर्मे तत्पराश्चंडिकायाश्चरणसर-

क्रोधी और राग-द्वेषपरायण रहते थे ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ वे कुछ पढ़-लिखकर राज्यकी सेवा करने लग जाते थे। महिषासुरके मर जानेपर सभी ब्राह्मण सुखी और वेदपरायण हो गये ॥४५॥ उस समय ब्राह्मण व्रतनिष्ठ, दानी और धर्मात्मा होने लगे। क्षत्रिय प्रजाका पालन करने लगे और वैश्य वाणिज्य कर्ममें लग गये ॥ ४६ ॥ बाकी सब लोग खेती, व्यापार, गोरक्षा तथा सूदपर धन देनेके व्यवसायमें लग गये। इस प्रकार महिषासुरके मारे जानेपर सब लोग अपने-अपने धन्धोंमें लगकर सुखी हो गये ॥ ४७ ॥ प्रजाकी घबराहट दूर हो गयी और उसे प्रचुर धन मिलने लगा। गौओंका दूध और नदियोंका जल बढ़ गया ॥४८॥ वृक्ष अधिक फल देने लगे और मनुष्य नीरोग हो गये। प्रजाको दुःख देनेवाली मानसिक अशान्ति और ईति (अर्थात् अतिवृष्टि, अवर्षण, टिड्डियों तथा चूहोंसे खेतीकी हानि, पक्षियोंसे फलोंकी हानि, दंगे तथा विदेशी शत्रुओंके आक्रमणकी चिन्ता) दूर हो गयी ॥ ४९ ॥ उस समय प्राणियोंकी

(अर्थात् अतिवृष्टि, अवर्षण, टिड्डियों तथा चूहोंसे खेतोंकी हानि, पक्षियोंसे फलोंकी हानि, देश तथा विदेशी शत्रुओंके आक्रमणकी चिन्ता) दूर हो गयी ॥ ४९ ॥ उस समय प्राणियोंकी

अकालमृत्यु नहीं होती थी। सभी लोग सब प्रकारके वैभवसे सम्पन्न और नीरोग रहते थे। वेदविहित धर्मके अनुसार वे सर्वदा भगवतीके चरणकमलोंका एकाग्रचित्तसे आराधन करते थे ॥५०॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

(शुम्भ-निशुम्भका तप करके स्वर्गपर विजय प्राप्त करना) व्यासजी बोले—हे राजन्! अब मैं सब प्राणियोंके लिए सुखदायी और सर्वपापनाशक देवीका चरित्र सुना रहा हूँ ॥ १ ॥ पूर्वकालमें शुम्भ और निशुम्भ नामके दो भाई बड़े बलवान् और असाधारण वीर थे। वे इतने महान् पराक्रमी थे कि उन्हें कोई नहीं मार सकता था ॥ २ ॥ उनके पास बड़ी विशाल सेना थी। वे दोनों स्वयं भी बड़े वीर थे। वे देवताओंको सदा बहुत दुख देते थे। वे बड़े दुराचारी और मदमत्त थे। उनके बहुतेरे दानव साथी थे ॥ ३ ॥ देवताओंका उपकार करनेके लिए अनुचरों समेत उन दोनोंको भी भगवतीने ही भयानक संग्राम करके मारा था ॥ ४ ॥ महाबाहु चण्ड-मुण्ड, अतिशय दारुण रक्तबीज और धूम्रलोचन दैत्यका भी भगवतीने ही रणभूमिमें वध

सिजानां सेवने दत्तचित्ताः ॥ ५० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

॥ व्यास उवाच ॥ शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि देव्याश्चरितमुत्तमम् ॥ सुखदं सर्वजंतूनां सर्वपापप्रणाशनम् ॥ १ ॥ यथा शुम्भो निशुम्भश्च भ्रातरौ बलवत्तरौ ॥ बभूवतुर्महावीरौ अवध्यौ पुरुषैः किल ॥ २ ॥ बहुसेनावृतौ शूरौ देवानां दुःखदौ सदा ॥ दुराचारौ मदोत्सिक्तौ बहुदानवसंयुतौ ॥ ३ ॥ हतावम्बिकया तौ तु संग्रामेऽतीव दारुणे ॥ देवानां च हितार्थाय सर्वैः परिचरैः सह ॥ ४ ॥ चंडमुंडौ महाबाहू रक्तबीजोऽतिदारुणः ॥ धूम्रलोचननामा च निहतास्ते रणाङ्गणे ॥ ५ ॥ तान्निहत्य सुराणां सा जहार भयमुत्तमम् ॥ स्तुता संपूजिता देवैर्गिरौ हेमाचले शुभे ॥ ६ ॥ राजोवाच ॥ कथितावसरावादौ कथं तौ बलिनां वरौ ॥ केन संस्थापितौ चेह स्त्रीवध्यत्वं कुतो गतौ ॥ ७ ॥ तपसा वरदानेन कस्य जातौ महाबलौ ॥ कथं च निहतौ सर्वं कथयस्व सविस्तरम् ॥८॥ व्यास उवाच ॥ शृणु राजन्कथां दिव्यां सर्वपापप्रणाशिनीम् ॥ देव्याश्चरितसंयुक्तां सर्वार्थफलदां शुभाम् ॥९॥ पुरा शुम्भनिशुम्भौ द्वावसुरौ भूमिमंडले ॥ पातालतश्च संप्राप्तौ भ्रातरौ शुभदर्शनौ ॥ १० ॥ तौ प्राप्तयौवनौ चैव चेरतुस्तप उत्तमम् ॥ अन्नोदकं परित्यज्य पुष्करे लोकपावने ॥ ११ ॥ वर्षाणामयुतं यावद्योगविद्यापरायणौ ॥ एकत्रैवासनं कृत्वा तेपाते परमं तपः ॥ १२ ॥ तयोस्तुष्टोऽभवद्

किया था ॥ ५ ॥ उन असुरोंको मारकर देवीने देवताओंका बहुत बड़ा भय दूर कर दिया। उसके बाद देवताओंने सुमेरु पर्वतपर उनका पूजन किया था ॥ ६ ॥ राजा जनमेजयने पूछा—वे शुम्भ-निशुम्भ कौन थे? वे कैसे सर्वश्रेष्ठ बलवान् हुए? उन्हें राजसिंहासनपर किसने बिठाला? और स्त्रीके हाथों उनका वध क्यों हुआ? ॥ ७ ॥ तप करके उन्होंने किस देवतासे वरदान पाया था, जिससे वे इतने बड़े बलवान् हो गये? किस प्रकार उनका निधन हुआ? यह सब वृत्तान्त आप विस्तारपूर्वक बताइए ॥ ८ ॥ व्यासजी बोले—हे राजन्! अब मैं आपको वह कथा सुना रहा हूँ, जिसे सुननेसे सब पाप नष्ट हो जाते हैं, जिसमें देवीके अनुपम चरित्रका वर्णन है, जो शुभ और सर्वार्थदायक है ॥ ९ ॥ पूर्वकालमें शुम्भ-निशुम्भ नामके दो दैत्य पाताललोकसे भूमण्डलपर आ पहुँचे। वे दोनों देखनेमें बड़े सुन्दर थे ॥ १० ॥ वयस्क होनेपर वे संसारके सबसे पवित्र पुष्कर तीर्थमें अन्न-जल त्यागकर उग्र तपस्या करने लगे ॥ ११ ॥

वे दोनों योगविद्यामें इतने निपुण थे कि पूरे दस हजार वर्षतक एक ही आसनसे बैठकर तप करते रहे ॥ १२ ॥ उनकी कठोर तपस्यासे सर्वलोकपितामह ब्रह्माजी प्रसन्न हो गये और अपने वाहन हंसपर सवार होकर उनके पास गये ॥ १३ ॥ समस्त संसारकी सृष्टि करनेवाले ब्रह्माजीने उन्हें ध्यानमग्न देखकर कहा—हे दोनों महाभाग ! उठो, मैं तुम्हारी तपस्यासे प्रसन्न हूँ ॥ १४ ॥ बताओ, मैं तुम्हारी इच्छाके अनुसार वरदान देनेको प्रस्तुत हूँ । तुम्हारे तपोबलसे मैं बहुत प्रभावित हुआ हूँ और तुम्हारी कामना पूर्ण करना चाहता हूँ ॥ १५ ॥ व्यासजी बोले—ब्रह्माजीके वचन सुनकर उन दोनोंका ध्यान भंग हो गया । तब उठकर उन्होंने प्रदक्षिणा की और प्रणाम किया ॥ १६ ॥ दुर्बल शरीरवाले उन दोनों दानवोंने ब्रह्माजीको साष्टाङ्ग दण्डवत् किया और बड़ी दीनतापूर्वक गद्गद भावसे मधुर वचन बोले—॥ १७ ॥ हे देवदेव ! हे दयासिन्धो ! हे भक्तोंको अभयदान देनेवाले ! हे ब्रह्मन् ! हे विभो ! यदि आप हमपर प्रसन्न हों तो हमें अमर हो जानेका वरदान दीजिए ॥ १८ ॥ क्योंकि इस धरातलपर मरणसे बढ़कर और कोई भय नहीं है । उसी भयसे सन्त्रस्त होकर हम दोनों भाई आपकी शरणमें आये हैं ॥१९॥

ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः ॥ तत्रागतश्च भगवानारुह्य वरटापतिम् ॥ १३ ॥ तावुभौ च जगत्स्रष्टा दृष्ट्वा ध्यानपरौ स्थितौ ॥ उत्तिष्ठतं महाभागौ तुष्टोऽहं तपसा किल ॥ १४ ॥ वाञ्छितं वा वरं कामं ददामि ब्रुवतामिह ॥ कामदोऽहं समायातो दृष्ट्वा वां तपसो बलम् ॥ १५ ॥ व्यास उवाच ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य प्रबुद्धौ तौ समाहितौ ॥ प्रदक्षिणक्रियां कृत्वा प्रणामं चक्रतुस्तदा ॥ १६ ॥ दंडवत्प्रणिपातं च कृत्वा तौ दुर्बलाकृती ॥ ऊचतुर्मधुरां वाचं दीनौ गद्गदया गिरा ॥ १७ ॥ देवदेव दयासिंधो भक्तानामभयप्रद ॥ अमरत्वं च नौ ब्रह्मन्देहि तुष्टोऽसि चेद्विभो ॥ १८ ॥ मरणादपरं किंचिद्भयं नास्ति धरातले ॥ तस्माद्भयाच्च संत्रस्तौ युष्माकं शरणं गतौ ॥ १९ ॥ त्राहि त्वं देवदेवेश जगत्कर्तः क्षमानिधे ॥ परिस्फोटय विश्वात्मन्सद्यो मरणजं भयम् ॥२०॥ ब्रह्मोवाच ॥ किमिदं प्रार्थनीयं वो विपरीतं तु सर्वथा ॥ अदेयं सर्वथा सर्वैः सर्वेभ्यो भुवनत्रये ॥२१॥ जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च ॥ मर्यादा विहिता लोके पूर्वं विश्वकृता किल ॥ २२ ॥ मर्तव्यं सर्वथा सर्वैः प्राणिभिर्नात्र संशयः ॥ अन्यं प्रार्थयतं कामं ददामि यच्च वांछितम् ॥ २३ ॥ व्यास उवाच ॥ तदाकर्ण्य वचस्तस्य सुविमृश्य च दानवौ ॥ ऊचतुः प्रणिपत्याथ ब्रह्माणं पुरतः स्थितम् ॥२४॥ पुरुषैरमराद्यैश्च मानवैर्मृगपक्षिभिः ॥ अवध्यत्वं कृपासिंधो देहि नौ वांछितं वरम् ॥ २५ ॥ नारी बलवती काऽस्ति या नौ नाशं

हे देवदेवेश ! हे जगत्स्रष्टा ! हे दयानिधान ! आप हमारी रक्षा करें । हे विश्वात्मन् ! हम दोनोंका मरणभय तत्काल दूर कर दीजिए ॥ २० ॥ ब्रह्माजीने कहा—तुमने यह कैसा विपरीत वरदान माँगा है ? तीनों लोकमें कोई ऐसा वरदान नहीं दे सकता ॥ २१ ॥ जिसका जन्म होता है, उसकी मृत्यु अवश्य होती है । जिसकी मृत्यु होती है, उसका जन्म भी अवश्य होता है । विश्वके विधाताने ही संसारकी ऐसी मर्यादा बना दी है ॥ २२ ॥ सब प्राणियोंको मरना ही पड़ता है । इसमें तनिक भी संशय नहीं है । इसको छोड़कर तुम कोई दूसरा वर माँग लो । मैं तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण कर दूँगा ॥ २३ ॥ ब्रह्माजीके वचन सुनकर उन दोनों दानवोंने परस्पर भली भाँति विचार किया । उसके बाद प्रणाम करके उन्होंने कहा—॥ २४ ॥ भगवन् ! तब आप हमें यह वर प्रदान कीजिए कि पुरुष जातिके देवता, मनुष्य, मृग अथवा पक्षी हमें न मार सकें ॥ २५ ॥ क्योंकि कौन स्त्री इतनी बलवती होगी, जो हम दोनोंको मार

भगवन् ! तब आप हमें यह वर प्रदान कीजिए कि पुरुष जातिके देवता, मनुष्य, मृग अथवा पक्षी हमें न मार सकें ॥ २५ ॥ क्योंकि कौन स्त्री इतनी बलवती होगी, जो हम दोनोंको मार

सके। हम तीनों लोकोंके सचराचर प्राणियोंकी स्त्रीजातिसे नहीं डरते ॥२६॥ हे कमलयोने ! आप ऐसा वरदान दीजिए कि जिससे हम पुरुषजातिके हाथों न मर सकें। स्त्रियोंसे हमें कोई डर नहीं है। क्योंकि वे स्वभावसे ही अबला होती हैं ॥ २७ ॥ व्यासजी बोले—उन दोनोंके वचन सुनकर ब्रह्माजीने उन्हें उनका मनचाहा वरदान दे दिया। इसके बाद ब्रह्माजी प्रसन्न मनसे अपने स्थानको चले गये ॥ २८ ॥ ब्रह्माजीके चले जानेपर वे दोनों दानव भी अपने घर चले गये। वहाँ उन्होंने शुक्राचार्यको पुरोहित बनाकर उनका पूजन किया ॥ २९ ॥ तब शुभ दिन और शुभ नक्षत्रमें सोनेका एक दिव्य सिंहासन बनवाकर शुक्राचार्यने राज्यको भेंट किया ॥ ३० ॥ ज्येष्ठ होनेके कारण उन्होंने शुम्भको उस सुन्दर राजसिंहासनपर बिठाला। उसी समय उन दोनोंकी चाकरी करनेके लिए बहुतेरे दानववीर आ गये ॥ ३१ ॥ बलाधिक्यके कारण अभिमानी महावीर चण्ड और मुण्ड भी विशाल सेना तथा रथ-हाथी-घोड़ोंको लेकर उनसे आ

करिष्यति ॥ न बिभीवः स्त्रियः कामं त्रैलोक्ये सचराचरे ॥२६॥ अवध्यौ भ्रातरौ स्यातां नरेभ्यः पंकजोद्भव ॥ भयं न स्त्रीजनेभ्यश्च स्वभावादबला हि सा ॥२७॥ व्यास उवाच ॥ इति श्रुत्वा तयोर्वाक्यं प्रददौ वांछितं वरम् ॥ ब्रह्मा प्रसन्नमनसा जगामाथ स्वमालयम् ॥२८॥ गतेऽथ भवने तस्मिन्दानवौ स्वगृहं गतौ ॥ भृगुं पुरोहितं कृत्वा चक्रतुः पूजनं तदा ॥२९॥ शुभे दिने सुनक्षत्रे जातरूपमयं शुभम् ॥ कृत्वा सिंहासनं दिव्यं राज्यार्थं प्रददौ मुनिः ॥३०॥ शुभाय ज्येष्ठभूताय ददौ राज्यासनं शुभम् ॥ सेवनार्थं तदैवाशु संप्राप्ता दानवोत्तमाः ॥३१॥ चंडमुंडौ महावीरौ भ्रातरौ बलदर्पितौ ॥ संप्राप्तौ सैन्यसंयुक्तौ रथवाजिगजान्वितौ ॥ ३२ ॥ धूम्रलोचननामा च तद्रूपश्चंडविक्रमः ॥ शुम्भं च भूपतिं श्रुत्वा तदाऽगाद्बलसंयुतः ॥ ३३ ॥ रक्तबीजस्तथा शूरो वरदानबलाधिकः ॥ अक्षौहिणीभ्यां संयुक्तस्तत्रैवागत्य संगतः ॥३४॥ तस्यैकं कारणं राजन्संग्रामे युध्यतः सदा ॥ देहाद्रुधिरसंपातस्तस्य शस्त्राहतस्य च ॥ ३५ ॥ जायते च यदा भूमावुत्पद्यंते ह्यनेकशः ॥ तादृशाः पुरुषाः क्रूरा बहवः शस्त्रपाणयः ॥ ३६ ॥ संभवंति तदाकारास्तद्रूपास्तत्पराक्रमाः ॥ युद्धं पुनस्ते कुर्वंति पुरुषा रक्तसंभवाः ॥३७॥ अतः सोऽपि महावीर्यः संग्रामेऽतीव दुर्जयः ॥ अवध्यः सर्वभूतानां रक्तबीजो महासुरः ॥ ३८ ॥ अन्ये च बहवः शूराश्चतुरंगसमन्विताः ॥ शुम्भं च नृपतिं मत्वा बभूवुस्तस्य सेवकाः ॥ ३९ ॥ असंख्याता तदा

मिले ॥ ३२ ॥ उसी प्रकार प्रचण्ड पराक्रमी धूम्रलोचन दैत्य भी शुम्भ दानवके राजा होनेका समाचार सुनकर अपनी सेनाके साथ आ गया ॥ ३३ ॥ वरदान प्राप्त रहनेके कारण अतिशय बलवान् रक्तबीज भी अपने साथ दो अक्षौहिणी सेना लेकर उनसे आ मिला ॥३४॥ हे महाराज जनमेजय ! उस रक्तबीजके अजेय होनेका मुख्य कारण यह था कि युद्धमें लड़ते समय शस्त्रास्त्रके आघातसे घायल होनेपर उसके शरीरसे रक्तकी जितनी बूंदें गिरती थीं, तत्काल उसीके समान क्रूर और शस्त्रास्त्रसे सुसज्जित उतने ही वीर उत्पन्न हो जाते थे ॥३५॥३६॥ उनकी आकृति, रूप और पराक्रम ठीक उसीके समान रहता था और वे उत्पन्न होते ही लड़ने लग जाते थे ॥३७॥ इसीसे उस महापराक्रमी दानवको रणभूमिमें कोई मार नहीं पाता था। अतएव वह महान् असुर सभी प्राणियोंसे अवध्य हो गया था ॥ ३८ ॥ इसी प्रकार अन्यान्य शूरवीर दानव भी अपनी-अपनी चतुरंगिणी सेना ले-लेकर आये और शुम्भको अपना सम्राट् मानकर

उसके सेवक बन गये ॥ ३९ ॥ इससे शुम्भ-निशुम्भके पास असंख्य सेना हो गयी और उन्होंने भूमण्डलके सभी राज्योंपर बरबस अधिकार कर लिया ॥ ४० ॥ तदनन्तर प्रचुर सेना जुटाकर निशुम्भने इन्द्रको जीतनेके लिए बड़े वेगसे स्वर्गपर आक्रमण कर दिया ॥ ४१ ॥ वहाँ पहुँचकर उसने लोकपालोंके साथ प्रबल युद्ध किया। अन्तमें इन्द्रने उसकी छातीपर वज्रका प्रहार कर दिया ॥ ४२ ॥ उस वज्राघातसे शुम्भका छोटा भाई निशुम्भ पृथिवीपर गिर पड़ा और उस महात्माकी सारी सेना तितर-बितर हो गयी ॥ ४३ ॥ अपने भाईके मूर्छित होनेकी खबर पाकर शत्रुसेनाको मटियामेट कर देनेवाला शुम्भ स्वयं मोर्चेपर जा डटा और उसने पहुँचते ही अपने बाणोंसे देवताओंको मारना आरम्भ कर दिया ॥४४॥ इस प्रकार युद्धसे कभी भी न घबड़ानेवाले शुम्भने भीषण युद्ध छेड़ दिया और अन्तमें इन्द्र और सभी लोकपालों तथा देवताओंको उसने परास्त कर दिया ॥४५॥ इस प्रकार अपने अदम्य पराक्रमसे उसने जबर्दस्ती इन्द्रकी पदवी प्राप्त कर ली। अब कल्पवृक्ष और कामधेनुपर भी उसका अधिकार हो गया ॥४६॥ उस महात्मा असुर शुम्भने तीनों लोकोंके राज्यपर कब्जा कर लिया और यज्ञभाग भी स्वयं लेने

जाता सेना शुम्भनिशुम्भयोः ॥ पृथिव्याः सकलं राज्यं गृहीतं बलवत्तया ॥४०॥ सेनायोगं तदा कृत्वा निशुम्भः परवीरहा ॥ जगाम तरसा स्वर्गे शचीपतिजयाय च ॥ ४१ ॥ चकारासौ महायुद्धं लोकपालैः समंततः ॥ वृत्रहा वज्रपातेन ताडयामास वक्षसि ॥ ४२ ॥ स वज्राभिहतो भूमौ पपात दानवानुजः ॥ भग्नं बलं तदा तस्य निशुम्भस्य महात्मनः ॥४३॥ भ्रातरं मूर्छितं श्रुत्वा शुम्भः परबलार्दनः ॥ तत्रागत्य सुरान्सर्वांस्ताडयामास सायकैः ॥४४॥ कृतं युद्धं महत्तेन शुम्भेनाक्लिष्टकर्मणा ॥ निर्जितास्तु सुराः सर्वे सेन्द्राः पालाश्च सर्वशः ॥४५॥ ऐन्द्रं पदं तदा तेन गृहीतं बलवत्तया ॥ कल्पपादपसंयुक्तं कामधेनुसमन्वितम् ॥ ४६ ॥ त्रैलोक्यं यज्ञभागाश्च हृतास्तेन महात्मना ॥ नन्दनं च वनं प्राप्य मुदितोऽभून्महासुरः ॥४७॥ सुधायाश्चैव पानेन सुखमाप महासुरः ॥ कुबेरं स च निर्जित्य तस्य राज्यं चकार ह ॥४८॥ अधिकारं तथा भानोः शशिनश्च चकार ह ॥ यमं चैव विनिर्जित्य जग्राह तत्पदं तथा ॥४९॥ वरुणस्य तथा राज्यं चकार वह्निकर्म च ॥ वायोः कार्यं निशुम्भश्च चकार स्वबलान्वितः ॥५०॥ ततो देवा विनिर्धूता हृतराज्या हृतश्रियः ॥ संत्यज्य नंदनं सर्वे निर्ययुर्गिरिगह्वरे ॥५१॥ हृताधिकारास्ते सर्वे बभ्रमुर्विजने वने ॥ निरालंबा निराधारा निस्तेजस्का निरायुधाः ॥ ५२ ॥ विचेरुरमराः सर्वे पर्वतानां गुहासु च ॥ उद्यानेषु च शून्येषु नदीनां गह्वरेषु च ॥ ५३ ॥ न प्रापुस्ते सुखं

लगा। नन्दनवनमें पहुँचकर वह महान् असुर बहुत प्रसन्न हुआ ॥४७॥ अमृत पीकर उसे असीम प्रसन्नता हुई और कुबेरको भी परास्त करके उसने उनके राज्यपर अधिकार कर लिया ॥ ४८ ॥ उसने सूर्य-चन्द्रमाका अधिकार छीन तथा यमराजको पराजित करके उनका पद स्वयं सम्हाल लिया ॥४९॥ धीरे-धीरे वह वरुणका राज्य हस्तगत करके राज्यकार्यका संचालन करता हुआ अग्निका काम भी स्वयं करने लगा। उधर निशुम्भ अपनी सेनाके साथ वायुका कार्य करने लगा ॥ ५० ॥ इस प्रकार सब देवता पददलित कर दिये गये। उनका राज्य और उनकी श्री चली गयी। नन्दनवन त्यागकर वे पर्वतोंकी गुफाओंमें छिपनेको विवश हो गये ॥ ५१ ॥ उनके सभी अधिकार छिन चुके थे। अतएव वे एक निर्जन वनसे दूसरे वनमें फिरने लगे। उन्हें रहनेकी कोई जगह नहीं रह गयी। कोई सहायक नहीं रहा। उनका चेहरा कुम्हला गया और उनके शस्त्रास्त्र छिन गये ॥५२॥ अब देवता पर्वतकी कन्दराओं, सूने बगीचों

फिरने लगे। उन्हें रहनेको कोई जगह नहीं रह गयी। कोई सहायक नहीं रहा। उनका चेहरा कुम्हला गया और उनके शस्त्रास्त्र छिन गये ॥५२॥ अब देवता पर्वतकी कन्दराओं, सूने बगीचों

और नदियोंकी कगारोंमें रहने लगे ॥ ५३ ॥ हे महाराज ! उन बेचारे लोकपालोंको कहीं भी चैन नहीं मिल रही थी। क्योंकि वे अपने ही राज्यसे निर्वासित हो चुके थे। और फिर सुख तो सदा भाग्यके अधीन रहता है ॥ ५४ ॥ हे नरपते ! बड़े बलवान्, असाधारण भाग्यशाली, बहुज्ञ और उच्चकोटिके धनाढ्य पुरुष भी कुसमय आनेपर दुःख भोगते हैं और उनका आर्थिक ढाँचा एकदम लड़खड़ा जाता है ॥ ५५ ॥ हे महाराज ! समयका फेर बड़ा विचित्र होता है। वह राजाको भिक्षुक और भिक्षुकको राजा बना देता है ॥ ५६ ॥ समय प्राणीको दानी बनाता है और वही उसे औरोंके आगे हाथ पसारनेको विवश कर देता है। वह एक ही व्यक्तिको कभी बलवान् और कभी निर्बल बनाता है। वही किसीको कभी विद्वान् बनाता और बादमें उसीको विवेकशून्य बना देता है। वही किसी व्यक्तिको वीर और किसीको कायर कर देता है ॥ ५७ ॥ सौ अश्वमेध यज्ञ करनेके बाद इन्द्रने सर्वोत्तम इन्द्रासन प्राप्त किया और समयके फेरसे उसे खोकर उन्हें महान् कष्ट झेलना पड़ा। समयकी ऐसी विचित्र गति होती है ॥५८॥ समय ही पुरुषको धर्मात्मा और ज्ञानी बनाता है। किन्तु वही उसे पापी और निपट अज्ञानी भी बना देता

क्वापि स्थानभ्रष्टा विचेतसः ॥ लोकपाला महाराज दैवाधीनं सुखं किल ॥ ५४ ॥ बलवंतो महाभाग बहुज्ञा धनसंयुताः ॥ काले दुःखं तथा दैन्यमाप्नुवंति नराधिप ॥ ५५ ॥ चित्रमेतन्महाराज कालस्यैव विचेष्टितम् ॥ यः करोति नरं तावद्राजानं भिक्षुकं ततः ॥ ५६ ॥ दातारं याचकं चैव बलवंतं तथाऽबलम् ॥ पंडितं विकलं कामं शूरं चातीव कातरम् ॥ ५७ ॥ मखानां च शतं कृत्वा प्राप्येंद्रासनमुत्तमम् ॥ पुनर्दुःखं परं प्राप्तं कालस्य गतिरीदृशी ॥ ५८ ॥ कालः करोति धर्मिष्ठं पुरुषं ज्ञानसंयुतम् ॥ तमेवातीव पापिष्ठं ज्ञानलेशविवर्जितम् ॥ ५९ ॥ न विस्मयोऽत्र कर्तव्यः सर्वथा कालचेष्टिते ॥ ब्रह्मविष्णुहरादीनामपीदृक्कष्टचेष्टितम् ॥ ६० ॥ विष्णुर्जननमाप्नोति सूकरादिषु योनिषु ॥ हरः कपाली संजातः कालेनव बलीयसा ॥ ६१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे भगवतीमाहात्म्ये एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

व्यास उवाच ॥ पराजिताः सुराः सर्वे राज्यं शुम्भः शशास ह ॥ एवं वर्षसहस्रं तु जगाम नृपसत्तम ॥ १ ॥ भ्रष्टराज्यास्ततो देवाश्चिंतामापुः सुदुस्तराम् ॥ गुरुं दुःखातुरास्ते तु पप्रच्छुरिदमादृताः ॥२॥ किं कर्तव्यं गुरो ब्रूहि सर्वज्ञस्त्वं महामुनिः ॥ उपायोऽस्ति महाभाग दुःखस्यापि निवृत्तये ॥३॥ उपचारपरा नूनं वेदमंत्राः सहस्रशः ॥ वांछितार्थकरा नूनं सूत्रैः संलक्षिताः किल ॥४॥ इष्टयो विविधाः प्रोक्ताः सर्वकामफलप्रदाः ॥

है ॥ ५९ ॥ समयके कार्यकलापपर कुछ आश्चर्य नहीं करना चाहिए। क्योंकि वह ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि प्रमुख देवताओंको भी इसी प्रकार संकटमें डाल देता है ॥ ६० ॥ समयके ही फेरसे भगवान विष्णु सूकर आदि योनियोंमें जन्म लेते हैं और शिवजी खप्पर लेकर श्मशानमें फिरते हैं। यह सब बलवान् समयकी ही महिमा है ॥६१॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायामेकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

(हिमालयपर देवताओं द्वारा देवीकी स्तुति एवं उनका प्रादुर्भाव) व्यासजी बोले—हे नृपसत्तम ! इस प्रकार जब सभी देवता पराजित हो गये, तब शुम्भ एकछत्र राज्य करने लगा। इस तरह राज्य करते-करते एक हजार वर्ष बीत गये ॥ १ ॥ तदनन्तर वे राज्यभ्रष्ट देवता अत्यन्त चिन्तित होकर गुरु बृहस्पतिके पास गये और बहुत दुखी होकर उन्होंने बड़े आदरपूर्वक

यह प्रश्न किया—॥ २ ॥ हे गुरो ! अब हम क्या करें ? सो बताइए । क्योंकि आप सर्वज्ञ महामुनि हैं । हे महाभाग ! इस दुखसे छुटकारा पानेका कोई उपाय है ? ॥ ३ ॥ हमने सुना था-हजारों वेदमंत्र ऐसे हैं कि जिनसे उपचारका काम लिया जा सकता है । उनके विषयमें सूत्रग्रन्थोंका कहना है कि यदि विधिवत् उनका प्रयोग किया जाय तो सब कामनायें पूर्ण हो सकती हैं ॥ ४ ॥ ऐसे अनेक यज्ञ हैं कि जिन्हें करनेसे अर्थकी प्राप्ति होती है और सब इच्छायें पूर्ण हो जाती हैं । हे मुने ! आप उनका अनुष्ठान करिए । क्योंकि आप उनको करनेकी विधियोंसे भली भाँति परिचित हैं ॥ ५ ॥ आगम (शास्त्रों) में शत्रुका संहार करनेके लिए जो उपाय बताया गया हो, तदनुसार आजसे अनुष्ठान आरम्भ कर दीजिए । जिससे शीघ्र हमारे दुःख दूर हो जायँ ॥ ६ ॥ हे आङ्गिरस ! दानवोंका विनाश करनेके लिए अपनी बुद्धिके अनुसार आजसे ही आप अभिचारकर्मका पुरश्चरण प्रारम्भ कर दीजिए ॥ ७ ॥ बृहस्पति बोले—हे देवराज इन्द्र ! सभी वेदोक्त मंत्रोंका फल सदा दैवके अधीन रहता है । वे फल देनेमें स्वतंत्र नहीं हैं । केवल नियमके बन्धनमें पड़कर ही वे फलदायक होते हैं ॥ ८ ॥ उन सभी वैदिक

ताः कुरुष्व मुने नूनं त्वं जानासि च तत्क्रियाः ॥५॥ विधिः शत्रुविनाशाय यथोद्दिष्टः सदागमे ॥ तं कुरुष्वाद्य विधिवद्यथा नो दुःखसंक्षयः ॥६॥ भवेदांगिरसाद्यैव तथा त्वं कर्तुमर्हसि ॥ दानवानां विनाशाय अभिचारं यथामति ॥७॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ सर्वे मन्त्राश्च वेदोक्ता दैवाधीनफलाश्च ते ॥ न स्वतन्त्राः सुराधीश तथैकान्तफलप्रदाः ॥८॥ मन्त्राणां देवता यूयं ते तु दुःखैकभाजनम् ॥ जाताःस्म कालयोगेन किं करोमि प्रसाधनम् ॥ ९ ॥ इन्द्राग्निवरुणादीनां यजनं यज्ञकर्मसु ॥ ते यूयं विपदं प्राप्ताः करिष्यंति किमिष्टयः ॥१०॥ अवश्यंभाविभावानां प्रतीकारो न विद्यते ॥ उपायस्त्वथ कर्तव्य इति शिष्टानुशासनम् ॥ ११ ॥ दैवं हि बलवत्केचित्प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ उपायवादिनो दैवं प्रवदंति निरर्थकम् ॥ १२ ॥ दैवं चैवाप्युपायश्च द्वावेवाभिमतौ नृणाम् ॥ केवलं दैवमाश्रित्य न स्थातव्यं कदाचन ॥ १३ ॥ उपायः सर्वथा कार्यो विचार्य स्वधिया पुनः ॥ तस्माद्ब्रवीमि वः सर्वान्संविचार्य पुनः पुनः ॥१४॥ पुरा भगवती तुष्टा जघान महिषासुरम् ॥ युष्माभिस्तु स्तुता देवी वरदानं ददावथ ॥१५॥ आपदं नाशयिष्यामि संस्मृता वा सदैव हि ॥ यदा यदा वो देवेशा आपदो दैवसम्भवाः ॥१६॥ प्रभवंति तदा कामं स्मर्तव्याऽहं सुरैः सदा ॥ स्मृताऽहं नाशयिष्यामि

मंत्रोंके देवता आप ही लोग हैं । तब जब आप लोग स्वयं ऐसे महान् कष्टमें पड़े हुए हैं तो मैं कौन-सा उपाय करूँ ? ॥ ९ ॥ यज्ञोंमें इन्द्र, अग्नि और वरुण आदि देवताओंकी पूजा की जाती है । सो आप लोग स्वयं महाविपत्तिमें पड़े हुए हैं, तब यज्ञोंसे क्या लाभ होगा ? ॥ १० ॥ जो अवश्यम्भावी है, वह होकर ही रहता है । उसका कोई प्रतीकार नहीं हो सकता । फिर भी शिष्ट पुरुषोंका यह उपदेश है कि संकटसे बचनेके लिए उपाय अवश्य करना चाहिए ॥ ११ ॥ कुछ विचारक विद्वानोंका कहना है कि दैव सबसे अधिक बलवान् होता है । किन्तु उपायवादी पण्डित दैवकी ओर न देखकर उपायको मुख्य बताते हैं ॥ १२ ॥ किन्तु मेरा विचार ऐसा है कि दैव और उपाय दोनोंके सहारे चलना चाहिए । केवल भाग्यके भरोसे रहनेसे काम नहीं चलता ॥ १३ ॥ अतएव अपनी बुद्धिसे पुनः पुनः विचार करके उपाय करना चाहिए । भलीभाँति बारम्बार विचार करके मैं आपसे यही कहता हूँ ॥ १४ ॥ पूर्वकालमें आपके कल्याणार्थ जब भगवतीने महिषासुरका वध किया था, तब आप लोगोंकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर यह वरदान दिया था ॥ १५ ॥ जब कभी भी आप मेरा स्मरण करेंगे, तभी मैं आपका संकट काट दूँगी ।

जब भगवतीने महिषासुरका वध किया था, तब आप लोगोंकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर यह वरदान दिया था ॥ १५ ॥ जब कभी भी आप मेरा स्मरण करेंगे, तभी मैं आपका संकट काटूँगी।

हे देवेश्वरो ! जब-जब आपपर दैविक विपत्तियाँ आयें, तब आप लोग मेरा ध्यान करिएगा । इस प्रकार आपके स्मरण करते ही मैं सब विपत्तियोंको दूर कर दूँगी ॥ १६ ॥ १७ ॥ अब आप लोग अतीव रमणीक हिमालय पर्वतपर जाकर प्रेमपूर्वक भगवती चण्डिकाकी आराधना करिए ॥ १८ ॥ मायाबीजके तत्त्वको समझकर यदि आपलोग उसका पुरश्चरण करेंगे तो वे अवश्य प्रसन्न होंगी । क्योंकि मैंने योगबलसे यह देख लिया है ॥ १९ ॥ अब आपके दुःखोंके अन्त होनेका समय आ गया है । इसमें तनिक भी संशय नहीं है । मैंने ऐसा सुना है कि वे भगवती सदा हिमालय पर्वतपर निवास करती हैं ॥ २० ॥ उनकी स्तुति और पूजा की जाती है तो वे उस आराधना करनवालेकी सब कामनायें पूर्ण कर देती हैं । अतएव आप उनके पूजनका दृढ़ संकल्प करके हिमालय पर्वतपर जायँ ॥२१॥ हे देवताओ ! वे महामाया आपका सब काम बना देंगी' । व्यासजी बोले—गुरु बृहस्पतिके वचन सुनकर देवता हिमवान् पर्वतपर चले गये ॥ २२ ॥ हे महाराज जनमेजय ! वहाँ पहुँचकर वे सदा देवीका ध्यान करते हुए एकाग्र मनसे मायाबीज मंत्रका जप करने लगे ॥ २३ ॥ उसके साथ ही भक्तोंके लिए अभयदायिनी

युष्माकं परमापदः ॥१७॥ तस्माद्धिमाचले गत्वा पर्वते सुमनोहरे ॥ आराधनं चंडिकायाः कुरुध्वं प्रेमपूर्वकम् ॥१८॥ मायाबीजविधानज्ञास्तत्पुरश्चरणे रताः ॥ जानाम्यहं योगबलात्प्रसन्ना सा भविष्यति ॥ १९ ॥ दुःखस्यांतोऽद्य युष्माकं दृश्यते नात्र संशयः ॥ तस्मिञ्छैले सदा देवी तिष्ठतीति मया श्रुतम् ॥ २० ॥ स्तुता सम्पूजिता सद्यो वांछितार्थान्प्रदास्यति ॥ निश्चयं परमं कृत्वा गच्छध्वं वै हिमालयम् ॥ २१ ॥ सुराः सर्वाणि कार्याणि सा वः कामं विधास्यति ॥ व्यास उवाच ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा देवास्ते प्रययुर्गिरिम् ॥२२॥ हिमालयं महाराज देवीध्यानपरायणाः ॥ मायाबीजं हृदा नित्यं जपंतः सर्व एव हि ॥ २३ ॥ नमश्चक्रुर्महामायां भक्तानामभयप्रदाम् ॥ तुष्टुवुः स्तोत्रमन्त्रैश्च भक्त्या परमया युताः ॥२४॥ नमो देवि विश्वेश्वरि प्राणनाथे सदानंदरूपे सुरानन्ददे ते ॥ नमोदानवान्तप्रदे मानवामनेकार्थदे भक्तिगम्यस्वरूपे ॥२५॥ न ते नामसंख्या न ते रूपमीदृक्तथा कोऽपि वेदादिदेवादिरूपे ॥ त्वमेवासि सर्वेषु शक्तिस्वरूपा प्रजासृष्टिसंहारकाले सदैव ॥ २६ ॥ स्मृतिस्त्वं धृतिस्त्वं त्वमेवासि बुद्धिर्जरा पुष्टितुष्टी धृतिः कांतिशांती ॥ सुविद्या सुलक्ष्मीर्गतिः कीर्तिमेधे त्वमेवासि विश्वस्य बीजं पुराणम् ॥ २७ ॥ यदा यैः स्वरूपैः करोषीह कार्यं सुराणां च तेभ्यो नमामोऽद्य शांत्यै ॥ क्षमा योगनिद्रा दया त्वं विवक्षा स्थिता सर्वभूतेषु शस्तैः स्वरूपैः ॥ २८ ॥ कृतं कार्यमादौ त्वया यत्सुराणां हतोऽसौ

महामाया देवीको नमस्कार करके पूर्ण भक्तिपूर्वक इन स्तोत्रमंत्रोंसे उनकी स्तुति करते हुए बोले—॥२४॥ हे देवि ! हे विश्वेश्वरी ! हे प्राणोंकी स्वामिनी ! हे सदा आनन्दरूपमें रहनेवाली ! हे देवताओंको आनन्द प्रदान करनेवाली माता ! आपको नमस्कार है । हे दानवोंका अन्त करनेवाली ! हे मनुष्योंकी समस्त कामनायें पूर्ण करनेवाली ! हे एकमात्र भक्तिके द्वारा अपने स्वरूपका दर्शन करानेवाली ! आपको नमस्कार है ॥ २५ ॥ हे वेदादि एवं देवादिस्वरूपे ! न कोई आपके अगणित नामोंकी संख्या बतला सकता है और न यही कह सकता है कि आपका वास्तविक स्वरूप कैसा है । प्रजाकी सृष्टि और संहारके समय आप ही सब प्राणियोंके अन्तस्तलमें शक्तिरूपसे निवास करती हैं ॥ २६ ॥ हे जननी ! आप ही स्मृति, धृति, बुद्धि, जरा, पुष्टि, तुष्टि धृति, कान्ति, शान्ति, सुविद्या, सुलक्ष्मी, गति, कीर्ति, मेधा और पुरातन बीज प्रकृति हैं ॥ २७ ॥ आप जिस समय जिन रूपोंसे देवताओंका कार्य सम्पन्न करती हैं, हम उन स्वरूपोंको

इसलिए नमस्कार करते हैं कि जिससे संसारमें शान्ति स्थापित हो। क्योंकि आप ही क्षमा, योगनिद्रा, दया, विवक्षा और दयारूपसे सब जीवोंमें निवास करती हैं ॥ २८ ॥ हे देवि ! पूर्वकालमें महिषासुरको मारकर आपने देवताओंका कार्य किया था, इससे सर्वत्र यह बात प्रसिद्ध हो गयी है कि देवताओंपर सर्वदा आपकी दया बनी रहती है। सभी वेदों और पुराणोंमें भी यही बात कही गयी है ॥ २९ ॥ हे महामाये ! यदि माता अपने बालकका प्रसन्नतापूर्वक पालन-पोषण करती है तो यह कौन बड़ी विचित्र बात हो गयी ? आप हम देवताओंकी जननी तथा सहायिका हैं। अतएव एकाग्र मनसे हमारा सब काम पूरा कर दीजिए ॥३०॥ हे देवि ! हम न तो आपके गुणोंकी सीमासे परिचित हैं और न आपके स्वरूपको ही जानते हैं। हे विश्ववन्दनीये ! हमको अपना कृपापात्र समझकर ही आप इस संकटसे उबारिए। क्योंकि आप सब विपत्तियोंसे बचानेमें समर्थ हैं ॥ ३१ ॥ आप बिना बाणवर्षा, बिना घूँसे, त्रिशूल, खड्ग, बर्छी और दण्ड चलाये ही शत्रुओंको मार सकती हैं। फिर भी केवल लोकोपकारके लिए उनके साथ युद्धकी लीला करती हैं ॥ ३२ ॥ जगत्के मूढ़ जीवोंको यह नहीं मालूम

महारिर्मदांधो हयारिः ॥ दया ते सदा सर्वदेवेषु देवि प्रसिद्धा पुराणेषु वेदेषु गीता ॥२९॥ किमत्रास्ति चित्रं यदंबा सुतं स्वं मुदा पालयेत्पोषयेत्सम्यगेव ॥ यतस्त्वं जनित्री सुराणां सहाया कुरुष्वैकचित्तेन कार्यं समग्रम् ॥ ३० ॥ न वा ते गुणानामियत्तां स्वरूपं वयं देवि जानीमहे विश्ववंद्ये ॥ कृपापात्रमित्येव मत्वा तथाऽस्मान्भयेभ्यः सदा पाहि पातुं समर्थे ॥ ३१ ॥ विना बाणपातैर्विना मुष्टिघातैर्विना शूलखड्गैर्विना शक्तिदंडैः ॥ रिपून्हंतुमेवासि शक्ता विनोदात्तथाऽपीह लोकोपकाराय लीला ॥ ३२ ॥ इदं शाश्वतं नैव जानंति मूढा न कार्यं विना कारणं संभवेद्वा ॥ वयं तर्कयामोऽनुमानं प्रमाणं त्वमेवासि कर्ताऽस्य विश्वस्य चेति ॥ ३३ ॥ अजः सृष्टिकर्ता मुकुंदोऽविताऽयं हरो नाशकृद्वा पुराणे प्रसिद्धः ॥ न किं त्वत्प्रसूतास्त्रयस्ते युगादौ त्वमेवासि सर्वस्य तेनैव माता ॥ ३४ ॥ त्रिभिस्त्वं पुराऽऽराधिता देवि दत्ता त्वया शक्तिरुग्रा च तेभ्यः समग्रा ॥ त्वया संयुतास्ते प्रकुर्वंति कामं जगत्पालनोत्पत्तिसंहारमेव ॥ ३५ ॥ ते किं न मंदमतयो यतयो विमूढास्त्वां ये न विश्वजननीं समुपाश्रयंति ॥ विद्यां परां सकलकामफलप्रदां तां मुक्तिप्रदां विबुधवृंदसुवंदितांघ्रिम् ॥ ३६ ॥ ये वैष्णवाः पाशुपताश्च सौरा दंभास्त एवं प्रतिभांति नूनम् ॥ ध्यायंति न त्वां कमलां च लज्जां

है कि यह विश्व नित्य नहीं है। वे यह भी नहीं जानते कि बिना कारणके कोई कार्य नहीं होता। किन्तु अनुमानप्रमाणके आधारपर यह कल्पना करते हैं कि वास्तवमें आपके ही द्वारा विश्वकी सृष्टि हुई है ॥ ३३ ॥ पुराणोंकी यह बात लोकप्रसिद्ध है कि ब्रह्माजी जगत्की सृष्टि करते हैं, विष्णु रक्षा करते हैं और शिवजी संहार करते हैं। किन्तु क्या यह सच नहीं है कि युगके अन्तमें आपने ही उन्हें उत्पन्न किया था ? अतएव आप ही सबकी माता हैं ॥ ३४ ॥ हे देवि ! पूर्वकालमें उपर्युक्त तीनों महान् देवताओंने आपकी आराधना की थी। तब आपने उन्हें अपनी समस्त उग्र शक्तियाँ दे डालीं। आपकी दी हुई उन्हीं शक्तियोंके आधारपर ब्रह्मा, विष्णु, महेश संसारकी उत्पत्ति, पालन और संहार करते हैं ॥ ३५ ॥ सभी देवता जिनके चरणोंकी वन्दना करते हैं। जिनकी उपासना करनेसे सब कामनायें पूर्ण हो जाती हैं। ऐसी मुक्तिदायिनी पराविद्यास्वरूपा जगज्जननीकी जो यति आराधना नहीं करते, उनकी मति मारी गयी रहती है और वे नितान्त मूर्ख होते हैं ॥ ३६ ॥ जो वैष्णव, शिवोपासक और सूर्योपासक कमला, लज्जा, कान्ति, स्थिति, कीर्ति और पुष्टिस्वरूपाका

नहीं करते, उनकी मति मारी गयी रहती है और वे नितान्त मूर्ख होते हैं ॥ ३६ ॥ जो वैष्णव, शिवोपासक और सूर्योपासक कमला, लज्जा, कान्ति, स्थिति, कीर्ति और पुष्टिस्वरूपाका

ध्यान नहीं करते। वे ढोंगी ही जान पड़ते हैं ॥ ३७ ॥ हे जननी! विष्णु-शिव प्रभृति प्रमुख देवता तथा बड़े-बड़े असुरगण भी जब आपकी आराधना करते हैं। तब जो अल्पबुद्धि आपका भजन नहीं करते, उन्हें विधाताने अवश्य भ्रममें डाल रक्खा है ॥ ३८ ॥ भगवान विष्णु समुद्रपुत्री लक्ष्मीजीके चरणोंको अपने हाथों महावर लगाकर रँगते हैं। इसी प्रकार शिवजी भी पार्वतीजीके चरणकमलोंकी धूलि माथे चढ़ाते हैं ॥३९॥ जब वे प्रमुख देवता ऐसा करते हैं, तब साधारण मनुष्योंकी बात ही क्या है? वे आपके चरणोंको क्यों न भजेंगे? जो राग-द्वेषसे परे हो गये हैं और गृहस्थीको जिन्होंने सर्वथा त्याग दिया है। ऐसे ज्ञानी महात्मा मुनिजन भी आपकी दया-क्षमा आदि शक्तियोंकी उपासनामें संलग्न रहते हैं ॥ ४० ॥ हे देवि! जो लोग आपके चरणोंका भजन नहीं करते, वे बार-बार संसाररूपी कुएँमें गिरते रहते हैं। वे कुष्ठ, तिल्ली तथा सिरदर्द जैसी बीमारियोंसे पीड़ित रहते हैं और उन्हें कभी सुखका मुख भी नहीं दिखायी देता ॥४१॥ हे जननी! मेरा ऐसा विश्वास है कि जो लोग लकड़ीका बोझ ढोते या घास छीलते हैं, वे अपने काममें बड़े निपुण होते हैं। तथापि धन-स्त्रीसे रहित रहते हैं। उन अल्पबुद्धि

कांतिं स्थितिं कीर्तिमथापि पुष्टिम् ॥ ३७ ॥ हरिहरादिभिरप्यथ सेविता त्वमिह देववरैरसुरैस्तथा ॥ भुवि भजंति न येऽल्पधियो नरा जननि ते विधिना खलु वंचिताः ॥३८॥ जलधिजापदपंकजरंजनं जतुरसेन करोति हरिः स्वयम् ॥ त्रिनयनोऽपि धराधरजांघ्रिपंकजपरागनिषेवणतत्परः ॥३९॥ किमपरस्य नरस्य कथानकैस्तव पदाब्जयुगं न भजंति के ॥ विगतरागगृहाश्च दयां क्षमां कृतधियो मुनयोऽपि भजंति ते ॥ ४० ॥ देवि त्वदंघ्रिभजने न जना रता ये संसारकूपपतिताः पतिताः किलामी ॥ ते कुष्ठगुल्मशिरआधियुता भवंति दारिद्र्यदैन्यसहिता रहिताः सुखौघैः ॥४१॥ ये काष्ठभारवहने यवसावहारे कार्ये भवन्ति निपुणा धनदारहीनाः ॥ जानीमहेऽल्पमतिभिर्भवदंघ्रिसेवा पूर्वे भवे जननि तैर्न कृता कदाऽपि ॥ ४२ ॥ व्यास उवाच ॥ एवं स्तुता सुरैः सर्वैरंबिका करुणान्विता ॥ प्रादुर्बभूव तरसा रूपयौवनसंयुता ॥ ४३ ॥ दिव्यांबरधरा देवी दिव्यभूषणभूषिता ॥ दिव्यमाल्यसमायुक्ता दिव्यचंदनचर्चिता ॥ ४४ ॥ जगन्मोहनलावण्या सर्वलक्षणलक्षिता ॥ अद्वितीयस्वरूपा सा देवानां दर्शनं गता ॥ ४५ ॥ जाह्नव्यां स्नातुकामा सा निर्गता गिरिगह्वरात् ॥ दिव्यरूपधरा देवी विश्वमोहनमोहिनी ॥ ४६ ॥ देवान्स्तुतिपरानाह मेघगंभीरया गिरा ॥ प्रेमपूर्णं स्मितं कृत्वा कोकिलामंजुवादिनी ॥४७॥ देव्युवाच ॥ भो भोः सुरवराः काऽत्र भवद्भिः स्तूयते भृशम् ॥ किमर्थं ब्रूत वः कार्यं चिंताविष्टाः कुतः पुनः ॥४८॥

प्राणियोंने पूर्वजन्ममें कभी भी आपके चरणोंकी सेवा नहीं की होगी ॥ ४२ ॥ व्यासजी बोले—जब उन देवताओंने इस प्रकार भगवतीकी स्तुति की। तब रूप-यौवनसम्पन्ना वे दयामयी जगदम्बा तत्काल उनके समक्ष प्रकट हो गयीं ॥ ४३ ॥ वे दिव्य वस्त्र धारण किये, दिव्य आभूषणोंसे आभूषित, दिव्य मालायें पहने और दिव्य चन्दनसे चर्चित थीं ॥ ४४ ॥ उनका लावण्य समस्त विश्वको मोहित करनेमें समर्थ था। उनमें सभी शुभ लक्षण विद्यमान थे। उनका स्वरूप अद्वितीय था। इन गुणोंयुक्त भगवती उन देवताओंके समक्ष प्रगट हुईं ॥ ४५ ॥ अनुपम सौन्दर्यमयी और सारे संसारकी मोहमें डाल देनेवाले कामदेवको भी मोहित करनेवाली भगवती गंगास्नानके निमित्त गिरिकन्दरासे बाहर निकली थीं ॥४६॥ देवताओंको स्तुति करते देखकर भगवतीने तनिक मुसकाकर मेघके समान गम्भीर वाणीमें कोकिलाके समान मधुर वचन बोलीं ॥ ४७ ॥ देवीने कहा—हे देवश्रेष्ठगण! आप लोग किस लिए ऐसी तन्मयताके साथ

स्तुति कर रहे हैं ? आप किस कार्यसे यहाँ आये हैं ? और इस प्रकार चिन्तासे व्याकुल क्यों हैं ? ॥ ४८ ॥ व्यासजी बोले--देवीके इन वचनोंको सुनकर उनकी रूपसम्पदासे मोहित देवताओंके हृदयमें कुछ उत्साहका संचार हुआ। जिससे वे प्रेमविभोर होकर जगदम्बासे कहने लगे ॥ ४९ ॥ देवताओंने कहा—हे देवि ! हे विश्वेश्वरी ! हे कृपासागरी ! हम आपकी स्तुति करते हुए प्रणाम करते हैं। हम लोगोंको दैत्योंने बहुत दुःख दिया है। अतएव हम बहुत उद्विग्न हैं। आप हमें इस महान् संकटसे उबारिए ॥५०॥ हे महादेवि ! पूर्वकालमें आपने देवताओंके लिए कण्टकस्वरूप महिषासुरका वध करके हम लोगोंको वरदान देते हुए कहा था कि किसी विपत्तिके आनेपर आप मेरा स्मरण करिएगा ! स्मरण करते ही मैं दैत्योंकी ओरसे आयी हुई विपत्तिको नष्ट कर दूँगी। इसमें कुछ संशय नहीं है। हे देवि ! इसी कारण इस समय हमने आपका स्मरण किया है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ हे जननी ! इस समय शुम्भ और निशुम्भ नामके दो बड़े भयानक आकारके दानव उत्पन्न हुए हैं। वे बहुत ऊधम मचा रहे हैं और किसी भी पुरुषके हाथों उनका वध नहीं हो सकता ॥ ५३ ॥ उन्हींके साथी रक्तबीज, चण्ड-मुण्ड तथा

व्यास उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा भाषितं तस्या मोहिता रूपसंपदा ॥ प्रेमपूर्वं हृदुत्साहास्तामूचुः सुरसत्तमाः ॥४९॥ देवा ऊचुः ॥ देवि स्तुमस्त्वां विश्वेशि प्रणताःस्म कृपार्णवे ॥ पाहि नः सर्वदुःखेभ्यः संविग्नान्दैत्यतापितान् ॥ ५० ॥ पुरा त्वया महादेवि निहत्यासुरकंटकम् ॥ महिषं नो वरो दत्तः स्मर्तव्याऽहं सदाऽऽपदि ॥ ५१ ॥ स्मरणाद्दैत्यजां पीडां नाशयिष्याम्यसंशयम् ॥ तेन त्वं संस्मृता देवि नूनमस्माभिरित्यपि ॥ ५२ ॥ अद्य शुंभनिशुंभौ द्वावसुरौ घोरदर्शनौ ॥ उत्पन्नौ विघ्नकर्तारावहन्यौ पुरुषैः किल ॥ ५३ ॥ रक्तबीजश्च बलवांश्चंडमुंडौ तथाऽसुरौ ॥ एतैरन्यैश्च देवानां हृतं राज्यं महाबलैः ॥ ५४ ॥ गतिरन्या न चास्माकं त्वमेवासि महाबले ॥ कुरु कार्यं सुराणां वै दुःखितानां सुमध्यमे ॥ ५५ ॥ देवास्त्वदंघ्रिभजने निरताः सदैव ते दानवैरतिबलैर्विपदं सुनीताः ॥ तान्देवि दुःखरहितान्कुरु भक्तियुक्तान्मातस्त्वमेव शरणं भव दुःखितानाम् ॥ ५६ ॥ सकलभुवनरक्षा देवि कार्या त्वयाऽद्य स्वकृतमिति विदित्वा विश्वमेतद्युगादौ ॥ जननि जगति पीडां दानवा दर्पयुक्ताः स्वबलमदसमेतास्ते प्रकुर्वन्ति मातः ॥ ५७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

अन्यान्य बहुतेरे महाबली दैत्योंने देवताओंके राज्य स्वर्गपर अधिकार कर लिया है ॥ ५४ ॥ हे महाबले ! हमें आपके सिवाय और कोई गति नहीं है। हे सुमध्यमे ! आप हम दुखिया देवताओंका कार्य सम्पन्न कर दीजिए ॥ ५५ ॥ हे देवी ! हम सब देवता सदा आपके भजनमें लीन रहते हैं। फिर भी बलवान् दानव हमको सताते हैं। हे माता ! सांसारिक दुःखोंसे पीड़ित प्राणियोंकी आप ही रक्षा करती हैं। अतएव हे देवि ! अपने चरणोंमें अनुराग रखनेवाले हम देवताओंका दुःख दूर करिए ॥ ५६ ॥ हे देवि ! युगके आदिमें आपने ही विश्वकी रचना की थी। हे जननी ! आपके रचित उसी विश्वको दैत्यगण अहंकारपूर्वक पीस रहे हैं। क्योंकि उन्हें अपनी दानवी सेनापर बड़ा अभिमान है। अतएव समस्त विश्वकी रक्षाका भार आपपर ही है ॥ ५७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

(कौशिकी देवीका आविर्भाव और चण्ड-मुण्डकी ओरसे शुम्भको सूचना) व्यासजी बोले—हे महाराज ! शत्रुओंसे त्रस्त देवताओंने जब इस प्रकार स्तुति की । तब भगवतीने अपने शरीरसे एक परम उग्र रूपधारिणी अम्बिका देवीको उत्पन्न किया ॥ १ ॥ उन पार्वती देवीके शरीरकोशसे जायमान भगवती अम्बिका संसारमें 'कौशिकी' नामसे विख्यात हुईं ॥ २ ॥ पार्वतीजीके शरीरसे उत्पन्न होते ही अम्बिकाका शरीर काला हो गया । अतएव वे 'कालिका' कहलाने लगीं ॥ ३ ॥ भगवती कालिकाका रंग एकदम काला था । जिससे वे देखनेमें बड़ी डरावनी लगती थीं । उनसे दैत्यमण्डलीमें भयका संचार हो गया । आगे चलकर वे ही सब कामनायें पूर्ण करनेवाली देवी 'कालरात्रि'के नामसे प्रसिद्ध हुईं ॥ ४ ॥ समस्त आभूषणोंसे आभूषित, दिव्य और रमणीक भगवतीका वह परम सौन्दर्यमय रूप जगमगा उठा ॥ ५ ॥ तदनन्तर मन्द मुसकान करके अम्बिकाने देवताओंसे कहा—अब आप लोग निर्भय रहें । मैं

॥ व्यास उवाच ॥ एवं स्तुता तदा देवी दैवतैः शत्रुतापितैः ॥ स्वशरीरात्परं रूपं प्रादुर्भूतं चकार ह ॥ १ ॥ पार्वत्यास्तु शरीराद्वै निःसृता चांबिका यदा ॥ कौशिकीति समस्तेषु ततो लोकेषु पठ्यते ॥२॥ निःसृतायां तु तस्यां सा पार्वतीतनुव्यत्ययात् ॥ कृष्णरूपाऽथ संजाता कालिका सा प्रकीर्तिता ॥ ३ ॥ मषीवर्णा महाघोरा दैत्यानां भयवर्धिनी ॥ कालरात्रीति सा प्रोक्ता सर्वकामफलप्रदा ॥ ४ ॥ अम्बिकायाः परं रूपं विरराज मनोहरम् ॥ सर्वभूषणसंयुक्तं लावण्यगुणसंयुतम् ॥ ५ ॥ ततोऽम्बिका तदा देवानित्युवाच ह सस्मिता ॥ तिष्ठंतु निर्भया यूयं हनिष्यामि रिपूनिह ॥ ६ ॥ कार्यं वः सर्वथा कार्यं विहरिष्याम्यहं रणे ॥ निशुंभादीन्वधिष्यामि युष्माकं सुखहेतवे ॥ ७ ॥ इत्युक्त्वा सा तदा देवी सिंहारूढा मदोत्कटा ॥ कालिकां पार्श्वतः कृत्वा जगाम नगरे रिपोः ॥ ८ ॥ सा गत्वोपवने तस्थावंबिका कालिकान्विता ॥ जगावथ कलं तत्र जगन्मोहनमोहनम् ॥ ९ ॥ श्रुत्वा तन्मधुरं गानं मोहमीयुः खगा मृगाः ॥ मुदं च परमामापुरमरा गगने स्थिताः ॥१०॥ तस्मिन्नवसरे तत्र दानवौ शुम्भसेवकौ ॥ चण्डमुण्डाभिधौ घोरौ रममाणौ यदृच्छया ॥११॥ आगतौ ददृशाते तु तौ तदा दिव्यरूपिणीम् ॥ अंबिकां गानसंयुक्तां कालिकां पुरतः स्थिताम् ॥१२॥ दृष्ट्वा तां दिव्यरूपां च दानवौ विस्मयान्वितौ ॥ जग्मतुस्तरसा पार्श्वं शुंभस्य नृपसत्तम ॥१३॥ तौ गत्वा तं समासीनं दैत्यानामधिपं गृहे ॥

आपके शत्रुओंका वध करूँगी ॥ ६ ॥ आप लोग अपना काम करें । मैं रणाङ्गणमें विहार करूँगी और आपके कल्याणार्थ निशुम्भ आदि सब दानवोंको मारूँगी ॥ ७ ॥ ऐसा कहकर वे मदमाती देवी सिंहपर सवार हो गयीं । अपने साथ कालिकाको लेकर वे शुम्भकी राजधानीमें जा पहुँचीं ॥ ८ ॥ नगरीके बाहर ही वे एक उपवनमें रुक गयीं और वहाँ ही समस्त विश्वको मोहमें डालनेवाले कामदेवको भी मोहित कर लेनेवाली धुनमें गाने लगीं ॥ ९ ॥ वह गायन सुनकर उपवनके पशु-पक्षी तक बेसुध हो गये । उधर आकाशमण्डलमें विराजमान देवता जगदम्बाकी यह लीला देखकर हर्षित हो उठे ॥ १० ॥ उसी समय शुम्भके दो भयानक अनुचर दानव चण्ड और मुण्ड स्वेच्छासे घूमते हुए वहाँ पहुँच गये ॥ ११ ॥ समीप जाकर उन्होंने देखा कि दिव्य रूपवती अम्बिका गा रही हैं और कालिका उनके सम्मुख खड़ी हैं ॥ १२ ॥ हे राजन् ! भगवतीका वह दिव्य रूप देखकर वे दोनों दानव बहुत चकराये और तुरन्त

शुम्भके पास पहुँचे ॥ १३ ॥ अपने महलमें बैठे हुए दैत्यराज शुम्भके पास जाकर उन्होंने प्रणाम किया और मीठी वाणीमें कहने लगे—॥ १४ ॥ हे राजन् ! हिमवान् पर्वतसे एक बहुत सुन्दरी स्त्री अपने मनसे यहाँ आयी हुई है । वह सिंहकी पीठपर सवार है । उसके अङ्ग-प्रत्यङ्गमें सभी शुभ लक्षण विद्यमान हैं । उसका रूप इतना सुन्दर है कि उसे देखकर कामदेव भी मोहित हो जाय ॥ १५ ॥ वैसी महिला न स्वर्गमें है, न गन्धर्वनगरमें है और पृथिवीपर ही ऐसी उत्तम सुन्दरी कभी कहीं देखी या सुनी गयी है ॥ १६ ॥ हे महाराज शुम्भ ! उसका गायन इतना लोकप्रिय है कि जनताके सिवाय वनैले मृग आदि पशुतक उसकी सुरीली धुनपर मुग्ध होकर तन्मय भावसे खड़े-खड़े सुनते रह जाते हैं ॥१७॥ आप यह पता लगवाइए कि वह किसकी पुत्री है और यहाँ किस लिए आयी है? इसके बाद हे राजशार्दूल ! आप उसे रख लीजिए । वह सुन्दरी सर्वथा आपके ही योग्य है ॥१८॥ सब बातोंका पता लगाकर आप उसे घर ले आइए और उसके साथ विवाह कर लीजिए । क्योंकि यह निश्चित है कि ऐसी रूपवती स्त्री सारे संसारमें न मिलेगी ॥ १९ ॥ हे राजन् ! आपने देवताओंके सब रत्न हस्तगत कर लिये हैं ।

ऊचतुर्मधुरां वाणीं प्रणम्य शिरसा नृपम् ॥ १४ ॥ राजन्हिमालयात्कामं कामिनी काममोहिनी ॥ संप्राप्ता सिंहमारूढा सर्वलक्षणसंयुता ॥ १५ ॥
नेदृशी देवलोकेऽस्ति न गंधर्वपुरे तथा ॥ न दृष्टा न श्रुता क्वापि पृथिव्यां प्रमदोत्तमा ॥ १६ ॥ गानं च तादृशं राजन्करोति जनरंजनम् ॥
मृगास्तिष्ठन्ति तत्पार्श्वे मधुरस्वरमोहिताः ॥ १७ ॥ ज्ञायतां कस्य पुत्रीयं किमर्थमिह चागता ॥ गृह्यतां राजशार्दूल तव योग्याऽस्ति कामिनी ॥१८॥
ज्ञात्वाऽऽनय गृहे भार्यां कुरु कल्याणलोचनाम् ॥ निश्चितं नास्ति संसारे नारी त्वेवंविधा किल ॥ १९ ॥ देवानां सर्वरत्नानि गृहीतानि त्वया नृप ॥
कस्मान्नेमां वरारोहां प्रगृह्णासि नृपोत्तम ॥ २० ॥ इन्द्रस्यैरावतः श्रीमान्पारिजाततरुस्तथा ॥ गृहीतोऽश्वः सप्तमुखस्त्वया नृप बलात्किल ॥ २१ ॥
विमानं वैधसं दिव्यं मरालध्वजसंयुतम् ॥ त्वयाऽऽत्तं रत्नभूतं तद्बलेन नृप चाद्भुतम् ॥ २२ ॥ कुबेरस्य निधिः पद्मस्त्वया राजन्समाहृतः ॥ छत्रं
जलपतेः शुभ्रं गृहीतं तत्त्वया बलात् ॥ २३ ॥ पाशश्चापि निशुंभेन भ्रात्रा तव नृपोत्तम ॥ गृहीतोऽस्ति हठात्कामं वरुणस्य जितस्य च ॥ २४ ॥
अम्लानपंकजां तुभ्यं मालां जलनिधिर्ददौ ॥ भयात्तव महाराज रत्नानि विविधानि च ॥ २५ ॥ मृत्योः शक्तिर्यमस्यापि दण्डः परमदारुणः ॥
त्वया जित्वा हृतः कामं किमन्यद्वर्ण्यते नृप ॥ २६ ॥ कामधेनुर्गृहीताऽद्य वर्तते सागरोद्भवा ॥ मेनकाद्या वशे राजंस्तव तिष्ठन्ति चाप्सराः ॥ २७ ॥

तब हे नृपसत्तम ! उस सुजघना सुन्दरीको आप क्यों नहीं हस्तगत कर लेते ? ॥ २० ॥ हे नृप ! श्रीमान्‌ने अपने पराक्रमसे इन्द्रका ऐरावत, कल्पवृक्ष और सात मुखवाले घोड़ेको जबर्दस्ती छीन लिया है ॥ २१ ॥ हे महाराज ! हंसध्वजसम्पन्न और रत्नतुल्य कीमती ब्रह्माजीके विमानपर आपने बलपूर्वक अधिकार कर लिया है ॥ २२ ॥ हे राजन् ! आप कुबेरके खजानेको लूट चुके हैं । आपने अपने पराक्रमसे वरुणका श्वेत छत्र भी प्राप्त कर लिया है ॥ २३ ॥ हे नृपोत्तम ! आपके छोटे भाई निशुम्भने वरुणको पराजित करके उनके पाशको जबर्दस्ती छीन लिया था ॥ २४ ॥ हे महाराज ! समुद्रने भयभीत होकर कभी भी न मुरझानेवाले कमलपुष्पोंकी माला और उसके साथ विविध प्रकारके रत्न आपको उपहारमें दिया था ॥ २५ ॥ हे नृप ! मैं आपके गुण और पराक्रमका वर्णन कहाँतक करूँ ? जब आपने मृत्युको पराजित करके उसकी शक्ति छीन ली और यमराजको जीतकर उनके परम भयंकर दण्डको हथिया लिया

॥ २६ ॥ महासागरसे उत्पन्न कामधेनु आज आपके पास है और मेनका आदि उच्चकोटिकी अप्सरायें आपके अधीन हैं ॥ २७ ॥ नृप, क्या तब आपने अपने

॥ २६ ॥ महासागरसे उत्पन्न कामधेनु आज आपके पास है और मेनका आदि उच्चकोटिकी अप्सरायें आपके अधीन हैं ॥ २७ ॥ इस प्रकार जब आपने अपने पराक्रमसे समस्त रत्नोंका संग्रह कर लिया है। तब आप नारीजातिमें रत्नस्वरूपा उस वनिताको अपनी मुट्ठीमें क्यों नहीं कर लेते ? ॥२८॥ हे भूपते ! उस महिलारत्नके घरमें पहुँच जानेपर सब रत्नोंकी शोभा बढ़ जायगी और वास्तवमें तब आप रत्नवान् कहलानेके अधिकारी होंगे ॥२९॥ हे दैत्यराज ! तीनों लोकोंमें ऐसी सुन्दरी स्त्री न मिलेगी। अतएव आप उसे शीघ्र घरमें लाकर अपनी मनोहारिणी पत्नी बना लीजिए ॥ ३० ॥ व्यासजी बोले कि चण्ड-मुण्डकी मधुर बातें सुनकर शुम्भका मुख प्रसन्नतासे खिल उठा। तत्काल उसने पास ही बैठे हुए सुग्रीवसे कहा—॥ ३१ ॥ हे सुग्रीव ! तुम बड़े प्रतिभावान् हो। अतएव तुम मेरा दूतकार्य कर दो। उस कामिनीके पास जाकर इस तरह लुभावनी बातें करो कि जिससे वह पतली कमरवाली सुन्दरी स्वयं यहाँ चली आये ॥३२॥ शृंगाररसके विद्वानोंका कहना है कि समझदार लोगोंको चाहिए कि स्त्रियोंको काबूमें करनेके लिए साम (मीठी बातें) और दान (धनकी लालच) इन्हीं दो नीतियोंका उपयोग करें

एवं सर्वाणि रत्नानि त्वयाऽऽत्तानि बलादपि ॥ कस्मान्न गृह्यते कांता रत्नमेषा वराङ्गना ॥ २८ ॥ सर्वाणि ते गृहस्थानि रत्नानि विशदान्यथ ॥ अनया संभविष्यन्ति रत्नभूतानि भूपते ॥ २९ ॥ त्रिषु लोकेषु दैत्येन्द्र नेदृशी वर्तते प्रिया ॥ तस्मात्तामानयाशु त्वं कुरु भार्यां मनोहराम् ॥ ३० ॥ व्यास उवाच ॥ इति श्रुत्वा तयोर्वाक्यं मधुरं मधुराक्षरम् ॥ प्रसन्नवदनः प्राह सुग्रीवं सन्निधौ स्थितम् ॥ ३१ ॥ गच्छ सुग्रीव दूतत्वं कुरु कार्यं विचक्षण ॥ वक्तव्यं च तथा तत्र यथाऽभ्येति कृशोदरी ॥ ३२ ॥ उपायौ द्वौ प्रयोक्तव्यौ कांतासु सुविचक्षणैः ॥ सामदाने इति प्राहुः शृंगाररसकोविदाः ॥ ३३ ॥ भेदे प्रयुज्यमानेऽपि रसाभासस्तु जायते ॥ निग्रहे रसभंगः स्यात्तस्मात्तौ दूषितौ बुधैः ॥ ३४ ॥ सामदानमुखैर्वाक्यैः श्लक्ष्णैर्नर्मयुतैस्तथा ॥ का न याति वशे दूत कामिनी कामपीडिता ॥ ३५ ॥ व्यास उवाच ॥ सुग्रीवस्तु वचः श्रुत्वा शुम्भोक्तं सुप्रियं पटु ॥ जगाम तरसा तत्र यत्रास्ते जगदंबिका ॥ ३६ ॥ सोऽपश्यत्सुमुखीं कांतां सिंहस्योपरि संस्थिताम् ॥ प्रणम्य मधुरं वाक्यमुवाच जगदंबिकाम् ॥ ३७ ॥ दूत उवाच ॥ वरोरु त्रिदशारातिः शुम्भः सर्वांगसुंदरः ॥ त्रैलोक्याधिपतिः शूरः सर्वजिद्राजते नृपः ॥ ३८ ॥ तेनाहं प्रेषितः कामं त्वत्सकाशं महात्मना ॥ त्वद्रूपश्रवणासक्तचित्तेनातिविदूयता ॥ ३९ ॥ वचनं तस्य तन्वंगि शृणु प्रेमपुरःसरम् ॥ प्रणिपत्य यथा प्राह दैत्यानामधि-

॥ ३३ ॥ भेद (कपटनीतिसे फोड़ना) नीतिका प्रयोग करनेसे रसका आभास भर मिलता है और दण्डनीतिका उपयोग करनेसे तो सब खेल ही बिगड़ जाता है ॥३४॥ हे दूत ! कामसे पीड़ित ऐसी कौन स्त्री होगी, जो साम-दानकी नीतिसे सराबोर, प्यारभरी तथा कुछ परिहासके पुटसे परिपूर्ण मीठी बातें सुनकर वशमें न हो जाय ॥ ३५ ॥ व्यासजीने कहा—शुम्भकी भली-भाँति और चातुर्यपूर्ण बातें सुनकर सुग्रीव तत्काल बड़े वेगसे उधर चल पड़ा, जहाँ जगदम्बा विराजमान थीं ॥३६॥ वहाँ पहुँचकर उसने देखा कि वास्तवमें एक बहुत ही सुन्दरी स्त्री सिंहपर सवार है। जगदम्बाके समक्ष जाकर उसने प्रणाम किया और मधुर वाणीमें कहा ॥ ३७ ॥ दूत सुग्रीव बोला—हे सुजघने ! देवताओंके शत्रु महाराज शुम्भ सर्वाङ्ग सुन्दर और बड़े वीर पुरुष हैं। जगत्के सब वीरोंको पराजित करके वे इस समय तीनों लोकके सम्राट् हैं ॥३८॥ किसीसे आपके अनुपम सौन्दर्यका हाल सुनकर उनका मन आपपर आसक्त हो गया है और वे

महात्मा तभीसे बेचैन हो रहे हैं। उन्होंने ही मुझे आपके पास भेजा है॥३९॥ हे कोमलाङ्गि ! दैत्यपति शुम्भने आपको प्रणाम करके जिस प्रकार प्रेमभरे वचन कहे हैं, उन्हें सुनिए ॥४०॥ उनका कहना है—हे कान्ते ! मैंने सब देवताओंको पराजित कर दिया है। इस समय मैं तीनों लोकोंका सम्राट् हूँ और यहाँ रहते हुए भी सदा यज्ञभाग प्राप्त करता हूँ ॥ ४१ ॥ देवताओंके पास जितने रत्न थे, उन्हें मैंने छीन लिया है। ऐसा करके मैंने स्वर्गलोकको रत्नहीन और कंगाल बना दिया है ॥४२॥ हे भामिनि ! तीनों लोकमें जितने रत्न हैं, उनका एकमात्र उपभोक्ता मैं हूँ। सब देवता, दानव और मानव मेरे अधीन हैं ॥ ४३ ॥ किन्तु सहसा तुम्हारे गुणगण कानोंकी राह मेरे हृदयमें उतर गये हैं और उन्होंने बरबस मुझे तुमपर आसक्त कर दिया है। अब क्या करूँ ? मैं तो तुम्हारा दास बन गया हूँ ॥ ४४ ॥ हे केलेके खम्भे जैसी जाँघवाली सुन्दरी ! अब तुम मुझे जो आज्ञा दोगी, मैं उसका पालन करूँगा। हे सुन्दरी ! मैं सर्वथा तुम्हारे अधीन हो गया हूँ। तुम कामदेवके बाणोंसे मेरी रक्षा करो ॥ ४५ ॥ हे हंसगमने ! मुझे कामदेव बहुत सता रहा है। जिससे मैं तुम्हारे ऊपर आसक्त हो गया हूँ। अतएव तुम सदाके

पस्त्वयि ॥४०॥ देवा मया जिताः सर्वे त्रैलोक्याधिपतिस्त्वहम् ॥ यज्ञभागानहं कान्ते गृह्णामीह स्थितः सदा ॥४१॥ हृतसारा कृता नूनं द्यौर्मया रत्नवर्जिता ॥ यानि रत्नानि देवानां तानि चाहृतवानहम् ॥ ४२ ॥ भोक्ताऽहं सर्वरत्नानां त्रिषु लोकेषु भामिनि ॥ वशानुगाः सुराः सर्वे मम दैत्याश्च मानवाः ॥ ४३ ॥ त्वद्गुणैः कर्णमागत्य प्रविश्य हृदयांतरम् ॥ त्वदधीनः कृतः कामं किंकरोऽस्मि करोमि किम् ॥ ४४ ॥ त्वमाज्ञापय रंभोरु तत्करोमि वशानुगः ॥ दासोऽहं तव चार्वंगि रक्ष मां कामबाणतः ॥ ४५ ॥ भज मां त्वं मरालाक्षि तवाधीनं स्मराकुलम् ॥ त्रैलोक्य-स्वामिनी भूत्वा भुंक्ष्व भोगाननुत्तमान् ॥ ४६ ॥ तव चाज्ञाकरः कान्ते भवामि मरणावधि ॥ अवध्योऽस्मि वरारोहे सदेवासुरमानुषैः ॥ ४७ ॥ सदा सौभाग्यसंयुक्ता भविष्यसि वरानने ॥ यत्र ते रमते चित्तं तत्र क्रीडस्व सुंदरि ॥ ४८ ॥ इति तस्य वचश्चित्ते विमृश्य मदमंथरे ॥ वक्तव्यं यद्भवेत्प्रेम्णा तद्ब्रूहि मधुरं वचः ॥ ४९ ॥ शुम्भाय चंचलापांगि तद्ब्रवीम्यहमाशु वै ॥ व्यास उवाच ॥ तद्दूतवचनं श्रुत्वा स्मितं कृत्वा सुपेशलम् ॥ ५० ॥ तं प्राह मधुरां वाचं देवी देवार्थसाधिका ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ जानाम्यहं निशुम्भं च शुम्भं चातिबलं नृपम् ॥५१॥ जेतारं सर्वदेवानां हंतारं चैव विद्विषाम् ॥ राशिं सर्वगुणानां च भोक्तारं सर्वसंपदाम् ॥ ५२ ॥ दातारं चातिशूरं च सुन्दरं मन्मथाकृतिम् ॥ द्वात्रिंशल्लक्षणैर्युक्तमवध्यं

लिए मेरी हो जाओ और त्रिलोकस्वामिनी बनकर उच्चकोटिके भोगोंका उपभोग करो ॥ ४६ ॥ हे कान्ते ! मैं मरणपर्यन्त तुम्हारी आज्ञाओंका पालन करूँगा। हे सुजघने ! देवता, दानव और मानव कोई भी मेरा वध नहीं कर सकता ॥ ४७ ॥ अतएव हे सुमुखी ! मुझे पति बनाकर तुम सदा सोहागिन बनी रहोगी। हे सुन्दरी ! मेरे पास रहकर तुम जहाँ चाहो, वहाँ विहार कर सकती हो ॥ ४८ ॥ हे मदसे अलसायी हुई कामिनी ! मेरे प्रभु शुम्भकी इन बातोंपर अपने मनमें भली-भाँति विचार करके जो कुछ कहना हो, वह प्रेमपूर्वक मधुर वाणीमें कहो ॥४९॥ हे चञ्चल कटाक्षवाली रमणी ! मैं तुरन्त शुम्भके पास जाकर उन्हें तुम्हारा सन्देश सुना दूँगा। व्यासजी बोले कि दूतके इन वचनोंको सुनकर भगवती बड़े सुन्दर ढंगसे मुसकाने लगीं ॥५०॥ [illegible] श्रीदेवी बोलीं—मैं अतिशय बलवान् राजा शुम्भ और निशुम्भ दोनोंको जानती हूँ। उन्होंने सब देवताओं-

हे चञ्चल कटाक्षवाली रमणी ! मैं सुरेन्द्र शुम्भका दूत होकर उन्हींके भेजे हुए मधुर वाणीमें कहा । श्रीदेवी बोली—मैं अतिशय बलवान राजा शुम्भ और निशुम्भ दोनोंको जानती हूँ । उन्होंने सब देवताओं-

को जीत लिया है और अपने सभी शत्रुओंको समाप्त कर दिया है । वे सब गुणोंकी राशि हैं और सब सम्पदाओंके भोक्ता हैं ॥५१॥५२॥ वे बड़े दानी, वीर, कामदेव सदृश सुन्दर, बत्तीसों सुलक्षणोंसे सम्पन्न और देवताओं तथा मनुष्योंके अवध्य हैं ॥५३॥ इन गुणोंकी चर्चा सुनकर मैं वैसे ही उस महान् असुरका दर्शन करने आयी हूँ, जैसे रत्न अपनी शोभाको बढ़ानेके लिए सुवर्णके पास जाता है ॥५४॥ अपने लिए पति खोजती हुई बहुत दूरसे मैं यहाँ आयी हूँ । मैंने स्वर्गके सब देवताओं और पृथिवीतलके सब मनुष्योंको देख लिया है ॥ ५५ ॥ गन्धर्वों और राक्षसोंमें भी जितने सुन्दर पुरुष थे, उन सबको मैं देख चुकी । उन सबको मैंने शुम्भके भयसे काँपते हुए और उद्विग्न पाया ॥५६॥ दैत्यराज शुम्भके गुणोंको सुनकर मैं उन्हें देखनेके लिए ही यहाँ आयी हूँ । हे दूत ! हे महाभाग ! अब तुम जाओ और एकान्तमें मेरी जबानी मधुर वाणीमें महाबली शुम्भसे कहो कि तुम्हें बलवानोंमें श्रेष्ठ, सुन्दरोंमें सबसे सुन्दर, दानी, गुणवान्, सब विद्याओंके पारंगत, सब देवताओंके विजेता, कार्यकुशल, कुलीन, सब रत्नोंके भोक्ता, पूर्ण स्वाधीन राजा तथा अपने पराक्रमसे उन्नति करनेवाला महापुरुष समझकर ही मैं यहाँ आयी

सुरमानुषैः ॥ ५३ ॥ ज्ञात्वा समागताऽस्म्यत्र द्रष्टुकामा महासुरम् ॥ रत्नं कनकमायाति स्वशोभाधिकवृद्धये ॥ ५४ ॥ तत्राहं स्वपतिं द्रष्टुं दूरा-
देवागताऽस्मि वै ॥ दृष्टा मया सुराः सर्वे मानवा भुवि मानदाः ॥ ५५ ॥ गंधर्वा राक्षसाश्चान्ये ये चातिप्रियदर्शनाः ॥ सर्वे शुम्भभयाद्भीता वेप-
माना विचेतसः ॥ ५६ ॥ श्रुत्वा शुभगुणानत्र प्राप्ताऽस्म्यद्य दिदृक्षया ॥ गच्छ दूत महाभाग ब्रूहि शुम्भं महाबलम् ॥ ५७ ॥ निर्जने श्लक्ष्णया
वाचा वचनं वचनान्मम ॥ त्वां ज्ञात्वा बलिनां श्रेष्ठं सुन्दराणां च सुन्दरम् ॥ ५८ ॥ दातारं गुणिनं शूरं सर्वविद्याविशारदम् ॥ जेतारं सर्वदेवानां
दक्षं चोग्रं कुलोत्तरम् ॥ ५९ ॥ भोक्तारं सर्वरत्नानां स्वाधीनं स्वबलोन्नतम् ॥ पतिकामाऽस्म्यहं सत्यं तव योग्या नराधिप ॥६०॥ स्वेच्छया नगरे
तेऽत्र समायाता महामते ॥ ममास्ति कारणं किंचिद्विवाहे राक्षसोत्तम ॥ ६१ ॥ बालभावाद्व्रतं किंचित्कृतं राजन्मया पुरा ॥ क्रीडंत्या च वय-
स्याभिः सहैकान्ते यदृच्छया ॥ ६२ ॥ स्वदेहबलदर्पेण सखीनां पुरतो रहः ॥ मत्समानबलः शूरो रणे मां जेष्यति स्फुटम् ॥६३॥ तं वरिष्याम्यहं
कामं ज्ञात्वा तस्य बलाबलम् ॥ जहसुर्वचनं श्रुत्वा सख्यो विस्मितमानसाः ॥ ६४ ॥ किमेतया कृतं क्रूरं व्रतमद्भुतमाशु वै ॥ तस्मात्त्वमपि राजेंद्र
ज्ञात्वा मे हीदृशं बलम् ॥ ६५ ॥ जित्वा मां स्वबलेनात्र वांछितं कुरु चात्मनः ॥ त्वं वा तवानुजो भ्राता समेत्य समरांगणे ॥ जित्वा मां

हूँ । मैं पतिकी खोजमें हूँ । हे महाराज ! सच तो यह है कि मैं सर्वथा आपके योग्य हूँ ॥५७–६०॥ हे महामते ! मैं अपनी इच्छासे तुम्हारे नगरमें आयी हुई हूँ । किन्तु हे राक्षसराज ! मेरे विवाहमें कुछ प्रतिबन्ध है ॥ ६१ ॥ हे राजन् ! बालसुलभ चञ्चलतावश पूर्वकालमें अपनी सखियोंके साथ खेलती-खेलती एकान्तमें मैं स्वेच्छासे एक प्रतिज्ञा कर चुकी हूँ ॥ ६२ ॥ उस समय शरीरमें बल अधिक होनेके कारण एकान्तमें अपनी सखियोंके समक्ष मैंने यह प्रतिज्ञा की थी कि जो पुरुष मेरे समान बलवान् होगा और रणमें मुझे स्पष्टरूपसे परास्त कर देगा । उसका बलाबल देखकर मैं उसीके साथ विवाह करूँगी । मेरी प्रतिज्ञा सुनकर सखियाँ पहले तो चकरायीं और बादमें ठठाकर हँसने लगीं ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ फिर उन्होंने कहा कि इसने इतनी जल्दी ऐसी अद्भुत और क्रूर प्रतिज्ञा क्यों कर ली ? अतएव हे राजेन्द्र ! तुम भी समझ लो कि मुझे अपने बलपर कितना घमण्ड है ॥६५॥ सो तुम अपने पराक्रमसे मुझे पराजित करके

अपनी कामना पूर्ण कर लो। हे सुन्दर! अब चाहे तुम या तुम्हारा छोटा भाई निशुम्भ समरभूमिमें आये और मुझे परास्त करके मेरे साथ विवाह कर ले ॥ ६६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

(देवी-दूतसम्वाद) व्यासजी बोले—हे महाराज! देवीके वचन सुनकर दूत सुग्रीव चकपका गया और बोला—हे सुनयनी! स्त्रीस्वभावकी चञ्चलतावश आप यह क्या कह रही हैं? ॥ १ ॥ हे देवि! इन्द्र आदि देवता और बड़े-बड़े असुर जिससे हार गये। हे सुन्दरी! उसे आप समरमें परास्त करनेकी इच्छा कर रही हैं? ॥२॥ समस्त त्रिलोकीमें कोई ऐसा वीर नहीं है, जो शुम्भको संग्राममें हरा सके। तब हे कमलनयनी! आप युद्धमें उनके आगे कैसे टिकेंगी? ॥ ३ ॥ हे सुन्दरी! कभी भी बिना विचारे कोई बात न कहनी चाहिए। अपना और प्रतिपक्षीका बल जान लेनेके बाद ही कोई समयोचित बात मुँहसे निकालनी चाहिए ॥ ४ ॥ हे प्रिये! तीनों लोकोंके अधिपति महाराज शुम्भ आपके रूपपर मोहित होकर प्रार्थना कर

समरेणात्र विवाहं कुरु सुन्दर ॥ ६६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

॥ व्यास उवाच ॥ देव्यास्तद्वचनं श्रुत्वा स दूतः प्राह विस्मितः ॥ किं ब्रूषे रुचिरापांगि स्त्रीस्वभावाद्धि साहसात् ॥ १ ॥ इन्द्राद्या निर्जिता येन देवा दैत्यास्तथाऽपरे ॥ तं कथं समरे देवि जेतुमिच्छसि भामिनि ॥ २ ॥ त्रैलोक्ये तादृशो नास्ति यः शुम्भं समरे जयेत् ॥ का त्वं कमलपत्राक्षि तस्याग्रे युधि सांप्रतम् ॥ ३ ॥ अविचार्य न वक्तव्यं वचनं क्वापि सुन्दरि ॥ बलं स्वपरयोर्ज्ञात्वा वक्तव्यं समयोचितम् ॥ ४ ॥ त्रैलोक्याधिपतिः शुम्भस्तव रूपेण मोहितः ॥ त्वां च प्रार्थयते राजा कुरु तस्येप्सितं प्रिये ॥ ५ ॥ त्यक्त्वा मूर्खस्वभावं त्वं संमान्य वचनं मम ॥ भज शुम्भं निशुम्भं वा हितमेतद्ब्रवीमि ते ॥ ६ ॥ शृङ्गारः सर्वथा सर्वैः प्राणिभिः परया मुदा ॥ सेवनीयो बुद्धिमद्भिर्नवानामुत्तमो यतः ॥ ७ ॥ नागमिष्यसि चेद्बाले संक्रुद्धः पृथिवीपतिः ॥ अन्यानाज्ञाकरान्प्रेष्य बलान्नेष्यति सांप्रतम् ॥ ८ ॥ केशेष्वाकृष्य ते नूनं दानवा बलदर्पिताः ॥ त्वां नयिष्यंति वामोरु तरसा शुम्भसन्निधौ ॥ ९ ॥ स्वलज्जां रक्ष तन्वंगि साहसं सर्वथा त्यज ॥ मानिता गच्छ तत्पार्श्वे मानपात्रं यतोऽसि वै ॥ १० ॥ क्व युद्धं निशितैर्बाणैः क्व सुखं रतिसंगजम् ॥ सारासारं परिच्छेद्य कुरु मे वचनं पटु ॥ ११ ॥ भज शुम्भं निशुम्भं वा लब्धाऽसि परमं सुखम् ॥ देव्युवाच ॥

रहे हैं। अतएव आप उनकी इच्छा पूर्ण कर दें ॥५॥ आप ऐसी मूर्खता न करके मेरी बात मानिए और शुम्भ या निशुम्भ जिसके साथ चाहें, विवाह कर लें। यह मैं आपके हितकी बात कह रहा हूँ ॥६॥ सभी बुद्धिमान् प्राणियोंका यह कर्तव्य होता है कि वे बड़े हर्षके साथ शृंगाररसका आनन्द लें। क्योंकि उभड़ती जवानीमें यह रस सब रसोंसे उत्तम माना जाता है ॥७॥ हे बाले! यदि आप मेरे साथ न चलेंगी तो महाराज शुम्भ क्रुद्ध हो जायँगे और अपने अन्य सेवकोंको भेजकर जबर्दस्ती पकड़वा मँगायेंगे ॥ ८ ॥ तब हे सुजघने! बलके घमण्डमें चूर दानव-सैनिक आपके केश पकड़कर घसीटते हुए शुम्भके पास ले जायँगे ॥ ९ ॥ हे कोमलाङ्गी! आप दुःसाहस त्यागकर अपनी लाज बचाइए। अच्छा तो यही हो कि आप सम्मानपूर्वक उनके पास चलें। क्योंकि आप सम्मानके योग्य हैं ॥१०॥ कहाँ तीखे बाणों द्वारा लड़ी जानेवाली लड़ाई और कहाँ रतिजनित आनन्द! इन दोनोंकी सारता और असारतापर भलीभाँति

विचार करके आप मेरी सलाह मान लें ॥ ११ ॥ तदनुसार आप शुम्भ अथवा निशुम्भ इनमेंसे जिसको चाहें, अपना पति बना लें। इससे आपको बहुत सुख मिलेगा। देवी बोलीं—हे दूत! हे महाभाग! तुम्हारा कथन यथार्थ है। बात करनेमें तुम बड़े निपुण हो ॥१२॥ मैं जानती हूँ कि शुम्भ-निशुम्भ बड़े बलवान् हैं। लेकिन बाल्यकालमें मैंने जो प्रतिज्ञा की थी। उसे आज कैसे त्याग दूँ? ॥१३॥ अतएव तुम जाकर बलवान् शुम्भ और निशुम्भसे कह दो कि कोई केवल सुन्दरताके नाते मेरा पति नहीं हो सकता ॥१४॥ युद्धमें पराजित करके उन दोनोंमें जो चाहे, वह मेरे साथ विवाह कर ले। उनसे मेरी जबानी कहो—हे नृप! मैं अबला युद्ध करनेकी इच्छासे ही यहाँ आयी हूँ ॥ १५ ॥ आप सर्वसमर्थ हैं। अतएव मुझे युद्धदान देकर आप वीरधर्मका पालन करें। यदि मेरे त्रिशूलसे डर लगता हो तो आप तत्काल पाताललोकको चले जायँ ॥ १६ ॥ यदि जीवित रहनेकी कामना हो तो स्वर्ग और पृथिवीको अभी छोड़ दें। हे दूत! तुम शीघ्र जाकर आदरपूर्वक अपने स्वामीको मेरा सन्देश सुना दो ॥ १७ ॥ उसके बाद तुम्हारे महाबली प्रभु जो उचित समझेंगे, वह करेंगे। हे धर्मज्ञ! संसार भरके दूतोंका यह सर्व-

सत्यं दूत महाभाग प्रवक्तुं निपुणो ह्यसि ॥१२॥ निशुम्भशुम्भौ जानामि बलवंताविति ध्रुवम् ॥ प्रतिज्ञा मे कृता बाल्यादन्यथा सा कथं भवेत् ॥१३॥ तस्माद्ब्रूहि निशुम्भं च शुम्भं वा बलवत्तरम् ॥ विना युद्धं न मे भर्ता भविता कोऽपि सौष्ठवात् ॥१४॥ जित्वा मां तरसा कामं करं गृह्णातु सांप्रतम् ॥ युद्धेच्छया समायातां विद्धि मामबलां नृप ॥ १५ ॥ युद्धं देहि समर्थोऽसि वीरधर्मं समाचर ॥ बिभेषि मम शूलाच्चेत्पातालं गच्छ माचिरम् ॥ १६ ॥ त्रिदिवं च धरां त्यक्त्वा जीवितेच्छा यदस्ति ते ॥ इति दूत वदाशु त्वं गत्वा स्वपतिमादरात् ॥ १७ ॥ स विचार्य यथा युक्तं करिष्यति महाबलः ॥ संसारे दूतधर्मोऽयं यत्सत्यं भाषणं किल ॥ १८ ॥ शत्रौ पत्यौ च धर्मज्ञ तथा त्वं कुरु मा चिरम् ॥ व्यास उवाच ॥ अथ तद्वचनं श्रुत्वा नीतिमद्बलसंयुतम् ॥ १९ ॥ हेतुयुक्तं प्रगल्भं च विस्मितः प्रययौ तदा ॥ गत्वा दैत्यपतिं दूतो विचार्य च पुनः पुनः ॥ २० ॥ प्रणम्य पादयोः प्रह्वः प्रत्युवाच नृपं च तम् ॥ राजनीतिकरं वाक्यं मृदुपूर्वं प्रियं वचः ॥ २१ ॥ दूत उवाच ॥ सत्यं प्रियं च वक्तव्यं तेन चिंतापरो ह्यहम् ॥ सत्यं प्रियं च राजेन्द्र वचनं दुर्लभं किल ॥ २२ ॥ अप्रियं वदतां कामं राजा कुप्यति सर्वथा ॥ साक्षात्कुतः समायाता कस्य वा किंबलाऽबला ॥२३॥

सम्मत धर्म है कि वे शत्रुपक्ष और अपने स्वामीके समक्ष सच्ची बात कहें। अतएव तुम भी ऐसा ही करो। व्यासजी बोले—देवीके नीतिसंगत, सारगर्भ, सार्थक और निर्भीक वचन सुनकर दूत सुग्रीव आश्चर्यचकित होता हुआ लौट पड़ा। उनकी बातोंपर बारम्बार विचार करता हुआ वह दैत्यपति शुम्भके पास जा पहुँचा ॥ १८–२० ॥ उसके चरणोंको प्रणाम करके सुग्रीव बड़ी नम्रतापूर्वक राजनीतिमिश्रित मधुर वाणी बोला ॥ २१ ॥ दूतने कहा—हे राजेन्द्र! इस समय मुझे सत्य और प्रिय बात कहनी है। इसीसे मैं बड़े असमंजसमें पड़ा हुआ हूँ। क्योंकि सत्य और साथ ही प्रिय लगनेवाली बात बोलना बहुत कठिन काम है ॥ २२ ॥ यदि राजाकी प्रतिष्ठाके विरुद्ध कोई बात मुँहसे निकल गयी तो उसके कुपित होनेका भय रहता है। फिर अपना धर्म पालन करते हुए मैं सच्ची बात कह रहा हूँ। हे राजन्! वह स्त्री कहाँसे आयी है, किसकी पुत्री है, वह सबल है या निर्बल, इन बातोंको मैं नहीं ही जान सका ॥२३॥

तब मैं उसके मनकी बात कैसे समझ सकता हूँ ? हाँ, यह मैंने अवश्य देखा कि उसे बड़ा गर्व है, वह बड़ी कड़ुई बातें करती है और लड़नेको तैयार है ॥ २४ ॥ हे महामते ! उसने जो कुछ कहा है, उसे आप अच्छी तरह सुनिए । वह कहती है—बाल्यकालमें सखियोंके साथ खेलते-खेलते मैंने यह प्रतिज्ञा की थी कि जो पुरुष युद्धमें मुझे पछाड़कर मेरा दर्प चूर्ण कर देगा ॥ २५ ॥ २६ ॥ मैं अपने समान बलवान् उसी पुरुषके साथ अपना विवाह करूँगी । अतएव हे नृपसत्तम ! आप मेरी वह प्रतिज्ञा तोड़वानेका आग्रह मत कीजिए ॥ २७ ॥ सो हे धर्मज्ञ ! आप मेरे साथ युद्ध करिए और मुझे पराजित करके अपने वशमें कर लीजिए । उसने ऐसा कहा और उसकी बात सुनकर मैं लौट आया ॥ २८ ॥ हे महाराज ! अब जो आपकी इच्छा हो, वह करिए । शस्त्रास्त्रसे सुसज्जित और सिंहकी पीठपर सवार वह सुन्दरी युद्धके लिए दृढ़ संकल्प किये हुए है ॥ २९ ॥ हे भूपाल ! वह अपनी प्रतिज्ञापर अटल है । अब जो उचित समझें

न ज्ञानगोचरं किंचित्किं ब्रवीमि विचेष्टितम् ॥ युद्धकामा मया दृष्टा गर्विता कटुभाषिणी ॥ २४ ॥ तया यत्कथितं सम्यक्तच्छृणुष्व महामते ॥ मया बाल्यात्प्रतिज्ञेयं कृता पूर्वं विनोदतः ॥ २५ ॥ सखीनां पुरतः कामं विवाहं प्रति सर्वथा ॥ यो मां युद्धे जयेदद्धा दर्पं च विधुनोति वै ॥२६॥ तं वरिष्याम्यहं कामं पतिं समबलं किल ॥ न मे प्रतिज्ञा मिथ्या सा कर्तव्या नृपसत्तम ॥ २७ ॥ तस्माद्युद्ध्यस्व धर्मज्ञ जित्वा मां स्ववशं कुरु ॥ तयेति व्याहृतं वाक्यं श्रुत्वाऽहं समुपागतः ॥२८॥ यथेच्छसि महाराज तथा कुरु तव प्रियम् ॥ सा युद्धार्थं कृतमतिः सायुधा सिंहगामिनी ॥२९॥ निश्चला वर्तते भूप यद्योग्यं तद्विधीयताम् ॥ व्यास उवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तस्य सुग्रीवस्य नराधिपः ॥ ३० ॥ पप्रच्छ भ्रातरं शूरं समीपस्थं महाबलम् ॥ शुम्भ उवाच ॥ भ्रातः किमत्र कर्तव्यं ब्रूहि सत्यं महामते ॥३१॥ नार्येका योद्धुकामाऽस्ति मामाह्वयति सांप्रतम् ॥ अहं गच्छामि संग्रामे त्वं वा गच्छ बलान्वितः ॥ ३२ ॥ यद्रोचते निशुम्भात्र तत्कर्तव्यं मया किल ॥ निशुम्भ उवाच ॥ न मया न त्वया वीर गंतव्यं रणमूर्धनि ॥३३॥ प्रेषयस्व महाराज त्वरितं धूम्रलोचनम् ॥ स गत्वा तां रणे जित्वा गृहीत्वा चारुलोचनाम् ॥ ३४ ॥ आगमिष्यति शुम्भात्र विवाहः संविधीयताम् ॥ व्यास उवाच ॥ तन्निशम्य वचस्तस्य शुम्भो भ्रातुः कनीयसः ॥ ३५ ॥ कोपात्संप्रेषयामास पार्श्वस्थं धूम्रलोचनम् ॥ शुम्भ उवाच ॥ धूम्रलोचन गच्छामुं सैन्येन महताऽऽवृतः ॥ ३६ ॥ गृहीत्वाऽऽनय तां मुग्धां स्ववीर्यमदमोहिताम् ॥ देवो वा दानवो वाऽपि मनुष्यो वा महाबलः ॥ ३७ ॥

सो करें । व्यासजी बोले—दूत सुग्रीवके वचन सुनकर राजा शुम्भने पास ही बैठे हुए परम वीर और महाबली निशुम्भसे पूछा । शुम्भने कहा—हे महामति भ्राता ! इस अवसरपर क्या करना चाहिए ? जो कर्तव्य हो, वह सच-सच बताओ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ एक स्त्री संग्राम करना चाहती है और अभी युद्धके लिए ललकार रही है । तब मैं जाऊँ या तुम अपनी सेनाके साथ उससे लड़ने जाओगे ? ॥ ३२ ॥ हे निशुम्भ ! तुम्हारी जो सम्मति होगी, मैं उसीके अनुसार चलूँगा । निशुम्भने कहा—हे भाई ! इस समय रणभूमिमें आपका या मेरा जाना ठीक नहीं है ॥३३॥ हे महाराज ! आप तत्काल धूम्रलोचनको भेज दीजिए । वह रणभूमिमें पराजित करके उस सुनयनीको पकड़ लायेगा । यहाँ आ जानेपर उसके साथ विवाह कर लीजिएगा । व्यासजी बोले—अपने छोटे भाईकी बात सुनकर पास ही बैठे धूम्रलोचनसे बड़े क्रोधपूर्वक शुम्भ बोला—हे धूम्रलोचन ! तुम अपने साथ विशाल सेना लेकर जाओ और बलके घमण्डमें चूर उस महिला-

बोले—अपने छोटे भाईकी बात सुनकर पास ही बैठे धूम्रलोचनसे बड़े क्रोधपूर्वक शुम्भ बोला—हे धूम्रलोचन ! तुम अपने साथ विशाल सेना लेकर जाओ और बलके घमण्डमें चूर उस महिला-

को पकड़ लाओ । यदि कोई महाबली देवता, दानव या मानव उसकी सहायता करे तो उसे तुरन्त मार डालना । उसके पास रहनेवाली कालीको मारकर उसे शीघ्र यहाँ ले आओ । हाँ, कोमल बाण छोड़ती हुई भी उस साध्वी सुन्दरीको बचाना ॥३४–३९॥ हे वीर ! उसकी हर उपायसे रक्षा करना । क्योंकि उसका शरीर बहुत कोमल है और कमर पतली है । लेकिन शस्त्र लेकर उसके जितने भी सहायक आयें, उन सबको समाप्त कर देना ॥ ४० ॥ किन्तु उस सुन्दरीको कदापि न मारना । बल्कि बड़े यत्नके साथ उसकी रक्षा करना । व्यासजी बोले—राजा शुम्भकी आज्ञा पाकर धूम्रलोचन अपने प्रभुको प्रणाम करके विशाल वाहिनीके साथ युद्ध करनेके लिए चल पड़ा । उसके साथ पूरे साठ हजार दानव सैनिक थे ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ पास पहुँचकर उसने एक दिव्य उपवनमें भगवतीको विराजमान देखा । उस मृगनयनी देवीको देखकर धूम्रलोचनने बड़े विनीतभावसे सहेतुक, सरस तथा मधुर वाणीमें कहा—हे देवि ! हे महाभागे ! महाराज शुम्भ आपके वियोगसे व्याकुल हैं ॥४३॥४४॥ नीतिनिपुण महाराज शुम्भने रसभंग होनेके भयसे बड़ी शान्तिपूर्वक समझाकर एक दूतको आपके पास भेजा था ॥४५॥

तत्पार्ष्णिग्राहतां प्राप्तो हंतव्यस्तरसा त्वया ॥ तत्पार्श्ववर्तिनीं कालीं हत्वा संगृह्य तां पुनः ॥ ३८ ॥ शीघ्रमत्र समागच्छ कृत्वा कार्यमनुत्तमम् ॥ रक्षणीया त्वया साध्वी मुंचंती मृदुमार्गणान् ॥ ३९ ॥ यत्नेन महता वीर मृदुदेहा कृशोदरी ॥ तत्सहायाश्च हंतव्या ये रणे शस्त्रपाणयः ॥४०॥ सर्वथा सा न हंतव्या रक्षणीया प्रयत्नतः ॥ व्यास उवाच ॥ इत्यादिष्टस्तदा राज्ञा तरसा धूम्रलोचनः ॥ ४१ ॥ प्रणम्य शुम्भं सैन्येन वृतः शीघ्रं ययौ रणे ॥ असाधूनां सहस्राणां षष्ट्या तेषां वृतस्तथा ॥ ४२ ॥ स ददर्श ततो देवीं रम्योपवनसंस्थिताम् ॥ दृष्ट्वा तां मृगशावाक्षीं विनयेन समन्वितः ॥ ४३ ॥ उवाच वचनं श्लक्ष्णं हेतुमद्रसभूषितम् ॥ शृणु देवि महाभागे शुम्भस्त्वद्विरहातुरः ॥ ४४ ॥ दूतं प्रेषितवान्पार्श्वं तव नीतिविशारदः ॥ रसभंगभयोद्विग्नः सामपूर्वं त्वयि स्वयम् ॥ ४५ ॥ तेनागत्य वचः प्रोक्तं विपरीतं वरानने ॥ वचसा तेन मे भर्ता चिंताविष्टमना नृपः ॥ ४६ ॥ बभूव रसमार्गज्ञे शुम्भः कामविमोहितः ॥ दूतेन तेन न ज्ञातं हेतुगर्भं वचस्तव ॥४७॥ यो मां जयति संग्रामे यदुक्तं कठिनं वचः ॥ न ज्ञातस्तेन संग्रामो द्विविधः खलु मानिनि ॥४८॥ रतिजोऽथोत्साहजश्च पात्रभेदे विवक्षितः ॥ रतिजस्त्वयि वामोरु शत्रोरुत्साहजः स्मृतः ॥४९॥ सुखदः प्रथमः कान्ते दुःखदश्चारिजः स्मृतः ॥ जानाम्यहं वरारोहे भवत्या मानसं किल ॥५०॥ रतिसंग्रामभावस्ते हृदये परिवर्तते ॥ इति तज्ज्ञं

हे सुन्दरमुखी ! उस दूतने लौटकर विपरीत बात बतायी । उसकी बातें सुनकर मेरे स्वामी बहुत चिन्तित हो गये हैं ॥४६॥ हे शृंगाररसकी अभिज्ञ सुन्दरी ! महाराज शुम्भ कामपीडासे बहुत व्याकुल हैं । किन्तु वह दूत आपके सहेतुक वचनोंका मतलब नहीं समझ सका ॥४७॥ हे भामिनी ! आपने जो यह कठोर वचन कहा कि 'जो मुझे संग्राममें जीतेगा' इत्यादि । उसका तात्पर्य वह नहीं समझ सका । संग्राम दो प्रकारका होता है–॥ ४८ ॥ पहला कामवासनाजनित और दूसरा उत्साहजनित । पात्रभेदसे समय-समयपर उनका उपयोग होता है । उन दोनोंमें आप जैसी सुन्दरीके साथ तो रतिजनित संग्राम ही हो सकता है । शत्रुके साथ उत्साहजनित संग्राम किया जाता है ॥ ४९ ॥ हे कामिनी ! प्रथम अर्थात् रतिजनित युद्धसे सुख प्राप्त होता है और शत्रुके साथ उत्साहजनित संग्राममें अपार दुःख भोगना पड़ता है। हे सुजघने! मैं आपके मनकी बात जानता हूँ ॥५०॥ आपके मनमें रतियुद्ध करनेकी ही इच्छा है। स्त्रियोंका अभिप्राय जाननेमें निपुण

समझकर ही महाराज शुम्भने इतनी बड़ी सेनाके साथ मुझे आपके पास भेजा है। हे महाभागे ! आप बड़ी चतुर हैं। अब मेरी मधुर बातें सुनिए ॥५१॥५२॥ आप तीनों लोकोंके अधिपति और देवताओंका भी गर्व खर्व करनेवाले राजा शुम्भको अपना पति बना लें और उनकी पटरानी बनकर उत्तम प्रकारके भोगोंका उपभोग करें ॥ ५३ ॥ महाबाहु शुम्भ कामशास्त्रके पूर्ण ज्ञाता हैं। वे रतियुद्धमें आपको अवश्य परास्त कर देंगे। जब आप तरह-तरहके हाव-भाव (नखरे) करेंगी, तब वे भी आपके प्रति कामुकभावका प्रदर्शन करेंगे ॥ ५४ ॥ आपकी संगिनी कालिका हाव-भाव-विलासकी साक्षिणी बनकर आपके साथ रहेगी। इस प्रकार कामशास्त्रमें निपुण हमारे महाराज रतियुद्धके द्वारा आपको जीतकर थक जानेपर सुखकी सेजपर सुलायेंगे। वे अपने नखाघातसे आपकी देहपर नखोंसे लाल-लाल दाग बना देंगे और दाँतोंसे काट-काटकर आपके अधरोष्ठको खण्डित कर देंगे ॥५५॥५६॥ मेरे महाराज जब आपको पसीनेसे तर कर देंगे, तब आपकी रतियुद्धकी अभिलाषा पूर्ण हो जायगी ॥५७॥ हे प्रिये ! आपको देखते ही महाराज शुम्भ सर्वथा आपके वशीभूत हो जायँगे। अतएव आप मेरी उचित, कल्याणकारी

विदित्वा मां त्वत्सकाशं नराधिपः ॥५१॥ प्रेषयामास शुम्भोऽद्य बलेन महताऽऽवृतम् ॥ चतुराऽसि महाभागे शृणु मे वचनं मृदु ॥५२॥ भज शुम्भं त्रिलोकेशं देवदर्पनिबर्हणम् ॥ पट्टराज्ञी प्रिया भूत्वा भुंक्ष्व भोगाननुत्तमान् ॥ ५३ ॥ जेष्यति त्वां महाबाहुः शुम्भः कामबलार्थवित् ॥ विचित्रान्कुरु हावांस्त्वं सोऽपि भावान्करिष्यति ॥५४॥ भविष्यति कालिकेयं तत्र वै नर्मसाक्षिणी ॥ एवं संगरयोगेन पतिर्मे परमार्थवित् ॥ ५५ ॥ जित्वा त्वां सुखशय्यायां परिश्रांतां करिष्यति ॥ रक्तदेहां नखाघातैर्दन्तैश्च खंडिताधराम् ॥ ५६ ॥ स्वेदक्लिन्नां प्रभग्नां त्वां संविधास्यति भूपतिः ॥ भविता मानसः कामो रतिसंग्रामजस्तव ॥ ५७ ॥ दर्शनाद्वश एवास्ते शुम्भः सर्वात्मना प्रिये ॥ वचनं कुरु मे पथ्यं हितकृच्चापि पेशलम् ॥ ५८ ॥ भज शुम्भं गणाध्यक्षं माननीयातिमानिनी ॥ मंदभाग्याश्च ते नूनं ह्यस्त्रयुद्धप्रियाश्च ये ॥५९॥ न तदर्हाऽसि कान्ते त्वं सदा सुरतवल्लभे ॥ अशोकं कुरु राजानं पादाघातविकासितम् ॥ ६० ॥ बकुलं सीधुसेकेन तथा कुरुबकं कुरु ॥ इति श्रीदेवीभागवते पंचमस्कन्धे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्त्वा विररामासौ वचनं धूम्रलोचनः ॥ प्रत्युवाच तदा कालीं प्रहस्य ललितं वचः ॥ १ ॥ विदूषकोऽसि जाल्म त्वं

तथा नेक सलाह अवश्य मान लीजिए ॥५८॥ आप बहुत ही मानवती महिला हैं। अतएव गणराज्यके अधिपति महाराज शुम्भके साथ विवाहसम्बन्ध करके आप समस्त संसारकी माननीया बन जायँगी। जिन्हें शस्त्रयुद्ध प्रिय है, वे बड़े अभागे प्राणी हैं ॥ ५९ ॥ हे कान्ते ! आप शस्त्रयुद्धके योग्य नहीं हैं। क्योंकि आप जैसी सुन्दरीको तो रतियुद्ध ही प्रिय होना चाहिये। जैसे कामिनीके पदप्रहारसे अशोक विकसित हो जाता है, उसी प्रकार आप मेरे महाराजकी सारी कामपीड़ा दूर करके उन्हें सब तरहसे शोकरहित कर दें। जैसे मदिराके कुल्लेसे मौलसिरी और आलिङ्गनसे कुरुबक (कटसरैया) विकसित हो जाता है, उसी प्रकार आपके मुखका आसव तथा आलिंगन पाकर वे भी कृतकृत्य हो जायँगे ॥ ६० ॥ इति श्रीदेवीभागवते पञ्चमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

(भगवती द्वारा धूम्रलोचनका वध) व्यासजी बोले—हे महाराज ! इतनी बातें कहकर धूम्रलोचन चुप हो गया। तब बड़ी जोरसे हँसकर भगवती काली बोलीं—॥ १ ॥ अरे

धूर्त ! तू तो पूरा विदूषक (हँसोड़) है और नटों जैसी बात करता है । तू व्यर्थ चिकनी-चुपड़ी बातें करके मेरे हृदयमें कामवासना जगाना चाहता है ? ॥२॥ अरे मूढमति ! तू बलवान् है और तेरे साथ बड़ी भारी सेना आयी हुई है । दुष्ट शुम्भने तुझे लड़नेके लिए भेजा है । अतएव अब व्यर्थकी बकवास छोड़कर युद्ध कर ॥ ३ ॥ ये देवी कुपित होकर शुम्भ, निशुम्भ, तुझे तथा अन्य सभी बलवान् दैत्योंको मारकर अपने स्थानको लौट जायँगी ॥४॥ कहाँ वह मूर्ख शुम्भ और कहाँ विश्वमोहिनी जगदम्बा । संसारमें इन दोनोंका विवाह सर्वथा असम्भव है ॥५॥ कितनी ही कामार्त सिंहिनी क्या सियारको अपना पति बना सकती है ? इसी प्रकार कामातुरा हथिनी गधोंको और गाय क्या गवय (लीलगाय) को पतिरूपमें चुन सकती है ? कदापि नहीं ॥ ६ ॥ तू जाकर शुम्भ-निशुम्भसे मेरी यह सच्ची बात कह दे कि तुम या तो मेरे साथ युद्ध करो अथवा यह भूमि त्यागकर तत्काल पाताल चले जाओ ॥७॥ व्यासजी बोले—हे महाभाग !

शैलूष इव भाषसे ॥ वृथा मनोरथांश्चित्ते करोषि मधुरं वदन् ॥ २ ॥ बलवान्बलसंयुक्तः प्रेषितोऽसि दुरात्मना ॥ कुरु युद्धं वृथा वादं मुंच मूढमतेऽधुना ॥ ३ ॥ हत्वा शुम्भं निशुम्भं च त्वदन्यान्वा बलाधिकान् ॥ देवी क्रुद्धा शराघातैर्व्रजिष्यति निजालयम् ॥ ४ ॥ क्वासौ मंदमतिः शुम्भः क्व वा विश्वविमोहिनी ॥ अयुक्तः खलु संसारे विवाहविधिरेतयोः ॥ ५ ॥ सिंही किं त्वतिकामार्ता जंबुकं कुरुते पतिम् ॥ करिणी गर्दभं वापि गवयं सुरभिः किमु ॥ ६ ॥ गच्छ शुम्भं निशुम्भं च वद सत्यं वचो मम ॥ कुरु युद्धं न चेद्याहि पातालं तरसाऽधुना ॥ ७ ॥ व्यास उवाच ॥ कालिकाया वचः श्रुत्वा स दैत्यो धूम्रलोचनः ॥ तामुवाच महाभाग क्रोधसंरक्तलोचनः ॥ ८ ॥ दुर्दर्शे त्वां निहत्याजौ सिंहं च मदगर्वितम् ॥ गृहीत्वैतां गमिष्यामि राजानं प्रत्यहं किल ॥९॥ रसभङ्गभयात्कालि बिभेमि त्विह सांप्रतम् ॥ नोचेत्त्वां निशितैर्बाणैर्हन्म्यद्य कलहप्रिये ॥१०॥ कालिकोवाच ॥ किं विकत्थसि मंदात्मन्नायं धर्मो धनुष्मताम् ॥ स्वशक्त्या मुंच विशिखान्गंताऽसि यमसंसदि ॥११॥ व्यास उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं दैत्यः संगृह्य कार्मुकं दृढम् ॥ कालिकां तां शरासारैर्ववर्षातिशिलाशितैः ॥ १२ ॥ देवास्तु प्रेक्षकास्तत्र विमानवरसंस्थिताः ॥ तां स्तुवन्तो जयेत्यूचुर्देवीं शक्रपुरोगमाः ॥ १३ ॥ तयोः परस्परं युद्धं प्रवृत्तं चातिदारुणम् ॥ बाणखड्गगदाशक्तिमुसलादिभिरुत्कटम् ॥ १४ ॥ कालिका बाणपातैस्तु हत्वा

कालिकाके वचन सुननेके बाद आँखें लाल करके धूम्रलोचनने कहा—॥ ८ ॥ अरी काली-कलूटी महिला ! अभी तुझे और इस सिंहको मारकर मैं इन्हें पकड़कर राजा शुम्भके पास ले जाऊँगा ॥ ९ ॥ अरी काली ! मैं शृङ्गाररस नीरस हो जानेके भयसे डरता हूँ । नहीं तो ओ कलहप्रिये ! अभी तुझे अपने बाणोंसे मार डालता ॥ १० ॥ भगवती कालिका बोलीं—अरे मन्दबुद्धि ! क्यों व्यर्थ डींग मारता है ? धनुर्धारी वीरोंको ऐसी बातें शोभा नहीं देतीं । तू पूरी शक्तिके साथ बाण चला । मैं अभी तुझको यमलोक भेज दूँगी ॥ ११ ॥ व्यासजीने कहा कि यह वचन सुनते ही धूम्रलोचन दैत्यने धनुष सम्हाला और कालिकापर अपने अति तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥ १२ ॥ उस समय देवता अपने-अपने विमानोंमें बैठकर वह युद्ध देखने लगे । सहसा इन्द्र आदि देवताओंने स्तुति करके भगवतीकी जयजयकार की ॥ १३ ॥ इधर कालिका और धूम्रलोचनमें तीर, तलवार, गदा, बर्छी तथा मुसल आदि शस्त्रों द्वारा भयानक युद्ध होने

लगा ॥ १४ ॥ भगवती कालिकाने पहले अपने बाणोंसे उसके रथमें जुते खच्चरोंको मार डाला। उसके बाद बाणवर्षा करके रथको भी चूर्ण कर दिया और अट्टहास करके बारम्बार हँसने लगीं ॥ १५ ॥ हे जनमेजय ! तब वह दैत्य दूसरे रथपर सवार हो गया और बड़े क्रोधके साथ कालिकापर बाणवर्षा करने लगा ॥ १६ ॥ भगवती कालिका भी बड़ी फुर्तीके साथ उसके बाणोंको काटती हुई उस दानवपर अपने बाण बरसाने लगीं ॥ १७ ॥ उन बाणोंकी मारसे उसके पृष्ठपोषक हजारों दैत्य मारे गये। उसी समय कालिकाने उसके खच्चरों तथा सारथीको मारकर वह दूसरा रथ भी नष्ट कर दिया। तदनन्तर कालिकाने अपने सर्पसदृश बाणोंसे उसका धनुष काट डाला। ऐसा करके देवताओंको हर्षित करती हुई भगवतीने शंख बजाया ॥ १८ ॥ १९ ॥ रथ नष्ट हो जानेपर अत्यन्त क्रुद्ध धूम्रलोचन एक लौहमय तथा बहुत मजबूत परिघ लेकर दौड़ता हुआ पैदल ही चला। कालके समान भयंकर वह दैत्य वचनोंसे धम-

पूर्वं खरानथ ॥ बभंज तद्रथं व्यूढं जहास च मुहुर्मुहुः ॥ १५ ॥ स चान्यं रथमारूढः कोपेन प्रज्वलन्निव ॥ बाणवृष्टिं चकारोग्रां कालिकोपरि भारत ॥ १६ ॥ साऽपि चिच्छेद तरसा तस्य बाणानसंगतान् ॥ मुमोचान्यानुग्रवेगान्दानवोपरि कालिका ॥ १७ ॥ तैर्बाणैर्निहतास्तस्य पार्ष्णिग्राहाः सहस्रशः ॥ बभंज च रथं वेगात्सूतं हत्वा खरानपि ॥ १८ ॥ चिच्छेद तद्धनुः सद्यो बाणैरुरगसन्निभैः ॥ मुदं चक्रे सुराणां सा शंखनादं तथाऽकरोत् ॥ १९ ॥ विरथः परिघं गृह्य सर्वलोहमयं दृढम् ॥ आजगाम रथोपस्थं कुपितो धूम्रलोचनः ॥ २० ॥ वाचा निर्भर्त्सयन्कालीं करालः कालसन्निभः ॥ अद्यैव त्वां हनिष्यामि कुरूपे पिंगलोचने ॥२१॥ इत्युक्त्वा सहसाऽऽगत्य परिघं क्षिपते यदा ॥ हुङ्कारेणैव तं भस्म चकार तरसाऽम्बिका ॥२२॥ दृष्ट्वा भस्मीकृतं दैत्यं सैनिका भयविह्वलाः ॥ चक्रुः पलायनं सद्यो हा तातेति ब्रुवन्पथि ॥ २३ ॥ देवास्तं निहतं दृष्ट्वा दानवं धूम्रलोचनम् ॥ मुमुचुः पुष्पवृष्टिं ते मुदिता गगने स्थिताः ॥ २४ ॥ रणभूमिस्तदा राजन्दारुणा समपद्यत ॥ निहतैर्दानवैरश्वैः खरैश्च वारणैस्तथा ॥ २५ ॥ गृध्राः काका वटाः श्येना वरफा जंबुकास्तथा ॥ ननृतुश्चुक्रुशुः प्रेतान्पतितान्रणभूमिषु ॥ २६ ॥ अंबिका तद्रणस्थानं त्यक्त्वा दूरस्थलांतरे ॥ गत्वा चकार चाप्युग्रं शंखनादं भयप्रदम् ॥ २७ ॥ तं श्रुत्वा दरशब्दं तु शुम्भः सद्मनि संस्थितः ॥ दृष्ट्वाऽथ दानवान्भग्नानागता-

काता हुआ भगवती कालिकासे कहने लगा—अरी कुरूपा और कंजी आँखोंवाली नारी ! अभी मैं तुझे मार डालूँगा ॥२०॥२१॥ ऐसा कहकर वह ज्यों ही कालिकापर परिघ चलानेको उद्यत हुआ, त्यों ही भगवती अम्बिकाने अपने हुङ्कारसे उसे भस्म कर दिया ॥ २२ ॥ इस प्रकार धूम्रलोचनको भस्म हुआ देखकर बाकी दैत्यसैनिक भयभीत होकर 'हाय बाप' कहते हुए तत्काल निकल भागे ॥ २३ ॥ धूम्रलोचन दानवका निधन देखकर आकाशमें विद्यमान देवता मुदित होकर अम्बिकापर पुष्पवर्षा करने लगे ॥ २४ ॥ हे राजन् ! उस समय रणभूमि बड़ी भयानक दीखने लगी। क्योंकि वहाँ मरे हुए दानवों, घोड़ों, खच्चरों और हाथियोंसे सारी जमीन पट गयी थी ॥ २५ ॥ गिद्ध, कौए, बाज, सियार, पिशाच और प्रेत युद्धभूमिमें पड़े मुर्दोंको देख-देखकर नाचने हुए चिल्लाने लगे ॥ २६ ॥ तब भगवती अम्बिका रणस्थली त्यागकर कुछ दूर चली गयीं और उन्होंने भयदायक शंखनाद किया ॥ २७ ॥ अपने महलमें बैठे हुए

देख-देखकर भागने हुए चिल्लाने लगे ॥ २६ ॥ तब भगवती अम्बिका रणस्थली त्यागकर कुछ दूर चली गयीं और उन्होंने भयदायक शंखनाद किया ॥ २७ ॥ अपने महलमें बैठे हुए

शुम्भको भी वह निनाद सुनायी पड़ा। उसी समय उसने रुधिरसे भींगे बहुतेरे दैत्योंको भागकर आते देखा॥२८॥ बहुतसे दैत्योंके हाथ-पैर कट गये थे। वे खटियापर लदकर आ रहे थे। बहुतसे दैत्योंकी पीठ, कमर और गर्दन टूट गयी थी। अतएव वे बुरी तरह चीख रहे थे॥ २९॥ उन्हें देखकर शुम्भ-निशुम्भने पूछा कि धूम्रलोचन कहाँ गया? तुम लोग भाग क्यों आये? उस सुमुखी महिलाको क्यों नहीं लाये? ॥ ३० ॥ ओ मूर्खो! बताओ तो सही कि मेरी सेना कहाँ है? और यह भयदायिनी शंखध्वनि कौन कर रहा है ॥३१॥ सैनिक बोले—कालिकाने रणभूमिमें सारी असुरसेना नष्ट कर दी और धूम्रलोचनको मार डाला। उसने ऐसा काम किया है कि जिसे कोई मनुष्य नहीं कर सकता ॥ ३२ ॥ यह शंखध्वनि अम्बिकाकी है। जो समस्त गगनमण्डलमें गूँज उठी है। इसे सुनकर देवता प्रमुदित हो रहे हैं और दैत्योंमें शोक छा गया है ॥ ३३ ॥ हे राजन्! जब देवीके सिंह और कालिकाकी बाणवर्षाने

न्रुधिरोक्षितान् ॥ २८ ॥ छिन्नपादकराक्षांश्च मंचकारोपितानपि ॥ भग्नपृष्ठकटिग्रीवान्क्रंदमानाननेकशः ॥२९॥ वीक्ष्य शुम्भो निशुम्भश्च क्व गतो धूम्रलोचनः ॥ कथं भग्नाः समायाता नानीता किं वरानना ॥ ३० ॥ सैन्यं कुत्र गतं मंदाः कथयंतु यथोचितम् ॥ कस्यायं शंखनादोऽद्य श्रूयते भयवर्धनः ॥ ३१ ॥ गणा ऊचुः ॥ बलं च पातितं सर्वं निहतो धूम्रलोचनः ॥ कृतं कालिकया कर्म रणभूमावमानुषम् ॥ ३२ ॥ शंखनादोऽम्बिकायास्तु गगनं व्याप्य राजते ॥ हर्षदः सुरसंघानां दानवानां च शोककृत् ॥३३॥ यदा निपातिताः सर्वे तेन केसरिणा विभो ॥ रथा भग्ना हयाश्चैव बाणपातैर्विनाशिताः ॥ ३४ ॥ गगनस्थाः सुराश्चक्रुः पुष्पवृष्टिं मुदान्विताः ॥ दृष्ट्वा भग्नं बलं सर्वं पातितं धूम्रलोचनम् ॥ ३५ ॥ निश्चयस्तु कृतोऽस्माभिर्जयो नैव भवेदिति ॥ विचारं कुरु राजेन्द्र मंत्रिभिर्मंत्रवित्तमैः ॥ ३६ ॥ विस्मयोऽयं महाराज यदेका जगदम्बिका ॥ भवद्भिः सह युद्धाय संस्थिता सैन्यवर्जिता ॥ ३७ ॥ निर्भयैकाकिनी बाला सिंहारूढा मदोत्कटा ॥ चित्रमेतन्महाराज भासतेऽद्भुतमंजसा ॥ ३८ ॥ संधिर्वा विग्रहो वाऽद्य स्थानं निर्याणमेव च ॥ मंत्रयित्वा महाराज कुरु कार्यं यथारुचि ॥ ३९ ॥ तत्सन्निधौ बलं नास्ति तथापि शत्रुतापन ॥ पार्ष्णिग्राहाः सुराः सर्वे भविष्यंति किलापदि ॥ ४० ॥ समये तत्समीपस्थौ ज्ञातौ च हरिशंकरौ ॥ लोकपालाः समीपेऽद्य वर्तन्ते गगने स्थिताः ॥४१॥

सब दैत्यसैनिकोंको मार डाला, रथ चूर कर दिया और घोड़े मार डाले। तब देवताओंने बहुत प्रसन्न होकर उनपर पुष्पवर्षा की। समस्त सेनाका विनाश और धूम्रलोचनका वध देखकर हम लोगोंको विश्वास हो गया है कि हमें विजय नहीं प्राप्त हो सकता। बिना किसी सेनाके वह मदमत्त महिला सिंहपर सवार होकर निर्भय भावसे अकेली खड़ी दूसरे युद्धकी प्रतीक्षा कर रही है। हे महाराज! यह बड़े विस्मयकी बात है। अतएव आप अच्छे-अच्छे मन्त्रियोंके साथ इस विषयपर विचार करिए। हे राजन्! हमें उस देवीके सभी कार्य विचित्र और अद्भुत दिखायी देते हैं ॥ ३४–३८ ॥ हे महाराज! मन्त्रियोंसे परामर्श करके आप अपनी रुचिके अनुसार सन्धि, युद्ध या पलायनका निर्णय करिए ॥ ३९ ॥ हे शत्रुको सन्ताप देनेवाले प्रभो! यद्यपि अभी उसके पास सेना नहीं है, किन्तु यह निश्चय समझिए कि उस देवीपर कोई विपत्ति आते ही सब देवता उसकी सहायताके लिए आ पहुँचेंगे ॥ ४० ॥ समय आनेपर विष्णु

और शिव उसकी सहायताके लिए उपस्थित हो जायँगे। सब लोकपाल उसके पास ही आकाशमें विद्यमान हैं ॥ ४१ ॥ हे सुरतापन ! सभी देवजातिके राक्षस, गन्धर्व, किन्नर और मनुष्य ये सब समय आनेपर उसके सहायक हो जायँगे ॥ ४२ ॥ हमारा ख्याल तो ऐसा है कि अम्बिका किसीसे सहायता अथवा कोई कार्य करानेकी आशा नहीं करती ॥ ४३ ॥ वह अकेली सचराचर समस्त संसारको नष्ट कर सकती है। तब सब दानवोंको नष्ट करनेमें कितनी देर लगेगी ? ॥ ४४ ॥ ऐसा समझकर आपकी जैसी रुचि हो, वैसा करिए। सेवकोंका यह कर्तव्य है कि वे अपने स्वामीके समक्ष हितकारी, सत्य और परिमित बात कहें। सो हमने अपना कर्तव्य पालन कर दिया ॥ ४५ ॥ व्यासजी बोले—शत्रुसेनाको पीस देनेवाले शुम्भने सैनिकोंके वचन सुनकर अपने लघु भ्राता निशुम्भको बुलाया और एकान्तमें लेजाकर कहा—॥ ४६ ॥ भाई ! आज अकेली कालिकाने धूम्रलोचनको मार डाला और सारी असुरसेना नष्ट कर दी। जो थोड़ेसे सैनिक बचे थे, वे भी भाग आये हैं ॥४७॥ उधर मदमाती अम्बिका शंखनाद कर रही है। बड़े-बड़े ज्ञानी भी कालकी दुर्ज्ञेय गतिको नहीं जान सकते ॥४८॥ समयके

रक्षोगणाश्च गंधर्वाः किन्नरा मानुषास्तथा ॥ तत्सहायाश्च मंतव्याः समये सुरतापन ॥४२॥ अस्माकं मतिमानेन ज्ञायते सर्वथेदृशम् ॥ अम्बिकायाः सहायाशा तत्कार्याशा न काचन ॥ ४३ ॥ एका नाशयितुं शक्ता जगत्सर्वं चराचरम् ॥ का कथा दानवानां तु सर्वेषामिति निश्चयः ॥ ४४ ॥ इति ज्ञात्वा महाभाग यथारुचि तथा कुरु ॥ हितं सत्यं मितं वाक्यं वक्तव्यमनुयायिभिः ॥ ४५ ॥ व्यास उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तेषां शुम्भः परबलार्दनः ॥ कनीयांसं समानीय पप्रच्छ रहसि स्थितः ॥ ४६ ॥ भ्रातः कालिकयाऽद्यैव निहतो धूम्रलोचनः ॥ बलं च शातितं सर्वं गणा भग्नाः समागताः ॥ ४७ ॥ अम्बिका शंखनादं वै करोति मदगर्विता ॥ ज्ञानिनां चैव दुर्ज्ञेया गतिः कालस्य सर्वथा ॥ ४८ ॥ तृणं वज्रायते नूनं वज्रं चैव तृणायते ॥ बलवान्बलहीनः स्याद्दैवस्य गतिरीदृशी ॥ ४९ ॥ पृच्छामि त्वां महाभाग किं कर्तव्यमतः परम् ॥ अभोग्या चाम्बिका नूनं कारणादत्र चागता ॥५०॥ युक्तं पलायनं वीर युद्धं वा वद सत्वरम् ॥ लघुं ज्येष्ठं विजानामि त्वामहं कार्यसंकटे ॥५१॥ निशुम्भ उवाच ॥ न वा पलायनं युक्तं न दुर्गग्रहणं तथा ॥ युद्धमेव परं श्रेयः सर्वथैवानयाऽनघ ॥ ५२ ॥ ससैन्योऽहं गमिष्यामि रणे तु प्रवराश्रितः ॥ हत्वा तामागमिष्यामि तरसा त्वबलामिमाम् ॥ ५३ ॥ अथवा बलवद्दैवादन्यथा चेद्भविष्यति ॥ मृते मयि त्वया कार्यं विमृश्य च पुनः पुनः ॥ ५४ ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा

फेरसे तृण वज्र बन जाता है, वज्र तृण हो जाता है और बलवान् निर्बल बन जाता है। दैवकी ऐसी विचित्र गति है ॥ ४९ ॥ हे महाभाग ! प्रश्न यह है कि अब क्या करना चाहिए ? मुझे ऐसा लगता है कि अम्बिका किसी विशेष उद्देश्यसे यहाँ आयी हुई है। वह हमारे भोग करने योग्य नहीं है ॥५०॥ हे वीर ! तुम मुझे शीघ्र यह बताओ कि अब हम निकल भागें या उसके साथ लड़ें ? यद्यपि तुम मेरे छोटे भाई हो, तथापि इस संकटके समय मैं तुम्हें अपना बड़ा भाई समझता हूँ ॥ ५१ ॥ निशुम्भने कहा—हे अनघ ! इस समय न पलायन करना उचित होगा और न किलेमें छिपना ही ठीक होगा। तब तो युद्ध ही सबसे श्रेयस्कर मार्ग है ॥५२॥ नामी-नामी सेनापतियोंको लेकर मैं अपनी सेनाके साथ रणभूमिमें जाऊँगा और कालिकाको मारकर अम्बिकाको पकड़कर यहाँ ले आऊँगा ॥ ५३ ॥ कदाचित् दैवकी प्रबलतावश विपरीत परिणाम निकले तो मेरे मर जानेपर आप जो उचित समझें, सो सोचकर करिएगा ॥ ५४ ॥

मारकर अम्बिकाको पकड़कर यहाँ ले आऊँगा ॥ ५३ ॥ कदाचित् दैवकी प्रबलतावश विपरीत परिणाम निकले तो मेरे मरे जानेपर आप जो उचित समझें, सो करेंगे ॥ ५४ ॥

ये वचन सुनकर शुम्भने अपने छोटे भाई निशुम्भसे कहा कि अभी तुम ठहरो। पहले चण्ड-मुण्ड ये दोनों भाई अपनी सेनाके साथ जायँ ॥ ५५ ॥ शशक (खरगोश) को पकड़नेके लिए हाथीका जाना उचित न होगा। चण्ड-मुण्ड बड़े बलवान् हैं। वे दोनों कालिकाको मारनेमें सर्वथा समर्थ होंगे ॥५६॥ अपने भाईसे ऐसा कह और उस महाबलीसे परामर्श करके राजा शुम्भने सामने ही बैठे हुए चण्ड-मुण्डसे कहा—॥ ५७ ॥ हे चण्ड-मुण्ड ! तुम दोनों अपनी सेना लेकर उस निर्लज्ज और मदमाती अबलाका वध करनेके लिए जाओ ॥ ५८ ॥ हे सेनापतियो ! तुम रणभूमिमें जाओ और उस कंजी आँखोंवाली कालिकाको मारकर अम्बिकाको यहाँ पकड़ लाओ। यह महान् कार्य तुम्हीं दोनोंको करना होगा ॥ ५९ ॥ पकड़ी जानेपर भी यदि वह मदगर्विता अम्बिका न आये तो अतिशय तीक्ष्ण बाणोंसे उस युद्धलोलुप अबलाको भी मार डालना ॥ ६० ॥ इति श्रीदेवीभागवते पञ्चमस्कन्धे भाषाटीकायां पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

शुम्भः प्रोवाच चानुजम् ॥ तिष्ठ त्वं चंडमुंडौ द्वौ गच्छेतां बलसंयुतौ ॥ ५५ ॥ शशकग्रहणायात्र न युक्तं गजमोचनम् ॥ चण्डमुण्डौ महावीरौ तां हंतुं सर्वथा क्षमौ ॥ ५६ ॥ इत्युक्त्वा भ्रातरं शुम्भः संभाष्य च महाबलौ ॥ उवाच वचनं राजा चंडमुंडौ पुरःस्थितौ ॥५७॥ गच्छतं चंडमुंडौ द्वौ स्वसैन्यपरिवारितौ ॥ हंतुं तामबलां शीघ्रं निर्लज्जां मदगर्विताम् ॥ ५८ ॥ गृहीत्वाऽथ निहत्याजौ कालिकां पिंगलोचनाम् ॥ आगम्यतां महाभागौ कृत्वा कार्यं महत्तरम् ॥ ५९ ॥ सा नायाति गृहीताऽपि गर्विता चाम्बिका यदि ॥ तदा बाणैर्महातीक्ष्णैर्हन्तव्याऽऽहवमंडिता ॥६०॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे देवीमाहात्म्ये पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

॥ व्यास उवाच ॥ इत्याज्ञप्तौ तदा वीरौ चण्डमुण्डौ महाबलौ ॥ जग्मतुस्तरसैवाजौ सैन्येन महताऽन्वितौ ॥ १ ॥ दृष्ट्वा तत्र स्थितां देवीं देवानां हितकारिणीम् ॥ ऊचतुस्तौ महावीर्यौ तदा सामान्वितं वचः ॥ २ ॥ बाले त्वं किं न जानासि शुम्भं सुरबलार्दनम् ॥ निशुम्भं च महावीर्यं तुराषाड्विजयोद्धतम् ॥ ३ ॥ त्वमेकाऽसि वरारोहे कालिकासिंहसंयुता ॥ जेतुमिच्छसि दुर्बुद्धे शुम्भं सर्वबलान्वितम् ॥ ४ ॥ मतिदः कोऽपि ते नास्ति नारी वाऽपि नरोऽपि वा ॥ देवास्त्वां प्रेरयंत्येव विनाशाय तवैव ते ॥५॥ विमृश्य कुरु तन्वंगि कार्यं स्वपरयोर्बलम् ॥ अष्टादशभुजत्वात्त्वं गर्वं च कुरुषे मृषा ॥ ६ ॥ किं भुजैर्बहुभिर्व्यर्थैरायुधैः किं श्रमप्रदैः ॥ शुम्भस्याग्रे सुराणां वै जेतुः समरशालिनः ॥ ७ ॥ ऐरावतकरच्छेत्तुर्दंतिदा-

(चण्ड-मुण्डका वध) व्यासजी बोले—हे राजन् ! जब महाबली चण्ड-मुण्डको शुम्भने ऐसी आज्ञा दी, तब वे दोनों अपनी विशाल सेना सजाकर बड़े वेगसे रणभूमिकी ओर चल पड़े ॥ १ ॥ वहाँ देवताओंकी हितकारिणी देवीको विद्यमान देखकर वे दोनों महाबलवान् दानव मीठी-मीठी बातोंमें समझाते हुए अम्बिकासे कहने लगे—॥ २ ॥ हे बाले ! क्या आप देवसेनाके विनाशक शुम्भ तथा इन्द्रपर विजय प्राप्त करनेके कारण उद्धत निशुम्भको नहीं जानतीं ? ॥ ३ ॥ हे सुजघने ! कालिका और सिंहके साथ आप अकेली हैं। ऐसी स्थितिमें हे दुर्बुद्धे ! आप उन्हीं दोनोंकी सहायतासे सब प्रकारकी सेनासे सुसज्जित शुम्भको जीतना चाहती हैं ? ॥४॥ कोई स्त्री या पुरुष क्या आपको सलाह देनेवाला नहीं है ? रही देवताओंकी बात, सो वे तो आपको नष्ट हो जानेके लिए ही उभाड़ रहे हैं ॥ ५ ॥ हे तन्वङ्गि ! अपना और शत्रुका बल देखकर ही युद्ध करना चाहिए। अठारह भुजाओंपर यदि आपको अभिमान हो तो

वह भी व्यर्थ है ॥ ६ ॥ क्योंकि देवताओंको पराजित करने और रणभूमिमें जूझनेवाले शुम्भके समक्ष आपकी ये भुजायें बेकार हो जायँगी। इन्हें शस्त्रास्त्र ढोनेका व्यर्थ परिश्रम करना पड़ेगा ॥ ७ ॥ हे कान्ते ! तुम वृथा गर्व करती हो। हे विशालनयनो ! ऐरावतकी सूँड़ काटने और दाँत तोड़नेवाले तथा देवताओंके विजेता शुम्भकी रुचिके अनुकूल कार्य करिए। आप मेरी भली बात मान लें। यदि ऐसा करेंगी तो आपको सुख मिलेगा और दुःख नष्ट हो जायँगे ॥ ८ ॥ ९ ॥ बुद्धिमान् मनुष्यको चाहिए कि दुःखदायी कामोंको दूरसे ही त्याग दे। क्योंकि शास्त्रोंका तत्त्व जाननेवाले विद्वान् सुखदायक कार्य ही करते हैं ॥१०॥ हे कोकिलाके समान मधुर वाणी बोलनेवाली सुन्दरी ! आप बड़ी चतुर नारी हैं। आप शुम्भके महान् बलको प्रत्यक्ष देखें। समस्त देवताओंको पीसकर उन्होंने कितना साम्राज्य बढ़ा लिया है ?॥ ११ ॥ अतएव प्रत्यक्ष प्रमाणको त्यागकर अनुमानका पीछा करना व्यर्थ है। विद्वान् लोग किसी सन्देहात्मक कार्यमें हस्तक्षेप नहीं करते ॥ १२ ॥ युद्धमें कठिनाईसे पराजित होनेवाले शुम्भ देवताओंके सबसे बड़े शत्रु हैं। इसी कारण दैत्यराजके द्वारा सताये हुए देवता आपको युद्धके लिए उभाड़

रणकारिणः ॥ जयिनः सुरसंघानां कार्यं कुरु मनोगतम् ॥ ८ ॥ वृथा गर्वायसे कान्ते कुरु मे वचनं प्रियम् ॥ हितं तव विशालाक्षि सुखदं दुःखनाशनम् ॥ ९ ॥ दुःखदानि च कार्याणि त्याज्यानि दूरतो बुधैः ॥ सुखदानि च सेव्यानि शास्त्रतत्त्वविशारदैः ॥ १० ॥ चतुराऽसि पिकालापे पश्य शुम्भबलं महत् ॥ प्रत्यक्षं सुरसंघानां मर्दनेन महोदयम् ॥ ११ ॥ प्रत्यक्षं च परित्यज्य वृथैवानुमितिः किल ॥ संदेहसहिते कार्ये न विपश्चित्प्रवर्तते ॥ १२ ॥ शत्रुः सुराणां परमः शुम्भः समरदुर्जयः ॥ तस्मात्त्वां प्रेरयंत्यत्र देवा दैत्येशपीडिताः ॥ १३ ॥ तस्मात्तद्वचनैः स्निग्धैर्वंचिताऽसि शुचिस्मिते ॥ दुःखाय तव देवानां शिक्षा स्वार्थस्य साधिका ॥ १४ ॥ कार्यमित्रं परिक्षिप्य धर्ममित्रं समाश्रयेत् ॥ देवाः स्वार्थपराः कामं त्वामहं सत्यमब्रुवम् ॥१५॥ भज शुम्भं सुरेशानं जेतारं भुवनेश्वरम् ॥ चतुरं सुन्दरं शूरं कामशास्त्रविशारदम् ॥१६॥ ऐश्वर्यं सर्वलोकानां प्राप्स्यसे शुम्भशासनात् ॥ निश्चयं परमं कृत्वा भर्तारं भज शोभनम् ॥ १७ ॥ व्यास उवाच ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा चंडस्य जगदम्बिका ॥ मेघगम्भीरनिनदं जगर्ज पुनरब्रवीत् ॥ १८ ॥ गच्छ जाल्म मृषा किं त्वं भाषसे वंचकं वचः ॥ त्यक्त्वा हरिहरादींश्च शुम्भं कस्माद्भजे पतिम् ॥ १९ ॥ न मे कश्चित्पतिः कार्यो

रहे हैं ॥१३॥ हे सुन्दर मुसकानवाली देवी ! आप देवताओंकी मीठी-मीठी बातें सुनकर धोखेमें आ गयी हैं। उन्होंने अपना स्वार्थ साधने और आपको संकटमें डालने लिए ही ऐसी शिक्षा दी है ॥ १४ ॥ अपना काम बनानेके लिए मैत्री करनेवाले व्यक्तिको त्यागकर धर्ममार्गपर अग्रसर करनेवाले मित्रपर ही भरोसा करना चाहिए। यह सच्ची बात मैं आपको पहले ही बता चुका हूँ कि देवता बड़े स्वार्थी हैं ॥ १५ ॥ अतएव आप देवनायकोंके विजेता, तीनों लोकोंके अधिपति, चतुर, सुन्दर, वीर और कामशास्त्रके विशेषज्ञ शुम्भका साथ दें ॥ १६ ॥ एकमात्र शुम्भके ही राज्यमें आप समस्त विश्वका वैभव प्राप्त कर सकेंगी। अतएव दृढ़ निश्चय करके आप परम सुन्दर शुम्भको अपना पति बना लें ॥१७॥ व्यासजी बोले—चण्डके इन वचनोंको सुनकर जगदम्बाने मेघके समान घोर गर्जन किया। फिर बोलीं—अरे धूर्त ! जा, भाग। तू झूठ डालनेवाली व्यर्थकी बातें क्यों करता है ? विष्णु-शिव आदि महान् देवताओंको छोड़कर मैं

कर जगदम्बाने मेघके समान घोर गर्जन किया। फिर बोलीं—अरे धूर्त ! जा, भाग। तू फूट डालनेवाली व्यर्थकी बातें क्यों करता है ? विष्णु-शिव आदि महान् देवताओंको छोड़कर मैं

शुम्भको अपना पति क्यों बनाऊँ? ॥ १८ ॥ १९ ॥ न मुझे किसीको पति बनाना है और न मुझको पतिकी कोई आवश्यकता ही है। क्योंकि मैं स्वयं जगत्के सब प्राणियोंकी अधीश्वरी हूँ ॥ २० ॥ मैंने बहुतेरे शुम्भ और हजारों निशुम्भ देखे हैं। पूर्वकालमें मैंने सैकड़ों दानवोंका वध किया है ॥ २१ ॥ मेरे देखते-देखते युग-युगमें अगणित देवताओंके समूह नष्ट हो चुके हैं। आज दैत्यसमूहके नष्ट होनेका समय आ उपस्थित हुआ है ॥ २२ ॥ आज यहाँ दैत्योंका संहार करनेवाला काल आ पहुँचा है। अतएव तू अपनी सन्ततिकी रक्षाके लिए व्यर्थ प्रयत्न कर रहा है ॥ २३ ॥ हे महामते ! तुम वीरधर्मकी रक्षा करनेके लिए मेरे साथ युद्ध करो। क्योंकि मरण तो निश्चित ही है। इसी कारण महात्मा लोग अपने यशकी रक्षाके लिए प्रयत्नशील रहते हैं ॥ २४ ॥ अब दुष्ट शुम्भ तथा निशुम्भसे तुम्हारा कोई मतलब न निकलेगा। अब तो वीरधर्मका पालन करो और मरकर सीधे स्वर्ग चले जाओ ॥ २५ ॥ शुम्भ-निशुम्भ तथा

न कार्यं पतिना सह ॥ स्वामिनी सर्वभूतानामहमेव निशामय ॥ २० ॥ शुम्भा मे बहवो दृष्टा निशुम्भाश्च सहस्रशः ॥ घातिताश्च मया पूर्वं शतशो दैत्यदानवाः ॥ २१ ॥ ममाग्रे देववृंदानि विनष्टानि युगे युगे ॥ नाशं यास्यंति दैत्यानां यूथानि पुनरद्य वै ॥ २२ ॥ काल एवागतोऽस्त्यत्र दैत्यसंहारकारकः ॥ वृथा त्वं कुरुषे यत्नं रक्षणायात्मसंततेः ॥ २३ ॥ कुरु युद्धं वीरधर्मरक्षायै त्वं महामते ॥ मरणं भावि दुस्त्याज्यं यशो रक्ष्यं महात्मभिः ॥ २४ ॥ किं ते कार्यं निशुंभेन शुम्भेन च दुरात्मना ॥ वीरधर्मं परं प्राप्य गच्छ स्वर्गं सुरालयम् ॥ २५ ॥ शुम्भो निशुंभश्चैवान्ये ये चात्र तव बांधवाः ॥ सर्वे तवानुगाः पश्चादागमिष्यंति सांप्रतम् ॥ २६ ॥ क्रमशः सर्वदैत्यानां करिष्याम्यद्य संक्षयम् ॥ विषादं त्यज मंदात्मन्कुरु युद्धं विशांपते ॥ २७ ॥ त्वामहं निहष्यामि भ्रातरं तव सांप्रतम् ॥ ततः शुंभं निशुम्भं च रक्तबीजं मदोत्कटम् ॥ २८ ॥ अन्यांश्च दानवान्सर्वान्हत्वाऽहं समरांगणे ॥ गमिष्यामि यथास्थानं तिष्ठ वा गच्छ वा द्रुतम् ॥ २९ ॥ गृहाणास्त्रं वृथा दुष्ट कुरु युद्धं मयाऽधुना ॥ किं जल्पसि मृषा वाक्यं सर्वथा कातरप्रियम् ॥ ३० ॥ व्यास उवाच ॥ तयेत्थं प्रेरितौ दैत्यौ चंडमुंडौ क्रुधान्वितौ ॥ ज्याशब्दं तरसा घोरं चक्रतुर्बलदर्पितौ ॥ ३१ ॥ साऽपि शंखस्वनं चक्रे पूरयंती दिशो दश ॥ सिंहोऽपि कुपितस्तावन्नादं समकरोद्बली ॥ ३२ ॥ तेन नादेन शक्राद्या जहर्षुरमरास्तदा ॥ मुनयो यक्ष-

उनके अन्यान्य बन्धु-बान्धव भी तुम्हारे ही पथका अनुसरण करते हुए वहाँ पहुँचेंगे ॥ २६ ॥ हे मन्दबुद्धि ! आज मैं क्रमशः सब दैत्योंका संहार कर डालूँगी। हे सेनापति ! अब विषाद त्यागकर युद्ध करो ॥ २७ ॥ मैं अभी तुझे और तेरे भाईको समाप्त कर दूँगी। उसके बाद शुम्भ, निशुम्भ, रक्तबीज तथा सभी अन्य दानवोंको समरभूमिमें मारकर मैं अपने स्थानको चली जाऊँगी। मेरी इन बातोंको सुन करके भी तुम्हारी इच्छा हो तो ठहरो, नहीं तो भागकर अपने प्राण बचा लो ॥ २८ ॥ २९ ॥ अरे व्यर्थ मोटाई ढोनेवाले दैत्य ! शस्त्र सम्हाल और अभी मेरे साथ युद्ध कर। कायरोंको प्रिय लगनेवाली व्यर्थकी बातें करके तू क्यों समय नष्ट कर रहा है ? ॥३०॥ व्यासजी बोले—भगवतीके इस प्रकार ललकारनेपर बलवान् चण्ड-मुण्ड बहुत क्रुद्ध हुए और उन्होंने अपने धनुषका बड़ा भीषण टंकोर किया ॥३१॥ उसी समय दसों दिशाओंको गुंजायमान करती हुई भगवतीने शंखध्वनि की और बलवान् सिंहने भी कुपित होकर

भयानक गर्जन किया ॥ ३२ ॥ भगवतीका शंखनाद सुनकर सब देवता, मुनि, यक्ष, गन्धर्व, सिद्ध, साध्य और किन्नर बहुत प्रसन्न हुए ॥ ३३ ॥ उसी समय चण्डिका और चण्डमें तीर, तलवार तथा गदाप्रहार द्वारा भीषण संग्राम होने लगा। जिसे देखकर कायर पुरुष भयभीत हो गये ॥ ३४ ॥ चण्डके छोड़े हुए बाणोंको अपने तीक्ष्ण बाणोंसे काटकर चण्डिकाने उग्र रूप धारण किया। फिर चण्डपर सर्पकी भाँति भयंकर बाणोंकी वर्षा करने लगीं ॥ ३५ ॥ जिस प्रकार वर्षा ऋतुके बाद किसानोंके लिए भयदायक टिड्डियोंका दल आकाशमें छा जाता है। उसी प्रकार रणभूमिका समस्त आकाशमण्डल बाणोंसे भर गया ॥ ३६ ॥ उसी अवसरपर मुण्ड भी अपने सैनिकोंके साथ रणभूमिमें आ धमका। पहुँचते ही वह अत्यन्त क्रोधपूर्वक भयानक बाणवर्षा करने लगा ॥ ३७ ॥ उन अगणित बाणोंके समूहको देखकर भगवती बहुत क्रुद्ध हो गयीं। मारे क्रोधके उनका मुख बादलके समान काला हो गया ॥ ३८ ॥ उनकी भौंहें टेढ़ी हो गयीं और आँखें केलेके फूलकी तरह लाल हो उठीं। तब देवीके ललकारसे सहसा काली प्रगट हो गयीं ॥ ३९ ॥ वे काली बाघकी खाल पहने और हाथीका चमड़ा ओढ़े थीं।

गंधर्वाः सिद्धाः साध्याश्च किन्नराः ॥ ३३ ॥ युद्धं परस्परं तत्र जातं कातरभीतिदम् ॥ चण्डिकाचण्डयोस्तीव्रं बाणखड्गगदादिभिः ॥ ३४ ॥ चण्डमुक्ताञ्छरान्देवी चिच्छेद निशितैः शरैः ॥ मुमोच पुनरुग्रान्सा बाणांश्च पन्नगानिव ॥ ३५ ॥ गगनं छादितं तत्र संग्रामे विशिखैस्तदा ॥ शलभैरिव मेघान्ते कर्षकाणां भयप्रदैः ॥ ३६ ॥ मुण्डोऽपि सैनिकैः सार्धं पपात तरसा रणे ॥ मुमोच बाणवृष्टिं वै क्रुद्धः परमदारुणः ॥ ३७ ॥ बाणजालं महद्दृष्ट्वा क्रुद्धा तत्राम्बिका भृशम् ॥ कोपेन वदनं तस्या बभूव घनसन्निभम् ॥ ३८ ॥ कदलीपुष्पनेत्रं च भ्रुकुटीकुटिलं तदा ॥ निष्क्रान्ता च तदा काली ललाटफलकाद् द्रुतम् ॥ ३९ ॥ व्याघ्रचर्माम्बरा क्रूरा गजचर्मोत्तरीयका ॥ मुंडमालाधरा घोरा शुष्कवापीसमोदरा ॥४०॥ खड्गपाशधराऽतीव भीषणा भयदायिनी ॥ खट्वांगधारिणी रौद्रा कालरात्रिरिवापरा ॥ ४१ ॥ विस्तीर्णवदना जिह्वां चालयंती मुहुर्मुहुः ॥ विस्तारजघना वेगाज्जघानासुरसैनिकान् ॥ ४२ ॥ करे कृत्वा महावीरांस्तरसा सा रुषान्विता ॥ मुखे चिक्षेप दैतेयान्पिपेष दशनैः शनैः ॥ ४३ ॥ गजान्घंटान्वितान्हस्ते गृहीत्वा निदधौ मुखे ॥ सारोहान्भक्षयित्वाऽऽजौ साऽट्टहासं चकार ह ॥ ४४ ॥ तथैव तुरगानुष्ट्रांस्तथा सारथिभिः सह ॥ निक्षिप्य वक्त्रे दशनैश्चर्वयंत्यतिभैरवम् ॥ ४५ ॥ हन्यमानं बलं प्रेक्ष्य चण्डमुण्डौ महासुरौ ॥ छादयामातुर्देवीं बाणासारैरनंतरैः ॥ ४६ ॥ चण्डश्चण्डकरच्छायं

उनके गलेमें मुण्डोंकी माला पड़ी थी। उनका पेट सूखी बावलीके समान विशाल था। उनका स्वरूप बड़ा क्रूर और भयानक था ॥ ४० ॥ उनकी भीषण आकृति देखकर डर लगता था। वे तलवार, पाश (फाँसीकी रस्सी) और खट्वाङ्ग (शस्त्रविशेष) लिये थीं। उनका भयानक रूप देखकर यही मालूम पड़ता था कि वे मानो दूसरी कालिरात्रि हैं ॥ ४१ ॥ वे मुँह खोलकर बार-बार जीभ लपलपा रही थीं। उसी समय वे विस्तृतजघना देवी वेगसे असुरसैनिकोंका संहार करने लगीं ॥ ४२ ॥ बड़े क्रोधके साथ वे बड़े-बड़े वीरोंको पकड़-पकड़कर अपने मुँहमें डाल-डालकर दाँतोंसे चबा रही थीं ॥ ४३ ॥ कितने ही घण्टा और आरोही समेत हाथियोंको उन्होंने मुखमें रखकर चबा लिया और उसके बाद अट्टहास करती हुई हँसने लगीं ॥ ४४ ॥ इसी प्रकार वे घोड़ों, घोड़सवारों, ऊँटों और उनके आरोहियोंको मुखमें डाल-डालकर बड़े भयानक ढंगसे चबा रही थीं ॥ ४५ ॥ अपनी सेनाका संहार होते देखकर महान् असुर

मुहमें डाल-डालकर दाँतोंसे चबा रही थीं ॥ ४५ ॥ अपनी सेनाका संहार होते देखकर महान् असुर

॥ ४५ ॥ इसी प्रकार वे घोड़ों, घोड़सवारों, ऊँटों और उनके आरोहियोंको मुखमें डाल-डालकर बड़े भयानक ढंगसे चबा रही थीं ॥ ४५ ॥

चण्ड-मुण्डने बाणोंकी वर्षा करके देवीको ढाँक दिया ॥ ४६ ॥ उधर चण्डने प्रचण्ड किरणोंवाले सूर्यके समान तेजस्वी तथा विष्णु भगवानके सुदर्शन चक्रकी भाँति भीषण चक्र उठाकर बड़े वेगसे देवीपर चला दिया और बारम्बार गर्जन करने लगा ॥ ४७ ॥ उसे गर्जन करते तथा सूर्यसदृश तेजस्वी चक्र चलाते देखकर कालीने अपने एक ही बाणसे उसके सुदर्शन चक्र सरीखे तेजस्वी चक्रको काट डाला ॥ ४८ ॥ उसके बाद चण्डिकाने पत्थरकी सानपर चढ़ाये हुए अपने तीक्ष्ण बाणोंसे चण्डपर प्रहार किया। देवीके बाणोंसे बुरी तरह घायल होकर वह मूर्छित हो गया और धरतीपर गिर पड़ा ॥ ४९ ॥ अपने भाईको इस प्रकार गिरते देखकर मुण्डको बहुत दुःख हुआ और अत्यन्त कुपित होकर वह कालीके ऊपर बाणवर्षा करने लगा ॥ ५० ॥ भगवती चण्डिकाने मुण्डके द्वारा की हुई उस भीषण बाणवर्षाको अपने ईषिकास्त्रसे तिल-तिल करके क्षणभरमें नष्ट कर दिया ॥ ५१ ॥ तदनन्तर उन्होंने एक अर्ध-चन्द्राकार बाणसे मुण्डपर प्रहार किया। उस बाणके लगते ही वह मदहीन होकर पृथिवीपर गिर पड़ा ॥ ५२ ॥ उसे गिरते देखकर दानवोंमें हाहाकार मच गया। उधर आकाशमें विद्यमान

चक्रं चक्रधरायुधम् ॥ चिक्षेप तरसा देवीं ननाद च मुहुर्मुहुः ॥ ४७ ॥ नदंतं वीक्ष्य तं काली रथांगं च रविप्रभम् ॥ बाणेनैकेन चिच्छेद सुप्रभं तत्सुदर्शनम् ॥ ४८ ॥ तं जघान शरैस्तीक्ष्णैश्चण्डं चंडी शिलाशितैः ॥ मूर्छितोऽसौ पपातोर्व्यां देवीबाणार्दितो भृशम् ॥ ४९ ॥ पतितं भ्रातरं वीक्ष्य मुण्डो दुःखार्दितस्तदा ॥ चकार शरवृष्टिं च कालिकोपरि कोपतः ॥५०॥ चण्डिका मुण्डनिर्मुक्तां शरवृष्टिं सुदारुणाम् ॥ ईषिकास्त्रैर्बलान्मुक्तै-श्चकार तिलशः क्षणात् ॥५१॥ अर्धचन्द्रेण बाणेन ताडयामास तं पुनः ॥ पतितोऽसौ महावीर्यो मेदिन्यां मदवर्जितः ॥५२॥ हाहाकारो महाना-सीद्दानवानां बले तदा ॥ जहर्षुरमराः सर्वे गगनस्था गतव्यथाः ॥ ५३ ॥ विहाय मूर्छां चंडस्तु संगृह्य महतीं गदाम् ॥ तरसा ताडयामास कालिकां दक्षिणे भुजे ॥ ५४ ॥ वंचयित्वा गदाघातं तं बबंध महासुरम् ॥ तरसा बाणपाशेन मंत्रमुक्तेन कालिका ॥ ५५ ॥ उत्थितस्तु तदा मुंडो बद्धं दृष्ट्वाऽनुजं बलात् ॥ आजगाम सुसन्नद्धः शक्तिं कृत्वा करे दृढाम् ॥५६॥ आगच्छंतं तदा काली दानवं वीक्ष्य सत्वरम् ॥ बबंध तरसा तं तु द्वितीयं भ्रातरं भृशम् ॥ ५७ ॥ गृहीत्वा तौ महावीर्यौ चंडमुंडौ शशाविव ॥ कुर्वती विपुलं हासमाजगामांबिकां प्रति ॥ ५८ ॥ आगत्य तामथोवाच गृहाणेमौ पशू प्रिये ॥ रणयज्ञार्थमानीतौ दानवौ रणदुर्जयौ ॥ ५९ ॥ तावानीतौ तदा वीक्ष्य चंडिका तौ वृकाविव ॥ अम्बिका कालिकां प्राह

देवताओंकी सारी व्यथा दूर हो गयी और वे आनन्दविभोर हो उठे ॥ ५३ ॥ उसी समय चण्डकी मूर्छा दूर हुई। तब तत्काल एक बहुत भारी गदा लेकर बड़े वेगसे वह कालिकाके पास पहुँचा और उनकी दाहिनी भुजापर प्रहार कर दिया ॥५४॥ उसके गदाघातको बचाकर कालिकाने मंत्रशक्तिसे संचालित पाशास्त्रसे उस महान् असुरको बाँध लिया ॥५५॥ उधर मुण्डकी मूर्छा भंग हुई। उसने जब अपने भाईको पाशास्त्रमें बुरी तरह जकड़ा देखा, तब बड़ी तैयारीके साथ हाथमें एक बर्छी लेकर कालिकाकी ओर बढ़ा ॥ ५६ ॥ बड़े वेगसे मुण्ड दानवको अपनी ओर आते देखकर भगवती कालीने उस दूसरे भाईको भी अपने पाशास्त्रमें लपेटकर बाँध लिया ॥ ५७ ॥ इस प्रकार महाबली चण्ड-मुण्डको खरहेकी तरह बाँधकर विपुल अट्टहास करती हुई कालिका अम्बिकाके पास जा पहुँचीं ॥५८॥ उनके समीप जाकर कालिकाने कहा—प्रिय बहिन ! रणयज्ञमें पूर्णाहुतिस्वरूप बलि देनेके लिए मैं इन रणदुर्जय दानवोंको पशु-

रूपमें यहाँ ले आयी हूँ। इन्हें स्वीकार करिए ॥५९॥ भेड़ियेकी तरह क्रूर उन दोनों दानवोंको अपने समक्ष उपस्थित देखकर भगवती अम्बिकाने मधुर शब्दोंमें कालिकासे कहा—॥ ६० ॥ हे युद्धप्रिये ! तुम इन दोनोंको न मारो और न छोड़ो। तुम बड़ी चतुर हो। अतएव अब शीघ्र कोई ऐसा उपाय करो कि जिससे देवताओंका कार्य सिद्ध हो जाय ॥ ६१ ॥ व्यासजी बोले कि भगवती अम्बिकाके वचन सुनकर कालिकाने कहा—जिस प्रकार यज्ञभूमिमें पशुबलिके लिए खम्भे गाड़े जाते हैं। उसी प्रकार रणयज्ञका बलिदानस्तम्भ तलवार मानी जाती है ॥ ६२ ॥ सो मैं इस ढंगसे इनको बलि चढ़ाऊँगी कि जिससे हिंसा न होगी। ऐसा कहकर देवी कालिकाने तलवारसे उन दोनोंका सिर काट लिया और बड़े आनन्दपूर्वक उनका रुधिर पान करने लगीं। इस प्रकार उन दोनों दैत्योंका विनाश देखकर अम्बिका बहुत प्रसन्न हुईं और कहने लगीं—॥६३॥६४॥ तुमने इन्हें मारकर देवताओंका बहुत बड़ा काम किया है। इस लिए मैं तुम्हें एक शुभ वरदान दे रही हूँ। हे कालिके ! तुमने चण्ड-मुण्डका वध किया है। अतएव अब तुम संसारमें 'चामुण्डा' नामसे विख्यात होओगी ॥ ६५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पञ्चम-

माधुरीसंयुतं वचः ॥ ६० ॥ वधं मा कुरु मा मुंच चतुराऽसि रणप्रिये ॥ देवानां कार्यसंसिद्धिः कर्तव्या तरसा त्वया ॥ ६१ ॥ व्यास उवाच ॥ इति तस्या वचः श्रुत्वा कालिका प्राह तां पुनः ॥ युद्धयज्ञेऽतिविख्याते खड्गयूपे प्रतिष्ठिते ॥ ६२ ॥ आलंभं च करिष्यामि यथा हिंसा न जायते ॥ इत्युक्त्वा सा तदा देवी खड्गेन शिरसी तयोः ॥६३॥ चकर्त तरसा काली पपौ च रुधिरं मुदा ॥ एवं दैत्यौ हतौ दृष्ट्वा मुदितोवाच चांबिका ॥६४॥ कृतं कार्यं सुराणां ते ददाम्यद्य वरं शुभम् ॥ चंडमुंडौ हतौ यस्मात्तस्मात्ते नाम कालिके ॥ ६५ ॥ चामुण्डेति सुविख्यातं भविष्यति धरातले ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे चंडमुंडवधे षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

॥ व्यास उवाच ॥ हतौ तौ दानवौ दृष्ट्वा हतशेषाश्च सैनिकाः ॥ पलायनं ततः कृत्वा जग्मुः सर्वे नृपं प्रति ॥ १ ॥ भिन्नांगा विशिखैः केचित्केचिच्छिन्नकरास्तथा ॥ रुधिरस्रावदेहाश्च रुदंतोऽभिययुः पुरे ॥ २ ॥ गत्वा दैत्यपतिं सर्वे चक्रुर्बुंबारवं मुहुः ॥ रक्ष रक्ष महाराज भक्षयत्यद्य कालिका॥ ३ ॥ तया हतौ महावीरौ चंडमुंडौ सुरार्दनौ ॥ भक्षिताः सैनिकाः सर्वे वयं भग्ना भयातुराः ॥ ४ ॥ भीतिदं च रणस्थानं कृतं कालिकया प्रभो ॥ पातितैर्गजवीराश्वैर्दासेरकपदातिभिः ॥ ५ ॥ शोणितौघवहा कुल्या कृता मांसातिकर्दमा ॥ केशशैवलिनी भग्नरथचक्रविराजिता ॥६॥

स्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

(रक्तबीजका युद्धभूमिके लिए प्रस्थान) व्यासजी बोले—हे महाराज ! उन दोनों महादैत्योंका विनाश देखकर बाकी बचे हुए सैनिक भाग खड़े हुए और वे सब दैत्यराज शुम्भके पास गये ॥ १ ॥ बाणोंके आघातसे कुछ सैनिकोंके अंग कट गये थे और कुछके हाथ उड़ गये थे। अतएव रुधिरसे सराबोर वे सैनिक रोते-कलपते हुए नगरमें पहुँचे ॥२॥ दैत्यराज शुम्भके समक्ष पहुँचकर घिघियाते हुए वे सैनिक कहने लगे—हे महाराज ! हमारी रक्षा करिए—हमें बचाइए। वह कालिका हम सबको खाये जा रही है॥ ३ ॥ देवताओंको सतानेवाले महावीर चण्ड-मुण्डको कालिकाने मार डाला। कितने ही सैनिकोंको उसने खा लिया, तब भयभीत होकर हम लोग भाग आये ॥ ४ ॥ हे स्वामिन् ! कालिकाने हाथीसवार, घुड़सवार, ऊँटसवार

चण्ड-मुण्डको कालिकाने मार डाला। कितने ही सैनिकोंको उसने खा लिया, तब भयभीत होकर हम लोग भाग आये ॥ ४ ॥ हे स्वामिन्! कालिकाने हाथीसवार, घुड़सवार, ऊँटसवार तथा पैदल सैनिकोंको काट-काटकर रणभूमिको मुर्दोंसे इस तरह पाट दिया है कि वह इस समय बड़ी डरावनी लग रही है ॥ ५ ॥ संग्रामभूमिमें रुधिरकी नदी बह चली है। उस नदीमें मांसका कीचड़, मस्तकके केश सेवार और टूटे रथोंके पहिए भँवरका काम कर रहे हैं॥६॥ सैनिकोंके कटे हुए हाथ-पैर मछली और मस्तक तुम्बीके फल प्रतीत होते हैं। उस रुधिरनदीको देखकर कायर भयभीत हो उठते हैं और वीरोंका हर्ष बढ़ जाता है ॥७॥ हे महाराज! आप अपने दैत्यकुलकी रक्षा करिए और तत्काल पातालको चले जाइए। नहीं तो वह क्रुद्ध देवी अवश्य सब दानवोंका विनाश कर डालेगी ॥ ८ ॥ हे दानवेश्वर! अम्बिकाका सिंह भी दानवोंको खाये जा रहा है और कालिका देवी तो असुरसैनिकोंको अपने बाणोंका लक्ष्य बना-बनाकर दैत्योंका वध करती ही है। अतएव हे राजेन्द्र! आप भी कोपके वशीभूत होकर अपने भाई निशुम्भके साथ अपनी मृत्युको व्यर्थ बुलाना चाहते हैं ॥९॥१०॥ हे महाराज! जिसके लिए आप अपने बन्धु-बान्धवोंका वध करा रहे हैं, उस कुलनाशिनी स्त्रीको लेकर आप क्या करेंगे? ॥११॥ हे महाराज! संसारमें जय और पराजय दैवके अधीन रहता है। अतएव थोड़े लाभके लिए बड़ी

छिन्नबाह्वादिमत्स्याढ्या शीर्षतुंबीफलान्विता ॥ भयदा कातराणां वै सुराणां मोदवर्धिनी ॥ ७ ॥ कुलं रक्ष महाराज पातालं गच्छ सत्वरम् ॥ क्रुद्धा देवी क्षयं सद्यः करिष्यति न संशयः ॥ ८ ॥ सिंहोऽपि भक्षयत्याजौ दानवान्दनुजेश्वर ॥ तथैव कालिका देवी हंति बाणैरनेकधा ॥ ९ ॥ तस्मात्त्वमपि राजेन्द्र मरणाय मृषा मतिम् ॥ करोषि सहितो भ्रात्रा शुम्भेन कुपिताशयः ॥ १० ॥ किं करिष्यति नार्येषा क्रूरा कुलविनाशिनी ॥ यस्या हेतोर्महाराज हंतुमिच्छसि बांधवान् ॥११॥ दैवाधीनौ महाराज लोके जयपराजयौ ॥ अल्पार्थाय महद्दुःखं बुद्धिमान्न प्रकल्पयेत् ॥ १२ ॥ चित्रं पश्य विधेः कर्म यदधीनं जगत् प्रभो ॥ निहता राक्षसाः सर्वे स्त्रिया पश्यैकयाऽनया ॥ १३ ॥ जेता त्वं लोकपालानां सैन्ययुक्तो हि सांप्रतम् ॥ एका प्रार्थयते बाला युद्धायेति सुसंभ्रमः ॥ १४ ॥ पुरा त्वया तपस्तप्तं पुष्करे देवतायने ॥ वरदानाय संप्राप्तो ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ १५ ॥ धात्रोक्तस्त्वं महाराज वरं वरय सुव्रत ॥ तदा त्वयाऽमरत्वं च प्रार्थितं ब्रह्मणः किल ॥१६॥ देवदैत्यमनुष्येभ्यो न भवेन्मरणं मम ॥ सर्पकिन्नरयक्षेभ्यः पुंलिङ्गवाचकादपि ॥१७॥ तस्मात्त्वां हंतुकामैषा प्राप्ता योषिद्वरा प्रभो ॥ युद्धं मा कुरु राजेन्द्र विचार्यैवं धियाऽधुना ॥१८॥ देवी ह्येषा महामाया

भारी विपत्ति मोल लेना बुद्धिमानीका काम नहीं है ॥१२॥ हे प्रभो! जिसके अधीन विश्व रहता है, उस विधाताकी विचित्रता तो देखिए कि एक अकेली स्त्रीने सभी राक्षसोंका सफाया कर दिया है ॥१३॥ आप सब लोकपालोंको हरा चुके हैं और इस समय आपके पास सैनिक शक्ति भी पहलेसे बहुत अधिक है। तथापि एक स्त्री आपको युद्धके लिए ललकार रही है। यही देखकर तो हम सब चकित हो रहे हैं ॥१४॥ पूर्वकालमें आपने जब देवभूमि पुष्करतीर्थमें जाकर तप किया था, तब आपको वर देनेके लिए स्वयं लोकपितामह ब्रह्माजी आये थे ॥१५॥ ब्रह्माजीने कहा—हे सुव्रत! वर माँगो। तब ब्रह्माजीसे आपने अमर हो जानेका वरदान माँगा ॥१६॥ और कहा कि मैं देवता, दैत्य, मनुष्य, सर्प, किन्नर, यक्ष तथा पुरुषवाचक जितने भी प्राणी हैं, उनमेंसे किसीके हाथों न मरूँ ॥१७॥ इसी कारण हे प्रभो! यह श्रेष्ठ स्त्री आपका वध करने आयी है। ऐसा विचारकर हे राजेन्द्र! आप उससे युद्ध मत करिए ॥ १८ ॥

हे राजेश्वर ! वह रमणी साक्षात् महामाया और परमा प्रकृति है । प्रलयकालमें वही समस्त विश्वका संहार करती है ॥ १९ ॥ वही सब बालकोंको उत्पन्न करती है । वह सब देवताओंकी स्वामिनी है । वह त्रिगुणा और तामसी देवी सर्वशक्तिसम्पन्न है ॥ २० ॥ वह देवी अजेया, अक्षया, नित्या और सर्वज्ञा कही गयी है। वही वेदमाता, गायत्री, सन्ध्या और सब देवताओंको आश्रयदायिनी है ॥२१॥ वह निर्गुणा, सगुणा, सिद्धा, सर्वसिद्धिप्रदा और अविनाशिनी कहलाती है । वह आनन्ददायिनी गौरी सबको आनन्द प्रदान करती है । वह सब देवताओंको अभयदान देती है ॥२२॥ ऐसा समझकर हे महाराज ! आप उसके साथ वैरभाव रखना छोड़ दें । हे राजेन्द्र ! आप उसकी शरणमें चले जाइए । वह देवी आपकी रक्षा करेगी ॥ २३ ॥ आप उसके आज्ञाकारी बनकर अपने कुलका जीवन बचा लीजिए । जिससे मरनेसे बाकी बचे हुए दैत्य दीर्घजीवी हो सकें ॥ २४ ॥ व्यासजी बोले--उन सैनिकोंके वचन सुनकर देवसेनाके

प्रकृतिः परमा मता ॥ कल्पांतकाले राजेन्द्र सर्वसंहारकारिणी ॥ १९ ॥ उत्पादयित्री लोकानां देवानामीश्वरी शुभा ॥ त्रिगुणा तामसी देवी सर्वशक्तिसमन्विता ॥२०॥ अजय्या चाक्षया नित्या सर्वज्ञा च सदोदिता ॥ वेदमाता च गायत्री संध्या सर्वसुरालया ॥ २१ ॥ निर्गुणा सगुणा सिद्धा सर्वसिद्धप्रदाऽव्यया ॥ आनन्दाऽऽनन्ददा गौरी देवानामभयप्रदा ॥ २२ ॥ एवं ज्ञात्वा महाराज वैरभावं त्यजानया ॥ शरणं व्रज राजेन्द्र देवी त्वां पालयिष्यति ॥२३॥ आज्ञाकारी भवैतस्याः संजीवय निजं कुलम् ॥ हतशेषाश्च ये दैत्यास्ते भवन्तु चिरायुषः ॥ २४ ॥ व्यास उवाच ॥ इति तेषां वचः श्रुत्वा शुम्भः सुरबलार्दनः ॥ उवाच वचनं तथ्यं वीरवर्यं गुणान्वितम् ॥ २५ ॥ शुम्भ उवाच ॥ मौनं कुर्वन्तु भो मंदा यूयं भग्ना रणाजिरात् ॥ शीघ्रं गच्छत पातालं जीविताशा बलीयसी ॥२६॥ दैवाधीनं जगत्सर्वं का चिन्ताऽत्र जये मम ॥ देवास्तथैव ब्रह्माद्या दैवाधीना वयं यथा ॥२७॥ ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रोऽयं यमोऽग्निर्वरुणस्तथा ॥ सूर्यश्चन्द्रस्तथा शक्रः सर्वे दैववशाः किल ॥ २८ ॥ का चिन्ता तर्हि मे मन्दा यद्भावि तद्भविष्यति ॥ उद्यमस्तादृशो भूयाद्यादृशी भवितव्यता ॥ २९ ॥ सर्वथैवं विचार्यैव न शोचन्ति बुधाः क्वचित् ॥ स्वधर्मं न त्यजन्तीह ज्ञानिनो मरणाद्भयात् ॥३०॥ सुखं दुःखं तथैवायुर्जीवितं मरणं नृणाम् ॥ काले भवति संप्राप्ते सर्वथा दैवनिर्मितम् ॥ ३१ ॥ ब्रह्मा पतति काले

विनाशक शुम्भने तड़पकर ऐसे वचन कहे कि जिनके एक-एक शब्दसे वीररस टपक रहा था ॥२५॥ शुम्भ बोला--अरे मूर्खो ! चुप रहो । तुम लोग रणभूमिसे भाग आये हो । तुम्हें यदि जीवित रहनेकी प्रबल अभिलाषा हो तो अभी पाताललोकको चले जाओ ॥२६॥ यह समस्त संसार दैवके अधीन रहता है । तब विजयके विषयमें मुझे क्या चिन्ता हो सकती है ? जैसे ब्रह्मादिक देवता सदा दैवके अधीन रहते हैं । उसी प्रकार मैं भी सदा दैवके अधीन रहता हूँ ॥ २७ ॥ ब्रह्मा, विष्णु, शिव, यम, अग्नि, वरुण, सूर्य, चन्द्रमा और इन्द्र ये सब देवता दैवके वशवर्ती हैं ॥२८॥ तब हे मूर्खो ! मुझे किस बातकी चिन्ता है ? जो होना होगा, सो होगा । जैसा होनहार होता है, उसी प्रकारका उद्योग भी सूझता है ॥ २९ ॥ इसी प्रकार विचार करके विद्वान् पुरुष शोक नहीं करते । ज्ञानी पुरुष मरणके भयसे अपना धर्म कदापि नहीं त्यागते ॥३०॥ समय आनेपर लोगोंका जो सुख, दुःख, आयु, जीवन और मरण प्राप्त

विचार करके विद्वान् पुरुष शोक नहीं करते । ज्ञानी पुरुष मरणके भयसे अपना धर्म कदापि नहीं त्यागते ॥३०॥ समय आनेपर लोगोंका जो सुख, दुःख, आयु, जीवन और मरण प्राप्त

होता है, वह दैवका अमिट विधान रहता है ॥३१॥ समय पूरा हो जानेपर ब्रह्मा, विष्णु, शिव और इन्द्र आदि सब देवताओंका भी विनाश हो जाता है ॥ ३२ ॥ उसी तरह हम सब दैत्य भी सदा कालके अधीन रहते हैं । अपने वीरधर्मका पालन करते हुए हमें विजय और विनाश जो भी प्राप्त होगा, उसे हम स्वीकार करेंगे ॥ ३३ ॥ उस स्त्रीने जब मुझे युद्धके लिए ललकारा है, तब उसके भयसे भागकर हम सैकड़ों वर्ष क्यों जियें ? ॥३४॥ आज ही मैं उसके साथ संग्राम करने जाऊँगा । फिर जो होना होगा, सो होगा । उस समय विजय या विनाश जो भी प्राप्त होगा, उसे सहर्ष स्वीकार करूँगा ॥ ३५ ॥ उद्यमवादी विद्वान् भाग्यको मिथ्या कहते हैं । जो लोग उनके कथनका तात्पर्य समझते हैं, वे वीर पुरुष उनकी बातको युक्तिसंगत मानकर उसीके अनुसार चलते हैं ॥३६॥३७॥ मूर्ख लोग ही बारम्बार भाग्यको बड़ा मानकर उसका बखान करते हैं । लेकिन जब अदृष्ट (भाग्य) अदृश्य है, तब उसके अस्तित्वका प्रमाण ही

स्वे विष्णुश्च पार्वतीपतिः ॥ नाशङ्गच्छन्त्यायुषोऽन्ते सर्वे देवाः सवासवाः ॥ ३२ ॥ तथाऽहमपि कालस्य वशगः सर्वथाऽधुना ॥ नाशं जयं वा गन्ताऽस्मि स्वधर्मपरिपालनात् ॥३३॥ आहूतोऽप्यनया कामं युद्धायाबलया किल ॥ कथं पलायनपरो जीवेयं शरदां शतम् ॥३४॥ करिष्याम्यद्य संग्रामं यद्भावि तद्भवत्विह ॥ जयो वा मरणं वाऽपि स्वीकरोमि यथा तथा ॥३५॥ दैवं मिथ्येति विद्वांसो वदन्त्युद्यमवादिनः ॥ युक्तियुक्तं वचस्तेषां ये जानंत्यभिभाषितुम् ॥ ३६ ॥ उद्यमेन विना कामं न सिद्ध्यन्ति मनोरथाः ॥ कातरा एव जल्पन्ति यद्भाव्यं तद्भविष्यति ॥३७॥ अदृष्टं बलवन्मूढाः प्रवदन्ति न पण्डिताः ॥ प्रमाणं तस्य सत्त्वे किमदृश्यं दृश्यते कथम् ॥ ३८ ॥ अदृष्टं क्वापि दृष्टं स्यादेषा मूर्खविभीषिका ॥ अवलम्बम्विनैवैषा दुःखे चित्तस्य धारणा ॥३९॥ चक्रीसमीपे संविष्टा संस्थिता पिष्टकारिणी ॥ उद्यमेन विना पिष्टं न भवत्येव सर्वथा ॥ ४० ॥ उद्यमे च कृते कार्यं सिद्धिं यात्येव सर्वथा ॥ कदाचित्तस्य न्यूनत्वे कार्यं नैव भवेदपि ॥ ४१ ॥ देशङ्कालं च विज्ञाय स्वबलं शत्रुजं बलम् ॥ कृतं कार्यं भवत्येव बृहस्पतिवचो यथा ॥ ४२ ॥ व्यास उवाच ॥ इति निश्चित्य दैत्येन्द्रो रक्तबीजं महासुरम् ॥ प्रेषयामास संग्रामे सैन्येन महताऽऽवृतम् ॥ ४३ ॥ शुम्भ उवाच ॥ रक्तबीज महाबाहो गच्छ त्वं समरांगणे ॥ कुरु युद्धं महाभाग यथा ते बलमाहितम् ॥ ४४ ॥ रक्तबीज उवाच ॥ महाराज न ते

क्या है ? ॥३८॥ अदृष्टको कभी किसीने देखा भी है ? वह तो मूर्खोंके लिए विभीषिकामात्र है । उसका कोई आधार नहीं है । हाँ, कष्ट पड़नेपर मनको ढाढ़स बँधानेके लिए वह एक सहारा अलबत्ते बन जाता है ॥३९॥ कोई पिसान पीसनेवाली स्त्री भाग्यका भरोसा करके चक्कीके पास चुपचाप बैठ जाय तो क्या चक्की चलानेका उपाय किये बिना अपने आप गेहूँ पिसकर आटा तैयार हो जायगा ? ॥ ४० ॥ अतएव उद्योग करनेसे ही सफलता मिलती है । उद्योगमें किसी भी प्रकारकी कमी होनेपर कार्य नहीं सिद्ध होता ॥४१॥ आचार्य बृहस्पतिका कथन है कि देश, काल अपना बल और शत्रुका बल देखकर युद्ध आरम्भ किया जाय तो उसका परिणाम बड़ा अच्छा होता है ॥४२॥ व्यासजीने कहा—दैत्यराज शुम्भने ऐसा निश्चय करके बहुत बड़ी सेनाके साथ असुरसेनापति रक्तबीजको युद्धभूमिमें भेजा ॥ ४३ ॥ चलते समय शुम्भने कहा—हे रक्तबीज ! हे महाबाहो ! अब तुम समरभूमिमें जाओ । हे महाभाग ! अपनी शक्तिभर खूब जमकर

युद्ध करो ॥४४॥ रक्तबीज बोला—हे महाराज ! आप तनिक भी चिन्ता न कर । मैं उस अबलाको या तो आपके वशमें कर दूँगा या मार डालूँगा ॥ ४५ ॥ आप मेरा युद्धचातुर्य देखें । मेरे आगे देवताओंकी प्रिय वह रमणी किस गिनतीमें है ? मैं रणभूमिमें हराकर उस युवतीको सदाके लिए आपकी दासी बना दूँगा ॥४६॥ व्यासजीने कहा—हे कुरुवंशमें सर्वश्रेष्ठ ! ऐसा कहकर महान् असुर रक्तबीज रथपर सवार होकर अपनी विशाल सेनाके साथ चला ॥४७॥ हाथी, घोड़े, रथ तथा पैदल सैनिकोंकी सेना सुसज्जित करके रथपर बैठा हुआ वह उस स्थानपर पहुँचा, जहाँ देवी एक पर्वतके शिखरपर बैठी हुई थीं ॥ ४८ ॥ सदलबल रक्तबीजको आते देखकर देवीने शंख बजाया । उसकी ध्वनि सुनकर दैत्योंमें भय व्याप गया और देवता प्रमुदित हो उठे ॥४९॥ वह बहुत तेज शंखध्वनि सुनकर असुरसेनापति रक्तबीज द्रुतगतिसे भगवती चामुण्डाके पास जा पहुँचा और मृदु वाणीमें बोला ॥ ५० ॥ रक्तबीजने कहा—हे बाले !

कार्या चिन्ता स्वल्पतराऽपि वा ॥ अहमेनां हनिष्यामि करिष्यामि वशे तव ॥ ४५ ॥ पश्य मे युद्धचातुर्यं क्वेयं बाला सुरप्रिया ॥ दासीं तेऽहं करिष्यामि जित्वेमां समरे बलात् ॥४६॥ व्यास उवाच ॥ इत्याभाष्य कुरुश्रेष्ठ रक्तबीजो महासुरः ॥ जगाम रथमारुह्य स्वसैन्यपरिवारितः ॥४७॥ हस्त्यश्वरथपादातवृन्दैश्च परिवेष्टितः ॥ निर्जगाम रथारूढो देवीं शैलोपरि स्थिताम् ॥ ४८ ॥ तमागतं समालोक्य देवी शङ्खमवादयत् ॥ भयदं सर्वदैत्यानां देवानां मोदवर्धनम् ॥४९॥ श्रुत्वा शंखस्वनं चोग्रं रक्तबीजोऽतिवेगवान् ॥ गत्वा समीपे चामुण्डां बभाषे वचनं मृदु ॥ ५० ॥ रक्तबीज उवाच ॥ बाले किं मां भीषयसि मत्वा त्वं कातरं किल ॥ शङ्खनादेन तन्वङ्गि वेत्सि किं धूम्रलोचनम् ॥५१॥ रक्तबीजोऽस्मि नाम्नाऽहं त्वत्सकाशमिहागतः ॥ युद्धेच्छा चेत्पिकालापे सज्जा भव भयं न मे ॥ ५२ ॥ पश्याद्य मे बलङ्कान्ते दृष्टा ये कातरास्त्वया ॥ नाहं पंक्तिगतस्तेषां कुरु युद्धं यथेच्छसि ॥५३॥ वृद्धाश्च सेविताः पूर्वं नीतिशास्त्रं श्रुतं त्वया ॥ पठितं चार्थविज्ञानं विद्वद्गोष्ठीकृताऽथ वा ॥ ५४ ॥ साहित्यतंत्रविज्ञानं चेदस्ति तव सुन्दरि ॥ शृणु मे वचनं पथ्यं तथ्यं प्रमितिबृंहितम् ॥ ५५ ॥ रसानां च नवानां वै द्वावेव मुख्यतां गतौ ॥ शृंगारकः शांतिरसो विद्वज्जनसभासु च ॥५६॥ तयोः शृंगार एवादौ नृपभावे प्रतिष्ठितः ॥ विष्णुर्लक्ष्म्या सहास्ते वै सावित्र्या चतुराननः ॥ ५७ ॥ शच्येंद्रः शैलसुतया

क्या आप मुझे कायर समझती हैं, जो इस प्रकार शंख बजाकर मुझे डरा रही हैं । हे कोमलांगी ! क्या आपने मुझे भी धूम्रलोचन समझ लिया है ? ॥ ५१ ॥ मेरा नाम रक्तबीज है । मैं आपके पास आया हूँ । यदि युद्धकी इच्छा हो तो तैयार हो जाइए । मुझे कुछ भी भय नहीं है ॥५२॥ हे कान्ते ! आज आप मेरा पराक्रम देखिए ! अबतक जितने दैत्य आये, वे सब कायर थे । मैं उन कायरोंकी श्रेणीमें नहीं हूँ । आपकी जैसी इच्छा हो, उस तरह लड़ लीजिए ॥५३॥ किन्तु यदि आपने वृद्धजनोंकी सेवा की हो, नीतिशास्त्रका स्वाध्याय किया हो, अर्थशास्त्र पढ़ा हो, विद्वानोंकी सभामें सम्मिलित हुई हों और साहित्य तथा तंत्रशास्त्रका ज्ञान प्राप्त किया हो तो हे सुन्दरी ! आप मेरे हितकारी, सत्य और प्रामाणिक वचन सुन लें ॥५४॥५५॥ विद्वन्मण्डलने नौ रसोंमें शृंगार और शान्ति इन्हीं दो रसोंको मुख्य माना है ॥५६॥ इन दोनोंमें भी शृंगाररस राजा समझा गया है । देखिए न, विष्णु लक्ष्मीके साथ, ब्रह्मा

सावित्रीके साथ, इन्द्र शचीके साथ और शिव शैलपुत्री उमाके साथ सोते हैं। उसी प्रकार वृक्ष लताओंके साथ, मृग मृगीके साथ और कपोत कपोतीके साथ आनन्द करता है ॥५७॥५८॥ इस तरह संसारके सभी प्राणी संयोगजनित सुखका उपभोग करते हैं। जिन्हें भोग तथा वैभवका सुख नहीं प्राप्त हो सका है, वे पुरुष कायर हैं ॥ ५९ ॥ वे अधम मनुष्य ही संन्यासी होते हैं, जिन्हें भाग्यने धोखा दिया है। उन्हें संसारके रसका कुछ भी ज्ञान नहीं हो पाता और धूर्त वंचक उन्हें ठग लेते हैं ॥६०॥ वे बेचारे साधु-सन्तरूपधारी ठगोंकी मीठी-मीठी बातोंमें आकर अहितकारी शान्तिरसमें निमग्न हो जाते हैं। लेकिन जब उनके मनमें वासनाका तूफान उठता है, तब उनको ज्ञान-वैराग्यका उपदेश याद नहीं रहता ॥६१॥ लोभ, क्रोध एवं दुर्धर्ष तथा बुद्धिनाशक मोहको जीतना बड़ा कठिन काम है। अतएव हे कल्याणी! आप भी परम सुन्दर तथा मन मोह लेनेवाले देवविजयी शुम्भ तथा निशुम्भको अपना पति बना लीजिए। व्यासजी बोले—इतना कहकर रक्तबीज देवीके समक्ष चुपचाप खड़ा हो गया। उसकी इन बातोंको सुनकर चामुण्डा, कालिका तथा अम्बिका ठठाकर हँसने लगीं ॥६२॥६३॥

शंकरः सह शेरते ॥ वल्ल्या वृक्षो मृगो मृग्या कपोत्या च कपोतकः ॥ ५८ ॥ एवं सर्वे प्राणभृतः संयोगरसिका भृशम् ॥ अप्राप्तभोगविभवा ये चान्ये कातरा नराः ॥ ५९ ॥ भवंति यतयस्ते वै मूढा दैवेन वंचिताः ॥ असंसाररसज्ञास्ते वञ्चिता वंचनापरैः ॥ ६० ॥ मधुरालापनिपुणै रताः शांतिरसे हि ते ॥ क्व ज्ञानं क्व च वैराग्यं वर्तमाने मनोभवे ॥६१॥ लोभे क्रोधे च दुधर्षे मोहे मतिविनाशके ॥ तस्मात्त्वमपि कल्याणि कुरु कांतं मनोहरम् ॥६२॥ शुम्भं सुराणां जेतारं निशुम्भं वा महाबलम् ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्त्वा रक्तबीजोऽसौ विरराम पुरः स्थितः ॥ ६३ ॥ श्रुत्वा जहास चामुंडा कालिका चांबिका तथा ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

॥ व्यास उवाच ॥ कृत्वा हास्यं ततो देवी तमुवाच विशांपते ॥ मेघगंभीरया वाचा युक्तियुक्तमिदं वचः ॥ १ ॥ पूर्वमेव मया प्रोक्तं मंदात्मन्किं विकत्थसे ॥ दूतस्याग्रे यथायोग्यं वचनं हितसंयुतम् ॥ २ ॥ सदृशो मम रूपेण बलेन विभवेन च ॥ त्रिलोक्यां यदि कोऽपि स्यात्तं पतिं प्रवृणोम्यहम् ॥ ३ ॥ ब्रूहि शुम्भं निशुम्भं च प्रतिज्ञा मे पुरा कृता ॥ तस्माद्युद्ध्यस्व जित्वा मां विवाहं विधिवत्कुरु ॥ ४ ॥ त्वं वै तदाज्ञया प्राप्तस्तस्य कार्यार्थसिद्धये ॥ संग्रामं कुरु पातालं गच्छ वा पतिना सह ॥ ५ ॥ व्यास उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं देव्याः स दैत्योऽमर्षपूरितः ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

(रक्तबीजका मूर्छित होना और मातृगणों द्वारा असुरसेनाका संहार) व्यासजी बोले—हे जननायक राजा जनमेजय! हास्यके बाद मेघसदृश गंभीरवाणीमें वे देवी यह युक्तिसंगत वचन बोलीं—॥ १ ॥ अरे मूढ़! मुझे जो उचित और हितकारी बात कहनी थी, सो दूत सुग्रीवसे मैं पहले ही कह चुकी हूँ। अब तू क्या मेरे आगे डींग मारता है? ॥ २ ॥ मैंने उससे स्पष्ट शब्दोंमें कह दिया था कि समस्त त्रिलोकीमें जो पुरुष रूप, बल और वैभवमें मेरे समान होगा, मैं उसीको अपना पति बनाऊँगी ॥ ३ ॥ तुम जाकर शुम्भ-निशुम्भसे कह दो कि मैं पूर्वकालमें प्रतिज्ञा कर चुकी हूँ। अतएव वे मेरे साथ युद्ध करें और रणमें मुझे पराजित करके मेरे साथ विधिवत् विवाह कर लें ॥४॥ तुम दैत्यपति शुम्भकी आज्ञासे उनका उद्देश्य पूर्ण करनेके लिए यहाँ आये

हो। अतएव तुम चाहो तो मेरे साथ युद्ध करो अथवा अपने स्वामी शुम्भ-निशुम्भके साथ पाताललोकको भाग जाओ ॥ ५ ॥ व्यासजी बोले—देवीके वचन सुनते ही रक्तबीज मारे क्रोधके बौखला उठा और बड़े वेगसे उसने देवीके सिंहपर एक साथ कई बाण चला दिया ॥६॥ भगवती अम्बिकाने आकाशमें सर्पके समान उड़ते हुए उन बाणोंको ज्योंही देखा, त्योंही बड़ी फुर्तीके साथ अपने अति तीक्ष्ण बाणोंसे उन्हें क्षणभरमें काटकर गिरा दिया ॥ ७ ॥ तदनन्तर कानतक धनुषकी डोरी खींचकर अम्बिकाने पत्थरपर घिसे हुए तीक्ष्ण बाणोंसे महान् असुर रक्तबीजके ऊपर प्रहार किया ॥ ८ ॥ देवीके बाणोंसे घायल होकर वह पापी रथपर ही मूर्छित हो गया। इस प्रकार रक्तबीजके गिर जानेपर हाहाकार मच गया ॥९॥ उसके साथवाले असुरसैनिक 'हाय, हम मारे गये' ऐसा कहकर चिल्लाने लगे। अपने सैनिकोंका करुण क्रन्दन सुनकर दैत्यराज शुम्भने सब दैत्ययोद्धाओंको शस्त्रास्त्रसे सुसज्जित हो जानेका आदेश दिया। शुम्भने कहा—कंबोज देशके सभी दानववीर अपनी-अपनी सेना साथ लेकर रणभूमिमें जायँ ॥१०॥११॥ उनके अतिरिक्त अन्य महाबली विशेष करके कालकेय जातिके योद्धा भी रणभूमिको प्रस्थान कर दें।

मुमोच तरसा बाणान्सिंहस्योपरि दारुणान् ॥६॥ अम्बिका ताञ्छरान्वीक्ष्य गगने पन्नगोपमान् ॥ चिच्छेद सायकैस्तीक्ष्णैर्लघुहस्ततया क्षणात् ॥७॥ अन्यैर्जघान विशिखै रक्तबीजं महासुरम् ॥ अम्बिका चापनिर्मुक्तैः कर्णाकृष्टैः शिलाशितैः ॥ ८ ॥ देवीबाणहतः पापो मूर्च्छामाप रथोपरि ॥ पतिते रक्तबीजे तु हाहाकारो महानभूत् ॥ ९ ॥ सैनिकाश्चुक्रुशुः सर्वे हताः स्म इति चाब्रुवन् ॥ ततो बुम्बारवं श्रुत्वा शुम्भः परमदारुणम् ॥१०॥ उद्योगं सर्वसैन्यानां दैत्यानामादिदेश ह ॥ शुम्भ उवाच ॥ निर्यातु दानवाः सर्वे कांबोजाः स्वबलैर्वृताः ॥११॥ अन्येऽप्यतिबलाः शूराः कालकेया विशेषतः ॥ व्यास उवाच ॥ इत्याज्ञप्तं बलं सर्वं शुम्भेन च चतुर्विधम् ॥१२॥ निर्जगाम मदाविष्टं देवीसमरमण्डले ॥ तमागतं समालोक्य चण्डिका दानवं बलम् ॥ १३ ॥ घण्टानादं चकाराशु भीषणं भयदं मुहुः ॥ ज्यास्वनं शङ्खनादं च चकार जगदम्बिका ॥ १४ ॥ तेन नादेन सा जाता काली विस्तारिताननाः ॥ श्रुत्वा तन्निनदं घोरं सिंहो देव्याश्च वाहनम् ॥१५॥ जगर्ज सोऽपि बलवाञ्जनयन्भयमद्भुतम् ॥ तन्निनादमुपश्रुत्य दानवाः क्रोधमूर्छिताः ॥ १६ ॥ सर्वे चिक्षिपुरस्त्राणि देवीं प्रति महाबलाः ॥ तस्मिन्नेवायते युद्धे दारुणे लोमहर्षणे ॥ १७ ॥ ब्रह्मादीनां च देवानां शक्तयश्चण्डिकां ययुः ॥ यस्य देवस्य यद्रूपं यथा भूषणवाहनम् ॥ १८ ॥ तादृग्रूपास्तदा देव्यः प्रययुः समरांगणे ॥ ब्रह्माणी वरटारूढा साक्षसूत्र-

व्यासजी बोले—दैत्यराज शुम्भके आदेश देते ही वह मदमत्त चतुरंगिणी सेना देवीकी युद्धभूमिकी ओर चल पड़ी। उस विशाल दानवी सेनाको आती देखकर भगवती चण्डिका बारम्बार कर्कश तथा भयदायक घण्टा बजाने लगीं। भगवती अम्बिका धनुषका टंकोर तथा शंखनाद कर रही थीं ॥ १२–१४ ॥ उस समय कालीजी भी अपना मुँह फैलाकर भयंकर शब्द करने लगीं। वह निनाद सुनकर देवीका वाहन बलवान् सिंह भी शत्रुसैनिकोंमें भयसंचार करता हुआ अद्भुत ढंगसे गर्जन करने लगा। वह गर्जन सुनकर दानव अत्यधिक क्रुद्ध हो उठे ॥ १५ ॥ १६ ॥ अतएव सब महाबली दैत्य एक साथ मिलकर देवीपर नाना प्रकारके शस्त्रास्त्रोंकी वर्षा करने लगे। उस भयानक और लोमहर्षक युद्धमें ब्रह्मादिक देवताओंकी विभिन्न शक्तियाँ भी आ पहुँचीं। जिस देवताका जैसा रूप था, जैसा भूषण और वाहन था। ठीक उसी प्रकारके रूप, भूषण और वाहनसे युक्त देवियाँ संग्रामभूमिमें उतर आयीं। जैसे हंसपर सवार, रुद्राक्षकी माला धारण

किये और कमण्डल लेकर ब्रह्माजीकी ब्रह्माणी आयीं। गरुड़पर आरूढ़, शंख-चक्र-गदा धारण किये, हाथमें कमल लिये और पीताम्बर पहने भगवान विष्णुकी वैष्णवी शक्ति आयीं। बैलपर सवार, त्रिशूल हाथमें लिये, मस्तकपर अर्धचन्द्र धारण किये और सर्पोंके कंगन पहने शिवाशक्ति वहाँ आ उपस्थित हुई। मयूरपर सवार, हाथमें शक्ति लिये, स्वामिकार्तिकेयका रूप धारण करके सुमुखी कौमारी शक्ति वहाँ आयीं। अतिशय उज्ज्वल हाथीपर सवार एवं सुन्दर मुखवाली इन्द्राणी शक्ति हाथमें वज्र लिये बड़े रोषके साथ संग्रामभूमिमें आयीं। सूकरका रूप धारण करके अत्यन्त उच्च प्रेतपर सवार वाराही शक्ति वहाँ आयीं ॥१७–२४॥ इसी प्रकार नारसिंही शक्ति नृसिंहके समान रूप धारण करके और यमराजकी भयदायिनी याम्या शक्ति महिषपर सवार हो तथा हाथमें दण्ड लिये वहाँ आयीं ॥२५॥ ठीक यमराजके समान उनका स्वरूप था। इसी तरह वरुणदेवकी वारुणी तथा कुबेरकी मदमत्त कौबेरी शक्ति भी आयीं ॥ २६ ॥ इसी

कमंडलुः ॥ १९ ॥ आगता ब्रह्मणः शक्तिर्ब्रह्माणीति प्रतिश्रुता ॥ वैष्णवी गरुडारूढा शंखचक्रगदाधरा ॥ २० ॥ पद्महस्ता समायाता पीतांबर-विभूषिता ॥ शांकरी तु वृषारूढा त्रिशूलवरधारिणी ॥ २१ ॥ अर्धचन्द्रधरा देवी तथाऽहिवलया शिवा ॥ कौमारी शिखिसंरूढा शक्तिहस्ता वरानना ॥ २२ ॥ युद्धकामा समायाता कार्तिकेयस्वरूपिणी ॥ इन्द्राणी सुष्ठुवदना सुश्वेतगजवाहना ॥२३॥ वज्रहस्ताऽतिरोषाढ्या संग्रामाभि-मुखी ययौ ॥ वाराही सूकराकारा प्रौढप्रेतासना मता ॥ २४ ॥ नारसिंही नृसिंहस्य बिभ्रती सदृशं वपुः ॥ याम्या च महिषारूढा दण्डहस्ता भय-प्रदा ॥ २५ ॥ समायाताऽथ संग्रामे यमरूपा शुचिस्मिता ॥ तथैव वारुणी शक्तिः कौबेरी च मदोत्कटा ॥ २६ ॥ एवंविधास्तथाकारा ययुः स्वस्व-बलैर्वृताः ॥ आगतास्ताः समालोक्य देवी मुदवाप च ॥ २७ ॥ स्वस्था मुमुदिरे देवा दैत्याश्च भयमाययुः ॥ ताभिः परिवृतस्तत्र शङ्करो लोक-शङ्करः ॥ २८ ॥ समागम्य च संग्रामे चण्डिकामित्युवाच ह ॥ हन्यन्तामसुराः शीघ्रं देवानां कार्यसिद्धये ॥ २९ ॥ निशुम्भं चैव शुम्भं च ये चान्ये दानवाः स्थिताः ॥ हत्वा दैत्यबलं सर्वं कृत्वा च निर्भयं जगत् ॥ ३० ॥ स्वानि स्वानि च धिष्ण्यानि समागच्छन्तु शक्तयः ॥ देवा यज्ञ-भुजः सन्तु ब्राह्मणा यजने रताः ॥ ३१ ॥ प्राणिनः सन्तु सन्तुष्टाः सर्वे स्थावरजंगमाः ॥ शमं यांतु तथोत्पाता ईतयश्च तथा पुनः ॥ ३२ ॥ घनाः काले प्रवर्षन्तु कृषिर्बहुफला तथा ॥ व्यास उवाच ॥ एवं ब्रुवति देवेशे शंकरे लोकशङ्करे ॥ ३३ ॥ चण्डिकायाः शरीरात्तु निर्गता शक्ति-

प्रकार अन्यान्य देवताओंकी शक्तियाँ भी विभिन्न रूप धारण करके अपनी-अपनी सेनाके साथ रणभूमिमें आ पहुँचीं। उन्हें देखकर भगवती अम्बिका बहुत प्रसन्न हुईं ॥२७॥ यह देखकर देवताओंकी चिन्ता दूर हुई और वे प्रसन्न हो उठे। किन्तु दैत्यगण भयभीत हो गये। उन शक्तियोंके बीचमें लोककल्याणकारी शंकरजी भी जा पहुँचे। उन्होंने चण्डिकासे कहा—देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिए आप लोग असुरोंका शीघ्र संहार कर दें ॥ २८ ॥ २९ ॥ शुम्भ-निशुम्भ तथा अन्य जितने दानव हैं, उन सबको और उनकी सेनाको नष्ट करके संसारका भय दूर करें ॥३०॥ इतना कार्य सम्पन्न करके आप सब अपने-अपने स्थानको लौट जायँ। आपके ऐसा करनेसे देवताओंको यज्ञभाग मिलने लगेगा और ब्राह्मण यज्ञ करने लगेंगे ॥ ३१ ॥ स्था-वर-जङ्गमात्मक सभी प्राणियोंको सन्तोष होगा। सब प्रकारके उत्पात और अकाल सदाके लिए समाप्त हो जायँगे ॥ ३२ ॥ मेघ समयपर जल बरसायेंगे और खेतोंकी उपज बढ़ जायगी।

व्यासजी बोले—लोककल्याणमें तत्पर शंकरजीके ऐसा कहते ही चण्डिकाके शरीरसे एक अद्भुत शक्तिका प्रादुर्भाव हुआ। वह शक्ति बड़ी भीषण और अतिशय प्रचण्ड थी। सैकड़ों शिवाओंका झुण्ड उसके साथ था। उनकी सम्मिलित ध्वनिके समान उस शक्तिकी आवाज थी ॥३३॥३४॥ उसका रूप बहुत भयानक था। मन्द-मन्द मुसकाती हुई उस चण्डिका शक्तिने शंकरजीसे कहा—हे देवदेव! आप शीघ्र दैत्यराज शुम्भके पास जाइए ॥ ३५ ॥ हे कामदेवके शत्रु शंकरजी! इस समय आप दूतका कार्य कर आइए और कामपीडित शुम्भ तथा मदमत्त निशुम्भसे मेरी जबानी कहिए—॥३६॥ तुमलोग स्वर्ग त्यागकर तत्काल पाताल चले जाओ। जिससे देवगण सुखपूर्वक स्वर्गलोकमें प्रविष्ट हों और इन्द्र अपने इन्द्रासनपर विराजें ॥ ३७ ॥ देवता स्वर्गराज्यको पुनः प्राप्त करें और उन्हें यज्ञभाग फिरसे मिलने लगे। यदि जीवित रहनेकी इच्छा हो तो तुम लोग दानवोंकी निवासभूमि पातालपुरीको चले जाओ। इसके विपरीत

रद्भुता ॥ भीषणाऽतिप्रचंडा च शिवाशतनिनादिनी ॥ ३४ ॥ घोररूपाऽथ पंचास्यमित्युवाच स्मिताननां ॥ देवदेव व्रजाशु त्वं दैत्यानामधिपं प्रति ॥ ३५ ॥ दूतत्वं कुरु कामारे ब्रूहि शुम्भं स्मराकुलम् ॥ निशुम्भं च मदोत्सिक्तं वचनान्मम शंकर ॥ ३६ ॥ मुक्त्वा त्रिविष्टपं यात यूयं पातालमाशु वै ॥ देवाः स्वर्गे सुसंयांतु तुराषाट् स्वासनं शुभम् ॥ ३७ ॥ प्राप्नोतु त्रिदिवं स्थानं यज्ञभागाश्च देवताः ॥ जीवितेच्छा च युष्माकं यदि स्यात्तु महत्तरा ॥ ३८ ॥ तर्हि गच्छत पातालं तरसा यत्र दानवाः ॥ अथवा बलमास्थाय युद्धेच्छा मरणाय चेत् ॥ ३९ ॥ तदाऽऽगच्छंतु तृप्यंतु मच्छिवाः पिशितेन वः ॥ व्यास उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्याः शूलपाणिस्त्वरान्वितः ॥ ४० ॥ गत्वाऽऽह दैत्यराजानं शुम्भं सदसि संस्थितम् ॥ शिव उवाच ॥ राजन्दूतोऽहमंबायास्त्रिपुरांतकरो हरः ॥ ४१ ॥ त्वत्सकाशमिहायातो हितं कर्तुं तवाखिलम् ॥ त्यक्त्वा स्वर्गं तथा भूमिं यूयं गच्छत सत्वरम् ॥ ४२ ॥ पातालं यत्र प्रह्लादो बलिश्च बलिनां वरः ॥ अथवा मरणेच्छा चेत्तर्ह्यागच्छत सत्वरम् ॥ ४३ ॥ संग्रामे वो हनिष्यामि सर्वानेवाहमाशु वै ॥ इत्युवाच महाराज्ञी युष्मत्कल्याणहेतवे ॥ ४४ ॥ व्यास उवाच ॥ इति दैत्यवरान्देवीवाक्यं पीयूषसन्निभम् ॥ हितकृच्छ्रावयित्वा स प्रत्यायातश्च शूलभृत् ॥४५॥ ययाऽसौ प्रेरितः शंभुर्दूतत्वे दानवान्प्रति ॥ शिवदूतीति विख्याता जाता त्रिभुवनेऽखिले ॥ ४६ ॥ तेऽपि श्रुत्वा

यदि तुम सब मरनेके लिए ही तैयार होओ ॥३८॥३९॥ तब आओ, मरो। जिससे मेरे साथकी शिवायें तुम्हारा मांस खाकर तृप्त हों। व्यासजी बोले—चण्डिकाके वचन सुनकर शंकरजी तत्काल हाथमें त्रिशूल लेकर वेगसे चल पड़े ॥ ४० ॥ अपनी राजसभामें बैठे हुए शुम्भके पास जाकर उन्होंने कहा। शिवजी बोले—हे राजन्! मैं भगवती अम्बिकाका दूत और त्रिपुरासुरका वध करनेवाला शिव हूँ ॥ ४१ ॥ इस समय मैं तुम्हारा हित करनेके लिए यहाँ आया हूँ। वह हित इस बातमें है कि तुमलोग स्वर्ग त्यागकर शीघ्र पातालको चले जाओ॥ ४२ ॥ जहाँ तुम्हारे पूर्वज प्रह्लाद तथा बलवानोंमें श्रेष्ठ राजा बलि रहते हैं। अथवा यदि मरनेकी ही इच्छा हो तो अतिशीघ्र युद्धभूमिमें आ जाओ। वहाँपर देवी तुम सबको तुरन्त मार डालेंगी। तुम लोगोंके कल्याणार्थ महारानी अम्बिकाका यही आदेश है ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ व्यासजी बोले—इस प्रकार अमृतके समान हितकारी देवीका सन्देश उन प्रमुख दैत्योंको सुनाकर शूलधारी शंकरजी लौट

तुम्हारे पूर्वज प्रह्लाद तथा बलवान्‌ राजा बलिने मेरे आदेशका पालन किया था ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ व्यासजी बोले—इस प्रकार अमृतके समान हितकारी देवीका सन्देश उन प्रमुख दैत्योंको सुनाकर शूलधारी शंकरजी लौट कल्याणार्थ महारानी अम्बिकाका यही आदेश है ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ व्यासजी बोले—इस प्रकार अमृतके समान हितकारी देवीका सन्देश उन प्रमुख दैत्योंको सुनाकर शूलधारी शंकरजी लौट

आये ॥ ४५ ॥ जिस महाशक्तिने शिवजीको दूत बनाकर दानवोंके पास भेजा था, वह तीनों लोकमें 'शिवदूती' नामसे विख्यात हो गयी ॥ ४६ ॥ दानवोंने जब शंकरजीके मुखसे देवीका आदेश सुना तो उसे स्वीकार करना दुष्कर समझा और कवच तथा शस्त्रास्त्रसे सुसज्जित होकर युद्धके लिए निकल पड़े ॥४७॥ वे बड़े वेगसे रणभूमिमें चण्डिकाके समक्ष जा पहुँचे। वे पहुँचते ही कानोंतक धनुषकी डोरी खींच-खींचकर अतिशय तीक्ष्ण बाणोंसे प्रहार करने लगे ॥ ४८ ॥ उस समय भगवती कालिका उन दैत्योंको गदा, बर्छी तथा शूलप्रहार द्वारा मारती तथा उन्हें चबाती हुई समरभूमिमें विचरने लगीं ॥ ४९ ॥ उधर भगवती ब्रह्माणी अपने कमंडलसे जल फेंक-फेंकर उन महाबली दानवोंका संहार करने लगीं ॥ ५० ॥ भगवती माहेश्वरी बैलपर सवार होकर रणभूमिमें बड़े वेगसे त्रिशूलका प्रहार करती हुई दानवोंका वध करके धराशायी करने लगीं ॥५१॥ वैष्णवी देवीने अपने चक्र तथा गदाके आघातसे अगणित दानवोंके सिर काटकर

वचो देव्याः शंकरोक्तं तु दुष्करम् ॥ युद्धाय निर्ययुः शीघ्रं दंशिताः शस्त्रपाणयः ॥ ४७ ॥ तरसा रणमागत्य चंडिकां प्रति दानवाः ॥ निर्जघ्नुश्च शरैस्तीक्ष्णैः कर्णाकृष्टैः शिलाशितैः ॥ ४८ ॥ कालिका शूलपातैस्तान् गदाशक्तिविदारितान् ॥ कुर्वती व्यचरत्तत्र भक्षयंती च दानवान् ॥ ४९ ॥ कमंडलुजलाक्षेपगतप्राणान् महाबलान् ॥ ब्रह्माणी चाकरोत्तत्र दानवान्समरांगणे ॥ ५० ॥ माहेश्वरी वृषारूढा त्रिशूलेनातिरंहसा ॥ जघान दानवान्संख्ये पातयामास भूतले ॥ ५१ ॥ वैष्णवी चक्रपातेन गदापातेन दानवान्॥ गतप्राणांश्चकाराशु चोत्तमांगविवर्जितान् ॥ ५२ ॥ ऐन्द्री वज्रप्रहारेण पातयामास भूतले ॥ ऐरावतकराघातपीडितान्दैत्यपुंगवान् ॥ ५३ ॥ वाराही तुंडघातेन दंष्ट्राग्रपातनेन च ॥ जघान क्रोधसंयुक्ता शतशो दैत्यदानवान् ॥ ५४ ॥ नारसिंही नखैस्तीव्रदारितान्दैत्यपुंगवान् ॥ भक्षयंती चचाराजौ ननाद च मुहुर्मुहुः ॥ ५५ ॥ शिवदूती साट्टहासैः पातयामास भूतले॥ तांश्चखादाथ चामुंडा कालिका च त्वरान्विता ॥५६॥ शिखिसंस्था च कौमारी कर्णाकृष्टैः शिलाशितैः ॥ निजघान रणे शत्रून्देवानां च हिताय वै ॥५७॥ वारुणी पाशसंबद्धान्दैत्यान्समरमस्तके॥ पातयामास तत्पृष्ठे मूर्च्छितान्गतचेतनान् ॥५८॥ ॥ एवं मातृगणेनाजावतिवीर्यपराक्रमम् ॥ मर्दितं दानवं सैन्यं पलायनपरं ह्यभूत् ॥ ५९ ॥ बुंबारवस्तु सुमहानभूत्तत्र बलार्णवे ॥ पुष्पवृष्टिं तदा देवाश्च-

मार डाला ॥५२॥ एक ओर इन्द्रकी शक्ति ऐन्द्री देवी ऐरावतकी सूँड़के प्रहारसे घायल दैत्योंपर वज्रप्रहार करती हुई उन्हें धराशायी कर रही थीं ॥ ५३ ॥ वाराही देवीने अलग अतिशय कुपित होकर अपने मुख तथा दाँतोंके प्रहारसे बहुतेरे दैत्यों और दानवोंको साफ कर दिया ॥ ५४ ॥ भगवती नारसिंही अपने तीक्ष्ण नखोंसे बड़े-बड़े दैत्योंको फाड़-फाड़कर खाती हुई बारम्बार गर्जन कर रही थीं ॥ ५५ ॥ शिवादेवी अपने अट्टहाससे दैत्योंको अचेत करके भूमिपर गिरा देती थीं और चामुण्डा तथा कालिका उनका भक्षण करती चलती थीं ॥ ५६ ॥ मयूर वाहनपर सवार कौमारी देवी देवताओंके कल्याणार्थ अति तीक्ष्ण बाणों द्वारा शत्रुओंका संहार कर रही थीं ॥५७॥ भगवती वारुणी अपने पाशमें बाँध-बाँधकर दैत्योंको अचेत कर-करके एकके ऊपर एकके क्रमसे गिराती हुई मार रही थीं ॥ ५८ ॥ इस प्रकार जब ब्रह्माणी-वैष्णवी आदि मातृशक्तियोंने पराक्रमी दैत्योंकी सेनाका सफाया कर दिया। तब बाकी बचे दानवसैनिक

भाग खड़े हुए ॥ ५९ ॥ सहसा उस सेनारूपी समुद्रमें बड़ी जोरसे चीत्कारका करुण स्वर गूँज उठा । उधर देवतागण उन देवियोंपर पुष्प वर्षा करने लगे ॥ ६० ॥ दैत्योंका हाहाकार और देवताओंकी जयजयकारका भयानक कोलाहल सुन तथा दैत्योंको पलायन करते देखकर रक्तबीज बहुत क्रुद्ध हुआ ॥ ६१ ॥ उन देवताओंका गर्जन सुनकर वह तेजस्वी क्रोधके मारे बौखला उठा और स्वयं रणभूमिमें उतर पड़ा ॥ ६२ ॥ वह विविध प्रकारके शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित होकर रथपर सवार था और बारम्बार धनुषका टंकोर कर रहा था । रणभूमिमें पहुँचते ही वह आँखें लाल करके बड़े वेगसे देवीपर झपटा ॥ ६३ ॥ इति श्रीदेवीभागते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे 'पीताम्बरा' भाषाटीकायामष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

(देवीके हाथों रक्तबीजका वध) व्यासजी बोले—हे राजा जनमेजय ! किसी समय शंकरजीने रक्तबीजको बड़ा अद्भुत वर दे डाला था । वह वृत्तान्त बताता हूँ, सुनिए ॥ १ ॥

क्रुर्देव्या गणोपरि ॥ ६० ॥ तच्छ्रुत्वा निनदं घोरं जयशब्दं च दानवाः ॥ रक्तबीजश्चुकोपाशु दृष्ट्वा दैत्यान्पलायितान् ॥ ६१ ॥ गर्जमानांस्तथा देवान्वीक्ष्य दैत्यो महाबलः ॥ रक्तबीजस्तु तेजस्वी रणमभ्याययौ तदा ॥ ६२ ॥ सायुधो रथसंविष्टः कुर्वञ्ज्याशब्दमद्भुतम् ॥ आजगाम तदा देवीं क्रोधरक्तेक्षणोद्यतः ॥ ६३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धेऽष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

व्यास उवाच ॥ वरदानमिदं तस्य दानवस्य शिवार्पितम् ॥ अत्यद्भुततरं राजञ्छृणु तत्प्रब्रवीम्यहम् ॥ १ ॥ तस्य देहाद्रक्तबिंदुर्यदा पतति भूतले ॥ समुत्पतंति दैतेयास्तद्रूपास्तत्पराक्रमाः ॥ २ ॥ असंख्याता महावीर्या दानवा रक्तसंभवाः ॥ प्रभवंत्विति रुद्रेण दत्तोऽस्त्यत्यद्भुतो वरः ॥ ३ ॥ स तेन वरदानेन दर्पितः क्रोधसंयुतः ॥ अभ्यगात्तरसा संख्ये हंतुं देवीं सकालिकाम् ॥ ४ ॥ स दृष्ट्वा वैष्णवीं शक्तिं गरुडोपरि संस्थिताम् ॥ शक्त्या जघान दैत्येंद्रस्तां वै कमललोचनाम् ॥ ५ ॥ गदया वारयामास शक्तिः सा शक्तिसंयुता ॥ अताडयच्च चक्रेण रक्तबीजं महासुरम् ॥ ६ ॥ रथांगहतदेहात्तु बहु सुस्राव शोणितम् ॥ वज्राहतगिरेः शृंगान्निर्झरा इव गैरिकाः ॥ ७ ॥ यत्र यत्र यदा भूमौ पतंति रक्तबिंदवः ॥ समुत्तस्थुस्तदाकाराः पुरुषाश्च सहस्रशः ॥ ८ ॥ ऐन्द्री तमसुरं घोरं वज्रेणाभिजघान च ॥ रक्तबीजं क्रुधाविष्टा निःससार च शोणितम् ॥ ९ ॥ ततस्तत्क्षतजाज्जाता

रुद्र भगवानने उसे यह विचित्र वरदान दे दिया था कि उसके शरीरसे जितनी रक्तकी बूँदें धरतीपर गिरेंगी, उतने ही महाबली रक्तबीज तत्काल उत्पन्न हो जायँगे । उन सबका आकार और पराक्रम रक्तबीजके ही समान होगा ॥ २ ॥ ३ ॥ उस वरप्राप्तिके कारण अतिशय अभिमानमें भरा और अत्यन्त क्रुद्ध रक्तबीज कालिका समेत अम्बिकाको मारनेके लिए बड़े वेगसे रणभूमिमें आया ॥ ४ ॥ वहाँ पहुँचकर उसने वैष्णवी शक्तिको गरुड़पर विराजमान देखा । तत्काल उस दैत्यसेनापतिने उन कमलनयनी भगवतीपर बर्छी चला दी ॥ ५ ॥ किन्तु देवीने अपनी गदासे वह प्रहार व्यर्थ करके उस महान् असुरपर अपना अमोघ चक्र चला दिया ॥ ६ ॥ वह चक्र लगनेपर रक्तबीजके शरीरसे उसी प्रकार रक्तकी धारा बह चली, जैसे वज्रके आघातसे क्षत-विक्षत पर्वतसे गेरूकी धारा बहने लगे ॥ ७ ॥ धरतीपर जहाँ-जहाँ रक्तकी बूँदें गिरीं, वहाँ-वहाँ उसीके समान आकारवाले हजारों योद्धा उत्पन्न हो गये ॥ ८ ॥ तदनन्तर भगवती

से क्षत-विक्षत पर्वतसे गेरूकी धारा बहने लगे ॥ ७ ॥ धरतीपर जहाँ-जहाँ रक्तकी बूँदें गिरीं, वहाँ-वहाँ उसीके समान आकारवाले हजारों योद्धा उत्पन्न हो गये ॥ ८ ॥

इन्द्राणीने रक्तबीजपर वज्रका प्रहार किया। उस समय भी उसके शरीरसे बहुत रक्त निकला ॥ ९ ॥ अतएव उसके रक्तसे बहुतेरे रक्तबीज उत्पन्न हो गये। उनका भी उसीके समान आकार-प्रकार था। वे उसीके समान पराक्रमी, शस्त्रास्त्रसम्पन्न तथा युद्धके लिए उत्सुक थे ॥ १० ॥ उसी समय ब्रह्माणीने ब्रह्मदण्डसे मारा और माहेश्वरीने अपने त्रिशूलसे उस रक्तबीजका शरीर विदीर्ण कर दिया ॥ ११ ॥ नारसिंहीने नखाघातसे और वाराही देवीने क्रुद्ध होकर उस अधम दैत्यपर दाँतोंका प्रहार किया ॥ १२ ॥ कौमारी शक्तिने उसकी छातीमें बर्छी घुसेड़ दी। तब उस दानवने भी कुपित होकर उन देवियोंपर बाणवर्षा आरम्भ कर दी ॥ १३ ॥ गदा और शक्तिके प्रहारसे उसने अलग-अलग करके सब देवियोंपर चोट की। उसके आघातसे क्रुद्ध होकर वे सब देवियाँ भी उसपर अपने तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षा करने लगीं ॥१४॥ भगवती चण्डिकाने अपने तीक्ष्ण बाणोंसे उसके सभी प्रहार व्यर्थ कर दिये और अन्य बाणोंसे उसपर कठोर आघात

रक्तबीजा ह्यनेकशः ॥ तद्वीर्याश्च तदाकाराः सायुधा युद्धदुर्मुदाः ॥ १० ॥ ब्रह्माणी ब्रह्मदंडेन कुपिता ह्यहनद्भृशम् ॥ माहेश्वरी त्रिशूलेन दारयामास दानवम् ॥ ११ ॥ नारसिंही नखाघातैस्तं विव्याध महासुरम् ॥ अहनत्तुण्डघातेन क्रुद्धा तं राक्षसाधमम् ॥ १२ ॥ कौमारी च तथा शक्त्या वक्षस्येनमताडयत् ॥ सोऽपि क्रुद्धः शरासारैर्बिभेद निशितैश्च ताः ॥ १३ ॥ गदाशक्तिप्रहारैस्तु मातॄः सर्वाः पृथक्पृथक् ॥ शक्तयस्तं शराघातैर्विव्यधुस्तत्प्रकोपिताः ॥ १४ ॥ तस्य शस्त्राणि चिच्छेद चंडिका स्वशरैः शितैः ॥ जघानान्यैश्च विशिखैस्तं देवी कुपिता भृशम् ॥ १५ ॥ तस्य देहाच्च सुस्राव रुधिरं बहुधा तु यत् ॥ तस्मात्तत्सदृशाः शूराः प्रादुरासन्सहस्रशः ॥ १६ ॥ रक्तबीजैर्जगद्व्याप्तं रुधिरौघसमुद्भवैः ॥ सन्नाहैः सायुधैः कामं कुर्वद्भिर्युद्धमद्भुतम् ॥ १७ ॥ प्रहरंतश्च तान्दृष्ट्वा रक्तबीजाननेकशः ॥ भयभीताः सुरास्त्रेसुर्विषण्णाः शोककर्षिताः ॥ १८ ॥ कथमद्य क्षयं दैत्या गमिष्यंति सहस्रशः ॥ महाकाया महावीर्या दानवा रक्तसंभवाः ॥ १९ ॥ एकैव चण्डिकाऽत्रास्ति तथा काली च मातरः ॥ एताभिर्दानवाः सर्वे जेतव्याः कष्टमेव तत् ॥ २० ॥ निशुम्भो वाऽथ शुम्भो वा सहसा बलसंवृतः ॥ आगमिष्यति संग्रामे ततोऽनर्थो महान्भवेत् ॥ २१ ॥ व्यास उवाच ॥ एवं देवा भयोद्विग्नाश्चिंतामापुर्महत्तराम् ॥ यदा तदांबिका प्राह कालीं कमललोचनाम् ॥२२॥

किया ॥ १५ ॥ इससे भी रक्तबीजके शरीरसे बहुतेरा रक्त निकला और उससे उसीके समान हजारों वीर उत्पन्न हो गये ॥ १६ ॥ इस प्रकार उसकी रुधिरधारासे इतने अधिक रक्तबीज उत्पन्न हुए कि उनसे सारा संसार भर गया। वे सब कवच तथा अस्त्र धारण किये हुए थे और अद्भुत रीतिसे युद्ध कर रहे थे ॥१७॥ उन अगणित रक्तबीजोंको प्रहार करते देखकर देवता त्रस्त और भयभीत हो गये। उस समय समस्त देवसमुदायपर विषाद और शोक छा गया ॥१८॥ वे सोचने लगे कि रक्तबीजके रक्तसे उत्पन्न इन हजारों महाकाय और महापराक्रमी दानवोंका संहार कैसे होगा ? ॥१९॥ रणभूमिमें चण्डिका, काली तथा मातृकायें हैं। इनका कोई सहायक भी नहीं है। तब ये थोड़ी-सी देवियाँ इन अगणित दानवोंको कैसे परास्त करेंगी ? ॥२०॥ इसी समय यदि सहसा शुम्भ और निशुम्भ भी अपनी सेनाके साथ रणाङ्गणमें उतर आये तो बहुत बड़ा अनर्थ हो जायगा ॥ २१ ॥ व्यासजी बोले—उधर जब देवता भयभीत एवं उद्विग्न

होकर विविध तर्कनायें कर रहे थे। उसी समय भगवती अम्बिकाने कमलनयनी कालीसे कहा--॥ २२ ॥ हे चामुण्डे ! तुम अभी अपना मुख खूब फैला लो और मेरे शस्त्रोंकी मारसे रक्तबीजके शरीरसे जितना रुधिर गिरे, वह सब तुम तुरन्त पीती जाओ ॥२३॥ अब तुम इच्छानुसार दानवोंको खाती हुई रणभूमिमें विचरो। इधर मैं अपने तीक्ष्ण बाण, गदा, तलवार तथा मुसलसे उन दानवोंका संहार कर रही हूँ ॥ २४ ॥ हे विशालाक्षि ! तुम इस ढंगसे रुधिर पान करो कि अब रक्तबीजका एक बूँद भी रुधिर पृथिवीपर न गिरने पाये ॥ २५ ॥ इस रीतिसे प्रबन्ध करके यदि दैत्योंका भक्षण किया जायगा तो अन्य दानव न उत्पन्न हो सकेंगे। ऐसा ही करनेपर उनका संहार हो सकेगा। अन्य कोई उपाय नहीं है ॥२६॥ शत्रुनाशका पूर्ण प्रयत्न करती हुई तुम रक्तबीजका रुधिर पीती चलो और हे चामुण्डे ! मैं जिस दैत्यका वध करूँ, उसे तुम तत्काल खा लो ॥ २७ ॥ इस प्रकार सब दैत्योंका संहार करनेके बाद इन्द्रको स्वर्गका राज्य देकर हम सानन्द अपने-अपने स्थानको लौट चलेंगी ॥ २८ ॥ व्यासजी बोले—भगवती अम्बिकाका यह आदेश पाकर प्रचण्ड पराक्रमसम्पन्ना चामुण्डा रक्तबीजके शरीरसे

चामुण्डे कुरु विस्तीर्णं वदनं त्वरिता भृशम् ॥ मच्छस्त्रपातसंभूतं रुधिरं पिब सत्वरा ॥ २३ ॥ भक्षयंती चर रणे दानवानद्य कामतः ॥ हनिष्यामि शरैस्तीक्ष्णैर्गदाऽसिमुसलैस्तथा ॥ २४ ॥ तथा कुरु विशालाक्षि पानं तद्रुधिरस्य च ॥ बिंदुमात्रं यथा भूम्यां न पतेदपि सांप्रतम् ॥ २५॥ भक्ष्यमाणास्तदा दैत्या न चोत्पत्स्यन्ति चापरे ॥ एवमेषां क्षयो नूनं भविष्यति न चान्यथा ॥ २६ ॥ घातयिष्यम्यहं दैत्यं त्वं भक्षय च सत्वरा ॥ पिबंती क्षतजं सर्वं यतमानाऽरिसंक्षये ॥२७॥ इत्थं दैत्यक्षयं कृत्वा दत्त्वा राज्यं सुरालयम् ॥ इन्द्राय सुस्थिरं सर्वं गमिष्यामो यथासुखम् ॥२८॥ इत्युक्ताऽम्बिकया देवी चामुंडा चंडविक्रमा॥ पपौ च क्षतजं सर्वं रक्तबीजशरीरजम् ॥२९॥ अंबिका तं जघानाशु खड्गेन मुसलेन च ॥ चखाद देहशकलांश्चामुंडा तान्कृशोदरी ॥३० ॥ सोऽपि क्रुद्धो गदाघातैश्चामुंडां समघातयत् ॥ तथापि सा पपावाशु क्षतजं तमभक्षयत् ॥ ३१ ॥ येऽन्ये रुधिरजाः क्रूरा रक्तबीजा महाबलाः ॥ तेऽपि निष्पातिताः सर्वे भक्षिता गतशोणिताः ॥३२॥ कृत्रिमा भक्षिताः सर्वे यस्तु स्वाभाविकोऽसुरः ॥ सोऽपि प्रपातितो हत्वा खड्गेनातिविखंडितः ॥ ३३ ॥ रक्तबीजे हते रौद्रे ये चान्ये दानवा रणे ॥ पलायनं ततः कृत्वा गतास्ते भयकंपिताः ॥३४॥ हाहेति विब्रुवंतस्ते शुम्भं प्रोचुः सुविह्वलाः ॥ रुधिरारक्तदेहाश्च विगतास्त्रा विचेतसः ॥ ३५॥ राजन्नंबिकया रक्तबीजोऽसौ विनिपातितः ॥ चामुंडा

निकला हुआ रक्त पीने लगीं ॥ २९ ॥ अब अम्बिका तलवार और मुसल द्वारा बड़ी तेजीसे रक्तबीजपर प्रहार करने लगीं और कृशोदरी चामुण्डा उसके शरीरके कटे टुकड़ोंको खाने लगीं ॥ ३० ॥ तब रक्तबीजने भी कुपित होकर चामुण्डापर अपनी गदाका प्रहार किया। किन्तु तब भी वे उसके शरीरसे निकले रुधिरको पीती और शरीरके कटे हुए टुकड़ोंको खाती रहीं ॥ ३१ ॥ उसके रुधिरसे जो अन्यान्य महाबली और क्रूर रक्तबीज उत्पन्न हुए थे, उनका भी रुधिर कालिकाने पी लिया और रुधिरके अभावमें जब वे निर्बल हो गये। तब उन्होंने उन कृत्रिम रक्तबीजोंको मारकर खा लिया ॥ ३२ ॥ इस प्रकार जब देवीने उन बनावटी रक्तबीजोंको खा डाला, तब असली रक्तबीजको अम्बिकाने अपनी तलवारसे काटकर खण्ड-खण्ड कर दिया ॥ ३३ ॥ इस तरह उस भयानक रक्तबीजके मर जानेपर अन्य दानव भयसे काँपते हुए रणभूमि छोड़कर भाग खड़े हुए ॥ ३४ ॥ हाहाकार करते हुए वे सब शुम्भके पास गये। उन

सबका शरीर रुधिरसे भींगा था। उनके शस्त्र गायब थे और उनका होश ठिकाने नहीं था ॥३६॥ तब उसने दैत्योंसे कहा—हे राजन्! अम्बिकाने रक्तबीजको मार डाला और चामुण्डाने

दिया ॥ ३३ ॥ इस तरह उस भयानक रक्तबीजके मर जानेपर अन्य दानव भयसे काँपते हुए रणभूमि छोड़कर भाग खड़े हुए ॥ ३४ ॥ हाहाकार करते हुए वे सब शुम्भके पास गये । उन

सबका शरीर रुधिरसे भींगा था । उनके शस्त्रास्त्र गायब थे और उनका होश ठिकाने नहीं था ॥३५॥ उन भगोड़े सैनिकोंने कहा—हे राजन् ! अम्बिकाने रक्तबीजको मार डाला और चामुण्डाने उसके शरीरसे निकला हुआ सब रक्त पी लिया ॥ ३६ ॥ अन्य दानववीरोंको देवीके सिंहने बड़ी तेजीसे मार डाला और कालीने उन सबको खा लिया ॥ ३७ ॥ हे राजन् ! हम लोग युद्धका वृत्तान्त तथा उस देवीके परम अद्भुत चरित्र सुनानेके लिए आपके पास भाग आये हैं ॥ ३८ ॥ हे महाराज ! वह देवी सभी दैत्यों, दानवों, गन्धर्वों, सर्पों और असुरोंसे अजेय है ॥३९॥ हे राजन् ! अब इन्द्राणी आदि अन्य देवियाँ भी विविध वाहनोंपर सवार हो तथा नाना प्रकारके शस्त्र धारण करके आयी हैं और लड़ रही हैं ॥४०॥ हे राजेन्द्र ! उन देवियोंने उच्च कोटिके शस्त्रोंसे दानवोंकी सब सेना नष्ट कर दी है और रक्तबीजको भी मार डाला है ॥ ४१ ॥ पहले तो उनमेंसे केवल एक देवी हमारे लिए असह्य थी । अब जब कि देवियोंका झुण्ड एकत्र हो गया है, तब क्या कहना । वह अमित तेजस्वी सिंह भी रणभूमिमें दैत्योंको मार रहा है ॥ ४२ ॥ अतएव आप मंत्रियोंके साथ मंत्रणा करके जो उचित समझिए, सो कीजिए ।

तस्य देहात्तु पपौ सर्वं च शोणितम् ॥ ३६ ॥ ये चान्ये दानवाः शूरा वाहनेनातिरंहसा ॥ सिंहेन निहताः सर्वे काल्या च भक्षिताः परे ॥ ३७ ॥ वयं त्वां कथितुं राजन्नागता युद्धचेष्टितम् ॥ चरितं च तथा देव्याः संग्रामे परमाद्भुतम् ॥ ३८ ॥ अजेयेयं महाराज सर्वथा दैत्यदानवैः ॥ गन्धर्वासुरयक्षैश्च पन्नगोरगराक्षसैः ॥ ३९ ॥ अन्यास्तत्रागता देव्य इन्द्राणीप्रमुखा भृशम् ॥ युध्यमाना महाराज वाहनैरायुधैर्युताः ॥ ४० ॥ ताभिः सर्वं हतं सैन्यं दानवानां वरायुधैः ॥ रक्तबीजोऽपि राजेंद्र तरसा विनिपातितः ॥ ४१ ॥ एकाऽपि दुःसहा देवी किं पुनस्ताभिरन्विता ॥ सिंहोऽपि हन्ति संग्रामे राक्षसानमितप्रभः ॥ ४२ ॥ अतो विचार्य सचिवैर्यद्युक्तं तद्विधीयताम् ॥ न वैरमनया युक्तं संधिरेव सुखप्रदः ॥ ४३ ॥ आश्चर्यमेतदखिलं यन्नारी हंति राक्षसान् ॥ रक्तबीजोऽपि निहतः पीतं तस्यापि शोणितम् ॥ ४४ ॥ अन्ये निपातिता दैत्याः संग्रामेऽम्बिकया नृप ॥ चामुंडया च मांसं वै भक्षितं सकलं रणे ॥ ४५ ॥ वरं पातालगमनं तस्याः सेवाऽथवा वरा ॥ न तु युद्धं महाराज कार्यमंबिकया सह ॥ ४६ ॥ न नारी प्राकृता ह्येषा देवकार्यार्थसाधिनी ॥ मायेयं प्रबला देवी क्षपयंतीयमुत्थिता ॥ ४७ ॥ व्यास उवाच ॥ इति तेषां वचस्तथ्यं श्रुत्वा कालविमोहितः ॥ मुमूर्षुः प्रत्युवाचेदं शुंभः प्रस्फुरिताधरः ॥ ४८ ॥ शुंभ उवाच ॥ यूयं गच्छत पातालं

किन्तु उस देवीके साथ वैर करनेसे भला न होगा । सुख तो उसके साथ सन्धि करके ही प्राप्त किया जा सकता है ॥ ४३ ॥ यह कितने आश्चर्यकी बात है कि एक स्त्री राक्षसोंका वध कर रही है । रक्तबीज मार डाला गया और वह देवी उसका रक्त पी गयी ॥ ४४ ॥ हे नृप ! अन्य दैत्योंको अम्बिकाने मारा और चामुण्डा उन सबका मांस खा गयी ॥ ४५ ॥ हे महाराज ! अच्छा हो कि हम लोग पातालको भाग चलें या नतमस्तक होकर उसकी अधीनता स्वीकार कर लें । लेकिन अम्बिकाके साथ युद्ध न करें ॥ ४६ ॥ देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिए आयी हुई वह कोई साधारण स्त्री नहीं है । वह प्रबला देवी दैत्यकुलका नाश करनेके लिए ही उत्पन्न हुई है ॥ ४७ ॥ व्यासजी बोले—हे महाराज ! उन सैनिकोंके वचन सुनकर कालसे मोहित एवं मरनेको उद्यत शुम्भने कहा । मारे क्रोधके उसके होंठ काँप रहे थे ॥ ४८ ॥ शुम्भ बोला—तुम डरपोक लोग पाताल चले जाओ या उसकी सेवकाई स्वीकार कर लो । किन्तु

मैं तो आज पूरी तैयारी करके जाऊँगा और अम्बिका तथा उसके साथकी देवियोंको मार डालूँगा ॥ ४९ ॥ रणभूमिमें पहुँचकर मैं सब देवताओंको पराजित करके अपने राज्यका विस्तार करूँगा। एक स्त्रीसे भयभीत होकर मैं पातालको क्यों चला जाऊँ ? ॥ ५० ॥ रक्तबीज सदृश अपने प्रमुख पार्षदोंका वध कराके अब प्राण बचानेके लिए अपनी विपुल कीर्तिपर पानी फेरकर मैं भागूँ ? ॥ ५१ ॥ कभी न कभी मरना तो निश्चित है। क्योंकि कालने सब प्राणियोंके लिए ऐसा विधान ही बना दिया है। जन्मके साथ ही मृत्युका भय प्राणीके साथ लग जाता है। ऐसी स्थितिमें कौन व्यक्ति कठिनाईसे प्राप्त यशको छोड़ना चाहेगा ? ॥ ५२ ॥ हे भाई निशुम्भ ! अब मैं स्वयं रथपर बैठकर रणभूमिमें जाऊँगा और उसे मारकर ही लौटूँगा। कदाचित् ऐसा न कर सका तो लौटकर तुम्हें मुँह न दिखाऊँगा ॥ ५३ ॥ हे वीर ! तुम अपनी सेनाके साथ मेरे सहायकके रूपमें चलो और अपने द्रुतगामी बाणोंसे मारकर उस स्त्रीको यमपुर भेज दो ॥ ५४ ॥ निशुम्भने कहा--भैया ! आज मैं रणमें जाऊँगा और उस दुष्ट कालिकाको मार तथा अम्बिकाको पकड़कर आपके पास ले आऊँगा ॥५५॥ हे राजेन्द्र ! आप उस तुच्छ महिलाके

शरणं वा भयातुराः ॥ हनिष्याम्यहमद्यैव तां च ताश्च समुद्यतः ॥ ४९ ॥ जित्वा सर्वान्सुरानाजौ कृत्वा राज्यं सुपुष्कलम् ॥ कथं नारीभयोद्विग्नः पातालं प्रविशाम्यहम् ॥ ५० ॥ निहत्य पार्षदान्सर्वान्रक्तबीजमुखान्रणे ॥ प्राणत्राणाय गच्छामि हित्वा किं विपुलं यशः ॥ ५१ ॥ मरणं त्वनिवार्यं वै प्राणिनां कालकल्पितम् ॥ तद्भयं जन्मनोपात्तं त्यजेत्को दुर्लभं यशः ॥ ५२ ॥ निशुम्भाहं गमिष्यामि रथारूढो रणाजिरे ॥ हत्वा तामागमिष्यामि नागमिष्यामि चान्यथा ॥ ५३ ॥ त्वं तु सेनायुतो वीर पार्ष्णिग्राहो भवस्व मे ॥ तरसा तां शरैस्तीक्ष्णैर्नारीं नय यमालये ॥५४॥ निशुंभ उवाच ॥ अहमद्य हनिष्यामि गत्वा दुष्टां च कालिकाम् ॥ आगमिष्याम्यहं शीघ्रं गृहीत्वा तामथांबिकाम् ॥ ५५ ॥ मा चिंतां कुरु राजेंद्र वराकायास्तु कारणे ॥ क्वैषा बाला क्व मे बाहुवीर्यं विश्ववशंकरम् ॥ ५६ ॥ त्यक्त्वार्तिं विपुलां भ्रातर्भुंक्ष्व भोगाननुत्तमान् ॥ आनयिष्याम्यहं कामं मानिनीं मानसंयुताम् ॥ ५७ ॥ मयि तिष्ठति ते राजन्न युक्तं गमनं रणे ॥ गत्वाऽहमानयिष्यामि तवार्थे वै जयश्रियम् ॥ ५८ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्त्वा भ्रातरं ज्येष्ठं कनीयान्बलगर्वितः ॥ रथमास्थाय विपुलं सन्नद्धः स्वबलावृतः ॥ ५९ ॥ जगाम तरसा तूर्णं संगरे कृतमंगलः ॥ संस्तुतो वन्दिसूतैश्च सायुधः सपरिष्करः ॥ ६० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

लिए किसी प्रकारकी चिन्ता न करें। कहाँ वह अकिञ्चन स्त्री और कहाँ समस्त विश्वको काबूमें कर लेनेवाला मेरा बाहुबल ॥ ५६ ॥ अब यह भारी सन्ताप त्यागकर आप उत्तम प्रकारके भोगोंका उपभोग करिए। मैं उस अभिमानभरी नारीको अवश्य मारूँगा ॥ ५७ ॥ हे राजन् ! मेरे रहते आपका रणभूमिमें जाना अनुचित है। मैं वहाँ जाकर आपके लिए विजयश्री प्राप्त करके ही लौटूँगा ॥ ५८ ॥ व्यासजी बोले कि अपने बड़े भाई शुम्भसे ऐसा कहकर बलसे मदमत्त निशुम्भने सेना सुसज्जित की और कवच पहनकर रथपर सवार हुआ ॥ ५९ ॥ उस समय मंगलाचार किया गया। वन्दियों और सूतोंने स्तुति की। तब शस्त्रास्त्र लेकर वह पूरी तैयारी करके रणभूमिकी ओर चला ॥ ६० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे

समय मंगलाचार किया गया। वन्दियों और सूतोंने स्तुति की। तब शस्त्रास्त्र लेकर वह पूरी तैयारी करके रणभूमिकी ओर चल पड़ा ॥ १ ॥ निशुम्भके चल देनेपर शुम्भ भी लड़नेके लिए अपनी सेनाके साथ किलेसे बाहर निकला। वह संग्रामरसका ज्ञाता था। अतएव प्रेक्षकरूपमें युद्ध देखने लगा ॥२॥ आकाशमण्डलके बादलोंकी ओटमें छिपे हुए इन्द्र आदि देवता तथा यक्षगण भी वह युद्ध देखने लगे ॥३॥ उसी समय निशुम्भ सींगका बना धनुष लेकर रणभूमिमें उतरा और पहुँचते ही जगदम्बाको डराता हुआ उग्र बाणवर्षा करने लगा ॥ ४ ॥ भगवती चण्डिकाने इस प्रकार बाण बरसाते हुए निशुम्भको देखकर अपना श्रेष्ठ धनुष सम्भाला और बड़े मीठे स्वरमें बारम्बार हँसने लगीं ॥५॥ उन्होंने भगवती कालिकासे कहा—हे काली! इन दानवोंकी मूर्खता तो देखो। ये दोनों मरनेके लिए इस समय स्वयं मेरे पास आ पहुँचे हैं ॥ ६ ॥ दैत्योंका भीषण

(निशुम्भवधकी कथा) व्यासजी बोले—हे महाराज! वीर निशुम्भ मरण अथवा विजयका पक्का निश्चय करके अपनी विशाल वाहिनीके साथ देवीसे लड़नेके निमित्त रणभूमिकी

॥ व्यास उवाच ॥ निशुंभो निश्चयं कृत्वा मरणाय जयाय वा ॥ सोद्यमः सबलः शूरो रणे देवीमुपाययौ ॥१॥ तमाजगाम शुंभोऽपि स्वबलेन समावृतः ॥ प्रेक्षकोऽभूद्रणे राजा संग्रामरसपण्डितः ॥२॥ गगने संस्थिता देवास्तदाभ्रपटलावृताः ॥ दिदृक्षवस्तु संग्रामे सेन्द्रा यक्षगणास्तथा ॥३॥ निशुंभोऽथ रणे गत्वा धनुरादाय शार्ङ्गकम् ॥ चकार शरवृष्टिं स भीषयञ्जगदम्बिकाम् ॥ ४ ॥ मुंचंतं शरजालानि निशुंभं चण्डिका रणे ॥ वीक्ष्यादाय धनुःश्रेष्ठं जहास सुस्वरं मुहुः॥ ५ ॥ उवाच कालिका देवी पश्य मूर्खत्वमेतयोः ॥ मरणायागतौ कालि मत्समीपमिहाधुना ॥ ६ ॥ दृष्ट्वा दैत्यवधं घोरं रक्तबीजात्ययं तथा ॥ जयाशां कुरुतस्त्वेतौ मोहितौ मम मायया ॥ ७ ॥ आशा बलवती ह्येषा न जहाति नरं क्वचित् ॥ भग्नं हृतं बलं नष्टं गतपक्षं विचेतनम् ॥ ८ ॥ आशापाशनिबद्धौ द्वौ युद्धाय समुपागतौ ॥ निहन्तव्यौ मया कालि रणे शुंभनिशुंभकौ ॥ ९ ॥ आसन्नमरणावेतौ संप्राप्तौ दैवमोहितौ ॥ पश्यतां सर्वदेवानां हनिष्याम्यहमद्य तौ ॥१०॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्त्वा कालिकां चण्डी कर्णाकृष्टशरोत्करैः ॥ छादयामास तरसा निशुंभं पुरतः स्थितम् ॥११॥ दानवोऽपि शरांत्यस्याश्चिच्छेद निशितैः शरैः ॥ तया परस्परं युद्धं बभूवातिभयानकम् ॥ १२ ॥ केसरी केशजालानि धुन्वानः सैन्यसागरम् ॥ गाहयामास बलवान्सरसीं वारणो यथा ॥१३॥ नखैर्दन्तप्रहारैस्तु दानवान्पुरतः स्थितान् ॥

वध तथा रक्तबीजका मरण देख करके भी मेरी मायासे मोहित होकर ये विजय प्राप्त करनेकी आशा कर रहे हैं ॥७॥ आशा बड़ी बलवती होती है। वह कभी प्राणीका पिण्ड नहीं छोड़ती। दानवी सेना पलायन कर गयी। कितने मर-कट गये। बहुतेरे अचेत हो गये। फिर भी आशापाशमें बँधे ये दोनों लड़ने आये हैं। हे काली! मैं आज रणमें शुम्भ-निशुम्भ दोनोंको मार डालूँगी ॥८॥९॥ इनकी मृत्यु समीप आयी हुई है। तभी तो दैवसे मोहित होकर ये यहाँ आये हैं। आज सब देवताओंके समक्ष मैं इन दोनोंका वध करूँगी ॥१०॥ व्यासजी बोले—कालिकासे ऐसा कहकर चण्डिकाने कानोंतक धनुषकी डोरी खींचकर विकराल बाणोंसे अपने समक्ष उपस्थित निशुम्भको ढाँक दिया ॥११॥ निशुम्भ दानवने भी अपने तीखे बाणोंसे देवीके बाणोंको काट डाला। इस प्रकार उन दोनोंमें बड़ा भयानक युद्ध आरम्भ हो गया ॥ १२ ॥ उधर भगवतीका सिंह अयाल छितराकर उस दानवसेनारूपी समुद्रमें कूद पड़ा और इस तरह उसे मथने

लगा, जैसे कोई हाथी तालावमें घुसकर उसको मथे ॥१३॥ जैसे सिंह मतवाले हाथियोंको फाड़ डालता है। उसी प्रकार देवीका सिंह सामने पड़नेवाले सभी दैत्योंको फाड़-फाड़कर खाने लगा ॥१४॥ वह सिंह जब इस प्रकार दानवी सेनाका विनाश करने लगा। तब निशुम्भ एक मजबूत धनुष चढ़ाकर दौड़ा ॥१५॥ उसी समय और-और दानव भी क्रोधसे लाल नेत्र किये और दाँतोंसे होठ चबाते हुए देवीको मारनेके लिए झपटे ॥१६॥ इसी अवसरपर अत्यन्त कुपित होकर शुम्भ भी कालिकाको मारने तथा अम्बिकाको पकड़नेके लिए अपनी सेनाके साथ रणभूमिमें उतर आया ॥१७॥ युद्धस्थलीमें पहुँचकर शुम्भने देखा कि जगदम्बा सामनें खड़ी हैं। वे शृङ्गाररससे परिपूर्ण सुन्दरी होती हुई भी रौद्र रसयुक्त थीं ॥ १८ ॥ विशालनयनी, त्रिभुवनसुन्दरी, स्वभावतः लाल नेत्र होनेपर भी क्रोधसे और भी लाल नयनोंवाली रमणीको देखकर उसने विवाहकी इच्छा तथा विजयकी आशा दूरहीसे त्याग दी और अपने मरणका

चखाद च विशीर्णाङ्गान् गजानिव मदोत्कटान् ॥१४॥ एवं विमथ्यमाने तु सैन्ये केसरिणा तदा ॥ अन्वधावन्निशुम्भोऽथ विकृष्टवरकार्मुकः ॥१५॥ अन्येऽपि क्रुद्धा दैत्येन्द्रा देवीं हन्तुमुपाययुः ॥ सन्दष्टदन्तरसना रक्तनेत्रा ह्यनेकशः ॥ १६ ॥ तत्राजगाम तरसा शुम्भः सैन्यसमावृतः ॥ निहत्य कालिकां कोपाद्ग्रहीतुं जगदम्बिकाम् ॥ १७ ॥ तत्रागत्य ददर्शाजावंबिकां च पुरःस्थिताम् ॥ रौद्ररसयुतां कांतां शृंगाररसंयुताम् ॥ १८ ॥ तां वीक्ष्य विपुलापांगीं त्रैलोक्यवरसुंदरीम् ॥ सुरक्तनयनां रम्यां क्रोधरक्तेक्षणां तथा ॥ १९ ॥ विवाहेच्छां परित्यज्य जयाशां दूरतस्तथा ॥ मरणे निश्चयं कृत्वा तस्थावाहितकार्मुकः ॥ २० ॥ तं तथा दानवं देवी स्मितपूर्वमिदं वचः ॥ बभाषे शृण्वतां तेषां दैत्यानां रणमस्तके ॥ २१ ॥ गच्छध्वं पामरा यूयं पातालं वा जलार्णवम् ॥ जीविताशां स्थिरां कृत्वा त्यक्त्वाऽत्रैवायुधानि च ॥ २२ ॥ अथवा मच्छराघातहतप्राणा रणाजिरे ॥ प्राप्य स्वर्गसुखं सर्वे क्रीडंतु विगतज्वराः ॥२३॥ कातरत्वं च शूरत्वं न भवत्येव सर्वथा ॥ ददाम्यभयदानं वै यान्तु सर्वे यथासुखम् ॥ २४ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तस्या निशुंभो मदगर्वितः ॥ निशितं खड्गमादाय चर्म चैवाष्टचन्द्रकम् ॥२५॥ धावमानस्तु तरसाऽसिना सिंहं मदोत्कटम् ॥ जघानातिबलान्मूर्ध्नि भ्रामयञ्जगदम्बिकाम् ॥२६॥ ततो देवी स्वगदया वंचयित्वाऽसिपातनम् ॥ ताडयामास तं बाहोर्मूले परशुना तदा ॥२७॥

निश्चय करके धनुष लेकर खड़ा हो गया ॥१९॥२०॥ युद्धभूमिमें आये हुए शुम्भको देखकर वहाँके सब दैत्योंको सुनाती हुई देवी बोलीं—॥ २१ ॥ हे अधम दानवो! यदि जीवित रहनेकी इच्छा हो तो अभी अपने शस्त्रास्त्र यहीं छोड़कर तुम सब पाताल लोक अथवा समुद्रके उस पार भाग जाओ ॥ २२ ॥ यह पसन्द न हो तो रणांगणमें मेरे बाणोंके आघातसे अपने प्राण गवाँकर स्वर्गमें जाओ और वहाँ निर्भयभावसे विहार करो ॥२३॥ कायरता और वीरता दोनों एक साथ नहीं रह सकती। मैं तुम्हें अभयदान देती हूँ। तुम लोग आरामसे चले जाओ ॥२४॥ व्यासजी बोले—मदमत्त निशुम्भने भगवतीके वचन सुनकर तीक्ष्ण तलवार निकाली और ढाल लेकर द्रुतगतिसे दौड़ा। समीप पहुँचकर उसने मदगर्वित सिंहके मस्तकपर तलवार चला दी और तुरन्त ही जगदम्बापर भी वार कर दिया ॥ २५ ॥ २६ ॥ भगवतीने अपनी गदासे उसका प्रहार बचाकर उस दैत्यके कन्धेपर फरसेसे प्रहार किया ॥ २७ ॥

तलवार चला दी और तुरन्त ही जगदम्बापर भी वार कर दिया ॥ २५ ॥ २६ ॥ भगवतीने अपनी गदासे उसका प्रहार बचाकर उस दैत्यके कन्धेपर फरसेसे प्रहार किया ॥ २७ ॥

कन्धेपर असाधारण चोट खाकर भी वह महाबली दैत्य उसे सह गया और उसने फिरसे चण्डिकापर प्रहार कर दिया ॥२८॥ तब भगवतीने अपना भयदायक घंटा बजाया और निशुम्भको मारनेके लिए बारम्बार मदिरा पीने लगीं ॥ २९ ॥ इस प्रकार परस्पर एक दूसरेपर विजय प्राप्त करनेकी इच्छासे देवताओं और दैत्योंमें बड़ा भयानक युद्ध आरम्भ हो गया ॥ ३० ॥ कच्चा मांस खानेवाले पक्षी, क्रूर कुत्ते, सियार, गृध्र, कङ्क और कौए प्रसन्न होकर नाचने लगे ॥ ३१ ॥ रुधिरसे सराबोर दैत्यसेनाके सैनिक कट-कटकर गिरने लगे। उन सैनिकों तथा हाथी-घोड़ोंकी लाशोंसे सारी रणभूमि भर गयी ॥ ३२ ॥ दानवोंको बुरी तरह कटते देखकर निशुम्भ क्रोधसे तलमला उठा और एक भयानक गदा लेकर बड़े वेगसे चण्डिकापर टूट पड़ा ॥ ३३ ॥ समीप पहुँचकर उसने पहले सिंहके मस्तकपर प्रहार किया और उसके बाद मुसकाकर देवीके ऊपर गदा चला दी ॥ ३४ ॥ इससे देवी अत्यन्त कुपित हो गयीं।

खड्गेन निहतः सोऽपि बाहुमूले महामदः ॥ संस्तभ्य वेदनां भूयो जघान चण्डिकां तदा ॥ २८ ॥ साऽपि घण्टास्वनं घोरं चकार भयदं नृणाम् ॥ पपौ पुनः पुनः पानं निशुंभं हन्तुमिच्छती ॥ २९ ॥ एवं परस्परं युद्धं बभूवातिभयप्रदम् ॥ देवानां दानवानां च परस्परजयैषिणाम् ॥ ३० ॥ पलादाः पक्षिणः क्रूराः सारमेयाश्च जम्बुकाः ॥ ननृतुश्चातिसन्तुष्टा गृध्राः कंकाश्च वायसाः ॥ ३१ ॥ रणभूर्भाति भूयिष्ठपतितासुरवर्ष्मकैः ॥ रुधिरस्रावसंयुक्तैर्गजाश्वदेहसंकुला ॥ ३२ ॥ पतितान्दानवान्दृष्ट्वा निशुम्भोऽतिरुषान्वितः ॥ प्रययौ चण्डिकां तूर्णङ्गदामादाय दारुणाम् ॥३३॥ सिंहं जघान गदया मस्तके मदगर्वितः ॥ प्रहृत्य च स्मितं कृत्वा पुनर्देवीमताडयत् ॥ ३४ ॥ साऽपि तं कुपिताऽतीव निशुंभं पुरतः स्थितम् ॥ प्रहरन्तं समीक्ष्याऽथ देवी वचनमब्रवीत् ॥३५॥ श्रीदेव्युवाच ॥ तिष्ठ मंदमते तावद्यावत्खड्गमिदं तव ॥ ग्रीवायां प्रेरयाम्यस्माद्गन्ताऽसि यमसादनम् ॥ ३६ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्त्वा तरसा देवी कृपाणेन समहिता ॥ चिच्छेद मस्तकं तस्य निशुंभस्याथ चण्डिका ॥ ३७ ॥ स छिन्नमस्तको देव्या कबन्धोऽतीव दरुणः ॥ बभ्राम च गदापाणिस्त्रासयन्देवतागणान् ॥ ३८ ॥ देवी तस्य शितैर्बाणैश्चिच्छेद चरणौ करौ ॥ पपातोर्व्यां ततः पापी गतासुः पर्वतोपमः ॥ ३९ ॥ तस्मिन्निपतिते दैत्ये निशुम्भे भीमविक्रमे ॥ हाहाकारो महानासीत्तत्सैन्ये भयकंपिते ॥४०॥ त्यक्त्वाऽऽयुधानि सर्वाणि सैनिकाः क्षतजाप्लुताः ॥ जग्मुर्बुम्बारवं सर्वे कुर्वाणा राजमन्दिरम् ॥ ४१ ॥ तानागतान्सुसंप्रेक्ष्य शुम्भः शत्रुनिषूदनः ॥ पप्रच्छ क्व

प्रहार करते देखकर उन्होंने अपने समक्ष खड़े निशुम्भसे कहा ॥ ३५ ॥ देवी बोलीं—अरे मन्दबुद्धि ! ठहर जा, अभी मैं अपनी तलवारसे तेरा गला काटकर तुझे यमपुर भेज रही हूँ ॥ ३६ ॥ व्यासजी बोले—ऐसा कहकर भगवती चण्डिकाने बड़ी शीघ्रतापूर्वक अपनी तलवारसे निशुम्भका सिर काट लिया ॥ ३७ ॥ इस प्रकार देवीके हाथों मस्तक कट जानेपर निशुम्भका भयंकर धड़ हाथमें गदा लिये हुए देवताओंको डराता हुआ चक्कर लगाने लगा ॥ ३८ ॥ यह देखकर देवीने तीक्ष्ण बाणोंसे उसके हाथ-पैर भी काट दिये। तब कहीं जाकर उस पर्वताकार पापीका शरीर धरतीपर गिरा ॥ ३९ ॥ इस प्रकार निशुम्भ दैत्यके धराशायी होनेपर चारों ओर हाहाकार मच गया और सारी दैत्यसेना भयसे काँप उठी ॥ ४० ॥ रुधिरसे सराबोर कितने दैत्य-सैनिक हथियार डालकर दुहाई देते हुए राजप्रासादकी ओर भागे ॥ ४१ ॥ शत्रुसेनाके विनाशक शुम्भने उन भगोड़े सैनिकोंको देखकर पूछा-निशुम्भ कहाँ है ? तुम सब रणभूमिसे भाग

क्यों आये ? ॥४२॥ राजा शुम्भका प्रश्न सुनकर सैनिकोंने विनम्रभावसे कहा--हे महाराज ! आपके भाई निशुम्भ मारे गये । वे इस समय रणभूमिमें सोये हुए हैं ॥ ४३ ॥ आपके लघु भ्राताकी सहायतामें जितने भी वीर गये थे, उन सबको देवीने मार डाला । हम लोग किसी तरह बचकर आपको वहाँका समाचार बतानेके लिए भाग आये हैं ॥४४॥ अभी-अभी चण्डिकाने निशुम्भका वध किया है । अतएव हमारा तो यह विचार है कि अभी आपके रणाङ्गणमें उतरनेका अवसर नहीं है ॥४५॥ आप इस बातपर विचार करिए कि यह कोई असाधारण महिला है। जो देवताओंका उद्देश्य पूरा करनेके लिए यहाँ आयी हुई है ॥ ४६ ॥ यह मामूली स्त्री नहीं है । बल्कि कोई दैवी शक्ति है । इसके चरित्र बड़े अनोखे हैं । जिन्हें देवता भी नहीं जान सकते ॥ ४७ ॥ यह अनेक रूप धारण करती है और मायाके मूल तत्त्वको जानती है । यह विचित्र आभूषणोंको धारण करके भी शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित है ॥ ४८ ॥ इसके गहन चरित्रोंको

निशुम्भोऽसौ कथं भग्नाः पलायिताः ॥ ४२ ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं राज्ञस्ते प्रोचुः प्रणता भृशम् ॥ राजंस्ते निहतो भ्राता शेते समरमूर्धनि ॥ ४३ ॥ तया निपातिताः शूरा ये च तेऽप्यनुजानुगाः ॥ वयं त्वां कथितुं सर्वं वृत्तांतं समुपागताः ॥४४॥ निशुम्भो निहतस्तत्र तया चण्डिकयाऽधुना ॥ न हि युद्धस्य कालोऽद्य तव राजन्रणांगणे ॥ ४५ ॥ देवकार्यं समुद्दिश्य काऽपीयं परमांगना ॥ हन्तुं दैत्यकुलं नूनं प्राप्तेति परिचिंतय ॥ ४६ ॥ नैषा प्राकृतयोषैव देवी शक्तिरनुत्तमा ॥ अचिंत्यचरिता क्वापि दुर्ज्ञेया दैवतैरपि ॥ ४७ ॥ नानारूपधरातीव मायामूलविशारदा ॥ विचित्रभूषणा देवी सर्वायुधधरा शुभा ॥ ४८ ॥ गहना गूढचरिता कालरात्रिरिवापरा ॥ अपारपारगा पूर्णा सर्वलक्षणसंयुता ॥४९॥ अन्तरिक्षस्थिता देवास्तां स्तुवंत्यकुतोभयाः ॥ देवकार्यं च कुर्वाणां श्रीदेवीं परमाद्भुताम् ॥ ५० ॥ पलायनं परो धर्मः सर्वथा देहरक्षणम् ॥ रक्षिते किल देहेऽस्मिन्कालेऽस्मत्सुखताङ्गते ॥ ५१ ॥ संग्रामे विजयो राजन्भविता ते न संशयः ॥ कालः करोति बलिनं समये निर्बलं क्वचित् ॥ ५२ ॥ तं पुनः सबलं कृत्वा जयायोपदधाति हि ॥ दातारं याचकं कालः करोति समये क्वचित् ॥ ५३ ॥ भिक्षुकं धनदातारं करोति समयांतरे ॥ विष्णुः कालवशे नूनं ब्रह्मा वा पार्वतीपतिः ॥५४॥ इन्द्राद्या निर्जराः सर्वे काल एव प्रभुः स्वयम् ॥ तस्मात्कालं प्रतीक्षस्व विपरीतं तवाधुना ॥ ५५ ॥ संमुखो देवतानां च

समझना बहुत कठिन है । यह दूसरी कालरात्रिके समान डरावनी दीखती है और समस्त शुभलक्षणोंसे सम्पन्न पूर्ण प्रकृति है । यह असाध्य कार्यको भी सिद्ध कर लेती है ॥४९॥ यह परम अद्भुत श्री देवी तन्मयतापूर्वक देवताओंका काम करती है । आकाशमण्डलमें विद्यमान देवता निर्भय भावसे इसकी स्तुति करते हैं ॥ ५० ॥ इस समय तो भागकर शरीर बचा लेना ही सबसे बड़ा धर्म है । यदि शरीर बचा रहेगा तो अनुकूल समय आनेपर हम संग्राममें अवश्य विजय प्राप्त करेंगे । इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है । क्योंकि समय ही प्राणीको बलवान् और निर्बल बनाता है ॥५१॥५२॥ समय ही निर्बलको बलवान् बनाकर विजयश्री दिलाता है । कभी-कभी वह दाताको भी भिक्षुक बना देता है ॥५३॥ कालान्तरमें समय ही भिक्षुकको धनदाताके पदपर बिठाल देता है । विष्णु, ब्रह्मा और शिव सभी समयके वशीभूत हैं ॥ ५४ ॥ इन्द्रादिक देवता भी सदा उसके अधीन रहते हैं । अतएव समय ही सबका स्वामी है ।

इसलिए हमारी तो यही सलाह है कि अच्छे अवसरकी प्रतीक्षा करिए। अभी समय आपके प्रतिकूल है ॥ ५५ ॥ यह समय देवताओंके अनुकूल है और दैत्योंके लिए विनाशकारी है। हे महाराज ! कभी भी समयकी गति एक जैसी नहीं रहती ॥ ५६ ॥ समय नाना प्रकारके रूप धारण करता रहता है। अतएव शान्तिके साथ उसकी गतिविधिको देखते रहिए। यह कालका ही खेल है कि वह एक समय मनुष्योंको उत्पन्न करता है और वही उनका विनाश भी कर देता है ॥ ५७ ॥ उत्पत्तिका कारणस्वरूप काल और होता है और विनाशकारी काल उससे भिन्न होता है। हे महाराज ! यह तो आप प्रत्यक्ष देख रहे हैं कि ये इन्द्र आदि देवता वे ही हैं ॥ ५८ ॥ जिन्हें आपने अपने अनुकूल समयमें करदाता (प्रजाजन) बना लिया था। आज समय हमारे विपरीत है, तब एक स्त्री प्रबल पराक्रमी हम असुरवीरोंको मार रही है। समय ही प्राणीको उन्नत तथा अवनत बनाता है। इस पराजयमें काली या देवता कारण नहीं हैं ॥ ५९ ॥ ६० ॥ हमारी बातोंपर भली-भाँति विचार करके आपको जो जँचे, वैसा करिए। किन्तु इतना हम फिर कहेंगे कि यह समय दानवोंके अनुकूल नहीं है ॥ ६१ ॥ एक समय वह

दैत्यानां नाशहेतुकः ॥ एकैव च गतिर्नास्ति कालस्य किल भूपते ॥ ५६ ॥ नानारूपधरोऽप्यस्ति ज्ञातव्यं तस्य चेष्टितम् ॥ कदाचित्संभवो नृणां कदाचित्प्रलयस्तथा ॥ ५७ ॥ उत्पत्तिहेतुः कालोऽन्यः क्षयहेतुस्तथाऽपरः ॥ प्रत्यक्षं ते महाराज देवाः सर्वे सवासवाः ॥ ५८ ॥ करदास्ते कृताः पूर्वं कालेन सम्मुखेन च ॥ तेनैव विमुखेनाद्य बलिनोऽबलयाऽसुराः ॥ ५९ ॥ निहता नितरां कालः करोति च शुभाशुभम् ॥ नैवात्र कारणं काली नैव देवाः सनातनाः ॥ ६० ॥ यथा ते रोचते राजंस्तथा कुरु विमृश्य च ॥ कालोऽयं नात्र हेतुस्ते दानवानां तथा पुनः ॥ ६१ ॥ त्वदग्रतो गतः शक्रो भग्नः संख्ये निरायुधः ॥ तथा विष्णुस्तथा रुद्रो वरुणो धनदो यमः ॥ ६२ ॥ तथा त्वमपि राजेंद्र वीक्ष्य कालवशं जगत् ॥ पातालं गच्छ तरसा जीवन्भद्रमवाप्स्यसि ॥ ६३ ॥ मृते त्वयि महाराज शत्रवस्ते मुदान्विताः ॥ मंगलानि प्रगायंतो विचरिष्यंति सर्वतः ॥ ६४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

व्यास उवाच ॥ इति तेषां वचः श्रुत्वा शुम्भो दैत्यपतिस्तथा ॥ उवाच सैनिकानाशु कोपाकुलितलोचनः ॥ १ ॥ शुम्भ उवाच ॥ जाल्माः किं ब्रूत दुर्वाच्यं कृत्वा जीवितुमुत्सहे ॥ निहत्य सचिवान्भ्रातॄन्निर्लज्जो विचरामि किम् ॥ २ ॥ कालः कर्ता शुभानां वाऽशुभानां बलवत्तरः ॥

भी था कि जब रणभूमिमें शस्त्र त्यागकर इन्द्र, विष्णु, शिव, वरुण, कुबेर और यम आदि देवता पीठ दिखाकर आपके सामनेसे भाग गये थे ॥ ६२ ॥ उसी प्रकार हे महाराज ! आप भी संसारको समयके अधीन समझकर तुरन्त पाताललोकको चल दीजिए। यदि जीवन बचा रहेगा तो फिर अच्छे दिन देखनेको मिलेंगे ॥ ६३ ॥ कदाचित् रणभूमिमें जाकर आप मर गये तो देवता मंगलगीत गाते हुए बड़े हर्षपूर्वक निर्भयभावसे सर्वत्र विचरेंगे ॥ ६४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे भाषाटीकायां त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

(शुम्भवधकी कथा) व्यासजी बोले—उन सैनिकोंकी बात सुनकर दैत्यपति शुम्भके नेत्र आकुल हो उठे। उसने उन भगोड़े सैनिकोंसे कहा ॥ १ ॥ शुम्भ बोला—ओ धूर्तो ! तुम यह क्या कह रहे हो ? जो तुम कहते हो, वैसा करके मैं अपने प्राण बचाऊँ ? अपने भ्राता तथा मंत्रियोंका वध कराके मैं निर्लज्ज बनकर विचरूँ ? ॥ २ ॥ परम बलवान् काल ही भला-

बुरा सब कुछ करता है। यदि वह काल ही प्रभु है, तब मेरे चिन्ता करनेसे क्या लाभ होगा ? ॥ ३ ॥ जो होना है, वह होगा। कालकी जो इच्छा हो, वह करे। अब मुझे जीवन और मरणके विषयमें कुछ भी चिन्ता नहीं है ॥ ४ ॥ किन्तु विधिके विधानको मेटनेकी सामर्थ्य कालमें भी नहीं है। ऐसा भी देखनेमें आता है कि श्रावणमें जल नहीं बरसता ॥ ५ ॥ बल्कि कभी-कभी अगहन, पौष, माघ तथा फाल्गुनमें वर्षा होने लगती है। इससे पता चलता है कि सब कार्योंमें कालका भी वश नहीं है ॥ ६ ॥ काल तो केवल निमित्तमात्र है, बल्कि दैव ही कालकी अपेक्षा अधिक बलवान् है। सब कुछ बनाने-बिगाड़नेवाला दैव ही है ॥ ७ ॥ अतएव मैं तो दैवको ही सर्वश्रेष्ठ समझता हूँ। उसके आगे पुरुषार्थ व्यर्थ हो जाता है। क्योंकि जिसने सब देवताओं-पर विजय प्राप्त कर ली थी, वह निशुम्भ दैववश एक स्त्रीके हाथों मारा गया ॥ ८ ॥ महाबली रक्तबीज भी जब मर गया, तब अपनी कीर्तिको धूलमें मिलाकर मैं जीवित रहनेकी आशा क्यों

का चिंता मम दुर्वारे तस्मिन्नीशेऽप्यरूपके ॥ ३ ॥ यद्भवति तद्भवतु यत्करोति करोतु तत् ॥ न मे चिंताऽस्ति कुत्रापि मरणाज्जीवनात्तथा ॥ ४ ॥ स कालोऽप्यन्यथा कर्तुं भावितो नेशते क्वचित् ॥ न वर्षति च पर्जन्यः श्रावणे मासि सर्वदा ॥५॥ कदाचिन्मार्गशीर्षे वा पौषे माघेऽथ फाल्गुने ॥ अकाले वर्षतीवाशु तस्मान्मुख्यो न चास्त्ययम् ॥ ६ ॥ कालो निमित्तमात्रं तु दैवं हि बलवत्तरम् ॥ दैवेन निर्मितं सर्वं नान्यथा भवतीत्यदः ॥७॥ दैवमेव परं मन्ये धिक्पौरुषमनर्थकम् ॥ जेता यः सर्वदेवानां निशुम्भोऽप्यनया हतः ॥ ८ ॥ रक्तबीजो महाशूरः सोऽपि नाशं गतो यदा ॥ तदाऽहं कीर्तिमुत्सृज्य जीविताशां करोमि किम् ॥ ९ ॥ प्राप्ते काले स्वयं ब्रह्मा परार्धद्वयसंमिते ॥ निधनं याति तरसा जगत्कर्ता स्वयं प्रभुः ॥ १० ॥ चतुर्युगसहस्रं तु ब्रह्मणो दिवसे किल ॥ पतंति भवनात्पंच नव चेन्द्रास्तथा पुनः ॥ ११ ॥ तथैव द्विगुणे विष्णुर्मरणायोपकल्पते ॥ तथैव द्विगुणे काले शंकरः शांतिमेति च ॥ १२ ॥ का चिंता मरणे मूढा निश्चले दैवनिर्मिते ॥ महीमहीधराणां च नाशः सूर्यशशांकयोः ॥ १३ ॥ जातस्य हि ध्रुवं मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च ॥ अध्रुवेऽस्मिञ्छरीरे तु रक्षणीयं यशः स्थिरम् ॥ १४ ॥ रथो मे कल्प्यतां शीघ्रं गमिष्यामि रणाजिरे ॥ जयो वा मरणं वापि भवत्वद्यैव दैवतः ॥ १५ ॥ इत्युक्त्वा सैनिकाञ्छुम्भो रथमास्थाय सत्वरः ॥ प्रययावम्बिका यत्र संस्थिता तु हिमाचले ॥१६॥

करूँ ? ॥ ९ ॥ समस्त विश्वकी रचना करनेवाले और सबके प्रभु ब्रह्माजी भी दो परार्धका समय बीतनेपर मर जाते हैं ॥ १० ॥ ब्रह्माजीके एक दिनमें चार हजार युग बीतते हैं और इतनी ही देरमें चौदह इन्द्रोंका पतन हो जाता है ॥ ११ ॥ इसी प्रकार ब्रह्माजीके जीवनकालकी अपेक्षा दूना समय बीतनेपर विष्णु और उनसे दुगुना समय व्यतीत होनेपर शिवजी भी शान्त हो जाते हैं ॥१२॥ तब पृथिवी, पर्वत, सूर्य और चन्द्रमा भी नष्ट हो जाते हैं। जब दैवने मृत्युको अनिवार्य बना दिया है। तब हे मूर्खो ! मरणके विषयमें चिन्ता करनेसे क्या लाभ ? ॥ १३ ॥ जिसका जन्म हुआ है, वह अवश्य मरेगा और जो मरा है, उसका जन्म पाना निश्चित है। तब इस विनाशशील शरीरके द्वारा अर्जित चिरस्थायी यशकी रक्षा करना आवश्यक है ॥ १४ ॥ मेरा रथ तैयार करवाओ। मैं रणाङ्गणमें जाऊँगा। भाग्यवश विजय या मरण इन दोनोंमें जो मिलना हो, वह मिल जाय ॥१५॥ सैनिकोंसे यह कहकर [illegible]

गया और हिमालयके उस प्रदेशकी ओर चल पड़ा, जहाँ अम्बिका विराजमान थीं ॥ १६ ॥ उसके साथ रथ, हाथी, घोड़े और पैदल सैनिकोंकी चतुरंगिणी सेना चली। उसके पास विविध प्रकारके शस्त्रास्त्र थे ॥ १७ ॥ हिमवान् पर्वतपर पहुँचकर शुम्भने सिंहवाहिनी और त्रैलोक्यसुन्दरी जगदम्बाको विराजमान देखा ॥ १८ ॥ वे देवी सभी आभूषणोंसे आभूषित और समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न थीं। आकाशमण्डलमें विद्यमान देवता, गन्धर्व, यक्ष और किन्नर उनकी स्तुति कर रहे थे ॥ १९ ॥ वे स्वर्गीय मन्दार पुष्पसे देवीकी अर्चना कर रहे थे। भगवती मनोहर घण्टानाद करती हुई बारम्बार शंख बजा रहीं थीं ॥२०॥ उन जगदम्बाका अनुपम रूप देखकर शुम्भ कामान्ध हो उठा। कामबाणसे पीडित होकर वह मन ही मन सोचने लगा–॥२१॥ ओह ! इस रमणीका कितना सुन्दर रूप है ! इसमें कितनी चतुराई भरी हुई है ! इसमें कोमलता और धैर्य इन दोनों परस्परविरोधी भावोंका अनोखा समावेश है ॥ २२ ॥ यह बहुत सुकुमार है। इसके अंग कितने सूक्ष्म हैं। अभी यौवन उभड़ रहा है, किन्तु यह सब होते हुए भी इसमें कामवासनाके जागृत होनेका कोई लक्षण नहीं दिखाई देता। यह बड़ी विचित्र बात है

सैन्यं प्रचलितं तस्य संगे तत्र चतुर्विधम् ॥ हस्त्यश्वरथपादातिसंयुतं सायुधं बहु ॥ १७ ॥ तत्र गत्वाऽचले शुम्भः संस्थितां जगदम्बिकाम् ॥ त्रैलोक्यमोहिनीं कांतामपश्यत्सिंहवाहिनीम् ॥ १८ ॥ सर्वाभरणभूषाढ्यां सर्वलक्षणसंवृताम् ॥ स्तूयमानां सुरैः खस्थैर्गंधर्वयक्षकिन्नरैः ॥ १९ ॥ पुष्पैश्च पूज्यमानां च मंदारपादपोद्भवैः ॥ कुर्वाणां शंखनिनदं घंटानादं मनोहरम् ॥ २० ॥ दृष्ट्वा तां मोहमगमच्छुम्भः कामविमोहितः ॥ पंचबाणाहतः कामं मनसा समचिंतयत् ॥ २१ ॥ अहो रूपमिदं सम्यगहो चातुर्यमद्भुतम् ॥ सौकुमार्यं च धैर्यं च परस्परविरोधि यत् ॥ २२ ॥ सुकुमाराऽतितन्वंगी सद्यः प्रकटयौवना ॥ चित्रमेतदसौ बाला कामभावविवर्जिता ॥ २३ ॥ कामकांतासमा रूपे सर्वलक्षणलक्षिता ॥ अंबिकेयं किमेतत्तु हंति सर्वान्महाबलान् ॥ २४ ॥ उपायः कोऽत्र कर्तव्यो येन मे वशगा भवेत् ॥ न मंत्रा वा मरालाक्षीसाधने सन्निधौ मम ॥ २५ ॥ सर्वमंत्रमयी ह्येषा मोहिनी मदगर्विता ॥ सुन्दरीयं कथं मे स्याद्वशगा वरवर्णिनी ॥२६॥ पातालगमनं मेऽद्य न युक्तं समरांगणात् ॥ सामदानविभेदैश्च नेयं साध्या ममाबला ॥ २७ ॥ किं कर्तव्यं क्व गंतव्यं विषमे समुपस्थिते ॥ मरणं नोत्तमं नात्र स्त्रीकृतं तु यशोऽपहृत् ॥ २८ ॥ मरणं ऋषिभिः प्रोक्तं संगरे मंगलास्पदम् ॥ यत्तत्समानबलयोर्योधयोर्युध्यतोः किल ॥ २९ ॥ प्राप्तेयं दैवरचिता नारी नरशतोत्तमा ॥ नाशायास्मत्कुलस्येह सर्वथाऽति-

॥ २३ ॥ यह कामदेवकी पत्नी रतिके समान सुन्दर है। इसमें सभी शुभ लक्षण विद्यमान हैं। तब यह अम्बिका हमारे महाबली योद्धाओंका वध क्यों कर रही है ? ॥ २४ ॥ अब मैं ऐसा कौन उपाय करूँ कि जिससे यह मेरे वशमें हो जाय। मेरे पास कोई वशीकरण मंत्र भी नहीं है कि जिसका प्रयोग करके मैं इसे अपने वशमें कर लूँ ॥ २५ ॥ यह कुलीन और परम सुन्दरी महिला तो स्वयं सब मंत्रोंकी अधीश्वरी है। तब मंत्रके प्रभावसे यह मदमाती मोहिनी नारी मेरे वशमें कैसे होगी ? इस समय रणभूमि त्यागकर पातालको भाग जाना भी उचित न होगा। सामनीति द्वारा मीठी-मीठी बातें करने, दाननीति द्वारा प्रलोभन देने और भेदनीति द्वारा फूट डालनेपर भी यह सुन्दरी मेरे वशमें न होगी ॥२६॥२७॥ ऐसी विषम परिस्थितिमें मैं क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? यहाँ इसके हाथों मर जाना भी उचित न होगा। क्योंकि मुझ जैसे वीरका स्त्रीके हाथसे मरण होनेपर बड़ा अपयश होगा ॥ २८ ॥ मुनियोंने रणभूमिमें मरणको मंगलदायक

बताया है। किन्तु वह भी जब अपने समान बलवाले वीरोंके साथ युद्ध करते-करते मरण हो जाय, तभी ठीक हो सकता है ॥२९॥ दैवने इस रमणीको सैकड़ों वीरोंसे भी बलवती बनाया है। अतएव यह अबला होती हुई भी अतिबला है और दैत्यवंशको निर्मूल करनेके लिए ही यह यहाँ आयी हुई है ॥ ३० ॥ इससे सामनीतिकी चिकनी-चुपड़ी बातें करना भी व्यर्थ होगा। क्योंकि जब यह हमें मारनेके लिए आयी हुई है, तब बातोंसे कैसे प्रसन्न होगी ? ॥३१॥ यह विविध शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित और बलसे सम्पन्न है। अतएव प्रलोभनमें भी यह नहीं फँसेगी। सब देवता इसके वशीभूत रहते हैं। अतएव (फूट डालनेकी) नीति भी कुछ न कर सकेगी ॥ ३२ ॥ अतः मर जाना ही उचित है, लेकिन रणमें पीठ दिखाकर भागना ठीक न होगा। अब चाहे विजय प्राप्त हो या मरण मिले। जो होना हो, वह हो जाय ॥ ३३ ॥ ऐसा विचार करके शुम्भने धैर्यका अवलम्बन किया। तदनुसार युद्ध करनेका निश्चय करके अपने समक्ष विराजमान देवीसे उसने कहा—हे देवि ! अब आप युद्ध करें। किन्तु हे कान्ते ! आपका यह परिश्रम व्यर्थ है। आप मूर्ख हैं। क्योंकि युद्ध करना स्त्रीका काम नहीं है ॥३४॥३५॥ स्त्रियोंके

बलाऽबला ॥ ३० ॥ वृथा किं सामवाक्यानि मया योज्यानि सांप्रतम् ॥ हननायागता ह्येषा किं नु साम्ना प्रसीदति ॥३१॥ न दानैश्चालितुं योग्या नानाशस्त्रविभूषिता ॥ भेदस्तु विफलः कामं सर्वदेववशानुगा ॥ ३२ ॥ तस्मात्तु मरणं श्रेयो न संग्रामे पलायनम् ॥ जयो वा मरणं वाऽद्य भवत्वेव यथाविधि ॥ ३३ ॥ व्यास उवाच ॥ इति संचिंत्य मनसा शुम्भः सत्त्वाश्रितोऽभवत् ॥ युद्धाय सुस्थिरो भूत्वा तामुवाच पुरःस्थिताम् ॥ ३४ ॥ देवि युध्यस्व कान्तेऽद्य वृथाऽयं ते परिश्रमः ॥ मूर्खाऽसि किल नारीणां नायं धर्मः कदाचन ॥ ३५ ॥ नारीणां लोचने बाणा भ्रुवावेव शरासनम् ॥ हावभावास्तु शस्त्राणि पुमाँल्लक्ष्यं विचक्षणः ॥ ३६ ॥ सन्नाहश्चांगरागोऽत्र रथश्चापि मनोरथः ॥ मन्दप्रजल्पितं भेरीशब्दो नान्यः कदाचन ॥ ३७ ॥ अन्यास्त्रधारणं स्त्रीणां विडम्बनमसंशयम् ॥ लज्जैव भूषणं कान्ते न च धार्ष्ट्यं कदाचन ॥ ३८ ॥ युध्यमाना वरा नारी कर्कशेवाभिदृश्यते ॥ स्तनौ संगोपनीयौ वा धनुषः कर्षणे कथम् ॥ ३९ ॥ क्व मंदगमनं कुत्र गदामादाय धावनम् ॥ बुद्धिदा कालिका तेऽत्र चामुंडा परनायिका ॥ ४० ॥ चण्डिका मंत्रमध्यस्था लालनेऽसुस्वरा शिवा ॥ वाहनं मृगराडास्ते सर्वसत्त्वभयंकरः ॥ ४१ ॥ वीणानादं

तो नैन ही बाण होते हैं। उनकी भौंहें धनुषका काम करती हैं। उनके हाव-भाव शस्त्र तथा कामी पुरुष उनके लक्ष्य (शिकार) होते हैं ॥ ३६ ॥ सुरभित अंगराग कवच, मनोकामना रथ और फुसफुसाहटकी बोली ही भेरीका शब्द बन जाता है। अतएव स्त्रियोंको अन्य शस्त्रोंकी कोई आवश्यकता नहीं रहती ॥३७॥ इन स्वाभाविक शस्त्रोंके रहते हुए भी वे यदि अन्य शस्त्र धारण करती हैं तो यह विडम्बना ही कही जायगी। हे सुन्दरी ! स्त्रियोंके लिए तो लज्जा ही आभूषणका काम करती है। उन्हें धृष्टता शोभा नहीं देती ॥३८॥ कोई भी स्त्री जब युद्ध करती है तो वह बड़ी कठोर दीखने लगती है। आप ही बताइए कि जब आप धनुषकी डोरी खींचने लगेंगी, तब अपने स्तनोंको कैसे छिपाये रह सकेंगी ? ॥३९॥ कहाँ सुन्दरियोंकी मन्थर गति और कहाँ गदा लेकर दौड़ना ? ऐसा प्रतीत होता है कि कालिका और परनायिका चामुण्डाकी ही सलाहपर आप चलती हैं ॥ ४० ॥ मंत्रणाके अवसरपर चण्डिका मध्यस्थ बनती है। इस शिवाका स्वर तो बड़ा कर्कश है। तब यह भला आपका लालन कैसे करती होगी ? सब पशुओंसे भयंकर पशु सिंह आपका वाहन है ॥ ४१ ॥ हे सुन्दरी ! वीणावादन त्यागकर आप जो

घण्टानाद करती रहती हैं, वह आपके रूप और यौवनके सर्वथा विपरीत है ॥४२॥ हे भामिनी ! यदि युद्ध ही करना हो तो पहले आप कुरूप बनिए। लम्बे-लम्बे होंठ हों, बढ़े हुए नख हों, क्रूर प्रकृति हो, कौए जैसी कानी आँख हो, बड़े-बड़े पैर हों, टेढ़े-टेढ़े दाँत हों और बिल्ली जैसी भूरी-भूरी आँखें हों। ऐसा भयानक रूप बनाकर आयें, तब आप युद्धभूमिमें स्थिरभावसे खड़ी हो जायँ तो ठीक है ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ आप कठोर बातें करें, तभी मैं आपके साथ युद्ध कर सकूँगा। आपका यह अनुपम सौन्दर्य और आपके सुन्दर दाँत देखकर आपके ऊपर प्रहार करनेके लिए मेरे हाथ ही नहीं उठ सकेंगे ॥ ४५ ॥ हे मृगके बच्चोंकी तरह भोली आँखोंवाली ! हे कामदेवकी प्रेयसी रतिके सदृश सुन्दरी ! आपके इस मोहक रूपको देखकर मैं शस्त्र नहीं उठा सकूँगा। व्यासजी बोले--हे भरतोत्तम ! उस कामार्त दानवको ऐसा कहते देख जगदम्बाने मुसकाकर कहा। देवी बोलीं--अरे मन्दबुद्धि ! तू कामबाणसे मोहित होकर इस प्रकार

परित्यज्य घंटानादं करोषि यत् ॥ रूपयौवनयोः सर्वं विरोधि वरवर्णिनि ॥४२॥ यदि ते संगरेच्छाऽस्ति कुरूपा भव भामिनि ॥ लम्बोष्ठी कुनखी क्रूरा ध्वांक्षवर्णा विलोचना ॥ ४३ ॥ लम्बपादा कुदन्ती च मार्जारनयनाकृतिः ॥ ईदृशं रूपमास्थाय तिष्ठ युद्धे स्थिरा भव ॥ ४४ ॥ कर्कशं वचनं ब्रूहि ततो युद्धं करोम्यहम् ॥ ईदृशीं सुदतीं दृष्ट्वा न मे पाणिः प्रसीदति ॥४५॥ हन्तुं त्वां मृगशावाक्षि कामकांतोपमे मृधे ॥ व्यास उवाच ॥ इति ब्रुवाणं कामार्तं वीक्ष्य तं जगदम्बिका ॥ ४६ ॥ स्मितपूर्वमिदं वाक्यमुवाच भरतोत्तम ॥ देव्युवाच ॥ किं विषीदसि मन्दात्मन्कामबाणविमोहितः ॥ ४७ ॥ प्रेक्षिकाऽहं स्थिता मूढ कुरु कालिकया मृधम् ॥ चामुण्डया वा कुर्वेते तव योग्ये रणांगणे ॥ ४८ ॥ प्रहरस्व यथाकामं नाहं त्वां योद्धुमुत्सहे ॥ इत्युक्त्वा कालिकां प्राह देवी मधुरया गिरा ॥ ४९ ॥ जह्येनं कालिके क्रूरे कुरूपप्रियमाहवे ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्ता कालिका कालप्रेरिता कालरूपिणी ॥ ५० ॥ गदां प्रगृह्य तरसा तस्थावाजौ कृतोद्यमा ॥ तयोः परस्परं युद्धं बभूवातिभयानकम् ॥ ५१ ॥ पश्यतां सर्वदेवानां मुनीनां च महात्मनाम् ॥ गदामुद्यम्य शुम्भोऽथ जघान कालिकां रणे ॥ ५२ ॥ कालिका दैत्यराजानं गदया न्यहनद्भृशम् ॥ बभंजास्य रथं चण्डी गदया कनकोज्ज्वलम् ॥ ५३ ॥ खरान्हत्वा जघानाशु दारुकं दारुणस्वना ॥ स पदातिर्गदां गुर्वीं समादाय क्रुधा-

विषाद क्यों कर रहा है ? ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ओ मूढ़ ! मैं प्रेक्षिका बनकर अलग बैठती हूँ। तू कालिका या चामुण्डाके साथ युद्ध कर। वे दोनों तेरे लिए सर्वथा उपयुक्त हैं ॥ ४८ ॥ तू उन दोनोंपर मनमाना प्रहार कर। मैं तुझसे नहीं लड़ना चाहती। शुम्भसे ऐसा कहकर अम्बिकाने बड़ी मधुर वाणीमें कालिकासे कहा--॥ ४९ ॥ हे कालिके! हे क्रूरे ! तुम इस कुरूपप्रिय दानवको रणभूमिमें मार डालो। व्यासजी बोले--जब भगवती अम्बिकाने कालिकाको ऐसा आदेश दिया, तब कालप्रेरित कालिका गदा लेकर रणभूमिमें जा डटीं और दोनोंमें भीषण युद्ध होने लगा ॥ ५० ॥ ५१ ॥ उस समय सब देवता, महात्मा और मुनिगण वह युद्ध देखने लगे। उसी समय शुम्भने अपनी गदासे कालिकापर प्रहार किया ॥ ५२ ॥ उस प्रहारको व्यर्थ करके कालिकाने गदासे उसे मारा और गदाके प्रहारसे ही उसके सुनहले रथको भी चूर्ण कर दिया ॥ ५३ ॥ उसी सिलसिलेमें उसके घोड़ों तथा सारथीको भी समाप्त कर दिया।

तब अतिशय कुपित होकर शुम्भ पैदल ही गदा लेकर दौड़ा ॥५४॥ समीप जाकर उसने कालिकाकी छातीपर प्रहार कर दिया। उस गदाघातको बचाकर कालिकाने तलवार ले ली ॥५५॥ और उसीसे शुम्भकी शस्त्रविभूषित तथा चन्दनचर्चित बायीं भुजा काट डाली। यद्यपि उसकी भुजा कट गयी थी, फिर भी दायें हाथमें गदा लिये हुए रुधिरसे सराबोर शुम्भ कालिकाके समीप पहुँचा और उनके ऊपर प्रहार कर दिया। तत्काल कलिकाने गदाके आघातको बचाकर अपनी करौलीसे उसका दाहिना हाथ भी काट डाला ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ उसकी उस भुजामें गदा तथा बिजायठ अब भी विद्यमान था। तब बड़े क्रोध और वेगसे शुम्भ कालिकापर पादप्रहार करनेके लिए झपटा ॥ ५८ ॥ उसी समय कालिकाने बड़ी फुर्तीसे तलवार द्वारा उसके दोनों पैर भी काट डाले। इस प्रकार हाथ-पैर कट जानेपर भी शुम्भ 'ठहर जा--ठहर जा' ऐसा कहता और उन्हें धमकाता हुआ चला। उसे अपनी ओर आते देखकर कालिकाने उसके कमल

न्वितः ॥ ५४ ॥ कालिका भुजयोर्मध्ये प्रहसन्नहनत्तदा ॥ वंचयित्वा गदाघातं खड्गमादाय सत्वरा ॥ ५५ ॥ चिच्छेदास्य भुजं सव्यं सायुधं चन्दनार्चितम् ॥ स छिन्नबाहुर्विरथो गदापाणिः परिप्लुतः ॥ ५६ ॥ अचिरेण समागम्य कालिकामहनत्तदा ॥ काली च करवालेन भुजं तस्याथ दक्षिणम् ॥ ५७ ॥ चिच्छेद प्रहसंती सा सगदं किल सांगदम् ॥ कर्तुं पादप्रहारं स कुपितः प्रययौ जवात् ॥ ५८ ॥ काली चिच्छेद चरणौ खड्गेनास्य त्वरान्विता ॥ स च्छिन्नकरपादोऽपि तिष्ठ तिष्ठेति च ब्रुवन् ॥ ५९ ॥ धावमानो ययावाशु कालिकां भीषयन्निव ॥ तमागच्छंतमालोक्य कालिका कमलोपमम् ॥ ६० ॥ चकर्त मस्तकं कंठाद्रुधिरौघवहं भृशम् ॥ छिन्नेऽसौ मस्तके भूमौ पपात गिरिसन्निभः ॥ ६१ ॥ प्राणा विनिर्ययुस्तस्य देहादुत्क्रम्य सत्वरम् ॥ गतासुं पतितं दैत्यं दृष्ट्वा देवाः सवासवाः ॥६२॥ तुष्टुवुस्तां तदा देवीं चामुंडां कालिकां तथा ॥ ववुर्वाताः शिवास्तत्र दिशश्च विमला भृशम् ॥ ६३ ॥ बभूवुश्चाग्नयो होमे प्रदक्षिणशिखाः शुभाः ॥ हतशेषाश्च ये दैत्याः प्रणम्य जगदंबिकाम् ॥ ६४ ॥ त्यक्त्वाऽऽयुधानि ते सर्वे पातालं प्रययुर्नृप ॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं देव्याश्चरितमुत्तमम् ॥ ६५ ॥ शुम्भादीनां वधं चैव सुराणां रक्षणं तथा ॥ एतदाख्यानकं सर्वं पठन्ति भुवि मानवाः ॥ ६६ ॥ शृण्वंति च सदा भक्त्या ते कृतार्था भवंति हि ॥ अपुत्रो लभते पुत्रान्निर्धनश्च धनं बहु ॥ ६७ ॥ रोगी च

सदृश मस्तकको भी काटकर धड़से अलग कर दिया। मस्तक कटते ही उसके शरीरसे रुधिरकी धारा बह चली। उसका पर्वताकार शरीर पृथिवीपर गिर पड़ा ॥ ५९–६१ ॥ तत्काल उसके प्राण निकल गये। शुम्भको मरा हुआ देखकर इन्द्र आदि सब देवता भगवती अम्बिका, कालिका तथा चामुण्डाकी स्तुति करने लगे। उस समय सुखदायी हवा बहने लगी और सभी दिशायें निर्मल हो गयीं ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ हवनकुण्डकी अग्नि शुभ सूचना देने लगी और उसकी लपटें दाहिनी ओरसे उठने लगीं। जो दैत्य मरनेसे बच गये थे, उन्होंने जगदम्बाको प्रणाम किया और शस्त्रास्त्र त्यागकर पाताल चले गये। व्यासजी कहते हैं कि इस प्रकार मैंने आपको देवीका यह उत्तम चरित्र कह सुनाया ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ इसमें शुम्भ आदि दैत्योंके वध तथा देवी द्वारा देवताओंकी रक्षाका भी वर्णन हो गया है। इस भूतलपर जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक सदा इस आख्यानको पढ़ते या सुनते हैं, वे कृतार्थ हो जाते हैं। पुत्र-

हीन मनुष्य पुत्रोंको प्राप्त करता है और निर्धन पुष्कल धन पाता है ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ इसे पढ़ने-सुननेसे रोगी रोगमुक्त हो जाता है । इस प्रकार लोगोंकी सब कामनायें पूर्ण हो जाती हैं । जो मनुष्य नित्य इस शुभ चरित्रका पठन-श्रवण करता है, उसे शत्रुका भय नहीं रह जाता और अन्तमें मुक्ति तक प्राप्त हो जाती है ॥ ६८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा' भाषाटीकायामेकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

(राजा सुरथ और समाधि वैश्यकी कथा) राजा जनमेजय बोले—हे मुनिराज ! आपने चण्डिकाकी महिमाका बड़ा सुन्दर वर्णन किया । अब कृपया यह बताइए कि देवीके तीनों चरित्रोंका मनन करके किसने उनकी आराधना की ? ॥ १ ॥ वे भगवती किसके ऊपर प्रसन्न हुईं और देवीकी पूजा करके किसने महान् फल प्राप्त किया ? हे कृपानिधान ! कृपया यह वृत्तान्त विस्तारपूर्वक कहिए ॥ २ ॥ हे ब्रह्मन् ! उसके साथ ही देवीके पूजनकी विधि भी बताइए । हे महाभाग ! होमकी विधि भी विस्तारपूर्वक कहिए ॥३॥ सूतजी बोले—हे मुनिवृन्द !

मुच्यते रोगात्सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ शत्रुतो न भयं तस्य य इदं चरितं शुभम् ॥ शृणोति पठते नित्यं मुक्तिमाञ्जायते नरः ॥६८॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे चंडमुंडवधो नाम एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

॥ जनमेजय उवाच ॥ महिमा वर्ण्यते सम्यक्चण्डिकायास्त्वया मुने ॥ केन चाराधिता पूर्वं चरित्रत्रययोगतः ॥१॥ प्रसन्ना कस्य वरदा केन प्राप्तं फलं महत् ॥ आराध्य कामदां देवीं कथयस्व कृपानिधे ॥ २ ॥ उपासनाविधिं ब्रह्मँस्तथा पूजाविधिं वद ॥ विस्तरेण महाभाग होमस्य च विधिं पुनः ॥ ३ ॥ सूत उवाच ॥ इति भूपवचः श्रुत्वा प्रीतः सत्यवतीसुतः ॥ प्रत्युवाच नृपं कृष्णो महामायाप्रपूजनम् ॥ ४ ॥ व्यास उवाच ॥ स्वारोचिषेऽन्तरे पूर्वं सुरथो नाम पार्थिवः ॥ बभूव परमोदारः प्रजापालनतत्परः ॥५॥ सत्यवादी कर्मपरो ब्राह्मणानां च पूजकः ॥ गुरुभक्तिरतो नित्यं स्वदारगमने रतः ॥ ६ ॥ दानशीलोऽविरोधी च धनुर्वेदैकपारगः ॥ एवं पालयतो राज्यं म्लेच्छाः पर्वतवासिनः ॥ ७ ॥ बलाच्छत्रुत्वमापन्नाः सैन्यं कृत्वा चतुर्विधम् ॥ हस्त्यश्वरथपादातिसहितास्ते मदोत्कटाः ॥ ८ ॥ कोलाविध्वंसिनः प्राप्ताः पृथ्वीग्रहणतत्पराः ॥ सुरथः सैन्यमादाय संमुखः समपद्यत ॥ ९ ॥ युद्धं समभवद्घोरं तस्य तैरतिदारुणैः ॥ म्लेच्छानां तु बलं स्वल्पं राज्ञस्तद्बलमद्भुतम् ॥ १० ॥ तथापि तैर्जितो युद्धे दैवाद्राजा

राजा जनमेजयके प्रश्न सुनकर सत्यवतीसुत कृष्ण द्वैपायन व्यास बहुत प्रसन्न हुए और भगवती महामायाकी पूजाविधि कहने लगे ॥ ४ ॥ व्यासजी बोले—हे राजन् ! पूर्वकालके स्वारोचिष मन्वन्तरमें सुरथ नामके एक राजा थे । वे बड़े उदार थे और सदा प्रजापालनके कार्यमें संलग्न रहते थे ॥५॥ वे सत्यवादी, कर्मनिष्ठ, ब्राह्मणोंके आराधक, गुरुभक्तिपरायण तथा अपनी ही पत्नीके साथ सहवास करनेवाले महापुरुष थे ॥६॥ वे बड़े दानी, किसीसे वैर न करनेवाले और धनुर्वेदके पारंगत वीर थे । इस प्रकार वे न्यायपूर्वक प्रजाका पालन करते थे। किन्तु कुछ पर्वतनिवासी म्लेच्छोंने बरबस उनके साथ शत्रुता ठान ली और उन मदमत्त म्लेच्छोंने हाथी, घोड़े रथ तथा पैदल सैनिकोंकी चतुरंगिणी सेना संगठित करके धावा बोल दिया । वे कोला राज्य ध्वस्त करके समस्त पृथिवीपर अधिकार करनेकी लालसावश राजा सुरथके राज्यमें जा पहुँचे । तब राजा सुरथ भी अपनी सेना लेकर लड़नेको आगे बढ़े ॥७–९॥ उनका उन म्लेच्छोंके

साथ भीषण युद्ध हुआ। यद्यपि म्लेच्छोंके पास बहुत कम और राजा सुरथके पास प्रचुर सेना थी ॥ १० ॥ तथापि दैवयोगसे महाराज पराजित हो गये और म्लेच्छोंकी विजय हुई। तब वे भागकर अपनी दुर्गवेष्टित राजधानीमें चले गये ॥ ११ ॥ राजनीतिके विज्ञ और बुद्धिमान् राजा सुरथने देखा कि उनके मुख्य-मुख्य कर्मचारी शत्रुपक्षमें मिल गये हैं। तब वे बहुत खिन्न हुए और सोचने लगे कि अब खाई तथा किलेसे सुरक्षित कोई लम्बी-चौड़ी जमीनपर टिककर अच्छे समयकी प्रतीक्षा की जाय या युद्ध करूँ ? ॥ १२ ॥ १३ ॥ मेरे सब मंत्री तो शत्रुसे मिल गये हैं। अतएव उनके साथ मंत्रणा नहीं की जा सकती। तब आखिर मैं करूँ क्या ? मन ही मन राजा सुरथ यही बात सोचने लगे—॥ १४ ॥ कदाचित् मेरे पापी और पराधीन कर्मचारियोंने शत्रुसे घूस लेकर मुझे उनके हाथों सौंप दिया, तब क्या होगा ? ॥ १५ ॥ जिनके मनमें पाप बस गया हो, ऐसे लोगोंपर कदापि विश्वास नहीं करना चाहिए। लोभके वशीभूत मनुष्य क्या-क्या अनर्थ नहीं कर सकते ? ॥ १६ ॥ लोभी मनुष्य अपने भाई, पिता, मित्र, सगे-सम्बन्धी और ब्राह्मणोंसे भी द्वेष करते हैं ॥ १७ ॥ अतएव शत्रुपक्षसे मिले

पराजितः ॥ भग्नश्च स्वपुरं प्राप्तः सुरक्षं दुर्गमंडितम् ॥ ११ ॥ चिंतयामास मेधावी राजा नीतिविचक्षणः ॥ प्रधानान्विमना दृष्ट्वा शत्रुपक्षसमाश्रितान् ॥ १२ ॥ स्थानं गृहीत्वा विपुलं परिखादुर्गमंडितम् ॥ कालप्रतीक्षा कर्तव्या किं वा युद्धं वरं मतम् ॥ १३ ॥ मंत्रिणः शत्रुवशगा मंत्रयोग्या न ते किल ॥ किं करोमीति मनसा भूपतिः समचिंतयत् ॥१४॥ कदाचित्ते गृहीत्वा मां पापाचाराः पराश्रिताः ॥ शत्रुभ्योऽथ प्रदास्यन्ति तदा किं वा भविष्यति ॥ १५ ॥ पापबुद्धिषु विश्वासो न कर्तव्यः कदाचन ॥ किं न ते वै प्रकुर्वंति ये लोभवशगा नराः ॥ १६ ॥ भ्रातरं पितरं मित्रं सुहृदं बांधवं तथा ॥ गुरुं पूज्यं द्विजं द्वेष्टि लोभाविष्टः सदा नरः ॥ १७ ॥ तस्मान्मया न कर्तव्यो विश्वासः सर्वथाऽधुना ॥ मन्त्रिवर्गेऽतिपापिष्ठे शत्रुपक्षसमाश्रिते ॥ १८ ॥ इति संचिन्त्य मनसा राजा परमदुर्मनाः ॥ एकाकी हयमारुह्य निर्जगाम पुरात्ततः ॥ १९ ॥ असहायोऽथ निर्गत्य गहनं वनमाश्रितः ॥ चिंतयामास मेधावी क्व गंतव्यं मया पुनः ॥ २० ॥ योजनत्रयमात्रे तु मुनेराश्रममुत्तमम् ॥ ज्ञात्वा जगाम भूपालस्तापसस्य सुमेधसः ॥२१॥ बहुवृक्षसमायुक्तं नदीपुलिनसंश्रितम् ॥ निर्वैरश्वापदाकीर्णं कोकिलारावमंडितम् ॥ २२ ॥ शिष्याध्ययनशब्दाढ्यं मृगयूथशतावृतम् ॥ नीवारान्नसुपक्काढ्यं सुपुष्पफलपादपम् ॥२३॥ होमधूमसुगंधेन प्रीतिदं प्राणिनां सदा ॥ वेदध्वनिसमाक्रांतं स्वर्गादपि मनोहरम् ॥२४॥ दृष्ट्वा

हुए उन पापी मंत्रियोंपर तो विश्वास ही नहीं करना चाहिए ॥ १८ ॥ ऐसा विचार करके अतिशय खिन्न राजा सुरथ अकेले ही घोड़ेपर सवार होकर अपने नगरसे बाहर निकल पड़े ॥ १९ ॥ वे बिना किसीको साथ लिये नगरसे चलकर एक बीहड़ वनमें जा पहुँचे। वहाँ पहुँचकर बुद्धिमान् महाराज यह सोचने लगे कि अब कहाँ जायँ ? ॥२०॥ जब उन्हें पता चला कि यहाँसे तीन योजनपर सुमेधा मुनिका आश्रम है, तब वे उधर ही चल पड़े ॥ २१ ॥ आश्रमकी भूमिपर पहुँचकर उन्होंने देखा कि वहाँ भाँति-भाँतिके वृक्ष उगे हुए हैं, पास ही नदी बह रही है, भयानक हिंसक पशु परस्परका वैरभाव भूलकर साथ-साथ रहते हैं और सब ओर कोयलकी कूक सुनायी दे रही है ॥ २२ ॥ वहाँपर उन्होंने देखा कि मुनिके शिष्यगण अध्ययन कर रहे हैं और उनका वेदघोष सुनायी पड़ रही है। मृगोंके सैकड़ों झुण्ड विचर रहे हैं, भलीभाँति पके हुए नीवार लहलहा रहे हैं और सभी वृक्ष फल-फूलसे लदे हुए हैं ॥ २३ ॥ हवनकुण्डसे

उठता हुआ सुगन्धित धुआँ वहाँके लोगोंको आनन्दित कर रहा था। स्वर्गसे भी उत्तम उस आश्रममें वेदपाठकी ध्वनि गूँज रही थी ॥ २४ ॥ वह आश्रम देखकर राजा सुरथको बड़ा हर्ष हुआ और उन्होंने सब भय त्यागकर उस आश्रममें ही रहनेका निश्चय किया ॥२५॥ अपने घोड़ेको उन्होंने एक वृक्षमें बाँध दिया और बड़े विनीतभावसे आश्रमके भीतर गये। वहाँ उन्होंने देखा कि मुनिराज सुमेधा एक सालवृक्षके नीचे मृगछालापर बैठे हुए हैं। उनकी शान्त आकृति है। शरीर दुर्बल है, किन्तु स्वभाव बहुत कोमल है। सभी वेदों और शास्त्रोंके पारदर्शी होनेके नाते वे बहुतेरे शिष्योंको पढ़ा रहे हैं ॥२६॥२७॥ महामुनि सुमेधा क्रोध-लोभ आदिसे रहित और सुख-दुःख आदि द्वन्द्वोंसे परे थे। वे किसीसे डाह नहीं करते थे। वे सदा सत्यकी खोजमें लगे रहते थे। वे पूर्ण सत्यवादी और शान्तिके मूर्त रूप थे ॥२८॥ उन मुनिराजको देखकर राजा सुरथके नेत्रोंमें आँसू उमड़ आये और बड़ी श्रद्धाके साथ वे दण्डवत् उनके चरणोंपर लोट गये ॥ २९ ॥ तब मुनिराजने कहा—आपका कल्याण हो। उठिए उठिए। तदनन्तर गुरुदेवके संकेतपर एक शिष्यने महाराजके लिए आसनी बिछा दी ॥३०॥ तब वे उठकर मुनिराजकी

तमाश्रमं राजा बभूवासौ मुदान्वितः ॥ भयं त्यक्त्वा मतिं चक्रे विश्रामाय द्विजाश्रमे ॥ २५ ॥ आसज्य पादपेऽश्वं तु जगाम विनयान्वितः ॥ दृष्ट्वा तं मुनिमासीनं सालच्छायासु संश्रितम् ॥२६॥ मृगाजिनासनं शांतं तपसाऽतिकृशं ऋजुम् ॥ अध्यापयंतं शिष्यांश्च वेदशास्त्रार्थदर्शिनम् ॥२७॥ रहितं क्रोधलोभाद्यैर्द्वन्द्वातीतं विमत्सरम् ॥ आत्मज्ञानरतं सत्यवादिनं शमसंयुतम् ॥ २८ ॥ तं वीक्ष्य भूपतिर्भूमौ पपात दण्डवत्तदा ॥ तदग्रेऽश्रुजलापूर्णनयनः प्रेमसंयुतः ॥ २९ ॥ उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रं ते तमुवाच तदा मुनिः ॥ शिष्यो ददौ बृसीं तस्मै गुरुणा नोदितस्तदा ॥ ३० ॥ उत्थाय नृपतिस्तस्यां समासीनस्तदाज्ञया ॥ अर्घ्यपाद्यार्हणं चक्रे सुमेधा विधिपूर्वकम् ॥ ३१ ॥ पप्रच्छात्र कुतः प्राप्तः कस्त्वं चिंतापरः कथम् ॥ कथयस्व यथाकामं संवृतं कारणं त्विति ॥ ३२ ॥ किमागमनकृत्यं ते ब्रूहि कार्यं मनोगतम् ॥ करिष्ये वांछितं काममसाध्यमपि यत्तव ॥३३॥ राजोवाच ॥ सुरथो नाम राजाऽहं शत्रुभिश्च पराजितः ॥ त्यक्त्वा राज्यं गृहं भार्यामहं ते शरणं गतः ॥३४॥ यदाज्ञापयसे ब्रह्मंस्तदहं भक्तितत्परः ॥ करिष्यामि न मे त्राता त्वदन्यः पृथिवीतले ॥३५॥ शत्रुभ्यो मे भयं घोरं प्राप्तोऽस्म्यद्य तवांतिकम् ॥ त्रायस्व मुनिशार्दूल शरणागतवत्सल ॥३६॥ ऋषिरुवाच ॥ निर्भयं वस राजेंद्र नात्र ते शत्रवः किल ॥ आगमिष्यंति बलिनो निश्चयं तपसो बलात् ॥ ३७ ॥ नात्र हिंसा प्रकर्तव्या वनवृत्त्या नृपोत्तम ॥

अनुमतिसे उस आसनपर बैठ गये। तब महर्षि सुमेधाने अर्घ्य-पाद्य आदि सामग्रियोंसे राजाका सत्कार किया ॥ ३१ ॥ इसके बाद उन्होंने पूछा—आप कौन हैं? कहाँसे आ रहे हैं? आप चिन्तित क्यों हैं? और यह भी बताइए कि आपकी क्या अभिलाषा है? ॥ ३२ ॥ आप यहाँ किस कामसे आये हैं? आपकी जो इच्छा हो, उसे स्पष्टरूपसे बताइए। यदि आपकी कामना असाध्य होगी तो भी मैं उसे पूर्ण करनेकी चेष्टा करूँगा ॥३३॥ राजा सुरथने कहा—शत्रुओंसे पराजित मैं सुरथ नामका राजा हूँ। अपना राज्य, घर और स्त्रीको छोड़कर मैं आपकी शरणमें आया हूँ ॥ ३४ ॥ हे ब्रह्मन्! आप मुझे जो भी आज्ञा देंगे, मैं भक्तिपूर्वक उसका पालन करूँगा। इस समय समस्त भूतलपर आपके सिवाय और कोई भी मेरा रक्षक नहीं है ॥ ३५ ॥ हे मुनिशार्दूल! हे शरणागतवत्सल! मुझे शत्रुओंसे बहुत भय है। इसी कारण मैं आपके पास आया हूँ। आप मेरी रक्षा कीजिए ॥ ३६ ॥ ऋषि सुमेधाने कहा—हे राजेन्द्र! आप

यहाँ निर्भय होकर निवास करिए। मेरे तपोबलके प्रभावसे आपके बलवान् शत्रु यहाँ न आ सकेंगे। यह निश्चित समझिए ॥ ३७ ॥ हे नृपोत्तम! आप यहाँ किसी प्रकारकी हिंसा न करिए, बल्कि वनवासियोंके समान नीवार तथा फल-मूलपर जीवन निर्वाह कीजिएगा ॥ ३८ ॥ व्यासजी बोले—महर्षि सुमेधाके वचन सुनकर राजा सुरथ निर्भय हो गये और फल-मूल खाते हुए उसी आश्रममें रहने लगे ॥ ३९ ॥ एक दिन वे एक वृक्षकी छायामें बैठे हुए बड़े चिन्ताकुलभावसे अपनी घर-गृहस्थी और राज्यके विषयमें सोचने लगे—॥ ४० ॥ उन म्लेच्छ और पापपरायण शत्रुओंने मेरा राज्य छीन लिया। उन दुराचारियों और निर्लज्जोंने मेरी प्रजाको बहुत सताया होगा ॥४१॥ आहार न मिलनेके कारण मेरे सब साथी और घोड़े दुर्बल हो गये होंगे। शत्रुओं द्वारा निरन्तर कष्ट पानेके कारण वे बहुत कमजोर हो गये होंगे ॥ ४२ ॥ जिन सेवकोंका मैंने पालन-पोषण किया था, वे शत्रुके अधीन होकर बहुत दुखी होंगे। इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ ४३ ॥ उन दुराचारियोंने मेरा सारा धन जुए, मदिरा और वेश्यागमन आदि बुरी राहोंपर खर्च कर डाला होगा ॥ ४४ । वे पापी मेरा समस्त राजकोष

कर्तव्यं जीवनं शस्तैर्नीवारफलमूलकैः ॥३८॥ व्यास उवाच ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा निर्भयः स नृपस्तदा ॥ उवासाश्रम एवासौ फलमूलाशनः शुचिः ॥ ३९ ॥ कदाचित्स नृपस्तत्र वृक्षच्छायां समाश्रितः ॥ चिंतयामास चिंतार्तो गृह एव गताशयः ॥ ४० ॥ राज्यं मे शत्रुभिः प्राप्तं म्लेच्छैः पापरतैः सदा ॥ संपीडिताः स्युर्लोकास्तैर्दुराचारैर्गतत्रपैः ॥ ४१ ॥ गजाश्च तुरगाः सर्वे दुर्बला भक्ष्यवर्जिताः ॥ जाताः स्युर्नात्र संदेहः शत्रुणा परिपीडिताः ॥४२॥ सेवका मम सर्वे ते शत्रूणां वशवर्तिनः ॥ दुःखिता एव जाताः स्युः पालिता ये मया पुरा ॥४३॥ धनं मे सुदुराचारैरसद्व्ययपरैः परैः ॥ द्यूतासवभुजिष्यादिस्थाने स्यात्प्रापितं किल ॥ ४४ ॥ कोशक्षयं करिष्यन्ति व्यसनैः पापबुद्धयः ॥ न पात्रदाननिपुणा म्लेच्छास्ते मन्त्रिणोऽपि मे ॥ ४५ ॥ इति चिन्तापरो राजा वृक्षमूलस्थितो यदा ॥ तदाऽऽजगाम वैश्यस्तु कश्चिदार्तिपरस्तथा ॥ ४६ ॥ नृपेण पुरतो दृष्टः पार्श्वे तत्रोपवेशितः ॥ पप्रच्छ तं नृपः कोऽसि कुत एवागतो वनम् ॥ ४७ ॥ कोऽसि कस्माच्च दीनोऽसि हरिणः शोकपीडितः ॥ ब्रूहि सत्यं महाभाग मैत्री सप्तपदी मता ॥४८॥ व्यास उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं राज्ञस्तमुवाच विशोत्तमः ॥ उपविश्य स्थिरो भूत्वा मत्वा साधुसमागमम् ॥४९॥ वैश्य उवाच ॥ मित्राहं वैश्यजातीयः समाधिर्नाम विश्रुतः ॥ धनवान्धर्मनिपुणः सत्यवागनसूयकः ॥ ५० ॥ पुत्रदारैर्निरस्तोऽहं धनलुब्धैरसा-

नष्ट कर देंगे। क्योंकि वे म्लेच्छ तथा इस समय उनके अधीन रहनेवाले मेरे मंत्री पात्र देखकर दान देनेमें निपुण नहीं हैं ॥ ४५ ॥ जब राजा सुरथ वृक्षकी छायामें बैठे इस प्रकारकी उधेड़-बुनमें पड़े हुए थे। उसी समय एक दुखिया वैश्य वहाँ जा पहुँचा ॥ ४६ ॥ वह राजाके सम्मुख पहुँचा, तब उन्होंने उसे अपनी बगलमें बैठा लिया। तदनन्तर उन्होंने वैश्यसे पूछा—आप कौन हैं? इस वनमें कहाँसे आ रहे हैं? ॥ ४७ ॥ इस प्रकार दीनदशाको प्राप्त आप कौन हैं और शोक करनेके कारण आप पीले क्यों पड़ गये हैं? हे महाभाग! आप मुझे सच-सच सब बातें बता दीजिए। क्योंकि केवल सात शब्दोंमें बातचीत होनेपर ही मैत्री हो जाती है ॥ ४८ ॥ व्यासजी बोले—राजा सुरथके वचन सुनकर उस भले वैश्यने सोचा कि एक सज्जनसे भेंट हो गयी है। अतएव वह स्थिरचित्त होकर उनके पास बैठ गया ॥ ४९ ॥ वैश्यने कहा—हे मित्र! मैं वैश्यजातिमें जायमान हुआ हूँ। लोग मुझे समाधिके नामसे

एक सज्जनसे भेंट हो गयी है। अतएव वह स्थिरचित्त होकर उनके पास बैठा गया ॥ ४९ ॥ वैश्यने कहा—हे मित्र ! मैं वैश्यजातिमें जायमान हुआ हूँ। लोग मुझे समाधिके नामसे

जानते हैं। मैं धनाढ्य, धर्मकार्यमें निपुण और सत्यवादी हूँ। मैं किसीके दोष नहीं देखता ॥ ५० ॥ धनके लोभी और कुटिल प्रकृतिवाले स्त्री-पुत्रादिकोंने मुझे घरसे निकाल दिया है। (उन्होंने मुझे कृपण कहकर कठिनाईसे टूटनेवाली मायाका बन्धन भी तोड़ दिया है।) सो अपने कुटुम्बियोंसे परित्यक्त होकर मैं अभी-अभी इस वनमें आ रहा हूँ ॥ ५१ ॥ हे प्रिय मित्र ! आप कौन हैं ? यह बताइए। देखनेमें तो आप भाग्यवान् मालूम पड़ते हैं। राजाने कहा—मैं सुरथ नामका राजा हूँ। मुझे लुटेरोंने लूट लिया है। इस समय मैं अपने धोखेबाज मंत्रियों द्वारा ठगे जानेपर ही यहाँ आया हूँ। हे वैश्यश्रेष्ठ ! यह भाग्यकी बात है कि आप जैसे मित्र यहाँ मिल गये ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ अब हम दोनों बड़े आनन्दसे इस सुन्दर वृक्षोंवाले वनमें विचरेंगे। हे महाबुद्धिमान् ! आप शोक त्याग दें। हे वैश्यवर्य ! अपने मनको शान्त करिए ॥ ५४ ॥ (अब आप मेरे साथ आनन्दपूर्वक यहाँ रहिए।) समाधि वैश्यने कहा—मेरा कुटुम्ब असहाय है। मेरे बिना घरवाले बहुत दुखी होंगे। मेरे विषयमें सोचते-सोचते लोग और भी रोग-शोकके चक्करमें पड़ जायँगे ॥ ५५ ॥ हे राजन् ! भार्याका शरीर कैसा है।

धुभिः ॥ (कृपणेति मिषं कृत्वा त्यक्त्वा मायां सुदुस्त्यजाम् ॥) स्वजनेन च संत्यक्तः प्राप्तोऽस्मि वनमाशु वै ॥ ५१ ॥ कोऽसि त्वं भाग्यवान्भासि कथयस्व प्रियाधुना ॥ राजोवाच ॥ सुरथो नाम राजाऽहं दस्युभिः पीडितोऽभवम् ॥ ५२ ॥ प्राप्तोऽस्मि गतराज्योऽत्र मंत्रिभिः परिवंचितः ॥ दिष्ट्या त्वमत्र मित्रं मे मिलितोऽसि विशोत्तम ॥५३॥ सुखेन विहरिष्यावो वनेऽत्र शुभपादपे ॥ शोकं त्यज महाबुद्धे स्वस्थो भव विशोत्तम ॥५४॥ (अत्रैव च यथाकामं सुखं तिष्ठ मया सह ॥) वैश्य उवाच ॥ कुटुम्बं मे निरालंबं मया हीनं सुदुःखितम् ॥ भविष्यति च चिन्तार्तं व्याधिशोकोपतापितम् ॥ ५५ ॥ भार्यादेहे सुखं नो वा पुत्रदेहे न वा सुखम् ॥ इति चिन्तातुरं चेतो न मे शाम्यति भूमिप ॥ ५६ ॥ कदा द्रक्ष्ये सुतं भार्यां गृहं स्वजनमेव च ॥ स्वस्थं न मन्मनो राजन्गृहचिन्ताकुलं भृशम् ॥ ५७ ॥ राजोवाच ॥ यैर्निरस्तोऽसि पुत्राद्यैरसद्वृत्तैः सुबालिशैः ॥ तान्दृष्ट्वा किं सुखं तेऽद्य भविष्यति महामते ॥ ५८ ॥ हितकारी वरः शत्रुर्दुःखदाः सुहृदः कुतः ॥ तस्मात्स्थिरं मनः कृत्वा विहरस्व मया सह ॥ ५९ ॥ वैश्य उवाच ॥ मनो मे न स्थिरं राजन्भवत्यद्य सुदुःखितम् ॥ चिन्तयाऽत्र कुटुम्बस्य दुस्त्यजस्य दुरात्मभिः ॥६०॥ राजोवाच ॥ ममापि राज्यजं दुःखं दुनोति किल मानसम् ॥ पृच्छावोऽद्य मुनिं शांतं शोकनाशनमौषधम् ॥६१॥ व्यास उवाच ॥ इति कृत्वा मतिं तौ तु राजा वैश्यश्च जग्मतुः ॥ मुनिं तौ

पुत्रका स्वास्थ्य कैसा है। ऐसी चिन्ताओंके कारण मेरे मनको शान्ति नहीं मिल रही है ॥५६॥ हे महाराज ! घर जाकर पुत्र, स्त्री, घर और कुटुम्बियोंको कब देखूँगा। मेरा मन विकल है। मैं अपने घरकी चिन्तामें घुला जा रहा हूँ ॥ ५७ ॥ राजा सुरथ बोले—हे महामते ! जिन मूर्ख और दुराचारी पुत्र आदि कुटुम्बियोंने आपको घरसे निकाल दिया है। उन्हें देखकर आप सुखी होंगे ? ॥५८॥ अपना हित करनेवाला शत्रु अच्छा, किन्तु दुखदायी सम्बन्धी अच्छा नहीं कहा जा सकता। अतएव हे महामते ! आप अपना मन शान्त करके मेरे साथ आनन्द करिए ॥ ५९ ॥ वैश्यने कहा—हे राजन् ! मेरा मन स्थिर नहीं है। आज मैं बहुत दुखी हूँ। कोई मनुष्य कितना ही क्रूर क्यों न हो, वह अपने कुटुम्बियोंकी चिन्ता नहीं त्याग सकता ॥६०॥ तब राजाने कहा—राज्यसम्बन्धी चिन्तायें मुझे भी सताया करती हैं। अतएव आइए चलें, हम दोनों उन शान्तप्रकृति महर्षि सुमेधासे ही इस शोकरूपी रोगकी कोई औषधि पूछें

॥ ६१ ॥ व्यासजी बोले--इस प्रकार परस्पर परामर्श करके शोकका कारण पूछनेके लिए वे दोनों बड़े विनम्रभावसे मुनिराजके पास गये ॥ ६२ ॥ उनके पास पहुँचकर उन्होंने मुनिको प्रणाम किया। वहाँ भली भाँति आसनपर बैठनेके बाद उन्हें बड़ी शान्तिका अनुभव हुआ। तत्पश्चात् उन्होंने उन शान्त महामुनिसे कहा--॥ ६३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

(देवीमाहात्म्य, ब्रह्मविष्णुविवाद, लिंगके छोरका पता लगानेकी चेष्टा और ब्रह्माजीका मिथ्या भाषण) राजा सुरथने कहा--हे महर्षे ! ये सज्जन एक वैश्य हैं। अभी इसी वनमें इनके साथ मेरी मित्रता हुई है। इनके स्त्री-पुत्रादि कुटुम्बियोंने इन्हें घरसे निकाल दिया है। यहाँ आनेपर इनसे भेंट हुई है ॥ १ ॥ ये बेचारे अपने कुटुम्बके वियोगसे बहुत दुखी हैं। इनका मन बहुत उदास रहता है। इन्हें किसी प्रकार चैन नहीं मिलती। हे महामते ! ठीक ऐसी ही मेरी भी दशा है। मुझे अपना राज्य चले जानेकी चिन्ता सताया करती है। इसीसे

विनयोपेतौ प्रष्टुं शोकस्य कारणम् ॥ ६२ ॥ गत्वा तं प्रणिपत्याह राजा ऋषिमनुत्तमम् ॥ आसीनं सम्यगासीनः शांतं शांतिमुपागतः ॥ ६३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

॥ राजोवाच ॥ मुने वैश्योऽयमधुना वने मे मित्रतां गतः ॥ पुत्रदारैर्निरस्तोऽयं प्राप्तोऽत्र मम संगमम् ॥ १ ॥ कुटुम्बविरहेणासौ दुःखितोऽतीव दुर्मनाः ॥ न शांतिमुपयात्येष तथैव मम सांप्रतम् ॥२॥ गतराज्यस्य दुःखेन शोकार्तोऽस्मि महामते ॥ निष्कारणं च मे चिंता हृदयान्न निवर्तते ॥ हया मे दुर्बलाः स्यु किं गजाः शत्रुवशं गताः ॥३॥ भृत्यवर्गस्तथा दुःखी जातः स्यात्तु मया विना ॥ कोशक्षयं करिष्यंति रिपवोऽतिबलात्क्षणात् ॥ ४ ॥ इत्येवं चिंतयानस्य न मे निद्रा तनौ सुखम् ॥ जानामीदं जगन्मिथ्या स्वप्नवत्सर्वमेव हि ॥ ५ ॥ जानतोऽपि मनो भ्रांतं न स्थिरं भवति प्रभो ॥ कोऽहं केऽश्वा गजाः केऽमी न ते मे च सहोदराः ॥ ६ ॥ न पुत्रा न च मित्राणि येषां दुःखं दुनोति माम् ॥ भ्रमोऽयमिति जानामि तथापि मम मानसः ॥ ७ ॥ मोहो नैवापसरति किं तत्कारणमद्भुतम् ॥ स्वामिंस्त्वमसि सर्वज्ञः सर्वसंशयनाशकृत् ॥ ८ ॥ कारणं ब्रूहि

मैं भी शोकाकुल रहता हूँ। अकारण उत्पन्न होनेवाली चिन्तायें किसी तरह मनसे निकलती ही नहीं हैं। मुझे चिन्ता होती है कि शत्रुके कब्जेमें पड़कर मेरे हाथी-घोड़े दुर्बल हो गये होंगे ॥२॥३॥ मेरे बिना मेरे सेवकगण बहुत दुःखी होंगे। मेरे शत्रु क्षणभरमें न जाने कितना खजाना खाली कर देते होंगे ॥४॥ ऐसी अगणित चिन्तायें करते-करते रातको नींद नहीं आती और शरीरको सुख नहीं मिलता। यद्यपि मैं इस बातको जानता हूँ कि संसार स्वप्नके समान मिथ्या है, तब भी हे प्रभो ! मेरा चित्त बराबर चक्कर खाता रहता है। वह नहीं स्थिर होता। मैं कौन हूँ ? ये हाथी-घोड़े क्या हैं ? ये सब कौन हैं ? सभी सगे-सहोदर मेरे कोई भी नहीं हैं ॥५॥६॥ पुत्र और मित्र भी मेरे कोई नहीं हैं, जिसके कारण दुखी होना पड़े। मैं जानता हूँ कि यह सब भ्रम है। फिर भी मेरे मनसे मोह नहीं दूर होता। इस मोहका कौनसा अद्भुत कारण है ? हे स्वामिन् ! आप सर्वज्ञ हैं और सब प्रकारका संशय निवृत्त कर सकते हैं ॥ ७ ॥ ८ ॥ हे दयानिधान !

आप कृपया यह बताइए कि मेरे और वैश्यके मोहका कारण क्या है ? व्यासजी बोले—इस प्रकार राजा सुरथके प्रश्न करनेपर मुनिसत्तम सुमेधाने ऐसे उच्चकोटिके ज्ञानका उपदेश दिया कि जिससे सब शोक और मोह नष्ट हो जाता है। ऋषि सुमेधाने कहा—हे राजन् ! मैं बन्धन और मोक्षका कारण बता रहा हूँ। सुनिए–॥ ९ ॥ १० ॥ सत्त्वादि तीनों गुणोंकी साम्यावस्था-स्वरूपा प्रकृति ही महामाया कहलाती हैं, वे ही अखिल विश्वमें सब प्राणियोंके बन्धन तथा मुक्तिकी कारणस्वरूपा हैं ॥११॥ सब देवता, मनुष्य, गन्धर्व, नाग, राक्षस, वृक्ष, विविध लतायें, पशु, मृग, पक्षी, ये सभी प्राणी मायाके अधीन रहकर ही बन्धन और मोक्ष प्राप्त करते हैं। मूलप्रकृतिस्वरूपा उन महामायाने ही स्थावर-जङ्गमात्मक विश्वकी सृष्टि की है ॥१२॥१३॥ संसारके सब प्राणी मोहरूपी जालमें फँसकर सदा उन्हींके अधीन रहते हैं। तब आप मोहसे बचनेवाले कौन हैं ? साधारण मनुष्योंमें आप क्षत्रिय हैं और आपका चित्त रजोगुणसे मलिन हो रहा

मोहस्य ममास्य च दयानिधे ॥ व्यास उवाच ॥ इति पृष्टस्तदा राज्ञा सुमेधा मुनिसत्तमः ॥९॥ तमुवाच परं ज्ञानं शोकमोहविनाशम् ॥ ऋषिरुवाच ॥ शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि कारणं बंधमोक्षयोः ॥१०॥ महामायेति विख्याता सर्वेषां प्राणिनामिह ॥ ब्रह्मा विष्णुस्तथेशानस्तुराषाड्वरुणोऽनिलः ॥११॥ सर्वे देवा मनुष्याश्च गंधर्वोरगराक्षसाः ॥ वृक्षाश्च विविधा वल्लयः पशवो मृगपक्षिणः ॥ १२ ॥ मायाधीनाश्च ते सर्वे भाजनं बंधमोक्षयोः ॥ तया सृष्टमिदं सर्वं जगत्स्थावरजंगमम् ॥ १३ ॥ तद्वशे वर्तते नूनं मोहजालेन यंत्रितम् ॥ त्वं कियान्मानुषेष्वेकः क्षत्रियो रजसाऽऽविलः ॥ १४ ॥ ज्ञानिनामपि चेतांसि मोहयत्यनिशं हि सा ॥ ब्रह्मेशवासुदेवाद्या ज्ञाने सत्यपि शेषतः ॥ १५ ॥ तेऽपि रागवशाल्लोके भ्रमंति परिमोहिताः ॥ पुरा सत्ययुगे राजन्विष्णुर्नारायणः स्वयम् ॥ १६ ॥ श्वेतदीपं समासाद्य चकार विपुलं तपः ॥ वर्षाणामयुतं यावद्ब्रह्मविद्याप्रसक्तये ॥ १७ ॥ अनश्वर-सुखायासौ चिंतयानस्ततः परम् ॥ एकस्मिन्निर्जने देशे ब्रह्माऽपि परमाद्भुते ॥१८॥ स्थितस्तपसि राजेन्द्र मोहस्य विनिवृत्तये ॥ कदाचिद्वासुदेवोऽसौ स्थलांतरमतिर्हरिः ॥ १९ ॥ तस्माद्देशात्समुत्थाय जगामान्यद्दिदृक्षया ॥ चतुर्मुखोऽपि राजेंद्र तथैव निःसृतः स्थलात् ॥ २० ॥ मिलितौ मार्गमध्ये तु चतुर्मुखचतुर्भुजौ ॥ अन्योन्यं पृष्टवंतौ तौ कस्त्वमिति स्म ह ॥ २१ ॥ ब्रह्मा प्रोवाच तं देवं कर्ताऽहं जगतः किल ॥ विष्णुस्तमाह भो मूर्ख

है ॥ १४ ॥ वे तो बड़े-बड़े ज्ञानियोंके हृदयको भी सदा मोहमें डाले रहती हैं। ब्रह्मा, विष्णु और शिवजी परम ज्ञानी होते हुए भी रागके वशीभूत होकर संसारमें चक्कर काटा करते हैं। हे राजन् ! पूर्वकालमें सत्ययुगके समय स्वयं नारायण विष्णुभगवानने ब्रह्मविद्या प्राप्त करनेके लिए श्वेतद्वीपमें जाकर बड़ी कठोर तपस्या की ॥ १५–१७ ॥ अविनाशी सुख प्राप्त करनेके लिए ही उन्होंने ऐसा तप किया था। हे राजेन्द्र ! अपना अज्ञान दूर करनेके लिए ब्रह्माजी भी परम अद्भुत एक निर्जन प्रदेशमें तप करने लगे। हे महाराज ! किसी समय विष्णु भगवानने दूसरे स्थानपर जानेका विचार किया ॥ १८ ॥ १९ ॥ अतएव वहाँसे वे अन्य देश देखनेके लिए चल पड़े। हे राजेन्द्र ! उसी प्रकार ब्रह्माजी भी अपने स्थानसे चले ॥२०॥ मार्गमें चतुर्मुख ब्रह्माजी तथा चतुर्भुज विष्णुसे भेंट हो गयी। तब वे दोनों परस्पर एक दूसरेसे 'आप कौन हैं, आप कौन हैं' करके पूछने लगे ॥ २१ ॥ ब्रह्माजीने कहा–मैं जगत्का

रचयिता हूँ। भगवान विष्णु बोले--ओ मूर्ख ! जगत्कर्ता तो मैं विष्णु हूँ ॥ २२ ॥ तुम्हारा अस्तित्व ही क्या है ? रजोगुणका आधिक्य होनेके कारण तुम सर्वथा निर्बल हो। यह समझ लो कि मैं सतोगुणप्रधान सनातन विष्णु हूँ ॥ २३ ॥ तुम्हें क्या यह नहीं मालूम कि आज ही मैंने दारुण युद्ध करके तुम्हारी रक्षा की है। क्योंकि मधु-कैटभ नामके दो दानवों द्वारा सताये जानेपर तुम मेरी शरणमें आये थे ॥ २४ ॥ मैंने ही मधु-कैटभ नामधारी दोनों दानवोंका वध किया है। तब हे मूर्ख ! तुम व्यर्थ गर्व क्यों करते हो ? शीघ्र अपना यह अज्ञान त्याग दो ॥ २५ ॥ इस सुविस्तृत संसारमें मुझसे बढ़कर और कोई नहीं है। ऋषि सुमेधा बोले--इस प्रकार परस्पर विवाद करते हुए ब्रह्मा और विष्णु दोनों अत्यन्त क्रुद्ध हो गये। उन दोनोंके होंठ फड़कने लगे, उनका शरीर काँपने लगा और आँखें लाल हो गयीं। जब वे दोनों विवादसे व्याकुल थे, उसी समय सहसा उन दोनोंके बीचमें एक चूनेके समान श्वेत, विशाल, लम्बा, मोटा और अद्भुत लिङ्ग प्रगट हो गया। तत्काल यह आकाशवाणी हुई भी ॥ २६-२८ ॥ परस्पर झगड़ते हुए उन दोनों महानुभावोंको सम्बोधित करके आकाश-

जगत्कर्ताऽहमच्युतः ॥ २२ ॥ त्वं कियान्बलहीनोऽसि रजोगुणसमाश्रितः ॥ सत्त्वाश्रितं हि मां विद्धि वासुदेवं सनातनम् ॥ २३ ॥ मया त्वं रक्षितोऽद्यैव कृत्वा युद्धं सुदारुणम् ॥ शरणं मे समायातो दानवाभ्यां प्रपीडितः ॥ २४ ॥ मया तौ निहतौ कामं दानवौ मधुकैटभौ ॥ कथं गर्वायसे मंद मोहोऽयं त्यज सांप्रतम् ॥ २५ ॥ न मत्तोऽप्यधिकः कश्चित्संसारेऽस्मिन्प्रसारिते ॥ ऋषिरुवाच ॥ एवं प्रवदमानौ तौ ब्रह्मविष्णू परस्परम् ॥ २६ ॥ स्फुरदोष्ठौ वेपमानौ लोहिताक्षौ बभूवतुः ॥ प्रादुर्बभूव सहसा तयोर्विवदमानयोः ॥२७॥ मध्ये लिंगं सुधाश्वेतं विपुलं दीर्घमद्भुतम् ॥ आकाशे तरसा तत्र वागुवाचाशरीरिणी ॥२८॥ तौ संबोध्य महाभागौ विवदंतौ परस्परम् ॥ ब्रह्मन्विष्णो विवादं मा कुरुतां वां परस्परम् ॥ २९ ॥ लिंगस्यास्य परं पारमधस्तादुपरि ध्रुवम् ॥ यो याति युवयोर्मध्ये स श्रेष्ठो वां सदैव हि ॥ ३० ॥ एकः प्रयातु पातालमाकाशमपरोऽधुना ॥ प्रमाणं मे वचः कार्यं त्यक्त्वा वादं निरर्थकम् ॥ ३१ ॥ मध्यस्थः सर्वदा कार्यो विवादेऽस्मिन्द्वयोरिह ॥ ऋषिरुवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं दिव्यं सज्जीभूतौ कृतोद्यमौ ॥३२॥ जग्मतुर्मातुमग्रस्थं लिंगमद्भुतदर्शनम् ॥ पातालमगमद्विष्णुर्ब्रह्माऽप्याकाशमेव च ॥३३॥ परिमातुं महालिंगं स्वमहत्त्वविवृद्धये ॥

वाणीने कहा—हे ब्रह्मन् ! हे विष्णो ! आप लोग आपसमें न लड़ें ॥ २९ ॥ आप दोनोंमें जो भी इस लिङ्गके ऊपरी या निचले छोरका पता लगा लेगा, वही सदाके लिए श्रेष्ठ माना जायगा ॥ ३० ॥ अतएव आप दोनोंमेंसे एक सज्जन नीचे और दूसरे महानुभाव ऊपरकी ओर इसके छोरका पता लगानेके लिए जायँ। अब परस्परका वाद-विवाद त्यागकर मेरी बातको प्रमाण मानें और तदनुसार कार्य करें ॥ ३१ ॥ इस विवादमें आप किसीको अपना मध्यस्थ मान लें। ऋषि सुमेधा बोले--वह दिव्य आकाशवाणी सुनकर वे दोनों देवता उस लिङ्गके छोरका पता लगानेके लिए तैयार हो गये ॥ ३२ ॥ तदनुसार सम्मुख विद्यमान उस विचित्र लिङ्गको नापनेके लिए वे दोनों आगे बढ़े। भगवान् विष्णु पातालको और ब्रह्माजी आकाशमें गये ॥ ३३ ॥ अपने-अपने महत्त्वको बढ़ानेके लिए उस लिङ्गको नापनेके काममें दोनों व्यस्त हो गये। किन्तु पातालमें कुछ दूर जाते ही भगवान विष्णुको पूर्णरीतिसे थकावट आ गयी

गये ॥ ३३ ॥ अपने-अपने महत्त्वको बढ़ानेके लिए उस लिङ्गको नापनेके काममें दोनों व्यस्त हो गये । किन्तु पातालमें कुछ दूर जाते ही भगवान विष्णुको पूर्णरीतिसे थकावट आ गयी

॥ ३४ ॥ इस प्रकार लिङ्गके छोरका पता न पाकर विष्णु भगवान अपने स्थानपर लौट आये । किन्तु ब्रह्माजी बराबर ऊपर बढ़ते ही गये । कुछ दूर जानेपर उन्हें शिवजीके मस्तकसे गिरा हुआ केतकीका एक फूल मिला । उसे पाकर ब्रह्माजी बड़े हर्षपूर्वक लौट आये । बड़े वेगसे आकर उन्होंने वह केतकीकुसुम विष्णुको दिखाते हुए झूठ-मूठ कह दिया कि मैं लिङ्गके मस्तकपर चढ़ा हुआ यह फूल ले आया हूँ ॥३५॥३६॥ तुम्हारी पहचान तथा चित्तको शान्ति देनेके लिए यह निशानी लेता आया हूँ । ब्रह्माजीके वचन सुन और केतकीका पुष्प देखकर विष्णुने पूछा कि इसका साक्षी कौन है ? कृपया यह भी बता दीजिए । यथार्थवक्ता, बुद्धिमान्, सदाचारी और समदर्शी व्यक्ति ही सर्वत्र विवादके अवसरपर साक्षी हुआ करते हैं । ब्रह्माजी बोले—इस समय उतनी दूरसे यहाँ कौन साक्षी आ सकेगा ? ॥ ३७–४० ॥ जो सच्ची बात होगी, उसे यह केतकी स्वयं बता देगी । तब ब्रह्माजीने केतकीसे गवाही देनेका आग्रह किया

विष्णुर्गत्वा कियद्देशं श्रांतः सर्वात्मना यतः ॥ ३४ ॥ न प्रापान्तं स लिंगस्य परिवृत्य ययौ स्थलम् ॥ ब्रह्माऽगच्छत्ततश्चोर्ध्वं पतितं केतकीदलम् ॥३५॥ शिवस्य मस्तकात्प्राप्य परावृत्तो मुदावृतः ॥ आगत्य तरसा ब्रह्मा विष्णवे केतकीदलम् ॥३६॥ दर्शयित्वा च वितथमुवाच मदमोहितः ॥ लिंगस्य मस्तकादेतद्गृहीतं केतकीदलम् ॥३७॥ अभिज्ञानाय चानीतं तव चित्तप्रशांतये ॥ श्रुत्वा तद्ब्रह्मणो वाक्यं दृष्ट्वा च केतकीदलम् ॥३८॥ हरिस्तं प्रत्युवाचेदं साक्षी कः कथयाधुना ॥ यथार्थवादी मेधावी सदाचारः शुचिः समः ॥३९॥ साक्षी भवति सर्वत्र विवादे समुपस्थिते ॥ ब्रह्मोवाच ॥ दूरदेशात्समायाति साक्षी कः समयेऽधुना ॥४०॥ यत्सत्यं तद्वचः सेयं केतकी कथयिष्यति ॥ इत्युक्त्वा प्रेरिता तत्र ब्रह्मणा केतकी स्फुटम् ॥ ४१ ॥ वचनं प्राह तरसा शार्ङ्गिणं प्रत्यबोधयत् ॥ शिवमूर्ध्नि स्थितां ब्रह्मा गृहीत्वा मां समागतः ॥ ४२ ॥ संदेहोऽत्र न कर्तव्यस्त्वया विष्णो कदाचन ॥ मम वाक्यं प्रमाणं हि ब्रह्मा पारं गतोऽस्य ह ॥ ४३ ॥ गृहीत्वा मां समायातः शिवभक्तैः समर्पिताम् ॥ केतक्या वचनं श्रुत्वा हरिराह स्मयन्निव ॥ ४४ ॥ महादेवः प्रमाणं मे यद्यसौ वचनं वदेत् ॥ ऋषिरुवाच ॥ तदाकर्ण्य हरेर्वाक्यं महादेवः सनातनः ॥४५॥ कुपितः केतकीं प्राह मिथ्यावादिनि मा वद ॥ गच्छतो मध्यतः प्राप्ता पतिता मस्तकान्मम ॥ ४६ ॥ मिथ्याभिभाषिणी त्यक्ता मया त्वं सर्वदैव हि ॥ ब्रह्मा लज्जापरो

॥ ४१ ॥ तब केतकीने भगवान विष्णुको सम्बोधन करके कहा कि शिवजीके मस्तकपर चढ़ी हुई मुझे लेकर ब्रह्माजी लौट आये हैं ॥ ४२ ॥ हे विष्णो ! इस विषयमें आप कभी तनिक भी सन्देह न करिएगा । मेरी बात ही सबसे प्रबल प्रमाण है कि ब्रह्माजी इस लिङ्गका पार पा गये हैं ॥ ४३ ॥ इस शिवलिङ्गपर किसी भक्तने मुझे चढ़ाया था और ब्रह्माजी यहाँ उठा लाये । केतकीके वचन सुनकर मुसकाते हुए विष्णुभगवानने कहा—॥४४॥ मैं शिवजीको ही साक्षी मानता हूँ । यदि वे केतकीकी बातको सही कह दें तो मैं मान जाऊँगा । ऋषि सुमेधाने कहा—विष्णुकी बात सुनकर सनातन देवता शंकरजी क्षुब्ध हो उठे । शिवजीने केतकीसे कहा—अरी झूठी ! असत्य बात मत बोल । तू मेरे मस्तकसे गिरी थी और ब्रह्माजी तुझे रास्तेमें ही पा गये थे ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ तूने झूठ बात कही है । इसलिए आजसे मैं तुझे सदाके लिए त्यागता हूँ । यह सुनकर ब्रह्माजी लज्जित हो गये और उन्होंने विष्णुभगवानको प्रणाम किया

॥४७॥ उसी दिनसे शिवजीने केतकीको अपनी पूजाके फूलोंमेंसे बहिष्कृत कर दिया। इस प्रकार माया बड़ी प्रबल होती है। वह बड़े-बड़े ज्ञानियोंको भ्रममें डाल देती है॥४८॥ हे राजन्! बड़े-बड़ोंका यह हाल है, तब साधारण प्राणियोंके मोहकी बात ही क्या है? स्वयं लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु देवताओंकी कार्यसिद्धिके लिए पापका भय त्यागकर दैत्योंको धोखा देते रहते हैं। वे विविध योनियोंमें जन्म लेकर अपने सुखपर लात मारते हुए दैत्योंके साथ जूझते हैं। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि सर्वज्ञ, देवाधिदेव और जगद्गुरु स्वयं विष्णुभगवान् भी सदा माया-शक्तिके अधीन रहते हैं। तब अन्य प्राणियोंके विषयमें क्या कहा जाय? हे महाराज! वह परमा प्रकृतिस्वरूपा महामाया बड़े-बड़े ज्ञानियोंका मन भी जबर्दस्ती खींचकर मोहके हाथों सौंप देती है। उसी महामायासे यह सचराचर विश्व व्याप्त है॥४९-५३॥ वे महामाया मोहदायिनी और ज्ञानदायिनी दोनों हैं। वे लोगोंको बन्धन तथा मोक्ष भी प्रदान करती हैं। राजा सुरथ बोले-

भूत्वा ननाम मधुसूदनम् ॥४७॥ शिवेन केतकी त्यक्ता तद्दिनात्कुसुमेषु वै ॥ एवं मायाबलं विद्धि ज्ञानिनामपि मोहदम् ॥४८॥ अन्येषां प्राणिनां राजन्का वार्ता विभ्रमं प्रति ॥ देवानां कार्यसिद्ध्यर्थं सर्वदैव रमापतिः ॥४९॥ दैत्यान्वंचयते चाशु त्यक्त्वा पापभयं हरिः ॥ अवतारकरो देवो नानायोनिषु माधवः ॥५०॥ त्यक्त्वाऽऽनंदसुखं दैत्यैर्युद्धं चैवाकरोद्विभुः ॥ नूनं मायाबलं चैतन्माधवेऽपि जगद्गुरौ ॥५१॥ सर्वज्ञे देवकार्यांशे का वार्ताऽन्यस्य भूपते ॥ ज्ञानिनामपि चेतांसि परमा प्रकृतिः किल ॥५२॥ बलादाकृष्य मोहाय प्रयच्छति महीपते ॥ यया व्याप्तमिदं सर्वं भगवत्या चराचरम् ॥५३॥ मोहदा ज्ञानदा सैव बंधमोक्षप्रदा सदा ॥ राजोवाच ॥ भगवन्ब्रूहि मे तस्या स्वरूपं बलमुत्तमम् ॥ ५४ ॥ उत्पत्तिकारणं वापि स्थानं परमकं च यत् ॥ ऋषिरुवाच ॥ न चोत्पत्तिरनादित्वान्नृप तस्याः कदाचन ॥ ५५ ॥ नित्यैव सा परा देवी कारणानां च कारणम् ॥ वर्तते सर्वभूतेषु शक्तिः सर्वात्मना नृप ॥५६॥ शववच्छक्तिहीनस्तु प्राणी भवति सर्वथा ॥ चिच्छक्तिः सर्वभूतेषु रूपं तस्यास्तदेव हि ॥ ५७ ॥ आविर्भावतिरोभावौ देवानां कार्यसिद्धये ॥ यदा स्तुवंति तां देवा मनुजाश्च विशांपते ॥५८॥ प्रादुर्भवति भूतानां दुःखनाशाय चांबिका ॥ नानारूपधरा देवी नानाशक्तिसमन्विता ॥५९॥ आविर्भवति कार्यार्थं स्वेच्छया परमेश्वरी ॥ दैवाधीना न सा देवी यथा सर्वे सुरा नृप ॥ ६० ॥ न कालवशगा

हे राजन्! कृपया आप मुझे उनके स्वरूप तथा बलके विषयमें कुछ बताइए ॥ ५४ ॥ उनकी उत्पत्ति कैसे हुई और उनका सर्वश्रेष्ठ स्थान कौनसा है?! ऋषि सुमेधा बोले-हे नृप! उनकी उत्पत्ति कभी नहीं होती। क्योंकि वे अनादि हैं॥५५॥ वे परा प्रकृतिस्वरूपा देवी सब कारणोंकी भी कारण हैं। उनकी शक्ति सदा सब प्राणियोंमें विद्यमान रहती है॥५६॥ वे जिस प्राणीकी शक्ति खींच लेती हैं, वह मुर्देकी तरह निर्जीव हो जाता है। वे चित् शक्तिरूपसे सभी देहधारियोंमें विराजती हैं और वे ब्रह्मरूपा हैं ॥ ५७ ॥ हे नरपते! उनका आविर्भाव और तिरोभाव देवताओंकी कार्यसिद्धिके लिए ही होता है। जब तन्मयतापूर्वक देवता या मनुष्य उनकी स्तुति करते हैं। तब वे प्राणियोंका दुःख दूर करनेके लिए प्रगट हो जाती हैं। वे भगवती परमेश्वरी अपने भक्तोंका कार्य सिद्ध करनेके लिए विविध रूपसे और नाना प्रकारकी शक्तियोंके साथ प्रगट होती हैं। हे राजन्! जैसे सब देवता दैत्यके अधीन रहते हैं। उस प्रकार वे दैवके अधीन

नहीं रहतीं ॥ ५८–६० ॥ वे कालके भी वशमें नहीं रहतीं। वे सदा अपनी शक्तिके बूतेपर सब काम करती हैं। यह सम्पूर्ण जगत् दृश्य पदार्थ है और पुरुष द्रष्टा है। अतएव वह विश्वका स्रष्टा नहीं हो सकता ॥६१॥ इस दृश्यमान जगत्की जननी वे सत् और असत्स्वरूपा देवी ही हैं। वे स्वयं इस ब्रह्माण्डरूपी नाटककी रचना करके परम पुरुषको प्रसन्न किया करती हैं ॥ ६२ ॥ उनका यह कौतुक देखकर जब वह परम पुरुष प्रसन्न हो जाता है। तब बड़ी शीघ्रतापूर्वक वे समस्त विश्वका संहार कर देती हैं। यद्यपि ब्रह्माजी सृष्टिकर्ता, विष्णु पालनकर्ता और शिव संहारकर्ता कहे जाते हैं, किन्तु वे तीनों निमित्तमात्र हैं ॥६३॥ क्योंकि वे देवी लीलाके निमित्त उन तीनों देवताओंकी रचना करके उन्हें सृष्टि, पालन और संहारका काम सौंप देती हैं। वे ही उन तीनोंको अपना अंश प्रदान करके बलवान् बनाती हैं ॥६४॥ उन्होंने ब्रह्माजीको सरस्वती, विष्णुको लक्ष्मी और शिवको गिरिजारूपिणी शक्ति प्रदान करके शक्तिशाली बनाया है। इसी कारण वे तीनों देवता बड़े हर्षके साथ उन महादेवीका ध्यान और पूजन करते हैं ॥६५॥ क्योंकि उन्हें पूर्णरूपसे यह विश्वास है कि जगत्की सृष्टि, पालन और संहार करनेकी शक्ति

नित्यं पुरुषार्थप्रवर्तिनी ॥ अकर्ता पुरुषो द्रष्टा दृश्यं सर्वमिदं जगत् ॥६१॥ दृश्यस्य जननी सैव देवी सदसदात्मिका ॥ पुरुषं रंजयत्येका कृत्वा ब्रह्मांडनाटकम् ॥ ६२ ॥ रंजिते पुरुषे सर्वं संहरत्यतिरंहसा ॥ तया निमित्तभूतास्ते ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ ६३ ॥ कल्पिताः स्वस्वकार्येषु प्रेरिता लीलया त्वमी ॥ स्वांशं तेषु समारोप्य कृतास्ते बलवत्तराः ॥६४॥ दत्ताश्च शक्तयस्तेभ्यो गीर्लक्ष्मीर्गिरिजा तथा ॥ ते तां ध्यायंति देवेशाः पूजयंति परां मुदा ॥ ६५ ॥ ज्ञात्वा सर्वेश्वरीं शक्तिं सृष्टिस्थितिविनाशिनीम् ॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं देवीमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ ६६ ॥ मम बुद्ध्यनुसारेण नांतं जानामि भूपते ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

॥ राजोवाच ॥ भगवन्ब्रूहि मे सम्यक्तस्या आराधने विधिम् ॥ पूजाविधिं च मन्त्रांश्च तथा होमविधिं वद ॥ १ ॥ ऋषिरुवाच ॥ शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि तस्याः पूजाविधिं शुभम् ॥ कामदं मोक्षदं नृणां ज्ञानदं दुःखनाशनम् ॥ २ ॥ आदौ स्नानविधिं कृत्वा शुचिः शुक्लांबरो नरः ॥ आचम्य प्रयतः कृत्वा शुभमायतनं निजम् ॥ ३ ॥ ततोऽवलिप्तभूम्यां तु संस्थाप्यासनमुत्तमम् ॥ तत्रोपविश्य विधिवत्त्रिराचम्य मुदान्वितः ॥ ४ ॥

केवल उन भगवतीमें ही है। हे राजन्! इस प्रकार मैंने अपनी सामान्य बुद्धिके अनुसार यथासामर्थ्य देवीका उत्तम माहात्म्य आपको सुनाया। क्योंकि उनकी महिमाका मैं अन्त नहीं पा सकता ॥ ६६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा' भाषाटीकायां त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

(भगवतीकी आराधना, पूजा और हवनकी विधि) राजा सुरथ बोले—हे भगवन्! आप मुझे उन देवीकी आराधनाविधि, पूजाविधि, मन्त्र और हवनकी विधि बताइए ॥ १ ॥ ऋषि सुमेधा बोले—हे राजन्! सुनिए, मैं आपको उनकी शुभ पूजाविधि बताता हूँ। उस विधिसे पूजन करनेपर प्राणियोंकी सब कामनायें पूर्ण हो जाती हैं, मोक्ष प्राप्त हो जाता है, ज्ञान मिलता है और सब दुःख दूर हो जाते हैं ॥ २ ॥ आराधकको चहिए कि स्नान करके स्वच्छ वस्त्र धारण करे और आचमन करके पूजाके स्थानको शुद्ध कर

ले ॥ ३ ॥ तदनन्तर गोबरसे लिपी भूमिपर उत्तम आसन बिछाकर बैठे । फिर हर्षपूर्वक तीन बार आचमन करे ॥ ४ ॥ अपनी शक्तिके अनुसार पूजनसामग्री जुटाकर उन्हें यथास्थान रक्खे । तदनन्तर प्राणायाम करके भूतशुद्धि करे ॥ ५ ॥ फिर मंत्रोच्चारणपूर्वक उन जुटी हुई सामग्रियोंपर जल छिड़के और प्राणप्रतिष्ठा करे । तत्पश्चात् मास-तिथि आदिका उल्लेख करता हुआ संकल्प और विधिवत् मातृकान्यास करे ॥ ६ ॥ इसके बाद किसी सुन्दर ताम्रपात्रपर सफेद तथा लाल चन्दनसे षट्कोण अथवा अष्टकोण यन्त्र लिखे ॥ ७ ॥ उस यंत्रके प्रत्येक दलमें नवाक्षर मंत्रके एक-एक अक्षर लिखकर नवाँ अक्षर उस यंत्रकी कर्णिका (बीच) में लिखे । तदनन्तर वेदोक्त प्रतिष्ठामंत्रोंसे उसकी प्रतिष्ठा करे ॥८॥ हे राजन् ! उपर्युक्त यंत्रके अभावमें सोने-चाँदी आदि धातुकी बनी हुई प्रतिमाका यामल आदि शिवोक्त तन्त्रमें कथित मंत्रसे पूर्ण प्रयत्नपूर्वक पूजन करे ॥ ९ ॥ अथवा एकाग्र मनसे वेदोक्त मंत्रोंका उच्चारण करके विधिवत् देवीका पूजन और ध्यान करे । तबसे नवाक्षर मंत्रका बराबर जप करता रहे ॥१०॥ जितना जप किया गया हो, उसकी दशांश आहुति देकर हवन करे । होमका दशांश तर्पण और

पूजाद्रव्यं सुसंस्थाप्य यथाशक्त्यनुसारतः ॥ प्राणायामं ततः कृत्वा भूतशुद्धिं विधाय च ॥ ५ ॥ कुर्यात्प्राणप्रतिष्ठां तु संभारं प्रोक्ष्य मंत्रतः ॥ कालज्ञानं ततः कृत्वा न्यासं कुर्याद्यथाविधि ॥ ६ ॥ शुभे ताम्रमये पात्रे चन्दनेन सितेन च ॥ षट्कोणं विलिखेद्यंत्रं चाष्टकोणं ततो बहिः ॥ ७ ॥ नवाक्षरस्य मंत्रस्य बीजानि विलिखेत्ततः ॥ कृत्वा यंत्रप्रतिष्ठां च वेदोक्तां संविधाय च ॥ ८ ॥ अर्चां वा धातवीं कुर्यात्पूजामंत्रैः शिवोदितैः ॥ पूजनं पृथिवीपाल भगवत्याः प्रयत्नतः ॥ ९ ॥ कृत्वा वा विधिवत्पूजामागमोक्तां समाहितः ॥ जपेन्नवाक्षरं मंत्रं सततं ध्यानपूर्वकम् ॥ १० ॥ होमं दशांशतः कुर्याद्दशांशेन च तर्पणम् ॥ भोजनं ब्राह्मणानां च तद्दशांशेन कारयेत् ॥ ११ ॥ चरित्रत्रयपाठं च नित्यं कुर्याद्विसर्जयेत् ॥ नवरात्रव्रतं चैव विधेयं विधिपूर्वकम् ॥१२॥ आश्विने च तथा चैत्रे शुक्ले पक्षे नराधिप ॥ नवरात्रोपवासो वै कर्तव्यः शुभमिच्छता ॥ १३ ॥ होमः सुविपुलः कार्यो जप्यमंत्रैः सुपायसैः ॥ शर्कराघृतमिश्रैश्च मधुयुक्तैः सुसंस्कृतैः ॥ १४ ॥ छागमांसेन वा कार्यो बिल्वपत्रैस्तथा शुभैः ॥ हयारिकुसुमै रक्तैस्तिलैर्वा शर्करायुतैः ॥ १५ ॥ अष्टम्यां च चतुर्दश्यां नवम्यां च विशेषतः ॥ कर्तव्यं पूजनं देव्या ब्राह्मणानां च भोजनम् ॥ १६ ॥ निर्धनो धनमाप्नोति रोगी रोगात्प्रमुच्यते ॥ अपुत्रो लभते पुत्राञ्छुभांश्च वशवर्तिनः ॥ १७ ॥ राज्यभ्रष्टो नृपो राज्यं प्राप्नोति सार्वभौमिकम् ॥ शत्रुभिः

तर्पणका दशांश ब्राह्मणभोजन करावे ॥११॥ इस प्रकार जप करनेके बाद विसर्जन करे । उन भक्तोंको विधिवत् नवरात्रव्रत भी करना चाहिए ॥१२॥ हे राजन् ! आश्विन (कुवार) तथा चैत्रमासके शुक्लपक्षमें आत्मकल्याणके इच्छुक मनुष्यको नौ दिनोंके उपवासका व्रत अवश्य करना चाहिए ॥ १३ ॥ तदनन्तर नवरात्र भर जिस मंत्रका जप किया हो, उसी मंत्रसे भली-भाँति बनायी हुई खीरमें शक्कर, घी तथा मधु मिलाकर बहुत बड़ा हवन करे ॥१४॥ अथवा बकरेके मांस, बिल्वपत्र तथा लाल कनैलके फूलमें तिल और शक्कर मिलाकर होम करे ॥ १५ ॥ अष्टमी, नवमी और चतुर्दशी तिथिको विशेष करके देवीका पूजन और ब्राह्मणभोजन कराना चाहिए ॥१६॥ ऐसा करनेसे निर्धनको धन मिलता है और रोगी रोगमुक्त हो जाता है । अपुत्रो पुरुष सुन्दर तथा वशवर्ती पुत्र पाता है ॥ १७ ॥ राज्यभ्रष्ट राजा यह व्रत करके सार्वभौम राज्य प्राप्त करता है । शत्रु द्वारा सताया हुआ मनुष्य उन महामायाकी कृपासे अपने शत्रुओंको

समाप्त कर देता है ॥ १८ ॥ जो विद्यार्थी संयमपूर्वक देवीका पूजन करता है, उसे सराहनीय और शुभ विद्या प्राप्त होती है। इसमें कोई संशय नहीं है ॥ १९ ॥ जो भी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र श्रद्धापूर्वक उन जगद्धात्रीका पूजन करता है, वह सब तरहसे सुखी हो जाता है ॥ २० ॥ जो स्त्री या पुरुष भक्तिके साथ नवरात्र व्रत करता है, वह वांछित फल प्राप्त कर लेता है ॥ २१ ॥ जो भी प्राणी श्रद्धाके साथ आश्विन मासके शुक्लपक्षमें नवरात्र व्रत करता है, उसकी सब कामनायें पूर्ण हो जाती हैं ॥२२॥ नवरात्र व्रत करनेकी विधि यह है कि खेतकी मिट्टीसे चौकोर वेदी बनाकर पूजास्थान निश्चित करे। तदनन्तर वैदिक मंत्रोंका उच्चारण करता हुआ वेदीपर कलशकी स्थापना करे ॥ २३ ॥ पूर्वोक्त यन्त्रविधिके अनुसार यन्त्रका निर्माण करके उसे कलशकी बगलमें स्थापित करे। कलशके चारों ओर जौ बो दे ॥ २४ ॥ ऊपर चाँदनी टाँगकर चारों ओर फूलमाला लटकावे। इस प्रकार चण्डिका देवीका मण्डप बनाकर भली-

पीडितो हंति रिपुं मायाप्रसादतः ॥१८॥ विद्यार्थी पूजनं यस्तु करोति नियतेंद्रियः ॥ अनवद्यां शुभां विद्यां बिंदते नात्र संशयः ॥१९॥ ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो व भक्तिसंयुतः ॥ पूजयेज्जगतां धात्रीं स सर्वसुखभाग्भवेत् ॥ २० ॥ नवरात्रव्रतं कुर्यान्नरनारीगणश्च यः ॥ वांछितं फलमाप्नोति सर्वदा भक्तितत्परः ॥ २१ ॥ आश्विने शुक्लपक्षे तु नवरात्रव्रतं शुभम् ॥ करोति भावसंयुक्तः सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ २२ ॥ विधिवन्मंडलं कृत्वा पूजास्थानं प्रकल्पयेत् ॥ कलशं स्थापयेत्तत्र वेदमंत्रविधानतः ॥ २३ ॥ यंत्रं सुरुचिरं कृत्वा स्थापयेत्कलशोपरि ॥ वापयित्वा यवांश्चारून्पार्श्वतः परिवर्तितान् ॥ २४ ॥ कृत्वोपरि वितानं च पुष्पमालासमावृतम् ॥ धूपदीपसुसंयुक्तं कर्तव्यं चण्डिकागृहम् ॥२५॥ त्रिकालं तत्र कर्तव्या पूजा शक्त्यनुसारतः ॥ वित्तशाठ्यं न कर्तव्यं चण्डिकायाश्च पूजने ॥ २६ ॥ धूपैर्दीपैः सुनैवेद्यैः फलपुष्पैरनेकशः ॥ गीतवाद्यैः स्तोत्रपाठैर्वेदपारायणैस्तथा ॥ २७ ॥ उत्सवस्तत्र कर्तव्यो नानावादित्रसंयुतैः ॥ कन्यकानां पूजनं च विधेयं विधिपूर्वकम् ॥ २८ ॥ चंदनैर्भूषणैर्वस्त्रैर्भक्ष्यैश्च विविधैस्तथा ॥ सुगंधतैलमाल्यैश्च मनसो रुचिकारकैः ॥ २९ ॥ एवं संपूजनं कृत्वा होमं मंत्रविधानतः ॥ अष्टम्यां वा नवम्यां च कारयेद्विधिपूर्वकम् ॥ ३० ॥ ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चात्पारणं दशमीदिने ॥ कर्तव्यं शक्तितो दानं देयं भक्तिपरैर्नृपैः ॥ ३१ ॥ एवं यः कुरुते भक्त्या नवरात्रव्रतं

भाँति धूप-दीप जलाये ॥ २५ ॥ अपनी शक्तिके अनुसार प्रातः मध्याह्न तथा सायंकाल तीनों समय पूजन करे। चण्डिकापूजनके अवसरपर किसी प्रकारकी कंजूसी न करे ॥ २६ ॥ धूप, दीप, सुन्दर नैवेद्य और अनेक प्रकारके फल-पुष्प जुटाकर पूजा करनी चाहिए। गायन, वाद्य, स्तोत्रपाठ तथा वेदघोषका आयोजन करके विविध प्रकारके बाजे बजवाता हुआ महान् उत्सव करे। उस अवसरपर विधिवत् कन्यापूजन भी करना चाहिए ॥ २७ ॥ २८ ॥ उन कन्याओंका चन्दन, आभूषण, वस्त्र, विविध प्रकारकी भोजनसामग्री, सुगन्धित तेल तथा मनको प्रसन्न करनेवाली मालाओंसे पूजन करनेका विधान है ॥ २९ ॥ उपर्युक्त पूजन करनेके बाद अष्टमी या नवमीको विधिवत् मंत्रोच्चारणपूर्वक होम करे ॥ ३० ॥ होम करनेके पश्चात् ब्राह्मणोंको भोजन करावे। दशमीको व्रती स्वयं पारण करे और यथाशक्ति ब्राह्मणोंको दान दे ॥३१॥ इस प्रकार जो पुरुष तथा पतिव्रता सधवा या विधवा स्त्री भक्तिपूर्वक नवरात्र व्रत करती है,

वह इस लोकमें नाना प्रकारके मनचाहे सुखों एवं भोगोंका उपभोग करके देहत्यागके बाद परम दिव्य देवीके लोकमें जाकर निवास करती है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ऐसे उपासकको जन्मान्तरमें अनपायिनी देवीभक्ति प्राप्त होती है। उसे उत्तम कुलमें जन्म मिलता है और वह स्वभावतः सदाचारी होता है ॥ ३४ ॥ सब व्रतोंमें उत्तम यह नवरात्रव्रत मैंने आपको बतलाया है। उन भगवती शिवाका आराधन करनेसे सब प्रकारके सुख सुलभ हो जाते हैं ॥ ३५ ॥ हे राजन्! इसी विधिके अनुसार आप भगवती चण्डिकाकी आराधना करिए। ऐसा करनेसे आप अपने शत्रुओंको जीतकर अकण्टक राज्य प्राप्त कर लेंगे ॥ ३६ ॥ हे राजन्! अपने पुत्र-स्त्री आदि स्वजनोंको प्राप्त करके अपने घरमें इसी शरीरसे आप अवश्य परम सुखका उपभोग करेंगे ॥ ३७ ॥ हे वैश्यवर्य! आप भी आजसे ही उन कामदायिनी, विश्वेश्वरी तथा सृष्टि और संहार करनेवाली महामायाका आराधन आरम्भ कर दीजिए ॥ ३८ ॥ ऐसा करनेसे आप अपने

नरः ॥ नारी वा सधवा भक्त्या विधवा वा पतिव्रता ॥ ३२ ॥ इह लोके सुखं भोगान्प्राप्नोति मनसेप्सितान् ॥ देहांते परमं स्थानं प्राप्नोति व्रततत्परः ॥ ३३ ॥ जन्मांतरेऽम्बिकाभक्तिर्भवत्यव्यभिचारिणी ॥ जन्मोत्तमकुले प्राप्य सदाचारो भवेद्धि सः ॥ ३४ ॥ नवरात्रव्रतं प्रोक्तं व्रतानामुत्तमं व्रतम् ॥ आराधनं शिवायास्तु सर्वसौख्यकरं परम् ॥ ३५ ॥ अनेन विधिना राजन्समाराधय चंडिकाम् ॥ जित्वा रिपूनस्खलितं राज्यं प्राप्स्यस्यनुत्तमम् ॥ ३६ ॥ सुखं च परमं भूप देहेऽस्मिन्स्वगृहे पुनः ॥ पुत्रदारान्समासाद्य लप्स्यसे नात्र संशयः ॥ ३७ ॥ वैश्योत्तम त्वमेवाद्य समाराधय कामदाम् ॥ देवीं विश्वेश्वरीं मायां सृष्टिसंहारकारिणीम् ॥ ३८ ॥ स्वजनानां च मान्यस्त्वं भविष्यसि गृहे गतः ॥ सुखं सांसारिकं प्राप्य यथाभिलषितं पुनः ॥ ३९ ॥ देवीलोके शुभे वासो भविता ते न संशयः ॥ नाराधिता भगवती यैस्ते नरकभागिनः ॥ ४० ॥ इह लोकेऽतिदुःखार्ता नानारोगैः प्रपीडिताः ॥ भवंति मानवा राजञ्छत्रुभिश्च पराजिताः ॥ ४१ ॥ निष्कलत्रा ह्यपुत्राश्च तृष्णार्ताः स्तब्धबुद्धयः ॥ बिल्वीदलैः करवीरैः शतपत्रैश्च चंपकैः ॥ ४२ ॥ अर्चिता जगतां धात्री यैस्तेऽतीव विलासिनः ॥ भवंति कृतपुण्यास्ते शक्तिभक्तिपरायणाः ॥ ४३ ॥ धनविभवसुखाढ्या मानवा मानवंतः सकलगुणगणानां भाजनं भारतीशाः ॥ निगमपठितमंत्रैः पूजिता यैर्भवानी नृपतितिलकमुख्यास्ते भवंतीह लोके ॥ ४४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

घरमें माननीय माने जाने लगेंगे। इस लोकके सभी अभिलषित सांसारिक सुख प्राप्त करके अन्तमें आपको देवीके सुन्दर लोकमें निवास प्राप्त होगा। इसमें तनिक भी संशय नहीं है। जो लोग भगवतीकी आराधना नहीं करते, उन्हें मरनेके बाद नरक भोगना पड़ता है ॥ ३९ ॥ ४० ॥ वे इस संसारमें सदा दुखी और नाना प्रकारकी व्याधियोंसे पीड़ित रहते हैं। उनको पद-पदपर शत्रुओंसे पराजय प्राप्त होती रहती है ॥ ४१ ॥ वे सदा स्त्री-पुत्रसे हीन रहते हैं। उन्हें सदा तृष्णा घेरे रहती है और उनकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। इसके विपरीत जो लोग बिल्वपत्र, कनैलके पुष्प, कमल तथा चम्पाके फूलसे उस जगज्जननीका पूजन करते हैं। वे पुण्यात्मा मनुष्य शक्तिकी भक्तिमें संलग्न होनेके कारण विविध प्रकारका भोग-विलास करते हैं ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ हे राजा सुरथ! जो लोग तंत्रोक्त मंत्रों द्वारा भवानीका पूजन करते हैं, वे इस संसारमें सब प्रकारके धन-वैभव प्राप्त करके सुखी होते हैं। वे संसारमें सम्मानित तथा सतोगुणसे अलंकृत विद्वान् होते

हैं और वे ही सब राजाओंमें श्रेष्ठ माने जाते हैं ॥ ४४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे पापदेशमतेजशक्तिकथायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

हैं और वे ही सब राजाओंमें श्रेष्ठ माने जाते हैं ॥ ४४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे पाण्डेरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

(राजा सुरथ और समाधि वैश्यको देवीका प्रत्यक्ष दर्शन तथा वरकी प्राप्ति) व्यासजी बोले—हे महाराज जनमेजय ! महर्षि सुमेधाके वचन सुनकर परम दुखी राजा सुरथ और समाधि वैश्यने विनम्रभावसे मुनिके चरणोंपर मस्तक रख दिया ॥ १ ॥ हर्षातिरेकसे उनके नेत्र खिल गये। भगवतीकी भक्तिका उदय हो जानेसे उनका हृदय गद्गद हो गया। तदनन्तर बातें करनेमें निपुण राजा सुरथ और समाधि वैश्यने हाथ जोड़कर कहा—हे भगवन् ! दुखी, शोकाकुल तथा अशान्त हम दोनों व्यक्तियोंको आपने अपनी सूक्तिरूपिणी सरस्वतीसे उसी प्रकार पवित्र कर दिया। जैसे महाराज भगीरथने गंगाजीको धरतीपर उतारकर सब संसारी जनोंको पवित्र किया था ॥ २ ॥ ३ ॥ इस संसारमें साधु पुरुष परोपकारके लिए ही अवतरित होते हैं। वे स्वाभाविक गुणोंके अखण्ड भाण्डार होते हैं। वे ऐसे ही काम करते हैं कि जिससे सब प्राणियोंको सुख प्राप्त हो ॥ ४ ॥ हम दोनोंके पूर्वजन्मार्जित पुण्योंकी महिमासे ही हमें

॥ व्यास उवाच ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा दुःखितौ वैश्यपार्थिवौ ॥ प्रणिपत्य मुनिं प्रीत्या प्रश्रयावनतौ भृशम् ॥ १ ॥ हर्षेणोत्फुल्लनयनावूचतुर्वाक्यकोविदौ ॥ कृतांजलिपुटौ शान्तौ भक्तिप्रवणचेतसौ ॥ २ ॥ भगवन्पावितावद्य शान्तौ दीनौ शुचान्वितौ ॥ तव सूक्तिसरस्वत्या गंगयेव भगीरथः ॥ ३ ॥ साधवः संभवंतीह परोपकृतितत्पराः ॥ अकृत्रिमगुणारामाः सुखदाः सर्वदेहिनाम् ॥ ४ ॥ पूर्वपुण्यप्रसंगेन प्राप्तोऽयमाश्रमः शुभः ॥ तवावाभ्यां महाभाग महादुःखविनाशकः ॥ ५ ॥ भवंति मानवा भूमौ बहवः स्वार्थतत्पराः ॥ परार्थसाधने दक्षाः केचित्कापि भवादृशाः ॥ ६ ॥ दुःखितोऽहं मुनिश्रेष्ठ वैश्योऽयं चातिदुःखितः ॥ उभौ संसारसंतप्तौ तवाश्रमपदे मुदा ॥ ७ ॥ दर्शनादेव हे विद्वन्गतं दुःखमिहावयोः ॥ देहजं मानसं वाक्यश्रवणादेव सांप्रतम् ॥ ८ ॥ धन्यावावां कृतकृत्यौ जातौ सूक्तिसुधारसात् ॥ पावितौ भवता ब्रह्मन्कृपया करुणार्णव ॥ ९ ॥ गृहाणास्मत्करौ साधो नय पारं भवार्णवे ॥ मग्नौ श्रांताविति ज्ञात्वा मंत्रदानेन सांप्रतम् ॥ १० ॥ तपः कृत्वाऽतिविपुलं समाराध्य सुखप्रदाम् ॥ संप्राप्य दर्शनं भूयो यास्यावो निजमंदिरम् ॥ ११ ॥ वदनात्तव संप्राप्य देवीमंत्रं नवाक्षरम् ॥ स्मरणं च करिष्यावो निराहारौ धृतव्रतौ ॥ १२ ॥

महान् दुःखनाशक आपका यह आश्रम मिल गया है ॥५॥ इस भूतलपर अपना कार्य साधनेवाले मनुष्य तो बहुतेरे होते हैं, किन्तु पराया उपकार करनेमें निपुण आप सरीखे महात्मा बिरले ही मिलते हैं ॥६॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! मैं दुखी हूँ और ये वैश्य महाशय भी बहुत दुखी हैं। सो हम दोनों सांसारिक सन्तापसे सन्तप्त होकर बड़ी प्रसन्नतापूर्वक आपके इस पुनीत आश्रममें आये थे ॥ ७ ॥ हे विद्वन् ! आपका दर्शन करते ही हमारा शारीरिक क्लेश दूर हो गया था। किन्तु आज आपकी बातें सुनकर हमारे मनका दुःख भी दूर हो गया ॥ ८ ॥ आपके वचनरूपी अमृतरसका पान करके हम दोनों धन्य और कृतकृत्य हो गये। हे ब्रह्मन् ! हे दयाके समुद्र ! आपने कृपा करके हमें पवित्र कर दिया ॥ ९ ॥ हे साधो ! हम दोनों थककर संसाररूपी महासागरमें डूब रहे हैं। अब आप हमारा हाथ पकड़िए और मंत्रदान देकर भवसागरसे पार कर दीजिए ॥ १० ॥ हम कठोर तपस्या करके उन सुखदायिनी जगदम्बाकी आराधना करेंगे। जब उनका दर्शन मिल जायगा, तब अपने-अपने घर चले जायँगे ॥ ११ ॥ आपके मुखारविन्दसे देवीका नवाक्षर मंत्र प्राप्त करके हम दोनों निराहार रहकर नवरात्र व्रत करते हुए उस मंत्र-

का जप करेंगे ॥१२॥ व्यासजी बोले–इस प्रकार उन दोनोंके आग्रह करनेपर मुनिश्रेष्ठ सुमेधाने उन्हें ध्यान तथा बीज समेत देवीका शुभ नवाक्षर मंत्र प्रदान किया ॥१३॥ इस प्रकार मंत्र, मंत्रके ऋषि, बीज, छन्द, शक्ति तथा देवताका ज्ञान प्राप्त करके राजा सुरथ और समाधि वैश्य दोनों नदीके तटपर चले गये ॥ १४ ॥ जिनका उदर बहुत कृश और चित्त शान्त हो गया था, वे दोनों राजा तथा वैश्य नदीतटके एक निर्जन स्थानमें आसन लगाकर बैठ गये। वे अपना मन शान्त करके नवाक्षर मंत्रका जप तथा दुर्गासप्तशतीके तीनों चरित्रोंका पाठ करने लगे। इस प्रकार ध्यानपरायण होकर उन्होंने एक महीनेका समय बिताया ॥१५॥१६॥ इस एक मासके व्रतसे ही उनके मनमें भगवतीके चरणोंके प्रति अति उत्तम भक्ति प्रकटी और उनकी बुद्धि स्थिर हो गयी ॥ १७ ॥ वे दोनों नित्य एक बार महात्मा सुमेधाके श्रीचरणोंके समीप जाते, उन्हें प्रणाम करते और वहाँसे लौटकर फिर अपने कुशासनपर बैठ

व्यास उवाच ॥ इति संचोदितस्ताभ्यां सुमेधा मुनिसत्तमः ॥ ददौ मंत्रं शुभं ताभ्यां ध्यानबीजपुरःसरम् ॥ १३ ॥ तौ च प्राप्य मुनेर्मंत्रं संमंत्र्य गुरुदैवतौ ॥ जग्मतुर्वैश्यराजानौ नदीतीरमनुत्तमम् ॥१४॥ एकांते विजने स्थाने कृत्वासनपरिग्रहम् ॥ उपविष्टौ स्थितप्रज्ञौ तावतीव कृशोदरौ ॥१५॥ मंत्रजाप्यरतौ शांतौ चरित्रत्रयपाठकौ ॥ निन्यतुर्मासमेकं तु तत्र ध्यानपरायणौ ॥ १६ ॥ तयोर्मासव्रतेनैव जाता प्रीतिरनुत्तमा ॥ पादांबुजे भवान्यास्तु स्थिरा बुद्धिस्तथाप्यलम् ॥ १७ ॥ कदाचित्पादयोर्गत्वा मुनेस्तस्य महात्मनः ॥ कृतप्रणामावागत्य तस्थतुश्च कुशासने ॥१८॥ नान्यकार्यपरौ क्वापि बभूवतुः कदाचन ॥ देवीध्यानपरौ नित्यं जपमंत्ररतौ सदा ॥ १९ ॥ एवं जाते तदा पूर्णे तत्र संवत्सरे नृप ॥ बभूवतुः फलाहारं त्यक्त्वा पर्णाशनौ नृप ॥ २० ॥ वर्षमेकं तपस्तत्र चक्रतुर्वैश्यपार्थिवौ ॥ शुष्कपर्णाशनौ दांतौ जपध्यानपरायणौ ॥ २१ ॥ पूर्णे वर्षद्वये जाते कदाचिद्दर्शनं च तौ ॥ प्रापतुः स्वप्नमध्ये तु भगवत्या मनोहरम् ॥ २२ ॥ रक्तांबरधरां देवीं चारुभूषणभूषिताम् ॥ कदाचिन्नृपतिः स्वप्नेऽप्यपश्यज्जगदम्बिकाम् ॥ २३ ॥ वीक्ष्य स्वप्ने च तौ देवीं प्रीतियुक्तौ बभूवतुः ॥ जलाहारैस्तृतीये तु स्थितौ संवत्सरे तु तौ ॥ २४ ॥ एवं वर्षत्रयं कृत्वा ततस्तौ वैश्यपार्थिवौ ॥ चक्रतुस्तौ तदा चिंतां चित्ते दर्शनलालसौ ॥ २५ ॥ प्रत्यक्षदर्शनं देव्या न

जाते थे ॥ १८ ॥ उन दिनों वे दोनों देवीके ध्यान तथा मंत्रजपके सिवाय और कोई कार्य नहीं करते थे ॥ १९ ॥ हे राजा जनमेजय ! इस प्रकार देवीका आराधन करते-करते जब एक वर्ष पूरा हो गया। तब हे नृप ! उन दोनोंने फलाहार भी त्याग दिया और केवल हरे पत्ते खाकर रहते हुए उपासना करने लगे ॥ २० ॥ इस प्रकार वर्षभर तप करनेके बाद राजा सुरथ और समाधि वैश्य हरे पत्ते खाना छोड़ सूखी पत्तियोंको खाकर रहते और इन्द्रियदमनपूर्वक जप-ध्यान करते हुए तप करने लगे ॥ २१ ॥ इस प्रकार तप करते-करते जब दो वर्ष व्यतीत हो गये, तब उन दोनोंको स्वप्नमें भगवतीका मनोहारी दर्शन प्राप्त हुआ ॥२२॥ उस स्वप्नमें उन्होंने देखा कि भगवती लाल वस्त्र पहने हैं और उच्चकोटिके आभूषणोंसे उनके अंग सुशोभित हो रहे हैं ॥ २३ ॥ इस तरह स्वप्नमें भगवतीके दर्शन पाकर उन दोनोंका हृदय भर आया। अब वे सूखी पत्तियाँ भी त्यागकर केवल जल पीते हुए तृतीय वर्षकी तपस्या करने लगे ॥ २४ ॥

इस प्रकार लगातार तीन वर्षतक तप करनेपर भी जब देवीका प्रत्यक्ष दर्शन नहीं मिला। तब राजा और वैश्य दोनों बहुत चिन्तित हुए ॥ २५ ॥ उन्होंने सोचा कि जिनका दर्शन पाकर प्राणियोंको स्थायी शान्ति प्राप्ति हो जाती है। उन भगवतीका दर्शन हमें अब तक नहीं मिला। अतएव इस दुखसे अत्यन्त दुखी होकर हम दोनों अपने प्राण त्याग देंगे ॥ २६ ॥ तब अत्यन्त भक्तिमान् राजाने हाथ भरका लम्बा, सुन्दर और सुस्थिर अपने समक्ष अग्निकुण्ड प्रस्तुत किया और अपने शरीरसे मांस काट-काटकर हवन करने लगे ॥ २७ ॥ २८ ॥ उसी प्रकार वैश्यने भी धधकती आगमें अपने शरीरके मांसकी आहुति दी। इसके बाद जब वे अपने शरीरके रुधिरकी बलि भी देने लग गये ॥ २९ ॥ तब तत्काल भगवतीने प्रगट होकर उन दोनोंको प्रत्यक्ष दर्शन दिया। अत्यन्त दुःखी और देवीकी भक्तिमें तन्मय देखकर उन दोनोंसे भगवती कहने लगीं ॥ ३० ॥ देवी बोलीं—हे राजन्! आपकी जो इच्छा हो, वह वर माँगिए। मैं आपकी भक्तिसे बहुत प्रसन्न हूँ। अब मुझे विश्वास हो गया कि आप मेरे अनन्य भक्त हैं ॥ ३१ ॥ इसके बाद उन्होंने समाधि वैश्यसे कहा—हे महामते! मैं आपकी भक्तिसे

प्राप्तं शांतिदं नृणाम् ॥ देहत्यागं करिष्यावो दुःखितौ भृशमातुरौ ॥ २६ ॥ इति संचिन्त्य मनसा राजा कुण्डं चकार ह ॥ त्रिकोणं सुस्थिरं सौम्यं हस्तमात्रप्रमाणतः ॥ २७ ॥ संस्थाप्य पावकं राजा तथा वैश्योऽतिभक्तिमान् ॥ जुहावासौ निजं मांसं छित्त्वा छित्त्वा पुनः पुनः ॥ २८ ॥ तथा वैश्योऽपि दीप्तेऽग्नौ स्वमांसं प्राक्षिपत्तदा ॥ रुधिरेण बलिं चास्यै ददतुस्तौ कृतोद्यमौ ॥ २९ ॥ तदा भगवती दत्त्वा प्रत्यक्षं दर्शनं तयोः ॥ प्राह प्रीतिभरोद्भ्रांतौ दृष्ट्वा तौ दुःखितौ भृशम् ॥३०॥ श्रीदेव्युवाच ॥ वरं वरय भो राजन्यत्ते मनसि वांछितम् ॥ तुष्टाऽहं तपसा तेऽद्य भक्तोऽसि त्वं मतो मम ॥ ३१ ॥ वैश्यं प्राह ततो देवी प्रसन्नाऽहं महामते ॥ किं तेऽभीष्टं ददाम्यद्य प्रार्थयाशु मनोगतम् ॥ ३२ ॥ व्यास उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं राजा तामुवाच मुदान्वितः ॥ देहि मेऽद्य निजं राज्यं हतशत्रुबलंबलात् ॥ ३३ ॥ तमुवाच तदा देवी गच्छ राजन्निजं गृहम् ॥ शत्रवः क्षीणसत्त्वास्ते गमिष्यंति पराजिताः ॥ ३४ ॥ मंत्रिणस्ते समागम्य ते पतिष्यंति पादयोः ॥ कुरु राज्यं महाभाग नगरे स्वं यथासुखम् ॥ ३५ ॥ कृत्वा राज्यं सुविपुलं वर्षाणामयुतं नृप ॥ देहान्ते जन्म संप्राप्य सूर्याच्च भविता मनुः ॥३६॥ व्यास उवाच ॥ वैश्यस्तामप्युवाचेदं कृतांजलिपुटः शुचिः ॥ न मे गृहेण कार्यं वै न पुत्रेण धनेन वा ॥ ३७ ॥ सर्वं बंधकरं मातः स्वप्नवन्नश्वरं स्फुटम् ॥ ज्ञानं मे देहि विशदं मोक्षदं बंधनाशनम्

बहुत प्रसन्न हूँ। आपकी जो इच्छा हो, वह वर माँगिए। मैं अभी वरदान दूँगी ॥ ३२ ॥ व्यासजी बोले कि तब राजा सुरथने बड़े हर्षपूर्वक कहा—हे माता! अपनी सेना द्वारा शत्रुसेनाको पराजित करके अपना गया हुआ राज्य पुनः वापस पा सकूँ। मुझे यही वरदान चाहिए ॥ ३३ ॥ तब भगवतीने कहा—हे महाराज! अब आप अपने राज्यको वापस जाइए। वहाँ शत्रुओंकी शक्ति क्षीण हो जायगी और वे पराजित होकर भाग जायँगे ॥ ३४ ॥ हे महाभाग! आपके विपक्षी मन्त्रीगण आकर आपके पैरों पड़ेंगे। अब आप जाकर सुखपूर्वक राज्य करिए ॥ ३५ ॥ हे राजन्! अपने सुविस्तृत साम्राज्यका दस हजार वर्ष शासन करनेके बाद आप भगवान सूर्यके पुत्र मनु होकर जन्म लेंगे ॥ ३६ ॥ व्यासजी बोले—शुद्धहृदय वैश्यने हाथ जोड़कर कहा—माता! अब न मुझे घरकी आवश्यकता है और न धन तथा पुत्र ही चाहिए ॥ ३७ ॥ ये सभी बन्धनमें डालनेवाले हैं। हे जननी! ये सब स्वप्नके समान नाशवान् हैं। अतएव

मुझे ऐसा निर्मल ज्ञान दीजिए कि जिससे मैं भवबन्धनसे छुटकारा पाकर मोक्ष प्राप्त कर सकूँ। इस असार संसारसागरमें अज्ञानी डूब जाते हैं और ज्ञानी पार उतर जाते हैं। इसी कारण ज्ञानी पुरुष संसारमें फिर जन्म नहीं लेना चाहते ॥३८॥३९॥ व्यासजी बोले—वैश्यकी प्रार्थना सुनकर भगवती महामायाने अपने समक्ष खड़े समाधिसे कहा—हे वैश्यवर्य ! तुम्हें ज्ञान प्राप्त होगा। इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ ४० ॥ ऐसा वरदान देकर भगवती महामाया वहाँ ही अन्तर्धान हो गयीं। देवीके अन्तर्धान हो जानेके बाद वे दोनों महामुनि सुमेधाके पास गये ॥४१॥ राजाने उनको प्रणाम किया और अनुमति लेकर अपने राज्यमें जानेके लिए घोड़ेपर सवार होने चले। त्योंही उनके प्रजाजन तथा पुराने मंत्रिगण आ पहुँचे ॥४२॥ उन्होंने विनीतभावसे महाराज सुरथको प्रणाम किया और हाथ जोड़कर कहा—हे राजन् ! आपके शत्रुओंने जनतापर बड़ा अत्याचार किया। यह पाप देखकर रणभूमिमें हमने उन सबको मार डाला ॥ ४३ ॥ हे भूप ! अब आप अपने नगरको वापस चलिए और वहाँका निष्कण्टक राज्य करिए। मंत्रियोंके वचन सुनकर राजा सुरथने महामुनि सुमेधाको प्रणाम किया और अनुमति माँगकर उन

॥ ३८ ॥ असारेऽस्मिंश्च संसारे मूढ़ा मज्जंति पामराः ॥ पण्डिताः संतरंतीह तस्मान्नेच्छंति संसृतिम् ॥ ३९ ॥ व्यास उवाच ॥ तदाकर्ण्य महामाया वैश्यं प्राह पुरःस्थितम् ॥ वैश्यवर्य तव ज्ञानं भविष्यति न संशयः ॥४०॥ इति दत्त्वा वरं ताभ्यां तत्रैवांतरधीयत ॥ अदर्शनं गतायां तु राजा तं सुनिसत्तमम् ॥ ४१ ॥ प्रणम्य हयमारुह्य गमनाय मनो दधे ॥ तदैव तस्य सचिवास्तत्रागत्य नृपं प्रजाः ॥ ४२ ॥ प्रणेमुर्विनयोपेतास्तमूचुः प्रांजलिस्थिताः ॥ राजंस्ते शत्रवः सर्वे पापाच्च निहता रणे ॥ ४३ ॥ राज्यं निष्कंटकं भूप कुरुष्व पुरमास्थितः ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं राजा नत्वा तं मुनिसत्तमम् ॥४४॥ आपृच्छ्य निर्ययौ तत्र मंत्रिभिः परिवारितः ॥ संप्राप्य च निजं राज्यं दारान्स्वधनबांधवान् ॥४५॥ बुभुजे पृथिवीं सर्वां ततः सागरमेखलाम् ॥ वैश्योऽपि ज्ञानमासाद्य मुक्तसंगः समंततः ॥४६॥ कालाऽतिवाहनं तत्र मुक्तबन्धश्चकार ह ॥ तीर्थेषु विचरन्गायन्भगवत्या गुणानथ ॥ ४७ ॥ एतत्ते कथितं देव्याश्चरितं परमाद्भुतम् ॥ आराधनफलप्राप्तिर्यथावद्भूपवैश्ययोः ॥ ४८ ॥ दैत्यानां हननं प्रोक्तं प्रादुर्भावस्तथा शुभः ॥ एवंप्रभावा सा देवी भक्तानामभयप्रदा ॥ ४९ ॥ यः शृणोति नरोनित्यमेतदाख्यानमुत्तमम् ॥ संप्राप्नोति नरः सत्यं संसारसुखमद्भुतम् ॥५०॥ ज्ञानदं मोक्षदं चैव कीर्तिदं सुखदं तथा ॥ पावनं श्रवणान्नूनमेतदाख्यानमद्भुतम् ॥ ५१ ॥ अखिलार्थप्रदं नृणां सर्वधर्मसमावृतम् ॥ धर्मार्थकाममो-

मंत्रियोंके साथ अपने नगरको चल पड़े। वहाँ अपना राज्य, रानी तथा बान्धवोंको पाकर वे समुद्रपर्यन्त पृथिवीका शासन करने लगे। उधर समाधि वैश्यको ज्ञान प्राप्त हो गया और उसकी सभी आसक्तियाँ निवृत्त हो गयीं ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ वह भारतवर्षके सभी तीर्थोंकी यात्रा करके भगवतीके गुणोंकी महिमाका गान करता हुआ प्रचार करने लगा ॥४७॥ इस प्रकार मैंने आपको देवीका परम अद्भुत चरित्र कह सुनाया। साथ ही यह भी बता दिया कि राजा सुरथ और समाधि वैश्यको किस तरहकी सिद्धि प्राप्त हुई ॥ ४८ ॥ इसी प्रसंगमें दैत्योंके संहार तथा भगवतीके लोककल्याणकारी अवतार लेनेका वृत्तान्त भी बता दिया। भक्तोंको अभयदान देनेवाली देवीका ऐसा प्रभाव है ॥ ४९ ॥ जो मनुष्य इस कथानकको नित्य श्रद्धाके साथ सुनता है, उसे संसारका वास्तविक सुख प्राप्त होता है ॥ ५० ॥ यह पावन कथा सुननेसे प्राणीको ज्ञान, मोक्ष, यश और अद्भुत सुख प्राप्त होता है ॥ ५१ ॥ इस आख्यानमें

सभी धर्मोंका समावेश है। इसमें अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष इन चारों पदार्थोंकी प्राप्तिका साधन बताया गया है ॥५२॥ सूतजी बोले—हे मुनिवृन्द ! महाराज जनमेजयके आग्रहपर सत्यवतीसुत एवं सब तत्त्वोंके विज्ञ व्यासने उन्हें यह दिव्य देवीभागवतसंहिता सुनायी ॥ ५३ ॥ हे मुनीश्वरगण ! करुणाके सागर महामुनि कृष्णद्वैपायन व्यासने शुम्भ दैत्यके वधकी गाथाके साथ

ज्ञाणां कारणं परमं मतम् ॥५२॥ सूत उवाच ॥ जनमेजयेन राज्ञाऽसौ पृष्टः सत्यवतीसुतः ॥ उवाच संहितां दिव्यां व्यासः सर्वार्थतत्त्ववित् ॥५३॥
चरितं चंडिकायास्तु शुंभदैत्यवधाश्रितम् ॥ कथयामास भगवान्कृष्णः कारुणिको मुनिः ॥ ५४ ॥ इति वः कथितः सारः पुराणानां मुनीश्वराः ॥
इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

व्योमांकाभ्रद्विसंख्यातैः २०९० श्लोकैर्व्यासेन धीमता ॥ देवीभागवतस्यास्य पञ्चमस्कन्ध ईरितः ॥ १ ॥

भगवती चण्डिकाका जो इतिहास सुनाया था, वही समस्त पुराणोंका सारस्वरूप इतिहास मैंने आप लोगोंको सुनाया है ॥ ५४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा' भाषाटीकायां पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥ बुद्धिमान् व्यासदेवने कुल दो हजार नब्बे श्लोकोंमें यह पंचम स्कन्ध कहा है ॥ ५ ॥

॥ समाप्तोऽयं पञ्चमः स्कन्धः ॥

॥ श्रीजगदम्बार्पणमस्तु ॥

इति श्रीमद्देवीभागवत भा० टी० पञ्चम स्कन्ध

अथ श्रीमद्देवीभागवत भा० टी० षष्ठ स्कन्ध

श्रीसच्चिदानन्दरूपिण्यै नमः ॥ (विश्वरूप और त्रिशिराका तप, उसमें इन्द्रका विघ्न डालना) ऋषिगण बोले– हे सूत ! हे महाभाग ! महामुनि व्यास द्वारा वर्णित परम कल्याण-दायक देवीभागवतकी कथायें आपके मुखारविन्दसे सुनते हुए हमें इतनी मीठी लगती हैं कि उन्हें बारम्बार सुन करके भी तृप्ति नहीं होती ॥ १ ॥ अतएव आप पुराणोक्त, लोकविख्यात, पापनाशक एवं रमणीक वह कथा और सुनाइए । जिसका वर्णन वेदोंमें भी हुआ है ॥२॥ अब हम आपसे यह जानना चाहते हैं कि विश्वकर्माके बलवान् पुत्र वृत्रासुरको महात्मा इन्द्रने युद्धभूमिमें क्यों मारा ? ॥३॥ त्वष्टा (विश्वकर्मा) तो देवपक्षके समर्थक थे । उनका पुत्र वृत्रासुर बड़ा बलवान् था । वह ब्राह्मणवंशमें जायमान हुआ था । तब उसको इन्द्रने क्यों मार डाला ? ॥४॥ पुराणोंके ज्ञाता और शास्त्रोंके तत्त्वज्ञ पण्डितोंका कथन है कि देवताओंकी उत्पत्ति सतोगुणसे, मनुष्योंकी रजोगुणसे और पशु-पक्षी आदिकी उत्पत्ति तमोगुणसे होती है ॥ ५ ॥ लेकिन वृत्रासुरके वधकी बातसे यह बड़ा भारी संशय उपस्थित हो जाता है कि सौ अश्वमेध यज्ञ करनेवाले सत्त्वगुणविशिष्ट इन्द्रने धोखा देकर वृत्रासुरको क्यों मारा ? ॥६॥ इतना ही नहीं, सत्त्वगुणके

॥ ऋषय ऊचुः ॥ सूत सूत महाभाग मिष्टं ते वचनामृतम् ॥ न तृप्ताः स्मो वयं पीत्वा द्वैपायनकृतं शुभम् ॥ १ ॥ पुनस्त्वां प्रष्टुमिच्छामः कथां पौराणिकीं शुभाम् ॥ वेदेऽपि कथितां रम्यां प्रसिद्धां पापनाशिनीम् ॥ २ ॥ वृत्रासुर इति ख्यातो वीर्यवांस्त्वष्टुरात्मजः ॥ स कथं निहतः संख्ये वासवेन महात्मना ॥ ३ ॥ त्वष्टा वै सुरपक्षीयस्तत्पुत्रो बलवत्तरः ॥ शक्रेण घातितः कस्माद्ब्रह्मयोनिर्महाबलः ॥ ४ ॥ देवाः सत्त्वगुणोत्पन्ना मानुषा राजसाः स्मृताः ॥ तिर्यञ्चस्तामसाः प्रोक्ताः पुराणागमवादिभिः ॥ ५ ॥ विरोधोऽत्र महान्भाति नूनं शतमखेन ह ॥ छलेन बलवान्वृत्रः शक्रेण विनिपातितः ॥ ६ ॥ विष्णुः प्रेरयिता तत्र स तु सत्त्वधरः परः ॥ प्रविष्टः पविमध्ये स छद्मना भगवान्प्रभुः ॥ ७ ॥ सन्धिं विधाय स ह्येवं मंत्रितोऽसौ महाबलः ॥ हरिभ्यां सत्यमुत्सृज्य जलफेनेन शातितः ॥ ८ ॥ कृतमिंद्रेण हरिणा किमेतत्सूत साहसम् ॥ महांतोऽपि च मोहेन वंचिताः पापबुद्धयः ॥ ९ ॥ अन्यायवर्तिनोऽत्यर्थं भवंति सुरसत्तमाः ॥ सदाचारेण युक्तेन देवाः शिष्टत्वमागताः ॥ १० ॥ एवंविशिष्टधर्मेण शिष्टत्वं कीदृशं पुनः ॥ हत्वा वृत्रं तु विश्वस्तं शक्रेण छद्मना पुनः ॥ ११ ॥ प्राप्तं पापफलं नो वा ब्रह्महत्यासमुद्भवम् ॥ किं च त्वया पुरा प्रोक्तं वृत्रासुरवधः

मूर्त रूप भगवान विष्णुने इन्द्रको ऐसा करनेके लिए प्रोत्साहित किया । छल करके वे सबके प्रभु और साक्षात् भगवान विष्णु इन्द्रके वज्रमें प्रविष्ट हो गये ॥ ७ ॥ परस्पर सन्धि हो जानेके कारण वृत्रासुर निश्चिन्त हो गया था । किन्तु भगवान विष्णु और इन्द्रने सन्धिकी अवहेलना करके जलफेनसे उसको मार डाला ॥ ८ ॥ हे सूत ! इन्द्र और विष्णुने यह दुःसाहस क्यों किया ? ठीक ही है, कभी-कभी बड़े लोग भी इस प्रकार मोहजालमें फँस जाते हैं कि उनकी बुद्धि पापकर्ममें लग जाती है ॥ ९ ॥ देवताओंके अग्रणी विष्णु-इन्द्र जैसे सुरसत्तम भी अन्याय पथके पथिक बन जाते हैं । किन्तु सदाचारपरायण होनेके नाते ही देवताओंको गौरव प्राप्त हुआ था ॥१०॥ इस प्रकार जब उनके धर्ममें पापको प्रधानता मिली, तब उनका सदाचार कहाँ रह गया ? इसके सिवाय इन्द्रने वृत्रको विश्वास दिलाकर बादमें विश्वासघात और छल करके मार डाला ॥ ११ ॥ इसके कारण उन्हें ब्रह्महत्याके पापका फल भी मिला या नहीं ?

वह गया ? इसके सिवाय इन्द्रने वृत्रको विश्वास दिलाकर बादमें विश्वासघात और छल करके मार डाला ॥ ११ ॥ इसके कारण उन्हें ब्रह्महत्याके पापका फल भी मिला या नहीं ?

लेकिन एक बात और है। वह यह कि आप पहले कह चुके हैं--वृत्रासुरको स्वयं भगवतीने मारा था। यह सुनकर हमारा चित्त और भी भ्रममें पड़ गया है। सूतजी बोले-हे मुनिगण ! अब आप लोग वृत्रासुरके वधकी कथा सुनें ॥ १२ ॥ १३ ॥ साथ ही यह भी समझ लें कि इन्द्रको इस ब्रह्महत्याके बदलेमें बड़ा दुःख भोगना पड़ा था। इसी प्रकार सत्यवतीसुत व्याससे महाराज परीक्षित्के पुत्र जनमेजयने भी प्रश्न किया था। राजा जनमेजयने कहा—हे मुनिराज ! देवराज इन्द्रने वृत्रासुरका वध क्यों किया ? ॥ १४ ॥ १५ ॥ इन्द्र तो सात्त्विक वृत्तिके देवता थे। तब उन्होंने भगवान् विष्णुकी सहायतासे क्यों छलपूर्वक वृत्रासुरका वध किया ? अथवा भगवतीने ही उस दैत्यको क्यों मारा ? ॥ १६ ॥ हे मुनिपुंगव ! यह कैसे सम्भव हो सकता है कि एक ही व्यक्तिको दो भिन्न-भिन्न देवता मारें ? यह वृत्तान्त सुननेके लिए मेरे मनमें बड़ा कौतूहल है ॥ १७ ॥ ऐसा कौन मनुष्य है कि जो महापुरुषोंके पावन चरित्रोंको न सुनना चाहेगा ? अतएव आप मुझे जगदम्बा द्वारा वृत्रासुरके वधकी कथा सुनाइए ॥ १८ ॥ व्यासजी बोले—हे राजन् ! पुराणश्रवणके विषयमें आप इतने अधिक उत्सुक रहते हैं।

कृतः ॥ १२ ॥ श्रीदेव्या इति तच्चापि चित्तं मोहयतीह नः ॥ सूत उवाच ॥ शृण्वंतु मुनयो वृत्तं वृत्रासुरवधाश्रयम् ॥ १३ ॥ यथेन्द्रेण च संप्राप्तं दुःखं हत्यासमुद्भवम् ॥ एवमेव पुरा पृष्टो व्यासः सत्यवतीसुतः ॥ १४ ॥ पारीक्षितेन राज्ञाऽपि स यदाह च तद्ब्रुवे ॥ जनमेजय उवाच ॥ कथं वृत्रासुरः पूर्वं हतो मघवता मुने ॥ १५ ॥ सहायं विष्णुमासाद्य छद्मना सात्त्विकेन ह ॥ कथं च देव्या निहतो दैत्योऽसौ केन हेतुना ॥१६॥ कथमेकवधो द्वाभ्यां कृतः स्यान्मुनिपुंगव ॥ तदेतच्छ्रोतुमिच्छामि परं कौतूहलं हि मे ॥ १७ ॥ महतां चरितं शृण्वन्को विरज्येत मानवः ॥ कथयाम्बावैभवं त्वं वृत्रासुरवधाश्रितम् ॥ १८ ॥ व्यास उवाच ॥ धन्योऽसि राजंस्तव बुद्धिरीदृशी जाता पुराणश्रवणेऽतिसादरा ॥ पीत्वाऽमृतं देववरास्तु सर्वथा पाने वितृष्णाः प्रभवंति व पुनः ॥ १९ ॥ दिने दिने तेऽधिकभक्तिभावः कथासु राजन्महनीयकीर्तेः ॥ श्रोता यदैकप्रवणः शृणोति वक्ता तदा प्रीतमना ब्रवीति ॥ २० ॥ युद्धं पुरा वासववृत्रयोर्यद्वेदे प्रसिद्धं च तथा पुराणे ॥ दुःखं सुरेन्द्रेण तथैव लब्धं हत्वा रिपुं त्वाष्ट्रमपापमेव ॥ २१ ॥ चित्रं किमत्र नृपते हरिवज्रभृद्भ्यां यच्छद्मना विनिहतस्त्रिशिरोऽथ वृत्रः ॥ मायाबलेन मुनयोऽपि विमोहितास्ते चक्रुश्च निंद्यमनिशं किल पापभीताः ॥२२॥ विष्णुः सदैव कपटेन जघान दैत्यान्सत्त्वात्ममूर्तिरपि मोहमवाप्य कामम् ॥ कोन्योऽस्ति तां भगवतीं मनसाऽपि जेतुं शक्तः

अतएव आप धन्य हैं। बड़े-बड़े देवता भी अमृत पीकर तृप्त हो गये थे। किन्तु आप विविध कथायें सुनकर भी तृप्त नहीं होते ॥ १९ ॥ हे राजन् ! इन कथाओंको सुनकर दिनों-दिन आपकी उत्सुकता बढ़ती ही जाती है। अतएव आप असाधारण पुरुष हैं। जब श्रोता एकाग्रमनसे कथा सुनता है। तब वक्ता भी बड़े प्रेमसे कहता है ॥ २० ॥ प्राचीन कालमें इन्द्र और वृत्रासुरका भीषण युद्ध हुआ था। वेदों और पुराणोंमें यह कथा प्रसिद्ध है। अपने शत्रु और त्वष्टाके पुत्र वृत्रासुरका वध करके देवराज इन्द्रको पराधीन होकर बड़ा दुःख उठाना पड़ा था ॥ २१ ॥ जब मायाके बलसे मोहमें पड़कर पापभीरु मुनिगण भी पापकर्म करने लग जाते हैं। तब यदि मायाके वशीभूत होकर भगवान विष्णु और वज्रधारी इन्द्रने धोखा देकर त्रिशिरा और वृत्रासुरको मार डाला तो कौनसी आश्चर्यकी बात हो गयी ? ॥ २२ ॥ सतोगुणके मूर्तिमान् अवतार होते हुए भी भगवान विष्णुने मायासे मोहित होकर सदैव छलसे दैत्योंका

वध किया है। तब भला ऐसा कौन प्राणी होगा कि जो सब लोगोंको मोहमें डाल देनेवाली महामाया भगवती भवानीको अपने मनोबलसे जीतनेमें सफल हो सके ? ॥२३॥ उन्हीं भगवती महामायाकी प्रेरणासे भगवान अनन्त और नरके सखा नारायण हजारों युगोंसे संसारमें मत्स्य-कूर्म आदि योनियोंमें अवतार लेते आ रहे हैं। उन्हींके प्रेरणानुसार वे कभी शास्त्रके अनुकूल और कभी शास्त्र-प्रतिकूल कर्म किया करते हैं ॥२४॥ अत्यन्त बलवती मायाके फेरमें पड़कर सभी जीव विकल हो जाते हैं। 'यह मेरा शरीर है, यह मेरा धन है, मेरा घर-द्वार है, मेरे स्त्री-पुत्र हैं और भाई-बन्धु हैं' आदिके मोहमें पड़कर वे लोग कभी पुण्य और कभी पापकर्म कर गुजरते हैं ॥ २५ ॥ हे राजन् ! इस भूतलपर कार्य और कारणका विज्ञ कोई भी व्यक्ति मोहसे छुटकारा नहीं पा सकता। क्योंकि वह तो भगवती महामायाके सत्त्वादि तीनों गुणोंसे मोहित होकर सदा उन्हींके अधीन रहता है ॥२६॥ यही कारण है कि मायासे मोहित होकर भगवान विष्णु और इन्द्रने अपना स्वार्थ साधन करनेके लिए छलपूर्वक वृत्रासुरका वध किया था ॥ २७ ॥ हे पृथिवीपाल ! अब मैं वृत्रासुर तथा इन्द्रके पारस्परिक वैरका कारणसम्बन्धी वृत्तान्त

समस्तजनमोहकरीं भवानीम् ॥ २३ ॥ मत्स्यादियोनिषु सहस्रयुगेषु सद्यः साक्षाद्भवत्यपि यया विनियोजितोऽत्र ॥ नारायणो नरसखो भगवाननंतः कार्यं करोति विहिताविहितं कदाचित् ॥२४॥ देहं धनं गृहमिदं स्वजना मदीयाः पुत्राः कलत्रमिति मोहमुपेत्य सर्वः ॥ पुण्यं करोत्यथ च पापचयं करोति मायागुणैरतिबलैर्विकलीकृतो यत् ॥ २५ ॥ न जातु मोहं क्षपितुं नरः क्षमः कश्चिद्भवेद्भूप परावरार्थवित् ॥ विमोहितस्तैस्त्रिभिरेव मूलतो वशीकृतात्मा जगतीतले भृशम् ॥ २६ ॥ अथ तौ मायया विष्णुवासवौ मोहितौ भृशम् ॥ जघ्नतुश्छद्मना वृत्रं स्वार्थसाधनतत्परौ ॥ २७ ॥ तदहं संप्रवक्ष्यामि वृत्तांतमवनीपते ॥ कारणं पूर्ववैरस्य वृत्रवासवयोर्मिथः ॥ २८ ॥ त्वष्टा प्रजापतिर्ह्यासीद्देवश्रेष्ठो महातपाः ॥ देवानां कार्यकर्ता च निपुणो ब्राह्मणप्रियः ॥ २९ ॥ स पुत्रं वै त्रिशिरसमिन्द्रद्वेषात्किलासृजत् ॥ विश्वरूपेति विख्यातं नाम्ना रूपेण मोहनम् ॥ ३० ॥ त्रिभिः स वदनैः श्रेष्ठैर्व्यरोचत मनोहरैः ॥ त्रिभिर्भिन्नानि कार्याणि मुखैः समकरोन्मुनिः ॥३१॥ वेदानेकेन सोऽधीते सुरां चैकेन सोऽपिबत् ॥ तृतीयेन दिशः सर्वा युगपच्च निरीक्षते ॥ ३२ ॥ त्रिशिरा भोगमुत्सृज्य तपश्चक्रे सुदुष्करम् ॥ तपस्वी स मृदुर्दांतो धर्ममेव समाश्रितः ॥ ३३ ॥ पंचाग्निसाधनं काले पादपाग्रे निवेशनम् ॥ जलमध्ये निवासं च हेमंते शिशिरे तथा ॥ ३४ ॥ निराहारो जितात्माऽसौ त्यक्तसर्वपरिग्रहः ॥ तपश्चचार मेधावी दुष्करं

बता रहा हूँ ॥२८॥ देवताओंमें श्रेष्ठ त्वष्टा प्रजापति महान् तपस्वी, ब्राह्मणोंके प्रिय और देवताओंके निपुण कार्यकर्ता थे ॥ २९ ॥ वे सदा इन्द्रसे द्वेषभाव रखते थे। अतएव उन्होंने तीन मस्तकोंवाला एक बहुत ही सुन्दर पुत्र उत्पन्न किया। जिसका नाम था—विश्वरूप ॥ ३० ॥ वह अपने परम मनोहर तीन मुखोंसे बड़ा भव्य दीखता था। वह अपने उन तीनों मुखोंसे भिन्न-भिन्न तीन कार्य एक साथ करता था ॥ ३१ ॥ उसका एक मुख वेद पढ़ता था। दूसरा मद्यपान करता था। तीसरा मुख सब दिशाओंको एक साथ देखता था ॥३२॥ बादमें उस त्रिशिराने सब भोगोंको ठुकरा दिया और परम मृदु, संयमी तथा धर्मपरायण होकर वह कठोर तप करने लगा ॥ ३३ ॥ वह गर्मियोंमें पञ्चाग्नि तापता, बरसातमें वृक्षकी डालियोंपर पैर बाँधकर उलटा लटका रहता और हेमन्त तथा शरद् ऋतु आनेपर जलमें खड़े-खड़े तप किया करता था ॥ ३४ ॥ उसने आहार त्याग दिया, आत्मा (मन) को जीत लिया और सभी वासनाओंको ठुकरा

लटका रहता और हेमन्त तथा शरद् ऋतु आनेपर जलमें खड़े-खड़े तप किया करता था ॥ ३४ ॥ उसने आहार त्याग दिया, आत्मा (मन) को जीत लिया और सभी वासनाओंको ठुकरा

दिया । ऐसा करके उस बुद्धिमान् दैत्यने इस प्रकार कठोर तप किया, जैसा कि मन्दबुद्धि प्राणी नहीं ही कर सकते थे ॥३५॥ उसे ऐसी तपस्या करते देखकर इन्द्र बहुत खिन्न हुए। उन्हें यह सोचकर बड़ा विषाद हुआ कि यह कहीं इन्द्र न बन जाय ॥३६॥ उस अमित तेजस्वी विश्वरूपका तप, पराक्रम और सत्य देखकर देवराज सदा चिन्तित रहने लगे ॥३७॥ उन्होंने सोचा कि त्रिशिराके गुण उत्तरोत्तर बढ़ते जा रहे हैं। ज्यादा आगे बढ़कर सम्भव है कि यह किसी दिन हमींको समाप्त कर दे। इसीसे नीतिज्ञ विद्वानोंका कथन है कि जब शत्रुका बल बढ़ रहा हो तो उसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए ॥ ३८ ॥ अतएव अब इसकी तपस्या भंग करनेका कोई उपाय करना आवश्यक है। सो कामदेव तपका शत्रु है और कामसे ही तप क्षीण होता है ॥ ३९ ॥ अब मुझे कोई ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि जिससे यह तप त्यागकर भोगमें आसक्त हो जाय। बल दैत्यके नाशक इन्द्रने ऐसा विचार करके उर्वशी, मेनका, रम्भा, घृताची और तिलोत्तमा आदि अप्सराओंको त्वष्टाके पुत्र विश्वरूपको प्रलोभनमें डालनेकी आज्ञा दी ॥ ४० ॥ ४१ ॥ अपने रूपपर गर्व करनेवाली अप्सराओंको बुलाकर इन्द्रने कहा कि इस समय

मंदबुद्धिभिः ॥ ३५ ॥ तं च दृष्ट्वा तपस्यंतं खेदमाप शचीपतिः ॥ विषादमगमत्तत्र शक्रोऽयं मास्मभूदिति ॥ ३६ ॥ दृष्ट्वा तस्य तपोवीर्यं सत्यं चामिततेजसः ॥ चिंतां च महतीं प्राप ह्यनिशं पाकशासनः ॥ ३७ ॥ विवर्धमानस्त्रिशिरा मामयं शातयिष्यति ॥ नोपेक्ष्यः सर्वथा शत्रुर्वर्धमानबलो बुधैः ॥ ३८ ॥ तस्मादुपायः कर्तव्यस्तपोनाशाय सांप्रतम् ॥ कामस्तु तपसां शत्रुः कामान्नश्यति वै तपः ॥ ३९ ॥ तथैवात्र प्रकर्तव्यं भोगासक्तो भवेद्यथा ॥ इति संचिंत्य मनसा बुद्धिमान्बलमर्दनः ॥ ४० ॥ आज्ञापयत्सोऽप्सरसस्त्वाष्ट्रपुत्रप्रलोभने ॥ उर्वशीं मेनकां रंभां घृताचीं च तिलोत्तमाम् ॥ ४१ ॥ समाहूयाब्रवीच्छक्रस्तास्तदा रूपगर्विताः ॥ प्रियं कुरुध्वं मे सर्वाः कार्येऽद्य समुपस्थिते ॥ ४२ ॥ यत्तो मेऽद्य महाञ्छत्रुस्तपस्तपति दुर्जयः ॥ कार्यं कुरुत गच्छध्वं प्रलोभयत माचिरम् ॥ ४३ ॥ शृंगारवेषैर्विविधैर्हावैर्देहसमुद्भवैः ॥ प्रलोभयत भद्रं वः शमयध्वं ज्वरं मम ॥ ४४ ॥ अस्वस्थोऽहं महाभागास्तस्य ज्ञात्वा तपोबलम् ॥ बलवानासनं मेऽद्य ग्रहीष्यत्यविलंबितः ॥ ४५ ॥ भयं मे समुपायातं क्षिप्रं नाशयताबलाः ॥ उपकुर्वन्तु सहिताः कार्येऽद्य समुपस्थिते ॥ ४६ ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं नार्य ऊचुस्तं प्रणताः पुरः ॥ मा भयं कुरु देवेश यतिष्यामः प्रलोभने ॥ ४७ ॥ यथा न स्याद्भयं तस्मात्तथा कार्यं महाद्युते ॥ नृत्यगीतविहारैश्च मुनेस्तस्य प्रलोभने ॥ ४८ ॥ कटाक्षैरंगभेदैश्च मोहयित्वा मुनिं विभो ॥ लोलुपं

मेरा एक बहुत आवश्यक कार्य आ पड़ा है। उसे तुम लोग पूरा कर दो ॥४२॥ कार्य यह है कि हमारा बहुत बड़ा शत्रु तप कर रहा है। सो तुम लोग तत्काल उसे मोहमें डालकर उसका तप भंग कर दो ॥४३॥ तुम खूब सुन्दर शृंगार करके उसके पास जाओ और विविध प्रकारके शारीरिक हाव-भाव दिखाकर उसे अपनेपर आसक्त कर दो। ऐसा करनेसे मेरा मानसिक सन्ताप दूर हो जायगा और तुम्हारा कल्याण होगा ॥४४॥ हे महाभागाओ ! उसके तपोबलको जानकर मैं विकल हो उठा हूँ। मुझे भय है कि वह बलवान् शीघ्र मेरा आसन छीन लेगा ॥४५॥ हे अबलाओ ! मुझे यही भय है। इसे तुम शीघ्र नष्ट कर दो। यह विकट कार्य पूरा करके तुम मेरा उपकार करो ॥ ४६ ॥ देवराजके वचन सुनकर उन नारियोंने बड़े विनीत भावसे कहा—हे देवेश ! आप तनिक भी न डरें। हम उसे तपोभ्रष्ट करनेका पूर्ण प्रयत्न करेंगी ॥ ४७ ॥ हे महातेजस्विन् ! जिस तरह आपका भय दूर होगा, हम वैसा ही करेंगी ॥ ४८ ॥

नृत्य, गीत तथा विहार जिस किसी भी तरह वह मोहित हो सकेगा, हम वही करेंगी। कटाक्षपात तथा शरीरकी लचकसे हम उस मुनिको अपनेपर आसक्त कर लेंगी और वह हमारे फन्देसे बाहर न जा सकेगा ॥ ४९ ॥ व्यासजी बोले—हे राजन्! इन्द्रसे ऐसा कहकर वे अप्सरायें त्रिशिराके पास गयीं और कामशास्त्रमें कहे हुए नाना प्रकारके हाव-भाव प्रदर्शित करने लगीं ॥ ५० ॥ उस मुनिके समक्ष वे कभी मधुर स्वरमें गातीं और कभी विविध तालोंपर नाचने लगती थीं। उसे मोहित करनेके लिए वे तरह-तरहके भाव दिखलाने लगीं ॥ ५१ ॥ किन्तु उस तपस्वीने उनकी ओर आँखें उठाकर देखा भी नहीं। वह अपनी इन्द्रियोंको वशमें करके गूँगे, अन्धे और बहरेकी तरह चुपचाप ध्यानमग्न होकर बैठा रहा ॥ ५२ ॥ इस प्रकार मोहमें डालनेवाले नृत्य-गान आदि करती हुई वे वारांगनायें कुछ दिन उस मुनिके सुन्दर आश्रममें रहीं ॥ ५३ ॥ लेकिन यह सब करनेपर भी मुनि त्रिशिरा ध्यानसे विचलित नहीं हुआ। तब वे सभी नारियाँ इन्द्रके पास लौट गयीं ॥ ५४ ॥ वे थकी हुई थीं। उनके चेहरेसे दीनता टपक रही थी। वे भयभीत थीं और उनका मुख उदास हो गया था। उन्होंने हाथ जोड़कर इन्द्रसे

वशमस्माकं करिष्यामो नियंत्रितम् ॥ ४९ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्याभाष्य हरिं नार्यो ययुस्त्रिशिरसोऽन्तिकम् ॥ कुर्वत्यो विविधान्भावान्कामशास्त्रोचितानपि ॥ ५० ॥ गायंत्यस्तालभेदैस्ता नृत्यंत्यः पुरतो मुनेः ॥ तं प्रलोभयितुं चक्रुर्नानाभावान्वरांगनाः ॥५१॥ नापश्यत्स तपोराशिरंगनानां विडंबनम् ॥ इन्द्रियाणि वशे कृत्वा मूकांधबधिरः स्थितः ॥ ५२ ॥ दिनानि कतिचित्तस्थुर्नार्यस्तस्याश्रमे वरे ॥ कुर्वत्यो गाननृत्यादि प्रपंचानतिमोहदान् ॥ ५३ ॥ न चचाल यदा कामं ध्यानाच्च त्रिशिरा मुनिः ॥ परावृत्य तदा देव्यः पुनः शक्रमुपस्थिताः ॥ ५४ ॥ कृतांजलिपुटाः सर्वा देवराजमथाब्रुवन् ॥ श्रांता दीना भयत्रस्ता विवर्णवदना भृशम् ॥ ५५ ॥ देवदेव महाराज यत्नश्च परमः कृतः ॥ न स शक्यो दुराधर्षो धैर्याच्चालयितुं विभो ॥ ५६ ॥ उपायोऽन्यः प्रकर्तव्यः सर्वथा पाकशासन ॥ नास्माकं बलमेतस्मिंस्तापसे विजितेंद्रिये ॥ ५७ ॥ दिष्ट्या वयं न शप्ताः स्म यदनेन महात्मना ॥ मुनिना वह्नितुल्येन तपसा द्योतितेन हि ॥ ५८ ॥ विसृज्याप्सरसः शक्रश्चिंतयामास मन्दधीः ॥ तस्यैव च वधोपायं पापबुद्धिरसांप्रतम् ॥ ५९ ॥ विसृज्य लोकलज्जां स तथा पापभयं भृशम् ॥ चकार पापबुद्धिं तु तद्वधाय महीपते ॥ ६० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

कहा—हे देवदेव! हे महाराज! हे विभो! हमने बहुत प्रयत्न किया। किन्तु उस दुर्धर्ष मुनिको हम धैर्यसे विचलित नहीं कर सकीं ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ हे पाकशासन! अब आप कोई दूसरा उपाय करिए। उस संयमी तापसपर हमारा बल कुछ काम नहीं कर सका ॥ ५७ ॥ अग्निके समान तेजस्वी और तपस्यासे जाज्वल्यमान उस मुनिने हमें शाप नहीं दे दिया। यही हमारा बड़ा भाग्य था ॥ ५८ ॥ तब उन अप्सराओंको विदा करके क्षुद्रबुद्धि इन्द्र त्रिशिराके वध करनेका उपाय सोचने लगे। क्योंकि उनके मनमें पाप समा गया था ॥ ५९ हे राजन्! स्वार्थवश उन्होंने लोकलाज और पापके भयको भी भुला दिया और त्रिशिराको मारनेके लिए पापबुद्धिका अवलम्बन किया ॥ ६० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे पाण्डेय रामनेत्रतात्त्विकतायां 'सीताम्बर' भाषाटीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

(इन्द्र द्वारा त्रिशिराका वध) व्यासजी बोले—हे महाराज ! इन्द्रासनके लोभवश पापबुद्धि देवराज इन्द्र उस मुनिको मारनेका निश्चय करके अपने ऐरावतपर सवार होकर उस स्थानपर गये, जहाँ त्रिशिरा तप कर रहा था। उन्होंने वहाँ देखा कि मुनि त्रिशिरा दृढ़ आसनसे बैठे हुए हैं। उन्होंने वाणीको अपने वशमें कर लिया है और पूर्ण समाधिस्थ हैं। उनका तेज सूर्य और चन्द्रमाके समान देदीप्यमान था। उन्हें देखकर इन्द्र बड़े असमंजसमें पड़ गये ॥१॥२॥ उन्होंने सोचा—अहो ! ये मुनिराज तो बड़े निर्मल स्वभावके हैं। इन्हें मैं कैसे मारूँ ? किन्तु नहीं, इनका तपोबल बराबर बढ़ता जा रहा है। ये मेरे इन्द्रासनको छीनना चाहते हैं। तब ऐसे शत्रुको मैं कैसे छोड़ सकता हूँ ? ॥ ३ ॥ देवसङ्घके अधिनायक इन्द्रने ऐसा विचार करके तपस्यामें संलग्न और सूर्य-चन्द्रमाके समान तेजस्वी त्रिशिरा मुनिके ऊपर अपना द्रुतगामी और अमोघ वज्र चला दिया ॥४॥ उस आघातसे तपस्वी त्रिशिरा वैसे ही घायल होकर गिर पड़े और मर

॥ व्यास उवाच ॥ अथ स लोभमुपेत्य सुराधिपः समधिगम्य गजासनसंस्थितः ॥ त्रिशिरसं प्रति दुष्टमतिस्तदा मुनिमपश्यदमेयपराक्रमम् ॥१॥ तमभिवीक्ष्य दृढासनसंस्थितं जितगिरं सुसमाधिवशं गतम् ॥ रविविभावसुसन्निभमोजसा सुरपतिः परमापदमभ्यगात् ॥ २ ॥ कथमसौ विनिहंतुमहो मया मुनिरपापमतिः किल संमतः ॥ रिपुरयं सुसमिद्धतपोबलः कथमुपेक्ष्य इहासनकामुकः ॥ ३ ॥ इति विचिंत्य पविं परमायुधं प्रतिमुमोच मुनिं तपसि स्थितम् ॥ शशिदिवाकरसन्निभमाशुगं त्रिशिरसं सुरसंघपतिः स्वयम् ॥ ४ ॥ तदभिघातहतः स धरातले किल पपात ममार च तापसः ॥ शिखरिणः शिखरं कुलिशार्दितं निपतितं भुवि चाद्भुतदर्शनम् ॥ ५ ॥ तं निहत्य मुदमाप सुरेशश्चुक्रुशुश्च मुनयस्तु संस्थिताः ॥ हा हतेति भृशमार्तनिस्वनाः किं कृतं शतमखेन पापिना ॥ ६ ॥ विनापराधं तपसां निधिर्हतः शचीपतिः पापमतिर्दुरात्मा ॥ फलं किलायं तरसा कृतस्य प्राप्नोतु पापी हननोद्भवस्य ॥७॥ तं निहत्य तरसा सुरराजो निर्जगाम निजमंदिरमाशु ॥ स हतोऽपि विरराज महात्मा जीवमान इव तेजसां निधिः ॥ ८ ॥ तं दृष्ट्वा पतितं भूमौ जीवंतमिव वृत्रहा ॥ चिंतामापातिखिन्नांगः किं वा जीवेदयं पुनः ॥ ९ ॥ विमृश्य मनसाऽतीव तक्षाणं पुरतः स्थितम् ॥ मघवा वीक्ष्य तं प्राह स्वकार्यसदृशं वचः ॥ १० ॥ तक्षंश्छिंधि शिरांस्यस्य कुरुष्व वचनं मम ॥ मा जीवतु

गये। जैसे पूर्वकालमें इन्द्रके वज्रप्रहारसे बड़े-बड़े पर्वत चूर्ण हो गये थे ॥ ५ ॥ उसी प्रकार उन्हें मारकर इन्द्र तो प्रसन्न हुए। किन्तु मुनि त्रिशिराके आस-पास रहनेवाले मुनि आर्त स्वरसे हाहाकार करके चिल्लाते हुए कहने लगे कि पापी इन्द्रने यह क्या कर डाला ? ॥ ६ ॥ इस तपोनिधिको पापी और दुष्ट इन्द्रने बिना किसी अपराधके मार डाला है। अतएव उस पापीको मुनिकी हत्याका फल शीघ्र मिलेगा ॥७॥ त्रिशिरा मुनिको मारकर इन्द्र तुरन्त अपने घर चले जानेको उद्यत हो गये। किन्तु वज्रके आघातसे मर जानेपर भी मुनि त्रिशिरा अपने शारीरिक तेजसे जीवित जैसे लग रहे थे ॥ ८ ॥ जमीनपर गिर जानेपर भी जीवित सदृश दीखते हुए त्रिशिराको देखकर इन्द्रको चिन्ता हुई कि यह कहीं फिर न जीवित हो जाय ॥ ९ ॥ अपने मनमें बड़ी देरतक विचार करनेके बाद सामने खड़े एक बढ़ईको देखकर इन्द्रने अपना काम बनानेके लिए कहा ॥१०॥ इन्द्र बोले—हे बढ़ई ! तुम मेरी बात मानकर इन मुनिका सिर काट लो। ये महातेजस्वी अभी जीवमान

जैसे दीखते हैं। किन्तु मैं नहीं चाहता कि ये जियें ॥ ११ ॥ यह वचन सुनकर धिक्कारते हुए उसने कहा। बढ़ई बोला--इसकी गर्दन बहुत मोटी है। वह मेरी कुल्हाड़ीसे न कट सकेगी ॥ १२ ॥ अतएव मैं यह पाप न करूँगा। आपने तो बड़ा भारी लोकनिंद्य और सत्पुरुषों द्वारा गर्हित पाप कर डाला है ॥ १३ ॥ एक तो मैं वैसे ही पापसे डरता हूँ। तिसपर भी मरे हुएको मैं क्यों मारूँ? ये मुनि तो आपके वज्रप्रहारसे ही मर गये है। अब इनका सिर काटनेसे क्या लाभ? ॥ १४ ॥ हे देवराज! अब आपको इनसे क्या भय है? यदि हो तो बताइए। इन्द्र बोले-इनका आकार अब भी बहुत निर्मल है और इनका शरीर सजीव जैसा लगता है ॥ १५ ॥ मुझे यही भय है कि मेरा शत्रु यह मुनि फिर न जी जाय। बढ़ईने कहा-हे विद्वन्! आपको क्रूर कर्म करते लज्जा नहीं आती? ॥ १६ ॥ इस ऋषिपुत्रकी हत्या करनेसे आपको ब्रह्महत्याके पापका भय नहीं है? इन्द्रने कहा- बादमें पापको नष्ट करनेके लिए मैं प्रायश्चित्त कर लूँगा

महातेजा भाति जीवन्निव स्वयम् ॥ ११ ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तस्य तक्षोवाच विगर्हयन् ॥ तक्षोवाच ॥ महास्कन्धो भृशं भाति परशुर्न तरिष्यति ॥ १२ ॥ ततो नाहं करिष्यामि कार्यमेतद्विगर्हितम् ॥ त्वया वै निंदितं कर्म कृतं सद्भिर्विगर्हितम् ॥ १३ ॥ अहं बिभेमि पापाद्वै मृतस्यैव च मारणे ॥ मृतोऽयं मुनिरस्त्येव शिरसः कृंतनेन किम् ॥ १४ ॥ भयं किं तेऽत्र संजातं पाकशासन कथ्यताम् ॥ इन्द्र उवाच ॥ सजीव इव देहोऽयमाभाति विशदाकृतिः ॥ १५ ॥ तस्माद्बिभेमि मा जीवेन्मुनिः शत्रुरयं मम ॥ तक्षोवाच ॥ नात्र किं त्रपसे विद्वन्क्रूरेणानेन कर्मणा ॥ १६ ॥ ऋषिपुत्रमिमं हत्वा ब्रह्महत्याभयं न किम् ॥ इन्द्र उवाच ॥ प्रायश्चित्तं करिष्यामि पश्चात्पापक्षयाय वै ॥ १७ ॥ शत्रुस्तु सर्वथा वध्यश्छलेनापि महामते ॥ तक्षोवाच ॥ त्वं लोभाभिहतः पापं करोषि मघवन्निह ॥ १८ ॥ तं विनाऽहं कथं पापं करोमि वद मे विभो ॥ इन्द्र उवाच ॥ मखेषु खलु भागं ते करिष्यामि सदैव हि ॥ १९ ॥ शिरः पशोस्तु ते भागं यज्ञे दास्यंति मानवाः ॥ शुल्केनानेन छिंधि त्वं शिरांस्यस्य कुरु प्रियम् ॥ २० ॥ व्यास उवाच ॥ एतच्छ्रुत्वा महेन्द्रस्य वचस्तक्षा मुदान्वितः ॥ कुठारेण शिरांस्यस्य चकर्त सुदृढेन हि ॥ २१ ॥ छिन्नानि त्रीणि शीर्षाणि पतितानि यदा भुवि ॥ तेभ्यस्तु पक्षिणः क्षिप्रं विनिष्पेतुः सहस्रशः ॥ २२ ॥ कलविंकास्तित्तिरयस्तथैव च कपिंजलाः ॥ पृथक्पृथग्विनिष्पेतुर्मुखतस्तरसा तदा ॥ २३ ॥ येन वेदानधीतेस्म सोमं च पिबते तथा ॥ तस्माद्वक्त्रात्किलोत्पेतुः सद्य एव कपिंजलाः ॥ २४ ॥ येन सर्वा

॥१७॥ हे महामते! छल करके भी शत्रुका वध कर देना चाहिए। बढ़ई बोला-हे इन्द्र! आप तो लोभके वशीभूत होकर यह पाप कर रहे हैं॥१८॥ किन्तु इनका सिर काटनेसे मुझे क्या लाभ होगा कि जिसके लिये मैं व्यर्थ पाप करूँ। इन्द्रने कहा--मैं यज्ञोंमें सदाके लिए तुम्हारे भागकी व्यवस्था कर दूँगा ॥१९॥ अबसे पशुयागमें सब मनुष्य पशुका मस्तक तुम्हें दे देंगे। इस पुरस्कारके बदलेमें इसका सिर काटकर तुम मेरा प्रिय काम कर दो ॥ २० ॥ व्यासजी बोले--देवराज इन्द्रका वचन सुनकर बढ़ईने सहर्ष अपनी मजबूत कुल्हाड़ीसे त्रिशिराके मस्तक काटकर धड़से अलग कर दिये ॥ २१ ॥ उसके तीनों मस्तक कटकर धरतीपर गिरे, तैसे ही उनमेंसे हजारों पक्षी एक साथ निकल पड़े॥ २२ ॥ कलविङ्क (गौरैया), तित्तिर और कपिञ्जल (बया) ये तीन जातिके पक्षी उस मुनिके तीनों मुखसे निकले ॥ २३ ॥ त्रिशिरा जिस मुखसे वेदाध्ययन तथा सोमपान करता था, उस मुखसे तत्काल बहुतसे बया पक्षी निकल आये ॥२४॥ जिस

ये तीन जातिके पक्षी उस मुनिके तीनों मुखसे निकले ॥ २३ ॥ त्रिशिरा जिस मुखसे वेदाध्ययन तथा सोमपान करता था, उस मुखसे तत्काल बहुतसे बया पक्षी निकल आये ॥२४॥ जिस

मस्तकसे वह सब दिशाओंका निरीक्षण करता था, उस मुखसे अति तेजस्वी तीतर पक्षी निकले ॥ २५ ॥ हे राजन् ! जिस मुखसे वह मद्यपान करता था, उससे गौरैया पक्षी निकले ॥ २६ ॥ त्रिशिराके मुखोंसे विभिन्न पक्षियोंको निकलते देखकर इन्द्र मन ही मन बहुत प्रसन्न हुए और वहाँसे स्वर्गलोकको चले गये ॥ २७ ॥ इन्द्रके चले जानेपर बढ़ई भी शीघ्र अपने घरको चल पड़ा । हे राजन् ! श्रेष्ठ यज्ञभाग पाकर उस बढ़ईको बड़ी प्रसन्नता हुई ॥ २८ ॥ इस प्रकार शत्रुको मारकर इन्द्रने ब्रह्महत्याकी कुछ भी चिन्ता न करते हुए अपनेको कृतार्थ मान लिया ॥२९॥ अपने परम धर्मात्मा पुत्रके मरणका समाचार पाकर त्वष्टा (विश्वकर्मा) मन ही मन बहुत कुपित हुए और उन्होंने कहा—॥३०॥ इन्द्रने मेरे निरपराध पुत्र मुनि त्रिशिराको मार डाला है । अतएव इन्द्रका वध करनेके लिए मैं दूसरा पुत्र उत्पन्न करूँगा ॥ ३१ ॥ उन्होंने कहा—हे देवताओं ! आप सब मेरा पराक्रम और तपोबल देखें, वह पापी इन्द्र भी अपनी करनीका भयानक फल

दिशः कामं पिबन्निव निरीक्षते ॥ तस्मात्तु तित्तिरास्तत्र निःसृतास्तिग्मतेजसः ॥ २५ ॥ यत्सुरापं तु तद्वक्त्रं तस्मात्तु चटकाः किल ॥ विनिष्पेतुस्त्रिशिरस एवं ते विहगा नृप ॥ २६ ॥ एवं विनिःसृतान्दृष्ट्वा तेभ्यः शक्रस्तदाऽण्डजान् ॥ मुमोद मनसा राजञ्जगाम त्रिदिवं पुनः ॥ २७ ॥ गते शक्रे तु तक्षाऽपि स्वगृहं तरसा ययौ ॥ यज्ञभागं परं लब्ध्वा मुदमाप महीपते ॥ २८ ॥ इन्द्रोऽथ स्वगृहं गत्वा हत्वा शत्रुं महाबलम् ॥ मेने कृतार्थमात्मानं ब्रह्महत्यामचिंतयन् ॥ २९ ॥ तं श्रुत्वा निहतं त्वष्टा पुत्रं परमधार्मिकम् ॥ चुकोपातीव मनसा वचनं चेदमब्रवीत् ॥३०॥ अनागसं मुनिं यस्मात्पुत्रं निहतवान्मम ॥ तस्मादुत्पादयिष्यामि तद्वधार्थं सुतं पुनः ॥३१॥ सुराः पश्यंतु मे वीर्यं तपसश्च बलं तथा ॥ जानातु सर्वं पापात्मा स्वकृतस्य फलं महत् ॥ ३२ ॥ इत्युक्त्वाऽग्निं जुहावाथ मंत्रैराथर्वणोदितैः ॥ पुत्रस्योत्पादनार्थाय त्वष्टा क्रोधसमाकुलः ॥ ३३ ॥ कृते होमेऽष्टरात्रं तु संदीप्ताच्च विभावसोः ॥ प्रादुर्बभूव तरसा पुरुषः पावकोपमः ॥ ३४ ॥ तं दृष्ट्वाऽग्रे सुतं त्वष्टा तेजोबलसमन्वितम् ॥ वेगात्प्रकटितं वह्नेर्दीप्यमानमिवानलम् ॥ ३५ ॥ उवाच वचनं त्वष्टा सुतं वीक्ष्य पुरःस्थितम् ॥ इन्द्रशत्रो विवर्धस्व प्रतापात्तपसो मम ॥ ३६ ॥ इत्युक्ते वचने त्वष्टा क्रोधप्रज्वलितेन च ॥ सोऽवर्धत दिवं स्तब्ध्वा वैश्वानरसमद्युतिः ॥ ३७ ॥ जातः स पर्वताकारः कालमृत्युसमः स्वराट् ॥ किं करोमीति तं प्राह पितरं परमातुरम् ॥ ३८ ॥ कुरु मे नामकं नाथ कार्यं कथय सुव्रत ॥ चिन्तातुरोऽसि कस्मात्त्वं ब्रूहि मे शोककारणम् ॥३९॥ नाशयाम्यद्य ते शोकमिति

पायेगा ॥ ३२ ॥ तदनन्तर क्रोधसे व्याकुल त्वष्टा पुत्र उत्पन्न करनेके लिए अथर्ववेदोक्त मंत्रोंका उच्चारण करते हुए अग्निमें हवन करने लगे ॥ ३३ ॥ इस तरह लगातार आठ राततक हवन करनेके बाद उस प्रज्वलित अग्निसे सहसा एक पुरुष प्रगटा । जो अग्निके समान तेजस्वी था ॥ ३४ ॥ धधकती अग्निके समान तेजस्वी बलवान् और हवनकुण्डसे जायमान पुत्रको सम्मुख उपस्थित देखकर त्वष्टाने कहा—हे इन्द्रके शत्रु पुत्र ! तुम मेरे तपोबलसे शीघ्र बड़े हो जाओ ॥३५॥३६॥ क्रोधसे जाज्वल्यमान त्वष्टाके ऐसा कहते वह ही अग्निसदृश तेजस्वी पुत्र बढ़ने लगा । उसको बढ़ते देखकर सब देवता स्तब्ध हो गये ॥३७॥ कुछ ही क्षणोंमें बढ़ते-बढ़ते वह पुत्र पर्वताकार तथा विशालकाय होकर कालपुरुषके समान भयानक दीखने लगा । इसके बाद उसने अपने परम आतुर पितासे कहा—मैं क्या करूँ ? ॥ ३८ ॥ हे नाथ ! आप मेरा नामकरण करिए । हे सुव्रत ! शीघ्र मुझे काम बताइए । आप इतने चिन्तित क्यों हैं ? मुझे अपने शोकका

कारण बताइए ॥ ३९ ॥ जिससे मैं तत्काल आपका शोक दूर कर दूँ । मेरा यह दृढ़ संकल्प है । जिस पुत्रके रहते पिता दुखी रहे तो उस पुत्रसे क्या लाभ ? ॥ ४० ॥ आपकी आज्ञा पाते ही मैं समुद्र पी जाऊँगा और पर्वतोंको चूर-चूर कर दूँगा । प्रचण्ड तेजस्वी सूर्यका उदय भी मैं रोक दूँगा ॥ ४१ ॥ मैं यम आदि सब देवताओंके साथ इन्द्रको मार डालूँगा। आप कहें तो मैं सारी पृथिवी उठाकर समुद्रमें फेंक दूँ ॥ ४२ ॥ पुत्रके मधुर वचन सुनकर त्वष्टा बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने अपने उस पर्वताकार पुत्रसे कहा--॥ ४३ ॥ हे पुत्र ! तुम अभी वृजिन (कष्ट) से त्राण (रक्षा) करनेमें समर्थ हो । अतएव तुम्हारा 'वृत्र' यह नाम प्रसिद्ध होगा ॥ ४४ ॥ हे महाभाग ! तुम्हारे एक भाई त्रिशिरा नामके तपस्वी थे । उनके बड़े ही दृढ़ तीन मस्तक थे ॥ ४५ ॥ वे वेद-वेदान्तके मर्मज्ञ और सभी विद्याओंके ज्ञाता थे । इन दिनों वे इतनी उग्र तपस्यामें संलग्न थे कि जिसे देखकर तीनों लोकके प्राणी चकित हो गये थे ॥ ४६ ॥

मे व्रतमाहितम् ॥ तेन जातेन किं भूयः पिता भवति दुःखितः ॥ ४० ॥ पिबामि सागरं सद्यश्चूर्णयामि धराधरान् ॥ उद्यंतं वारयाम्यद्य तरणिं तिग्मतेजसम् ॥ ४१ ॥ हन्मीन्द्रं ससुरं सद्यो यमं वा देवतांतरम् ॥ क्षिपामि सागरे सर्वान्समुत्पाट्य च मेदिनीम् ॥ ४२ ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तस्य त्वष्टा पुत्रस्य पेशलम् ॥ प्रत्युवाचातिमुदितस्तं सुतं पर्वतोपमम् ॥ ४३ ॥ वृजिनात्त्रातुमधुना यस्माच्छक्तोऽसि पुत्रक ॥ तस्माद्वृत्र इति ख्यातं तव नाम भविष्यति ॥ ४४ ॥ भ्राता तव महाभाग त्रिशिरा नाम तापसः ॥ त्रीणि तस्य च शीर्षाणि ह्यभवन्वीर्यवंति च ॥ ४५ ॥ वेदवदांगतत्त्वज्ञः सर्वविद्याविशारदः ॥ संस्थितस्तपसि प्रायस्त्रिलोकीविस्मयप्रदे ॥४६॥ शक्रेण तु हतः सोऽद्य वज्राघातेन साम्प्रतम् ॥ विनाऽपराधं सहसा छिन्नानि मस्तकानि च ॥ ४७ ॥ तस्मात्त्वं पुरुषव्याघ्र जहि शक्रं कृतागसम् ॥ ब्रह्महत्यायुतं पापं निस्त्रपं दुर्मतिं शठम् ॥ ४८ ॥ इत्युक्त्वा च तदा त्वष्टा पुत्रशोकसमाकुलः ॥ आयुधानि च दिव्यानि चकार विविधानि च ॥ ४९ ॥ ददावस्मै सहस्राक्षवधाय प्रबलानि च ॥ खड्गशूलगदाशक्तितोमरप्रमुखानि वै ॥ ५० ॥ शार्ङ्गं धनुस्तथा बाणं परिघं पट्टिशं तथा ॥ चक्रं दिव्यं सहस्रारं सुदर्शनसमप्रभम् ॥ ५१ ॥ तूणीरौ चाक्षयौ दिव्यौ कवचं चातिसुंदरम् ॥ रथं मेघप्रतीकाशं दृढं भारसहं जवम् ॥५२॥ युद्धोपकरणं सर्वं कृत्वा पुत्राय पार्थिव ॥ दत्त्वाऽसौ प्रेरयामास त्वष्टा क्रोधसमन्वितः ॥ ५३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

बिना किसी अपराधके आज इन्द्रने उसे वज्रप्रहार करके मार डाला और उसके तीनों मस्तक काट लिये ॥ ४७ ॥ अतएव हे पुरुषश्रेष्ठ ! तुम उस पापी, ब्रह्मघाती, निर्लज्ज, कलुषितहृदय और शठ इन्द्रको मार डालो ॥ ४८ ॥ पुत्रशोकसे व्याकुल त्वष्टाने ऐसा कहकर विविध प्रकारके दिव्य शस्त्रास्त्रोंका निर्माण किया ॥ ४९ ॥ उन सभी शस्त्रास्त्रोंको इन्द्रका वध करनेके लिए उन्होंने वृत्रको दे दिया । उन शस्त्रोंमें ये थे-तलवार, त्रिशूल, गदा, बर्छी, गँड़ासा, सींगसे निर्मित्त धनुष, बाण, परिघ, पट्टिश और सुदर्शन जैसा तेजस्वी हजार धारवाला दिव्य चक्र, जिनमेंसे बाण कभी भी नहीं चुकते थे ऐसे दो तरकस, अतिशय सुन्दर कवच और मेघके सेमान श्यामवर्ण तथा तेज चलने और ज्यादा मार सहनेमें समर्थ रथ ॥ ५०-५२ ॥ हे राजा जनमेजय ! क्रोधसे व्याकुल त्वष्टाने इन युद्धसामग्रियोंको देकर इन्द्रका वध करनेके लिए वृत्रको उभाड़ा ॥ ५३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

(देवताओंके साथ वृत्रका युद्ध और इन्द्रकी पराजय) व्यासजी बोले—हे राजन् ! वेदपारंगत ब्राह्मणों द्वारा मांगलिक वेदमंत्रोंका पाठ कराके वृत्र रथपर सवार हुआ और इन्द्रको मारनेके लिए चला ॥ १ ॥ उसी समय पूर्वकालमें देवताओंसे पराजित क्रूर राक्षसगण वृत्रको महाबली जानकर उसकी सेवकाई करनेके लिए आ पहुँचे ॥ २ ॥ जब इन्द्रके दूतोंने देखा कि वृत्र आक्रमण कर देनेको उद्यत है । तब भाग करके वे इन्द्रके पास गये और उन्हें शत्रुपक्षकी गति-विधिका हाल बताया ॥ ३ ॥ दूतोंने कहा—हे स्वामिन् ! आपका बलवान् शत्रु रथपर सवार होकर शीघ्र यहाँ आ रहा है । क्रोधाभिभूत और पुत्रशोकसे सन्तप्त त्वष्टाने आपका विनाश करनेके लिए उसे आभिचारिकी क्रिया द्वारा उत्पन्न किया है । वह वृत्र बड़ा भयानक है और उसके साथ विशाल राक्षसी सेना भी है ॥ ४ ॥ ५ ॥ हे महाभाग ! सुमेरु और मन्दर पर्वतके समान विशालकाय और देखनेमें बड़ा भयानक वृत्र घोर गर्जन करता हुआ शीघ्र ही

॥ व्यास उवाच ॥ कृतस्वस्त्ययनो वृत्रो ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ॥ निर्जगाम रथारूढो हंतुं शक्रं महाबलः ॥ १ ॥ तदैव राक्षसाः क्रूराः पुरा देवपराजिताः ॥ समाजग्मुश्च सेवार्थं वृत्रं ज्ञात्वा महाबलम् ॥ २ ॥ इन्द्रदूतास्तु तं दृष्ट्वा युद्धाय तु समागतम् ॥ वेगादागत्य वृत्तांतं शशंसुस्तस्य चेष्टितम् ॥ ३ ॥ दूता ऊचुः ॥ स्वामिञ्छीघ्रमिहायाति वृत्रो नाम रिपुस्तव ॥ बलवान्स्यंदने रूढस्त्वष्ट्रा चोत्पादितः किल ॥ ४ ॥ अभिचारेण नाशार्थं तव क्रोधान्वितेन वै ॥ पुत्रघाताभितप्तेन दुःसहो राक्षसैर्युतः ॥ ५ ॥ यत्नं कुरु महाभाग शीघ्रमायाति सांप्रतम् ॥ मेरुमंदरसंकाशो घोरशब्दोऽतिदारुणः ॥ ६ ॥ एतस्मिन्नंतरे तत्र भीता देवगणा भृशम् ॥ आगत्योचुः सुरपतिं शृण्वंतं दूतभाषितम् ॥ ७ ॥ गणा ऊचुः ॥ मघवन्दुर्निमित्तानि भवंति त्रिदशालये ॥ बहूनि भयशंसीनि पक्षिणां विरुतानि च ॥ ८ ॥ काकगृध्रास्तथा श्येनाः कंकाद्या दारुणाः खगाः ॥ रुदंति विकृतैः शब्दैरुत्कारैर्भवनोपरि ॥ ९ ॥ चीचीकूचीति निनन्दान्कुर्वंति विहगा भृशम् ॥ वाहनानां च नेत्रेभ्यो जलधाराः पतंत्यधः ॥ १० ॥ श्रूयतेऽतिमहाञ्छब्दो रुदतीनां निशासु च ॥ राक्षसीनां महाभाग भवनोपरि दारुणः ॥ ११ ॥ प्रपतंति ध्वजास्तूर्णं विना वातेन मानद ॥ प्रभवंति महोत्पाता दिवि भूम्यंतरिक्षजाः ॥ १२ ॥ कृष्णांबरधरा नार्यो भ्रमंति च गृहे गृहे ॥ यांतु यांतु गृहात्तूर्णं कुर्वंत्यो विकृताननाः ॥ १३ ॥

आना चाहता है । अतएव अपने बचावके लिए कोई उपाय करिए ॥ ६ ॥ देवराज जब दूतोंकी बात सुन रहे थे । उसी समय बहुतेरे भयभीत देवता भी वहाँ जा पहुँचे ॥ ७ ॥ देवगण बोले—हे देवराज ! इस समय देवताओंके घरोंमें नाना प्रकारके अशकुन हो रहे हैं । पक्षियोंके बड़े ही डरावने शब्द सुनायी देते हैं ॥ ८ ॥ कौए, गिद्ध, बाज और चील आदि क्रूर पक्षी हमारे घरोंपर बैठकर बड़े करुण स्वरसे रोते हैं ॥ ९ ॥ अन्य पक्षी बारम्बार चीची-कूची जैसे शब्द कर रहे हैं । हाथी-घोड़े आदि वाहनोंकी आँखोंसे बराबर अश्रुधारा बह रही है ॥ १० ॥ हे महाभाग ! हमारे मकानोंके ऊपरी भागमें रात्रिके समय रोती हुई राक्षसियोंका बड़ा भीषण कोलाहल सुनायी देता है ॥ ११ ॥ हे मानद ! हवाके बिना ही ध्वजायें टूट-टूटकर गिर रही हैं । स्वर्ग, भूमि और आकाशमें बड़े-बड़े उत्पात होते दिखायी देते हैं ॥ १२ ॥ भयानक मुखवाली औरतें काले कपड़े पहनकर घर-घर घूमती हुई कहती हैं कि 'तुम लोग घरसे शीघ्र निकल

जाओ।' ॥ १३ ॥ रातको सोते समय स्त्रियाँ यह स्वप्न देखती हैं कि मानो राक्षसियाँ उनके केश नोचती और डराती हैं ॥ १४ ॥ हे देवराज ! इसी प्रकार भूकम्प और उल्कापात आदि उत्पात भी बराबर हो रहे हैं। सियारोंके झुण्ड हमारे घरोंके आँगनमें आ-आकर रोते हैं ॥ १५ ॥ घर-घरमें इस समय गिरगिटोंकी टोली घूमती दीखती है। हमारे अङ्ग इस प्रकार फड़कते हैं कि जिनसे किसी भावी अशुभकी सूचना मिलती है ॥ १६ ॥ व्यासजी बोले—उन देवताओंकी बात सुनकर इन्द्रको बड़ी चिन्ता हुई और उन्होंने तत्काल गुरु बृहस्पतिको बुलवाकर अपनी मानसिक अशान्तिका कारण पूछा ॥ १७ ॥ इन्द्रने कहा—हे ब्रह्मन् ! क्या कारण है कि ऐसे-ऐसे भयंकर अशकुन दिखायी देते हैं ? जैसे—अचानक आँधी-बवंडर उड़ते रहते हैं। आकाशसे उल्काओंकी वर्षा होती है ॥१८॥ हे महाभाग ! सर्वज्ञ होनेके कारण आप इन विघ्नोंको नष्ट करनेकी सामर्थ्य रखते हैं। आप बुद्धिमान्, शास्त्रोंके मर्मज्ञ और देवताओंके गुरु हैं। १९॥ अतएव

रात्रौ स्वप्नेषु कांतानां सुप्तानां निजमंदिरे ॥ केशाँल्लुनंति राक्षस्यो भीषयंत्यो भृशातुराः ॥ १४ ॥ एवंविधानि देवेश भूकंपोल्कादयस्तथा ॥ गोमायवो रुदंतिस्म निशायां भवनांगणे ॥ १५ ॥ सरटानां च जालानि प्रभवंति गृहे गृहे ॥ अंगप्रस्फुरणादीनि दुर्निमित्तानि सर्वशः ॥ १६ ॥ ॥ व्यास उवाच ॥ इति तेषां वचः श्रुत्वा चिंतामाप सुरेश्वरः ॥ बृहस्पतिं समाहूय पप्रच्छ च मनोगतम् ॥ १७ ॥ इन्द्र उवाच ॥ ब्रह्मन्किमुत घोराणि निमित्तानि भवंति वै ॥ वाताश्च दारुणा वांति प्रपतंत्युलकाः खतः ॥ १८ ॥ सर्वज्ञोऽसि महाभाग समर्थो विघ्ननाशने ॥ बुद्धिमाञ्छास्त्रतत्त्वज्ञो देवतानां गुरुस्तथा ॥१९॥ कुरु शांतिं विधानज्ञ शत्रुक्षयविधायिनीम् ॥ यथा मे न भवेद्दुःखं तथा कार्यं विधीयताम् ॥२०॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ किं करोमि सहस्राक्ष त्वयाऽद्य दुष्कृतं कृतम् ॥ अनागसं मुनिं हत्वा किं फलं समुपार्जितम् ॥ २१ ॥ अत्युग्रं पुण्यपापानां फलं भवति सत्वरम् ॥ विचार्य खलु कर्तव्यं कार्यं तद्भूतिमिच्छता ॥ २२ ॥ परोपतापनं कर्म न कर्तव्यं कदाचन ॥ न सुखं विंदते प्राणी परपीडापरायणः ॥ २३ ॥ मोहाल्लोभाद्ब्रह्महत्या कृता शक्र त्वयाऽधुना ॥ तस्य पापस्य सहसा फलमेतदुपागतम् ॥ २४ ॥ अवध्यः सर्वदेवानां जातोऽसौ वृत्रसंज्ञकः ॥ हंतुं त्वां स समायाति दानवैर्बहुभिर्वृतः ॥ २५ ॥ आयुधानि च सर्वाणि वज्रतुल्यानि वासव ॥ त्वष्ट्रा दत्तानि दिव्यानि गृहीत्वा समुपस्थितः ॥२६॥

हे विधानके ज्ञाता ! आप शान्तिके लिए कोई ऐसा अनुष्ठान करिए कि जिससे शत्रुओंका नाश हो और हमें दुःख न उठाना पड़े ॥ २० ॥ गुरु बृहस्पति बोले—हे सहस्राक्ष ! तुमने बहुत बड़ा पाप कर डाला है। उस निरपराध मुनिकी हत्या करके तुम्हें क्या मिला ? ॥२१॥ अपनी उन्नति चाहनेवालोंका यह कर्तव्य है कि समझकर कोई काम करे। क्योंकि प्राणीको अपने किये हुए उग्रपुण्य तथा पापका फल भोगना ही पड़ता है ॥२२॥ कोई ऐसा काम कदापि न करें कि जिससे किसीको कष्ट पहुँचे। क्योंकि औरोंको कष्ट देनेवाले प्राणियोंको कभी सुख नहीं मिलता ॥२३॥ हे इन्द्र ! तुमने मोह और लोभवश ब्रह्महत्या कर डाली है। उसीका फल सहसा आज हमारे सामने आ उपस्थित हुआ है ॥२४॥ जन्मसे ही वृत्र देवताओं द्वारा अवध्य है। इस समय वह बड़ी भारी दानवी सेनाके साथ तुम्हें मारने आ रहा है ॥२५॥ हे इन्द्र ! उसके सभी शस्त्रास्त्र तुम्हारे वज्रके समकक्ष हैं। वे सब दिव्य शस्त्रास्त्र त्वष्टाके दिये हुए हैं। उन्हींको लेकर वह चढ़ा आ रहा है ॥२६॥ वह प्रताप-

तुम्हें मारने आ रहा है ॥२५॥ हे इन्द्र ! उसके सभी शस्त्रास्त्र तुम्हारे वज्रके समकक्ष हैं । वे सब दिव्य शस्त्रास्त्र त्वष्टाके दिये हुए हैं । उन्हींको लेकर वह चढ़ा आ रहा है ॥२६॥ वह प्रताप-

वान् और दुर्धर्ष वीर वृत्रासुर रथपर बैठकर अब आने ही वाला है। हे देवेन्द्र! आप यदि प्रलयकाल उपस्थित कर दें, फिर भी वह न मरेगा ॥२७॥ बृहस्पति ऐसा कह ही रहे थे कि उसी समय स्वर्गमें घोर हाहाकार मच गया। जिससे गन्धर्व, किन्नर, यक्ष, मुनि, तपस्वी और सभी देवता अपना-अपना घर छोड़कर भाग गये । यह आश्चर्यजनक घटना घटती देखकर इन्द्र घबड़ा उठे ॥ २८ ॥ २९ ॥ तब उन्होंने अपने सेवकोंको सेना जुटानेकी आज्ञा दी और कहा—वसुओं, रुद्रों, अश्विनीकुमारों, आदित्यों, पूषा, आदित्य, भग, वायु, वरुण और यम ये सभी प्रमुख देवता अपने-अपने शस्त्रास्त्र ले तथा विमानोंपर सवार होकर शीघ्र यहाँ आ जायँ । क्योंकि शत्रु बड़े वेगसे चढ़ा चला आ रहा है। सेवकोंको ऐसा आदेश देकर इन्द्र अपने गजराज ऐरावतपर सवार हो गये ॥ ३०–३२ ॥ तब पुरोहित देवगुरु बृहस्पतिको आगे करके वे अपने भवनसे बाहर निकले । अन्य देवता भी अपने-अपने वाहनोंपर सवार होकर वहाँ आ पहुँचे ॥ ३३ ॥

समागच्छति दुर्धर्षो रथारूढः प्रतापवान् ॥ देवेन्द्र प्रलयं कुर्वन्नास्य मृत्युर्भविष्यति ॥ २७ ॥ कोलाहलस्तदा जातस्तथा ब्रुवति वाक्पतौ ॥ गंधर्वाः किन्नरा यक्षा मुनयश्च तपोधनाः ॥ २८ ॥ सदनानि विहायैवामराः सर्वे पलायिताः ॥ तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यं शक्रश्चिंतापरायणः ॥२९॥ आज्ञापयामास तदा सेनोद्योगाय सेवकान् ॥ आनयध्वं वसून्रुद्रानश्विनौ च दिवाकरान् ॥ ३० ॥ पूषणं च भगं वायुं कुबेरं वरुणं यमम् ॥ विमानेषु समारुह्य सायुधाः सुरसत्तमाः ॥ ३१ ॥ समागच्छंतु तरसा शत्रुरायाति सांप्रतम् ॥ इत्याज्ञाप्य सुरपतिः समारुह्य गजोत्तमम् ॥ ३२ ॥ बृहस्पतिं पुरोधाय निर्गतो निजमंदिरात् ॥ तथैव त्रिदशाः सर्वे स्वं स्वं वाहनमास्थिताः ॥३३॥ युद्धाय कृतसंकल्पा निर्ययुः शस्त्रपाणयः ॥ वृत्रोऽथ दानवैर्युक्तः संप्राप्तो मानसोत्तरम् ॥ ३४ ॥ पर्वतं देवतावासं रम्यं पादपशोभितम् ॥ इन्द्रोऽप्यागत्य संग्रामं चकार मानसोत्तरे ॥ ३५ ॥ पर्वते देवतायुक्तो वाचस्पतिपरःसरः ॥ तत्राभूद्दारुणं युद्धं वृत्रवासवयोस्तदा ॥ ३६ ॥ गदासिपरिघैः पाशैर्बाणैः शक्तिपरश्वधैः ॥ मानुषेण प्रमाणेन संग्रामः शरदां शतम् ॥ ३७ ॥ बभूव भयदो नृणामृषीणां भावितात्मनाम् ॥ वरुणः प्रथमं भग्नस्ततो वायुगणः किल ॥ ३८ ॥ यमो विभावसुः शक्रः सर्वे ते निर्गता रणात् ॥ पलायनपरान्दृष्ट्वा देवानिन्द्रपुरोगमान् ॥३९॥ वृत्रोऽपि पितरं प्रागादाश्रमस्थं मुदान्वितम् प्रणम्य प्राह त्वष्टारं पितः कार्यं मया

युद्धका संकल्प करके हाथोंमें शस्त्र धारण किये हुए वे सब देवता अपनी-अपनी राजधानीसे चल पड़े । उधर वृत्र भी विशाल दानवी सेनाके साथ मानसरोवरके उत्तरी तटपर आ गया ॥३४॥ उस पर्वतपर देवताओंकी आबादी थी । अतएव वह प्रदेश बड़ा रमणीक था और सुन्दर वृक्षोंकी पंक्तियाँ सुशोभित थीं । देवराजने वहीं पड़ाव डाल दिया । उस स्थानपर वृत्र और इन्द्रमें भयानक युद्ध हुआ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ गदा, तलवार, परिघ, पाश, बाण, बर्छी और फरसे आदि शस्त्रोंके द्वारा वह युद्ध मानव गणनाके अनुसार पूरे सौ वर्षतक चला ॥ ३७ ॥ वह भीषण युद्ध देखकर मनुष्यों और भावुक हृदय ऋषियोंपर आतंक छा गया । उस युद्धमें सर्वप्रथम वरुण और उसके बाद वायुगणके पैर उखड़े और वे निकल भागे ॥ ३८ ॥ तदनन्तर यमराज, अग्नि और इन्द्र आदि सभी सेनानायक भाग खड़े हुए । इन्द्र आदि देवताओंको भागते देखकर वृत्र भी आश्रमवासी तथा प्रसन्नचित्त अपने पिताके पास गया और कहा—हे पिताजी ! मैंने

आपकी आज्ञाका पालन कर दिया ॥३९॥४०॥ समरभूमिमें आये हुए इन्द्र आदि सभी देवता मुझसे पराजित होकर उसी प्रकार भाग गये, जैसे सिंहके डरसे मृग और हाथी भाग जाते हैं॥४१॥ इन्द्र तो पैदलही रणभूमिसे भाग गये और उनका गजराज ऐरावत मैं पकड़ लाया हूँ। हे भगवन्! उस श्रेष्ठ हाथीको अब आप स्वीकार करें ॥४२॥ मैंने उन भगोड़े देवताओंको इस लिए नहीं मारा कि डरसे भागते हुएको मारना अनुचित था। हे पिताजी! अब आज्ञा दीजिए कि मैं आपकी और कौनसी अभिलाषा पूर्ण करूँ ॥४३॥ सब देवता भयभीत हो तथा युद्धके परिश्रमसे थककर भाग गये। इन्द्र भी मारे डरके ऐरावत त्यागकर निकल भागे ॥ ४४ ॥ व्यासजी बोले—अपने पुत्र वृत्रके वचन सुने तो त्वष्टाने बहुत हर्षित होकर कहा—आज मैं अपनेको पुत्रवान् समझ रहा हूँ। मेरा जीवन सफल हो गया ॥ ४५ ॥ हे पुत्र! तुमने मुझे पवित्र कर दिया। मेरी मानसिक व्यथा मिट गयी और तुम्हारा अद्भुत पराक्रम देखकर मेरा मन शान्त तथा

कृतम् ॥४०॥ देवा विनिर्जिताः सर्वे सेन्द्राः समरसंस्थिताः ॥ विद्रुतास्ते गताः स्थानं यथा सिंहान्मृगा गजाः ॥४१॥ इन्द्रः पदातिरगमन्मयाऽऽनीतो गजोत्तमः ॥ ऐरावतोऽयं भगवन्गृहाण द्विरदोत्तमम् ॥ ४२ ॥ न हतास्ते मया यस्मादयुक्तं भीतमारणम् ॥ आज्ञापय पुनस्तात किं करोमि तवेप्सितम् ॥ ४३ ॥ निर्जरा निर्गताः सर्वे भयभीताः श्रमातुराः ॥ इन्द्रोऽप्यैरावतं त्यक्त्वा भयभीतः पलायितः ॥ ४४ ॥ व्यास उवाच ॥ इति पुत्रवचः श्रुत्वा त्वष्टा प्राह मुदान्वितः ॥ पुत्रवानद्य जातोऽस्मि सफलं मम जीवितम् ॥ ४५ ॥ त्वयाऽहं पावितः पुत्र गतो मे मानसो ज्वरः ॥ निश्चलं मे मनो जातं दृष्ट्वा वीर्यं तवाद्भुतम् ॥४६॥ शृणु वक्ष्याम्यहं पुत्र हितं तेऽद्य निशामय ॥ तपः कुरु महाभाग सावधानः स्थिरासनः ॥ ४७ ॥ विश्वासो नैव कर्तव्यः केषांचित्पाकशासनः ॥ शत्रुस्ते छलकर्ताऽस्ति नानाभेदविशारदः ॥ ४८ ॥ तपसा प्राप्यते लक्ष्मीस्तपसा राज्यमुत्तमम् ॥ तपसा बलवृद्धिः स्यात्संग्रामे विजयस्तथा ॥ ४९ ॥ आराध्य द्रुहिणं देवं लब्ध्वा वरमनुत्तमम् ॥ जहि शक्रं दुराचारं ब्रह्महत्यासमावृतम् ॥ ५० ॥ सावधानः स्थिरो भूत्वा दातारं भज शंकरम् ॥ वांछितं स वरं दद्यात्संतुष्टश्चतुराननः ॥ ५१ ॥ तोषयित्वा विश्वयोनिं ब्रह्माणममितौजसम् ॥ अविनाशित्वमासाद्य जहि शक्रं कृतागसम् ॥५२॥ वैरं मनसि मे पुत्र वर्तते सुतघातजम् ॥ न शांतिमनुगच्छामि न स्वपामि सुखेन ह ॥ ५३ ॥

निश्चल हो गया ॥ ४६ ॥ हे पुत्र! अब मैं तुम्हारे हितकी बात बता रहा हूँ। उसे ध्यानसे सुनो। हे महाभाग! अब तुम पूर्ण सावधानीके साथ दृढ़ आसनसे बैठकर तप करो ॥ ४७ ॥ तुम किसीपर विश्वास मत करना। क्योंकि छलिया तथा भेदनीतिमें पूर्ण निपुण इन्द्र अभी भी जीवित है ॥ ४८ ॥ तपसे लक्ष्मी मिलती है, तपसे उत्तम राज्य प्राप्त होता है, तपसे बल बढ़ता है और तपसे ही संग्राममें विजय प्राप्त होती है ॥ ४९ ॥ तपस्या द्वारा ब्रह्माजीकी आराधना करके उनसे उत्तम वर प्राप्त करो और उस दुराचारी तथा ब्राह्मणके हत्यारे इन्द्रको मार डालो ॥ ५० ॥ जब तुम सावधान होकर दृढ़ आसनसे ब्रह्माजीकी आराधना करोगे तो चार मुखवाले ब्रह्माजी प्रसन्न होकर तुम्हें अभिलषित वरदान देंगे ॥ ५१ ॥ इस प्रकार अमित तेजस्वी तथा समस्त जगत्के रचयिता ब्रह्माजीको प्रसन्न करके तुम किसीके हाथों न मारे जानेका वर माँग लो। उसके बाद इन्द्रका वध कर डालो ॥ ५२ ॥ हे पुत्र! अब भी पुत्रहत्याका

तेजस्वी तथा समस्त जगत्के रचयिता ब्रह्माजीको प्रसन्न करके तुम किसीके हाथों न मारे जानेका वर माँग लो। उसके बाद इन्द्रका वध कर डालो ॥ ५२ ॥ हे पुत्र! अब भी पुत्रहत्याका

वैर मेरे मनमें उथल-पुथल मचाये रहता है। जिससे न मुझे शान्ति मिलती है और न रातको सुखसे नींद आती है ॥५३॥ हे पुत्र! उस पापी इन्द्रने मेरे निरपराध और तपस्वी पुत्रको मार डाला है। अतएव मुझे किसी तरह चैन नहीं मिलता। अब तुम्हीं मुझ दुखियाको इस संकटसे उबार सकते हो ॥ ५४ ॥ व्यासजी बोले—हे राजन्! पिताके वचन सुनकर वृत्र मारे क्रोधके तलमला उठा और पितासे आज्ञा लेकर वह प्रसन्नतापूर्वक तपस्या करनेको चल पड़ा ॥५५॥ वहाँसे चलकर उसने गन्धमादन पर्वतपर परम पुनीत मन्दाकिनीमें स्नान किया। फिर कुशकी आसनीपर दृढ़ आसनसे बैठ गया ॥ ५६ ॥ वहाँ अन्न-जल त्यागकर वह योगाभ्यास करता हुआ अपने मनमें स्रष्टा ब्रह्माजीका ध्यान करने लगा ॥ ५७ ॥ उसको तप करते देखकर इन्द्र घबड़ा गये और उसमें विघ्न डालनेके लिए उन्होंने गन्धर्वोंको भेजा ॥ ५८ ॥ उनके पीछे यक्ष, नाग, सर्प, किन्नर, विद्याधर, अप्सराओं तथा अनेक देवदूतोंकी टोलियाँ भेजीं ॥ ५९ ॥

तापसो मे हतः पुत्रो निरागाः पाप्मना यतः ॥ न विंदामि सुखं वृत्र त्वं मामुद्धर दुःखितम् ॥ ५४ ॥ व्यास उवाच ॥ तदाकर्ण्य पितुर्वाक्यं वृत्रः क्रोधयुतस्तदा ॥ आज्ञामादाय च पितुर्जगाम तपसे मुदा ॥ ५५ ॥ गंधमादनमासाद्य पुण्यां देवधुनीं शुभाम् ॥ स्नात्वा कुशासनं कृत्वा संस्थितश्च स्थिरासनः ॥५६॥ त्यक्त्वाऽन्नं वारिपानं च योगाभ्यासपरायणः ॥ ध्यायन्विश्वसृजं चित्ते सोपविष्टः स्थिरासने ॥५७॥ मघवा तं तपस्यंतं ज्ञात्वा चिंतातुरो ह्यभूत् ॥ गंधर्वान्प्रेषयामास विघ्नार्थं पाकशासनः ॥ ५८ ॥ यक्षांश्च पन्नगान्सर्पान्किन्नरानमितौजसः ॥ विद्याधरानप्सरसो देवदूतानेकशः ॥ ५९ ॥ उपायास्तैः कृताः सम्यक्तपोविघ्नाय मायिभिः ॥ न चचाल ततो ध्यानात्त्वाष्ट्रः परमतापसः ॥ ६० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

॥ व्यास उवाच ॥ निर्गतास्ते परावृत्तास्तपोविघ्नकराः सुराः ॥ निराशाः कार्यसंसिद्ध्यै तं दृष्ट्वा दृढचेतसम् ॥ १ ॥ जाते वर्षशते पूर्णे ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ तत्राजगाम तरसा हंसारूढश्चतुर्मुखः ॥ २ ॥ आगत्य तमुवाचेदं त्वष्टृपुत्र सुखी भव ॥ त्यक्त्वा ध्यानं वरं ब्रूहि ददामि तव वांछितम् ॥ ३ ॥ तपसा तेऽद्य तुष्टोऽस्मि त्वां दृष्ट्वा चातिकर्शितम् ॥ वरं वरय भद्रं ते मनोऽभिलषितं तव ॥ ४ ॥ व्यास उवाच ॥ वृत्र-

वहाँ जाकर उन मायावियोंने उसकी तपस्यामें विघ्न डालनेके बहुतेरे उपाय किये। किन्तु परम तपस्वी वृत्र ध्यानसे तनिक भी विचलित नहीं हुआ ॥६०॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

(वृत्रको ब्रह्माजीसे वरप्राप्ति और देवताओंको पराजित करके उसका स्वर्गराज्यपर शासन) व्यासजी बोले—हे महाराज! वृत्रको दृढ़प्रतिज्ञ देखकर विघ्न डालनेके लिए गये हुए देवता अपने कार्यमें असफल होनेकी आशंकासे लौट गये ॥ १ ॥ इस प्रकार वृत्रको तप करते-करते जब सौ वर्ष व्यतीत हो गये। तब लोकपितामह तथा चतुर्मुख ब्रह्मा हंसपर सवार होकर उसके पास आये ॥ २ ॥ आते ही उन्होंने कहा—हे त्वष्टाके पुत्र! तुम सुखी होओ। ध्यान त्यागकर बोलो। मैं तुम्हें अभिलषित वर प्रदान करूँगा ॥ ३ ॥ तुम्हें इतना

दुर्बल देखकर मैं तुम्हारी तपस्यासे प्रसन्न हो गया हूँ। तुम्हारा कल्याण हो। अब तुम अपना इच्छित वरदान माँगो ॥ ४ ॥ व्यासजी बोले—हे राजन्! अपने समक्ष खड़े समस्त संसारके एकमात्र रचयिता ब्रह्माजीकी अतिशय स्पष्ट तथा अमृतरससे सराबोर वाणी सुनकर वृत्रने ध्यान भंग कर दिया और उठकर खड़ा हो गया। मारे हर्षके उसके नेत्रोंसे अश्रुधारा बहने लगी ॥ ५ ॥ बड़े प्रेमपूर्वक उसने उनके चरणोंका स्पर्श करके प्रणाम किया। तदनन्तर अपनी तपस्यासे अत्यन्त प्रसन्न तथा उत्तम वरदान देनेमें समर्थ ब्रह्माजीसे हाथ जोड़कर प्रेमके कारण गद्गद वाणीमें वृत्र बोला—॥ ६ ॥ हे नाथ! आपका दुर्लभ दर्शन पाकर ही मैंने सभी देवताओंका पद प्राप्त कर लिया। हे प्रभो! आप तो सबके मनकी बात जानते हैं फिर भी मैं अपने मनकी एक दुर्लभ अभिलाषा आपके समक्ष प्रगट कर रहा हूँ ॥ ७ ॥ मेरी यह इच्छा है कि मैं लोह, काष्ठ, सूखे या गीले बाँसों द्वारा निर्मित तथा अन्य किसी शस्त्रसे मारे जानेपर न मरूँ। मेरा बल इतना बढ़ जाय कि मैं उन सर्वथा सबल देवताओंसे अजेय हो जाऊँ ॥ ८ ॥ व्यासजी बोले—वृत्रके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर मुसकाते हुए ब्रह्माजीने कहा—अच्छा, वत्स!

स्तदाऽतिविशदां पुरतो निशम्य वाचं सुधासमरसां जगदेककर्तुः ॥ संत्यज्य योगकलनां सहसोदतिष्ठत्संजातहर्षनयनाश्रुकलाकलापः ॥ ५ ॥ पादौ प्रणम्य शिरसा प्रणयाद्विधातुर्बद्धांजलिः पुरत एव समाससाद ॥ प्रोवाच तं सुवरदं तपसा प्रसन्नं प्रेम्णाऽतिगद्गदगिरा विनयेन नम्रः ॥ ६ ॥ प्राप्तं मया सकलदेवपदं प्रभोऽद्य यद्दर्शनं तव सुदुर्लभमाशु जातम् ॥ वाञ्छाऽस्ति नाथ मनसि प्रवणे दुरापा तां प्रब्रवीमि कमलासन वेत्सि भावम् ॥७॥ मृत्युश्च मा भवतु मे किल लोहकाष्ठशुष्कार्द्रवंशनिचयैरपरैश्च शस्त्रैः ॥ वृद्धिं प्रयातु मम वीर्यमतीव युद्धे यस्माद्भवामि सबलैरमरैरजेयः ॥ ८ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्थं संप्रार्थितो ब्रह्मा तमाह प्रहसन्निव ॥ उत्तिष्ठ गच्छ भद्रं ते वांछितं सफलं सदा ॥ ९ ॥ न शुष्केण न चार्द्रेण न पाषाणेन दारुणा ॥ भविष्यति च ते मृत्युरिति सत्यं ब्रवीम्यहम् ॥ १० ॥ इति दत्त्वा वरं ब्रह्मा जगाम भुवनं परम् ॥ वृत्रस्तु तं वरं लब्ध्वा मुदितः स्वगृहं ययौ ॥ ११ ॥ शशंस पितुरग्रे तद्वरदानं महामतिः ॥ त्वष्टा तु मुदितः प्राप्तं पुत्रं प्राप्तवरं तदा ॥ १२ ॥ स्वस्ति तेऽस्तु महाभाग जहि शक्रं रिपुं मम ॥ हत्वा गच्छ त्रिशिरसो हंतारं पापसंयुतम् ॥ १३ ॥ भव त्वं त्रिदशाधीशः संप्राप्य विजयं रणे ॥ ममार्धिं छिंधि विपुलं पुत्रनाशसमुद्भवाम् ॥ १४ ॥ जीवतो वाक्यकरणात्क्षयाहे भूरिभोजनात् ॥ गयायां पिंडदानाच्च त्रिभिः पुत्रस्य पुत्रता ॥१५॥ तस्मात्पुत्र ममात्यर्थं दुःखं नाशितुम-

तुम्हारा कल्याण हो। अब तुम उठो और अपने घर जाओ। तुम्हारी सब इच्छायें पूर्ण हो जायँगी ॥ ९ ॥ किसी सूखी या गीली सामग्रीसे निर्मित अथवा लकड़ी तथा पत्थरसे बने शस्त्र द्वारा तुम्हारी मृत्यु न हो सकेगी। यह मैं सच कह रहा हूँ ॥ १० ॥ ऐसा वरदान देकर ब्रह्माजी अपने लोकको चले गये और वृत्र परम प्रसन्नतापूर्वक अपने घर लौट गया ॥ ११ ॥ महामति वृत्रने घर जाकर अपने पिताको वरप्राप्तिका सब वृत्तान्त कह सुनाया। त्वष्टाने भी अपने पुत्रके वरदान पानेकी बात सुनकर बड़ी प्रसन्नता प्रकट की ॥ १२ ॥ उन्होंने कहा—हे महाभाग! तुम्हारा कल्याण हो। अब तुम जाकर मेरे पुत्र त्रिशिरा मुनिके हत्यारे और मेरे शत्रु पापी इन्द्रको मार आओ ॥१३॥ ऐसा करनेसे रणमें विजय प्राप्त करके तुम देवताओंके राजा बन जाओगे। इस प्रकार पुत्रहत्यासे जायमान मेरी मानसिक पीड़ा दूर कर दोगे ॥१४॥ जीवित पिताकी उनकी आज्ञा मानने, मर जानेपर गयाश्राद्ध करने तथा क्षयाहके दिन ब्राह्मण-

राजा बन जाओगे। इस प्रकार पुत्रहत्यासे जायमान मेरी मानसिक पीड़ा दूर कर दोगे ॥१४॥ जीवित पिताकी उनकी आज्ञा मानने, मर जानेपर गयाश्राद्ध करने तथा क्षयाहके दिन ब्राह्मण-

भोजन करानेसे ही पुत्रकी पुत्रता सार्थक होती है ॥ १५ ॥ अतएव हे पुत्र ! तुम मेरी आज्ञाका पालन करके मेरा बहुत बड़ा दुःख दूर कर सकते हो। त्रिशिरा मेरे चित्तसे किसी तरह दूर नहीं हो रहा है ॥ १६ ॥ वह बड़ा सुशील, सत्यवादी, तपस्वी और वैदिक विद्वानोंमें अग्रणी था। बिना किसी अपराधके ही पापी इन्द्रने उसे मार डाला ॥ १७ ॥ व्यासजी बोले—अपने पिता त्वष्टाके वचन सुनकर परम दुर्जय वृत्र रथपर सवार होकर घरसे निकल पड़ा ॥१८॥ मदमत्त वृत्रने रणदुन्दुभी तथा दूरतक जिसकी आवाज जाती थी, ऐसा शंख बजाकर रणयात्रा की ॥ १९ ॥ चलते समय उस राजनीतिज्ञने अपने सैनिकोंके बीच भाषण करते हुए कहा कि मैं इन्द्रको मारकर अकण्टक देवराज्यपर अधिकार कर लूँगा ॥ २० ॥ ऐसा कहकर वह अपनी विशाल सेनाके साथ चला। चलते समय मार्गमें सैनिकोंके द्वारा इतना कोलाहल हुआ कि इन्द्रकी राजधानी अमरावतीपुरी भयसे दहल उठी ॥ २१ ॥ हे राजा जनमेजय ! वृत्रकी चढ़ाईका समाचार पाकर भयभीत इन्द्रने घबड़ाकर अपनी सेना तैयार करनेका आदेश दिया ॥ २२ ॥ शत्रुका दमन करनेमें निपुण इन्द्रने सब लोकपालोंको बुलवाकर जब सैनिक

र्हसि ॥ त्रिशिरा मम चित्तात्तु नाऽपसर्पति कर्हिचित् ॥ १६ ॥ सुशीलः सत्यवादी च तापसो वेदवित्तमः ॥ अपराधं विना तेन निहतः पापबुद्धिना ॥ १७ ॥ व्यास उवाच ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा वृत्रः परमदुर्जयः ॥ रथमारुह्य तरसा निर्जगाम पितुर्गृहात् ॥ १८ ॥ रणदुन्दुभिनिर्घोषं शंखनादं महाबलम् ॥ कारयित्वा प्रयाणं स चकार मदगर्वितः ॥ १९ ॥ निर्ययौ नयसंयुक्तः सेवकानिति संवदन् ॥ हत्वा शक्रं ग्रहीष्यामि सुरराज्यमकंटकम् ॥ २० ॥ इत्युक्त्वा निर्जगामाशु स्वसैन्यपरिवारितः ॥ महता सैन्यनादेन भीषयन्नमरावतीम् ॥ २१ ॥ तमागच्छंतमाज्ञाय तुराषाडपि सत्वरः ॥ सेनोद्योगं भयत्रस्तः कारयामास भारत ॥ २२ ॥ सर्वानाहूय तरसा लोकपालानरिन्दमः ॥ युद्धार्थं प्रेरयन्सर्वान्व्यरोचत महाद्युतिः ॥२३॥ गृध्रव्यूहं ततः कृत्वा संस्थितः पाकशासनः ॥ तत्राजगाम वेगात्तु वृत्रः परबलादनः ॥ २४ ॥ देवदानवयोस्तावत्संग्रामस्तुमुलोऽभवत् ॥ वृत्रवासवयोः संख्ये मनसा विजयैषिणोः ॥ २५ ॥ एवं परस्परं युद्धे संदीप्ते भयदे भृशम् ॥ आकूतं देवताः प्रापुर्दैत्याश्च परमां मुदम् ॥ २६ ॥ तोमरैर्भिन्दिपालैश्च खड्गैः परशुपट्टिशैः ॥ जघ्नुः परस्परं देवदैत्याः स्वस्ववरायुधैः ॥ २७ ॥ एवं युद्धे वर्तमाने दारुणे लोमहर्षणे ॥ शक्रं जग्राह सहसा वृत्रः क्रोधसमन्वितः ॥ २८ ॥ अपावृत्य मुखे क्षिप्त्वा स्थितो वृत्रः शतक्रतुम् ॥ मुदितोऽभून्महाराज पूर्ववैरमनुस्मरन् ॥२९॥ शक्रे ग्रस्तेऽथ

तैयारीका आदेश दिया, उस समय वे बड़े ही दीप्तिमान् दीख रहे थे ॥ २३ ॥ इस प्रकार देवसेना एकत्र करके इन्द्रने गृध्रव्यूहकी रचना की और रणभूमिमें डट गये। उसी समय बड़े वेगसे शत्रुकी सेना ध्वस्त करनेमें समर्थ वृत्र भी वहाँ पहुँच गया ॥ २४ ॥ सामना होते ही देवताओं और दानवोंमें भीषण युद्ध होने लगा। क्योंकि इन्द्र और वृत्र दोनोंको अपनी-अपनी विजयमें पूर्ण विश्वास था ॥ २५ ॥ धीरे-धीरे जब युद्ध भयावह स्थितिमें जाकर पहुँच गया, तब देवता दहलने लगे। किन्तु दानव सैनिक प्रसन्न थे ॥२६॥ देवता तथा दैत्य उभयपक्षके सैनिक अपने तोमर (गँड़ासा), भिन्दिपाल (ढेलवाँस), खड्ग (तलवार), पट्टिश (पटा-बनेठी) आदि उच्चकोटिके शस्त्रास्त्रोंसे परस्पर एक दूसरेपर निर्मम प्रहार करने लगे ॥ २७ ॥ अब वह युद्ध इतना भीषण हो उठा कि देखनेवालोंके रोयें खड़े हो गये। क्रुद्ध वृत्रासुरने अचानक इन्द्रको पकड़ लिया ॥ २८ ॥ तत्पश्चात् उनके कपड़े-लत्ते उतरवाकर वृत्रासुरने उन्हें अपने

मुखमें रख लिया। उस समय इन्द्रके पूर्ववैरका स्मरण करके वृत्रको बड़ी प्रसन्नता हुई ॥ २९ ॥ देवराज इन्द्रको वृत्रके मुखमें समा गया देखकर देवताओंको बहुत दुःख हुआ और वे 'हाय इन्द्र-हाय इन्द्र !' कहकर चिल्लाने लगे ॥ ३० ॥ देवताओंको जब यह निश्चय हो गया कि इन्द्रको नंगा करके वृत्रासुरने अपने मुखमें रख लिया है। तब बहुत आर्त होकर वे देवगुरु बृहस्पतिके पास गये और कहने लगे—हे द्विजश्रेष्ठ ! देवसेनासे सुरक्षित इन्द्रको वृत्रने मुखमें रख लिया है। अब हम क्या करें ? आप ही एकमात्र हमारे गुरु हैं ॥३१॥ ३२ ॥ हे देवगुरो ! इन्द्रके बिना हम लोग कुछ नहीं कर सकते। क्योंकि हमारा पराक्रम नष्ट हो गया है। अतएव उन्हें छुड़ानेके लिए आप तत्काल कोई अभिचार कर्म (तान्त्रिक कृत्य) आरम्भ कर दें ॥ ३३ ॥ बृहस्पतिजी बोले—हे देवताओ ! क्या किया जाय ? इन्द्रको वृत्रासुरने मुखमें रख लिया है। किन्तु यह निश्चित है कि इन्द्र वहाँ भी अभी जीवित हैं ॥ ३४ ॥ व्यासजी बोले—हे राजन् ! इन्द्रकी यह दुर्गति देखकर चिन्तित देवताओंने भलीभाँति विचार करके उनकी मुक्तिके लिए एक युक्ति सोच ली ॥३५॥ तदनुसार उन्होंने वृत्रके शरीरमें शत्रुका विनाश करनेमें

वृत्रेण संभ्रांता निर्जरास्तदा ॥ चक्रुशुः परमार्तास्ते हा शक्रेति मुहुर्मुहुः ॥ ३० ॥ अपावृतं मुखे शक्रं ज्ञात्वा सर्वे दिवौकसः ॥ बृहस्पतिं प्रणम्योचुर्दीना व्यथितचेतसः ॥ ३१ ॥ किं कर्तव्यं द्विजश्रेष्ठ त्वमस्माकं गुरुः परः ॥ शक्रो ग्रस्तस्तु वृत्रेण रक्षितो देवतांतरैः ॥ ३२ ॥ बिना शक्रेण किं कुर्मः सर्वे हीनपराक्रमाः ॥ अभिचारं कुरु विभो सत्वरः शक्रमुक्तये ॥३३॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ किं कर्तव्यं सुराः क्षिप्तो मुखमध्येऽस्ति वासवः ॥ वृत्रेणोत्सादितो जीवन्नस्ति कोष्ठांतरे रिपोः ॥ ३४ ॥ व्यास उवाच ॥ देवाश्चिंतातुराः सर्वे तुरासाहं तथाकृतम् ॥ दृष्ट्वा विमृश्य तरसा चक्रुर्यत्नं विमुक्तये ॥ ३५ ॥ असृजंत महासत्त्वां जृम्भिकां रिपुनाशिनीम् ॥ ततो विजृम्भमाणः स व्यावृतास्यो बभूव ह ॥ ३६ ॥ विजृम्भमाणस्य ततो वृत्रस्यास्यादवापतत् ॥ स्वान्यंगान्यपि संक्षिप्य निष्क्रांतो बलसूदनः ॥ ३७ ॥ ततः प्रभृति लोकेषु जृम्भिका प्राणिसंस्थिता ॥ जहृषुश्च सुराः सर्वे शक्रं दृष्ट्वा विनिर्गतम् ॥ ३८ ॥ ततः प्रववृते युद्धं तयोर्लोकभयप्रदम् ॥ वर्षाणामयुतं यावद्दारुणं लोमहर्षणम् ॥ ३९ ॥ एकतश्च सुराः सर्वे युद्धाय समुपस्थिताः ॥ एकतो बलवांस्त्वाष्ट्रः संग्रामे समवर्तत ॥ ४० ॥ यदा व्यवर्धत रणे वृत्रो वरमदावृतः ॥ पराजितस्तदा शक्रस्तेजसा तस्य धर्षितः ॥ ४१ ॥ विव्यथे मघवा युद्धे ततः प्राप्य पराजयम् ॥ विषादमगमन्देवा दृष्ट्वा शक्रं पराजितम् ॥ ४२ ॥ जग्मुस्त्यक्त्वा रणं सर्वे देवा

समर्थ और असाधारण शक्तिसम्पन्न जँभाई उत्पन्न की। जँभाई आते ही वृत्रका मुख खुल गया ॥ ३६ ॥ इस प्रकार मुख खुलते ही इन्द्र अपने अंगोंको संकुचित करके उसके मुखसे बाहर निकल आये ॥३७॥ इन्द्रको बाहर देखकर देवताओंको अपार हर्ष हुआ। उसी समयसे संसारके प्राणिमात्रके शरीरमें जँभाई विद्यमान रहने लगी ॥३८॥ तदनन्तर इन्द्र और वृत्रासुरका जो दारुण तथा रोमांचक युद्ध आरम्भ हुआ, वह पूरे दस हजार वर्ष तक चलता रहा। वह युद्ध देखकर सब लोग काँप उठे थे ॥ ३९ ॥ एक ओर सब देवता डटे थे और दूसरी ओर बलवान् वृत्रासुर रणभूमिमें जमा हुआ था ॥ ४० ॥ उस संग्राममें वरदानके मदसे मत्त वृत्रासुरका बढ़ाव जब प्रबल पड़ गया, तब उसके तेजके समक्ष इन्द्र नहीं टिक सके और उनकी पराजय हो गयी ॥ ४१ ॥ इस पराजयसे इन्द्रको बहुत कष्ट हुआ। इन्द्रकी पराजय देखकर देवता भी बहुत दुःखी हुए ॥ ४२ ॥ अब इन्द्र आदि सभी देवता रणभूमि त्यागकर भाग गये और

हो गयी ॥ ४१ ॥ इस पराजयसे इन्द्रको बहुत कष्ट हुआ । इन्द्रकी पराजय देखकर देवता भी बहुत दुःखी हुए ॥ ४२ ॥ अब इन्द्र आदि सभी देवता रणभूमि त्यागकर भाग गये और

वृत्रने द्रुतिगतिसे आगे बढ़कर देवराज्यपर अधिकार कर लिया ॥ ४३ ॥ अब वह देवताओंके सभी उद्यानोंका बलपूर्वक उपभोग करने लगा और इन्द्रके ऐरावतको भी अपने कब्जेमें कर लिया ॥ ४४ ॥ हे महाराज जनमेजय ! उसने सभी विमानों और इन्द्रके सर्वश्रेष्ठ घोड़े उच्चैःश्रवापर भी अधिकार कर लिया ॥ ४५ ॥ त्वष्टाके पुत्र वृत्रने कामधेनु, पारिजात, अप्सराओंके समूह आदि जितने भी रत्न थे, उन सबको हस्तगत कर लिया ॥ ४६ ॥ इस प्रकार राज्य छिन जानेपर सब देवता भागकर पर्वतकी कन्दराओंमें जा छिपे । क्योंकि अब उनका घर तथा यज्ञ-भाग दोनों शत्रुके कब्जेमें चले गये थे ॥ ४७ ॥ देवराज्यपर अधिकार हो जानेसे वृत्रासुरका घमण्ड और भी बढ़ गया । तदनन्तर त्वष्टा (विश्वकर्मा) बड़े आनन्दपूर्वक अपने पुत्रके साथ देवराज्यमें विहार करने लगे ॥ ४८ ॥ हे राजन् ! अब देवता मुनिमण्डलीमें जा-जाकर अपने कल्याणार्थ विचार-विमर्श करने लगे । किन्तु बारम्बार विचार करनेपर भी दैत्योंके डरसे वे यह नहीं सोच पाते थे कि अब क्या करना चाहिए ? ॥ ४९ ॥ अन्तमें इन्द्र आदि सब देवता कैलास पर्वतपर गये । वहाँ शंकरजीको प्रणाम करके हाथ जोड़े हुए वे कहने लगे—॥ ५० ॥

इन्द्रपुरोगमाः ॥ गृहीतं देवसदनं वृत्रेणागत्य रंहसा ॥ ४३ ॥ देवोद्यानानि सर्वाणि भुंक्तेऽसौ दानवो बलात् ॥ ऐरावतोऽपि दैत्येन गृहीतोऽसौ गजोत्तमः ॥ ४४ ॥ विमानानि च सर्वाणि गृहीतानि विशांपते ॥ उच्चैःश्रवा हयवरो जातस्तस्य वशे तदा ॥ ४५ ॥ कामधेनुः पारिजातो गणश्चाप्सरसां तथा ॥ गृहीतं रत्नमात्रं तु तेन त्वष्टृसुतेन ह ॥ ४६ ॥ स्थानभ्रष्टाः सुराः सर्वे गिरिदुर्गेषु संस्थिताः ॥ दुःखमापुः परिभ्रष्टा यज्ञभागात्सुरालयात् ॥ ४७ ॥ वृत्रः सुरपदं प्राप्य बभूव मदगर्वितः ॥ त्वष्टाऽतीव सुखं प्राप्य मुमोद सुतसंयुतः ॥४८॥ अमंत्रयन्हितं देवा मुनिभिः सह भारत ॥ किं कर्तव्यमिति प्राप्ते विचिन्त्य भयमोहिताः ॥ ४९ ॥ जग्मुः कैलासमचलं सुराः शक्रसमन्विताः ॥ महादेवं प्रणम्योचुः प्रह्वाः प्राञ्जलयो भृशम् ॥ ५० ॥ देवदेव महादेव कृपासिन्धो महेश्वर ॥ रक्षास्मान्भयभीतांस्तु वृत्रेणाऽतिपराजितान् ॥ ५१ ॥ गृहीतं देवसदनं तेन देव बलीयसा ॥ किं कर्तव्यमतः शंभो ब्रूहि सत्यं शिवाद्य नः ॥ ५२ ॥ किं कुर्मः क्व च गच्छामः स्थानभ्रष्टा महेश्वर ॥ दुःखस्य नाधिगच्छामो विनाशोपायमीश्वर ॥ ५३ ॥ साहाय्यं कुरु भूतेश व्यथिताः स्म कृपानिधे ॥ वृत्रं जहि मदोत्सिक्तं वरदानबलाद्विभो ॥ ५४ ॥ शिव उवाच ॥ ब्रह्माणं पुरतः कृत्वा वयं सर्वे हरेः क्षयम् ॥ गत्वा समेत्य तं विष्णुं चिंतयामो वधोद्यमम् ॥ ५५ ॥ स शक्तश्च छलज्ञश्च बलवान्बुद्धिमत्तरः ॥ शरण्यश्च

देवदेव ! हे महादेव ! हे कृपाके समुद्र ! हे महेश्वर ! वृत्रासुरने हमें बड़ी बुरी तरह पराजित कर दिया है । अतएव हम बहुत ही भयभीत हैं । आप हमारी रक्षा करें ॥ ५१ ॥ हे देव ! उस महाबली वृत्रने हमारा देवराज्य छीन लिया है । अतएव हे शम्भो ! अब हमें क्या करना चाहिए ? हे शिव ! हमारे कल्याणार्थ कोई वास्तविक मार्ग बताइए ॥ ५२ ॥ हे महेश्वर ! स्थानभ्रष्ट होकर हम लोग क्या करें ? कहाँ जायँ ? हे ईश्वर ! बहुत कुछ विचार करनेपर भी हमें इस दुःखको दूर करनेका कोई उपाय नहीं सूझता ॥ ५३ ॥ हे समस्त प्राणियोंके प्रभु ! आप हमारी सहायता करें । हे कृपानिधान ! हम सब बहुत कष्टमें हैं । हे विभो ! वर प्राप्तिके अभिमानसे मदमत्त वृत्रका आप हीं वध करिए ॥ ५४ ॥ शिवजी बोले—ब्रह्माजीको अग्रणी बनाकर हम लोग विष्णु भगवानके पास चलें । वहाँ विष्णुको भी साथ लेकर वृत्रवधके विषयमें मंत्रणा की जाय ॥ ५५ ॥ क्योंकि विष्णु सशक्त, कपटनीतिके विज्ञ, बलवान्, सबसे

ज्यादा बुद्धिमान्, शरणागतपालक और दयाके समुद्र हैं ॥ ५६ ॥ उन देवदेवेश विष्णु भगवानकी सहायता प्राप्त किये बिना हमारा प्रयोजन नहीं सिद्ध होगा। अतएव अपने सब कार्य पूरा करनेके लिए हमें उनके पास अवश्य चलना चाहिए ॥ ५७ ॥ व्यासजी बोले–ऐसा विचार करके ब्रह्मा, शिव तथा इन्द्र आदि सब देवता भक्तवत्सल तथा शरणागतप्रतिपालक विष्णु भगवान्के पास गये ॥ ५८ ॥ वैकुण्ठ धाममें पहुँचकर देवताओंने उन परमेश्वर तथा जगद्गुरु विष्णु भगवानकी वेदोक्त पुरुषसूक्तके मंत्रोंसे स्तुति की ॥ ५९ ॥ उनकी करुण स्तुति सुनकर जगत्के नाथ कमलापति भगवान विष्णु उनके सम्मुख उपस्थित हो गये। सब देवताओंका सम्मान करके उन्होंने कहा–॥ ६० ॥ हे लोकपालगण! आप लोग ब्रह्मा तथा शिवजीके साथ यहाँ किस लिए आये हैं? हे सुरसत्तम! आप लोग अपने आगमनका कारण बताइए ॥ ६१ ॥ व्यासजी बोले–भगवान् विष्णुका यह प्रश्न सुनकर भी वे सब देवता कुछ नहीं बोल पाये और चिन्तातुर भावसे हाथ जोड़े खड़े रहे ॥ ६२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे 'पीताम्बरा' भाषाटीकायां चतुऽर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

दयाब्धिश्च वासुदेवो जनार्दनः ॥५६॥ बिना तं देवदेवेशं नार्थसिद्धिर्भविष्यति ॥ तस्मात्तत्र च गंतव्यं सर्वकार्यार्थसिद्धये ॥५७॥ व्यास उवाच ॥ इति संचिंत्य ते सर्वे ब्रह्मा शक्रः सशंकरः ॥ जग्मुर्विष्णोः क्षयं देवाः शरण्यं भक्तवत्सलम् ॥ ५८ ॥ गत्वा विष्णुपदं देवास्तुष्टुवुः परमेश्वरम् ॥ हरिं पुरुषसूक्तेन वेदोक्तेन जगद्गुरुम् ॥ ५९ ॥ प्रत्यक्षोऽभूज्जगन्नाथस्तेषां स कमलापतिः ॥ संमान्य च सुरान्सर्वानित्युवाच पुरःस्थितः ॥ ६० ॥ किमागताः स्म लोकेशा हरब्रह्मसमन्विताः ॥ कारणं कथयध्वं वः सर्वेषां सुरसत्तमाः ॥ ६१ ॥ व्यास उवाच ॥ इति श्रुत्वा हरेर्वाक्यं नोचुर्देवा रमापतिम् ॥ चिन्ताविष्टाः स्थिताः प्रायः सर्वे प्रांजलयस्तदा ॥ ६२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

॥ व्यास उवाच ॥ तथा चिन्तातुरान्वीक्ष्य सर्वान्सर्वार्थतत्त्ववित् ॥ प्राह प्रेमभरोद्भ्रांतान्माधवो मेदिनीपते ॥१॥ विष्णुरुवाच ॥ किं मौनमाश्रिता यूयं ब्रुवंतु कारणं सुराः ॥ सदसद्वाऽपि यच्छ्रुत्वा यतिष्ये तन्निवारणे ॥ २ ॥ देवा ऊचुः ॥ किमज्ञातं तव विभो त्रिषु लोकेषु वर्तते ॥ सर्वं वेद भवान्कार्यं किं पृच्छसि पुनः पुनः ॥ ३ ॥ त्वया पूर्वं बलिर्बद्धः शक्रो देवाधिपः कृतः ॥ वामनं वपुरास्थाय क्रांतं त्रिभुवनं पदैः ॥ ४ ॥ अमृतं त्वाहृतं विष्णो दैत्याश्च विनिपातिताः ॥ त्वं प्रभुः सर्वदेवानां सर्वापद्विनिवारणे ॥ ५ ॥ विष्णुरुवाच ॥ न भेतव्यं सुरवरा वेद्म्युपायं सुसंम-

(भगवान विष्णुका वृत्रनाशके लिए उपाय बताना और देवताओंको देवीसे वरप्राप्ति) व्यासजी बोले––हे महाराज जनमेजय! सभी मूल तत्त्वोंके अभिज्ञ भगवान विष्णु देवताओंको चिन्तासे विकल और प्रेमसे अत्यन्त अधीर देखकर बोले ॥ १ ॥ विष्णुने कहा––हे देवताओं! आप लोग मौन क्यों हैं? आपके क्लेशका भला या बुरा जो भी कारण हो, उसे बताइए तो उसके निवारणका कोई उपाय करूँ ॥ २ ॥ देवता बोले––हे विभो! तीनों लोकमें आपसे कोई बात छिपी नहीं है। आप सब कुछ जानते हैं। तब हमसे बार-बार क्यों पूछते हैं? ॥ ३ ॥ पूर्वकालमें आपने वामन बनकर अपने पैरोंसे तीनों लोक नाप लिया था और राजा बलिको बाँधकर इन्द्रको पुनः देवराज बनाया था ॥ ४ ॥ हे विष्णो! आपने ही अमृत छीनकर दैत्योंका पतन किया था। सब देवताओंकी समस्त विपत्तियाँ दूर करनेमें आप समर्थ हैं ॥ ५ ॥ विष्णु भगवान बोले–– हे श्रेष्ठ देवगण! अब आप लोग भय त्याग दें। मैं वृत्रासुरके विनाशका सर्वसम्मत उपाय

जानता हूँ। उसे मैं बताऊँगा और आप प्रसन्न होंगे ॥६॥ उस समय बुद्धि, बल, धन तथा छल-कपट जिस किसी उपायसे आपका कल्याण हो सकेगा, वह मुझे करना ही होगा ॥ ७ ॥ राज-नीतिके मर्मज्ञ विद्वानोंने मित्रों और विशेष करके शत्रुओंके प्रति प्रयोग करनेके लिए साम, दाम, दण्ड और भेद, ये ही चार नीतियाँ बतायी हैं ॥ ८ ॥ वृत्रने कठोर तपस्या द्वारा आराधना करके ब्रह्माजीसे वर प्राप्त कर लिया था। उसी वरदानके प्रभावसे वह इस समय दुर्जय हो उठा है ॥ ९ ॥ पहले तो त्वष्टाने ही उसे उत्पन्न करके सब प्राणियों द्वारा अजेय बना दिया था। तत्पश्चात् अपनी सैनिकशक्ति बढ़ाकर वह और भी प्रबल हो गया ॥ १० ॥ हे देवताओं! सामनीतिका उपयोग करके विश्वास उत्पन्न करनेके बाद ही कूटनीति सफल होगी। अतएव सर्व-प्रथम उसे प्रलोभन द्वारा अपने वशमें करना होगा। उसके बाद अवसर देखकर उसे मार डाला जायगा ॥ ११ ॥ इस योजनाके अनुसार सब गन्धर्व उस स्थानपर जायँ, जहाँ वह महाबलवान् वृत्र रहता है। वहाँ पहुँचकर वे सामनीतिका प्रयोग करके उसे अपने वशमें करें ॥ १२ ॥ वे पहले उससे मिलकर उसकी शर्तें मानते हुए सन्धि कर लें और उसके मनमें विश्वास उत्पन्न

तम् ॥ तद्वधाय प्रवक्ष्यामि येन सौख्यं भविष्यति ॥६॥ अवश्यं करणीयं मे भवतां हितमात्मना ॥ बुद्ध्या बलेन चार्थेन येन केन छलेन वा ॥७॥ उपायाः खलु चत्वारः कथितास्तत्त्वदर्शिभिः ॥ सामादयः सुहृत्स्वेव दुर्हृदेषु विशेषतः ॥ ८ ॥ ब्रह्मणाऽस्य वरो दत्तस्तपसाऽऽराधितेन च ॥ दुर्ज-यत्वं च संप्राप्तं वरदानप्रभावतः ॥ ९ ॥ अजेयः सर्वभूतानां त्वष्ट्रा समुपपादितः ॥ ततो बलेन वृद्धिं स प्राप्तः परपुरंजयः ॥ १० ॥ दुःसाध्योऽसौ सुराः शत्रुर्विना सामप्रतारणम् ॥ प्रलोभ्य वशमानेयो हन्तव्यस्तु ततः परम् ॥ ११ ॥ गच्छध्वं सर्वगंधर्वा यत्रास्ति बलवत्तरः ॥ साम तस्य प्रयुंजध्वं तत एनं विजेष्यथ ॥१२॥ संगम्य शपथान्कृत्वा विश्वास्य समयेन हि ॥ मित्रत्वं च समाधाय हंतव्यः प्रबलो रिपुः ॥ १३ ॥ अदृश्यः संप्रवेक्ष्यामि वज्रमस्य वरायुधम् ॥ साहाय्यं च करिष्यामि शक्रस्याहं सुरोत्तमाः ॥ १४ ॥ समयं च प्रतीक्षध्वं सर्वथैवायुषः क्षये ॥ मरणं विबुधास्तस्य नान्यथा संभविष्यति ॥१५॥ गच्छध्वमृषिभिः सार्धङ्गन्धर्वाः कपटावृताः ॥ इन्द्रेण सह मित्रत्वं कुरुध्वं वाक्यदानतः ॥ १६ ॥ यथा स याति विश्वासं तथा कार्यं प्रतारणम् ॥ गुप्तोऽहं संप्रवेक्ष्यामि पविं संछादितं दृढम् ॥ १७ ॥ विश्वस्तं मघवा शत्रुं हनिष्यति न चान्यथा ॥ विश्वासस्य कृते पापं कृत्वा शक्रस्तु पृष्ठतः ॥१८॥ मत्सहायोऽथ वज्रेण शातयिष्यति पापिनम् ॥ न दोषोऽत्र शठे शत्रौ शाठ्यमेव प्रकुर्वतः ॥१९॥

करें। इस प्रकार मित्रता प्राप्त करके ही बलवान् शत्रुका वध किया जा सकता है ॥ १३ ॥ हे सुरसत्तमगण! मैं भी गुप्तरूपसे इन्द्रके सर्वश्रेष्ठ शस्त्र वज्रमें प्रविष्ट हो जाऊँगा और अवसर आनेपर इनकी सहायता करूँगा ॥ १४ ॥ हे देवताओ! अब आपलोग कुछ समय प्रतीक्षा करिए। जब वृत्रकी आयु सर्वथा क्षीण हो जायगी, तभी उसकी मृत्यु हो सकेगी ॥ १५ ॥ अतएव अब सभी गन्धर्व वेष बदल करके ऋषियोंके साथ उसके पास जायँ और वचनबद्ध होकर इन्द्रके साथ उसकी मित्रता करा दें ॥१६॥ बीच-बीचमें आपलोग ऐसा कुछ करते रहें, जिससे आपपर उसका विश्वास दृढ़ होता जाय। उसी समय मैं गुप्तरूपसे इन्द्रके सर्वश्रेष्ठ शस्त्र वज्रमें प्रविष्ट हो जाऊँगा ॥ १७ ॥ जब वृत्रासुरको पूर्ण विश्वास हो जाय, तभी इन्द्र उसका वध करें। उस समय विश्वासघातके पापको मनपर न लावें। उसे मारनेके लिए और कोई उपाय नहीं है ॥ १८ ॥ अवसर आनेपर इन्द्र मेरी सहायतासे अपने वज्र द्वारा वृत्रका वध कर देंगे। शत्रुके प्रति इस

प्रकारकी शठता करनेमें कोई दोष नहीं है ॥ १९ ॥ वह बलवान् वीरधर्मसे नहीं मारा जा सकेगा। पूर्वकालमें मैंने भी वामनका रूप धारण करके बलिके साथ छल किया था ॥ २० ॥ एक बार मोहिनीका रूप धारण करके भी मैंने दैत्योंको छला था। अतएव आप सब लोग एक साथ भगवती शिवा देवीकी शरणमें जायँ और भावपूर्ण स्तोत्रमंत्रोंसे उनकी स्तुति करें। ऐसा करनेसे भगवती योगमाया आपकी सहायता करेंगी ॥ २१ ॥ २२ ॥ हम सभी उस सात्त्विकी परा प्रकृतिस्वरूपा देवीकी सदा वन्दना करते हैं, जो सिद्धियाँ प्रदान करती तथा कामनायें पूर्ण करती है। जिसे अज्ञ जीव कदापि नहीं प्राप्त कर सकते ॥ २३ ॥ ये इन्द्र भी उन भगवतीकी आराधना करके अपने शत्रुको रणमें मार डालेंगे। वह मोहिनी महामाया उस दानवको मोहमें डाल देगी ॥ २४ ॥ भगवती महामायाके मोहित कर देनेपर वृत्रको मारनेमें सुविधा होगी। उस परा अम्बाके प्रसन्न हो जानेपर सब काम बन जायगा ॥ २५ ॥ अन्य किसी भी उपायसे

नान्यथा बलवान्वध्यः शूरधर्मेण जायते ॥ वामनं रूपमाधाय मयाऽयं वंचितो बलिः ॥ २० ॥ कृत्वा च मोहिनीवेषं दैत्याः सर्वेऽपि वंचिताः ॥ भवंतः सहिताः सर्वे देवीं भगवतीं शिवाम् ॥२१॥ गच्छध्वं शरणं भावैः स्तोत्रमंत्रैः सुरोत्तमाः ॥ साहाय्यं सा योगमाया भवतां संविधास्यति ॥२२॥ वन्दामहे सदा देवीं सात्त्विकीं प्रकृतिं पराम् ॥ सिद्धिदां कामदां कामां दुरापामकृतात्मभिः ॥ २३ ॥ इन्द्रोऽपि तां समाराध्य हनिष्यति रिपुं रणे ॥ मोहिनी सा महामाया मोहयिष्यति दानवम् ॥२४॥ मोहितो मायया वृत्रः सुखसाध्यो भविष्यति ॥ प्रसन्नायां पराम्बायां सर्वं साध्यं भविष्यति ॥२५॥ नोचेन्मनोरथावाप्तिर्न कस्यापि भविष्यति ॥ अन्तर्यामिस्वरूपा सा सर्वकारणकारणा ॥ २६ ॥ तस्मात्तां विश्वजननीं प्रकृतिं परमादृताः ॥ भजध्वं सात्त्विकैर्भावैः शत्रुनाशाय सत्तमाः ॥ २७ ॥ पुरा मयाऽपि संग्रामं कृत्वा परमदारुणम् ॥ पंचवर्षसहस्राणि निहतौ मधुकैटभौ ॥ २८ ॥ स्तुता मया तदाऽत्यर्थं प्रसन्ना प्रकृतिः परा ॥ मोहितौ तौ तदा दैत्यौ छलेन च मया हतौ ॥२९॥ विप्रलब्धौ महाबाहू दानवौ मदगर्वितौ ॥ तथा कुरुध्वं प्रकृतेर्भजनं भावसंयुताः ॥३०॥ सर्वथा कार्यसिद्धिं सा करिष्यति सुरोत्तमाः ॥ एवं ते दत्तमतयो विष्णुना प्रभविष्णुना ॥३१॥ जग्मुस्ते मेरुशिखरं मन्दारद्रुममण्डितम् ॥ एकांते संस्थिता देवाः कृत्वा ध्यानं जपं तपः ॥ ३२ ॥ तुष्टुवुर्जगतां धात्रीं सृष्टिसंहारकारिणीम् ॥ भक्तकामदुघामंबां

आप लोगोंकी कामना नहीं पूर्ण होगी। वह सबके मनकी बात जानती है और समस्त कारणोंकी कारणस्वरूपा है ॥ २६ ॥ अतएव हे महापुरुषो ! आप लोग परम आदरपूर्वक शत्रुका विनाश करनेके लिए सात्त्विक भावसे उन विश्वजननीका भजन करिए ॥२७॥ पूर्वकालमें मैंने भी पाँच हजार वर्षतक दारुण युद्ध करके मधु-कैटभको मारा था ॥२८॥ उस समय मैंने भी जब बड़ी प्रबल श्रद्धासे स्तुति की, तब वे परा प्रकृतिस्वरूपा महामाया प्रसन्न हुईं। उन्होंने उन दोनों दानवोंको मोहमें डाल दिया और मैंने कपट करके उन्हें मार डाला ॥२९॥ उन विशालबाहु तथा मदगर्वित दानवोंको धोखा देकर ही मैं मार सका था। अतएव आप सब पूर्ण भक्तिभावसे उन प्रकृतिस्वरूपा भगवतीका भजन करिए ॥ ३० ॥ हे देवताओ ! ऐसा करनेसे वह देवी आपके सब कार्य सिद्ध कर देगी। समस्त विश्वके प्रभु भगवान विष्णुके इस प्रकार सलाह देनेपर सब देवता मन्दारके वृक्षोंसे सुशोभित सुमेरु पर्वतपर चले गये। वहाँ एकान्तमें रहते हुए, वे ध्यान, जप

तथा तप करके विश्वजननी, सृष्टि और संहार करनेवाली, भक्तोंके लिए कामधेनु एवं समस्त संसारका क्लेश हरण करनेवाली भगवतीकी स्तुति करने लगे ॥३१–३३॥ देवता बोले–हे देवि ! आप हमपर प्रसन्न हों । क्योंकि वृत्रासुरने हम देवताओंको बहुत सताकर रणमें पराजित किया है । हे दीनोंका दुःख दूर करनेवाली दुर्गे ! हे परमार्थतत्त्वस्वरूपे ! हम सदा आपके शरणागत हैं ॥३४॥ हे मातः ! आप जगज्जननी हैं । हम इस समय शत्रुसंकटमें पड़े हुए हैं । पुत्र समझकर आप हमारी रक्षा करें । तीनों लोकमें कोई ऐसी बात नहीं है, जो आपसे छिपी हो । फिर भी हे अम्बिके ! असुरों द्वारा दलित देवताओंकी आप उपेक्षा क्यों कर रही हैं ? ॥३५॥ हे माता ! आपने ही तीनों लोकोंकी रचना की है । ब्रह्मा, विष्णु और शिव आपके संकल्पसे जायमान होकर आपकी ही भौंहोंके संकेतपर सृष्टि, पालन और संहारकार्य सम्पन्न करते हैं । वे स्वतंत्र कभी नहीं रहते ॥३६॥ हे देवि ! जब पुत्रोंपर किसी प्रकारका संकट आ पड़ता है, तब अपराधी समझती हुई भी माता सब शक्ति लगाकर उनकी रक्षा करती हैं। यह रीति आपकी ही चलायी हुई है। तब हे करुणरसकी समुद्रस्वरूपा माता ! अपने चरणोंकी शरणमें पड़े हुए हम निरपराध

संसारक्लेशनाशिनीम् ॥ ३३ ॥ देवा ऊचुः ॥ देवि प्रसीद परिपाहि सुरान्प्रतप्तान्वृत्रासुरेण समरे परिपीडितांश्च ॥ दीनार्तिनाशनपरे परमार्थतत्त्वे प्राप्तांस्त्वदंघ्रिकमलं शरणं सदैव ॥ ३४ ॥ त्वं सर्वविश्वजननी परिपालयास्मान्पुत्रानिवातिपतितान्रिपुसंकटेऽस्मिन् ॥ मातर्न तेऽस्त्यविदितं भुवनत्रयेऽपि कस्मादुपेक्षसि सुरानसुरप्रतप्तान् ॥ ३५ ॥ त्रैलोक्यमेतदखिलं विहितं त्वयैव ब्रह्मा हरिः पशुपतिस्तव वासनोत्थाः ॥ कुर्वन्ति कार्यमखिलं स्ववशा न ते ते भ्रूभंगचालनवशाद्विहरन्ति कामम् ॥ ३६ ॥ माता सुतान्परिभवात्परिपाति दीनान्नीतिस्त्वयैव रचिता प्रकटापराधान् ॥ कस्मान्न पालयसि देवि विनापराधानस्मांस्त्वदंघ्रिशरणान्करुणारसाब्धे ॥ ३७ ॥ नूनं मदंघ्रिभजनाप्तपदाः किलैते भक्तिं विहाय विभवे सुखभोगलुब्धाः ॥ नेमे कटाक्षविषया इति चेन्न चैषा रीतिः सुते जननकर्तरि चापि दृष्ट्वा ॥ ३८ ॥ दोषो न नोऽत्र जननि प्रतिभाति चित्ते यत्ते विहाय भजनं विभवे निमग्नाः ॥ मोहस्त्वया विरचितः प्रभवत्यसौ नस्तस्मात्स्वभावकरुणे दयसे कथं न ॥३९॥ पूर्वं त्वया जननि दैत्यपतिर्बलिष्ठो व्यापादितो महिषरूपधरः किलाजौ ॥ अस्मत्कृते सकललोकभयावहोऽसौ वृत्रं कथं न भयदं विधुनोषि मातः ॥ ४० ॥ शुम्भस्तथाऽतिबलवान-

देवताओंकी आप रक्षा क्यों नहीं करतीं ? ॥३७॥ हे जननी ! यदि आप सोचती हों कि मेरे चरणोंकी आराधना करके देवता अपना राज-पाट पा जायँगे तो मेरी भक्तिसे विमुख होकर सुख भोगनेमें तन्मय हो जायँगे । तब इन्हें मेरे कृपाकटाक्षकी कोई आवश्यकता न रह जायगी । यह बात भली भाँति जानती हुई भी कोई माता अपने पुत्रके प्रति ऐसी भावना रखती हुई नहीं देखी जाती ॥३८॥ हे जननी ! हम जो आपका भजन त्यागकर वैभव भोगने लगते हैं, उसमें हमारा कुछ भी दोष नहीं है । क्योंकि मोहकी रचना आपने ही की है । वही मोह हमें अपने प्रभावमें फँसा लेता है । ऐसी परिस्थितमें हे स्वाभाविक करुणामयी माता ! आप हमपर दया क्यों नहीं करतीं ? ॥३९॥ हे जननी ! पूर्वकालमें आप हम लोगोंके उपकारार्थ महिषरूपधारी बहुत बड़े बलवान् दैत्यपति महिषासुरका वध कर चुकी हैं । वह दैत्य तीनों लोकोंके लिए भयावह हो उठा था । तब हे माता ! इस समय सबके लिए भयदायक वृत्रासुरको आप क्यों नहीं

मारतीं ? ॥ ४० ॥ पूर्वकालमें आप जैसे शुम्भ-निशुम्भ और उनके अनुयायियोंका वध कर चुकी हैं। हे दयासे आर्द्रहृदय माता ! उसी प्रकार इस समय प्रबल अत्याचारी वृत्रासुरको भी मार डालिए। हे जननी ! राज्यमदसे उन्मत्त वृत्रको आप इस प्रकार मोहमें डाल दीजिए कि वह अपनी शक्तिका प्रदर्शन न कर सके ॥ ४१ ॥ हे माता ! अब देवजातिकी रक्षा आपके ही हाथमें है। हमें असुरोंने बहुत सताया है और हम भयसे विह्वल हो रहे हैं। तीनों लोकमें ऐसा कोई नहीं दिखायी देता, जो देवताओंका कष्ट दूर करके अपनी शक्तिसे उनके सब क्लेशोंको नष्ट कर दे ॥४२॥ यदि वृत्रको भी अपना पुत्र समझकर दया प्रदर्शित करना चाहती हों तो भी आप उसे मार डालिए। क्योंकि वह दुराचारी बहुत बड़ा खल है और जनसाधारणको बहुत दुःख दता है। वैसे अपने इन पापोंसे वह पापी नरकमें जायगा। अतएव आप उसे अपने बाणोंसे मारकर पवित्र कर दीजिए। आपके ऐसा करनेसे उसका उद्धार हो जायगा ॥४३॥ प्राचीनकालमें आपने जिन दैत्योंका वध किया था, वे आज देवताओंके नन्दन वनमें विहार कर रहे हैं। हे दयामयी माता! क्या आपने हमारे वैरी होते हुए भी उन दानवोंको नरकमें जाने-

नुजो निशुम्भस्तौ भ्रातरौ तदनुगा निहता हतौ च ॥ वृत्रं तथा जहि खलं प्रबलं दयार्द्रे मत्तं विमोहय तथा न भवेद्यथाऽसौ ॥ ४१ ॥ त्वं पालयाद्य विबुधानसुरेण मातः संतापितानतितरां भयविह्वलांश्च ॥ नान्योऽस्ति कोऽपि भुवनेषु सुरार्तिहंता यः क्लेशजालमखिलं निदहेत्स्वशक्त्या ॥ ४२ ॥ वृत्रे दया तव यदि प्रथिता तथापि जह्येनमाशु जनदुःखकरं खलं च ॥ पापात्समुद्धर भवानि शरैः पुनाना नोचेत्प्रयास्यति तमो ननु दुष्टबुद्धिः ॥४३॥ ते प्रापिताः सुरवनं विबुधारयो ये हत्वा रणेऽपि विशिखैः किल पावितास्ते ॥ त्राता न किं निरयपातभयाद्दयार्द्रे यच्छत्रवोऽपि न हि किं विनिहंसि वृत्रम् ॥४४॥ जानीमहे रिपुरसौ तव सेवको न प्रायेण पीडयति नः किल पापबुद्धिः ॥ यस्तावकस्त्विह भवेदमरानसौ किन्त्वत्पादपंकजरतान्ननु पीडयेद्वा ॥ ४५ ॥ कुर्मः कथं जननि पूजनमद्य तेऽम्ब पुष्पादिकं तव विनिर्मितमेव यस्मात् ॥ मन्त्रा वयं च सकलं परशक्तिरूपं तस्माद्भवानि चरणे प्रणताः स्म नूनम् ॥४६॥ धन्यास्त एव मनुजा हि भजंति भक्त्या पादांबुजं तव भवाब्धिजलेषु पोतम् ॥ यं योगिनोऽपि मनसा सततं स्मरंति मोक्षार्थिनो विगतरागविकारमोहाः ॥ ४७ ॥ ये याज्ञिकाः सकलवेदविदोऽपि नूनं त्वां संस्मरंति सततं किल

के भयसे मुक्त नहीं किया है ? यदि ऐसा है, तब आप वृत्रासुरको क्यों नहीं मारतीं ? जिससे उसका भी उद्धार हो जाय ॥ ४४ ॥ हमलोग यह भली भाँति जानते हैं कि वह आपका सेवक नहीं, बल्कि वैरी है। क्योंकि वह पापभरे हृदयवाला असुर सदा हम सबको सताया करता है। जो निरन्तर आपके चरणोंकी भक्तिमें लीन रहें, उन हम देवताओंको सतानेवाला प्राणी आपका भक्त कैसे हो सकता है ? ॥४५॥ हे जननी ! हम आपकी पूजा कैसे करें ? क्योंकि हे अम्ब ! पूजनकी पुष्पादि सामग्रियाँ आपकी ही बनायी हुई हैं। इनके अतिरिक्त मंत्र और हम पूजक आपकी पराशक्तिस्वरूप हैं। अतएव हे भवानि ! हमलोग आपके चरणोंको केवल प्रणाम भर करते हैं ॥ ४६ ॥ जो लोग भवसागरसे पार उतारनेवाले जहाजस्वरूप आपके चरणोंका भक्तिपूर्वक भजन करते हैं, वे ही धन्य हैं। क्योंकि वीतराग, कामादि विकारोंसे परे पहुँचे हुए तथा मोहसे पराङ्मुख योगीजन भी मोक्षलाभकी कामनासे आपके पावन चरणोंका अपने हृदयमें ध्यान धरते हैं ॥ ४७ ॥ समस्त वेदोंके विज्ञ वे यज्ञकर्ता भी धन्य हैं, जो होमके अवसरपर आहुति देते समय देवताओंको तृप्ति प्रदान करनेवाली स्वाहा तथा पितरोंको तृप्त

करनेवाली स्वधाका उच्चारण करके आपका स्मरण करते हैं। हे माता! आप प्रतिभा हैं, प्रभा हैं, शान्ति हैं और आप ही मनुष्योंकी विमल बुद्धि हैं। तीनों लोकोंमें आप इन सभी वैभवोंको अपना भजन करनेवाले भक्तोंको सदा उदारतापूर्वक वितरित करती रहती हैं ॥४८॥४९॥ व्यासजी बोले—इस प्रकार तन्मयतापूर्वक देवताओंके स्तुति करनेपर सुन्दर रूपधारिणी और सब प्रकारके आभूषणोंसे आभूषित कोमलाङ्गी भगवती प्रत्यक्ष प्रगट हो गयीं ॥ ५० ॥ उनकी भुजाओंमें पाश और अंकुश सुशोभित थे। उनकी तीसरी भुजा वरदानमुद्रामें और चौथी भुजा अभयदायिनीकी मुद्रामें थी। उनकी कमरमें बँधी करधनीके घुँघुरू बज रहे थे ॥ ५१ ॥ उनके हाथमें जगमगाते कंगन और पाँवमें पायजेब थे। जो कोयलके समान मीठे स्वरमें रुनझुनकी ध्वनि कर रहे थे। उनके मस्तकपर अर्धचन्द्र तथा रत्नजटित मुकुट अपूर्व शोभा दे रहा था ॥५२॥ उनके कमल जैसे मुखारविन्दपर मन्द-मन्द मुसकराहट विराज रही थी। उनके तीन नेत्र थे। पारिजात-कुसुमके डंठल जैसी लाल उनके शरीरकी कान्ति थी ॥५३॥ वे लाल वस्त्र पहने थीं और लाल ही चन्दन उनके शरीरमें लगा हुआ था। उनका मुख प्रसन्न था और वे करुणा-

होमकाले ॥ स्वाहां तु तृप्तिजननीमसुरेश्वराणां भूयः स्वधां पितृगणस्य च तृप्तिहेतुम् ॥ ४८ ॥ मेधाऽसि कांतिरसि शांतिरपि प्रसिद्धा बुद्धिस्त्वमेव विशदार्थकरी नराणाम् ॥ सर्वं त्वमेव विभवं भुवनत्रयेऽस्मिन्कृत्वा ददासि भजतां कृपया सदैव ॥ ४९ ॥ व्यास उवाच ॥ एवं स्तुता सुरैर्देवी प्रत्यक्षा साऽभवत्तदा ॥ चारुरूपधरा तन्वी सर्वाभरणभूषिता ॥ ५० ॥ पाशांकुशवराभीतिलसद्बाहुचतुष्टया ॥ रणत्किंकिणिकाजालरशनाबद्धसत्कटिः ॥ ५१ ॥ कलकंठीरवा कांता क्वणत्कंकणनूपुरा ॥ चन्द्रखंडसमाबद्धरत्नमौलिविराजिता ॥ ५२ ॥ मंदस्मिताऽरविन्दास्या नेत्रत्रयविभूषिता ॥ पारिजातप्रसूनाच्छनीलवर्णसमप्रभा ॥ ५३ ॥ रक्तांबरपरीधाना रक्तचंदनचर्चिता ॥ प्रसादसुमुखी देवी करुणारससागरा ॥ ५४ ॥ सर्वशृङ्गारवेषाढ्या सर्वद्वैतारणिः परा ॥ सर्वज्ञा सर्वकर्त्री च सर्वाधिष्ठानरूपिणी ॥ ५५ ॥ सर्ववेदान्तसंसिद्धा सच्चिदानंदरूपिणी ॥ प्रणेमुस्तां समालोक्य सुरा देवीं पुरःस्थिताम् ॥ ५६ ॥ तानाह प्रणतानंबा किं वः कार्यं ब्रुवंतु माम् ॥ देवा ऊचुः ॥ मोहयैनं रिपुं वृत्रं देवानामतिदुःखदम् ॥ ५७ ॥ यथा विश्वसते देवांस्तथा कुरु विमोहितम् ॥ आयुधे च बलं देहि हतः स्याद्येन वा रिपुः ॥ ५८ ॥ व्यास उवाच ॥ तथेत्युक्त्वा भगवती तत्रैवांतरधीयत ॥ स्वानि स्वानि निकेतानि जग्मुर्देवा मुदान्विताः ॥ ५९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते षष्ठस्कन्धे देवीमाहात्म्ये पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

रसकी समुद्र थीं ॥ ५४ ॥ उनकी दिव्य देहपर शृङ्गार विद्यमान थे। वे द्वैतभावके लिए अरणीस्वरूपा थीं। वे परा, सर्वज्ञा, सर्वकर्त्री और साक्षात् ब्रह्मरूपिणी थीं ॥५५॥ वे सभी वेदान्तों द्वारा प्रतिपादित सच्चिदानन्दरूपिणी थीं। अपने सम्मुख प्रगट भगवतीको देखकर पूर्णश्रद्धापूर्वक देवताओंने उन्हें प्रणाम किया ॥ ५६ ॥ देवताओंसे जगदम्बाने कहा कि आपलोग अपना काम बताइए। देवता बोले—हे अम्बे! देवताओंके लिए अत्यन्त दुःखदायक वृत्रको आप मोहमें डाल दें ॥५७॥ आप उसे इतना मोहग्रस्त कर दें कि जिससे वह हम देवताओंपर विश्वास करने लगे और हमारे शस्त्रास्त्रोंमें इतनी शक्ति भर दीजिए कि जिससे हम उनके द्वारा उसका विनाश कर सकें ॥५८॥ व्यासजी बोले—'तथास्तु' अर्थात् आपकी इच्छा पूर्ण हो, यह कहकर भगवती वहाँ ही अन्तर्धान हो गयीं और देवता मुदित मनसे अपने-अपने घरोंको चले गये ॥ ५९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषाटीकायां पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

(इन्द्रका वृत्रासुरके हृदयमें विश्वास उत्पन्न करके उसका वध करना) व्यासजी बोले—हे महाराज! इस प्रकार जगदम्बासे वर प्राप्त करके सभी देवता और तपस्वी ऋषिगण (परस्पर मंत्रणा करके सब लोग एक साथ वृत्रके उत्तम आश्रमपर गये।) वहाँ पहुँचकर उन्होंने देखा कि वृत्र अपने असाधारण तेजसे जगमगा रहा है ॥ १ ॥ उस समय ऐसा लग रहा था कि जैसे वह तीनों लोक भस्म कर देगा और सब देवताओंको निगल जायगा। उसके समीप जाकर ऋषियोंने देवताओंकी कार्यसिद्धिके लिए सामनीतिपूर्ण मधुर वाणीमें कहा। ऋषि बोले--हे वृत्र! हे महाभाग! हे सब लोकोंके लिए भयङ्कर! आप अखिल ब्रह्माण्डमें व्याप्त हो गये हैं। किन्तु इन्द्रके साथ आपका जो वैर चल रहा है, वह आपके सुखमें बाधक है ॥ २-४ ॥ उस वैरसे आप तथा इन्द्र दोनों सदा चिन्तित रहते हैं। न आप सुखकी नींद सो पाते हैं और न इन्द्र ही सुखसे सो सकते हैं। क्योंकि आप दोनोंको वैरीका भय सताया करता है। और फिर आप दोनोंको परस्पर युद्ध करते हुए भी बहुत दिन बीत गये ॥ ५ ॥ ६ ॥ आप दोनोंके संघर्षसे देवता, दानव और मानव सभी प्रजाजन पीड़ित हैं। इस संसारमें

॥ व्यास उवाच ॥ एवं प्राप्तवरा देवा ऋषयश्च तपोधनाः ॥ (जग्मुः सर्वे च संमंत्र्य वृत्रस्याश्रममुत्तमम् ॥) ददृशुस्तत्र तं वृत्रं ज्वलंतमिव तेजसा ॥ १ ॥ धक्ष्यंतमिव लोकांस्त्रीन्ग्रसंतमिव चामरान् ॥ ऋषयोऽथ ततोऽभ्येत्य वृत्रमूचुः प्रियं वचः ॥ २ ॥ देवकार्यार्थसिद्ध्यर्थं सामयुक्तं रसात्मकम् ॥ ऋषय ऊचुः ॥ वृत्र वृत्र महाभाग सर्वलोकभयंकर ॥ ३ ॥ व्याप्तं त्वयैतत्सकलं ब्रह्मांडमखिलं किल ॥ शक्रेण तव वैरं यत्तत्तु सौख्यविघातकम् ॥४॥ युवयोर्दुःखदं कामं चिंतावृद्धिकरं परम् ॥ न त्वं स्वपिषि संतुष्टो न चापि मघवा तथा ॥ ५ ॥ सुखं स्वपिति चिन्तार्तो द्वयोर्यद्वैरजं भयम् ॥ युवयोर्युध्यतोः कालो व्यतीतस्तु महानिह ॥ ६ ॥ पीड्यन्ते च प्रजाः सर्वाः सदेवासुरमानवाः ॥ संसारेऽत्र सुखं ग्राह्यं दुःखं हेयमिति स्थितिः ॥७॥ न सुखं कृतवैरस्य भवतीति विनिर्णयः ॥ संग्रामरसिकाः शूरान्प्रशंसंति न पंडिताः ॥ ८ ॥ युद्धं शृंगारचतुरा इन्द्रियार्थविघातकम् ॥ पुष्पैरपि न योद्धव्यं किं पुनर्निशितैः शरैः ॥ ९ ॥ युद्धे विजयसंदेहो निश्चयं बाणताडनम् ॥ दैवाधीनमिदं विश्वं तथा जयपराजयौ ॥ १० ॥ दैवाधीनाविति ज्ञात्वा न योद्धव्यं कदाचन ॥ कालेऽथ भोजनं स्नानं शय्यायां शयनं तथा ॥ ११ ॥ परिचर्यापरा भार्या संसारे सुखसाधनम् ॥ किं

सुखको स्वीकार करके दुःखको सर्वथा त्याग देना चाहिए ॥ ७ ॥ वैर करनेवाले व्यक्तिको कदापि सुख नहीं मिलता। संग्रामरसके रसिक वीर भले ही वैरभावकी प्रशंसा करें। पण्डितजन उनकी सराहना नहीं करते ॥ ८ ॥ क्योंकि विद्वान् लोग शृंगाररसके प्रेमी होते हैं। वे इन्द्रियसुखमें बाधा डालनेवाले युद्धसे दूर भागते हैं। उनका तो कथन है कि फूलोंसे भी युद्ध न करना चाहिए—शस्त्रास्त्रोंसे युद्धकी तो बात ही व्यर्थ है ॥९॥ युद्धमें विजय सदा सन्दिग्ध रहती है, किन्तु बाणोंसे शरीर बिंधवाना निश्चित रहता है। जैसे समस्त विश्व सदा दैवके अधीन रहता है। उसी प्रकार जय और विजय भी दैवके अधीन रहती है ॥ १० ॥ जब यह निश्चित है कि जय-पराजय दैवके हाथमें रहती है। तब युद्ध कदापि न करना चाहिए। बल्कि समयपर स्नान, भोजन और शय्यापर शयन करना उचित है ॥ ११ ॥ यदि स्त्री सेवामें संलग्न रहे तो वह संसारमें सुखका सर्वश्रेष्ठ साधन होती है। भयंकर बाणवर्षाके बीच रणभूमिमें युद्ध

पर स्नान, भोजन और शय्यापर शयन करना उचित है ॥ ११ ॥ यदि स्त्री स्वामी संलग्न रहे तो वह संसारमें सुखकी सर्वश्रेष्ठ साधन होती है। भयंकर पाणियोंके बीच रणभूमिमें युद्ध

करनेसे कौनसा सुख प्राप्त हो सकता है ? ॥१२॥ जिसमें भयानक तलवारोंकी मार होती है, उस युद्धसे तो शत्रुको ही सुख मिलता है। कुछ लोग कहते हैं कि संग्राममें मरनेसे स्वर्ग प्राप्त होता है ॥१३॥ सो यह बात केवल फुसलाने और उभाड़नेके लिए कही ही जाती है। युद्धमें अपना शरीर कटवाये, उसकी पीड़ा सहे और कौओं तथा सियारों द्वारा शरीर नोचवानेके बाद यदि स्वर्गसुख प्राप्त हो तो ऐसा कौन मूर्ख होगा, जो यह सुख पाना चाहेगा ? हे वृत्र ! हमारी यही इच्छा है कि इन्द्रके साथ आपकी स्थायी मैत्री हो जाय ॥ १४ ॥ १५ ॥ ऐसा करनेसे आप तथा इन्द्र दोनों निरन्तर सुख पायेंगे। हम सब तपस्वी तथा गन्धर्वगण भी अपने-अपने आश्रमपर सुखसे रह सकेंगे ॥ १६ ॥ आप दोनोंका वैर शान्त हो जानेपर हम सबको अपार सुख मिलेगा। हे वीर ! जब आप दोनोंमें अहर्निश युद्ध चलता है तो मुनि, गन्धर्व, किन्नर और मनुष्य बड़ा कष्ट पाते हैं। अतएव हमलोग सर्वसाधारणकी शान्तिके निमित्त आप

सुखं युध्यतः संख्ये बाणवृष्टिभयंकरे ॥ १२ ॥ खड्गपातातिरौद्रे च तथाऽरातिसुखप्रदे ॥ संग्रामे मरणात्स्वर्गसुखप्राप्तिरिति स्फुटम् ॥१३॥ प्रलोभनपरं वाक्यं नोदनार्थं निरर्थकम् ॥ छित्त्वा देहं व्यथां प्राप्य शृगालकरटादिभिः ॥ १४ ॥ पश्चात्स्वर्गसुखावाप्तिं को वा वांछति मंदधीः ॥ सख्यं भवतु ते वृत्र शक्रेण सह नित्यदा ॥ १५ ॥ अवाप्स्यसि सुखं त्वं च शक्रश्चापि निरंतरम् ॥ वयं च तापसाः सर्वे गंधर्वाश्च निजाश्रमे ॥ १६ ॥ सुखवासं गमिष्यामः शांते वैरेऽधुनैव वाम् ॥ संग्रामे युवयोर्धीर वर्तमाने दिवानिशम् ॥ १७ ॥ पीड्यंते मुनयः सर्वे गंधर्वाः किन्नरा नराः ॥ सर्वेषां शांतिकामानां सख्यमिच्छामहे वयम् ॥ १८ ॥ मुनयस्त्वं च शक्रश्च प्राप्नुवंतु सुखं किल ॥ मध्यस्थाश्च वयं वृत्र युवयोः सख्यकारणे ॥१९॥ शपथं कारयित्वाऽत्र योजयामो मिथः प्रियम् ॥ शक्रस्तु शपथान्कृत्वा यथोक्तांश्च तवाग्रतः ॥ २० ॥ चित्तं ते प्रीतिसंयुक्तं करिष्यति तु सांप्रतम् ॥ सत्याधारा धरा नूनं सत्येन च दिवाकरः ॥२१॥ तपत्ययं यथाकालं वायुः सत्येन वाप्यथ ॥ उदन्वानपि मर्यादां सत्येनैव न मुंचति ॥२२॥ तस्मात्सत्येन सख्यं वां भवत्वद्य यथासुखम् ॥ एकत्र शयनं क्रीडा जलकेलिः सुखासनम् ॥२३॥ युवाभ्यां सर्वथा कार्यं कर्तव्यं सख्यमेत्य च ॥ व्यास उवाच ॥ महर्षिवचनं श्रुत्वा तानुवाच महामतिः ॥२४॥ अवश्यं भगवंतो मे माननीयास्तपस्विनः ॥ भवंतो मुनयः क्वापि न मिथ्यावादिनो भृशम् ॥२५॥

दोनोंमें मैत्री चाहते हैं ॥ १७ ॥ १८ ॥ ऐसा होनेसे सब मुनियोंको, आपको और इन्द्रको सुख प्राप्त होगा। हे महाभाग ! आप दोनोंमें मैत्री करानेके लिए हम मध्यस्थका काम करेंगे ॥ १९ ॥ हम शपथ कराके आप दोनोंको मित्र बना देंगे। आप जैसा चाहेंगे, वैसा इन्द्र भी आपके समक्ष शपथ लेंगे ॥२०॥ ऐसा करके इन्द्र आपके हृदयमें प्रेम भर देंगे। सत्यके सहारे पृथिवी टिकी हुई है। सत्यसे ही सूर्य नित्य तपते हैं। सत्यसे ही समयपर वायु चलती है। सत्यके ही कारण समुद्र अपनी मर्यादाका उल्लंघन नहीं करता ॥२१॥२२॥ अतएव सत्यके ही आधारपर आप दोनोंमें मैत्री हो जाए। जिससे आप और इन्द्र दोनों एक साथ सोयें, खेलें, जलविहार करें और सुखपूर्वक एक साथ बैठें ॥ २३ ॥ इस प्रकार मित्रताके बन्धनमें बँधकर आप दोनों अपने-अपने कर्तव्यका पालन करें। व्यासजी बोले—उन महर्षियोंके वचन सुनकर अत्यन्त बुद्धिमान् वृत्रने उनसे कहा—॥ २४ ॥ हे भगवन् ! आपका कथन यथार्थ है। आप

लोग हमारे माननीय तपस्वी हैं। आप मुनिगण कभी झूठ नहीं बोलते ॥ २५ ॥ आप लोग सदाचारी हैं तथा शान्त जीवन बितानेके अभ्यस्त हैं। अतएव आप छल-कपटकी बात नहीं जानते। किन्तु जिसके साथ शत्रुता हो जाय, जो शठ हो, जड़ हो, कामी हो, कलंकित हो और निर्लज्ज हो, उसके साथ बुद्धिमान् लोगोंको मित्रता नहीं करनी चाहिए। सो इन्द्र बड़ा निर्लज्ज, दुराचारी, ब्रह्महत्यारा, कामी और शठ प्राणी है ॥ २६ ॥ २७ ॥ ऐसे व्यक्तिके ऊपर कदापि विश्वास न करना चाहिए। आप लोग शान्तिके उपासक हैं। अतएव आप बकवादी धूर्तोंके मलिन हृदयकी बात नहीं जान सकते। मुनियोंने कहा—संसारका प्रत्येक प्राणी अपने किये हुए शुभ तथा अशुभ कर्मोंका फल भोगता है ॥ २८ ॥ २९ ॥ जिसकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है, वह द्रोह करके भी क्या कभी शान्ति प्राप्त कर सकता है? जो लोग विश्वासघात करते हैं, वे अवश्य नरकगामी होते हैं ॥ ३० ॥ विश्वासघाती प्राणियोंको विविध कष्ट भोगने पड़ते हैं। ब्रह्महत्या करनेवाले तथा मदिरा पीनेवालोंके लिए भी प्रायश्चित्तका विधान है। किन्तु विश्वासघाती और मित्रद्रोहीके लिए कोई भी प्रायश्चित्त नहीं कहा गया है। अतएव हे

सदाचाराः सुशांताश्च न विदुश्छलकारणम् ॥ कृतवैरे शठे स्तब्धे कामुके च गतत्विषि ॥ २६ ॥ निर्लज्जे नैव कर्तव्यं सख्यं मतिमता सदा ॥ निर्लज्जोऽयं दुराचारो ब्रह्महा लंपटः शठः ॥ २७ ॥ न विश्वासस्तु कर्तव्यः सर्वथैवेदृशे जने ॥ भवंतो निपुणाः सर्वे न द्रोहमतयः सदा ॥ २८ ॥ अनभिज्ञास्तु शांतत्वाच्चित्तानामतिवादिनाम् ॥ मुनय ऊचुः ॥ जंतुः कृतस्य भोक्ता वै शुभस्य त्वशुभस्य च ॥२९॥ द्रोहं कृत्वा कुतः शांतिमाप्नुयान्नष्टचेतनः ॥ विश्वासघातकर्तारो नरकं यांति निश्चयम् ॥ ३० ॥ दुःखं च समवाप्नोति नूनं विश्वासघातकः ॥ निष्कृतिर्ब्रह्महंतॄणां सुरापानां च निष्कृतिः ॥ ३१ ॥ विश्वासघातिनां नैव मित्रद्रोहकृतामपि ॥ समयं ब्रूहि सर्वज्ञ यथा ते चेतसि ध्रुवम् ॥३२॥ तेनैव समयेनाद्य संधिः स्यादुभयोः किल ॥ वृत्र उवाच ॥ न शुष्केण न चार्द्रेण नाश्मना न च दारुणा ॥ ३३ ॥ न वज्रेण महाभाग न दिवा निशि नव च ॥ वध्यो भवेयं विप्रेंद्राः शक्रस्य सह दैवतैः ॥ ३४ ॥ एवं मे रोचते संधिः शक्रेण सह नान्यथा ॥ व्यास उवाच ॥ ऋषयस्तं तदा प्राहुर्बाढमित्येव चादृताः ॥ ३५ ॥ समयं श्रावयामासुस्तत्रानीय सुरेश्वरम् ॥ इन्द्रोऽपि शपथांस्तत्र चकार विगतज्वरः ॥३६॥ साक्षिणं पावकं कृत्वा मुनीनां सन्निधौ किल ॥ वृत्रस्तु वचनैस्तस्य विश्वासमगमत्तदा ॥ ३७ ॥ बभूव मित्रवच्छक्रे सहचर्यापरायणः ॥ कदाचिन्नंदने चोभौ कदाचिद्गंधमादने ॥३८॥ कदाचिदुदधेस्तीरे

सर्वज्ञ! आप मैत्रीसन्धिके लिए अपने मनमें जो शर्त सोचे हों, उसे हमारे समक्ष रखिए ॥३१॥३२॥ उसी शर्तके अनुसार आज आप दोनोंमें सन्धि हो जाय! वृत्रने कहा—हे महाभाग! मेरी शर्त यही है कि न किसी शुष्क पदार्थसे, न किसी गीली वस्तुसे, न पत्थरसे, न काष्ठसे, न वज्रसे, न दिनमें और न रातमें इन्द्रके साथ मिलकर देवतालोग मेरा वध कर सकें ॥३३॥३४॥ इसी शर्तपर मैं इन्द्रके साथ सन्धि कर सकता हूँ—अन्यथा नहीं। व्यासजी बोले—हे राजन्! ऋषियोंने वृत्रकी शर्त आदरपूर्वक स्वीकार कर ली ॥ ३५ ॥ तदनन्तर उन लोगोंने इन्द्रको वहाँ बुलवाया और उन्हें वृत्रासुरकी शर्त बता दी। तब इन्द्रने शपथपूर्वक वह शर्त मंजूर की। ऐसा करनेसे उनकी मानसिक चिन्ता दूर हो गयी ॥ ३६ ॥ तत्पश्चात् उन्हीं मुनियोंके समक्ष अग्निको साक्षी बनाकर इन्द्रने सन्धिके नियमोंपर चलनेकी शपथ ली। इससे वृत्रको उनकी बातोंपर दृढ़ विश्वास हो गया ॥ ३७ ॥ उसके बाद इन्द्र और वृत्र साथ-साथ घूमने-फिरने

लगे । वे कभी नन्दनवनमें और कभी गन्धमादन पर्वतपर जाकर साथ-साथ विहार करते थे ॥ ३८ ॥ कभी-कभी वे दोनों मुदित मनसे समुद्रतटपर विचरते थे । इस प्रकार सन्धि हो जानेसे वृत्रको बड़ी प्रसन्नता हुई ॥ ३९ ॥ लेकिन इन्द्र सदा उसे मार डालनेका ही उपाय सोचते रहते थे और सदा उसकी कमजोरी ढूँढ़ा करते थे । इसी कारण उनका मन सदा उद्विग्न रहा करता था ॥ ४० ॥ इस प्रकार सोचते-विचारते कुछ वर्ष बीत गये । इस बीच वृत्रको इन्द्रपर भलीभाँति विश्वास हो गया ॥ ४१ ॥ इस तरह सन्धिके बाद जब कुछ वर्ष व्यतीत हो गये, तब इन्द्रने मन ही मन वृत्रको मारनेका उपाय सोच लिया ॥ ४२ ॥ उधर एक दिन वृत्रके पिता त्वष्टाने अपने पुत्रको इन्द्रपर अधिक विश्वस्त देखकर कहा—हे पुत्र वृत्र ! मैं तुम्हारे हितकी बात कहता हूँ, उसे सुनो ॥ ४३ ॥ जिसके साथ पहले वैर रह चुका हो, उसके ऊपर कदापि विश्वास नहीं करना चाहिए । इन्द्र तुम्हारा पुराना शत्रु है । वह सदा अब भी औरोंके गुणोंमें दोष खोजा करता है ॥४४॥ वह सदा लोभसे उन्मत्त रहता है, सबसे द्वेष रखता है, औरोंको दुःखमें देखकर सुखी होता है, परस्त्रीके साथ व्यभिचार करता है और वह मनमें कुत्सित

मोदमानौ विचेरतुः ॥ एवं कृते च संधाने वृत्रः प्रमुदितोऽभवत् ॥३९॥ शक्रोऽपि वधकामस्तु तदुपायानचिंयत् ॥ रंध्रान्वेषी समुद्विग्नस्तदाऽसीन्मघवा भृशम् ॥ ४० ॥ एवं चिंतयतस्तस्य कालः समभिवर्तत ॥ विश्वासं परमं प्राप वृत्रः शक्रेऽतिदारुणे ॥ ४१ ॥ एवं कतिचिदब्दानि गतानि समये कृते ॥ वृत्रस्य मारणोपायान्मनसींद्रोऽप्यचिंतयत् ॥४२॥ त्वष्टैकदा सुतं प्राह विश्वस्तं पाकशासने ॥ पुत्र वृत्र महाभाग शृणु मे वचनं हितम् ॥४३॥ न विश्वासस्तु कर्तव्यः कृतवैरे कथंचन ॥ मघवा कृतवैरस्ते सदाऽसूयापरः परैः ॥४४॥ लोभान्मत्तो द्वेषरतः परदुःखोत्सवान्वितः ॥ परदारलंपटः स पापबुद्धिः प्रतारकः ॥ ४५ ॥ रंध्रान्वेषी द्रोहपरो मायावी मदगर्वितः ॥ यः प्रविश्योदरे मातुर्गर्भच्छेदं चकार ह ॥ ४६ ॥ सप्तकृत्वः सप्तकृत्वः क्रंदमानमनातुरः ॥ तस्मात्पुत्र न कर्तव्यो विश्वासस्तु कथंचन ॥ ४७ ॥ कृतपापस्य का लज्जा पुनः पुत्र प्रकुर्वतः ॥ व्यास उवाच ॥ एवं प्रबोधितः पित्रा वचनैर्हेतुसंयुतैः ॥ ४८ ॥ न बुबोध तदा वृत्र आसन्नमरणः किल ॥ स कदाचित्समुद्रान्ते तमपश्यन्महासुरम् ॥ ४९ ॥ संध्याकाल उपावृत्ते मुहूर्तेऽतीव दारुणे ॥ ततः संचिंत्य मघवा वरदानं महात्मनाम् ॥ ५० ॥ संध्येयं वर्तते रौद्रा न रात्रिर्दिवसो न च ॥ हंतव्योऽयं मया चाद्य बलेनैव न

वासनायें रखनेवाला कपटी जीव है ॥४५॥ वह सदा मौकेकी खोजमें रहता है, तुमसे द्रोह करता है, मायावी है और मदमत्त रहता है । उसने एक बार माताके पेटमें घुसकर उसका गर्भ काट डाला था ॥ ४६ ॥ उसने बिना किसी भयके उस गर्भस्थ शिशुको काटकर सात टुकड़े कर दिये और जब वे सातों रोने लगे, तब फिर एक-एक टुकड़ेके सात-सात खण्ड कर दिये । अतएव हे पुत्र ! उसके ऊपर तुम कभी भी विश्वास न करना ॥ ४७ ॥ हे पुत्र ! जो एक बार पाप कर चुका, उसे फिर पाप करनेमें लज्जा क्यों आने लगी ? व्यासजी कहते हैं कि इस प्रकार मतलब भरी बातें कहकर त्वष्टाने अपने पुत्रको भलीभाँति समझाया ॥४८॥ किन्तु वृत्रकी मृत्यु समीप आ चुकी थी । इसलिए इन बातोंका उसपर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा । अन्तमें एक दिन इन्द्रने वृत्रको समुद्रतटपर विचरते देखा ॥ ४९ ॥ उस समय अतीव दारुण सन्ध्याकाल उपस्थित था । तब इन्द्रने महात्मा मुनियोंके वरदानका स्मरण किया (कि तुम न दिनमें मरोगे और न रात को) ॥ ५० ॥ उन्होंने यह सोचा कि यह भीषण सन्ध्याका समय है । न इस समय दिन है और न रात । अतएव अब मैं इसे अपनी शक्तिसे मार डालूँगा । इसमें कोई

संशय नहीं है। इस समय यह अकेला है और समय भी अनुकूल है। ऐसा विचार करके इन्द्रने मन ही मन अविनाशी विष्णुभगवानका स्मरण किया ॥५१॥५२॥ स्मरण करते ही भगवान विष्णु अदृश्य रूपसे वहाँ जा पहुँचे और तत्काल इन्द्रके वज्रमें प्रविष्ट हो गये ॥ ५३ ॥ अब इन्द्र वृत्रको मारनेकी युक्ति सोचने लगे। उन्होंने विचार किया कि अपने शत्रुको मैं कैसे मारूँ ? ॥ ५४ ॥ क्योंकि मेरा शत्रु सभी देवताओं और दैत्योंसे अजेय है। अतएव सम्मुख युद्धमें मैं इसे न मार सकूँगा। यदि महाबली वृत्रको धोखेसे मैं नहीं मार डालता और यह जीवित बच जाता है तो मेरा कल्याण नहीं होगा। उसी समय इन्द्रकी दृष्टि पर्वतके समान ढेरके ढेर समुद्रफेनपर पड़ी ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ उन्होंने सोचा कि ऋषियोंकी शर्तके अनुसार न यह गीला है, न सूखा है और न कोई शस्त्र ही है। ऐसा विचार करके उन्होंने वह फेन उठा लिया ॥ ५७ ॥ और परम भक्तिके साथ भगवती परा शक्तिका स्मरण किया। स्मरण करते ही देवीने उस फेनमें अपना अंश स्थापित कर दिया ॥ ५८ ॥ तब जिसमें भगवान विष्णु पहले ही प्रविष्ट हो चुके थे, उस वज्रको उसी फेनसे ढाँककर इन्द्रने वृत्रपर चला दिया

संशयः ॥ ५१ ॥ एकाकी विजने चात्र संप्राप्तः समयोचितः ॥ एवं विचार्य मनसा सस्मार हरिमव्ययम् ॥ ५२ ॥ तत्राजगाम भगवानदृश्यः पुरुषोत्तमः ॥ वज्रमध्ये प्रविश्यासौ संस्थितो भगवान्हरिः ॥ ५३ ॥ इन्द्रो बुद्धिं चकाराशु तदा वृत्रवधं प्रति ॥ इति संचिन्त्य मनसा कथं हन्यां रिपुं रणे ॥ ५४ ॥ अजेयं सर्वथा सर्वदेवैश्च दानवैस्तथा ॥ यदि वृत्रं न हन्म्यद्य वंचयित्वा महाबलम् ॥ ५५॥ न श्रेयो मम नूनं स्यात्सर्वथा रिपुरक्षणात् ॥ अपां फेन तदाऽपश्यत्समुद्रे पर्वतोपमम् ॥ ५६ ॥ नायं शुष्को नाचार्द्रोऽयं न च शस्त्रमिदं तथा ॥ अपां फेनं तदा शक्रो जग्राह किल लीलया ॥ ५७ ॥ परां शक्तिं च सस्मार भक्त्या परमया युतः ॥ स्मृतमात्रा तदा देवी स्वांशं फेने न्यधापयत् ॥ ५८ ॥ वज्रं तदावृतं तत्र चकार हरिसंयुतम् ॥ फेनावृतं पविं तत्र शक्रश्चिक्षेप तं प्रति ॥ ५९ ॥ सहसा निपपाताशु वज्राहत इवाचलः ॥ वासवस्तु प्रहृष्टात्मा बभूव निहते तदा ॥ ६० ॥ ऋषयश्च महेंद्रं तमस्तुवन्विविधैः स्तवैः ॥ हतशत्रुः प्रहृष्टात्मा वासवः सह दैवतैः ॥ ६१ ॥ देवीं संपूजयामास यत्प्रसादाद्धतो रिपुः ॥ प्रसादयामास तदा स्तोत्रैर्नानाविधैरपि ॥ ६२ ॥ देवोद्याने पराशक्तेः प्रासादमकरोद्धरिः ॥ पद्मरागमयीं मूर्तिं स्थापयामास वासवः ॥६३॥ त्रिकालं महतीं पूजां चक्रुः सर्वेऽपि निर्जराः ॥ तदाप्रभृति देवानां श्रीदेवी कुलदैवतम् ॥ ६४ ॥ विष्णुं त्रिभुवनश्रेष्ठं पूजयामास वासवः ॥ ततो

॥ ५९ ॥ वज्रके लगते ही वृत्र वज्रसे आहत पर्वतके समान छिन्न-भिन्न होकर छितरा गया। इस प्रकार वृत्रके मर जानेपर इन्द्रकी अन्तरात्मा निहाल हो गयी ॥ ६० ॥ उस समय अन्यान्य ऋषियोंने आकर विविध स्तोत्रों द्वारा इन्द्रकी स्तुति की। इस प्रकार वैरीका विनाश हो जानेपर देवताओं समेत इन्द्र बहुत प्रसन्न हुए ॥ ६१ ॥ तदनन्तर जिन महामायाकी कृपासे उस महान् शत्रुका संहार हुआ था, उन देवीकी पूजा सब देवताओंके साथ इन्द्रने की और अनेक स्तोत्रोंसे उन्होंने भगवतीकी स्तुति की ॥६२॥ देवताओंके उद्यान नन्दनवनमें विष्णु भगवानने महामायाका विशाल मन्दिर बनवाया। देवराज इन्द्रने उस प्रासादमें पद्मराग (पुखराज) मणिकी मूर्ति स्थापित की ॥ ६३ ॥ तबसे बराबर तीनों समय देवगण बड़ी धूमधामसे भगवतीका पूजन करने लगे। तभीसे वे महादेवी देवताओंकी कुलदेवी बन गयीं ॥ ६४ ॥ तदनन्तर इन्द्रने तीनों लोकमें श्रेष्ठ भगवान विष्णुकी पूजा की। उधर देवताओंको

सतानेवाले महाबली वृत्रके मरते ही शीतल-मन्द बयार बहने लगी। देवता, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और किन्नर वृत्रके मर जानेपर बहुत हर्षित हुए ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ क्योंकि भगवती परा शक्तिके समुद्रफेनमें प्रविष्ट होनेसे उन्हींके द्वारा वृत्रको मतिभ्रम हो गया था। जिससे अचानक वह इन्द्रके हाथों मार डाला गया ॥ ६७ ॥ इसीसे वे भगवती संसारमें 'वृत्रनिहन्त्री' इस नामसे विख्यात हुईं। प्रगटरूपमें इन्द्रने वृत्रका वध किया था। अतएव वे 'वृत्रहन्ता' इस नामसे विख्यात हुए ॥ ६८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा' भाषाटीकायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

(वृत्रकी हत्यासे भयभीत इन्द्रका भागकर मानसरोवरके कमलनालमें छिपना और नहुषका इन्द्रपद पाना) व्यासजीने कहा—हे महाराज ! वृत्रको धरतीपर गिरा देखकर भगवान विष्णु अपनी विष्णुपुरीको चले गये। किन्तु उन्हें ब्रह्महत्याका डर बना रहा ॥ १ ॥ इन्द्र भी ब्रह्महत्यासे डरते हुए अपने घर गये। सब मुनिगण भी वृत्रके मारे जानेपर भयभीत हो उठे

हते महावीर्ये वृत्रे देवभयंकरे ॥ ६५ ॥ प्रववौ च शिवो वायुर्जहृषुर्देवतास्तथा ॥ हते तस्मिन्सगंधर्वा यक्षराक्षसकिन्नराः ॥ ६६ ॥ इत्थं वृत्रः पराशक्तिप्रवेशयुतफेनतः ॥ तया कृतविमोहाच्च शक्रेण सहसा हतः ॥ ६७ ॥ ततो वृत्रनिहंत्रीति देवी लोकेषु गीयते ॥ शक्रेण निहतत्वाच्च शक्रेण हत उच्यते ॥ ६८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

॥ व्यास उवाच ॥ अथ तं पतितं दृष्ट्वा विष्णुर्विष्णुपुरीं ययौ ॥ मनसा शंकमानस्तु तस्य हत्याकृतं भयम् ॥ १ ॥ इन्द्रोऽपि भयसंत्रस्तो ययाविंद्रपुरीं ततः ॥ मुनयो भयसंविग्ना ह्यभवन्निहते रिपौ ॥ २ ॥ किमस्माभिः कृतं पापं यदसौ वंचितः किल ॥ मुनिशब्दो वृथा जातः सुरेशस्य च संगमात् ॥ ३ ॥ अस्माकं वचनाद्वृत्रो विश्वासमगमत्किल ॥ विश्वासघातिनः संगाद्वयं विश्वासघातकाः ॥ ४ ॥ धिगियं ममता पापमूलमेवमनर्थकृत् ॥ यदस्माभिश्छलं कृत्वा शपथैर्वंचितोऽसुरः ॥ ५ ॥ मंत्रकृद्बुद्धिदाता च प्रेरकः पापकारिणाम् ॥ पापभाक्स भवेन्नूनं पक्षकर्ता तथैव च ॥ ६ ॥ विष्णुनाऽपि कृतं पापं यत्साहाय्यमवाप्तवान् ॥ वज्रे प्रविश्य येनासौ पातितः सत्त्वमूर्तिना ॥ ७ ॥ नूनं स्वार्थपरः प्राणी न पापात्त्रा-

॥ २ ॥ वे सोचने लगे कि हमने वृत्रको धोखा देकर बहुत बड़ा पाप किया। इन्द्रका साथ करनेसे हमारा मुनि नाम व्यर्थ हो गया ॥ ३ ॥ हमारी ही बातोंमें आकर वृत्रने इन्द्रपर विश्वास किया था। सो विश्वासघातीका सङ्ग करनेसे हम सब भी विश्वासघाती हो गये ॥ ४ ॥ इस ममताको धिक्कार है। क्योंकि ममता ही सब अनर्थोंकी जड़ है। इसीके फेरमें पड़कर हमने छलपूर्वक शपथ ली और बादमें उस असुरको धोखा दिया ॥ ५ ॥ यह शास्त्रीय विधान है कि अपराध करनेकी सलाह देनेवाला, रास्ता बतानेवाला, प्रेरणा देनेवाला और उसका पक्ष लेनेवाले भी वैसे ही दण्डके भागीदार होते हैं, जैसे वास्तविक अपराधी दोषके भागी होते हैं ॥ ६ ॥ इसे सहायता देने तथा वज्रमें प्रविष्ट होकर वृत्रका वध करनेके कारण सतोगुणके मूर्तरूप भगवान विष्णु भी इस पापके भागी हैं ॥ ७ ॥ विष्णु भगवानने इन्द्रकी सहायताके लिए ऐसा काम किया है, जो उन्हें न करना चाहिए। जब उन्होंने ऐसा किया तो यह निश्चित हो जाता है कि

स्वार्थी प्राणी पाप-कर्मसे नहीं डरते ॥ ८ ॥ इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि इस समय संसारमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार पदार्थोंमेंसे त्रिलोकदुर्लभ पहला धर्म और चौथा मोक्ष ये दोनों पदार्थ लुप्त हो गये हैं। अब तो अर्थ और काम ही प्रशस्त माने जाते हैं। तब जो बड़े लोग धर्म और अधर्मकी विवेचना करते हैं, वह केवल वाचिक दम्भमात्र है ॥९॥१०॥ इस प्रकार बारम्बार पश्चात्ताप करके वे विमनस्क मुनिगण अपने-अपने आश्रमको चले गये। उनका सब कार्यक्रम स्थगित हो गया ॥ ११ ॥ हे महाराज जनमेजय ! जब त्वष्टा (विश्वकर्मा) को पता लगा कि उनके पुत्र वृत्रको इन्द्रने मार डाला है तो वे दुखी होकर रोने लगे। इससे उन्हें बड़ी वेदना हुई ॥ १२ ॥ तदनन्तर वे उस स्थानपर गये, जहाँ वृत्र मरकर पड़ा हुआ था। उसे देखकर बड़े दुखी हृदयसे त्वष्टाने उसका दाहकर्म तथा समस्त पारलौकिकी क्रिया सम्पन्न की ॥ १३ ॥ तत्पश्चात् स्नान करके उन्होंने जलाञ्जलि देकर पुत्रका और्ध्वदैहिक कर्म पूर्ण किया। उसके बाद शोकसे आर्त त्वष्टाने मित्रघाती पापी इन्द्रको शाप दिया कि–॥१४॥ जिस तरह इन्द्रने मेरे पुत्रको झूठी शपथसे फुसलाकर मार डाला है। उसी प्रकार इन्द्रको भी विधाताके द्वारा दिये हुए

समश्नुते ॥ हरिणा हरिसंगेन सर्वथा दुष्कृतं कृतम् ॥ ८ ॥ द्वावेव स्तः पदार्थानां द्वावेव निधनं गतौ ॥ प्रथमश्च तुरीयश्च यौ त्रिलोक्यां तु दुर्लभौ ॥ ९ ॥ अर्थकामौ प्रशस्तौ द्वौ सर्वेषां संमतौ प्रियौ ॥ धर्माधर्मेति वाग्वादो दम्भोऽयं महतामपि ॥ १० ॥ मुनयोऽपि मनस्तापमेवं कृत्वा पुनः पुनः ॥ जग्मुः स्वानाश्रमानेव विमनस्का हतोद्यमाः ॥ ११ ॥ त्वष्टा तु निहतं श्रुत्वा पुत्रमिंद्रेण भारत ॥ रुरोद दुःखसंतप्तो निर्वेदमगमत्पुनः ॥ १२ ॥ यत्रासौ पतितस्तत्र गत्वा वीक्ष्य तथागतम् ॥ संस्कारं कारयामास विधिवत्पारलौकिकम् ॥ १३ ॥ स्नात्वाऽस्य सलिलं दत्त्वा कृत्वा चैवौर्ध्वदैहिकम् ॥ शशापेंद्रं स शोकार्तः पापिष्ठं मित्रघातकम् ॥ १४ ॥ यथा मे निहतः पुत्रः प्रलोभ्य शपथैर्भृशम् ॥ तथेंद्रोऽपि महद्दुःखं प्राप्नोतु विधिनिर्मितम् ॥ १५ ॥ इति शप्त्वा सुरेशानं त्वष्टा तापसमन्वितः ॥ मेरोः शिखरमास्थाय तपस्तेपे सुदुष्करम् ॥ १६ ॥ जनमेजय उवाच ॥ हत्वा त्वाष्ट्रं सुरेशोऽथ कामवस्थामवाप्तवान् ॥ सुखं वा दुःखमेवाग्रे तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १७ ॥ व्यास उवाच ॥ किं पृच्छसि महाभाग संदेहः कीदृशस्तव ॥ अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥ १८ ॥ बलिष्ठैर्दुर्बलैर्वाऽपि स्वल्पं वा बहु वा कृतम् ॥ सर्वथैव हि भोक्तव्यं सदेवासुरमानुषैः ॥ १९ ॥ शक्रायेत्थं मतिर्दत्ता हरिणा वृत्रघातिने ॥ प्रविष्टोऽथ पविं विष्णुः सहायः प्रत्यपद्यत ॥ २० ॥ न चापदि सहायोऽ-

अपार कष्ट भोगने पड़ेंगे ॥१५॥ इन्द्रको इस प्रकार शाप देकर पुत्रशोकसे सन्तप्त त्वष्टा सुमेरुपर्वतपर चले गये। वहाँ जाकर वे अति कठोर तप करने लगे ॥१६॥ राजा जनमेजय बोले–हे मुनिराज ! वृत्रका वध करनेके पश्चात् इन्द्रकी क्या दशा हुई ? आगे वे दुःख ही भोगते रहे अथवा कभी उन्हें सुखका अवसर भी सुलभ हुआ ? मुझे यह प्रसंग बतानेकी कृपा करें ॥१७॥ व्यासजीने कहा–हे महाभाग ! प्राणीको अपने किये हुए शुभाशुभ कर्मोंका फल अवश्य भोगना पड़ता है। तब आपको सन्देह क्यों हुआ ? ॥१८॥ यह नियम देवता, दानव और मानव–सभीके लिये अनिवार्य है। बलवान् हो अथवा दुर्बल–उसके द्वारा जो भी थोड़ा या बहुत कर्म बन गया है, उसका फल भोगना उसके लिए सर्वथा अनिवार्य है ॥१९॥ वृत्रासुरके वधकी सलाह स्वयं विष्णु भगवान्‌ने दी थी और उनके वज्रमें प्रविष्ट होकर उनकी सहायता की थी ॥ २० ॥ किन्तु इन्द्र जब विपत्तिमें पड़ गये, तब विष्णुने उनकी सहायता नहीं की। क्योंकि संसारमें प्रायः देखा जाता है कि

और उनके वज्रमें प्रविष्ट होकर उनकी सहायता की थी ॥ २० ॥ किन्तु इन्द्र जब विपत्तिमें पड़ गये, तब विष्णुने उनकी सहायता नहीं की। क्योंकि संसारमें प्रायः देखा जाता है कि

अच्छे समयपर सभी अपने सगे बन जाते हैं। परन्तु जब दैव प्रतिकूल हो जाता है, तब कोई किसीका सहायक नहीं होता। दुर्भाग्यके अवसरपर माता, पिता, भाई, स्त्री, सेवक, मित्र अथवा पुत्र—इनमेंसे किसीके द्वारा कोई सहायता नहीं मिलती ॥ २१–२३ ॥ कर्ताको ही पाप और पुण्यके फल भोगने पड़ते हैं। वृत्रवधके बाद सब लोग अपने-अपने स्थानोंपर चले गये। उस समय इन्द्रका तेज बिल्कुल क्षीण हो गया था ॥ २४ ॥ 'यह इन्द्र ब्रह्मघाती है' यों धीरे-धीरे कहकर सब देवता उनकी निन्दा करने लगे। 'कौन ऐसा व्यक्ति है, जो प्रतिज्ञापूर्वक सत्य वचनसे बँध जानेपर भी अपने विश्वस्त एवं मित्र बने हुए मनुष्यके प्राण हरनेको उद्यत हो जाय'—यह बात देवताओंके समाजमें, दिव्य उपवनोंमें तथा गन्धर्वोंकी गोष्ठीमें—सर्वत्र विस्तारके साथ फैल गयी। सब लोग कहने लगे—'वृत्रवधकी कामनामें फँसकर इन्द्रने यह कैसा दुष्कर्म कर डाला ? ॥ २५–२७ ॥ उन विश्वस्त मुनियोंके द्वारा प्रतारित वृत्रके साथ कपट-

भूद्वासुदेवः कथंचन ॥ समये स्वजनः सर्वः संसारेऽस्मिन्नराधिप ॥ २१ ॥ दैवे विमुखतां प्राप्ते न कोऽप्यस्ति सहायवान् ॥ पिता माता तथा भार्या भ्राता वाऽथ सहोदरः ॥ २२ ॥ सेवको वाऽपि मित्रं वा पुत्रश्चैव तथौरसः ॥ प्रतिकूले गते दैवे न कोऽप्येति सहायताम् ॥ २३ ॥ भोक्ता पापस्य पुण्यस्य कर्ता भवति सर्वथा ॥ वृत्रं हत्वा गताः सर्वे निस्तेजस्कः शचीपतिः ॥ २४ ॥ शेपुस्तं त्रिदशाः सर्वे ब्रह्महेत्यब्रुवञ्छनैः ॥ को नाम शपथान्कृत्वा सत्यं दत्त्वा वचः पुनः ॥ २५ ॥ जिघांसति सुविश्वस्तं मुनिं मित्रत्वमागतम् ॥ देवगोष्ठ्यां सुरोद्याने गंधर्वाणां समागमे ॥ २६ ॥ सर्वत्रैव कथा तस्य विस्तारमगमत्किल ॥ किं कृतं दुष्कृतं कर्म शक्रेणाद्य जिघांसता ॥ २७ ॥ वृत्रं छलेन विश्वस्तं मुनिभिश्च प्रतारितम् ॥ वेदप्रमाणमुत्सृज्य स्वीकृतं सौगतं मतम् ॥ २८ ॥ यदयं निहतः शत्रुर्वंचयित्वाऽतिसाहसात् ॥ को नाम वचनं दत्त्वा विपरीतमथाचरेत् ॥ २९ ॥ बिना शक्रं हरिं वाऽऽपि यथाऽयं विनिपातितः ॥ एवंविधाः कथाश्चान्याः समाजेष्वभवन्भृशम् ॥ ३० ॥ शुश्रावेंद्रोऽपि विविधाः स्वकीर्तेर्हानिकारकाः ॥ यस्य कीर्तिर्हता लोके धिक्तस्यैव कुजीवितम् ॥ ३१ ॥ यं दृष्ट्वा पथि गच्छंतं शत्रुः स्मेरमुखो भवेत् ॥ इन्द्रद्युम्नोऽपि राजर्षिः पतितः कीर्तिसंक्षयात् ॥ ३२ ॥ स्वर्गादकृतपापोऽसौ पापकृत्किं न पात्यते ॥ स्वल्पेऽपराधेऽपि नृपो ययातिः पतितः किल ॥ ३३ ॥ नृपः कर्कटतां प्राप्तो युगान-

व्यवहार करके इन्द्रने वेदकी प्रामाणिकता त्यागकर बौद्धमत स्वीकार कर लिया ॥ २८ ॥ अपने शत्रुको धोखा देकर बड़े साहसके साथ इन्द्रने मारा है। पहले अभयदान देकर बादमें ऐसे विश्वासघातका काम कौन करेगा ? ॥ २९ ॥ ऐसे छलपूर्ण व्यवहार इन्द्र और विष्णुभगवानके सिवाय और कोई नहीं कर सकता। जनसाधारणमें ऐसी-ऐसी चर्चायें बराबर होने लगीं ॥ ३० ॥ अपनी कीर्ति नष्ट करनेवाली तरह-तरहकी बातें इन्द्र भी सुनते रहे। जगत्में जिसकी कीर्ति नष्ट हो गयी, उस व्यक्तिके कलुषित जीवनको धिक्कार है ॥३१॥ रास्तेमें जाते हुए ऐसे व्यक्तिको देखकर शत्रु हँस पड़ते हैं। इन्द्रद्युम्न राजर्षि माने जाते थे। उन्होंने कुछ भी पाप नहीं किया था, किन्तु कीर्ति नष्ट हो जानेके कारण वे भी स्वर्गसे ढकेल दिये गये। फिर जो स्वयं पापकर्म कर चुका है, वह कैसे नहीं गिरेगा ? राजा ययाति भी बहुत थोड़े अपराधपर स्वर्गसे बहिष्कृत कर दिये गये थे ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ऐसे ही एक राजा थे, जिन्हें अठारह

युगोंतक केकड़ेकी योनिमें रहना पड़ा। महर्षि जमदग्निकी पत्नी अथवा अपनी माता रेणुकाका मस्तक काटनेपर परशुरामरूपधारी भगवान्‌को भी मकर आदि पशुओंकी योनिमें जन्म लेना पड़ा था। विष्णुको भी वामन बनकर राजा बलिके घर भीख माँगने जाना पड़ा ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ तब यदि कुकर्मी मनुष्य दुःख पाये तो क्या आश्चर्य है? हे राजन्! भृगुके शापसे भगवान रामको भी सीताके विरहका घोर संकट झेलना पड़ा था। उसी प्रकार इन्द्रके समक्ष भी ब्रह्महत्याका महान् भय उपस्थित था ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ घरमें सम्पूर्ण सिद्धियोंके रहते हुए भी इन्द्रके मनमें शान्ति नहीं थी। वे सभामें बिल्कुल बैठते ही नहीं थे। वे भयसे घबराकर जोर-जोरसे श्वास लिया करते और कभी-कभी मूर्छित भी हो जाते थे। यह स्थिति देखकर इन्द्राणीने उनसे पूछा—'प्रभो! आपका भयंकर शत्रु तो मार ही डाला गया, फिर आप इतने भयभीत क्यों हैं? हे शत्रुपर विजय प्राप्त करनेवाले स्वामिन्! कौन-सी चिन्ता आपको बेचैन कर रही है? हे लोकेश! आप एक साधारण प्राणीकी भाँति क्यों लम्बी साँस खींचते हुए सदा सोचमें डूबे रहते हैं? ॥ ३८ – ४० ॥ दूसरा कोई बलवान् शत्रु तो दीखता भी नहीं, जिससे आप इतने

ष्टादशैव तु ॥ भृगुपत्निशिरश्छेदाद्भगवान्हरिरच्युतः ॥ ३४ ॥ ब्रह्मशापात्पशोर्योनौ संजातो मकरादिषु ॥ विष्णुश्च वामनो भूत्वा याचनार्थं बलेर्गृहे ॥ ३५ ॥ गतः किमपरं दुःखं प्राप्नोति दुष्कृतो नरः ॥ रामोऽपि वनवासेषु सीताविरहजं बहु ॥ ३६ ॥ दुःखं च प्राप्तवान्घोरं भृगुशापेन भारत ॥ तथेंद्रोऽपि ब्रह्महत्याकृतं प्राप्य महद्भयम् ॥ ३७ ॥ न स्वास्थ्यं प्राप गेहेऽसौ सर्वसिद्धिसमन्विते ॥ पौलोमी तं सभाहीनं दृष्ट्वा प्रोवाच वासवम् ॥ ३८ ॥ निःश्वसंतं भयत्रस्तं नष्टसंज्ञं विचेतसम् ॥ किं प्रभोऽद्य भयार्तोऽसि मृतस्ते दारुणो रिपुः ॥ ३९ ॥ का चिंता वर्तते कांत तव शत्रुनिषूदन ॥ कस्माच्छोचसि लोकेश निःश्वसन्प्राकृतो यथा ॥ ४० ॥ नान्योऽस्ति बलवाञ्छत्रुर्येन चिंतापरो भवान् ॥ इन्द्र उवाच ॥ नारातिर्बलवान्मेऽस्ति म शांतिर्न सुखं तथा ॥ ४१ ॥ ब्रह्महत्याभयाद्राज्ञि बिभेमि सततं गृहे ॥ न नंदनं सुखकरं नामृतं न गृहं वनम् ॥ ४२ ॥ गंधर्वाणां तथा गेयं नृत्यमप्सरसां पुनः ॥ न त्वं सुखकरा नारी नाना च सुरयोषितः ॥ ४३ ॥ न तथा कामधेनुश्च देववृक्षः सुखप्रदः ॥ किं करोमि क्व गच्छामि क्व शर्म मम जायते ॥ ४४ ॥ इति चिंतापरः कान्ते न लभे सुखमात्मनि ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्त्वा वचनं शक्रः प्रियां परमकातराम् ॥ ४५ ॥ निर्जगाम गृहान्मन्दो मानसं सर उत्तमम् ॥ पद्मनाले प्रविष्टोऽसौ भयार्तः शोककर्षितः ॥ ४६ ॥ न प्राज्ञायत देवेन्द्र-

चिन्तातुर हो गये।' इन्द्रने कहा—हे राज्ञी! अब यद्यपि मेरा कोई बलवान् शत्रु नहीं है, तथापि ब्रह्महत्याके भयसे मैं इतना डर गया हूँ कि घरमें रहते हुए भी न मुझे सुख है और न शान्ति है। मेरे लिए न तो नन्दनवन सुखदायी प्रतीत हो रहा है और न अमृत तथा यह देवप्रासाद ही। गन्धर्वोंके गान और अप्सराओंके नृत्य भी मुझे सुखकर नहीं प्रतीत होते। तुम जैसी सहधर्मिणी तथा अन्य देवाङ्गनायें भी मुझे सुखी नहीं कर सकतीं। कामधेनु गौ और कल्पवृक्षसे भी मैं सुख नहीं पा रहा हूँ। क्या करूँ? कहाँ जानेसे मेरा कल्याण होगा? प्रिये! इसी चिन्तासे व्यग्र रहनेके कारण मेरे अन्तःकरणमें आग धधक रही है। व्यासजी बोले—हे राजन्! अत्यन्त घबरायी हुई अपनी प्रेयसी भार्या शचीसे उपर्युक्त बातें कहकर इन्द्र घरसे निकलकर मानसरोवर चले गये। भयसे उनका कलेजा काँप रहा था। शोकके कारण उनकी शक्ति क्षीण हो गयी थी। वे उस उत्तम सरोवरमें जाकर एक कमलके नालमें छिप गये ॥४१–४६॥

उस समय इन्द्रको अपने कर्तव्यका ज्ञान नहीं रहा। क्योंकि घृणित कर्म करनेसे उनकी प्रतिभा नष्ट हो चुकी थी। वे जलमें छिपकर समय व्यतीत करते थे, जैसे कोई साँप जीवन-रक्षाके लिये प्रयत्नशील हो ॥ ४७ ॥ उस अवसरपर उनका कोई भी सहायक नहीं था। चिन्तासे व्याकुलता बढ़ गयी थी। इन्द्रियोंमें क्षोभ उत्पन्न हो गया था। हे राजन्! जब ब्रह्महत्याके भयसे दुखी होकर इन्द्र वहाँ चले गये ॥ ४८ ॥ तब देवताओंका मन चिन्तासे संतप्त हो उठा। ऋषि, सिद्ध और गन्धर्व सभी भयभीत हो उठे ॥ ४९ ॥ अनेक प्रकारके उत्पात होने लगे। उपद्रवोंसे अभिभूत सारे जगत्में कोई शासक नहीं रहा। मेघोंने पानी बरसाना बंद कर दिया और पृथ्वीमें धान्य उपजानेकी शक्ति नहीं रह गयी। नदियोंकी धारायें सूख गयीं। तालाब बिना जलके हो गये। इस प्रकारकी अराजकता फैल जानेपर सब देवताओं और मुनियोंने परस्पर विचार करके नहुषको स्वर्गका शासक बना दिया। नहुष धर्मात्मा था। फिर भी इन्द्र बन जानेपर उसके मनमें राजसी वृत्ति उत्पन्न हो गयी। फलस्वरूप वह कामबाणसे आहत होकर विषयोंमें आसक्त हो गया और अप्सराओंके साथ देवोद्यानोंमें विहार करने लगा ॥५१–५३॥

स्त्वभिभूतश्च कल्मषैः ॥ प्रतिच्छन्नो वसत्यप्सु चेष्टमान इवोरगः ॥४७॥ असहायस्तुराषाडैच्चिन्तार्तो विकलेंद्रियः ॥ ततः प्रनष्टे देवेन्द्रे ब्रह्महत्याभयार्दिते ॥ ४८ ॥ सुराश्चितातुराश्चासन्नुत्पाताश्चाभवन्नथ ॥ ऋषयः सिद्धगन्धर्वा भयार्ताश्चाभवन्भृशम् ॥ ४९ ॥ अराजकं जगत्सर्वमभिभूतमुपद्रवैः ॥ अवर्षणं तदा जातं पृथिवी क्षणवैभवा ॥ ५० ॥ विच्छिन्नस्रोतसो नद्यः सरांस्यनुदकानि वै ॥ एवं त्वराजके जाते देवता मुनयस्तथा ॥ ५१ ॥ विचार्य नहुषं चक्रुः शक्रं सर्वे दिवौकसः ॥ संप्राप्य नहुषो राजा धर्मिष्ठोऽपि रजोबलात् ॥ ५२ ॥ बभूव विषयासक्तः पंचबाणशराहतः ॥ अप्सरोभिर्वृतः क्रीडन्देवोद्यानेषु भारत ॥५३॥ शक्रपत्नीगुणाञ्छ्रुत्वा चकमे तां स पार्थिवः ॥ ऋषीनाह किमिंद्राणी नोपगच्छति मां किल ॥५४॥ भवद्भिश्चामरैः सर्वैः कृतोऽहं वासवस्त्विह ॥ प्रेषयध्वं सुराः कामं सेवार्थं मम वै शचीम् ॥५५॥ प्रियं चेन्मम कर्तव्यं सर्वथा मुनयोऽमराः ॥ अहमिंद्रोऽद्य देवानां लोकानां च तथेश्वरः ॥ ५६ ॥ आगच्छतु शची मह्यं क्षिप्रमद्य निवेशनम् ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा देवा देवर्षयस्तथा ॥ ५७ ॥ गत्वा चिन्तातुराः प्रोचुः पौलोमीं प्रणतास्ततः ॥ इन्द्रपत्नि दुराचारी नहुषस्त्वामिहेच्छति ॥ ५८ ॥ कुपितोऽस्मानुवाचेदं प्रेषयध्वं शचीमिह ॥ किं कुर्मस्तदधीनाः स्मो येनेन्द्रोऽयं कृतः किल ॥ ५९ ॥ तच्छ्रुत्वा दुर्मना देवी बृहस्पतिमुवाच ह ॥ रक्ष मां नहुषाद्ब्रह्मंस्तवास्मि शरणं

एक समय शचीके गुणोंको सुनकर उन्हें पानेके लिए नहुषके मनमें इच्छा उत्पन्न हो गयी। अतः उसने ऋषियोंसे कहा—'मेरे पास इन्द्राणी क्यों नहीं आती? ॥ ५४ ॥ हे देवताओ! आप लोगोंने ही मुझे इन्द्र बनाया है। अतः मेरी सेवा करनेके लिए आप शचीको यहाँ भेज दें ॥ ५५ ॥ इस अवसरपर देवताओं और मुनियोंको सम्यक् प्रकारसे मेरा कार्य करना चाहिये। क्योंकि मैं उनका इन्द्र हूँ। सभी लोकोंपर मेरा शासन है ॥५६॥ अतएव मुझे प्रसन्न करनेके लिए शची शीघ्र मेरे महलमें आ जाय।' नहुषकी यह दोषपूर्ण बात सुनकर देवताओं और ऋषियोंके मनमें चिन्ताके कारण घबराहट उत्पन्न हो गयी। वे इन्द्राणीके पास गये और मस्तक झुकाकर कहने लगे— इन्द्राणीजी! दुरात्मा नहुष अब आपको पानेकी इच्छा प्रकट कर रहा है। ५७॥५८॥ उसने कुपित होकर हमसे यह वचन कहा है कि शचीको यहाँ भेज दो। उसके अधीन रहनेवाले हम कर ही क्या सकते हैं? क्योंकि उस दुरात्माको इन्द्र बना

दिया गया है ॥५९॥ देवताओं और ऋषियों द्वारा नहुषकी यह अप्रिय बात सुनकर शचीका मुख मुरझा गया। वे बृहस्पतिजीसे कहने लगीं—हे ब्रह्मन्! मैं आपकी शरणमें हूँ। नहुषसे मेरी रक्षा कीजिए ॥ ६० ॥ बृहस्पतिजीने कहा–हे देवी! पापान्ध नहुषसे तुम किंचिन्मात्र भय मत करो। वत्से! सनातन धर्मका परित्याग करके मैं तुम्हें उसके पास नहीं जाने दूँगा ॥६१॥ शरणमें आये हुए दुखी व्यक्तिको जो नीच मानव आश्रय नहीं देता, उसे युगपर्यन्त नरककी यातना भोगनी पड़ती है। हे पृथुश्रोणि! तुम शान्तचित्त होकर विराजमान रहो। मैं कभी भी तुम्हारा त्याग नहीं करूँगा ॥ ६२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते षष्ठस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा' भाषाटीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

(देवताओंका बृहस्पतिसे परामर्श) व्यासजी बोले—हे राजन्! तदनन्तर जब कामार्त नहुषने सुना कि शची बृहस्पतिकी शरणमें चली गयी है, तब वह उनके ऊपर भी झल्ला उठा ॥१॥ उसने देवताओंसे कहा–'यह बिल्कुल निश्चित है कि मेरे हाथों बृहस्पतिका वध होकर रहेगा। कारण, मैंने सुना है कि उस मूर्खने अपने घरमें शचीको सुरक्षित रहनेकी व्यवस्था कर

गता ॥ ६० ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ न भेतव्यं त्वया देवि नहुषात्पापमोहितात् ॥ न त्वां दास्याम्यहं वत्से त्यक्त्वा धर्मं सनातनम् ॥ ६१ ॥ शरणागतमार्तं च यो ददाति नराधमः ॥ स एव नरकं याति यावदाभूतसंप्लवम् ॥ ६२ ॥ स्वस्था भव पृथुश्रोणि न त्यक्ष्ये त्वां कदाचन ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

॥ व्यास उवाच ॥ नहुषस्त्वथ तां श्रुत्वा गुरोस्तु शरणं गताम् ॥ चुक्रोध स्मरबाणार्तस्तमांगिरसमाशु वै ॥१॥ देवानाहांगिरासूनुर्हंतव्योऽयं मया किल ॥ इतींद्राणीं गृहे मूढो रक्षतीति मया श्रुतम् ॥ २ ॥ इति तं कुपितं दृष्ट्वा देवाः सर्षिपुरोगमाः ॥ अब्रुवन्नहुषं घोरं सामपूर्वं वचस्तदा ॥३॥ क्रोधं संहर राजेन्द्र त्यज पापमतिं प्रभो ॥ निंदन्ति धर्मशास्त्रेषु परदाराभिमर्शनम् ॥४॥ शक्रपत्नी सदा साध्वी जीवमाने पतौ पुनः ॥ कथमन्यं पतिं कुर्यात्सुभगाऽतिपतिव्रता ॥ ५ ॥ त्रिलोकीशस्त्वमधुना शास्ता धर्मस्य वै विभो ॥ त्वादृशोऽधर्ममातिष्ठेत्तदा नश्येत्प्रजा ध्रुवम् ॥ ६ ॥ सर्वथा प्रभुणा कार्यं शिष्टाचारस्य रक्षणम् ॥ वारमुख्यश्च शतशो वर्तन्तेऽत्र शचीसमाः ॥ ७ ॥ रतिस्तु कारणं प्रोक्तं शृंगारस्य महात्मभिः ॥ रसहानिर्व-

रक्खी है ॥ २ ॥ उस समय नहुषकी आकृति महान् भयंकर हो गयी थी। वह क्रोधसे भभक उठा था। उसकी स्थिति देखकर देवता और ऋषि सामनीतिका प्रयोग करते हुए नहुषसे कहने लगे–॥ ३ ॥ 'हे राजेन्द्र! हे प्रभो! तुम क्रोध दूर करो। यह खोटी बुद्धि सर्वथा त्याज्य है। परायी स्त्रीके साथ प्रेम करनेकी धर्मशास्त्रमें घोर निन्दा की गयी है ॥४॥ शची परम पतिव्रता हैं। उनका आचरण बड़ा ही पवित्र है। तब अपने पतिके जीवित रहते वे अन्य पुरुषको अपना पति कैसे बना सकती हैं? ॥५॥ हे राजन्! इस समय तुम्हें त्रिलोकीका राज्य सुलभ है। तुम बड़े धार्मिक राजा हो। यदि तुम-जैसा नरेश धर्मसे विचलित हो जायगा तो निश्चित है कि प्रजा नष्ट-भ्रष्ट हो जायगी ॥ ६ ॥ राजाको चाहिये कि सम्यक् प्रकारसे सदाचारका पालन करे और फिर आनन्द लेनेके लिए तो शची जैसी सैकड़ों सुन्दरी वारवनितायें आपके पास हैं ही ॥७॥ बड़े लोगोंका कहना है कि रति ही शृङ्गाररसका मूल कारण होता है। किन्तु

बलात्कार करनेपर तो सब रस ही नष्ट हो जाता है ॥८॥ हे राजेन्द्र ! जब पति-पत्नी दोनोंमें समान प्रेम होता है, तभी दोनों अत्यन्त सुखी होते हैं ॥९॥ अतएव हे देवेन्द्र! तुम्हारे मनमें परायी स्त्रीसे मिलनेकी जो इच्छा उत्पन्न हुई है, उसे त्याग दो । श्रेष्ठ आचरणका पालन करो । क्योंकि इस समय तुम एक महान् श्रेष्ठ पदपर प्रतिष्ठित हो ॥१०॥ हे राजन् ! पापकर्म करनेसे सम्पत्ति क्षीण होती है और पुण्य करनेसे बढ़ती है । इसलिये नीच कर्मका परित्याग करके तुम्हें सात्त्विक बुद्धिका आश्रय लेना चाहिये ॥ ११ ॥ नहुषने कहा—जब इन्द्रने महर्षि गौतमकी भार्या अहल्याके साथ दुराचार किया था और जब चन्द्रमाने बरबस गुरु बृहस्पतिकी भार्याको हड़प लिया था । तब आप लोग कहाँ थे ? ॥ १२ ॥ औरोंको उपदेश देनेमें कुशल तो सभी हैं, किन्तु उस उपदेशका पालन करनेवाले पुरुष दुर्लभ होते हैं ॥ १३ ॥ नहुषने कहा—हे देवताओ ! शची मेरे पास आ जाय । ऐसा करनेसे तुम्हारी तो बड़ी भलाई होगी ही, वह भी

लात्कारे कृते सति तु जायते ॥ ८ ॥ उभयोः सदृशं प्रेम यदि पार्थिवसत्तम ॥ तदा वै सुखसंपत्तिरुभयोरुपजायते ॥ ९ ॥ तस्माद्भावमिमं मुंच परदाराभिमर्शने ॥ सद्भावं कुरु देवेन्द्र पदं प्राप्तोऽस्यनुत्तमम् ॥ १० ॥ ऋद्धिक्षयस्तु पापेन पुण्येनातिविवर्धनम् ॥ तस्मात्पापं परित्यज्य सन्मतिं कुरु पार्थिव ॥ ११ ॥ नहुष उवाच ॥ गौतमस्य यदा भुक्ता दाराः शक्रेण देवताः ॥ वाचस्पतेस्तु सोमेन क्व यूयं संस्थितास्तदा ॥ १२ ॥ परोपदेशे कुशलाः प्रभवंति नराः किल ॥ कर्ता चैवोपदेष्टा च दुर्लभः पुरुषो भवेत् ॥ १३ ॥ मामागच्छतु सा देवी हितं स्यादद्भुतं हि वः ॥ एतस्याः परमं देवाः सुखमेवं भविष्यति ॥ १४ ॥ अन्यथा न हि तुष्येऽहं सत्यमेतद्ब्रवीमि वः ॥ विनयाद्वा बलाद्वाऽपि तामाशु प्रापयंत्विह ॥ १५ ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा देवाश्च मुनयस्तथा ॥ तमूचुश्चातिसंत्रस्ता नहुषं मदनातुरम् ॥ १६ ॥ इन्द्राणीमानयिष्यामः सामपूर्वं तवांतिकम् ॥ इत्युक्त्वा ते तदा जग्मुर्बृहस्पतिनिकेतनम् ॥ १७ ॥ व्यास उवाच ॥ ते गत्वांगिरसः पुत्रं प्रोचुः प्रांजलयः सुराः ॥ जानीमः शरणं प्राप्तामिंद्राणीं तव वेश्मनि ॥ १८ ॥ सा देया नहुषायाद्य वासवोऽसौ कृतो यतः ॥ वृणोत्वियं वरारोहा पतित्वे वरवर्णिनी ॥ १९ ॥ बृहस्पतिः सुरानाह तच्छ्रुत्वा दारुणं वचः ॥ नाहं त्यक्ष्ये तु पौलोमीं सतीं च शरणागताम् ॥ २० ॥ देवा ऊचुः ॥ उपायोऽन्यः प्रकर्तव्यो येन सोऽद्य प्रसीदति ॥ अन्यथा कोपसंयुक्तो दुराराध्यो भविष्यति

परम सुखी हो जायगी ॥ १४ ॥ ऐसा न होगा तो मेरी अशान्तिका शमन नहीं हो सकता । यह मैं तुम्हारे सामने बिल्कुल सच्ची बात कह रहा हूँ । विनय अथवा बल—किसी भी उपायका प्रयोग करके तुम अति शीघ्र शचीको यहाँ लानेका प्रयत्न करो ॥ १५ ॥ उस समय नहुष कामसे आतुर हो गया था । उसकी यह बात सुनकर अत्यन्त भयभीत देवताओं और मुनियोंने उससे कहा—॥१६॥ 'ठीक है, शान्तिपूर्वक इन्द्राणीको हम तुम्हारे पास ले आयेंगे' । यों कहकर वे देवता मुनि बृहस्पतिजीके आश्रमपर गये ॥१७॥ व्यासजी बोले—वहाँ पहुँचकर देवताओंने कहा—हे गुरो ! हमें पता चला है कि इन्द्राणी आपके घरमें शरणार्थिनी बनकर आयी हैं ॥ १८ ॥ उन्हें इन्द्र बने हुए नहुषको देना आवश्यक है । वह सुन्दरी उसे पति रूपमें वरण कर ले ॥ १९ ॥ देवताओंकी बात सुनकर बृहस्पतिजीने उत्तर दिया—"परम साध्वी शची मेरे यहाँ शरणार्थिनी बनकर आयी हैं । मैं इनका त्याग नहीं करूँगा ॥ २० ॥

देवता बोले –तो फिर कोई दूसरा उपाय करिए, जिससे नहुष खुश हो जाय। नहीं तो कुपित होकर वह बड़ा अनर्थ करेगा ॥ २१ ॥ बृहस्पति बोले–एक उपाय है। वह यह कि एक बार शची राजा नहुषके सामने जायँ और उससे कहें कि 'मैं तुम्हारी सेवा अवश्य करूँगी, परन्तु पहले यह पता लगा लूँ कि मेरे पति जीवित तो नहीं हैं। सम्भव है कि मेरे पतिदेव जीवित हों. ऐसी स्थितिमें मैं दूसरेको कैसे स्वामी बना सकती हूँ। अतः उन महाभागको खोजनेके लिए एक बार मेरा वापस लौटना आवश्यक है ॥ २२ ॥ २३ ॥ इन्द्राणीको चाहिये कि इस प्रकार कहकर नहुषको धोखेमें डाल दें। फिर जैसा मैं बताऊँ, उसके अनुसार इनके पतिदेवको ले आनेका प्रयत्न किया जाय ॥२४॥ इस प्रकार आपसमें परामर्श करके जितने भी देवता थे, वे सब-के-सब शचीको साथ लेकर नहुषके पास पहुँचे ॥२५॥ जब उस बनावटी इन्द्र नहुषने देखा कि देवता आ गये हैं और साथमें शची भी है, तब उसके हर्षकी सीमा नहीं रही। वह ठहाका मारकर हँसा और शचीसे कहने लगा—॥२६॥ 'प्रिये! चारुलोचने! इस समय मैं इन्द्रके पदपर प्रतिष्ठित हूँ। देवताओंने मुझे यह गौरव प्रदान किया है। अखिल भूमण्डलका शासनसूत्र

॥ २१ ॥ गुरुरुवाच ॥ तत्र गत्वा शची भूपं प्रलोभ्य वचसा भृशम् ॥ करोतु समयं बाला पतिं ज्ञात्वा मृतं भजे ॥ २२ ॥ इन्द्रे जीवति मे कांते कथमन्यं करोम्यहम् ॥ अन्वेषणार्थं गंतव्यं मया तस्य महात्मनः ॥ २३ ॥ इति सा समयं कृत्वा वंचयित्वा च भूपतिम् ॥ भर्तुरानयने यत्नं करोतु मम वाक्यतः ॥२४॥ इति संचिंत्य ते सर्वे बृहस्पतिपुरोगमाः ॥ नहुषं सहिता जग्मुरिंद्रपत्न्या दिवौकसः ॥ २५ ॥ तानागतान्समीक्ष्याह तदा कृत्रिमवासवः ॥ जहर्ष च मुदायुक्तस्तां वीक्ष्य मुदितोऽब्रवीत् ॥२६॥ अद्यास्मि वासवः कांते भज मां चारुलोचने ॥ पतित्वे सर्वलोकस्य पूज्योऽहं विहितः सुरैः ॥ २७ ॥ इत्युक्ता सा नृपं प्राह वेपमाना त्रपायुता ॥ परमिच्छाम्यहं राजंस्त्वत्तः प्राप्तं सुरेश्वर ॥ २८ ॥ किंचित्कालं प्रतीक्षस्व यावत्कुर्वे विनिर्णयम् ॥ इन्द्रोऽस्तीति न वाऽस्तीति संदेहो मे हृदि स्थितः ॥२९॥ ततस्त्वां समुपस्थास्ये कृत्वा निश्चयमात्मनि ॥ तावत्क्षमस्व राजेन्द्र सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥३०॥ न हि विज्ञायते शक्रो नष्टः किं वा क्व वा गतः ॥ एवमुक्तः स इन्द्राण्या नहुषः प्रीतिमानभूत् ॥ ३१ ॥ व्यसर्जयत्स तां देवीं तथेत्युक्त्वा मुदान्वितः ॥ सा विसृष्टा नृपेणाशु गत्वा प्राह सुरान्सती ॥ ३२ ॥ इन्द्रस्यागमने यत्नं कुरुताद्य कृतोद्यमाः ॥ श्रुत्वा

मेरे हाथमें है। अतः अब तुम मेरी सेवामें आ जाओ।' ॥२७॥ नहुषके यों कहनेपर इंद्राणीके शरीरमें कँपकँपी आ गयी। उनका हृदय आतङ्कित हो गया। फिर सँभलकर वे उससे कहने लगीं–'देवेश्वरके पदपर शोभा पानेवाले हे नरेश! आपसे मैं एक अभिलषित वरकी याचना करती हूँ ॥२८॥ कुछ समयतक आप प्रतीक्षा करें, जबतक कि मैं यह निर्णय न कर लूँ कि मेरे पति इन्द्र जीवित हैं या नहीं। क्योंकि इस बातका संदेह मेरे मनमें बना हुआ है। अभीतक मुझे ठीक-ठीक पता ही नहीं कि उनका मरण हो गया है अथवा वे कहीं चले गये हैं ॥२९॥ यह निश्चय हो जानेपर मैं आपकी सेवा करूँगी। तबतक क्षमा करें। हे राजेंद्र! यह मैं सच कह रही हूँ ॥ ३० ॥ पता नहीं कि इन्द्र मर गये या कहीं चले गये।' शचीने जब इस प्रकार नहुषसे कहा, तब उसके मुखपर प्रसन्नता छा गयी ॥ ३१ ॥ 'बहुत ठीक है, ऐसा ही हो' कहकर बड़े उत्साहके साथ नहुषने शची देवीको वहाँसे जानेकी आज्ञा दे दी। उससे छुटकारा पानेपर इन्द्राणी तुरन्त देवताओंके पास गयीं और उनसे कहा—'आपलोग बड़े उद्यमशील पुरुष हैं। आप लोग अब मेरे पतिदेवको यहाँ लौटा लानेका प्रयत्न कीजिये।' शची-

देवीके इस पवित्र एवं मधुर वचनको सुनकर देवता बड़ी सावधानीके साथ इन्द्रके विषयमें विचार करने लगे। हे राजेन्द्र! कर्तव्य निश्चित हो जानेपर वे परम प्रभु भगवान् विष्णुके धाममें गये और उनकी स्तुति करने लगे ॥ ३२-३४ ॥ आदिदेव भगवान् विष्णु अखिल जगत्के स्वामी हैं। शरणमें आये हुए व्यक्तिपर कृपा करना उनका स्वभाव ही है। अपनी वाणी व्यक्त करनेमें परम कुशल देवताओंने अत्यन्त उदास होकर उनसे यह वचन कहा—॥ ३५ ॥ भगवन्! देवराज इन्द्र ब्रह्महत्याके दुःखसे अत्यन्त दुखी होकर कहीं अन्यत्र कालक्षेप कर रहे हैं ॥ ३६ ॥ आपके ही परामर्शसे ब्राह्मण वृत्रको मारकर इन्द्र ब्रह्महत्याकी लपेटमें आ गये हैं। अब आप ही उनकी और हम सबकी एकमात्र गति हैं ॥ ३७ ॥ हमपर घोर संकट आ पड़ा है, इससे आप हमारी रक्षा करें और साथ ही इन्द्र ब्रह्महत्यासे मुक्त हो जायँ—इसका उपाय भी बतलानेकी कृपा करें। देवताओंकी यह करुण प्रार्थना सुनकर भगवान् विष्णुने उनसे कहा—॥ ३८ ॥ 'देवताओ! इस अवसरपर ब्रह्महत्याके पापसे मुक्त होनेके लिए इन्द्रको अश्वमेध यज्ञ करना चाहिए। इस परम पावन यज्ञके प्रभावसे सम्पूर्ण कल्मष धुल जानेपर वे फिर

तद्वचनं देवा इन्द्राण्या रसवच्छुचि ॥ ३३ ॥ मंत्रयामासुरेकाग्राः शक्राथ नृपसत्तम ॥ ते गत्वा वैष्णवं धाम तुष्टुवुः परमेश्वरम् ॥ ३४ ॥ आदिदेवं जगन्नाथं शरणागतवत्सलम् ॥ ऊचुश्चैनं समुद्विग्ना वाक्यं वाक्यविशारदाः ॥ ३५ ॥ देवदेवः सुरपतिर्ब्रह्महत्याप्रपीडितः ॥ अदृश्यः सर्वभूतानां क्वापि तिष्ठति वासवः ॥ ३६ ॥ त्वद्धिया निहते विप्रे ब्रह्महत्यावृतः प्रभो ॥ त्वं गतिस्तस्य भगवन्नस्माकं च तथैव हि ॥ ३७ ॥ त्राहि नः परमापन्नान्मोक्षं तस्य विनिर्दिश ॥ देवानां वचनं श्रुत्वा कातरं विष्णुरब्रवीत् ॥ ३८ ॥ यजतामश्वमेधेन शक्रपापनिवृत्तये ॥ पुण्येन हयमेधेन पावितः पाकशासनः ॥३९॥ पुनरेष्यति देवानामिंद्रत्वमकुतोभयः ॥ हयमेधेन संतुष्टा देवी श्रीजगदंबिका ॥४०॥ ब्रह्महत्यादिपापानि नाशयिष्यत्यसंशयम् ॥ यस्याः स्मरणमात्रेण पापजालं विनश्यति ॥ ४१ ॥ किं पुनर्वाजिमेधेन तत्प्रीत्यर्थं कृतेन च ॥ इन्द्राणी कुरुतान्नित्यं भगवत्याः प्रपूजनम् ॥४२॥ आराधनं शिवायास्तु सुखकारि भविष्यति ॥ नहुषोऽपि जगन्मातुर्मायया मोहितः किल ॥ ४३ ॥ विनाशं स्वकृतेनाशु गमिष्यत्येनसा सुराः ॥ पावितश्चाश्वमेधेन तुराषाडपि वैभवम् ॥ ४४ ॥ प्राप्स्यत्यचिरकालेन स्वमासनमनुत्तमम् ॥ ते तु श्रुत्वा शुभां वाणीं विष्णोरमिततेजसः ॥ ४५ ॥ जग्मुस्तं देशमनिशं यत्रास्ते पाकशासनः ॥ तमाश्वास्य सुराः शक्रं बृहस्पतिपुरोगमाः ॥ ४६ ॥ कारयामासुरखिलं हयमेधं महाक्रतुम् ॥ विभज्य

तुम्हारे इन्द्र बन जायँगे। फिर किसी प्रकारका कोई भय नहीं रह सकेगा। अश्वमेध यज्ञ भगवती जगदम्बाको संतुष्ट करनेके लिए एक अचूक साधन है ॥ ३९ ॥ ४० ॥ यह निश्चित है कि इस यज्ञसे संतुष्ट होकर वे भगवती जगदम्बा ब्रह्महत्या प्रभृति सारे पापोंको नष्ट कर देंगी। जिनका स्मरणमात्र कर लेनेसे पापसमूह नष्ट हो जाते हैं ॥४१॥ तब अश्वमेध यज्ञ द्वारा पूजा करनेपर उनकी प्रसन्नताका क्या कहना है। इन्द्राणी भी नियमपूर्वक भगवती जगदम्बाकी आराधनामें लग जायँ ॥ ४२ ॥ भगवती जगदम्बा कल्याणमयी हैं। इनकी आराधना करनेपर सुखी होनेमें कोई सन्देह नहीं है। हे देवताओ! जगदम्बाकी मायासे मोहित हो जानेके कारण तथा अपने ही किये हुए पापसे नहुषका बहुत शीघ्र संहार हो जायगा। इन्द्र भी अश्वमेध यज्ञके प्रभावसे पुण्यात्मा बनकर अपनी सम्पत्ति प्राप्त कर लेंगे। उन्हें अपना सर्वोत्तम आसन पुनः सुलभ हो जायगा।' अमित तेजस्वी भगवान् विष्णुकी यह पवित्र वाणी

सुनते ही बृहस्पतिजीको अपना अगुआ बनाकर वे उस स्थानपर चले गये, जहाँ इन्द्र कालक्षेप कर रहे थे। उन्होंने वहाँ पहुँचकर इन्द्रको आश्वासन दिया और सर्वोत्तम यज्ञ करानेकी समुचित व्यवस्था की। उस यज्ञके सम्पन्न हो जानेपर भगवान् श्रीहरि पधारे और उनके द्वारा ब्रह्महत्याको विभाजित करके वृक्षों, नदियों, पर्वतों और स्त्रियोंको बाँट दिया गया। यों ब्रह्महत्यासे मुक्त होकर इन्द्र पुनः शुद्ध हो गये ॥ ४३-४८ ॥ यद्यपि उनकी चिन्ता शान्त हो गयी थी, फिर भी अपने अच्छे दिनकी प्रतीक्षा करते हुए वे जलमें ही ठहरे रहे। एक कमलका नाल उनका आश्रय बना हुआ था ॥४९॥ कोई भी प्राणी उन्हें देख नहीं सकता था। अतः इन्द्राणीके दुःखका अन्त नहीं हुआ। इन्द्रके विरहमें व्याकुल होकर वे बृहस्पतिजीसे कहने लगीं— ॥ ५० ॥ हे महाराज ! अश्वमेध यज्ञ कर चुकनेपर भी मेरे पतिदेव सामने क्यों नहीं आते ? मैं अपने उन प्राणनाथको कैसे देख सकूँगी ? इसका कोई उपाय मुझे बताने कृपा करें ॥५१॥ बृहस्पतिजीने कहा— हे पौलोमि ! अब तुम कल्याणस्वरूपिणी भगवती जगदम्बाकी आराधना करो। उन्हींकी कृपासे तुम्हारे पुण्यात्मा पतिदेव सामने आ सकेंगे ॥ ५२ ॥ तुम्हारे द्वारा

ब्रह्महत्यां तु वृक्षेषु च नदीषु च ॥ ४७ ॥ पर्वतेषु पृथिव्यां च स्त्रीषु चैवाक्षिपद्विभुः ॥ तां विसृज्य च भूतेषु विपापः पाकशासनः ॥ ४८ ॥ विज्वरः समभूद्भूयः कालाकांक्षी स्थितो जले ॥ अदृश्यः सर्वभूतानां पद्मनाले व्यतिष्ठत ॥४९॥ देवास्तु निर्गताः स्थाने कृत्वा कार्यं तदद्भुतम् ॥ पौलोमी तु गुरुं प्राह दुःखिता विरहाकुला ॥५०॥ कृतयज्ञोऽपि मे भर्ता किमदृश्यः पुरंदरः ॥ कथं द्रक्ष्ये प्रियं स्वामिंस्तमुपायं वदस्व मे ॥५१॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ त्वमाराधय पौलोमि देवीं भगवतीं शिवाम् ॥ दर्शयिष्यति ते नाथं देवी विगतकल्मषम् ॥ ५२ ॥ आराधिता जगद्धात्री नहुषं वारयिष्यति ॥ मोहयित्वा नृपं स्थानात्पातयिष्यति चांबिका ॥ ५३ ॥ इत्युक्ता सा तदा तेन पुलोमतनया नृप ॥ जग्राह मंत्रं विधिवद्गुरोर्देव्याः ससाधनम् ॥ ५४ ॥ विद्यां प्राप्य गुरोर्देवी देवीं श्रीभुवनेश्वरीम् ॥ सम्यगाराधयामास बलिपुष्पार्चनैः शुभैः ॥ ५५ ॥ त्यक्तान्यभोगसंभारा तापसीवेषधारिणी ॥ चकार पूजनं देव्याः प्रियदर्शनलालसा ॥ ५६ ॥ कालेन कियता तुष्टा प्रत्यक्षं दर्शनं ददौ ॥ सौम्यरूपधरा देवी वरदा हंसवाहिनी ॥ ५६ ॥ कोटिसूर्यप्रतीकाशा चंद्रकोटिसुशीतला ॥ विद्युत्कोटिसमानाभा चतुर्वेदसमन्विता ॥ ५८ ॥ पाशांकुशाभयवरान्दधती निजबाहुभिः ॥

सुपूजित होनेपर भगवती जगदम्बा नहुषकी शक्ति कुण्ठित कर देंगी। भगवतीके प्रयाससे मोहित होकर वह नरेश इन्द्रपदसे च्युत हो जायगा ॥ ५३ ॥ हे राजन् ! बृहस्पतिजीके इस प्रकार कहनेपर इन्द्राणीने उनसे मंत्रका पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया और पूजनकी विधियाँ भी समझ लीं ॥५४॥ यों गुरुके अनुग्रहसे मंत्रका ज्ञान हो जानेपर शचीने बलि-पुष्प आदिके द्वारा भगवती भुवनेश्वरीकी सम्यक् प्रकारसे आराधना आरम्भ कर दी ॥ ५५ ॥ उस समय इन्द्राणी पूर्ण तपस्विनी बन गयी थीं। उन्होंने विभिन्न प्रकारके समस्त भोग त्याग दिये थे। अपने प्राणनाथके दर्शनकी लालसासे देवीपूजनमें ही उनका सारा समय व्यतीत होने लगा ॥ ५६ ॥ कुछ दिनोंतक आराधना करनेके पश्चात् भगवती जगदम्बा प्रसन्न हो गयीं। उन्होंने इन्द्राणीको साक्षात् दर्शन दिया। वर देनेके लिए पधारी हुई देवीका रूप बड़ा ही मनोहर था। वे हंसपर विराजमान थीं ॥५७॥ उनके श्रीविग्रहसे करोड़ों सूर्योंके समान तेज फैल रहा था। उनमें इतनी शीतलता थी, मानो करोड़ों चन्द्रमा उदित हों। करोड़ों बिजलियोंके एक साथ चमकनेके समान उनके शरीरसे चमचमाहट निकल रही थी। उन्हें चारों वेद पूर्ण अभ्यस्त थे ॥५८॥ उनकी भुजाएँ पाश,

अङ्कुश और अभयमुद्रासे सुशोभित थीं। उन्होंने मोतीका स्वच्छ हार पहन रखा था, जिसकी लम्बाई पैरोंतक थी ॥ ५९ ॥ उनका मुख मुसकानसे भरा था। तीन नेत्र मस्तककी शोभा बढ़ा रहे थे। ब्रह्मासे लेकर कीटतक जितने प्राणी हैं, उन सबकी जननी कहलानेका सौभाग्य एकमात्र उन्हींको प्राप्त है। वे करुणारूपी अमृतकी अगाध समुद्र हैं ॥ ६० ॥ अनन्त कोटि ब्रह्माण्डोंपर उन परमेश्वरीका नियन्त्रण रहता है। उनमें अनन्त सौम्य रस भरे पड़े हैं ॥ ६१ ॥ जो सबकी स्वामिनी, सर्वज्ञ, कूटस्थ एवं अक्षरमयी हैं। वे भगवती जगदम्बा प्रसन्न होकर अत्यन्त हर्ष प्रकट करती हुई मेघकी भाँति गम्भीर वाणीमें इन्द्राणीसे कहने लगीं। देवीने कहा—सुन्दर कटिभागसे शोभा पानेवाली हे इन्द्रप्रिये! अपना अभिलषित वर माँगो ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ मैं प्रसन्नतापूर्वक देनेके लिए तैयार हूँ। क्योंकि तुमने सम्यक् प्रकारसे मेरी आराधना की है। तुम्हें वर देनेके लिए ही मेरा यहाँ आना हुआ है। मैं सुगमतापूर्वक किसीके सामने प्रकट नहीं होती ॥ ६४ ॥ अनन्त कोटि जन्मोंके पुण्य संचित होनेपर ही प्राणी मेरे दर्शनका अधिकारी होता है। उस समय इन्द्राणी भगवती जगदम्बाके सामने हाथ जोड़े खड़ी

आपादलंबिनीं स्वच्छां मुक्तामालां च बिभ्रती ॥ ५९ ॥ प्रसन्नस्मेरवदना लोचनत्रयभूषिता ॥ आब्रह्मकीटजननी करुणामृतसागरा ॥ ६० ॥ अनंतकोटिब्रह्मांडनायिका परमेश्वरी ॥ सौम्यानंतरसैर्युक्तस्तनद्वयविराजिता ॥ ६१ ॥ सर्वेश्वरी च सर्वज्ञा कूटस्थाऽक्षररूपिणी ॥ तामुवाच प्रसन्ना सा शक्रपत्नीं कृतोद्यमाम् ॥ ६२ ॥ मेघगंभीरशब्देन मुदमाददती भृशम् ॥ देव्युवाच ॥ परं वरय सुश्रोणि वांछितं शक्रवल्लभे ॥ ६३ ॥ ददाम्यद्य प्रसन्नाऽस्मि पूजिता सुभृशं त्वया ॥ वरदाऽहं समायाता दर्शनं सहजं न मे ॥ ६४ ॥ अनेककोटिजन्मोत्थपुण्यपुंजैर्हि लभ्यते ॥ इत्युक्ता सा तदा देवी तामाह प्रणता पुरः ॥ ६५ ॥ शक्रपत्नी भगवतीं प्रसन्नां परमेश्वरीम् ॥ वांछामि दर्शनं मातः पत्युः परमदुर्लभम् ॥ ६६ ॥ नहुषाद्भयनाशं च स्वपदप्रापणं तथा ॥ देव्युवाच ॥ गच्छ त्वमनया दूत्या सार्द्धं श्रीमानसं सरः ॥ ६७ ॥ यत्र मे मूर्तिरचला विश्वकामाभिधा मता ॥ तत्र द्रक्ष्यसि शक्रं त्वं दुःखितं भयविह्वलम् ॥ ६८ ॥ मोहयिष्यामि राजानं कालेन कियता पुनः ॥ स्वस्था भव विशालाक्षि करोमि तव चेप्सितम् ॥ ६९ ॥ भ्रंशयिष्यामि भूपालं मोहितं त्रिदशासनात् ॥ व्यास उवाच ॥ देवीदूती तां गृहीत्वा शक्रपत्नीं त्वरान्विता ॥ ७० ॥ प्रापयामास

थीं। देवीके आज्ञा देनेपर अत्यन्त प्रसन्न होकर विराजमान उन परमेश्वरीसे इन्द्राणीने कहा— हे माता! मेरे पतिदेवका दर्शन मुझे परम दुर्लभ हो गया है। मैं उसीको प्राप्त करना चाहती हूँ। साथ ही पापी नहुषसे मुझे तनिक भी भय न रहे और मुझे पूर्ववत् अपना स्थान प्राप्त हो जाय।' देवीने कहा—तुम इस मेरी दूतीके साथ मानसरोवर जाओ ॥६५–६७॥ जहाँ मेरी एक अचल मूर्ति प्रतिष्ठित है। मेरी उस मूर्तिको लोग 'विश्वकामा' कहते हैं। वहाँ इन्द्रसे तुम्हारी भेंट हो जायगी। इस समय वे भयसे घबराकर महान् दुःखका अनुभव कर रहे हैं ॥ ६८ ॥ हे विशालाक्षी! कुछ ही समयके बाद मैं राजा नहुषको मोहित करनेकी व्यवस्था करूँगी। अब तुम स्वस्थ हो जाओ। तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करनेको मैं सचेष्ट हूँ ॥ ६९ ॥ मेरे प्रयाससे मोहित होकर राजा नहुष शीघ्र इन्द्रासनसे च्युत हो जायगा। व्यासजी बोले—हे राजन्! तदनन्तर भगवती जगदम्बाको एक दूती इन्द्राणीको साथ लेकर तुरंत उनके पतिदेवके पास पहुँच गयी। शचीने पतिदेवका साक्षात्कार किया। भगवती परमेश्वरीका वह विग्रह भी उन्हें दृष्टिगोचर हुआ। उस समय वहीं देवराज छिपकर कालक्षेप कर रहे थे। इन्द्राणीके

मनमें बहुत दिनोंसे पतिदेवके दर्शनकी लालसा लगी हुई थी। सो वह अभीष्ट कार्य सिद्ध हो गया, इससे वे प्रसन्नतासे गद्गद हो गयीं ॥ ७० ॥ ७१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा' भाषाटीकायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

(नहुषका पतन) व्यासजी बोले—हे राजन्! विशाल नेत्रवाली इन्द्राणीका हृदय चिन्तासे भरा था। ऐसी अपनी प्राणप्रियाको सामने उपस्थित देखकर इन्द्र आश्चर्य प्रकट करते हुए उनसे कहने लगे—॥ १ ॥ प्रिये! तुम यहाँ कैसे आ गयीं? मैं यहाँ हूँ—यह रहस्य तुम्हें कैसे मालूम हो गया? हे शुभानने! मेरे यहाँ रहनेकी बात जाननेमें सम्पूर्ण प्राणी असमर्थ हैं' ॥ २ ॥ शचीने कहा—प्रभो! इस समय भगवती जगदम्बाके कृपाप्रासादसे मुझे आपकी जानकारी प्राप्त हुई है। हे देवेश्वर! उन्हींकी कृपाके सहारे मैं आपके पास आ सकी हूँ ॥ ३ ॥ देवताओं और मुनियोंने नहुष नामधारी एक राजर्षिको आपके स्थानपर नियुक्त कर दिया है। उसके द्वारा मैं अत्यन्त कष्ट पा रही हूँ ॥ ४ ॥ हे बलार्दन! वह नीच मुझसे कहता है—

सान्निध्यं स्वपत्युः परमेश्वरीम् ॥ सा दृष्ट्वा तं पतिं बाला सुरेशं गुप्तसंस्थितम् ॥ ७१ ॥ मुदिताऽभूद्वरं वीक्ष्य बहुकालाभिवांछितम् ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे शक्रदर्शनं नामाष्टमोध्यायः ॥ ८ ॥

॥ व्यास उवाच ॥ तां वीक्ष्य विपुलापांगीं रहः शोकसमन्विताम् ॥ आखण्डलः प्रियां भार्यां विस्मितश्चाब्रवीत्तदा ॥ १ ॥ कथमत्रागता कान्ते कथं ज्ञातस्त्वया ह्यहम् ॥ दुर्ज्ञेयः सर्वभूतानां संस्थितोऽस्मि शुभानने ॥ २ ॥ शच्युवाच ॥ देव देव्याः प्रसादेन ज्ञातोऽस्यद्य भवानिह ॥ पुनस्तस्याः प्रसादेन प्राप्ताऽस्मि त्वां दिवस्पते ॥ ३ ॥ नहुषो नाम राजर्षिः स्थापितो भवदासने ॥ त्रिदशैर्मुनिभिश्चैव स मां बाधति नित्यशः ॥ ४ ॥ पतिं मां कुरु चार्वंगि तुरासाहं सुराधिपम् ॥ एवं वदति मां पाप्मा किं करोमि बलार्दन ॥ ५ ॥ इन्द्र उवाच ॥ कालाकांक्षी वरारोहे संस्थितोऽस्मि यदृच्छया ॥ तथा त्वमपि कल्याणि सुस्थिरं स्वमनः कुरु ॥ ६ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्ता तेन सा देवी पतिनाऽतिप्रशंसिना ॥ निःश्वसंत्याह तं शक्रं वेपमानाऽतिदुःखिता ॥ ७ ॥ कथं तिष्ठे महाभाग पापात्मा मां वशानुगाम् ॥ करिष्यति मदोन्मत्तो वरदानेन गर्वितः ॥ ८ ॥ देवाश्च मुनयः सर्वे मामूचुस्तद्भयाकुलाः ॥ तं भजस्व वरारोहे देवराजं स्मरातुरम् ॥ ९ ॥ बृहस्पतिस्तु शत्रुघ्न वाडवो बलवर्जितः ॥ कथं मां रक्षितुं शक्तो भवेद्दे-

'हे सुन्दरी! तुम मुझे पति रूपमें स्वीकार कर लो। मैं ही देवताओंका अध्यक्ष इन्द्र हूँ।' हे पतिदेव! अब मैं क्या करूँ? ॥ ५ ॥ इन्द्रने कहा—हे वरारोहे! हे कल्याणी! जैसे अनुकूल समयकी प्रतीक्षा करते हुए मैं यहाँ ठहरा हूँ, वैसे ही तुम भी अपने मनमें धैर्य रखकर कालक्षेप करो ॥ ६ ॥ व्यासजी बोले—हे राजन्! परम आदरणीय पतिदेवके यों कहनेपर भी इन्द्राणीके मनका सन्ताप दूर नहीं हुआ। काँपती तथा लम्बी साँस खींचती हुई वे इन्द्रसे कहने लगीं—॥ ७ ॥ महाभाग! मैं कैसे रहूँ? नहुष अत्यन्त दुराचारी है। वह मुझे अवश्य अपने वशमें कर लेगा। वर पा जानेसे वह अभिमानमें प्रमत्त रहता है। अब इस आपत्तिकालमें पतिहीन रहकर मैं कैसे समय व्यतीत करूँगी? ॥ ८ ॥ उससे भयभीत देवताओं और मुनियोंने मुझसे कहा—हे सुन्दरी! उस कामातुर नवीन इन्द्रको तुम अपना पति बना लो ॥ ९ ॥ हे शत्रुनाशन! निर्बल ब्राह्मण बृहस्पति मुझे कैसे नहुषके चंगुलसे बचा सकेंगे? क्योंकि वे भी

मुझसे कहो—हे सुन्दरी ! उस कामातुर नवीन इन्द्रको तुम अपना पति बना लो ॥ ९ ॥ हे शत्रुनाशन ! निर्बल ब्राह्मण बृहस्पति मुझे कैसे नहुषके चंगुलसे बचा सकेंगे ? क्योंकि वे भी

देवताओंके वशीभूत हैं ॥ १० ॥ हे विभो ! मुझे यही चिन्ता है कि मैं नारी हूँ और आपकी वशवर्तिनी हूँ । विधाताके विपरीत होनेपर असहाय दशामें मैं क्या करूँगी ? ॥ ११ ॥ मैं कोई कुलटा स्त्री न होकर रात-दिन तुम्हारा ही ध्यान करनेवाली पतिव्रता हूँ । कोई भी तो ऐसा नहीं है कि जो मुझ दुखियारीकी रक्षा करे ॥ १२ ॥ इन्द्र बोले—हे वरानने ! मैं तुम्हें उपाय बताता हूँ, उसे करो । तभी इस दुःखप्रद समयमें तुम्हारे शीलकी रक्षा हो सकेगी ॥ १३ ॥ अन्य किसीके द्वारा रक्षित होकर स्त्री करोड़ों उपाय करनेपर भी अपने पातिव्रत धर्मकी रक्षा नहीं कर सकती । क्योंकि उसका चंचल चित्त बड़ी जल्दी डोल जाता है ॥ १४ ॥ एकमात्र शील ही नारीको पापसे बचाता है । अतएव तुम शीलका अवलम्बन करके धैर्य धारण करो ॥ १५ ॥ राजा नहुष बड़ा पापी है । वह जब बलपूर्वक तुम्हें प्राप्त करनेकी चेष्टा करे, तब प्रतिज्ञा करवाकर धोखेमें डाल देना ॥१६॥ हे मदालसे ! तुम एकान्तमें नहुषके पास जाकर

वानुगः सदा ॥ १० ॥ तस्माच्चिंताऽस्ति महती नार्यहं वशवर्तिनी ॥ अनाथा किं करिष्यामि विपरीते विधौ विभो ॥ ११ ॥ नार्यस्म्यहं न कुलटा त्वच्चिन्ताऽतिपतिव्रता ॥ नास्ति मे शरणं तत्र यो मां रक्षति दुःखिताम् ॥ १२ ॥ इन्द्र उवाच ॥ उपायं प्रब्रवीम्यद्य तं कुरुष्व वरानने ॥ शीलं ते दुःखिते काले परित्रातं भविष्यति ॥ १३ ॥ परेण रक्षिता नारी न भवेच्च पतिव्रता ॥ उपायैः कोटिभिः कामं भिन्नचित्ताऽतिचंचला ॥ १४ ॥ शीलमेव हि नारीणां सदा रक्षति पापतः ॥ तस्मात्त्वं शीलमास्थाय स्थिरा भव शुचिस्मिते ॥ १५ ॥ यदा त्वां नहुषो राजा बलादाकर्षयेत्खलः ॥ तदा त्वं समयं कृत्वा गुप्तं वंचय भूपतिम् ॥ १६ ॥ एकान्ते तत्समीपे त्वं गत्वा वद मदालसे ॥ ऋषियानेन दिव्येन मामुपैहि जगत्पते ॥ १७ ॥ एवं तव वशे प्रीता भविष्यामीति मे व्रतम् ॥ इति तं वद सुश्रोणि तदा तु परिमोहितः ॥ १८ ॥ कामांधः स मुनीन् याने योजयिष्यति पार्थिवः ॥ अवश्यं तापसो भूपं शापदग्धं करिष्यति ॥ १९ ॥ साहाय्यं जगदंबा ते करिष्यति न संशयः ॥ जगदंबापदस्मर्तुः संकटं न कदाचन ॥ २० ॥ यदि जायेत तच्चापि ज्ञेयं तत्स्वस्तये किल ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन मणिद्वीपाधिवासिनीम् ॥ २१ ॥ भज त्वं भुवनेशानीं गुरुवाक्यानुसारतः ॥ व्यास उवाच ॥ इत्याख्याता शची तेन जगाम नहुषं प्रति ॥ २२ ॥ तथेत्युक्त्वाऽतिविश्वस्ता भाविकार्ये कृतो-

कहना कि हे जगत्प्रभो ! आप ऐसी दिव्य सवारीसे पधारकर एकान्तमें मुझे स्वीकार कीजिए, जिसे ऋषि ढोते हों ॥ १७ ॥ ऐसा होनेपर मैं प्रसन्नतापूर्वक आपके वशमें हो जाऊँगी, मैं इस प्रकारका नियम बना चुकी हूँ ।' तब उस कामान्ध नरेश द्वारा मुनिलोग पालकी ढोनेमें नियुक्त किये जायँगे । ऐसी स्थितिमें यह निश्चित है कि उन तपस्वियोंके शापसे नहुष जलकर भस्म हो जायगा ॥ १८ ॥ १९ ॥ इस कार्यमें भगवती जगदम्बा तुम्हारी सहायता करेंगी । भगवती जगदम्बाका स्मरण करनेवाला व्यक्ति कभी भी संकटमें नहीं पड़ सकता ॥ २० ॥ तथापि यदि कभी दुःखदायी समय सामने आ जाय तो यही समझना चाहिए कि इसमें हमारा कल्याण ही होना है । अतएव तुम मणिपर्वतपर विराजमान रहनेवाली भगवती भुवनेश्वरीकी सम्यक् प्रकारसे आराधनामें तत्पर हो जाओ और बृहस्पतिजीके कथनानुसार उनका पूजन करती रहो । व्यासजी बोले—हे राजन् ! इन्द्रके इस प्रकार कहनेपर शची नहुषके पास चली गयी

॥ २१ ॥ २२ ॥ अत्यन्त आत्मविश्वासके साथ वह जब भावी कार्य साधनेके लिए पहुँची । तब नहुष बहुत प्रसन्न होकर कहने लगा—॥ २३ ॥ हे कामिनी ! मैं तुम्हारा स्वागत करता हूँ । तुमने अपनी बात निभायी है । अतएव मैं तुम्हारा दास हो गया हूँ ॥ २४ ॥ हे मितभाषिणी ! जो तुम स्वेच्छासे आ गयीं । इससे मैं प्रसन्न हूँ । अब लज्जा त्याग करके मेरी सेवा करो ॥ २५ ॥ हे विशालाक्षि ! अपना कोई प्रिय कार्य बताओ, जिसे मैं करूँ । तब देवराजके कथनानुसार वे नहुषसे बोलीं—इन्द्रके वेषमें विराजनेवाले हे राजन् ! तुम्हारे कृपाप्रसादसे मेरे सम्पूर्ण कार्य सिद्ध हो गये हैं ॥ २६ ॥ परंतु हे देव ! तुम बड़े शक्तिशाली पुरुष हो । मेरे मनमें एक मनोरथ छिपा हुआ है, उसे सुनो । हे राजन् ! मेरी यह अभिलाषा पूर्ण कर दो । फिर तो तुम्हारे अधीन रहना मैं स्वीकार कर लूँगी ॥ २७ ॥ तब नहुषने कहा—'हे चन्द्रवदने ! तुम अपना वह कार्य बतलाओ । तुम्हारा मनोरथ सिद्ध करनेके लिए मैं अभी तैयार हूँ ॥ २८ ॥ हे सुभ्रु ! तुम मुझे बता भर दो, मैं परम दुर्लभ वस्तु भी तुम्हारे लिए सुलभ कर दूँगा ।' शचीने कहा—राजेन्द्र ! मैं कैसे कहूँ, क्योंकि तुम्हारे प्रति मेरे मनमें अभी पूरा

द्यमा ॥ नहुषस्तां समालोक्य मुदितो वाक्यमब्रवीत् ॥ २३ ॥ स्वागतं सत्यवचनैस्त्वदधीनोऽस्मि कामिनि ॥ दासोऽहं तव सत्येन पालितं वचनं त्वया ॥ २४ ॥ यदागता समीपे मे तुष्टोऽस्मि मितभाषिणि ॥ न च व्रीडा त्वया कार्या भक्तं मां भज सुस्मिते ॥ २५ ॥ कार्यं वद विशालाक्षि करिष्यामि तव प्रियम् ॥ शच्युवाच ॥ सर्वं कृतं त्वया कार्यं मम कृत्रिमवासव ॥२६॥ मनोरथोऽस्ति मे देव शृणुचित्तेऽधुना विभो ॥ वांछितं कुरु कल्याण त्वद्वशाऽहमतः परम् ॥२७॥ ब्रवीमि मानसोत्साहं त्वं तं कर्तुमिहार्हसि ॥ नहुष उवाच ॥ कार्यं त्वं ब्रूहि चंद्रास्ये करोमि तव वांछितम् ॥२८॥ अलभ्यमपि दास्यामि तुभ्यं सुभ्रु वदस्व माम् ॥ शच्युवाच ॥ कथं ब्रवीमि राजेंद्र प्रत्ययो नास्ति मे तव ॥२९॥ शपथं कुरु राजेन्द्र यत्करोमि प्रियं तव ॥ राजानः सत्यवचसो दुर्लभा एव भूतले ॥३०॥ पश्चाद्ब्रवीम्यहं राजञ्ज्ञात्वा सत्येन यंत्रितम् ॥ कृते चेद्वांछिते भूप सदा ते वशवर्तिनी ॥३१॥ भविष्यामि तुराषाड् वै सत्यमेतद्वचो मम ॥ नहुष उवाच ॥ अवश्यमेव कर्तव्यं वचनं तव सुंदरि ॥३२॥ शपामि सुकृतेनाहं यज्ञदानकृतेन वै ॥ शच्युवाच ॥ इन्द्रस्य हरयो वाहा गजश्चैव रथस्तथा ॥ ३३ ॥ गरुडो वासुदेवस्य यमस्य महिषस्तथा ॥ वृषभः शंकरस्यापि ब्रह्मणो वरटापतिः ॥ ३४ ॥ मयूरः कार्तिकेयस्य गजास्यस्य तु मूषकः ॥ इच्छाम्यहमपूर्वं वै वाहनं ते सुराधिप ॥ ३५ ॥ यन्न विष्णोर्न रुद्रस्य नासुराणां न

विश्वास नहीं है । हे राजन् ! संसारमें सत्यवादी राजा दुर्लभ होते हैं ॥ २९ ॥ ३० ॥ अतएव तुम प्रतिज्ञा करके सत्यके बन्धनमें बँध जाओ, तभी मैं अपना अभिप्राय व्यक्त करूँगी । हे राजन् ! यदि तुम्हारे द्वारा मेरी साध पूर्ण हो गयी तो मैं सदाके लिए तुम्हारी दासी बन जाऊँगी । यह मैं सत्य कह रही हूँ । नहुषने कहा—हे सुन्दरी ! मैं तुम्हारे वचनका पालन अवश्य करूँगा—इसमें कोई संशय नहीं है ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ यदि मैं तुम्हारी बातोंका अनादर करूँ तो आजतक यज्ञ और दानके फलस्वरूप मेरा जो संचित पुण्य है, वह सब नष्ट हो जाय । शचीने कहा—हे राजन् हाथी, घोड़े, रथ आदि वाहन इन्द्रकी सवारीमें काम आते हैं ॥३३॥ विष्णुके गरुड़, यमराजके महिष, शंकरके वृषभ और ब्रह्माके हंस वाहन हैं ॥३४॥ कार्तिकेय मोरपर तथा गणेश चूहेपर चढ़कर यात्रा करते हैं । हे सुराधिप ! मैं चाहती हूँ कि तुम्हारा वाहन इन सभी वाहनोंसे विलक्षण हो ॥ ३५ ॥ तुम्हारा वाहन वह होना चाहिए, जो आजतक विष्णु,

गणेश चूहेपर चढ़कर यात्रा करते हैं। हे सुराधिप ! मैं चाहती हूँ कि तुम्हारा वाहन इन सभी वाहनोंसे विलक्षण हो ॥ ३५ ॥ तुम्हारा वाहन वह होना चाहिए, जो अजितके विष्णु,

रुद्र तथा असुरों और राक्षसोंके लिए भी अलभ्य रहा हो। हे महाराज ! मैं चाहती हूँ कि अपने व्रतपर अटल रहनेवाले प्रधान-प्रधान मुनिगण तुम्हारी पालकी ढोवें। हे राजन् ! ये सभी मुनि सवारीमें जोत दिये जायँ। बस, यही मेरा मनोरथ है। क्योंकि हे नरेन्द्र ! मेरी समझसे तुम्हारी प्रभुता सब देवताओंसे बढ़-चढ़कर है ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ऐसा करनेसे तुम्हारा तेज निखर उठेगा। व्यासजी बोले--हे राजन् ! शची देवीकी उक्त बातें सुनकर वह प्रचण्ड मूर्ख नहुष हँस पड़ा ॥ ३८ ॥ क्योंकि महामायाके प्रभावसे उसकी बुद्धि मारी जा चुकी थी। उसने तुरंत इन्द्राणीकी प्रशंसा करते हुए कहा ॥ ३९ ॥ नहुषने कहा--हे सुन्दरी ! तुमने बहुत ठीक कहा है। मुझे भी यही सवारी पसन्द है। मैं सम्यक् प्रकारसे तुम्हारे कथनका पालन करूँगा ॥४०॥ जिसमें थोड़ा पराक्रम हो, वह भले ही मुनियोंको सवारी ढोनेके काममें न लगा सके। किन्तु मैं तो ऐसा नहीं हूँ। अतः हे शुचिस्मिते ! मैं इसी सवारीपर चढ़कर तुम्हारे पास आऊँगा ॥ ४१ ॥ मुझमें तपस्याका अपार बल है। मैं त्रिलोकीभरमें सबसे अधिक सामर्थ्य रखता हूँ। मेरे विषयमें यह जानकारी प्राप्त हो जानेपर सब देवता तथा

रक्षसाम् ॥ वहंतु त्वां महाराज मुनयः शंसितव्रताः ॥ ३६ ॥ सर्वे शिबिकया राजन्नेतद्धि मम वांछितम् ॥ सर्वदेवाधिकं त्वां वै जानामि वसुधाधिप ॥ ३७ ॥ तेन ते तेजसो वृद्धिं वांछाम्यहमतंद्रिता ॥ व्यास उवाच ॥ तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा प्रहस्य ज्ञानदुर्बलः ॥ ३८ ॥ मोहितस्तु महादेव्या कृतं मोहेन तत्क्षणम् ॥ उवाच वचनं भूपः संस्तुवन्वासवप्रियाम् ॥ ३९ ॥ नहुष उवाच ॥ सत्यमुक्तं त्वया तन्वि वाहनं रुचिरं मम ॥ करिष्यामि सुकेशांते वचनं तव सर्वथा ॥ ४० ॥ न ह्यल्पवीर्यो भवति यो वाहान्कुरुते मुनीन् ॥ अहमारुह्य यानेन त्वामेष्यामि शुचिस्मिते ॥ ४१ ॥ सप्तर्षयो मां वक्ष्यंति सर्वे देवर्षयस्तथा ॥ समर्थं त्रिषु लोकेषु ज्ञात्वा मां तपसाऽधिकम् ॥ ४२ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्त्वा तां सुसंतुष्टो विससर्ज हरिप्रियाम् ॥ मुनीनाहूय सर्वांस्तानित्युवाच स्मरान्वितः ॥४३॥ नहुष उवाच ॥ अहमिन्द्रोऽद्य भो विप्राः सर्वशक्तिसमन्वितः ॥ कार्यमत्र प्रकुर्वंतु भवंतो विगतस्मयाः ॥ ४४ ॥ इन्द्रासनं मया प्राप्तं नेंद्राणी मामुपैति च ॥ आकारिता च मां ब्रूते प्रेमपूर्वमिदं वचः ॥ ४५ ॥ मुनियानेन देवेंद्र मामुपैहि सुराधिप ॥ देवदेव महाराज मत्प्रियं कुरु मानद ॥ ४६ ॥ एतत्कार्यं मुनिश्रेष्ठा ममात्यंतं दुरासदम् ॥ भवद्भिस्तु प्रकर्तव्यं सर्वथैव दयालुभिः ॥ ४७ ॥ मनो दहति मे कामः शक्रपत्न्यां प्रवर्तितम् ॥ भवंतः शरणं मेऽद्य कुरुध्वं कार्यमद्भुतम् ॥ ४८ ॥ अगस्तिप्रमुखास्तस्य श्रुत्वा

सप्तर्षिगण मेरी प्रशंसा करेंगे ॥ ४२ ॥ व्यासजी बोले-हे राजन् ! इस प्रकार वार्तालाप करनेके पश्चात् उस परम सन्तुष्ट नहुषने शचीको अपने स्थानपर जानेकी आज्ञा दे दी। वह कामान्ध व्यग्र हो रहा था। सो उसने समस्त मुनियोंको बुलाकर उनके सामने अपनी बात रख दी ॥४३॥ नहुषने कहा-विप्रो ! अब इन्द्र कहलानेका सौभाग्य मुझे प्राप्त है। मेरे पास सारी शक्तियाँ हैं। इस अवसरपर आपलोग प्रसन्नतापूर्वक मेरे कार्यसाधनमें तत्पर हो जायँ ॥ ४४ ॥ इन्द्रका आसन मुझे मिल चुका है, परन्तु इन्द्राणी अभी मेरे पास नहीं आ सकी। उसका कहना है- ॥४५॥ 'हे देवेन्द्र ! मुनिगण जिस सवारीको ढोयें, उसपर चढ़कर आप मुझे पानेके लिए पधारिये' ॥४६॥ हे आदरणीय मुनियों ! मेरा यह कार्य अत्यन्त कठिन है। पर आप लोग बड़े दयालु हैं। इसके लिए मेरा मन निरन्तर संतप्त रहता है। इस अवसरपर मेरे परम आश्रय केवल आप ही हैं। अतः इस महान् कार्यको सम्पन्न करनेकी आवश्यक कृपा करें ॥४७॥४८॥

हे राजन् ! उन श्रेष्ठ ऋषियोंमें अगस्त्यजी प्रमुख थे । कृपालु होनेके कारण अथवा होनहारवश नहुषकी यह खोटी बात सुनकर वे वैसा ही करनेके लिए सहमत हो गये ॥ ४९ ॥ अब उन तत्त्वदर्शी मुनियोंने इन्द्राणीपर आसक्त उस नरेशकी बात स्वीकार कर ली, तब तो उसके हर्षकी सीमा नहीं रही ॥५०॥ वह तुरन्त एक परम मनोहर पालकीपर बैठा और दिव्य मुनियोंको उसे ढोनेके लिए नियुक्त करके 'सर्प-सर्प' अर्थात् 'चलो-चलो' यों कहने लगा ॥ ५१ ॥ उस समय कामातुर हो जानेसे नहुषकी बुद्धि मारी जा चुकी थी । उसने अगस्त्यजीके मस्तकपर अपने पैरसे मार दिया । लोपामुद्राके प्राणपति अगस्त्यजी परम श्रेष्ठ तपस्वी माने जाते थे ॥ ५२ ॥ वातापी नामका राक्षस उनका भक्ष्य बन चुका था । एक बार वे समुद्रको पी गये थे । पापी नहुषने ऐसे सुयोग्य अगस्त्यजीपर कोड़े भी चला दिये ॥ ५३ ॥ इन्द्राणीके चिन्तनमें अत्यन्त व्याकुल उस नरेशके मुखसे मुनियोंके प्रति 'सर्प-सर्प' अर्थात् 'चलो-चलो' यह शब्द बारम्बार

वाक्यमसत्करम् ॥ अंगीचक्रुश्च भावित्वात्कृपया परमर्षयः ॥ ४९ ॥ अंगीकृतेऽथ तद्वाक्ये मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ मुदं प्राप नृपः कामं पौलोमीकृतमानसः ॥ ५० ॥ आरुह्य शिबिकां रम्यां संस्थितस्त्वरयाऽन्वितः ॥ वाहान्कृत्वा मुनीन्दिव्यान्सर्प सर्पेति चाब्रवीत् ॥ ५१ ॥ कामार्तः सोऽस्पृशन्मूढः पादेन मुनिमस्तकम् ॥ अगस्तिं तापसश्रेष्ठं लोपामुद्रापतिं तदा ॥ ५२ ॥ वातापिभक्षकर्तारं समुद्रस्यापि शोषकम् ॥ कशया ताडयामास पंचबाणशराहतः ॥ ५३ ॥ इन्द्राणीहृतचित्तोऽसौ सर्पेति प्रब्रुवन्मुनिम् ॥ तं शशाप मुनिः क्रुद्धः कशाघातमनुस्मरन् ॥ ५४ ॥ सर्पो भव दुराचार वने घोरवपुर्महान् ॥ बहुवर्षसहस्राणि तत्र क्लेशो महान्भवेत् ॥ ५५ ॥ विचरिष्यसि वीर्येण पुनः स्वर्गमवाप्स्यसि ॥ दृष्ट्वा युधिष्ठिरं नाम तव मोक्षो भविष्यति ॥ ५६ ॥ प्रश्नानामुत्तरं श्रुत्वा धर्मपुत्रमुखात्ततः ॥ व्यास उवाच ॥ एवं शप्तः स राजर्षिः स्तुत्वा तं मुनिसत्तमम् ॥ ५७ ॥ स्वर्गात्पपात सहसा सर्परूपधरोऽभवत् ॥ बृहस्पतिस्ततो गत्वा तरसा मानसं प्रति ॥ ५८ ॥ इन्द्राय सर्ववृत्तांतं कथयामास विस्तरात् ॥ तच्छ्रुत्वा मघवा राज्ञः स्वर्गात्प्रच्यवनादिकम् ॥ ५९ ॥ मुदितोऽभून्महाराज स्थितस्तत्रैव वासवः ॥ देवाश्च मुनयो दृष्ट्वा नहुषं पतितं भुवि ॥ ६० ॥ जग्मुः सर्वेऽपि तत्रैव यत्रेंद्रः सरसि स्थितः ॥ तमाश्वास्य सुराः सर्वे मुनिभिः सहितास्तदा ॥ ६१ ॥ स्वर्गं समानयामासुर्मानपूर्वं शचीपतिम् ॥ समागतं

निकल रहे थे । फिर तो अगस्त्यजीने कोड़ेकी मारसे कुपित होकर नहुषको शाप दे दिया ॥ ५४ ॥ वे बोले—अरे नीच ! तू वनमें भयंकर शरीरवाला महान् सर्प बन जा ! उस सर्पयोनिमें अनेक हजार वर्षों तक तुझे अपार कष्ट भोगने पड़ेंगे ॥ ५५ ॥ तू शक्तिसम्पन्न होकर वनमें विचरेगा । धर्मके अंशसे युधिष्ठिर नामके एक पुण्यात्मा पुरुष प्रकट होंगे । उनसे तेरी भेंट होगी । तब उनके मुखसे प्रश्नोंके उत्तर सुन लेनेके पश्चात् तू शापमुक्त हो जायगा ।' व्यासजी बोले—इस प्रकार मुनिवर अगस्त्यजीके शाप देनेपर राजर्षि नहुषने उनकी स्तुति की ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ तुरन्त ही उसकी आकृति सर्पके समान बन गयी और वह स्वर्गसे गिर पड़ा । तदनन्तर बृहस्पतिजी बड़ी शीघ्रताके साथ मानसरोवर गये और उन्होंने वहाँके सब समाचार विस्तारपूर्वक इन्द्रको सुना दिये । नहुष स्वर्गसे गिर गया इत्यादि बातें सुनकर देवराजके मनमें प्रसन्नता छा गयी । हे राजन् ! नहुष अब धरातलपर चला गया—यह देखकर सब देवता भी

मुनियोंसहित उसी मानसरोवरपर इन्द्रके पास गये और आश्वासन देकर उन्होंने इन्द्रको स्वर्ग ले आनेकी व्यवस्था की। तब उनके द्वारा बड़े सम्मानके साथ इन्द्र स्वर्गमें लौट आये। इसके बाद देवताओं और मुनियोंने उन्हें आसनपर विराजमान करके मङ्गल-अभिषेक किया। इन्द्र भी अब अपने आसनके अधिकारी बनकर शचीके साथ स्वर्गमें रहने लगे ॥ ५८-६३ ॥ व्यासजी बोले—हे राजन्! इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले महामुनि विश्वरूप असुरको मारकर इन्द्रको अत्यन्त भयंकर कष्ट सहने पड़े थे। फिर भगवती जगदम्बाके कृपाप्रसादसे इन्द्र पुनः अपने स्थानपर प्रतिष्ठित हुए ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ हे राजन्! वृत्रासुरके वधसे सम्बन्ध रखनेवाली सारी कथायें मैं तुम्हें सुना चुका। तुमने जिस विषयमें प्रश्न किया है, वह कथा बड़ी ही विलक्षण है ॥ ६६ ॥ जो जैसा कर्म करता है, उसके सामने वैसे फल आते हैं। क्योंकि अपने किये हुए शुभ अथवा अशुभ कर्मका फल भोगना प्राणियोंके लिए अनिवार्य है— इसे कोई टाल नहीं सकता ॥ ६७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा' भाषाटीकायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

ततः शक्रं सर्वे ते मुनयः सुराः ॥ ६२ ॥ स्थापयित्वाऽऽसने पश्चादभिषेकं दधुः शिवम् ॥ इन्द्रोऽपि स्वासनं प्राप्य शच्या सह सुरालये ॥ ६३ ॥ चिक्रीड नंदने रम्ये कानने प्रेमयुक्तया ॥ व्यास उवाच ॥ एवमिंद्रेण संप्राप्तं दुःखं परमदारुणम् ॥६४॥ हत्वाऽसुरं कामरूपं विश्वरूपं महामुनिम् ॥ पुनर्देव्याः प्रसादेन स्वस्थानं प्राप्तवान्नृप ॥ ६५ ॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं वृत्रासुरवधाश्रयम् ॥ यत्पृष्टोऽहं त्वया राजन्कथानकमनुत्तमम् ॥ ६६ ॥ यादृशं कुरुते कर्म तादृशं फलमाप्नुयात् ॥ अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥ ६७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे नहुषस्य स्वर्गात्पतनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

॥ जनमेजय उवाच ॥ कथितं चरितं ब्रह्मञ्छक्रस्याद्भुतकर्मणः ॥ स्थानभ्रंशस्तथा दुःखप्राप्तिरुक्ता विशेषतः ॥ १ ॥ यत्र देवाधिदेव्याश्च महिमाऽतीव वर्णितः ॥ संदेहोऽत्र ममाप्यस्ति यच्छक्रोऽपि महातपाः ॥ २ ॥ देवाधिपत्यमासाद्य दुःसहं दुःखमन्वभूत् ॥ मखानां तु शतं कृत्वा प्राप्तं स्थानमनुत्तमम् ॥ ३ ॥ देवेशत्वं च संप्राप्य भ्रष्टः स्थानादसौ कथम् ॥ एतत्सर्वं समाचक्ष्व कारणं करुणानिधे ॥ ४ ॥ सर्वज्ञोऽसि मुनिश्रेष्ठ पुराणानां प्रवर्तकः ॥ नावाच्यं महतां किंचिच्छिष्ये च श्रद्धयाऽन्विते ॥ ५ ॥ तस्मात्कुरु महाभाग मत्संदेहापनोदनम् ॥ सूत उवाच ॥ इति

(विविध कर्म और युगधर्म) राजा जनमेजयने पूछा—हे ब्रह्मन्! आपने अद्भुत कर्म करनेवाले इन्द्रकी कथा सुनायी। इन्द्र अपने स्थानके अनधिकारी हो गये थे और उन्हें भी कष्ट भोगना पड़ा था—इसका विशेष रूपसे विवेचन किया है ॥ १ ॥ उसी प्रसंगमें देवताओंपर भी नियंत्रण रखनेवाली भगवती जगदम्बाकी महिमा भी वर्णित हुई है। परन्तु अब मुझे यह सन्देह हो रहा है कि महान् तपस्वी एवं देवराजके पदपर प्रतिष्ठित होते हुए भी इन्द्र दुःसह दुःखके पचड़ेमें कैसे पड़े? सौ अश्वमेध यज्ञ करनेके पश्चात् उन्हें वह अनुपम आसन प्राप्त हुआ था ॥२॥३॥ सभी देवता उनका अनुशासन मानते थे। फिर अपने स्थानसे वे कैसे च्युत हो गये? हे करुणानिधे! आप इसका सम्पूर्ण कारण बतलानेकी कृपा करें ॥ ४ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ! आप सर्वज्ञ तथा पुराणोंके रचयिता हैं। महापुरुष लोग श्रद्धालु शिष्यको ज्ञानदान देते समय कोई भी बात अकथनीय नहीं समझते ॥ ५ ॥ अतएव आप मेरा सन्देह निवृत्त कर दीजिए।

सूतजी कहते हैं-हे शौनकादि ऋषियो ! जब राजा जनमेजयने सत्यवतीनन्दन व्यासजीसे यों पूछा, तब वे बड़ी प्रसन्नताके साथ उनके प्रश्नोंका क्रमशः उत्तर देने लगे । व्यासजी बोले-हे राजेन्द्र ! मैं इसका परम अद्भुत कारण बतलाता हूँ, सुनो ॥ ६ ॥ ७ ॥ तत्त्वज्ञानी पुरुषोंने संचित, वर्तमान और प्रारब्धके भेदसे कर्मकी तीन गतियाँ बतलायी हैं ॥ ८ ॥ अनेक जन्मोंसे संचय किये हुए पुराने कर्मको 'संचित' कर्म कहते हैं । फिर वे कर्म भी तीन प्रकारके होते हैं-सात्त्विक, राजस और तामस ॥ ९ ॥ हे राजन् ! बहुत समयसे संचित किया हुआ शुभ तथा अशुभ कर्म वर्तमान जन्ममें पुण्य एवं पापके रूपमें सामने आता है । उसे भोगनेमें प्राणी परवश है-उन्हें अवश्य भोगना पड़ता है ॥ १० ॥ प्रत्येक जन्ममें प्राणियों द्वारा कर्मका संचय होता रहता है । उन्हें भोगे बिना करोड़ कल्पमें भी उनका नाश नहीं होता ॥ ११ ॥ जो क्रियमाण कर्म है, उसीको 'वर्तमान' कर्म कहते हैं । देहधारी जीव शुभ अथवा अशुभ कर्ममें प्रवृत्त हो जाते हैं । शरीर धारण कर लेनेपर कालकी प्रेरणासे कर्मके क्रम चालू हो जाते हैं ॥ १२ ॥ १३ ॥ प्रारब्धकर्म उसे समझना चाहिए, जिसका फल भोग लेनेपर फिर कुछ

पृष्टः स राज्ञा वै तदा सत्यवतीसुतः ॥६॥ तमाहातिप्रसन्नात्मा यथानुक्रममुत्तरम् ॥ व्यास उवाच ॥ निबोध नृपतिश्रेष्ठ कारणं परमाद्भुतम् ॥ ७ ॥ कर्मणस्तु त्रिधा प्रोक्ता गतिस्तत्त्वविदां वरैः ॥ संचितं वर्तमानं च प्रारब्धमिति भेदतः ॥ ८ ॥ अनेकजन्मसंजातं प्राक्तनं संचितं स्मृतम् ॥ सात्त्विकं राजसं कर्म तामसं त्रिविधं पुनः ॥ ९ ॥ शुभं वाऽप्यशुभं भूप संचितं बहुकालिकम् ॥ अवश्यमेव भोक्तव्यं सुकृतं दुष्कृतं तथा ॥१०॥ जन्मजन्मनि जीवानां संचितानां च कर्मणाम् ॥ निःशेषस्तु क्षयो नाभूत्कल्पकोटिशतैरपि ॥ ११ ॥ क्रियमाणं च यत्कर्म वर्तमानं तदुच्यते ॥ देहं प्राप्य शुभं वाऽपि ह्यशुभं वा समाचरेत् ॥ १२ ॥ संचितानां पुनर्मध्यात्समाहृत्य कियान्किल ॥ देहारंभे च समये कालः प्रेरयतीव तत् ॥१३॥ प्रारब्धं कर्म विज्ञेयं भोगात्तस्य क्षयः स्मृतः ॥ प्राणिभिः खलु भोक्तव्यं प्रारब्धं नात्र संशयः ॥१४॥ पुरा कृतानि राजेन्द्र ह्यशुभानि शुभानि च ॥ अवश्यमेव कर्माणि भोक्तव्यानीति निश्चयः ॥ १५ ॥ देवैर्मनुष्यैरसुरैर्यक्षगंधर्वकिन्नरैः ॥ कर्मैव हि महाराज देहारंभस्य कारणम् ॥ १६ ॥ कर्मक्षये जन्मनाशः प्राणिनां नात्र संशयः ॥ ब्रह्मा विष्णुस्तथा रुद्र इन्द्राद्याश्च सुरास्तथा ॥ १७ ॥ दानवा यक्षगंधर्वाः सर्वे कर्मवशाः किल ॥ अन्यथा देहसंबंधः कथं भवति भूपते ॥ १८ ॥ कारणं यस्तु भोगस्य देहिनः सुखदुःखयोः ॥ तस्मादनेकजन्मोत्थसंचितानां च कर्मणाम् ॥ १९ ॥ मध्ये

शेष नहीं रह जाता । प्राणियोंको प्रारब्धकर्म अवश्य भोगना पड़ता है-इसमें कोई संशय नहीं है ॥ १४ ॥ हे राजेन्द्र ! यह बिल्कुल निश्चित है कि पूर्वजन्ममें किये गये जितने अच्छे और बुरे कर्म हैं, उनके फल वर्तमान जन्ममें सामने आते हैं । उन्हें भोगना प्राणियोंके लिए अनिवार्य हो जाता है ॥ १५ ॥ हे महाराज ! मनुष्य, देवता, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व और किंनर सबके सब कर्मभोगमें परवश हैं । देह धारण करनेमें कर्म ही मुख्य कारण है ॥ १६ ॥ कर्मके पूर्णतया समाप्त हो जानेपर प्राणियोंके जन्मकी गति समाप्त हो जाती है । इस विषयमें किंचिन्मात्र भी संदेह नहीं करना चाहिए । हे राजन् ! ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्रादि देवता, दानव, यक्ष और गंधर्व ये सबके सब कर्मके अधीन हैं । यदि ऐसा न होता तो ये लोग देह ही क्यों धारण करते ? ॥ १७ ॥ १८ ॥ प्राणी जीवनमें जो सुख और दुःख भोगता है, इसमें पूर्वजन्मकृत कर्मजनित प्रारब्ध ही कारण है ॥ १९ ॥ इससे यह सिद्ध होता है कि अनेक

जन्मोंमें संचित जितने कर्म हैं, उनसे क्रमशः एक-एक कर्मका भोग प्राणीके सामने समयानुसार आया करता है। यही नियम देवताओंके लिये भी है। प्रारब्धके इसी नियमके अनुसार इन्द्रको कष्ट भोगने पड़े ॥ २० ॥ हे राजन् ! नर और नारायण ये दोनों धर्मके यहाँ पुत्ररूपसे अवतार ले चुके हैं। भगवान् नारायणके वे अंश हैं। उन्हींका श्रीकृष्ण और अर्जुनके रूपमें जन्म हुआ है। मुनिगण इस पौराणिक कथाका विवेचन कर चुके हैं ॥ २१ ॥ २२ ॥ जिसमें अधिक शक्ति हो, उसे किसी देवताका अंश समझना चाहिए। जो ऋषि नहीं होता, वह काव्यकी रचना नहीं कर सकता और अरुद्र रुद्रकी अर्चना नहीं करता ॥ २३ ॥ जो देवांश नहीं होता, वह अन्नदान नहीं देता। जो विष्णु नहीं होता, वह राजा नहीं हो सकता। इन्द्र, अग्नि, यम, विष्णु और कुबेरसे क्रमशः प्रभुत्व, प्रभाव, कोप एवं पराक्रम प्राप्त करके ही शरीर बनता है ॥२४॥२५॥ जगत्में जो कोई भी बलवान्, भाग्यवान्, भोगवान्, विद्वान् अथवा दानशील होता है, उसे लोग देवताका अंश कहते हैं ॥२६॥ हे राजन् ! यही बात पाण्डवोंके विषयमें कही गयी है। साक्षात् नारायणके समान दीप्तिमान् श्रीकृष्ण भी देवांश

वेगः समायाति कस्यचित्कालपाकतः ॥ तत्प्रारब्धवशात्पुण्यं करोति च यथा तथा ॥ २० ॥ पापं करोति मनुजस्तथा देवादयोऽपि च ॥ तथा नारायणो राजन्नरश्च धर्मजावुभौ ॥ २१ ॥ जातौ कृष्णार्जुनौ काममंशौ नारायणस्य तौ ॥ पुराणपीठिकेयं वै मुनिभिः परिकीर्तिता ॥ २२ ॥ देवांशः स तु विज्ञेयो यो भवेद्विभवाधिकः ॥ नानृषिः कुरुते काव्यं नारुद्रो रुद्रमर्चते ॥ २३ ॥ नादेवांशो ददात्यन्नं नाविष्णुः पृथिवीपतिः ॥ इन्द्रादग्नेर्यमाद्विष्णोर्धनदादिति भूपते ॥ २४ ॥ प्रभुत्वं च प्रभावं कोपं चैव पराक्रमम् ॥ आदाय क्रियते नूनं शरीरमिति निश्चयः ॥ २५ ॥ यः कश्चिद्बलवाँल्लोके भाग्यवानथ भोगवान् ॥ विद्यावान्दानवान्वाऽपि स देवांशः प्रपठ्यते ॥ २६ ॥ तथैवैते ममाख्याताः पांडवाः पृथिवीपते ॥ देवांशो वासुदेवोऽपि नारायणसमद्युतिः ॥ २७ ॥ शरीरं प्राणिनां नूनं भाजनं सुखदुःखयोः ॥ शरीरी प्राप्नुयात्कामं सुखं दुःखमनंतरम् ॥२८॥ देही नास्ति वशः कोऽपि दैवाधीनः सदैव हि ॥ जननं मरणं दुःखं सुखं प्राप्नोति चावशः ॥२९॥ पांडवास्ते वने जाताः प्राप्तास्तु स्वगृहं पुनः ॥ स्वबाहुबलतः पश्चाद्राजसूयं क्रतूत्तमम् ॥ ३० ॥ वनवासं पुनः प्राप्ता बहुदुःखकरं परम् ॥ अर्जुनेन तपस्तप्तं दुष्करं ह्यजितेंद्रियैः ॥३१॥ संतुष्टैस्तु सुरैर्दत्तं वरदानं पुनः शुभम् ॥ नरदेहकृतं पुण्यं क्व गतं वनवासजम् ॥ ३२ ॥ नरदेहे तपस्तप्तं चोग्रं बदरिकाश्रमे ॥ नार्जुनस्य शरीरे तत्फलदं

थे ॥ २७ ॥ केवल सुख और दुःख भोगनेके लिये ही प्राणियोंको देह धारण करना पड़ता है। शरीर पाकर सुख और दुःखके पचड़ेसे प्राणी कभी नहीं बच सकते ॥२८॥ कोई भी प्राणी स्वतन्त्र नहीं है। प्रायः प्रतिक्षण दैव अपना शासन जमाये रहता है। अतः पराधीन प्राणी जन्मने और मरनेके सुख एवं दुःख भोगते रहते हैं ॥ २९ ॥ यह दैवका ही प्रभाव है कि पाण्डव वनवासी हुए थे। फिर उन्हें घरपर रहनेका सुअवसर प्राप्त हुआ। इसके बाद उन्होंने अपनी भुजाओंके प्रतापसे राजसूय यज्ञ किया, जो सम्पूर्ण यज्ञोंमें श्रेष्ठ माना जाता है। फिर वनमें जानेकी समस्या सामने आ गयी। उस समय उन्हें अपार कष्ट झेलने पड़े। वहाँ अर्जुनने ऐसा कठोर तप किया, जो अजितेन्द्रियोंके लिए दुष्कर था ॥ ३० ॥ ३१ ॥ जिससे देवता सन्तुष्ट हुए और उन्होंने अर्जुनको कल्याणकारी वरदान दिया। अब यह बतलाइए कि 'नर'के रूपमें उन्होंने जो पुण्य सञ्चित किया था और वनवासके समय जो पुण्य

किया था—वे दोनों पुण्य अब कहाँ चले गये ? ॥ ३२ ॥ पूर्व समयमें 'नर' नामक धर्म-तनय होकर उन्होंने बदरिकाश्रममें जो उग्र तपस्या की थी, वह अर्जुनके शरीरमें फलदायक नहीं सिद्ध हुई ॥ ३३ ॥ इससे यह स्पष्ट है कि प्राणियोंकी देहसम्बन्धी कर्मकी गति नहीं जानी जा सकती । जब देवता भी कर्मकी गति नहीं जान पाते, तब साधारण मनुष्योंकी बात ही क्या है ? ॥ ३४ ॥ जब स्वयं नारायण कृष्ण जेलखानेकी तंग जगहमें पैदा हुए । जहाँसे वसुदेव उन्हें गोकुलमें नन्दगोपके यहाँ पहुँचा आये ॥ ३५ ॥ हे राजन् ! गोकुलमें वे ग्यारह वर्षकी अवस्था तक रहे । फिर मथुरामें आकर उन्होंने उग्रसेन-तनय कंसको बलपूर्वक मारा ॥३६॥ बादमें अत्यन्त दुःखित माता-पिता देवकी और वसुदेवको बन्धनसे छुड़ाकर मथुरापुरीका राज्य उग्रसेनको दिया ॥३७॥ फिर म्लेच्छराज कालयवनके भयसे वे द्वारकापुरी चले गये । दैवके वशीभूत होकर कृष्णने अपने पुरुषार्थका प्रदर्शन किया ॥३८॥ द्वारिकामें जनार्दन कृष्णने अनेक अलौकिक चरित्र किये । फिर प्रभासतीर्थमें देह त्यागकर वे कुटुम्बके साथ स्वर्ग चले गये ॥ ३९ ॥ प्रभासतीर्थमें विप्रके शापसे यादव वीर अपने पुत्र, पौत्र, मित्र, भाई, बहन

संबभूव ह ॥ ३३ ॥ प्राणिनां देहसंबंधे गहना कर्मणो गतिः ॥ दुर्ज्ञेया सर्वथा देवैर्मानवानां तु का कथा ॥ ३४ ॥ वासुदेवोऽपि संजातः कारागारेऽतिसंकटे ॥ नीतोऽसौ वसुदेवेन नंदगोपस्य गोकुलम् ॥ ३५ ॥ एकादशैव वर्षाणि संस्थितस्तत्र भारत ॥ पुनः स मथुरां गत्वा जघानोग्रसुतं बलात् ॥ ३६ ॥ मोचयामास पितरौ बंधनाद्भृशदुःखितौ ॥ उग्रसेनं च राजानं चकार मथुरापुरे ॥ ३७ ॥ जगाम द्वारवत्यां स म्लेच्छराजभयात्पुनः ॥ सर्वं भाविवशात्कृष्णः कृतवान्पौरुषं महत् ॥ ३८ ॥ कृत्वा कार्याण्यनेकानि द्वारवत्यां जनार्दनः ॥ देहं त्यक्त्वा प्रभासे तु सकुटुंबो दिवं गतः ॥ ३९ ॥ पुत्राः पौत्राश्च सुहृदो भ्रातरो जामयस्तथा ॥ प्रभासे यादवाः सर्वे विप्रशापात्क्षयं गताः ॥ ४० ॥ एवं ते कथिता राजन्कर्मणो गहना गतिः ॥ वासुदेवोऽपि व्याधस्य बाणेन निधनं गतः ॥ ४१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

॥ जनमेजय उवाच ॥ भारावतारणार्थाय कथितं जन्म कृष्णयोः ॥ संशयोऽयं द्विजश्रेष्ठ हृदये मम तिष्ठति ॥ १ ॥ पृथिवी गोस्वरूपेण ब्रह्माणं शरणं गता ॥ द्वापरान्तेऽतिदीनाऽऽर्ता गुरुभारप्रपीडिता ॥ २ ॥ वेधसा प्रार्थितो विष्णुः कमलापतिरीश्वरः ॥ भूभारोत्तारणार्थाय साधूनां रक्षणाय च ॥३॥ भगवान्भारते खंडे देवैः सह जनार्दनः ॥ अवतारं गृहाणाशु वसुदेवगृहे विभो ॥४॥ एवं संप्रार्थितो धात्रा भगवान्देवकीसुतः ॥

आदिके साथ नष्ट हो गये ॥ ४० ॥ स्वयं भगवान् कृष्णको भी व्याधके बाणसे मरकर परलोक जाना पड़ा । हे जनमेजय ! इस तरह मैंने आपके समक्ष कर्मकी गहन गतिका विवेचन किया ॥ ४१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषाटीकायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

(युगधर्म) जनमेजय बोले—हे व्यासजी ! आपने कहा कि पृथिवीका भार उतारनेके लिए राम और कृष्णका जन्म हुआ था । लेकिन मेरे चित्तमें एक शङ्का है ॥ १ ॥ वह यह कि द्वापर युगके अन्तमें अत्यन्त दीन तथा आतुर हो और भारी बोझसे दबी हुई पृथिवी गौका स्वरूप धारण करके ब्रह्माजीकी शरणमें गयी ॥२॥ तब ब्रह्माजीने भूमिका भार उतारने तथा साधु जनोंकी प्राणरक्षाके लिए कमलापति विष्णुसे प्रार्थना करते हुए कहा—॥ ३ ॥ हे भगवन् ! हे विभो ! आप भारतवर्षमें वसुदेवके घर देवताओंके साथ तुरन्त अवतार लीजिए ॥ ४ ॥

साधु जनोंकी प्राणरक्षाके लिए कमलापति विष्णुसे प्रार्थना करते हुए कहा—॥ ३ ॥ हे भगवन् ! हे विभो ! आप भारतवर्षमें वसुदेवके घर देवताओंके साथ तुरन्त अवतार लीजिए ॥ ४ ॥

जब विधाताने इस तरह भगवानसे प्रार्थना की तो पृथिवीका बोझ उतारनेके लिए बलरामके साथ देवकीके पुत्ररूपमें उन्होंने जन्म लिया ॥५॥ तदनन्तर दुराचारी एवं अत्याचारी अनेक राजाओंको मारकर उन्होंने पृथ्वीका कितना भार उतारा ? ॥ ६ ॥ इसी प्रसंगमें भीष्मपितामह मारे गये, द्रोणाचार्यका वध हुआ, विराट्का नाश हुआ, द्रुपद मरे, बाह्लीक, सोमदत्त, कर्ण तथा वैकर्तन आदि राजे मारे गये ॥७॥ लेकिन जिन्होंने राज्यका खजाना लूट लिया और कृष्णकी रानियोंका अपहरण किया, वे दुष्ट क्यों नहीं मारे गये? वे पृथिवीतलपर क्यों छोड़ दिये गये? जब आभीर, शक, म्लेच्छ और निषाद आदि जातिके करोड़ों विदेशी भारतवर्षमें रह गये, तब राजनीति-विशारद कृष्णने पृथ्वीका क्या भार उतारा? ॥८॥९॥ हे महाभाग ! इस कलियुगमें जितने प्रजाजन हैं, वे सब पापकर्ममें लगे हुए हैं। इन्हें देखकर चित्तसे सन्देह किसी प्रकार दूर नहीं होने आता ॥ १० ॥ व्यासजी बोले—हे राजन् ! जैसा युग होता है, वैसी ही प्रजा

बभूव सह रामेण भूभारोत्तारणाय वै ॥५॥ कियानुत्तारितो भारो हत्वा दुष्टाननेकशः ॥ ज्ञात्वा सर्वान्दुराचारान्पापबुद्धिनृपानिह ॥ ६ ॥ हतो भीष्मो हतो द्रोणो विराटो द्रुपदस्तथा ॥ बाह्लीकः सोमदत्तश्च कर्णो वैकर्तनस्तथा ॥७॥ यैर्लुंठितं धनं सर्वं हृताश्च हरियोषितः ॥ कथं न नाशिता दुष्टा ये स्थिताः पृथिवीतले ॥८॥ आभीराश्च शका म्लेच्छा निषादाः कोटिशस्तथा ॥ भारावतरणं किं तत्कृतं कृष्णेन धीमता ॥९॥ संदेहोऽयं महाभाग न निवर्तति चित्ततः ॥ कलावस्मिन्प्रजाः सर्वाः पश्यतः पापनिश्चयाः ॥१०॥ व्यास उवाच ॥ राजन्यस्मिन्युगे यादृक्प्रजा भवति कालतः ॥ नान्यथा तद्भवेन्नूनं युगधर्मोऽत्र कारणम् ॥११॥ ये धर्मरसिका जीवास्ते वै सत्ययुगेऽभवन् ॥ धर्मार्थरसिका ये तु ते वै त्रेतायुगेऽभवन् ॥१२॥ धर्मार्थकामरसिका द्वापरे चाभवन्युगे ॥ अर्थकामपराः सर्वे कलावस्मिन्भवंति हि ॥ १३ ॥ युगधर्मस्तु राजेन्द्र न याति व्यत्ययं पुनः ॥ कालः कर्तास्ति धर्मस्य ह्यधर्मस्य च वै पुनः ॥१४॥ राजोवाच ॥ ये तु सत्ययुगे जीवा भवंति धर्मतत्पराः ॥ कुत्र तेऽद्य महाभाग तिष्ठंति पुण्यभागिनः ॥ १५ ॥ त्रेतायुगे द्वापरे वा ये दानव्रतकारकाः ॥ वर्तन्ते मुनयः श्रेष्ठाः कुत्र ब्रूहि पितामह ॥१६॥ कलावद्य दुराचारा येऽत्र सन्ति गतत्रपाः ॥ आद्ये युगे क्व यास्यंति पापिष्ठा देवनिन्दकाः ॥ १७॥ एतत्सर्वं समाचक्ष्व विस्तरेण महामते ॥ सर्वथा श्रोतुकामोऽस्मि यदेतद्धर्मनिर्णयम् ॥ १८ ॥

होती है। इसमें 'युगधर्म' ही मुख्य कारण होता है ॥ ११ ॥ सत्ययुगमें प्रजा धर्म-परायण होती है। त्रेतायुगमें 'धर्म'के साथ-साथ 'अर्थ' कमानेवाली प्रजा होती है ॥ १२ ॥ द्वापर युगमें धर्म, अर्थ और कामकी लोलुप प्रजा उत्पन्न होती है। लेकिन इस कलियुगमें तो सभी लोग एकमात्र 'अर्थ' और 'काम'के ही चक्करमें पड़े रहते हैं ॥ १३ ॥ हे राजेन्द्र ! युगधर्मका प्रभाव नहीं बदलता। काल ही कभी धर्म और कभी अधर्मकी ओर लोगोंको प्रेरित करता है ॥ १४ ॥ राजा जनमेजयने कहा—हे महाभाग ! सत्ययुगमें जो धर्मपरायण लोग हुए थे, वे पुण्यात्मा जीव इस समय कहाँ हैं ? ॥ १५ ॥ हे पितामह ! त्रेता और द्वापर युगके दानी और नियम-व्रत करनेवाले मुनि लोग इस युगमें कहाँ चले गये हैं ? ॥ १६ ॥ इस कलियुगमें जो दुराचारी और निर्लज्ज लोग आज विद्यमान हैं, वे देवनिन्दक पापी सत्ययुगमें कहाँ जायँगे ? ॥१७॥ हे महामति ! मैं धर्म-निर्णयकी बातें सुनना चाहता हूँ। इसलिए आप इसके हर अंगों-

पर प्रकाश डालते हुए विस्तारके साथ बतलाइए ॥ १८ ॥ व्यासजी बोले—हे राजन् ! इस धरतीपर जो लोग सत्ययुगमें उत्पन्न होते हैं, वे पुण्यकर्म करके देवलोक चले जाते हैं ॥ १९ ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र अपने-अपने वर्णाश्रमधर्ममें संलग्न रहनेवाले अपने-अपने कर्मसे अर्जित लोकोंमें चले जाते हैं ॥ २० ॥ सत्य, दया, दान, केवल अपनी पत्नीसे विषय-भोग, समस्त प्राणिमात्रसे वैर न रखना और जीवमात्रको समदृष्टिसे देखना ये साधारण धर्म हैं। इनका आचरण करके सत्ययुगमें धर्मके बलसे धोबी आदि अन्त्यज वर्णके लोग भी स्वर्ग चले जाते हैं ॥२१॥२२॥ हे महाराज ! इसी तरह त्रेता युग और द्वापर युगमें लोग अपने-अपने वर्णाश्रमधर्मका पालन करके स्वर्ग लोकको जाते हैं। किन्तु कलियुगके मनुष्य पापका आचरण करके नरकगामी होते हैं ॥ २३ ॥ वे लोग युगकी समाप्ति तक नरकमें ही रहते हैं। उसके बाद वे भूतलके नरलोकमें उत्पन्न होते हैं ॥ २४ ॥ हे राजन् ! जब कलियुगका अन्त और सत्ययुगका आरम्भ होता है तो स्वर्गलोकके पुण्यवान् प्राणी मनुष्यरूपमें धरतीपर जन्म लेते हैं ॥ २५ ॥ जब द्वापर युगका अन्त और कलियुग आरम्भ होता है, तब

व्यास उवाच ॥ ये वै कृतयुगे राजन्संभवंतीह मानवाः ॥ कृत्वा ते पुण्यकर्माणि देवलोकान्व्रजंति वै ॥१९॥ ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्च नृपसत्तम ॥ स्वधर्मनिरता यांति लोकान्कर्मजितान्किल ॥ २० ॥ सत्यं दया तथा दानं स्वदारगमनं तथा ॥ अद्रोहः सर्वभूतेषु समता सर्वजन्तुषु ॥ २१ ॥ एतत्साधारणं धर्मं कृत्वा सत्ययुगे पुनः ॥ स्वर्गं यांतीतरे वर्णा धर्मतो रजकादयः ॥ २२ ॥ तथा त्रेतायुगे राजन्द्वापरेऽथ युगे तथा ॥ कलावस्मिन्युगे पापा नरकं यांति मानवाः ॥ २३ ॥ तावत्तिष्ठन्ति ते तत्र यावत्स्याद्युगपर्ययः ॥ पुनश्च मानुषे लोके भवन्ति भुवि मानवाः ॥ २४ ॥ यदा सत्ययुगस्यादिः कलेरंतश्च पार्थिव ॥ तदा स्वर्गात्पुण्यकृतो जायन्ते किल मानवाः ॥२५॥ यदा कलियुगस्यादिर्द्वापरस्य क्षयस्तथा ॥ नरकात्पापिनः सर्वे भवन्ति भुवि मानवाः ॥२६॥ एवं कालसमाचारो नान्यथाऽभूत्कदाचन ॥ तस्मात्कलिरसत्कर्ता तस्मिंस्तु तादृशी प्रजा ॥ २७ ॥ कदाचिद्दैवयोगात्तु प्राणिनां व्यत्ययो भवेत् ॥ कलौ ये साधवः केचिद्द्वापरे संभवन्ति ते ॥ २८ ॥ तथा त्रेतायुगे केचित्केचित्सत्ययुगे तथा ॥ दुष्टाः सत्ययुगे ये तु ते भवंति कलावपि ॥ २९ ॥ कृतकर्मप्रभावेण प्राप्नुवंत्यसुखानि च ॥ पुनश्च तादृशं कर्म कुर्वंति युगभावतः ॥ ३० ॥ जनमेजय उवाच ॥ युगधर्मान्महाभाग ब्रूहि सर्वानशेषतः ॥ यस्मिन्वै यादृशो धर्मो ज्ञातुमिच्छामि तं तथा ॥ ३१ ॥ व्यास उवाच ॥ निबोध नृपशार्दूल

नरकके पापी भूतलपर मानवरूपमें जन्म लेते हैं ॥ २६ ॥ इस तरह युगके अनुरूप सारा आचार होता है, उसके विपरीत आचार-विचार कभी नहीं पाया जाता। प्रायः कलियुग असत्की ओर अग्रसर होता है, इसी लिए इस युगमें प्रजाजन भी पापाचारी होते हैं ॥ २७ ॥ दैवयोगसे कभी-कभी इन प्राणियोंके जन्म लेनेमें व्यतिक्रम भी हो सकता है। कलियुगमें जो सदाचारी होते हैं, वे द्वापरके मनुष्य होते हैं ॥२८॥ इसी प्रकार सत्कार्य करके द्वापरके मनुष्य त्रेतामें और त्रेताके मनुष्य सत्ययुगमें जन्म लेते हैं। लेकिन सत्ययुगके दुराचारी कलियुगके मनुष्य होते हैं ॥ २९ ॥ वे अपने किये हुए कर्मके प्रभावसे दुःख भोगते हैं। फिर भी युगके प्रभावसे वे पाप ही करते हैं ॥ ३० ॥ जनमेजय बोले—हे भाग्यशालिन् ! आप भलीभाँति युगधर्मोंका वर्णन करिए और बताइए कि किस युगमें कैसा धर्म होता है ? मैं इसे जानना चाहता हूँ ॥ ३१ ॥ व्यासजी बोले—हे नृपश्रेष्ठ ! अब मैं युगधर्मका वर्णन करता हूँ, युगधर्मके

प्रभावसे सत्यपुरुषोंका चित्त भी चक्करमें पड़ जाता है। हे राजेन्द्र ! आपके पिता परीक्षित महात्मा और धर्मके ज्ञाता थे। लेकिन कलिने उनकी बुद्धि ब्राह्मणका अपमान करनेकी ओर प्रेरित कर दी ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ वैसे तो वे क्षत्रिय राजा थे और राजर्षि ययातिके कुलमें जनमे थे। तब उन्होंने एक तपस्वीके गलेमें मरा हुआ साँप क्यों डाला ? ॥ ३४ ॥ हे राजन् ! विद्वज्जन इसे युगका ही प्रभाव समझें। इस लिए धर्म-कर्ममें विशेष सावधानी रखनी चाहिए ॥ ३५ ॥ हे राजन् ! सत्ययुगमें ब्राह्मण वेदके ज्ञाता होते थे और देवीके दर्शनकी लालसासे परा शक्तिकी पूजा करते थे ॥ ३६ ॥ वे गायत्री और प्रणवमन्त्रमें अनुराग रखते थे, गायत्रीका ध्यान करते थे, गायत्री मन्त्रका जप करते थे और एकमात्र मायाबीजके जपमें संलग्न रहते थे ॥ ३७ ॥ वे गाँव-गाँवमें जगदम्बाका मन्दिर बनवाते थे। सत्यता, पवित्रता और दया आदि दैवी गुणोंसे युक्त होकर वे सदा अपने कर्ममें लगे रहते थे ॥ ३८ ॥ क्षत्रिय

दृष्टांतं ते ब्रवीम्यहम् ॥ साधूनामपि चेतांसि युगभावाद्भवंति हि ॥ ३२ ॥ पितुर्यथा ते राजेन्द्र बुद्धिर्विप्रावहेलने ॥ कृता वै कलिना राजन्धर्मज्ञस्य महात्मनः ॥ ३३ ॥ अन्यथा क्षत्रियो राजा ययातिकुलसंभवः ॥ तापसस्य गले सर्पं मृतं कस्मादयोजयत् ॥ ३४ ॥ सर्वं युगबलं राजन्वेदितव्यं विजानता ॥ प्रयत्नेन हि कर्तव्यं धर्मकर्म विशेषतः ॥३५॥ नूनं सत्ययुगे राजन्ब्राह्मणा वेदपारगाः ॥ पराशक्त्यर्चनरता देवीदर्शनलालसाः ॥३६॥ गायत्रीप्रणवासक्ता गायत्रीध्यानकारिणः ॥ गायत्रीजपसंसक्ता मायाबीजैकजापिनः ॥ ३७ ॥ ग्रामे ग्रामे पराम्बायाः प्रासादकरणोत्सुकाः ॥ स्वकर्मनिरताः सर्वे सत्यशौचदयान्विताः ॥ ३८ ॥ त्रय्युक्तकर्मनिरतास्तत्त्वज्ञानविशारदाः ॥ अभवन्क्षत्रियास्तत्र प्रजाभरणतत्पराः ॥ ३९ ॥ वैश्यास्तु कृषिवाणिज्यगोसेवानिरतास्तथा ॥ शूद्राः सेवापरास्तत्र पुण्ये सत्ययुगे नृप ॥ ४० ॥ परांबापूजनासक्ताः सर्वे वर्णाः परे युगे ॥ तथा त्रेतायुगे किंचिन्न्यूना धर्मस्य संस्थितिः ॥ ४१ ॥ द्वापरे च विशेषेण न्यूना सत्ययुगस्थितिः ॥ पूर्वं ये राक्षसा राजँस्ते कलौ ब्राह्मणाः स्मृताः ॥ ४२ ॥ पाखंडनिरताः प्रायो भवन्ति जनवंचकाः ॥ असत्यवादिनः सर्वे वेदधर्मविवर्जिताः ॥४३॥ दांभिका लोकचतुरा मानिनो वेदवर्जिताः ॥ शूद्रसेवापराः केचिन्नानाधर्मप्रवर्तकाः ॥४४॥ वेदनिन्दाकराः क्रूरा धर्मभ्रष्टातिवादुकाः ॥ यथा यथा कलिर्वृद्धिं याति राजँस्तथा तथा ॥४५॥ धर्मस्य सत्यमूलस्य

लोग प्रजाका पालन करते हुए वेदत्रयीविहित कर्म करते थे और परम तत्त्वज्ञानी होते थे ॥ ३९ ॥ वैश्य लोग खेती, व्यापार और गौसेवा करते थे। शूद्र तीनों वर्णोंकी सेवा करते थे। हे राजन् ! उस पवित्र सत्ययुगमें सभी वर्णके लोग परा शक्तिकी पूजा करते थे। त्रेतायुगमें सत्ययुगकी अपेक्षा धर्मकी मर्यादा कुछ कम हो गयी ॥४०॥४१॥ द्वापरमें सत्ययुगकी अपेक्षा धर्मकी मर्यादामें विशेष रूपसे कमी आयी। हे राजन् ! पूर्व समयके राक्षस कलियुगमें ब्राह्मण हुए हैं ॥ ४२ ॥ वे तरह तरहके पाखण्ड फैलाकर जनताको ठगते हैं, झूठ बोलते हैं और वैदिक धर्मसे दूर रहते हैं ॥ ४३ ॥ वे ढोंगी होते हैं, लोगोंके बीच चतुराईकी बात कहते-सुनते हैं, वे बड़े अभिमानी होते हैं, वेदाध्ययन त्याग देते हैं, शूद्रोंकी सेवा करते हैं और तरह तरहके सम्प्रदाय चलाते हैं ॥ ४४ ॥ वे वेदकी निन्दा करते हैं। वे क्रूर, हिंसक, धर्मभ्रष्ट और बकवादी होते हैं। हे राजन् ! जैसे-जैसे कलि (पाप) की वृद्धि होती जाती है, वैसे-वैसे सत्यमूलक

धर्मका विनाश होता जाता है। ब्राह्मणोंकी ही तरह क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र भी अधार्मिक बन जाते हैं ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ कलियुगमें लोग बड़े झूठे और पापी होते हैं। ब्राह्मण शूद्रोंके धर्मके अनुसार चलते हैं और दान लेनेमें बड़े निपुण होते हैं ॥ ४७ ॥ हे राजन्! ज्यों-ज्यों कलियुगका प्रभाव बढ़ता जायगा, त्यों-त्यों स्त्रियाँ स्वेच्छाचारिणी होती जायँगी। उनकी काम-वासना, लोभ और मोह बराबर बढ़ता जायगा ॥ ४८ ॥ वे दुराचारिणी होंगी, बात-बातमें झूठ बोलेंगी और समाजके लिए क्लेशकारिणी होंगी। हे राजन्! वे अपने पतिको ठगेंगी और नित्य धार्मिक विषयपर भाषण देनेमें निपुण होंगी ॥ ४९ ॥ हे राजन्! आहारकी शुद्धिसे ही अन्तःकरणकी शुद्धि होती है। जब अन्तःकरण शुद्ध होता है, तभी उसमें धर्मका प्रकाश फैलता है। वर्णाश्रमके आचार-विचारमें अन्तर पड़नेसे धर्ममें व्यतिक्रम आ जाता है ॥ ५० ॥ ५१ ॥ धर्ममें गड़बड़ी होनेसे वर्णसङ्करता फैलती है। हे भूप! इस तरह कलियुगमें समस्त धर्मके लोप हो जानेसे अपने-अपने वर्णाश्रम धर्मकी चर्चा भी कहीं नहीं सुनाई देती। हे राजन्! बड़े बड़े धर्मके ज्ञाता और महान् पुरुष भी कलियुगमें अधर्म करने लग जाते हैं ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ यह

क्षयः सर्वात्मना भवेत् ॥ तथैव क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्च धर्मवर्जिताः ॥ ४६ ॥ असत्यवादिनः पापास्तथा वर्णेतराः कलौ ॥ शूद्रधर्मरता विप्राः प्रतिग्रहपरायणाः ॥ ४७ ॥ भविष्यंति कलौ राजन्युगे वृद्धिं गताः किल ॥ कामचाराः स्त्रियः कामलोभमोहसमन्विताः ॥४८॥ पापा मिथ्याभिवादिन्यः सदा क्लेशरता नृप ॥ स्वभर्तृवंचका नित्यं धर्मभाषणपंडिताः ॥ ४९ ॥ भवंत्येवंविधा नार्यः पापिष्ठाश्च कलौ युगे ॥ आहारशुद्ध्या नृपते चित्तशुद्धिस्तु जायते ॥ ५० ॥ शुद्धे चित्ते प्रकाशः स्याद्धर्मस्य नृपसत्तम ॥ वृत्तसंकरदोषेण जायते धर्मसंकरः ॥ ५१ ॥ धर्मस्य संकरे जाते नूनं स्याद्वर्णसंकरः ॥ एवं कलियुगे भूप सर्वधर्मविवर्जिते ॥५२॥ स्ववर्णधर्मवार्तैषा न कुत्राप्युपलभ्यते ॥ महांतोऽपि च धर्मज्ञा अधर्मं कुर्वते नृप ॥५३॥ कलिस्वभाव एवैष परिहार्यो न केनचित् ॥ तस्मादत्र मनुष्याणां स्वभावात्पापकर्मणाम् ॥५४॥ निष्कृतिर्न हि राजेन्द्र सामान्योपायतो भवेत् ॥ जनमेजय उवाच ॥ भगवन्सर्वधर्मज्ञ सर्वशास्त्रविशारद ॥५५॥ कलावधर्मबहुले नराणां का गतिर्भवेत् ॥ यद्यस्ति तदुपायश्चेद्दयया तं वदस्व मे ॥५६॥ व्यास उवाच ॥ एक एव महाराज तत्रोपायोऽस्ति नापरः ॥ सर्वदोषनिरासार्थं ध्यायेद्देवीपदांबुजम् ॥५७॥ न संत्यघानि तावंति यावती शक्तिरस्ति हि ॥ नाम्नि देव्याः पापदाहे तस्माद्भीतिः कुतो नृप ॥५८॥ अवशेनापि यन्नाम लीलयोच्चारितं यदि ॥ किं किं ददाति तज्ज्ञातुं समर्था न हरादयः ॥५९॥ प्रायश्चित्तं तु

कलिका स्वभाव ही है, इसका प्रतीकार नहीं किया जा सकता। कलियुगमें मनुष्योंके पापी स्वभावके कारण हे राजेन्द्र! साधारण उपायसे उनके पाप नहीं छूट सकते। राजा जनमेजय बोले—हे भगवन्! हे समस्त धर्मोंके ज्ञाता! हे सम्पूर्ण शास्त्रोंके विज्ञ! इस अधर्मविशिष्ट कलियुगमें मनुष्योंकी क्या गति होगी? यदि उनके निस्तारका कोई उपाय हो तो दया करके मुझे बतलाइए ॥५४–५६ ॥ व्यासजी बोले—हे महाराज! इस कलियुगमें पापसे बचावका केवल एक ही उपाय है, सो यह कि समस्त दोषोंको दूर करनेके लिए देवीके चरणकमलकी आराधना की जाय ॥ ५७ ॥ हे महाराज! महामायाके पापदाहक नाममें जितनी पापनाशिनी शक्ति है, उतने पाप इस संसारमें हैं ही नहीं। इस लिए डरनेका कोई कारण नहीं है ॥ ५८ ॥ कोई अशक्त व्यक्ति भी अनायास भगवतीका नाम ले लेता है तो भगवती उसे क्या क्या दे डालती हैं, यह शिव आदि देवता भी नहीं जान सकते ॥५९॥ समस्त पापोंका एकमात्र प्रायश्चित्त है—श्री

व्यक्ति भी अनायास भगवतीका नाम ले लेता है तो भगवती उसे क्या क्या दे डालती हैं, यह शिव आदि देवता भी नहीं जान सकते ॥५९॥ समस्त पापोंका एकमात्र प्रायश्चित्त है—श्री

देवीका नामस्मरण । हे राजन् ! कलियुगके डरसे बचनेके लिए मनुष्यको चाहिए कि वह किसी पुण्यक्षेत्रमें निवास करे ॥ ६० ॥ वहाँ वह लगातार पराशक्तिस्वरूपा जगदम्बाके नामका स्मरण करता रहे। ऐसा करनेवाले जीवोंको किसीका अङ्गच्छेद, शिरश्छेद और सारे विश्वकी हत्या करनेसे भी कोई पाप नहीं लगता। हे राजन् ! यह मैंने आपको सम्पूर्ण शास्त्रोंका गूढ़ रहस्य बतलाया है ॥६१॥६२॥ इन बातोंपर भली भाँति विचार करके आप देवीके चरणकमलकी आराधना करिए। वैसे तो सभी लोग गायत्रीका 'अजपा' जप करते हैं ॥६३॥ लेकिन वे मायासे मोहित होनेके कारण उनका माहात्म्य नहीं जानते और न उन्हें यही मालूम है कि यह महामायाका ही महान् वैभव है। ब्राह्मण लोग अपने हृदयमें गायत्रीको जपते हैं ॥ ६४ ॥ लेकिन वे भी उनकी महिमा नहीं जानते कि यह सब भगवती महामायाका ही महान् वैभव है। इस प्रकार आपने युगधर्मकी व्यवस्थाके बारेमें जितना प्रश्न किया था, उन सबका उत्तर मैंने दे

पापानां श्रीदेवीनामसंस्मृतिः ॥ तस्मात्कलिभयाद्राजन्पुण्यक्षेत्रे वसेन्नरः ॥६०॥ निरंतरं परांबाया नामसंस्मरणं चरेत् ॥ छित्त्वा भित्त्वा च भूतानि हत्वा सर्वमिदं जगत् ॥६१॥ देवीं नमति भक्त्या यो न स पापैर्विलिप्यते ॥ रहस्यं सर्वशास्त्राणां मया राजन्नुदीरितम् ॥ ६२ ॥ विमृश्यैतदशेषेण भज देवीपदांबुजम् ॥ अजपां नाम गायत्रीं जपंति निखिला जनाः ॥६३॥ महिमानं न जानंति मायाया वैभवं महत् ॥ गायत्रीं ब्राह्मणाः सर्वे जपंति हृदयांतरे ॥ ६४ ॥ महिमानं न जानंति मायाया वैभवं महत् ॥ एतत्सर्वं समाख्यातं यत्पृष्टं तत्त्वया नृप ॥ ६५ ॥ युगधर्मव्यवस्थायां किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

॥ राजोवाच ॥ तीर्थानि भुवि पुण्यानि ब्रूहि मे मुनिसत्तम ॥ गम्यानि मानवैर्देवैः क्षेत्राणि सरितस्तथा ॥ १ ॥ फलं च यादृशं यत्र तीर्थेषु स्नानदानतः ॥ विधिं तु तीर्थयात्राया नियमांश्च विशेषतः ॥ २ ॥ व्यास उवाच ॥ शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि तीर्थानि विविधानि च ॥ येषु तीर्थेषु देवीनां प्रशस्तान्यायतनानि च ॥ ३ ॥ नदीनां जाह्नवी श्रेष्ठा यमुना च सरस्वती ॥ नर्मदा गंडकी सिंधुर्गोमती तमसा तथा ॥ ४ ॥ कावेरी चंद्रभागा च पुण्या वेत्रवती शुभा ॥ चर्मण्वती च सरयूस्तापी साभ्रमती तथा ॥ ५ ॥ एताश्च कथिता राजन्नन्याश्च शतशः पुनः ॥ तासां समुद्रगाः

दिया ॥ ६५ ॥ इसके अतिरिक्त आप और क्या सुनना चाहते हैं ? ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषाटीकायामेकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

(पृथ्वीतलके तीर्थ और उनका माहात्म्य) राजा जनमेजय बोले—हे मुनिराज ! आप यह बतलाइए कि मनुष्यों तथा देवताओंको पृथिवीतलके किन-किन पवित्र तीर्थोंकी यात्रा करने तथा किन नदियोंमें स्नानके लिए जाना चाहिए ? ॥ १ ॥ उन तीर्थोंमें स्नान और दान करनेसे जो फल होता हो, तीर्थयात्रा करनेकी जो विधि और जो नियम हो, वह विशेष रूपसे बतलाइए ॥ २ ॥ व्यासजीने कहा—हे राजन् ! वैसे तो तीर्थ बहुत हैं, किन्तु जिन तीर्थोंमें देवीके विशाल मन्दिर हैं उनके ही बारेमें वर्णन करता हूँ, सुनिए ॥ ३ ॥ सम्पूर्ण नदियोंमें गङ्गा, यमुना, सरस्वती, नर्मदा, गण्डकी, सिन्धु, गोमती, तमसा, ॥ ४ ॥ कावेरी, चन्द्रभागा, वेत्रवती (बेतवा), चर्मण्वती (चम्बल), सरयू, ताप्ती, साभ्रमती (साबरमती) ये नदियाँ

मुख्य और पवित्र हैं ॥५॥ इनके अतिरिक्त भारतमें सैकड़ों नदियाँ हैं । हे राजन् ! जो नदियाँ समुद्रमें गिरतीं और सदा बहती हैं, वे बहुत पवित्र हैं । जो नदियाँ समुद्रमें नहीं गिरतीं, वे उनकी अपेक्षा कम पवित्र हैं ॥६॥ समुद्रगामिनी नदियोंमें भी वे ही पवित्र हैं, जिनमें सदा भरपूर जल बहता रहता है । श्रावण और भाद्रपद इन दो महीनोंमें समस्त नदियाँ रजस्वला रहती हैं ॥७॥ कितनी नदियाँ केवल बरसातमें बहती हैं और केवल गाँव भरके लिए जल देती हैं । क्षेत्रोंमें पुष्करक्षेत्र, कुरुक्षेत्र, पवित्र धर्मारण्य क्षेत्र, ॥ ८ ॥ प्रभासक्षेत्र, प्रयाग, नैमिषारण्य और अर्बुदारण्य ये क्षेत्र पुण्यदायक रूपमें विख्यात हैं । पर्वतोंमें पवित्र हैं—श्रीशैल, सुमेरु और गन्धमादन । पुण्यदायक सरोवरोंमें सर्वत्र विख्यात मानससरोवर, ॥ ९ ॥१०॥ बिन्दुसरोवर और अच्छाद सरोवर । इसी तरह अनेक आत्मदर्शी मुनियोंके आश्रम भी पुण्यस्थल हैं । इनमें पुण्यदायक बदरिकाश्रम सबसे अधिक विख्यात है । क्योंकि वहाँ ही 'नर' और 'नारायण' ने तपस्या की

पुण्याः स्वल्पपुण्या ह्यनब्धिगाः ॥ ६ ॥ समुद्रगानां ताः पुण्याः सर्वदौघवहास्तु याः ॥ मासद्वयं श्रावणादौ ताश्च सर्वा रजस्वलाः ॥ ७ ॥ भवंति वृष्टियोगेन ग्राम्यवारिवहास्तथा ॥ पुष्करं च कुरुक्षेत्रं धर्मारण्यं सुपावनम् ॥ ८ ॥ प्रभासं च प्रयागं च नैमिषारण्यमेव च ॥ विश्रुतं चार्बुदारण्यं शैलाश्च पावनास्तथा ॥ ९ ॥ श्रीशैलश्च सुमेरुश्च पर्वतो गंधमादनः ॥ सरांसि चैव पुण्यानि मानसं सर्वविश्रुतम् ॥ १० ॥ तथा बिन्दुसरः श्रेष्ठमच्छोदं नाम पावनम् ॥ आश्रमास्तु तथा पुण्या मुनीनां भावितात्मनाम् ॥ ११ ॥ विश्रुतस्तु सदा पुण्यः ख्यातो बदरिकाश्रमः ॥ नरनारायणौ यत्र तेपाते तौ मुनी तपः ॥ १२ ॥ वामनाश्रम आख्यातः शतयूपाश्रमस्तथा ॥ येन यत्र तपस्तप्तं तस्य नाम्नाऽतिविश्रुतः ॥१३॥ एवं पुण्यानि स्थानानि ह्यसंख्यातानि भूतले ॥ मुनिभिः परिगीतानि पावनानि महीपते ॥१४॥ एषु स्थानेषु सर्वत्र देवीस्थानानि भूपते ॥ दर्शनात्पापहारीणि वसंति नियमेन च ॥ १५ ॥ कथयिष्यामि तान्यग्रे प्रसंगेन च कानिचित् ॥ तीर्थानि नृप दानानि व्रतानि च मखास्तथा ॥ १६ ॥ तपांसि पुण्यकर्माणि सापेक्षाणि महीपते ॥ द्रव्यशुद्धिं क्रियाशुद्धिं मनःशुद्धिमपेक्ष्य च ॥ १७ ॥ पावनानि हि तीर्थानि तपांसि च व्रतानि च ॥ कदाचिद्द्रव्यशुद्धिः स्यात्क्रियाशुद्धिः कदाचन ॥ १८ ॥ दुर्लभा मनसः शुद्धिः सर्वेषां सर्वदा नृप ॥ मनस्तु चंचलं राजन्ननेकविषयाश्रितम् ॥ १९ ॥ कथं शुद्धं

थी । वामनाश्रम और शतयूपाश्रम भी विख्यात हैं । जिस ऋषिने जहाँ तपस्या की, वह आश्रम उसके नामसे प्रसिद्ध हो गया ॥११–१३॥ हे महीपति ! इस भूतलपर इतने पुण्यदायक स्थल हैं कि उनकी गिनती नहीं की जा सकती । मुनियोंने वहाँ निवास करके उन्हें पुनीत बना दिया है ॥ १४ ॥ हे भूपति ! उपर्युक्त सभी स्थलोंमें देवीके मन्दिर बने हुए हैं, जिनका दर्शनमात्र कर लेनेसे सब पाप कट जाते हैं । जहाँ बहुतेरे देवीभक्त नियमपूर्वक निवास करते हैं ॥१५॥ उनमेंसे कुछके सम्बन्धमें मैं प्रसङ्गके अनुसार आगे चलकर सप्तम स्कन्धमें वर्णन करूँगा । हे नृप ! तीर्थ, दान, व्रत, मख (यज्ञ), ॥ १६ ॥ तपस्या और सभी पुण्यकर्म 'सापेक्ष' हैं । अर्थात् द्रव्यशुद्धि, क्रियाशुद्धि और चित्तशुद्धिकी अपेक्षा करके ही वे तीर्थ, तपस्या और व्रत फलदायक होते हैं । कहीं द्रव्यशुद्धि होती है तो कहीं क्रियाशुद्धि होती है ॥१७॥१८॥ लेकिन हे नृप ! चित्तशुद्धि बड़ी दुर्लभ वस्तु है और विरले ही प्राणीको यह प्राप्त होती है।

क्योंकि हे राजन् ! मन बड़ा चञ्चल है । यह अनेक विषयोंमें भटकता रहता है ॥१९॥ जो मन तरह-तरहकी भावनाओंमें दौड़ता है, वह कहीं शुद्ध हो सकता है ? इसके अतिरिक्त काम, क्रोध, लोभ, अहङ्कार, मद, मत्सर ये षड्रिपु भी तपस्या, तीर्थ और व्रतमें पूरी तरह विघ्न उत्पन्न किया करते हैं । अहिंसा (किसी जीवकी हत्या न करना), सच बोलना, चोरी न करना, पवित्रता, इन्द्रियोंको अपने अधीन रखना, ॥२०॥२१॥ स्वधर्मका पालन करना, ये व्रत सम्पूर्ण तीर्थयात्राओंका फल देते हैं । हे राजन् ! तीर्थयात्राके समय राहमें नित्यकर्मके छूट जाने और अन्यान्य व्यक्तियोंके सम्पर्कसे यात्रा व्यर्थ हो जाती है, केवल पाप ही हाथ लगता है । और फिर तीर्थका जल केवल शारीरिक मैल धोता है ॥ २२ ॥ २३ ॥ हे महाराज ! वह मानसिक मैल नहीं धो सकता । यदि तीर्थके जलमें मानसिक मैलके धोनेकी क्षमता होती तो गङ्गाजीके तटके निवासी और ईश्वरचिन्तक मुनि परस्पर द्रोहभाव क्यों रखते ? वसिष्ठ जैसे विनम्र और विश्वामित्र जैसे तपस्वी ऋषि सदा राग, द्वेष, काम और क्रोधसे व्याकुल पाये जाते हैं । अतएव चित्तशुद्धिका तीर्थ गङ्गा आदि तीर्थोंसे बहुत ही अधिक पवित्र होता है ॥२४–२६॥

भवेद्राजन्नानाभावसमाश्रितम् ॥ कामक्रोधौ तथा लोभो ह्यहंकारो मदस्तथा ॥ २० ॥ सर्वविघ्नकरा ह्येते तपस्तीर्थव्रतेषु च ॥ अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिंद्रियनिग्रहः ॥ २१ ॥ स्वधर्मपालनं राजन्सर्वतीर्थफलप्रदम् ॥ नित्यकर्मपरित्यागान्मार्गे संसर्गदोषतः ॥ २२ ॥ व्यर्थं तीर्थाधिगमनं पापमेवावशिष्यते ॥ क्षालयंति हि तीर्थानि सर्वथा देहजं मलम् ॥२३॥ मानसं क्षालितुं तानि न समर्थानि वै नृप ॥ शक्तानि यदि चेत्तानि गंगातीरनिवासिनः ॥२४॥ मुनयो द्रोहसंयुक्ताः कथं स्युर्भावितेश्वराः ॥ वसिष्ठसदृशाः प्रह्वा विश्वामित्रादयः किल ॥ २५ ॥ रागद्वेषरताः सर्वे कामक्रोधाकुलाः सदा ॥ चित्तशुद्धिमयं तीर्थं गंगादिभ्योऽतिपावनम् ॥ २६ ॥ यदि स्याद्दैवयोगेन क्षालयत्यांतरं मलम् ॥ विशेषेण तु सत्संगो ज्ञाननिष्ठस्य भूपते ॥ २७ ॥ न वेदा न च शास्त्राणि न व्रतानि तपांसि न ॥ न मखा न च दानानि चित्तशुद्धेस्तु कारणम् ॥ २८ ॥ वसिष्ठो ब्रह्मणः पुत्रो वेदविद्याविशारदः ॥ रागद्वेषान्वितः कामं गंगातीरसमाश्रितः ॥ २९ ॥ आडीबकं महायुद्धं विश्वामित्रवसिष्ठयोः ॥ जातं निरर्थकं द्वेषाद्देवानां विस्मयप्रदम् ॥ ३० ॥ विश्वामित्रो बकस्तत्र जातः परमतापसः ॥ शप्तः स तु वसिष्ठेन हरिश्चंद्रस्य कारणात् ॥ ३१ ॥ कौशिकेन वसिष्ठोऽपि शप्त्वाऽऽडीदेहभाक्कृतः ॥ शापादाडीबकौ जातौ तौ मुनी विशदप्रभौ ॥ ३२ ॥ निवासं प्रापतुस्तीरे सरसो मानसस्य च ॥ चक्रतुर्दारुणं युद्धं

हे राजन् ! यदि दैवयोगसे ज्ञानी पुरुषोंका सत्सङ्ग लगातार सुलभ रहे तो उससे आन्तरिक मैल भी धुल सकती है । २७॥ इसके सिवाय वेद, शास्त्र, व्रत, तपस्या, यज्ञ और दानमें भी इतनी शक्ति नहीं है कि वे चित्तको शुद्ध कर सकें ॥ २८ ॥ वसिष्ठ मुनि ब्रह्माके पुत्र थे, वेद-विद्याके ज्ञाता थे, गङ्गाजीके पवित्र तीरपर रहते थे—किन्तु वे भी राग-द्वेषके फेरमें पड़ गये ॥ २९ ॥ विश्वामित्र और वसिष्ठ बक और आडी अर्थात् शरारि पक्षीके रूपमें द्वेषके कारण व्यर्थ महान् युद्ध कर बैठे, जिसे देखकर देवता भी चकित हो गये ॥ ३० ॥ बात यह हुई कि राजा हरिश्चन्द्रके कारण वसिष्ठने विश्वामित्र जैसे परम तपस्वी मुनिको शाप दे दिया, जिससे वे बगुला बन गये ॥ ३१ ॥ विश्वामित्रने भी वसिष्ठको शाप दे दिया, जिससे वे आडी पक्षी हुए । इस तरह शापके कारण वे निर्मल कान्तिसम्पन्न मुनि आडी और बकके रूपमें जनमे ॥ ३२ ॥ वे दोनों मानसरोवरके तटपर रहने लगे । उन्होंने नख और चोंचका प्रहार करते हुए लगातार दस हजार

वर्ष तक रोषमें भरकर भीषण युद्ध किया। जैसे मदमें भरे हुए दो सिंह परस्पर लड़ें, उसी तरह वे दोनों ऋषि लड़े ॥३३॥३४॥ राजा जनमेजय बोले—वे दोनों तो मुनियोंमें अग्रणी थे, तपस्वी थे और धर्मपरायण थे। तब उनका परस्पर वैर क्यों हुआ ? ॥३५॥ वे दोनों बड़े बुद्धिमान् थे और यह जानते थे कि शाप देनेसे मनुष्योंको बड़ा दुःख उठाना पड़ता है। फिर भी उन्होंने एक दूसरेको क्यों शाप दिया ? ॥३६॥ व्यासजीने कहा—प्राचीन कालमें महाराज त्रिशंकुके पुत्र सम्राट् हरिश्चन्द्र हो चुके हैं। वे सूर्यवंशी और रामचन्द्रके पूर्वज थे ॥ ३७ ॥ उन राजर्षि हरिश्चन्द्रको कोई सन्तति नहीं थी। अतः पुत्रकी कामनासे वरुणको प्रसन्न करनेके लिए उन्होंने दुष्कर 'नरमेध' यज्ञ करनेकी प्रतिज्ञा की ॥३८॥ यज्ञका शपथ ले लेनेपर वरुणदेव उनपर प्रसन्न हुए। अतएव राजा हरिश्चन्द्रकी परम रूपवती रानीने गर्भ धारण किया ॥ ३९ ॥ रानीको गर्भवती देखकर राजा प्रसन्न हुए और उन्होंने गर्भाधानसंस्कार कराया ॥ ४० ॥ हे राजन् ! जब रानीने

नखचंचुप्रताडनैः ॥ ३३ ॥ वर्षाणामयुतं यावत्तावृषी रोषसंयुतौ ॥ युयुधाते मदोन्मत्तौ सिंहाविव परस्परम् ॥ ३४ ॥ राजोवाच ॥ कथं तौ मुनिशार्दूलौ तापसौ धर्मतत्परौ ॥ परस्परं वैरपरौ संजातौ केन हेतुना ॥ ३५॥ शापं परस्परं केन कारणेन महामती ॥ दत्तवंतौ मिथः क्लेशकारकौ दुःखदौ नृणाम् ॥ ३६ ॥ व्यास उवाच ॥ हरिश्चंद्रो नृपश्रेष्ठस्त्रिशंकुतनयः पुरा ॥ बभूव रविवंशीयो रामचंद्रस्य पूर्वजः ॥ ३७ ॥ अनपत्यः स राजर्षिर्वरुणाय महाक्रतुम् ॥ प्रतिजज्ञे पुत्रकामो नरमेधं दुरासदम् ॥ ३८ ॥ वरुणस्तस्य संतुष्टो यज्ञस्य नियमे कृते ॥ दधार गर्भं राज्ञस्तु भार्या परमसुंदरी ॥ ३९ ॥ राजा बभूव संतुष्टो दृष्ट्वा भार्यां सदोहदाम् ॥ चकार विधिवत्कर्म गर्भसंस्कारकारकम् ॥ ४० ॥ सुषुवे तनयं नारी सर्वलक्षणसंयुतम् ॥ मुदं प्राप नृपस्तत्र पुत्रे जाते विशांपते ॥ ४१ ॥ कृतवाञ्जातकर्मादि संस्कारविधिमुत्तमम् ॥ ददौ हिरण्यं गा दोग्ध्रीर्ब्राह्मणेभ्यो विशेषतः ॥ ४२ ॥ जन्मोत्सवेऽतिसंवृत्ते गेहे वै यादसां पतिः ॥ आजगाम महाराज विप्रवेषधरस्तदा ॥ ४३ ॥ पूजितः पार्थिवेनाथ दत्त्वा विधिवदासनम् ॥ कार्ये पृष्टेऽब्रवीद्वाक्यं वरुणोऽस्मीति भूपतिम् ॥ ४४ ॥ कुरु यज्ञं सुतं कृत्वा पशुं परमपावनम् ॥ सत्यवाग्भव राजेंद्र संकल्पस्तु त्वया कृतः ॥ ४५ ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं राजा विह्वलोऽतिव्यथाकुलः ॥ संस्तभ्याधिं नृपः प्राह वरुणं सत्कृतांजलिः ॥ ४६ ॥ स्वामिन्करोमि तं यज्ञं

समस्त सुलक्षणोंसे सम्पन्न पुत्रको जन्म दिया तो राजाके हर्षका ठिकाना नहीं रहा ॥४१॥ उन्होंने उस पुत्रका जातकर्म आदि संस्कार कराया। ब्राह्मणोंको दूध देनेवाली गौवें और सुवर्ण-दान दिया ॥ ४२ ॥ हे महाराज ! जब राजमहलमें जन्मोत्सव मनाया जा रहा था, उसी समय ब्राह्मणका रूप धारण करके वरुणदेव आये ॥ ४३ ॥ महाराज हरिश्चन्द्रने उन्हें आसन दिया और विधिपूर्वक पूजा करनेके बाद पूछा कि आप किस कार्यसे पधारे हैं ? तब उन्होंने कहा—मैं वरुण हूँ ॥४४॥ हे राजेन्द्र! अब आप अपने पुत्रको परम पवित्र पशु बनाकर नरमेध यज्ञ करिए। क्योंकि पहले आप उसका सङ्कल्प कर चुके हैं। अतएव उसे पूरा करके अपनी सत्यवादिताका परिचय दीजिए ॥ ४५ ॥ वरुणदेवकी यह बात सुनकर राजा विह्वल हो उठे। बादमें मानसिक व्यथा रोक तथा हाथ जोड़कर वे वरुणसे बोले—॥४६॥ हे देव ! मैंने जो सङ्कल्प किया है, तदनुसार विधि-विधानके साथ वह यज्ञ करके मैं आपके समक्ष अपनी सत्यवादिताका

परिचय दूँगा ॥ ४७ ॥ हे देव-शिरोमणि ! एक महीना पूरा होनेपर मेरी रानी जननाशौचसे शुद्ध होगी । जब वह शुद्ध हो जायगी तो मैं वह नर-मेध यज्ञ करूँगा ॥ ४८ ॥ व्यासजीने कहा कि जब राजाने यह बात कही तो वरुणदेव अपने घर चले गये । उनके चले जानेपर महाराज हरिश्चन्द्र सन्तुष्ट तो हुए, किन्तु भावी अनिष्टकी आशङ्कासे कुछ चिन्तित थे ॥ ४९ ॥ एक महीने बाद वरुण एक सुन्दर ब्राह्मणका वेश धारण करके राजाकी परीक्षा लेनेके लिए फिर राजमहलमें आ धमके ॥ ५० ॥ तब राजाने उन श्रेष्ठ देवता वरुणकी पूजा की और उन्हें बैठनेके लिए आसन दिया । जब वे आरामसे बैठ गये तो बड़ी नम्रतापूर्वक राजा हरिश्चन्द्र यह सारगर्भित वचन बोले—॥ ५१ ॥ हे स्वामी ! मेरा पुत्र अभी सस्कारहीन है । तब मैं उसे यूप-स्तम्भमें कैसे बाँधूँ ? ग्यारहवें वर्ष जब उसका संस्कार हो जायगा, तब वह क्षत्रिय होगा । उस समय मैं उत्तम नरमेध यज्ञ करूँगा ॥ ५२ ॥ हे देव ! संस्कारहीन बालक किसी भी धार्मिक कार्यका अधिकारी नहीं होता । अतएव यदि मुझे अपना दीन सेवक मानते हों तो दया करके थोड़े दिन और ठहर जाइए ॥ ५३ ॥ वरुणने कहा—महाराज ! आप पहले भी

सर्वथा विधिपूर्वकम् ॥ मया ते यत्प्रतिज्ञातं भवामि सत्यवागहम् ॥ ४७ ॥ पूर्णे मासे विशुद्धचेत धर्मपत्नी सुरोत्तम ॥ विशुद्धायां तु भार्यायां कर्तव्यः स पशुर्मखः ॥ ४८ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्ते वचने राज्ञा वरुणः स्वगृहं गतः ॥ राजा बभूव संतुष्टः किंचिच्चिंतातुरस्तथा ॥ ४९ ॥ पूर्णे मासि पुनः पाशी परीक्षार्थं नृपालये ॥ आजगाम द्विजो भूत्वा सुवेषः सुष्ठुभाषकः ॥ ५० ॥ कृतार्हणं सुखासीनं भूपतिस्तं सुरोत्तमम् ॥ उवाच विनयोपेतो हेतुगर्भं वचस्तदा ॥ ५१ ॥ असंस्कृतं सुतं स्वामिन्यूपे बध्नामि तं कथम् ॥ संस्कृत्य क्षत्रियं कृत्वा यजेऽहं यज्ञमुत्तमम् ॥ ५२ ॥ दयसे यदि देव त्वं ज्ञात्वा दीनं स्वसेवकम् ॥ असंस्कृतस्य बालस्य नाधिकारोऽस्ति कुत्रचित् ॥ ५३ ॥ वरुण उवाच ॥ प्रतारयसि राजेन्द्र कृत्वा समयमग्रतः ॥ दुस्त्यजस्तव जानामि सुतस्नेहोह्य पुत्रिणः ॥५४॥ गृहं व्रजामि भूपाल वचनात्तव कोमलात्॥ कियत्कालं प्रतीक्ष्याहमागमिष्यामि ते गृहम् ॥५५॥ भवितव्यं त्वया तात तदा सत्यवचोऽन्वितम् ॥ अन्यथा त्वयि मुंचामि कोपं शापसमन्वितम् ॥५६॥ राजोवाच ॥ समावर्तनकर्मान्ते सर्वथा यादसांपते ॥ कृत्वापुत्रपशुं यज्ञे यजिष्ये विधिपूर्वकम्॥५७॥ व्यास उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं राज्ञो वरुणः प्रीतमानसः ॥ तथेत्युक्त्वा ययौ तूर्णं नृपस्तु सुस्थितोऽभवत् ॥५८॥रोहिताख्य इति ख्यातः सुतस्तस्य विवृद्धिमान् ॥ संजातश्चतुरः सर्वविद्यानां च विशारदः ॥ ५९ ॥ यज्ञस्य कारणं तेन ज्ञातं सर्वं सविस्तरम् ॥ भयभीतस्ततः

वादा कर चुके हैं और अब फिर वादा करके मुझे धोखा देना चाहते हैं । मैं समझ गया कि निपूता होनेके कारण आपका दुस्त्यज पुत्रवात्सल्य छूट नहीं रहा है ॥ ५४ ॥ अस्तु, इस समय आपकी विनम्र वाणीसे सन्तुष्ट होकर मैं अपने घर लौट जाता हूँ, लेकिन हे भूपाल ! कुछ समय प्रतीक्षा करके मैं फिर आपके यहाँ आऊँगा ॥५५॥ हे तात ! उस समय आप अपनी प्रतिज्ञाको अवश्य सत्य कीजिएगा । अन्यथा कुपित होकर मैं आपको शाप दे दूँगा ॥५६॥ राजाने कहा—हे जलजन्तुओंके स्वामी ! समावर्तन संस्कार हो जानेपर मैं अपने पुत्रको यज्ञीय पशु बनाकर विधिवत् नरमेध यज्ञ करूँगा ॥ ५७ ॥ व्यासजीने कहा—राजाकी यह प्रतिज्ञा सुनकर वरुणदेव प्रसन्न हो गये और तथास्तु कहकर तुरंत चले गये । उनके चले जानेपर राजाका चित्त शान्त हुआ ॥ ५८ ॥ इधर उनका पुत्र रोहित दिन-दिन बढ़ने लगा । चतुर होनेके कारण वह शीघ्र सारी विद्याओंको पढ़कर विद्वान् हो गया ॥ ५९ ॥ जब उसे नरमेध यज्ञका वृत्तान्त

विस्तारके साथ मालूम हुआ तो अपनी मृत्यु निकट समझकर वह बहुत डरा ॥ ६० ॥ एक दिन वह घरसे भागकर राजमहलसे बड़ी दूर पहाड़की एक गुफामें जाकर डरता हुआ रहने लगा ॥ ६१ ॥ इधर जब अवधि पूरी हो गयी तो यज्ञकी अभिलाषासे वरुणदेव राजमहलमें आये और राजा हरिश्चन्द्रसे कहने लगे—हे जनाधिपते ! अब तो वह यज्ञ करिए ॥ ६२ ॥ यह सुनकर राजाको असीम कष्ट हुआ और उनका चेहरा उतर गया । व्यथित होकर उन्होंने कहा—हे सुरसत्तम ! मैं क्या करूँ ? मेरा पुत्र न जाने कहाँ भाग गया है ॥ ६३ ॥ यह बात सुनकर वरुणदेव बहुत कुपित हुए और उसी आवेशमें असत्यवादी राजा हरिश्चन्द्रको शाप देते हुए कहा--॥६४॥ अरे कपटी ! तूने मुझे बार बार धोखा दिया है । इसलिए अरे नीच राजा ! जा, तेरे शरीरमें जलोदर रोग हो जाय ॥६५॥ ऐसा शाप देकर पाशधारी वरुण अपने घर चले गये । इधर राजा हरिश्चन्द्रको जलोदर रोग हो गया और वे महलमें पड़े हुए बड़े चिन्तित रहने लगे ॥ ६६ ॥ उस शापके कारण जब राजाकी व्याधि उत्तरोत्तर बढ़ने लगी, तब उनके पुत्र रोहितको यह खबर मिली कि मेरे पिता रुग्ण होकर बड़ा कष्ट पा रहे हैं ॥६७॥ किसी पथिकने

सोऽपि मत्वा मरणमात्मनः ॥ ६० ॥ कृत्वा पलायनं वीरो गतोऽसौ गिरिगह्वरे ॥ अगम्ये नृपतिस्थाने स्थितस्तत्र भयातुरः ॥ ६१ ॥ प्राप्ते कालेऽथ वरुणो यज्ञार्थी नृपतेर्गृहम् ॥ गत्वा तमाह भूपालं कुरु यज्ञं विशांपते ॥ ६२ ॥ प्रम्लानवदनो राजा तमाह व्यथितेंद्रियः ॥ किं करोमि गतः क्वापि सुतो मे सुरसत्तमम ॥ ६३ ॥ श्रुत्वा तद्वचनं राज्ञः कुपितो यादसांपतिः ॥ शशाप तं नृपं कोपादसत्यवादिनं भृशम् ॥ ६४ ॥ जलोदराभिधो व्याधिर्देहे भवतु ते नृप ॥ यतः प्रतारितश्चाहं कृत्वा कपटपंडित ॥ ६५ ॥ इति शप्त्वा ययौ धाम स्वकं पाशधरस्तदा ॥ राजा चिंतातुरस्तस्थौ भवने व्याधिपीडितः ॥ ६६ ॥ यदातिव्याधितो राजा रोगेण शापजेन ह ॥ तदा शुश्राव पुत्रोऽपि पितरं व्याधिपीडितम् ॥ ६७ ॥ पांथिकः प्राह पुत्रं हि पिता ते भृशदुःखितः ॥ जलोदरविकारेण शापजेन नृपात्मज ॥ ६८ ॥ विनष्टं जीवितं तेऽद्य वृथा जातस्य दुर्मते ॥ यत्त्यक्त्वा पितरं दुःस्थं प्राप्तोऽसि गिरिगह्वरम् ॥ ६९ ॥ किमनेन शरीरेण प्राप्तं ते जन्मनः फलम् ॥ देहदं दुःखितं कृत्वा स्थितोऽस्यत्र सुताधम ॥ ७० ॥ प्राणास्त्याज्याः पितुः कार्ये सत्पुत्रेणेति निश्चयः ॥ त्वदर्थे दुःखितो राजा क्रंदति व्याधिपीडितः ॥ ७१ ॥ व्यास उवाच ॥ तदाकर्ण्य वचस्तथ्यं पांथिकाद्धर्मसंयुतम् ॥ यदा चक्रे मनो गंतुं द्रष्टुं तातं व्यथातुरम् ॥ ७२ ॥ तदा विप्रवपुर्भूत्वा वासवस्तमुपागमत् ॥ रहः प्राह हितं वाक्यं दयावानिव

उससे कहा--हे राजकुमार ! आपके पिताको वरुणने शाप दे दिया है । अतएव वे जलोदर रोगसे बहुत दुखी हैं ॥६८॥ हे दुर्बुद्धे ! तुम्हारा जन्म लेना व्यर्थ हुआ और जीवन नष्ट हो गया । क्योंकि तुम सङ्कटमें पड़े पिताका साथ छोड़कर अपने प्राण बचानेके लिए इस पहाड़की गुफामें छिपे हुए हो ॥ ६९ ॥ तुम्हारे इस शरीरसे किसीको क्या लाभ हुआ ? तुम्हारे पिताको पुत्रके जन्म लेनेका क्या फल मिला ? जिनसे यह देह मिली, उन्हींको क्लेशमें डालकर हे कुपूत ! तुम यहाँ दिन बिता रहे हो ? ॥ ७० ॥ यदि पिताके लिए प्राणोंका भी छोड़ना पड़े तो कोई हर्ज नहीं । ऐसा सपूतोंका ध्येय होना चाहिए । राजा हरिश्चन्द्र व्याधिपीड़ित होकर भी तुम्हारे लिए बड़े दुःखित रहते हैं और नित्य विलाप किया करते हैं ॥ ७१ ॥ व्यासजी बोले—रोहितने जब उस पथिककी यह धार्मिक और सही सलाह सुनी तो उसे कष्टमें पड़े हुए अपने पिताके दर्शनकी इच्छा हुई ॥ ७२ ॥ उसी समय इन्द्र ब्राह्मणका वेश बनाकर उसके

रोहितने जब उस पथिककी यह धार्मिक और सही सलाह सुनी तो उसे कष्टमें पड़े हुए अपने पिताके दर्शनकी इच्छा हुई ॥ ७२ ॥ उसी समय इन्द्र ब्राह्मणका वेश बनाकर उसके

पास आये और एकान्तमें दयालुके समान उसे हितकारी बात बताने लगे ॥ ७३ ॥ इन्द्रने कहा—हे राजकुमार ! तुम बड़े नासमझ हो, जो वहाँ जानेकी इच्छा कर रहे हो । इस समय तुम्हें नहीं मालूम कि तुम्हारे पिता केवल तुम्हारे जीवित रहनेके लिए कितने दुःखित हैं ॥ ७४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषाटीकायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

(वसिष्ठ-विश्वामित्रका कलह) इन्द्र बोले—पूर्वकालमें राजा हरिश्चन्द्रने वरुणसे जो यह प्रतिज्ञा की थी कि 'अपने प्रिय राजकुमारको मैं पशु बनाकर नरमेध यज्ञ करूँगा' वह बड़े साहसका काम था ॥ १ ॥ हे बड़े बुद्धिमान् बननेवाले बालक ! यदि तुम वहाँ जाओगे तो तुम्हारे व्याधिपीड़ित पिता निर्दय भावसे तुम्हें यज्ञीय स्तम्भमें बाँधकर मार डालेंगे ॥ २ ॥ जब असाधारण तेजस्वी इन्द्रने राजकुमारको ऐसा कहकर रोका तो महामायाकी मायासे मोहित होकर वह वहीं रुक गया ॥३॥ इस प्रकार अपने पिताके रोगग्रस्त होनेका समाचार जब-जब उसे मिलता और वह जानेकी इच्छा करता, तब-तब इन्द्र आकर उसे वहाँ जानेसे रोक देते थे ॥ ४ ॥ एक दिन राजा हरिश्चन्द्रने भूत-भविष्य-वर्तमानके ज्ञाता, मानवमात्रके

भारत ॥ ७३ ॥ मूर्खोऽसि राजपुत्र त्वं गमनाय मतिं वृथा ॥ करोषि पितरं त्वद्य न जानासि व्यथायुतम् ॥ ७४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

॥ इन्द्र उवाच ॥ साहसं कृतवान्राजा पूर्वं यत्कथितो मखः ॥ वरुणाय प्रतिज्ञातः पुत्रं कृत्वा पशुं प्रियम् ॥ १ ॥ गते त्वयि पिता पुत्रं बद्ध्वा यूपेऽघृणः पुनः ॥ पशुं कृत्वा महाबुद्धे वधिष्यति व्यथातुरः ॥ २ ॥ इत्थं निषिद्धस्तत्पुत्रः शक्रेणामिततेजसा ॥ स्थितस्तत्रैव मायेशी-मायया मोहितो भृशम् ॥ ३ ॥ यदा पुनः पुनः श्रुत्वा पितरं रोगपीडितम् ॥ गमनाय मतिं चक्रे तदेंद्रः प्रत्यषेधयत् ॥४॥ हरिश्चन्द्रोऽतिदुःखार्तः पप्रच्छ गुरुमंतिके ॥ स्थितं वसिष्ठमेकान्ते सर्वज्ञं हिततत्परम् ॥ ५ ॥ राजोवाच ॥ भगवन्किं करोम्यद्य कातरोऽस्मि व्यथाकुलः ॥ त्राहि मां दुःख-मनसं महाव्याधिभयातुरम् ॥ ६ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ शृणु राजन्नुपायोऽस्ति रोगनाशं प्रति स्तुतः ॥ त्रयोदशविधाः पुत्राः कथिता धर्मसंग्रहे ॥७॥ तस्मात्क्रीतं सुतं कृत्वा यजस्व मखमुत्तमम् ॥ द्रव्यं दत्त्वा यथोद्दिष्टमानयस्व द्विजोत्तमम् ॥ ८ ॥ एवं कृते मखे भूप रोगनाशो भविष्यति ॥ वरु-णोऽपि प्रसन्नात्मा भविष्यति यथासुखम् ॥ ९ ॥ व्यास उवाच ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा राजा प्रोवाच मंत्रिणम् ॥ अन्वेषय महाबुद्धे विषयेष्व-

कल्याणकारी और एकान्तमें बैठे हुए गुरु वसिष्ठसे जाकर पूछा । उस समय राजा बड़े दुःखित थे ॥ ५ ॥ उन्होंने कहा—भगवन् ! एक ओर तो मैं पुत्रके लिए विह्वल हूँ और दूसरी ओर अपने रोगके कारण बेचैन हो रहा हूँ । अब मैं क्या करूँ ? जलोदररूपी असाध्य रोगके भयसे बहुत विकल हूँ । मेरे चित्तमें बड़ा क्लेश समा गया है । मुझे अब आप ही बचा सकते हैं ॥ ६ ॥ वसिष्ठजीने कहा—हे राजन् ! आपका रोगके दूर करनेके लिए एक उपाय है, सो सुनिए । पुत्र तेरह तरहके कहे गये हैं । जैसे—औरस, क्षेत्रज, कृत्रिम, दत्तक, गूढोत्पन्न, क्रीतक आदि ॥ ७ ॥ इसलिए उचित मूल्य देकर आप किसी अच्छे ब्राह्मणके बालकको खरीद लीजिए और उस क्रीतक पुत्र द्वारा उत्तम नरमेध यज्ञ कर डालिए ॥८॥ हे राजन् ! ऐसा करनेसे वरुणदेव संतुष्ट हो जायँगे और आपका रोग दूर हो जायगा ॥ ९ ॥ व्यासजी बोले—गुरु वसिष्ठकी बात सुनकर राजा हरिश्चन्द्रने अपने मंत्रीसे कहा—हे महाबुद्धिमान् ! हमारे राज्यमें पता

लगाओ कि कहीं कोई द्रव्यका लोभी ऐसा पिता है, जो अपने पुत्रको बेच दे ॥ १० ॥ वह जितना भी धन माँगे, उतना देकर उसके पुत्रको ले आओ ॥ ११ ॥ जैसे भी हो, तुम यज्ञके लिए एक ब्राह्मणबालकको अवश्य ले आओ । मेरे इस कार्यकी पूर्तिके निमित्त तुम किसी तरहकी कृपणता न करना ॥ १२ ॥ तुम प्रत्येक ब्राह्मणसे कहो कि 'आप धन लेकर अपने पुत्रको राजाका यज्ञ पूर्ण करनेके लिए सौंप दीजिए' ॥१३॥ राजाने जब अपने कार्यकी पूर्तिके लिए मन्त्रीको ऐसा आदेश दिया तो वह राज्यके हर गाँवमें जा-जाकर घर-घर इस बातका पता लगाने लगा ॥१४॥ इस प्रकार खोज करते-करते उसे अपने राज्यमें एक दुःखी और गरीब ब्राह्मण अजीगर्त मिले, जिनके तीन पुत्र थे ॥ १५ ॥ उनके मझले पुत्र शुनःशेपको पिताके कहे हुए मूल्यपर खरीदकर मन्त्री ले आया ॥१६॥ इस प्रकार शुनःशेपको राजाके पास लाकर उस कार्यकुशल मन्त्रीने कहा--यह द्विजपुत्र नरमेधयज्ञमें पशुयोग्य है ॥ १७ ॥ यह सुनकर

तियत्नतः ॥ १० ॥ कदाचित्कोऽपि लोभार्थी ददाति स्वसुतं पिता ॥ समानय धनं दत्त्वा यावत्प्रार्थयतेऽप्यसौ ॥ ११ ॥ सर्वथैव समानेयो यज्ञार्थे द्विजबालकः ॥ न कार्या कृपणा बुद्धिस्त्वया मत्कार्यहेतवे ॥ १२ ॥ प्रार्थनीयस्त्वया पुत्रः कस्यचिद्द्विजवादिनः ॥ द्रव्येण देहि यज्ञार्थं कर्तव्योऽसौ पशुः किल ॥ १३ ॥ इति संचोदितस्तेन सचिवः कार्यहेतवे ॥ अन्वेषयामास पुरे ग्रामे ग्रामे गृहे गृहे ॥ १४ ॥ एवमन्वेषतस्तस्य विषये कश्चिदातुरः ॥ निर्धनस्त्रिसुतश्चासीदजीगर्तेति नामतः ॥१५॥ तस्य पुत्रं शुनःशेपं मध्यमं मंत्रिसत्तमः ॥ आनयामास दत्त्वाऽर्थं प्रार्थितं तद्धनं तदा ॥१६॥ समानीय शुनःशेपं सचिवः कार्यतत्परः ॥ राज्ञे निवेदयामास पशुयोग्यं द्विजात्मजम् ॥ १७ ॥ राजाऽतिमुदितस्तेन विप्रानानीय सर्वतः ॥ कारयामास संभारान्यज्ञार्थं वेदवित्तमान् ॥१८॥ प्रारब्धे तु मखे तत्र विश्वामित्रो महामुनिः ॥ बद्धं दृष्ट्वा शुनःशेपं निषिषेध नृपं तदा ॥ १९ ॥ राजन्मा साहसं कार्षीर्मुंचैनं द्विजबालकम् ॥ प्रार्थयाम्यहमायुष्मन्सुखं तेऽद्य भविष्यति ॥ २० ॥ क्रन्दत्ययं शुनःशेपः करुणा मां दुनोत्यपि ॥ दयावान्भव राजेंद्र कुरु मे वचनं नृप ॥ २१ ॥ परदेहस्य रक्षायै स्वदेहं ये दयापराः ॥ ददति क्षत्रियाः पूर्वं स्वर्गकामाः शुचिव्रताः ॥ २२ ॥ तं स्वदेहस्य रक्षार्थं हंसि द्विजसुतं बलात् ॥ पापं मा कुरु राजेंद्र दयावान्भव बालके ॥ २३ ॥ सर्वेषां सदृशी प्रीतिर्देहे वेत्सि स्वयं नृप ॥ मुंचैनं बालकं तस्मा-

राजा बड़े प्रसन्न हुए और वेदज्ञ ब्राह्मणोंको बुलवाकर यज्ञ करनेके लिए उन्होंने सारी सामग्री जुटायी ॥१८॥ जब नरमेध यज्ञ आरम्भ हुआ तो महामुनि विश्वामित्रने शुनःशेपको यज्ञीय स्तम्भमें बँधा देखकर मना करते हुए कहा-॥ १९ ॥ हे राजन् ! ऐसा साहस मत करिए । इस विप्रपुत्रको छोड़ दीजिए । हे आयुष्मन् ! मैं इसकी प्राणभिक्षाके लिए आपसे प्रार्थना करता हूँ । इसे छोड़नेसे आपका कल्याण होगा ॥ २० ॥ हे राजेन्द्र ! हे आयुष्मन् ! यह शुनःशेप बहुत रो रहा है, जिससे करुणावश मुझे अपार दुःख होता है । हे राजन् ! मेरी बात मानकर आप इस बालकके ऊपर दया करिए ॥२१॥ पहलेके समय दयालु, पवित्र नियमावलम्बी और स्वर्गके इच्छुक ऐसे क्षत्रिय होते थे, जो दूसरेके जीवनकी रक्षा करनेमें अपना प्राण दे देते थे ॥२२॥ एक क्षत्रिय आप हैं, जो अपने प्राण बचानेके लिए एक ब्राह्मणके बालकको बरबस मार रहे हैं । हे महाराज ! आप ऐसा पाप न करके इस बालकपर दया कीजिए ॥२३॥ सब जीवोंको अपने-

अपने प्राण प्रिय होते हैं। हे राजन्! यह बात आप स्वयं जानते हैं। इसलिए यदि आप मेरी बातको विश्वसनीय मानते हों तो इस बालकको छोड़ दीजिए ॥ २४ ॥ व्यासजी बोले—राजा हरिश्चन्द्र जलोदर रोगसे पीड़ित थे। अतएव उन्होंने विश्वामित्रकी बात ठुकराकर उस बालकको नहीं छोड़ा। इससे तपस्वी विश्वामित्र उनके ऊपर कुपित हो गये ॥ २५ ॥ तब वेदवेत्ताओंमें अग्रणी और दयालु विश्वामित्रने शुनःशेपको वरुणसूक्तका उपदेश दिया ॥ २६ ॥ तदनुसार शुनःशेप अपनी हत्याके भयसे कातर होकर वरुणदेवका स्मरण करते हुए उच्च स्वरसे उस सूक्तका उच्चारण करता हुआ रोने लगा ॥ २७ ॥ दयाके सागर वरुणदेव शुनःशेप द्वारा अपनी स्तुति सुनकर वहाँ प्रकट हो गये और उसे बन्धनमुक्त कर दिया ॥ २८ ॥ बादमें राजा हरिश्चन्द्रको भी रोगमुक्त करके वरुणदेव अपने लोक चले गये। तब विश्वामित्रने मृत्युके मुखसे छूटे हुए शुनःशेपको अपना पुत्र बना लिया ॥ २९ ॥ राजा हरिश्चन्द्रने महर्षि विश्वामित्रकी बात नहीं मानी थी। इससे वे गाधि-तनय मनही मन राजाके ऊपर बहुत रुष्ट हुए ॥३०॥ एक समय राजा घोड़ेपर सवार होकर जङ्गलमें शिकार खेलने गये। जंगली सूअर मारनेकी इच्छासे वे ठीक

त्प्रमाणं यदिमे वचः ॥२४॥ व्यास उवाच ॥ अनादृत्य च तद्वाक्यं राजा दुःखातुरो भृशम् ॥ न मुमोच मुनिस्तस्मै चुकोपातीव तापसः ॥२५॥ उपदेशं ददौ तस्मै शुनःशेपाय कौशिकः ॥ मंत्रं पाशधरस्याथ दयावान्वेदवित्तमः ॥ २६ ॥ शुनःशेपोऽपि तं मंत्रमसकृद्वधकर्शितः ॥ प्लुतस्वरेण चुक्रोश संस्मरन्वरुणं भृशम् ॥ २७ ॥ स्तुवंतं मुनिपुत्रं तं ज्ञात्वा वै यादसां पतिः ॥ तत्रागत्य शुनःशेपं मुमोच करुणाणवः ॥ २८ ॥ रोगहीनं नृपं कृत्वा वरुणः स्वगृहं ययौ ॥ विश्वामित्रस्तु तं पुत्रं कृतवान्मोचितं मृतेः ॥ २९ ॥ न कृतं वचनं राज्ञा कौशिकस्य महात्मनः ॥ रोषं दधार मनसा राजोपरि स गाधिजः ॥ ३० ॥ एकस्मिन्समये राजा हयारूढो वनं गतः ॥ सूकरं हंतुकामस्तु मध्याह्ने कौशिकीतटे ॥ ३१ ॥ वृद्धब्राह्मण-वेषेण विश्वामित्रेण वंचितः ॥ सर्वस्वं प्रार्थितं तस्य गृहीतं राज्यमद्भुतम् ॥ ३२ ॥ पीडितोऽसौ हरिश्चन्द्रो यजमानो यतो भृशम् ॥ वसिष्ठः कौशिकं प्राह वने प्राप्तं यदृच्छया ॥ ३३ ॥ क्षत्रियाधम दुर्बुद्धे वृथा ब्राह्मणवेषभृत् ॥ बकधर्म वृथा किं त्वं गर्वं वहसि दांभिक ॥ ३४ ॥ कस्मात्त्वया नृपश्रेष्ठो यजमानो ममाप्यसौ ॥ अपराधं विना जाल्म गमितो दुःखमद्भुतम् ॥ ३५ ॥ बकध्यानपरो यस्मात्तस्मात्त्वं वै बको भव ॥ इति शप्तो वसिष्ठेन कौशिकः प्राह तं पुनः ॥ ३६ ॥ त्वमप्याडिर्भवायुष्मन्बकोऽहं यावदेव हि ॥ व्यास उवाच ॥ एवं परस्परं दत्त्वा शापं तौ

दोपहरके समय कौशिकी नदीके तटपर पहुँचे ॥ ३१ ॥ उसी समय विश्वामित्रने वृद्ध ब्राह्मणका वेश धारण करके राजा हरिश्चन्द्रको छलकर उनका सर्वस्व माँग लिया और सारे राजपाटपर अधिकार कर लिया ॥ ३२ ॥ उसी दिनसे यजमान हरिश्चन्द्र दर-दरकी ठोकरें खाने लगे। एक दिन वनमें सहसा विश्वामित्रसे वसिष्ठ मुनिकी भेंट हो गया ॥ ३३ ॥ तब वसिष्ठने कहा—अरे दुर्बुद्धि! तूने झूठ-मूठ ब्राह्मणका स्वरूप बना रक्खा है। तेरी बगुलाभगती ठीक नहीं है। अरे ढोंगी! तू व्यर्थ गर्व करता है ॥ ३४ ॥ तू हमारे निरपराध यजमान क्षत्रियकुलशिरोमणि हरिश्चन्द्रको क्यों महान् कष्ट दे रहा है? ॥३५॥ तुमने बगुलेकी तरह समाधि लगा रक्खी है, अतएव तुम बगुला हो जाओ। जब वसिष्ठने इस तरह शाप दे दिया। तब विश्वामित्रने कहा—॥३६॥ हे आयुष्मन्! यदि मैं बगुलेका जन्म पाऊँगा तो तुम भी मेरे उस जीवनतक आडी पक्षीका जन्म पाकर रहोगे। व्यासजी बोले—हे जनमेजय! इस प्रकार क्रोधवश उन्होंने परस्पर एक

दूसरेको शाप दे दिया ॥३७॥ तदनन्तर एक सरोवरके किनारे अण्डोंमेंसे वे दोनों मुनि 'आडी' और 'बक' रूपमें उत्पन्न हुए। बादमें पेड़पर घोंसला बनाकर बकरूपधारी विश्वामित्र दिव्य मानसरोवरके किनारे रहने लगे। इसी तरह एक दूसरे पेड़पर घोंसला बनाकर आडीरूपकारी वसिष्ठजी भी रहते थे॥ ३८ ॥ ३९ ॥ तब भी दोनोंमें बड़ी प्रबल शत्रुता चल रही थी। वे कुपित होकर नित्य आपसमें जूझते रहते थे ॥४०॥ इतनी जोरसे चिल्ला-चिल्लाकर वे लड़ते थे कि जिससे सब लोगोंको बहुत व्यथा होती थी। उनमेंसे एक चोंच और पंखके द्वारा लड़ता तो दूसरा पञ्जोंसे नोचता था ॥४१॥ इससे वे इतने लहू-लुहान हो जाते कि खिले हुए टेसूके फूल जैसे दीखने लगते थे। हे महाराज! इस प्रकार पक्षिरूपधारी वसिष्ठ और विश्वामित्र बहुत वर्षोंतक शापग्रस्त होकर वहाँ पड़े रहे। इतनी कथा सुनकर राजा जनमेजयने कहा—हे ब्रह्मन्! आगे चलकर वे वसिष्ठ और महर्षि विश्वामित्र किस तरह शापमुक्त हुए? ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

क्रोधपीडितौ ॥ ३७ ॥ अंडजौ तरसा जातौ सरयस्याडीबकौ मुनी ॥ एकस्मिन्पादपे नीडं कृत्वाऽसौ बकरूपभाक् ॥३८॥ विश्वामित्रः स्थितस्तत्र दिव्ये सरसि मानसे ॥ अन्यस्मिन्पादपे कृत्वा वसिष्ठो नीडमुत्तमम् ॥ ३९ ॥ आडीरूपधरस्तथावन्योन्यं द्वेषतत्परौ ॥ दिने दिने तौ संग्रामं चक्रतुः क्रोधसंयुतौ ॥ ४० ॥ दुःखदं सर्वलोकानां क्रंदमानावुभौ भृशम् ॥ चंचुपक्षप्रहारैस्तु नखाघातैः परस्परम् ॥ ४१ ॥ जघ्नतू रुधिरक्लिन्नौ पुष्पिताविव किंशुकौ ॥ एवं बहूनि वर्षाणि पक्षिरूपधरौ मुनी ॥४२॥ स्थितौ तत्र महाराज शापपाशेन यंत्रितौ ॥ राजोवाच ॥ कथं मुक्तौ मुनिश्रेष्ठौ शापाद्वसिष्ठकौशिकौ ॥४३॥ तन्ममाचक्ष्व विप्रर्षे परं कौतूहलं हि मे ॥ व्यास उवाच ॥ युध्यमानावुभौ दृष्ट्वा ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ ४४ ॥ तत्राजगामानिमिषैर्वृतः सर्वैर्दयापरैः ॥ तावाश्वास्य जगत्कर्ता युद्धतो विनिवार्य च ॥ ४५ ॥ शापं संमोचयामास तयोः क्षिप्तं परस्परम् ॥ ततो जग्मुः सुराः सर्वे स्वानि धिष्ण्यानि पद्मभूः ॥ ४६ ॥ सत्यलोकं जगामाशु हंसारूढः प्रतापवान् ॥ विश्वामित्रोऽप्यगात्तूर्णं वसिष्ठः स्वाश्रमं गतः ॥४७॥ मिथः स्नेहं ततः कृत्वा प्रजापत्युपदेशतः ॥ मैत्रावरुणिनाऽप्येवं कृतं युद्धमकारणम् ॥ ४८ ॥ कौशिकेन समं भूप दुःखदं च परस्परम् ॥ को नाम मानवो लोके देवो वा दानवोऽपि वा ॥ ४९ ॥ अहंकारजयं कृत्वा सर्वदा सुखभाग्भवेत् ॥ तस्माद्राजंश्चित्तशुद्धिर्महतामपि दुर्लभा ॥५०॥ यत्नेन साधनीया सा तद्विहीनं निरर्थकम् ॥ तीर्थदानतपःसत्यं यत्किंचिद्धर्मसाधनम् ॥५१॥ (श्रद्धाऽत्र त्रिविधा प्रोक्ता सात्त्विकी राजसी तथा ॥ तामसी

हे महर्षि! मेरे चित्तमें यह जाननेकी बड़ी प्रबल आकांक्षा है। व्यासजी बोले—जब लोकपितामह ब्रह्माजीने उन्हें लड़ते देखा ॥ ४४ ॥ तब करुणाके सागर ब्रह्माजी समस्त देवताओंके साथ वहाँ गये। उन्होंने उन दोनोंको आश्वासन देकर वह संग्राम रोका ॥४५॥ बादमें परस्पर दिये हुए शापसे भी उन दोनोंको मुक्त कर दिया। इसके बाद देवता अपने-अपने आश्रमको चल पड़े ॥४६॥४७॥ प्रजापति ब्रह्माजीके उपदेशानुसार अब वे दोनों मित्रतापूर्वक रहने लगे। हे राजन्! इस तरह मैत्रावरुणि वसिष्ठने विश्वामित्रके साथ वह निष्प्रयोजन लड़ाई लड़ी, जिससे दोनोंको अपार कष्ट मिला। हे महाराज! इस प्रकारसे ऐसा कौन देवता, दानव या मानव है कि जो अहंकारको जीतकर सदा सुखी रहे? हे राजन्! विश्वामित्र और वसिष्ठके इस दृष्टान्तसे यह स्पष्ट हो गया कि महापुरुषोंकी भी चित्तशुद्धि दुर्लभ होती है ॥ ४८–५० ॥ इसलिए प्रयत्नपूर्वक चित्तको शुद्ध रक्खे। क्योंकि चित्त शुद्ध न रहनेपर तीर्थ, दान, तपस्या,

सत्य और धर्मके सभी साधन बेकार हो जाते हैं ॥५१॥ (सात्त्विकी, राजसी और तामसी, तीन तरहकी श्रद्धा होती है ॥ १ ॥ इनमें सात्त्विकी श्रद्धा बड़ी दुर्लभ होती है। यह धर्मकर्मका पूरा फल देती है। यदि राजसी श्रद्धाके साथ विधिवत् धर्मकर्म किया जाय तो वह आधा फल देता है ॥ २ ॥ हे राजन् ! कामी और क्रोधी पुरुषोंकी श्रद्धा तामसी होती है। हे महाराज ! इस श्रद्धासे न तो कर्मका कोई फल मिलता है और न उससे कीर्ति ही मिलती है ॥३॥) अतः चित्तको सभी वासनाओंसे हटाकर सत्सङ्ग करे। ऐसा करनेसे जब चित्त शुद्ध हो जाय, तब तीर्थ आदिमें निवास करता हुआ नित्य भगवतीकी आराधना करे ॥ ५२ ॥ कलियुगके दोषसे भयभीत मनुष्योंको चाहिए कि ऐसा कुछ करें, जिससे उनकी जिह्वा सदा भगवतीका नाम लेती हुई उनके गुणोंका कीर्तन करती रहे और उनका चित्त सदा भगवतीके चरणकमलके ध्यानमें मग्न रहे ॥५३॥ यदि वे इस प्रकार भगवतीकी आराधना करेंगे तो कलियुगका तनिक भी भय नहीं रहेगा और पापी प्राणी भी अनायास भवसागरसे छुटकारा पा जायँगे ॥५४॥ इति श्रीदेवीभागवते षष्ठस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा' भाषाटीकायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

सर्वदेहेषु देहिनां धर्मकर्मसु ॥ १ ॥ सात्त्विकी दुर्लभा लोके यथोक्तफलदा सदा ॥ तदर्धफलदा प्रोक्ता राजसी विधिसंयुता ॥ २ ॥ तामसी त्वफला राजन्न तु कीर्तिकरी पुनः ॥ कामक्रोधाभिभूतानां जनानां नृपसत्तम ॥ ३ ॥) वासनारहितं कृत्वा तच्चित्तं श्रवणादिना ॥ तीर्थादिषु वसेन्नित्यं देवीपूजनतत्परः ॥५२॥ देवीनामानि वचसा गृह्णंस्तस्या गुणान्स्तुवन् ॥ ध्यायंस्तस्याः पदांभोजं कलिदोषभयार्दितः ॥५३॥ एवं तु कुर्वतस्तस्य न कदाचित्कलेर्भयम् ॥ अनायासेन संसारान्मुच्यते पातकी जनः ॥ ५४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

॥ जनमेजय उवाच ॥ मैत्रावरुणिरित्युक्तं नाम तस्य मुनेः कथम् ॥ वसिष्ठस्य महाभाग ब्रह्मणस्तनुजस्य ह ॥ १ ॥ किमसौ कर्मतो नाम प्राप्तवान्गुणतस्तथा ॥ ब्रूहि मे वदतां श्रेष्ठ कारणं तस्य नामजम् ॥ २ ॥ व्यास उवाच ॥ निबोध नृपतिश्रेष्ठ वसिष्ठो ब्रह्मणः सुतः ॥ निमिशापात्तनुं त्यक्त्वा पुनर्जातो महाद्युतिः ॥ ३ ॥ मित्रावरुणयोर्यस्मात्तस्मात्तन्नाम विश्रुतम् ॥ मैत्रावरुणित्यस्मिँल्लोके सर्वत्र पार्थिव ॥ ४ ॥ राजोवाच ॥ कस्माच्छप्तः स धर्मात्मा राज्ञा ब्रह्मात्मजो मुनिः ॥ चित्रमेतन्मुनिं लग्नो राज्ञः शापोऽतिदारुणः ॥५॥ अनागसं मुनिं राजा किमसौ शप्तवान्मुने ॥

(वसिष्ठजीके मैत्रावारुणि नाम पड़नेका कारण) राजा जनमेजयने पूछा—हे महाभाग ! वसिष्ठजी तो ब्रह्माजीके पुत्र थे। तब उनका नाम मैत्रावारुणि कैसे पड़ गया ? ॥१॥ क्या उन्होंने ऐसा कोई कर्म किया था अथवा उनमें ऐसे ही गुण थे, जिससे उनकी यह संज्ञा पड़ गयी ? हे मुनिवर ! आप सर्वश्रेष्ठ वक्ता हैं। वसिष्ठजी मैत्रावारुणि क्यों कहलाते हैं ? इसका कारण मुझे बतानेकी कृपा करें ॥ २ ॥ व्यासजी कहते हैं—हे राजेन्द्र ! सुनो, वसिष्ठजी ब्रह्माके पुत्र होते हुए भी निमिके शापसे पुनर्जन्म लेनेके लिए विवश हो गये और उन महान् तेजस्वी मुनिको वह शरीर त्याग देना पड़ा ॥३॥ हे राजन् ! अब मित्र और वरुणके यहाँ उनकी उत्पत्ति हुई थी। इसीसे इस जगत्में वे सर्वत्र 'मैत्रावरुणि' के नामसे विख्यात हुए ॥ ॥ राजाने पूछा—ब्रह्माजीके पुत्र मुनिवर वसिष्ठ धार्मिक पुरुष थे। उन्हें राजा निमिने क्यों दारुण शाप दे दिया ? ॥ ५ ॥ हे मुने ! वसिष्ठजी कभी किसीका कुछ भी अनिष्ट नहीं करते थे, तब राजाने

उन्हें क्यों शाप दिया ? हे प्रभो ! आप बड़े धर्मज्ञ पुरुष हैं । सो शापका मूल कारण बतानेकी कृपा कीजिए ॥६॥ व्यासजी बोले–हे राजन् ! इसका निर्णीत कारण तो मैं तुम्हें पहले ही बता चुका हूँ । तीन प्रकारके मायिक गुणोंसे यह सारा जगत् व्याप्त है ॥ ७ ॥ राजे धर्मपूर्वक राज्य करें और तपस्वी लोग तपस्या करें–यह स्वाभाविक कर्म हैं । किन्तु मायिक गुणोंसे विद्ध होनेके कारण जैसा शुद्ध भाव होना चाहिये, वैसा नहीं हो पाता ॥ ८ ॥ शासक राजाओंमें काम और क्रोध भरे रहते हैं । कठिन तपस्या करनेवाले मुनियोंके हृदयसे भी लोभ और अहंकारकी मात्रा पूरी तरह नष्ट नहीं हो पाती । फिर उत्तम फल कैसे मिले ? हे राजन् ! जैसे ब्राह्मण थे, वैसे ही क्षत्रिय । दोनों राजस गुणोंसे ओतप्रोत होकर यज्ञ कर रहे थे । इसी बीच वसिष्ठने निमिको और निमिने वसिष्ठको शाप दे दिया और इस प्रकार वे दोनों अपार संकटमें पड़ गये ॥ ९–११ ॥ हे भूपाल ! इस त्रिगुणात्मक संसारमें द्रव्यशुद्धि, क्रियाशुद्धि और मनःशुद्धि प्राणियोंके लिये बड़ी दुर्लभ वस्तु है ॥१२॥ महामायाकी अदम्य शक्तिका ही यह प्रभाव है । कोई कभी भी उसका उल्लंघन नहीं कर सकता । जिसके हृदयमें जिस क्षण भगवतीकी कृपापर

कारणं वद धर्मज्ञ तस्य शापस्य मूलतः ॥६॥ व्यास उवाच ॥ कारणं तु मया प्रोक्तं तव पूर्वं विनिश्चितम् ॥ संसारोऽयं त्रिभिर्व्याप्तो राजन्मायागुणैः किल ॥ ७ ॥ धर्मं करोतु भूपालश्चरंतु तामसास्तपः ॥ सर्वेषां तु गुणैर्विद्धं नोज्ज्वलं तद्भवेदिह ॥ ८ ॥ कामक्रोधाभिभूताश्च राजानो मुनयस्तथा ॥ लोभाहंकारसंयुक्ताश्चरंन्ति दुश्चरं तपः ॥ ९ ॥ भवंति क्षत्रिया राजन्रजोगुणसमावृताः ॥ ब्राह्मणास्तु तथा राजन्न कोऽपि सत्त्वसंयुतः ॥ १० ॥ ऋषिणाऽसौ निमिः शप्तस्तेन शप्तो मुनिः पुनः ॥ दुःखाद्दुःखतरं प्राप्तावुभावपि विधेर्बलात् ॥११॥ द्रव्यशुद्धिः क्रियाशुद्धिर्मनसः शुद्धिरुज्ज्वला ॥ दुर्लभा प्राणिनां भूप संसारे त्रिगुणात्मके ॥ १२ ॥ पराशक्तिप्रभावोऽयं नोल्लंघ्यः केनचित्क्वचित् ॥ यस्यानुग्रहमिच्छेत्सा मोचयत्येव तं क्षणात् ॥ १३ ॥ महांतोऽपि न मुच्यंते हरिब्रह्महरादयः ॥ पामरा अपि मुच्यंते यथा सत्यव्रतादयः ॥ १४ ॥ तस्यास्तु हृदयं कोऽपि न वेत्ति भुवनत्रये ॥ तथापि भक्तवश्येयं भवत्येव सुनिश्चितम् ॥ १५ ॥ तस्मात्तद्भक्तिरास्थेया दोषनिर्मूलनाय च ॥ रागदंभादियुक्ता चेत्सा भक्तिर्नाशिनी भवेत् ॥१६॥ इक्ष्वाकुकुलसंभूतो निमिर्नाम नराधिपः ॥ रूपवान्गुणसंपन्नो धर्मज्ञो लोकरंजकः ॥१७॥ सत्यवादी दानपरो याजको ज्ञानवाञ्छुचिः ॥ द्वादशस्तनयो धीमान्प्रजापालनतत्परः ॥ १८ ॥ पुरं निवेशयामास गौतमाश्रमसन्निधौ ॥ जयंतपुरसंज्ञं तु ब्राह्मणानां हिताय सः ॥ १९ ॥ बुद्धिस्तस्य समुत्पन्ना

विश्वास होता है, उसका उसी क्षण उद्धार हो जाता है ॥१३॥ कभी-कभी ब्रह्मा, विष्णु और शिव जैसे महान् देवता मुक्त नहीं होते और सत्यव्रत जैसे पामर प्राणी मुक्त हो जाते हैं ॥१४॥ त्रिलोकीमें ऐसा कोई भी प्राणी नहीं है, जो भगवती माहामायाका रहस्य पूरी समझता हो । तथापि वे भक्तके वशमें हो ही जाती हैं–यह बात निश्चित है ॥१५॥ अतएव भगवती जगदम्बाकी भक्ति करना परम आवश्यक है । इससे अन्तःकरणका दोष समूल नष्ट हो जाता है । हाँ, यदि कहीं भक्तिमें राग-द्वेष और दम्भ आ गया, तब तो वह उलटे नाशका कारण बन जाती है ॥१६॥ इक्ष्वाकुके कुलमें उत्पन्न एक राजा थे, उनका नाम था निमि । वे बड़े सुन्दर, गुणी, धर्मज्ञ और प्रजाके प्रेमी थे ॥१७॥ वे कभी झूठ नहीं बोलते थे । दान करना उनका नित्य-नियम था । यज्ञ करनेमें उनकी विशेष रुचि थी । वे बड़े दानी, ज्ञानी और पुण्यात्मा थे । उन बुद्धिमान् निमिको इक्ष्वाकुका बारहवाँ पुत्र माना जाता था । वे सदा प्रजापालनमें तत्पर रहते थे ॥१८॥

यज्ञ करनेमें उनकी विशेष रुचि थी। वे बड़े दानी, ज्ञानी और पुण्यात्मा थे। उन बुद्धिमान् निमिको इक्ष्वाकुका बारहवाँ पुत्र माना जाता था। वे सदा प्रजापालनमें तत्पर रहते थे ॥१८॥

गौतम मुनिके आश्रमके पास ही उन्होंने जयन्तपुर नामका एक नगर बसाया था। उसीमें उन्होंने अपने निवासकी व्यवस्था की थी। क्योंकि वे ब्राह्मणोंके बड़े शुभचिन्तक थे। सहसा जिसमें प्रचुर दक्षिणाएँ बाँटी जाती हैं तथा जो बहुत समयमें पूरा होता है, ऐसा राजसी यज्ञ करनेका उनके मनमें विचार उत्पन्न होगया! हे राजन्! तब निमिने अपने पिता इक्ष्वाकुसे आज्ञा लेकर महात्माओंके कथनानुसार यज्ञकी सारी सामग्री तैयार करवा ली ॥१९-२१॥ भृगु, अङ्गिरा, वामदेव, गौतम, वसिष्ठ, पुलस्त्य, ऋचीक, पुलह और क्रतु आदि जितने विशेषज्ञ, वेदके पारगामी और यज्ञ करानेमें कुशल तपस्वी मुनि थे, उन सबके यहाँ उन्होंने निमन्त्रण भेज दिया ॥२२॥२३॥ जब सम्पूर्ण उपयोगी सामान एकत्रित हो गया, तब धर्मज्ञ राजा निमिने अपने गुरु वसिष्ठजीकी पूजा की और बड़ी नम्रताके साथ कहा-॥२४॥ हे मुनिवर! हे कृपासिन्धो! मैं यज्ञ करना चाहता हूँ। आप इसके आचार्य बनिए। सर्वज्ञानी होनेके नाते आप मेरे गुरु हैं। अतः अब मेरा यह कार्य आपके ऊपर निर्भर है ॥२५॥ यज्ञसम्बन्धी वस्तुओंका संग्रह कराकर मैंने इनकी शुद्धि करा ली है। मेरे मनमें ऐसा विचार है कि मैं पाँच हजार वर्षके लिए यज्ञमें दीक्षित हो

यजेयमिति राजसी ॥ यज्ञेन बहुकालेन दक्षिणासंयुतेन च ॥ २० ॥ इक्ष्वाकुं पितरं पृष्ट्वा यज्ञकार्याय पार्थिवः ॥ कारयामास संभारं यथोद्दिष्टं महात्मभिः ॥ २१ ॥ भृगुमंगिरसं चैव वामदेवं च गौतमम् ॥ वसिष्ठं च पुलस्त्यं च ऋचीकं पुलहं क्रतुम् ॥ २२ ॥ मुनीनामंत्रयामास सर्वज्ञान्वेदपारगान् ॥ यज्ञविद्याप्रवीणांश्च तापसान् वेदवित्तमान् ॥ २३ ॥ राजासंभृतसंभारः संपूज्य गुरुमात्मनः ॥ वसिष्ठं प्राह धर्मज्ञो विनयेन समन्वितः ॥ २४ ॥ यजेयं मुनिशार्दूल याजयस्व कृपानिधे ॥ गुरुस्त्वं सर्ववेत्ताऽसि कार्यं मे कुरु सांप्रतम् ॥ २५ ॥ यज्ञोपकरणं सर्वं समानीतं सुसंस्कृतम् ॥ पंचवर्षसहस्रं तु दीक्षां कर्तुं मतिश्च मे ॥ २६ ॥ यस्मिन्यज्ञे समाराध्या देवी श्रीजगदम्बिका ॥ तत्प्रीत्यर्थमहं यज्ञं करोमि विधिपूर्वकम् ॥ २७ ॥ तच्छ्रुत्वाऽसौ निमेर्वाक्यं वसिष्ठः प्राह भूपतिम् ॥ इन्द्रेणाहं वृतः पूर्वं यज्ञार्थं नृपसत्तम ॥२८॥ पराशक्तिमखं कर्तुमुद्युक्तः पाकशासनः ॥ स दीक्षां गमितो देवः पंचवर्षशतात्मिकाम् ॥२९॥ तस्मात्त्वमंतरं तावत्प्रतिपालय पार्थिव ॥ इन्द्रयज्ञे समाप्तेऽत्र कृत्वा कार्यं दिवस्पतेः ॥ ३० ॥ आगमिष्याम्यहं राजंस्तावत्त्वं प्रतिपालय ॥ राजोवाच ॥ मया निमंत्रिताश्चान्ये मुनयो यज्ञकारणात् ॥ ३१ ॥ संभाराः संभृताः सर्वे पालयामि कथं गुरो ॥

जाऊँ ॥ २६ ॥ मैं विधिपूर्वक वह यज्ञ करना चाहता हूँ, जिसमें भगवती जगदम्बाकी विशेषरूपसे आराधना की जाय। क्योंकि उनकी प्रसन्नता ही मेरे यज्ञका उद्देश्य है ॥ २७ ॥ राजा निमिकी उपर्युक्त बातें सुनकर वसिष्ठजीने कहा-'हे राजेन्द्र! तुमसे पहले ही मुझको इन्द्रने यज्ञ करानेके लिये वरण कर लिया है ॥ २८ ॥ पराशक्ति नामक यज्ञ करनेके लिए वे तैयार हैं। उन्होंने पाँच सौ वर्षतक यज्ञ करनेकी दीक्षा ले ली है ॥२९॥ अतएव हे राजन्! तबतक तुम इन सामग्रियोंको सुरक्षित रखो। इन्द्रका यज्ञ समाप्त होनेपर उस कार्यसे निवृत्त होकर मैं तुरन्त तुम्हारे यहाँ आजाऊँगा। उस समयतक तुम्हें प्रतीक्षा करनी होगी। राजाने कहा-हे ब्रह्मन्! यज्ञके निमित्त मैं बहुतसे अन्य मुनियोंको भी निमन्त्रित कर चुका हूँ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ यज्ञकी सारी वस्तुएँ भी जुट गयी हैं। तब इतने लंबे समय तक मैं कैसे उन्हें सँभाले रहूँगा। हे गुरुदेव! आप इस इक्ष्वाकुवंशके आचार्य हैं। वेदोंका कोई भी अंश आपसे अविदित

होओगे ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ लोकपितामह ब्रह्माजीके श्रीमुखसे इस प्रकारकी बातें सुनकर वसिष्ठजीने प्रसन्नतापूर्वक उनके चरणोंमें मस्तक झुकाया और प्रदक्षिणा करके वरुणके आश्रमपर चले गये। वहाँ सदा एक साथ रहनेवाले मित्र और वरुण दोनों ऋषि विराजमान थे। अवसर पाकर वसिष्ठ अपने श्रेष्ठ एवं स्थूल शरीरका परित्याग करके केवल सूक्ष्म शरीरसे मित्रावरुणके शरीरमें प्रवेश कर गये ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ हे राजन्! एक समयकी बात है, उर्वशी नामकी परम सुन्दरी अप्सरा अपनी सखियोंके साथ स्वेच्छापूर्वक मित्रावरुणके आश्रमपर आयी ॥ ६० ॥ उसे देखकर मित्रावरुणका चित्त चलायमान हो गया। वे उससे कहने लगे—॥६१॥ 'हे सुन्दरी! तुम्हारा रूप बड़ा ही आकर्षक है। तुम देवकन्या हो। अतः तुम हमें वरण कर लो। हे वरवर्णिनी! इस आश्रमपर स्वच्छन्दतापूर्वक आनन्दका अनुभव करो'। इस प्रकार कहनेपर वह उर्वशी अप्सरा विवश होकर कुछ समय तक वहाँ ठहर गयी ॥६२॥६३॥ उस सुन्दरी अप्सराको मुनिका अभिप्राय अविदित न रहा। उनके प्रति प्रेम प्रकट करते हुए उसने वहाँ रहना स्वीकार कर लिया ॥६४॥ संयोगवश वहीं एक खुले मुखका घड़ा पड़ा हुआ था। उर्वशीसे

सर्वपूजितः ॥ ५७ ॥ एवमुक्तस्तदा पित्रा प्रययौ वरुणालयम् ॥ कृत्वा प्रदक्षिणं प्रीत्या प्रणम्य च पितामहम् ॥ ५८ ॥ विवेश स तयोर्देहे मित्रावरुणयोः किल ॥ जीवांशेन वसिष्ठोऽथ त्यक्त्वा देहमनुत्तमम् ॥ ५९ ॥ कदाचित्तूर्वशी राजन्नागता वरुणालयम् ॥ यदृच्छया वरारोहा सखीगणसमावृता ॥ ६० ॥ दृष्ट्वा तामप्सरां दिव्यां रूपयौवनसंयुताम् ॥ जातौ कामातुरौ देवौ तदा तामूचतुर्नृप ॥ ६१ ॥ विवशौ चारुसर्वांगीं देवकन्यां मनोरमाम् ॥ आवां त्वमनवद्यांगि वरयस्व समाकुलौ ॥ ६२ ॥ विहरस्व यथाकामं स्थानेऽस्मिन्वरवर्णिनि ॥ तथोक्ता सा ततो देवी ताभ्यां तत्र स्थिताऽवशा ॥ ६३ ॥ कृत्वा भावं स्थिरं देवी मित्रावरुणयोर्गृहे ॥ सा गृहीत्वा तयोर्भावं संस्थिता चारुदर्शना ॥ ६४ ॥ तयोस्तु पतितं वीर्यं कुंभे दैवादनावृते ॥ तस्माज्जातौ मुनी राजन्द्वावेवातिमनोहरौ ॥६५॥ अगस्तिः प्रथमस्तत्र वसिष्ठश्चापरस्तथा ॥ मित्रावरुणयोर्वीर्यात्तापसावृषिसत्तमौ ॥ ६६ ॥ प्रथमस्तु वनं प्राप्तो बाल एव महातपाः ॥ इक्ष्वाकुस्तु वसिष्ठं तं बालं वव्रे पुरोहितम् ॥ ६७ ॥ वंशस्यास्य सुखार्थं ते पालयामास पार्थिव ॥ विशेषेण मुनिं ज्ञात्वा प्रीत्या युक्तो बभूव ह ॥ ६८ ॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं वसिष्ठस्य च कारणम् ॥ शापाद्देहांतरप्राप्तिर्मित्रावरुणयोः कुले ॥ ६९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

बातचीत हो ही रही थी, इतनेमें मित्रावरुणका वीर्य स्खलित होकर उस घड़ेमें गिर पड़ा। हे राजन्! उसीसे दो सुन्दर मुनिकुमार प्रकट हो गये। प्रथम बालकका नाम पड़ा अगस्त्य और दूसरेका वसिष्ठ। मित्रावरुणके वीर्यसे उत्पन्न ये दोनों मुनि महान् तपस्वी एवं ऋषियोंमें प्रधान ऋषि हुए ॥ ६५ ॥६६॥ अगस्त्यकी तपस्यापर अटूट श्रद्धा थी। अतः बचपनमें ही वे वनमें चले गये। दूसरे बालक वसिष्ठको इक्ष्वाकुने पुरोहितके रूपमें वरण कर लिया ॥६७॥ हे राजन्! तुम्हारा यह वंश सुखी रहे। इस विचारसे महाराज इक्ष्वाकुने वसिष्ठके पालन-पोषणकी समुचित व्यवस्था कर दी। मुनिके वीर्यसे उस बालककी उत्पत्ति जानकर महाराज इक्ष्वाकु प्रसन्न हुए ॥ ६८ ॥ हे राजन्! ये सब कथाएँ मैं तुम्हें सुना चुका। इस प्रकार शाप लग जानेके कारण वसिष्ठजीको मित्रावरुणके कुलमें दूसरा शरीर धारण करना पड़ा—यह प्रसंग इससे स्पष्ट हो जाता है ॥६९॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

(निमिका नेत्रकी पलकोंपर निवास) राजा जनमेजयने कहा—हे मुने ! आपने वसिष्ठके देह धारण करनेकी बात बतला दी । निमिको पुनः शरीर कैसे मिला, अब यह प्रसंग भी मुझे बतानेकी कृपा करें ॥ १ ॥ व्यासजी कहते हैं—हे राजन् ! जैसे वसिष्ठजीको पुनः शरीर प्राप्त हो गया, वैसे शाप लगनेके पश्चात् राजा निमि पुनः शरीरधारी नहीं हुए ॥ २ ॥ जिस समय मुनिने शाप दिया, उस समय राजा यज्ञमें दीक्षित थे । उन्होंने जितने ब्राह्मणोंको ऋत्विजके रूपमें वरण किया था, वे सभी आपसमें विचार करने लगे—'अहो ! ये धर्मात्मा नरेश यज्ञमें दीक्षित हैं । अभी यज्ञका काम अधूरा ही है । इसी बीच ये मुनिके शापसे जले जा रहे हैं ॥३॥४॥ अब हम क्या करें ? अचानक ऐसी विषम स्थिति आ उपस्थित हुई । अवश्यम्भावी परिस्थिति-के कारण हम इसका निवारण भी नहीं कर सकते ॥ ५ ॥ तदनन्तर उन ऋत्विजोंने अनेक प्रकारके मन्त्रोंका प्रयोग करके महामना निमिके शरीरको सुरक्षित रक्खा । उनके श्वासकी गति समाप्त नहीं हो सकी थी ॥६॥ मन्त्रकी शक्तिसे निर्विकार आत्मा उनके शरीरमें प्रतिष्ठित रही । ब्राह्मणोंने भाँति-भाँतिकी पुष्पमालाओं और चन्दनोंसे उस आत्माको सुपूजित कर रक्खा था ॥७॥

॥ जनमेजय उवाच ॥ देहप्राप्तिर्वसिष्ठस्य कथिता भवता किल ॥ निमिः कथं पुनर्देहं प्राप्तवानिति मे वद ॥ १ ॥ व्यास उवाच ॥ वसिष्ठेन च संप्राप्तः पुनर्देहो नराधिप ॥ निमिना न तथा प्राप्तो देहः शापादनंतरम् ॥ २ ॥ यदा शप्तो वसिष्ठेन तदा ते ब्राह्मणाः क्रतौ ॥ ऋत्विजो ये वृता राज्ञा ते सर्वे समचिंतयन् ॥ ३ ॥ किं कर्तव्यमहोऽस्माभिः शापदग्धो महीपतिः ॥ अस्मिन्यज्ञे त्वसम्पूर्णे दीक्षायुक्तश्च धार्मिकः ॥ ४ ॥ किं कर्तव्यं कार्यमेतद्विपरीतमभूत्किल ॥ अवश्यंभाविभावत्वादशक्ताः स्म निवारणे ॥ ५ ॥ मंत्रैर्बहुविधैर्देहं तदा तस्य महात्मनः ॥ रक्षितं धारयामासुः किंचिच्छ्वसनसंयुतम् ॥ ६ ॥ गंधैर्माल्यैश्च विविधैः पूज्यमानं मुहुर्मुहुः ॥ मंत्रशक्त्या प्रतिष्ठभ्य निर्विकारं सुपूजितम् ॥ ७ ॥ समाप्ते च क्रतौ तत्र देवाः सर्वे समागताः ॥ ऋत्विग्भिस्तु स्तुताः सर्वे सुप्रीताश्चाभवन्नृप ॥ ८ ॥ विज्ञप्ता मुनिभिः स्तोत्रैर्निर्विण्णात्मानमब्रुवन् ॥ प्रसन्नाः स्म महीपाल वरं वरय सुव्रत ॥ ९ ॥ यज्ञेनानेन राजर्षे वरं जन्म विधीयते ॥ देवदेहं नृदेहं वा यत्ते मनसि वांछितम् ॥ १० ॥ दृप्तः कामं पुरोधास्ते मृत्युलोके यथासुखम् ॥ एवमुक्तो निमेरात्मा संतुष्टस्तानुवाच ह ॥ ११ ॥ न देहे मम वांछाऽस्ति सर्वदैव विनश्वरे ॥ वासो मे सर्वसत्त्वानां दृष्टा-

यज्ञ समाप्त हो जानेपर इन्द्रादि समस्त देवता वहाँ पधारे । हे राजन् ! ऋत्विजोंने आये हुए उन सम्पूर्ण देवताओंकी समुचित स्तुति की । इससे वे प्रसन्न हो गये ॥ ८ ॥ तब ब्राह्मणोंने प्रार्थनापूर्वक राजाकी स्थिति देवताओंके सामने उपस्थित कर दी । अतएव दुखी नरेशके प्रति देवताओंने कहा—'उत्तम व्रतका पालन करनेवाले हे राजन् ! हम प्रसन्न हैं, तुम वर माँग लो ॥९॥ हे राजर्षे ! तुम्हारे इस यज्ञके प्रभावसे तुम्हें सर्वोत्तम जन्म मिल सकता है । देवशरीर अथवा मानवशरीर जो भी तुम्हें अभीष्ट हो—उसे प्राप्त कर सकते हो ॥ १० ॥ जैसे तुम्हारे पुरोहित वसिष्ठ अपने सुख-सुविधाके अनुसार मर्त्यलोकमें शरीर धारण किये हुए हैं ।' देवताओंके यों कहनेपर निमिकी आत्मा परम सन्तुष्ट होकर बोल उठी—॥ ११ ॥ 'हे महाभाग देवताओं ! मैं सदा जन्मने और मरनेवाले इस शरीरमें रहना बिल्कुल पसन्द नहीं करता। मैं चाहता हूँ कि सम्पूर्ण प्राणी जिसके द्वारा देखते हैं, उसी दृष्टिमें रहनेका सुअवसर मुझे प्राप्त हो और

सभी प्राणियोंके नेत्रोंमें वायु बनकर मैं विचरा करूँ !' हे राजन् ! जब निमिकी आत्माने देवताओंके सामने यों अपनी अभिलाषा प्रकट की, तब वे उनसे कहने लगे--॥ १२ ॥ १३ ॥ हे महाराज ! इसके लिए तुम सबपर शासन करनेवाली कल्याणस्वरूपिणी भगवती जगदम्बाकी प्रार्थना करो । तुम्हारे इस यज्ञसे वे परम प्रसन्न हैं । उन्हींकी कृपासे तुम्हारा यह मनोरथ पूर्ण होगा ॥ १४ ॥ देवताओंके यों कहनेपर निमिने अनेक प्रकारके दिव्य स्तोत्रोंके द्वारा भक्तिपूर्वक गद्गद वाणीमें देवीसे प्रार्थना की ॥ १५ ॥ इससे प्रसन्न होकर देवीने राजा निमिको प्रत्यक्ष दर्शन दिया । उनके विग्रहसे ऐसा प्रकाश फैल रहा था, मानो करोड़ों सूर्य एक साथ चमक रहे हों । उनके प्रत्येक अङ्गमें सुन्दरता प्रकट हो रही थी ॥ १६ ॥ देवीकी ऐसी अपूर्व झाँकी पाकर सब-के-सब आनन्दमें निमग्न हो गये । सभी अपनेको सफल-मनोरथ समझने लगे । हे राजन् ! देवीको प्रसन्न जानकर निमिने उनसे वर माँगा-॥ १७ ॥ 'हे माता ! आप मुझे ऐसा निर्मल ज्ञान देनेकी कृपा कीजिए, जिससे मैं मुक्त हो सकूँ और मेरी यह अभिलाषा है कि मुझे सम्पूर्ण प्राणियोंके नेत्रोंमें ठहरनेका सुयोग प्राप्त हो' ॥ १८ ॥ भगवती जगदम्बिका निमिपर

वस्तु सुरोत्तमाः ॥१२॥ नेत्रेषु सर्वभूतानां वायुभूतश्चराम्यहम् ॥ एवमुक्ताः सुरास्तत्र निमेरात्मानमब्रुवन् ॥ १३ ॥ प्रार्थय त्वं महाराज देवीं सर्वेश्वरीं शिवाम् ॥ मखेनानेन संतुष्टा सा तेऽभीष्टं विधास्यति ॥ १४ ॥ स देवैरेवमुक्तस्तु प्रार्थयामास देवताम् ॥ स्तोत्रैर्नानाविधैर्दिव्यैर्भक्त्या गद्गदया गिरा ॥ १५ ॥ प्रसन्ना सा तदा देवी प्रत्यक्षं दर्शनं ददौ ॥ कोटिसूर्यप्रतीकाशं रूपं लावण्यदीपितम् ॥ १६ ॥ दृष्ट्वा प्रमुदिताः सर्वे कृतकृत्याश्च चेतसि ॥ प्रसन्नायां देवतायां राजा बब्रे वरं नृप ॥ १७ ॥ ज्ञानं तद्विमलं देहि येन मोक्षो भवेदपि ॥ नेत्रेषु सर्वभूतानां निवासो मे भवेदिति ॥ १८ ॥ ततः प्रसन्ना देवेशी प्रोवाच जगदंबिका ॥ ज्ञानं ते विमलं भूयात्प्रारब्धस्यावशेषतः ॥ १९ ॥ नेत्रेषु सर्वभूतानां निवासोऽपि भविष्यति ॥ निमिषं यांति चक्षूंषि त्वत्कृतेनैव देहिनाम् ॥२०॥ तव वासात्सनिमिषा मानवाः पशवस्तथा ॥ पतंगाश्च भविष्यंति पुनश्चानिमिषाः सुराः ॥२१॥ इति दत्त्वा वरं तस्मै तदा श्रीवरदेवता ॥ आमंत्र्य च मुनीन्सर्वांस्तत्रैवांतर्हिताऽभवत् ॥ २२ ॥ अंतर्हितायां देव्यां तु मुनयस्तत्र संस्थिताः ॥ विचिंत्य विधिवत्सर्वं निमेर्देहं समाहरन् ॥२३॥ अरणिं तत्र संस्थाप्य ममंथुर्मन्त्रवत्तदा ॥ मंत्रहोमैर्महात्मानः पुत्रहेतोर्निमेरथ ॥२४॥ अरण्यां मथ्यमानायां पुत्रः प्रादुरभूत्तदा ॥ सर्वलक्षणसंपन्नः साक्षान्निमिरिवापरः ॥ २५ ॥ अरण्या मथनाज्जातस्तस्मान्मिथिरिति स्मृतः ॥ येनायं

प्रसन्न तो थीं ही । उन्होंने कहा--राजन् ! तुम्हें शुद्ध ज्ञान अवश्य प्राप्त होगा । अभी तुम्हारा प्रारब्ध-भोग समाप्त नहीं हुआ है । अतः समस्त चराचर प्राणियोंके नेत्रोंमें तुम्हें रहना होगा । तुम्हारे प्रभावसे ही प्राणियोंकी आँखोंमें पलक गिरनेकी शक्ति रहेगी ॥ १९ ॥ २० ॥ अतएव मनुष्य, पशु और पक्षी--ये पलक गिरानेवाले प्राणी कहलायेंगे । देवता इस स्थितिसे पृथक् रहेंगे-पलकें न गिरनेसे उनकी 'अनिमिष' संज्ञा होगी ॥ २१ ॥ हे राजन् ! वर देनेके लिये पधारी हुई भगवती जगदम्बा यों निमिका मनोरथ पूर्ण करके मुनियोंसे मिलनेके पश्चात् वहीं अन्तर्धान हो गयीं ॥ २२ ॥ देवीके सिधार जानेपर वहाँ उपस्थित मुनियोंने सम्यक् प्रकारसे परामर्श करके निमिके नष्ट होते हुए स्थूल शरीरको रखा और उससे कोई राजकुमार उत्पन्न हो जाय, इस विचारसे उस शरीरपर काष्ठ डालकर मन्त्र पढ़ते हुए उसे मथने लगे ॥ २३ ॥ २४ ॥ साथ-ही-साथ मन्त्रोच्चारणपूर्वक हवन भी होता रहा । यों अरणि-मन्थन करनेपर

उत्पन्न हो जाय, इस विचारसे उस शरीरपर काष्ठ डालकर मन्त्र पढ़ते हुए उसे मथने लगे ॥ २३ ॥ २४ ॥ साथ-ही-साथ मन्त्रोच्चारणपूर्वक हवन भी होता रहा। या अरणि-मन्थन करनेपर

एक सर्वलक्षणसम्पन्न बालककी उत्पत्ति हुई। वह ऐसा जान पड़ता था, मानो दूसरे निमि ही स्वयं प्रकट हो गये हों ॥ २५ ॥ वह बालक अरणिमन्थनसे प्रकट होनेके कारण मिथि और पिताके शरीरसे निकलनेके कारण जनक नामसे जगत्में विख्यात हुआ ॥ २६ ॥ निमिके विदेह होनेसे उनके कुलमें जितने नरेश हुए, वे सभी 'विदेह' कहलाने लगे ॥ २७ ॥ इस प्रकार निमिसे राजा जनककी उत्पत्ति कही गयी। उन्होंने गङ्गाके तटपर एक नगरी बसायी, जो बड़ी ही मनोहर थी ॥ २८ ॥ मिथिला नामसे वह नगर जगत्प्रसिद्ध था। वह नगर गोपुर, अट्टालिका, धन-धान्य तथा बड़ी-बड़ी बाजारोंसे परिपूर्ण था ॥ २९ ॥ इस वंशमें जो राजे उत्पन्न होते थे, उन सभीको 'जनक' की उपाधि मिलती थी। उन परम ज्ञानी राजाओं-को लोग 'विदेह' भी कहते थे ॥ ३० ॥ हे राजन्! निमिकी यह उत्तम कथा है, जो मैं वर्णन कर चुका। उन्हें शाप मिल जानेसे विदेह हो जाना पड़ा था। ये बातें विशदरूपसे बतला दीं ॥३१॥ राजा जनमेजयने कहा—भगवन्! निमिने वसिष्ठजीको शाप दे दिया था, उसका कारण अभी आप बता चुके हैं। परन्तु ब्रह्मपुत्र वसिष्ठजी ब्राह्मण थे और राजाने उन्हें अपना पुरोहित

जनकाज्जातस्तेनासौ जनकोऽभवत् ॥ २६ ॥ विदेहस्तु निमिर्जातो यस्मात्तस्मात्तदन्वये ॥ समुद्भूतास्तु राजानो विदेहा इति कीर्तिताः ॥ २७ ॥ एवं निमिसुतो राजा प्रथितो जनकोऽभवत् ॥ नगरी निर्मिता तेन गंगातीरे मनोहरा ॥ २८ ॥ मिथिलेति सुविख्याता गोपुराट्टालसंयुता ॥ धन-धान्यसमायुक्ता हट्टशालाविराजिता ॥ २९ ॥ वंशेऽस्मिन्येऽपि राजानस्ते सर्वे जनकास्तथा ॥ विख्याता ज्ञानिनः सर्वे विदेहाः परिकीर्तिताः ॥३०॥ एतत्ते कथितं राजन्निमेराख्यानमुत्तमम् ॥ शापाद्यस्य विदेहत्वं विस्तरादुदितं मया ॥३१॥ राजोवाच ॥ भगवन्भवता प्रोक्तं निमिशापस्य कारणम् ॥ श्रुत्वा संदेहमापन्नं मनो मेऽतीव चञ्चलम् ॥ ३२ ॥ वसिष्ठो ब्राह्मणश्रेष्ठो राज्ञश्चैव पुरोहितः ॥ पुत्रः पंकजयोनेस्तु राज्ञा शप्तः कथं मुनिः ॥ ३३ ॥ गुरुं च ब्राह्मणं ज्ञात्वा निमिना न कृता क्षमा ॥ यज्ञकर्म शुभं कृत्वा कथं क्रोधमुपागतः ॥ ३४ ॥ ज्ञात्वा धर्मस्य विज्ञानं कथमिक्ष्वाकुसंभवः ॥ क्रोधस्य वशमापन्नः शप्तवान्ब्राह्मणं गुरुम् ॥ ३५ ॥ व्यास उवाच ॥ क्षमाऽतिदुर्लभा राजन्प्राणिभिरजितात्मभिः ॥ क्षमावान्दुर्लभो लोके सुसमर्थो विशेषतः ॥ ३६ ॥ सर्वसंगपरित्यागी मुनिर्भवतु तापसः ॥ निद्राक्षुधोर्विजेता च योगाभ्यासे सुनिष्ठितः ॥ ३७ ॥ कामः क्रोधस्तथा लोभो ह्यहं-कारश्चतुर्थकः ॥ दुर्ज्ञेया देहमध्यस्था रिपवस्तेन सर्वथा ॥ ३८ ॥ न भूतपूर्वः संसारे न चैव वर्ततेऽधुना ॥ भविता न पुमान्कश्चिद्यो जयेत रिपू-

बना रक्खा था। फिर ऐसे मुनिको उन्होंने शाप क्यों दे दिया? वसिष्ठजीको ब्राह्मण और गुरु समझकर राजा निमि क्षमाभाव नहीं प्रकट कर सके। इतना बड़ा यज्ञ करनेपर भी उन्होंने क्रोध क्यों किया ॥३२–३४॥ इक्ष्वाकुकुलभूषण उन नरेशने धर्मके रहस्यको जानते हुए भी क्रोधवश वसिष्ठजीको, जो ब्राह्मण एवं गुरुके पदपर प्रतिष्ठित थे, शाप क्यों दे दिया? ॥३५॥ व्यासजी कहते हैं—हे राजन्! अजितेन्द्रिय व्यक्तिके लिए क्षमा बड़ी ही दुर्लभ वस्तु है। जगत्में क्षमाशील पुरुष मिल जायँ, यह कठिन बात है। सो भी अपकार करनेकी शक्ति रखते हुए क्षमावान् होना और कठिन है ॥ ३६ ॥ मुनिको चाहिए कि वह किसीमें आसक्ति न रखकर तपस्या करे। निद्रा और भूख-प्यासको जीतकर योगके अभ्यासमें तत्पर रहे ॥३७॥ काम, क्रोध, लोभ और अहंकार ये प्रबल शत्रु मानव शरीरमें सदा विद्यमान रहते हैं। मानव इन्हें समझ नहीं पाते ॥ ३८ ॥ संसारमें कभी कोई ऐसा नहीं हुआ और न इसी समय कोई ऐसा है कि जो इन

काम-क्रोध आदि शत्रुओंको जीत सका हो ॥३९॥ स्वर्गलोक, भूलोक, ब्रह्मलोक, वैकुण्ठधाम और कैलासमें भी कोई इन शत्रुओंको जीतनेवाला पुरुष नहीं है ॥४०॥ अनेक मुनि, ब्रह्माजीके पुत्र तथा अन्य बहुतसे तपस्वी हो चुके हैं। परन्तु वे भी तीनों गुणोंसे अछूते नहीं रह सके। फिर मर्त्यलोकके मानवोंकी क्या चर्चा करें ॥ ४१ ॥ महात्मा कपिल सांख्यशास्त्रके पूर्ण ज्ञाता माने जाते हैं। योगाभ्यासमें ही उनका सब समय व्यतीत होता था, किन्तु दैवका विधान टाल न सकनेके कारण उनके द्वारा भी सगरके पुत्र जलकर भस्म हो गये ॥ ४२ ॥ अतएव हे राजन्! कार्य-कारणस्वरूप अहंकारसे ही त्रिलोकीकी उत्पत्ति होती है तो फिर मानव उसके गुणोंसे कैसे मुक्त हो सकता है? ॥ ४३ ॥ ब्रह्मा, विष्णु और शिवके भी मनोभावोंमें अन्तर होता है। जब कि एकमात्र सतोगुणके मूर्तरूप उपर्युक्त देवताओंमें भी तीनों गुणोंका मेल दिखायी देता है, तब मनुष्योंके विषयमें क्या कहा जाय? ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ प्राणियोंमें कभी सत्त्व-गुणकी अधिकता होती है, कभी राजस गुणकी तथा कभी तमोगुणकी। कभी सभी गुण समान होकर रहते हैं ॥ ४६ ॥ वह परम प्रभु परमात्मा निर्गुण, निर्लेप, अविनाशी, अप्रमेय और

निमान् ॥ ३९ ॥ न स्वर्गे न च भूलोके ब्रह्मलोके हरेः पदे ॥ कैलासे नेदृशः कश्चिद्यो जयेत रिपूनिमान् ॥ ४० ॥ मुनयो ब्रह्मपुत्राश्च तथाऽन्ये तापसोत्तमाः ॥ तेऽपि गुणत्रयाविद्धाः किं पुनर्मानवा भुवि ॥ ४१ ॥ कपिलः सांख्यवेत्ता च योगाभ्यासरतः शुचिः ॥ तेनापि दैवयोगाद्धि प्रदग्धा सगरात्मजाः ॥ ४२ ॥ तस्माद्राजन्नहंकारात्संजातं भुवनत्रयम् ॥ कार्यकारणभावात्तु तद्वियुक्तं कथं भवेत् ॥ ४३ ॥ ब्रह्मा गुणत्रयाविष्टो विष्णुश्चै-वाथ शंकरः ॥ प्रभवंति शरीरेषु तेषां भावाः पृथक्पृथक् ॥ ४४ ॥ मानवानां च का वार्ता सत्त्वैकांतव्यवस्थितौ ॥ गुणानां संकरो राजन्सर्वत्र समवस्थितः ॥ ४५ ॥ कदाचित्सत्त्ववृद्धिः स्यात्कदाचिद्रजसः किल ॥ कदाचित्तमसो वृद्धिः समभावः कदाचन ॥ ४६ ॥ निर्गुणः परमात्माऽसौ निर्लेपः परमोऽव्ययः ॥ अलक्ष्यः सर्वसत्त्वानामप्रमेयः सनातनः ॥ ४७ ॥ तथैव परमा शक्तिर्निर्गुणा ब्रह्मसंस्थिता ॥ दुर्ज्ञेया चाल्पमतिभिः सर्वभूतव्यवस्थितिः ॥ ४८ ॥ परात्मनस्तथा शक्तेस्तयोरैक्यं सदैव हि ॥ अभिन्नं तद्वपुर्ज्ञात्वा मुच्यते सर्वदोषतः ॥ ४९ ॥ तज्ज्ञानादेव मोक्षः स्यादिति वेदांतडिंडिमः ॥ यो वेद स विमुक्तोऽस्मिन्संसारे त्रिगुणात्मके ॥ ५० ॥ ज्ञानं तु द्विविधं प्रोक्तं शाब्दिकं प्रथमं स्मृतम् ॥ वेदशास्त्रार्थविज्ञानात्तद्भवेद्बुद्धियोगतः ॥ ५१ ॥ विकल्पास्तत्र बहवो भवंति मतिकल्पिताः ॥ (कुतर्ककल्पिताः केचित्सुतर्ककल्पिताः

और सनातन स्वरूप है ॥ ४७ ॥ उनकी झाँकी पानेमें सम्पूर्ण प्राणियोंकी आँखें प्रायः असफल रहती हैं। उन्हींके समान उनके साथ विराजमान रहनेवाली परमा शक्ति भी हैं। चराचर जगत्की व्यवस्था करनेवाली उन देवीके मनपर तीनों गुणोंका प्रभाव नहीं पड़ सकता। अल्पबुद्धि मानवोंके लिए वे दुर्ज्ञेय हैं ॥४८॥ परब्रह्म परमात्मा और परा शक्ति—इनमें किंचिन्मात्र भेद नहीं है। ये सदासे एक स्वरूप हैं। यह जानकर मानव सम्पूर्ण दोषोंसे मुक्त हो जाता है। यह ज्ञान मुक्तिका अचूक साधन है। वेदान्त इसे मुक्तकण्ठसे कह रहा है। इस त्रिगुणात्मक संसारमें जो इस रहस्यको जान गया, उसके मुक्त होनेमें कोई सन्देह नहीं रहता ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ज्ञान भी दो प्रकारके बताये गये हैं। इनमें शाब्दिक ज्ञानको प्रथम माना गया है। वेद और शास्त्रके आधारपर बुद्धिपूर्वक पूर्ण विचार किया जाय तो यह ज्ञान सुलभ हो जाता है ॥५१॥ बुद्धिकी कल्पनाके अनुसार इस ज्ञानके भी बहुतसे अवान्तर भेद हो जाते हैं। (इनमेंसे

वेद और शास्त्रके आधारपर बुद्धिपूर्वक पूर्ण विचार किया जाय तो यह ज्ञान सुलभ हो जाता है ॥५१॥ बुद्धिकी कल्पनाके अनुसार इस ज्ञानके भी बहुतसे अवान्तर भेद हो जाते हैं। (इनमेंसे

कुछ ज्ञान कुतर्क तथा कुछ सुतर्कसे कल्पित होते हैं। विशेष तर्क करनेसे बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है और ज्ञान नष्ट हो जाता है।) हे राजन्! 'अनुभव' नामक दूसरे ज्ञानको लोग बड़ा दुर्लभ मानते हैं ॥ ५२ ॥ वह ज्ञान तब मिल सकता है, जब उसके जानकार पुरुषके साथ रहनेका सुअवसर प्राप्त हो। हे भारत! केवल शब्दज्ञानसे कार्य सिद्ध होना असम्भव है ॥५३॥ अतएव अनुभव-ज्ञानको दिव्य ज्ञान माना जाता है। शब्दज्ञानमें ऐसी योग्यता नहीं है कि उसके द्वारा अन्तःकरणका अन्धकार नष्ट हो सके॥५४॥ जैसे केवल दीपककी चर्चा करनेसे अन्धकारका अभाव असम्भव होता है। कर्म वह है, जिससे प्राणी बन्धनमें न पड़े और विद्या उसे कहते हैं, जो मुक्तिकी साधिका हो ॥५५॥ अन्य कर्म करनेसे केवल परिश्रम ही हाथ लगता है और विद्या केवल कारीगरीमात्र सिखा देती है—प्राणी उससे वास्तविक लाभ नहीं उठा पाते। सदाचार पालन करना, दूसरेके हितमें तत्पर रहना, मनमें क्रोध न आने देना, क्षमा, धैर्य एवं सन्तोष रखना—ये विद्याके उत्तम फल माने गये हैं। हे राजन्! विद्या, तपस्या अथवा योगाभ्यासके बिना कामादि शत्रुओंका संहार कदापि नहीं हो सकता। काम-क्रोधादिका उद्गमस्थान चित्त बतलाया गया

परे ॥ वितर्कैर्विभ्रमोत्पत्तिर्विभ्रमाद्बुद्धिभ्रंशता ॥ बुद्धिभ्रंशाज्ज्ञाननाशः प्राणिनां परिकीर्तितः ॥) अनुभवाख्यं द्वितीयं तु ज्ञानं तद्दुर्लभं नृप ॥ ५२ ॥ तत्तदा प्राप्यते तस्य वेत्तुः संगो यदा भवेत् ॥ शब्दज्ञानान्न कार्यस्य सिद्धिर्भवति भारत ॥ ५३ ॥ तस्मान्नानुभवज्ञानं संभवत्यतिमानुषम् ॥ अंतर्गतं तमश्छेत्तुं शाब्दबोधो हि न क्षमः ॥ ५४ ॥ यथा न नश्यति तमः कृतया दीपवार्तया ॥ तत्कर्म यन्न बंधाय सा विद्या या विमुक्तये ॥ ५५ ॥ आयासायापरं कर्म विद्याऽन्या शिल्पनैपुणम् ॥ शीलं परहितत्वं च कोपभावः क्षमा धृतिः ॥ ५६ ॥ संतोषश्चेति विद्यायाः परिपाकोज्ज्वलं फलम् ॥ विद्यया तपसा वाऽपि योगाभ्यासेन भूपते ॥ ५७ ॥ विना कामादिशत्रूणां नैव नाशः कदाचन ॥ (मनस्तु चंचलं राजन्स्वभावादतिदुर्ग्रहम् ॥ तद्वशः सर्वथा प्राणी त्रिविधो भुवनत्रये ॥) कामक्रोधादयो भावाश्चित्तजाः परिकीर्तिताः ॥ ५८ ॥ ते तदा न भवंत्येव यदा वै निर्जितं मनः ॥ तस्मात्तु निमिना राजन्न क्षमा विहिता मुनौ ॥ ५९ ॥ यथा ययातिना पूर्वं कृता शुक्रे कृतागसि ॥ भृगुपुत्रेण शप्तोऽपि ययातिर्नृपसत्तमः ॥ ६० ॥ न शशाप मुनिं क्रोधाज्जरां राजा गृहीतवान् ॥ कश्चित्सौम्यो भवेत्कश्चित्क्रूरो भवति पार्थिवः ॥ ६१ ॥ स्वभावभेदान्नृपते कस्य दोषोऽत्र कल्प्यते ॥ हैहया भार्गवान्पूर्वं धनलोभात्पुरोहितान् ॥ ६२ ॥ ब्राह्मणान्मूलतः सर्वांश्चिच्छिदुः

है ॥ ५६–५८ ॥ (हे राजन्! मन चञ्चल रहनेके कारण स्वभावतः दुर्ग्रह होता है। त्रिलोकीके सभी प्राणी मनके ही वशमें रहते हैं।) जब मन वशमें रहता है, तब ये सब विकार उत्पन्न नहीं हो पाते। हे राजन्! यही कारण है कि राजा निमि मुनिवर वसिष्ठको क्षमा नहीं कर सके। जिस प्रकार ययातिने अपराध करनेपर भी शुक्राचार्यको शाप नहीं दिया, वैसी स्थिति निमिकी नहीं थी ॥ ५९ ॥ पूर्व समयकी बात है—शुक्राचार्यने महाराज ययातिको शाप दे दिया था कि 'तुमपर अभी बुढ़ापा छा जाय'। राजाने कुछ भी न कहकर उनके शापजनित बुढ़ापेको स्वीकार कर लिया। ठीक ही है—कुछ राजे शान्त स्वभावके होते हैं और कुछका हृदय बड़ा क्रूर होता है ॥ ६० ॥ ६१ ॥ हे राजन्! सभीका स्वभाव एक सरीखा नहीं होता। अतः किसको दोषी ठहराया जाय। प्राचीन समयकी बात है—बहुतसे भृगुवंशी ब्राह्मण हैहय-वंशज क्षत्रियोंके पुरोहित थे। क्रोधमें आकर उन क्षत्रियोंने कुछ भी नहीं सोचा और धनके लोभसे

सब ब्राह्मणोंका सत्यानाश ही कर डाला। ब्रह्महत्या करनेसे महान् पाप होगा, इसपर भी उन्होंने कुछ ध्यान नहीं दिया ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृत 'पीताम्बरा' भाषाटीकायां पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

(हैहय क्षत्रियों द्वारा भृगुवंशी ब्राह्मणोंका संहार) राजा जनमेजयने पूछा—हे पितामह ! जिन्होंने ब्राह्मणहत्याकी बिल्कुल परवा न करके भृगुवंशी ब्राह्मणोंका वध कर दिया, वे किस कुलमें उत्पन्न हुए थे ? उन क्षत्रियोंमें ऐसा वैरभाव क्यों उत्पन्न हो गया था ? आदरणीय व्यक्ति अकारण क्रोध कैसे कर सकते हैं ? ॥ १ ॥ २ ॥ अतएव इस वैरमें कोई महान् कारण रहा होगा। अन्यथा पापसे डरनेवाले वे शूरवीर क्षत्रिय निरपराध एवं पूज्य ब्राह्मणोंकी हत्या करनेमें क्यों तत्पर होते? अतः उक्त घटनामें क्या कारण है? सो बतानेकी कृपा कीजिए ॥३–५॥ सूतजी कहते हैं—इस प्रकार राजा जनमेजयके पूछनेपर सत्यवतीनन्दन व्यास परम प्रसन्न होकर कहने लगे ॥६॥ व्यासजी बोले—हे राजन् ! क्षत्रियोंसे सम्बन्ध रखनेवाली यह

क्रोधमूर्च्छिताः ॥ पातकं पृष्ठतः कृत्वा ब्रह्महत्यासमुद्भवम् ॥ ६३ ॥ इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

॥ जनमेजय उवाच ॥ कुले कस्य समुत्पन्नाः क्षत्रिया हैहयाश्च ते ॥ ब्रह्महत्यामनादृत्य निजघ्नुर्भार्गवांश्च ये ॥ १ ॥ वैरस्य कारणं तेषां किं मे ब्रूहि पितामह ॥ निमित्तेन विना क्रोधं कथं कुर्वंति सत्तमाः ॥ २ ॥ वैरं पुरोहितैः सार्धं कस्मात्तेषामजायत ॥ नाल्पहेतोर्हि तद्वैरं क्षत्रियाणां भविष्यति ॥ ३ ॥ अन्यथा ब्राह्मणान्पूज्यान्कथं जघ्नुरनागसः ॥ बाहुजा बलवन्तोऽपि पापभीताः कथं न ते ॥ ४ ॥ स्वल्पेऽपराधे को हन्याद्बाडवान्क्षत्रियर्षभः ॥ संदेहो मे मुनिश्रेष्ठ कारणं वक्तुमर्हसि ॥५॥ सूत उवाच ॥ इति पृष्टस्तदा तेन राज्ञा सत्यवतीसुतः ॥ उवाच परमप्रीतः कथां संस्मृत्य चेतसा ॥ ६ ॥ व्यास उवाच ॥ शृणु पारीक्षिते वार्तां क्षत्रियाणां पुरातनीम् ॥ आश्चर्यकारिणीं सम्यग्विदितां च पुरा मया ॥ ७ ॥ कार्तवीर्येति नाम्नाऽभूद्धैहयः पृथिवीपतिः ॥ सहस्रबाहुर्बलवानर्जुनो धर्मतत्परः ॥ ८ ॥ दत्तात्रेयस्य शिष्योऽभूदवतारो हरेरिव ॥ सिद्धः सर्वार्थदः शाक्तो भृगूणां याज्य एव सः ॥ ९ ॥ यज्वा परमधर्मिष्ठः सदादानपरायणः ॥ ददौ वित्तं भृगुभ्योऽसौ कृत्वा यज्ञाननेकशः ॥ १० ॥ धनिनस्ते द्विजा जाता भृगवो नृपदानतः ॥ हयरत्नसमृद्ध्याढ्याः संजाताः प्रथिता भुवि ॥ ११ ॥ स्वर्याते नृपशार्दूले कार्तवीर्यार्जुने पुनः ॥ हैहया निर्धना

परम प्राचीन एवं आश्चर्यजनक कथा सम्यक् प्रकारसे मुझे ज्ञात है। उसे कहता हूँ, सुनो ॥ ७ ॥ हैहयवंशमें एक राजा हो चुके हैं। उनका नाम 'कार्तवीर्य' था। धर्ममें सदा तत्पर रहनेवाले उन बलशाली राजाके हजार भुजाएँ थीं ॥ ८ ॥ उन्होंने दत्तात्रेयसे मन्त्रकी दीक्षा ली थी। उस समय दत्तात्रेय विष्णुके अवतार माने जाते थे। भगवती जगदम्बा उन नरेशकी इष्ट देवता थीं। वे परम सिद्ध, सब कुछ देनेमें समर्थ एवं भृगुवंशी ब्राह्मणोंके यजमान थे ॥ ९ ॥ उन परम धार्मिक नरेशका अधिकतर समय दान करनेमें ही व्यतीत होता था। उन्होंने बहुत-से यज्ञ करके अपनी प्रचुर सम्पत्ति ब्राह्मणोंमें बाँट दी थी। उस समय राजा कार्तवीर्यके दानसे वे भृगुवंशी ब्राह्मण बड़े धनी कहलाने लगे। घोड़े और रत्न आदि प्रचुर सम्पत्तिसे जगत्में उनकी अपार ख्याति हो गयी थी ॥१०॥११॥ हे राजन् ! सहस्रार्जुनने बहुत समयतक पृथिवीपर राज्य किया। उनके स्वर्गवासी होनेके पश्चात् हैहयवंशी क्षत्रिय बिलकुल निर्धन हो

जगत्में उनकी अपार ख्याति हो गयी थी ॥१०॥११॥ हे राजन् ! सहस्रार्जुनने बहुत समयतक पृथिवीपर राज्य किया । उनके स्वर्गवासी होनेके पश्चात् हैहयवंशी क्षत्रिय बिलकुल निर्धन हो

गये ॥१२॥ एक समयकी बात है, उन क्षत्रियोंको धनकी विशेष आवश्यकता पड़ी। तब हे नरेन्द्र ! धन माँगनेके विचारसे वे उन भृगुवंशी ब्राह्मणोंके पास गये ॥१३॥ नम्रतापूर्वक उन्होंने ब्राह्मणोंसे बहुत-से धनकी याचना की, किन्तु उन लोभी ब्राह्मणोंने कुछ भी नहीं दिया । वे बारबार यही कहते रहे कि 'हमारे पास धन नहीं है' ॥१४॥ ये हैहयवंशी क्षत्रिय हमें अवश्य आघात पहुँचायेंगे—यह समझकर कितने ही ब्राह्मणोंने तो अपनी प्रचुर सम्पत्ति जमीनमें गाड़ दी और बहुतोंने दूसरे ब्राह्मणोंके यहाँ छिपाकर रख दी ॥ १५ ॥ इस तरह लोभके कारण उन ब्राह्मणोंका सद्भाव नष्ट हो चुका था । अतएव भयवश अपना-अपना धन स्थानान्तरित करके वे लोभी भृगुवंशी ब्राह्मण आश्रम छोड़-छोड़कर अन्यत्र चले गये ॥ १६ ॥ अपने यजमानोंको दुखी देखकर भी वे धन देनेके लिए प्रस्तुत नहीं हुए और भागकर गिरिकन्दराओंमें रहने लगे ॥ १७ ॥ हे तात ! तदनन्तर बहुतसे हैहयवंशी प्रधान क्षत्रिय, जो धनके अभावसे महान् कष्ट पा रहे थे, द्रव्यप्राप्तिके लिये भृगुवंशी ब्राह्मणोंके आश्रमोंपर पहुँचे ॥ १८ ॥ वहाँ उन्होंने देखा कि ब्राह्मण आश्रम छोड़कर चले गये थे । तब उन क्षत्रियोंने द्रव्य पानेके लिये वहाँकी

जाताः कालेन महता नृप ॥१२॥ धनकार्यं समुत्पन्नं हैहयानां कदाचन ॥ याचिष्णवोऽभिजग्मुस्तान्भृगूँस्ते हैहया नृप ॥ १३ ॥ विनयं क्षत्रियाः कृत्वाऽप्ययाचंत धनं बहु ॥ न ददुस्तेऽतिलोभार्ता नास्ति नास्तीतिवादिनः ॥१४॥ भूमौ च निदधुः केचिद्भृगवो धनमुत्तमम् ॥ ददुः केचिद्द्विजातिभ्यो ज्ञात्वा क्षत्रियतो भयम् ॥१५॥ कृत्वा स्थानांतरे द्रव्यं ब्राह्मणा भयविह्वलाः ॥ त्यक्त्वाऽऽश्रमान्ययुः सर्वे भृगवस्तृष्णयाऽन्विताः ॥१६॥ याज्यांश्च दुःखितान्दृष्ट्वा न ददुर्लोभमोहिताः ॥ पलायित्वा गताः सर्वे गिरिदुर्गानुपाश्रिताः ॥१७॥ ततस्ते हैहयास्तात दुःखिताः कार्यगौरवात् ॥ भृगूणामाश्रमाञ्जग्मुर्द्रव्यार्थं क्षत्रियर्षभाः ॥१८॥ भृगूँस्तु निर्गतान्वीक्ष्य शून्यांस्त्यक्त्वा गृहानथ ॥ चखनुर्भूतलं तत्र द्रव्यार्थं हैहया भृशम् ॥१९॥ खनताऽधिगतं वित्तं केनचिद्भृगुवेश्मनि ॥ ददृशुः क्षत्रियाः सर्वे तद्वित्तं श्रमकर्शिताः ॥ २० ॥ यत्र यत्र समुत्पन्नं भूरि द्रव्यं महातलात् ॥ तदा ते पार्श्वभागस्थब्राह्मणानां गृहाण्यपि ॥ २१ ॥ निर्भिद्य हैहया द्रव्यं ददृशुर्धनलिप्सया ॥ ब्राह्मणाश्चक्रुशुः सर्वे भीताश्च शरणं गताः ॥ २२ ॥ अतिचिन्वत्सु विप्राणां भवनान्निःसृतं बहु ॥ निजघ्नुस्ताञ्छरैः कोपाद्वाडवाञ्छरणागतान् ॥ २३ ॥ ययुस्ते गिरिदुर्गांश्च यत्र वै भृगवः स्थिताः ॥ आगर्भादनुकृंतंतश्चेरुश्चैव महीमिमाम् ॥ २४ ॥ प्राप्तान् प्राप्तान्भृगून्सर्वान्निजघ्नुर्निशितैः शरैः ॥ आबालवृद्धानपरानवमन्य च पातकम् ॥ २५ ॥

जमीन खोदना आरम्भ कर दिया ॥१९॥ इसी बीच किसी एक व्यक्तिकी दृष्टि घरमें गाड़े हुए धनपर पड़ गयी । अब सबने धन देख लिया । तबसे जहाँ भी पता चलता, वहीं जमीन खोदकर वे सारा धन ले लेते । धनके लोभसे उन क्षत्रियोंने पास-पड़ोसके ब्राह्मणोंके घर भी खोद डाले और वहाँ भी उन्हें प्रचुर सम्पत्ति मिली । तब बेचारे ब्राह्मण रोने-गिड़गिड़ाने लगे । अन्तमें उन्होंने क्षत्रियोंकी अधीनता स्वीकार कर ली । क्योंकि उनके घरसे प्रायः सभी धन निकल चुका था ॥२०–२२॥ यद्यपि वे ब्राह्मण शरणमें चले गये थे, फिर भी क्रोधी क्षत्रियों द्वारा उनपर मार पड़ती रही और क्षत्रियगण बराबर उनपर बाण बरसाते रहे ॥२३॥ तब भृगुवंशी ब्राह्मण भागकर पर्वतोंकी कन्दराओंमें चले गये । किन्तु हैहयवंशी क्षत्रिय वहाँ भी पहुँच गये और भृगुकुलका संहार करते हुए वे इस भूमण्डलपर घूमने लगे ॥२४॥ जहाँ कहीं भी भृगुके वंशज विप्र मिलते थे, उन्हें तीखे तीरोंसे मारकर मृत्युके मुखमें डाल देना उनका प्रधान कर्तव्य बन गया था ।

वे हत्यारे क्षत्रिय पाप करनेपर ही तुले हुए थे। उनके घृणित कर्मसे जिन स्त्रियोंका गर्भ नष्ट हो जाता था, वे बेचारी अत्यन्त दुःखिनी होकर कुररी पक्षीकी भाँति विलाप करने लगती थीं ॥ २५–२७ ॥ तब तीर्थवासी अन्य मुनियोंने उन अभिमानी हैहयोंसे कहा—'हे क्षत्रियो ! तुम ब्राह्मणोंपर इतना भयंकर क्रोध मत करो ॥ २८ ॥ यह बड़ा ही अनुचित कर्म है। तुम्हें ऐसा निन्द्य कर्म नहीं करना चाहिये। तुम भृगुकुलकी स्त्रियोंके गर्भका भी उच्छेद करनेको तत्पर हो गये हो ॥ २९ ॥ हे क्षत्रियो ! जब पुण्य अथवा पाप उग्र और असीम हो उठता है, तब उसका फल इस जन्ममें ही सामने आ जाता है। अतः कल्याणकामी पुरुषको ऐसा निन्दित कर्म नहीं करना चाहिये ॥ ३० ॥ तब क्रोधमें भरे वे हैहयसंज्ञक क्षत्रिय उन परम दयालु मुनियोंसे कहने लगे—'आप सब लोग साधु पुरुष हैं। ये पापकर्म क्यों किये जाते हैं, इसका रहस्य आप नहीं जानते ॥ ३१ ॥ हमारे पूर्वज बड़े महात्मा पुरुष थे। कूटनीतिके विशेषज्ञ इन ब्राह्मणोंने उन्हें धोखेमें डालकर उनका सारा धन इस प्रकार छीन लिया, जैसे किसी पथिककी सम्पत्ति कोई बटमार छीन ले ॥३२॥ हमने प्रार्थनापूर्वक इनसे

एवमुत्पाट्यमानेषु भार्गवेषु यतस्ततः ॥ हन्युर्गर्भांश्च नारीणां गृहीत्वा हैहया भृशम् ॥ २६ ॥ रुरुदुस्ताः स्त्रियः कामं कुररय इव दुःखिताः ॥ गर्भाश्च कृंतिता यासां क्षत्रियैः पापनिश्चयैः ॥ २७ ॥ अन्येऽप्याहुश्च तान्दृप्तान्मुनयस्तीर्थवासिनः ॥ मुंचंतु क्षत्रियाः क्रोधं ब्राह्मणेषु भयावहम् ॥ २८ ॥ अयुक्तमेतदारब्धं भवद्भिः कर्म गर्हितम् ॥ यद्गर्भान्भृगुपत्नीनां निहन्युः क्षत्रियर्षभाः ॥ २९ ॥ अत्युग्रपुण्यपापानामिहैव फलमाप्नुयात् ॥ तस्माज्जुगुप्सितं कर्म त्यक्तव्यं भूतिमिच्छता ॥ ३० ॥ तानाहुर्हैहयाः क्रुद्धा मुनीनथ दयापरान् ॥ भवंतः साधवः सर्वे नार्थज्ञाः पापकर्मणाम् ॥ ३१ ॥ एभिर्हृतं धनं सर्वं पूर्वजानां महात्मनाम् ॥ वंचयित्वा छलाभिज्ञैर्मार्गे पाटच्चरैरिव ॥ ३२ ॥ एते प्रतारका दंभास्तादृशा वकवृत्तयः ॥ उत्पन्ने च महाकार्ये प्रार्थिता विनयेन ते ॥ ३३ ॥ न ददुः प्रार्थितं विप्राः पादवृद्ध्याऽपि याचिताः ॥ नास्तीतिवादिनः स्तब्धा दुःखितान् वीक्ष्य याजकान् ॥३४॥ धनं प्राप्तं कार्तवीर्याद्रक्षितं केन हेतुना ॥ न कृताः क्रतवः किं तैर्दानं चार्थिषु भूरिशः ॥ ३५ ॥ न संचितव्यं विप्रैस्तु धनं क्वापि कदाचन ॥ यष्टव्यं विधिवद्देयं भोक्तव्यं च यथासुखम् ॥ ३६ ॥ द्रव्ये चौरभयं प्रोक्तं तथा राजभयं द्विजाः ॥ वह्नेर्भयं महाघोरं तथा धूर्तभयं महत् ॥ ३७ ॥ येन केनाप्यु-

धन माँगा, किन्तु इन्होंने देना स्वीकार नहीं किया। हम इनके यजमान हैं। हम महान् कष्ट भोग रहे थे। यह बात इनसे छिपी नहीं थी। हमने सवाई सूदपर धन माँगा, किन्तु उनके मुखसे बारबार यही निकलता रहा कि 'हमारे पास कुछ भी नहीं है।' धन पास रहनेपर भी हमारी प्रार्थनाको इन्होंने बिल्कुल ठुकरा दिया ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ महाराज कार्तवीर्यने जब इन्हें अपनी सम्पत्ति सौंप दी, तब किस प्रयोजनसे ये उस धनकी इतनी सँभाल करते रहे। न इन्होंने कोई यज्ञ किया और न माँगनेपर याचक ही इनसे कुछ पा सके ॥ ३५ ॥ ब्राह्मणोंका तो कर्तव्य यह है कि कभी किसी प्रकार भी धनका संचय न करें। विधिपूर्वक यज्ञ करें, दान दें तथा सुख-सुविधाके लिए खाने-पीनेमें व्यय करें ॥ ३६ ॥ हे विप्रो ! ऐसा बताया गया है कि धन रहनेपर राजा, चोर, अग्नि और धूर्तों द्वारा महान् भय उपस्थित हुआ करता है ॥ ३७ ॥ जिस किसी भी प्रकारसे धन अपने रक्षकको त्याग ही देना चाहता है। अथवा

गया है कि धन रहनेपर राजा, चोर, अग्नि और धूर्तों द्वारा महान् भय उपस्थित हुआ करता है ॥ ३७ ॥ जिस किसी भी प्रकारसे धन अपने रक्षकको त्याग ही देना चाहता है। अथवा

धनका संग्रह करनेवाला व्यक्ति स्वयं मरकर उससे अलग हो जाता और कठिन दुर्गति भोगता है ॥३८॥ हमने बड़ी विनती करके सवाई सूदपर धन माँगा, फिर भी लोभवश सन्देहमें पड़कर उन पुरोहितोंने हमें धन नहीं दिया ॥३९॥ दान, भोग और नाश—इस प्रकार धनकी तीन गतियाँ होती हैं। पुण्यात्मा पुरुषोंका धन दान और भोगमें खर्च होता है तथा पापी यों ही अपनी सम्पत्तिसे वञ्चित हो जाते हैं ॥ ४० ॥ जो कृपण मानव न तो धन दान करता, न खाने-पीनेमें खर्च करता और केवल संचय करता रहता है, उसे महान् क्लेश भोगने पड़ते हैं। राजाको चाहिये कि ऐसे संचयीको भलीभाँति दण्ड दे ॥४१॥ इसीलिये गुरु कहलानेवाले इन अधम ब्राह्मणोंको मारनेके लिए हम प्रस्तुत हुए हैं। ये बड़े ही धूर्त हैं। आप लोग महात्मा पुरुष हैं। इस विषयमें क्रोध न करें ॥४२॥ व्यासजी कहते हैं—इस प्रकार सहैतुक वचन कहकर मुनियोंको आश्वासन देनेके बाद वे फिर भृगुपत्नियोंको खोजते हुए घूमने लगे ॥४३॥ उधर वे भयभीत भृगुपत्नियाँ हिमवान् पर्वतकी कन्दराओंमें जा छिपीं। भागते-भागते वे बहुत दुर्बल हो गयी थीं और भयसे काँपती हुई बुरी तरह रो रही थीं ॥४४॥ धनके लोभी उन क्षत्रियोंने ब्राह्मणोंको

पायेन धनं त्यजति रक्षकम् ॥ अथवाऽसौ मृतौ याति द्रव्यं त्यक्त्वा ह्यसद्गतिम् ॥३८॥ पादवृद्ध्या तथाऽस्माभिः प्रार्थितं विनयान्वितैः ॥ तथापि लोभसंदिग्धैर्न दत्तं नः पुरोहितैः ॥ ३९ ॥ दानं भोगस्तथा नाशो धनस्य गतिरीदृशी ॥ दानभोगौ कृतीनां च नाशः पापात्मनां किल ॥ ४० ॥ न दाता न च यो भोक्ता कृपणो गुप्तितत्परः ॥ राज्ञाऽसौ सर्वथा दंड्यो वंचको दुःखभाङ्नरः ॥४१॥ तस्माद्वयं गुरूनेतान्वंचकान्ब्राह्मणाधमान् ॥ हंतुं समुद्यताः सर्वे न क्रोद्धव्यं महात्मभिः ॥४२॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्त्वा हेतुमद्वाक्यं तानाश्वास्य मुनीनथ ॥ विचेरुश्च विचिन्वाना भृगुदारानेकशः ॥ ४३ ॥ भयार्ता भृगुपत्न्यस्तु हिमवंतं धराधरम् ॥ प्रपेदिरे रुदंत्यश्च वेपमानाः कृशा भृशम् ॥४४॥ एवं ते हैहयैर्विप्राः पीडिता धनकामुकैः ॥ निहताश्च यथाकामं संरब्धैः पापकर्मभिः ॥ ४५ ॥ लोभ एवं मनुष्याणां देहसंस्थो महारिपुः ॥ सर्वदुःखाकरः प्रोक्तो दुःखदः प्राणनाशकः ॥ ४६ ॥ सर्वपापस्य मूलं हि सर्वदा तृष्णयान्वितः ॥ विरोधकृत्त्रिवर्णानां सर्वार्तेः कारणं तथा ॥ ४७ ॥ लोभात्त्यजंति धर्मं वै कुलधर्मं तथैव हि ॥ मातरं भ्रातरं हंति पितरं बांधवं तथा ॥ ४८ ॥ गुरुं मित्रं तथा भार्यां पुत्रं च भगिनीं तथा ॥ लोभाविष्टो न किं कुर्यादकृत्यं पापमोहितः ॥ ४९ ॥ क्रोधात्कामादहंकाराल्लोभ एव महारिपुः ॥ प्राणांस्त्यजति लोभेन किं पुनः स्यादनावृतम् ॥ ५० ॥ पूर्वजास्ते महाराज धर्मज्ञाः

बहुत सताया। मनमाना पापकर्म करनेवाले वे दुष्ट क्षत्रिय ब्राह्मणोंका संहार करनेमें सफल हो गये ॥४५॥ मनुष्योंके अन्तःकरणमें रहनेवाला लोभ ही महान् शत्रु है। इसे सम्पूर्ण दुःखोंकी खानि कहा गया है। यह दुःखदायी लोभ प्राणोंतकका वियोग करा देता है ॥४६॥ सम्पूर्ण पापोंकी जड़ यह लोभ ही है। लोभमें पड़कर मानव तीनों वर्णोंका निरन्तर शत्रु बना रहता है। इसीके कारण उसे सम्पूर्ण दुःख भोगने पड़ते हैं ॥४७॥ लोभसे मानव अपने सदाचार और कुलधर्मका त्याग कर देते हैं। माता-पिता और भाई-बन्धुओंको भी मार डालते हैं ॥४८॥ गुरु, मित्र, भार्या और बहनके प्राण हरनेमें भी लोभी मानव नहीं हिचकते। लोभमें भरे हुए मानवकी बुद्धि नष्ट हो जाती है। वह पापी व्यक्ति कौनसा ऐसा दुष्कर्म है, जो नहीं कर सकता ॥ ४९ ॥ काम, क्रोध और अहंकार—ये तीनों शत्रु हैं। किन्तु लोभ इनसे भी बढ़कर शत्रु है। इसके वशीभूत होकर मानव प्राणतक खो देता है। फिर इसकी विशेषता कहाँ-

तक बतलायी जाय ॥ ५० ॥ हे राजा जनमेजय ! आपके पूर्वज बड़े धर्मज्ञ और सत्पथगामी थे । किन्तु वे कौरव और पाण्डव लोभके ही कारण मारे गये ॥५१॥ जहाँ भीष्म, द्रोण, कृप, बाह्लिक, भीमसेन, युधिष्ठिर, अर्जुन और श्रीकृष्ण थे ॥ ५२ ॥ तथापि उन लोभियोंने परस्पर उग्र युद्ध करके सारे कुटुम्बको नष्ट कर डाला ॥ ५३ ॥ द्रोणाचार्य, भीष्म, पाण्डवके पुत्र, भाई, पिता, पुत्र सब रणमें मारे गये ॥ ५४ ॥ लोभी मनुष्य क्या नहीं कर सकता । तभी तो खोटी बुद्धिवाले हैहयवंशी क्षत्रियोंने समस्त भार्गव ब्राह्मणोंका संहार कर डाला ॥ ५५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते षष्ठस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

(एक ब्राह्मणकी जाँघसे भार्गव विप्रकी उत्पत्ति) राजा जनमेजयने पूछा—हे मुने ! फिर भार्गववंशकी स्त्रियोंका दुःखमय समुद्रसे कैसे उद्धार हुआ ? उन ब्राह्मणोंकी वंशपरम्परा जगत्में

सत्पथे स्थिताः ॥ पांडवाः कौरवाश्चैव लोभेन निधनं गताः ॥ ५१ ॥ यत्र भीष्मश्च द्रोणश्च कृपः कर्णश्च बाह्लिकः ॥ भीमसेनो धर्मपुत्रस्तथैवार्जुनकेशवौ ॥ ५२ ॥ तथापि युद्धमत्युग्रं कृतं तैश्च परस्परम् ॥ कुटुम्बकदनं भूरि कृतं लोभातुरैरिह ॥५३॥ हतो द्रोणो हतो भीष्मस्तथैव पांडवात्मजाः ॥ भ्रातरः पितरः पुत्राः सर्वे वै निहता रणे ॥ ५४ ॥ तस्माल्लोभाभिभूतस्तु किं न कुर्यान्नरः किल ॥ हैहयैर्निहताः सर्वे भृगवः पापबुद्धिभिः ॥ ५५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

॥ जनमेजय उवाच ॥ कथं ताश्च स्त्रियः सर्वा भृगूणां दुःखसागरात् ॥ मुक्तो वंशः पुनस्तेषां ब्राह्मणानां स्थिरोऽभवत् ॥ १ ॥ हैहयैः किं कृतं कार्यं हत्वा तान्ब्राह्मणानपि ॥ क्षत्रियैर्लोभसंयुक्तैः पापाचारैर्वदस्व तत् ॥२॥ न तृप्तिरस्ति मे ब्रह्मन्पिबतस्ते कथामृतम् ॥ पावनं सुखदं नृणां परलोके फलप्रदम् ॥ ३ ॥ व्यास उवाच ॥ शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि कथां पापप्रणाशिनीम् ॥ यथा स्त्रियस्तु ता मुक्ता दुःखात्तस्माद्दुरत्ययात् ॥४॥ भृगुपत्न्यो यदा राजन्हिमवंतं गिरिं गताः ॥ भयत्रस्ता विभग्नाशा हैहयैः पीडिता भृशम् ॥ ५ ॥ गौरीं तत्र सुसंस्थाप्य मृन्मयीं सरितस्तटे ॥ उपोषणपराश्चक्रुर्निश्चयं मरणं प्रति ॥ ६ ॥ स्वप्ने गत्वा तदा देवी प्राह ताः प्रमदोत्तमाः ॥ युष्मासु मध्ये कस्याश्चिद्भविता चोरुजः पुमान् ॥ ७ ॥

कैसे कायम रही ? ॥ १ ॥ लोभमें रचे-पचे वे हैहयवंशी बड़े ही दुराचारी थे । ब्राह्मणोंको मारनेके पश्चात् उन्होंने कौनसा कार्य किया ? उसे बतानेकी कृपा करें ॥२॥ हे ब्रह्मन् ! आपके द्वारा कथित कथामृतको पीते हुए हमें तृप्ति नहीं हो रही है । क्योंकि वह पवित्र, सुखदायी और परलोकमें फलप्रद है ॥ ३ ॥ अब अन्य पापनाशिनी कथा कहता हूँ, सुनिए कि वे स्त्रियाँ उस भीषण दुःखसे कैसे छूटीं ॥ ४ ॥ व्यासजी कहते हैं—हे राजन् ! सुनो, जब हैहयवंशी क्षत्रिय भार्गववंशकी स्त्रियोंको अपार कष्ट पहुँचाने लगे, तब वे भयके कारण अत्यन्त घबरा और जीवनसे निराश होकर हिमालय पर्वतपर चली गयीं ॥५॥ वहीं नदीके तटपर उन्होंने मिट्टीकी गौरी बनाकर स्थापित की और निराहार रहकर उनकी उपासना करने लगीं । उन्हें अपने मरणमें अब बिल्कुल सन्देह नहीं रहा ॥ ६ ॥ उस समय उन श्रेष्ठ स्त्रियोंके पास स्वप्नमें देवी पधारीं और उनसे बोलीं—तुम लोगोंमें किसी स्त्रीकी जाँघसे एक पुत्र उत्पन्न होगा । मेरा

मरणमें अब बिल्कुल सन्देह नहीं रहा ॥ ६ ॥ उस समय उन श्रेष्ठ स्त्रियोंके पास स्वप्नमें देवी पधारीं और उनसे बोलीं—तुम लोगोंमें किसी स्त्रीकी जाँघसे एक पुत्र उत्पन्न होगा। मेरा

अंशभूत वह पुत्र तुम लोगोंका कार्य सम्पन्न करेगा।' यों कहकर भगवती जगदम्बा अन्तर्धान हो गयीं ॥ ७ ॥ ८ ॥ नींद टूटनेपर उन सभी स्त्रियोंके मनमें बड़ा हर्ष हुआ। उनमेंसे किसी एक चतुर स्त्रीने अपनी जाँघमें गर्भ धारण किया। उसका हृदय भयसे त्रस्त था। वंशवृद्धिके लिये वह वहाँसे भाग निकली और क्षत्रियोंने उसे भागते देख लिया ॥ ९ ॥ १० ॥ जब उन्होंने देखा कि तेजसे उस ब्राह्मणीका मुखमण्डल चमक रहा है, तब वे उसके पीछे दौड़ पड़े और कहने लगे—बहुत शीघ्र इस नारीको पकड़ो और मार डालो। क्योंकि गर्भ धारण करके यह यहाँसे भागी जा रही है' ॥११॥ इस प्रकार कहते हुए हाथमें तलवार लेकर वे उस स्त्रीके निकट पहुँच गये। भयसे अत्यन्त घबरायी हुई वह स्त्री सामने आये हुए उन क्षत्रियोंको देखकर रोने लगी ॥१२॥ गर्भमें रहनेवाले बालकने सुना— माता रो रही है। इसकी अवस्था बड़ी ही दयनीय है। कोई भी इसका रक्षक नहीं है। यह बिल्कुल निराधार है। क्षत्रियोंसे संतप्त होनेके कारण इसके नेत्र जलकी धारा बहा रहे हैं। जैसे कोई असहाय और गर्भवती हिरनी सिंहके पंजेमें पड़ गयी हो। यों आँखोंमें आँसूभरके काँपती हुई माताको देखकर गर्भस्थित बालकके

मदंशशक्तिसंभिन्नः स वः कार्यं विधास्यति ॥ इत्यादिश्य पराम्बा सा पश्चादंतर्हिताऽभवत् ॥ ८ ॥ जागृतास्तु ततः सर्वा मुदमापुर्वरांगनाः ॥ काचित्तासां भयोद्विग्ना कामिनी चतुरा भृशम् ॥ ९ ॥ दधार चोरुणैकेन गर्भं सा कुलवृद्धये ॥ पलायनपरा दृष्टा क्षत्रियैर्ब्राह्मणी यदा ॥ १० ॥ विह्वला तेजसा युक्ता तदा ते दुद्रुवुर्भृशम् ॥ गृह्यतां वध्यतां नारी सगर्भा याति सत्वरा ॥ ११ ॥ इति ब्रुवंतः संप्राप्ताः कामिनीं खड्गपाणयः ॥ सा भयार्ता तु तान्दृष्ट्वा रुरोद समुपागतान् ॥१२॥ गर्भस्य रक्षणार्थं सा चुक्रोशातिभयातुरा ॥ रुदती मातरं श्रुत्वा दीनां प्राणविवर्जिताम् ॥१३॥ निराधारां क्रंदमानां क्षत्रियैर्भृशतापिताम् ॥ गृहीतामिव सिंहेन सगर्भां हरिणीं यथा ॥ १४ ॥ साश्रुनेत्रां वेपमानां संक्रुध्य बालकस्तदा ॥ भित्त्वोरुं निर्जगामाशु गर्भः सूर्य इवापरः ॥ १५ ॥ मुष्णन्दृष्टीः क्षत्रियाणां तेजसा बालकः शुभः ॥ दर्शनाद्बालकस्याशु सर्वे जाता विलोचनाः ॥ १६ ॥ बभ्रमुर्गिरिदुर्गेषु जन्मांधा इव क्षत्रियाः ॥ चिन्तितं मनसा सर्वैः किमेतदिति सांप्रतम् ॥ १७ ॥ सर्वे चक्षुर्विहीना यज्जाताः स्म बालदर्शनात् ॥ ब्राह्मण्यास्तु प्रभावोऽयं सतीव्रतबलं महत् ॥१८॥ क्षणाद्वा मोघसंकल्पाः किं करिष्यंति दुःखिताः ॥ इति संचिंत्य मनसा नेत्रहीना निराश्रयाः ॥१९॥ ब्राह्मणीं शरणं जग्मुर्हैहया गतचेतसः ॥ प्रणेमुस्तां भयत्रस्तां कृतांजलिपुटाश्च ते ॥ २० ॥ ऊचुश्चैनां भयोद्विग्ना दृष्ट्यर्थं क्षत्रियर्षभाः ॥ प्रसीद

क्रोधकी सीमा नहीं रही। वह जाँघ चीरकर तुरन्त बाहर निकल आया, तब ऐसा लगा जैसे कोई दूसरा सूर्य ही प्रगट हो गया हो ॥१३–१५॥ उस मनोहर बालकने अपने तेजसे तुरन्त क्षत्रियोंके नेत्रकी ज्योति हर ली। उस बालककी ओर देखते ही वे सबके सब क्षत्रिय अन्धे हो गये ॥१६॥ अब जन्मान्ध प्राणीकी भाँति वे पर्वतकी गुफाओंमें इधर-उधर भटकने लगे। तब सबने मनमें विचार किया कि इस समय यह विचित्र परिस्थिति किस कारण हमारे सामने आ गयी है ॥१७॥ हम सब लोग इस बालकको देखते ही अन्धे हो गये। इससे मालूम होता है कि ब्राह्मणीका ही यह प्रभाव है। क्योंकि इसके पास सतीत्वका महान् बल है ॥१८॥ पतिव्रताओंका संकल्प कभी व्यर्थ नहीं हो सकता। दुखी होनेपर वे क्षणभरमें ही क्या नहीं कर सकतीं। इस वह सोचकर वे दृष्टिहीन एवं निराश्रय हैहय-वंशके क्षत्रिय उस पतिव्रता ब्राह्मणीके शरणागत हो गये। उन्होंने अपनी सुध-बुध खोकर दोनों हाथ जोड़ लिये और भयसे घबरायी हुई उस

ब्राह्मणीको प्रणाम किया ॥१९॥२०॥ साथ ही अपने नेत्रोंकी ज्योति पानेके लिए उन्होंने उस ब्राह्मणीसे प्रार्थना करते हुए कहा—हे महासुभगे ! हे माता ! तुम प्रसन्न हो जाओ । हम तुम्हारे सेवक हैं । इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥२१॥ हे रम्भोरु ! पापमयी बुद्धि हो जानेके कारण हम क्षत्रियोंद्वारा महान् अपराध हो गया है । इसीके फलस्वरूप तुम्हारी दृष्टि पड़ते ही हम सबके सब अन्धे हो गये ॥२२॥ हे भामिनी ! जन्मान्ध व्यक्तिकी भाँति हम तुम्हारे मुखको भी देखनेमें असमर्थ हो गये हैं । तुम अद्भुत तपोबलसे सम्पन्न हो । अतः हम पापी तुम्हारा सामना कैसे कर सकते हैं ? ॥२३॥ हे मानदे ! अब हम तुम्हारी शरणमें आये हैं । अन्धा हो जाना मरणसे भी अधिक कष्टप्रद है । अतः हमें नेत्र प्रदान करनेकी कृपा करो ॥२४॥ पुनः दृष्टि प्रदान करके हम सब क्षत्रियोंको अपना सेवक बना लो । अब खोटी बुद्धिवाले हम लोग शान्त होकर अपने स्थानपर चले जायँगे ॥२५॥ इसके बाद कभी भी हम ऐसा घृणित कार्य नहीं करेंगे । आजसे हम सब भार्गवोंके सेवक हो गये । इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥२६॥ अज्ञानवश हमारे द्वारा जो अपराध हो गया है, उसे क्षमा करो । अबसे कभी भी भार्गवोंके साथ क्षत्रियोंका वैरभाव

सुभगे मातः सेवकास्ते वयं किल ॥ २१ ॥ कृतापराधा रंभोरु क्षत्रियाः पापबुद्धयः ॥ दर्शनात्तव तन्वंगि जाताः सर्वे विलोचनाः ॥२२॥ मुखं ते नैव पश्यामो जन्मांधा इव भामिनि ॥ अद्भुतं ते तपोवीर्यं किं कुर्मः पापकारिणः ॥ २३ ॥ शरणं ते प्रपन्नाः स्मो देहि चक्षूंषि मानदे ॥ अंधत्वं मरणादुग्रं कृपां कर्तुं त्वमर्हसि ॥ २४ ॥ पुनर्दृष्टिप्रदानेन सेवकान्क्षत्रियान्कुरु ॥ उपरम्य च गच्छेम सहिताः पापकर्मणः ॥ २५ ॥ अतः परं न कर्तव्यमीदृशं कर्म कर्हिचित् ॥ भार्गवाणां तु सर्वेषां सेवकाः स्मो वयं किल ॥२६॥ अज्ञानाद्यत्कृतं पापं क्षंतव्यं तत्त्वयाऽधुना ॥ वैरं नातः परं क्वापि भृगुभिः क्षत्रियैः सह ॥ २७ ॥ कर्तव्यं शपथैः सम्यग्वर्तितव्यं तु हैहयैः ॥ सपुत्रा भव सुश्रोणि प्रणताःस्मो वयं च ते ॥ २८ ॥ प्रसादं कुरु कल्याणि न द्विष्यामः कदाचन ॥ व्यास उवाच ॥ इति तेषां वचः श्रुत्वा ब्राह्मणी विस्मयान्विता ॥ २९ ॥ तानाह प्रणतान्दुःस्थानाश्वास्य गतलोचनान् ॥ गृहीता न मया दृष्टिर्युष्माकं क्षत्रियाः किल ॥ ३० ॥ नाहं रुषान्विता सत्यं कारणं शृणुताद्य यत् ॥ अयं च भार्गवो नूनमूरुजः कुपितोऽद्य वः ॥ ३१ ॥ चक्षूंषि तेन युष्माकं स्तंभितानि रुषावता ॥ स्वबंधून्निहताञ्ज्ञात्वा गर्भस्थानपि क्षत्रियैः ॥ ३२ ॥ अनागसो धर्मपरां-

नहीं रहेगा ॥२७॥ हमारे यह प्रतिज्ञा कर लेनेके पश्चात् हम हैहयवंशी क्षत्रियोंके साथ तुम्हें सुखपूर्वक समय व्यतीत करना चाहिये । हे सुश्रोणि ! तुम पुत्रवती होकर रहो । हम तुम्हारे शरणापन्न हैं । हे कल्याणि ! तुम प्रसन्न हो जाओ । अब हम कभी भी तुमसे द्वेष नहीं करेंगे ।' व्यासजी कहते हैं—हे राजन् ! हैहयसंज्ञक क्षत्रियोंकी उपर्युक्त बातें सुनकर ब्राह्मणीके आश्चर्यकी सीमा नहीं रही ॥ २८ ॥ २९ ॥ हाथ जोड़कर सामने खड़े नेत्रहीन क्षत्रियोंको आश्वासन देकर क्षमाशीला ब्राह्मणीने उनसे कहा—'हे क्षत्रियो ! मेरे द्वारा तुम्हारी दृष्टि नहीं हरी गयी है—यह निश्चित है ॥ ३० ॥ मैं तुमपर कुपित भी नहीं हूँ । इसका वास्तविक कारण बता रही हूँ, सुनो । इस समय यह जो भृगुकुलका दीपक बालक मेरी जाँघसे उत्पन्न हुआ है, तुम इसीके कोपभाजन बन गये हो ॥३१॥ रोषमें आकर इस बालकने ही तुम्हारे नेत्र स्तम्भित कर दिये हैं । क्योंकि इसे पता चल गया है कि मेरे सभी बान्धव—यहाँ तक कि

गर्भमें रहनेवाले बालक भी इन क्षत्रियोंके हाथों मृत्युके ग्रास बन गये हैं ॥ ३२ ॥ अपने ये संबंध निरपराध

गर्भमें रहनेवाले बालक भी इन क्षत्रियोंके हाथों मृत्युके ग्रास बन गये हैं ॥ ३२ ॥ भृगुके वे वंशज निरपराध, धर्मात्मा तथा तपस्वी थे। जब तुम उनको मार रहे थे, तभी मेरे गर्भमें यह बालक आ गया था। इसे सौ वर्षोंसे मैं अपनी जाँघमें धारण किये रही। गर्भमें ही इसने छहो अङ्गोंसहित सम्पूर्ण वेदोंका अध्ययन बड़ी सुगमतासे कर लिया है॥३३॥३४॥ भृगुवंशका उत्थान करनेके लिए प्रकट यह बालक गर्भमें ही सुशिक्षित हो चुका है। यही अपने पितरोंके वधसे कुपित होकर तुम्हें मारनेके लिए उद्यत है ॥ ३५ ॥ मेरा यह पुत्र भगवती जगदम्बाकी कृपासे उत्पन्न हुआ है। इसीके दिव्य तेजसे तुम्हारी आँखें देखनेमें असमर्थ हो गयी हैं ॥ ३६ ॥ अतएव तुम लोग मेरे इस पुत्रसे ही बड़ी नम्रताके साथ नेत्र पानेकी प्रार्थना करो। यदि यह बालक प्रसन्न हो गया तो तुम्हें नेत्रज्योति अवश्य प्राप्त हो जायगी ॥ ३७ ॥ व्यासजी कहते हैं—हे राजन्! वह बालक एक श्रेष्ठ मुनिके रूपमें विराजमान था। ब्राह्मणीकी बात सुनकर हैहयसंज्ञक क्षत्रियोंने उसके चरणोंमें मस्तक झुका दिया और बड़ी नम्रतापूर्वक नेत्रोंमें ज्योति पानेके लिये प्रार्थना करने लगे ॥ ३८ ॥ इससे वह मुनिकुमार प्रसन्न हो गया।

स्तापसान् धनकाम्यया ॥ गर्भानपि यदा यूयं भृगून्निघ्नंस्तु पुत्रकाः ॥३३॥ तदाऽयमूरुणा गर्भो मया वर्षशतं धृतः ॥ षडंगश्चाखिलो वेदो गृहीतोऽनेन चांजसा ॥ ३४ ॥ गर्भस्थेनापि बालेन भृगुवंशविवृद्धये ॥ सोऽपि पितृवधान्नूनं क्रोधेद्धो हंतुमिच्छति ॥ ३५ ॥ भगवत्याः प्रसादेन जातोऽयं मम बालकः ॥ तेजसा यस्य दिव्येन चक्षूंषि मुषितानि वः ॥ ३६ ॥ तस्मादौर्वं सुतं मेऽद्य याचध्वं विनयान्विताः ॥ प्रणिपातेन तुष्टोऽसौ दृष्टिं वः प्रतिमोक्ष्यति ॥ ३७ ॥ व्यास उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्या हैहयास्तुष्टुवुश्च तम् ॥ प्रणेमुर्विनयोपेता ऊरुजं मुनिसत्तमम् ॥ ३८ ॥ स संतुष्टो बभूवाथ तानुवाच विचक्षुषः ॥ गच्छध्वं स्वगृहान्भूपा ममाख्यानकृतं वचः ॥ ३९ ॥ अवश्यंभाविभावास्ते भवंति दैवनिर्मिताः ॥ नात्र शोकस्तु कर्तव्यः पुरुषेण विजानता ॥ ४० ॥ पूर्ववदृषयः सर्वे प्राप्नुवंतु यथासुखम् ॥ व्रजंतु विगतक्रोधा भवनानि यथासुखम् ॥ ४१ ॥ इति तेन समादिष्टा हैहयाः प्राप्तलोचनाः ॥ और्वमामंत्र्य जग्मुस्ते सदनानि यथारुचि ॥४२॥ ब्राह्मणी तं सुतं दिव्यं गृहीत्वा स्वाश्रमं गता ॥ पालयामास भूपाल तेजस्विनमतंद्रिता ॥ ४३ ॥ एवं ते कथितं राजन्भृगूणां तु विनाशनम् ॥ लोभाविष्टैः क्षत्रियैश्च यत्कृतं पातकं किल ॥ ४४ ॥

और अन्धे क्षत्रियोंसे बोला—'राजाओ! ठीक है, तुम मेरी कही हुई बातपर विश्वास करके अपने घर लौट जाओ ॥ ३९ ॥ देखो, दैवने जो कुछ निश्चित कर दिया है, वह अवश्य होकर रहता है। इस विषयमें विद्वान् पुरुषको शोक नहीं करना चाहिए ॥ ४० ॥ सभी ऋषि पहलेकी ही भाँति सुखपूर्वक समय व्यतीत करें और जितने क्षत्रिय हैं, वे सब भी क्रोध त्यागकर आनन्दपूर्वक अपने-अपने घर जायँ ॥४१॥ इस प्रकार उस तेजस्वी बालकके उपदेश देनेपर वे हैहयसंज्ञक क्षत्रिय आज्ञा लेकर इच्छानुसार अपने घर चले गये। अब उनके नेत्रोंमें पूर्ववत् ज्योति आ गयी थी ॥ ४२ ॥ ब्राह्मणी भी तेजस्वी एवं विप्रोंके रक्षकरूपमें उत्पन्न उस दिव्य बालकको लेकर अपने आश्रमपर लौटी और बड़ी सावधानीके साथ उसका पालन-पोषण करने लगी ॥ ४३ ॥ हे राजन्! इस प्रकार भार्गवोंके विनाशकी कथा मैं तुम्हें सुना चुका। लोभके वशीभूत होकर क्षत्रियोंने जो कर्म कर डाला, वह अवश्य ही घोर पाप था ॥ ४४ ॥

राजा जनमेजयने कहा—अत्यन्त लोभमें पड़कर क्षत्रियोंने जो महान् नीच एवं भयंकर कर्म कर डाला था, वह सब मैंने सुन लिया। ऐसे कर्मके फलस्वरूप इहलोक और परलोकमें भी दुःख भोगने पड़ते हैं। हे सत्यवतीनन्दन व्यासजी! इस विषयमें मैं आपसे यह पूछना चाहता हूँ कि ये जो हैहयसंज्ञक क्षत्रिय थे, वे जगत्में इस नामसे क्यों विख्यात हुए? ॥४५॥४६॥ जैसे यदुसे यादवोंकी तथा भरतसे भारतकी प्रसिद्धि हुई है, वैसे ही हैहय भी कोई राजा रहे होंगे, जिनके वंशमें उत्पन्न होनेसे वे हैहय कहलाये ॥४७॥ हे करुणानिधे! उन हैहयोंकी उत्पत्ति कैसे हुई और किस कर्मके प्रभावसे उनका यह नाम पड़ा? इसका कारण मैं जानना चाहता हूँ ॥४८॥ व्यासजी बोले—हे महाराज! मैं हैहयोंकी उत्पत्तिका वृत्तान्त विस्तारके साथ कह रहा हूँ, सुनिए। यह बड़ा प्राचीन उपाख्यान है। इसको सुननेसे पाप नष्ट हो जाते हैं और पुण्यका उदय होता है ॥४९॥ हे राजन्! किसी समय सूर्यके पुत्र रेवन्त बड़े सुलक्षणसम्पन्न, रूपवान्

जनमेजय उवाच ॥ श्रुतं मया महत्कर्म क्षत्रियाणां च दारुणम् ॥ कारणं लोभ एवात्र दुःखदश्चोभयोस्तु सः ॥ ४५ ॥ किंचित्प्रष्टुमिहेच्छामि संशयं वासवीसुत ॥ हैहयास्ते कथं नाम्ना ख्याता भुवि नृपात्मजाः ॥ ४६ ॥ यदोस्तु यादवाः कामं भरताद्भारतास्तथा ॥ हैहयः कोऽपि राजाऽभूत्तेषां वंशे प्रतिष्ठितः ॥ ४७ ॥ तदहं श्रोतुमिच्छामि कारणं करुणानिधे ॥ हैहयास्ते कथं जाताः क्षत्रियाः केन कर्मणा ॥ ४८ ॥ व्यास उवाच ॥ हैहयानां समुत्पत्तिं शृणु भूप सविस्तराम् ॥ पुरातनीं सुपुण्यां च कथां पापप्रणाशिनीम् ॥ ४९ ॥ कस्मिंश्चित्समये भूप सूर्यपुत्रः सुशोभनः ॥ रेवंतेति च विख्यातो रूपवानमितप्रभः ॥ ५० ॥ उच्चैःश्रवसमारुह्य हयरत्नं मनोहरम् ॥ जगाम विष्णुसदनं वैकुण्ठं भास्करात्मजः ॥ ५१ ॥ भगवद्दर्शनाकांक्षी हयारूढो यदाऽऽगतः ॥ हयस्थस्तु तदा दृष्टो लक्ष्म्याऽसौ रविनंदनः ॥५२॥ रमा वीक्ष्य हयं दिव्यं भ्रातरं सागरोद्भवम् ॥ रूपेण विस्मिता तस्य तस्थौ स्तंभितलोचना ॥ ५३ ॥ भगवानपि तं दृष्ट्वा हयारूढं मनोहरम् ॥ आगच्छंन्त रमां विष्णुः पप्रच्छ प्रणयात्प्रभुः ॥ ५४ ॥ कोऽयमायाति चार्वंगि हयारूढ इवापरः ॥ स्मरतेजस्तनुः कान्ते मोहयन् भुवनत्रयम् ॥५५॥ प्रेक्षमाणा तदा लक्ष्मीस्तच्चित्ता दैवयोगतः ॥ नोवाच वचनं किंचित्पृष्टाऽपि च पुनः पुनः ॥ ५६ ॥ व्यास उवाच ॥ अश्वासक्तमतिं वीक्ष्य कामिनीमतिमोहिताम् ॥ पश्यंतीं परमप्रेम्णा चंचलाक्षीं च

और अपरिमित प्रभावशाली युवक थे। एक बार वे भास्करनन्दन अश्वरत्न और परम मनोहर उच्चैःश्रवा घोड़ेपर सवार होकर भगवान् विष्णुके वैकुण्ठधाममें गये ॥५०॥५१॥ जब वे घोड़ेपर बैठकर भगवान् विष्णुके दर्शनकी आकांक्षासे वहाँ पहुँचे तो नउ सूर्यकुमारपर भगवती लक्ष्मीकी दृष्टि पड़ी ॥५२॥ उन लक्ष्मीजीने जब सागरसे जायमान अपने भाई उच्चैःश्रवाको देखा तो उसके सौन्दर्यपर मुग्ध होकर एकटक उसे देखती रह गयीं ॥५३॥ भगवान् विष्णुने लावण्यसम्पन्न रेवन्तको घोड़ेपर बैठकर आता हुआ देखकर बड़े स्नेहके साथ लक्ष्मीजीसे पूछा—॥५४॥ हे सुन्दर अंगोंवाली! हे प्रिये! यह कौन है, जो घोड़ेपर सवार होकर इधर चला आ रहा है? यह अपने शरीरके सौन्दर्यसे त्रिभुवनको मोहित करता हुआ जैसे साक्षात् कामदेव ही हो ॥५५॥ उस समय लक्ष्मीजी मोहिकी एकटक देख रही थीं। अतएव भगवानके बार बार पूछनेपर भी वे कुछ नहीं बोलीं ॥५६॥ व्यासजी बोले—हे राजन्! जब भगवानने देखा कि मेरी प्रिया कामिनी, चपलनयनी

अंगोंवाली ! हे प्रिये ! यह कौन है, जो घोड़ेपर सवार होकर इधर चली आ रही है ? यह अत्यन्त सुन्दर है, लक्ष्मीजी घोड़ेको एकटक देख रही थीं । अतएव भगवान्‌के बार बार पूछनेपर भी वे कुछ नहीं बोलीं ॥५६॥ व्यासजी बोले—हे राजन् ! जब भगवान्‌ने देखा कि मेरी प्रिया कामिनी, चपलनयनी

और चंचला लक्ष्मी घोड़ेपर आसक्त एवं मोहित होकर बड़े प्रेमसे उसे देख रही हैं ॥५७॥ तब कुपित होकर भगवान्‌ने कहा—हे सुनयनी ! तुम क्या देख रही हो ? घोड़ेको देखकर तुम इतना मुग्ध हो गयीं कि पूछनेपर मेरी बातका जवाब तक नहीं देतीं ? ॥५८॥ इस समय तुम्हारा चित्त चारों ओर रमण कर रहा है, इसलिए 'रमा' और तुम्हारा मन बड़ा चञ्चल हो रहा है, इसलिए अबसे तुम 'चञ्चला' कहलाओगी । इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥५९॥ जैसे साधारण नारियाँ चञ्चल होती हैं, उसी तरह हे कल्याणी ! तुम भी कहीं स्थिर न रहोगी ॥६०॥ मेरे समीप रहनेपर भी तुम एक घोड़ेको देखकर मोहित हो गयी हो तो हे सुजघने ! अत्यन्त दारुण मृत्युलोकमें तुम घोड़ी होकर जन्म लो ॥ ६१ ॥ दैवसंयोगसे जब भगवान्‌ने लक्ष्मीजीको ऐसा शाप दे दिया, तब लक्ष्मी डरीं । वे अत्यन्त दुःखित होकर काँपने लगीं ॥६२॥ तदनन्तर सुन्दर मुस्कराहटवाली लक्ष्मीजी बड़ी दुविधामें पड़ गयीं और अपने पति विष्णुभगवान्‌को उन्होंने विनयपूर्वक मस्तक नवाकर प्रणाम किया और कहने लगीं—॥६३॥ हे देवदेव ! हे जगन्नाथ ! हे करुणाकर ! हे केशव ! हे गोविन्द ! एक साधारण अपराधपर आपने मुझे ऐसा शाप क्यों दे दिया ? ॥६४॥

चंचलाम् ॥५७॥ तामाह भगवान्क्रुद्धः किं पश्यसि सुलोचने ॥ मोहिता च हरिं दृष्ट्वा पृष्टा नैवाभिभाषसे ॥५८॥ सर्वत्र रमसे यस्माद्रमा तस्माद्भविष्यसि ॥ चंचलत्वाच्चलेत्येवं सर्वथैव न संशयः ॥५९॥ प्राकृता च यथा नारी नूनं भवति चंचला ॥ तथा त्वमपि कल्याणि स्थिरा नैव कदाचन ॥ ६० ॥ त्वं हयं मत्समीपस्था समीक्ष्य यदि मोहिता ॥ वडवा भव वामोरु मर्त्यलोकेऽतिदारुणे ॥६१॥ इति शप्ता रमा देवी हरिणा दैवयोगतः ॥ रुरोद वेपमाना सा भयभीताऽतिदुःखिता ॥ ६२ ॥ तमुवाच रमानाथं शंकिता चारुहासिनी ॥ प्रणम्य शिरसा देवं स्वपतिं विनयान्विता ॥६३॥ देवदेव जगन्नाथ करुणाकर केशव ॥ स्वल्पेऽपराधे गोविंद कस्माच्छापं ददासि मे ॥ ६४ ॥ न कदाचिन्मया दृष्टः क्रोधस्ते हीदृशः प्रभो ॥ क्व गतस्ते मयि स्नेहः सहजो न तु नश्वरः ॥ ६५ ॥ वज्रपातस्तु शत्रौ वै कर्तव्यो न सुहृज्जने ॥ सदाऽहं वरयोग्या ते शापयोग्या कथं कृता ॥६६॥ प्राणांस्त्यक्ष्यामि गोविन्द पश्यतोऽद्य तवाग्रतः ॥ कथं जीवे त्वया हीना विरहानलतापिता ॥ ६७ ॥ प्रसादं कुरु देवेश शापादस्मात्सुदारुणात् ॥ कदा मुक्ता समीपं ते प्राप्नोमि सुखदं विभो ॥६८॥ हरिरुवाच ॥ यदा ते भविता पुत्रः पृथिव्यां मत्समः प्रिये ॥ तदा मां प्राप्य तन्वंगि सुखिता त्वं भविष्यसि ॥ ६९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

हे स्वामिन् ! मैंने आपको ऐसा क्रोध करते कभी नहीं देखा था । मुझपर आपका जो स्थायी और नैसर्गिक स्नेह था, वह अचानक कहाँ चला गया ? ॥ ६५ ॥ आपका वज्र तो शत्रुपर गिरना चाहिए, न कि अपने स्नेहीपर । मैं तो आपसे सदा वर पानेकी अधिकारिणी रही, फिर एकाएक आपने मुझे शाप पानेकी अधिकारिणी क्यों बना दिया ? ॥६६॥ हे गोविन्द ! मैं अभी देखते-देखते आपके समक्ष अपने प्राण त्याग दूँगी । क्योंकि आपसे पृथक् हो और आपकी वियोगाग्निमें झुलस-झुलसकर मैं कैसे जीवित रहूँगी ? ॥६७॥ हे देवेश ! मुझपर प्रसन्न होइए और यह बतलाइए कि इस अत्यन्त भीषण शापसे छूटकर मैं फिर कब आपकी सुखदायिनी शरणमें पहुँचूँगी ? ॥६८॥ भगवान् विष्णु बोले—हे प्रियतमे ! पृथिवीतलपर जब मेरे समान तुम्हें एक गुणी पुत्र प्राप्त हो जायगा, तब हे तन्वङ्गि ! तुम मुझे पाकर आनन्दित होओगी ॥६९॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भाषाटीकायां सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

(शंकरजीसे लक्ष्मीको वरदानकी प्राप्ति) राजा जनमेजय बोले—भगवन् ! भगवान् विष्णुने कोपवश लक्ष्मीजीको जब इस तरह शाप दे दिया, तब सागरतनया लक्ष्मीजीने कैसे घोड़ी होकर जन्म लिया ? और फिर सूर्यपुत्र रेवन्तने क्या किया ? ॥ १ ॥ जैसे किसी युवती नायिकाका प्यारा प्रियतम परदेशमें रहे और वह उसके वियोगमें अकेली रहती हुई दिन काटे, उसी तरह घोड़ीका जन्म पाकर अपने पतिके वियोगमें सागरतनया लक्ष्मीने अकेली रहकर किस देशमें दिन काटा ? ॥ २ ॥ हे आयुष्मन् ! लक्ष्मीजीको अपने पतिसे वियुक्त रहकर कितना समय बिताना पड़ा ? और निर्जन वनमें उन्होंने क्या किया ? ॥ ३ ॥ भगवान्के साथ फिर उनका समागम कब हुआ ? अपने पतिदेव भगवान् नारायणसे अलग रहकर भी उन्हें पुत्र कैसे प्राप्त हुआ ? ॥ ४ ॥ हे आर्येश ! विस्तारपूर्वक आप इस वृत्तान्तको बताइए । हे ब्रह्मन् ! इस उत्तम उपाख्यानको सुननेकी मेरी उत्कट अभिलाषा है ॥ ५ ॥ सूतजी बोले—हे ऋषियो ! जब परीक्षितपुत्र जनमेजयने वेदव्याससे ऐसा प्रश्न पूछा, तब वे विस्तारके साथ इस कथाको कहने लगे। व्यासजी बोले—हे राजन् ! मैं वह शुभ और पौराणिक उपाख्यान कह रहा

जनमेजय उवाच ॥ इति शप्ता भगवता सिंधुजा कोपयोगतः ॥ कथं सा वडवा जाता रेवंतेन च किं कृतम् ॥ १ ॥ कस्मिन्देशेऽब्धिजा देवी वडवारूपधारिणी ॥ संस्थितैकाकिनी बाला परोषित्पतिका यथा ॥ २ ॥ कालं कियंतमायुष्मन्वियुक्ता पतिना रमा ॥ संस्थिता विजनेऽरण्ये किं कृतं च तया पुनः ॥ ३ ॥ समागमं कदा प्राप्ता वासुदेवस्य सिंधुजा ॥ पुत्रः कथं तया प्राप्तो नारायणवियुक्तया ॥ ४ ॥ एतद्वृत्तांतमार्येश कथयस्व सविस्तरम् ॥ श्रोतुकामोऽस्मि विप्रेंद्र कथाख्यानमनुत्तमम् ॥ ५ ॥ सूत उवाच ॥ इति पृष्टस्तदा व्यासः परीक्षित्तनयेन वै ॥ कथयामास भो विप्रा कथामेतां सुविस्तराम् ॥ ६ ॥ व्यास उवाच ॥ शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि कथां पौराणिकीं शुभाम् ॥ पावनीं सुखदां कर्णे विशदाक्षरसंयुताम् ॥ ७ ॥ रेवंतस्तु रमां दृष्ट्वा शप्तां देवेन कामिनीम् ॥ भयतः प्रययौ दूरात्प्रणम्य जगतां पतिम् ॥८॥ पितुः सकाशं त्वरितो वीक्ष्य कोपं जगत्पतेः ॥ निवेदयामास कथां भास्कराय स शापजाम् ॥९॥ दुःखिता सा रमा देवी प्रणम्य जगदीश्वरम् ॥ आज्ञप्ता मानुषं लोकं प्राप्ता कमललोचना ॥१०॥ सूर्यपत्न्या तपस्तप्तं यत्र पूर्वं सुदारुणम् ॥ तत्रैव सा ययावाशु वडवारूपधारिणी ॥ ११ ॥ कालिंदीतमसासंगे सुपर्णाक्षस्य चोत्तरे ॥ सर्वकामप्रदे

हूँ, सुनिए । यह बड़ा पवित्र है और निर्मल शब्दोंके सम्मिश्रणसे कानोंको बड़ा मधुर लगता है ॥ ६ ॥ ७ ॥ सूर्यपुत्र रेवन्तकने जब देखा कि विष्णुभगवान्ने कामिनी कमलाको शाप दे दिया तो भयभीत होकर वे भगवान् जगदीश्वरको दूर ही से नमस्कार करके लौट पड़े ॥ ८ ॥ संसारके अधिपति विष्णुभगवान्का रोष देखकर वे तुरन्त अपने पिता सूर्यके पास गये और लक्ष्मीजीके शाप पानेकी घटना कह सुनायी ॥ ९ ॥ इधर कमलनयनी लक्ष्मीदेवी भगवानसे आज्ञा पा तथा दुःखित मनसे उन्हें नमस्कार करके मनुष्यलोकमें चली आयीं ॥ १० ॥ श्रीलक्ष्मीजीको इससे क्लेश तो बहुत हुआ, परन्तु वे भगवान्को प्रणाम करके तथा उनकी आज्ञा लेकर मर्त्यलोकमें वहाँ जा पहुँचीं, जहाँ सूर्यकी पत्नीने पूर्व समयमें अत्यन्त कठिन तप किया था । वहीं भगवती लक्ष्मी घोड़ीका रूप धारण करके रहने लगीं ॥ ११ ॥ वहीं सुपर्णाक्ष नामक स्थानके उत्तरी दिशामें यमुना और तमसा नदीका संगम था । सम्पूर्ण मनोरथ

पूर्ण करनेवाले उस स्थानको सुन्दर वन सुशोभित कर रहे थे ॥१२॥ वहाँ रहकर भगवती लक्ष्मी, जो सबकी कामनायें पूर्ण करते हैं तथा जिनका मस्तक चन्द्रमासे अलंकृत रहता है, उन त्रिशूलधारी भगवान् शंकरका एकाग्रचित्तसे ध्यान करने लगीं ॥१३॥ जिनके पाँच मुख और दस भुजायें हैं, भगवती गौरी अर्धाङ्गिनी बनकर जिनकी शोभा बढ़ा रही हैं, जिनका कर्पूरके समान गौर शरीर अत्यन्त प्रकाशमान है, जिनका कण्ठ नीला है और तीन आँखें हैं ॥ १४ ॥ जो बाघम्बर पहने और हाथीके चमड़ेकी चादर ओढ़े हुए हैं, जिनके गलेमें नरमुण्डकी माला सुशोभित है तथा जो साँपका यज्ञोपवीत पहने हुए हैं, उन भगवान् शंकरके ध्यानमें लक्ष्मीजी संलग्न हो गयीं ॥ १५ ॥ उस पावन तीर्थमें सुन्दर घोड़ीका रूप धारण करके उन्होंने बड़ी कठोर तपस्या की ॥ १६ ॥ हे राजन् ! भगवान शंकरका ध्यान करते हुए लक्ष्मीके मनमें पूर्ण वैराग्य उत्पन्न हो गया था। देवताओंके वर्षसे हजार वर्षतक उनकी तपस्या चलती रही ॥१७॥ तदनन्तर तीन नेत्रवाले भगवान् शंकर प्रसन्न होकर बैलपर चढ़े हुए पधारे और उन्हें साक्षात् दर्शन दिया। उनके साथ पार्वतीजी भी विराजमान थीं ॥१८॥ उस समय

स्थाने सुरम्यवनमंडिते ॥ १२ ॥ तत्र स्थिता महादेवं शंकरं वांछितप्रदम् ॥ दध्यौ चैकेन मनसा शूलिनं चंद्रशेखरम् ॥ १३ ॥ पञ्चाननं दशभुजं गौरीदेहार्धधारिणम् ॥ कर्पूरगौरदेहाभं नीलकंठं त्रिलोचनम् ॥१४॥ व्याघ्राजिनधरं देवं गजचर्मोत्तरीयकम् ॥ कपालमालाकलितं नागयज्ञोपवीतिनम् ॥१५॥ सागरस्य सुता कृत्वा हयीरूपं मनोहरम् ॥ तस्मिंस्तीर्थे रमादेवी चकार दुश्चरं तपः ॥१६॥ ध्यायमाना परं देवं वैराग्यं समुपाश्रिता ॥ दिव्यं वर्षसहस्रं तु गतं तत्र महीपते ॥ १७ ॥ ततस्तुष्टो महादेवो वृषारूढस्त्रिलोचनः ॥ प्रत्यक्षोऽभून्महेशानः पार्वतीसहितः प्रभुः ॥१८॥ तत्रैत्य सगणः शम्भुस्तामाह हरिवल्लभाम् ॥ तपस्यंतीं महाभागामश्विनीरूपधारिणीम् ॥ १९ ॥ किं तपस्यसि कल्याणि जगन्मातर्वदस्व मे ॥ सर्वार्थदः पतिस्तेऽस्ति सर्वलोकविधायकः ॥ २० ॥ हरिं त्यक्त्वाऽद्य मां कस्मात्स्तौषि देवि जगत्पतिम् ॥ वासुदेवं जगन्नाथं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥ २१ ॥ वेदोक्तं वचनं कार्यं नारीणां देवता पतिः ॥ नान्यस्मिन्सर्वथा भावः कर्तव्यः कर्हिचित्क्वचित् ॥ २२ ॥ पतिशुश्रूषणं स्त्रीणां धर्म एव सनातनः ॥ यादृशस्तादृशः सेव्यः सर्वथा शुभकाम्यया ॥ २३ ॥ नारायणस्तु सर्वेषां सेव्यो योग्यः सदैव हि ॥ तं त्यक्त्वा देवदेवेशं किं मां ध्यायसि सिंधुजे ॥ २४ ॥ लक्ष्मीरुवाच ॥ आशुतोष महेशान शक्षाऽहं पतिना शिव ॥ मां समुद्धर देवेश शापादस्माद्दयानिधे ॥ २५ ॥ तदोक्तं हरिणा शंभो

विष्णुप्रिया महामाया लक्ष्मी घोड़ीके रूपमें रहकर तप कर रही थीं। भगवान शंकरने अपने गणों सहित वहाँ पहुँचकर उनसे कहा—॥ १९ ॥ 'हे कल्याणी ! हे जगदम्बे ! तुम क्यों तपस्या कर रही हो ? मुझे इसका कारण बताओ। क्योंकि तुम्हारे पतिदेव सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण करनेमें समर्थ एवं अखिल लोकके अध्यक्ष हैं ॥ २० ॥ हे देवी ! श्रीपतिको जगत्का स्वामी माना जाता है। ऐसे भुक्ति तथा मुक्ति प्रदान करनेवाले जगत्प्रभु भगवान वासुदेवको छोड़कर तुम मेरी आराधना क्यों कर रही हो ? ॥ २१ ॥ पतिकी सेवा स्त्रियोंके लिये सनातन धर्म माना गया है। पति चाहे कैसा भी हो, कल्याणकी अभिलाषा रखनेवाली स्त्री उसकी सेवामें सदा तत्पर रहे। फिर नारायण तो सबके लिए सदा परम पूज्य हैं। हे सिन्धुजे ! ऐसे देवेश्वर श्रीहरिको छोड़कर तुम मेरी उपासना क्यों कर ही हो ? ॥ २२–२४ ॥ लक्ष्मीजीने कहा—हे आशुतोष, महेशान, शिव और देवेश कहलानेवाले दयासिन्धो ! मेरे पतिदेवने

मुझे शाप दे दिया है। आप उस शापसे मेरा उद्धार करनेकी कृपा कीजिए। हे शम्भो! उन्होंने दया करके शापसे छुटकारा पानेका उपाय भी बतला दिया है। उन्होंने कहा–'हे कमलालये! जब तुम्हारे पुत्र उत्पन्न हो जायगा, तब शापसे मुक्त होकर तुम वैकुण्ठमें फिर स्थान पा जाओगी ॥२५–२७॥ भगवन्! पतिदेवके यों कहनेपर मैं तपस्या करनेके विचारसे इस तपोवनमें आ गयी और सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण करनेवाले आप परम प्रभुको मैंने अपना आराध्य बना लिया ॥ २८॥ हे देवदेव! इस समय मैं पतिदेवके सांनिध्यसे वञ्चित हूँ। मुझ निपराध पत्नीको छोड़कर वे वैकुण्ठमें विराज रहे हैं। तब उनके अभावमें मैं पुत्रवती कैसे हो सकती हूँ? ॥२९॥ हे देवेश शंकर! यदि आप प्रसन्न हों तो मुझे वर देनेकी कृपा करें। आपमें और श्रीहरिमें किंचिन्मात्र भी भेदभाव नहीं है ॥ ३० ॥ गिरिजाको प्रेम प्रदान करनेवाले हे प्रभो! मैं पतिदेवके पास थी, तभीसे मुझे यह रहस्य ज्ञात है। जो आप हैं, वही वे हैं और जो वे हैं, वही आप हैं—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है ॥३१॥ हे महादेव! आप दोनों महानुभाव एक ही हैं—यह समझकर ही मैंने आपका चिन्तन किया है। अन्यथा आपकी सेवा करनेसे मैं दोषकी भागिनी

शापानुग्रहकारणम् ॥ विज्ञप्तेन मया कामं दयायुक्तेन विष्णुना ॥ २६ ॥ यदा ते भविता पुत्रस्तदा शापस्य मोक्षणम् ॥ भविष्यति च वैकुंठवासस्ते कमलालये ॥ २७ ॥ इत्युक्ताऽहं तपस्तप्तुमागताऽस्मि तपोवने ॥ आराधितो मया देव त्वं सर्वार्थप्रदायकः ॥२८॥ पतिसंगं विना पुत्रं देवदेव लभे कथम् ॥ स तु तिष्ठति वैकुण्ठे त्यक्त्वा वामामनागसम् ॥ २९ ॥ वरं मे देहि देवेश यदि तुष्टोऽसि शंकर ॥ तव तस्य द्विधाभावो नास्ति नूनं कदाचन ॥ ३० ॥ मयैतद्गिरिजाकांत ज्ञातं पत्युः पुरो हर ॥ यस्त्वं सोऽसौ पुनर्योऽसौ स त्वं नास्त्यत्र संशयः ॥ ३१ ॥ एकत्वं च मया ज्ञात्वा मया ते स्मरणं कृतम् ॥ अन्यथा मम दोषस्त्वामाश्रयंत्या भवेच्छिव ॥ ३२ ॥ शिव उवाच ॥ कथं ज्ञातस्त्वया देवि मम तस्य च सुन्दरि ॥ ऐक्यभावो हरेर्नूनं सत्यं मे वद सिंधुजे ॥ ३३ ॥ एकत्वं च न जानंति देवाश्च मुनयस्तथा ॥ ज्ञानिनो वेदतत्त्वज्ञाः कुतर्कोपहताः किल ॥ ३४ ॥ मद्भक्ता वासुदेवस्य निंदका बहवस्तथा ॥ विष्णुभक्तास्तु बहवो मम निंदापरायणाः ॥ ३५ ॥ भवंति कालभेदेन कलौ देवि विशेषतः ॥ कथं ज्ञातस्त्वया भद्रे दुर्ज्ञेयो ह्यकृतात्मभिः ॥ ३६ ॥ सर्वथा त्वैक्यभावस्तु हरेर्मम च दुर्लभः ॥ व्यास उवाच ॥ इति सा शंभुना पृष्टा तुष्टेन हरिवल्लभा ॥ ३७ ॥ वृत्तांतं तस्य विज्ञातं प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥ शिवं प्रति रमा तत्र प्रसन्नवदना भृशम् ॥ ३८ ॥ लक्ष्मीरुवाच ॥ एकदा देवदेवेश विष्णुर्ध्यानपरो रहः ॥ दृष्टो

बन जाती ॥३२॥ भगवान शिव बोले–हे देवी! मैं और श्रीहरि बिल्कुल एक हैं–तुमको इस रहस्यका कैसे पता लगा? हे सुन्दरी सिन्धुजे! मुझे सच्ची बात बतानेकी कृपा करो ॥ ३३ ॥ देवता, मुनि, ज्ञानी और वेदके पारगामी पुरुष भी तर्क-वितर्कमें पड़े रहकर इस एकत्वके रहस्यको नहीं समझ पाते ॥ ३४ ॥ मेरे बहुतसे भक्त भगवान् विष्णुकी और उनके भक्त मेरी निन्दा करनेमें सदा तत्पर रहते हैं ॥ ३५ ॥ हे देवी! कलियुगमें इस बातकी बड़ी विशेषता रहेगी। समयके भेदभावसे यह भेद बढ़ता चला जायगा। हे भद्रे! मुझमें और श्रीहरिमें सम्यक् प्रकारसे एकता है–यह भाव जानना प्रायः सबके लिए बहुत कठिन है। फिर तुम कैसे जान गयीं? व्यासजी बोले–इस प्रकार प्रसन्न होकर जब भगवान शंकरने लक्ष्मीजीसे पूछा, तब लक्ष्मीने इस प्रसंगको बतलाना आरम्भ किया। उस समय वे भी कम प्रसन्न नहीं थीं ॥३६–३८॥ लक्ष्मीने कहा–हे देवदेवेश! एक समयकी बात है, भगवान विष्णु एकान्तमें पद्मासन

लगाकर बैठे ध्यान कर रहे थे। जब वे यों तप कर रहे थे, तब उन्हें देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। थोड़ी देरके बाद उनकी समाधि टूट गयी तो उनके मुखपर प्रसन्नताकी किरणें झलक रही थीं। तब मैंने अनुकूल जानकर विनयपूर्वक उनसे पूछा—॥३९॥४०॥ हे प्रभो! आप सभी देवताओंके अध्यक्ष एवं जगत्‌के स्वामी हैं। जिस समय देवता, दानव और ब्रह्मा प्रभृति सबने मिलकर समुद्रका मन्थन किया था और जब मैं उससे निकली, तब मेरे मनमें विचार आया कि किसीको पति चुन लूँ। अतः मैंने सब ओर दृष्टि दौड़ायी। उस समय आप ही सम्पूर्ण देवताओंसे श्रेष्ठ हैं—इस निर्णयपर पहुँचकर मैंने आपको अपना पति बना लिया ॥४१॥४२॥ हे सर्वेश! अब आप किसका ध्यान कर रहे हैं? यह प्रसंग मेरे मनको बड़े आश्चर्यमें डाल रहा है। हे कैटभारे! आप मेरे परम प्रेमी हैं। अतः मेरी इस मानसिक उलझनको दूर करनेकी कृपा कीजिए ॥४३॥ भगवान विष्णु बोले—प्रिये! मैं हृदयमें जिनका ध्यान कर रहा है, उनका परिचय देता हूँ, सुनो। पार्वतीपति भगवान् शंकर सबसे प्रधान माने जाते हैं। तुरन्त प्रसन्न हो जाना उनका स्वाभाविक गुण है ॥४४॥ उन देवाधिदेवके पराक्रमकी कोई सीमा नहीं है। कभी

मया तपः कुर्वन्पद्मासनगतो यदा ॥ ३९ ॥ तदाऽहं विस्मिता देवं तमपृच्छं पतिं किल ॥ प्रबुद्धं सुप्रसन्नं च ज्ञात्वा विनयपूर्वकम् ॥४०॥ देवदेव जगन्नाथ यदाऽहं निर्गताऽर्णवात् ॥ मथ्यमानात्सुरैर्दैत्यैः सर्वैर्ब्रह्मादिभिः प्रभो ॥४१॥ वीक्षिताश्च मया सर्वे पतिकामनया तदा ॥ वृतस्त्वं सर्वदेवेभ्यः श्रेष्ठोऽसीति विनिश्चयात् ॥ ४२ ॥ त्वं कं ध्यायसि सर्वेश संशयोऽयं महान्मम ॥ प्रियोऽसि कैटभारे मे कथयस्व मनोगतम् ॥४३॥ विष्णुरुवाच ॥ शृणु कांते प्रवक्ष्यामि यं ध्यायामि सुरोत्तमम् ॥ आशुतोषं महेशानं गिरिजावल्लभं हृदि ॥४४॥ कदाचिद्देवदेवो मां ध्यायत्यमितविक्रमः ॥ ध्यायाम्यहं च देवेशं शंकरं त्रिपुरान्तकम् ॥ ४५ ॥ शिवस्याहं प्रियः प्राणः शंकरस्तु तथा मम ॥ उभयोरंतरं नास्ति मिथः संसक्तचेतसोः ॥४६॥ नरकं यांति ते नूनं ये द्विषंति महेश्वरम् ॥ भक्ता मम विशालाक्षि सत्यमेतद्ब्रवीम्यहम् ॥ ४७ ॥ इत्युक्तं देवदेवेन विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ एकांते किल पृष्टेन मया शैलसुताप्रिय ॥ ४८ ॥ तस्मात्त्वां वल्लभं विष्णोर्ज्ञात्वा ध्यातवती ह्यहम् ॥ तथा कुरु महेशान यथा मे प्रियसंगमः ॥४९॥ व्यास उवाच ॥ इति श्रियो वचः श्रुत्वा प्रत्युवाच महेश्वरः ॥ तामाश्वास्य प्रियैर्वाक्यैर्यथार्थं वाक्यकोविदः ॥ ५० ॥ स्वस्था भव पृथुश्रोणि तुष्टोऽहं तपसा

ऐसा होता है कि त्रिपुरासुरका वध करनेवाले वे देवेश मेरा ध्यान करते हैं और कभी मैं उनका ध्यान करता हूँ ॥४५॥ उनके प्रिय प्राण मैं हूँ और मेरे प्रिय प्राण वे हैं। हम दोनोंका चित्त परस्पर गुँथा हुआ है। अतः हम दोनोंमें किंचिन्मात्र भेद नहीं समझना चाहिये ॥ ४६ ॥ हे विशाललोचने! जो भगवान् शंकरसे द्वेष करते हैं, वे मेरे भक्त ही क्यों न हो, किन्तु उनका नरकमें जाना अनिवार्य है। मैं यह बिलकुल सत्य कह रहा हूँ ॥ ४७ ॥ हे पार्वतीपते! एकान्तमें मेरे पूछनेपर सर्वसमर्थ देवाधिदेव भगवान विष्णु यह प्रसंग स्पष्टरूपमें मुझे सुना चुके हैं। अतएव श्रीहरिका अभिन्न प्रेमी जानकर मैं आपका ध्यान कर रही हूँ। हे महेशान! आप ऐसा कीजिए कि जिससे मेरे पतिदेवका मिलन सुलभ हो जाय ॥४८॥४९॥ व्यासजी बोले—लक्ष्मीका यह कथन सुनकर निपुण वक्ता भगवान शंकरने मधुर वचनोंसे यह आश्वासन देते हुए कहा—हे सुन्दरी! धैर्य धरो। मैं तुम्हारी तपस्यासे परम सन्तुष्ट हूँ। तुम्हारे पतिदेव तुम्हें अवश्य

मिलेंगे—इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥५०॥५१॥ वे जगदीश्वर मुझसे प्रेरित होकर तुम्हारी कामना पूर्ण करनेके लिए अश्वका रूप धारण करके यहीं पधारेंगे ॥५२॥ मैं उन मधुसूदन श्रीहरिको इस प्रकार उत्साहित करूँगा कि जिससे वे अश्वरूप धारण करके यहाँ आ जायँ ॥५३॥ हे सुभ्रु ! तुम उन्हीं जैसे पुत्रकी जननी अवश्य होओगी । तुम्हारे पुत्रके सामने सभी लोग मस्तक झुकायेंगे और वह भूमण्डलका राजा होकर रहेगा ॥५४॥ हे महाभागे! पुत्र प्रसव करनेके पश्चात् तुम तुरन्त अपने पतिदेवके साथ वैकुण्ठ चली जाओगी और पुनः तुम्हें उनकी प्राणप्रियारूपमें रहनेका सौभाग्य सुलभ हो जायगा ॥५५॥ तुम्हारा वह पुत्र 'एकवीर' नामसे प्रसिद्ध होगा। उसीसे भूमण्डलपर हैहयसंज्ञक क्षत्रियोंकी वंशावली विस्तृत होगी ॥५६॥ हे लक्ष्मी ! तुमने मदान्ध एवं प्रमत्त होकर सदा हृदयमें विराजनेवाली परमेश्वरीको भुला दिया था । इसीसे तुम्हारी यह दशा हुई है ॥५७॥ उस दोषकी शान्तिके लिए हे सिन्धुजे ! तुम हृदयमें विराजमान रहनेवाली

तव ॥ समागमस्ते पतिना भविष्यति न संशयः ॥५१॥ अत्रैव हयरूपेण भगवाञ्जगदीश्वरः ॥ आगमिष्यति ते कामं पूर्णं कर्तुं मयेरितः ॥५२॥ तथाऽहं प्रेरयिष्यामि तं देवं मधुसूदनम् ॥ यथाऽसौ हयरूपेण त्वामेष्यति मदातुरः ॥५३॥ पुत्रस्ते भविता सुभ्रु नारायणसमः क्षितौ ॥ भविष्यति स भूपालः सर्वलोकनमस्कृतः ॥५४॥ सुतं प्राप्य महाभागे त्वं तेन पतिना सह ॥ गंताऽसि दिवि वैकुण्ठं प्रिया तस्य भविष्यसि ॥५५॥ एकवीरेति नाम्नाऽसौ ख्यातिं यास्यति ते सुतः ॥ तस्मात्तु हैहयो वंशो भुवि विस्तारमेष्यति ॥ ५६ ॥ परंतु विस्मृताऽसि त्वं हृदिस्थां परमेश्वरीम् ॥ मदांधा मत्तचित्ता च तेन ते फलमीदृशम् ॥५७॥ अतस्तद्दोषशांत्यर्थं हृदिस्थां परदेवताम् ॥ शरणं याहि सर्वात्मभावेन जलधेः सुते ॥५८॥ अन्यथा तव चित्तं तु कथं गच्छेद्धयोत्तमे ॥ व्यास उवाच ॥ इति दत्त्वा वरं देव्यै भगवाञ्छैलजापतिः ॥५९॥ अंतर्धानं गतः साक्षादुमया सहितः शिवः ॥ साऽपि तत्रैव चार्वंगी संस्थिता कमलासना ॥६०॥ ध्यायंती चरणाम्भोजं देव्याः परमशोभनम् ॥ देवासुरशिरोरत्ननिघृष्टनखमंडलम् ॥६१॥ प्रेमगद्गदया वाचा तुष्टाव च मुहुर्मुहुः ॥ प्रतीक्षमाणा भर्तारं हयरूपधरं हरिम् ॥ ६२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

॥ व्यास उवाच ॥ तस्यै दत्त्वा वरं शंभुः कैलासं त्वरितो ययौ ॥ रम्यं देवगणैर्जुष्टमप्सरोभिश्च मंडितम् ॥ १ ॥ तत्र गत्वा चित्ररूपं गणं कार्यविशारदम् ॥ प्रेषयामास वैकुंठे लक्ष्मीकार्यार्थसिद्धये ॥ २ ॥ शिव उवाच ॥ चित्ररूप हरिं गत्वा ब्रूहि त्वं वचनान्मम ॥ यथाऽसौ दुःखितां

परम देवी भगवती जगदम्बाकी सम्यक् प्रकारसे शरण ग्रहण करो । यदि पहले ऐसा किया होता तो तुम्हारा मन उस घोड़ेपर क्यों जाता ? व्यासजी बोले—इस प्रकार लक्ष्मीजीको वरदान देकर गौरीपति भगवान शंकर पार्वती सहित अन्तर्धान हो गये और लक्ष्मी वहीं रहकर भगवती जगदम्बाके अत्यन्त मनोहर चरणकमलका ध्यान करनेमें तत्पर हो गयीं । पतिदेव हयका रूप धारण करके यहाँ कब पधारेंगे—इस प्रतीक्षामें प्रेमपूर्वक गद्गद वाणीमें वे बार-बार श्रीहरिकी स्तुति करती रहीं ॥५८–६२॥ इति श्रीदेवीभागवते षष्ठस्कन्धे भाषाटीकायामष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

(अश्वीरूपधारिणी लक्ष्मीको अश्वरूपधारी विष्णु द्वारा पुत्रप्राप्ति) व्यासजी कहते हैं—लक्ष्मीको वर देकर भगवान् शंकर तुरंत देवताओं और अप्सराओंसे सेवित कैलास चले गये। वहाँ जाते ही भगवान् शंकरने परम बुद्धिमान् चित्ररूपको दूत बनाकर लक्ष्मीका कार्य सिद्ध करनेके लिए वैकुण्ठ भेजा ॥ १ ॥ २ ॥ भगवान् शिवने कहा—हे चित्ररूप ! तुम श्रीहरिके पास

जाकर उनसे मेरी बात कह आओ । तुम्हें ऐसा यत्न करना चाहिये कि जिससे वे अपनी पत्नी श्रीलक्ष्मीदेवीका शोक दूर करनेमें संलग्न हो जायँ ॥३॥ भगवान् शंकरके कहनेपर चित्ररूप तुरंत वहाँसे वैकुण्ठके लिए चल पड़ा । वैकुण्ठ बड़ा ही उत्तम धाम है । वहाँ बहुत-से वैष्णव पुरुष निवास करते हैं ॥ ४ ॥ भाँति-भाँतिके दिव्य वृक्षों और सैकड़ों बावलियोंसे उसकी अनुपम शोभा होती रहती है । वहाँ सबत्र दिव्य हंस, सारस, मोर, सुग्गे और कोयलें दृष्टिगोचर होती हैं ॥ ५ ॥ पताकाओंसे सुशोभित ऊँचे-ऊँचे भवन उसकी शोभा बढ़ा रहे हैं । नाचने और गानेवाले दिव्य कलाकारोंसे वह स्थान परिपूर्ण रहता है । पारिजात वृक्ष उसे सुशोभित किये हुए हैं ॥६॥ बकुल, अशोक, तिलक और चम्पाकी पंक्तियाँ उसे मनोहर बनाये हुए हैं । पक्षीगण कानोंको सुख देनेवाली मीठी बोली बोल रहे हैं ॥७॥ वहाँ जानेपर चित्ररूपको भगवान् विष्णुका भवन दिखायी पड़ा । वहाँ जय और विजय नामके दो द्वारपाल हाथोंमें छड़ी लेकर विराजमान थे । चित्ररूप उन्हें प्रणाम करके कहने लगा ॥ ८ ॥ चित्ररूपने कहा—हे द्वारपालो ! तुमलोग शीघ्र परम प्रभु श्रीहरिको समाचार दो कि शंकरका भेजा हुआ दूत द्वारपर आकर खड़ा है ॥९॥ चित्ररूपकी बात

पत्नीं विशोकां च करिष्यति ॥ ३ ॥ इत्युक्तश्चित्ररूपोऽथ निर्जगाम त्वरान्वितः ॥ वैकुंठं परमं स्थानं वैष्णवैश्च गणैर्वृतम् ॥ ४ ॥ नानाद्रुमगणाकीर्णं वापीशतविराजितम् ॥ संजुष्टं हंसकारंडमयूरशुककोकिलैः ॥ ५ ॥ उच्चप्रासादसंयुक्तं पताकाभिरलंकृतम् ॥ नृत्यगीतकलापूर्णं मंदारद्रुमसंयुतम् ॥ ६ ॥ बकुलाशोकतिलकचंपकालिविमंडितम् ॥ कूजितैर्विहगानां तु कर्णाह्लादकरैर्युतम् ॥७॥ संवीक्ष्य भवनं विष्णोर्द्वाःस्थौ प्राह प्रणम्य च ॥ जयविजयनामानौ वेत्रपाणी स्थितावुभौ ॥ ८ ॥ चित्ररूप उवाच ॥ भो निवेदयतं शीघ्रं हरये परमात्मने ॥ दूतं प्राप्तं हरस्यात्र प्रेरितं शूलपाणिना ॥ ९ ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य जयः परमबुद्धिमान् ॥ गत्वा हरिं प्रणम्याह कृतांजलिपुटः पुरः ॥ १० ॥ देवदेव रमाकांत करुणाकर केशव ॥ द्वारि तिष्ठति दूतोऽत्र शंकरस्य समागतः ॥ ११ ॥ आज्ञापय प्रवेष्टव्यो न वेति गरुडध्वज ॥ चित्ररूपधरोऽप्यस्ति न जाने कार्यगौरवम् ॥ १२ ॥ इत्याकर्ण्य हरिः प्राह जयं प्रज्ञातकारणः ॥ प्रवेशयात्र रुद्रस्य भृत्यं समयसंस्थितम् ॥ १३ ॥ इत्याकर्ण्य जयस्तूर्णं गत्वा तं परमाद्भुतम् ॥ एहीत्याकारयामास जयः शंकरसेवकम् ॥ १४ ॥ प्रवेशितो जयेनाथ चित्ररूपस्तथाकृतिः ॥ प्रणम्य दंडवद्विष्णुं कृतांजलिपुटः स्थितः ॥ १५ ॥ दृष्ट्वा तं विस्मयं प्राप भगवान्गरुडध्वजः ॥ चित्ररूपधरं शंभोः सेवकं विनयान्वितम् ॥ १६ ॥ पप्रच्छ तं स्मितं कृत्वा चित्ररूपं

सुनकर परम बुद्धिमान् द्वारपाल जय अन्दर गया । वह श्रीहरिको प्रणाम करके सामने खड़ा हो गया और हाथ जोड़कर कहने लगा—॥१०॥ 'हे देवदेव ! हे रमाकान्त ! हे करुणाकर ! हे केशव ! भगवान् शंकरका दूत द्वारपर आकर ठहरा हुआ है ॥११॥ हे गरुड़ध्वज ! आप आज्ञा दीजिये कि उसे यहाँ आने दिया जाय या नहीं । वह किस कामसे आया है, यह मैं नहीं जानता । उसका नाम चित्ररूप है ॥१२॥ भगवान् विष्णु अन्तर्यामी हैं । दूतके आनेका कारण उनसे छिपा नहीं रहा । जयकी बात सुनकर उन्होंने कहा—'ठीक है, उसे यहाँ ले आओ ।' ॥१३॥ भगवान् शंकरके सेवक चित्ररूप बड़े ही विलक्षण पुरुष थे । श्रीहरिकी आज्ञा पाकर जय तुरंत बाहर गये और चित्ररूपसे बोले—'आइये, अंदर पधारिये ।' ॥ १४ ॥ चित्ररूपका जैसा नाम था, वैसी ही आकृति थी । जयके साथ भीतर जानेपर उन्होंने भगवान् विष्णुको साष्टाङ्ग प्रणाम किया और हाथ जोड़कर खड़े हो गये ॥ १५ ॥ उन्होंने अत्यन्त अद्भुत रूप बना रक्खा था । उनके प्रत्येक अङ्गसे नम्रता

टपक रही थी। यह देखकर विस्मित भगवान् विष्णुने हँसकर चित्ररूपसे पूछा—'हे अनघ! देवाधिदेव भगवान् शंकर सपरिवार कुशलपूर्वक हैं न? ॥१६॥१७॥ उन्होंने तुम्हें यहाँ कैसे भेजा है? स्वयं उनका कोई कार्य है अथवा देवताओंका कोई कार्य सामने उपस्थित हो गया है?' ॥ १८ ॥ दूतने कहा—हे गरुड़ध्वज! इस जगत्की कौन-सी बात आपसे छिपी है। आप तीनों कालकी बातें जानते हैं। फिर भी इस समय जो समस्या उपस्थित है, वह आपसे कहता हूँ ॥१९॥ हे विभो! भगवान् शंकरने आपको उसे बतानेके लिए ही मुझे यहाँ भेजा है। हे प्रभो! मैं उन्हींके कथनानुसार आपसे कह रहा हूँ ॥ २० ॥ हे देवेश! उन्होंने यह कहा है कि 'हे विभो! आपकी भार्या लक्ष्मीदेवी यमुना और तमसा नदीके संगमपर तपस्या कर रही हैं ॥ २१ ॥ सम्पूर्ण कामनाएँ सिद्ध करनेवाली वे देवी घोड़ीका रूप धारण करके इस समय वहाँ पधारी हैं। देवता, मानव, यक्ष और किन्नर प्रायः सभी उनका ध्यान करते हैं ॥ २२ ॥ जगत्में कोई भी मनुष्य उनकी कृपाके बिना सुखी नहीं हो सकता। हे पुण्डरीकाक्ष! हे हरे! फिर आप अपनी पत्नीका परित्याग करके क्या सुख पा रहे हैं? ॥ २३ ॥ हे जगत्पते! दुर्बल और निर्धन व्यक्ति

रमापतिः ॥ कुशलं देवदेवस्य सकुटुम्बस्य चानघ ॥ १७ ॥ कस्मात्त्वं प्रेषितोऽस्यत्र ब्रूहि कार्यं हरस्य किम् ॥ अथवा देवतानां च किंचित्कार्यं समुत्थितम् ॥ १८ ॥ दूत उवाच ॥ किमज्ञातं तवास्तीह संसारे गरुडध्वज ॥ वर्तमानं त्रिकालज्ञ यदहं प्रब्रवीमि वै ॥ १९ ॥ प्रेषितोऽस्मि भवेनात्र विज्ञप्तुं त्वां जनार्दन ॥ हरस्य वचनाद्वाक्यं प्रब्रवीमि त्वयि प्रभो ॥ २० ॥ तेनोक्तमेतद्देवेश भार्या ते कमलालया ॥ तपस्तपति कालिंदीतमसासंगमे विभो ॥ २१ ॥ हयीरूपधरा देवी सर्वार्थसिद्धिदायिनी ॥ ध्यातुं योग्याऽमरगणैर्मानवैर्यक्षकिन्नरैः ॥ २२ ॥ विना तया नरः कोऽपि सुखभागी भवेद्भुवि ॥ तां त्यक्त्वा पुण्डरीकाक्ष प्राप्नोषि किं सुखं हरे ॥ २३ ॥ दुर्बलोऽपि स्त्रियं पाति निर्धनोऽपि जगत्पते ॥ विनाऽपराधं च विभो किं त्यक्ता जगदीश्वरी ॥ २४ ॥ दुःखं प्राप्नोति संसारे यस्य भार्या जगद्गुरो ॥ धिक्तस्य जीवितं लोके निंदितं त्वरिमंडले ॥ २५ ॥ सकामा रिपवस्तेऽद्य दृष्ट्वा तां दुःखितां भृशम् ॥ त्वां वियुक्तं च रमया हसिष्यंति दिवानिशम् ॥ २६ ॥ रमां रमय देवेश त्वदुत्संगगतां कुरु ॥ सर्वलक्षणसंपन्नां सुशीलां च सुरूपिणीम् ॥ २७ ॥ सुखितो भव तां प्राप्य वल्लभां चारुहासिनीम् ॥ कांताविरहजं दुःखं स्मराम्यहमनातुरः ॥ २८ ॥ मम भार्या मृता विष्णो दक्षयज्ञे सती यदा॥ तदाऽहं दुःसहं दुःखं भुक्तवानंबुजेक्षण ॥ २९ ॥ संसारेऽस्मिन्नरः कोऽपि माभून्मत्सदृशोऽपरः ॥ मनसाऽ-

भी अपनी स्त्रीकी रक्षा करता है। हे विभो! फिर आपने जगत्पर प्रभुत्व करनेवाली लक्ष्मीदेवीका त्याग क्यों कर दिया है? ॥२४॥ हे जगद्गुरो! जिसकी भार्या जगत्में दुःखसे समय व्यतीत करती हो, संसारमें उसके जीवनको धिक्कार है। शत्रु भी ऐसे व्यक्तिकी निन्दा करते हैं ॥२५॥ आप अपनी पत्नीसे दूर हैं। ऐसी स्थितिमें अत्यन्त खिन्न उन देवीको तथा आपको देखकर स्वार्थी शत्रु रात-दिन हँसेंगे ॥ २६ ॥ हे देवेश! लक्ष्मीमें सभी शुभ लक्षण विद्यमान हैं। वे बड़ी सुन्दरी और सुशीला हैं। उचित तो यही है कि वे आपके पास रहें और उनके साथ आपका आनन्दपूर्वक समय व्यतीत हो। सुन्दर मुसकानवाली प्रिय पत्नीको पाकर आप सुखसे रहें। स्त्रीके वियोगमें पुरुषपर क्या बीतती है, यह मैं जानता हूँ ॥ २७ ॥ २८ ॥ हे कमलनयन! दक्षके यज्ञमें मेरी प्रिया सती हो गयी थी, तब मुझे असह्य दुःख भोगना पड़ा था ॥ २९ ॥ उसके विरहजनित शोकसे व्याकुल होकर मैं मन ही मन यह मनाया करता था कि मेरे जैसा

दक्षके यज्ञमें मेरी प्रिया सती हो गयी थी, तब मुझे असह्य दुःख भोगना पड़ा था ॥ २९ ॥ उसके विरहजनित शोकसे व्याकुल होकर मैं मन ही मन यह मनाया करता था कि मेरे जैसा

दुखिया संसारमें कोई न हो ॥३०॥ बहुत समय तक कठोर तप करनेके बाद मैंने गिरिजाके रूपमें उसे पाया, जो क्रोधवश दक्षके यज्ञकुण्डमें जल मरी थी ॥ ३१ ॥ हे हरे ! हजार वर्षके लिए अपनी पत्नीको त्यागकर एकाकी रहते हुए आपने कौन-सा सुख प्राप्त कर लिया ? ॥ ३२ ॥ अब आप महाभागा लक्ष्मीके पास जायँ और उन्हें आश्वासन देकर अपने घर ले आयें। जगत्में किसीकी भी सत्ता लक्ष्मीके बिना स्थिर नहीं रह सकती ॥ ३३ ॥ आप कृपया अभी अश्वका रूप धारण करके रमादेवीके पास पधारें। पुत्र उत्पन्न हो जानेके पश्चात् उन देवीको लेकर वैकुण्ठमें चले जायँ ॥३४॥ व्यासजी कहते हैं–हे जनमेजय ! चित्ररूपकी बात सुनकर भगवान् विष्णुने कहा–'बहुत ठीक, ऐसा ही होगा'। फिर उन्होंने चित्ररूपको शंकरके पास जानेकी आज्ञा दे दी ॥३५॥ दूतके चले जानेपर भगवान् विष्णु सुन्दर अश्वका रूप धारण करके वैकुण्ठसे चल पड़े और लक्ष्मीजी अश्वीका रूप धारण करके जहाँ तपस्या कर रही थीं, वे वहाँ पहुँच गये।

करवं शोकं तस्या विरहपीडितः ॥ ३० ॥ कालेन महता प्राप्ता मया गिरिसुता पुनः ॥ तपस्तप्त्वाऽतिदुःसाध्यं या दग्धा तु रुषाऽध्वरे ॥ ३१ ॥ हरे किं सुखमापन्नं त्वया संत्यज्य कामिनीम् ॥ एकाकी तिष्ठता कालं सहस्रवत्सरात्मकम् ॥ ३२ ॥ गत्वाऽऽश्वास्य महाभागां समानय निजालयम् ॥ माभूत्कोऽपीह संसारे विमुक्तो रमया तया ॥३३॥ कृत्वा तुरगरूपं त्वं भजतात्कमलालयाम् ॥ उत्पाद्य पुत्रमायुष्मंस्तामानय शुचिस्मिताम् ॥३४॥ व्यास उवाच ॥ हरिराकर्ण्य तद्वाक्यं चित्ररूपस्य भारत ॥ तथेत्युक्त्वा तु तं दूतं प्रेषयामास शंकरम् ॥ ३५ ॥ गते दूतेऽथ भगवान्वैकुंठात्काम-संयुतः ॥ जगाम धृत्वा तत्राशु वाजिरूपं मनोहरम् ॥ ३६ ॥ यत्र सा वडवारूपं कृत्वा तपति सिंधुजा ॥ विष्णुस्तं देशमासाद्य तामपश्यद्धयीं स्थिताम् ॥ ३७ ॥ साऽपि तं वीक्ष्य गोविन्दं हयरूपधरं पतिम् ॥ ज्ञात्वा वीक्ष्य स्थिता साध्वी विस्मिता साश्रुलोचना ॥ ३८ ॥ तयोस्तु सङ्गमस्तत्र प्रवृत्तो मन्मथार्तयोः ॥ कालिन्दीतमसासंगे पावने लोकविश्रुते ॥ ३९ ॥ सगर्भा सा तदा जाता वडवा हरिवल्लभा ॥ सुषुवे सुन्दरं बालं तत्रैव सगुणोत्तरम् ॥ ४० ॥ तामाह भगवान्वाक्यं प्रहस्य समयाश्रितम् ॥ त्यजाद्य वाडवं देहं पूर्वदेहा भवाधुना ॥ ४१ ॥ गमिष्यावः स्ववैकुण्ठमावां कृत्वा निजं वपुः ॥ तिष्ठत्वत्र कुमारोऽयं त्वया जातः सुलोचने ॥ ४२ ॥ लक्ष्मीरुवाच ॥ स्वदेहसंभवं पुत्रं कथं हित्वा व्रजाम्यहम् ॥ स्नेहः सुदु-स्त्यजः कामं स्वात्मजस्य सुरर्षभ ॥ ४३ ॥ का गतिः स्यादमेयात्मन्बालस्यास्य नदीतटे ॥ अनाथस्यासमर्थस्य विजनेऽल्पतनोरिह ॥ ४४ ॥

उन्होंने जाकर देखा, लक्ष्मीदेवी वहाँ अश्वीरूपमें विराजमान थीं ॥३६॥३७॥ लक्ष्मीकी दृष्टि भी भगवान् विष्णुपर पड़ी। वे तुरंत पहचान गयीं कि ये मेरे साक्षात् पतिदेव ही मुझपर कृपा करके अश्वका रूप धारण करके पधारे हैं तो उनकी आँखोंमें आँसू छलक आये ॥३८॥ यमुना और तमसाके संगमको सब लोग पवित्र मानते हैं। उसी स्थानपर भगवान् विष्णु और लक्ष्मीका परस्पर मिलन हुआ ॥३९॥ अतः अश्वीरूपधारिणी लक्ष्मीजी गर्भवती हो गयीं। वहीं उन्होंने एक अनुपम गुणसम्पन्न और सुन्दर पुत्र उत्पन्न किया ॥४०॥ तदनन्तर भगवान् विष्णुने हँसकर लक्ष्मी-जीसे कहा–'अब तुम अश्वीका शरीर त्यागकर पूर्ववत् दिव्य देह धारण कर लो ॥४१॥ हम दोनों अपने वास्तविक दिव्य शरीर धारण करके वैकुंठ चलेंगे। हे सुलोचने ! तुमसे उत्पन्न हुआ यह कुमार यहीं रहेगा ॥४२॥ लक्ष्मी बोलीं–हे देवसत्तम ! आपके अंशज पुत्रको यहाँ छोड़कर मैं कैसे जाऊँ ? अपने पुत्रका स्नेह त्यागना बड़ा कठिन काम होता है ॥४३॥ इस सूने नदीतटपर इस अनाथ और

असमर्थ बालककी क्या गति होगी ? ॥४४॥ हे कमललोचन ! इस निराश्रित बच्चेको छोड़कर चलनेके लिए मेरा दयापूर्ण हृदय कैसे उद्यत होगा ? ॥४५॥ तब भगवती लक्ष्मी और नारायण दोनों दिव्य शरीर धारण करके एक उत्तम विमानपर विराजमान हुए। तब देवताओंने यशोगान आरम्भ किया ॥४६॥ भगवान अपने परमधाममें पधारना ही चाहते थे कि भगवती लक्ष्मीने प्राणपति श्रीहरिसे कहा—'नाथ ! इस बालकको भी साथ ले लीजिए। मैं इसका त्याग नहीं करना चाहती ॥४७॥ हे प्रभो ! आपके समान प्रतिभायुक्त यह मेरा पुत्र प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय है। हे मधुसूदन ! इसे लेकर ही हम वैकुण्ठ चलें ॥४८॥ श्रीहरि बोले—हे प्रिये ! हे वरानने ! इस अवसरपर खेद प्रकट करना तुम्हारे लिए अवाञ्छनीय है। यह आनन्दपूर्वक यहाँ रह सकता है। क्योंकि इसके भरणपोषणकी व्यवस्था मैं पहलेसे ही कर चुका हूँ ॥४९॥ हे वामोरु! इस पुत्रत्यागमें जो एक प्रधान कारण है, उसे मैं बताता हूँ, सुनो ॥५०॥ भूमण्डलपर ययातिके वंशमें तुर्वसु नामके एक

अनाश्रयं सुतं त्यक्त्वा कथं गंतुं मनो मम ॥ समर्थं सदयं स्वामिन्भवेदम्बुजलोचन ॥४५॥ दिव्यदेहौ ततो जातौ लक्ष्मीनारायणावुभौ ॥ विमानवरसंविष्टौ स्तूयमानौ सुरैर्दिवि ॥ ४६ ॥ गंतुकामं पतिं प्राह कमला कमलापतिम् ॥ गृहाणेमं सुतं नाथ नाहं शक्ताऽस्मि हापितुम् ॥ ४७ ॥ प्राणप्रियोऽस्ति मे पुत्रः कांत्या त्वत्सदृशः प्रभो ॥ गृहीत्वैनं गमिष्यावो वैकुंठं मधुसूदन ॥ ४८ ॥ हरिरुवाच ॥ मा विषादं प्रिये कर्तुं त्वमर्हसि वरानने ॥ तिष्ठत्वयं सुखेनात्र रक्षा मे विहिता त्विह ॥ ४९ ॥ कार्यं किमपि वामोरु वर्तते महदद्भुतम् ॥ निबोध कथयाम्यद्य सुतस्यात्र विमोचने ॥ ५० ॥ तुर्वसुर्नाम विख्यातो ययातितनुजो भुवि ॥ हरिवर्मेति पित्राऽस्य कृतं नाम सुविश्रुतम् ॥ ५१ ॥ स राजा पुत्रकामोऽद्य तपस्तपति पावने ॥ तीर्थे वर्षशतं जातं तस्य वै कुर्वतस्तपः ॥ ५२ ॥ तस्यार्थे निर्मितः पुत्रो मयाऽयं कमलालये ॥ तत्र गत्वा नृपं सुभ्रु प्रेरयिष्यामि सांप्रतम् ॥ ५३ ॥ तस्मै दास्याम्यहं पुत्रं पुत्रकामस्य कामिनि ॥ गृहीत्वा स्वगृहं राजा प्रापयिष्यति बालकम् ॥ ५४ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्याश्वास्य प्रियां पद्मां कृत्वा रक्षां च बालके ॥ विमानवरमारुह्य प्रययौ प्रियया सह ॥५५॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे एकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥

जनमेजय उवाच ॥ संशयोऽयं महानत्र जातमात्रः शिशुस्तथा ॥ मुक्तः केन गृहीतोऽसावेकाकी विजने वने ॥ १ ॥ का गतिस्तस्य

राजा हैं। उनके पिताने उनका लोकप्रसिद्ध नाम हरिवर्मा रक्खा था ॥५१॥ इस समय वे नरेश पुत्रकी इच्छासे एक पवित्र तीर्थमें तपस्या कर रहे हैं। उन्हें तप करते पूरे एक सौ वर्ष व्यतीत हो चुके हैं ॥५२॥ उन्हीं राजा हरिवर्माके लिए मैंने यह पुत्र उत्पन्न किया है। हे सुभ्रु! राजाके पास चलकर हमलोग उन्हें यहाँ भेज देंगे ॥५३॥ हे प्रिये! पुत्रकी अभिलाषा रखनेवाली उन्हीं नरेशको यह बालक सौंप देना है। वे स्नेहपूर्वक इसे अपने घर ले जायँगे ॥ ५४ ॥ व्यासजी कहते हैं—इस प्रकार प्रेयसी भार्या लक्ष्मीको आश्वासन देकर तथा बालककी रक्षाका समुचित प्रबन्ध करके भगवान् विष्णु उत्तम विमानपर बैठकर चले। श्रीलक्ष्मीजी भी उनके साथ विराजमान थीं ॥ ५५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते षष्ठस्कन्धे भाषाटीकायामेकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

जनमेजयने कहा—हे मुनिवर व्यासजी ! इस विषयमें मुझे महान् आश्चर्य है कि भगवानके द्वारा जन्मते ही बालक त्याग दिया गया। निर्जन वनमें उस असहाय पुत्रको किसने

जनमेजयने कहा—हे मुनिवर व्यासजी ! इस विषयमें मुझे महान् आश्चर्य है कि भगवानके द्वारा जन्मते ही बालक त्याग दिया गया । निर्जन वनमें उस असहाय पुत्रको किसने

सम्हाला ? ॥१॥ उस छोटेसे बालकको बाघ-सिंह आदि हिंसक पशु क्यों नहीं उठा ले गये ? उसकी क्या गति हुई ? कृपया बतलाइए ॥ २ ॥ व्यासजी कहते हैं—हे राजन् ! ज्यों ही भगवान् लक्ष्मीनारायण उस स्थानसे ओझल हुए, त्यों ही चम्पक विद्याधर वहाँ जा पहुँचा। उसकी सुन्दरी पत्नी भी साथ थी। घूमते-फिरते हुए ही उत्तम रथपर बैठा हुआ वह वहाँ आया था ॥३॥४॥ उसने देखा कि एक अनुपम बालक पृथिवीपर पड़ा हुआ है ॥५॥ तब चम्पकने रथसे उतरकर तुरंत उस बालकको उठा लिया । उस समय उसे इतना हर्ष हुआ, जैसे कोई निर्धन व्यक्ति धनकी निधि पाकर प्रसन्न हो गया हो ॥ ६ ॥ कामदेवके समान सुन्दर वह बालक उत्पत्तिके समय ही अत्यन्त मनोहर जान पड़ता था । चम्पकने उसे उठाकर अपनी पत्नी मदालसाको सौंप दिया ॥ ७ ॥ मदालसाने जब उस बालकको लिया, तब प्रेमसे उसका शरीर पुलकित हो गया । उसके आनन्दकी सीमा नहीं रही । उसने मुँह चूमकर उस बालकको हृदयसे चिपका लिया ॥८॥

बालस्य जाता सत्यवतीसुत ॥ व्याघ्रसिंहादिभिर्हिंस्रैर्गृहीतो नातिबालकः ॥ २ ॥ व्यास उवाच ॥ लक्ष्मीनारायणौ तस्मात्स्थानाच्च चलितौ यदा ॥ तदैव तत्र चंपाख्यः प्राप्तो विद्याधरः किल ॥ ३ ॥ विमानवरमारूढः कामिन्या सहितो नृप ॥ मदनालसया कामं क्रीडमानो यदृच्छया ॥ ४ ॥ विलोक्य तं शिशुं भूमावेकाकिनमनुत्तमम् ॥ देवपुत्रप्रतीकाशं रममाणं यथासुखम् ॥ ५ ॥ विमानात्तरसोत्तीर्य चंपकस्तं शिशुं जवात् ॥ जग्राह च मुदं प्राप निधिं प्राप्य यथाऽधनः ॥ ६ ॥ गृहीत्वा चंपकः प्रादाद्देव्यै तं मदनोपमम् ॥ मदालसायै तं बालं जातमात्रं मनोहरम् ॥ ७ ॥ सा गृहीत्वा शिशुं प्रेम्णा सरोमांचा सविस्मया ॥ मुखं चुचुम्ब बालस्य कृत्वा तु हृदये भृशम् ॥ ८ ॥ आलिंगितश्चुंबितश्च तयाऽसौ प्रीतिपूर्वकम् ॥ उत्संगे च कृतस्तन्व्या पुत्रभावेन भारत ॥ ९ ॥ कृत्वांके तौ समारूढौ विमानं दंपती मुदा ॥ पतिं पप्रच्छ चार्वंगी प्रहस्य मदनालसा ॥ १० ॥ कस्यायं बालकः कान्त त्यक्तः केन च कानने ॥ पुत्रोऽयं मम देवेन दत्तस्त्र्यंबकधारिणा ॥ ११ ॥ चंपक उवाच ॥ प्रिये गत्वाऽद्य पृच्छेयं शक्रं सर्वज्ञमाशु वै ॥ देवो वा दानवो वाऽपि यंधर्वो वा शिशुः किल ॥१२॥ तेनाज्ञप्तः करिष्यामि पुत्रं प्राप्तं वनादमुम् ॥ अपृष्ट्वा नैव कर्तव्यं कार्यं किंचिन्मया ध्रुवम् ॥ १३ ॥ इत्युक्त्वा तां गृहीत्वा तं विमानेनाथ चंपकः ॥ ययौ शक्रपुरं तूर्णं हर्षेणोत्फुल्ललोचनः ॥१४॥ प्रणम्य पादयोः प्रीत्या चंपकस्तु शचीपतिम् ॥ निवेद्य बालकं प्राह कृतांजलिपुटः स्थितः ॥१५॥ देवदेव मया लब्धस्तीर्थे परमपावने ॥ कालिंदीतमसासंगे बालकोऽयं स्मरप्रभः ॥१६॥

हे भारत ! प्रसन्नतापूर्वक हृदयसे चिपकाने और चूमनेके पश्चात् मदनालसाने उसे अपना पुत्र मानकर गोदमें ले लिया ॥ ९ ॥ तदनन्तर वे दोनों स्त्री-पुरुष रथपर जा बैठे । बालक मदनालसाकी गोदमें था । तब उस सुन्दरी भार्याने हँसकर अपने पतिदेव चम्पकसे पूछा—॥ १० ॥ 'हे कान्त ! यह बालक किसका है ? किसने इसे वनमें छोड़ दिया है ?' मुझे तो इसे शिवजीने दिया है ॥ ११ ॥ चम्पकने कहा—प्रिये ! इन्द्र सर्वज्ञ हैं । मैं अभी चलकर उनसे पूछता हूँ कि यह बालक देवता है, दानव है अथवा गन्धर्व ? ॥१२॥ उनसे आज्ञा पाकर ही इस बालकको मैं अपना पुत्र बनाऊँगा । मेरे विचारमें उनसे बिना पूछे कोई कार्य करना अनुचित है ॥ १३ ॥ यों कहकर चम्पक अपनी स्त्री और उस बालकके सहित तुरन्त अमरावतीको चल पड़ा । हर्षके उद्रेकसे उसके नेत्र खिल उठे थे ॥ १४ ॥ वहाँ पहुँचकर चम्पकने इन्द्रके चरणोंमें प्रीतिपूर्वक मस्तक झुकाया और बालकको सामने उपस्थित करके हाथ जोड़कर बैठ गया ॥ १५ ॥

उसने उनसे कहा—'हे देवेश्वर! यमुना और तमसा नदीके संगमको लोग परम पावन तीर्थ मानते हैं। वहीं कामदेवके समान कान्तिवाला यह बालक मुझे प्राप्त हुआ है॥१६॥ हे शचीपते! यह बालक किसका पुत्र है? इसे क्यों वहाँ छोड़ दिया गया था? आपकी आज्ञा हो तो मैं इस बालकको अपना पुत्र बना लूँ॥ १७ ॥ इस अत्यन्त सुन्दर बालकसे मेरी पत्नी भी स्नेह करती है। धर्मशास्त्रमें ऐसा कथन है कि कृत्रिम पुत्र भी अपना बनाया जा सकता है' ॥ १८॥ इन्द्र बोले—हे महाभाग! वह बालक अश्वरूपधारी भगवान् विष्णुका पुत्र है। इसकी जननी स्वयं भगवती लक्ष्मी हैं। इस परम तपस्वी बालकका नाम 'हैहय' है॥ १९ ॥ विष्णु ययातिके वंशज राजा हरिवर्माको यह पुत्र देना चाहते हैं। हरिवर्मा बड़े धार्मिक नरेश हैं। श्रीहरि उन्हें पुत्र-प्राप्तिके लिए अभी उस पवित्र तीर्थमें जानेकी आज्ञा देंगे। भगवान्‌की आज्ञा पाकर हरिवर्माके वहाँ पहुँचनेसे पहले ही तुम इस मनोहर बालकको लेकर वहाँ पहुँच जाओ और इसे वहीं रख

कस्यायं बालकः कांतः कथं त्यक्तः शचीपते ॥ आज्ञा चेत्तव देवेश कुर्वेऽहं बालकं सुतम् ॥ १७ ॥ अतीव सुंदरो बालः प्रियाया वल्लभः सुतः ॥ कृत्रिमस्तु सुतः प्रोक्तो धर्मशास्त्रेषु सर्वथा ॥ १८ ॥ इन्द्र उवाच ॥ पुत्रोऽयं वासुदेवस्य वाजिरूपधरस्य ह ॥ हैहयोऽयं महाभाग लक्ष्म्या जातः परंतपः ॥१९॥ उत्पादितो भगवता कार्यार्थं किल बालकः ॥ दातुं नृपतये नूनं ययातितनयाय च ॥२०॥ हरिणा प्रेरितः सोऽद्य राजा परमधार्मिकः ॥ आगमिष्यति पुत्रार्थं तीर्थे तस्मिन्मनोरमे ॥ २१ ॥ तावत्त्वं गच्छ तत्रैव गृहीत्वा बालकं शुभम् ॥ यावन्न याति नृपतिर्गृहीतुं हरिणेरितः ॥२२॥ गत्वा तत्र विमुंचैनं विलंबं मा कृथा वर ॥ अदृष्ट्वा बालकं राजा दुःखितश्च भविष्यति ॥२३॥ तस्माच्चंपक मुंचैनं राजा प्राप्नोतु पुत्रकम् ॥ एकवीरेति नाम्नाऽयं ख्यातः स्यात्पृथिवीतले ॥ २४ ॥ व्यास उवाच ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा चंपकस्त्वरयान्वितः ॥ जगाम पुत्रमादाय स्थले तस्मिन्महीपते ॥ २५ ॥ मुमोच बालकं तत्र यत्र पूर्वं स्थितो ह्यभूत् ॥ आरुह्य स्वविमानं तु ययौ स्वाश्रममंडलम् ॥२६॥ तदैव कमलाकांतो लक्ष्म्या सह जगद्गुरुः ॥ विमानवरमारूढो जगाम नृपतिं प्रति ॥२७॥ दृष्टस्तदा तेन नृपेण विष्णुः समुत्तरंस्तत्र विमानमुख्यात् ॥ जहर्ष राजा हरिदर्शनेन पपात भूमौ खलु दंडवच्च ॥२८॥ उत्तिष्ठ वत्सेति हरिः पतंतमाश्वासयद्भूमिगतं स्वभक्तम् ॥ सोऽप्युत्सुको वासुदेवं पुरःस्थं तुष्टाव भक्त्या मुखरीकृतोऽथ ॥ २९ ॥ देवाधिदेवाखिललोकनाथ कृपानिधे लोकगुरो रमेश ॥ मंदस्य मे ते किल दर्शनं यत्सुदुर्लभं योगिजनैरलभ्यम् ॥ ३० ॥ ये निःस्पृ-

दो। विलम्ब करनेसे ठीक नहीं होगा। कारण, वहाँ बालक न मिलेगा तो राजा अत्यन्त दुखी हो जायँगे। भूमण्डलपर यह बालक 'एकवीर' नामसे प्रसिद्ध होगा ॥२०–२४॥ व्यासजी कहते हैं—हे राजन्! देवराज इन्द्रकी बातें सुनकर चम्पक उसी क्षण बालकको लेकर वहाँसे चल पड़ा और उसे जहाँसे उठाया था, वहीं ले जाकर रख दिया। तदनन्तर विमानपर बैठकर वह अपने घर लौट गया ॥ २५ ॥ २६ ॥ उसी समय लक्ष्मीजीके साथ विमानपर बैठकर जगद्गुरु भगवान् नारायण तप करते हुए राजाके पास पधारे ॥२७॥ राजा हरिवर्माने देखा—'भगवान विमानसे उतर रहे हैं। अब राजाके हर्षकी सीमा न रही। वे दण्डके समान भगवान्‌के सामने पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ २८ ॥ पृथ्वीपर पड़े हुए अपने उस भक्तको भगवान्‌ने आश्वासन दिया और कहा—'वत्स! उठो!' तब राजा हरिवर्माने भक्तिपूर्वक श्रीहरिकी इस प्रकार स्तुति की—॥ २९ ॥ 'हे देवेश्वर! हे अखिललोकप्रभो! हे कृपानिधे! हे जगद्गुरो! हे रमेश! मुझ

दिया और कहा—'वत्स ! उठो !' तब राजा हरिवर्माने भक्तिपूर्वक श्रीहरिकी इस प्रकार स्तुति की—॥ २९ ॥ 'हे देवेश्वर ! हे अखिललोकप्रभो! हे कृपानिधे! हे जगद्गुरो! हे रमेश! मुझ

अज्ञानी जनके लिये आपका दर्शन अवश्य ही अत्यन्त दुर्लभ था। क्योंकि योगीलोग भी इसे पानेमें असफल रहते हैं ॥३०॥ जिनकी स्पृहा शान्त हो चुकी है तथा जो विषयोंसे सदा विरक्त हैं, उन्हींको आपका दर्शन मिलना सम्भव है। हे अनन्त ! हे देवदेव ! मैं आशा लगाये बैठा था। वस्तुतः मैं आपके दर्शन पानेका अधिकारी नहीं था ॥ ३१ ॥ इस प्रकार राजा हरिवर्माके स्तुति करनेपर भगवान् विष्णुने अमृतमयी वाणीमें उनसे कहा—'राजन् ! मैं तुम्हारी तपस्यासे परम संतुष्ट हूँ और तुम्हें अभिलिषित वर दे रहा हूँ, इसे स्वीकार करो' ॥३२॥ उस समय भगवान राजा हरिवर्माके सामने विराजमान थे। राजाने उनके चरणोंमें मस्तक झुकाकर कहा—'हे मुरारे! मैंने आप जैसा पुत्र पानेके लिए तप किया है' ॥३३॥ राजा हरिवर्माकी प्रार्थना सुनकर देवाधिदेव भगवान् श्रीविष्णुने उनसे कहा—'हे ययातिनन्दन ! तुम यमुना और तमसा नदीके पावन संगमतीर्थपर अभी चले जाओ ॥ ३४ ॥ तुम जैसा चाहते हो, वैसा ही पुत्र मैंने वहाँ रख छोड़ा है। हे राजन् ! मेरे वीर्यसे उत्पन्न उस पुत्रमें असीम शक्ति है। लक्ष्मी स्वयं उसकी जननी हैं। तुम्हारे ही लिये उसे उत्पन्न किया गया है। अतः तुम उसे स्वीकार करो ॥३५॥

हास्ते विषयैरपेतास्तेषां त्वदीयं खलु दर्शनं स्यात् ॥ आशापरोऽहं भगवन्ननन्त योग्यो न ते दर्शने देवदेव ॥ ३१ ॥ इति स्तुतस्तेन नृपेण विष्णुस्तमाह वाक्येन सुधामयेन ॥ वृणीष्व राजन्मनसेप्सितं ते ददामि तुष्टस्तपसा तवेति ॥३२॥ ततो नृपस्तं प्रणिपत्य पादयोः प्रोवाच विष्णुं पुरतः स्थितं च ॥ तपस्तु तप्तं हि मया सुतार्थे पुत्रं ददस्वात्मसमं मुरारे ॥ ३३ ॥ श्रुत्वा नृपप्रार्थितमादिदेवस्तमाह राजानममोघवाक्यम् ॥ ययातिसूनो व्रज तेऽत्र तीर्थे कलिंदकन्यातमसाप्रसंगे ॥ ३४ ॥ मयाऽद्य पुत्रस्तु यथेप्सितस्ते तत्रैव मुक्तोऽस्त्यमितप्रभावः ॥ लक्ष्म्याः प्रसूतो मम वीर्यजश्च कृतस्तवार्थेऽथ गृहाण राजन् ॥ ३५ ॥ श्रुत्वा हरेर्वाक्यमतीवं मृष्टं संतुष्टचित्तः प्रबभूव राजा ॥ हरिस्तु दत्त्वेति वरं जगाम वैकुण्ठलोकं रमया युतश्च ॥३६॥ गते हरौ सोऽथ ययातिसूनुर्ययावनुद्धातरथेन राजा ॥ प्रेमान्वितस्तत्र सुतोऽस्ति यत्र वचो निशम्येति जनार्दनस्य ॥३७॥ स तत्र गत्वाऽतिमनोहरं तं ददर्श बालं भुवि खेलमानम् ॥ मुखे निवेश्यैककरेण कृत्वा श्लक्ष्णं पदांगुष्ठमनन्यसत्त्वः ॥ ३८ ॥ तं वीक्ष्य पुत्रं मदनस्वरूपं नारायणांशं कमलाप्रसूतम् ॥ हरिप्रभावं हरिवर्मनामा हर्षप्रफुल्लाननपंकजोऽभूत् ॥ ३९ ॥ गृह्णन्सुवेगात्करपंकजाभ्यां बभूव प्रेमार्णवमग्नदेहः ॥

भगवान् विष्णुकी वाणी बड़ी ही मधुर थी। उसे सुनकर राजा हरिवर्माके मनमें प्रसन्नताकी लहरें उठने लगीं। उधर भगवान् उन्हें वर देकर लक्ष्मीजीके साथ वैकुण्ठ चले गये ॥ ३६ ॥ भगवान्के चले जानेपर ययातिनन्दन राजा हरिवर्मा एक अत्यन्त सुदृढ़ रथपर सवार होकर प्रसन्नतापूर्वक वहाँ गये, जहाँ वह बालक विराजमान था। भगवान्के मुखारविन्दसे वे सब बातें सुन ही चुके थे ॥ ३७ ॥ वहाँ जानेपर हरिवर्माने उस अत्यन्त मनोहर बालकको देखा, जो जमीनपर खेलता हुआ एक हाथसे पैरके अँगूठेको पकड़कर धीरे-धीरे चूस रहा था ॥ ३८ ॥ उसकी कामदेवके समान कान्ति थी। लक्ष्मीके उदरसे उत्पन्न वह बालक भगवान् नारायणका अंश था। श्रीहरिके तुल्य ही उसमें भी शक्ति थी। उसे देखकर हरिवर्माके नेत्रकमल हर्षसे खिल उठे ॥ ३९ ॥ प्रेमके समुद्रमें गोता खाते हुए उन नरेशने तुरन्त उस बालकको अपने करकमलोंसे उठा लिया। उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक उसका मस्तक सूँघा और उसे गोदमें लेकर वे अत्यन्त

आनन्दित हुए। उसके अत्यन्त सुन्दर मुखको देखते ही उनकी आँखोंसे प्रेमाश्रु गिरने लगे। राजाने उस बालकसे कहा—'पुत्र! माता लक्ष्मी और भगवान् विष्णुके कृपाप्रसादसे तुम मुझे प्राप्त हुए हो। क्योंकि नरक-भोगके दुःखसे डरकर मैंने तुम जैसे पुत्रके लिए कठिन तपस्या की है। तपस्याके सौ वर्ष पूरे होनेपर लक्ष्मीकान्त भगवान् नारायणने सांसारिक सुख भोगनेके लिए तुमको पुत्र बनाकर मुझे सौंपा है ॥ ४० ॥ ४१ ॥ लक्ष्मी तुम्हारी जननी हैं। उन्होंने तुम्हें उत्पन्न करके मेरे लिये छोड़ दिया है। स्वयं भगवान विष्णुके साथ वे वैकुण्ठ चली गयी हैं। उस माताको धन्यवाद है, जो तुम-जैसा हँसमुख बालकको गोदमें लेकर आनन्द मनायेगी ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ हे पुत्र! तुम संसारसागरको पार करनेके लिये नौका-स्वरूप हो। भगवान नारायण तुम्हारे निर्माता हैं।' इस प्रकार कहकर राजा हरिवर्मा प्रसन्नतापूर्वक उस पुत्रको लेकर नगरके लिये प्रस्थित हुए ॥ ४४ ॥ अभी राजा नगरके निकट पहुँचे ही थे कि यह समाचार पाकर उनका मन्त्रिमंडल और प्रजावर्ग अगवानीके लिए तैयार हो गया। पुरोहितोंको साथ लेकर भेंटकी सामग्री लिये तथा सूत-बंदीजन और गायकोंके साथ वे सब उनकी अगवानीके लिए पहुँचे।

मूर्धन्युपाघ्राय मुदान्वितोऽसौ ननंद राजा सुतमालिलिंग ॥ ४० ॥ मुखं समीक्ष्यातिमनोहरं तमुवाच नेत्रांबुनिरुद्धकंठः ॥ दत्तोऽसि देवेन जनार्दनेन मात्रा हि पुत्रावमदुःखभीतेः ॥४१॥ तप्तं मया पुत्र तपस्तवार्थे सुदुष्करं वर्षशतं च पूर्णम् ॥ तेनैव तुष्टेन रमाप्रियेण दत्तोऽसि संसारसुखोदयाय ॥४२॥ माता रमा त्वां तनुजं मदर्थे त्यक्त्वा गता सा हरिणा समेता ॥ धन्या तु सा या प्रहसंतमंके कृत्वा सुतं त्वां मुदिताननना स्यात्॥४३॥ त्वमेव संसारसमुद्रनौकारूपः कृतः पुत्र लक्ष्मीवरेण ॥ इत्येवमुक्त्वा नृपतिः सुतं तं मुदा समादाय ययौ गृहाय ॥४४॥ पुरीसमीपे नृपमागतं तमाकर्ण्य सर्वे सचिवास्तु राज्ञः ॥ ययुः समीपं नृपतेश्च लोकाः सोपायनास्ते सपुरोहिताश्च ॥४५॥ बंदीजना गायनकाश्च सूताः समाययुः संमुखमाशु राज्ञः॥ नृपः पुरं प्राप्य पुरः समागतं जनं समाश्वास्य वाक्यैश्च दृष्ट्या ॥४६॥ संपूजितः पौरजनेन राजा विवेश पुत्रेण युतो नगर्याम् ॥ मार्गेषु लाजैः कुसुमैः समन्ताद्विकीर्यमाणो नृपतिर्जगाम ॥४७॥ गृहं समृद्धं सचिवैः समेतः सुतं समादाय मुदा कराभ्याम् ॥ राज्ञ्यै ददौ चाथ सुतं मनोज्ञं सद्यः प्रसूतं च मनोभवाभम् ॥ ४८ ॥ राज्ञी गृहीत्वाऽभिनवं तनूजं पप्रच्छ राजानमनिंदिता सा ॥ राजन्कुतश्चैष सुतः सुजन्मा प्राप्तस्त्वया मन्मथतुल्यरूपः ॥४९॥ केनैष दत्तः कथयाशु कांत चेतो मदीयं प्रहृतं सुतेन ॥ नृपस्तदोवाच मुदान्वितोऽसौ प्रिये रमेशेन सुतो हि मह्यम् ॥५०॥ लोलाक्षि दत्तः कमलासमुत्थो जनार्दनांशोऽयमहीनसत्त्वः ॥

नगरमें पहुँचनेपर राजा हरिवर्माने बातचीत करके तथा सबकी ओर दृष्टि दौड़ाकर प्रायः सबको आश्वासित किया ॥४५॥४६॥ नागरिक सम्यक् प्रकारसे उनका स्वागत करनेके लिये तैयार थे। जब राजा हरिवर्माने पुत्रको लेकर नगरमें प्रवेश किया, तब मार्गमें उनके ऊपर चारों ओरसे धानका लावा और फूलोंकी वर्षा होने लगी ॥४७॥ प्रजाके द्वारा यों सम्मानित होकर वे नरेश मन्त्रियोंके साथ अपने समृद्धिशाली महलमें गये। हर्षपूर्वक उस अभिनव पुत्रको हाथमें लेकर उन्होंने रानीको सौंप दिया। उस सद्यःप्रसूत पुत्रकी कान्ति कामदेवकी तुलना कर रही थी ॥४८॥ महाराज हरिवर्माकी रानी भी बड़ी साध्वी थीं। उन्होंने उस अभिनव पुत्रको गोदमें लेकर राजासे पूछा—'हे महाराज! कामदेवके समान सुन्दर यह सुजन्मा पुत्र आपको कहाँसे प्राप्त हुआ है? ॥ ४९ ॥ हे कान्त! आप शीघ्र बतानेकी कृपा करें कि आपको किसने यह सुन्दर पुत्र प्रदान किया है? इसको देखकर मेरा मन अपने वशमें नहीं है।' तब राजाने बड़ी प्रसन्नताके

॥ ४९ ॥ हे कान्त ! आप शीघ्र बतानेकी कृपा करें कि आपको किसने यह सुन्दर पुत्र प्रदान किया है ? इसको देखकर मेरा मन अपने वशमें नहीं है ।' तब राजाने बड़ी प्रसन्नताके

साथ रानीसे कहा—'प्रिये ! भगवान् लक्ष्मीनारायणने मुझे यह पुत्र प्रदान किया है ॥५०॥ हे लोलाक्षी ! इस महान् शक्तिशाली पुत्रकी जननी साक्षात् भगवती लक्ष्मी हैं । भगवान् विष्णुके अंशसे इसका प्राकट्य हुआ है ।' अब रानी उस बालकको लेकर आनन्दमें निमग्न हो गयीं । राजाने बड़े समारोहके साथ पुत्रोत्सव मनाया ॥ ५१ ॥ याचकोंको प्रचुर दान दिया । बहुतसे बाजे बजे और गीत गाये गये । यों उत्सव करके हरिवर्माने अपने पुत्रका नाम 'एकवीर' रक्खा ॥ ५२ ॥ महाराज हरिवर्मा इन्द्रके समान पराक्रमी थे । विष्णुके सदृश गुणवाले पुत्रको पाकर उनके मनमें अपार हर्ष हुआ । अब पितृऋणसे मुक्त होकर वे आनन्दपूर्वक समय व्यतीत करने लगे ॥ ५३ ॥ इस प्रकार सभी गुणोंके भंडार भगवानके द्वारा प्रदत्त एवं सर्वगुण-सम्पन्न पुत्र प्राप्त करके अपनी पत्नीसे सेवित राजा हरिवर्मा विविध सुखोंको भोगते हुए सानन्द रहने लगे ॥ ५४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते षष्ठस्कन्धे भाषाटीकायां विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

(एकवीरचरित्र) व्यासजी बोले—हे राजन् ! तदनन्तर महाराज हरिवर्माने बालकके जातकर्म आदि सभी संस्कार सम्पन्न किये। उसके लालन-पालनकी पूर्ण व्यवस्था की और वह बालक

सा तं गृहीत्वा मुदमाप राज्ञी राजा चकारोत्सवमद्भुतं च ॥ ५१ ॥ ददौ च दानं किल याचकेभ्यो गीतानि वाद्यानि बहूनि नेदुः ॥ कृत्वोत्सवं भूपतिरात्मजस्य नामैकवीरेति चकार विश्रुतम् ॥ ५२ ॥ सुखं च संप्राप्य मुदान्वितोऽसौ ननन्द देवाधिपतुल्यवीर्यः ॥ पुत्रं हरे रूपगुणानुरूपं संप्राप्य वंशस्य ऋणाच्च मुक्तः ॥ ५३ ॥ इति सकलसुराणामीश्वरेणार्पितं तं सकलगुणगणाढ्यं पुत्रमासाद्य राजा ॥ विविधसुखविनोदैर्भार्यया सेव्यमाने व्यहरत निजगेहे शक्रतुल्यप्रतापः ॥ ५४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

॥ व्यास उवाच ॥ जातकर्मादिसंस्कारांश्चकार नृपतिस्तदा ॥ दिने दिने जगामाशु वृद्धिं बालः सुलालितः ॥ १ ॥ नृपः संसारजं प्राप्य सुखं पुत्रसमुद्भवम् ॥ ऋणत्रयविमोक्षं च मेने तेन महात्मना ॥ २ ॥ षष्ठेऽन्नप्राशनं तस्य कृत्वा मासि यथाविधि ॥ तृतीयेऽथ तथा वर्षे चूडाकरण-मुत्तमम् ॥ ३ ॥ चकार ब्राह्मणान्द्रव्यैः संपूज्य विविधैर्धनैः ॥ गोभिश्च विविधैर्दानैर्याचकानितरानपि ॥ ४ ॥ वर्षे चैकादशे तस्य मौंजीबंधनकर्म वा ॥ कारयित्वा धनुर्वेदमध्यापयत पार्थिवः ॥ ५ ॥ अधीतवेदं पुत्रं तं राजधर्मविशारदम् ॥ दृष्ट्वा तस्याभिषेकाय मतिं चक्रे जनाधिपः ॥ ६ ॥ पुष्यार्कयोगसंयुक्ते दिवसे नृपसत्तमः ॥ कारयामास संभारानभिषेकार्थमादरात् ॥ ७ ॥ द्विजानाहूय वेदज्ञान्सर्वशास्त्रविचक्षणान् ॥ अभिषेकं चका-

बड़ी शीघ्रतासे दिन-दिन बढ़ने लगा ॥ १ ॥ इस प्रकार पुत्रजनित सांसारिक सुख पाकर उन महात्मा नरेशने अपने मनमें यह अनुभव किया कि अब मेरे तीनों ऋण चुक गये ॥२॥ छठें महीनेमें बालकका विधिपूर्वक अन्नप्राशन किया । तीसरे वर्ष उसका मुण्डन-संस्कार हुआ ॥३॥ प्रत्येक संस्कारमें ब्राह्मणोंकी सम्यक् प्रकारसे पूजा की गयी। उन्हें तरह-तरहके दान दिये गये। गौएँ दी गयीं । विविध दानोंसे अन्य याचकोंको भी संतुष्ट किया गया ॥४॥ ग्यारहवें वर्षमें राजाने यज्ञोपवीत-संस्कार कराकर उसको धनुर्वेद पढ़ानेकी व्यवस्था की ॥ ५ ॥ जब राजा हरिवर्माने देखा कि राजकुमारने धनुर्विद्या सीख ली और राजधर्मके सभी अङ्ग इसे भली-भाँति अवगत हो गये, तब उनके मनमें आया कि अब इसका राज्याभिषेक कर देना चाहिये ॥६॥ तदनुसार पुष्यार्क योगमें बड़े आदरके साथ अभिषेकमें काम आनेवाली सभी सामग्रियाँ एकत्र की गयीं ॥ ७ ॥ सम्पूर्ण शास्त्रोंके पारगामी वेदज्ञ बुलाये गये । यों उन नरेशने राजकुमार-

का विधिवत् अभिषेक सम्पन्न किया ॥ ८ ॥ उस शुभ अवसरपर स्वयं राजाने तीर्थों और समुद्रोंके जलसे राजकुमारका अभिषेक किया ॥ ९ ॥ ब्राह्मणोंको धन देनेके पश्चात् राजाने कुमारको राजगद्दीपर बैठानेकी व्यवस्था की। यों एकवीरको राजा बनाकर और सुयोग्य मन्त्रियोंको नियुक्त करके महाराज हरिवर्मा रानीसहित वनमें चले गये। उन्होंने इन्द्रियोंपर पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लिया था ॥१०॥११॥ अब मैनाकपर्वतके शिखरपर उनका तृतीय वानप्रस्थ आश्रम व्यतीत होने लगा। वहाँ वे जंगली पत्ते और फल खाकर निरन्तर भगवती पार्वतीकी आराधनामें जुटे रहे ॥१२॥ इस प्रकार रानीसहित राजाकी दिनचर्या चलने लगी। प्रारब्ध-कर्म शेष होनेपर उनका पाञ्चभौतिक शरीर शान्त हो गया। अपने शुभ कर्मके प्रभावसे उन्होंने स्वर्गलोकमें स्थान प्राप्त किया ॥१३॥ पिताजीका स्वर्गवास हो गया—यह सुनकर हैहय (एकवीर) ने वैदिक विधिके अनुसार उनका और्ध्वदैहिकसंस्कार किया ॥ १४ ॥ पिताकी सभी क्रियाएँ सम्पन्न हो जानेपर मेधावी राजकुमार उनसे मिले हुए राज्यपर शासन करने लगे ॥ १५ ॥ वे बड़े धर्मज्ञ पुरुष थे। सर्वोत्कृष्ट राज्यके अधिकारी होनेपर उन्हें तरह-तरहके भोग सुलभ हो गये। मन्त्रि-

रासौ विधिवत्स्वात्मजस्य ह ॥ ८ ॥ जलमानीय तीर्थेभ्यः सागरेभ्यश्च पार्थिवः ॥ स्वयं चकार विधिवदभिषेकं शुभे दिने ॥ ९ ॥ धनं दत्त्वाऽथ विप्रेभ्यो राज्यं पुत्रे निवेश्य सः ॥ जगाम वनमेवाशु स्वर्गकामः स भूपतिः ॥ १० ॥ एकवीरं नृपं कृत्वा संमान्य सचिवानथ ॥ भार्यया सह भूपालः प्रविवेश वनं वशी ॥ ११ ॥ मैनाकशिखरे राजा कृत्वा तार्तीयमाश्रमम् ॥ नित्यं पत्रफलाहारश्चिंतयामास पार्वतीम् ॥ १२ ॥ एवं स नृपतिः कृत्वा दिष्टांते सह भार्यया ॥ मृतोऽसौ वासवं लोकं गतः पुण्येन कर्मणा ॥ १३ ॥ इन्द्रलोकं पिता प्राप्त इति श्रुत्वाऽथ हैहयः ॥ चकार वेदनिर्दिष्टं कर्म चैवौर्ध्वदैहिकम् ॥ १४ ॥ कृत्वोत्तराः क्रियाः सर्वाः पितुः पार्थिवनन्दनः ॥ राज्यं चकार मेधावी पित्रा दत्तं सुसंमतम् ॥ १५ ॥ एकवीरोऽथ धर्मज्ञः प्राप्य राज्यमनुत्तमम् ॥ बुभुजे विविधान्भोगान्सचिवैश्च सुमानितः ॥ १६ ॥ एकस्मिन्दिवसे राजा मंत्रिपुत्रैः समन्वितः ॥ जगाम जाह्नवीतीरे हयारूढः प्रतापवान् ॥१७॥ संपश्यन्पादपान्रम्यान्कोकिलालापसंयुतान् ॥ पुष्पितान्फलसंयुक्तान्षट्पदालिविराजितान् ॥१८॥ मुनीनामाश्रमान्दिव्यान्वेदध्वनिनिनादितान् ॥ होमधूमावृताकाशान्मृगशावसमावृतान् ॥ १९ ॥ केदाराञ्छालिसम्पक्वान्गोपिकाभिः सुरक्षितान् ॥ प्रफुल्लपङ्कजारामान्निकुञ्जांश्च मनोरमान् ॥ २० ॥ प्रेक्षमाणः प्रियालांस्तु चम्पकान्पनसद्रुमान् ॥ बकुलांस्तिलकान्नीपान्मन्दारांश्च प्रफुल्लि-

मण्डल उनका बड़ा सम्मान करता था ॥१६॥ एक समयकी बात है—प्रतापी राजा एकवीर बहुत-से मन्त्रिकुमारोंके साथ घोड़ेपर सवार होकर गङ्गाके तटपर गये ॥१७॥ उन्होंने देखा, फलों और फूलोंसे लदे हुए मनोहर वृक्ष वहाँ शोभा पा रहे थे। कोकिलोंकी ध्वनि और भौंरोंकी गुनगुनाहटसे उन वृक्षोंकी अनुपम शोभा हो रही थी ॥१८॥ वहाँ मुनियोंके अनेक दिव्य आश्रम थे। निरन्तर वेदध्वनि हो रही थी। हवनके धुएँसे आकाश भर गया था। जहाँ-तहाँ मृगोंके छोटे-छोटे बच्चे छलाँग मार रहे थे ॥१९॥ धानकी बहुतसी पकी हुई क्यारियाँ थीं। ग्वालिनियाँ उन खेतोंकी रक्षापर नियुक्त थीं। फूले हुए कमलोंसे सुशोभित बहुतसे सरोवर और मनको लुभानेवाले वन भी दृष्टिगोचर हुए ॥२०॥ अशोक, चम्पा, कटहल, बकुल, तिलक, कदम्ब, फूले हुए पारिजात, साखू, ताल, तमाल, आम और जामुन आदि वृक्षोंपर उनकी दृष्टि पड़ी। कुछ दूर आगे बढ़नेपर उन्हें एक खिला हुआ शतपत्र कमल दिखायी दिया। उस कमलसे बड़ी

उत्कृष्ट गन्ध निकल रही थी। राजा एकवीरने देखा, वहीं जलके दक्षिण भागमें कमलके समान नेत्रवाली एक सुन्दरी कन्या रो रही थी। उसके शरीरकी कान्ति सुवर्ण-जैसी थी। मनोहर केश थे। शङ्खके समान ग्रीवा थी। ओंठ ऐसे जान पड़ते थे, मानो बिम्बाफल हों। कमर पतली थी। नासिका बड़ी सुन्दर थी। उसके प्रायः सभी अङ्ग मनोहर थे। वह अपनी सखीसे बिछुड़कर अत्यंत दुःखपूर्वक विलाप कर रही थीं ॥२१–२५॥ उसकी आँखोंसे आँसू गिर रहे थे। उस निर्जन वनमें वह फूट-फूटकर रो रही थी। जान पड़ता था, मानो कोई कुररी पक्षी विलाप कर रही हो। ऐसी स्थितिमें पड़ी हुई उस कन्याको देखकर राजा एकवीरने उससे शोकका कारण पूछते हुए कहा–॥ २६ ॥ 'हे सुनसे! तुम कौन हो? हे शुभानने! तुम्हारे पिता कौन हैं? हे सुन्दरी! तुम किसी गन्धर्व अथवा देवताकी कन्या तो नहीं हो? तुम्हारे रोनेका क्या कारण है? ॥२७॥ हे बाले! तुम अकेली क्यों खड़ी हो? हे पिकस्वरे! तुम्हें यहाँ किसने छोड़ दिया

तान् ॥ २१ ॥ शालांस्तालास्तमालांश्च जम्बूचूतकदम्बकान् ॥ स गच्छञ्जाह्नवीतोये प्रफुल्लं शतपत्रकम् ॥ २२ ॥ पंकजं चाऽतिगंधाढ्यमपश्यद-वनीपतिः ॥ दक्षिणे जलजस्याथ पार्श्वे कमललोचनाम् ॥२३॥ कनकाभां सुकेशीं च कंबुग्रीवां कृशोदरीम् ॥ बिंबोष्ठीं सुन्दरीं किंचित्समुद्यत्सुपयो-धराम् ॥ २४ ॥ सुनासां चारुसर्वांगीमपश्यत्कन्यकां नृपः ॥ रुदतीं तां सखीं त्यक्त्वा विह्वलां दुःखपीडिताम् ॥२५॥ साश्रुनेत्रां क्रंदमानां विजने कुररीमिव ॥ संवीक्ष्य राजा पप्रच्छ कन्यकां शोककारणम् ॥ २६ ॥ सुनसे ब्रूहि काऽसि त्वं कस्य पुत्री शुभानने ॥ गंधर्वी देवकन्याऽथ कथं रोदिषि सुंदरि ॥ २७ ॥ कथमेकाकिनी बाले त्यक्ता केन पिकस्वरे ॥ पतिस्ते क्व गतः कांते पिता वा ब्रूहि सांप्रतम् ॥ २८ ॥ किं ते दुःखमरालभ्रु कथयाद्य ममांतिके ॥ करोमि दुःखनाशं ते सर्वथैव कृशोदरि ॥ २९ ॥ न राज्ये मम तन्वंगि पीडां कोऽपि करोत्यलम् ॥ न भयं चौरजं कांते न राक्षसभयं तथा ॥ ३० ॥ मयि शासति भूपाले नोत्पाता दारुणा भुवि ॥ भयं न व्याघ्रसिंहेभ्यो न भयं कस्यचिद्भवेत् ॥ ३१ ॥ वद वामोरु कस्मात्त्वं विलापं जाह्नवीतटे ॥ करोषि त्राणहीनाऽत्र किं ते दुःखं वदस्व मे ॥ ३२ ॥ हन्म्यहं दुःखमत्युग्रं प्राणिनां पृथिवीतले ॥ दैवं च मानुषं कांते व्रतमेतन्ममाद्भुतम् ॥ ३३ ॥ विशाललोचने ब्रूहि करोमि तव चिंतितम् ॥ इत्युक्ते वचने राज्ञा श्रुत्वोवाच मृदुस्वना ॥ ३४ ॥ शृणु राजेंद्र

है? इस समय तुम्हारे पतिदेव अथवा पिता कहाँ चले गये हैं? ॥ २८ ॥ अब तुम मेरे सामने अपने दुःखका कारण व्यक्त करनेकी कृपा करो। मैं सम्यक् प्रकारसे तुम्हारा दुःख दूर करने-के लिए तैयार हूँ ॥२९॥ हे तन्वङ्गी! यह निश्चित है कि मेरे राज्यमें किसीको भी दुःख नहीं सताते। इसमें न चोरका भय है और न राक्षसका ही ॥३०॥ मैं इस भूमण्डलका नरेश हूँ। मेरे शासनकालमें भयंकर उत्पातोंका होना असम्भव है। कहीं किसीको बाघ अथवा सिंह भी किञ्चिन्मात्र कष्ट नहीं पहुँचा सकते ॥३१॥ हे वामोरु! असहाय होकर गंगातटपर तुम क्यों बिलख रही हो? तुम्हें क्या दुःख है–मुझको बतलाओ ॥३२॥ हे कान्ते! जगत्में प्राणियोंके दैविक एवं मानुषिक अत्यन्त कठिन दुःखको भी दूर करना मेरा प्रधान कर्त्तव्य है। इस अद्भुत व्रतका मैं बड़ी तत्परतासे पालन करता हूँ ॥३३॥ हे विशाललोचने! बताओ, तुम्हारी मानसिक चिन्ता मैं अवश्य दूर कर दूँगा।' इस प्रकार राजा एकवीरके कहनेपर उनकी बात सुनकर उस मधुर-

भाषिणी कन्याने कहा ॥ ३४ ॥ 'हे राजेन्द्र ! सुनिये, मैं अपने शोकका कारण बता रही हूँ । हे राजन् ! विपत्ति न हो तो प्राणी क्यों रोये ? ॥३५॥ हे महाबली ! मैं अपने रोनेका कारण बता रही हूँ । आपके राज्यसे अन्यत्र एक परम धार्मिक राजा रहते हैं। उनका नाम 'रैभ्य' है। उनकी स्त्री रुक्मरेखा नामसे प्रसिद्ध है। उस राजाको कोई संतान नहीं थी ॥३६॥३७॥ रानी रुक्मरेखा बड़ी सुन्दरी, कार्यकुशल, पतिव्रता और सम्पूर्ण शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न हैं। पुत्रके अभावसे दुखी होकर उन्होंने राजा रैभ्यसे बार बार कहा—॥ ३८ ॥ 'हे स्वामिन् ! मेरे इस जीवनसे क्या प्रयोजन है ? इस व्यर्थ जीवनको धिक्कार है । क्योंकि संतानहीन वन्ध्या स्त्री जगत्में कभी सुख नहीं पा सकती' ॥३९ इस प्रकार पत्नीसे प्रेरणा पाकर राजा रैभ्य उत्तम पुत्रेष्टि यज्ञ करनेके लिये तत्पर हुए । उन्होंने यज्ञके विशेषज्ञ ब्राह्मणोंको बुलाया और विधिपूर्वक सब यज्ञ-क्रियाएँ सम्पन्न कीं ॥ ४० ॥ पुत्रकी अभिलाषासे उन नरेशने शास्त्रोक्त रीतिसे प्रचुर धन दान दिया । यज्ञमें निरन्तर घीकी आहुतियाँ दी जाती थीं । अग्निदेव बड़ी तेजीसे प्रज्वलित हो रहे थे ॥ ४१ ॥ तदनन्तर यज्ञाग्निसे एक सुन्दरी कन्या निकल आयी । वह सभी शुभ लक्षणोंसे

वक्ष्यामि मम शोकस्य कारणम् ॥ विपत्तिरहितः प्राणी कथं रुदति भूपते ॥ ३५ ॥ प्रब्रवीमि महाबाहो यदर्थं रुदती त्वहम् ॥ तव राज्यादन्यदेशे राजा परमधार्मिकः ॥ ३६ ॥ रैभ्यो नाम महाराजः संतानरहितो भृशम् ॥ तस्य भार्या सुविख्याता रुक्मरेखेति नामतः ॥ ३७ ॥ सरूपा चतुरा साध्वी सर्वलक्षणसंयुता ॥ अपुत्रा दुःखिता कांतमित्युवाच पुनः पुनः ॥३८॥ किं जीवितेन मे नाथ धिग्वृथा जीवितं मम ॥ वंध्यायाः सुखहीनाया ह्यपुत्राया धरातले ॥ ३९ ॥ इत्येवं भार्यया भूपः प्रेरितो मखमुत्तमम् ॥ चकार ब्राह्मणांस्तज्ज्ञानाहूय विधिवत्तदा ॥ ४० ॥ पुत्रकामो धनं भूरि ददावथ यथोदितम् ॥ हूयमाने घृतेऽत्यर्थं पावकादतिसुप्रभात् ॥ ४१ ॥ आविर्बभूव चार्वङ्गी कन्यका शुभलक्षणा ॥ बिंबोष्ठी सुदती सुभ्रूः पूर्णचंद्रनिभानना ॥ ४२ ॥ कनकाभा सुकेशांता रक्तपाणितला मृदुः ॥ सुरक्तनयना तन्वी रक्तपादतला भृशम् ॥ ४३ ॥ हुताशनात्समुद्भूता होत्रा सा स्वीकृता तदा ॥ होता प्रोवाच राजानं गृहीत्वा तां सुमध्यमाम् ॥४४॥ राजन्पुत्रीं गृहाणेमां सर्वलक्षणसंयुताम् ॥ एकावलीव संभूता हूयमानाद्धुताशनात् ॥ ४५ ॥ नाम्ना चैकावली लोके ख्याता पुत्री भविष्यति ॥ सुखितो भव भूपाल पुत्र्या पुत्रसमानया ॥ ४६ ॥ संतोषं कुरु राजेन्द्र दत्ता देवेन विष्णुना ॥ होतुर्वाक्यं नृपः श्रुत्वा दृष्ट्वा तां कन्यकां शुभाम् ॥ ४७ ॥ जग्राह परमप्रीतो होत्रा दत्तां सुसंमताम् ॥ गृहीत्वा नृपतिस्तां तु

पूर्णतया सम्पन्न थी । पके बिम्बफल जैसे उसके होंठ थे, सुन्दर दाँत और कटीली भौंहें थीं, पूर्णचन्द्र सदृश उसका मुख था ॥ ४२ ॥ सुवर्णसरीखा उसके शरीरका रंग था । सुन्दर केश थे । लाल-लाल और बड़े मुलायम उसके हाथ थे । लाल आँखें थीं और लाल ही पैरका तलवा था ॥४३॥ जब वह मनोहर कन्या अग्निसे प्रकट हो गयी, तब होताने उसे अपने पास बैठा लिया । तत्पश्चात् उन्होंने उस सुन्दरी कन्याको लेकर राजा रैभ्यसे कहा—॥४४॥ "राजन् ! इस पुत्रीको लीजिए। यह सभी उत्तम लक्षणोंसे सम्पन्न है। हवन करते समय अग्निसे इसकी उत्पत्ति हुई है । यह ऐसी जान पड़ती है, मानो मणियोंकी एक लड़ी हो ॥४५॥ जगत्में यह कन्या 'एकावली' नामसे प्रसिद्ध होगी । हे भूपाल ! पुत्रकी तुलना करनेवाली इस कन्याको पाकर तुम सुखी हो जाओगे ॥४६॥ हे राजेन्द्र ! भगवान् विष्णुने तुम्हें यह कन्या प्रदान की है । इसे पाकर संतुष्ट होना तुम्हारे लिये श्रेयस्कर होगा ।" होताकी बात सुनकर राजा रैभ्यने उस

तुम सुखी हो जाओगे ।।४६।। हे राजेन्द्र ! भगवान् विष्णुने तुम्हें यह कन्या प्रदान की है । इसे पाकर संतुष्ट होना तुम्हारे लिये श्रेयस्कर होगा ।'' होताकी बात सुनकर राजा रैभ्यने उस

सुन्दरी कन्याकी ओर देखा और उन्होंने अत्यन्त प्रसन्न होकर उसे गोदमें ले लिया और उसे अपनी पत्नी रुक्मरेखाको सौंप दिया ।। ४७ ।। ४८ ।। देते समय उन्होंने कहा—'सुभगे ! तुम इस कन्याको स्वीकार करो ।' मनको मुग्ध कर देनेवाली उस कन्याकी आँखें कमलके समान सुन्दर थीं ।। ४९ ।। उसे पाकर रानी रुक्मरेखाके मनको बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ । वे ऐसी सुखी हुईं कि मानो पुत्र ही उत्पन्न हो गया हो । जातकर्म आदि सभी शुभ एवं माङ्गलिक संस्कार विधिपूर्वक कराये गये ।। ५० ।। यज्ञान्तमें राजाने ब्राह्मणोंको अच्छी-अच्छी वस्तुएँ दक्षिणामें प्रदान कीं । तदनन्तर ब्राह्मण वहाँसे विदा हो गये । राजा रैभ्यके हर्षकी सीमा नहीं रही । पुत्रके सयाने होनेसे जैसे प्रतिदिन माताको हर्ष होता है, रानी रुक्मरेखा भी वैसे ही आनन्दका अनुभव करने लगीं ।। ५१ ।। ५२ ।। उस समय रानीके मनमें हर्षका पार नहीं था । राजाके महलमें ऐसा उत्सव मनाया गया, जैसा पुत्रके जन्मपर मनाया जाता है ।। ५३ ।। पुत्री और पुत्रमें किञ्चिन्मात्र भेद नहीं है— यह मानकर माता-पिता उस कन्याको अत्यन्त स्नेहकी दृष्टिसे देखने लगे । हे सुबुद्धे ! मैं उन्हीं राजा रैभ्यके मन्त्रीकी कन्या हूँ ।। ५४ ।। मेरा नाम यशोवती है ।

ददौ पत्न्यै वराननाम् ।। ४८ ।। आभाष्य रुक्मरेखायै गृहाण सुभगे सुताम् ।। सा तां कमलपत्राक्षीं प्राप्य कन्यां मनोरमाम् ।। ४९ ।। जहर्ष मुदिता राज्ञी पुत्रं प्राप्य यथासुखम् ।। चकार मंगलं कर्म जातकर्मादिकं शुभम् ।। ५० ।। पुत्रजन्मसमुत्थं यत्तत्सर्वं विधिवत्ततः ।। समाप्य च मखं राजा द्विजेभ्यो दक्षिणां शुभाम् ।। ५१ ।। दत्त्वा विसृज्य विप्रेंद्रान्मुदं प्राप महीपतिः ।। दिने दिनेऽसितापांगी पुत्रवृद्ध्या भृशं बभौ ।। ५२ ।। मुदं च परमां प्राप नृपभार्या सुतान्विता ।। उत्सवस्तद्दिने तस्य प्रवृत्तः सुतजन्मजः ।। ५३ ।। पुत्री पुत्रसमाऽत्यर्थं बभूव वल्लभा किल ।। राज्ञो मंत्रिसुता चाहं सुबुद्धे मन्मथाकृते ।। ५४ ।। यशोवती च मे नाम समानं वय आवयोः ।। वयस्याऽहं कृता राज्ञा क्रीडनाय तया सह ।। ५५ ।। सदा सहचरी जाता प्रेमयुक्ता दिवानिशम् ।। एकावली गंधवंति यत्र पद्मानि पश्यति ।। ५६ ।। तत्र सा रमते बाला नान्यत्र सुखमाप्नुयात् ।। सुदूरे जाह्नवीतीरे भवंति कमलान्यपि ।। ५७ ।। रममाणा तत्र याता मत्समेता सखीयुता ।। मया निवेदितं राजन्पुत्री ते कमलाकरान् ।। ५८ ।। प्रेक्षमाणाऽतिदूरे सा प्रयाति निर्जने वने ।। निषेधिताऽथ पित्राऽसौ गृहे कृत्वा जलाशयान् ।।५९।। कमलान्वापयित्वाऽथ पुष्पितान्भ्रमरावृतान् ।।

एकावली और मैं दोनों समान अवस्थाकी हूँ । महाराज रैभ्यने राजकुमारीके साथ खेलनेके लिए मुझे नियुक्त कर रखा था ।। ५५ ।। एकावली सदा मेरे साथ रहती थी । हम दोनों रात-दिन प्रेमपूर्वक जहाँ-तहाँ घूमा करती थीं । एकावलीको जहाँ सुगन्धित कमल दिखायी पड़ते, वह प्रायः वहीं चली जाती थी ।। ५६ ।। अन्यत्र कहीं भी उसे सुख नहीं मिलता था । एक समयकी बात है—गङ्गाके तटपर बहुत दूर कमल खिले हुए थे ।। ५७ ।। राजकुमारी सखियोंसहित मेरे साथ घूमती हुई वहाँ चली गयी । तब मैंने महाराज रैभ्यसे कहा—'हे राजन् ! आपकी लाडली कन्या एकावली कमलोंको देखती हुई बहुत दूर निर्जन वनमें चली जाती है ।' इससे राजा रैभ्यने अपनी कन्याको दूर जानेके लिये मना कर दिया । साथ ही, उन्होंने घरपर ही बहुत-से जलाशय तैयार करवाकर उनमें कमल लगवा दिये । कमल खिल गये । उनपर चारों ओर भौंरे गूँजने लगे । इतनेपर भी कमलोंपर आसक्ति होनेके कारण राजकुमारी बाहर

चली जाती थी ॥ ५८–६० ॥ उस समय राजा रैभ्यकी आज्ञासे बहुत-से रक्षक हाथोंमें शस्त्र लेकर उसके साथ जाया करते थे । मैं तथा दूसरी सखियाँ भी साथ रहती थीं । इस प्रकार वह सुन्दरी राजकन्या मनोरञ्जनके लिये गङ्गाके तटपर निरन्तर आती-जाती रहती थी ॥ ६१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते षष्ठस्कन्धे भाषाटीकायामेकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

(राजकुमारी एकावलीका चरित्र) यशोवतीने कहा––एक समयकी बात है, सुन्दरी एकावली प्रातःकाल अपनी सखियोंके साथ महलसे निकल पड़ी । उसके ऊपर चँवर डुलाये जा रहे थे । रक्षकोंकी पूर्ण व्यवस्था थी ॥ १ ॥ हे राजेन्द्र ! उस सुन्दरी राजकुमारीके साथ चलनेवाले रक्षक पूरे सावधान थे । उनकी भुजाएँ आयुधोंसे सुशोभित थीं । मैं भी साथ थी । सुन्दर कमल देखकर मनोरञ्जनके लिये राजकुमारीका यहाँ गंगातटपर आना हुआ था ॥ २ ॥ उसके साथ बहुत-सी अप्सरायें भी थीं । जब मैं और एकावली कमलसे खेलनेमें व्यस्त थी, उसी समय अकस्मात् एक प्रचण्ड दानव यहाँ आ पहुँचा । उसका नाम कालकेतु था । बहुत-से राक्षस उसके साथ थे । उसके साथी राक्षसोंकी भुजाएँ परिघ, तलवार, गदा, धनुष-बाण और तोमरोंसे

तथापि निर्ययौ बाला कमलासक्तचेतना ॥ ६० ॥ तदा राज्ञा रक्षपालाः प्रेरिताः शस्त्रपाणयः ॥ एवं रक्षायुता तन्वी मत्समेता सखीयुता ॥६१॥
क्रीडार्थं जाह्नवीतोये नित्यमायाति याति च ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

॥ यशोवत्युवाच ॥ प्रातरुत्थाय तन्वंगी चलिता च सखीयुता ॥ चामरैर्वीज्यमाना सा रक्षिता बहुरक्षिभिः ॥ १ ॥ सायुधैश्चातिसन्नद्धैः सहिता वरवर्णिनी ॥ क्रीडार्थमत्र राजेन्द्र संप्राप्ता नलिनीं शुभाम् ॥ २ ॥ अहमप्यनया सार्धं गंगातीरे समागता ॥ अप्सरोभिः समेता च कमलैः क्रीडमानया ॥३॥ एकावली तथा चाहं जाते क्रीडापरे यदा ॥ सहसैव तदाऽऽयातो दानवो बलसंयुतः ॥४॥ कालकेतुरिति ख्यातो राक्षसैर्बहुभिर्युतः ॥ परिघासिगदाचापबाणतोमरपाणिभिः ॥५॥ दृष्टा चैकावली तेन रूपयौवनशालिनी ॥ द्वितीया कामपत्नीव क्रीडमाना सुपंकजैः ॥६॥ मयोक्तैकावली राजन्कोऽयं दैत्यः समागतः ॥ गच्छावो रक्षपालानां मध्ये पंकजलोचने ॥७॥ विमृश्यैवं सखी चाहं त्वरयैव गते भयात् ॥ मध्ये वै सैनिकानां तु सायुधानां नृपात्मज ॥ ८ ॥ कालकेतुस्तु तां दृष्ट्वा मोहिनीं मदनातुरः ॥ गदां गुर्वीं गृहीत्वा तु धावमानः समागतः ॥ ९ ॥ रक्षकान्दूरतः कृत्वा जग्राहांबुजलोचनाम् ॥ त्रस्तां वेपथुसंयुक्तां क्रंदमानां कृशोदरीम् ॥ १० ॥ त्यजैनां मां गृहाणेति मया चोक्तोऽपि दानवः ॥

सुसज्जित थीं ॥ ३–५ ॥ राजकुमारी एकावलीका रूप बड़ा मनोहर है । वह कामपत्नी जैसी सुन्दरी कमलोंसे खेल रही थी ॥ ६ ॥ तभी दुष्ट कालकेतुकी आँखें उसपर गड़ गयीं । हे राजन् ! उस समय मैंने एकावलीसे कहा––'हे कमललोचने ! देखो, यह कोई दानव आ गया है । अतः हमलोग रक्षकोंके बीच भाग चलें' ॥ ७ ॥ हे राजन् ! यों विचार करके सखी एकावली और मैं भयभीत होकर तुरन्त भागीं और जहाँ अस्त्र-शस्त्र लिये सैनिक खड़े थे, उनके बीच चली गयीं ॥८॥ तभी कालकेतुने हाथमें विशाल गदा उठायी और वह दौड़कर हमारे पास आ गया । उस दानवके प्रभावसे रक्षक दूर हटगये । फिर तो, कमलनयनी एकावली उसके हाथ लग गयी । उस समय राजकुमारीके हृदयमें अत्यन्त आतङ्क छा गया । उसका शरीर काँपने लगा और वह रोने लगी ॥ ९ ॥ १० ॥ मैंने उस दानव कालकेतुसे कहा–'तुम इस राजकुमारीको छोड़ दो । मैं साथ चलनेको तैयार हूँ–मुझे स्वीकार करो ।' परन्तु मेरी बातें अनसुनी करके एकावलीको

रोने लगी ॥ ९ ॥ १० ॥ मैंने उस दानव कालकेतुसे कहा—'तुम इस राजकुमारीको छोड़ दो। मैं साथ चलनेको तैयार हूँ—मुझे स्वीकार करो।' परन्तु मेरी बात अनसुनी करके एकावलीको

लेकर वह दैत्य चल पड़ा ॥ ११ ॥ रक्षकोंने 'ठहरो-ठहरो'—कहकर जब महाबली कालकेतुको रोका, तब भयंकर लड़ाई छिड़ गयी ॥ १२ ॥ उस दैत्यके साथ बहुतेरे भयंकर राक्षस हाथमें शस्त्र लिये प्रस्तुत थे। अपने स्वामीका कार्य सिद्ध करनेके लिये बड़ी तत्परताके साथ वे युद्धभूमिमें उतर आये॥१३॥ तब उन हमारे रक्षकोंके साथ कालकेतुका युद्ध होने लगा। किन्तु उस महाबली दैत्यने रणमें सभी रक्षकोंको मार डाला और राजकुमारी उसके अधिकारमें आ गयी। तदनन्तर दानवी सेनाके साथ वह राक्षस राजकुमारीको लेकर अपने नगरको जाने लगा। कालकेतुके अधिकारमें पड़ी हुई राजकुमारी रो रही थी। उसे देखकर मैं भी साथ लग गयी। कालकेतु उसे जहाँ ले जाता था, मैं भी वहाँ चली जाती थी। मेरा अभिप्राय था, जैसे भी हो, रोती हुई सखी मुझे देखकर धैर्य धारण कर सके ॥ १४–१६ ॥ हुआ भी ऐसा ही। जब सखी एकावलीने मुझे अपने साथ देखा, तब उसके हृदयमें कुछ शान्ति आ गयी। अब मैं राजकुमारीके पास चली गयी। उससे बार-बार बातें करने लगी ॥ १७ ॥ हे राजेन्द्र! मेरी सखी एकावली दुःखसे अत्यन्त घबरा गयी थी। उसके शरीरसे पसीना टपक रहा था। मेरे

न मां जग्राह कामार्तस्तां गृहीत्वा विनिःसृतः ॥११॥ तिष्ठ तिष्ठेति भाषंतो रक्षकास्तं महाबलम् ॥ प्रतिषिध्य तु संग्रामं चक्रुर्विस्मयकारकम् ॥१२॥
तस्यापि राक्षसाः क्रूराः सर्वतः शस्त्रपाणयः ॥ युयुधू रक्षकैः सार्धं स्वामिकार्ये कृतोद्यमाः ॥ १३ ॥ संग्रामस्तु तदा जातः कालकेतोस्तथा रणे ॥
निहत्य रक्षकान्सर्वान्गृहीत्वैनां महाबलः ॥१४॥ युक्तो राक्षससैन्येन निर्जगाम पुरं प्रति ॥ वीक्ष्य तां रुदतीं बालां गृहीतां दानवेन तु ॥ १५ ॥
पृष्ठतोऽहं गता तत्र यत्र नीता सखी मम ॥ विक्रोशंती यथा सा मां पश्येदिति पदानुगा ॥१६॥ साऽपि मामागतां वीक्ष्य किंचित्स्वस्थाऽभवत्तदा ॥
गताऽहं तत्समीपे तु तामाभाष्य पुनः पुनः ॥ १७ ॥ सा मां प्राप्यातिदुःखार्ता स्तंभस्वेदसमाकुला ॥ कंठे गृहीत्वा मां भूप रुरोद भृशदुःखिता
॥१८॥ स मामाह कालकेतुः प्रीतिपूर्वमिदं वचः ॥ समाश्वासय भीतां त्वं सखीं चंचललोचनाम् ॥ १९ ॥ प्राप्तं ममाद्य नगरं देवलोकसमं प्रिये ॥
दासोऽस्मि तव रत्या हि कस्मात्क्रंदसि कातरा ॥२०॥ कथयैनां सखीं तेऽद्य स्वस्था भव सुलोचने ॥ इत्युक्त्वा मां सखीं पार्श्वे समारोप्य रथोत्तमे
॥ २१ ॥ जगाम तरसा दुष्टः पुरे स्वस्य मनोहरे ॥ सैन्येन महता युक्तः प्रफुल्लवदनांबुजः ॥ २२ ॥ एकावलीं तथा मां च संस्थाप्य धवले गृहे ॥
राक्षसान्गृहरक्षार्थं कल्पयामास कोटिशः ॥ २३ ॥ द्वितीये दिवसे सोऽथ मामुवाच रहो नृप ॥ प्रबोधय सखीं बालां शोचंतीं विरहातुराम् ॥२४॥

जानेपर कण्ठसे चिपटकर बड़े दुःखके साथ वह विलाप करने लगी ॥ १८ ॥ उधर कालकेतुने प्रीति प्रदर्शित करते हुए मुझसे कहा—'चञ्चल नेत्रवाली तुम्हारी सखी एकावली डर गयी है। तुम उसे आश्वासन देकर मेरा यह सन्देश कहो—॥१९॥ 'प्रिये! मेरा नगर स्वर्गके समान सुखदायी है। अब तुम उसके समीप आ गयी हो। मैं तुम्हारा दास बन गया हूँ। फिर तुम इतनी करुणाके साथ क्यों विलाप कर रही हो? ॥ २० ॥ हे सुलोचने! स्वस्थ हो जाओ।' इस प्रकार कहकर दुरात्मा कालकेतु एकावलीके पास खड़ी मुझको भी उसी उत्तम रथपर बैठाकर बड़ी उतावलीके साथ अपनी मनोहर नगरीको चल पड़ा। बड़ी भारी सेना उसके साथ थी। उस दैत्यका मुख ऐसा प्रसन्न था, मानो खिला हुआ कमल हो ॥ २१ ॥ २२ ॥ वहाँ पहुँचनेपर उस दानवने मुझको और एकावलीको एक भव्य भवनमें ठहराया। उस भवनकी रक्षाके लिए उसके द्वारा बहुसंख्यक राक्षस नियुक्त हो गये ॥ २३ ॥ हे राजन्! दूसरे दिनकी

बात है—कालकेतुने मुझसे कहा कि 'तुम्हारी सखी एकावली माता-पिताके विरहसे घबरा गयी है। यह निरन्तर चिन्तामें डूबी रहती है। तुम इसे मेरी जवानी समझा दो—॥२४॥ 'हे सुन्दर कमरवाली कान्ते! तुम मेरी पत्नी बनकर इच्छानुसार सुख भोगो। हे चन्द्रवदने! अब इस राज्यपर तुम्हारा अधिकार रहेगा। मैं सदाके लिये तुम्हारा सेवक बन गया हूँ' वह दानव बार-बार यही वाक्य कह रहा था। उसे सुनकर मैंने खरा जवाब दे दिया। मैंने कहा—राजन्! ऐसी अप्रिय बात मेरे मुखसे नहीं निकल सकती। तुम स्वयं ही इससे कहो ॥ २५॥ २६॥ मेरे इस कथनके पश्चात् उस दुरात्माने मेरी प्यारी सखी एकावलीसे विनयपूर्वक कहा—॥ २७ ॥ हे कृशोदरी! तुमने मुझपर मन्त्रप्रयोग कर रखा है। हे कान्ते! उस मन्त्रसे अत्यन्त आहत मेरा हृदय अब तुम्हारे अधीन है। अतएव मैं तुम्हारे वशीभूत हो चुका हूँ—इसमें कोई संशय नहीं है। अब कामबाणसे पीड़ित मुझ भक्तसे प्रेम करो। हे रम्भोरु! तुम्हारा चंचल और दुर्लभ यौवन व्यर्थ बीता जा रहा है। सो मेरा आलिंगन करके और मुझे पति बनाकर तुम अपना जीवन सफल करो ॥ २८–३० ॥ एकावलीने कहा—राजकुमार हैहय बड़े भाग्यशाली

पत्नी मे भव सुश्रोणि सुखं भुंक्ष्व यथेप्सितम् ॥ राज्यं त्वदीयं चंद्रास्ये सेवकोऽहं सदा तव ॥२५॥ पुनरुक्तं मया वाक्यं श्रुत्वा तद्भाषितं खरम् ॥ नाहं क्षमाऽप्रियं वक्तुं त्वमेनां कथय प्रभो ॥ २६ ॥ इत्युक्ते वचने दुष्टो मदनक्षतमानसः ॥ उवाच विनयादेनां सखीं क्षामोदरीं प्रियाम् ॥२७॥ कृशोदरि त्वया मंत्रो निक्षिप्तोऽस्ति ममोपरि ॥ तेन मे हृदयं कांते हृतं ते वशतां गतम् ॥ २८ ॥ तेनाहं तव दासोऽद्य कृतोऽस्मीति विनिश्चयः॥ भज मां कामबाणेन पीडितं विवशं भृशम् ॥ २९ ॥ यौवनं याति रंभोरु चंचलं दुर्लभं तथा ॥ सफलं कुरु कल्याणि पतिं मां परिरभ्य च ॥३०॥ एकावल्युवाच ॥ पित्राऽहं कल्पिता पूर्वं दातुं राजसुताय वै ॥ हैहयस्तु महाभागः स मया मनसा वृतः ॥ ३१ ॥ कथमन्यं भजे कांतं त्यक्त्वा धर्मं सनातनम् ॥ कन्याधर्मं विहायाद्य वेत्सि शास्त्रविनिश्चयम् ॥३२॥ यस्मै दद्यात्पिता कामं कन्या तं पतिमाप्नुयात् ॥ परतंत्रा सदा कन्या न स्वातंत्र्यं कदाचन ॥ ३३ ॥ इत्युक्तोऽपि तया पापी विरराम न मोहितः॥ न मुमोच विशालाक्षीं मां च पार्श्वस्थितां तथा ॥ ३४ ॥ पातालविवरे तस्य पुरं परमसंकटे ॥ राक्षसै रक्षितं दुर्गं मंडितं परिखावृतम् ॥ ३५ ॥ तत्र तिष्ठति दुःखार्ता सखी मे प्राणवल्लभा ॥ तेनाहं विरहेणात्र रारटीमि

पुरुष हैं। उन्हींके साथ मेरा विवाह करनेके लिए पिताजीने निश्चय कर लिया है। मैं भी अपने मनमें उन्हें वरण कर चुकी हूँ ॥ ३१ ॥ फिर कन्याके लिए जिस सनातनधर्मका पालन करना अनिवार्य है, उसका परित्याग करके अब मैं कैसे दूसरेको पति बनाऊँ?। हमारा यह शास्त्रीय सिद्धान्त तुमसे भी छिपा नहीं है कि पिता कन्याको जिसे सौंपना चाहे, उसीको कन्या अपना पति बनाये। कन्या सदाके लिये परतन्त्र रहती है। अपनी इच्छासे वह कभी कुछ नहीं कर सकती ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ हे राजन्! एकावलीके यह कहनेपर भी दुरात्मा कालकेतु अपने निश्चयसे नहीं डिगा। कारण, वह राजकुमारीपर आसक्त हो चुका था। अतः विशाल नेत्रोंवाली एकावली और उसके पास रहनेवाली मैं--दोनों उस पापीके हाथसे मुक्त नहीं हो सकीं ॥३४॥ कालकेतुका नगर पातालकी एक कन्दरामें है। वहाँ अनेक प्रकारकी कठिनाइयाँ दृष्टिगोचर होती हैं। वहीं कालकेतुका किला है। उसके चारों तरफ खाइयाँ खुदी हैं। अनेकों पहरेदार पहरा दे रहे हैं ॥ ३५ ॥ वहीं मेरी प्राणप्यारी सखी एकावली अत्यन्त कष्टके साथ समय व्यतीत कर रही है। उसीके विरहसे असीम दुःखमें पड़ी हुई मैं यहाँ इस प्रकार बिलख

रही हूँ ॥ ३६ ॥ एकवीरने कहा—हे वरानने ! मुझे महान् आश्चर्य तो यह हो रहा है कि उस दुराचारी कालकेतुके नगरसे तुम यहाँ कैसे आ सकीं ? मैं इसका रहस्य तुमसे जानना चाहता हूँ । राजकुमारीका कथन है कि मेरे पिताने हैहयके साथ विवाह करनेकी बात निश्चित कर ली है । तुम्हारी यह उक्ति भी मुझे महान् संदेहास्पद प्रतीत हो रही है ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ मेरा ही नाम राजा हैहय है । इस नामका दूसरा कोई नरेश नहीं है । तुम्हारी सुन्दर आँखोंवाली सखी मेरे लिए ही तो ऐसा नहीं कह रही है ? ॥३९॥ हे सुभ्रु ! हे भामिनी ! तुम मेरे इस संदेहको दूर करो । तदनन्तर मैं उस अधम राक्षसको मारकर एकावलीको अवश्य ले आऊँगा ॥४०॥ हे सुव्रते ! यदि तुम कालकेतुका स्थान जानती होओ तो उसे मुझे दिखा दो । एकावलीके पिता राजा रैभ्यको तुमने यह समाचार सुनाया है या नहीं ? राजकुमारी बड़ा कष्ट सह रही है ॥४१॥ जिसकी ऐसी प्यारी कन्याका अपहरण हो जाय और वह जान न सके—यह कितने आश्चर्य तथा दुःखकी बात है । अथवा राजा रैभ्य यदि जानते हैं तो फिर उन्होंने राजकुमारीको छुड़ानेके लिए यत्न क्यों नहीं किया ? ॥ ४२ ॥ कन्या कारागारमें कष्ट भोग रही है—यह

सुदुःखिता ॥ ३६ ॥ एकवीर उवाच ॥ कथं त्वमत्र संप्राप्ता पुरात्तस्य दुरात्मनः ॥ विस्मयो मे महानत्र तत्त्वं ब्रूहि वरानने ॥३७॥ त्वया च कथितं वाक्यं सन्दिग्धं भाति भामिनि ॥ हैहयार्थे कल्पिता सा पित्रेति मम सांप्रतम् ॥ ३८ ॥ हैहयो नाम राजाऽहं नान्योऽस्ति पृथिवीपतिः ॥ मदर्थे कथिता सा किं सखी तव सुलोचना ॥ ३९ ॥ एतन्मे संशयं सुभ्रु छेत्तुमर्हसि भामिनि ॥ अहं तामानयिष्यामि तं हत्वा राक्षसाधमम् ॥ ४० ॥ स्थानं दर्शय मे तस्य यदि जानासि सुव्रते ॥ राज्ञे निवेदितं किं वा तत्पित्रे चातिदुःखिता ॥ ४१ ॥ यस्यैषा वल्लभा पुत्री न किं जानाति तां हृताम् ॥ नोद्यमः किं कृतस्तेन ततो मोचनहेतवे ॥ ४२ ॥ बन्दीकृतां सुतां ज्ञात्वा कथं तिष्ठति सुस्थिरः ॥ असमर्थो नृपः किं वा कारणं ब्रूहि सत्वरम् ॥ ४३ ॥ त्वया मेऽपहृतं चेतो गुणानुक्त्वा ह्यमानुषान् ॥ सख्याः पङ्कजपत्राक्षि कृतः कामवशो भृशम् ॥ ४४ ॥ कदा पश्यामि तां कांतां मोचयित्वाऽतिसङ्कटात् ॥ इति मे हृदयं चाद्य करोत्यतिमनोरथम् ॥४५॥ ब्रूहि मे गमनोपायं पुरे तस्यातिदुर्गमे ॥ कथं त्वमागता तस्मात्सङ्कटादत्र तद्वद ॥ ४६ ॥ यशोवत्युवाच ॥ बालभावान्मया मन्त्रो भगवत्या विशांपते ॥ प्राप्तोऽस्ति ब्राह्मणात्सिद्धात्सबीजध्यानपूर्वकः ॥४७॥ तत्रावस्थितया राजन्मया चित्ते विचारितम् ॥ आराधयामि सततं चंडिकां चंडविक्रमाम् ॥ ४८ ॥ सा देवी सेविता कामं बन्धमोक्षं करिष्यति ॥ भक्तानुकम्पिनी

जानकर भी राजा कैसे चुप बैठे हैं ? वे शक्तिहीन तो नहीं हो गये हैं ? हे सुव्रते ! तुम शीघ्र इसका कारण बतानेकी कृपा करो ॥४३॥ तुम्हारी सखीके मानवोत्तर गुणोंका बखान सुनकर मेरा मन उसकी ओर आकृष्ट हो गया है और मैं कामातुर हो उठा हूँ ॥४४॥ अब मेरे हृदयमें यह इच्छा जाग उठी है कि मैं उस सुन्दरीको अत्यन्त संकटसे छुड़ाकर कब सुखी देखूँगा ॥४५॥ मैं तुमसे यह जानना चाहता हूँ कि कालकेतुकी अत्यन्त दुर्गम नगरीमें जानेका क्या उपाय है ? पर पहले यह तो बताओ कि तुम उस असीम कष्टको पार करके यहाँ कैसे आ गयीं ? ॥ ४६ ॥ यशोवती बोली—राजन् ! मैं बचपनसे ही भगवती जगदम्बाके बीजमन्त्रका ध्यानपूर्वक जप करना जानती हूँ । एक सिद्ध ब्राह्मणकी कृपासे मुझे यह मन्त्र प्राप्त हुआ था ॥४७॥ हे राजन् ! मैं जब कालकेतुके बन्दीगृहमें थी, तभी मैंने इस बीजमन्त्रका चिन्तन आरम्भ कर दिया था । यों तो प्रचण्ड पराक्रमवाली देवी चण्डीका आराधन मैं निरन्तर करती रहती हूँ ॥ ४८ ॥

उपासना करनेपर वे भगवती बन्धनसे मुक्त कर देंगी—यह निश्चित है। भक्तोंपर कृपा करनेवाली वे शक्ति देवी सब कुछ देनेमें पूर्ण समर्थ हैं ॥ ४९ ॥ जो अपनी सामर्थ्यसे जगत्का सृजन और पालन करती हैं तथा कल्पके अन्तमें संहार भी जिनपर ही निर्भर है, वे भगवती निराकार और निराश्रय हैं—वे सर्वरूपमयी एवं सर्वव्यापक भी हैं ॥ ५० ॥ ऐसा मनमें सोचकर कि जो विश्वकी अधिष्ठात्री हैं, जिनका कल्याणमय सौम्य विग्रह है, जो लाल रंगके वस्त्र धारण किये रहती हैं तथा जिनकी आँखोंमें लालिमा झलकती रहती है, उन भगवती जगदम्बाका ध्यान करने लगी ॥५१॥ मन-ही-मन भगवतीके उक्त रूपका स्मरण करके मैं बीजमन्त्रको जपने लगी और समाधि लगाकर देवीकी उपासना करती हुई एक महीनेतक बैठी रही ॥ ५२ ॥ अतएव मेरी भक्तिसे संतुष्ट होकर भगवती चण्डिकाने स्वप्नमें मुझे दर्शन दिया। उन्होंने अमृतमयी वाणीमें मुझसे कहा—'क्यों सोयी हो ? ॥५३॥ उठो और अभी गङ्गाजीके पावन तटपर चली जाओ। नरेशप्रधान हैहय वहीं आनेवाले हैं ॥५४॥ उन महाबाहु नरेशका नाम एकवीर है। सम्पूर्ण शत्रुओंको कुचल देनेकी शक्ति रखनेवाले वे नरपति बड़े अच्छे विद्वान् हैं।

शक्तिः समर्था सर्वसाधने ॥ ४९ ॥ या विश्वं सृजते शक्त्या पालयत्येव सा पुनः ॥ कल्पान्ते संहरत्येव निराकारा निराश्रया ॥५०॥ इति संचिंत्य मनसा देवीं विश्वेश्वरीं शिवाम् ॥ ध्यात्वा रक्ताम्बरां सौम्यां सुरक्तनयनां हृदि ॥५१॥ संस्मृत्य मनसा रूपं मन्त्रजाप्यपराऽभवम् ॥ उपासिता मया देवी मासमेकं समाधिना ॥ ५२ ॥ स्वप्ने मम समायाता भक्तिभावेन तोषिता ॥ मामाहामृतया वाचा किं सुप्ताऽसीति चंडिका ॥ ५३ ॥ उत्तिष्ठ याहि तरसा गंगातीरं मनोहरम् ॥ आगमिष्यति तत्रासौ हैहयो नृपपुंगवः ॥ ५४ ॥ एकवीरो महाबाहुः सर्वशत्रुविमर्दनः ॥ दत्तात्रेयेण मन्मन्त्रो महाविद्याभिधः परः ॥५५॥ दत्तोऽस्मै सोऽपि सततं मामुपास्तेऽतिभक्तितः ॥ मय्यासक्तमतिर्नित्यं मम पूजापरायणः ॥ ५६ ॥ मामेव सर्वभूतेषु ध्यायन्नास्ते च मत्परः ॥ स ते दुःखविनाशं वै करिष्यति महामतिः ॥ ५७ ॥ मासुतो विहरंस्तत्र तव त्राता भविष्यति ॥ हत्वा तं राक्षसं घोरं मोचयिष्यति मानिनीम् ॥ ५८ ॥ एकावलीमेकवीरः सर्वशास्त्रविशारदः ॥ पश्चात्सैव पतिः कार्यस्त्वया राजसुतः शुभः ॥ ५९ ॥ इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे देवी प्रबुद्धाऽहं तदैव हि ॥ कथितं स्वप्नवृत्तान्तं देव्याश्चाराधनं तथा ॥ ६० ॥ प्रसन्नवदना जाता श्रुत्वा सा कमलेक्षणा ॥ विशेषेण च सन्तुष्टा

मुनिवर दत्तात्रेयने मेरे बीजमन्त्रका उन्हें भली-भाँति अभ्यास करा दिया है ॥५५॥ अतः अपार भक्तिके साथ राजा एकवीर मेरी उपासनामें संलग्न रहते हैं। उनके मनसे मैं कभी अलग नहीं होती। वे सदा मेरी पूजामें लगे रहते हैं ॥५६॥ सम्पूर्ण प्राणियोंमें एकमात्र मुझे ही देखना उनकी निश्चित धारणा है। मेरी उपासनाके सिवा वे और कुछ जानते ही नहीं। उन्हीं महामति भूपालके द्वारा तुम्हारा संकट दूर होगा ॥५७॥ भगवती लक्ष्मी उनकी माता हैं। वे घूमते हुए गङ्गाके तटपर आकर तुम्हारे रक्षक बन जायँगे। उन राजा एकवीरके हाथों कालकेतु मृत्युका ग्रास बन जायगा और माननीया एकावली बन्धनसे मुक्त हो जायगी ॥५८॥ तत्पश्चात् सम्पूर्ण शास्त्रके पारगामी उन्हीं सुन्दर राजकुमारके साथ तुम एकावलीके विवाहकी व्यवस्था करवा देना' ॥५९॥ इस प्रकार स्वप्नमें मुझसे कहकर देवी अन्तर्धान हो गयीं और मेरी नींद टूट गयी। तदनन्तर स्वप्नकी सारी घटना तथा देवीके आराधनकी बातें मैंने

कराया देना' ॥५९॥ इस प्रकार स्वप्नमें मुझसे कहकर देवी अन्तर्धान हो गयीं और मेरी नींद टूट गयी। तदनन्तर स्वप्नकी सारी घटना तथा देवीके आराधनकी बात मैंने

राजकुमारी एकावलीको कह सुनायीं ॥६०॥ सो सुनकर उस कमलनयनीका मुखमण्डल प्रसन्नतासे खिल उठा। अत्यन्त सन्तुष्ट होकर पवित्र मुसकानवाली सखी एकावलीने मुझसे कहा— ॥ ६१ ॥ प्रिये! तुम शीघ्र वहाँ पहुँचकर मेरा कार्य सिद्ध करनेमें तत्पर हो जाओ। भगवतीकी वाणी अमोघ है। उनकी कृपासे हम दोनों अवश्य बन्धनसे मुक्त हो जायँगी ॥ ६२ ॥ हे राजन्! सखी एकावलीके यों प्रेमपूर्वक आदेश देनेपर मैंने निश्चय कर लिया कि अब इस स्थानसे चल देना ही श्रेयस्कर है ॥ ६३ ॥ हे राजकुमार! फिर मैं उसी क्षण वहाँसे चल पड़ी। मुझे किसीने रोका-टोका नहीं। परम आराध्या भगवतीकी कृपासे मार्गकी जानकारी तथा शीघ्र चलनेकी शक्ति भी मुझे तुरन्त प्राप्त हो गयी थी ॥ ६४ ॥ ये ही सब मेरे दुःखके कारण हैं, जो मैं बता चुकी। हे वीर! जैसे मैंने अपना परिचय दिया, वैसे ही अब तुम भी बताओ कि कौन हो और तुम्हारे पिताका क्या नाम है? ॥ ६५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते षष्ठस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

मामुवाच शुचिस्मिता ॥ ६१ ॥ गच्छ तत्र त्वरायुक्ता कुरु कार्यं मम प्रिये ॥ सत्यवाक्या भगवती साऽऽवां मोक्षं विधास्यति ॥ ६२ ॥ इत्याज्ञप्ता तया चाहं सख्या वै प्रेमयुक्तया ॥ मत्वोपसरणं युक्तं तस्मात्स्थानात्तदा नृप ॥६३॥ चलिताऽहं ततः शीघ्रं महादेवीप्रसादतः ॥ मार्गज्ञानं शीघ्रगतिर्मया प्राप्ता नृपात्मज ॥ ६४ ॥ इत्येतत्कथितं सर्वं कारणं मम दुःखजम् ॥ कस्त्वं कस्य सुतश्चेति वद वीर यथा तथा ॥६५॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

॥ व्यास उवाच ॥ तस्यास्तु वचनं श्रुत्वा रमापुत्रः प्रतापवान् ॥ प्रफुल्लवदनांभोजस्तामुवाच विशाम्पते ॥ १ ॥ राजोवाच ॥ रम्भोरु यस्त्वया पृष्टो वृत्तान्तो विशदाक्षरः ॥ हैहयोऽहं चैकवीरनाम्ना सिन्धुसुतासुतः ॥ २ ॥ मनो मे यत्त्वया नूनं परतन्त्रं कृतं किल ॥ किं करोमि क्व गच्छामि विरहेणातिपीडितः ॥ ३ ॥ प्रथमं रूपमाख्यातं सर्वलोकातिगं त्वया ॥ तेन मे विह्वलं जातं कामबाणहतं मनः ॥४॥ ततस्तस्या गुणाः प्रोक्तास्तैस्तु चित्तं हृतं पुनः ॥ यत्त्वयोक्तं पुनर्वाक्यं तेन मे विस्मयोऽभवत् ॥ ५ ॥ एकावल्या वचः प्रोक्तं दानवाग्रे मया वृतः ॥ हैहयस्तं विना नान्यं वृणोमीति विनिश्चयः ॥ ६ ॥ तेन वाक्येन तन्वंगि भृत्योऽहमधुना कृतः ॥ त्वया तस्याः सुकेशांते ब्रूहि किं करवाणि वाम् ॥ ७ ॥ स्थानं

(कालकेतुका वध) व्यासजी कहते हैं—हे राजन्! प्रतापी नरेश एकवीर भगवती लक्ष्मीके सुपुत्र थे। यशोवतीकी बात सुनकर उनका कमल-जैसा मुख प्रसन्नतासे खिल उठा। वे उससे कहने लगे ॥ १ ॥ राजा एकवीरने कहा—हे रम्भोरु! तुमने विशदरूपसे जो मेरा वृत्तान्त पूछा है, वह सुनो—मैं ही हैहय हूँ। मेरा नाम एकवीर है। लक्ष्मीजी मेरी माता हैं ॥ २ ॥ तुमने सर्वप्रथम अपनी सखी एकावलीके सम्पूर्ण जगत्के रूपको तिरस्कृत करनेवाले जिस रूपका वर्णन किया है, उससे मेरा मन विह्वल हो उठा है। उनके विरहमें व्यथित होनेके कारण मुझे यही नहीं सूझ रहा है कि मैं क्या करूँ और कहाँ जाऊँ? ॥ ३ ॥ तदनन्तर तुमने जो यह कहा कि 'कालकेतु दैत्यके सामने एकावलीने कहा कि मैं हैहयको वरण कर चुकी हूँ। उनके सिवा दूसरे किसीको मैं स्वीकार नहीं कर सकती—यह बिल्कुल निश्चित है।' हे तन्वङ्गी! राजकुमारीके इस कथनसे तो मैं अब उनका दास बन गया हूँ। हे सुकेशान्ते! बताओ, इस अवसर-

पर मुझे क्या करना चाहिये ? ॥४–७॥ हे सुलोचने ! दुरात्मा कालकेतुके स्थानसे मैं बिल्कुल अपरिचित हूँ । हे विशालाक्षी ! मैं तुमसे उपाय जानना चाहता हूँ ॥ ८ ॥ मुझे वहाँ पहुँचानेमें तुम पूर्ण समर्थ हो । अतः तुम्हारी सुन्दरी सखी एकावली जहाँ रहती है, वहाँ मैं शीघ्र जा सकूँ–ऐसी व्यवस्था करो ॥९॥ राजकुमारी एकावली तुम्हारी प्रिय सखी है । राक्षसके अधीन होकर उसे अत्यन्त दुःख सहने पड़ते हैं । तुम निश्चय समझो कि मैं उस राक्षसको मारकर उसे छुड़ा लाऊँगा ॥१०॥ मेरे प्रयाससे राजकुमारीके सभी संकट टल जायँगे और वह तुम्हारे नगरमें लौट आयेगी । फिर मैं राजकुमारी एकावलीको उसके पिताके पास पहुँचा दूँगा ॥११॥ इसके बाद परम तपस्वी राजा रैभ्य अपनी पुत्रीका विधिवत् विवाह कर सकेंगे । हे प्रियंवदे ! तुम्हारे सहयोगसे मेरी ये मनचाही बातें पूर्ण हो सकती हैं । अतः तुम शीघ्र कालकेतुकी नगरी दिखाकर मेरा पराक्रम देख लो ॥ १२ ॥ १३ ॥ हे वरवर्णिनी ! परायी स्त्रीको अपनानेवाले उस पापी राक्षसको जिस किसी प्रकार भी मारनेमें सफल हो सकूँ, वैसा ही यत्न करो । सबसे पहले तो तुम कालकेतुके दुर्गम नगरका मार्ग मुझे दिखा दो । व्यासजी कहते हैं–राजकुमार

तस्य न जानामि राक्षसस्य दुरात्मनः ॥ गतिर्मे नास्ति गमने पुरे तस्मिन्सुलोचने ॥ ८ ॥ वद मां त्वं विशालाक्षि तत्र प्रापयितुं क्षमा ॥ प्रापयाशु सखी ते सा यत्र तिष्ठति सुन्दरी ॥ ९ ॥ हत्वा तं राक्षसं क्रूरं मोचमिष्यामि सांप्रतम् ॥ विवशां शोकसन्तप्तां राजपुत्रीं तव प्रियाम् ॥ १० ॥ विमुक्तदुःखां कृत्वाऽऽशु प्रापयिष्यामि ते पुरम् ॥ पित्रे चास्याः प्रदास्यामि कन्यामेकावलीमहम् ॥ ११ ॥ पश्चाद्विवाहं कर्ताऽसौ राजा पुत्र्याः परन्तपः ॥ एवं ते मनसः कामो मम चापि प्रियंवदे ॥ १२ ॥ भविष्यति स सम्पूर्णः साधनेन तवाधुना ॥ दर्शयाशु पुरं तस्य पश्य मे त्वं पराक्रमम् ॥ १३ ॥ यथा हन्मि दुराचारं परदारापहारकम् ॥ तथा कुरु प्रियङ्कर्तुं शक्ताऽसि वरवर्णिनि ॥ १४ ॥ मार्गं दर्शय तस्याद्य पुरस्य दुर्गमस्य च ॥ व्यास उवाच ॥ तन्निशम्य प्रियं वाक्यं मुदिता च यशोवती ॥ १५ ॥ तमुवाच रमापुत्रं गमनोपायमादरात् ॥ मन्त्रं गृहाण राजेंद्र भगवत्यास्तु सिद्धिदम् ॥ १६ ॥ दर्शयिष्यामि तस्याद्य पुरं राक्षसपालितम् ॥ सज्जो भव महाभाग गमनाय मया सह ॥ १७ ॥ सैन्येन महता युक्तस्तत्र युद्धं भविष्यति ॥ कालकेतुर्महावीरो राक्षसैर्बलिभिर्वृतः ॥१८॥ तस्मान्मन्त्रं गृहीत्वा त्वं व्रज तत्र मया सह ॥ दर्शयिष्यामि ते मार्गं पुरस्यास्य दुरात्मनः ॥ १९ ॥ हत्वा तं पापकर्माणं मोचयाशु च मे सखीम् ॥ श्रुत्वा तद्वचनं वीरो मन्त्रञ्जग्राह सत्वरः ॥ २० ॥ दत्तात्रेया-

एकवीरकी यह प्रिय वाणी सुनकर यशोवतीका मुख प्रसन्नतासे खिल उठा ॥ १४ ॥ १५ ॥ कालकेतुकी नगरीमें जानेके लिए अब यशोवती बड़े आदरके साथ एकवीरको उपाय बतलाने लगी । उसने कहा—'हे राजेन्द्र ! भगवतीका बीज-मन्त्र सिद्धि प्रदान करनेवाला है । तुम इसकी दीक्षा ले लो ॥ १६ ॥ तत्पश्चात् मैं अभी तुम्हें कालकेतुकी नगरी, जिसमें बहुत-से राक्षस पहरा दे रहे हैं, दिखाऊँगी । हे महाभाग ! वहाँ मेरे साथ चलनेके लिए तुम्हें तैयार हो जाना चाहिए ॥ १७ ॥ साथमें विशाल सेना भी ले लीजिए । क्योंकि वहाँ युद्ध होनेकी निश्चित सम्भावना है । कालकेतु बड़ा पराक्रमी दैत्य है । बहुत-से बलवान् राक्षस उसके पास हैं ॥ १८ ॥ अतएव यह मन्त्र ले करके ही तुम मेरे साथ चलो । मैं पापी कालकेतुकी नगरीका मार्ग दिखाऊँगी ॥ १९ ॥ हे राजन् ! अब उस दुराचारीको शीघ्र मारकर मेरी सखीको बन्धनसे मुक्त कराना तुम्हारा परम कर्तव्य है ।' यशोवतीका कथन सुनकर एकवीरने उसी क्षण मन्त्रकी

दिखाऊँगी ॥ १९ ॥ हे राजन् ! अब उस दुराचारीको शीघ्र मारकर मेरी सखीको बन्धनसे मुक्त करानी तुम्हारी परम कर्तव्य है।' यशोवतीका कथन सुनकर एकवीरने उसी क्षण मन्त्रकी

दीक्षा ले ली ॥२०॥ दत्तात्रेयजी ज्ञानियोंमें शिरोमणि माने जाते हैं। संयोगवश वहाँ उनका शुभागमन हो गया था। उन्होंने योगेश्वरीके महामन्त्रका उपदेश दिया था। भगवतीके इस मन्त्रको त्रिलोकीका तिलक कहते हैं ॥ २१ ॥ इस मन्त्रके प्रभावसे राजा एकवीरको सब कुछ जानने तथा सर्वत्र जानेकी योग्यता प्राप्त हो गयी। अतः कालकेतुके अत्यन्त दुर्गम नगरके लिए वे तुरन्त प्रस्थित हो गये ॥ २२ ॥ वह नगर राक्षसों द्वारा इस प्रकार सुरक्षित था, मानो सर्प पातालकी रक्षा कर रहे हों। यशोवती और एक विशाल सेनाके साथ एकवीर उसके नगरमें पहुँच गये ॥२३॥ उन्हें आते देखकर कालकेतुके दूत भयसे घबरा गये। अतः बड़ी उतावलीके साथ चिल्लाते हुए वे सभी कालकेतुके पास पहुँचे ॥२४॥ उस समय वह दैत्य एकावलीके पास बैठकर तरह-तरहसे प्रार्थना कर रहा था। दूतोंने समझ लिया, हमारा स्वामी कामसे मोहित हो गया है। अतः उससे वे कहने लगे ॥२५॥ दूत बोले—हे राजन् ! इस कामिनीके साथ आनेवाली यशोवती नामकी एक स्त्री आ रही है। उसके साथ कोई एक राजकुमार भी है। हे महाराज ! पता नहीं, वह इन्द्रपुत्र जयन्त है अथवा शंकरकुमार कार्तिकेय। एक बड़ी भारी

दैवयोगात्प्राप्ताज्ज्ञानिवराच्छुभात्॥ योगेश्वरीमहामन्त्रं त्रिलोकीतिलकाभिधम् ॥२१॥ तेन सर्वज्ञता जाता सर्वान्तश्चारिता तथा॥ तया सह जगामाशु पुरं तस्य सुदुर्गमम् ॥ २२ ॥ रक्षितं राक्षसैर्घोरैः पातालमिव पन्नगैः ॥ यशोवत्या च सैन्येन महता संयुतो नृपः ॥ २३ ॥ तमायांतं समालोक्य दूतास्तस्य भयातुराः ॥ क्रोशन्तोऽभिययुः पार्श्वं कालकेतोस्तरस्विनः ॥२४॥ तमूचुः सहसा मत्वा राक्षसं काममोहितम् ॥ एकावलीसमीपस्थं कुर्वन्तं विनयान्बहून् ॥२५॥ दूता ऊचुः ॥ राजन् यशोवती नारी कामिन्याः सहचारिणी ॥ आयाति सह सैन्येन राजपुत्रेण संयुता ॥२६॥ जयन्तो वा महाराज कार्तिकेयोऽथवा नु किम् ॥ आगच्छति बलोन्मत्तो वाहिनीसहितः किल ॥२७॥ संयत्तो भव राजेंद्र संग्रामः समुपस्थितः ॥ देवपुत्रेण युध्यस्व त्यज वा कमलेक्षणाम् ॥ २८ ॥ इतो दूरेऽस्ति सैन्यं तद्योजनत्रयमात्रतः ॥ सज्जो भव महीपाल दुन्दुभिं घोषयाशु वै ॥ २९ ॥ व्यास उवाच ॥ तेषां तद्वचनं श्रुत्वा राक्षसः क्रोधमूर्च्छितः ॥ राक्षसान्प्रेरयामास सायुधान्सबलान्बहून् ॥ ३० ॥ गच्छध्वं राक्षसाः सर्वे सम्मुखाः शस्त्रपाणयः ॥ तानाज्ञाप्य कालकेतुः पप्रच्छ प्रणयान्वितः ॥ ३१ ॥ एकावलीं समीपस्थां विवशां भृशदुःखिताम् ॥ कोऽयमायाति तन्वङ्गि पिता ते वाऽपरः पुमान् ॥ ३२ ॥ त्वदर्थे सैन्यसंयुक्तो ब्रूहि सत्यं कृशोदरि ॥ पिता ते यदि संप्राप्तो नेतुं त्वां विरहातुरः ॥३३॥ ज्ञात्वा ते पितरं सम्य-

सेना लेकर बलके अभिमानसे मत्त होकर वह आ रहा है ॥ २६ ॥ २७ ॥ हे राजेन्द्र ! अब आप सावधान हो जायँ। युद्धका अवसर सामने आ गया है। उस देवपुत्रके साथ युद्ध कीजिये अथवा इस कमलनयनीसे स्नेह छोड़िये ॥२८॥ हे राजन् ! शत्रुसेना निकट आ गयी है। केवल तीन ही योजन दूर है। आप शीघ्र सजग हो जाइए। रणदुन्दुभी बजानेकी आज्ञा दे दीजिये ॥२९॥ व्यासजी कहते हैं—दूतोंकी बात सुनकर कालकेतु क्रोधसे मूर्छित-सा हो गया। उसके पास बहुतसे राक्षस शस्त्रधारी सैनिकोंके साथ विद्यमान थे ॥ ३० ॥ उनसे उसने कहा—राक्षसों ! तुम सब लोग हाथमें अस्त्र-शस्त्र लेकर शत्रुके सामने जाओ।' यों राक्षसोंको जानेकी आज्ञा देकर कालकेतुने बड़ी नम्रताके साथ एकावलीसे पूछा ॥ ३१ ॥ उस समय वह राजकुमारी अत्यन्त दुखी होकर विवशतापूर्वक उसके निकट ही बैठी हुई थी। कालकेतुने उससे कहा—'हे तन्वङ्गी ! यह कौन आ रहा है ? ये तुम्हारे पिता हैं अथवा कोई अन्य पुरुष ? ॥ ३२ ॥

हे कृशोदरी ! तुम्हें लेनेके लिये सेनासहित आनेवाले इस व्यक्तिका सच्चा परिचय बतानेकी कृपा करो । सम्भव है, तुम्हारे पिता विरहसे आतुर होकर तुम्हें लेनेके लिए आ रहे हों । मैं यदि जान जाऊँगा कि ये तुम्हारे पिताजी हैं तो मैं संग्राम नहीं करूँगा। बल्कि, उन्हें सादर घरपर ले आऊँगा और बहुतेरे रत्न, वस्त्र एवं सुन्दर घोड़े भेंट देकर उनका स्वागत करूँगा ॥३३॥३४॥ मेरे घर पधारनेपर सम्यक् प्रकारसे उनका आतिथ्य-सत्कार होगा । यदि अन्य व्यक्ति होगा तो तीखे तीरोंसे उसके प्राण हर लिये जायँगे ॥३५॥ यह निश्चय है कि कालकी प्रेरणासे मरनेके लिए ही वह यहाँ आ रहा है। अतएव हे विशालाक्षी ! मैं साक्षात् काल हूँ, मुझमें अपार बल है और कोई मुझे जीत नहीं सकता । मेरे इस प्रभावको न जानकर किस मूर्खका आना हो गया ? सो बताओ' एकावलीने कहा—हे महाभाग ! इतनी शीघ्रतासे यह कौन आ रहा है, मैं नहीं जानती ॥३६॥३७॥ अभीतक किसीको भी मालूम नहीं कि मैं तुम्हारे यहाँ बन्धनमें पड़ी हूँ । न ये मेरे पिता हैं और न मेरे भाई ही । दूसरा ही कोई महान् पराक्रमी पुरुष हो सकता है ॥ ३८ ॥ किस उद्देश्यसे वह यहाँ आ रहा है—यह भी निश्चितरूपसे मैं नहीं जानती ।

क्संग्रामं न करोम्यहम् ॥ आनयित्वा गृहे पूजां रत्नैर्वस्त्रैर्हयैः शुभैः ॥ ३४ ॥ करोमि तस्य चातिथ्यं गृहे प्राप्तस्य सर्वथा ॥ अन्यश्चेद्यदि संप्राप्तस्तं हन्मि निशितैः शरैः ॥ ३५ ॥ आनीतः किल कालेन मरणाय महात्मना ॥ तस्माद्वद विशालाक्षि कोऽयमायाति मंदधीः ॥३६॥ अज्ञात्वा मां दुराधर्षं कालरूपं महाबलम् ॥ एकावल्युवाच ॥ न जानेऽहं महाभाग कोऽयमायाति सत्वरः ॥ ३७ ॥ न मेऽस्ति विदितः कोऽपि स्थितायास्तव बंधने ॥ नायं पिता मे न भ्राता कोऽप्यन्योऽस्ति महाबलः ॥३८॥ किमर्थमिह चायाति नाहं वेद विनिश्चयम् ॥ दैत्य उवाच ॥ एवं वदन्त्यमी दूता वयस्या ते यशोवती ॥ ३९ ॥ समानीय च तं वीरमागतेति कृतोद्यमा ॥ क्व गता सा सखी कान्ते विदग्धा कार्यनिश्चये ॥ ४० ॥ नान्यः कोऽपि ममारातिर्यो मे प्रतिबलो भवेत् ॥ व्यास उवाच ॥ एतस्मिन्नंतरे दूतास्तत्रान्ये वै समागताः ॥ ४१ ॥ ते होचुस्त्वरिता भीताः कालकेतुं गृहे स्थितम् ॥ किं स्वस्थोऽसि महाराज समीपे सैन्यमागतम् ॥ ४२ ॥ निर्गच्छ नगरात्तूर्णं सैन्येन महता वृतः ॥ इति तेषां वचः श्रुत्वा कालकेतुर्महाबलः ॥ ४३ ॥ रथमारुह्य त्वरितो निर्ययौ स्वपुराद्बहिः ॥ एकवीरोऽपि सहसा हयारूढः प्रतापवान् ॥ ४४ ॥ आगतस्तत्र कामिन्या विरहेण समाकुलः ॥ युद्धं तयोरभूत्तत्र वृत्रवासवयोरिव ॥४५॥ शस्त्रास्त्रैर्बहुधा मुक्तैरादीपितदिगन्तरम् ॥ वर्तमाने तदा युद्धे कातराणां भयावहे ॥४६॥

कालकेतु दैत्यने कहा—ये दूत कह रहे हैं कि तुम्हारी सखी यशोवतीका ही यह सारा प्रयत्न है । वही इस वीरको साथ लेकर आ रही है। हे कान्ते ! तुम्हारी वह सखी कार्य करनेमें बड़ी कुशल जान पड़ती है । वह कहाँ गयी है ? ॥ ३९ ॥ ४० ॥ दूसरे किसीसे तो मेरी शत्रुता है नहीं, जो मेरे विरोधमें खड़ा हो सके । व्यासजी कहते हैं—इस प्रकार बातचीत हो ही रही थी कि दूसरे दूत वहाँ आ पहुँचे ॥ ४१ ॥ कालकेतु घरपर बैठा था । अत्यन्त भयके साथ उन दूतोंने उससे कहा—'हे महाराज ! आप कैसे निश्चिन्त बैठे हुए हैं ? अब शत्रुसेना बिल्कुल संनिकट आ पहुँची है ॥ ४२ ॥ आप एक बहुत विशाल सेनाके साथ शीघ्र नगरसे बाहर पधारिए ।' दूतोंकी बातें सुननेके पश्चात् महाबली कालकेतु तुरन्त रथपर सवार होकर अपने नगरसे निकल पड़ा । इतनेमें प्रतापी एकवीर घोड़ेपर चढ़े हुए सामने आ पहुँचे ॥४३॥४४॥ अब दोनोंमें इस प्रकार युद्ध छिड़ गया, मानो इन्द्र और वृत्रासुर लड़ रहे हों ॥ ४५ ॥ युद्ध आरम्भ

होनेपर भाँति-भाँतिके अस्त्र-शस्त्र चलने लगे। उन अस्त्रोंसे दिशायें चमकने लगीं। उस समय कातरोंके हृदयमें महान् आतङ्क छा गया ॥ ४६ ॥ तदनन्तर एकवीरने गदासे मारकर कालकेतुके प्राण हर लिये। वह दानव इस प्रकार पृथ्वीपर गिरा, मानो वज्रका मारा हुआ पर्वत गिरा हो ॥४७॥ कालकेतुकी मृत्यु होते ही शेष सभी राक्षस भागकर जहाँ-तहाँ छिप गये। भयसे उनका कलेजा काँप रहा था। तब यशोवती शीघ्र ही एकावलीके पास जा पहुँची ॥४८॥ उसके मनमें असीम आनन्द भरा हुआ था। उसने मधुर वाणीमें एकावलीसे आश्चर्ययुक्त वचन कहा—'हे सखी! इधर आओ। देखो, यह दानव महाभाग एकवीरके प्रयाससे सदाके लिये सो गया ॥४९॥ वे बड़े बुद्धिमान् पुरुष हैं। उन्होंने बड़ी कठिन लड़ाई लड़ी है। इस समय वे राजा एकवीर अत्यन्त थक जानेके कारण अपने शिविरमें विराज रहे हैं ॥५०॥ उनके मनमें तुम्हें देखनेकी उत्सुकता जागी हुई है। कारण, तुम्हारे रूप और गुणोंकी बात वे सुन चुके हैं। हे राजकुमारी! उन कामदेव सरीखे सुन्दर राजकुमारको देखनेकी कृपा करो ॥५१॥ उन राजकुमारसे तुम्हारे विषयमें गंगाके तटपर मैं बात कर चुकी हूँ। बातचीतके प्रभावसे ही वे तुमपर पूर्ण अनुरक्त

गदया ताडयामास दैत्यं सिंधुसुतासुतः ॥ स गतासुः पपातोर्व्यां वज्राहत इवाचलः ॥ ४७ ॥ पलायित्वा गताः सर्वे राक्षसा भयपीडिताः ॥ यशोवती ततो गत्वा वेगादेकावलीं तदा ॥ ४८ ॥ उवाच मधुरां वाणीं विस्मितां मुदिता भृशम् ॥ एह्यालि नृपपुत्रेण दानवोऽसौ निपातितः ॥ ४९ ॥ एकवीरेण धीरेण युद्धं कृत्वा सुदारुणम् ॥ स्कन्धावारेऽप्यसौ राजा तिष्ठत्यद्य श्रमातुरः ॥ ५० ॥ दर्शनं कांक्षमाणस्ते श्रुतरूपगुणस्तव ॥ पश्य तं कुटिलापांगि मनोभवसमं नृपम् ॥ ५१ ॥ कथिता त्वं मया पूर्वं तस्याग्रे जाह्नवीतटे ॥ पूर्णानुरागः संजातस्तेनासौ विरहातुरः ॥ ५२ ॥ वांछति त्वां चारुरूपां द्रष्टुं नृपतिनन्दनः ॥ सा तस्य वचनं श्रुत्वा गमनाय मनो दधे ॥ ५३ ॥ लज्जमाना भृशं भीत्या कौमारं प्राप्तया तया ॥ कथं तस्य मुखं द्रक्ष्ये कुमारी ह्यवशा भृशम् ॥ ५४ ॥ स मां गृह्णाति कामार्त इति चिंताकुला सती ॥ यशोवत्या युता तत्र नरयानस्थिता ययौ ॥ ५५ ॥ स्कंधावारेऽतिमलिना मलिनांबरधारिणी ॥ तामागतां विशालाक्षीं दृष्ट्वा राजसुतोऽब्रवीत् ॥ ५६ ॥ दर्शनं देहि तन्वंगि तृषिते नयने मम ॥ कामातुरं च तं वीक्ष्य तां च लज्जाभरावृताम् ॥ ५७ ॥ नीतिज्ञा शिष्टमार्गज्ञा तमुवाच यशोवती ॥ राजपुत्र पिताऽप्यस्यास्त्वामेनां दातु-

हो गये हैं और तुमको देखनेके लिये अत्यन्त उत्सुक हैं'। यशोवतीकी बात सुनकर राजकुमारी एकावलीके मनमें जानेकी बात तो जँच गयी, परन्तु अभी वह कुमारी थी। अतएव भयसे घबरा उठी। उसके मनमें पर्याप्त संकोच था, मैं कुमारी कन्या कैसे राजकुमारका मुख देखूँगी? ॥५२–५४॥ यों वह साध्वी चिन्तामें व्यस्त हो यशोवतीको साथ लेकर पालकीपर बैठी और चल पड़ी। किन्तु उसे यही चिन्ता सता रही थी कि कहीं कामातुर होकर वह राजा मुझे पकड़ न ले ॥५५॥ वह द्वारपर पहुँच गयी। उसका मुख उदास था। वह मैली साड़ी पहने थी। विशाल नेत्रोंवाली राजकुमारी आ गयी, यह देखकर राजकुमार एकवीरने उससे कहा—हे तन्वङ्गी! दर्शन दो, तुम्हें देखनेके लिए मेरे नेत्र प्यासे हैं।' एकवीर अत्यन्त आतुर थे और एकावली लज्जासे गड़ी जा रही थी ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ यह देखकर नीतिकी पूर्ण जानकर तथा श्रेष्ठ पुरुषोंके मार्गका अनुसरण करनेवाली यशोवतीने एकवीरसे कहा—हे राजकुमार! इसके पिता

भी इसे तुम्हींको देना चाहते हैं ॥ ५८ ॥ यह राजकुमारी तुम्हारे अधीन होगी और इसके साथ तुम्हारा मिलन होगा—यह निश्चित है। किन्तु हे राजेन्द्र ! कुछ समय प्रतीक्षा करके तुम पहले इसे इसके पिताके पास पहुँचानेकी व्यवस्था करो ॥ ५९ ॥ इसके पिता ही वैवाहिक विधि सम्पन्न करके तुम्हारे साथ इसका विवाह कर देंगे।' यशोवतीकी बात धर्मात्मा एकवीरने सत्य मान ली। अतः यशोवती और एकावलीको साथ लेकर वे सेना सहित राजा रैभ्यके स्थानपर गये। पुत्रीके आनेका समाचार सुनकर रैभ्य प्रेमपूर्वक मन्त्रियोंके साथ उसकी अगवानीके लिए आगे आये। बहुत दिनोंके पश्चात् मलिन वस्त्र धारण करनेवाली वह पुत्री उन्हें दृष्टिगोचर हुई ॥ ६०–६२ ॥ फिर यशोवतीने विस्तारपूर्वक सभी बातें महाराजको बतलायीं। तदनन्तर एकवीर और राजा रैभ्यका परस्पर मिलन हुआ और राजा उन्हें लेकर अपने घर गये ॥६३॥ शुभ मुहूर्तमें विवाहका आयोजन किया गया और विधिपूर्वक पाणिग्रहण-संस्कार सम्पन्न हुआ। दहेज देकर राजाने भलीभाँति एकवीरका सम्मान किया। तत्पश्चात् कन्याको विदा कर दिया। साथमें यशोवतीको भी भेजा। इस प्रकार विवाह हो जानेपर लक्ष्मीतनय महाराज

मिच्छति ॥ ५८ ॥ एषाऽपि त्वद्वशा नूनं भविता संगमस्तव ॥ कालं प्रतीक्ष्य राजेन्द्र नयैनां पितुरन्तिकम् ॥ ५९ ॥ स विवाहविधिं कृत्वा दास्यतीति विनिश्चयः ॥ स तस्या वचनं तथ्यं मत्वा सैन्यसमन्वितः ॥ ६० ॥ समेतः कामिनीभ्यां तु ययौ तत्पितुराश्रमम् ॥ राजपुत्रीं तथाऽऽयातां श्रुत्वा प्रेमसमन्वितः ॥ ६१ ॥ प्रययौ सम्मुखस्तूर्णं सचिवैः परिवेष्टितः ॥ बहुभिर्दिवसैर्दृष्टा पुत्री सा मलिनाम्बरा ॥ ६२ ॥ यशोवत्या तु वृत्तान्तः कथितो विस्तरात्पुनः ॥ एकवीरं मिलित्वाऽसौ गृहमानीय चादरात् ॥ ६३ ॥ पुण्येऽह्नि कारयामास विवाहं विधिपूर्वकम् ॥ पारिबर्हं ततो दत्त्वा संपूज्य विधिवत्तदा ॥६४॥ पुत्रीं विसर्जयामास यशोवत्या समन्विताम् ॥ एवं विवाहे संवृत्ते रमापुत्रो मुदान्वितः ॥६५॥ गृहं प्राप्य बहून्भोगान्बुभुजे प्रियया समम् ॥ बभूव तस्याः पुत्रस्तु कृतवीर्याभिधः किल ॥ ६६ ॥ तत्सुतः कार्तवीर्यस्तु वंशोऽयं कथितो मया ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

॥ राजोवाच ॥ भगवंस्त्वन्मुखांभोजाच्च्युतं दिव्यकथारसम् ॥ न तृप्तिमधिगच्छामि पिबंस्तु सुधया समम् ॥ १ ॥ विचित्रमिदमाख्यानं कथितं भवता मम ॥ हैहयानां समुत्पत्तिर्विस्तराद्विस्मयप्रदा ॥२॥ परं कौतूहलं मेऽत्र यद्विष्णुः कमलापतिः ॥ देवदेवो जगन्नाथः सृष्टिस्थित्यंतकारकः

एकवीरके हर्षकी सीमा नहीं रही ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ अब वे अपने भवन पहुँचे और प्रेयसी भार्या एकावलीके साथ रहकर भाँति-भाँतिके भोग भोगने लगे। उन्होंने एकावलीके गर्भसे एक पुत्र उत्पन्न किया, जो 'कृतवीर्य' नामसे विख्यात हुआ। उन्हीं कृतवीर्यके पुत्र कार्तवीर्य हुए। इस प्रकार मैं इस वंशावलीका वर्णन कर चुका ॥ ६६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते षष्ठस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा' भाषाटीकायां त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

(व्यासजीकी आत्मकथा) राजा जनमेजयने कहा—भगवन्! आपके मुखकमलसे निकला हुआ दिव्य कथारूपी रस अमृतके समान मधुर है। इसका निरन्तर पान करते रहनेपर भी मैं तृप्त नहीं हो पाता ॥ १ ॥ आपने हैहयवंशी राजाओंकी उत्पत्तिका प्रसंग जो मुझसे विस्तारपूर्वक कहा है, वह बड़ा ही विचित्र एवं आश्चर्यजनक है ॥ २ ॥ इस विषयमें मुझे सबसे बढ़कर

नहीं हो पाता ॥ १ ॥ आपने हैहयवंशी राजाओंकी उत्पत्तिका प्रसंग जो मुझसे विस्तारपूर्वक कहा है, वह बड़ा ही विचित्र एवं आश्चर्यजनक है ॥ २ ॥ इस विषयमें मुझे सबसे बढ़कर

आश्चर्ययुक्त शंका तो यह हो रही है कि लक्ष्मीकान्त देवदेव जगन्नाथ एवं जगत्की सृष्टि तथा संहार करनेमें समर्थ भगवान विष्णु अश्व क्यों बने ? वे सर्वतंत्रस्वतंत्र भगवान पुरुषोत्तम परतंत्र कैसे बन गये ? ॥ ३ ॥ ४ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! आप सर्वज्ञ हैं । अतएव मेरे इस संशयको निवृत्त कर दीजिए । इस वृत्तान्तको भलीभाँति समझाकर कहिए ॥ ५ ॥ व्यासजी कहते हैं— हे राजन् ! सुनो, इस शंकाका निर्णीत उत्तर पूर्व समयमें मैंने मुनिवर नारदजीके मुखसे जैसा सुना है, ठीक वैसा ही बता रहा हूँ ॥ ६ ॥ ब्रह्माजीके मानस पुत्रका नाम नारद है । वे परम तपस्वी, सर्वज्ञानी, शान्तस्वरूप, सर्वत्र जानेकी योग्यता रखनेवाले, सम्पूर्ण जगत्के प्रेमी एवं प्रकाण्ड विद्वान् हैं ॥ ७ ॥ एक समयकी बात है, मुनिवर नारदजी ताल और स्वरके साथ वीणा बजाते हुए इस भूमण्डलपर विचर रहे थे ॥ ८ ॥ साथ ही उनके द्वारा बृहद्रथन्तर और साम आदि अनेक प्रकारके भेदसे अमृतमयी गायत्रीका गान चल रहा था । यों गाते-बजाते वे मेरे आश्रमपर पहुँचे ॥ ९ ॥ उस समय मैं शम्याप्रास नामक महान् तीर्थमें था । वह परम पावन स्थान सरस्वती नदीके तटपर है । कल्याण और ज्ञान प्रदान करनेवाले उस तीर्थमें बहुतसे

॥ ३ ॥ सोऽप्यश्वभावमापन्नो भगवान्हरिरच्युतः ॥ परतंत्रः कथं जातः स्वतंत्रः पुरुषोत्तमः ॥४॥ एतन्मे संशयं ब्रह्मञ्छेत्तुमर्हसि सांप्रतम् ॥ सर्वज्ञस्त्वं मुनिश्रेष्ठ ब्रूहि वृत्तान्तमद्भुतम् ॥ ५ ॥ व्यास उवाच ॥ शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि संदेहस्यास्य निर्णयम् ॥ यथा श्रुतं मया पूर्वं नारदान्मुनिसत्तमात् ॥ ६ ॥ ब्रह्मणो मानसः पुत्रो नारदो नाम तापसः ॥ सर्वज्ञः सर्वगः शान्तः सर्वलोकप्रियः कविः ॥७॥ स चैकदा मुनिश्रेष्ठो विचरन्पृथिवीमिमाम् ॥ वादयन्महतीं वीणां स्वरतानसमन्विताम् ॥ ८ ॥ बृहद्रथंतरादीनां साम्नां भेदाननेकशः ॥ गायन्गायत्रममृतं संप्राप्तोऽथ ममाश्रमम् ॥ ९ ॥ शम्याप्रासं महातीर्थं सरस्वत्याः सुपावनम् ॥ निवासं मुनिमुख्यानां शर्मदं ज्ञानदं तथा ॥१०॥ तमागतमहं प्रेक्ष्य ब्रह्मपुत्रं महाद्युतिम् ॥ अभ्युत्थानादिकं सर्वं कृतवानर्चनादिकम् ॥ ११ ॥ अर्घ्यपाद्यविधिं कृत्वा तस्यासनस्थितस्य च ॥ उपविष्टः समीपेऽहं मुनेरमिततेजसः ॥ १२ ॥ दृष्ट्वा विश्रमिणं शान्तं नारदं ज्ञानपारदम् ॥ तमपृच्छमहं राजन्यत्पृष्टोऽहं त्वयाऽधुना ॥ १३ ॥ असारेऽस्मिंस्तु संसारे प्राणिनां किं सुखं मुने ॥ न पश्यामि विनिश्चित्य कदाचित्कुत्रचित्क्वचित् ॥१४॥ द्वीपे जातो जनन्याऽहं संत्यक्तस्तत्क्षणादपि ॥ अनाश्रयो वने वृद्धिं प्राप्तः कर्मानुसारतः ॥१५॥ तपस्तप्तं मया चोग्रं पर्वते बहुवार्षिकम् ॥ पुत्रकामेन देवर्षे शंकरः समुपासितः ॥ १६॥ ततो मया शुकः प्राप्तः पुत्रो ज्ञानवतां वरः ॥ पाठितस्तु मया

सुप्रसिद्ध मुनि निवास करते हैं ॥ १० ॥ ब्रह्माजीके मानस पुत्र महान् तेजस्वी मुनिवर नारदजीका आगमन देखा तो मैं उठकर खड़ा हो गया और सम्यक् प्रकारसे मैंने उनकी पूजा की ॥ ११ ॥ जब पाद्य-अर्घ्य आदि स्वीकार करके नारदजी शान्तभावसे आसनपर विराज गये, तब मैं भी उनके पास बैठ गया ॥१२॥ हे राजन् ! जब मैंने देखा, ज्ञानकी चरम सीमातक पहुँचानेमें कुशल मुनि नारदका मार्गश्रम दूर हो गया है और उनका चित्त शान्त है, तब अभी जो प्रश्न तुमने मुझसे किया है, वही मैंने उनसे किया । मैंने कहा—'हे मुने ! इस मिथ्या जगत्में प्राणियोंको क्या सुख मिलता है ? सम्यक् प्रकारसे विचार करनेपर कहीं किंचिन्मात्र भी सुख मुझे दिखायी नहीं पड़ता ॥ १३ ॥ १४ ॥ देखिए न, मेरा ही जन्म एक द्वीपमें हुआ । जन्म लेते ही मुझे मेरी माताने त्याग दिया । फिर एक जङ्गलमें असहाय होकर मैं अपने कर्मके अनुसार धीरे-धीरे बढ़ने लगा ॥ १५ ॥ तदनन्तर पुत्रप्राप्तिके निमित्त एक पहाड़पर कई वर्षोंतक तप

करके देवाधिदेव शङ्करकी उपासना की ॥१६॥ तब ज्ञानी शुकदेव मुझे पुत्ररूपमें मिले। उन्हें मैंने चारों वेदोंका सारांश भलीभाँति पढ़ाया। जिससे वे ज्ञानियोंमें अग्रणी हुए ॥ १७ ॥ हे देवर्षि नारद! आपके ही उपदेशसे मेरा शुक ज्ञानी हुआ और पुत्र-विरहसे कातर मुझे रोता छोड़ वह अन्य लोकके मार्गका पथिक बनकर न जाने कहाँ चला गया ॥१८॥ तब पुत्रशोकसे अधीर होकर मैं पर्वतराज सुमेरुसे उतर आया। अब मुझे पुत्रप्रेमके कारण सदा दुःखित रहनेवाली अपनी माताकी सुधि हुई। अतएव मैं तुरन्त 'कुरुजाङ्गल' प्रदेशमें जा पहुँचा ॥ १९ ॥ यह जानते हुए भी कि संसार मिथ्या है, फिर भी मायाके फंदेमें फँसकर मैं सदा शोकसन्तप्त रहने लगा। इसीसे मैं बहुत दुर्बल हो गया ॥ २० ॥ जब मुझे यह पता चला कि वसुराजकी राजकुमारी अर्थात् मेरी कल्याणमयी माताको राजा शन्तनुने अपनी रानी बना लिया है, तब सरस्वती नदीके पवित्र तटपर मैं आश्रम बनाकर रहने लगा ॥ २१ ॥ तदनन्तर जब महाराज शन्तनु स्वर्गवासी हो गये, तब मेरी माता विधवा हो गयी और राजकुमार भीष्म दो राजकुमारों और मेरी पतिव्रता माताका पालन करने लगे ॥ २२ ॥ बादमें बुद्धिमान् गंगातनय भीष्मने

सम्यग्वेदानां सार आदितः ॥ १७ ॥ स त्यक्त्वा मां गतः क्वापि रुदन्तं विरहातुरम् ॥ लोकाल्लोकांतरं साधो वचनात्तव बोधितः ॥ १८ ॥ ततोऽहं पुत्रसंतप्तस्त्यक्त्वा मेरुं महागिरिम् ॥ मातरं मनसा कृत्वा संप्राप्तः कुरुजांगलम् ॥ १९ ॥ पुत्रस्नेहादतितरां कृशांगः शोकसंयुतः ॥ जानन्मिथ्येति संसारं मायापाशनियंत्रितः ॥ २० ॥ ततो राज्ञा वृतां ज्ञात्वा मातरं वासवीं शुभाम् ॥ स्थितोऽत्रैवाश्रमं कृत्वा सरस्वत्यास्तटे शुभे ॥ २१ ॥ शंतनुः स्वर्गतिं प्राप्तो विधुरा जननी स्थिता ॥ पुत्रद्वययुता साध्वी भीष्मेण प्रतिपालिता ॥ २२ ॥ चित्रांगदः कृतो राजा गंगापुत्रेण धीमता ॥ कालेन सोऽपि मे भ्राता मृतः कामसमद्युतिः ॥२३॥ ततः सत्यवती माता निमग्ना शोकसागरे ॥ चित्रांगदं मृतं पुत्रं रुरोद भृशमातुरा ॥ २४ ॥ संप्राप्तोऽहं महाभाग ज्ञात्वा तां दुःखितां सतीम् ॥ आश्वासिता मयाऽत्यर्थं भीष्मेण च महात्मना ॥२५॥ विचित्रवीर्यस्त्वपरो वीर्यवान्पृथिवीपतिः ॥ कृतो भीष्मेण भ्राता वै स्त्रीराज्यविमुखेन ह ॥ २६ ॥ काशिराजसुते रम्ये विजित्य पृथिवीपतीन् ॥ भीष्मेणानीय स्वबलात्कन्यके द्वे समर्पिते ॥ २७ ॥ सत्यवत्यै शुभे काले विवाहः परिकल्पितः ॥ भ्रातुर्विचित्रवीर्यस्य तदाऽहं सुखितोऽभवम् ॥ २८ ॥ पुनः सोऽपि मृतो भ्राता

चित्राङ्गदको राजा बनाया। लेकिन कुछ ही समय बाद कामदेव सरीखे कान्तिमान् मेरे भाई चित्रांगद भी मर गये ॥ २३ ॥ अपने पुत्र चित्रांगदको मृत देखकर मेरी माता बहुत विकल होकर रोने लगी। तभीसे वह नित्य शोकके सागरमें निमग्न रहने लगी ॥ २४ ॥ हे महाभाग! जब मुझे पता चला कि वह सती बड़े दुःखमें है, तब मैं राजमहलमें गया और मैंने तथा महात्मा भीष्मने उन्हें आश्वस्त किया ॥२५॥ महात्मा भीष्म न अपना विवाह करना चाहते थे और न राज्याधिकारी होनेकी ही उनकी इच्छा थी। अतएव उन्होंने अपने छोटे भाई परम पराक्रमी विचित्रवीर्यको राजा बना दिया ॥२६॥ तदुपरान्त अपने बाहुबलसे बहुतेरे राजाओंको परास्त करके भीष्मने काशिराजकी दो पुत्रियोंको लाकर राजमाता सत्यवतीके चरणोंपर समर्पित किया। शुभ दिन एवं शुभ मुहूर्तमें अपने भाई विचित्रवीर्यका विवाह हो जानेपर मैं बहुत प्रसन्न हुआ ॥२७॥२८॥ कुछ ही दिनों बाद वे धनुर्धारी भाई विचित्रवीर्य राजयक्ष्मा रोगसे ग्रस्त होकर मरी

जवानीमें निःसन्तान मर गये। इससे मेरी माता विशेष दुःखित हुई ॥ २९ ॥ अपने पतिको मृत देखकर काशिराजकी उन दोनों राजकुमारियोंने उसके साथ सती हो जानेका निश्चय किया ॥३०॥ उन दोनोंने अपनी अत्यन्त दुःखिता तथा बिलखती हुई पतिव्रता साससे कहा कि हम दोनों पतिके शवके साथ चितामें जलकर सती हो जायँगी ॥३१॥ हे आर्ये ! आपके पुत्रके साथ स्वर्गलोकमें जाकर हम दोनों पतिके संग नन्दनकाननमें विहार करेंगी ॥ ३२ ॥ तब अत्यन्त प्रेमभाव दिखलाती हुई मेरी माताने भीष्मकी सलाहसे उन दोनों बहुओंको इस महान् कार्यको करनेसे रोक दिया ॥ ३३ ॥ जब दिवंगत राजा विचित्रवीर्यकी सारी और्ध्वदैहिक क्रिया सम्पन्न हो गयी, तब भीष्मसे सलाह लेकर मेरी माताने मुझे हस्तिनापुर बुलवाया ॥ ३४ ॥ इस प्रकार स्मरण करते ही मुझे माताके मनोगत भावकी बात ज्ञात हो गयी और मैं तुरन्त हस्तिनापुर जा पहुँचा ॥ ३५ ॥ वहाँ मस्तक नवाकर मैंने माताको प्रणाम किया और हाथ जोड़कर उनके समक्ष खड़ा होगया। फिर पुत्रशोकसे दुर्बल अपनी माताजीसे कहा—॥ ३६ ॥ हे माता ! आपने अपने मनमें स्मरण करके मुझे यहाँ किसलिए बुलाया है ? हे

यक्ष्मणा पीडितो भृशम् ॥ अनपत्यो युवा धन्वी माता मे दुःखिताऽभवत् ॥ २९ ॥ काशिराजसुते द्वे तु मृतं दृष्ट्वा पतिं तदा ॥ पतिव्रताधर्मपरे भगिन्यौ संबभूवतुः ॥ ३० ॥ ते ऊचतुः सतीं श्वश्रूं रुदतीं भृशदुःखिताम् ॥ पतिना सहगामिन्यौ भविष्यावो हुताशने ॥ ३१ ॥ पुत्रेण सह ते श्वश्रूः स्वर्गे गत्वाऽथ नंदने ॥ सुखेन विहरिष्यावः पतिना सह संयुते ॥३२॥ निवारिते तदा मात्रा वध्वौ तस्मान्महोद्यमात् ॥ स्नेहभावं समाश्रित्य भीष्मस्य वचनात्तदा ॥ ३३ ॥ गांगेयेन च मात्रा मे संमंत्र्य च परस्परम् ॥ कृत्वौर्ध्वदैहिकं सर्वं संस्मृतोऽहं गजाह्वये ॥ ३४ ॥ स्मृतमात्रस्तु मात्रा वै ज्ञात्वा भावं मनोगतम् ॥ तरसैवागतश्चाऽहं नगरं नागसाह्वयम् ॥ ३५ ॥ प्रणम्य मातरं मूर्ध्ना संस्थितोऽथ कृतांजलिः ॥ तामब्रुवं सुतप्तांगीं पुत्रशोकेन कर्शिताम् ॥३६॥ मातस्त्वया किमाहूतो मनसाऽहं तपस्विनि ॥ आज्ञापय महत्कार्ये दासोऽस्मि करवाणि किम् ॥ ३७ ॥ त्वं मे तीर्थं परं मातर्देवश्च प्रथितः परः ॥ आगतश्चितितश्चात्र ब्रूहि कृत्यं तव प्रियम् ॥ ३८ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्त्वाऽहं स्थितस्तत्र मातुरग्रे यदा मुने ॥ तदा सा मामुवाचेदं पश्यती भीष्ममंतिके ॥ ३९ ॥ पुत्र तेऽद्य मृतो भ्राता पीडितो राजयक्ष्मणा ॥ तेनाहं दुःखिता जाता वंशच्छेदभयादिह ॥ ४० ॥ तस्मात्त्वमद्य मेधाविन्मयाऽऽहूतः समाधिना ॥ गांगेयस्य मतेनात्र पाराशर्यार्थसिद्धये ॥ ४१ ॥ कुलं स्थापय नष्टं त्वं शंतनोर्नामकार-

तपस्विनी ! यदि मेरे करने योग्य कोई काम हो तो उसे बताइए, मैं आपका आज्ञाकारी पुत्र हूँ। कहिए, मैं कौन-सा कार्य करूँ ? ॥ ३७ ॥ हे माताजी ! मेरा परम तीर्थ और परम देवता आपही हैं। आपके स्मरण करते ही मैं आ गया हूँ। अब बताइए कि आपका कौनसा प्रिय कार्य मुझे करना है ॥ ३८ ॥ व्यासजी बोले—हे नारद ! माताजीसे इतना कहनेके बाद जब मैं चुप हो गया, तब पास ही बैठे हुए भीष्मकी ओर निहारती हुई माताजी मुझसे कहने लगीं—॥ ३९ ॥ हे पुत्र ! तुम्हारे भाई विचित्रवीर्य राजयक्ष्मा रोगसे पीडित होकर अभी हाल ही में मरे हैं। अतएव अपना वंश नष्ट होनेके डरसे मैं बड़ी दुःखित हूँ ॥ ४० ॥ हे प्रतिभाशाली ! हे पराशरतनय ! इसी उद्देश्यकी पूर्तिके लिये मैंने भीष्मकी सलाहसे समाधि द्वारा तुम्हें यहाँ बुलाया है ॥ ४१ ॥ जिससे महाराज शन्तनुका नाम चलता रहे, अतएव इस नष्ट होते हुए राजवंशको तुम स्थापित करो। हे द्वैपायन कृष्ण ! वंश लोप होनेके भयसे मैं जो

दुःखित हो रही हूँ, उससे तुम मुझे शीघ्र बचाओ ॥ ४२ ॥ तुम्हारे सदाचारी छोटे भाई विचित्रवीर्यकी दो रानियाँ हैं, जो काशीनरेशकी पुत्री और रूप तथा यौवनसे सम्पन्न हैं ॥ ४३ ॥ हे मतिमान् ! उन दोनोंके समागम द्वारा पुत्र उत्पन्न करके तुम हमारे भारतवंशकी रक्षा करो। ऐसा करनेमें तुम्हें कोई दोष नहीं लगेगा ॥ ४४ ॥ व्यासजी बोले—हे नारद ! अपनी माताका ऐसा आदेश पाकर मैं बड़ी चिन्तामें पड़ गया और लज्जासे व्याकुल होकर मैंने नम्रतापूर्वक कहा—॥ ४५ ॥ हे माताजी ! परायी स्त्रीके साथ सम्भोग करनेसे बढ़कर कोई दूसरा पाप नहीं होता। इस बातको जानता हुआ भी मैं ऐसा दुष्कर्म कैसे कर सकता हूँ ? ॥४६॥ और फिर वे दोनों हमारे छोटे भाईकी स्त्री हैं। छोटे भाईकी स्त्री तो कन्याके तुल्य होती है। फिर चारों वेदोंका अध्ययन करके भी मैं ऐसा व्यभिचार कैसे करूँ ? ॥ ४७ ॥ यदि अधर्मके द्वारा कुलकी रक्षा होती हो तो उसे कदापि नहीं करना चाहिए। क्योंकि पापियोंके पितर कभी भी भवसागर पार नहीं कर सकते ॥ ४८ ॥ और फिर मैं वेदव्यास तथा अट्ठारहों पुराणोंका रचयिता हूँ। तब जान-बूझकर मैं ऐसे निंद्य कर्मको कैसे कर सकता हूँ ? ॥ ४९ ॥ यद्यपि

णात् ॥ रक्ष मां दुःखतः कृष्ण वंशच्छेदोद्भवाद्द्रुतम् ॥ ४२ ॥ काशिराजसुते भार्ये भ्रातुस्तव यवीयसः ॥ साधोर्विचित्रवीर्यस्य रूपयौवनभूषिते ॥ ४३ ॥ ताभ्यां संगम्य मेधाविन्पुत्रोत्पादनकं कुरु ॥ रक्ष त्वं भारतं वंशं नात्र दोषोऽस्ति कर्हिचित् ॥ ४४ ॥ व्यास उवाच ॥ इति मातुर्वचः श्रुत्वा जातश्चिन्तातुरो ह्यहम् ॥ लज्जयाऽकुलचित्तस्तामब्रुवं विनयानतः ॥४५॥ मातः पापाधिकं कर्म परदाराभिमर्शनम् ॥ ज्ञात्वा धर्मपथं सम्यक्करोमि कथमादरात् ॥ ४६ ॥ तथा यवीयसो भ्रातुर्वधूः कन्या प्रकीर्तिता ॥ व्यभिचारं कथं कुर्यामधीत्य निगमानहम् ॥ ४७ ॥ अन्यायेन न कर्तव्यं सर्वथा कुलरक्षणम् ॥ न तरंति हि संसारात्पितरः पापकारिणः ॥ ४८ ॥ लोकानामुपदेष्टा यः पुराणानां प्रवर्तकः ॥ स कथं कुत्सितं कर्म ज्ञात्वा कुर्यान्महाद्भुतम् ॥ ४९ ॥ पुनरुक्तो ह्यहं मात्रा रुदत्या भृशमंतिके ॥ पुत्रशोकातितप्ताया वंशरक्षणकाम्यया ॥ ५० ॥ पाराशर्य न ते दोषो वचनान्मम पुत्रक ॥ गुरूणां वचनं तथ्यं सदोषमपि मानवैः ॥ ५१ ॥ कर्तव्यमविचार्यैव शिष्टाचारप्रमाणतः ॥ वचनं कुरु मे पुत्र न ते दोषोऽस्ति मानद ॥ ५२ ॥ पुत्रस्य जननं कृत्वा सुखिनीं कुरु मातरम् ॥ विशेषेण तु संतप्तां मग्नां शोकार्णवे सुत ॥ ५३ ॥ इति तां ब्रुवतीं श्रुत्वा तदा सुरनदीसुतः ॥ मामुवाच विशेषज्ञः सूक्ष्मधर्मस्य निर्णये ॥५४॥ द्वैपायन विचारोऽत्र न कर्तव्यस्त्वयाऽनघ ॥ मातुर्वचनमादाय विहरस्व यथासुखम्

मैंने इतनी बातें कहीं, तथापि मातापर उसका कुछ भी असर नहीं हुआ। क्योंकि वे पुत्रशोकसे विकल थीं और उन्हें वंशरक्षाकी चिन्ता सता रही थी। अब वे सिसकी भरती हुई मेरे पास खिसक आयीं और फिर बड़ी आतुरताके साथ कहने लगीं—॥ ५० ॥ हे पराशर-नन्दन ! हे पुत्र ! मेरी बात मानकर यदि तुम यह कार्य करोगे तो तुम्हें परस्त्रीगमनका दोष नहीं लगेगा। क्योंकि मनुष्योंको चाहिए कि अपने गुरुजनोंकी सदोष बातको भी प्रामाणिक मानें और उसे बिना विचारे कर डालें। इसमें शिष्ट पुरुषोंका आचार ही प्रमाण है। अतः हे सम्मान-दाता पुत्र ! तुम मेरी बात मान लो। हे बेटा ! इससे तुम्हें कोई दोष नहीं लगेगा ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ पुत्र उत्पन्न करके तुम अपनी माताको सुखी करो। हे बेटे ! मैं अत्यन्त सन्तप्त होकर शोक-सागरमें पड़ी हुई हूँ। माताकी बात सुनकर सूक्ष्म धर्मके निर्णय करनेवालोंमें निपुण गंगातनय भीष्म बोले—॥ ५३ ॥ ५४ ॥ हे कृष्ण द्वैपायन ! तुम्हें इस सम्बन्धमें कुछ भी सोचनेकी

सागरमें पड़ी हुई हूँ । माताकी बात सुनकर सूक्ष्म धर्मके निर्णय करनेवालोंमें निपुण गंगातनय भीष्म बोले—॥ ५३ ॥ ५४ ॥ हे कृष्ण द्वैपायन ! तुम्हें इस सम्बन्धमें कुछ भी सोचनेकी

आवश्यकता नहीं है । हे पूतात्मन् ! माताका आदेश मानकर तुम सुखपूर्वक विहार करो ॥ ५५ ॥ व्यासजी बोले—हे नारद ! भीष्मकी यह बात सुनकर और माताकी प्रार्थनापर मैं निःशङ्क चित्तसे उस निन्द्य कर्ममें प्रवृत्त हो गया ॥५६॥ अम्बिकाके ऋतुस्नान करनेपर रात्रिके समय मैं प्रसन्नतापूर्वक उसके साथ भोग करने लगा । किन्तु मुझ तपस्वीको कुरूपता देखकर वह मुझपर तनिक भी अनुरक्त नहीं हुई ॥५७॥ जिससे मैंने उस नितम्बिनीको यह शाप दे दिया कि तुमने सहवासमें अपनी आँखें बन्द कर लीं—इससे तुम्हारा पुत्र जन्मान्ध होगा ॥ ५८ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ नारद ! सबेरा होनेपर एकान्तमें माताने मुझसे पूछा—बेटा ! क्या काशिराजकुमारीके गर्भसे पुत्र उत्पन्न होगा ? ॥ ५९ ॥ तब लज्जाके कारण सिर झुकाये हुए ही मैंने कहा—हे माता ! मेरे शापके कारण वह पुत्र जन्मान्ध होगा ॥ ६० ॥ हे मुने ! तब माताने मुझे डाँटते हुए कहा—बेटा ! अम्बिकाको तुमने क्यों ऐसा शाप दिया कि जिससे उसका पुत्र अन्धा हो ? ॥ ६१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

॥ ५५ ॥ व्यास उवाच ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा मातुश्च प्रार्थनं तथा ॥ निःशंकोऽहं तदा जातः कार्ये तस्मिञ्जुगुप्सिते ॥ ५६ ॥ अम्बिकायां प्रवृत्तोऽहमृतुमत्यां मुदा निशि ॥ तस्यां मयि विमनस्कायां तापसे कुत्सिते भृशम् ॥ ५७ ॥ शप्ता मया सा सुश्रोणी प्रसंगे प्रथमे तदा ॥ अंधस्ते भविता पुत्रो यतो नेत्रे निमीलिते ॥५८॥ द्वितीयेऽह्नि मुनिश्रेष्ठ पृष्टो मात्रा रहः पुनः ॥ भविष्यति सुतः पुत्र काशिराजसुतोदरे ॥५९॥ मयोक्ता जननी तत्र व्रीडानम्रमुखेन ह ॥ विनेत्रो भविता पुत्रो मातः शापान्ममैव हि ॥ ६० ॥ तया निर्भर्त्सितस्तत्र कठोरवचसा मुने ॥ कथं पुत्र त्वया शप्तः पुत्रस्तेंऽधो भविष्यति ॥६१॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥

॥ व्यास उवाच ॥ वासवी चकिता जाता श्रुत्वा मे वाक्यमीदृशम् ॥ दाशेयी मामुवाचेदं पुत्रार्थे भृशमातुरा ॥ १ ॥ अंबालिका वधूर्धन्या काशिराज्यसुता सुत ॥ भार्या विचित्रवीर्यस्य विधवा शोकसंयुता ॥ २ ॥ सर्वलक्षणसंपन्ना रूपयौवनशालिनी ॥ तस्यां जनय संगं त्वं कृत्वा पुत्रं सुसंमतम् ॥ ३ ॥ नान्धो राजाधिकारी स्यात्तस्मात्पुत्रं मनोहरम् ॥ उत्पादय राजपुत्र्यां वचनान्मम मानद ॥४॥ इत्युक्तोऽहं तदा मात्रा स्थितस्तत्र गजाह्वये ॥ यावदृतुमती जाता काशिराजसुता मुने ॥ ५ ॥ एकांते शयनागारे प्राप्ता सा मम सन्निधौ ॥ लज्जमाना सुकेशांता स्वश्वश्रुवचना-

(व्यासजीकी आत्मकथा) व्यासजी बोले—हे नारद ! मेरी बात सुनकर वासवराजकुमारी एवं दास-तनया सत्यवती चकित हो गयीं और पुत्रके लिए अत्यन्त व्यग्र होकर मुझसे कहने लगीं—॥ १ ॥ बेटा ! विचित्रवीर्यकी दूसरी विधवा रानी अम्बालिका है, जो पतिके शोकसे व्याकुल है । वह भी काशिनरेशकी ही राजकुमारी है और बड़ी गुणवती है ॥ २ ॥ वह सारे सुलक्षणोंसे सम्पन्न एवं सौन्दर्य तथा यौवनसे युक्त है । उसके साथ भोग करके तुम विधिसम्मत पुत्र उत्पन्न करो ॥ ३ ॥ क्योंकि राजनीतिशास्त्रके अनुसार जन्मान्ध राजकुमार राज्यसिंहासनका अधिकारी नहीं हो सकता । अतएव हे सम्मान देनेवाले पुत्र ! तुम मेरे कथनानुसार उस राजपुत्रीके गर्भसे एक सुन्दर पुत्र उत्पन्न करो ॥४॥ हे नारदजी ! माताजीके ऐसा कहनेपर मैं हस्तिनापुरमें ठहर गया और जब काशिराजकी पुत्री अम्बालिका ऋतुमती हुई तो अपनी सासके कहनेपर निर्जन शयनागारमें मेरे पास आकर लज्जाके मारे गड़ गयी

॥ ५ ॥ ६ ॥ मुझ जटाधारी, इन्द्रियनिग्रही एवं शृङ्गाररससे अनभिज्ञ तपस्वीको देखकर उसके मुँहपर पसीना आ गया, शरीर पीला पड़ गया और उसका जी टूट गया ॥ ७ ॥ रातके समय भोग-विलासके लिए आयी हुई उस नवयुवतीको अपनी बगलमें काँपती हुई बैठी देखकर मुझे बड़ा क्रोध आया और मैंने कुपित होकर उससे कहा–॥८॥ हे सुन्दर कटिवाली सुन्दरी ! तुम मेरी कुरूपता देखकर अपनी सुन्दरताके गर्वसे पीली पड़ गयी हो तो तुम्हारा पुत्र पाण्डु अर्थात् पीले रंगका होगा ॥ ९ ॥ ऐसा कहकर मैं राजमहलमें रातको उस नवयुवतीके साथ सम्भोग करनेके बाद सबेरे अपनी मातासे अनुमति लेकर अपने आश्रमको लौट गया ॥१०॥ दस महीना बीतनेपर उन दोनों राजरानियोंने अन्ध और पाण्डुवर्णके दो पुत्र उत्पन्न किये। उनमेंसे अम्बिकाका पुत्र 'धृतराष्ट्र' और अम्बालिकाका पुत्र 'पाण्डु'के नामसे प्रसिद्ध हुआ ॥ ११ ॥ उन दोनों राजकुमारोंको इस रूपमें देखकर मेरी माता बड़ी अनमनी हुई और साल-भर बाद मुझे बुलाकर बोलीं––॥ १२ ॥ हे द्वैपायन ! दो राजकुमार उत्पन्न तो हुए, लेकिन वे राज्य करनेके योग्य नहीं हैं। अतएव तुम एक ऐसा सुन्दर पुत्र उत्पन्न करो, जिसे

तदा ॥ ६ ॥ दृष्ट्वा मां जटिलं दांतं तापसं रसवर्जितम् ॥ सा स्वेदवदना जाता पांडुरा विमना भृशम् ॥ ७ ॥ कुपितोऽहं तदा दृष्ट्वा कामिनीं निशि संगताम् ॥ वेपमानां स्थितां पार्श्वे ह्यब्रुवं तामहं रुषा ॥ ८ ॥ दृष्ट्वा मां यदि गर्वेण पांडुवर्णा समावृता ॥ अतस्ते तनयः पांडुर्भविष्यति सुमध्यमे ॥ ९ ॥ इत्युक्त्वा निशि तत्रैव स्थितो बालिकया युतः ॥ भुक्त्वा तां निशि निर्यातः स्थानमापृच्छ्य मातरम् ॥१०॥ ततस्ताभ्यां सुतौ काले प्रसूतावंधपांडुरौ ॥ धृतराष्ट्रश्च पांडुश्च प्रथितौ संबभूवतुः ॥ ११ ॥ माता मे विमना जाता तादृशौ वीक्ष्य तौ सुतौ ॥ ततः संवत्सरस्यांते मामाहूय तदाऽब्रवीत् ॥ १२ ॥ द्वैपायन सुतौ जातौ राज्ययोग्यौ न तादृशौ ॥ अन्यं मनोहरं पुत्रं समुत्पादय मे प्रियम् ॥१३॥ तथेति सा मया प्रोक्ता मुदिता जननी तदा ॥ अंबिकां प्रार्थयामास सुतार्थे काल आगते ॥१४॥ पुत्रि व्यासं समालिंग्य पुत्रमुत्पादयाद्भुतम् ॥ कुरुवंशस्य कर्तारं राज्ययोग्यं वरानने ॥ १५ ॥ वधूर्लज्जान्विता किंचिन्नोवाच वचनं तदा ॥ गतोऽहं शयनागारे मातुस्तद्वचनान्निशि ॥ १६ ॥ दासी विचित्रवीर्यस्य रूपयौवनसंयुता ॥ प्रेषिताऽम्बिकया त्वत्र विचित्राभरणांबरा ॥१७॥ चंदनारक्तदेहा सा पुष्पमालाविभूषिता ॥ आयाता हावसंयुक्ता सुकेशी हंसगामिनी ॥ १८ ॥ पर्यंके मां समावेश्य संस्थिता प्रेमसंयुता ॥ प्रसन्नोऽहं तदा तस्या विलासेनाभवं मुने ॥ १९ ॥ रात्रौ संक्रीडितं प्रेम्णा तया सह

देखकर मेरा मन प्रसन्न हो जाय ॥ १३ ॥ मैंने कहा कि 'बहुत अच्छा'—ऐसा ही करूँगा। इससे माताजी बड़ी प्रसन्न हुईं। ऋतुकालमें उन्होंने अम्बिकासे कहा–॥ १४ ॥ हे बेटी ! हे सुमुखी ! व्यासको आलिङ्गन करके तुम ऐसे अद्वितीय राजकुमारको उत्पन्न करो, जिससे कुरुवंश चल सके और उसे राजगद्दी मिले ॥ १५ ॥ उस समय तो वह लज्जाके मारे अपनी साससे कुछ नहीं कह सकी। किन्तु रातके समय जब मैं अपनी माताके आदेशसे शयनागारमें पहुँचा तो अम्बिकाने विचित्रवीर्यकी एक दासीको–जो परम सुन्दरी और युवती थी, उसे विविध आभूषण और वस्त्र पहनाकर मेरे पास भेज दिया ॥१६॥१७॥ उसने अपने शरीरपर लाल चन्दन लगा रक्खा था। वह फूलोंकी माला पहने थी। उसके बाल बड़े सुन्दर थे। वह हंसकी तरह धीरे-धीरे चलती हुई बड़े हाव-भावके साथ मटकती हुई मेरे समीप आयी ॥१८॥ वह मुझे पलङ्गपर बैठाकर बड़े प्रेमके साथ मेरे शरीरसे लिपट गयी। हे नारद ! मैं उसके इन विलास भरे कार्योंसे

चलती हुई बड़े हाव-भावके साथ मटकती हुई मेरे समीप आयी ॥१८॥ वह मुझे पलङ्गपर बैठाकर बड़े प्रेमके साथ मेरे शरीरसे लिपट गयी। हे नारद! मैं उसके इन विलासमें कायसे

बहुत प्रसन्न हुआ ॥ १९ ॥ रातभर मैंने उसके साथ बड़े प्रेमपूर्वक खूब जी भरकर भोग किया। तदनन्तर प्रसन्नचित्त होकर मैंने उसे वरदान दिया—। २० ॥ हे सौभाग्यवती! तुम्हारे गर्भसे सब सुलक्षणोंसे सम्पन्न, सुन्दर, समस्त धर्मोंका ज्ञाता, सत्यवादी और शान्त पुत्र उत्पन्न होगा ॥ २१ ॥ तदनुसार दस महीने बाद उसने 'विदुर' नामके पुत्रको जन्म दिया। हे नारद! इस प्रकार पराये क्षेत्रमें मैंने अपने वीर्यसे तीन पुत्र उत्पन्न किये। जिन्हें देखकर मेरे मनमें मायाकी भावना बढ़ने लगी ॥ २२ ॥ उन तीनों पुत्रोंको वीर्यवान्, पराक्रमी और शूर-वीरोंसे सम्मानित देखकर मैं अपने शोकका एकमात्र कारण 'शुक'के वियोगकी बात एकदम भूल गया ॥ २३ ॥ हे ब्रह्मन्! माया बड़ी प्रबल होती है। जिन्हें आत्मज्ञान नहीं हुआ रहता, वे इसे अपने काबूमें नहीं कर सकते। बल्कि वे सदा उसके फन्देमें फँसे रह जाते हैं। यह माया आकारहीन और आलम्बन रहित होती हुई भी बड़े-बड़े ज्ञानियोंके चित्तको मोहित कर देती है ॥ २४ ॥ हे मुनिवर! एक ओर तो मेरा मन माताके प्रेममें और दूसरी ओर उन पुत्रोंमें लगा रहता था। इस लिए वनमें भी मेरे मनको शान्ति नहीं मिल पाती थी ॥२५॥ अब मेरा मन

मया भृशम् ॥ वरो दत्तः पुनस्तस्यै प्रसन्नेन तु नारद ॥२०॥ सुभगे भविता पुत्र सर्वलक्षणसंयुतः ॥ सुरूपः सर्वधर्मज्ञः सत्यवादी शमे रतः ॥२१॥ स तदा विदुरो जातस्त्रयः पुत्रा मयाऽभवन् ॥ माया वृद्धिं गता साधो परक्षेत्रोद्भवे मम ॥ २२ ॥ विस्मृतः शुकसम्बधी विरहः शोककारणम् ॥ दृष्ट्वा त्रीन्स्वसुतान्कामं बलिनो वीर्यसंमतान् ॥२३॥ माया बलवती ब्रह्मन्दुस्त्यजा ह्यकृतात्मभिः ॥ अरूपा च निरालंबा ज्ञानिनामपि मोहिनी ॥२४॥ मातरि स्नेहसंबद्धं तथा पुत्रेषु संवृतम् ॥ न मे चित्तं वने शान्तिमगान्मुनिवरोत्तम ॥ २५ ॥ दोलारूढं मनो जातं कदाचिद्धस्तिनापुरे ॥ पुनः सरस्वतीतीरे न चैकत्र व्यवस्थितिः ॥ २६ ॥ कदाचिच्चिंतयञ्ज्ञानं मानसे प्रतिभाति वै ॥ केऽमी पुत्राः क्व मोहोऽयं न श्राद्धार्हा मृतस्य मे ॥२७॥ व्यभिचारोद्भवाः किं मे सुखदाः स्युः सुताः किल ॥ माया बलवती मोहं वितनोति हि मानसे ॥ २८ ॥ जानन्मोहांधकूपेऽस्मिन्पतितोऽहं मृषा मुने ॥ इत्यकुर्वं रहस्तापं कदाचित्सुसमाहितः ॥२९॥ राज्यं प्राप ततः पांडुर्बलवान्भीष्मसंमतः ॥ तदा मम मनो जातं प्रसन्नं सुतकारणात् ॥३०॥ कुंती मांद्री सुरूपे द्वे भार्ये तस्य बभूवतुः ॥ शूरसेनसुता कुंती मद्रराजसुताऽपरा ॥ ३१ ॥ स शापं द्विजतः प्राप्य कामिनीद्वयसंयुतः ॥ पांडुर्निर्वे-

सन्देहके झूलेपर झूलता रहता था। अब मैं कभी हस्तिनापुरमें रहता तो कभी आश्रममें चला आता था। इस प्रकार मैं कहीं शान्तिपूर्वक नहीं रह सका ॥२६॥ जब कभी मनमें ज्ञानका उदय होता था तो यह भावना जाग्रत हो जाती थी कि ये पुत्र किसके हैं? यह तो केवल मोह है। मेरे मर जानेपर ये पुत्र मेरा श्राद्ध भी तो नहीं कर सकेंगे ॥२७॥ क्योंकि वे व्यभिचारसे उत्पन्न हुए हैं। तब ये मुझे कौनसा सुख देंगे? माया बड़ी प्रबल होती है, वह मनमें मोह पैदा कर ही देती है ॥२८॥ हे महामुनि नारद! मैं जान-बूझकर मोहरूपी अन्ध-कूपमें गिर गया हूँ। कभी-कभी शान्तचित्तसे एकान्तमें बैठकर मैं इस विषयमें सन्ताप किया करता था ॥ २९ ॥ भीष्मकी सम्मतिसे जब बलवान् पाण्डुको राजगद्दी मिली, तब मन इस लिए प्रसन्न हुआ कि मेरा पुत्र गद्दीपर बैठा है ॥ ३० ॥ बादमें पाण्डुने दो रानियोंसे अपना विवाह किया। जिनमेंसे एक राजा शूरसेनकी कन्या कुन्ती और दूसरी मद्रदेशके राजाकी राजकुमारी माद्री थी ॥ ३१ ॥

'स्त्रीप्रसङ्ग करनेसे आपकी मृत्यु हो जायगी'—इस विप्रशापसे दुःखित होकर पाण्डु राजपाट छोड़ और दोनों रानियोंको साथ लेकर वनमें चले गये ॥ ३२ ॥ अपने पुत्रके वनवासी जीवन व्यतीत करनेकी बात सुनकर मुझे बड़ा क्लेश हुआ और मैं उस वनमें गया, जहाँ वे अपनी दोनों रानियोंके साथ रहते थे ॥३३॥ वहाँ उन्हें समझा-बुझाकर मैं फिर हस्तिनापुर लौट आया और धृतराष्ट्रके साथ बातचीत करके फिर सरस्वती नदीके तटपर चला गया ॥३४॥ जब पाण्डु वानप्रस्थ जीवन व्यतीत कर रहे थे, उस समय उन्होंने धर्म, वायु, इन्द्र और दोनों अश्विनीकुमारोंसे पाँच क्षेत्रज पुत्र उत्पन्न कराये ॥ ३५ ॥ उनमें कुन्तीके गर्भसे धर्म, वायु तथा इन्द्रके वीर्य द्वारा क्रमशः युधिष्ठिर, भीमसेन और अर्जुन—ये तीन पुत्र जायमान हुए ॥ ३६ ॥ दोनों अश्विनीकुमारों द्वारा माद्रीके गर्भसे नकुल एवं सहदेव उत्पन्न हुए । एक दिन राजा पाण्डुने एकान्तमें माद्रीका आलिंगन कर लिया ॥ ३७ ॥ अतएव पूर्वशापके कारण उनका प्राणान्त हो गया । तब मुनियोंने उनका दाहसंस्कार किया और माद्री चितापर बैठकर प्रज्वलित अग्निमें अपने पतिके साथ सती हो गयी ॥ ३८ ॥ पुत्रोंका पालन-पोषण करनेके निमित्त कुन्ती

दमापन्नस्त्यक्त्वा राज्यं वनं गतः ॥ ३२ ॥ तदा मामाविशच्छोकः श्रुत्वा पुत्रं वने स्थितम् ॥ गतोऽहं तत्र यत्रासौ भार्याभ्यां सह संस्थितः ॥३३॥
तमाश्वास्य वने पांडुं पुनः प्राप्तो गजाह्वये ॥ धृतराष्ट्रं समाभाष्य ह्यगमं ब्रह्मजातटे ॥ ३४ ॥ क्षेत्रजान्पंचपुत्रान्स समुत्पाद्य वनाश्रमे ॥ धर्मतो
वायुतः शक्रादश्विभ्यां पंच पांडवान् ॥ ३५ ॥ युधिष्ठिरो भीमसेनस्तथैवार्जुन इत्यपि ॥ कुंतीपुत्राः समाख्याता धर्मानिलसुरेशजाः ॥ ३६ ॥
नकुलः सहदेवश्च मद्रराजसुतासुतौ ॥ कदाचित्तु रहो माद्रीं समालिंग्य महीपतिः ॥ ३७ ॥ मृतः शापात्तु मुनिभिः संस्कृतो हुतभुङ्मुखे ॥ माद्री
तत्र सती भूत्वा प्रविष्टा पतिना सह ॥ ३८ ॥ स्थिता पुत्रयुता कुंती ज्वलिते जातवेदसि ॥ मुनयः सुतसंयुक्तां शूरसेनसुतां तदा ॥ ३९ ॥
दुःखितां पतिहीनां तामानिन्युर्गजसाह्वये ॥ समर्पिताऽथ भीष्माय विदुराय महात्मने ॥ ४० ॥ श्रुत्वाऽहं सुखदुःखाभ्यां पीडितस्तु परात्मभिः ॥
भीष्मेण पालिताः पुत्राः पांडोरिति विचिंत्य ते ॥४१॥ विदुरेण तथा प्रीत्या धृतराष्ट्रेण धीमता ॥ दुर्योधनादयस्तस्य पुत्रा ये क्रूरमानसाः ॥४२॥
एकत्र स्थितिमापन्ना विरोधं चक्रुरद्भुतम् ॥ द्रोणाचार्यस्तु संप्राप्तस्तत्र भीष्मेण मानितः ॥ ४३ ॥ अध्यापनाय पुत्राणां पुरे तस्मिन्निवासितः ॥
कर्णः कुन्त्या परित्यक्तो जातमात्रः शिशुर्यदा ॥ ४४ ॥ सूतेन पालितो नद्यां प्राप्तश्चाधिरथेन ह ॥ दुर्योधनप्रियश्चाभूत्कर्णः शूरतम-

सती नहीं हुई । तदनन्तर मुनि लोग उस पुत्रवती एवं शूरसेनकी पुत्री कुन्तीको दुःखित और वैधव्य जीवन व्यतीत करते देखकर हस्तिनापुर ले गये और भीष्म तथा महात्मा विदुरको सौंप दिया ॥ ३९ ॥ ४० ॥ यह सुना तो मेरा मन पराये पुत्र उन पाण्डवोंके कारण सुख-दुःखके चक्करमें व्यस्त हो गया । ये मेरे पुत्र पाण्डुके बेटे हैं । ऐसा सोचकर भीष्म, विदुर और बुद्धिमान् धृतराष्ट्र बड़े प्रेमसे उनका लालन-पालन करने लगे । लेकिन धृतराष्ट्रके दुर्योधन आदि जितने कुटिल हृदयवाले पुत्र थे, वे सब एक गुट बनाकर एक विचित्र प्रकारका विरोध करने लगे । बादमें वहाँ द्रोणाचार्य आये और भीष्मने उनका उचित सम्मान किया ॥ ४१—४३ ॥ उन्होंने उन राजकुमारोंको पढ़ाने-लिखाने तथा धनुर्वेदकी शिक्षा देनेके लिए उन्हें राजधानीमें ही रखा । कुन्तीने उत्पन्न होते ही बालक कर्णका त्याग दिया था ॥ ४४ ॥ नदीमें बहते हुए उस कर्णको अधिरथ नामके सारथीने पाया और उसका पालन-पोषण

किया। सर्वश्रेष्ठ वीर होनेके कारण कर्ण दुर्योधनका प्रिय मित्र बन गया ॥ ४५ ॥ आगे चलकर भीम और दुर्योधन आदि भाइयोंमें आपसी विरोध बहुत बढ़ गया। तब धृतराष्ट्रने उन पाण्डवोंके कष्टोंका विचार करके और विरोध बचानेकी इच्छासे वारणावत नगरमें उनके रहनेके लिए महल बनवानेका निश्चय किया ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ लेकिन दुर्योधनने अपने मित्र पुरोचन-को भेजकर उनके लिए दिव्य लाक्षागृह (लाहका घर) बनवा दिया ॥४८॥ हे मुनिश्रेष्ठ नारदजी ! जब मुझे यह समाचार मिला कि अपनी माता कुन्तीके साथ पाँचों पाण्डव उस लाहके मकानमें जल गये तो मैं दुःखके सागरमें निमग्न हो गया। क्योंकि वे हमारे पौत्र थे ॥४९॥ ऐसी दशामेंशोकाकुल होकर मैं उस सुनसान वनमें दिनरात उन्हें ढूँढ़ता रहा। तब मैंने एकचक्रा नगरीमें पाण्डवोंको दुःखके कारण दुर्बल दशामें देखा ॥५०॥ उनको देखकर मेरे मनको बड़ी शान्ति मिली और मैंने उन्हें तुरन्त महाराज द्रुपदके नगरमें भेज दिया। ५१ ॥ तब दुबले-पतले पाण्डव ब्राह्मणका वेश धारण करके मृगछाला पहनकर वहाँ रहने लगे। एक दिन वे राजा द्रुपदकी स्वयंवर-सभामें जा पहुँचे ॥ ५२ ॥ वहाँपर अर्जुन मत्स्यका लक्ष्य-भेदपूर्वक

स्तथा ॥ ४५ ॥ परस्परं विरोधोऽभूद्भीमदुर्योधनादिषु ॥ धृतराष्ट्रस्तु संचिंत्य क्लेशं पुत्रेषु तेषु च ॥ ४६ ॥ निवासं कल्पयामास पांडवानां महात्मनाम् ॥ विरोधशमनायैव नगरे वारणावते ॥ ४७ ॥ दुर्योधनेन तत्रैव द्रोहाज्जतुगृहाणि वै ॥ कारितानि च दिव्यानि प्रेष्य मित्रं पुरो-चनम् ॥ ४८ ॥ श्रुत्वा जतुगृहे दग्धान्पांडवान्पृथया युतान् ॥ पौत्रभावान्मुनिश्रेष्ठ मग्नोऽहं व्यसनार्णवे ॥ ४९ ॥ शोकातुरो भृशं शून्ये वने पश्यन्नहर्निशम् ॥ दृष्टा मयकचक्रायां पांडवा दुःखकर्शिताः ॥ ५० ॥ ततस्तुष्टमनाश्चाहं जातः पार्थान्विलोक्य च ॥ प्रेरितास्ते मया तूर्णं द्रुपदस्य पुरं प्रति ॥ ५१ ॥ ते गतास्तत्र दुःखार्ता विप्रवेषधराः कृशाः ॥ मृगचर्मपरीधानाः सभायां संस्थितास्तदा ॥५२॥ कृत्वा पराक्रमं जिष्णुः स जित्वा द्रुपदात्मजाम् ॥ चक्रुर्विवाहं मानिन्या पञ्चैव मातृवाक्यतः ॥ ५३ ॥ दृष्ट्वा विवाहं तेषां तु मुदितोऽहं भृशं तदा ॥ ततो नागाह्वये प्राप्ताः पाञ्चालीसहिता मुने ॥ ५४ ॥ निवासं खांडवप्रस्थं धृतराष्ट्रेण कल्पितम् ॥ पांडवानां द्विजश्रेष्ठ वसुदेवसुतेन वै ॥५५॥ तर्पितः पावकस्तत्र विष्णुना सह जिष्णुना ॥ राजसूयः कृतो यज्ञस्तदाऽहं मुदितोऽभवम् ॥ ५६ ॥ दृष्ट्वाऽथ विभवं तेषां तथा मयकृतां सभाम् ॥ दुर्योधनोऽतिसंतप्तो दुरोदरम-थाकरोत् ॥ ५७ ॥ दुर्द्यूतवेदी शकुनिरनक्षज्ञश्च धर्मजः ॥ हृतं राज्यं धनं सर्वं याज्ञसेनी च क्लेशिता ॥ ५८ ॥ वने द्वादश वर्षाणि पांडवास्ते

अपना पराक्रम दिखलाकर द्रुपद-राजकुमारी द्रौपदीको ले आये। तदनन्तर माता कुन्तीके आदेशसे मानिनी पाञ्चाल-राजकुमारी द्रौपदीका विवाह पाँचों पाण्डवोंके साथ हुआ ॥५३॥ अपने उन पौत्रोंका विवाह देखकर मेरे हर्षका ठिकाना नहीं रहा। हे मुनिवर नारद ! बादमें वे द्रौपदीके साथ हस्तिनापुरमें चले आये ॥५४॥ तब धृतराष्ट्रने उन पाण्डवोंको रहनेके लिए खाण्डव वन दे दिया। हे द्विजश्रेष्ठ नारद ! वसुदेवजीके पुत्र भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनके साथ अग्निदेवको सन्तुष्ट किया। जिससे अग्निने श्रीकृष्णकी सहायतासे खाण्डव वनको जला डाला। पाण्डवोंने जब राजसूय यज्ञ किया तो मैं बहुत प्रसन्न हुआ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ उन पाण्डवोंके वैभव और मय दानवकी बनाई हुई राजसभा देखकर दुर्योधनके मनमें बड़ी डाह हुई और उसने एक षड्यन्त्र रचा ॥५७॥ शकुनी कपटपूर्ण जुआ खेलनेमें बड़ा निपुण था और धर्मराज युधिष्ठिर पाँसेका हाल ही नहीं जानते थे। अतएव दुर्योधनने शकुनीके द्वारा पाण्डवोंका राजपाट तथा

धन सब कुछ ले लिया। बादमें द्रौपदी भी अपमानित की गयी ॥ ५८ ॥ उसके बाद द्रौपदीके साथ पाँचों पाण्डव बारह वर्ष तक वनमें रहनेके लिए निर्वासित कर दिये गये। यह सुनकर मुझे बहुत कष्ट हुआ ॥ ५९ ॥ हे नारद ! यद्यपि मैं यह सनातन धर्म जानता था कि संसार मिथ्या है और सुखी या दुःखी होना कोरा भ्रम है। तथापि सुख-दुःखसे परिपूर्ण इस संसार-के चक्करमें मैं पड़ ही गया ॥ ६० ॥ मैं कौन हूँ ? ये किसके पुत्र हैं ? यह किसकी माता है ? सुख क्या चीज है ? जिससे मोहके फाँसमें पड़कर मेरा अन्तःकरण सदा इसी उधेड़-बुनमें पड़ा रहता है ॥६१॥ हे नारदजी ! मैं क्या करूँ और कहाँ जाऊँ ? कहीं भी चैन नहीं मिलती। मेरा मन सदा अशान्त बना रहता है। सन्देहके झूलेपर बैठा हुआ यह अशान्त मन कहीं नहीं रह पाता ॥ ६२ ॥ हे मुनिवर ! आप सर्वज्ञ पुरुष हैं। मेरा सन्देह दूर करनेकी कृपा कीजिए। जिससे मैं सुखी रह सकूँ ॥ ६३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे पाण्डेयरामतेज-शास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

विवासिताः ॥ पाञ्चालीसहितास्तेन दुःखं मे जनितं भृशम् ॥ ५९ ॥ एवं नारद संसारे सुखदुःखात्मके भृशम् ॥ निमग्नोऽहं भ्रमेणैव जानन्धर्मं सनातनम् ॥ ६० ॥ कोऽहं कस्य सुतास्तेऽमी का माता किं सुखं पुनः ॥ येन मे हृदयं मोहाद्भ्रमतीति दिवानिशम् ॥ ६१ ॥ किं करोमि क्व गच्छामि संतोषो नाधिगच्छति ॥ दोलारूढं मनो मेऽत्र चञ्चलं न स्थिरं भवेत् ॥ ६२ ॥ सर्वज्ञोऽसि मुनिश्रेष्ठ संदेहं मे निवर्तय ॥ तथा कुरु यथाऽहं स्यां सुखितो विगतज्वरः ॥ ६३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

॥ व्यास उवाच ॥ इति मे वचनं श्रुत्वा नारदः परमार्थवित् ॥ मामाह च स्मितं कृत्वा पृच्छंतं मोहकारणम् ॥ १ ॥ नारद उवाच ॥ पाराशर्य पुराणज्ञ किं पृच्छसि सुनिश्चितम् ॥ संसारेऽस्मिन्विना मोहं कोऽपि नास्ति शरीरवान् ॥२॥ ब्रह्मा विष्णुस्तथा रुद्रः सनकः कपिलस्तथा ॥ मायया वेष्टिताः सर्वे भ्रमंति भववर्त्मनि ॥३॥ ज्ञानिनं मां जनो वेत्ति भ्रांतोऽहं सर्वलोकवत् ॥ शृणु मे पूर्ववृत्तान्तं प्रब्रवीमि सुनिश्चितम् ॥४॥ दुःखं मया यथा पूर्वमनुभूतं महत्तरम् ॥ स्वकृतेन च मोहेन भार्यार्थे वासवीसुत ॥ ५ ॥ एकदा पर्वतश्चाहं देवलोकान्महीतलम् ॥ प्राप्तो विलोकनार्थाय भारतं

(नारदजीको पर्वत मुनिका शाप) व्यासजी बोले—हे राजन् ! परमार्थ ज्ञानी नारदजी मेरी बात सुननेके पश्चात् मुसकराकर मुझसे प्राणियोंको मोह होनेका कारण बताने लगे ॥१॥ नारजीने कहा—हे पराशरनन्दन व्यासजी ! आप क्या पूछते हैं ? हे पुराणवेत्ता मुनिवर ! यह बिल्कुल निश्चित है कि इस संसारमें रहनेवाला कोई भी प्राणी मोहसे अछूता नहीं रह सकता ॥ २ ॥ बड़े-बड़े देवता तथा कपिल-सनक आदि ऋषि-मुनि सबके सब मोहके अधीन होकर संसारमार्गमें निरन्तर चक्कर काटते रहते हैं ॥ ३ ॥ यद्यपि लोग मुझे ज्ञानी समझते हैं, तथापि सब लोगोंकी तरह मैं भी एक बार मोहमें पड़ गया था। सो मैं स्वयं अपने ऊपर बीती हुई बातें बताता हूँ, सुननेकी कृपा करें ॥४॥ हे व्यासजी ! मुझे जैसे महान् दुःखका अनुभव करना पड़ा था, उसमें मोहवश स्त्रीप्राप्तिके उद्योगमें फँस जाना ही प्रमुख कारण था ॥ ५ ॥ एक समयकी बात है—मैं और पर्वत मुनि उत्तम भारतवर्षको देखनेके विचारसे स्वर्गसे पृथ्वीपर उतरे

॥ ६ ॥ विभिन्न तीर्थोंको देखते हुए हम दोनों साथ-साथ धरातलपर घूमने लगे। हमें मुनियोंके बहुतसे पवित्र आश्रम दीखे ॥७॥ स्वर्गसे चलते समय हम दोनोंने यह प्रतिज्ञा की थी कि जिसके मनमें जैसा विचार उत्पन्न हो, वह एक दूसरेसे कह दे। मनोभाव चाहे पवित्र हो अथवा अपवित्र, किन्तु एक दूसरेसे कभी उसे छिपाकर न रखा जाय ॥ ८ ॥ ९ ॥ स्त्री, धन तथा भोजनविषयक जैसी भी इच्छा जिसके मनमें उत्पन्न हो, वह परस्पर एक दूसरेसे अवश्य कह दे' ॥ १० ॥ इस प्रकारकी प्रतिज्ञा करके हम दोनों स्वर्गसे पृथ्वीपर आये और एकचित्त होकर इच्छानुसार भूमण्डलपर विचरने लगे ॥ ११ ॥ हम इस लोकमें भ्रमण कर ही रहे थे—इतनेमें ग्रीष्मऋतु समाप्त होकर वर्षाऋतुका आगमन हो गया। तब हमलोग राजा संजयकी सुरम्य नगरीमें चले गये ॥ १२ ॥ राजा संजय बड़े सज्जन पुरुष थे। उन्होंने भक्तिपूर्वक हमारा भली भाँति स्वागत-सम्मान किया। उन्हींके भवनमें रहकर हमारा चौमासा व्यतीत होने

खंडमुत्तमम् ॥ ६ ॥ भ्रमंतौ सहितावुर्व्यां पश्यंतौ तीर्थमण्डलम् ॥ पावनानि च स्थानानि मुनीनामाश्रमाञ्छुभान् ॥ ७ ॥ शपथं देवलोकात्तु कृत्वा पूर्वं परस्परम् ॥ चलितौ समयं चेमं संमंत्र्य निश्चयेन वै ॥ ८ ॥ चित्तवृत्तिस्तु वक्तव्या यादृशी यस्य जायते ॥ शुभा वाऽप्यशुभा वाऽपि न गोप्तव्या कदाचन ॥ ९ ॥ भोजनेच्छा धनेच्छाऽपि रतीच्छा वा भवेदपि ॥ यादृशी यस्य चित्ते तु कथनीया परस्परम् ॥ १० ॥ इत्यावां समयं कृत्वा स्वर्गाद्भूलोकमागतौ ॥ एकचित्तौ मुनीभूतौ विचरन्तौ यथेच्छया ॥ ११ ॥ एवं भ्रमन्तौ लोकेऽस्मिन्ग्रीष्मान्ते समुपागते ॥ संजयस्य पुरं रम्यं संप्राप्तौ नृपतेः पुनः ॥ १२ ॥ तेन संपूजितौ भक्त्या राज्ञा सम्मानितौ भृशम् ॥ स्थितौ तत्र गृहे तस्य चातुर्मास्यं महात्मनः ॥ १३ ॥ वार्षिकाश्चतुरो मासा दुर्गमाः पथि सर्वदा ॥ तस्मादेकत्र विबुधैः स्थातव्यमिति निश्चयः ॥ १४ ॥ अष्टौ मासांस्तु प्रवसेत्सदा कार्यवशाद्द्विजः ॥ वर्षाकाले न गंतव्यं प्रवासे सुखमिच्छता ॥१५॥ इति संचिंत्य मनसा संजयस्य गृहे तदा॥ संस्थितौ मानितौ राज्ञा कृतातिथ्यौ महात्मना ॥१६॥ दमयंतीति विख्याता तस्य पुत्री महीपतेः ॥ आज्ञप्ता परिचर्यार्थं सुदती सुन्दरी भृशम् ॥ १७ ॥ विवेकज्ञा विशालाक्षी राजपुत्री कृतोद्यमा ॥ सेवनं सर्वकाले च व्यदधादुभयोरपि ॥ १८ ॥ स्नानार्थमुदकं काले भोजनं मृष्टमायतम् ॥ मुखवासं तथा चान्यं यदिष्टं तद्ददाति सा ॥ १९ ॥

लगा ॥ १३ ॥ वर्षाऋतुके चार महीने मार्गमें बहुत कष्टप्रद होते हैं। अतएव विज्ञ पुरुष उतने समयतक एक जगह रहना ही उचित समझते हैं ॥ १४ ॥ सुखकी आशा रखनेवाला पुरुष कार्यवश आठ महीने सदा विदेशकी यात्रा कर सकता है, किंतु वह वर्षाऋतुमें बाहर जानेका दुःसाहस न करे ॥ १५ ॥ इस प्रकार मनमें सोचकर हम दोनों व्यक्ति राजा संजयके यहाँ टिक गये। उन महानुभाव नरेशने बड़े आदरके साथ हमारा आतिथ्य किया ॥१६॥ राजा संजयकी एक सुन्दरी कन्या थी। उसका नाम दमयन्ती था। राजाकी आज्ञासे वह परम सुन्दरी कन्या सदा हमारे सत्कारमें संलग्न रहती थी ॥ १७ ॥ वह बड़ी विदुषी थी। उसके नेत्र बड़े विशाल थे। उसका उद्यमी स्वभाव था। वह किसी भी समय हम दोनोंकी सेवासे मुख नहीं मोड़ती थी ॥ १८ ॥ वह हमारे स्नानके लिए जल, समयपर दिव्य भोजन, मुखशुद्धिके लिए पान-इलायची तथा सभी आवश्यक वस्तुयें बराबर जुटा दिया करती थी ॥ १९ ॥

हम दोनोंके सामने वह सदा अभिलषित पदार्थ उपस्थित किया करती थी। उसके द्वारा मनके अनुकूल भोजन, आसन, पंखा, शय्या आदिका पूरा प्रबन्ध हो जाया करता था ॥२०॥ इस प्रकार हम दोनों मुनि राजा संजयके भवनमें सत्कृत होकर रहने लगे। वेदका स्वाध्याय करना हमारा स्वाभाविक गुण है ही। अतः हम अपने वेदव्रतमें सदा संलग्न रहते थे ॥ २१ ॥ मैं हाथमें वीणा लेकर उत्तम स्वरसे सामवेद गाया करता था। कानको सुख पहुँचानेवाले उस गानमें मधुरता भरी रहती थी ॥ २२ ॥ मेरे मनोहर सामगानको सुनकर राजकुमारी दमयन्ती मुझपर आसक्त हो गयी। उस परम विदुषीके मनमें मेरे प्रति प्रगाढ़ प्रेम उत्पन्न हो गया और उस प्रेमकी मात्रा उत्तरोत्तर बढ़ती ही चली गयी। ऐसी स्थितिमें प्रेम करनेवाली उस सुन्दरीके प्रति मेरा मन भी चलायमान हो गया ॥ २३ ॥ २४ ॥ अब तो मुझपर विशेष अनुराग रखनेवाली राजकुमारी मेरे और पर्वत मुनिके लिए जो भी सेवा-कार्य या वस्तु उपस्थित करती थी, उसमें कुछ भेदभाव होने लगा ॥ २५ ॥ अब वह मेरे स्नानके लिए गर्म और पर्वतके लिए ठंढे जलकी व्यवस्था करती थी। मेरे लिए दही, किन्तु पर्वतके लिए मंठेका प्रबंध करती थी

मनोऽभिलाषितान्कामानुभयोरपि कन्यका ॥ व्यजनासनशय्यादीन्वांछितानप्यकल्पयत् ॥ २० ॥ एवं संसेव्यमानौ तु स्थितौ राज्ञो गृहे किल ॥ वेदाध्ययनसंशीलावावां वेदव्रते रतौ ॥ २१ ॥ अहं वीणां करे कृत्वा साधयित्वा स्वरोत्तमम् ॥ गायत्रं साम सुखदमगां कर्णरसायनम् ॥ २२ ॥ राजपुत्री तु तच्छ्रुत्वा सामगानं मनोहरम् ॥ बभूव मयि रागाढ्या प्रीतियुक्ता विशारदा ॥२३॥ दिने दिनेऽनुरागोऽस्या मयि वृद्धिं गतः परः ॥ ममापि प्रीतियुक्तायां मनो जातं स्पृहापरम् ॥ २४ ॥ मम तस्य च सा कन्या भोजनादिषु कर्हिचित् ॥ अकरोदंतरं किञ्चित्सेवाभेदं रसान्विता ॥ २५ ॥ स्नानायोष्णजलं मह्यं पर्वताय च शीतलम् ॥ दधि मह्यं तथा तक्रं पर्वतायाप्यकल्पयत् ॥२६॥ शयनास्तरणं शुभ्रं मदर्थे पर्यकल्पयत् ॥ प्रीत्या परमया यद्वत्पर्वताय न तादृशम् ॥२७॥ विलोकयति मां प्रेम्णा सुन्दरी न च पर्वतम् ॥ ततोऽस्यास्तादृशं दृष्ट्वा पर्वतः प्रेमकारणम् ॥२८॥ मनसा चिंतयामास किमेतदिति विस्मितः ॥ पप्रच्छ मां रहः सम्यग्ब्रूहि नारद सर्वथा ॥ २९ ॥ राजपुत्री त्वयि प्रेम करोति मुदिता भृशम् ॥ ददाति भक्ष्यभोज्यानि स्नेहयुक्ता समंततः ॥३०॥ न तथा मयि भेदोऽत्र सन्देहं जनयत्यसौ ॥ मन्यते त्वा पतिं कर्तुं सर्वथा संजयात्मजा ॥३१॥ तवापि तादृशं भावं जानामि लक्षणैरहम् ॥ नेत्रवक्त्रविकारैश्च ज्ञायते प्रीतिकारणम् ॥३२॥ सत्यं वद न ते मिथ्या वक्तव्यं वचनं मुने ॥ स्वर्गतः

॥२६॥ वह मेरे लिए जैसा बिछौना बिछाती थी, वैसा पर्वतके लिए नहीं। जितने प्रेमसे वह मुझे देखती थी, उतने प्रेमसे पर्वतको नहीं देखती थी। उसका वह ढंग देखकर पर्वत मुनिने मनमें विचार किया कि ऐसा क्यों हो रहा है। उनके आश्चर्यकी सीमा नहीं रही। तदनन्तर उन्होंने एकान्तमें मुझसे पूछा—'नारद! बात क्या है? स्पष्टरूपसे बतानेकी कृपा करो ॥२७–२९॥ राजकुमारी तुम्हारे प्रति जैसा अनुराग रखती है, मेरे प्रति उसका वैसा प्रेम नहीं है। वह तुम्हें जितना अच्छा भक्ष्य-भोज्य जितने प्रेमसे देती है, वैसा मुझे नहीं देती ॥३०॥ यह भेद मेरे मनमें संदेह उत्पन्न कर रहा है। जान पड़ता है कि राजकुमारीके मनमें तुम्हें पति बनानेकी भावना सर्वथा निश्चित हो गयी है ॥ ३१ ॥ इन लक्षणोंको देखकर मेरी समझमें आ रहा है कि तुम्हारा अभिप्राय भी वैसा ही है। क्योंकि आँख और मुखके भाव प्रेमके कारणको सूचित कर देते हैं ॥ ३२ ॥ हे मुने! सच्ची बात कहो। स्वर्गसे चलते समय हमलोगोंने

जो प्रतिज्ञा की थी, इस समय तुम्हें उसका स्मरण करना चाहिये' ॥ ३३ ॥ नारदजी कहते हैं—जब पर्वत मुनिने अत्यन्त आग्रहके साथ मुझसे कारण पूछा, तब बड़े संकोचमें पड़कर मैं उनसे कहनेके लिये उद्यत हुआ ॥ ३४ ॥ मैंने कहा—'पर्वत ! विशाल नेत्रोंवाली यह राजकुमारी मुझे पति बनाना चाहती है, यह सत्य है और इसके प्रति मेरी भी मानसिक भावना वैसी ही बन चुकी है' ॥ ३५ ॥ मेरे इस सत्य वचनको सुनकर मुनिवर पर्वतके मनमें क्रोध उत्पन्न हो गया । उन्होंने मुझसे कहा—'नारद ! तुम्हें बार-बार धिक्कार है । क्योंकि पहले प्रतिज्ञा करके तुमने मुझे बड़े भारी धोखेमें डाल दिया है । हे मित्रद्रोही ! मैं तुम्हें शाप दे रहा हूँ कि 'तुम अभी बंदरके मुखवाले हो जाओ' ॥३६॥३७॥ पर्वत मुनि महात्मा पुरुष थे । जब रोषमें भरकर उन्होंने शाप दे दिया, तब तुरन्त मेरे मुखकी आकृति बंदर जैसी हो गयी ॥ ३८ ॥ वे मुनि सम्बन्धमें मेरी बहिनके लड़के भांजे थे । पर क्रोधवश मैं भी उन्हें क्षमा न कर सका । मैंने भी शाप दे दिया कि 'अबसे तुम भी स्वर्गके अनधिकारी हो जाओ ॥३९॥ हे पर्वत ! तुम्हारी बुद्धि बड़ी खोटी है । इतने थोड़े-से अपराधपर तुमने मुझे शाप दे दिया ? अतएव तुम भी

समयं कृत्वा चलितौ संस्मराधुना ॥ ३३ ॥ नारद उवाच ॥ पृष्टोऽहं पर्वतेनेदं कारणं तु हठाद्यदा ॥ तदाऽहं ह्रीसमाक्रान्तः संजातश्चाब्रुवं पुनः ॥ ३४ ॥ पर्वतैषा विशालाक्षी पतिं मां कर्तुमुद्यता ॥ ममापि मानसो भावो वर्ततेऽस्यां विशेषतः ॥३५॥ तच्छ्रुत्वा वचनं सत्यं पर्वतः कोपसंयुतः ॥ मामुवाच मुनिर्वाक्यं धिग्धिगिति पुनः पुनः ॥३६॥ प्रथमं शपथान्कृत्वा वञ्चितोऽहं त्वया यतः ॥ भव वानरवक्त्रस्त्वं शापाच्च मम मित्रध्रुक् ॥३७॥ इति शप्तस्तु तेनाहं कुपितेन महात्मना ॥ सहसा ह्यभवं क्रूरः शाखामृगमुखस्तदा ॥ ३८ ॥ मयाऽपि न कृता तस्मिन्क्षमा तु भगिनीसुते ॥ सोऽपि शप्तोऽतिकोपाद्वै मा स्वर्गे ते गतिः किल ॥ ३९ ॥ स्वल्पेऽपराधे यस्मान्मां शप्तवानसि पर्वत ॥ तस्मात्त्वमपि मन्दात्मन्मृत्युलोके स्थितिः किल ॥ ४० ॥ पर्वतस्तु गतस्तस्मान्नगराद्विमना भृशम् ॥ अहं वानरवक्त्रस्तु संजातस्तत्क्षणादपि ॥ ४१ ॥ दृष्ट्वा मां वानरं क्रूरं राजपुत्री विलक्षणा ॥ विमनाऽतीव संजाता वीणाश्रवणलालसा ॥ ४२ ॥ व्यास उवाच ॥ ततः किमभवद्ब्रह्मन्कथं शापो निवर्तितः ॥ मानुषास्यः पुनर्जातो भवान्ब्रूहि यथाविधि ॥ ४३ ॥ पर्वतः क्व गतो भूयः संगमो युवयोरभूत् ॥ कदा कुत्र कथं सर्वं विस्तरेण वदस्व ह ॥ ४४ ॥ नारद उवाच ॥ किं ब्रवीमि महाभाग मायायाश्चरितं महत् ॥ दुःखितोऽहं भृशं तत्र पर्वते रुषिते गते ॥ ४५ ॥ पुनः सेवापराऽत्यर्थं राजपुत्री ममाभवत् ॥ गतेऽथ

अब मर्त्यलोककी हवा खाते रहो' ॥ ४० ॥ तदनन्तर पर्वत मुनि अत्यन्त उदास होकर नगरसे निकल पड़े । मेरा मुख भी तत्काल बंदरके मुँह-जैसा हो गया ॥ ४१ ॥ राजकुमारी परम विदुषी थी । वीणाका स्वर सुननेमें वह बड़ा उत्साह रखती थी । जब उसने मुझ क्रूर बंदरको देखा, तब उसके मुखपर अप्रसन्नताकी घनी घटाएँ छा गयीं ॥ ४२ ॥ व्यासजीने पूछा—हे ब्रह्मन् ! इसके बाद क्या हुआ ? आपने शापसे छुटकारा कैसे पाया ? फिर आपकी मुखाकृति मानवाकार कैसे हुई ? यह प्रसङ्ग पूर्णरूपसे बतानेकी कृपा करें ॥४३॥ फिर आप दोनों महानुभावोंका कब, कहाँ और कैसे मिलन हुआ ? ये सभी बातें विस्तारपूर्वक बतानेकी कृपा करिए ॥४४॥ नारदजीने कहा—हे महाभाग! क्या कहूँ, मायाकी गति बड़ी ही विचित्र होती है । कुपित होकर पर्वत मुनिके चले जानेपर मैं प्रायः दुःख ही भोगता रहा ॥ ४५ ॥ यद्यपि राजकुमारी दमयन्ती सेवामें तत्पर होकर सदा मेरा सहयोग करती रही । पर्वत मुनि चले गये और मैं स्वेच्छा-

पूर्वक वहीं ठहर गया ॥ ४६ ॥ वानरके समान मुख हो जानेके कारण मेरे मनपर दीनता छा गयी। मेरे दुःखका पार नहीं रहा। अब क्या होगा? यह कैसी घटना घट गयी—इस प्रकारकी चिन्ता मुझे सदा कष्ट देने लगी ॥ ४७ ॥ उधर अब राजकुमारी दमयन्तीके शरीरमें कुछ जवानीके चिह्न स्पष्ट होने लगे थे। राजा संजयने उसे देखकर अपने मन्त्रीसे कहा—॥४८॥ 'अब मेरी कन्या विवाहके योग्य हो गयी है। आप मुझे कोई सुयोग्य वर बतलाइये। इसके लिये ऐसा राजकुमार चाहिये, जो सब प्रकारसे श्रेष्ठ हो ॥ ४९ ॥ उसे सुन्दर, उदार, गुणी, शूरवीर और कुलीन होना चाहिये। ऐसा वर मिलनेपर मैं उस राजकुमारके साथ अपनी कन्याका विधिवत् पाणिग्रहण-संस्कार कर दूँगा ॥५०॥ संजयकी बात सुनकर प्रधान मन्त्रीने कहा—'राजन्! आपकी पुत्रीके अनुकूल बहुत-से सुयोग्य एवं सम्पूर्ण गुणोंसे युक्त राजकुमार भूमण्डलपर विद्यमान हैं ॥ ५१ ॥ महाराज! जो राजकुमार आपको पसंद हो, उसीको बुलाकर बहुत-से हाथी, घोड़े, रथ और धन आदिके साथ कन्यादान कर दीजिये ॥५२॥ नारदजी कहते हैं—राजकुमारी दमयन्ती बातचीत करनेमें बड़ी कुशल थी। राजाका अभिप्राय जानकर

पर्वते कामं स्थितस्तत्रैव सद्मनि ॥४६॥ अहं दुःखान्वितो दीनस्तथा वानरवन्मुखः ॥ विशेषेण तु चिन्तार्तः किं मे स्यादिति चिंतयन् ॥४७॥ संजयोऽथ सुतां दृष्ट्वा किंचित्प्रकटयौवनाम् ॥ विवाहार्थे राजसुतामपृच्छत्सचिवं तदा ॥४८॥ विवाहकालः संप्राप्तः सुताया मम सांप्रतम् ॥ योग्यं वरं मम ब्रूहि राजपुत्रं सुसंमतम् ॥ ४९ ॥ रूपौदार्यगुणर्युक्तं शूरं सुकुलसंभवम् ॥ विवाहं विधिवत्पुत्र्याः करोमि किल सांप्रतम् ॥ ५० ॥ प्रधानस्त्वब्रवीद्राजन् राजपुत्रा ह्यनेकशः ॥ वर्तंते भुवि पुत्र्यास्ते योग्याः सर्वगुणान्विताः ॥५१॥ यस्मिन् रुचिस्ते राजेंद्र तमाहूय नृपात्मजम् ॥ देहि कन्यां धनं भूरि हस्त्यश्वरथसंयुतम् ॥५२॥ नारद उवाच ॥ पितुश्चिकीर्षितं ज्ञात्वा दमयंती तदा नृपम् ॥ धात्र्या मुखेन वाक्यज्ञा तमुवाच रहःस्थितम् ॥५३॥ धात्र्युवाच ॥ दमयंती महाराज पुत्री ते मामथाब्रवीत् ॥ पितरं ब्रूहि धात्रेयि वचनान्मे सुखान्वितम् ॥ ५४ ॥ मया वृतोऽथ मेधावी नारदो महतीयुतः ॥ नादमोहितया कामं नान्यः कोऽपि प्रियो मम ॥ ५५ ॥ कुरु मे वांछितं तात विवाहं मुनिना सह ॥ नान्यं वरिष्ये धर्मज्ञ नारदं तु पतिं विना ॥ ५६ ॥ मग्नाऽहं नादसिंधौ वै नक्रहीने रसात्मके ॥ अक्षारे सुखसंपूर्णे तिमिङ्गिलविवर्जिते ॥ ५७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

उसने अपनी धायके द्वारा एकान्तमें राजासे कहलाया ॥५३॥ धायने कहा—महाराज! आपकी कन्या दमयन्तीने मुझसे कहा है कि धाय माँ! तुम मेरे पिताजीसे विनयपूर्वक मेरी हितकर बातें कह दो ॥ ५४ ॥ उसका कथन है—'मैं बुद्धिमान् नारदजीका वरण कर चुकी हूँ। उनकी वीणाके स्वरने मेरे मनको मोहित कर लिया है। अतः अब दूसरा कोई पुरुष मुझे अभीष्ट नहीं है ॥५५॥ पिताजी! आप मेरी रुचिके अनुसार इन मुनिवरके साथ ही मेरा विवाह कर दीजिये। हे धर्मज्ञ! मैं इनके सिवा दूसरे किसीको पति नहीं बनाऊँगी ॥५६॥ क्योंकि मुनिके रसस्वरूप नादमय मधुर समुद्रमें मैं डूब चुकी हूँ। यह सुखदायी सागर खारे पानी, नाक-घड़ियाल तथा मत्स्य आदि जन्तुओंसे बिल्कुल शून्य है' ॥ ५७ ॥ *इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे*

षष्ठस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

(नारदका दमयन्तीके साथ विवाह) नारदजी बोले—धाय द्वारा कहलायी हुई पुत्री दमयन्तीकी बात सुनकर राजा संजयने पास बैठी हुई अपनी सुन्दर नेत्रोंवाली रानी कैकेयीसे कहा ॥१॥ राजा बोले—हे प्रिये ! धायने जो बात कही है, वह तो तुम सुन ही चुकी हो। बन्दर जैसे मुखवाले नारदमुनिको उसने पतिरूपमें वरण कर लिया है ॥२॥ उसकी यह मूर्खतापूर्ण दुश्चेष्टा है। भला, बंदरके समान मुखवाले उस मुनिको मैं अपनी कन्या कैसे दूँगा ॥ ३ ॥ कहाँ भीख माँगनेवाला वह कुरूप मुनि और कहाँ मेरी लाडली तथा परम सुन्दरी कन्या दमयन्ती। ऐसा बेमेल सम्बन्ध कभी भी नहीं किया जा सकता ॥४॥ हे प्रिये ! तुम्हारी वह भोली कन्या मुनिपर आसक्त हो गयी है। तुम उसे एकान्तमें शास्त्रकी आज्ञा तथा वृद्ध पुरुषोंकी मर्यादा बतलाती हुई युक्तिपूर्वक समझाकर इस हठसे मुक्त करो ॥ ५ ॥ पतिदेवकी यह बात सुनकर रानी कैकेयीने राजकुमारी दमयन्तीसे कहा—'बेटी ! कहाँ तो तुम ऐसी रूपवती राजकन्या और कहाँ वह बंदरमुहाँ निर्धन मुनि! ॥६॥ तुम्हारा शरीर लताके समान सुकोमल है और वह मुनि सदा देहमें राख लपेटे रहता है। तब तुम इतनी चतुर होती हुई भी उस भिक्षुक

॥ नारद उवाच ॥ तत्पुत्र्या वचनं श्रुत्वा राजा धात्रीमुखात्ततः॥ भार्यां प्रोवाच कैकेयीं समीपस्थां सुलोचनाम् ॥१॥ राजोवाच ॥ यदुक्तं वचनं कांते धात्र्या तत्तु त्वया श्रुतम्॥ वृतोऽयं नारदः कामं मुनिर्वानरवक्त्रभाक् ॥ २ ॥ किमिदं चिंतितं पुत्र्या बुद्धिहीनं विचेष्टितम्॥ कथमस्मै मया देया कन्या हरिमुखाय सा ॥ ३ ॥ क्वासौ भिक्षुः कुरूपः क्व दमयंती ममात्मजा॥ विपरीतमिदं कार्यं न विधेयं कदाचन ॥ ४ ॥ तामेकान्ते सुकेशांते निवारय हठात्सुताम् ॥ युक्त्या मुनिरतां मुग्धां शास्त्रवृद्धानुसारया ॥ ५ ॥ इति भर्तृवचः श्रुत्वा जननी तामथाब्रवीत् ॥ क्व ते रूपं मुनिः क्वासौ वानरास्योऽधनः पुनः ॥ ६ ॥ कथं मोहमवाप्ताऽसि भिक्षुके चतुरा पुनः ॥ लताकोमलदेहा त्वं भस्मरूक्षतनुस्त्वयम् ॥ ७ ॥ वार्ता वानरवक्त्रेण कथं युक्ता तवानघे॥ का प्रीतिः कुत्सिते पुंसि भविष्यति शुचिस्मिते ॥ ८ ॥ वरस्ते राजपुत्रोऽस्तु मा कुरु त्वं वृथा हठम् ॥ पिता ते दुःखमाप्नोति श्रुत्वा धात्रीमुखाद्वचः ॥ ९ ॥ लग्नां बुब्बूलवृक्षेण कोमलां मालतीलताम् ॥ दृष्ट्वा कस्य मनः खेदं चतुरस्य न गच्छति ॥ १० ॥ दासेरकाय ताम्बूलीदलानि कोमलानि कः॥ ददाति भक्षणार्थाय मूर्खोऽपि धरणीतले ॥११॥ वीक्ष्य त्वां करसंलग्नां नारदस्य समीपतः ॥ विवाहे वर्तमाने तु कस्य चेतो न दह्यति ॥ १२ ॥ कुमुखेन समं वार्ता न रुचिं जनयत्यतः ॥ आमृतेस्तु कथं कालः क्षपितव्यस्त्वयाऽमुना ॥१३॥ नारद उवाच ॥ इति

मुनिपर कैसे आसक्त हो गयी हो? ॥७॥ हे अनघे ! इस बन्दरमुँहके साथ तुम्हारा सम्बन्ध कैसे शोभा पा सकता है? हे शुचिस्मिते ! इस निन्दनीय पुरुषके प्रति तुम्हारी प्रीति कैसे हो सकेगी? ॥८॥ तुम्हारा वर तो कोई सुन्दर राजकुमार होना चाहिये। हे बेटी ! तुम व्यर्थ हठ मत करो। धायके मुखसे तुम्हारी बात सुनकर तुम्हारे पिता बड़ा दुःख प्रकट कर रहे हैं ॥ ९ ॥ ठीक ही है, बबूरके वृक्षपर फैली हुई कोमल मालती-लताको देखकर किस चतुर पुरुषका मन दुखी न होगा ॥१०॥ जगत्में मूर्ख कहलानेवाला मानव भी ऊँटको खानेके लिए कोमल पानके पत्ते नहीं देता ॥११॥ विवाहके अवसरपर तुम इस नारदके पास बैठो और यह तुम्हारा पाणिग्रहण करे, इसे देखकर किसका जी नहीं जलेगा? ॥ १२ ॥ ऐसे घृणित मुखवालेके साथ तो बातचीतमें भी रुचि उत्पन्न होनेकी सम्भावना नहीं होती। अतएव इस नारदके साथ अन्ततक तुम अपना जीवन कैसे व्यतीत कर सकोगी ?' ॥ १३ ॥ नारदजी कहते हैं—

किन्तु सुकुमारी दमयन्ती मेरे विषयमें अपनी पक्की धारणा बना चुकी थी। माताकी बात सुनकर अत्यन्त घबराहटके साथ उसने कहा—॥१४॥ हे माताजी! जब ये मुनि रसमार्गसे बिल्कुल अनभिज्ञ हैं और सांसारिक विषय-वासनाका इन्हें कुछ भी ज्ञान नहीं है, तब इन्हें सुन्दर मुख, धन और राज्यसे क्या प्रयोजन? ॥ १५ ॥ हे माताजी! वनमें रहनेवाली उन हरिणियोंको धन्यवाद है, जो वीणाका मधुर स्वर सुनकर प्राणतक देनेको तैयार हो जाती हैं। जो मूर्ख मानव इस स्वरसे प्रेम नहीं करते, वे जगत्में धिक्कारके पात्र समझे जाते हैं॥ १६ ॥ माँ! नारदजी-को जिस सप्तस्वरमयी विद्याका ज्ञान है, उसे शिवजीको छोड़कर तीसरा कोई भी पुरुष नहीं जानता ॥ १७ ॥ माताजी! मूर्खके साथ रहनेपर तो प्रतिक्षण मृत्युका सामना करना पड़ता है। अतः रूपवान् और धनवान् होनेपर भी यदि कोई मूर्ख हो तो उस पुरुषको सदा के लिए त्याग देना चाहिये ॥१८॥ व्यर्थ गर्व करनेवाले मूर्ख राजाकी मैत्रीको धिक्कार है। गुणी भिक्षुककी मैत्रीको मैं श्रेष्ठ मानती हूँ। कारण, उसके वचनमात्रसे सुखकी अनुभूति होती रहती है ॥१९॥ स्वर, ग्राम और मूर्च्छना आदि आठ प्रकारके भेदोंको जाननेवाले दुर्बल पुरुष का भी मिलना

मातुर्वचः श्रुत्वा दमयन्ती भृशातुरा ॥ मातरं प्राह तन्वङ्गी मयि सा कृतनिश्चया ॥ १४ ॥ किं मुखेन च रूपेण मूर्खस्य च धनेन किम् ॥ किं राज्येनाविदग्धस्य रसमार्गाविदोऽस्य च ॥१५॥ हरिण्योऽपि वने धन्या या नादेन विमोहिताः ॥ मातः प्राणान्प्रयच्छंति धिङ्मूर्खान्मानुषान्भुवि ॥१६॥ नारदो वेत्ति यां विद्यां मातः सप्तस्वरात्मिकाम् ॥ तृतीयः कोऽपि नो वेद शिवादन्यः पुमान्किल ॥१७॥ मूर्खेण सह संवासो मरणं तत्क्षणे क्षणे ॥ रूपवान्धनवांस्त्याज्यो गुणहीनो नरः सदा ॥ १८ ॥ धिङ्मैत्रीं मूर्खभूपाले वृथा गर्वसमन्विते ॥ गुणज्ञे भिक्षुके श्रेष्ठा वचनात्सुखदायिनी ॥ १९ ॥ स्वरज्ञो ग्रामवित्कामं मूर्छनाज्ञानभेदभाक् ॥ दुर्लभः पुरुषश्चाष्टरसज्ञो दुर्बलोऽपि वै ॥ २० ॥ यथा नयति कैलासं गंगा चैव सरस्वती ॥ तथा नयति कैलासं स्वरज्ञानविशारदः ॥ २१ ॥ स्वरमानं तु यो वेद स देवो मानुषोऽपि सन् ॥ सप्तभेदं न यो वेद स पशुः सुरराडपि ॥ २२ ॥ मूर्छनातानमार्गं तु श्रुत्वा मोदं न याति यः ॥ स पशुः सर्वथा ज्ञेयो हरिणाः पशवो न हि ॥ २३ ॥ वरं विषधरः सर्पः श्रुत्वा नादं मनोहरम् ॥ अश्रोत्रोऽपि मुदं याति धिक्सकर्णांश्च मानवान् ॥ २४ ॥ बालोऽपि सुस्वरं गेयं श्रुत्वा मुदितमानसः ॥ जायते किंतु ते वृद्धा न जानंति धिगस्तु तान् ॥ २५ ॥ पिता मे किं न जानाति नारदस्य गुणान्बहून् ॥ द्वितीयः सामगो नास्ति त्रिषु लोकेषु तत्समः ॥ २६ ॥ तस्मादसौ

कठिन होता है ॥ २० ॥ स्वरके ज्ञानमें परम प्रवीण पुरुष कैलासतक पहुँचनेवाली गङ्गा और सरस्वतीकी तुलना कर सकता है ॥ २१ ॥ जो स्वरके प्रमाणको जानता है, उसे मनुष्य होते हुए भी देवता समझना चाहिये। स्वरभेदसे अनभिज्ञ इन्द्र भी पशुके तुल्य होता है ॥ २२ ॥ मूर्छना आदि स्वरोंको सुनकर जिसके मनमें आह्लाद उत्पन्न नहीं होता, उसे ही सर्वथा पशु समझना चाहिये, न कि हरिणोंको ॥२३॥ मैं तो विषधर सर्पको भी श्रेष्ठ मानती हूँ। क्योंकि कान न रहनेपर भी मनोहर नाद सुनकर वह मस्त हो जाता है। तब कानवाले मानव यदि मनोहर नाद सुनकर हर्षित नहीं होते तो उन्हें धिक्कार है ॥२४॥ बालक भी उत्तम स्वरसे गाये हुए गीतको सुनकर प्रसन्न हो जाता है। अतः गानके रहस्यको न समझनेवाले वृद्धतक अधम समझे जाते हैं ॥२५॥ क्या मुनिवर नारदके इन अपार और अप्रतिम गुणोंको पिताजी नहीं जानते? त्रिलोकीमें नारदके समान सामवेदका दिव्य गान करनेवाला दूसरा कोई भी पुरुष

नहीं है ॥ २६ ॥ अतएव मैंने अच्छी तरह समझ-बूझकर ही इन मुनिका वरण कर लिया है। सुप्रसिद्ध गुणी इन नारद मुनिके मुखकी आकृति पहले बन्दर जैसी नहीं थी। बादमें शापके कारण इनका ऐसा मुँह हो गया है और वह भी मेरे ही कारण हुआ है ॥२७॥ अतएव मैं कैसे दूसरा विचार कर सकती हूँ। किन्नर घोड़े-जैसे मुखवाले होनेपर भी किसको प्रिय नहीं होते—उनसे सभी प्रेम करते हैं। क्योंकि सामवेदके वे बड़े अच्छे जानकार होते हैं। किसीके सुन्दर मुखसे ही क्या प्रयोजन है ॥२८॥ माँ! तुम पिताजीसे कह दो, मैं निश्चितरूपसे मुनिवरको वर चुकी हूँ। अतः आग्रह छोड़कर वे प्रसन्नतापूर्वक मेरा विवाह नारदमुनिके साथ कर दें ॥२९॥ नारदजी कहते हैं—पुत्रीकी बात सुनकर रानीने राजासे सब हाल कह सुनाया। मेरी पुत्री दमयन्तीका नारदमुनिमें पूर्ण अनुराग हो चुका है, यह समझकर उस परम सुन्दरी रानी कैकेयीने संजयसे कहा—'आप किसी शुभ मुहूर्तमें नारद मुनिके साथ ही दमयन्तीका विवाह कर दीजिये। क्योंकि अपनी कन्या उन सर्वज्ञानी मुनिको मन ही मन वर चुकी है' ॥ ३० ॥ ३१ ॥ नारदजी कहते हैं—इस प्रकार रानी कैकेयीके प्रेरणा करनेपर राजा संजय विधिपूर्वक

मया नूनं वृतः पूर्वं समागमात् ॥ पश्चाच्छापवशाज्जातो वानरास्यो गुणाकरः ॥ २७ ॥ किन्नरा न प्रियाः कस्य भवंति तुरगाननाः ॥ गानविद्यासमायुक्ताः किं मुखेन वरेण ह ॥२८॥ पितरं ब्रूहि मे मातर्वृतोऽयं मुनिसत्तमः ॥ तस्मात्त्वमाग्रहं त्यक्त्वा देहि तस्मै च मां मुदा ॥ २९ ॥ नारद उवाच ॥ इति पुत्र्या वचः श्रुत्वा राज्ञी राज्ञे न्यवेदयत् ॥ आग्रहं सुन्दरी ज्ञात्वा सुताया नारदे मुने ॥३०॥ विवाहं कुरु राजेन्द्र दमयन्त्याः शुभे दिने ॥ मुनिना स च सर्वज्ञो वृतोऽसौ मनसाऽनया ॥ ३१ ॥ नारद उवाच ॥ इति संचोदितो राज्ञ्या संजयः पृथिवीपतिः ॥ चकार विधिवत्सर्वं विधिं वैवाहिकं ततः ॥ ३२ ॥ एवं दारग्रहं कृत्वा वानरास्यः परंतप ॥ स्थितस्तत्रैव मनसा दह्यमानेन चान्वहम् ॥ ३३ ॥ यदाऽऽगच्छद्राजसुता सेवार्थं मम सन्निधौ ॥ अभवं दुःखसंतप्तस्तदाऽहं वानराननः ॥३४॥ दमयंती तु मां वीक्ष्य प्रफुल्लवदनांबुजा ॥ शोकं वानरवक्त्रत्वान्न चकार कदाचन ॥ ३५ ॥ एवं गच्छति काले तु सहसा पर्वतो मुनिः ॥ कुर्वंस्तीर्थान्यनेकानि द्रष्टुं मां समुपागतः ॥ ३६ ॥ मयाऽतिमानितः प्रेम्णा पूजितश्च यथाविधि ॥ आसीन आसने दिव्ये वीक्ष्य मां दुःखितो ह्यभूत् ॥३७॥ कृतदारं वानरास्यं दीनं चिंतातुरं भृशम् ॥ दयावान्मामुवाचेदं

विवाह करनेको प्रस्तुत हो गये और उन्होंने सम्पूर्ण विधि सम्पन्न करके मेरे साथ दमयन्तीका विवाह कर दिया ॥३२॥ हे परम तपस्वी व्यासजी! इस तरह विवाह हो जानेके पश्चात् मैं वहीं रहने लगा। बंदरका मुख होनेके कारण मेरी मानसिक चिन्ता सीमाको पार रही थी ॥३३॥ जब राजकुमारी दमयन्ती सेवा करनेके लिये मुझ वानरमुखवाले मुनिके पास आती, तब मैं दुःखसे संतप्त हो उठता था ॥३४॥ परन्तु खिले हुए कमलके समान मुखवाली वह राजकुमारी मुझे देखकर कभी कहीं तनिक-सा भी खेद प्रकट नहीं करती थी। मेरे बंदरके मुखसे उसके मनमें कुछ भी उद्वेग नहीं उत्पन्न होता था ॥ ३५ ॥ यों कुछ समय व्यतीत होनेके पश्चात् सहसा एक दिन पर्वतमुनि मेरे स्थानपर पधारे। अनेक तीर्थोंमें भ्रमण करते हुए मुझसे मिलनेके विचारसे ही वे आ गये थे ॥ ३६ ॥ मैंने उनका पर्याप्त सम्मान किया। उनकी विधिवत् पूजा की। जब वे आसनपर बैठे, उस समय मुझे और दमयन्तीको देखकर उनका मन दुखी हो उठा ॥३७॥ क्योंकि मेरी बड़ी दयनीय दशा थी। बन्दरका मुख होनेके कारण विवाह करके मैं अत्यन्त चिन्तित भावसे कालक्षेप कर रहा था। मुझ अपने मामाको ऐसा दुखी देखकर उन परम

दयालु पर्वत मुनिने कहा–॥३८॥ मुनिवर नारद ! क्रोधमें आकर मैंने तुम्हें शाप दे दिया था। किन्तु सुनो, मैं अब उसे दूर किये देता हूँ ॥ ३९ ॥ हे नारद ! अब तुम मेरे पुण्यके प्रभावसे पुनः सुन्दर मुखवाले बन जाओ। क्योंकि इस समय राजकुमारीको देखकर मेरा मन करुणासे ओतप्रोत हो गया है' ॥४०॥ नारदजी कहते हैं–मुनिवर पर्वतकी बात सुनकर मेरा मन नम्रता और कृतज्ञतासे भर गया। उसी क्षण मैंने भी जो उन्हें शाप दिया था, उसका मार्जन कर दिया॥४१॥ मैंने कहा–'मुनिवर पर्वत ! तुम मेरी बहनके सुयोग्य पुत्र हो। तुमको मैंने शाप दे दिया था, उसे स्वेच्छापूर्वक सानन्द वापस ले रहा हूँ। अतः अब तुम स्वर्गमें जा सकते हो' ॥ ४२ ॥ फिर तुरन्त पर्वत मुनिके कथनानुसार उनके देखते-देखते मेरा मुख अत्यन्त सुन्दर हो गया। अब राजकुमारीके हर्षकी सीमा नहीं रही। उसने तुरन्त अपनी मातासे कहा–॥ ४३ ॥ हे माँ ! तुम्हारे परम तेजस्वी जामाता अब सुन्दर मुखवाले हो गये हैं। पर्वत मुनिकी आज्ञाके अनुसार

पर्वतो मातुलं कृशम् ॥ ३८ ॥ मया नारद कोपात्त्वं शप्तोऽसि मुनिसत्तम ॥ निष्कृतिं तस्य शापस्य करोम्यद्य निशामय ॥ ३९ ॥ भव त्वं चारुवदनो मम पुण्येन नारद ॥ दृष्ट्वा राजसुतां चित्ते कृपा जाता ममाधुना ॥ ४० ॥ नारद उवाच ॥ मयाऽपि प्रवणं चित्तं कृत्वा श्रुत्वाऽस्य भाषितम् ॥ अनुग्रहः कृतः सद्यस्तस्य शापस्य तत्क्षणात् ॥ ४१ ॥ भागिनेय तवाप्यस्तु गमनं सुरसद्मनि ॥ शापस्यानुग्रहः कामं कृतोऽयं पर्वताधुना ॥ ४२ ॥ नारद उवाच ॥ जातोऽहं चारुवदनो वचनात्तस्य पश्यतः ॥ राजपुत्री तु संतुष्टा मातरं प्राह सत्वरम् ॥ ४३ ॥ मातस्ते सुमुखो जातो जामाता च महाद्युतिः ॥ वचनात्पर्वतस्याद्य मुक्तशापो मुनेरभूत् ॥ ४४ ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं राज्ञ्या कथितं तत्तु राजनि ॥ ययौ द्रष्टुं मुनिं तत्र संजयः प्रीतिमांस्तदा ॥४५॥ धनं समर्पितं राज्ञा संतुष्टेन तदा महत् ॥ मह्यं च भागिनेयाय पारिबर्हं महात्मना ॥ ४६ ॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं वर्तनं यत्पुरातनम् ॥ मायाया बलमाहात्म्यं ह्यनुभूतं यथा मया ॥ ४७ ॥ संसारेऽस्मिन्महाभाग मायागुणकृतेऽनृते ॥ तनुभृत्तु सुखी नास्ति न भूतो न भविष्यति ॥४८॥ कामक्रोधौ तथा लोभो मत्सरो ममता तथा ॥ अहंकारो मदः केन जिताः सर्वे महाबलाः ॥ ४९ ॥ सत्त्वं रजस्तमश्चैव गुणास्त्रय इमे किल ॥ कारणं प्राणिनां देहसंभवे सर्वथा मुने ॥५०॥ कस्मिंश्चित्समये व्यास वनेऽहं विष्णुना सह ॥ गच्छन्हास्यविनोदेन स्त्रीभावं

उनके शापसे इनका उद्धार हो गया है ॥ ४४ ॥ पुत्रीकी बातें सुनकर रानीने राजासे यह प्रसंग कह सुनाया। सो सुनते ही राजा संजय परम प्रसन्न होकर मुझे देखनेके लिए पधारे ॥ ४५ ॥ उस समय उन महाभाग नरेशके मनमें अपार आनन्द हो रहा था। उन्होंने मुझे उपहारमें बहुतसा धन दिया और मेरे भागिनेय पर्वत मुनिको भी सादर उपहार समर्पित किया ॥ ४६ ॥ मेरे इसी जीवनमें ये सब प्रसंग आ चुके हैं। मेरे अनुभवसे तो यह महामायाका ही प्रभाव एवं माहात्म्य है ॥ ४७ ॥ हे महाभाग ! मायाके गुणसे विरचित यह संसार बिल्कुल असत् है। इसमें आसक्त होकर रहनेवाला कोई भी प्राणी न सुखी हो सका है, न है और न होगा ॥ ४८ ॥ काम, क्रोध, लोभ, ममता, अहंकार और मद–ये सभी असीम बलशाली हैं। इनपर किसने विजय पायी है ? ॥४९॥ हे मुने ! सत्त्व, रज, तम–ये तीन गुण ही प्राणियोंके देह धारण करनेमें सर्वथा कारण होते हैं ॥ ५० ॥ हे व्यासजी ! एक समयकी बात है–मैं

इनपर किसने विजय पायी है ? ॥४९॥ हे मुने ! सत्त्व, रज, तम—ये तीन गुण ही प्राणियोंके देह धारण करनेमें सर्वथा कारण होते हैं ॥ ५० ॥ हे व्यासजी ! एक समयकी बात है—

भगवान् विष्णुके साथ वनमें घूम रहा था। आपसमें कुछ विनोदकी बातें चल रहीं थीं। उसी क्षण मुझे अनायास स्त्री हो जाना पड़ा ॥ ५१ ॥ प्रभुकी मायाके बलसे मोहित हो जानेके कारण मैं एक राजाकी स्त्री बन गया और उसके राजभवनमें रहकर मैंने बहुतसे पुत्र प्रसव किये ॥ ५२ ॥ व्यासजीने पूछा—हे मुने ! आप इतने बड़े ज्ञानी पुरुष होते हुए भी स्त्री-रूपमें कैसे परिणत हो गये ? ॥ ५३ ॥ हे साधो ! आपकी बात सुनकर मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है। बताइए, आप पुनः पुरुष कैसे हुए ? ये सभी बातें बतानेकी कृपा करें। साथ ही यह भी बतायें कि किस राजाके घरमें रहकर आपने कैसे पुत्र उत्पन्न किये ? उस महामायाके अद्भुत चरित्रको कहनेकी कृपा कीजिये, जिसने चराचरसहित इस अखिल विश्वको मोहित कर रखा है। आपके कथित कथामृतको सुनकर मुझे तृप्ति नहीं होती। क्योंकि इसमें सभी ग्रन्थोंके अर्थका तत्त्व समाया हुआ है और इससे सब संशय नष्ट हो जाते हैं ॥ ५४–५६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

गमितः क्षणात् ॥ ५१ ॥ राजपत्नीत्वमापन्नो मायाबलविमोहितः ॥ पुत्राः प्रसूता बहवो गेहे तस्य नृपस्य ह ॥ ५२ ॥ व्यास उवाच ॥ संशयोऽयं महान्साधो श्रुत्वा ते वचनं किल ॥ कथं नारीत्वमापन्नस्त्वं मुने ज्ञानवान्भृशम् ॥ ५३ ॥ कथं च पुरुषो जातो ब्रूहि सर्वमशेषतः ॥ कथं पुत्रास्त्वया जाताः कस्य राज्ञो गृहेऽञ्जसा ॥ ५४ ॥ एतदाख्याहि चरितं मायाया महदद्भुतम् ॥ मोहितं च यया सर्वमिदं स्थावरजंगमम् ॥ ५५ ॥ न तृप्तिमधिगच्छामि शृण्वंस्तव कथामृतम् ॥ सर्वग्रन्थार्थतत्त्वं च सर्वसंशयनाशनम् ॥५६॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे सप्तविंशोऽध्यायः ॥२७॥

नारद उवाच ॥ निशामय मुनिश्रेष्ठ गदतो मम सत्कथाम् ॥ मायाबलं सुदुर्ज्ञेयं मुनिभिर्योगवित्तमैः ॥ १ ॥ मायया मोहितं सर्वं जगत्स्थावरजंगमम् ॥ ब्रह्मादिस्तंबपर्यंतमजया दुर्विभाव्यया ॥ २ ॥ कदाचित्सत्यलोकाद्धे श्वेतद्वीपे मनोहरे ॥ गतोऽहं दर्शनाकांक्षी हरेरद्भुतकर्मणः ॥ ३ ॥ वादयन्महतीं वीणां स्वरतानविभूषिताम् ॥ गायनं गायमानस्तु साम सप्तस्वरान्वितम् ॥ ४ ॥ दृष्टो मया देवदेवश्चक्रपाणिर्गदाधरः ॥ कौस्तुभोद्भासितोरस्को मेघश्यामश्चतुर्भुजः ॥ ५ ॥ पीतांबरपरीधानो मुकुटाङ्गदराजितः ॥ लक्ष्म्या सह विलासिन्या क्रीडमानो मुदा युतः ॥ ६ ॥ वीक्ष्य मां

(नारदको स्त्रीरूपकी प्राप्ति) नारदजी कहते हैं—हे मुनिवर ! मैं वह पावन कथाप्रसंग कह रहा हूँ, ध्यानपूर्वक सुनिए। वस्तुतः मायाके अत्यन्त गूढ़ रहस्यको योगवेत्ता मुनि भी जाननेमें असमर्थ हैं ॥ १ ॥ चर-अचर सम्पूर्ण जगत् तथा ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यन्त—सबके सब प्राणी मायाके अधीन हैं, क्योंकि वह अजेय और दुश्चिन्त्य है ॥ २ ॥ एक समयकी बात है—अद्भुत कर्म करनेवाले भगवान् विष्णुके दर्शनकी इच्छा मेरे मनमें उत्पन्न हुई। अतः मैं स्वर्गसे चलकर मनोहर श्वेतद्वीपमें जा रहा था। मेरे द्वारा स्वर और तालसे सुशोभित विशाल वीणा बज रही थी। निषाद आदि सात स्वरों और तालोंके साथ मैं साम गायन कर रहा था ॥ ३ ॥ ४ ॥ श्वेतद्वीपमें पहुँचनेपर मुझे देवाधिदेव भगवान् विष्णुके दर्शन हुए। वे हाथमें चक्र और गदा धारण किये हुए थे। कौस्तुभमणि उनके वक्षस्थलकी शोभा बढ़ा रही थी। मेघके समान श्यामवर्णवाले श्रीहरि चार भुजाओंसे सुशोभित थे ॥ ५ ॥ उन्होंने पीताम्बर पहन रखा था। मुकुट और बाजूबंद विग्रहको विभूषित किये हुए थे। उस समय मनोहारिणी लक्ष्मीके साथ वे क्रीड़ा कर रहे थे ॥ ६ ॥ सम्पूर्ण शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न तथा समस्त अलंकारोंसे अलंकृत भगवती

लक्ष्मी मुझे देखकर वहाँसे हट गयीं ॥ ७ ॥ वे नारीजातिमें सबसे श्रेष्ठ थीं। वे सबको प्रिय थीं। उन्हें अपने रूप और यौवनपर गर्व था। भगवानका उनपर असाधारण अनुराग था और सोनेके समान दमकता हुआ उनके शरीरका रंग था ॥ ८ ॥ लक्ष्मीजीको भवनमें गयी देखकर मैंने वनमाला धारण करनेवाले देवाधिदेव जगत्प्रभु विष्णुसे पूछा–॥ ९ ॥ 'हे देवशत्रुओंका संहार करनेवाले पद्मनाभ भगवान्! मुझे आते देखकर भगवती लक्ष्मीजी आपके पाससे क्यों चली गयीं? ॥ १० ॥ हे जगद्गुरो! मैं न कोई नीच हूँ और न धूर्त। हे जनार्दन! मैं एक तपस्वी हूँ। इन्द्रियाँ मेरे वशमें रहती हैं। मैंने क्रोधपर विजय प्राप्त कर ली है। मायाका मुझपर कभी कुछ भी वश नहीं चलता ॥ ११ ॥ मैंने उस समय जो कुछ भी कहा, उसके प्रत्येक शब्दमें अभिमान भरा था। उसे सुनकर भगवान् श्रीहरिका मुखमण्डल मुसकानसे भरा गया। वीणाके समान मधुर वाणीमें वे मुझसे कहने लगे ॥ १२ ॥ भगवान् विष्णुने कहा– हे नारद! यह काम नीतिके विरुद्ध है। स्त्रीको चाहिये कि पतिके सिवा कभी किसी दूसरे पुरुषके समक्ष न जाय ॥ १३ ॥ हे विद्वन्! जो पदपर अधिकार पा चुके हैं, जिन्होंने

कमला देवी गताऽन्तर्धानमंतिकात् ॥ सर्वलक्षणसंपन्ना सर्वभूषणभूषिता ॥ ७ ॥ नारीणां प्रवरा कांता रूपयौवनगर्विता ॥ सुप्रिया वासुदेवस्य वरचामीकरप्रभा ॥ ८ ॥ अंतर्गृहं गतां दृष्ट्वा सिंधुजां व्यञ्जनान्विताम् ॥ मया पृष्टो देवदेवो वनमाली जगत्प्रभुः ॥ ९ ॥ भगवन्देवदेवेश पद्मनाभ सुरारिहन् ॥ कथं च मा गता दृष्ट्वा मामागच्छंतमंतिकात् ॥ १० ॥ नाहं विटो न वा धूर्तः तापसोऽहं जगद्गुरो ॥ जितेन्द्रियो जितक्रोधो जितमायो जनार्दन ॥ ११ ॥ नारद उवाच ॥ निशम्य वचनं किंचिद्गर्वयुक्तं जनार्दनः ॥ उवाच मां स्मितं कृत्वा वीणावन्मधुरां गिरम् ॥ १२ ॥ विष्णुरुवाच ॥ नारदैवंविधा नीतिर्न स्थातव्यं कदाचन ॥ पतिं विनाऽन्यसान्निध्ये कस्यचिद्योषया क्वचित् ॥ १३ ॥ माया सुदुर्जया विद्वन्योगिभिर्जितमारुतैः ॥ सांख्यविद्भिर्निराहारैस्तापसैश्च जितेंद्रियैः ॥ १४ ॥ देवैश्च मुनिशार्दूल यत्त्वयोक्तं वचोऽधुना ॥ जितमायोऽस्मि गीतज्ञ नैवं वाच्यं कदाचन ॥ १५ ॥ नाहं शिवो न वा ब्रह्मा जेतुं तां प्रभवोऽप्यजाम् ॥ मुनयः सनकाद्याश्च कस्त्वं केऽन्ये क्षमा जये ॥ १६ ॥ देवदेहं नृदेहं वा तिर्यग्देहमथापि वा ॥ बिभृयाद्यः शरीरं च स कथं तां जयेदजाम् ॥ १७ ॥ त्रियुतस्तां कथं मायां जेतुं शक्तः पुमान्भवेत् ॥ वेदविद्योगविद्वाऽपि सर्वज्ञो विजितेंद्रियः ॥ १८ ॥ कालोऽपि तस्या रूपं हि रूपहीनः स्वरूपकृत् ॥ तद्वशे वर्तते देही विद्वान्मूर्खोऽथ मध्यमः ॥ १९ ॥

सांख्यशास्त्रका गहरा अध्ययन किया है, जो बिना कुछ खाये-पीये निरन्तर तपस्यामें रत रहते हैं तथा इन्द्रियाँ सदा जिनके वशमें रहती हैं, उन योगियोंके लिये भी माया अत्यन्त अजेय है ॥ १४ ॥ संगीतकी उत्तम जानकारी रखनेवाले हे मुनिवर! आपने अभी जो कहा है कि मैं मायापर विजय पा चुका हूँ, सो यह बात कभी किसीके भी सामने नहीं कहनी चाहिये। जब मैं (विष्णु) शिव, ब्रह्मा तथा सनकादि मुनि भी मायाको जीतनेमें असफल रहे, तब तुम तथा दूसरे किसी देवताकी क्या गणना की जाय? ॥१५॥१६॥ देवता, मानव अथवा पशुका शरीर धारण करनेवाला प्राणी भला अजन्मा मायाको कैसे जीत सकता है? ॥ १७ ॥ वेदके ज्ञाता, योगसाधनमें निपुण, सर्वज्ञ, जितेन्द्रिय एवं सत्त्व-रज-तमोमय किसी भी पुरुषके लिये मायापर विजय प्राप्त करना सम्भव नहीं है ॥ १८ ॥ काम भी मायाका ही एक रूप है। उसकी कोई पृथक् आकृति नहीं है। छिपे रूपमें रहकर वह विद्वान्, मूर्ख अथवा मध्यम श्रेणीके सभी

प्राणियोंको अपने वशमें किये रहता है ॥ १९ ॥ कभी-कभी तो वह काम धर्मज्ञ पुरुषके चित्तमें भी क्षोभ उत्पन्न कर देता है । फिर स्वाभाविक कर्मसे उसकी चेष्टा समझ ली जाय—यह बड़ा ही कठिन काम है ॥ २० ॥ नारदजी कहते हैं—ऐसा कहकर भगवान् विष्णु चुप हो गये और मेरा मन संदेहसे भर गया । अतः उन जगत्प्रभु सनातन श्रीहरिसे मैंने पूछा—॥ २१ ॥ रमापते ! मायाका कैसा रूप है, उसकी कैसी आकृति है, उसमें कितनी शक्ति है, वह कहाँ रहती है और वह किसके आधारपर ठहरी हुई है ? ॥२२॥ यह मुझे बतानेकी कृपा करें । जगत्को धारण करनेवाले हे लक्ष्मीकान्त ! मुझे उस मायाको देखने और जाननेकी उत्कट इच्छा है । आप शीघ्र ही उसे दिखा और समझाकर मुझे प्रसन्न करनेकी कृपा करें ॥ २३ ॥ भगवान् विष्णु बोले—अखिल जगत्को धारण करनेकी शक्ति रखनेवाली वह माया त्रिगुणात्मिका, सर्वज्ञा, सर्वसम्मता, अजेया और अनेकरूपा है । वह सम्पूर्ण संसारमें व्याप्त होकर रहती है ॥ २४ ॥ हे नारद ! तुम्हें यदि उसे देखनेकी इच्छा हो तो अभी गरुड़पर चढ़ो, हम दोनों अन्य लोकमें चलें ॥ २५ ॥ हे ब्रह्मपुत्र नारदजी ! वहाँ मैं तुम्हें अजितात्माओंके लिये अजेय

कालः करोति धर्मज्ञं कदाचिद्विकलं पुनः ॥ स्वभावात्कर्मतो वाऽपि दुर्ज्ञेयं तस्य चेष्टितम् ॥ २० ॥ नारद उवाच ॥ इत्युक्त्वा विरतो विष्णुरहं विस्मयमानसः ॥ तमब्रुवं जगन्नाथं वासुदेवं सनातनम् ॥ २१ ॥ रमापते कथंरूपा माया सा कीदृशी पुनः ॥ कियद्बला क्वसंस्थाना कस्याधारा वदस्व मे ॥ २२ ॥ द्रष्टुकामोऽस्मि तां मायां दर्शयाशु महीधर ॥ ज्ञातुमिच्छामि तां सम्यक्प्रसादं कुरु मापते ॥ २३ ॥ विष्णुरुवाच ॥ त्रिगुणा साऽखिलाधारा सर्वज्ञा सर्वसंमता ॥ अजेयाऽनेकरूपा च सर्वं व्याप्य स्थिता जगत् ॥ २४ ॥ दिदृक्षा यदि ते चित्ते नारदारोहणं कुरु ॥ गरुडे मत्समेतोऽद्य गच्छावोऽन्यत्र सांप्रतम् ॥ २५ ॥ दर्शयिष्यामि ते मायां दुर्जयामजितात्मभिः ॥ दृष्ट्वा तां ब्रह्मपुत्र त्वं मा विषादे मनः कृथाः ॥२६॥ इत्युक्त्वा देवदेवो मां सस्मार विनतासुतम् ॥ स्मृतमात्रस्तु गरुडस्तदाऽगाद्धरिसन्निधौ ॥ २७ ॥ आगतं गरुडं वीक्ष्य आरुरोह जनार्दनः ॥ समारोप्य च मां पृष्ठे गमनाय कृतादरः ॥ २८ ॥ चलितो विनतापुत्रो वैकुण्ठाद्वायुवेगवान् ॥ प्रेरितो यत्र कृष्णेन गंतुकामेन काननम् ॥ २९ ॥ महावनानि दिव्यानि सरांसि सरितस्तथा ॥ पुरग्रामाकरादींश्च खेटखर्वटगोव्रजान् ॥ ३० ॥ मुनीनामाश्रमान्रम्यान्वापीश्च सुमनोहराः ॥ पल्वलानि विशालानि ह्रदान्पंकजभूषितान् ॥ ३१ ॥ मृगाणां च वराहाणां वृन्दान्यप्यवलोक्य च ॥ गतावावां कान्यकुब्जसमीपं

उस महामायाका दर्शन कराऊँगा । किन्तु उसे देखनेके पश्चात् तुम अपने मनमें विषादको स्थान न देना ॥ २६ ॥ इस प्रकार देवाधिदेव भगवान् विष्णुने मुझसे कहकर विनतानन्दन गरुड़को याद किया । स्मरण करते ही गरुड़ उनके सामने आ गये ॥ २७ ॥ गरुड़को आये देखकर भगवान् विष्णु उनपर सवार हुए और मुझे भी बड़े आदरपूर्वक अपने पीछे बैठा लिया ॥ २८ ॥ वायुके समान तीव्रगामी गरुड़ने अब वैकुण्ठसे यात्रा कर दी । भगवान् श्रीहरि जिस ओर जाना चाहते, उधरके लिए संकेत कर देते और वही गरुड़का लक्ष्य बन जाता था ॥ २९ ॥ यों बहुतसे विशाल वन, दिव्य सरोवर, नदियाँ, ग्राम, नगर, पर्वतके आस-पासके गाँव, गौओंके गोष्ठ, मुनियोंके मनोहर आश्रम, सुन्दर बावलियाँ, छोटे-बड़े अनेक तालाब, कमलसे सुशोभित अगाध जलवाली अनेक झीलें तथा मृगों एवं वराहोंके बहुतसे झुण्ड हमें दृष्टिगोचर हुए । गरुड़पर बैठकर इन सबपर दृष्टि डालते हुए हम दोनों कान्यकुब्ज नगरके पास

जा पहुँचे ॥ ३०–३२ ॥ वहाँ एक दिव्य सरोवर दिखायी पड़ा । कमल उस सरोवरकी शोभा बढ़ा रहे थे । हंस, सारस और चक्रवाकोंसे वह बड़ा ही मनोहर जान पड़ता था ॥ ३३ ॥ अनेक प्रकारके विकसित कमलोंसे वह सुशोभित था । उसका जल बड़ा ही पवित्र एवं मधुर था । झुण्डके झुण्ड भ्रमर गूँज रहे थे । उस सरोवरका मधुर जल क्षीरसागरके दूधसे होड़ कर रहा था । उसे देखकर भगवान् श्रीहरिने मुझसे कहा ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ श्रीभगवान् बोले—हे नारद ! सारसोंकी बोलीसे शोभा पानेवाले इस अगाध सरोवरको देखो । इसमें चारों ओर कमल खिले हुए हैं । यह निर्मल जलसे परिपूर्ण है ॥ ३६ ॥ यहाँ स्नान करनेके पश्चात् हम लोग श्रेष्ठनगरी कान्यकुब्जमें चलें । यों कहकर भगवान् श्रीहरि हँसे और गरुड़से उतरकर मेरी तर्जनी अँगुली पकड़ ली । उस सरोवरकी बार बार प्रशंसा करते हुए वे मुझे तीरपर ले आये ॥३७॥३८॥ अत्यन्त मनोहर वृक्षोंकी छायासे उसका तट सुशोभित था । कुछ समय तक वहाँ विश्राम किया । तद-

गरुडासनौ ॥ ३२ ॥ तत्र रम्यं सरो दिव्यं दृष्टं पंकजमंडितम् ॥ हंसकारंडवाकीर्णं चक्रवाकोपशोभितम् ॥ ३३ ॥ नानावर्णैः प्रफुल्लैश्च पंकजैरुपरंजितम् ॥ शुचि मिष्टजलं भृङ्गयूथनादविराजितम् ॥ ३४ ॥ मामाह भगवान्वीक्ष्य तडागं परमाद्भुतम् ॥ स्पर्धकं चोदधेः क्षीरं मिष्टं वारि विशेषतः ॥ ३५ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ पश्य नारद गंभीरं सरः सारसनादितम् ॥ सर्वत्र पंकजैश्छन्नं स्वच्छनीरप्रपूरितम् ॥ ३६ ॥ अत्र स्नात्वा गमिष्यावः कान्यकुब्जं पुरोत्तमम् ॥ इत्युक्त्वा गरुडादाशु मामुत्तार्य व्यतारयत् ॥ ३७ ॥ विहस्य भगवांस्तत्र जग्राह मम तर्जनीम् ॥ स्तुवन्सरोवरं भूयस्तीरे मामनयत्प्रभुः ॥ ३८ ॥ विश्रम्य तटभागे तु स्निग्धच्छाये मनोहरे ॥ मामुवाच मुने स्नानं कुरु त्वं विमले जले ॥ ३९ ॥ पश्चादहं करिष्यामि तडागेऽस्मिन्सुपावने ॥ साधूनामिव चेतांसि जलानि निर्मलानि च ॥ ४० ॥ सुरभीणि परागैस्तु पङ्कजानां विशेषतः ॥ इत्युक्तोऽहं भगवता मुक्त्वा वीणां मृगाजिनम् ॥ ४१ ॥ स्नानाय कृतधीस्तीरे गतः प्रेमसमन्वितः ॥ पादौ प्रक्षाल्य हस्तौ च शिखां बद्ध्वा कुशग्रहम् ॥ ४२ ॥ कृत्वाऽऽचम्य शुचिस्तोये स्नातवानस्मि तज्जले ॥ यदा तस्मिञ्जले रम्ये स्नातोऽहं पश्यतो हरेः ॥ ४३ ॥ विहाय पौरुषं रूपं प्राप्तः स्त्रीत्वमनुत्तमम् ॥ हरिगृहीत्वा वीणां मे तथा कृष्णाजिनं शुभम् ॥ ४४ ॥ आरुह्य गरुडं तूर्णं जगाम स्वगृहं क्षणात् ॥

नन्तर भगवान्ने मुझसे कहा—'हे मुने ! अब तुम पहले इस स्वच्छ जलमें स्नान करो ॥३९॥ उसके बाद मैं इस पावन सरोवरमें स्नान करूँगा । साधु पुरुषोंके चित्तकी भाँति इसका जल अत्यन्त स्वच्छ है । विशेषता यह है कि कमलोंके परागसे इसका जल सुवासित हो चुका है । इस प्रकार कहकर भगवान्ने मुझसे वीणा और मृगचर्म ले लिया । स्नान करनेकी बात मेरे भी मनमें जँच गयी । मैं प्रेमपूर्वक तटपर चला गया । हाथ-पैर धोनेके पश्चात् मैंने शिखा बाँधी और हाथमें कुश ले लिया ॥ ४०–४२ ॥ फिर आचमन करके मैं उस पवित्र जलमें स्नान करनेको उतरा । भगवान् श्रीहरि मेरे सामने विराजमान थे ॥ ४३ ॥ उस मनोहर जलमें मैंने ज्यों ही डुबकी लगायी, त्यों ही मेरी पुरुषाकृति विलुप्त हो गयी और मैं एक सुन्दरी रमणीके रूपमें परिणत हो गया । उसी क्षण भगवान् मेरी वीणा और पवित्र मृगचर्म लेकर आकाशमार्गसे अपने धाम चले गये । तदनन्तर सुन्दर भूषणोंसे भूषित होकर मैं स्त्रीके रूपमें समय व्यतीत करने लगा

॥ ४४ ॥ ४५ ॥ उसी क्षण मेरे मनसे पूर्व शरीरकी स्मृति भी जाती रही । जगत्प्रभु भगवान् विष्णु और वीणाकी भी मुझे याद नहीं रही । मनमें अपार अज्ञान छा गया ॥४६॥ अत्यन्त लुभावने स्त्रीवेषको पाकर मैं उस सरोवरसे बाहर निकला । कमलसे भरे-पूरे शुद्ध जलवाले उस सरोवरकी ओर मेरी आँखें चक्कर काटने लगीं ॥ ४७ ॥ नारीके वेषमें परिणत होकर मैं विचार कर रहा था कि यह क्या हो गया ? इतनेमें राजा तालध्वज अकस्मात् मेरे सामने पधारे । उनके साथ बहुतसे हाथी, घोड़े और रथ थे । वे रथपर बैठे थे ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ उनकी युवावस्था थी । वे भूषण पहने हुए थे । जान पड़ता था, मानो कामदेव ही शरीर धारण करके सामने आ उपस्थित हुआ हो । मैं अलौकिक आभूषणोंसे अलंकृत था सुन्दरी स्त्रीकी मेरी आकृति थी । चन्द्रमाके समान मेरा मुखमण्डल था । मुझे देखकर राजा तालध्वजके आश्चर्यकी सीमा नहीं रही । उन्होंने मुझसे पूछा—'हे कल्याणी ! तुम कौन हो ? कौन देवता तुम्हारे पिता हैं ? ॥ ५० ॥ ५१ ॥ हे कान्ते ! मानव, गन्धर्व अथवा उरग—किसे तुम्हारा पिता होनेका सौभाग्य प्राप्त है ? रूप और यौवनसे शोभा पानेवाली तुम अबला अकेली भटक रही हो ? ॥ ५२ ॥

ततोऽहं स्त्रीत्वमापन्नश्चारुभूषणभूषितः ॥४५॥ तत्क्षणान्मनसो जाता पूर्वदेहस्य विस्मृतिः ॥ विस्मृतोऽसौ जगन्नाथो महती विस्मृता पुनः ॥४६॥ संप्राप्य मोहिनीरूपं तडागान्निर्गतो बहिः ॥ अपश्यं नलिनीजुष्टं सरस्तद्विमलोदकम् ॥ ४७ ॥ किमेतदिति मनसाऽकरवं विस्मयं मुहुः ॥ एवं चिंतयमानस्य नारीरूपधरस्य मे ॥ ४८ ॥ सहसा दृक्पथं प्राप्तस्तत्र तालध्वजो नृपः ॥ गजाश्वरथवृन्दैश्च संवृतो रथसंस्थितः ॥४९॥ युवा भूषणसंवीतो देहवानिव मन्मथः ॥ वीक्ष्य मां भूपतिस्तत्र दिव्यभूषणभूषिताम् ॥५०॥ राकाचंद्रमुखीं योषां विस्मयं परमं गतः ॥ पप्रच्छ काऽसि कल्याणि कस्य पुत्री सुरस्य वा ॥५१॥ मानुषस्य च वा कान्ते गंधर्वस्योरगस्य च ॥ एकाकिनी कथं बाला रूपयौवनभूषिता ॥५२॥ विवाहिताऽथ कन्या वा सत्यं वद सुलोचने ॥ किं पश्यसि सुकेशांते तडागेऽस्मिन्सुमध्यमे ॥५३॥ चिकीर्षितं पिकालापे ब्रूहि मन्मथमोहिनि ॥ भुंक्ष्व भोगान्मरालाक्षि मया सह कृशोदरि ॥५४॥ वांछितान्मनसा नूनं कृत्वा मां पतिमुत्तमम् ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धेऽष्टाविंशोऽध्यायः ॥२८॥

॥ नारद उवाच ॥ इत्युक्तोऽहं तदा तेन राज्ञा तालध्वजेन च ॥ विमृश्य मनसाऽत्यर्थं तमुवाच विशांपते ॥१॥ राजन्नाहं विजानामि पुत्री कस्येति निश्चयम् ॥ पितरौ क्व च मे केन स्थापिता च सरोवरे ॥ २ ॥ किं करोमि क्व गच्छामि कथं मे सुकृतं भवेत् ॥ निराधाराऽस्मि राजेन्द्र

हे सुलोचने ! तुम्हारा विवाह हो चुका है अथवा तुम अभी कुमारी हो ? सच्ची बात बताना । उत्तम वेणीसे शोभा पानेवाली हे सुमध्यमे ! तुम इस तालाबपर क्या देख रही हो ?॥५३॥ कामदेवको मोहित करनेकी योग्यता रखनेवाली हे पिकवयनी प्रिये ! तुम अपना अभिप्राय व्यक्त करो । हे मरालाक्षी ! हे कृशोदरी ! यदि तुम कुमारी हो तो मुझ श्रेष्ठ पतिको पाकर मेरे सहयोगसे मनोऽभिलषित भोग प्राप्त कर सकती हो—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥ ५४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते षष्ठस्कन्धे 'पीताम्बरा' भाषाटीकायामष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

(स्त्रीरूपधारी नारदका राजा तालध्वजके साथ विवाह) नारदजी कहते हैं—इस प्रकार राजा तालध्वजके पूछनेपर मैंने अपने मनमें सम्यक् प्रकारसे विचार किया । तदनन्तर उनसे कहा—॥ १ ॥ हे राजन् ! मैं निश्चितरूसे नहीं जानती कि मैं किसकी कन्या हूँ । मेरे माता-पिता कहाँ हैं और कौन हैं । मुझे इस तालाबपर कौन लाया है—इसका भी मुझे कुछ पता

नहीं है ॥ ३ ॥ हे राजेन्द्र ! मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ और कैसे मुझे सुखकी घड़ी सुलभ हो सकेगी, मेरा कोई भी आश्रय नहीं है—इस प्रकारकी चिन्ताएँ मेरे मनमें समायी हुई हैं ॥३॥ हे राजन् ! दैवकी महिमा सर्वोपरि है । मेरा कोई भी पुरुषार्थ काम नहीं कर पाता । हे भूपाल ! आप धर्मज्ञ पुरुष हैं । जो इच्छा हो, सो कर सकते हैं ॥ ४ ॥ मैं आपके अधीन हूँ । दूसरा कोई भी मेरा रक्षक नहीं हैं । मेरे न पिता हैं, न बन्धु-बान्धव हैं और न कोई स्थान ही है ॥ ५ ॥ इस तरह मुझसे बातें होनेके पश्चात् एक बार उन्होंने मेरे विशाल नेत्रोंपर दृष्टि डाली, फिर अपने सेवकोंसे यह वचन कहा—॥ ६ ॥ तुमलोग एक उत्तम पालकी ले आओ । उसे ढोनेवाले निपुण कहाँर होने चाहिये । वह पालकी रेशमी ओहारसे ढँकी हुई हो । कारण, उसी पर यह सुन्दरी स्त्री सवार होगी ॥७॥ उसमें कोमल बिस्तर बिछे हों । सोनेकी बनी हुई वह चौकोर शिविका खूब लम्बी-चौड़ी होनी चाहिये ॥८॥ राजा तालध्वजकी बात सुनकर शीघ्रगामी सेवकोंने ओहारयुक्त दिव्य पालकी मेरे लिये तुरन्त लाकर उपस्थित कर दी ॥ ९ ॥ उन नरेशका प्रिय कार्य करनेके विचारसे मैं उस शिविकापर जा बैठी । मुझे अपने घर ले जाकर बड़े

चिंतयामि चिकीर्षितम् ॥३॥ दैवमेव परं राजन्नास्त्यत्र पौरुषं मम ॥ धर्मज्ञोऽसि महीपाल यथेच्छसि तथा कुरु ॥४॥ तवाधीनाऽस्म्यहं भूप न मे कोऽप्यस्ति पालकः ॥ न पिता न च माता च न स्थानं न च बांधवाः ॥५॥ इत्युक्तोऽसौ मया राजा बभूव मदनातुरः ॥ मां निरीक्ष्य विशालाक्षीं सेवकानित्युवाच ह ॥ ६ ॥ नरयानमानयध्वं चतुर्बाह्यं मनोहरम् ॥ आरोहणार्थमस्यास्तु कौशेयांबरवेष्टितम् ॥ ७ ॥ मृद्वास्तरणसंयुक्तं मुक्ताजाल-विभूषितम् ॥ चतुस्रं विशालं च सुवर्णरचितं शुभम् ॥ ८ ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा भृत्याः सत्वरगामिनः ॥ आनिन्युः शिविकां दिव्यां मदर्थं वस्त्रवेष्टिताम् ॥ ९ ॥ आरूढोऽहं तदा तस्यां तस्य प्रियचिकीर्षया ॥ मुदितोऽसौ गृहे नीत्वा मां तदा पृथिवीपतिः ॥१०॥ विवाहविधिना राजा शुभे लग्ने शुभे दिने ॥ उपयेमे च मां तत्र हुतभुक्सन्निधौ ततः ॥११॥ तस्याहं वल्लभा जाता प्राणेभ्योऽपि गरीयसी ॥ सौभाग्यसुन्दरीत्येवं नाम तत्र कृतं मम ॥ १२ ॥ रममाणो मया सार्धं सुखमाप महीपतिः ॥ नानाभोगविलासैश्च कामशास्त्रोदितैस्तथा ॥ १३ ॥ राजकार्याणि संत्यज्य क्रीडासक्तो दिवानिशम् ॥ नासौ विवेद गच्छंतं कालं कामकलारतः ॥१४॥ उद्यानेषु च रम्येषु वापीषु च गृहेषु च ॥ हर्म्येषु वरशैलेषु दीर्घिकासु वरासु च ॥१५॥ वारुणीमदमत्तोऽसौ विहरन्कानने शुभे ॥ विसृज्य सर्वकार्याणि मदधीनो बभूव ह ॥१६॥ व्यासाहं तेन संसक्ता क्रीडारसवशी-

आनन्दित हुए ॥ १० ॥ उत्तम दिन और लग्न उपस्थित होनेपर वैवाहिक विधिके अनुसार अग्निके साक्षित्वमें राजाने मेरे साथ विवाह कर लिया ॥ ११ ॥ उस समय मैं परम सुन्दरी स्त्रीके वेषमें था । राजा तालध्वज प्राणोंसे भी बढ़कर मुझसे प्रेम करते थे । उन्होंने मेरा नाम रख दिया—'सौभाग्यसुन्दरी' ॥१२॥ मेरे साथ रमण करते हुए राजाके सुखकी सीमा नहीं रही । कामशास्त्रके अनुसार भाँति-भाँतिके भोग-विलास हमें सुलभ रहे ॥ १३ ॥ राज्यका प्रबन्ध छोड़कर मेरे साथ क्रीड़ा करनेमें ही राजाका सारा समय व्यतीत होने लगा । कामकलामें अत्यन्त आसक्त होनेके कारण बीतते हुए समयपर उनका कुछ भी ध्यान नहीं रहा ॥ १४ ॥ अनेकों उपवन, मनोहर बावलियाँ, सुन्दर भवन और उत्तम अटारियाँ—ये सभी हमारे विहार-स्थलका काम देते थे ॥ १५ ॥ मधु पान करके राजा तालध्वज अपना सारा काम-काज छोड़कर नित्य विभिन्न वनोंमें घूमते रहते थे । इस प्रकार वे सर्वथा मेरे अधीन हो गये थे ॥१६॥

स्थलका काम देते थे ॥ १५ ॥ मधु पान करके राजा तालध्वज अपना सारा काम-काज छोड़कर नित्य विभिन्न वनोंमें घूमते रहते थे। इस प्रकार वे सर्वथा मेरे अधीन हो गये थे ॥१६॥

हे व्यासजी ! उस समय राजा तालध्वजपर मेरा असीम अनुराग हो गया था। क्रीड़ाके रसने मेरी सारी विवेकशक्ति नष्ट कर दी थी। पहले मेरा शरीर पुरुषका था एवं मुनिकुलमें मेरी उत्पत्ति हुई थी—यह मुझे तनिक भी ध्यान नहीं रहा ॥ १७ ॥ 'ये मेरे पतिदेव हैं, मैं इनकी भार्या हूँ, अनेक स्त्रियोंकी अपेक्षा मैं इन्हें अधिक प्रिय हूँ, मुझे पटरानी होनेका सौभाग्य प्राप्त है, मैं सती-साध्वी एवं विलासज्ञा हूँ, मेरा जीवन सफल है' ॥ १८ ॥ प्रेममें आबद्ध होकर इस प्रकारके विचार मैं रात-दिन किया करता था। उन नरेशके साथ क्रीड़ामें आसक्त होकर सुखका अनुभव करना ही मेरा स्वभाव बन गया था ॥१९॥ राजा तालध्वजके पास रहते समय मनमें प्रबल आसक्ति आ जानेके कारण ब्रह्म-सम्बन्धी सनातन ज्ञान-विज्ञान एवं धर्मशास्त्रका रहस्य मुझे बिल्कुल भूल गया था ॥ २० ॥ हे मुने ! इस प्रकार क्रीड़ामें आसक्त मेरे बारह वर्ष एक क्षणके समान बीत गये ॥ २१ ॥ मेरे गर्भवती होनेपर राजा तालध्वजको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने विधिपूर्वक गर्भाधानसंस्कार कराया ॥२२॥ गर्भके समय मेरी किस चीजपर इच्छा है—इस विषयमें प्रेमपूर्वक राजा बार बार मुझसे पूछा करते थे,

कृता ॥ स्मृतवान्पूर्वदेहं न पुंभावं मुनिजन्म च ॥ १७ ॥ ममैवायं पतिर्योषाऽहं पत्नीषु प्रिया सती ॥ पट्टराज्ञी विलासज्ञा सफलं जीवितं मम ॥१८॥ इति चिंतयती तस्मिन्प्रेमबद्धा दिवानिशम् ॥ क्रीडासक्ता सुखे लुब्धा तं स्थिता वशवर्तिनी ॥१९॥ विस्मृतं ब्रह्मविज्ञानं ब्रह्मज्ञानं च शाश्वतम् ॥ धर्मशास्त्रपरिज्ञानं तदासक्तामनाः स्थिता ॥ २० ॥ एवं विहरतस्तत्र वर्षाणि द्वादशैव तु ॥ गतानि क्षणवत्कामक्रीडासक्तस्य मे मुने ॥२१॥ जाता गर्भवती चाहं मुदं प्राप नृपस्तदा ॥ कारयामास विधिवद्गर्भसंस्कारकर्म च ॥२२॥ अपृच्छद्दोहदं राजा प्रीणयन्मां पुनः पुनः ॥ नाब्रुवं लज्जमानाऽहं नृपं प्रीतमना भृशम् ॥२३॥ संपूर्णे दशमे मासि पुत्रो जातस्ततो मम ॥ शुभेऽह्नि ग्रहनक्षत्रलग्नताराबलान्विते ॥ २४ ॥ बभूव नृपतेर्गेहे पुत्रजन्ममहोत्सवः ॥ राजा परमसन्तुष्टो बभूव सुतजन्मतः ॥ २५ ॥ सूतकांते सुतं वीक्ष्य राजा मुदमवाप ह ॥ अहं भूमिपतेश्चासं प्रिया भार्या परंतप ॥ २६ ॥ ततो वर्षद्वयांते वै पुनर्गर्भो मया धृतः ॥ द्वितीयस्तु सुतो जातः सर्वलक्षणसंयुतः ॥ २७ ॥ सुधन्वेति सुतस्याथ नाम चक्रे नृपस्तदा ॥ वीरवर्मेति ज्येष्ठस्य ब्राह्मणैः प्रेरितस्त्वयम् ॥ २८ ॥ एवं द्वादश पुत्राश्च प्रसूता भूपसंमताः ॥ मोहितोऽहं तदा तेषां प्रीत्या पालनलालने ॥ २९ ॥ पुनरष्ट सुताः काले काले जाताः सरूपिणः ॥ गार्हस्थ्यं मे ततः पूर्णं संपन्नं सुखसाधनम् ॥ ३० ॥ तेषां दारक्रियाः काले कृता

किन्तु लज्जाके कारण मैं कुछ कह नहीं सकता था ॥ २३ ॥ दस महीने पूरे होनेपर पुत्र उत्पन्न हुआ। उस समय दिन, ग्रह, नक्षत्र, लग्न और तारा—सभी श्रेष्ठ थे ॥ २४ ॥ राजभवनमें बड़े समारोहके साथ पुत्रोत्सव मनाया गया। पुत्रजन्मसे राजाके मनमें असीम प्रसन्नता हुई ॥ २५ ॥ सूतक समाप्त हो जानेपर जब राजाने पुत्रका मुख देखा, तब उनके हर्षकी सीमा नहीं रही। हे परम तपस्वी व्यासजी ! यों मैं राजा तालध्वजकी प्रिय पत्नी बन गया ॥ २६ ॥ दो वर्षके बाद मुझे पुनः गर्भ रह गया। समयानुसार सर्वलक्षणसम्पन्न दूसरे पुत्रकी मुझसे उत्पत्ति हुई ॥ २७ ॥ ब्राह्मणोंकी आज्ञासे राजाने बड़े पुत्रका नाम वीरवर्मा और छोटे पुत्रका नाम सुधन्वा रखा ॥ २८ ॥ इस प्रकार राजाके सम्पर्कमें रहकर मैंने बारह पुत्र उत्पन्न किये। उस समय मोहवश उन बच्चोंके लालन-पालनमें ही प्रेमपूर्वक लगा रहा ॥ २९ ॥ समय-समयपर मुझसे पुनः आठ सुन्दर पुत्रोंकी उत्पत्ति हुई।

फिर तो सुखका साधनभूत मेरा गार्हस्थ्य जीवन साङ्गोपाङ्ग पूरा हो गया ॥ ३० ॥ राजाने समयानुसार उचित रूपसे लड़कोंके विवाह कर दिये। घरमें बहुएँ आ गयीं। पुत्रों और बहुओंको मिलाकर मेरा एक महान् परिवार बन गया ॥३१॥ फिर लड़कोंके भी लड़के हुए। खेलने-कूदने एवं नाना प्रकारके भोग भोगनेको हम नित्य विभिन्न वनोंमें घूमते रहते थे। मेरा अच्छा समय व्यतीत होने लगा। निरन्तर मेरे मोहकी वृद्धि हो रही थी ॥ ३२ ॥ कभी सुख और सम्पत्ति सामने उपस्थित होती और कभी लड़के बीमार पड़ते तथा उन्हें कष्ट भोगना पड़ता तो मेरे मनमें अत्यन्त अशान्ति फैल जाती थी ॥३३॥ कभी-कभी पुत्रों और बहुओंमें परस्पर अत्यन्त दारुण कलह मच जाता था, जिससे मैं दुखी हो उठता था ॥ ३४ ॥ हे मुनिवर! संकल्पसे उत्पन्न सुख एवं दुःखमयी चिन्ता बिल्कुल व्यर्थ और दुष्परिणामी है। फिर भी, मैं उसीमें उलझा रहता था ॥ ३५ ॥ पूर्व समयकी उत्तम जानकारी और शास्त्र-ज्ञान कुछ भी नहीं रहा। स्त्री बनकर घरेलू कार्योंमें मैं सर्वथा व्यस्त रहता था ॥३६॥ मोह बढ़ानेवाले अहंकारकी सीमा नहीं रही। मैं सोचता था, ये मेरे पराक्रमी पुत्र हैं और ये कुलीन घरमें उत्पन्न होनेवाली

राज्ञा यथोचिताः॥ स्नुषाभिश्च तथा पुत्रैः परिवारो महानभूत् ॥३१॥ ततः पौत्रादिसंभूतास्तेऽपि क्रीडारसान्विताः॥ आसन्नानारसोपेता मोहवृद्धिकरा भृशम् ॥३२॥ कदाचित्सुखमैश्वर्यं कदाचिद्दुःखमद्भुतम् ॥ पुत्रेषु रोगजनितं देहसंतापकारकम् ॥ ३३ ॥ परस्परं कदाचित्तु विरोधोऽभूत्सुदारुणः ॥ पुत्राणां वा वधूनां च तेन संतापसंभवः ॥ ३४ ॥ सुखदुःखात्मके घोरे मिथ्याचारकरे भृशम् ॥ संकल्पजनिते क्षुद्रे मग्नोऽहं मुनिसत्तम ॥ ३५ ॥ विस्मृतं पूर्वविज्ञानं शास्त्रज्ञानं तथा गतम् ॥ योषाभावे विलीनोऽहं गृहकार्येषु सर्वथा ॥ ३६ ॥ अहंकारस्तु संजातो भृशं मोहविवर्धकः ॥ एते मे बलिनः पुत्राः स्नुषाः सुकुलसंभवाः ॥३७॥ एते पुत्राः सुसन्नद्धाः क्रीडंति मम वेश्मसु ॥ धन्याऽहं खलु नारीणां संसारेऽस्मिन्नहो भृशम् ॥३८॥ नारदोऽहं भगवता वंचितो मायया किल ॥ न कदाचिन्मयाप्येवं चिन्तितं मनसा किल ॥३९॥ राजपत्नी शुभाचारा बहुपुत्रा पतिव्रता॥ धन्याऽहं किल संसारे कृष्णैवं मोहितस्त्वहम् ॥ ४० ॥ अथ कश्चिन्नृपः कामं दूरदेशाधिपो महान् ॥ अरातिभावमापन्नः पतिना सह मानद ॥४१॥ कृत्वा सैन्यसमायोगं रथैश्च वारणैर्युतम् ॥ आजगाम कान्यकुब्जे पुरे युद्धमचिंतयत् ॥ ४२ ॥ वेष्टितं नगरं तेन राज्ञा सैन्ययुतेन च ॥ मम पुत्राश्च पौत्राश्च निर्गता नगरात्तदा ॥ ४३ ॥ संग्रामस्तुमुलस्तत्र कृतस्तैस्तेन पुत्रकैः ॥ हता रणे सुताः सर्वे वैरिणा कालयोगतः ॥ ४४ ॥ राजा भग्नस्तु

मेरी बहुएँ हैं ॥ ३७ ॥ मेरे ये लड़के बढ़िया वस्त्र पहनकर घरपर खेल-कूद रहे हैं। अहो! जगत्में जितनी स्त्रियाँ हैं, उन सबमें मैं अवश्य ही बहुत भाग्यशालिनी हूँ ॥३८॥ मैं नारद हूँ, भगवान्‌की मायाने मेरी बुद्धि हर ली है—इस प्रकारका विचार मेरे मनमें कभी उठता ही नहीं था ॥ ३९ ॥ हे व्यासजी! मायासे मोहित होनेके कारण मेरी यही धारणा बनी रहती थी कि मैं उत्तम आचरणवाली एक पतिव्रता रानी हूँ, मेरे बहुतसे पुत्र हैं और इस जगत्में मेरा जीवन धन्य है ॥४०॥ हे मानद! इसके बाद दूरदेशवासी कोई एक प्रसिद्ध नरेश मेरे स्वामीके साथ शत्रुता ठानकर नगरपर चढ़ आया। उसने हाथियों और रथोंके द्वारा अपनी सेना सजा ली थी। वह मनमें युद्ध करनेकी बात सोच रहा था ॥ ४१॥४२ ॥ अपनी सेनासे उसने मेरा नगर घेर लिया। तब मेरे लड़के और पोते भी नगरसे बाहर निकल पड़े ॥ ४३ ॥ अब उस शत्रुनरेशसे भयंकर संग्राम छिड़ गया। विकराल कालके प्रभावसे मेरे सभी पुत्र संग्राममें शत्रुके

द्वारा मार डाले गये ॥४४॥ तब राजा तालध्वज हतोत्साह होकर युद्ध-स्थलसे घर लौट आये। मैंने सुना कि अत्यन्त भयावह संग्राममें मेरे सब लड़के-पोते मर मिटे ॥४५॥ शत्रु राजा बड़ा बलवान् था। मेरे पुत्रों और पौत्रोंको मारकर वह चला गया। अब मेरी आँखोंसे आँसुओंकी अजस्र धारा गिरने लगी। मैं युद्धभूमिमें जा पहुँचा ॥४६॥ जमीनपर पड़े हुए पुत्रों और पौत्रोंको देखकर मेरे दुःखकी सीमा नहीं रही। हे आयुष्मन्! तब शोकरूपी सागरमें डूबकर मैं जोर-जोरसे रोने लगा ॥४७॥ हा पुत्रो! तुम कहाँ चले गये? इस दुष्ट नरेशने मेरी निर्मम हत्या कर दी। हाय! दैव अत्यन्त दुर्दान्त है। उसे कोई भी नहीं टाल सकता ॥४८॥ मैं इस प्रकार विलाप कर ही रहा था—इतनेमें भगवान् विष्णु एक बूढ़े ब्राह्मणका रूप धारण करके वहाँ पधारे। देखनेमें वे बड़े मनोहर जान पड़ते थे ॥४९॥ हे वेदज्ञ! उन प्रभुका विग्रह सुन्दर वस्त्रसे सुशोभित था। उन्होंने स्वयं मेरे सामने आनेकी कृपा की थी। मैं अत्यन्त कातर होकर रो रहा था। वे मुझसे कहने लगे ॥५०॥ ब्राह्मणरूपी भगवानने कहा—'कोयलके समान मधुर बोलनेवाली हे सुन्दरी! तुम क्यों रो रही हो? यह एकमात्र भ्रम है। पति-पुत्रादियुक्त गृहस्थीमें मोहवश ऐसी स्थिति

संग्रामादागतः स्वगृहं पुनः ॥ श्रुतं मया मृताः पुत्राः संग्रामे भृशदारुणे ॥ ४५ ॥ स हत्वा मे सुतान्पौत्रान्गतो राजा बलान्वितः ॥ क्रंदमाना ह्यहं तत्र गता समरमण्डले ॥ ४६ ॥ दृष्ट्वा तान्पतितान्पुत्रान्पौत्रांश्च दुःखपीडिता ॥ विललापाहमायुष्मञ्छोकसागरसंप्लवे ॥ ४७ ॥ हा पुत्राः क्व गता मेऽद्य हा हताऽस्मि दुरात्मना ॥ दैवेनातिबलिष्ठेन दुर्वारेणातिपापिना ॥ ४८ ॥ एतस्मिन्नंतरे तत्र भगवान्मधुसूदनः ॥ कृत्वा रूपं द्विजस्यागाद्वृद्धः परमशोभनः ॥ ४९ ॥ सुवासा वेदवित्कामं मत्समीपं समागतः ॥ मामुवाचातिदीनां संक्रंदमानां रणाजिरे ॥५०॥ ब्राह्मण उवाच ॥ किं विषीदसि तन्वंगि भ्रमोऽयं प्रकटीकृतः ॥ मोहेन कोकिलालापे पतिपुत्रगृहात्मके ॥ ५१ ॥ का त्वं कस्याः सुताः केऽमी चिंतयात्मगतिं पराम् ॥ उत्तिष्ठ रोदनं त्यक्त्वा स्वस्था भव सुलोचने ॥५२॥ स्नानं च तिलदानं च पुत्राणां कुरु कामिनि ॥ परलोकगतानां च मर्यादारक्षणाय वै ॥५३॥ कर्तव्यं सर्वथा तीर्थे स्नानं तु न गृहे क्वचित् ॥ मृतानां किल बन्धूनां धर्मशास्त्रविनिर्णयः ॥ ५४ ॥ नारद उवाच ॥ इत्युक्त्वा तेन विप्रेण वृद्धेन प्रतिबोधिता ॥ उत्थिताऽहं नृपेणाथ युक्ता बंधुभिरावृता ॥ ५५ ॥ अग्रतो द्विजरूपेण भगवान्भूतभावनः ॥ चलिताऽहं ततस्तूर्णं तीर्थं परमपावनम् ॥ ५६ ॥ हरिर्मां कृपया तत्र पुंतीर्थे सरसि प्रभुः ॥ नीत्वाऽहं भगवान्विष्णुर्द्विजरूपी जनार्दनः ॥ ५७ ॥ स्नानं कुरु तडागेऽस्मिन्पावने

आ ही जाती है, तुम अपने परम आत्मास्वरूपके ऊपर तो विचार करो। सोचो, तुम कौन हो? ये किसके पुत्र हैं और ये कौन हैं? हे सुलोचने! उठो और रोना-धोना छोड़कर स्वस्थ हो जाओ ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ हे कामिनी! मर्यादाकी रक्षाके लिये स्नान करके परलोकवासी पुत्रोंको तिलाञ्जलि देनी चाहिये। धर्मशास्त्रका निर्णय है कि मृत बान्धवोंके निमित्त सर्वथा तीर्थमें स्नान करके तर्पण करे। यह कार्य घरपर कभी नहीं किया जा सकता ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ नारदजी कहते हैं—वृद्ध ब्राह्मणके रूपमें पधारे हुए भगवान् विष्णुने यों कहकर मुझे समझाया। तब मैं राजाको साथ लेकर चल पड़ा। बहुत-से बन्धु-बान्धव भी हमारे साथ हो लिये। विप्र-वेषधारी भूतभावन भगवान् आगे-आगे चले। तत्पश्चात् मैं तुरन्त परम पावन तीर्थके लिये चल पड़ा ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ द्विजरूपी भगवान् विष्णु कृपापूर्वक मुझे पुंतीर्थमें ले गये। वहाँ एक पवित्र सरोवर था। भगवान् श्रीहरिने मुझसे कहा—॥ ५७ ॥ 'हे गजगामिनी! कार्य करनेका समय

उपस्थित है। तुम इस पवित्र तीर्थमें स्नान करके पुत्र-सम्बन्धी निरर्थक शोकसे रहित हो जाओ ॥ ५८ ॥ जन्म-जन्मान्तरमें तुम्हारे करोड़ों पुत्र, पिता, पति, भ्राता और जामाता मर चुके हैं ॥ ५९ ॥ उनमें तुम किसका शोक मनाती हो ? यह सब मनका भ्रम है। स्वप्नकी तुलना करनेवाला यह व्यर्थ चिन्तन प्राणियोंको केवल कष्ट ही देनेवाला है ॥ ६० ॥ नारदजी कहते हैं—भगवान् विष्णुके मुखसे निकली हुई इस बातको सुनकर उनकी प्रेरणाके अनुसार मैं पुरुषसंज्ञक तीर्थमें स्नान करनेके लिये उतरा ॥६१॥ उस तीर्थमें डुबकी लगाते ही मेरी आकृति तुरंत पुरुषाकार बन गयी। भगवान् विष्णु वीणा लेकर तटपर विराजमान थे ॥ ६२ ॥ हे द्विजवर ! स्नान करनेके पश्चात् मुझे कमललोचन भगवान् विष्णुके साक्षात् दर्शन प्राप्त हुए। फिर तो मेरे मनकी विस्मृति दूर हो गयी ॥६३॥ सोचने लगा, भगवान्‌के साथ मैं नारद यहाँ उपस्थित हूँ। मायाके प्रभावसे स्त्री जैसी मेरी आकृति हो गयी थी। मैं इस प्रकारकी बातें सोच

गजगामिनि ॥ त्यज शोकं क्रियाकालः पुत्राणां च निरर्थकम् ॥ ५८ ॥ कोटिशस्ते मृताः पुत्रा अन्यजन्मसमुद्भवाः ॥ पितरः पतयश्चैव भ्रातरो जामयस्तथा ॥ ५९ ॥ केषां दुःखं त्वया कार्यं भ्रमेऽस्मिन्मानसोद्भवे ॥ वितथे स्वप्नसदृशे तापदे देहिनामिह ॥ ६० ॥ नारद उवाच ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा तीर्थे पुरुषसंज्ञके ॥ प्रविष्टा स्नातुकामाऽहं प्रेरिता तत्र विष्णुना ॥ ६१ ॥ मज्जनादेव तीर्थेषु पुमाञ्जातः क्षणादपि ॥ हरिर्वीणां करे कृत्वा स्थितस्तीरे स्वदेहवान् ॥६२॥ उन्मज्ज्य च मया तीरे दृष्टः कमललोचनः ॥ प्रत्यभिज्ञा तदा जाता मम चित्ते द्विजोत्तम ॥६३॥ संचिंतितं मया तत्र नारदोऽहमिहागतः ॥ हरिणा सह स्त्रीभावं प्राप्तो मायाविमोहितः ॥ ६४ ॥ इति चिंतापरश्चाहं यदा जातस्तदा हरिः ॥ मामाह नारदागच्छ किं करोषि जले स्थितः ॥ ६५ ॥ विस्मितोऽहं तदा स्मृत्वा स्त्रीभावं दारुणं भृशम् ॥ पुनः पुरुषभावश्च संपन्नः केन हेतुना ॥ ६६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

॥ नारद उवाच ॥ मां दृष्ट्वा नारदं विप्रं विस्मितोऽसौ महीपतिः ॥ क्व गता मम भार्या सा कुतोऽयं मुनिसत्तमः ॥ १ ॥ विललाप नृपस्तत्र हा प्रियेति मुहुर्मुहुः ॥ क्व गता मां परित्यज्य विलपन्तं वियोगिनम् ॥२॥ विना त्वां विपुलश्रोणि वृथा मे जीवितं गृहम् ॥ राज्यं कमलपत्राक्षि किं करोमि शुचिस्मिते ॥ ३ ॥ न प्राणा मे बहिर्यान्ति विरहेण तवाधुना ॥ गतो वै प्रीतिधर्मस्तु त्वामृते प्राणधारणात् ॥ ४ ॥ विलपामि विशालाक्षि

ही रहा था कि भगवान् श्रीहरिने मुझसे कहा—'नारद ! यहाँ आओ, जलमें खड़े होकर क्या कर रहे हो ?' ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ मैंने सोचा, मैं अभी अत्यन्त दारुण स्त्रीके वेषमें था, फिर कैसे पुरुष हो गया ? मेरे आश्चर्यकी सीमा नहीं रही ॥ ६६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते षष्ठस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायामेकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

(महामायाकी महिमा) नारदजी बोले—मुझ ब्राह्मण नारदको देखकर राजा तालध्वज अत्यन्त आश्चर्यमें पड़ गये। सोचा, मेरी पत्नी कहाँ चली गयी और ये मुनिवर नारद कहाँसे आ गये ॥१॥ उन्होंने बारम्बार विलाप करना आरम्भ किया। उन्होंने कहा—'हा प्रिये ! मैं तेरे वियोगमें पड़कर विलाप कर रहा हूँ। मुझे छोड़कर तू कहाँ चली गयी ॥२॥ हे शुचिस्मिते ! तेरे नेत्र कमलपत्रके समान विशाल हैं। हे विपुलश्रोणी ! मैं अब क्या करूँ। तेरे बिना मेरा जीवन, गृह और राज्य सब-के-सब व्यर्थ हैं ॥ ३ ॥ तेरे विरहसे अब मेरे प्राण क्यों नहीं निकल

रहे हैं ? तू न रही तो जीवन-धारण करनेसे भी मुझे कोई प्रयोजन नहीं रहा ॥ ४ ॥ हे विशालाक्षी ! मैं रो रहा हूँ । तू प्रिय उत्तर देनेकी कृपा कर । तूने प्रथम मिलनमें मेरे प्रति जो प्रेम दिखलाया था, वह अब कहाँ चला गया ? ॥ ५ ॥ हे सुभ्रु ! क्या तू जलमें डूब गयी अथवा तुझको मछली या कछुए खा गये ? या मेरे दुर्भाग्यवश तू वरुणके हाथ लग गयी ॥ ६ ॥ अमृतके समान मधुर भाषण करनेवाली हे प्रिये ! तेरे सभी अंग बड़े मनोहर थे । तुझे धन्यवाद है, जो पुत्रोंके प्रति तूने सच्चा प्रेम दिखलाया ॥ ७ ॥ मैं तेरा पति होकर दीनभावसे विलाप कर रहा हूँ । पुत्रस्नेहके पाशसे तू बँधी है । ऐसी स्थितिमें मुझे छोड़कर तेरा स्वर्ग सिधारना शोभा नहीं देता ॥ ८ ॥ हे कान्ते ! मेरे दोनों ही सर्वस्व छिन गये । पुत्र मर ही चुके थे और तू प्राणप्यारी भी मेरे साथ न रह सकी । हे प्रिये ! मैं अत्यन्त दुखी हूँ । फिर भी मेरे प्राण शरीरसे अलग नहीं हो रहे हैं ॥९॥ मैं क्या करूँ और कहाँ जाऊँ ? इस समय संसारमें राम भी नहीं हैं । क्योंकि स्त्रीके वियोगका दुःख जाननेवाले वे ही हैं ॥१०॥ जगत्में प्रतिकूल घटना उपस्थित करनेवाले ब्रह्मा अवश्य ही बड़े निष्ठुर हैं । वे समान चित्तवाले स्त्रीपुरुषका मरण

देहि प्रत्युत्तरं प्रियम् ॥ क्व गता सा मयि प्रीतिर्याऽभूत्प्रथमसङ्गमे ॥ ५ ॥ निमग्ना किं जले सुभ्रूर्भक्षिता मत्स्यकच्छपैः ॥ गृहीता वरुणेनाशु मम दौर्भाग्ययोगतः ॥६॥ धन्या सुचारुसर्वाङ्गि या त्वं पुत्रैः समागता ॥ अकृत्रिमस्तु पुत्रेषु स्नेहस्तेऽमृतभाषिणि ॥७॥ न युक्तमधुना यन्मां विहाय त्रिदिवङ्गता ॥ विलपन्तंपतिं दीनंपुत्रस्नेहेन यन्त्रिता ॥ ८ ॥ उभयं मे गतङ्कान्ते पुत्रस्त्वं प्राणवल्लभे ॥ तथापि मरणं नास्ति दुःखितस्य भृशं प्रिये ॥ ९ ॥ किं करोमि क्व गच्छामि रामो नास्ति महीतले ॥ रामाविरहजं दुःखञ्जानाति रघुनन्दनः ॥ १० ॥ विधिना निष्ठुरेणात्र विपरीतं कृतम्भुवि ॥ दम्पत्योर्मरणं भिन्नं सर्वथा समचित्तयोः ॥ ११ ॥ उपकारस्तु नारीणां मुनिभिर्विहितः किल ॥ यदुक्तं धर्मशास्त्रेषु ज्वलनं पतिना सह ॥१२॥ एवं विलपमानं तं राजानम्भगवान्हरिः ॥ निवारयामास तदा वचनैर्युक्तियोजितैः ॥१३॥ श्रीभगवानुवाच ॥ किं विषीदसि राजेंद्र क्व गता ते प्रियाऽङ्गना ॥ न श्रुतं किं त्वया शास्त्रं न कृतोऽसौ बुधाश्रयः ॥१४॥ का सा कस्त्वं क्व संयोगो वियोगः कीदृशस्तव ॥ प्रवाहरूपे संसारे नृणां नौतरतामिव ॥१५॥ गृहे गच्छ नृपश्रेष्ठ वृथा ते रुदितेन किम् ॥ संयोगश्च वियोगश्च दैवाधीनः सदा नृणाम् ॥१६॥ अनया सह ते राजन्संयोगस्त्विह संवृतः ॥ भुक्ता त्वया विशालाक्षी सुन्दरी तनुमध्यमा ॥ १७ ॥ न दृष्टौ पितरावस्यास्त्वया प्राप्ता सरोवरे ॥ काकतालीयसंगेन यद्भूतं तत्तथा

विभिन्न समयमें क्यों किया करते हैं ॥११॥ मुनियोंने स्त्रियोंका अवश्य ही बड़ा उपकार किया है कि जो उन्होंने स्पष्ट कह दिया है कि 'पतिके मर जानेपर स्त्री उसके साथ चितामें जल जाय' ॥१२॥ इस प्रकार राजा तालध्वज बिलख रहे थे । तब भगवान् श्रीहरिने अनेक प्रकारके युक्तिपूर्ण वचन कहकर उन्हें चुप कराया ॥१३॥ श्रीभगवान् बोले—हे राजेन्द्र ! क्यों रोते हो ? तुम्हारी प्राणप्यारी स्त्री कहाँ गयी ? क्या तुम्हें शास्त्रश्रवणका अवसर नहीं मिला अथवा तुम ज्ञानी पुरुषोंके सम्पर्कसे सदा वञ्चित ही रहे ? ॥१४॥ वह स्त्री कौन थी, तुम कौन हो, कैसा संयोग और कैसा वियोग है ? वेगपूर्वक बहनेवाले इस संसाररूपी समुद्रमें मनुष्योंका सम्बन्ध वैसा ही है, जैसे नौकापर चढ़े हुए पथिकोंका ॥१५॥ हे महाराज ! अब तुम घर जाओ । तुम्हारे इस रोने-धोनेसे कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं हो सकता । मनुष्योंका संयोग-वियोग सदा दैवके विधानपर निर्भर है ॥१६॥ हे राजन् ! विशाल नेत्रोंवाली इस सुन्दरीसे सम्बन्ध होनेपर भोग-

विलास करनेका काफी अवसर तुम्हें प्राप्त हो चुका है ॥१७॥ एक सरोवरपर इसके साथ तुम्हारा संयोग हुआ था। उस समय इसके माता-पिता तुम्हें दिखायी नहीं पड़े थे। यह अवसर काक-तालीय न्यायसे जैसे आया था, वैसे ही अब चला भी गया ॥ १८ ॥ हे राजेन्द्र ! शोक मत करो। कालकी गतिको रोकना बड़ा ही कठिन काम है। अब समयानुसार घर जाओ और वहाँ यथेच्छ भोग भोगो ॥१९॥ उस सुन्दरीसे जैसे तुम्हारा संयोग हुआ था, वैसे ही वियोग भी हो गया। तुम जैसेके तैसे रह गये। हे राजन् ! अब घर जाकर राज-काज सँभालो ॥२०॥ हे भूपेन्द्र ! इस समय तुम्हारे रोनेसे वह स्त्री आ जाय—यह सर्वथा असम्भव है। तुम व्यर्थ ही इस शोकके पचड़ेमें पड़े हो। अब कुछ योगयुक्त बननेका यत्न करो ॥ २१ ॥ भोग समयानुसार जैसे आता है, उसी प्रकार चला भी जाता है। अतः इस असार संसारमार्गमें शोक करना अनुचित है ॥ २२ ॥ न तो एक साथ सर्वथा सुख ही रहता है और न दुःख ही। घटिका-यन्त्रकी भाँति सुख और दुःखका आना-जाना लगा रहता है ॥ २३ ॥ हे राजन् ! स्वस्थचित्त होकर तुम सुखपूर्वक राज्य करो। अथवा अब बन्धु-बान्धवोंको राजकाज सौंपकर वनमें

गतम् ॥ १८ ॥ मा शोकं कुरु राजेन्द्र कालोऽतिदुरतिक्रमः ॥ कालयोगं समासाद्य भुंक्ष्व भोगान्गृहे यथा ॥१९॥ यथाऽऽगता गता सा तु तथैव वरवर्णिनी ॥ यथा पूर्वं तथा तत्र गच्छ कार्यं कुरु प्रभो ॥ २० ॥ रुदितेन तवाद्यैव नागमिष्यति कामिनी ॥ वृथा शोचसि पृथ्वीश योगयुक्तो भवाधुना ॥ २१ ॥ भोगः कालवशादेति तथैव प्रतियाति च ॥ नात्र शोकस्तु कर्तव्यो निष्फले भववर्त्मनि ॥ २२ ॥ नैकत्र सुखसंयोगो दुःख-योगस्तु नैकतः ॥ घटिकायन्त्रवत्कामं भ्रमणं सुखदुःखयोः ॥ २३ ॥ मनः कृत्वा स्थिरं भूप कुरु राज्यं यथासुखम् ॥ अथवा न्यस्य दायादे वनं सेवय सांप्रतम् ॥ २४ ॥ दुर्लभो मानुषो देहः प्राणिनां क्षणभंगुरः ॥ तस्मिन्प्राप्ते तु कर्तव्यं सर्वथैवात्मसाधनम् ॥ २५ ॥ जिह्वोपस्थरसो राजन्पशु-योनिषु वर्तते ॥ ज्ञानं मानुषदेहे वै नान्यासु च कुयोनिषु ॥ २६ ॥ तस्माद्गच्छ गृहं त्यक्त्वा शोकं कान्तासमुद्भवम् ॥ मायेयं भगवत्यास्तु यया संमोहितं जगत् ॥ २७ ॥ नारद उवाच ॥ इत्युक्तो हरिणा राजा प्रणम्य कमलापतिम् ॥ कृत्वा स्नानविधिं सम्यग्जगाम निजमंदिरम् ॥ २८ ॥ दत्त्वा राज्यं स्वपौत्राय प्राप्य निर्वेदमद्भुतम् ॥ वनं जगाम भूपालस्तत्त्वज्ञानमवाप च ॥ २९ ॥ गते राजन्यहं वोक्त्य भगवन्तमधोक्षजम् ॥ तमब्रुवं

रहनेकी व्यवस्था कर लो ॥ २४ ॥ प्राणियोंका दुर्लभ मानव-देह क्षणभंगुर है। इसके प्राप्त होनेपर सम्यक् प्रकारसे आत्मकल्याण कर लेना चाहिये ॥ २५ ॥ जिह्वा और जननेन्द्रियके भोग तो पशुयोनियोंको भी मिल जाते हैं, ज्ञान अधिक होनेसे ही लोग मानव-योनिको उत्तम मानते हैं। अन्य योनियोंमें वह शक्ति सुलभ नहीं रहती ॥२६॥ सो तुम स्त्रीजनित शोकका परित्याग करके घर चले जाओ। भगवती जगदम्बाकी यह महामाया है कि जिससे सम्पूर्ण जगत् मोहित है ॥ २७ ॥ नारदजी बोले—हे व्यासजी ! इस प्रकार लक्ष्मीपति भगवान् विष्णुके कहनेपर राजा तालध्वजने उन्हें प्रणाम करके भलीभाँति स्नानकी विधि सम्पन्न की। तत्पश्चात् वे अपने घर चले गये ॥ २८ ॥ अब उन नरेशके अन्तःकरणमें अद्भुत वैराग्योदय हो चुका था। अतः अपने पौत्रको राज्य सौंपकर वे वनको चले गये। उन्होंने तत्त्वज्ञानकी पूर्ण योग्यता प्राप्त कर ली ॥ २९ ॥ राजा तालध्वजके चले जानेपर मधुर मुसकानसे भरे मुखमण्डलवाले जगत्प्रभु

भगवान् विष्णुके दर्शन प्राप्त करके मैंने उनसे कहा—॥ ३० ॥ हे भगवन् ! आपने मुझे ठग लिया था । किन्तु मायाकी असीम शक्ति अब मेरी समझमें आ गयी । स्त्रीका शरीर प्राप्त होनेपर मेरे द्वारा जो घटनाएँ घटी थीं, उन सबको अब मैं याद कर रहा हूँ ॥३१॥ हे हरे ! आप देवाधिदेव परम पुरुष हैं । मुझे यह बतानेकी कृपा करें कि जब मैं सरोवरमें प्रवेश करके स्नान करने लगा, तब गोता लगाते ही मेरी पूर्वस्मृति क्यों नष्ट हो गयी ? ॥३२॥ स्त्रीका शरीर पाकर मैं मोहित हो गया था । हे जगद्गुरो ! उस प्रतापी नरेशको पाकर मैंने पतिरूपमें ऐसे वरण कर लिया, मानो इन्द्रको पति बनानेवाली शची हो ॥ ३३ ॥ हे देवेश ! उस समयका वह मन, चित्त, देह और चिह्न स्मृतिसे दूर कैसे हो सकता है ? वे बार-बार याद आते रहते हैं ॥३४॥ हे रमाकान्त ! हे प्रभो ! इस विषयमें मुझे महान् आश्चर्य तो यह हो रहा है कि मेरा ज्ञान उस समय सर्वथा विलीन हो गया था । अब आप इसका कारण बतानेकी कृपा करें ॥ ३५ ॥ स्त्रीका शरीर पाकर मैंने अनेक प्रकारके भोग भोगे । मैं निरन्तर मदिरा पान करता रहा । निषिद्ध भोजन करनेमें भी मुझे कोई हिचक न रही ॥ ३६ ॥ मैं यह कभी भी स्पष्ट नहीं जान सका

जगन्नाथं हसन्तं मां पुनः पुनः ॥ ३० ॥ वञ्चितोऽहं त्वया देव ज्ञातं मायाबलं महत् ॥ स्मरामि चरितं सर्वं स्त्रीदेहे यत्कृतं मया ॥ ३१ ॥ ब्रूहि मे देवदेवेश प्रविष्टोऽहं सरोवरे ॥ विगतं पूर्वविज्ञानं स्नानादेव कथं हरेः ॥३२॥ योषिद्देहं समासाद्य मोहितोऽहं जगद्गुरो ॥ पतिं प्राप्य नृपश्रेष्ठं पुलोमी वासवं यथा ॥३३॥ मनस्तदेव तच्चित्तं देहः स च पुरातनः ॥ लिंगं तदेव देवेश स्मृतेर्नाशः कथं हरे ॥३४॥ विस्मयोऽयं महान्मेऽत्र ज्ञाननाशं प्रति प्रभो ॥ कथयाद्य रमाकान्त कारणं परमं च यत् ॥३५॥ नारीदेहं मया प्राप्य भुक्ता भोगा ह्यनेकशः ॥ सुरापानं कृतं नित्यं विधिहीनं च भोजनम् ॥३६॥ मया तदेव न ज्ञातं नारदोऽहमिति स्फुटम् ॥ जानाम्यद्य यथा सर्वं विविक्तं न तथा तदा ॥३७॥ भगवानुवाच ॥ पश्य नारद मायावी विलासोऽयं महामते ॥ देहेषु सर्वजंतूनां दशाभेदा ह्यनेकशः ॥३८॥ जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिश्च तुरीया देहिनां दशा ॥ तथा देहान्तरे प्राप्ते सन्देहः कीदृशः पुनः ॥ ३९ ॥ सुप्तो नरो न जानाति न शृणोति वदत्यपि ॥ पुनः प्रबुद्धो जानाति सर्वं ज्ञातमशेषतः ॥ ४० ॥ निद्रया चाल्यते चित्तं भवन्ति स्वप्नसंभवाः ॥ नानाविधा मनोभेदा मनोभावा ह्यनेकशः ॥ ४१ ॥ गजो मां हन्तुमायाति न शक्तोऽस्मि पलायने ॥ किं करोमि न मे स्थानं यत्र गच्छामि सत्वरः ॥४२॥ मृतं पितामहं स्वप्ने पश्यति स्वगृहागतम् ॥ संयोगस्तेन वार्ता च भोजनं सह मन्यते ॥४३॥ प्रबुद्धः खलु जानाति स्वप्ने

कि मैं नारद हूँ । उस समय जो घटनाएँ घटित हुईं, वे सभी मुझे आद्योपान्त याद आ रही हैं ॥ ३७ ॥ भगवान् विष्णु बोले—हे महामते नारद ! देखो, यह सब महामायाका खेल है । उन्हींके प्रभावसे प्राणियोंके शरीरमें अनेक प्रकारकी दशाएँ उपस्थित होती रहती हैं ॥ ३८ ॥ जैसे शरीरधारियोंमें जाग्रत्-स्वप्न और सुषुप्ति-तुरीया इन चार प्रकारकी दशाओंका क्रम निरन्तर चालू रहता है, वैसे ही दूसरा शरीर प्राप्त होना भी स्वाभाविक है । इसमें सन्देह कैसा ? ॥ ३९ ॥ सोया हुआ मनुष्य जानने-सुनने और बोलनेमें असमर्थ रहता है । वही जब जाग जाता है, तब उसे सारी वस्तुयें ज्ञात हो जाती हैं ॥ ४० ॥ उसका नींदसे चित्त विचलित हो जाता है । मनमें अनेक प्रकारके बहुतसे स्वप्न उठा करते हैं ॥ ४१ ॥ मनुष्य स्वप्नमें देखता है कि हाथी मुझे मारने आ रहा है । मैं भागनेमें असमर्थ हूँ, क्या करूँ ? मेरे लिए दूसरा कोई स्थान नहीं है, जहाँ तुरन्त भाग चलूँ ॥ ४२ ॥ वह कभी स्वप्नमें देखता है कि मेरे

पितामह अपने घरपर पधारे हुए हैं। उनसे मिलता हूँ। परस्पर बातचीत होती है और एक साथ बैठकर हम लोग भोजन करते हैं ॥ ४३ ॥ जागनेपर उसे मालूम हो जाता है है कि ये सुख-दुःखसम्बन्धी बातें मैंने स्वप्नमें देखी हैं। उन सभी बातोंको याद करके वह जनताके समक्ष विस्तारपूर्वक कहता भी है ॥ ४४ ॥ जिस प्रकार कोई भी व्यक्ति स्वप्नमें निश्चित नहीं जान पाता कि यह भ्रम है, वैसे ही महामायाका ऐश्वर्य समझमें आ जाना बड़ा ही कठिन काम है ॥ ४५ ॥ हे नारद ! महामायाके गुणोंकी दुर्लंघ्य सीमाको जाननेमें मैं, शंकर और ब्रह्मा भी असफल रहे हैं ॥४६॥ फिर मन्दबुद्धिवाला दूसरा कौन मनुष्य उसके वास्तविक रहस्यको जान सकता है ? जगत्में महामायाके गुणोंकी इयत्ता किसीकी समझमें नहीं आ सकी है ॥ ४७ ॥ उन्होंने इस सम्पूर्ण चराचर जगत्को सत्त्व, रज और तम—इन तीनों गुणों द्वारा रचा है। उक्त गुणोंके अभावमें यह संसार तनिक देर भी स्थित नहीं रह सकता ॥ ४८ ॥ मुझमें सत्त्वगुण प्रधान है। रजोगुण और तमोगुण गौणरूपसे रहते हैं। यदि तीनों गुण न रहें तो मैं कभी भी भूमण्डलका शासक नहीं बन सकता ॥ ४९ ॥ इसी प्रकार तुम्हारे पिता

दृष्टं सुखासुखम् ॥ स्मृत्वा सर्वं जनेभ्यस्तु विस्तरात्प्रवदत्यपि ॥४४॥ स्वप्ने कोऽपि न जानाति भ्रमोऽयमिति निश्चयः ॥ तथा तथैव विभवो मायाया दुर्गमः किल ॥४५॥ नाहं नारद जानामि पारं परमदुर्घटम् ॥ गुणानां किल मायाया नैव शम्भुर्न पद्मजः ॥४६॥ कोऽन्यो ज्ञातुं समर्थोऽभून्मानवो मन्दधीः पुनः ॥ मायागुणपरिज्ञानं न कस्यापि भवेदिह ॥४७॥ गुणत्रयकृतं सव जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥ विना गुणैर्न संसारो वर्तते किंचिदप्यदः ॥ ४८ ॥ अहं सत्त्वप्रधानोऽस्मि रजस्तमसमन्वितः ॥ ॥ न कदाचित्त्रिभिर्हीनो भवामि भुवनेश्वरः ॥ ४९ ॥ तथा ब्रह्मा पिता तेऽत्र रजोमुख्यः प्रकीर्तितः ॥ तमःसत्त्वसमायुक्तो न ताभ्यामुज्झितः किल ॥५०॥ शिवस्तथा तमोमुख्यो रजःसत्त्वसमावृतः ॥ गुणत्रयविहीनस्तु ॥ नैव कोऽपि मया श्रुतः ॥ ५१ ॥ तस्मान्मोहो न कर्तव्यः संसारेऽस्मिन्मुनीश्वर ॥ मया विनिर्मितेऽसारेऽपारे परमदुर्घटे ॥ ५२ ॥ दृष्टा माया त्वयाऽद्यैव भुक्ता भोगा ह्यनेकशः ॥ किं पृच्छसि महाभाग तस्याश्चरितमद्भुतम् ॥ ५३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

॥ व्यास उवाच ॥ निशामय महाराज ब्रवीमि विशदाक्षरम् ॥ माहात्म्यं खलु मायाया नारदात्तु मया श्रुतम् ॥ १ ॥ मया पुनर्मुनिः पृष्टो

ब्रह्मामें रजोगुण प्रधान है। तमोगुण और सत्त्वगुण भी उनमें हैं ही। इन दोनों गुणोंसे रहित होकर वे कुछ भी नहीं कर सकते ॥ ५० ॥ वैसे ही शिवमें तमोगुणकी विशेषता है। रजोगुण और सत्त्वगुण उनमें अप्रधान रूपसे रहते हैं। कोई भी ऐसा नहीं है कि जिसमें ये तीनों गुण न हों ॥५१॥ अतएव हे मुनीश्वर ! इस संसारमें मोहसे सदा दूर रहना चाहिए। क्योंकि मेरे द्वारा निर्मित यह संसार अपार असार और दुर्घट है ॥५२॥ अभी-अभी मायाका प्रभाव तुम देख चुके हो। तुम्हारे सामने अनेक प्रकारके कितने भोग उपस्थित हुए और तुम्हारे द्वारा भोगे गये। हे महाभाग ! फिर महामायाके इस अद्भुत चरित्रके विषयमें तुम मुझसे क्या पूछते हो ? ॥ ५३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते षष्ठस्कन्धे भाषाटीकायां त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

(भगवतीमाहात्म्य) व्यासजी बोले—हे महाराज जनमेजय ! मैंने योगमायाके जिस माहात्म्यको नारदजीसे सुना है, उसे कहता हूँ, सुना ॥ १ ॥ मुनिवर नारदजी सर्वज्ञ-

शिरोमणि हैं। स्त्रीका शरीर प्राप्त होनेपर उनके सामने जो प्रसंग उपस्थित हुआ था, उसे सुन लेनेके पश्चात् मैंने उनसे पूछा—॥२॥ 'हे नारदजी ! अब आप यह बतानेकी कृपा करें कि इसके बाद जगत्प्रभु भगवान् विष्णुने आपसे क्या कहा तथा आपके साथ वे किधर गये ?' ॥ ३ ॥ नारदजी बोले—उस अत्यन्त मनोहर सरोवरपर बातचीत होनेके पश्चात् भगवान् विष्णु गरुड़पर बैठे और उन्होंने वैकुण्ठ जानेकी बात सोची ॥ ४ ॥ उस समय उन्होंने मुझसे कहा—'हे नारद ! अब तुम अपने अभीष्ट स्थानपर पधारो, अथवा मेरे परम धाममें चल सकते हो या तुम्हारी जैसी इच्छा हो, वह करनेमें स्वतन्त्र हो ॥ ५ ॥ तब मैं श्रीहरिसे आज्ञा लेकर ब्रह्मलोक चला गया। वे प्रभु भी मुझे उपदेश देनेके उपरान्त तुरन्त गरुड़पर बैठे और आनन्दपूर्वक वैकुण्ठ चले गये। जब भगवान् विष्णु चले गये, तब परम अद्भुत सुख-दुःखके सम्बन्धमें विचार करता हुआ मैं अपने पिता ब्रह्माजीके भवनपर जा पहुँचा। वहाँ जाकर मैंने उनके चरणोंमें मस्तक झुकाया और सामने बैठ गया ॥६–८॥ हे मुने ! उस समय मुझे चिन्ताके कारण आतुर देखकर पिताजीने पूछा। ब्रह्माजी बोले—हे महाभाग ! तुम कहाँ गये थे ? बेटा ! तुम क्यों इतने

नारदः सर्ववित्तमः ॥ श्रुत्वा कथां मुनेस्तस्य नारीदेहसमुद्भवाम् ॥ २ ॥ ब्रूहि नारद पश्चात्किं कथितं हरिणा तदा ॥ क्व गतश्च जगन्नाथो भवता सह माधवः ॥ ३ ॥ नारद उवाच ॥ इत्युक्त्वा भगवांस्तस्मिंस्तडागेऽतिमनोहरे ॥ आरुह्य गरुडं गन्तुं वैकुण्ठे च मनो दधे ॥ ४ ॥ मामुवाच रमाकान्तो यथेष्टं गच्छ नारद ॥ एहि वा मम लोकं त्वं यथा रुचि तथा कुरु ॥ ५ ॥ ब्रह्मलोकंगतश्चाहमापृच्छ्य मधुसूदनम् ॥ भगवानपि देवेशस्तत्क्षणाद्गरुडासनः ॥ ६ ॥ वैकुण्ठमगमत्तूर्णं मामादिश्य यथासुखम् ॥ ततोऽहं पितृसदनं गतो याते जनार्दने ॥ ७ ॥ चिंतयन्सकलं दुःखं सुखं च परमाद्भुतम् ॥ गत्वा प्रणम्य पितरं स्थितो यावत्पुरः पितुः ॥ ८ ॥ तावत्पृष्टो मुने पित्रा वीक्ष्य चिंतातुरं तु माम् ॥ ब्रह्मोवाच ॥ क्व गतोऽसि महाभाग कस्माच्चिंतातुरः सुत ॥९॥ स्वस्थं नैवाद्य पश्यामि मनस्ते मुनिसत्तम ॥ केनापि वंचितोऽसि त्वं दृष्टं वा किंचिदद्भुतम् ॥१०॥ विषण्णं गतविज्ञानं पश्यामि त्वां कथं सुत ॥ नारद उवाच ॥ इति पृष्टस्तदा पित्रा बृस्यां समुपवेश्य च ॥ ११ ॥ तमब्रुवं स्ववृत्तान्तं मायाबलसमुद्भवम् ॥ वंचितोऽहंपितः कामं विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ १२ ॥ स्त्रीभावङ्गमितः कामं वर्षाणि सुबहून्यपि ॥ अनुभूतं महद्दुःखं पुत्रशोकसमुद्भवम् ॥ १३ ॥ प्रबोधितोऽहं तेनैव मृदुवाक्यामृतेन च ॥ पुनः सरोवरे स्नात्वा जातोऽहं नारदः पुमान् ॥ १४ ॥ किमेतत्कारणं ब्रह्मन्यन्मोहमग-

घबराये हुए हो ?॥९॥ हे मुनिवर ! तुम्हारे मनको मैं इस समय स्थिर नहीं देख रहा हूँ। किसने तुम्हें धोखेमें डाल दिया है ? क्या कोई अद्भुत दृश्य तुम्हारे सामने आ उपस्थित हुआ है ? बेटा ! मैं देखता हूँ कि तुम अत्यन्त उदास हो। तुम्हारी विवेक-शक्ति कुण्ठित है। इसका क्या कारण है ? नारदजी बोले—जब मेरे पिता ब्रह्माजीने मुझसे इस प्रकार पूछा ॥१०॥११॥ तब मैंने आसनपर बैठकर मायाके प्रभावसे उत्पन्न सारा वृत्तान्त उन्हें कह सुनाया। मैंने कहा—'पिताजी ! अपार शक्तिशाली भगवान् विष्णुकी प्रवञ्चनामें मैं फँस गया था ॥ १२ ॥ बहुत वर्षोंतक स्त्रीके वेषमें रहनेकी विवशता मेरे सामने उपस्थित थी। पुत्र-शोकसे उत्पन्न महान् क्लेश मुझे भोगने पड़े। फिर उन्हींकी अमृतमयी कोमल वाणीने मेरे अन्तःकरणमें ज्ञानका संचार भी किया है। उनकी आज्ञासे सरोवरमें स्नान करते ही मैं फिर पुरुषाकार नारदके रूपमें परिणत हो गया ॥ १३ ॥ १४ ॥ हे ब्रह्मन् ! उस समय मेरे मनमें जो इस प्रकारका मोह उत्पन्न हो गया

था, इसका क्या कारण है ? स्त्री-वेष प्राप्त होते ही मेरा पूर्व-ज्ञान पता नहीं, कहाँ चला गया॥ १५ ॥ हे ब्रह्मन् ! यह मायाबल मेरी समझसे बाहर है। क्योंकि माया अत्यन्त दुरूह, ज्ञानसंहारक एवं मोहकी स्पष्ट प्रवर्तिका जो ठहरी ॥१६॥ सम्पूर्ण शुभ और अशुभ परिस्थितियाँ सामने आयीं और उनका अनुभव करके मैं सम्यक् प्रकारसे समझ भी गया। पिताजी ! आपने इस मायाको कैसे जीता ? इसका उपाय बतानेकी कृपा करें ॥१७॥ नारदजी कहते हैं—हे व्यासजी ! जब मैंने अपने पिता ब्रह्माजीको ये सारी बातें बतला दीं, तब वे हँसकर प्रसन्नतापूर्वक मुझसे कहने लगे ॥ १८ ॥ ब्रह्माजीने कहा—सम्पूर्ण देवता, महात्मा, मुनि, तपस्वी, ज्ञानी तथा वायु पीकर योगके अभ्यासमें तत्पर योगी भी इस मायाको सुगमतापूर्वक जीतनेमें असमर्थ हैं ॥१९॥ उस असीम शक्तिशालिनी मायाको सम्यक् प्रकारसे जाननेमें मेरी बुद्धि भी असफल रही। विष्णु और शिव भी उसे जाननेमें सर्वथा असमर्थ रहे ॥२०॥ सृष्टि, स्थिति और संहार करनेवाली महामाया प्रायः सभीके लिये दुर्विज्ञेय है। काल, कर्म और स्वभाव आदि निमित्त कारण इसके सहयोगी हैं ॥ २१ ॥ हे विद्वान् ! इस प्रकारकी अपरिमित शक्ति रखने-

मं तदा ॥ विस्मृतं पूर्वविज्ञानं तन्मयस्तरसा कृतः ॥१५॥ एतन्मायाबलं ब्रह्मन्न जानेऽहं दुरत्ययम् ॥ ज्ञानहानिकरं जातं मूलं मोहस्य विस्फुटम् ॥ १६ ॥ अनुभूतं मया सम्यग्ज्ञातं सर्वं शुभाशुभम् ॥ कथं त्वं जितवांस्तात तमुपायं वदस्व मे ॥ १७ ॥ नारद उवाच ॥ विज्ञप्तोऽसौ मया धाता प्रीतिपूर्वमतः परम् ॥ मामुवाच स्मितं कृत्वा पिता मे वासवीसुत ॥ १८ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ दुर्जयैषा सुरैः सर्वैर्मुनिभिश्च महात्मभिः ॥ तापसैर्ज्ञानयुक्तैश्च योगिभिः पवनाशनैः ॥१९॥ नाहंतां सर्वथा ज्ञातुं शक्तो मायां महाबलाम् ॥ विष्णुर्ज्ञातुं न शक्तश्च तथा शंभुरुमापतिः ॥ २० ॥ दुर्ज्ञेया सा महामाया सृष्टिस्थित्यंतकारिणी ॥ कालकर्मस्वभावाद्यैर्निमित्तकारणैर्वृता ॥ २१ ॥ शोकं मा कुरु मेधाविंस्तत्र मायामहाबले ॥ न चैव विस्मयः कार्यो वयं सर्वे विमोहिताः ॥२२॥ नारद उवाच ॥ पित्रेत्युक्तस्तदा व्यास तमापृच्छ्य गतस्मयः ॥ आगतोऽस्म्यत्र पश्यन्वै तीर्थानि च वराणि च ॥ २३ ॥ तस्मात्त्वमपि सन्त्यज्य मोहं कौरवनाशजम् ॥ कालक्षयं सुखासीनः स्थानेऽस्मिन्कुरुसत्तम ॥ २४ ॥ अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥ निश्चयं हृदये कृत्वा विचरस्व यथासुखम् ॥ २५ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्त्वा नारदो राजन्गतो मां प्रतिबोध्य च ॥ अहं तच्चिंतयन्वाक्यं यदुक्तं मुनिना तदा ॥ २६ ॥ स्थितः सरस्वतीतीरे कल्पे सारस्वते वरे ॥ कालातिवाहनायैतत्कृतं भागवतं मया ॥२७॥ पुराणमुत्तमं

वाली महामायाके विषयमें तुम शोक मत करो। साथ ही, तुम्हें आश्चर्य भी नहीं करना चाहिये। कारण, हम सभी इसके प्रभावसे मोहित हैं ॥ २२ ॥ नारदजी कहते हैं—हे व्यासजी ! पिताजीके वचन सुनकर मेरा आश्चर्य दूर हो गया। तब मैं उनसे आज्ञा लेकर उत्तम तीर्थोंको देखता हुआ यहाँ आ पहुँचा ॥ २३ ॥ अतएव हे कौरवोंमें सर्वोत्तम व्यासजी ! तुम भी कौरवोंके नाशसे उत्पन्न मोहका परित्याग करके भगवती जगदम्बामें चित्त लगाकर यहाँ सुखपूर्वक समय व्यतीत करो ॥ २४ ॥ अपने द्वारा ऊँच अथवा नीच जो कर्म हो चुके हैं, उनका फल अवश्य भोगना पड़ता है—इस बातको हृदयमें निश्चित करके आनन्दपूर्वक विचरण करो ॥ २५ ॥ व्यासजी कहते हैं—हे राजन् ! ऐसा कहकर मुझे समझानेके बाद नारदजी वहाँसे चले गये और उनकी कही हुई बातोंपर विचार करता हुआ मैं सरस्वती नदीके तटपर ठहर गया। उस समय उत्तम सारस्वत-कल्प चल रहा था। समय व्यतीत करनेके विचारसे मैंने श्रीमद्-

वीभागवतकी रचना आरम्भ कर की ॥ २६ ॥ २७ ॥ हे राजन् ! यह श्रेष्ठ पुराण सम्पूर्ण संदेहोंको दूर करनेवाला, अनेक प्रकारके उपाख्यानोंसे युक्त तथा वैदिक प्रमाणोंसे ओतप्रोत है ॥ २८ ॥ हे राजेन्द्र ! इसमें संदेह करना सर्वथा अनुचित है। जिस प्रकार कोई इन्द्रजाल करनेवाला मदारी काठकी पुतली हाथमें लेकर उसे अपने इच्छानुसार नचाया करता है ॥ २९ ॥ वैसे ही यह माया चराचर सम्पूर्ण जगत्को नचानेमें लगी रहती है ॥ ३० ॥ ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यन्त जितने भी पाँच इन्द्रियोंसे सम्बन्ध रखनेवाले देवता, दानव एवं मानव हैं, वे सभी मन और चित्तका अनुसरण करते हैं ॥ ३१ ॥ हे राजन् ! सत्त्व, रज और तम—ये तीन गुण ही सब कार्योंके कारण होते हैं। कार्य कारणको लेकर ही होता है—यह बिल्कुल निश्चित है ॥३२॥ मायासे उत्पन्न तीनों गुण पृथक्-पृथक् स्वभावके होते हैं। क्योंकि इनमें शान्त, रौद्र और मूढ़—तीन प्रकारका भेद पाया जाता है ॥३३॥ भला, सर्वदा इन तीनों गुणोंका आश्रित

भूप सर्वसंशयनाशनम् ॥ नानाख्यानसमायुक्तं वेदप्रामाण्यसंश्रितम् ॥ २८ ॥ संदेहोऽत्र न कर्तव्यः सर्वथा नृपसत्तम ॥ यथेन्द्रजालिकः कश्चित्पांचालीं दारवीं करे ॥ २९ ॥ कृत्वा नर्तयते कामं स्वेच्छया वशवर्तिनीम् ॥ तथा नर्तयते माया जगत्स्थावरजंगमम् ॥ ३० ॥ ब्रह्मादिस्तंबपर्यंतं सदेवासुरमानुषम् ॥ पंचेन्द्रियसमायुक्तं मनश्चित्तानुवर्तनम् ॥ ३१ ॥ गुणास्तु कारणं राजन्सर्वेषां सर्वथा त्रयः ॥ कार्यं कारणसंयुक्तं भवतीति विनिश्चयः ॥ ३२ ॥ भिन्नभिन्नस्वभावास्ते गुणा मायासमुद्भवाः ॥ शांतो घोरस्तथा मूढस्त्रयस्तु विविधा यतः ॥ ३३ ॥ तत्समेतः पुमान्नित्यं तद्विहीनः कथं भवेत् ॥ न भवत्येव संसारे रहितस्तंतुभिः पटः ॥३४॥ तथा गुणैस्त्रिभिर्हीनो न देहीति विनिश्चयः ॥ देवदेहो मनुष्यो वा तिरश्चो वा नराधिप ॥ ३५ ॥ गुणैर्विरहितो न स्यान्मृद्विहीनो घटो यथा ॥ ब्रह्मा विष्णुस्तथा रुद्रस्त्रयश्चामी गुणाश्रयाः ॥ ३६ ॥ कदाचित्प्रीतियुक्तास्ते तथाऽप्रीतियुताः पुनः ॥ तथा विषादयुक्तास्ते भवंति गुणयोगतः ॥३७॥ ब्रह्मा कदाचित्सत्त्वस्थस्तदा शांतः समाधिमान् ॥ प्रीतियुक्तो भवेत्सर्वभूतेषु ज्ञानसंयुतः ॥३८॥ पुनः सत्त्वविहीनस्तु रजोगुणसमावृतः ॥ तदा भवेद्घोररूपः सर्वत्राप्रीतिसंयुतः ॥३९॥ यदा तमोगुणाविष्टो बाहुल्येन भवेद्विधिः ॥ तदा विषादसम्पन्नो मूढो भवति नान्यथा ॥४०॥ माधवोऽपि सदा सत्त्वसंश्रितः सर्वथा भवेत् ॥ यदा शान्तः प्रीतियुक्तो भवेज्ज्ञान-

पुरुष इनके अभावमें कैसे जीवित रह सकता है ? जिस प्रकार संसारमें तन्तुविहीन पटकी सत्ता मानना असम्भव है ॥३४॥ वैसे ही तीनों गुणोंसे हीन प्राणीके विषयमें भी समझना चाहिये—यह बात बिलकुल निश्चित है। हे नरेन्द्र ! देवता, मानव अथवा पशु किसीका भी शरीर गुणरहित होनेपर वैसे ही कायम नहीं रह सकता, जैसे मिट्टीके बिना घड़ा नहीं रह सकता। गुणोंका संयोग होनेसे ही इन ब्रह्मादि प्रधान देवताओंके मनमें कभी प्रसन्नता होती है, कभी उदासीनता आ जाती है और कभी ये विषादग्रस्त हो जाते हैं ॥ ३५–३७ ॥ जब कभी ब्रह्मा सत्त्वगुणमें स्थित रहते हैं तब वे शान्त, समाधिस्थ, ज्ञानवान् एवं सब प्राणियोंपर प्रसन्न रहते हैं ॥ ३८ ॥ जब रजोगुणाविष्ट होते हैं, तब उनमें झुंझलाहट बढ़ जाती है और उनका रूप भयानक हो जाता है ॥ ३९ ॥ वे ही जब तमोगुणाविष्ट होते हैं, तब खिन्न तथा मूढ़ हो जाते हैं ॥४०॥ विष्णु जब सतोगुणयुक्त होते हैं, तब शान्त तथा प्रीतिमान् रहते हैं ॥ ४१ ॥

रजोगुणके अधीन होनेपर वे क्रुद्ध एवं घोररूपी हो जाते हैं। इसी प्रकार रुद्र भी सतोगुणयुक्त होनेपर प्रीतिमान् तथा शान्तिमान् रहते हैं। रजोगुणाविष्ट होनेपर वे भयानक एवं कठोर हो जाते हैं ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ वे जब तमोगुणाविष्ट होते हैं, तब खिन्न तथा मूढ़ हो जाते हैं। इस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि सभी देवता सदा सत्त्वादि गुणोंके अधीन रहा करते हैं ॥ ४४ ॥ ऐसे ही सूर्यवंशी एवं चन्द्रवंशी चौदहों मनु प्रत्येक युगमें गुणोंके अधीन रहकर कार्यभार सँभालते हैं ॥ ४५ ॥ तब फिर हे राजेन्द्र! इस जगत्में रहनेवाले अन्य साधारण व्यक्तियोंके लिये कौन-सी बात है? देवता, दानव, मानव आदि सारा प्राणि-जगत् मायाके अधीन रहता है ॥४६॥ अतएव हे राजन्! इस विषयमें कदापि सन्देह नहीं करना चाहिए। प्राणी मायाकी अधीनतामें रहकर उसीके आज्ञानुसार सब काम करता है ॥ ४७ ॥ वह माया परम तत्त्वमें सदा सम्मिलित रहती है। उस परम तत्त्वकी आज्ञा पाकर प्राणियोंको प्रेरित करना

समन्वितः ॥ ४१ ॥ स एव रजआधिक्यादप्रीतिसंयुतो भवेत् ॥ घोरश्च सर्वभूतेषु गुणाधीनो रमापतिः ॥ ४२ ॥ रुद्रोऽपि सत्त्वसंयुक्तः प्रीतिमाञ्छांतिमान्भवेत् ॥ रजोनिमीलितः सोऽपि घोरः प्रीतिविवर्जितः ॥ ४३ ॥ तमोगुणयुतः सोऽपि मूढो विषादयुग्भवेत् ॥ एते यदि गुणाधीना ब्रह्मविष्णुहरादयः ॥ ४४ ॥ सूर्यवंशोद्भवास्तद्वत्सोमवंशभवा अपि ॥ मन्वादयश्च ये प्रोक्ताश्चतुर्दशयुगे युगे ॥ ४५ ॥ अन्येषां चैव का वार्ता संसारेऽस्मिन्नृपोत्तम ॥ मायाधीनं जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥ ४६ ॥ तस्माद्राजन्न कर्तव्यः संदेहोऽत्र कदाचन ॥ देही मायापराधीनश्चेष्टते तद्वशानुगः ॥ ४७ ॥ सा च माया परे तत्त्वे संविद्रूपेऽपि सर्वदा ॥ तदधीना प्रेरिता च तेन जीवेषु सर्वदा ॥ ४८ ॥ ततो मायाविशिष्टां तां संविदं परमेश्वरीम् ॥ मायेश्वरीं भगवतीं सच्चिदानंदरूपिणीम् ॥ ४९ ॥ ध्यायेत्तथाऽऽराधयेच्च प्रणमेच्च जपेदपि ॥ तेन सा सदया भूत्वा मोचयत्येव देहिनम् ॥ ५० ॥ स्वमायां संहरत्येव स्वानुभूतिप्रदानतः ॥ भुवनं खलु माया स्यादीश्वरी तस्य नायिका ॥ ५१ ॥ भुवनेशी ततः प्रोक्ता देवी त्रैलोक्यसुन्दरी ॥ तद्रूपे यदि सक्तं स्याच्चित्तं भूमिपते सदा ॥५२॥ मायया किं भवेत्तत्र सदसद्भूतया नृप ॥ तस्मान्मायानिरासार्थं नान्यद्वै देवतान्तरम् ॥ ५३ ॥ समर्थं तु विना देवीं सच्चिदानंदरूपिणीम् ॥ तमोराशिं नाशयितुं शक्तं नैव तमो भवेत् ॥ ५४ ॥ किंतु भानुप्रभाचंद्रविद्युद्वह्नि-

इसका नित्यका कार्य है ॥ ४८ ॥ उस मायाको सहचरीके रूपमें स्वीकार करनेवाली भगवती परमेश्वरी सदा उसे साथ लिये रहती हैं। इसीलिये सच्चिदानन्दमय विग्रह धारण करनेवाली उन भगवतीको 'मायेश्वरी' कहा जाता है ॥ ४९ ॥ उनके ध्यान, पूजन, नमस्कार और जपमें सदा तत्पर रहना चाहिये। इससे अपनी दयालुताके कारण वे प्राणीको मायारहित बना देती हैं और अपनी अनुभूति प्रदान करके वे मायाको हर लेती हैं। अतएव इन भगवती परमेश्वरीको 'भुवनेशी' कहा गया है। इनके समान त्रिलोकीमें कोई सुन्दरी नहीं है। हे राजन्! यदि इनके रूपका ध्यान करनेमें चित्त निरन्तर लग जाय तो सदसत्स्वरूपिणी माया अपना क्या प्रभाव डाल सकती है? अतएव यदि मायाको दूर करनेकी इच्छा हो तो सच्चिदानन्दस्वरूपिणी भगवती जगदम्बाकी आराधना छोड़कर अन्य किसीकी उपासना करना अनुचित है ॥ ५०—५३ ॥ जिस प्रकार अन्धकार किसी दूसरे सघन अन्धकारको दूर करनेमें समर्थ नहीं हो सकता,

बल्कि उसे मिटानेमें सूर्य, चन्द्रमा, बिजली अथवा अग्निके तेज ही समर्थ हैं। उसी प्रकार मायेश्वरी भगवती ही अपनी प्रभासे मायाको दूर कर सकती हैं—ऐसा जानना चाहिये। अतः *मायिक गुणोंसे निवृत्त होनेके लिए प्रसन्नतापूर्वक भगवतीकी उपासना करनी चाहिये।* हे राजेन्द्र ! वृत्रासुर-वध आदि कथाके विषयमें तुमने प्रश्न किया था, उसका वर्णन मैं सम्यक् प्रकारसे कर चुका। अब दूसरा कौन-सा प्रसंग सुनना चाहते हो ? हे सुव्रत ! श्रीदेवीभागवत-पुराणके पूर्वार्द्धको मैंने कह सुनाया ॥ ५४–५७ ॥ इसमें देवीकी महिमा विस्तारपूर्वक कही गयी है। भगवती जगदम्बाका यह रहस्य जिस किसीको नहीं सुनाना चाहिये ॥ ५८ ॥ जो भक्त, शान्तस्वभाव, देवीभक्तिका प्रेमी, शिष्य, अपना बड़ा पुत्र अथवा गुरुभक्तिसे युक्त हो, उसके

प्रभादयः ॥ तस्मान्मायेश्वरीमंबां स्वप्रकाशां तु संविदम् ॥ ५५ ॥ आराधयेदतिप्रीत्या मायागुणनिवृत्तये ॥ इति सम्यङ्मयाख्यातं वृत्रासुरवधादिकम् ॥ ५६ ॥ यत्पृष्टं राजशार्दूल किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ पूर्वार्धोऽयं पुराणस्य कथितस्तव सुव्रत ॥ ५७ ॥ यत्र देव्यास्तु महिमा विस्तरेणोपपादितः ॥ एतद्रहस्यं श्रीमातुर्न देयं यस्य कस्यचित् ॥ ५८ ॥ देयं भक्ताय शान्ताय देवीभक्तिरताय च ॥ शिष्याय ज्येष्ठपुत्राय गुरुभक्तियुताय च ॥ ५९ ॥ इदमखिलकथानां सारभूतं पुराणं निखिलनिगमतुल्यं सप्रमाणानुविद्धम् ॥ पठति परमभावाद्यः शृणोतीह भक्त्या स भवति धनवान्वै ज्ञानवान्मानवोऽत्र ॥६०॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भगवतीमाहात्म्ये एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

वेदाष्टवसुभूसंख्यैः (१८८४) पद्यैर्व्यासकृतैः शुभैः ॥ देवीभागवतस्यास्य षष्ठस्कन्धः समाप्तवान् ॥ १ ॥

सामने ही इसका वर्णन करे ॥५९॥ यह पुराण सम्पूर्ण पुराणोंका सार, समस्त वेदोंकी तुलना करनेवाला एवं विविध प्रमाणोंसे परिपूर्ण है। जो मानव भक्तिपूर्वक उच्च विचारसे इसका पाठ एवं श्रवण करता है, वह निश्चय ही जगत्में ज्ञानी और धनी होनेका सुअवसर प्राप्त कर लेता है ॥६०॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'-भाषाटीकायामेकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ भगवान वेदव्यासनिर्मित अठारह सौ चौरासी शुभ श्लोकों द्वारा देवीभागवतके इस षष्ठ स्कन्धका निर्माण हुआ है ॥ १ ॥

॥ समाप्तोऽयं षष्ठः स्कन्धः ॥

इति श्रीमद्देवीभागवत भा० टी० षष्ठ स्कन्ध

अथ श्रीमद्देवीभागवत भा० टी० सप्तम स्कन्ध

(व्यासजीके प्रति जनमेजयका सृष्टिविषयक प्रश्न) सूतजी बोले–हे तपस्वियो ! इस दिव्य कथाको सुननेके पश्चात् परीक्षितनन्दन धर्मात्मा राजा जनमेजयने प्रसन्नतापूर्वक पुनः व्यासजीसे पूछा ॥१॥ जनमेजयने कहा–हे स्वामिन् ! सूर्यवंशी और चन्द्रवंशी राजाओंके वंशका विशद वर्णन मैं सम्यक् प्रकारसे सुनना चाहता हूँ ॥२॥ हे अनघ ! आप सर्वज्ञ हैं, अतएव पाप शमन करनेवाली यह कथा कहनेकी कृपा कीजिये । इन दोनों वंशोंके राजाओंका मुझे परिचय कराइए। मैंने सुना है कि वे भगवती जगदम्बाके उपासक थे। देवीके भक्तोंकी गाथा सुननेसे कौन मुँह मोड़ेगा ? ॥३॥४॥ इस प्रकार राजर्षि जनमेजयके पूछनेपर सत्यवतीनन्दन मुनिवर व्यासजी उनसे कहने लगे ॥ ५ ॥ व्यासजी बोले–हे महाराज ! सूर्यवंश, चन्द्रवंश तथा अन्य वंशोंसे भी सम्बन्ध रखनेवाली कथाओंका वर्णन करता हूँ, सुनो ॥ ६ ॥ भगवान् विष्णुके नाभिकमलसे चार मुखवाले ब्रह्माजी प्रकट हुए तपस्या करनेके पश्चात् उन्होंने अत्यन्त कठिनता-

॥ सूत उवाच ॥ श्रुत्वैतां तापसाद्दिव्यां कथां राजा मुदान्वितः ॥ व्यासं पप्रच्छ धर्मात्मा परीक्षितसुतः पुनः ॥ १ ॥ जनमेजय उवाच ॥ स्वामिन्सूर्यान्वयानां च राज्ञां वंशस्य विस्तरम् ॥ तथा सोमान्वयानां च श्रोतुकामोऽस्मि सर्वथा ॥ २ ॥ कथयानघ सर्वज्ञ कथां पापप्रणाशिनीम् ॥ चरितं भूपतीनां च विस्तराद्वंशयोर्द्वयोः ॥३॥ ते हि सर्वे पराशक्तिभक्ता इति मया श्रुतम् ॥ देवीभक्तस्य चरितं शृण्वन्कोऽस्ति विरक्तिभाक् ॥ ४ ॥ इति राजर्षिणा पृष्टो व्यासः सत्यवतीसुतः ॥ तमुवाच मुनिश्रेष्ठः प्रसन्नवदनो मुनिः ॥ ५ ॥ व्यास उवाच ॥ निशामय महाराज विस्तराद्वदतो मम ॥ सोमसूर्यान्वयानां च तथाऽन्येषां समुद्भवम् ॥६॥ विष्णोर्नाभिसरोजाद्धे ब्रह्माऽभूच्चतुराननः ॥ तपस्तप्त्वा समाराध्य महादेवीं सुदुर्गमाम् ॥ ७ ॥ तया दत्तवरो धाता जगत्कर्तुं समुद्यतः ॥ नाशकन्मानुषीं सृष्टिं कर्तुं लोकपितामहः ॥ ८ ॥ विचिंत्य बहुधा चित्ते सृष्ट्यर्थं चतुराननः ॥ न विस्तारं जगामाशु रचिताऽपि महात्मना ॥ ९ ॥ (ससर्ज मानसान्पुत्रान्सप्तसंख्यान्प्रजापतिः) ॥ मरीचिरंगिराऽत्रिश्च वसिष्ठः पुलहः क्रतुः ॥ पुलस्त्यश्चेति विख्याताः सप्तैते मानसाः सुताः ॥ १० ॥ रुद्रो रोषात्समुन्नोऽप्युत्संगान्नारदोऽभवत् ॥ दक्षोंगुष्ठात्तथाऽन्येपि मानसाः सनकादयः ॥ ११ ॥ वामांगुष्ठाद्दक्षपत्नी जाता सर्वांगसुंदरी ॥ वीरिणी नाम विख्याता पुराणेषु महीपते ॥ १२ ॥ असिक्नीति च नाम्ना सा यस्यां जातोऽथ नारदः ॥ देवर्षिप्रवरः कामं ब्रह्मणो मानसः सुतः ॥ १३ ॥ जनमेजय उवाच ॥ अत्र मे संशयो ब्रह्मन्यदुक्तं भवता वचः ॥ वीरिण्यां

से साक्षात्कार होनेवाली महादेवीकी उपासना की ॥७॥ भगवतीने उन लोकपितामह ब्रह्माजीको वर प्रदान किया । तब वे सृष्टि करनेमें समर्थ हुए। फिर भी, मानवी सृष्टिमें उन्हें सफलता नहीं मिल सकी ॥ ८ ॥ इस मानवी सृष्टिके लिये उनके मनमें अनेक प्रकारके विचार उत्पन्न हुए । किन्तु तुरन्त विस्तार कर देना उनकी शक्तिसे बाहर ही रहा ॥ ९ ॥ (तब ब्रह्माजीने सात मानस पुत्र उत्पन्न किये) । मरीचि, अङ्गिरा, अत्रि, वसिष्ठ, पुलह, क्रतु और पुलस्त्य–इन नामोंसे उन सातों मानस पुत्रोंकी प्रसिद्धि हुई ॥ १० ॥ ब्रह्माजीके रोषसे रुद्रका और गोदसे नारदका प्राकट्य हुआ । अँगूठेसे दक्ष प्रजापति प्रकटे । ऐसे ही अन्य भी सनकादि मानस पुत्रोंका प्रादुर्भाव हुआ ॥ ११ । बायें हाथके अंगूठेसे दक्षपत्नी प्रकट हुई, जिसके सभी अङ्ग बड़े ही सुन्दर थे । हे राजन् ! पुराणोंमें वे 'वीरिणी' नामसे विख्यात हैं ॥ १२ ॥ उन्हें असिक्नी भी कहा जाता है । ब्रह्माजीके मानस पुत्र देवर्षिप्रवर नारदजी उस असिक्नीके उदरसे ही

उत्पन्न हुए हैं ॥ १३ ॥ जनमेजय बोले—हे ब्रह्मन् ! इस विषयमें मुझे संदेह हो रहा है। अभी आप कह चुके हैं कि दक्षके साथ रहकर वीरिणी महान् तपस्वी नारदजीकी जननी बनी थी ॥१४॥ यह बात कैसे संगत हुई ? क्योंकि धर्मके पूर्ण वेत्ता और परम तपस्वी नारदजी तो ब्रह्माके मानस पुत्र कहे जाते हैं। फिर दक्षपत्नी वीरिणी उनकी माता कैसे हुई ? आप इसे विस्तारपूर्वक बतानेकी कृपा कीजिए ॥ १५ ॥ १६ ॥ हे मुने ! बहुज्ञ महात्मा नारदजीने किसके शापसे अपने पूर्वशरीरका त्याग करके किस कारण पुनः जन्म धारण किया ? ॥ १७ ॥ व्यासजी बोले—स्वयम्भू ब्रह्मजीने सर्वप्रथम दक्ष-प्रजापतिको सृष्टिके लिए आज्ञा दी और कहा कि तुम प्रजाकी रचनामें तत्पर हो जाओ, जिससे बहुसंख्यक प्रजा उत्पन्न हो जाय ॥ १८ ॥ उनकी आज्ञा पाकर दक्ष प्रजापतिने वीरिणीके गर्भसे पाँच हजार अत्यन्त पराक्रमी पुत्र उत्पन्न किये ॥ १९ ॥ उन सभी पुत्रोंमें प्रजाकी सृष्टिका अदम्य उत्साह भरा हुआ था।

नारदो जातो दक्षादिति महातपाः ॥१४॥ कथं दक्षस्य पत्न्यां तु वीरिण्यां नारदो मुनिः ॥ जातो हि ब्रह्मणः पुत्रो धर्मज्ञस्तापसोत्तमः ॥ १५ ॥ विचित्रमिदमाख्यातं भवता नारदस्य च ॥ दक्षाज्जन्मास्य भार्यायां तद्वदस्व सविस्तरम् ॥ १६ ॥ पूर्वदेहः कथं मुक्तः शापात्कस्य महात्मना ॥ नारदेन बहुज्ञेन कस्माज्जन्म कृतं मुने ॥ १७ ॥ व्यास उवाच ॥ ब्रह्मणाऽसौ समादिष्टो दक्षः सृष्ट्यर्थमादितः ॥ प्रजाः सृजेति सुभृशं वृद्धिहेतोः स्वयंभुवा ॥ १८ ॥ ततः पञ्चसहस्रांश्च जनयामास वीर्यवान् ॥ दक्षः प्रजापतिः पुत्रान्वीरिण्यां बलवत्तरान् ॥ १९ ॥ दृष्ट्वा तान्नारदः पुत्रान्सर्वान्वर्धयिषून्प्रजाः ॥ उवाच प्रहसन्वाचं देवर्षिः कालनोदितः ॥२०॥ भुवः प्रमाणमज्ञात्वा स्रष्टुकामाः प्रजाः कथम् ॥ लोकानां हास्यतां यूयं गमिष्यथ न संशयः ॥ २१ ॥ पृथिव्या वै प्रमाणं तु ज्ञात्वा कार्यः समुद्यमः ॥ कृतोऽसौ सिद्धिमायाति नान्यथेति विनिश्चयः ॥ २२ ॥ बालिशा बत यूयं वै यदज्ञात्वा भुवस्तलम् ॥ समुद्यताः प्रजाः कर्तुं कथं सिद्धिर्भविष्यति ॥२३॥ व्यास उवाच ॥ नारदेनैवमुक्तास्ते हर्यश्वा दैवयोगतः ॥ अन्योन्यमूचुः सहसा सम्यगाह मुनिः किल ॥ २४ ॥ ज्ञात्वा प्रमाणमुर्व्यास्तु सुखं स्रक्ष्यामहे प्रजाः ॥ इति संचिन्त्य ते सर्वे प्रयाताः प्रेक्षितुं भुवः ॥ २५ ॥ तलं सर्वं परिज्ञातुं वचनान्नारदस्य च ॥ प्राच्यां केचिद्गताः कामं दक्षिणस्यां तथाऽपरे ॥ २६ ॥ प्रतीच्यामुत्तरस्यां तु कृतोत्साहाः समंततः ॥ दक्षः

बलवान् कालकी प्रेरणाके अनुसार देवर्षि नारद उन पुत्रोंको देखकर हँसते हुए कहने लगे— ॥ २० ॥ 'अजी ! यह पृथ्वी कितनी लम्बी-चौड़ी है—इसका पता लगाये बिना ही प्रजाकी सृष्टिमें तुम कैसे तत्पर हो गये ? ऐसा करनेसे जगत्में तुम्हारा उपहास होगा—इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ २१ ॥ अतएव पहले पृथ्वीकी सीमा जानकर ही तुम्हें इस कार्यमें लगना चाहिये। ऐसा करनेसे ही तुम्हें अपने कार्यमें सफलता प्राप्त होगी। अन्यथा तुम्हारा सारा प्रयास व्यर्थ हो जायगा' ॥ २२ ॥२३॥ व्यासजी कहते हैं—नारदजीके यों कहनेपर दैववश दक्षकुमार हर्यश्वोंके मनमें यह बात जँच गयी। वे एक दूसरेकी ओर देखते हुए सहसा कहने लगे—'मुनिवरने बहुत ठीक कहा है ॥ २४ ॥ अतः पृथ्वीका प्रमाण जान लेनेके पश्चात् ही हम प्रजाकी सृष्टिमें सुखपूर्वक लगेंगे।' इस प्रकार परामर्श करके वे सब पृथ्वीका पता लगानेके लिए चल पड़े ॥ २५ ॥ नारदजीके कथनानुसार पृथ्वीके सर्वाङ्गकी जानकारी प्राप्त करनेके लिए

कुछ लोग पूर्व दिशामें, कुछ पश्चिम और कुछ उत्तर दिशाकी ओर उत्साहपूर्वक चल पड़े। पुत्रोंको चला गया देखकर दक्षप्रजापतिको महान् कष्ट हुआ ॥ २६ ॥ २७ ॥ वे बड़े दृढ़-प्रतिज्ञ थे। अतः प्रजा-सृष्टिके विचारसे उन्होंने पुनः बहुत-से पुत्र उत्पन्न किये। वे लड़के भी प्रजाकी सृष्टि करनेके प्रयत्नमें संलग्न हो गये ॥ २८ ॥ तब नारदजीने पहलेकी ही भाँति उन पुत्रोंको भी यह समझाया कि तुम लोग बड़े मूर्ख हो, जो भूमण्डलका विस्तार जाने बिना सन्ततिके उत्पादनकार्यमें लग गये। क्या सोचकर तुम इस कार्यमें प्रवृत्त हुए हो ? यह सुनकर उन पुत्रोंकी भी मति फिर गयी। जिससे वे भी भूमण्डलका विस्तार जाननेको चल पड़े। उन पुत्रोंको भी चला गया देखकर दक्षके मनमें रोष उत्पन्न हो गया और उन्होंने क्रोधमें आकर नारदजीको शाप दे दिया। दक्षने कहा—हे नारद ! तुमने जिस प्रकार मेरे बहुतसे पुत्रोंको नष्ट कर दिया है, उसी प्रकार तुम भी नष्ट हो जाओगे ॥ २९–३२ ॥ इस पापके परिणामस्वरूप तुम्हें गर्भमें रहकर मेरा पुत्र होना पड़ेगा। कारण तुमने मेरे बहुत-से पुत्र नष्ट कर दिये हैं ॥ ३३ ॥ इस प्रकारके शापसे ग्रस्त होकर नारदजी वीरिणीके गर्भसे

पुत्रान्गतान्दृष्ट्वा पीडितस्तु शुचा भृशम् ॥२७॥ अन्यानुत्पादयामास प्रजार्थं कृतनिश्चयः ॥ तेऽपि तत्रोद्यताः कर्तुं प्रजार्थमुद्यमं सुताः ॥ २८ ॥ नारदः प्राह तान्दृष्ट्वा पूर्वं यद्वचनं मुनिः ॥ बालिशा बत यूयं वै यदज्ञात्वा भुवः किल ॥ २९ ॥ प्रमाणं तु प्रजाः कर्तुं प्रवृत्ताः केन हेतुना ॥ श्रुत्वा वाक्यं मुनेस्तेऽपि मत्वा सत्यं विमोहिताः ॥३०॥ जग्मुः सर्वे यथापूर्वं भ्रातरश्चलितास्तथा ॥ तान्सुतान्प्रस्थितान्दृष्ट्वा दक्षः कोपसमन्वितः ॥३१॥ दक्ष उवाच ॥ नाशिता मे सुता यस्मात्तस्मान्नाशमवाप्नुहि ॥ ३२ ॥ पापेनानेन दुर्बुद्धे गर्भवासं व्रजेति च ॥ पुत्रो मे भव कामं त्वं यतो मे भ्रंशिताः सुताः ॥ ३३ ॥ इति शप्तस्ततो जातो वीरिण्यां नारदो मुनिः ॥ षष्टिर्भूयोऽसृजत्कन्या वीरिण्यामिति नः श्रुतम् ॥ ३४ ॥ शोकं विहाय पुत्राणां दक्षः परमधर्मवित् ॥ तासां त्रयोदश प्रादात्कश्यपाय महात्मने ॥ ३५ ॥ दश धर्माय सोमाय सप्तविंशति भूपते ॥ द्वे चैव भृगवे प्रादाच्चतस्रोऽरिष्टनेमिने ॥ ३६ ॥ द्वे चैवांगिरसे कन्ये तथैवांगिरसे पुनः ॥ तासां पुत्राश्च पौत्राश्च देवाश्च दानवास्तथा ॥३७॥ जाता बलसमायुक्ताः परस्परविरोधकाः ॥ रागद्वेषान्विताः सर्वे परस्परविरोधिनः ॥ सर्वे मोहावृताः शूरा ह्यभवन्नतिमायिनः ॥३८॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

प्रकट हुए। इसके बाद दक्ष-प्रजापतिने वीरिणीके उदरसे साठ कन्यायें उत्पन्न कीं ॥ ३४ ॥ प्रजापति दक्ष परम धर्मज्ञ पुरुष थे। उन्होंने उन साठ कन्याओंमेंसे तेरह कन्याओंका विवाह महात्मा कश्यपके साथ कर दिया ॥३५॥ हे राजन् ! उनकी आज्ञासे दस धर्मकी, सत्ताईस चन्द्रमाकी, दो भृगुकी और चार पुत्रियाँ अरिष्टनेमिकी पत्नी बनीं ॥३६॥ दो कन्याओंका विवाह अङ्गिराके साथ किया गया। शेष दो रहीं। उन्हें भी अङ्गिराको ही सौंप दिया। सभी देवता और दानव उन्हीं कन्याओंके पुत्र-पौत्र हैं ॥ ३७ ॥ वे सभी पुत्र-पौत्र बड़े पराक्रमी हुए। किन्तु किसीको किसीसे प्रेम नहीं था। द्वेषके कारण उनमें परस्पर शत्रुता ठनी रहती थी और वे सभी शूरवीर थे। पर मायाके अत्यन्त प्रभाववश वे सदा मोहमें पड़े रहते थे ॥३८॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

(राजा शर्यातिकी कथा) जनमेजयने कहा—हे महाभाग ! अब आप राजाओंके वंशका वृत्तान्त विस्तारपूर्वक सुनानेकी कृपा कीजिये। धर्मके पूर्णवेत्ता सूर्यवंशी राजाओंकी वंशावलीका विशदरूपसे वर्णन करिये ॥१॥ व्यासजी बोले—हे भारत ! ऋषिसत्तम नारदजीके मुखसे मैं जो सुन चुका हूँ, उसीके अनुसार सूर्यवंशका वर्णन करता हूँ। ध्यानपूर्वक सुनिए ॥ २ ॥ एक समयकी बात है, श्रीमान् नारदजी स्वेच्छापूर्वक विचरण करते हुए सरस्वती नदीके पावन तटपर पधारे। वहीं एक पवित्र आश्रमपर मैं रहता था ॥ ३ ॥ मैंने सामने उपस्थित हो और सिर झुकाकर उनके चरणोंमें प्रणाम किया। बैठनेके लिए सामने आसन बिछा दिया और आदरपूर्वक मुनिकी पूजा की ॥ ४ ॥ विधिवत् पूजा करनेके पश्चात् मैंने उनसे कहा—'मुनिवर ! आप मेरे परम पूज्य हैं। आपके यहाँ पधारनेसे मैं पवित्र हो गया ॥ ५ ॥ हे मुने ! आपसे कोई बात छिपी नहीं हैं। इन सातवें मनुके वंशमें जो विख्यात राजे हो चुके हैं, उनके चरित्रसे सम्बन्ध रखनेवाली पवित्र कथा सुनाइये ॥ ६ ॥ क्योंकि उनकी उत्पत्तिकी कथायें और चरित्र अद्भुत हैं। अतएव हे ब्रह्मन् ! मैं सूर्यवंशका सविस्तर

जनमेजय उवाच ॥ ममाख्याहि महाभाग राज्ञां वंशं सुविस्तरम् ॥ सूर्यान्वयप्रसूतानां धर्मज्ञानां विशेषतः ॥ १ ॥ व्यास उवाच ॥ शृणु भारत वक्ष्यामि रविवंशस्य विस्तरम् ॥ यथा श्रुतं मया पूर्वं नारदादृषिसत्तमात् ॥ २ ॥ एकदा नारदः श्रीमान्सरस्वत्यास्तटे शुभे ॥ आजगामाश्रमे पुण्ये विचरन्स्वेच्छया मुनिः ॥ ३ ॥ प्रणम्य शिरसा पादौ तस्याग्रे संस्थितस्तदा ॥ ततस्तस्यासनं दत्त्वा कृत्वाऽर्हणमथादरात् ॥ ४ ॥ विधिवत्पूजयित्वा तमुक्तवान्वचनं त्विदम् ॥ पावितोऽहं मुनिश्रेष्ठ पूज्यस्यागमनेन वै ॥ ५ ॥ कथां कथय सर्वज्ञ राज्ञां चरितसंयुताम् ॥ राजानो ये समाख्याताः सप्तमेऽस्मिन्मनोः कुले ॥ ६ ॥ तेषामुत्पत्तिरतुला चरितं परमाद्भुतम् ॥ श्रोतुकामोऽस्म्यहं ब्रह्मन्सूर्यवंशस्य विस्तरम् ॥ ७ ॥ ममाख्याहि मुनिश्रेष्ठ समासव्यासपूर्वकम् ॥ इति पृष्टो मया राजन्नारदः परमार्थवित् ॥ ८ ॥ उवाच प्रहसन्प्रीतः समाभाष्य मुदाऽन्वयम् ॥ नारद उवाच ॥ शृणु सत्यवतीसूनो राज्ञां वंशमनुत्तमम् ॥ ९ ॥ पावनं कर्णसुखदं धर्मज्ञानादिभिर्युतम् ॥ ब्रह्मा पूर्वं जगत्कर्ता नाभिपंकजसम्भवः ॥१०॥ विष्णोरिति पुराणेषु प्रसिद्धः परिकीर्तितः ॥ सर्वज्ञः सर्वकर्ताऽसौ स्वयंभूः सर्वशक्तिमान् ॥११॥ तपस्तप्त्वा स विश्वात्मा वर्षाणामयुतं पुरा ॥ सृष्टिकामः शिवां ध्यात्वा प्राप्य शक्तिमनुत्तमाम् ॥१२॥ पुत्रानुत्पादयामास मानसाञ्शुभलक्षणान् ॥ मरीचिः प्रथितस्तेषामभवत्सृष्टिकर्मणि ॥ १३ ॥ तस्य पुत्रोऽतिविख्यातः

वर्णन सुनना चाहता हूँ ॥ ७ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ नारद ! संक्षिप्त या विस्तृत जिस रूपमें आप चाहें, मुझे यह वृत्तान्त सुनाइए। हे राजन् ! मेरे ऐसा कहनेपर परमार्थके विज्ञ नारद हँसकर बड़ी प्रसन्नतापूर्वक बोले। नारदजी कहते हैं—हे सत्यवतीनन्दन व्यासजी ! राजाओंकी अत्यन्त उत्तम वंशावली सुनो ॥ ८ ॥ ९ ॥ कानोंको सुख पहुँचानेवाला यह प्रसंग धर्म और ज्ञान आदिसे सम्पन्न है। पुराणोंमें ऐसी कथा प्रसिद्ध है कि सर्वप्रथम भगवान् विष्णुके नाभिकमलसे जगत्स्रष्टा ब्रह्माजी प्रकट हुए। सम्पूर्ण जगत्के रचयिता स्वयम्भू ब्रह्माजी सर्वज्ञानी एवं सर्वशक्तिसम्पन्न थे ॥ १० ॥ ११ ॥ सृष्टि करनेके विचारसे उन विश्वात्मा विभुने पहले श्रेष्ठ शक्तिकी आधारभूता भगवती जगदम्बाका ध्यान करते हुए दस हजार वर्षोंतक तप किया ॥१२॥ तदनन्तर उन्होंने उत्तम लक्षणवाले मानस-पुत्रोंको प्रकट किया। उन मानस पुत्रोंमें सर्वप्रथम मरीचि प्रकट हुए ॥१३॥ मरीचिसे परम प्रसिद्ध कश्यपजीका

जन्म हुआ। दक्ष-प्रजापतिकी तेरह कन्याएँ उन कश्यपजीकी पत्नी हुईं ॥ १४ ॥ देवता, दानव, यक्ष, सर्पगण, पशु और पक्षी—सब उन्हींसे उत्पन्न हुए। अतएव यह 'काश्यपी सृष्टि' कही जाती है ॥१५॥ देवताओंमें श्रेष्ठ सूर्य हुए। उन्हींका नाम विवस्वान् भी है। उन्हींके पुत्र वैवस्वत मनुको जगत्का शासनकार्य सौंपा गया ॥१६॥ वैवस्वत मनुसे सूर्यवंशकी वृद्धि करनेमें परम कुशल इक्ष्वाकु उत्पन्न हुए। फिर उनके नौ भाई और जायमान हुए ॥१७॥ हे राजेन्द्र ! उन भाइयोंका नाम बतलाता हूँ, एकाग्रचित्त होकर सुनो। वे थे—इक्ष्वाकु, नाभाग, धृष्ट, शर्याति, नरिष्यन्त, प्रांशु, नृग, करूष और पृषध्न। ये ही नौ 'मनुपुत्र' नामसे विख्यात हैं ॥ १८ ॥ १९ ॥ इन मनुपुत्रोंमें सर्वप्रथम इक्ष्वाकुका जन्म हुआ था। अतएव वे सबसे बड़े कहे जाते हैं। इक्ष्वाकुके सौ पुत्र हुए। उन सबमें आत्मज्ञानी विकुक्षि श्रेष्ठ माने जाते हैं ॥ २० ॥ मनुके वे नवों पुत्र बड़े शूरवीर थे। मनुके पश्चात् उनके पुत्रोंकी जो वंशावली बढ़ी, उसका संक्षेपमें

कश्यपः सर्वसम्मतः ॥ त्रयोदशैव तस्यासन्भार्या दक्षसुताः किल ॥ १४ ॥ देवाः सर्वे समुत्पन्ना दैत्या यक्षाश्च पन्नगाः ॥ पशवः पक्षिणश्चैव तस्मात्सृष्टिस्तु काश्यपी ॥ १५ ॥ देवानां प्रथितः सूर्यो विवस्वान्नाम तस्य तु ॥ तस्य पुत्रः स विख्यातो वैवस्वतमनुर्नृप ॥ १६ ॥ तस्य पुत्रस्तथेक्ष्वाकुः सूर्यवंशविवर्धनः ॥ नवाभवन्सुतास्तस्य मनोरिक्ष्वाकुपूर्वजाः ॥ १७ ॥ तेषां नामानि राजेन्द्र शृणुष्वैकमनाः पुनः ॥ इक्ष्वाकुरथ नाभागो धृष्टः शर्यातिरेव च ॥१८॥ नरिष्यन्तस्तथा प्रांशुर्नृगो दिष्टश्च सप्तमः ॥ करूषश्च पृषध्रश्च नवैते मानवाः स्मृताः ॥ १९ ॥ इक्ष्वाकुस्तु मनोः पुत्रः प्रथमः समजायत ॥ तस्य पुत्रशतं चासीज्ज्येष्ठो विकुक्षिरात्मवान् ॥ २० ॥ नवानां वंशविस्तारं संक्षेपेण निशामय ॥ शूराणां मनुपुत्राणां मनोरंतरजन्मनाम् ॥२१॥ नाभागस्य तु पुत्रोऽभूदंबरीषः प्रतापवान् ॥ धर्मज्ञः सत्यसंधश्च प्रजापालनतत्परः ॥ २२ ॥ धृष्टात्तु धार्ष्टकं क्षत्रं ब्रह्मभूतमजायत ॥ संग्रामकातरं सम्यग्ब्रह्मकर्मरतं तथा ॥ २३ ॥ शर्यातेस्तनयश्चाभूदानर्तो नाम विश्रुतः ॥ सुकन्या च तथा पुत्री रूपलावण्यसंयुता ॥ २४ ॥ च्यवनाय सुता दत्ता राज्ञाऽप्यंधाय सुन्दरी ॥ मुनिः सुलोचनो जातस्तस्याः शीलगुणेन ह ॥ २५ ॥ विहितो रविपुत्राभ्यामश्विभ्यामिति नः श्रुतम् ॥ जनमेजय उवाच ॥ संदेहोऽयं महान्ब्रह्मन्कथायां कथितस्त्वया ॥२६॥ यद्राज्ञा मुनयेऽन्धाय दत्ता पुत्री सुलोचना ॥ कुरूपा गुणहीना वा नारी लक्षणवर्जिता ॥२७॥ पुत्री यदा भवेद्राजा तदांधाय प्रयच्छति ॥ ज्ञात्वाऽन्धं सुमुखीं कस्माद्दत्तवान्न-

वर्णन करता हूँ ॥ २१ ॥ नाभागके पुत्र परम प्रतापी अम्बरीष हुए। ये धर्मज्ञानी, सत्यवादी और प्रसिद्ध प्रजापालक थे ॥ २२ ॥ धृष्टसे धार्ष्टका जन्म हुआ। धार्ष्ट क्षत्रिय होते हुए भी ब्राह्मण बन गये। अतः संग्राम-विषयक उत्साह उनके हृदयसे जाता रहा। उनके द्वारा सम्यक् प्रकारसे ब्राह्मणका कर्म होने लगा ॥२३॥ शर्यातिसे आनर्तका जन्म हुआ, जिनका नाम सभी जानते हैं। सुकन्या नामकी एक परम सुन्दरी पुत्री भी उत्पन्न हुई ॥ २४ ॥ राजा शर्यातिने अपनी उस सुन्दरी कन्याका विवाह नेत्रहीन च्यवन मुनिके साथ कर दिया। बादमें उसी कन्याके शील और गुणके प्रभावसे मुनिको आँखें प्राप्त हो गयीं। सूर्यनन्दन अश्विनीकुमारोंने मुनिको नेत्र प्रदान किये थे। राजा जनमेजयने कहा—ब्रह्मन् ! आपने इस कथाके प्रसंगमें जो यह बात कही कि राजा शर्यातिने अन्धे मुनिके साथ अपनी सुलोचना कन्याका विवाह कर दिया। सो यह विषय बहुत संदेह उत्पन्न कर रहा है। उनकी वह कन्या कुरूप, गुणहीन और

शुभ लक्षणोंसे रहित होती, तब तो उसका सम्बन्ध राजा एक अन्धेके साथ कर भी सकते थे। परन्तु ऐसी परम सुन्दरी कन्याका विवाह च्यवन मुनिको नेत्रहीन जानते हुए भी उनके साथ कैसे कर दिया ? हे ब्रह्मन् ! मुझे इसका कारण बतानेकी कृपा करें। सूतजी कहते हैं—हे परीक्षितनन्दन राजा जनमेजयकी बात सुनकर व्यासजी कहने लगे। व्यासजी बोले—हे राजन् ! वैवस्वत मनुके पुत्रका नाम श्रीमान् राजा शर्याति था ॥ २५–३० ॥ उनके चार हजार भार्याएँ थीं। वे सभी रानियाँ अत्यन्त सुन्दरी एवं सम्पूर्ण शुभ लक्षणोंमेंसे सम्पन्न थीं ॥ ३१ ॥ उन सबके बीचमें एक परम सुन्दरी कन्या थी। उसका नाम था—सुकन्या ॥ ३२ ॥ वह कन्या पिता तथा समस्त माताओंके लिये अत्यन्त स्नेहपात्र थी। नगरसे थोड़ी दूरपर मानसरोवरकी तुलना करनेवाला एक सुन्दर सरोवर था ॥ ३३ ॥ उसमें उतरनेके लिए सीढ़ियाँ बँधी थीं। वह निर्मल जलसे परिपूर्ण था। हंस और चक्रवाक उसकी अनुपम शोभा बढ़ा रहे थे। जलकाक

पसत्तमः ॥ २८ ॥ कारणं ब्रूहि मे ब्रह्मन्ननुग्राह्योऽस्मि सर्वदा ॥ सूत उवाच ॥ इति राज्ञो वचः श्रुत्वा परीक्षितसुतस्य वै ॥ २९ ॥ द्वैपायनः प्रसन्नात्मा तमुवाच हसन्निव ॥ व्यास उवाच ॥ वैवस्वतसुतः श्रीमाञ्छर्यातिर्नाम पार्थिवः ॥ ३० ॥ तस्य स्त्रीणां सहस्राणि चत्वार्यासन्परिग्रहाः ॥ राजपुत्र्यः सरूपाश्च सर्वलक्षणसंयुताः ॥ ३१ ॥ पत्न्यः प्रेमयुताः सर्वाः प्रिया राज्ञः सुसंमताः ॥ एका पुत्री तु तासां वै सुकन्या नाम सुन्दरी ॥ ३२ ॥ पितुः प्रिया च मातॄणां सर्वासां चारुहासिनी ॥ नगरान्नातिदूरेऽभूत्सरो मानससन्निभम् ॥ ३३ ॥ बद्धसोपानमार्गं च स्वच्छपानीयपूरितम् ॥ हंसकारंडवाकीर्णं चक्रवाकोपशोभितम् ॥ ३४ ॥ दात्यूहसारसाकीर्णं सर्वपक्षिगणावृतम् ॥ पंचधा कमलोपेतं चंचरीकसुसेवितम् ॥ ३५ ॥ पार्श्वतश्च द्रुमाकीर्णं वेष्टितं पादपैः शुभैः ॥ सालैस्तमालैः सरलैः पुन्नागाशोकमंडितम् ॥ ३६ ॥ वटाश्वत्थकदंबैश्च कदलीखंडराजितम् ॥ जंबीरैर्बीजपूरैश्च खर्जूरैः पनसैस्तथा ॥३७॥ क्रमुकैर्नारिकेलैश्च केतकैः कांचनद्रुमैः ॥ यूथिकाजालकैः शुभ्रैः संवृतं मल्लिकागणैः ॥३८॥ जंब्वाम्रतिंतिणीभिश्च करंजकुटजावृतम् ॥ पलाशनिंबखदिरबिल्वामलकमंडितम् ॥ ३९ ॥ बभूव कोकिलारावः केकास्वनविराजितम् ॥ तत्समीपे शुभे देशे पादपानां गणावृते ॥ ४० ॥ भार्गवश्च्यवनः शान्तस्तापसः संस्थितो मुनिः ॥ ज्ञात्वाऽसौ विजनं स्थानं तपस्तेपे समाहितः ॥ ४१ ॥

और सारस आदि पक्षियोंसे उस तालाबका सारा भाग भरा रहता था। उसमें पाँच प्रकारके कमल खिले रहते थे। बहुत-से सुन्दर वृक्ष उस सरोवरके तटको घेरे हुए थे ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ माखू, तमाल, देवदारु, जायफल और अशोकके वृक्ष उस स्वच्छ सरोवरको भली भाँति अलंकृत कर रहे थे ॥ ३६ ॥ वट, पीपल, कदम्ब, केला, नीबू, अनार, खजूर, कटहल, सुपारी, नारियल, केतकी, कचनार, जूही और मालती आदि सुन्दर एवं स्वच्छ वृक्षोंसे वह सम्यक् प्रकारसे सम्पन्न था ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ जामुन, आम, तिन्तिणी, करंज, कौरैया, पलाश, नीम, खैर और बेल आदिके वृक्षोंसे उसकी शोभा बढ़ रही थी ॥ ३९ ॥ कोकिलों और मोरोंकी ध्वनिसे वह बड़ा सुन्दर जान पड़ता था। उस सरोवरके बिल्कुल पासमें ही वृक्षोंसे घिरे हुए एक पवित्र स्थानपर च्यवन मुनि निवास करते थे। उन तपस्वी मुनिके चित्तमें सदा शान्ति बनी रहती थी। उस स्थानको निर्जन समझकर उन्होंने मनको

एकाग्र करके तपस्या आरम्भ कर दी थी ॥ ४० ॥ ४१ ॥ वे आसन जमाकर बैठे थे। उन्होंने मौन धारण कर रखा था। प्राणोंपर उनका पूरा अधिकार था। सभी इन्द्रियाँ उनके वशमें थीं। उन तपोनिधिने भोजन भी बंद कर दिया था ॥ ४२ ॥ वे निर्जल रहकर भगवती जगदम्बाका ध्यान करते थे। हे राजन्! उनके शरीरपर चारों ओरसे लताएँ लस गयी थीं। दीमकोंने उनपर अपना घर बना लिया था ॥४३॥ हे राजन्! बहुत दिनोंतक यों बैठे रहनेके कारण चींटियाँ भी उनपर चढ़ गयी थीं और उनसे वे घिर गये थे। ऐसा जान पड़ता था कि वे मानो केवल मिट्टीके ढूह हों ॥४४॥ हे राजन्! एक समयकी बात है—राजा शर्याति अपनी रानियोंके साथ विहार करनेके लिए उस श्रेष्ठ स्थानपर आये ॥४५॥ सरोवरका जल सर्वथा स्वच्छ था। कमल खिले हुए थे। अतएव राजा शर्याति सुन्दरियोंको साथ लेकर जलक्रीड़ा करने लगे ॥ ४६ ॥ लक्ष्मीकी तुलना करनेवाली सुकन्या बालसुलभ चपलताके कारण अपनी सखियोंके साथ वनमें जाकर पुष्प तोड़ती हुई घूमने लगी ॥४७॥ इधर-उधर चक्कर काटती हुई वह राजकुमारी च्यवन मुनिके निकट पहुँच गयी। मुनिका शरीर दीमकोंका घर बन गया था। उसीके

कृत्वा दृढासनं मौनमाधाय जितमारुतः ॥ इन्द्रियाणि च संयम्य त्यक्ताहारस्तपोनिधिः ॥ ४२ ॥ जलपानादिरहितो ध्यायन्नास्ते परांबिकाम् ॥ सवल्मीकोऽभवद्राजँल्लताभिः परिवेष्टितः ॥ ४३ ॥ कालेन महता राजन्समाकीर्णः पिपीलिकैः ॥ तथा स संवृतो धीमान्मृत्पिंड इव सर्वतः ॥ ४४ ॥ कदाचित्स महीपालः कामिनीगणसंवृतः ॥ आजगाम सरो राजन्विहर्तुमिदमुत्तमम् ॥४५॥ शर्यातिः सुन्दरीवृंदसंयुतः सलिलेऽमले ॥ क्रीडासक्तो महीपालो बभूव कमलाकरे ॥ ४६ ॥ सुकन्या वनमासाद्य विजहार सखीवृता ॥ सुमनांसि विचिन्वंती चञ्चला चञ्चलोपमा ॥ ४७ ॥ सर्वाभरण-संयुक्ता रणच्चरणनूपुरा ॥ चंक्रममाणा वल्मीकं च्यवनस्य समाददत् ॥ ४८ ॥ क्रीडासक्तोपविष्टा सा वल्मीकस्य समीपतः ॥ ददर्श चास्य रंध्रे वै खद्योत इव ज्योतिषी ॥ ४९ ॥ किमेतदिति संचिन्त्य समुद्धर्तुं मनो दधे ॥ गृहीत्वा कंटकं तीक्ष्णं त्वरमाणा कृशोदरी ॥ ५० ॥ सा दृष्टा मुनिना बाला समीपस्था कृतोद्यमा ॥ विचरंती सुकेशांता मन्मथस्येव कामिनी ॥ ५१ ॥ तां वीक्ष्य सुदतीं तत्र क्षामकंठस्तपोनिधिः ॥ तामभाषत कल्याणीं किमेतदिति भार्गवः ॥५२॥ दूरं गच्छ विशालाक्षि तापसोऽहं वरानने ॥ मा भिंदस्वाद्य वल्मीकं कंटकेन कृशोदरि ॥ ५३ ॥ तेनेदं प्रोच्यमानाऽपि सा चास्य न शृणोति वै ॥ किमु खल्विदमित्युक्त्वा निर्बिभेदास्य लोचने ॥ ५४ ॥ दैवेन नोदिता भित्त्वा जगाम नृपकन्यका ॥ क्रीडंती शंकमाना

समीप सुकन्या खेल रही थी। सहसा उसे वल्मीकके छिद्रसे जुगुनूकी भाँति चमकनेवाली दो ज्योतियाँ दिखाई पड़ीं ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ यह क्या है—ऐसी जिज्ञासा उठनेपर उस सुन्दरी राजकुमारीके मनमें आया कि आवरण हटाकर देखा जाय। फिर तो तुरन्त ही एक नोकदार काँटा लेकर उससे वह ऊपरकी मिट्टी हटाने लगी ॥ ५० ॥ अब पास आकर उद्यम करनेवाली उस कन्यापर मुनिकी दृष्टि पड़ी। वह रति जैसी सुन्दरी राजकुमारी च्यवन मुनिके देखनेमें आ गयी ॥ ५१ ॥ अन्न और जलका परित्याग कर देनेसे परम तपस्वी मुनिवर च्यवनका शरीर अत्यन्त क्षीण हो चुका था। कल्याणी सुकन्याको देखकर वे उससे कहने लगे—॥ ५२ ॥ 'हे सुन्दरी! दूर चली जाओ। मैं एक तपस्वी हूँ। इस दीमककी मिट्टीको काँटेसे हटाना ठीक नहीं है।' ॥ ५३ ॥ मुनिके यह कहनेपर भी राजकुमारी उनकी बातें नहीं सुन सकी। यह कौन-सी अद्भुत वस्तु झलक रही है—यह कहकर उसने काँटेसे मुनिके नेत्र फोड़ दिये ॥५४॥

दैवकी प्रेरणासे खेल-ही-खेलमें राजकुमारीके द्वारा यह अप्रिय घटना घट गयी। तदनन्तर सशंकभावसे खेलती और 'मैंने यह क्या कर डाला' ऐसा सोचती हुई सुकन्या वहाँसे चली आयी। इस प्रकार आँखें फूट जानेसे महर्षि च्यवनको बड़ा क्रोध आया और बड़ी तीव्र वेदना हुई ॥५५॥५६॥ फिर तो उसी क्षणसे राजाके समस्त सैनिकोंका मल-मूत्र बन्द हो गया। मन्त्रीसहित राजापर भी यह कष्ट छा गया। यहाँतक कि हाथी, घोड़े और ऊँट आदि जितने प्राणी थे, सभी इस व्याधिसे ग्रस्त हो गये। ऐसी स्थितिमें राजा शर्याति बहुत दुखी हुए ॥५७॥५८॥ तब उन्होंने इस कष्टके कारणपर विचार किया। कुछ समय विचार करनेके पश्चात् राजा घरपर आये और अपने परिजनों तथा सैनिकोंसे अत्यन्त आतुर होकर पूछने लगे—'किसके द्वारा यह अप्रिय कार्य हुआ है? उस तालाबके पश्चिमी तटवाले वनमें महान् तपस्वी मुनिवर च्यवन कठिन तपस्या कर रहे हैं ॥ ५९-६१ ॥ वे अग्निके समान तेजस्वी हैं। हो न हो, हममेंसे किसीके द्वारा

सा किं कृतं तु मयेति च ॥५५॥ चुक्रोध स तथा विद्धनेत्रः परममन्युमान् ॥ वेदनाभ्यर्दितः कामं परितापं जगाम ह ॥५६॥ शकृन्मूत्रनिरोधोऽभूत्सैनिकानां तु तत्क्षणात् ॥ विशेषेण तु भूपस्य सामात्यस्य समंततः ॥ ५७ ॥ गजोष्ट्रतुरगाणां च सर्वेषां प्राणिनां तदा ॥ ततो रुद्धे शकृन्मूत्रे शर्यातिर्दुःखितोऽभवत् ॥ ५८ ॥ सैनिकैः कथितं तस्मै शकृन्मूत्रनिरोधनम् ॥ चिंतयामास भूपालः कारणं दुःखसंभवे ॥ ५९ ॥ विचिंत्याह ततो राजा सैनिकान्स्वजनांस्तथा ॥ गृहमागत्य चिंतार्तः केनेदं दुष्कृतं कृतम् ॥ ६० ॥ सरसः पश्चिमे भागे वनमध्ये महातपाः ॥ च्यवनस्तापसस्तत्र तपश्चरति दुश्चरम् ॥ ६१ ॥ केनाप्यपकृतं तत्र तापसेऽग्निसमप्रभे ॥ तस्मात्पीडा समुत्पन्ना सर्वेषामिति निश्चयः ॥ ६२ ॥ तपोवृद्धस्य वृद्धस्य वरिष्ठस्य विशेषतः ॥ केनाप्यपकृतं मन्ये भार्गवस्य महात्मनः ॥ ६३ ॥ ज्ञातं वा यदि वाऽज्ञातं तस्येदं फलमुत्तमम् ॥ कैश्च दुष्टैः कृतं तस्य हेलनं तापसस्य ह ॥६४॥ इति पृष्टास्तमूचुस्ते सैनिका वेदनार्दिताः ॥ मनोवाक्कायजनितं न विद्मोऽपकृतं वयम् ॥६५॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

॥ व्यास उवाच ॥ इति पप्रच्छ तान्सर्वान्राजा चिंताकुलस्तथा ॥ पर्यपृच्छत्सुहृद्वर्गं साम्ना चोग्रतयाऽपि च ॥ १ ॥ पीड्यमानं जनं वीक्ष्य

उन्हींका कोई अपकार हो गया है। इसीसे सबके शरीरमें ऐसी व्याधि उत्पन्न हो गयी है—यह बिल्कुल निश्चित है ॥ ६२ ॥ भृगुनन्दन महात्मा च्यवन परम वृद्ध एवं विशिष्ट आदरणीय पुरुष हैं। मेरी समझसे अवश्य ही किसीने उनका अनिष्ट कर दिया है ॥ ६३ ॥ यह अनिष्ट जानकर किया गया हो अथवा अनजानमें, इसका फल तो भोगना ही पड़ेगा। समझमें नहीं आता कि किन दुष्टोंने उनका अपमान किया है ॥६४॥ राजाके यों कहनेपर दुःखसे घबराये हुए सैनिकोंने कहा—'मन-वाणी और कर्म द्वारा हमसे मुनिका कोई अपकार हुआ है, इसे हम बिल्कुल नहीं जानते' ॥ ६५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

(च्यवनके साथ सुकन्याका विवाह) व्यासजी बोले—हे राजन्! राजा शर्याति अत्यन्त चिन्तित हो उठे थे। इस प्रकार शान्ति तथा उग्रतापूर्वक सबसे पूछनेके पश्चात्

उन्होंने बन्धु-मण्डलसे पूछा। सारी जनता तथा पिताजीको भी दुखी देखकर राजकुमारी सुकन्याने विचार किया कि मेरे द्वारा उन छेदोंमें सुई चुभा दी गयी थी, यही कारण हो सकता है। अतः उसने कहा—॥ १ ॥ २ ॥ हे पिताजी ! मैं उस वनमें खेल रही थी। वहीं मिट्टीका एक बहुत बड़ा ढूहा-सा दिखायी पड़ा। उसके चारों ओर लताएँ फैली थीं। उसमें दो छिद्र दृष्टिगोचर हो रहे थे ॥ ३ ॥ उन छेदोंमेंसे बड़ा प्रकाश निकल रहा था। हे महाराज ! मैंने जुगनू समझकर कौतूहलवश उन छिद्रोंमें सुई चुभो दी ॥४॥ हे पिताजी ! उस समय मैंने देखा, वह सूई जलसे भींग गयी थी। साथ ही उन वल्मीकमेंसे 'हा हा' की धीमी आवाज भी मुझे सुनायी दी ॥५॥ हे पिताजी ! तब मैं बड़े आश्चर्यमें पड़ गयी। यह क्या हो गया—इस शंकासे मेरा हृदय भर आया। पता नहीं, मेरे द्वारा उस वल्मीकमें कौन-सी वस्तु छिद गयी थी ॥ ६ ॥ राजा शर्याति सुकन्याकी यह कोमल वाणी सुनकर समझ गये कि मुनिकी यही अवहेलना हुई है। अब वे तुरन्त बाल्मीकके पास जा पहुँचे ॥ ७ ॥ वहाँ उन्होंने महान् कष्टमें पड़े हुए परम तपस्वी च्यवन ऋषिको देखा। मुनिके शरीरपर दीमककी मिट्टी चढ़ी हुई थी।

पितरं दुःखितं तथा ॥ विचित्य शूलभेदं सा सुकन्या चेदमब्रवीत् ॥ २ ॥ वने मया पितस्तत्र वल्मीको वीरुधावृतः ॥ क्रीडंत्या सुदृढो दृष्टश्छिद्र-द्वयमन्वितः ॥ ३ ॥ तत्र खद्योतवद्दीप्तज्योतिषी वीक्षिते मया ॥ सूच्या विद्धे महाराज पुनः खद्योतशंकया ॥ ४ ॥ जलक्लिन्ना तदा सूची मया दृष्टा पितः किल ॥ हाहेति च श्रुतः शब्दो मंदो वल्मीकमध्यतः ॥ ५ ॥ तदाऽहं विस्मिता राजन्किमेतदिति शंकया ॥ न जाने किं मया विद्धं तस्मिन्वल्मीकमंडले ॥ ६ ॥ राजा श्रुत्वा तु शर्यातिः सुकन्यावचनं मृदु ॥ मुनेस्तद्धेलनं ज्ञात्वा वल्मीकं क्षिप्रमभ्यगात् ॥७॥ तत्रापश्यत्तपोवृद्धं च्यवनं दुःखितं भृशम् ॥ स्फोटयामास वल्मीकं मुनिदेहावृतं भृशम् ॥ ८ ॥ प्रणम्य दंडवद्भूमौ राजा तं भार्गवं प्रति ॥ तुष्टाव विनयोपेतस्तमुवाच कृतांजलिः ॥ ९ ॥ पुत्र्या मम महाभाग क्रीडंत्या दुष्कृतं कृतम् ॥ अज्ञानाद्बालया ब्रह्मन्कृतं तत्क्षंतुमर्हसि ॥१०॥ अक्रोधना हि मुनयो भवंतीति मया श्रुतम् ॥ तस्मात्त्वमपि बालायाः क्षंतुमर्हसि सांप्रतम् ॥ ११ ॥ व्यास उवाच ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य च्यवनो वाक्यमब्रवीत् ॥ विनयोपनतं दृष्ट्वा राजानं दुःखितं भृशम् ॥ १२ ॥ व्यास उवाच ॥ राजन्नाहं कदाचिद्धि करोमि क्रोधमण्वपि ॥ न मयाऽद्यैव शप्तस्त्वं दुहित्रा पीडने कृते ॥ १३ ॥ नेत्रे पीडा समुत्पन्ना मम चाद्य निरागसः ॥ तेन पापेन जानामि दुःखितस्त्वं महीपते ॥ १४ ॥ अपराधं परं कृत्वा देवीभक्तस्य

उन्होंने उसे धीरेसे दूर हटाया और धरतीपर लौटकर मुनिको साष्टाङ्ग प्रणाम किया, उनकी स्तुति की और नम्रतापूर्वक हाथ जोड़कर कहने लगे—॥८॥९॥ हे महाभाग ! मेरी कन्या खेल रही थी। उसीके द्वारा यह भारी दुष्कर्म हो गया है। हे ब्रह्मन् ! वह बिल्कुल अबोध बालिका है। उसने अज्ञानवश ऐसा कर दिया है। आप उसके इस अपराधको क्षमा कर दें ॥ १० ॥ मुनियोंका स्वभाव ही क्षमा करना है—मैंने यह सुन रखा है। अतः आप भी इस बालिकाका अपराध क्षमा कीजिये ॥११॥ व्यासजी बोले—हे राजन् ! राजा शर्याति अत्यन्त दुखी होकर नम्रतापूर्वक सामने खड़े थे। उनकी बात सुनकर च्यवन मुनि यह वचन बोले ॥ १२ ॥ च्यवन मुनिने कहा—हे राजन् ! मैं कभी किञ्चिन्मात्र क्रोध नहीं करता। यद्यपि तुम्हारी पुत्रीने मुझे बड़ा कष्ट पहुँचाया है, परन्तु मैंने उसे कोई नहीं शाप दिया ॥१३॥ हे महीपते ! मुझ निरपराध व्यक्तिकी आँखोंमें बड़ी पीड़ा हो रही है। मैं जानता हूँ, इस नीच कर्मके प्रभावसे तुमपर

मुझे बड़ा कष्ट पहुँचाया है, परन्तु मैंने उसे कोई नहीं शाप दिया ॥१३॥ हे महीपते ! मुझ निरपराध व्यक्तिको आँखोंमें बड़ी पीड़ा हो रही है ! मैं जानता हूँ, इस मेरे कर्मके प्रभावसे

संकट आ गया है ॥ १४ ॥ ठीक ही है, देवीभक्तके प्रति घोर अपराध करके कौन व्यक्ति सुखी रह सकता है ? यदि स्वयं शंकरजी उसके रक्षक हों, तब भी उसका सुखी रहना असम्भव है ॥ १५ ॥ हे राजन् ! मैं क्या करूँ ? मेरी आँखोंने जवाब दे दिया । मुझे बुढ़ापा घेरे हुए है । हे भूपाल ! अब मुझ अन्धेकी सेवा कौन करेगा ? ॥१६॥ राजा शर्यातिने कहा—हे मुनिवर ! बहुतसे सेवक रात-दिन आपकी सेवामें उपस्थित रहेंगे । आप अपराध क्षमा करें । कारण, तपस्वीजन अल्पक्रोधी होते हैं ॥१७॥ च्यवनजी बोले—हे राजन् ! मैं नेत्रहीन हो अकेले रहकर अपनी तपस्यामें सफलता कैसे पा सकता हूँ ? तुम्हारे सेवक मेरी मनचाही बातें कैसे कर सकेंगे ? ॥ १८ ॥ हे राजन् ! यदि तुम मुझे क्षमा करनेके लिए कहते हो तो मेरी बात मानो । तुम अपनी कनलनयनी कन्याको मेरी सेवाके लिए मुझे सौंप दो ॥ १९ ॥ हे महाराज ! मैं तुम्हारी उस कन्यापर प्रसन्न हूँ । उसके साथ रहकर मैं तपस्या करूँगा और वह मेरी सेवामें लगी रहेगी ॥२०॥ हे राजन् ! ऐसा करनेसे मैं और तुम—दोनों ही सुखी हो सकते हैं । मेरे सन्तुष्ट हो जानेपर आपके सारे सैनिक भी सुखसे समय व्यतीत करेंगे—इसमें कोई संशय

को जनः ॥ सुखं लभेत यदपि भवेत्त्राता शिवः स्वयम् ॥१५॥ किं करोमि महीपाल नेत्रहीनो जरावृतः ॥ अन्धस्य परिचर्यां च कः करिष्यति पार्थिव ॥ १६ ॥ राजोवाच ॥ सेवका बहवः सेवां करिष्यंति तवानिशम् ॥ क्षमस्व मुनिशार्दूल स्वल्पक्रोधा हि तापसाः ॥१७॥ च्यवन उवाच ॥ अन्धोऽहं निर्जनो राजँस्तपस्तप्तुं कथं क्षमः ॥ त्वदीयाः सेवकाः किं ते करिष्यंति मम प्रियम् ॥ १८ ॥ क्षमापयसि चेन्मा त्वं कुरु मे वचनं नृप ॥ देहि मे परिचर्यार्थं कन्यां कमललोचनाम् ॥ १९ ॥ तुष्येऽनया महाराज पुत्र्या तव महामते ॥ करिष्यामि तपश्चाहं सा मे सेवां करिष्यति ॥२०॥ एवं कृते सुखं मे स्यात्तव चैव भविष्यति ॥ संतुष्टे मयि राजेन्द्र सैनिकानां न संशयः ॥२१ ॥ विचिंत्य मनसा भूप कन्यादानं समाचर ॥ न चात्र दूषणं किंचित्तापसोऽहं यतव्रतः ॥२२॥ शर्यातिर्वचनं श्रुत्वा मुनेश्चिन्तातुरोऽभवत् ॥ न दास्येऽप्यथवा दास्ये किंचिन्नोवाच भारत ॥२३॥ कथमंधाय वृद्धाय कुरूपाय सुतामिमाम् ॥ देवकन्योपमां दत्त्वा सुखी स्यामात्मसंभवाम् ॥२४॥ को वाऽऽत्मनः सुखार्थाय पुत्र्याः संसारजं सुखम् ॥ हरतेऽल्पमतिः पापो जानन्नपि शुभाशुभम् ॥ २५ ॥ प्राप्य सा च्यवनं सुभ्रूः पञ्चबाणशरार्दिता ॥ अंधं वृद्धं पतिं प्राप्य कथं कालं नयिष्यति ॥ २६ ॥ यौवने दुर्जयः कामो विशेषेण सुरूपया ॥ आत्मतुल्यं पतिं प्राप्य किमु वृद्धं विलोचनम् ॥२७॥ गौतमं तापसं प्राप्य रूपयौवनसंयुता ॥ अहल्या

नहीं है ॥२१॥ ऐसा करनेसे तुम्हें कुछ भी दोष नहीं लगेगा । कारण, मैं संयमशील तपस्वी हूँ । अतएव सोचकर आप अपनी कन्या मुझे दे दीजिए ॥ २२ ॥ व्यासजी बोले—हे राजा जनमेजय ! च्यवन मुनिकी बात सुनकर राजा शर्याति चिन्तातुर हो गये । दूँगा अथवा नहीं दूँगा—यह कोई भी बात उस समय उनके मुखसे नहीं निकल सकी ॥ २३ ॥ सोचा—'ये मुनि अन्धे, बूढ़े और कुरूप हैं । इन्हें मैं देवकन्याकी तुलना करनेवाली अपनी कन्याको सौंपकर कैसे सुखी हो सकूँगा ? ॥ २४ ॥ भला, ऐसा मूर्ख एवं पापी कौन है, जो शुभाशुभ कर्मकी जानकारी रखते हुए भी स्वयं सुखी होनेके लिए अपनी पुत्रीके संसारजनित सुखपर आघात पहुँचानेको तत्पर हो जाय ? ॥ २५ ॥ इन अन्धे एवं बूढ़े च्यवन मुनिके समीप मेरी कामिनी कन्या किस प्रकार समय व्यतीत करेगी ॥२६॥ अपने जैसा सुन्दर पति पाकर भी यौवनावस्थामें विशेष करके रूपवती स्त्रीके लिए कामदेवपर काबू पाना बड़ा टेढ़ा काम होता

है, तब वृद्ध और अन्धे पतिको पाकर क्या दशा होगी ? ॥ २७ ॥ तपस्वी गौतम मुनिकी रूप-यौवनसम्पन्ना पत्नी अहल्याको इन्द्रने शीघ्र फाँस लिया था ॥ २८ ॥ जब मुनि गौतम-को यह बात मालूम हुई, तब उन्होंने अहल्याको शाप दे दिया। अतएव मुझे दुःख भले ही हो, किन्तु मैं अपनी सुकन्या इन मुनिको नहीं दे सकता ॥ २९ ॥ इस प्रकार विचार करनेके उपरान्त राजा शर्याति उदास होकर अपने घर लौट आये। उनके मनमें असीम संताप छाया हुआ था। उन्होंने मन्त्रियोंको बुलाकर परामर्श किया और उनसे पूछा—॥३०॥ हे मन्त्रियो ! तुम अब अपनी सम्मति प्रकट करो। इस अवसरपर मुझे क्या करना चाहिये। मुनिको कन्या दे दूँ अथवा दुःख ही सह लूँ ?' मन्त्रियोंने कहा—महाराज ! यह बड़े ही संकटकी समस्या सामने उपस्थित है। हम इस अवसरपर क्या कहें ? इस अभागे व्यक्तिको परम सुकुमारी सुकन्या देना कैसे उचित हो सकता है ? व्यासजी कहते हैं—तदनन्तर पिता तथा मन्त्रियोंको अत्यन्त चिन्तित देखकर सब रहस्य राजकुमारी सुकन्याकी समझमें आ गया। अतः वह हँसकर बोली—'पिताजी ! इस समय आप इतने चिन्तातुर क्यों हो रहे हैं ? ॥ ३१-३४ ॥ मैं

वासवेनाशु वंचिता वरवर्णिनी ॥ २८ ॥ शप्ता च पतिना पश्चाज्ज्ञात्वा धर्मविपर्ययम् ॥ तस्माद्भवतु मे दुःखं न ददामि सुकन्यकाम् ॥ २९ ॥
इति संचिंत्य शर्यातिर्विमनाः स्वगृहं ययौ ॥ सचिवाँश्च समादाय मंत्रं चक्रेऽतिदुःखितः ॥ ३० ॥ भो मंत्रिणो ब्रुवंत्वद्य किं कर्तव्यं मयाऽधुना ॥
पुत्री देयाऽथ विप्राय भोक्तव्यं दुःखमेव वा ॥ ३१ ॥ विचारयध्वं मिलिता हितं स्यान्मम वै कथम् ॥ मंत्रिण ऊचुः ॥ किं ब्रूमोऽस्मिन्महाराज
संकटेऽतिदुरासदे ॥ ३२ ॥ दुर्भगाय सुकन्यैषा कथं देयाऽतिसुन्दरी ॥ व्यास उवाच ॥ तदा चिंताकुलं वीक्ष्य पितरं मंत्रिणस्तथा ॥३३॥ सुकन्या
त्विङ्गितं ज्ञात्वा प्रहस्येदमुवाच ह ॥ पितः कस्माद्भवानद्य चिंताव्याकुलितेन्द्रियः ॥३४॥ मत्कृते दुःखसंविग्नो विषण्णवदनोऽसि वै ॥ अहं गत्वा
मुनिं तत्र समाश्वास्य भयार्दितम् ॥३५॥ करिष्यामि प्रसन्नं तमात्मदानेन वै पितः ॥ इति राजा वचः श्रुत्वा भाषितं यत्सुकन्यया ॥ ३६ ॥
तामुवाच प्रसन्नात्मा सचिवानां च शृण्वताम् ॥ कथं पुत्रि त्वमंधस्य परिचर्यां वनेऽबला ॥ ३७ ॥ करिष्यसि जरार्तस्य क्रोधनस्य विशेषतः ॥
कथमन्धाय चानेन रूपेण रतिसन्निभाम् ॥ ३८ ॥ ददामि जरया ग्रस्तदेहाय सुखवांछया ॥ पित्रा पुत्री प्रदातव्या वयोज्ञातिबलाय च ॥ ३९ ॥
धनधान्यसमृद्धाय नाधनाय कदाचन ॥ क्व ते रूपं विशालाक्षि क्वासौ वृद्धो वनेचरः ॥ ४० ॥ कथं देया मया पुत्री तस्मै चातिवराय च ॥

समझ गयी, आप मेरे लिये इतने दुखी एवं उदास हैं। पिताजी ! मैं भयसे घबराये हुए च्यवनमुनिके पास जाकर उन्हें आश्वासन दूँगी और आत्मदान करके उनको प्रसन्न करनेका प्रयत्न करूँगी ॥ ३५ ॥ सुकन्याकी बातें सुनकर राजा शर्यातिका हृदय द्रवित हो गया, साथ ही उनके मुखपर प्रसन्नताकी रेखा भी दौड़ गयी। मन्त्रियोंके समक्ष वे उससे कहने लगे—'बेटी ! तुम अत्यन्त सुकुमारी अबला कन्या वनमें उन अन्धे मुनिकी सेवा कैसे कर सकोगी ? ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ वे अत्यन्त बूढ़े और अत्यन्त क्रोधी भी हैं। भला, रूपमें रतिकी तुलना करनेवाली तुम जैसी कन्याका विवाह मैं उन अन्धे मुनिके साथ कैसे करूँ ? अपने सुखके लिए बुढ़ापेसे ग्रस्त शरीरवाले मुनिको तुम्हें सौंपना उचित नहीं है। पिताका कर्तव्य है कि अवस्था, जाति और बलमें समानता रखनेवाले एवं धनधान्यसे सम्पन्न सुयोग्य वरके साथ अपनी कन्याका विवाह करे। निर्धनके साथ सम्बन्ध करना कदापि उचित नहीं है। कहाँ तो तुम्हारा रूप और कहाँ

वनमें रहनेवाला वह बूढ़ा मुनि ॥ ३८–४० ॥ भला, एक अयोग्य वरके साथ मेरे द्वारा पुत्रीका विवाह कैसे किया जा सकता है ? जो पर्णशालामें रहकर निरन्तर वनवासी जीवन व्यतीत करता है, उसके साथ तुम्हारे सम्बन्धकी कल्पना ही कैसे की जाय ? मेरी तथा सैनिकोंकी मृत्यु मुझे श्रेयस्कर प्रतीत हो रही है ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ किंतु एक अन्धेके हाथों तुम्हें सौंप दूँ—यह हमें पसन्द नहीं है। जो होनेवाला होगा वह होगा ही, मैं अपना धैर्य नहीं छोड़ सकता ॥ ४३ ॥ तुम शान्तचित्त रहो। मैं तुम्हें उस नेत्रहीनको कदापि नहीं सौंपूँगा। राज्य एवं यह देह रहे अथवा चला जाय—परवाह नहीं ॥ ४४ ॥ हे बालिके ! उस नेत्रहीनको मैं तुम्हें देनेमें असहमत हूँ।' पिताकी यह बात सुनकर सुकन्या उनसे विनय तथा स्नेहपूर्वक कहने लगी। सुकन्या बोली—हे पिताजी ! आपको मेरे विषयमें चिन्ता नहीं करनी चाहिये। अब आप मुझे उन मुनिको सौंप दीजिए। मेरे इस कार्यसे सब प्राणियों तथा परिवारको सुख हो, यह मेरे लिए कितनी अच्छी बात है। मैं सन्तुष्ट रहकर उन परम-पावन मुनिकी पतिरूपसे सेवा करूँगी ॥ ४५–४७ ॥ वे वृद्ध मुनि निर्जन वनमें मेरे द्वारा अत्यन्त भक्तिपूर्वक सुसेवित होंगे।

उटजे नियतं वासो यस्य नित्यं मनोहरे ॥ ४१ ॥ कथमंबुजपत्राक्षि कल्पनीयो मया तव ॥ मरणं मे वरं प्राप्तं सैनिकानां तथैव च ॥ ४२ ॥ न ते प्रदानमंधाय रोचते पिकभाषिणि ॥ भवितव्यं भवत्येव धैर्यं नैव त्यजाम्यहम् ॥ ४३ ॥ सुस्थिरा भव सुश्रोणि न दास्येऽन्धाय कर्हिचित् ॥ राज्यं तिष्ठतु वा यातु देहोऽयं च तथैव मे ॥ ४४ ॥ ॥ न त्वां दास्याम्यहं तस्मै नेत्रहीनाय बालिके ॥ सुकन्या तं तदा प्राह श्रुत्वा तद्वचनं पितुः ॥४५॥ प्रसन्नवदनाऽतीव स्नेहयुक्तमिदं वचः ॥ सुकन्योवाच ॥ न मे चिंता पितः कार्या देहि मां मुनयेऽधुना ॥४६॥ सुखं भवतु सर्वेषां लोकानां मत्कृतेन हि ॥ सेवयिष्यामि संतुष्टा पतिं परमपावनम् ॥४७॥ भक्त्या परमया चापि वृद्धं च विजने वने ॥ सतीधर्मपरा चाहं चरिष्यामि सुसंमतम् ॥४८॥ न भोगेच्छाऽस्ति मे तात स्वस्थं चित्तं ममानघ ॥ व्यास उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा भाषितं तस्य मंत्रिणो विस्मयं गताः ॥ ४९ ॥ राजा च परमप्रीतो जगाम मुनिसन्निधौ ॥ गत्वा प्रणम्य शिरसा तमुवाच तपोधनम् ॥ ५० ॥ स्वामिन्गृहाण पुत्रीं मे सेवार्थं विधिवद्विभो ॥ इत्युक्त्वाऽसौ ददौ पुत्रीं विवाहविहिना नृपः ॥ ५१ ॥ प्रतिगृह्य मुनिः कन्यां प्रसन्नो भार्गवोऽभवत् ॥ पारिबर्हं न जग्राह दीयमानं नृपेण ह ॥ ५२ ॥ कन्यामेवाग्रहीत्कामं परिचर्यार्थमात्मनः ॥ प्रसन्नेऽस्मिन्मुनौ जातं सैनिकानां सुखं तदा ॥ ५३ ॥ राज्ञश्च परमाह्लादः संजातस्तत्क्षणादपि ॥ दत्त्वा पुत्रीं यदा राजा

कारण मैं सतीधर्मको अच्छी प्रकार जानती हूँ। हे पिताजी ! भोगमें मेरी बिल्कुल ही रुचि नहीं है। हे अनघ ! आप मेरे विषयमें सर्वथा निश्चिन्त हो जाइये। व्यासजी कहते हैं—सुकन्याकी यह बात सुनकर मन्त्रिमण्डल अत्यन्त आश्चर्यमें पड़ गया ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ अन्तमें राजाने सुकन्याकी बात मान ली और वे मुनिके पास जानेको चल पड़े। उन तपोधन मुनिके निकट पहुँचते ही मस्तक झुकाकर उन्होंने प्रणाम किया और कहा—॥ ५० ॥ 'हे स्वामिन् ! मेरी कन्या आपकी सेवामें उपस्थित है। हे विभो ! आप इसे विधिपूर्वक स्वीकार करनेकी कृपा करें।' इस प्रकार कहकर राजा शर्यातिने अपनी पुत्री सुकन्याका विवाह च्यवन मुनिके साथ कर दिया ॥ ५१ ॥ उस राजकुमारीको पाकर वे परम प्रसन्न हो गये। राजा दहेजकी सामग्री दे रहे थे, किन्तु मुनिने लेना अस्वीकार कर दिया ॥ ५२ ॥ अपनी सेवाका कार्य सम्पन्न हो जाय—इस विचारसे उन्होंने केवल कन्याको ही लेना स्वीकार किया। मुनिके प्रसन्न हो जानेपर सब

सैनिकोंका रोग दूर हो गया ॥५३॥ उसी समयसे राजाका भी मन परम आह्लादित रहने लगा। जब राजा शर्यातिने मुनिको पुत्री सौंपकर घर चलनेका विचार किया, तब सुकन्याके मनमें उनसे कुछ कहनेकी इच्छा हुई। सुकन्याने कहा—पिताजी! आप मेरे वस्त्र और आभूषण ले लें तथा मुझे वृक्षोंकी छाल के बने वस्त्र एवं उत्तम मृगचर्म देनेकी कृपा करें। मैं मुनिपत्नियोंका वेष बनाकर तपस्यामें निरत होकर मुनिकी सेवा करूँगी। जिससे धरातल, रसातल एवं स्वर्गमें भी आपकी कीर्ति अक्षुण्ण रह सकेगी ॥५४–५७॥ परलोकमें सुखी होनेके लिए मैं निरन्तर मुनिकी सेवामें संलग्न रहूँगी। 'मैंने अपनी सुन्दरी एवं तरुणी कन्या नेत्रहीन बूढ़े मुनिको सौंप दी और कहीं इसका आचरण भ्रष्ट हो जायगा तो बड़ा ही अनिष्ट होगा।' इस प्रकारकी चिन्ता आप बिल्कुल न करें। जिस प्रकार वसिष्ठकी पत्नी अरुन्धती तथा अत्रिकी साध्वी भार्या अनसूया स्वर्गमें प्रसिद्ध हैं, वैसे ही मैं भी तप करके आपकी कीर्ति बढ़ाऊँगी। राजा

गमनाय गृहं प्रति ॥ ५४ ॥ मतिं चकार तन्वंगी तदोवाच नृपं सुता ॥ सुकन्योवाच ॥ गृहाण मम वासांसि भूषणानि च मे पितः ॥ ५५ ॥ वल्कलं परिधानाय प्रयच्छाजिनमुत्तमम् ॥ वेषं तु मुनिपत्नीनां कृत्वा तपसि सेवनम् ॥ ५६ ॥ करिष्यामि तथा तात यथा ते कीर्तिरच्युता ॥ भविष्यति भुवः पृष्ठे तथा स्वर्गे रसातले ॥५७॥ परलोकसुखायाहं चरिष्यामि दिवानिशम् ॥ दत्त्वांधाय च वृद्धाय सुन्दरीं युवतीं तु माम् ॥५८॥ चिंता त्वया न कर्तव्या शीलनाशसमुद्भवा ॥ अरुन्धती वसिष्ठस्य धर्मपत्नी यथा भुवि ॥ ५९ ॥ तथैवाहं भविष्यामि नात्र कार्या विचारणा ॥ अनसूया यथा साध्वी भार्याऽत्रेः प्रथिता भुवि ॥६०॥ तथैवाहं भविष्यामि पुत्री कीर्तिकरी तव ॥ सुकन्यावचनं श्रुत्वा राजा परमधर्मवित् ॥६१॥ दत्त्वाऽजिनं रुरोदाशु वीक्ष्य तां चारुहासिनीम् ॥ त्यक्त्वा भूषणवासांसि मुनिवेषधरां सुताम् ॥६२॥ विवर्णवदनो भूत्वा स्थितस्तत्रैव पार्थिवः ॥ राज्यः सर्वाः सुतां दृष्ट्वा बल्कलाजिनधारिणीम् ॥ ६३ ॥ रुरुदुर्भृशशोकार्ता वेपमाना इवाभवन् ॥ तामापृच्छ्य महीपालो मंत्रिभिः परिवारितः ॥ ६४ ॥ ययौ स्वनगरं राजन्मुक्त्वा पुत्रीं शुचाऽर्पिताम् ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

॥ व्यास उवाच ॥ गते राजनि सा बाला पतिसेवापरायणा ॥ बभूव च तथाऽग्नीनां सेवने धर्मतत्परा ॥१॥ फलान्यादाय स्वादूनि मूलानि

शर्याति धर्मज्ञ पुरुष थे। अपनी पुत्री सुकन्याकी बात सुनकर उन्होंने उसे बल्कल-वस्त्रादि दे दिये, परन्तु उसपर दृष्टि डालते ही उनकी आँखोंमें जल भर आया और वे रोने लगे। सुकन्याने तुरन्त वस्त्र और आभूषण उतारकर मुनिपत्नीका वेष धारण कर लिया। महाराज शर्याति उदास होकर कुछ समय तक वहीं ठहरे रहे। राजकुमारी बल्कल वसन और मृगचर्म धारण किये है---यह देख वहाँ उपस्थित सब रानियाँ रो पड़ीं। सब लोग काँपने लगे और सबके मनमें असीम संताप होने लगा। हे राजन्! फिर अपनी पुण्यमयी साध्वी कन्यासे पूछ और उसे वहीं छोड़कर राजा शर्याति मन्त्रियोंके साथ अपने नगरको चले गये ॥ ५८--६४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

(सुकन्या द्वारा च्यवन मुनिकी सेवा) व्यासजी कहते हैं—राजा शर्यातिके चले जानेपर सुकन्या सर्वतोभावसे च्यवन मुनिकी सेवामें संलग्न हो गयी। धर्मपर तत्पर रहनेवाली उस राज-

कुमारीके प्रयत्नसे आश्रमकी आग कभी बुझने नहीं पाती थी ॥ १ ॥ वह स्वादिष्ट फल और भाँति-भाँतिके कन्द-मूल लाकर मुनिको अर्पण करती थी। पतिकी सेवामें ही उसका सारा समय व्यतीत होने लगा ॥ २ ॥ जाड़ेके दिनोंमें वह पानी गरम करके उससे मुनिको स्नान कराती, मृगचर्म पहनाती और पवित्र आसनपर बैठा देती थी ॥३॥ वह उनके आगे तिल, जौ, कुशा और कमण्डलु रखकर प्रार्थना करती—'मुनिवर ! अब आप नित्यकर्म कीजिये' ॥ ४ ॥ पतिदेवका जब नित्यकर्म समाप्त हो जाता, तब राजकुमारी उनका हाथ पकड़कर उठाती और किसी आसन अथवा पीढ़ेपर उन्हें बिठा देती थी ॥ ५ ॥ तदनन्तर पके हुए फल एवं भलीभाँति सिद्ध किये गये तिन्नीके चावल लाकर च्यवन मुनिको भोजन कराती थी ॥ ६ ॥ जब पतिदेव भोजनसे तृप्त हो जाते, तब आदरपूर्वक वह उन्हें आचमन कराती। फिर बड़े प्रेमसे पान और सुपारी देती थी ॥७॥ मुखशुद्धि कर लेनेके बाद च्यवनजीको वह सुन्दर आसनपर बिठा देती। तत्पश्चात् मुनिसे आज्ञा लेकर वह अपनी शारीरिक क्रिया सम्पन्न करती थी ॥८॥ फलाहार करके फिर वह मुनिके पास जाती और अत्यन्त नम्रताके साथ उनसे कहती—'प्रभो ! मुझे क्या

विविधानि च ॥ ददौ सा मुनये बाला पतिसेवापरायणा ॥ २ ॥ पतिं तप्तोदकेनाशु स्नापयित्वा मृगत्वचा ॥ परिवेष्ट्य शुभायां तु बृस्यां स्थापितवत्यपि ॥ ३ ॥ तिलान् यवकुशानग्रे परिकल्प्य कमंडलुम् ॥ तमुवाच नित्यकर्म कुरुष्व मुनिसत्तम ॥ ४ ॥ तमुत्थाप्य करे कृत्वा समाप्ते नित्यकर्मणि ॥ बृस्यां वा संस्तरे बाला भर्तारं संन्यवेशयत् ॥ ५ ॥ पश्चादानीय पक्वानि फलानि च नृपात्मजा ॥ भोजयामास च्यवनं नीवारान्नं सुसंस्कृतम् ॥ ६ ॥ भुक्तवंतं पतिं तृप्तं दत्त्वाऽऽचमनमादरात् ॥ पश्चाच्च पूगं पत्राणि ददौ चादरसंयुता ॥ ७ ॥ गृहीतमुखवासं तं संवेश्य च शुभासने ॥ गृहीत्वाज्ञां शरीरस्य चकार साधनं ततः ॥८॥ फलाहारं स्वयं कृत्वा पुनर्गत्वा च सन्निधौ ॥ प्रोवाच प्रणयोपेता किमाज्ञापयते प्रभो ॥९॥ पादसंवाहनं तेऽद्य करोमि यदि मन्यसे ॥ एवं सेवापरा नित्यं बभूव पतितत्परा ॥१०॥ सायं होमावसाने सा फलान्याहृत्य सुन्दरी ॥ अर्पयामास मुनये स्वादूनि च मृदूनि च ॥११॥ ततः शेषाणि बुभुजे प्रेमयुक्ता तदाज्ञया ॥ सुस्पर्शास्तरणं कृत्वा शाययामास तं मुदा ॥ १२ ॥ सुप्ते सुखं प्रिये कांता पादसंवाहनं तदा॥ चकार पृच्छती धर्मं कुलस्त्रीणां कृशोदरी ॥ १३ ॥ पादसंवाहनं कृत्वा निशि भक्तिपरायणा ॥ निद्रितं च मुनिं ज्ञात्वा सुष्वाप चरणांतिके ॥ १४ ॥ शुचौ प्रतिष्ठितं वीक्ष्य तालवृंतेन भामिनी ॥ कुर्वाणा शीतलं वायुं सिषेवे स्वपतिं तदा ॥ १५ ॥ हेमंते काष्ठ-

आज्ञा दे रहे हैं। आपकी सम्मति हो तो मैं अब चरण दबाऊँ।' इस प्रकार सुकन्या अपने पतिदेव च्यवन मुनिकी सेवामें निरन्तर लगी रहती थी ॥९॥१०॥ सायंकालका हवन समाप्त हो जानेपर वह सुन्दरी कन्या पुनः कोमल एवं स्वादिष्ट फल लाकर मुनिको अर्पण करती थी। मुनिके भोजनसे बचे हुए फल उनकी आज्ञा लेकर स्वयं प्रेमपूर्वक खा लेती थी। फिर सुन्दर बिछौना बिछाकर उसपर बड़े हर्षके साथ मुनिको सुला देती थी ॥११॥१२॥ परम प्रेमी पति जब सुखपूर्वक शय्यापर लेट जाते, तब सुकन्या उनके पैर दबाने लग जाती। उस समय वह कुलकी स्त्रियोंके विषयमें धार्मिक प्रश्न पूछा करती थी ॥ १३ ॥ पैर दबानेके उपरान्त जब वह भक्तिपरायणा सुकन्या यह जान जाती कि मुनिजी सो गये, तब स्वयं भी उनके चरणोंके पास ही सो जाती थी ॥१४॥ गरमीके दिनोंमें अपने पति च्यवन मुनिको बैठे देखकर वह राजकुमारी ताड़के पंखेसे ठंढी हवा करती हुई उनकी सेवामें जुटी रहती थी। जाड़ेके दिनोंमें लकड़ी

इकट्ठी करके मुनिके आगे आग जला देती । साथ ही बार-बार पूछा करती–'स्वामिन् ! आप सुखसे तो हैं न ?' ॥ १६ ॥ वह ब्राह्ममुहूर्तमें उठती और लोटा, जल एवं मिट्टी मुनिके पास उपस्थित करके उन्हें शौच जानेके लिये उठाती ॥१७॥ आश्रमसे कुछ दूर ले जाकर बैठा देती । जब मुनि बैठ जाते, तब स्वयं वहाँसे दूर हटकर उनकी प्रतीक्षामें बैठ जाती । स्वामी शौच कर चुके होंगे–यह जानकर मुनिके पास जाती और हाथ पकड़कर पुनः उन्हें आश्रमपर ले आती और एक पवित्र आसनपर बैठा देती । जल और मिट्टीसे विधिपूर्वक मुनिके पैर धोती । ॥ १८ ॥ १९ ॥ फिर राजकुमारी सुकन्या च्यवन मुनिको कुल्ले कराकर शास्त्रोक्त विधिके अनुसार दतुअन तोड़ लाकर उनके पास रख देती ॥ २० ॥ शुद्ध जल गरम करती और स्नान करनेके लिए मुनिके सामने रख देती । साथ ही बड़ी नम्रताके साथ पूछती–ब्रह्मन् ! क्या आज्ञा दे रहे हैं ? आपने दन्तधावन तो कर ही लिया । अब गरम जल तैयार है । मन्त्रका उच्चारण

संभारं कृत्वाऽग्निज्वलनं पुरः ॥ स्थापयित्वा तथाऽपृच्छत्सुखं तेऽस्तीति चासकृत् ॥ १६ ॥ ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय जलं पात्रं च मृत्तिकाम् ॥ समर्पयित्वा शौचार्थं समुत्थाप्य पतिं प्रिया ॥१७॥ स्थानाद्दूरे च संस्थाप्य दूरं गत्वा स्थिराऽभवत् ॥ कृतशौचं पतिं ज्ञात्वा गत्वा जग्राह तं पुनः ॥१८॥ आनीयाश्रममव्यग्रा चोपवेश्यासने शुभे ॥ मृज्जलाभ्यां च प्रक्षाल्य पादावस्य यथाविधि ॥ १९ ॥ दत्त्वाऽऽचमनपात्रं तु दंतधावनमाहरत् ॥ समर्प्य दंतकाष्ठं च यथोक्तं नृपनंदिनी ॥ २० ॥ चकारोष्णं जलं शुद्धं समानीतं सुपावनम् ॥ स्नानार्थं जलमाहृत्य पप्रच्छ प्रणयान्विता ॥ २१ ॥ किमाज्ञापयसे ब्रह्मन्कृतं वै दंतधावनम् ॥ उष्णोदकं सुसंपन्नं कुरु स्नानं समंत्रकम् ॥ २२ ॥ वर्तते होमकालोऽयं संध्या पूर्वा प्रवर्तते ॥ विधिवद्धवनं कृत्वा देवतापूजनं कुरु ॥ २३ ॥ एवं कन्या पतिं लब्ध्वा तपस्विनमनिंदिता ॥ नित्यं पर्यचरत्प्रीत्या तपसा नियमेन च ॥२४॥ अग्नीनामतिथीनां च शुश्रूषां कुर्वती सदा ॥ आराधयामास मुदा च्यवनं सा शुभानना ॥२५॥ कस्मिंश्चिदथ काले तु रविजावश्विनावुभौ ॥ च्यवनस्याश्रमाभ्याशे क्रीडमानौ समागतौ ॥ २६ ॥ जले स्नात्वा तु तां कन्यां निवृत्तां स्वाश्रमं प्रति ॥ गच्छंतीं चारुसर्वांगीं रविपुत्रावपश्यताम् ॥ २७ ॥ तां दृष्ट्वा देवकन्याभां गत्वा चांतिकमादरात् ॥ ऊचतुः समभिद्रुत्य नासत्यावतिमोहितौ ॥ २८ ॥ क्षणं तिष्ठ वरारोहे प्रष्टुं त्वां गजगामिनि ॥ आवां

करते हुए स्नान कर लीजिये ॥ २१ ॥ २२ ॥ हवन और प्रातःसंध्याका समय उपस्थित है । अब विधिवत् हवन करके देवताओंकी उपासना करिए' ॥ २३ ॥ राजकुमारी सुकन्याका अन्तःकरण परम पवित्र था । तपस्वी च्यवन मुनिको पतिके रूपमें वरण करके वह तप एवं नियमकी मर्यादाका पालन करती हुई प्रेमपूर्वक उपर्युक्त रीतिसे उनकी निरन्तर सेवा करती रही ॥ २४ ॥ उसके द्वारा अग्नि और अतिथि सदा सम्मान पाते थे । प्रसन्नमुखवाली वह राजकुमारी बड़े हर्षके साथ सदा-सर्वदा च्यवन मुनिकी परिचर्यामें लगी रहती थी ॥२५॥ एक समयकी बात है, सूर्यके पुत्र दोनों अश्विनीकुमार च्यवन मुनिके आश्रमके समीप पधारे ॥ २६ ॥ उन्होंने देखा–सुकन्या जलमें स्नान करके अपने आश्रमपर लौट रही है ॥ २७ ॥ उसके सभी अङ्ग बड़े ही मनोहर थे । देवकन्याकी तुलना करनेवाली उस राजकुमारीको देखकर अश्विनीकुमार उसके पास पहुँच गये और आदरपूर्वक उससे कहने लगे–॥२८॥ 'हे वरारोहे ! थोड़ी

सभी अङ्ग बड़े ही मनोहर थे। देवकन्याकी तुलना करनेवाली उस राजकुमारीको देखकर अश्विनीकुमार उसके पास पहुँच गये और आदरपूर्वक उससे कहने लगे—॥२९॥ हे चारुलोचने!

देर ठहरो। हमलोग सूर्यदेवके पुत्र हैं। हे शुचिस्मिते! तुमसे कुछ पूछनेके लिए हमारा यहाँ आना हुआ है। तुम सच्ची बात बतानेकी कृपा करो। हे चारुलोचने! तुम किसकी पुत्री हो? तुम्हारे पतिदेव कौन हैं और तुम यहाँ अकेली ही उद्यानमें इस जलाशयपर स्नान करनेके लिए कैसे आयी हो? ॥२९॥३०॥ हे कमललोचने! तुम्हारी प्रभासे ऐसा जान पड़ता है, मानो स्वयं दूसरी लक्ष्मीका ही पदार्पण हो गया है। हे शोभने! हम ये सब बातें जानना चाहते हैं। तुम बतानेकी कृपा करो ॥ ३१ ॥ जब तुम्हारे कोमल चरण विषम भूमिपर पड़ते और आगे बढ़ते हैं, तब उन्हें देखकर हमारे हृदयमें पीड़ा होने लगती है ॥ ३२ ॥ तुम्हारे लिए समुचित सवारी विमान है।। फिर तुम कैसे इस कठोर धरतीपर पैदल चल रही हो? इस वनमें तुम्हारे नंगे पैरों घूमनेका क्या कारण है? ॥३३॥ तुम राजपुत्री अथवा अप्सरा—दोनोंमें कौन हो? सचसच कहो। तुम्हारी माता धन्य है, जिससे तुम उत्पन्न हुई हो। तुम्हारे उन पिताजीको भी धन्यवाद है। हे अनघे! तुम्हारे पति कितने बड़े भाग्यशाली हैं, इसे तो हम कह ही नहीं सकते। हे सुलोचने! यह भूमि देवलोकसे भी बढ़कर मानी जा सकती है। क्योंकि इस

देवसुतौ प्राप्तौ ब्रूहि सत्यं शुचिस्मिते ॥ २९ ॥ पुत्री कस्य पतिः कस्ते कथमुद्यानमागता ॥ एकाकिनी तडागेऽस्मिन्स्नानाथ चारुलोचने ॥३०॥ द्वितीया श्रीरिवाभासि कांत्या कमललोचने ॥ इच्छामस्तु वयं ज्ञातुं तत्त्वमाख्याहि शोभने ॥३१॥ कोमलौ चरणौ कांते स्थितौ भूमावनावृतौ॥ हृदये कुरुतः पीडां चलंतौ चललोचने ॥ ३२ ॥ विमानार्हासि तन्वंगि कथं पद्भ्यां व्रजस्यदः ॥ अनावृताऽत्र विपिने किमर्थं गमनं तव ॥३३॥ दासीशतसमायुक्ता कथं न त्वं विनिर्गता ॥ राजपुत्र्यप्सरा वाऽसि वद सत्यं वरानने ॥ ३४ ॥ धन्या माता यतो जाता धन्योऽसौ जनकस्तव ॥ वक्तुं त्वां नैव शक्तौ च भर्तुर्भाग्यं तवानघे ॥ ३५ ॥ देवलोकाधिका भूमिरियं चैव सुलोचने ॥ प्रचलंश्चरणस्तेऽद्य संपावयति भूतलम् ॥ ३६ ॥ सौभाग्याश्च मृगाः कामं ये त्वां पश्यन्ति वै वने ॥ ये चान्ये पक्षिणः सर्वे भूरियं चातिपावना ॥३७॥ स्तुत्याऽलं तव चात्यर्थं सत्यं ब्रूहि सुलोचने ॥ पिता कस्ते पतिः क्वासौ द्रष्टुमिच्छाऽस्ति सादरम् ॥३८॥ व्यास उवाच ॥ तयोरिति वचः श्रुत्वा राजकन्याऽतिसुंदरी ॥ तावुवाच त्रपाक्रांता देवपुत्रौ नृपात्मजा ॥ ३९ ॥ शर्यातितनयां मां वां वित्तं भार्यां मुनेरिह ॥ च्यवनस्य सतीं कान्तां पित्रा दत्तां यदृच्छया ॥ ४० ॥ पतिरंधोऽस्ति मे देवौ वृद्धश्चातीव तापसः ॥ तस्य सेवामहोरात्रं करोमि प्रीतमानसा ॥ ४१ ॥ कौ युवां किमिहायातौ पतिस्तिष्ठति चाश्रमे ॥

समय तुम्हारा पैर इसपर पड़कर इसे गौरवान्वित कर रहा है ॥३४--३६॥ उन मृगोंका भाग्योदय समझना चाहिए, जो तुम्हें वनमें देख रहे हैं। ये पक्षी भी पूर्ण भाग्यशाली हैं। तुम्हारे पदार्पणसे यहाँकी भूमि परम पवित्र बन गयी है ॥ ३७ ॥ हे सुलोचने! तुम असीम प्रशंसनीय हो। तुम्हारे पिता कौन हैं? तुम्हारे पतिदेव कहाँ रहते हैं? हम आदरपूर्वक उन्हें देखना चाहते हैं' ॥ ३८ ॥ व्यासजी कहते हैं– अश्विनीकुमारोंकी यह बात सुननेके पश्चात् परम सुन्दरी राजकुमारी सुकन्या अत्यन्त लज्जित होकर उनसे कहने लगी—॥३९॥ 'मुझे आप राजा शर्यातिकी कन्या समझें। मुनिवर च्यवनजी मेरे पतिदेव हैं। मैं एक पतिव्रता स्त्री हूँ। पिताने स्वेच्छासे मुझे इनको सौंप दिया है ॥ ४० ॥ हे देवताओ! मेरे पतिकी आँखें जवाब दे चुकी हैं। वे परम तपस्वी मुनि बड़े बूढ़े हो गये हैं। अतः मैं प्रसन्न मनसे रात-दिन उन्हीं पतिदेवकी सेवामें लगी रहती हूँ ॥ ४१ ॥ आप दोनों कौन हैं और आपका यहाँ कैसे आना हुआ

है ? मेरे पतिदेव आश्रममें विराजमान हैं। आप वहाँ चलकर उस आश्रमको पवित्र कीजिये' ॥ ४२ ॥ हे राजन् ! अश्विनीकुमारोंने सुकन्याका कथन सुनकर उससे कहा—'हे कल्याणी ! तुम्हारे पिताने उन तपस्वी मुनिके साथ तुम्हारा विवाह कैसे कर दिया ? ॥ ४३ ॥ तुम तो बादलमें चमकनेवाली बिजलीकी भाँति इस वनमें शोभा पा रही हो। तुम-जैसी सुन्दरी स्त्री देवताओंके घरमें भी नहीं दिखायी पड़ती ॥४४॥ तुम्हें दिव्य वस्त्र-आभूषण पहनने चाहिये। ये बल्कल तुम्हें सुशोभित करनेमें असमर्थ हैं ॥ ४५ ॥ तुम्हें वह नेत्रहीन और बूढ़ा पति कैसे मिल गया ? निश्चय ही जान पड़ता है कि ब्रह्माकी भी बुद्धि कुण्ठित थी, जो उन्होंने तुमको इनकी भार्या बनानेका विधान किया ॥४६॥ आपने मुनिवर च्यवनको व्यर्थ अपना पति बनाया। हे नृत्यविशारदे ! आपकी यह उभड़ती हुई जवानी उस अन्धे और बूढ़े पतिके साथ शोभित नहीं हो सकती। कामदेव अपना शर सन्धान करके जब छोड़ेगा तो उन काम-बाणोंके ऐसे पतिपर गिरनेसे क्या लाभ होगा ? ॥४७॥ विधाता नितान्त मन्दबुद्धि है। नहीं तो आप जैसी नई-नवेली नवयुवतीको एक अन्धेकी स्त्री क्यों बनाता ? हे श्याम तथा विशाल नयनोंवाली

तत्रागत्य प्रकुरुतमाश्रमं चाद्य पावनम् ॥४२॥ तदाकार्ण्य वचो दस्रावूचतुस्तां नराधिप ॥ कथं त्वमसि कल्याणि पित्रा दत्ता तपस्विने ॥४३॥ भ्राजसेऽस्मिन्वनोद्देशे विद्युत्सौदामिनी यथा ॥ न देवेष्वपि तुल्या हि तव दृष्टाऽस्ति भामिनी ॥४४॥ त्वं दिव्याम्बरयोग्याऽसि शोभसे नाजिनैर्वृता ॥ सर्वाभरणसंयुक्ता नीलालकवरूथिनी ॥ ४५ ॥ अहो विधेर्दुष्कलितं विचेष्टितं यदत्र रंभोरु वने विषीदसि ॥ विशालनेत्रेऽन्धमिमं पतिं प्रिये मुनिं समासाद्य जरातुरं भृशम् ॥ ४६ ॥ वृथा वृतस्तेन भृशं न शोभसे नवं वयः प्राप्य सुनृत्यपंडिते ॥ मनोभवेनाशु शराः सुसंधिताः पतंति कस्मिन्पतिरीदृशस्तव ॥ ४७ ॥ त्वमंधभार्या नवयौवनान्विता कृताऽसि धात्रा ननु मंदबुद्धिना ॥ न चैनमर्हस्यसितायतेक्षणे पतिं त्वमन्यं कुरु चारुलोचने ॥ ४८ ॥ वृथैव ते जीवितमंबुजेक्षणे पतिं च संप्राप्य मुनिं गतेक्षणम् ॥ वने निवासं च तथाऽजिनाम्बरप्रधारणं योग्यतरं न मन्महे ॥४९॥ अतोऽनवद्यांग्युभयोस्त्वमेकं वरं कुरुष्वावहिता सुलोचने ॥ किं यौवनं मानिनि संकरोषि वृथा मुनिं सुन्दरि सेवमाना ॥५०॥ किं सेवसे भाग्यविवर्जितं तं समुत्थितं पोषणरक्षणाभ्याम् ॥ त्यक्त्वा मुनिं सर्वसुखापवर्जितं भजानवद्यांग्युभयोस्त्वमेकम् ॥ ५१ ॥ त्वं नंदने चैत्ररथे वने च कुरुष्व कांते प्रथितं विहारम् ॥ अंधेन वृद्धेन कथं हि कालं विनेष्यसे मानिनि मानहीनम् ॥ ५२ ॥ भूपात्मजा त्वं शुभलक्षणा च जानासि संसारविहार-

सुन्दरी ! आप उस बूढ़े पतिके योग्य कदापि नहीं हैं। अतएव हे सुलोचने ! आप किसी दूसरे व्यक्तिको अपना पति बना लीजिए ॥४८॥ हे कमलनयनी ! ऐसे अन्धे तपस्वीके साथ रहनेसे आपका जीवन व्यर्थ हो जायगा। आपका इस प्रकार वनवासियों जैसा जीवन बिताना और मृगचर्म पहनना तो हमें ठीक नहीं जँचता ॥४९॥ हे सुडौल अङ्गोंवाली ! आप भलीभाँति सोचकर हम दोनोंमेंसे किसी एकको अपना पति बना लें। हे सुनयनी ! हे मानवती ! एक अन्धे मुनिकी सेवामें आप अपनी जवानी क्यों नष्ट कर रही हैं ? ॥५०॥ वह अभागा है और उसमें आपके भरण-पोषण तथा रक्षा करनेकी भी सामर्थ्य नहीं है। तब ऐसे व्यक्तिकी सेवा क्यों कर रही हैं ? आपके अङ्ग-प्रत्यङ्ग बड़े सुन्दर हैं। अतः समस्त सुखोपभोगसे विहीन उस मुनिको त्यागकर आप हम दोनोंमेंसे किसी एकको अपना पति बना लीजिए ॥ ५१ ॥ हे कान्ते ! तब आप चाहें तो इन्द्रके नन्दन वनमें अथवा कुबेरके चैत्ररथ उद्यानमें स्वच्छन्द विहार कीजिएगा।

हे मानिनि ! उस अन्धे और बूढ़े पतिके समक्ष आप कैसे मान करेंगी और उसके साथ कैसे जीवनके दिन काटेंगी ? ॥ ५२ ॥ हे सुन्दरी ! आप सभी शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न एक राजाकी पुत्री हैं। इसीसे आप सांसारिक हाव-भावोंसे पूर्ण परिचित हैं। तब एक अभागिन नारीकी भाँति आप ऐसे निर्जन वनमें समय कैसे बितायेंगी ? ॥ ५३ ॥ इसलिए हे कोयल जैसी मीठी वाणी बोलनेवाली ! हे सुन्दर मुँह और बड़ी-बड़ी आँखोंवाली ! हम दोनोंमेंसे किसी एकको अपना पति बना लीजिए। इससे आपको बड़ा सुख मिलेगा। हे राजकुमारी ! हे पतली कमरवाली ! आप इस जंगली तथा बूढ़े साधुको तुरन्त त्यागकर देव-लोकमें चलिए और वहाँ तरह-तरहके भोगोंका उपभोग कीजिए ॥ ५४ ॥ हे सुन्दर केशोंवाली ! हे मृगनयनी ! इस निर्जन वनमें एक बूढ़ेके साथ रहते हुए आपको क्या सुख मिल रहा है ? एक तो अभी आपकी उभड़ती जवानी है, उसपर भी अन्धेकी सेवा करनी पड़ती है। हे राजकुमारी ! क्या आपको दुःख उठाना अच्छा लगता है ? ॥ ५५ ॥ हे चञ्चल पलकों और शोभन रूप-रंगवाली सुन्दरी ! जवानी सुखभोग चाहती है। हे चन्द्रमुखी ! आप बहुत सुकुमार हैं। अतएव जंगलसे आपका फल और जल

भावम्॥ भाग्येन हीना विजने वनेऽत्र कालं कथं वाहयसे वृथा च ॥ ५३ ॥ तस्माद्भजस्व पिकभाषिणि चारुवक्त्रे एकं द्वयोस्तव सुखाय विशालनेत्रे ॥ देवालयेषु च कृशोदरि भुंक्ष्व भोगांस्त्यक्त्वा मुनिं जरठमाशु नृपेंद्रपुत्रि॥ ५४ ॥ किं ते सुखं चात्र वने सुकेशि वृद्धेन सार्धं विजने मृगाक्षि ॥ सेवा यथांधस्य नवं वयश्च किं ते मतं भूपतिपुत्रि दुःखम् ॥ ५५ ॥ नववयः सुखभोगसमीहितं चटुलपद्मधरे वरवर्णिनि ॥ शशिमुखि त्वमतीव सुकोमला फलजलाहरणं तव नोचितम् ॥ ५६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

॥ व्यास उवाच॥ तयोस्तद्भाषितं श्रुत्वा वेपमाना नृपात्मजा॥ धैर्यमालंब्य तौ तत्र बभाषे मितभाषिणी ॥ १ ॥ देवौ वां रविपुत्रौ च सर्वज्ञौ सुरसंमतौ ॥ सतीं मां धर्मशीलां च नैव वेदितुमर्हथ ॥ २ ॥ पित्रा दत्ता सुरश्रेष्ठौ मुनये योगधर्मिणे ॥ कथं गच्छामि तं मार्गं पुंश्चलीगणसेवितम् ॥ ३ ॥ द्रष्टाऽयं सर्वलोकस्य कर्मसाक्षी दिवाकरः ॥ कश्यपाच्चैव संभूतो नैवं भाषितुमर्हथः ॥ ४ ॥ कुलकन्या पतिं त्यक्त्वा कथमन्यं भजेन्नरम् ॥ असारेऽस्मिन्हि संसारे जानंतौ धर्मनिर्णयम् ॥ ५ ॥ यथेच्छं गच्छतं देवौ शापं दास्यामि वाऽनघौ ॥ सुकन्याऽहं च शर्यातेः पति-

लाना उचित नहीं जँचता ॥ ५६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा' भाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

(अश्विनीकुमारोंकी कृपासे च्यवनको यौवनप्राप्ति) व्यासजी कहते हैं—अश्विनीकुमारोंकी बात सुनकर मितभाषिणी सुकन्याके शरीरमें कँपकँपी आ गयी। उसने धैर्य धारण करके उनसे कहा—॥१॥ हे देवताओ ! आप लोग भगवान् सूर्यके पुत्र हैं। आप सर्वज्ञ एवं देवशिरोमणि हैं। मैं धर्मकी मर्यादाका पालन करनेवाली एक सती नारी हूँ। मेरे प्रति आपको ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये ॥ २ ॥ हे सुरवरो ! जब पिताजीने मुझे इन योगी मुनिको सौंप दिया, तब दुराचारिणी स्त्रियाँ जिस मार्गका अनुसरण करती हैं, उसपर मैं कैसे पैर रक्खूँ ? ॥३॥ ये कश्यपनन्दन और भुवनभास्कर सूर्यदेव सब प्राणियोंके कार्योंके साक्षी हैं। ये सब कुछ देखते रहते हैं। इन्हींके साक्षात् पुत्र आपके मुखसे ऐसी बात कभी नहीं निकलनी चाहिये।

भला एक उत्तम वंशकी कन्या अपने पतिसे विमुख कैसे हो सकती है ? इस मिथ्याभूत जगत्के धार्मिक निर्णयोंको जाननेवाले आप महानुभाव जहाँ इच्छा हो वहाँ चले जायँ । अन्यथा मैं शाप दे दूँगी । मैं पातिव्रत धर्मका पालन करनेवाली शर्यातिकुमारी सुकन्या हूँ ॥ ४–६ ॥ व्यासजी कहते हैं--सुकन्याकी बात सुनकर अश्विनीकुमारोंके आश्चर्यकी सीमा नहीं रही । मुनिवर च्यवनसे डरते हुए उन्होंने सुकन्यासे पुनः कहा--॥ ७ ॥ उत्तम अङ्गोंसे शोभा पानेवाली हे राजकुमारी ! तुम्हारे इस धर्मपालनसे हमारा हृदय गद्गद हो गया है । तुम अपने कल्याणार्थ वर माँगो, हम देनेको तैयार हैं । हे प्रमदे ! तुम निश्चय समझ लो कि हम देवताओंके वैद्य हैं । तुम्हारे पतिको सुन्दर युवक पुरुष बना देनेकी हममें सामर्थ्य है ॥ ८ ॥ ९ ॥ हे परम बुद्धिमती बाले ! तुम्हारे पतिका जब हम अपने समान सुन्दर स्वरूप बना दें, तब तुम हम तीनोंमेंसे किसी एकको पति चुन लो ॥ १० ॥ अश्विनीकुमारोंकी यह बात सुनकर सुकन्याको बड़ा आश्चर्य हुआ । तुरन्त अपने पति च्यवन मुनिके पास जाकर वह उनसे उनकी बात कहने लगी ॥ ११ ॥ सुकन्याने कहा--हे भार्गववंशको आनन्दित करनेवाले

भक्तिपरायणा ॥ ६ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तस्य नासत्यौ विस्मितौ भृशम् ॥ तावब्रूतां पुनस्त्वेनां शंकमानौ भयान्मुनेः ॥ ७ ॥ राजपुत्रि प्रसन्नौ ते धर्मेण वरवर्णिनि ॥ वरं वरय सुश्रोणि दास्यावः श्रेयसे तव ॥ ८ ॥ जानीहि प्रमदे नूनमावां देवभिषग्वरौ ॥ युवानं रूपसंपन्नं प्रकुर्याव पतिं तव ॥ ९ ॥ ततस्त्रयाणामस्माकं पतिमेकतमं वृणु ॥ समानरूपदेहानां मध्ये चातुर्यपंडिते ॥ १० ॥ सा तयोर्वचनं श्रुत्वा विस्मिता स्वपतिं तदा ॥ गत्वोवाच तयोर्वाक्यं ताभ्यामुक्तं यदद्भुतम् ॥११॥ सुकन्योवाच ॥ स्वामिन्सूर्यसुतौ देवौ संप्राप्तौ च्यवनाश्रमे ॥ दृष्टौ मया दिव्यदेहौ नासत्यौ भृगुनंदन ॥१२॥ वीक्ष्य मां चारुसर्वाङ्गीं जातौ कामातुरावुभौ ॥ कथितं वचनं स्वामिन्पतिं ते नवयौवनम् ॥१३॥ दिव्यदेहं करिष्यावश्चक्षुष्मंतं मुनिं किल ॥ एतेन समयेनाद्य तं शृणु त्वं मयोदितम् ॥ १४ ॥ समावयवरूपं च करिष्यावः पतिं तव ॥ तत्र त्रयाणामस्माकं पतिमेकतमं वृणु ॥ १५ ॥ तच्छ्रुत्वाऽहमिहायाता प्रष्टुं त्वां कार्यमद्भुतम् ॥ किं कर्तव्यमतः साधो ब्रूह्यस्मिन्कार्यसंकटे ॥ १६ ॥ देवमायाऽपि दुर्ज्ञेया न जाने कपटं तयोः ॥ यदाज्ञापय सर्वज्ञ तत्करोमि तवेप्सितम् ॥ १७ ॥ च्यवन उवाच ॥ गच्छ कांतेऽद्य नासत्यौ वचनान्मम सुव्रते ॥ आनयस्व

स्वामिन् ! इस समय आपके आश्रमपर सूर्यके सुपुत्र अश्विनीकुमारद्वय पधारे हुए हैं ॥ १२ ॥ मैंने देखा कि उनके शरीरकी आकृति बड़ी ही भव्य है । मुझ सुन्दरी स्त्रीको देखकर वे दोनों कामातुर हो गये । हे स्वामिन् ! उन्होंने मुझसे कहा--'हम तुम्हारे पतिको नवयुवक, दिव्य शरीरधारी और नेत्रयुक्त बना देंगे । इसमें कोई सन्देह नहीं है । परन्तु उनकी यह एक शर्त है कि जब हम तुम्हारे पतिको अपने समान रूपवान् बना देंगे, तब तुम्हें हम तीनोंमेंसे किसी एकको पति चुन लेना होगा ॥१३॥१४॥१५॥ हे साधो ! उनकी बात सुनकर इस अद्भुत कार्यके विषयमें पूछनेके लिये मैं यहाँ आयी हूँ । ऐसे आपत्तियुक्त कार्यके उपस्थित होनेपर मुझे क्या करना चाहिये, यह आप बतानेकी कृपा करें ॥ १६ ॥ देवताओंकी माया शीघ्र समझमें आ जाय--यह असम्भव है । उनका अभिप्राय जाननेमें मैं असमर्थ हूँ । अतः हे सर्वज्ञ प्रभो ! आप मुझे आज्ञा दीजिये । आपके इच्छानुसार मैं काम करनेको तैयार हूँ ॥ १७ ॥ च्यवनजी बोले--

हे कान्ते ! मैं कहता हूँ, तुम अभी उन दिव्य चिकित्सक अश्विनीकुमारोंके पास जाओ । हे सुव्रते ! तुम्हें उनको शीघ्र मेरे पास ले आनेकी चेष्टा करनी चाहिये ॥१८॥ तुम उनकी शर्त तुरंत स्वीकार कर लो । इस विषयमें विचार करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है । व्यासजी कहते हैं–इस प्रकार च्यवन मुनिकी आज्ञा पा जानेपर सुकन्या देवश्रेष्ठ अश्विनीकुमारोंके पास गयी और उसने उनसे कहा–॥ १९ ॥ 'हे देववरो ! आपकी शर्त मुझे स्वीकार है । आप अब कार्य-सम्पादनमें प्रवृत्त हो जायँ ।' सुकन्याके वचन सुनकर अश्विनीकुमार आश्रममें आ गये ॥२०॥ उन्होंने राजकुमारीसे कहा–'तुम्हारे पति इस सरोवरके जलमें उतर जायँ ।' रूपवान् बननेकी इच्छा थी ही, अतः च्यवनजी तुरंत जलमें उतर गये ॥२१॥ तत्पश्चात् वे अश्विनीकुमार भी उस उत्तम सरोवरमें प्रविष्ट हो गये । फिर तुरंत वे तीनों व्यक्ति उस तालाबसे बाहर निकल आये ॥ २२ ॥ अब उन तीनोंकी दिव्य आकृतिमें कोई अन्तर नहीं रहा । सभी एक समान नवयुवक बन गये । सबकी एकसी अवस्था थी । दिव्य कुण्डलों और आभूषणोंसे वे तीनों व्यक्ति अनुपम शोभा पा रहे थे ॥२३॥ वे सभी एक साथ बोल उठे–'हे वरवर्णिनी ! हे भद्रे ! हे अमलानने ! तुम्हें हम-

समीपं मे शीघ्रं देवभिषग्वरौ ॥ १८ ॥ क्रियतामाशु तद्वाक्यं नात्र कार्या विचारणा ॥ व्यास उवाच ॥ एवं सा समनुज्ञाता तत्र गत्वा वचोऽब्रवीत् ॥१९॥ क्रियतामाशु नासत्यौ समयेन सुरोत्तमौ ॥ तच्छ्रुत्वा चाश्विनौ वाक्यं तस्यास्तौ तत्र चागतौ ॥२०॥ उचतू राजपुत्रीं तां पतिस्तव विशत्वपः ॥ रूपार्थं च्यवनस्तूर्णं ततोऽम्भः प्रविवेश ह ॥ २१ ॥ अश्विनावपि पश्चात्तत्प्रविष्टौ सर उत्तमम् ॥ ततस्ते निःसृतास्तस्मात्सरसस्तत्क्षणात्त्रयः ॥ २२ ॥ तुल्यरूपा दिव्यदेहा युवानः सदृशाः किल ॥ दिव्यकुंडलभूषाढ्याः समानायवास्तदा ॥ २३ ॥ तेऽब्रुवन्सहिताः सर्वे वृणीष्व वरवर्णिनि ॥ अस्माकमीप्सितं भद्रे पतिं त्वममलानने ॥२४॥ यस्मिन्वाऽप्यधिका प्रीतिस्तं वृणुष्व वरानने ॥ व्यास उवाच ॥ सा दृष्ट्वा तुल्यरूपांस्तान्समानवयसस्तथा ॥ २५ ॥ एकस्वरांस्तुल्यवेषांस्त्रीन्वै देवसुतोपमान् ॥ सा तु संशयमापन्ना वीक्ष्य तान्सदृशाकृतीन् ॥ २६ ॥ अजानती पतिं सम्यग्व्याकुला समचिंतयत् ॥ किं करोमि त्रयस्तुल्याः कं वृणोमि न वेद्म्यहम् ॥२७॥ पतिं देवसुता ह्येते संशये पतिताऽस्म्यहम् ॥ इन्द्रजालमिदं सम्यग्देवाभ्यामिह कल्पितम् ॥ २८ ॥ कर्तव्यं किं मया चात्र मरणं समुपागतम् ॥ न मया पतिमुत्सृज्य वरणीयः कथंचन ॥ २९ ॥ देवस्त्वाधुनिकः कश्चिदित्येषा मम धारणा ॥ इति संचिंत्य मनसा परां विश्वेश्वरीं शिवाम् ॥ ३० ॥ दध्यौ भगवतीं देवीं तुष्टाव च कृशोदरी ॥

लोगोंमेंसे जो भी पसन्द हो, उसे पति बना लो ॥ २४ ॥ हे वरानने ! जिसके प्रति तुम्हारा विशेष प्रेम हो, उसे वरण कर लो ।' व्यासजी बोले–देवकुमारको तुलना करनेवाले वे तीनों व्यक्ति रूप, अवस्था, स्वर और वेषभूषामें बिल्कुल एक जैसे थे । सबकी आकृति एक समान थी । उन्हें देखकर सुकन्या बड़े असमञ्जसमें पड़ गयी ॥ २५ ॥ २६ ॥ मेरे पति कौन हैं–यह भली भाँति वह समझ नहीं पा रही थी । अत्यन्त घबराकर सोचने लगी–'मैं क्या करूँ, तीनों एक समान हैं । समझमें नहीं आता कि किसको पति बनाऊँ ॥ २७ ॥ ओह, मेरे सामने यह बड़ी ही संशयग्रस्त समस्या उपस्थित हो गयी । इन दोनों देवताओं द्वारा फैलाया हुआ यह अच्छा इन्द्रजाल है ॥२८॥ मेरे लिये तो यह मृत्यु ही सामने उपस्थित हो गयी है । इस अवसरपर मुझे क्या करना चाहिये–अपने पतिको छोड़कर दूसरेको मैं किसी प्रकार वरण नहीं कर सकती' ॥ २९ ॥ इस प्रकार मनमें सोचकर सुकन्या कल्याणस्वरूपिणी भगवती जगदम्बाके

ध्यानमें तत्पर हो गयी । साथ ही उनका स्तवन भी आरम्भ कर दिया । सुकन्या बोली—हे जगन्माता ! मैं असीम दुःखसे संतप्त होकर तुम्हारी शरणमें आयी हूँ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ कमलके आसनपर विराजनेवाली हे शंकरप्रिये देवी ! मैं तुम्हारे चरणोंमें बार बार मस्तक झुकाती हूँ ॥३२॥ अब मेरे सतीधर्मकी रक्षा तुम्हारे ऊपर निर्भर है । हे विष्णुप्रिये ! हे लक्ष्मी ! हे वेदमाता ! हे सरस्वती ! मैं तुम्हें प्रणाम करती हूँ । इस सचराचर सम्पूर्ण जगत्की रचना तुमने ही की है ॥३३॥ सावधान होकर इस जगत्की रक्षा करना भी तुम्हारा स्वाभाविक गुण है । जब संसारको शान्त करनेका विचार होता है, तब तुम इसे अपनेमें लीन कर लेती हो । ब्रह्मा, विष्णु और शंकरकी तुम जननी हो—इस बातका सभी अनुमोदन करते हैं ॥३४॥ तुम अज्ञानियोंको उत्तम बुद्धि प्रदान करती हो । ज्ञानीजन तुम्हारी उपासनासे सदाके लिये मुक्त हो जाते हैं । परम पुरुषको प्रिय दीखनेवाली तुम पूर्ण प्रकृतिस्वरूपा देवीको सब लोग नहीं जान सकते ॥ ३५ ॥ श्रेष्ठ विचारवाले व्यक्तियोंको तुम्हारी कृपासे भुक्ति और मुक्ति दोनों सुलभ हो जाती हैं । तुम सम्पूर्ण प्राणियोंके लिये सुखकी साधन हो । अज्ञानी जन दुःख पाते हैं—यह भी तुम्हारी ही

सुकन्योवाच ॥ शरणं त्वां जगन्मातः प्राप्ताऽस्मि भृशदुःखिता ॥ ३१ ॥ रक्ष मेऽद्य सतीधर्मं नमामि चरणौ तव ॥ नमः पद्मोद्भवे देवि नमः शंकरवल्लभे ॥ ३२ ॥ विष्णुप्रिये नमो लक्ष्मि वेदमातः सरस्वति ॥ इदं जगत्त्वया सृष्टं सर्वं स्थावरजंगमम् ॥३३॥ पासि त्वमिदमव्यग्रा तथाऽत्सि लोकशांतये ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशानां जननी त्वं सुसंमता ॥ ३४ ॥ बुद्धिदाऽसि त्वमज्ञानां ज्ञानिनां मोक्षदा सदा ॥ आज्ञा त्वं प्रकृतिः पूर्णा पुरुषप्रियदर्शना ॥ ३५ ॥ भुक्तिमुक्तिप्रदाऽसि त्वं प्राणिनां विशदात्मनाम् ॥ अज्ञानां दुःखदा कामं सत्त्वानां सुखसाधना ॥ ३६ ॥ सिद्धिदा योगिनामंब जयदा कीर्तिदा पुनः ॥ शरणं त्वां प्रपन्नाऽस्मि विस्मयं परमं गता ॥ ३७॥ पतिं दर्शय मे मातर्मग्नाऽस्मि शोकसागरे ॥ देवाभ्यां चरितं कूटं कं वृणोमि विमोहिता ॥ ३८ ॥ पतिं दर्शय सर्वज्ञे विदित्वा मे सतीव्रतम् ॥ व्यास उवाच ॥ एवं स्तुता तदा देवी तथा त्रिपुरसुंदरी ॥ ३९ ॥ हृदयेऽस्यास्तदा ज्ञानं ददावाशु सुखोदयम् ॥ निश्चित्य मनसा तुल्यवयोरूपधरान्सती ॥ ४० ॥ प्रसमीक्ष्य तु तान्सर्वान्वव्रे बाला स्वकं पतिम् ॥ वृतेऽथ च्यवने देवौ संतुष्टौ तौ बभूवतुः ॥ ४१ ॥ सतीधर्मं समालोक्य संप्रीतौ ददतुर्वरम् ॥ भगवत्याः प्रसादेन प्रसन्नौ तौ सुरोत्तमौ ॥ ४२ ॥

व्यवस्था है ॥ ३६ ॥ हे माता ! तुम योगियोंको सिद्धि, विजय और कीर्ति प्रदान करती हो । मैं अत्यन्त विस्मयमें पड़ गयी हूँ । इस अवसरपर केवल तुम्हीं मेरे लिये शरण्य हो ॥३७॥ हे माता ! मैं इस शोकके अगाध समुद्रमें गोते खा रही हूँ । मुझे मेरे पतिदेवको दिखानेकी कृपा करो । कारण, ये देवतालोग कपट-जाल फैलाये हुए हैं। मेरी बुद्धि कुण्ठित हो गयी है ॥३८॥ मैं स्वयं किसको पति स्वीकार करूँ ? हे सर्वज्ञे ! तुम मेरे पतिदेवका साक्षात्कार करा दो । मैं सतीत्व-व्रतका पूर्णतया पालन करती हूँ--यह बात तुमसे अविदित नहीं है। व्यासजी कहते हैं—इस प्रकार जब सुकन्याने त्रिपुरसुन्दरी भगवती जगदम्बाकी स्तुति की, तब देवीने शीघ्र सुख पहुँचानेवाला ज्ञान उसके हृदयमें उत्पन्न कर दिया । जिससे वह साध्वी सुकन्या समान रूपवाले उन पुरुषोंमेंसे अपने पतिको पहचाननेमें सफलता पा गयी ॥ ३९ ॥ ४० ॥ अब उसने उन तीनों पुरुषोंपर दृष्टि दौड़ायी और उनमें जो अपने वास्तविक पति च्यवनजी थे, उन्हें चुन लिया । यों सुकन्या द्वारा पति रूपसे च्यवन मुनिके स्वीकृत हो जानेपर अश्विनीकुमार संतुष्ट हो गये ॥ ४१ ॥ सुकन्याके सतीधर्मको देखकर उनके मनमें बड़ा आनंद हुआ । उन्होंने

उसे वरदान दिया। कारण, भगवती जगदम्बाकी कृपासे वे प्रधान देवता अश्विनीकुमार परम प्रसन्न थे ॥४२॥ च्यवन मुनिसे आज्ञा लेकर उन दोनों कुमारोंने तुरंत वहाँसे चलनेकी तैयारी कर ली। सुंदर रूप, नेत्र और युवती भार्या पा जानेके कारण च्यवन मुनि भी बड़े ही हर्षित हुए। उन महान् तेजस्वी मुनिने अश्विनीकुमारोंसे यह वचन कहा—हे देववरो! आप दोनोंने मेरा बड़ा उपकार किया है ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ क्या कहूँ, इस संसारमें सर्वोत्तम सुन्दरी भार्या पाकर भी मैं कोई सुख नहीं पा रहा था, बल्कि मुझे एक पर एक दुःख ही झेलने पड़ते थे ॥ ४५ ॥ क्योंकि मेरे आँख नहीं थी। मैं अत्यन्त बूढ़ा हो गया था। मंदभागी बनकर निर्जन वनमें पड़ा था। ऐसी स्थितिमें आपलोगोंने मुझे नेत्र, युवावस्था और अद्भुत रूप प्रदान किया है ॥४६॥ अतः मैं भी कुछ उपकार करानेके लिये आपसे प्रार्थना कर रहा हूँ। क्योंकि उपकारी मित्रके प्रति जो किसी प्रकारका उपकार नहीं करता, उस मानवको धिक्कार है। संसारमें देवता भी ऋणी हो सकते हैं, तब मानवकी तो बात ही क्या है। अतएव मेरी हार्दिक इच्छा है कि आपलोगोंको कोई अभीष्ट पदार्थ प्रदान करूँ॥४७॥४८॥ हे देवेश्वरो! आपने मुझे नूतन शरीर

मुनिमामंत्र्य तरसा गमनायोद्यतावुभौ॥ लब्ध्वा तु च्यवनो रूपं नेत्रे भार्यां च यौवनम्॥४३॥ हृष्टोऽब्रवीन्महातेजास्तौ नासत्याविदं वचः॥ उपकारः कृतोऽयं मे युवाभ्यां सुरसत्तमौ ॥४४॥ किं ब्रवीमि सुखं प्राप्तं संसारेऽस्मिन्ननुत्तमे ॥ प्राप्य भार्यां सुकेशांतां दुःखं मेऽभवदन्वहम् ॥४५॥ अंधस्य चातिवृद्धस्य भोगहीनस्य कानने ॥ युवाभ्यां नयने दत्ते यौवनं रूपमद्भुतम् ॥ ४६ ॥ संपादितं ततः किंचिदुपकर्तुमहं ब्रुवे ॥ उपकारिणि मित्रे यो नोपकुर्यात्कथंचन ॥ ४७ ॥ तं धिगस्तु नरं देवौ भवेच्च ऋणवान्भुवि ॥ तस्माद्वां वांछितं किंचिद्दातुमिच्छामि सांप्रतम् ॥ ४८ ॥ आत्मनो ऋण-मोक्षाय देवेशौ नूतनस्य च ॥ प्रार्थितं वां प्रदास्यामि यदलभ्यं सुरासुरैः ॥ ४९ ॥ ब्रुवाथां वां मनोदिष्टं प्रीतोऽस्मि सुकृतेन वाम् ॥ श्रुत्वा तौ तु मुनेर्वाक्यमभिमंत्र्य परस्परम् ॥ ५० ॥ तमूचतुर्मुनिश्रेष्ठं सुकन्यासहितं स्थितम् ॥ मुने पितुः प्रसादेन सर्वं नो मनसेप्सितम् ॥ ५१ ॥ उत्कण्ठा सोमपानस्य वर्तते नौ सुरैः सह ॥ भिषजाविति देवेन निषिद्धौ चमसग्रहे॥५२॥ शक्रेण विततेयज्ञे ब्रह्मणः कनकाचले॥ तस्मात्त्वमपि धर्मज्ञ यदि शक्तोऽसि तापस ॥५३॥ कार्यमेतद्धि कर्तव्यं वांछितं नो सुसंमतम् ॥ एतद्विज्ञाय वा ब्रह्मन्कुरु वां सोमपायिनौ ॥५४॥ पिपासाऽस्ति सुदुष्प्रापा

प्रदान किया है, इस ऋणसे मुक्त होनेके लिये माँगनेपर मैं आपलोगोंको वह पदार्थ भी दे सकूँगा, जो देवताओं तथा दानवोंके लिये भी अलभ्य है ॥ ४९ ॥ आपके इस उत्तम कार्यसे मैं बहुत ही प्रसन्न हूँ। आप अपना मनोरथ व्यक्त करें।' च्यवन मुनिके वचन सुनकर अश्विनीकुमारोंने परस्पर परामर्श किया ॥ ५० ॥ तत्पश्चात् सुकन्यासहित बैठे हुए उन मुनिश्रेष्ठसे वे कहने लगे—'मुनिवर! पिताजीकी कृपासे हमारे सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण हैं ॥ ५१ ॥ परंतु देवताओंकी पंक्तिमें बैठकर सोमपान करनेकी हमारी अभिलाषा अभी पूरी नहीं हुई है। जब यज्ञमें सोमरस पीनेका अवसर आता है, तब देवता हमें वैद्य मानकर निषिद्ध कर देते हैं ॥५२॥ सुमेरु पर्वतपर ब्रह्माजीका यज्ञ हो रहा था। इन्द्रके विरोधसे हमें वहाँ सोमरस नहीं मिल सका। अतएव धर्मके जाननेवाले हे तपस्वीजी! आपमें कोई शक्ति हो तो हमारी यह अभिलाषा पूर्ण कर दीजिये ॥ ५३ ॥ हमें सोमरस पीनेका अधिकार प्राप्त हो जाय। हे ब्रह्मन्! हमारी इस सुसम्मत इच्छापर विचार करके आपको इस कार्यमें प्रवृत्त होना चाहिये। सोमरसकी प्यास बुझना हमारे लिये बड़ा ही कठिन हो गया है। आप चाहेंगे तो वह प्यास बुझ जायगी।'

अश्विनीकुमारोंकी बात सुनकर च्यवन मुनिने बड़े मधुर शब्दोंमें कहा—॥ ५४ ॥ ५५ ॥ 'मैं अत्यन्त वृद्ध हो गया था। आपलोगोंने मुझे रूपवान् और नवयुवक बना दिया है। आपकी कृपासे गुणवती भार्या भी मेरे पास है ॥ ५६ ॥ अतएव मैं अमिततेजस्वी राजा शर्यातिके विशाल यज्ञमें प्रसन्नतापूर्वक इन्द्रके समक्ष आप दोनोंको सोमरस पीनेका अधिकारी अवश्य बना दूँगा। मेरी यह बात बिल्कुल सत्य है। शीघ्र ही अमित तेजस्वी राजा शर्यातिके यहाँ यज्ञ होगा। च्यवन मुनिकी यह बात सुनकर अश्विनीकुमार आनन्दपूर्वक स्वर्ग सिधारे और च्यवनजी भी सुकन्याको लेकर अपने आश्रमपर चले गये ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते सप्तमस्कन्धे 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

(च्यवनको नेत्रयुक्त तथा तरुण देखकर शर्यातिका सन्देह) राजा जनमेजयने पूछा—च्यवनने चिकित्सक अश्विनीकुमारोंको किस प्रकार सोमरस पीनेका अधिकारी बनाया ? उनकी बात कैसे सत्य सिद्ध हुई ? ॥१॥ क्या देवराज इन्द्रके बलके सामने मानवी शक्तिकी तुलना की जा सकती है। इन्द्रने जिन्हें सोमरस पीनेका अनधिकारी सिद्ध कर दिया था, उन

त्वत्तः समुपयास्यति ॥ च्यवनस्तु तयोः प्राह तच्छ्रुत्वा वचनं मृदु ॥५५॥ यदहं रूपसंपन्नो वयसा च समन्वितः ॥ कृतो भवद्भ्यां वृद्धः सन्भार्यां च प्राप्तवानिति ॥ ५६ ॥ तस्माद्युवां करिष्यामि प्रीत्याऽहं सोमपायिनौ ॥ मिषतो देवराजस्य सत्यमेतद्ब्रवीम्यहम् ॥ ५७ ॥ राज्ञस्तु वितते यज्ञे शर्यातेरमितद्युतेः ॥ इत्याकर्ण्य वचो हृष्टौ तौ दिवं प्रति जग्मतुः ॥ ५८ ॥ च्यवनस्तां गृहीत्वा तु जगामाश्रममंडलम् ॥ ५९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

॥ जनमेजय उवाच ॥ च्यवनेन कथं वैद्यौ तौ कृतौ सोमपायिनौ ॥ वचनं च कथं सत्यं जातं तस्य महात्मनः ॥ १ ॥ मानुषस्य बलं कीदृग्देवराजबलं प्रति ॥ निषिद्धौ भिषजौ तेन कृतौ तौ सोमपायिनौ ॥ २ ॥ धर्मनिष्ठ तदाश्चर्यं विस्तरेण वद प्रभो ॥ चरितं च्यवनस्याद्य श्रोतुकामोऽस्मि सर्वथा ॥ ३ ॥ व्यास उवाच ॥ निशामय महाराज चरितं परमाद्भुतम् ॥ च्यवनस्य मखे तस्मिञ्छर्यातेर्भुवि भारत ॥ ४ ॥ सुकन्यां सुन्दरीं प्राप्य च्यवनः सुरसन्निभः ॥ विजहार प्रसन्नात्मा देवकन्यामिवापरः ॥ ५ ॥ कदाचिदथ शर्यातिभार्या चिंतातुरा भृशम् ॥ पतिं प्राह वेपमाना वचनं रुदती प्रिया ॥ ६ ॥ राजन्पुत्री त्वया दत्ता मुनयेऽन्धाय कानने ॥ मृता जीवति वा सा तु द्रष्टव्या सर्वथा त्वया ॥७॥ गच्छ नाथ

वैद्योंको फिर अधिकारी बनानेमें च्यवनमुनि कैसे सफलता पा सके ? ॥२॥ धर्ममें आस्था रखनेवाले हे प्रभो! इस आश्चर्यपूर्ण विषयको विस्तारपूर्वक कहनेकी कृपा कीजिये। क्योंकि च्यवनमुनिका वृत्तान्त मैं सुनना चाहता हूँ ॥३॥ व्यासजी कहते हैं—हे महाराज ! राजा शर्यातिने जब भूमण्डलपर यज्ञ किया, तब च्यवनमुनि उसमें पधारे थे। इस विषयकी पूरी कथा कहता हूँ— सुनो ॥ ४ ॥ च्यवनमुनि देवताके समान तेजस्वी थे। सुन्दरी सुकन्याको पाकर उनका हृदय प्रसन्नतासे खिल उठा था। उन्होंने सुकन्यापर इस प्रकार अधिकार जमा लिया, मानो कोई देवता देवकन्याको प्राप्त कर चुका हो ॥ ५ ॥ एक समयकी बात है—महाराज शर्यातिकी पत्नी अपनी कन्याके विषयमें अत्यन्त चिन्तातुर हो उठी। काँपती और रोती हुई वह अपने पतिसे बोली—॥ ६ ॥ राजन् ! आपने एक अंधे मुनिको पुत्री सौंप दी थी। पता नहीं, वनमें वह जीवित है अथवा उसके प्राण निकल गये। आपको सम्यक् प्रकारसे उसे देखना चाहिये।

॥७॥ हे नाथ ! आप एक बार सुकन्याको देखनेके लिए आदरपूर्वक च्यवन मुनिके आश्रमपर जाइये । देखिये, वैसे अयोग्य पतिको पाकर वह कैसे अपना जीवन बिता रही है ॥ ८ ॥ हे राजर्षे ! पुत्रीके दुःखसे मेरे हृदयमें आग धधक रही है । तपसे दुर्बल शरीरवाली मेरी उस विशालनयनी कन्याको एक बार मेरे पास लानेकी कृपा कीजिये ॥ ९ ॥ नेत्रहीन पति पाकर उसे अनेक प्रकारके कष्ट भोगने पड़ते होंगे । वह वृक्षोंकी छाल पहनती होगी । मैं अपनी उस क्षीणकाय पुत्रीको तुरंत देखना चाहती हूँ ॥१०॥ राजा शर्यातिने कहा—हे विशालाक्षी ! हे वरारोहे ! मैं अभी प्रिय पुत्री सुकन्याको देखनेके लिए उत्तम व्रतका आचरण करनेवाले च्यवन मुनिके पास जा रहा हूँ ॥ ११ ॥ व्यासजी कहते हैं—शोकसे अत्यन्त घबरायी हुई अपनी पत्नीसे ऐसा कहकर राजा शर्याति उसको साथ लेकर तुरंत रथपर बैठे और मुनिके आश्रमकी ओर चल पड़े ॥१२॥ आश्रमके निकट पहुँचनेपर उन्हें एक नवयुवक मुनि दिखायी पड़े । जान पड़ता था, मानो देवकुमार हों ॥ १३ ॥ देवताके आकारमें च्यवन मुनिको देखकर महाराज शर्याति बड़े विस्मयमें पड़ गये । उन्होंने सोचा—'मेरी पुत्रीने लोकमें निन्दा करानेवाला यह कैसा

मुनेस्तावदाश्रमं द्रष्टुमादरात् ॥ किं करोति सुकन्या सा प्राप्य नाथं तथाविधम् ॥ ८ ॥ पुत्रीदुःखेन राजर्षे दग्धाऽस्मि सर्वथा हृदि ॥ तामानय विशालाक्षीं तपःक्षामां मदंतिके ॥ ९ ॥ पश्यामि सर्वथा पुत्रीं कृशांगीं वल्कलावृताम् ॥ अंधं पतिं समासाद्य दुःखभाजं कृशोदरीम् ॥ १० ॥ ॥ शर्यातिरुवाच ॥ गच्छामोऽद्य विशालाक्षि सुकन्यां द्रष्टुमादरात् ॥ प्रियपुत्रीं वरारोहे मुनिं तं संशितव्रतम् ॥११॥ व्यास उवाच ॥ एवमुक्त्वा तु शर्यातिः कामिनीं शोकसंकुलाम् ॥ जगाम रथमारुह्य त्वरितश्चाश्रमं मुनेः ॥ १२ ॥ गत्वाऽऽश्रमसमीपे तु तमपश्यन्महीपतिः ॥ नवयौवनसंपन्नं देवपुत्रोपमं मुनिम् ॥ १३ ॥ तं विलोक्यामराकारं विस्मयं नृपतिर्गतः ॥ किं कृतं कुत्सितं कर्म पुत्र्या लोकविगर्हितम् ॥ १४ ॥ निहतोऽसौ मुनिर्वृद्धस्त्वनयाऽन्यः पतिः कृतः ॥ कामपीडितया कामं प्रशांतोऽप्यतिनिर्धनः ॥१५॥ दुःसहोऽयं पुष्पधन्वा विशेषेण च यौवने ॥ कुले कलंकः सुमहाननया मानवे कृतः ॥ १६ ॥ धिक्तस्य जीवितं लोके यस्य पुत्री हि कुत्सिता ॥ सर्वपापैस्तु दुःखाय पुत्री भवति देहिनाम् ॥ १७ ॥ मया त्वनुचितं कर्म कृतं स्वार्थस्य सिद्धये ॥ वृद्धायांधाय या दत्ता पुत्री सर्वात्मना किल ॥१८॥ कन्या योग्याय दातव्या पित्रा सर्वात्मना किल॥ तादृशं हि फलं प्राप्तं यादृशं वै कृतं मया ॥१९॥ हन्मि चेदद्य तनयां दुःशीलां पापकारिणीम् ॥ स्त्रीहत्या दुस्तरा स्यान्मे तथा पुत्र्या विशेषतः ॥२०॥

नीच कर्म कर डाला है ॥१४॥ च्यवन मुनि बूढ़े थे । सम्भव है, वे मार डाले गये हों और इसने कोई दूसरा पति चुन लिया हो । कोई कितना भी शान्तचित्त अथवा निर्धन क्यों न हो, किंतु कामकी पीड़ासे वह कुत्सित कर्म कर ही बैठता है ॥१५॥ यह कामदेव बड़ा ही दुःसह है । युवावस्थामें तो इसका वेग और भी बढ़ जाता है । पवित्र मनुवंशमें इसने यह अत्यन्त अमिट कलङ्क लगा दिया ॥ १६ ॥ जिसकी ऐसा नीच कर्म करनेवाली पुत्री हो, उस पुरुषको धिक्कार है । मेरे द्वारा भी स्वार्थवश ही यह अनुचित कर्म हो गया था । क्योंकि मैंने समझ-बूझकर नेत्रहीन और वृद्ध मुनिको पुत्री सौंप दी थी । पिताको चाहिये कि भलीभाँति सोच-समझकर किसी योग्य वरके साथ अपनी कन्याका विवाह करे । मैंने जैसा कर्म किया, वैसा ही फल मेरे सामने आया ॥ १७–१९ ॥ अब मैं यदि इस नीच कर्म करनेवाली दुश्चरित्रा कन्याको मार डालता हूँ तो कभी न मिटनेवाली स्त्री-हत्याका दोष लगेगा । विशेषतः

यह अपनी ही पुत्री है ॥२०॥ इस परम प्रसिद्ध मनुवंशको मैंने कलङ्कित कर दिया। जगत्में मेरी घोर निन्दा होगी। एक ओर बलवती लोकनिन्दा और दूसरी ओर दुस्त्यज संततिकी स्नेहशृङ्खला। क्या करूँ, कुछ समझमें नहीं आता' ॥२१॥ इस प्रकार राजा शर्याति चिन्ताके अगाध सागरमें गोते खा रहे थे। संयोगवश उसी समय अपने चिन्तित पितापर सुकन्याकी दृष्टि पड़ गयी। फिर तो महाराज शर्यातिकी यह स्थिति देखकर सुकन्या तुरंत उनके पास गयी और आदरपूर्वक उनसे पूछने लगी—॥२२॥२३॥ 'पिताजी! मालूम होता है कि कमलके समान नेत्रवाले इन नवयुवक मुनिको देखकर आपके मनमें संदेह उत्पन्न हो रहा है। चिंतासे आप घबराये हुए जान पड़ते हैं। मनुवंशको सुशोभित करनेवाले हे राजेन्द्र! आप श्रेष्ठ पुरुष हैं। आइए—मेरे इन पतिदेवको प्रणाम कीजिये। इस समय विषाद करना बिल्कुल बेकार है' ॥ २४ ॥ २५ ॥ व्यासजी कहते हैं—अपनी पुत्री सुकन्याकी बात सुनकर राजा शर्याति जो दुःख तथा क्रोधसे संतप्त हो रहे थे, सामने उपस्थित सुकन्याके प्रति बोले ॥२६॥ राजाने कहा—बेटी! वे परम तपस्वी बूढ़े-अंधे च्यवन मुनि कहाँ गये? यह मदोन्मत्त नवयुवक पुरुष कौन

मनुवंशस्तु विख्यातः सकलंकः कृतो मया ॥ लोकापवादो बलवान्दुस्त्याज्या स्नेहशृंखला ॥ २१ ॥ किं करोमीति चिंताऽब्धौ यदा मग्नः स पार्थिवः ॥ सुकन्यया तदा दैवाद्दृष्टश्चिंताकुलः पिता ॥२२॥ सा दृष्ट्वा तं जगामाशु सुकन्या पितुरंतिके ॥ गत्वा पप्रच्छ भूपालं प्रेमपूरितमानसा ॥ २३ ॥ किं विचारयसे राजंश्चिन्ताव्याकुलिताननः ॥ उपविष्टं मुनिं वीक्ष्य युवानमंबुजेक्षणम् ॥२४॥ एह्येहि पुरुषव्याघ्र प्रणमस्व पतिं मम ॥ मा विषादं नृपश्रेष्ठ सांप्रतं कुरु मानव ॥ २५ ॥ व्यास उवाच ॥ इति पुत्र्या वचः श्रुत्वा शर्यातिः क्रोधपीडितः ॥ प्रोवाच वचनं राजा पुरःस्थां तनयां ततः ॥२६॥ राजोवाच ॥ क्व मुनिश्च्यवनः पुत्रि वृद्धोऽन्धस्तापसोत्तमः ॥ कोऽयं युवा मदोन्मत्तः संदेहोऽत्र महान्मम ॥२७॥ मुनिः किं निहतः पापे त्वया दुष्कृतकारिणि ॥ नूतनोऽसौ पतिः कामात्कृतः कुलविनाशिनि ॥२८॥ सोऽहं चिन्तातुरस्तं न पश्याम्याश्रमसंस्थितम् ॥ किं कृतं दुष्कृतं कर्म कुलटाचरितं किल ॥ २९ ॥ निमग्नोऽहं दुराचारे शोकाब्धौ त्वत्कृतेऽधुना ॥ दृष्ट्वैनं पुरुषं दिव्यमदृष्ट्वा च्यवनं मुनिम् ॥ ३० ॥ विहस्य तमुवाचाशु सा श्रुत्वा वचनं पितुः ॥ गृहीत्वाऽऽनीय पितरं भर्तुरंतिकमादरात् ॥३१॥ च्यवनोऽसौ मुनिस्तात जामाता ते न संशयः ॥ अश्विभ्यामीदृशः कांतः कृतः कमललोचनः ॥३२॥ यदृच्छयाऽत्र संप्राप्तौ नासत्यावाश्रमे मम ॥ ताभ्यां करुणया नूनं च्यवनस्तादृशः कृतः ॥ ३३ ॥ नाहं

है? इस विषयमें मुझे महान् संदेह हो रहा है ॥२७॥ दुराचारमें रत रहनेवाली अरी पापिनी! तूने क्या मुनिको मार डाला है? हे कुलनाशिनी! क्या कामके वशीभूत होकर तू इस नवयुवक पुरुषकी दासी बन गयी है? ॥२८॥ आश्रममें बैठे हुए इस पुरुषको देखना ही मेरे लिये विशेष चिंताका कारण बन गया है। तूने यह क्या नीच कर्म कर डाला? दुश्चरित्र स्त्रियाँ ही ऐसा व्यवहार किया करती हैं ॥२९॥ अरी दुराचारसे प्रेम रखनेवाली कन्ये! इस समय तेरे पास यह एक नवयुवक पुरुष दिखायी दे रहा है और वृद्ध मुनि कहीं नहीं दीखते ॥ ३० ॥ अपने पिता शर्यातिकी बात सुनकर सुकन्याका मुँह मुसकानसे भर गया। पिताजीको साथ लेकर वह तुरंत च्यवन मुनिके पास पहुँची और आदरपूर्वक राजासे कहने लगी—॥ ३१ ॥ 'पिताजी! आपके जामाता वे च्यवन मुनि ये ही हैं। अश्विनीकुमारोंकी कृपासे इनकी ऐसी कमनीय कांति हो गयी है। उन्होंने ही इन्हें कमल-जैसे नेत्र प्रदान किये हैं ॥ ३२ ॥ दोनों अश्विनीकुमार

स्वयं मेरे इस आश्रमपर पधारे थे। उन्होंने ही दयालुतावश इन मुनिवरको ऐसा बना दिया है ॥ ३३ ॥ पिताजी ! मैं आपकी पुत्री हूँ। हे राजन् ! पतिदेवका रूप देखकर मोहवश आपके मनमें जैसा विचार उत्पन्न हो रहा है, वैसा घृणित कर्म मेरे द्वारा होना सर्वथा असम्भव है ॥३४॥ हे राजन् ! भृगुवंशको सुशोभित करनेवाले इन च्यवन मुनिको प्रणाम कीजिये। आप इनसे ही पूछ लीजिये। ये सारी बातें आपको विस्तारपूर्वक बतला देंगे। तब आपका संदेह दूर हो जायगा' ॥ ३५ ॥ पुत्री सुकन्याकी बात सुनकर राजा शर्याति तुरन्त मुनिके पास गये। उनके चरणोंपर मस्तक झुकाया। तदनन्तर उन्होंने आदरपूर्वक पूछा ॥ ३६ ॥ राजाने कहा--हे भृगुकुलभूषण मुने ! आप शीघ्र अपना समस्त वृत्तान्त बतानेकी कृपा करें। आपकी आँखें कैसे ठीक हुईं और कैसे आपका बुढ़ापा चला गया ॥३७॥ हे ब्रह्मन् ! आपके इस अत्यन्त सुन्दर रूपको देखकर मुझे महान् सन्देह हो रहा है। आप विस्तारके साथ इस रहस्यका उद्घाटन कीजिये, जिसे सुनकर मैं सुखी हो सकूँ ॥३८॥ च्यवनजी बोले--हे राजेन्द्र ! अश्विनीकुमार देवताओंके वैद्य हैं। वे यहाँ पधारे थे। उन्होंने ही कृपापूर्वक मेरा यह उपकार किया है

तव सुता तात यथा स्यां पापकारिणी ॥ यथा त्वं मन्यसे राजन्विमूढो रूपसंशये ॥ ३४ ॥ प्रणम त्वं मुनिं राजन्भार्गवं च्यवनं पितः ॥ आपृच्छ कारणं सर्वं कथयिष्यति विस्तरम् ॥ ३५ ॥ इति श्रुत्वा वचः पुत्र्याः शर्यातिस्त्वरितस्तदा ॥ प्रणनाम मुनिं तत्र गत्वा पप्रच्छ सादरम् ॥ ३६ ॥ ॥ राजोवाच ॥ कथयस्व स्ववृत्तांतं भार्गवाशु यथोचितम् ॥ नयने च कथं प्राप्ते क्व गता ते जरा पुनः ॥३७॥ संशयोऽयं महान्मेऽस्ति रूपं दृष्ट्वाऽतिसुन्दरम् ॥ वद विस्तरतो ब्रह्मञ्छ्रुत्वाऽहं सुखमाप्नुयाम् ॥ ३८ ॥ च्यवन उवाच ॥ नासत्यावत्र संप्राप्तौ देवानां भिषजावुभौ ॥ उपकारः कृतस्ताभ्यां कृपया नृपसत्तम ॥ ३९ ॥ मया ताभ्यां वरो दत्त उपकारस्य हेतवे ॥ करिष्यामि मखे राज्ञो भवंतौ सोमपायिनौ ॥ ४० ॥ एवं मया वयः प्राप्तं लोचने विमले तथा ॥ स्वस्थो भव महाराज संविशस्वासने शुभे ॥ ४१ ॥ इत्युक्तः स तु विप्रेण सभार्यः पृथिवीपतिः ॥ सुखोपविष्टः कल्याणीः कथाश्चक्रे महात्मना ॥ ४२ ॥ अथैनं भार्गवः प्राह राजानं परिसांत्वयन् ॥ याजयिष्यामि राजंस्त्वां संभारानुपकल्पय ॥ ४३ ॥ मया प्रतिश्रुतं ताभ्यां कर्तव्यौ सोमपौ युवाम् ॥ तत्कर्तव्यं नृपश्रेष्ठ तत यज्ञेऽतिविस्तरे ॥ ४४ ॥ इन्द्रं निवारयिष्यामि क्रुद्धं

उस उपकारके बदले मैंने उन्हें यह वर दिया है-'आप दोनों सज्जानोंको मैं राजा शर्यातिके यज्ञमें सोमरस पीनेका अधिकारी बना दूँगा'। हे महाराज ! इस प्रकार देववैद्योंके द्वारा मुझे तरुण अवस्था और ये विमल नेत्र प्राप्त हुए हैं। आप शान्तचित्त होकर इस पवित्र आसनपर विराजिये ॥३९-४१॥ च्यवन मुनिके यह कहनेपर राजा शर्याति सुखपूर्वक आसनपर बैठ गये। पास ही रानी भी बैठ गयीं। फिर महात्मा च्यवनजीसे कल्याणमयी बातें होने लगीं ॥४२॥ उन्होंने विस्तारके साथ आद्योपान्त समस्त वृत्तान्त राजाको कह सुनाया। तत्पश्चात् सान्त्वना देते हुए मुनिवर च्यवनने राजा शर्यातिसे कहा-'महाराज ! मैं आपके द्वारा यज्ञ कराऊँगा, आप सामग्रीका संग्रह कीजिये ॥४३॥ 'मेरे प्रयाससे आपलोग सोमरसका पान कर सकेंगे' इस प्रकारकी प्रतिज्ञा मैं अश्विनीकुमारोंसे कर चुका हूँ। हे नृपश्रेष्ठ ! आपके सोमयज्ञमें यदि इन्द्र कुपित होंगे तो मैं अपने तपके तेजसे उन्हें शान्त कर लूँगा। फिर अश्विनीकुमार सुगमतापूर्वक सोमरस पी सकेंगे। हे महाराज ! उस

समय च्यवन मुनिका यह कथन सुनकर राजा शर्यातिका मन प्रसन्नतासे खिल उठा। उन्होंने मुनिवरके परामर्शका अभिनन्दन किया ॥४४-४६॥ तदनन्तर च्यवनजीका सम्मान करके रानीके साथ परम संतुष्ट होकर वे अपने नगरको चले गये। मुनिकी बात मिथ्या नहीं हो सकती--यही चर्चा रास्ते भर होती रही ॥ ४७ ॥ तदनन्तर सम्पूर्ण कामनाओंसे सम्पन्न राजा शर्यातिने शुभ मुहूर्तमें एक उत्तम यज्ञशालाका निर्माण कराया ॥४८॥ वसिष्ठ प्रभृति प्रधान मुनिगण उस यज्ञमें निमन्त्रित हुए। इस प्रकार सारी व्यवस्था सम्पन्न हो जानेपर भृगुवंशी च्यवन मुनिने राजा शर्यातिसे यज्ञ कराना आरम्भ किया ॥ ४९ ॥ उस महायज्ञमें इन्द्र आदि सभी देवता आये। सोमरस पीनेकी इच्छासे अश्विनीकुमारोंका भी वहाँ आगमन हुआ ॥ ५० ॥ अश्विनीकुमारोंको देखकर वहाँ उपस्थित इन्द्रका मन शङ्कित हो उठा। वे समस्त देवताओंसे पूछने लगे–'ये अश्विनीकुमार यहाँ क्यों आये हैं ? ॥ ५१ ॥ ये चिकित्साका काम करते हैं। अतः सोमरस पीनेका इन्हें अधिकार नहीं है। इनको यहाँ किसने बुलाया है ?' राजा शर्यातिके उस महान् यज्ञमें इन्द्रके इस प्रकार पूछनेपर किसी देवताने कुछ भी उत्तर नहीं दिया ॥ ५२ ॥

तेजोबलेन वै ॥ पाययिष्यामि राजेंद्र सोमं सोममखे तव ॥ ४५ ॥ ततः परमसंतुष्टः शर्यातिः पृथिवीपतिः ॥ च्यवनस्य महाराज तद्वाक्यं प्रत्यपूजयत् ॥ ४६ ॥ संमान्य च्यवनं राजा जगाम नगरं प्रति ॥ सभार्यश्चातिसंतुष्टः कुर्वन्वार्तां मुनेः किल ॥ ४७ ॥ प्रशस्तेऽहनि यज्ञीये सर्वकामसमृद्धिमान् ॥ कारयामास शर्यातिर्यज्ञायतनमुत्तमम् ॥४८॥ समानीय मुनीन्पूज्यान्वसिष्ठप्रमुखानसौ ॥ भार्गवो याजयामास च्यवनः पृथिवीपतिम् ॥ ४९ ॥ वितते तु तथा यज्ञे देवाः सर्वे सवासवाः ॥ आजग्मुश्चाश्विनौ तत्र सोमार्थमुपजग्मतुः ॥ ५० ॥ इन्द्रस्तु शंकितस्तत्र वीक्ष्य तावश्विनावुभौ ॥ पप्रच्छ च सुरान्सर्वान्किमेतौ समुपागतौ ॥ ५१ ॥ चिकित्सकौ न सोमार्हौ केनानीताविहेति च ॥ नाब्रुवन्नमरास्तत्र राज्ञस्तु वितते मखे ॥ ५२ ॥ अगृह्णाच्च्यवनः सोममश्विनोर्देवयोस्तदा ॥ शक्रस्तं वारयामास मा गृहाणैतयोर्ग्रहम् ॥ ५३ ॥ तमाह च्यवनस्तत्र कथमेतौ रवेः सुतौ ॥ न ग्रहार्हौ च नासत्यौ ब्रूहि सत्यं शचीपते ॥ ५४ ॥ न संकरौ समुत्पन्नौ धर्मपत्नीसुतौ रवेः ॥ केन दोषेण देवेन्द्र नार्हौ सोमं भिषग्वरौ ॥ ५५ ॥ निर्णयोऽत्र मखे शक्र कर्तव्यः सर्वदैवतैः ॥ ग्राहयिष्याम्यहं सोमं कृतौ तौ सोमपौ मया ॥ ५६ ॥ प्रेरितोऽसौ मया राजा मखाय मघवन्किल ॥ एतदर्थं करिष्यामि सत्यं मे वचनं विभो ॥ ५७ ॥ आभ्यामुपकृतं शक्र तथा दत्तं नवं वयः ॥ तस्मात्प्रत्युपकारस्तु

इसके बाद जब मुनिवर च्यवनजी अश्विनीकुमारोंको सोमरस देने लगे, तब इन्द्रने उन्हें रोककर कहा–'इन्हें सोमरस मत दो' ॥ ५३ ॥ तब च्यवन मुनिने देवराज इन्द्रसे कहा–'शचीपते ! ये सूर्यकुमार सोमरसके अनधिकारी कैसे हैं, आप इस बातको सत्यतापूर्वक सिद्ध कीजिये। ये वर्णसंकर नहीं हैं। सूर्यकी धर्मपत्नीके उदरसे इनका जन्म हुआ है। हे देवेन्द्र! इन प्रधान वैद्योंमें ऐसा कौन-सा दोष है, जिसके कारण आप इन्हें सोमरस पीनेके अयोग्य बता रहे हैं ? ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ हे शक्र ! इस यज्ञमें पधारे हुए ये सब देवता ही इस बातका निर्णय कर दें। मैं इन अश्विनीकुमारोंको सोमरस पिलाकर रहूँगा। कारण, मेरे द्वारा ये इसके अधिकारी बनाये जा चुके हैं ॥५६॥ हे मघवन् ! मेरी ही प्रेरणासे ये नरेश यज्ञ कर रहे हैं। हे विभो ! मैं सत्य कहता हूँ, अश्विनीकुमारोंको सोमरस पान करनेका अवसर प्राप्त हो जाय--इसीलिये मेरा यह समस्त प्रयास है ॥ ५७ ॥ मुझे तरुण अवस्था देकर इन्होंने मेरा महान् उपकार किया है।

हे शक्र ! इस उपकारके बदलेमें प्रत्युपकार करना मेरा परम कर्तव्य है ॥५८॥ इन्द्रने कहा—हे मुने । चिकित्साका व्यवसाय करनेके कारण देवताओंने इन अश्विनीकुमारोंकी घोर निन्दा की है । अतएव ये दोनों सोमरसके अधिकारी नहीं हैं । इस लिये आप इनका भाग मत लगाइए ॥ ५९ ॥ च्यवनजी कहने लगे—हे अहल्याजार ! शान्त रहो । इस समय तुम्हारा रोष करना बिल्कुल व्यर्थ है । क्योंकि ये देवपुत्र अश्विनीकुमार सोमरसके अधिकारी न समझे जायँ—इसमें मुझे कोई भी कारण नहीं दीखता ॥ ६० ॥ हे राजन् ! इस प्रकार इन्द्र और च्यवन मुनिमें विवाद छिड़ जानेपर वहाँ उपस्थित कोई भी देवता मुनिसे कुछ नहीं कह सका । फिर तो तपस्याके प्रभावसे अत्यन्त तेजस्वी च्यवनने सोमरसका भाग लेकर अश्विनीकुमारोंको देही दिया ॥ ६१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते सप्तमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा' भाषाटीकायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

(राजा रेवतका स्वर्गारोहण) व्यासजी बोले—हे राजन् ! च्यवन मुनिने जब अश्विनीकुमारोंको सोमरस दे दिया, तब इन्द्रके क्रोधकी सीमा नहीं रही । अपना पराक्रम दिखाते हुए

कर्तव्यः सर्वथा मया ॥ ५८ ॥ इन्द्र उवाच ॥ चिकित्सकौ कृतावेतौ नासत्यौ निंदितौ सुरैः ॥ उभावेतौ न सोमार्हौ मा गृहाणैतयोर्ग्रहम् ॥ ५९ ॥ च्यवन उवाच ॥ अहल्याजार संयच्छ कोपं चाद्य निरर्थकम् ॥ वृत्रघ्न किं हि नासत्यौ न सोमार्हौ सुरात्मजौ ॥ ६० ॥ एवं विवादे समुपस्थिते च न कोऽपि वाचं तमुवाच भूप ॥ ग्रहं तयोर्भार्गवतिग्मतेजाः संग्राहयामास तपोबलेन ॥६१॥ इति श्रीदेवीभागवते सप्तमस्कन्धे षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

व्यास उवाच ॥ दत्ते ग्रहे तु राजेन्द्र वासवः कुपितो भृशम् ॥ प्रोवाच च्यवनं तत्र दर्शयन्बलमात्मनः ॥ १ ॥ मा ब्रह्मबंधो मर्यादामिमां त्वं कर्तुमर्हसि ॥ वधिष्यामि द्विषं तं त्वां विश्वरूपमिवापरम् ॥ २ ॥ च्यवन उवाच ॥ मावमंस्था महात्मानौ रूपद्रविणवर्चसा ॥ यौ चक्रतुर्मां मघवन्वृन्दारकमिवापरम् ॥ ३ ॥ ऋते त्वां विबुधाश्चान्ये कथं वाऽऽददते ग्रहम् ॥ अश्विनावपि देवेन्द्र देवौ विद्धि परन्तपौ ॥ ४ ॥ इन्द्र उवाच ॥ भिषजौ नार्हतः कामं ग्रहं यज्ञे कथंचन ॥ यदि दित्ससि मंदात्मन्शिरश्छेत्स्यामि सांप्रतम् ॥ ५ ॥ व्यास उवाच ॥ अनादृत्य तु तद्वाक्यं वासवस्य च भार्गवः ॥ ग्रहं तु ग्राहयामास भर्त्सयन्निव तं भृशम् ॥ ६ ॥ सोमपात्रं यदा ताभ्यां गृहीतं तु पिपासया ॥ समीक्ष्य बलभिद्देव इदं वचनम-

मुनिसे उन्होंने कहा—॥ १ ॥ हे ब्रह्मबन्धो ! ऐसी मर्यादा स्थापित कर देना तुम्हारे लिए सर्वथा अनुचित है । मेरा विरोध करना ही अभीष्ट हो तो मैं तुम्हें एक दूसरा विश्वरूप समझकर उसीकी भाँति तुम्हारा भी वध कर डालूँगा' ॥ २ ॥ च्यवनजीने कहा—हे मघवन् ! जिन्होंने मुझे दूसरे कामदेवके समान कमनीय बना दिया है, उन रूपकी सम्पत्तिसे अनुपम शोभा पानेवाले महात्मा अश्विनीकुमारोंका आप अपमान मत करें ॥ ३ ॥ हे देवेन्द्र ! आपके सिवा ये अन्य देवतालोग क्यों सोमरस पाते हैं ? आपको ध्यान रखना चाहिये कि ये परम तपस्वी अश्विनीकुमार भी देवता हैं ॥ ४ ॥ इन्द्रने कहा—हे मन्दात्मन् ! चिकित्सा करनेवाले वैद्य किसी प्रकार यज्ञमें भाग पानेके अधिकारी नहीं माने जाते ! तुम हठ करके इन्हें सोमरस दोगे तो मैं अभी तुम्हारा सिर धड़से अलग कर दूँगा ॥ ५ ॥ व्यासजी बोले—हे राजन् ! इन्द्रकी बातका अनादर करके उन्हें उपालम्भ देते हुए च्यवन मुनिने अश्विनी-

कुमारोंको यज्ञका भाग दे दिया ॥ ६ ॥ अश्विनीकुमार सोमरस पीनेके इच्छुक थे ही, उन्होंने जब सोमपात्र ले लिया, तब इन्द्रने रोषमें भरकर च्यवन मुनिसे कहा—॥ ७ ॥ हे मुने ! तुम इन्हें सोमरस दोगे तो मैं वैसे ही तुमपर वज्र प्रहार करूँगा, जैसे विश्वरूपको मैंने मार डाला था ॥ ८ ॥ इन्द्रके यह कहनेपर तपोऽभिमानी च्यवनजी कुपित हो उठे। उन्होंने विधिपूर्वक सोमरस अश्विनीकुमारोंको दे ही डाला ॥ ९ ॥ तब क्रोधके आवेशमें आकर इन्द्रने भी करोड़ों सूर्योंके समान चमकते हुए अपने वज्रको सम्पूर्ण देवताओंके सामने ही च्यवनजीपर चला दिया ॥ १० ॥ इन्द्रके तेजकी सीमा नहीं थी । फिर भी उनके चलाये हुए वज्रको च्यवनजीने अपने तपके प्रभावसे स्तम्भित कर दिया ॥ ११ ॥ साथ ही उन महातेजा मुनिवरने कृत्या उत्पन्न करके उसके द्वारा इन्द्रको मरवा डालनेके विचारसे अग्निमें मन्त्रपूर्वक आहुति देना आरम्भ कर दिया ॥ १२ ॥ उनकी तपस्याके प्रभावसे आहुति पड़ते ही कृत्या उत्पन्न हो गयी । उसका भयंकर एवं प्रबल पुरुषके रूपमें आविर्भाव हुआ था । उस महान् दैत्यके शरीरकी आकृति बड़ी विशाल थी ॥ १३ ॥ उसका नाम 'मद' था । उसकी सूरत बड़ी डरावनी थी।

ब्रवीत् ॥ ७ ॥ आभ्यामर्थाय सोमं त्वं ग्राहयिष्यसि चेत्स्वयम् ॥ वज्रं तु प्रहरिष्यामि विश्वरूपमिवापरम् ॥ ८ ॥ वासवेनैवमुक्तस्तु भार्गवश्चातिगर्वितः ॥ जग्राह विधिवत्सोममश्विभ्यामतिमन्युमान् ॥ ९ ॥ इन्द्रोऽपि प्राक्षिपत्कोपाद्वज्रमस्मै स्वमायुधम् ॥ पश्यतां सर्वदेवानां सूर्यकोटिसमप्रभम् ॥ १० ॥ प्रेरितं चाशनिं प्रेक्ष्य च्यवनस्तपसा ततः ॥ स्तंभयामास वज्रं स शक्रस्यामिततेजसः ॥ ११ ॥ कृत्यया स महाबाहुरिन्द्रं हंतुमिहोद्यतः ॥ जुहावाग्नौ शृतं हव्यं मंत्रेण मुनिसत्तमः ॥ १२ ॥ तत्र कृत्या समुत्पन्ना च्यवनस्य तपोबलात् ॥ प्रबलः पुरुषः क्रूरो बृहत्कायो महासुरः ॥ १३ ॥ मदो नाम महाघोरो भयदः प्राणिनामिह ॥ शरीरे पर्वताकारस्तीक्ष्णदंष्ट्रो भयानकः ॥ १४ ॥ चतस्रश्चायता दंष्ट्रा योजनानां शतं शतम् ॥ इतरे त्वस्य दशना बभूवुर्दशयोजनाः ॥ १५ ॥ बाहू पर्वतसंकाशावायतौ क्रूरदर्शनौ ॥ जिह्वा तु भीषणा क्रूरा लेलिहाना नभस्तलम् ॥ १६ ॥ ग्रीवा तु गिरिशृङ्गाभा कठिना भीषणा भृशम् ॥ नखा व्याघ्रनखप्रख्याः केशाश्चातीव भीषणाः ॥ १७ ॥ शरीरं कज्जलाभं च तस्य चास्यं भयानकम् ॥ नेत्रे दावानलप्रख्ये भीषणेऽतिभयानके ॥ १८ ॥ हनुरेका स्थिता तस्य भूमावेका दिवं गता ॥ एवंविधः समुत्पन्नो मदो नाम बृहत्तनुः ॥ १९ ॥ तं विलोक्य सुराः सर्वे भयमाजग्मुरंहसा ॥ इन्द्रोऽपि भयसंत्रस्तो युद्धाय न मनो दधे ॥ २० ॥ दैत्योऽपि वदने कामं

संसारके सभी प्राणी उसे देखकर डर गये । पर्वतके समान उसका शरीर था । दाँत बड़े तीखे थे ॥ १४ ॥ उसके चार दाँत तो सौ सौ योजन लम्बे थे। उन चारोंके अतिरिक्त जो अन्य दाँत थे, उनकी लम्बाई भी दस-दस योजन थी ॥ १५ ॥ उसकी दूरतक फैली हुई भयंकर भुजायें पर्वतकी समता कर रही थीं । अत्यन्त भयभीत करनेवाली उसकी जीभ मानो आकाश और पातालको चाट रही थी ॥१६॥ उसकी असीम भयावनी एवं कठोर गर्दन ऐसी जान पड़ती थी कि मानो पर्वतकी चोटी हो। नख बाघके नखकी तुलना कर रहे थे। केशोंकी भयंकरताका पार नहीं था ॥१७॥ उसका शरीर काजलके समान काला था । मुखकी आकृति अत्यन्त भयावनी थी । अत्यन्त भय उपजानेवाले उसके बड़े-बड़े दोनों नेत्र ऐसे जान पड़ते थे, मानो दावानल हों ॥ १८ ॥ उसका एक ओंठ पृथ्वीपर और दूसरा आकाशपर पहुँचा हुआ था । इस प्रकार विशाल शरीरवाले उस मद नामक दानवकी उत्पत्ति हो गयी ॥ १९ ॥ उसे देखकर सम्पूर्ण

देवता डर गये। इन्द्रके भी मनमें आतङ्क छा गया। अब युद्ध करनेकी बात मनसे जाती रही ॥२०॥ वह दैत्य वज्रको मुखमें लेकर सारे आकाशको व्याप्त करता हुआ सामने खड़ा था। जान पड़ता था, मानो क्रूर दृष्टिवाला यह दानव सारी त्रिलोकीको खा जायगा ॥ २१ ॥ तभी निगल जानेके विचारसे कुपित होकर वह इन्द्रके ऊपर टूट पड़ा। हा, अब हम मारे गये—यों कहकर सब देवता जोर-जोरसे चिल्लाने लगे ॥ २२ ॥ इन्द्र उस दैत्यपर वज्र चलाना चाहते थे, परन्तु उनकी भुजाएँ कुण्ठित थीं। अतः वे उसे मारनेमें असमर्थ रहे ॥ २३ ॥ अब वज्रधारी देवराजने कालकी तुलना करनेवाले उस दानवको देखकर सामयिक समस्या सुलझानेमें कुशल अपने आचार्य बृहस्पतिका मन-ही-मन स्मरण किया ॥ २४ ॥ स्मरण करते ही उदारबुद्धि बृहस्पतिजी तुरन्त आ गये। उन्होंने वहाँ पहुँचकर देखा कि इन्द्र बड़ी दयनीय दशामें उलझे हुए हैं ॥२५॥ कर्तव्यके विषयमें कुछ सययतक मन-ही-मन विचार करके उन्होंने शचीपति इन्द्रसे कहा—'हे वासव! 'मद' नामधारी यह महान् बलशाली दानव मन्त्रोंसे अथवा वज्रसे मार डाला जाय— यह असम्भव है ॥ २६ ॥ क्योंकि च्यवन ऋषिकी तपस्याका प्रतीकस्वरूप यह भयानक

वज्रमादाय संस्थितः ॥ व्याप्तं नभो घोरदृष्टिर्ग्रसन्निव जगत्त्रयम् ॥ २१ ॥ स भक्षयिष्यन्संक्रुद्धः शतक्रतुमुपाद्रवत् ॥ चुक्रुशुश्च सुराः सर्वे हा हताः स्मेति संस्थिताः ॥ २२ ॥ इन्द्रः स्तंभितबाहुस्तु मुमुक्षुर्वज्रमंतिकात् ॥ न शशाक पविं तस्मिन्प्रहर्तुं पाकशासनः ॥ २३ ॥ वज्रहस्तः सुरेशानस्तं वीक्ष्य कालसन्निभम् ॥ सस्मार मनसा तत्र गुरुं समयकोविदम् ॥ २४ ॥ स्मरणादाजगामाशु बृहस्पतिरुदारधीः ॥ गुरुस्तत्समयं दृष्ट्वा विपत्तिसदृशं महत् ॥ २५ ॥ विचार्य मनसा कृत्यं तमुवाच शचीपतिम् ॥ दुःसाध्योऽयं महामंत्रैस्त्वयं वज्रेण वासव ॥ २६ ॥ असुरो मदसंज्ञस्तु यज्ञकुण्डात्समुत्थितः ॥ तपोबलमृषेः सम्यक्च्यवनस्य महाबलः ॥ २७ ॥ अनिवार्यो ह्ययं शत्रुस्त्वया देवैस्तथा मया ॥ शरणं याहि देवेश च्यवनस्य महात्मनः ॥ २८ ॥ स निवारयिता नूनं कृत्यामात्मकृतां किल ॥ न निवारयितुं शक्ताः शक्तिभक्तरुषं क्वचित् ॥ २९ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्तो गुरुणा शक्रस्तदाऽगच्छन्मुनिं प्रति ॥ प्रणम्य शिरसा नम्रस्तमुवाच भयान्वितः ॥ ३० ॥ क्षमस्व मुनिशार्दूल शमयासुरमुद्यतम् ॥ प्रसन्नो भव सर्वज्ञ वचनं ते करोम्यहम् ॥ ३१ ॥ सोमार्हावश्विनावेतावद्यप्रभृति भार्गव ॥ भविष्यतः सत्यमेतद्वचो विप्र प्रसीद मे ॥ ३२ ॥ मिथ्या ते नोद्यमो ह्येष भवत्वेव तपोधन ॥ जाने त्वमपि धर्मज्ञ मिथ्या नैव करिष्यसि ॥ ३३ ॥ सोमपावश्विनावेतौ त्वत्कृतौ च सदैव हि ॥ भविष्यतश्च शर्यातेः

दानव यज्ञकुण्डसे उत्पन्न हुआ है ॥ २७ ॥ हे देवेश! यह शत्रु मेरे, तुम्हारे तथा देवताओंके रोकनेसे नहीं रुक सकता। अतः तुम महात्मा च्यवनजीकी शरणमें जाओ ॥ २८ ॥ वे अवश्य ही अपने द्वारा उत्पन्न की हुई इस कृत्याका शमन कर देंगे। भगवती जगदम्बाके भक्तके रोषको विफल करनेमें कहीं कोई भी समर्थ नहीं हो सकता ॥२९॥ व्यासजी बोले—हे राजन्! इस प्रकार बृहस्पतिके कहनेपर भयभीत इन्द्र च्यवन मुनिके पास गये। उन्होंने नम्रतापूर्वक सिर झुकाकर प्रणाम किया और कहा—॥ ३० ॥ 'हे मुनिवर! क्षमा करिए। हे सर्वज्ञ! आप प्रसन्न हो जाइये। मैं आपकी आज्ञा पालन करनेके लिये तैयार हूँ ॥ ३१ ॥ हे भार्गव! आजसे अश्विनीकुमार सोमरस-पानके अधिकारी मान लिये जायँगे। हे ब्राह्मण देवता! आप प्रसन्न हो जायँ। मेरी बात सर्वथा सत्य है ॥ ३२ ॥ हे तपोधन! आपने अश्विनीकुमारोंको सोमरसका अधिकारी बनानेके लिये जो परिश्रम किया था, वह सफल हो गया। हे धर्मज्ञ! मैं जानता

हूँ कि आप निष्प्रयोजन कोई कार्य नहीं करेंगे ॥ ३३ ॥ अब ये अश्विनीकुमार आपकी कृपासे यज्ञमें सदा सोमरस पान करेंगे। साथ ही, राजा शर्यातिकी कीर्ति भी जगत्में फैल जायगी ॥ ३४ ॥ हे मुनिवर! मेरे द्वारा जो यह कुत्सित कार्य हुआ है, सो आपके प्रचण्ड पराक्रमकी परीक्षा लेना ही मेरा उद्देश्य था ॥ ३५ ॥ हे ब्रह्मन्! आप मेरे हितचिन्तक होकर इस उन्नतिशील 'मद' नामक असुरको तुरंत छिपा लीजिये। क्योंकि सम्पूर्ण देवताओंका कल्याण आपके ही ऊपर निर्भर है ॥ ३६ ॥ इन्द्रके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर परम अर्थके ज्ञाता च्यवन मुनिने विरोधसे उत्पन्न अपने प्रचण्ड क्रोधको शान्त कर दिया ॥३७॥ साथ ही घबराये हुए देवराजको आश्वासन देकर उन्होंने स्त्री, मदिरापान, जूआ और शिकार प्रभृति स्थानोंमें मदके रहनेकी व्यवस्था कर दी ॥३८॥ उस समय इन्द्र भयके कारण चकितसे हो गये थे। यों इन्द्रको आश्वासन देकर सम्पूर्ण देवताओंको अपने-अपने कार्यपर नियुक्त करके च्यवन मुनिने राजा शर्यातिका यज्ञ पूरा किया ॥ ३९ ॥ यज्ञ सम्पन्न हो जानेपर उसमें जो संस्कृत सोमरस था, उसे महान् धर्मात्मा च्यवनजीने पहले महात्मा इन्द्रको पिलाया। इसके बाद अश्विनीकुमारोंको

कीर्तिस्तु विपुला भवेत् ॥ ३४ ॥ मया यद्धि कृतं कर्म सर्वथा मुनिसत्तम ॥ परीक्षार्थं तु विज्ञेयं तव वीर्यप्रकाशनम् ॥३५॥ प्रसादं कुरु मे ब्रह्मन्मदं संहर चोत्थितम् ॥ कल्याणं सर्वदेवानां तथा भूयो विधीयताम् ॥ ३६ ॥ एवमुक्तस्तु शक्रेण च्यवनः परमार्थवित् ॥ संजहार ततः कोपं समुत्पन्नं विरोधजम् ॥ ३७ ॥ देवमाश्वास्य संविग्नं भार्गवस्तु मदं ततः ॥ व्यभजत्स्त्रीषु पानेषु द्यूतेषु मृगयासु च ॥ ३८ ॥ मदं विभज्य देवेन्द्रमाश्वास्य चकितं भिया ॥ संस्थाप्य च सुरान्सर्वान्मखं तस्य न्यवर्तयत् ॥३९॥ ततस्तु संस्कृतं सोमं वासवाय महात्मने ॥ अश्विभ्यां सर्वधर्मात्मा पाययामास भार्गवः ॥ ४० ॥ एवं तौ च्यवनेनार्यावश्विनौ रविपुत्रकौ ॥ विहितौ सोमपौ राजन्सर्वथा तपसो बलात् ॥ ४१ ॥ सरस्तदपि विख्यातं जातं यूपविमंडितम् ॥ आश्रमस्तु मुनेः सम्यक्पृथिव्यां विश्रुतोऽभवत् ॥ ४२ ॥ शर्यातिरपि संतुष्टो ह्यभवत्तेन कर्मणा ॥ यज्ञं समाप्य नगरे जगाम सचिवैर्वृतः ॥४३॥ राज्यं चकार धर्मज्ञो मनुपुत्रः प्रतापवान् ॥ आनर्तस्तस्य पुत्रोऽभूदानर्ताद्रेवतोऽभवत् ॥ ४४ ॥ सोऽन्तःसमुद्रे नगरीं विनिर्माय कुशस्थलीम् ॥ आस्थितोऽभुंक्त विषयानानर्तादीनरिंदमः ॥ ४५ ॥ तस्य पुत्रशतं जज्ञे ककुद्मिज्येष्ठमुत्तमम् ॥ पुत्री च रेवती नाम्ना सुन्दरी शुभ-

पीनेकी आज्ञा दी ॥ ४० ॥ हे राजन्! इस प्रकार च्यवन मुनिकी तपस्याके प्रभावसे सूर्यनंदन महानुभाव अश्विनीकुमारोंको सोमरसपानका अधिकार सम्यक्रूपसे प्राप्त हुआ ॥ ४१ ॥ यज्ञस्तम्भसे शोभा पानेवाला वह सरोवर भी तबसे विख्यात हो गया और च्यवन मुनिके आश्रमकी प्रसिद्धि भूमण्डलपर सर्वत्र फैल गयी ॥ ४२ ॥ इस कार्यसे राजा शर्याति भी बहुत प्रसन्न हुए। यज्ञ समाप्त होनेके पश्चात् उन्होंने अपने मन्त्रियोंके साथ नगरकी यात्रा की ॥ ४३ ॥ उन प्रतापी तथा धर्मज्ञ नरेशने राजधानीमें जाकर अपना कार्यभार सँभाल लिया। उनके पुत्र आनर्त हुए और आनर्तके रेवत ॥ ४४ ॥ शत्रुओंको परास्त करनेवाले रेवतने बीच समुद्रमें कुशस्थली नामकी नगरी बसायी और वे वहीं रहकर आनर्त देशसे सम्बन्ध रखनेवाले देशोंका शासन करने लगे ॥ ४५ ॥ उनके सौ पुत्र हुए। सबसे बड़े पुत्रका नाम ककुद्मी था। उनके रेवती नामकी एक पुत्री हुई। वह बड़ी सुन्दरी और सम्पूर्ण शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न

थी ॥ ४६ ॥ जब वह विवाहके योग्य हो गयी, तब महाराज रेवत किसी कुलीन राजकुमारके साथ उसे ब्याहनेका विचार करने लगे ॥४७॥ उस समय राजा रेवत आनर्त देशमें रैवत नामक पर्वतपर रहकर राज्य कर रहे थे ॥ ४८ ॥ उन्होंने मन ही मन सोचा--'यह कन्या किसे देना उचित होगा। अच्छा तो यह हो कि सर्वज्ञ एवं देवपूज्य ब्रह्माजीके पास जाकर उन्हींसे पूछा जाय' ॥ ४९ ॥ इस प्रकार विचार करके राजा रेवत अपनी कन्या रेवतीको साथ लेकर पितामह ब्रह्माजीसे उसका वर पूछनेके लिए तुरन्त ब्रह्मलोकमें जा पहुँचे ॥ ५० ॥ उस समय ब्रह्मलोकमें देवता, यक्ष, छन्द, पर्वत, समुद्र और नदियाँ दिव्यरूप धारण करके विराजमान थीं। ऋषि, सिद्ध, गन्धर्व, पन्नग और चारण-सबके सब हाथ जोड़कर ब्रह्माजीकी स्तुति कर रहे थे ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते सप्तमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृत'पीताम्बरा'भाषाटीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

लक्षणा ॥ ४६ ॥ वरयोग्या यदा जाता तदा राजा च रेवतः ॥ चिंतयामास राजेन्द्रो राजपुत्रान्कुलोद्भवान् ॥४७॥ रैवतं नाम च गिरिमाश्रितः पृथिवीपतिः ॥ चकार राज्यं बलवानानर्तेषु नराधिपः ॥ ४८ ॥ विचिन्त्य मनसा राजा कस्मै देया मया सुता ॥ गत्वा पृच्छामि ब्रह्माणं सर्वज्ञं सुरपूजितम् ॥ ४९ ॥ इति संचिन्त्य भूपालः सुतामादाय रेवतीम् ॥ ब्रह्मलोकं जगामाशु प्रष्टुकामः पितामहम् ॥ ५० ॥ यत्र देवाश्च यक्षाश्च छन्दांसि पर्वतास्तथा ॥ अब्धयः सरितश्चापि दिव्यरूपधराः स्थिताः ॥ ५१ ॥ ऋषयः सिद्धगन्धर्वाः पन्नगाश्चारणास्तथा ॥ तस्थुः प्रांजलयः सर्वे स्तुवंतश्च पुरातनाः ॥ ५२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

॥ जनमेजय उवाच ॥ संशयोऽयं महान्ब्रह्मन्वर्तते मम मानसे ॥ ब्रह्मलोकगतो राजा रेवतीसंयुतः स्वयम् ॥ १ ॥ मया पूर्वं श्रुतं कृत्स्नं ब्राह्मणेभ्यः कथान्तरे ॥ ब्राह्मणो ब्रह्मविच्छान्तो ब्रह्मलोकमवाप्नुयात् ॥ २ ॥ राजा कथं गतस्तत्र रेवतीसंयुतः स्वयम् ॥ सत्यलोकेऽतिदुष्प्रापे भूर्लोकादिति संशयः ॥ ३ ॥ मृतः स्वर्गमवाप्नोति सर्वशास्त्रेषु निर्णयः ॥ (मानुषेण तु देहेन ब्रह्मलोके गतिः कथम् ॥) स्वर्गात्पुनः कथं लोके मानुषे जायते गतिः ॥ ४ ॥ एतन्मे संशयं विद्वंश्छेत्तुमर्हसि सांप्रतम् ॥ यथा राजा गतस्तत्र प्रष्टुकामः प्रजापतिम् ॥ ५ ॥ व्यास उवाच ॥ मेरोस्तु शिखरे राजन्सर्वे लोकाः प्रतिष्ठिताः ॥ इन्द्रलोको वह्निलोको या च संयमिनी पुरी ॥ ६ ॥ तथैव सत्यलोकश्च कैलासश्च तथा पुनः ॥ वैकुण्ठश्च

(रेवती-बलरामका विवाह) राजा जनमेजय बोले--हे ब्रह्मन्! मेरे मनमें यह संदेह हो रहा है कि स्वयं राजा रेवत अपनी कन्या रेवतीको लेकर ब्रह्मलोकमें कैसे चले गये? ॥१॥ क्योंकि मैं बहुत बार सुन चुका हूँ कि ब्रह्मज्ञानी तथा शान्त स्वभाववाले ब्राह्मण ही ब्रह्मलोकतक पहुँच पाते हैं ॥२॥ सत्यलोक भूलोकसे बहुत दूर और दुष्प्राप्य है। राजा रेवत अपनी पुत्री रेवतीके साथ वहाँ कैसे जा सके? ॥ ३ ॥ सम्पूर्ण शास्त्रोंका यह निर्णय है कि मृत्युके पश्चात् ही प्राणी स्वर्गमें जाता है। मानव-शरीरसे ब्रह्मलोकमें कोई कैसे जा सकता है? और यदि कोई वहाँ चला गया तो फिर वहाँसे लौटकर मनुष्यलोकमें आ जाय--यह कैसे सम्भव है? ॥४॥ व्यासजी बोले-हे राजन्! दिव्य सुमेरु पर्वतके शिखरपर इन्द्रलोक, वह्निलोक, संयमिनीपुरी, सत्यलोक, कैलास और वैकुण्ठ आदि लोक विद्यमान हैं। वैकुण्ठको ही वैष्णवपद कहते हैं ॥ ५ ॥ ६ ॥ हे विद्वन्! महाराज रेवत जिस तरह अपनी कन्याके पतिको पूछनेके लिए ब्रह्म-

लोक गये हों। यह वृत्तान्त बताकर मेरा सन्देह निवृत्त कर दीजिए ॥ ७ ॥ जैसे धनुष धारण करनेवाले कुन्तीनन्दन अर्जुन इन्द्रलोक गये थे और वहाँ पाँच वर्षतक ठहरे रहे। उनका इस मानव शरीरसे ही इन्द्रके पास जाना हुआ था। ऐसे ही ककुत्स्थ प्रभृति दूसरे बहुतसे नरेश भी सशरीर स्वर्गलोकमें पहुँच चुके हैं ॥ ८ ॥ ९ ॥ इनके अतिरिक्त बहुतेरे दैत्य भी इन्द्रके स्वर्गलोकको जीतकर वहाँ यथेच्छ शासन कर चुके हैं ॥ १० ॥ पूर्वकालमें राजा महाभिष भी स्वर्ग गये थे। तभी उन्होंने अशिय सुन्दरी गङ्गाको आती देखा ॥ ११ ॥ उसी समय वायुने उसके कपड़े उड़ा दिये, जिससे राजाने कुछ नग्न स्थितिमें सुन्दरी गंगाको देख लिया ॥ १२ ॥ जिससे कामातुर होकर राजा मुसकाने लगे और गङ्गा भी हँस पड़ीं। यह देखकर ब्रह्माने उन दोनोंको शाप दे दिया। जिससे उन दोनोंको धरतीपर जन्म लेना पड़ा ॥ १३ ॥ दैत्यों और दानवोंसे त्रस्त देवता भी वैकुण्ठ धाममें विष्णुभगवानकी स्तुति करने गये थे ॥ १४ ॥

पुनस्तत्र वैष्णवं पदमुच्यते ॥ ७ ॥ यथाऽर्जुनः शक्रलोके गतः पार्थो धनुर्धरः ॥ पञ्च वर्षाणि कौंतेयः स्थितस्तत्र सुरालये ॥ ८ ॥ मानुषेणैव देहेन वासवस्य च सन्निधौ ॥ तथैवान्येऽपि भूपालाः ककुत्स्थप्रमुखाः किल ॥ ९ ॥ स्वर्लोकगतयः पश्चाद्दैत्याश्चापि महाबलाः ॥ जित्वेन्द्रसदनं प्राप्य संस्थितास्तत्र कामतः ॥ १० ॥ महाभिषः पुरा राजा ब्रह्मलोकं गतः स्वराट्॥ आगच्छंतीं नृपो गंगामपश्यच्चातिसुन्दरीम् ॥ ११ ॥ वायुनांबरमस्यास्तु दैवादपहृतं नृपः ॥ किंचिन्नग्ना नृपेणाथ दृष्टा सा सुन्दरी तथा ॥ १२ ॥ स्मितं चकार कामार्तः सा च किञ्चिज्जहास वै ॥ ब्रह्मणा तौ तदा दृष्टौ शप्तौ जातौ वसुंधराम् ॥ १३ ॥ वैकुण्ठेऽपि सुराः सर्वे पीडिता दैत्यदानवैः ॥ गत्वा हरिं जगन्नाथमस्तुवन्कमलापतिम् ॥ १४ ॥ सन्देहो नात्र कर्तव्यः सर्वथा नृपसत्तम ॥ गम्याः सर्वेऽपि लोकाः स्युर्मानवानां नराधिप ॥ १५ ॥ अवश्यं कृतपुण्यानां तापसानां नराधिप ॥ पुण्यसद्भाव एवात्र गमने कारणं नृप ॥ १६ ॥ तथैव यजमानानां यज्ञेन भावितात्मनाम् ॥ जनमेजय उवाच ॥ रेवतो रेवतीं कन्यां गृहीत्वा चारुलोचनाम् ॥ १७ ॥ ब्रह्मलोकं गतः पश्चात्किं कृतं तेन भूभुजा ॥ ब्रह्मणा किं समादिष्टं कस्मै दत्ता सुता पुनः ॥१८॥ तत्सर्वं विस्तराद्ब्रह्मन् कथय त्वं ममाधुना ॥ व्यास उवाच ॥ निशामय महीपाल राजा रेवतकः किल ॥ १९ ॥ पुत्र्या वरं परिप्रष्टुं ब्रह्मलोकं गतो यदा ॥ आवर्तमाने गान्धर्वे स्थितो लब्धक्षणः क्षणम् ॥ २० ॥ शृण्वन्नतृप्यद्धृष्टात्मा सभायां तु सकन्यकः ॥ समाप्ते तत्र गान्धर्वे प्रणम्य परमेश्वरम् ॥ २१ ॥ दर्श-

अतएव हे राजेन्द्र! इस विषयमें किसी प्रकारका भी संदेह नहीं करना चाहिये। पुण्यात्मा, तपस्वी और समर्थ पुरुष प्रायः सभी लोकोंमें आ जा सकते हैं। हे मनुजेन्द्र! जैसे पुण्य और सद्भाव ही ब्रह्मादि लोकोंमें जानेकी योग्यता प्राप्त होनेका कारण माना जाता है, वैसे ही यज्ञशील पवित्रात्मा पुरुष यज्ञके प्रभावसे वहाँ जानेके अधिकारी हो जाते हैं। राजा जनमेजयने पूछा—हे ब्रह्मन्! महाराज रेवतने अपनी सुन्दर नेत्रोंवाली कन्या रेवतीको साथ लेकर ब्रह्मलोकमें जानेके पश्चात् क्या किया? ब्रह्माजीने उन्हें क्या बताया? ॥१५–१८॥ हे भगवन्! अब आप इन सब प्रसंगोंको विस्तारपूर्वक कहनेकी कृपा कीजिए। व्यासजी बोले—हे राजन्! सुनो, महाराज रेवत अपनी पुत्रीके वरके विषयमें पूछनेके लिए जब ब्रह्मलोकमें पहुँचे, उस समय वहाँ गन्धर्वोंका संगीत हो रहा था। राजा कुछ देर तक वहाँ ठहर गये। उस संगीतने उन्हें पूर्ण तृप्त और आह्लादित कर दिया। गायन समाप्त होनेपर सभाभवनमें विराजमान परम

प्रभु ब्रह्माजीके समक्ष पहुँचकर नरेशने उन्हें प्रणाम किया और कन्या रेवतीको दिखाकर अपना अभिप्राय उनके सामने प्रकट कर दिया। राजा रेवतने कहा—हे देवेश! यह कन्या मेरी पुत्री है ॥ १९–२२ ॥ आप इसके योग्य वर बतानेकी कृपा कीजिये। ब्रह्मन्! मैं किसके साथ इसका विवाह करूँ, यही पूछनेके लिए आपके पास आया हूँ। मैंने बहुतसे उत्तम कुलके राजकुमारोंको देखा है, परन्तु मेरे चञ्चल मनके लिए कोई भी कुमार अनुकूल नहीं जान पड़ा। अतएव हे देवेश्वर! इस विषयमें आपसे सम्मति प्राप्त करनेके लिए मैं आपकी शरणमें आया हूँ ॥ २३ ॥ २४ ॥ हे सर्वज्ञ प्रभो! आप किसी ऐसे सुयोग्य राजकुमारको बतलाइए, जो कुलीन, बलवान्, पूर्ण दानी और धर्मात्मा हो। व्यासजी बोले—हे राजन्! राजा रेवतकी बात सुनकर संसारकी सृष्टि करनेवाले ब्रह्माजी मुसकुराये। ब्रह्मलोकके थोड़ेसे समयमें ही भूमण्डलका बहुत लंबा समय बीत चुका था। अतएव ब्रह्माजी राजासे कहने लगे। ब्रह्माजीने कहा—हे राजन्! तुम्हारे हृदयमें जो जो राजकुमार वरके रूपमें उपस्थित थे, वे सभी अब कालके गालमें चले गये हैं। उनके पुत्र-पौत्र एवं बन्धु-बान्धव भी अब कोई नहीं बचे हैं। क्योंकि

यित्वा सुतां तस्मै स्वाभिप्रायं न्यवेदयत् ॥ राजोवाच ॥ वरं कथय देवेश कन्येयं मम पुत्रिका ॥२२॥ देया कस्मै मया ब्रह्मन्प्रष्टुं त्वां समुपागतः ॥ बहवो राजपुत्रा मे वीक्षिताः कुलसंभवाः ॥ २३ ॥ कस्मिंश्चिन्मे मनः कामं नोपतिष्ठति चंचलम् ॥ तस्मात्त्वां देवदेवेश प्रष्टुमत्रागतोऽस्म्यहम् ॥२४॥ तदाज्ञापय सर्वज्ञ योग्यं राजसुतं वरम् ॥ कुलीनं बलवंतं च सर्वलक्षणसंयुतम् ॥ २५ ॥ दातारं धर्मशीलं च राजपुत्रं समादिश ॥ व्यास उवाच ॥ तदाकर्ण्य जगत्कर्ता वचनं नृपतेस्तदा ॥ २६ ॥ तमुवाच हसन्वाक्यं दृष्ट्वा कालस्य पर्ययम् ॥ ब्रह्मोवाच ॥ राजपुत्रास्त्वया राजन्वरा ये हृदये कृताः ॥ २७ ॥ ग्रस्ताः कालेन ते सर्वे सपितृपौत्रबांधवाः ॥ सप्तविंशतिमोऽद्यैव द्वापरस्तु प्रवर्तते ॥ २८ ॥ वंशजास्ते मृताः सर्वे पुरी दैत्यैर्विलुंठिता ॥ सोमवंशोद्भवस्तत्र राजा राज्यं प्रशास्ति हि ॥२९॥ उग्रसेन इति ख्यातो मथुराधिपतिः किल ॥ ययातिवंशसंभूतो राजा माथुरमंडले ॥३०॥ उग्रसेनात्मजः कंसः सुरद्वेषी महाबलः ॥ दैत्येशः पितरं सोऽपि कारागारे न्यवेशयत् ॥३१॥ स्वयं राज्यं चकारासौ नृपाणां मदगर्वितः ॥ मेदिनी चारिभारार्ता ब्रह्माणं शरणं गता ॥ ३२ ॥ दुष्टराजन्यसैन्यानां भारेणातिसमाकुला ॥ अंशावतरणं तत्र गदितं सुरसत्तमैः ॥ ३३ ॥ वासुदेवः समुत्पन्नः कृष्णः कमललोचनः ॥ देवक्यां देवरूपिण्यां योऽसौ नारायणो मुनिः ॥ ३४ ॥ तपश्चचार दुःसाध्यं धर्मपुत्रः सनातनः ॥ गंगातीरे

इस समय वहाँ सत्ताईसवाँ द्वापर युग चल रहा है ॥२५–२८॥ तुम्हारे सभी वंशज कालके कलेवा हो गये हैं। अब वह पुरी भी नहीं है। दैत्योंने उसे नष्ट-भ्रष्ट कर डाला है। इस समय वहाँ चन्द्रवंशी राजा राज्य कर रहे हैं ॥ २९ ॥ वह पुरी अब मथुरा कहलाती है। राजा उग्रसेन वहाँके शासक हैं। ययातिके वंशमें उनका जन्म हुआ है। पूरा मथुरा-मण्डल उनकेअधीन था, परन्तु उन्हीं नरेशका एक पुत्र कंस नामसे विख्यात हुआ। देवताओंसे द्रोह करनेवाला वह महाबली पुत्र दैत्यके अंशसे उत्पन्न हुआ था। उसने अपने पिता उग्रसेनको कारागारमें डालकर राज्यका प्रबन्ध स्वयं अपने हाथमें ले लिया। राजाओंमें वह सबसे बढ़-चढ़कर अहंकारी था। तब पृथ्वी अत्यन्त असह्य भारसे घबराकर ब्रह्माजीकी शरणमें गयी ॥३०–३२॥ श्रेष्ठ देवताओंका कथन है कि जब पृथ्वी दुष्ट राजाओंके भारसे आक्रान्त हो जाती है, तब भगवान् प्रकट होते हैं ॥ ३३ ॥ अतएव उस समय कमलके समान नेत्रसे शोभित भगवान् श्रीकृष्णका अवतार

हुआ । वे साक्षात् नारायण मुनि थे ॥३४॥ वे सनातन धर्मपुत्र थे और बदरिकाश्रममें गंगाजीके तटपर दुःसाध्य तथा कठोर तप कर रहे थे ॥ ३५ ॥ वे अवतरित होकर भगवान् 'वासुदेव' के नामसे प्रसिद्ध हुए । हे राजन् ! उन्हीं भगवान् श्रीकृष्णके हाथसे उस दुराचारी कंसका निधन हुआ ॥३६॥ दुष्ट पुत्रके परलोकवासी हो जानेपर उन भगवान्की आज्ञासे राजा उग्रसेन पुनः राज्यपदपर प्रतिष्ठित हुए । कंसके ससुरका नाम जरासंध था । वह पापात्मा एवं महान् पराक्रमी था ॥३७॥ वह कुपित हो मथुरामें आकर उल्लासपूर्वक भगवान् श्रीकृष्णसे युद्ध करने लगा । अन्तमें उस महान् पराक्रमी राक्षसको भगवान्के साथ युद्धमें परास्त हो जाना पड़ा ॥३८॥ तब उसने सेनासहित कालयवनको भगवान् श्रीकृष्णके साथ युद्ध करने लिए भेजा । यवनोंका अध्यक्ष कालयवन महान् शूरवीर है और सेना लेकर वह आ रहा है ॥३९॥ (यह सुनकर भगवान् श्रीकृष्णने मथुराको छोड़ दिया और द्वारका चले गये । उस समय वह पुरी नष्टप्राय हो गयी थी । भगवान्ने शिल्पियों द्वारा उसका जीर्णोद्धार कराया ॥ १ ॥ उसमें बाजार और दुर्ग बन गये हैं । भगवान्की आज्ञासे उग्रसेन वहाँका प्रबन्ध करते हैं ॥ २ ॥) यदुश्रेष्ठ श्रीकृष्णने यादवोंके लिए द्वारकामें व्यवस्था कर

नरसखः पुण्ये बदरिकाश्रमे ॥ ३५ ॥ सोऽवतीर्णो यदुकुले वासुदेवोऽपि विश्रुतः ॥ तेनासौ निहतः पापः कंसः कृष्णेन सत्तम ॥ ३६ ॥ उग्रसेनाय राज्यं वै दत्तं हत्वा खलं सुतम् ॥ कंसस्य श्वशुरः पापो जरासंधो महाबलः ॥ ३७ ॥ आगत्य मथुरां क्रोधाच्चकार संगरं मुदा ॥ कृष्णेनासौ जितः संख्ये जरासंधो महाबलः ॥ ३८ ॥ प्रेषयामास युद्धाय सबलं यवनं ततः ॥ श्रुत्वायांतं महाशूरं ससैन्यं यवनाधिपम् ॥३९॥ (कृष्णस्तु मथुरां त्यक्त्वा पुरीं द्वारवतीमगात् ॥ प्रभग्नां तां पुरीं कृष्णः शिल्पिभिः सह संगतैः ॥१॥ कारयामास दुर्गाढ्यां हट्टशालाविमंडिताम् ॥ जीर्णोद्धारं पुरः कृत्वा वासुदेवः प्रतापवान् ॥ उग्रसेनं च राजानं चकार वशवर्तिनम् ॥ २ ॥) यादवान्स्थापयामास द्वारवत्यां यदूत्तमः ॥ वासुदेवस्तु तत्राद्य वर्तते बांधवैः सह ॥ ४० ॥ तस्याग्रजः स विख्यातो बलदेवो हलायुधः ॥ शेषांशो मुसली वीरो वरोऽस्तु तव संमतः ॥ ४१ ॥ संकर्षणाय देह्याशु कन्यां कमललोचनाम् ॥ रेवतीं बलभद्राय विवाहविधिना ततः ॥ ४२ ॥ दत्त्वा पुत्रीं नृपश्रेष्ठ गच्छ त्वं बदरिकाश्रमम् ॥ तपस्तप्तुं सुराराम पावनं कामदं नृणाम् ॥४३॥ व्यास उवाच ॥ इति राजा समादिष्टो ब्रह्मणा पद्मयोनिना ॥ जगाम तरसा राजन्द्वारकां कन्ययाऽन्वितः ॥४४॥ ददौ तां बलदेवाय कन्यां वै शुभलक्षणाम् ॥ ततस्तप्त्वा तपस्तीव्रं नृपतिः कालपर्यये ॥ ४५ ॥ जगाम त्रिदशावासं त्यक्त्वा देहं सरित्तटे ॥ राजोवाच ॥

दी है । इस समय अपने समस्त बन्धुओंके साथ वे भगवान् वहीं विराजमान हैं ॥४०॥ उनके बड़े भाईका नाम 'बलराम' है । हल और मूसलको आयुधके रूपमें धारण करनेवाले बलरामजी महान् शूरवीर और शेषके अवतार माने जाते हैं । इस समय वे ही तुम्हारी इस कन्याके लिए सुयोग्य वर हैं ॥४१॥ उन्हींको तुम अपनी कमलनयनी कन्या रेवती अर्पणी कर दो । वैवाहिक विधिके अनुसार बलभद्रजीके साथ इस कन्याका विवाह होना चाहिए ॥ ४२ ॥ हे राजेन्द्र ! इसका कन्यादान होनेके पश्चात् तप करनेके लिए तुम बदरिकाश्रममें चले जाओ । क्योंकि तपसे मनुष्योंकी अभिलाषाएँ पूर्ण हो जाती हैं और अन्तःकरण पवित्र हो जाता है ॥ ४३ ॥ व्यासजी कहते हैं—हे राजन् ! पद्मयोनि ब्रह्माजीके इस प्रकार उपदेश देनेपर राजा रेवत उसी क्षण अपनी कन्या रेवतीके साथ द्वारका चले गये ॥ ४४ ॥ वहाँ जाकर शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न पुत्रीका विवाह बलदेवजीके साथ कर दिया । तबतक बहुत समय व्यतीत हो चुका था ।

तदनन्तर गङ्गाके तटपर रहकर अत्यन्त कठिन तपस्या करके वे नश्वर शरीर त्यागकर दिव्यलोकको चले गये। राजा जनमेजयने कहा--भगवन्! आपने बतलाया है कि राजा रेवत कन्याके योग्य वर जाननेके उद्देश्यसे ब्रह्मलोक गये और वहाँ वे एक सौ आठ युगतक ठहरे रहे ॥ ४५-४७ ॥ मुझे महान् आश्चर्य तो यह हो रहा है कि तबतक वह कन्या तथा वे राजा बूढ़े क्यों नहीं हुए? अथवा इतने दिनोंकी पूर्ण आयु ही उन्हें कैसे प्राप्त हुई? ॥ ४८ ॥ व्यासजी कहते हैं-हे पूतात्मा नरेश! ब्रह्मलोकमें भूख, प्यास, मृत्यु, भय, बुढ़ापा एवं ग्लानि-ये कदापि अपना प्रभाव नहीं डाल सकते ॥४९॥ राजा रेवत जब वहाँ चले गये, तब राक्षसोंने शर्याति-वंशकी सत्ता ही नष्ट कर दी। प्रायः सभी लोग अत्यन्त भयभीत हो कुशस्थली छोड़कर इधर-उधर कालक्षेप करने लगे ॥ ५० ॥ फिर क्षुव नामक मनुसे एक अत्यन्त प्रतापी पुत्रका जन्म हुआ। इक्ष्वाकु नामसे उसकी प्रसिद्धि हुई। वे ही इक्ष्वाकु सूर्यवंशके मुख्य प्रवर्तक माने जाते हैं ॥ ५१ ॥ उन्होंने वंशकी वृद्धिके लिए भगवतीके ध्यानमें सदा संलग्न होकर कठिन तपस्या की। नारदजी उनके उपदेशक थे। उन्हींसे उन्होंने वह अनुपम दीक्षा प्राप्त की थी।

भगवन्महदाश्चर्यं भवता समुदाहृतम् ॥ ४६ ॥ रेवतस्तु स्थितस्तत्र ब्रह्मलोके सुतार्थतः ॥ युगानां तु गतं तत्र शतमष्टोत्तरं किल ॥ ४७ ॥ कन्या वृद्धा न संजाता राजा वाऽतितरां नु किम् ॥ एतावंतं तथा कालमायुः पूर्णं तयोः कथम् ॥ ४८ ॥ व्यास उवाच ॥ न जरा क्षुत्पिपासा वा न मृत्युर्न भयं पुनः ॥ न तु ग्लानिः प्रभवति ब्रह्मलोके सदाऽनघ ॥ ४९ ॥ मेरुं गतस्य शर्यातेः संतती राक्षसैर्हता ॥ गताः कुशस्थलीं त्यक्त्वा भयभीता इतस्ततः ॥ ५० ॥ मनोश्च क्षुवतः पुत्र उत्पन्नो वीर्यवत्तरः ॥ इक्ष्वाकुरिति विख्यातः सूर्यवंशकरस्तु सः ॥ ५१ ॥ वंशार्थं तप आतिष्ठद्देवीं ध्यात्वा निरंतरम् ॥ नारदस्योपदेशेन प्राप्य दीक्षामनुत्तमाम् ॥५२॥ तस्य पुत्रशतं राजन्निक्ष्वाकोरिति विश्रुतम् ॥ विकुक्षिः प्रथमस्तेषां बलवीर्यसमन्वितः ॥ ५३ ॥ अयोध्यायां स्थितो राजा इक्ष्वाकुरिति विश्रुतः ॥ शकुनिप्रमुखाः पुत्रा पंचाशद्बलवत्तराः ॥५४॥ उत्तरापथदेशस्य रक्षितारः कृताः किल ॥ दक्षिणस्यां तथा राजन्नादिष्टास्तेन ते सुताः ॥५५॥ चत्वारिंशत्तथाऽष्टौ च रक्षणार्थं महात्मना ॥ अन्यौ द्वौ संस्थितौ पार्श्वे सेवार्थं तस्य भूपतेः ॥ ५६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

॥ व्यास उवाच ॥ कदाचिदष्टकाश्राद्धे विकुक्षिं पृथिवीपतिः ॥ आज्ञापयदसंमूढो मांसमानय सत्वरम् ॥१॥ मेध्यं श्राद्धार्थमधुना वने गत्वा

॥ ५२ ॥ हे राजन्! मैंने सुना है कि उन्हीं इक्ष्वाकुके सौ पुत्र हुए। उन सभी पुत्रोंमें सबसे बड़े विकुक्षि थे। उनमें बल और वीर्यका पूर्ण समावेश था ॥५३॥ महाराज इक्ष्वाकु अयोध्याके राजा थे-यह बात प्रसिद्ध है। शकुनि प्रभृति अत्यन्त बलशाली जो उनके पचास पुत्र थे, उन्हें उन्होंने उत्तर प्रदेशकी रक्षाके लिए नियुक्त कर दिया। हे राजन्! उनके अड़तालीस लड़के आज्ञानुसार दक्षिण प्रदेशकी रक्षाको उद्यत हो गये ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ इनके अतिरिक्त जो दो शेष पुत्र थे, वे राजा इक्ष्वाकुकी सेवाके लिए उनके पास रहने लगे ॥ ५६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते सप्तमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृत'पीताम्बरा'भाषाटीकायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

व्यासजी कहते हैं—हे राजन्! इक्ष्वाकुके पुत्र विकुक्षि हुए। किसी समय राजा इक्ष्वाकुने अपने पुत्र विकुक्षिको अष्टकाश्राद्धके लिए शीघ्र मांस लानेकी आज्ञा दी ॥ १ ॥

उन्होंने कहा—पुत्र ! वनसे जाकर तुम आदरपूर्वक पवित्र मांस ले आओ। उनके आज्ञानुसार शस्त्र लेकर विकुक्षि तत्काल वनको चल पड़ा ॥ २ ॥ वहाँ जाकर उसने बाणोंसे बहुतेरे सूकरों, मृगों और खरगोशोंको मारा। तब तक वह थक गया और भूख लग गयी ॥ ३ ॥ जिससे उसे अष्टकाश्राद्धकी बात भूल गयी और उसने एक खरगोश खा लिया। शेष मांस लेजाकर उसने अपने पिताको दे दिया ॥ ४ ॥ प्रोक्षणके निमित्त समक्ष आनेपर गुरु वसिष्ठने उस मांसको देखा। देखते ही उसे श्राद्धके अयोग्य समझकर मुनिराज कुपित हो गये ॥ ५ ॥ भोजनसे अवशिष्ट पदार्थ श्राद्धके लिए अनुपयोगी होता है, यह शास्त्रीय नियम है। अतएव उन्होंने राजाको यह बात बतायी ॥ ६ ॥ गुरुके कथनानुसार अपने पुत्र विकुक्षिका दुष्कृत्य जानकर श्राद्धभ्रंशके कारण क्रोधवश उन्होंने उसे अपने राज्यसे निकाल दिया ॥ ७ ॥ जिससे वह 'शशाद' नामसे प्रसिद्ध होकर वनमें चला गया ॥ ८ ॥ वहाँ वन्य आहारपर

सुतादरात् ॥ इत्युक्तोऽसौ तथेत्याशु जगाम वनमस्त्रभृत् ॥ २ ॥ गत्वा जघान बाणैः स वराहान्सूकरान्मृगान् ॥ शशाँश्चापि परिश्रांतो बभूवाथ बुभुक्षितः ॥ ३ ॥ विस्मृता चाष्टका तस्य शशं चाददसौ वने ॥ शेषं निवेदयामास पित्रे मांसमनुत्तमम् ॥ ४ ॥ प्रोक्षणाय समानीतं मांसं दृष्ट्वा गुरुस्तदा ॥ अनर्हमिति तज्ज्ञात्वा चुकोप मुनिसत्तमः ॥ ५ ॥ भुक्तशेषं तु न श्राद्धे प्रोक्षणीयमिति स्थितिः ॥ राज्ञे निवेदयामास वसिष्ठः पाकदूषणम् ॥ ६ ॥ पुत्रस्य कर्म तज्ज्ञात्वा भूपतिर्गुरुणोदितम् ॥ चुकोप विधिलोपात्तं देशान्निःसारयत्ततः ॥ ७ ॥ शशाद इति विख्यातो नाम्ना जातो नृपात्मजः ॥ गतो वने शशादस्तु पितृकोपादसंभ्रमः ॥ ८ ॥ वन्येन वर्तयन्कालं नीतिमान्धर्मतत्परः ॥ पितर्युपरते राज्यं प्राप्तं तेन महात्मना ॥ ९ ॥ शशादस्त्वकरोद्राज्यमयोध्यायाः पतिः स्वयम् ॥ यज्ञाननेकशः पूर्णांश्चकार सरयूतटे ॥ १० ॥ शशादस्याभवत्पुत्रः ककुत्स्थ इति विश्रुतः ॥ तस्यैव नामभेदाद्वै इन्द्रवाहः पुरंजयः ॥११॥ जनमेजय उवाच ॥ नामभेदः कथं जातो राजपुत्रस्य चानघ ॥ कारणं ब्रूहि मे सर्वं कर्मणा येन चाभवत् ॥ १२ ॥ व्यास उवाच ॥ शशादे स्वर्गते राजा ककुत्स्थ इति चाभवत् ॥ राज्यं चकार धर्मज्ञः पितृपैतामहं बलात् ॥ एतस्मिन्नंतरे देवा दैत्यैः सर्वे पराजिताः ॥ १३ ॥ जग्मुस्त्रिलोकाधिपतिं विष्णुं शरणमव्ययम् ॥ तान्प्रोवाच महाविष्णुस्तदा देवान्सनातनः ॥१४॥ ॥ विष्णुरुवाच ॥ पार्ष्णिग्राहं महीपालं प्रार्थयन्तु शशादजम् ॥ स हनिष्यति वै दैत्यान्संग्रामे सुरसत्तम ॥१५॥ आगमिष्यति धर्मात्मा साहाय्यार्थं धनुर्धरः ॥

निर्भर होकर जीवनयापन करने लगा। पिताकी मृत्युके पश्चात् पुनः उन महात्मा विकुक्षिको राज्यका अधिकार प्राप्त हो गया ॥९॥ स्वयं अयोध्याके राजा होकर वे शासन करने लगे। उस समय शशादके द्वारा सरयूके तटपर बहुत-से साङ्गोपाङ्ग यज्ञ सम्पन्न हुए थे ॥१०॥ उनके पुत्रका नाम ककुत्स्थ था—ऐसा सुना जाता है। उन ककुत्स्थके ही दूसरे नाम इन्द्रवाह और पुरंजय भी हैं ॥११॥ राजा जनमेजयने पूछा—हे निष्पाप मुनिवर ! एक ही व्यक्तिके कई नाम कैसे हुए ? जिन-जिन कारणोंसे पृथक्-पृथक् नाम रक्खे गये हों, वे सब कारण मुझे बतानेकी कृपा करें ॥१२॥ व्यासजी कहते हैं—हे राजन् ! शशादके स्वर्गवासी हो जानेपर धर्मके ज्ञाता ककुत्स्थ अयोध्याके राजा हुए। उन्होंने पिता और पितामहसे सम्बन्ध रखनेवाले राज्यपर शासन किया। इसी समय सम्पूर्ण देवता दैत्योंसे परास्त होकर त्रिलोकीके स्वामी सनातन भगवान् विष्णुकी शरणमें गये। तब भगवान् श्रीहरिने उन्हें आज्ञा दी ॥ १३ ॥ १४ ॥ भगवान् विष्णु बोले—हे प्रधान

देवताओ ! तुमलोग शशादकुमार राजा ककुत्स्थसे सहायक बननेके लिये प्रार्थना करो । वे ही संग्राममें दैत्योंको मार सकेंगे ॥ १५ ॥ वे बड़े धर्मात्मा नरेश हैं । भगवती जगदम्बाकी कृपासे उन्हें अतुलित शक्ति प्राप्त है ॥ १६ ॥ हे महाराज ! भगवान् विष्णुकी यह सुस्पष्ट वाणी सुनते ही इन्द्रसहित सब देवता अयोध्यामें विराजनेवाले शशादकुमार ककुत्स्थके पास जा पहुँचे ॥ १७ ॥ राजाने धर्मपूर्वक बड़ी सावधानीके साथ उनका स्वागत किया और आनेका कारण बतानेके लिए कहा ॥ १८ ॥ राजा ककुत्स्थ बोले—हे देवताओ ! मैं धन्य और पवित्र हो गया । मेरे जीवनकी साध पूरी हो गयी । क्योंकि आज आपने मेरे घरपर पधारकर मुझे दुर्लभ दर्शन दिये हैं ॥ १९ ॥ हे देवेश्वरो ! अब आप कर्तव्यके विषयमें मुझे आज्ञा दीजिये । आपका बड़े-से-बड़ा कार्य अन्य मनुष्योंके लिए भले ही दुःसाध्य हो, मैं उसे सर्वथा सम्पन्न कर दूँगा ॥ २० ॥ देवता बोले—हे राजेन्द्र ! हम तुमसे सहायता चाहते हैं । तुम इन्द्रके सखा बनकर संग्राममें सुप्रसिद्ध दैत्योंको परास्त करो । इस समय वे दानव देवताओंके लिये अजेय हो गये हैं ॥ २१ ॥ तुम्हें भगवती जगदम्बाकी कृपाप्राप्त है । अतएव कहीं कोई भी ऐसा कार्य

पराशक्तेः प्रसादेन सामर्थ्यं तस्य चातुलम् ॥ १६ ॥ हरेः सुवचनाद्देवा ययुः सर्वे सवासवाः ॥ अयोध्यायां महाराज शशादतनयं प्रति ॥ १७ ॥ तानागतान्सुरान्राजा पूजयामास धर्मतः ॥ पप्रच्छागमने राजा प्रयोजनमतंद्रितः ॥ १८ ॥ राजोवाच ॥ धन्योऽहं पावितश्चास्मि जीवितं सफलं मम ॥ यदागत्य गृहे देवा ददुश्च दर्शनं महत् ॥१९॥ ब्रुवंतु कृत्यं देवेशा दुःसाध्यमपि मानवैः ॥ करिष्यामि महत्कार्यं सर्वथा भवतां महत् ॥२०॥ ॥ देवा ऊचुः ॥ साहाय्यं कुरु राजेन्द्र सखा भव शचीपतेः ॥ संग्रामे जय दैत्येन्द्रान्दुर्जयांस्त्रिदशैरपि ॥ २१ ॥ पराशक्तिप्रसादेन दुर्लभं नास्ति ते क्वचित् ॥ विष्णुना प्रेरिताश्चैवमागतास्तव सन्निधौ ॥२२॥ राजोवाच ॥ पार्ष्णिग्राहो भवाम्यद्य देवानां सुरसत्तमाः ॥ इन्द्रो मे वाहनं तत्र भवेद्यदि सुराधिपः ॥ २३ ॥ संग्रामं तु करिष्यामि दैत्यैर्देवकृतेऽधुना ॥ आरुह्येंद्रं गमिष्यामि सत्यमेतद्ब्रवीम्यहम् ॥२४॥ तदोचुर्वासवं देवाः कर्तव्यं कार्यमद्भुतम् ॥ पत्रं भव नरेंद्रस्य त्यक्त्वा लज्जां शचीपते ॥ २५ ॥ लज्जमानस्तदा शक्रः प्रेरितो हरिणा भृशम् ॥ बभूव वृषभस्तूर्णं रुद्रस्येवापरो महान् ॥ २६ ॥ तमारुरोह राजाऽसौ संग्रामगमनाय वै ॥ स्थितः ककुदि येनास्य ककुत्स्थस्तेन चाभवत् ॥ २७ ॥ इन्द्रो वाहः कृतो येन तेन

नहीं हैं, जो तुमसे असाध्य हो । भगवान् विष्णुकी प्रेरणासे ही हम तुम्हारे पास आये हैं ॥ २२ ॥ राजाने कहा—हे सुरसत्तमो ! मैं अभी सहायक बननेके लिए तैयार हूँ । परन्तु देवराज इन्द्र युद्धके अवसरपर मेरे वाहन बनें, तभी सफलता मिल सकती है ॥ २३ ॥ इस समय देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिए मैं इन इन्द्रपर ही चढ़कर संग्राममें जाऊँगा और दैत्योंके साथ मेरा युद्ध होगा । मेरी यह बात बिलकुल सत्य है ॥ २४ ॥ देवताओंने इस अद्भुत कर्तव्यके विषयमें इन्द्रसे कहा—'हे शचीपते ! आप लज्जा छोड़कर इन नरेशका वाहन बननेकी कृपा कीजिये ।' ॥ २५ ॥ यह सुनकर इन्द्र बड़े भारी संकोचमें पड़ गये । फिर भी भगवान् विष्णुके बारम्बार प्रेरणा करनेपर उन्होंने तुरन्त ऐसे वृषभका रूप धारण कर लिया, जैसे भगवान् शिवके कोई दूसरे नन्दीश्वर ही हों ॥ २६ ॥ संग्राममें जानेके लिये राजा उन्हींपर सवार हुए । वे वृषभरूपधारी इन्द्रके ककुद्पर बैठे थे, जिससे इनका एक नाम 'ककुत्स्थ' पड़ गया ॥ २७ ॥ इन्द्रको

अपना वाहन बनाया था, इससे इनका एक दूसरा नाम 'इन्द्रवाह' पड़ गया। दैत्योंके पुरपर विजय प्राप्त की थी, जिससे 'पुरंजय' इस तीसरे नामसे भी वे प्रसिद्ध हुए ॥२८॥ तदनन्तर महाबाहु ककुत्स्थने दैत्योंकी जोतकर उनकी सम्पत्ति देवताओंको सौंप दी। यों राजर्षि ककुत्स्थकी इन्द्रसे मैत्री हुई और उनके अनेक नाम पड़े। महाराज ककुत्स्थ बड़े सुविख्यात नरेश थे। उनके वंशज राजाओंकी भूमण्डलपर 'काकुत्स्थ' के नामसे प्रसिद्धि हुई ॥ २९ ॥ ३० ॥ ककुत्स्थकी धर्मपत्नीके उदरसे महाबली अनेना नामम पुत्रका जन्म हुआ। अनेनाके सुविख्यात परम पराक्रमी पुत्र पृथु हुए ॥ ३१ ॥ पृथुको भगवान् विष्णुका साक्षात् अंश कहा जाता है। भगवती जगदम्बाके चरणकी उपासनामें उनकी अटूट श्रद्धा थी। पृथुसे जो पुत्र हुए, उन्हें राजा विश्वरन्धि कहा गया ॥ ३२ ॥ विश्वरन्धिसे चन्द्रका जन्म हुआ। वे अपने वंशके प्रसिद्ध प्रवर्तक माने जाते हैं। चन्द्रके तेजस्वी एवं असीम पराक्रमी पुत्रका नाम युवनाश्व पड़ा ॥ ३३ ॥ युवनाश्वसे परम धार्मिक शावन्तकी उत्पत्ति हुई। उन शावन्तने ही शावन्ती नामकी नगरी बसायी, जिसकी तुलना अमरावतीसे की जा सकती थी ॥ ३४ ॥

नाम्नेन्द्रवाहकः ॥ पुरं जितं तु दैत्यानां तेनाभूच्च पुरंजयः ॥ २८ ॥ जित्वा दैत्यान्महाबाहुर्धनं तेषां प्रदत्तवान् ॥ पप्रच्छ चैवं राजर्षेरिति सख्यं बभूव ह ॥ २९ ॥ ककुत्स्थश्चातिविख्यातो नृपतिस्तस्य वंशजः ॥ काकुत्स्था भुवि राजानो बभूवुर्बहुविश्रुताः ॥ ३० ॥ ककुत्स्थस्याभवत्पुत्रो धर्मपत्न्यां महाबलः ॥ अनेना विश्रुतस्तस्य पृथुपुत्रश्च वीर्यवान् ॥ ३१ ॥ विष्णोरंशः स्मृतः साक्षात्पराशक्तिपदार्चकः ॥ विश्वरंधिस्तु विज्ञेयः पृथोः पुत्रो नराधिपः ॥ ३२ ॥ चंद्रस्तस्य सुतः श्रीमान्राजा वंशकरः स्मृतः ॥ तत्सुतो युवनाश्वस्तु तेजस्वी बलवत्तरः ॥३३॥ शावंतो युवनाश्वस्य जज्ञे परमधार्मिकः ॥ शावंती निर्मिता तेन पुरी शक्रपुरीसमा ॥ ३४ ॥ बृहदश्वस्तु पुत्रोऽभूच्छावंतस्य महात्मनः ॥ कुवलाश्वः सुतस्तस्य बभूव पृथिवीपतिः ॥ ३५ ॥ धुंधुनामा हतो दैत्यस्तेनासौ पृथिवीतले ॥ धुंधुमारेति विख्यातं नाम प्रापातिविश्रुतम् ॥३६॥ पुत्रस्तस्य दृढाश्वस्तु पालयामास मेदिनीम् ॥ दृढाश्वस्य सुतः श्रीमान्हर्यश्व इति कीर्तितः ॥ ३७ ॥ निकुंभस्तत्सुतः प्रोक्तो बभूव पृथिवीपतिः ॥ बर्हणाश्वो निकुम्भस्य कृशाश्वस्तस्य वै सुतः ॥ ३८ ॥ प्रसेनजित्कृशाश्वस्य बलवान्सत्यविक्रमः ॥ तस्य पुत्रो महाभागो यौवनाश्वेति विश्रुतः ॥ ३९ ॥ यौवनाश्वसुतः श्रीमान्मांधातेति महीपतिः ॥ अष्टोत्तरसहस्रं तु प्रासादा येन निर्मिताः ॥४०॥ भगवत्यास्तु तुष्ट्यर्थं महातीर्थेषु मानद ॥ मातृगर्भे न जातोऽसावुत्पन्नो जनकोदरे ॥४१॥

महात्मा शावन्तके पुत्र बृहदश्व हुए। बृहदश्वसे राजा कुवलाश्वका जन्म हुआ ॥ ३५ ॥ कुवलाश्वने धुन्धु नामक दैत्यका संहार कर डाला। तबसे वे धुन्धुमार नामसे विख्यात हुए—यह बात परम प्रसिद्ध है ॥ ३६ ॥ कुवलाश्वके पुत्र दृढाश्व हुए, जिन्होंने पृथ्वीकी सम्यक् प्रकारसे रक्षा की। दृढाश्वके सुयोग्य पुत्र श्रीमान् हर्यश्व कहे गये हैं ॥ ३७ ॥ हर्यश्वके पुत्रको राजा निकुम्भ कहा गया है। निकुम्भके पुत्र बर्हणाश्व और उनके पुत्र कृशाश्व हुए ॥ ३८ ॥ कृशाश्वके बलशाली एवं सत्यपराक्रमी पुत्रका नाम प्रसेनजित् हुआ। प्रसेनजित्के पुत्र महान् भाग्यशाली यौवनाश्व हुए ॥ ३९ ॥ यौवनाश्वसे राजा मान्धाताकी उत्पत्ति हुई, जिन्होंने एक सहस्र आठ भव्य भवनोंका निर्माण कराया था ॥ ४० ॥ हे मानद! भगवती जगदम्बाको संतुष्ट करनेके लिये उन्होंने महान् तीर्थस्थानोंमें मन्दिर बनवाये थे। माताके गर्भसे न होकर पिताके उदरसे ही उनकी उत्पत्ति हुई थी। पिताके पेटको फाड़कर उन्हें निकाला गया था ॥४१॥

राजा जनमेजयने कहा—हे महाभाग ! राजा मान्धाताके जन्मके विषयमें यह कैसी कल्पनातीत बात आपने कही है, जो कहीं भी नहीं देखी या सुनी गयी । अब आप उन नरेशके जन्मका कारण विस्तारपूर्वक बतानेकी कृपा कीजिये । वह सर्वाङ्गसुन्दर पुत्र राजा यौवनाश्वके उदरसे जैसे उत्पन्न हुआ हो, कृपया वह पूरा प्रसंग स्पष्ट करके कहिये ॥४२॥४३॥ व्यासजी कहते हैं—हे राजन् ! परम धार्मिक राजा यौवनाश्वके सौ रानियाँ थीं, परन्तु किसीसे कोई सन्तान नहीं हुई । इस कारण वे नित्य चिन्तातुर रहते थे ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ तदनन्तर संतानके लिये अत्यन्त खिन्न होकर वे वनमें चले गये और ऋषियोंके पवित्र आश्रमपर उनका समय व्यतीत होने लगा ॥ ४६ ॥ वहाँ बहुत-से ब्राह्मण तपस्या कर रहे थे । उन नरेशको उदास देखकर ब्राह्मणोंके हृदयमें दया उत्पन्न हो गयी ॥ ४७ ॥ अतः उन ब्राह्मणोंने राजा यौवनाश्वसे पूछा—'हे नरेश ! तुम इतने चिन्तत क्यों हो ? कौनसा मानसिक सन्ताप तुम्हें इतना कष्ट दे

निःसारितस्ततः पुत्रः कुक्षिं भित्त्वा पितुः पुनः ॥ राजोवाच ॥ न श्रुतं न च दृष्टं वा भवता यदुदाहृतम् ॥ ४२ ॥ असंभाव्यं महाभाग तस्य जन्म यथोदितम् ॥ विस्तरेण वदस्वाद्य मांधातुर्जन्मकारणम् ॥ ४३ ॥ राजोदरे यथोत्पन्नः पुत्रः सर्वाङ्गसुंदरः ॥ व्यास उवाच ॥ यौवनाश्वोऽनपत्योऽभूद्राजा परमधार्मिकः ॥ ४४ ॥ भार्याणां च शतं तस्य बभूव नृपतेर्नृप ॥ राजा चिंतापरः प्रायश्चितयामास नित्यशः ॥ ४५ ॥ अपत्यार्थे यौवनाश्वो दुःखितस्तु वनं गतः ॥ ऋषीणामाश्रमे पुण्ये निर्विण्णः स च पार्थिवः ॥ ४६ ॥ मुमोच दुःखितः श्वासांस्तापसानां च पश्यताम् ॥ दृष्ट्वा तु दुःखितं विप्रा बभूवुश्च कृपालवः ॥ ४७ ॥ तमूचुर्ब्राह्मणा राजन्कस्माच्छोचसि पार्थिव ॥ किं ते दुःखं महाराज ब्रूहि सत्यं मनोगतम् ॥ ४८ ॥ प्रतीकारं करिष्यामो दुःखस्य तव सर्वथा ॥ यौवनाश्व उवाच ॥ राज्यं धनं सदश्वाश्च वर्तन्ते मुनयो मम ॥ ४९ ॥ भार्याणां शतं शुद्धं वर्तते विशदप्रभम् ॥ नारातिस्त्रिषु लोकेषु कोऽप्यस्ति बलवान्मम ॥ ५० ॥ आज्ञाकरास्तु सामंता वर्तन्ते मंत्रिणस्तथा ॥ एकं संतानजं दुःखं नान्यत्पश्यामि तापसाः ॥ ५१ ॥ अपुत्रस्य गतिर्नास्ति स्वर्गो नैव च नैव च ॥ तस्माच्छोचामि विप्रेन्द्राः संतानार्थं भृशं ततः ॥ ५२ ॥ वेदशास्त्रार्थतत्त्वज्ञास्तापसाश्च कृतश्रमाः ॥ इष्टिं संतानकामस्य युक्तां ज्ञात्वा दिशंतु मे ॥५३॥ कुर्वंतु मम कार्यं वै कृपा चेदस्ति तापसाः ॥ व्यास

रहा है ? अपनी सच्ची बात बतानेकी कृपा करो ॥४८॥ हम तुम्हारा दुःख दूर करनेका यत्न करेंगे ।' राजा यौवनाश्वने कहा—हे मुनियो ! मेरे पास राज्य, धन एवं उत्तम श्रेणीके बहुत-से घोड़े विद्यमान हैं ॥ ४९ ॥ महलमें सैकड़ों साध्वी रानियाँ हैं । त्रिलोकीभरमें कोई भी ऐसा शत्रु नहीं है, जो मुझसे बलवान् हो ॥ ५० ॥ मन्त्री और सामन्त नरेश—सबके सब मेरी आज्ञाके पालनमें तत्पर रहते हैं । हे तपस्वियो ! सन्तान न होनेका ही एकमात्र दुःख मुझे सता रहा है । इसके सिवा दूसरा कोई भी दुःख नहीं है ॥ ५१ ॥ पुत्रहीन मनुष्यको न सद्गति मिलती है और न स्वर्ग ही प्राप्त होता है । अतएव हे विप्रगण ! मैं पुत्रके लिए शोकाकुल रहता हूँ ॥ ५२ ॥ हे तपस्वियो ! आप लोगोंने महान् परिश्रम करके वेद और शास्त्रके रहस्यको जान लिया है। अब आपकी समझमें मुझ सन्तानकामी व्यक्ति के लिये जो उचित हो, वह बतानेकी कृपा करें ॥५३॥ हे तापसो ! यदि मुझपर कृपा हो तो आप लोग मेरे इस

कार्यको सम्पन्न करनेमें तत्पर हो जायँ। व्यासजी कहते हैं--हे राजन्! महाराज यौवनाश्वकी बात सुनकर उन ब्राह्मणोंका हृदय कृपासे भर गया ॥ ५४ ॥ उन्होंने बड़ी सावधानीके साथ राजासे एक यज्ञ करवाया, जिसमें प्रधान देवता इन्द्र माने गये थे। ब्राह्मणोंने गलेतक जलसे भरा हुआ एक कलश वहाँ रखवाया ॥ ५५ ॥ राजाको संतान हो जाय--इस उद्देश्यको लेकर वैदिक मन्त्रों द्वारा उस कलशका अभिमन्त्रण किया गया था। सहसा राजा यौवनाश्वको रातमें बड़ी प्यास लग गयी। वे उस यज्ञशालामें चले गये। देखा, सभी ब्राह्मण सोये हैं और कहीं भी जल नहीं है। तब प्यासके मारे वे उस अभिमन्त्रित जलको ही पी गये। ब्राह्मणोंने विधिपूर्वक मन्त्रोंसे संस्कृत करके वह जल रानीके लिये रखा था ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ हे राजेन्द्र! अज्ञानवश वह जल राजाके पेटमें चला गया। प्रातःकाल जब ब्राह्मणोंने देखा कि कलशमें जल बिलकुल नहीं है, तब उन्होंने शङ्कित होकर राजासे पूछा--किसने यह जल पिया है? राजाने ही जल पिया है-यह बात जानकर वे समझ गये कि दैव सबसे बढ़कर बलवान् है ॥५८॥५९॥ तदनन्तर यज्ञकी पूर्णाहुति कराकर वे सभी मुनिगण अपने-अपने घर चले गये।

उवाच॥ तच्छ्रुत्वा वचनं राज्ञः कृपया पूर्णमानसाः ॥५४॥ कारयामासुरव्यग्रास्तस्येष्टिमिंद्र देवताम्॥ कलशः स्थापितस्तत्र गलपूर्णस्तु वाडवैः ॥५५॥ मंत्रितो वेदमन्त्रैश्च पुत्रार्थं तस्य भूपतेः ॥ राजा तद्यज्ञसदनं प्रविष्टस्तृषितो निशि ॥ ५६ ॥ विप्रान्दृष्ट्वा शयानान्स पपौ मंत्रजलं स्वयम् ॥ भार्यार्थं संस्कृतं विप्रैर्मंत्रितं विधिनोद्धृतम् ॥ ५७ ॥ पीतं राज्ञा तृषार्तेन तदज्ञानान्नृपोत्तम ॥ व्युदकं कलशं दृष्ट्वा तदा विप्रा विशंकिताः ॥ ५८ ॥ पप्रच्छुस्ते नृपं केन पीतं जलमिति द्विजाः ॥ राज्ञा पीतं विदित्वा ते ज्ञात्वा दैवबलं महत् ॥५९॥ इष्टिं समापयामासुर्गतास्ते मुनयो गृहान् ॥ गर्भं दधार नृपतिस्ततो मंत्रबलादथ ॥ ६० ॥ ततः काले स उत्पन्नः कुक्षिं भित्त्वाऽस्य दक्षिणाम् ॥ पुत्रं निष्कासयामासुर्मन्त्रिणस्तस्य भूपतेः ॥ ६१ ॥ देवानां कृपया तत्र न ममार महीपतिः ॥ कं धास्यति कुमारोऽयं मंत्रिणश्चुक्रुशुर्भृशम् ॥ ६२ ॥ तदेंद्रो देशिनीं प्रादान्मां धातेत्यवदद्वचः ॥ सोऽभवद्बलवान्राजा मान्धाता पृथिवीपतिः ॥६३॥ तदुत्पत्तिस्तु भूपाल कथिता तव विस्तरात् ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे नवमोऽध्यायः ॥९॥

॥ व्यास उवाच ॥ बभूव चक्रवर्ती स नृपतिः सत्यसंगरः ॥ मांधाता पृथिवीं सर्वामजयन्नृपतीश्वरः ॥ १ ॥ दस्यवोऽस्य भयत्रस्ता ययुर्गिरि-

इधर मन्त्रके प्रभावसे स्वयं राजाके पेटमें ही गर्भ स्थित हो गया ॥ ६० ॥ गर्भ पूर्ण होनेपर महाराज यौवनाश्वकी दाहिनी कोख चीरी गयी, जिससे पुत्रकी उत्पत्ति हुई। इस प्रकार पुत्र निकालनेका सारा श्रेय राजाके सुयोग्य मंत्रियोंके ऊपर निर्भर था ॥ ६१ ॥ देवताओंकी कृपासे राजाके प्राण नहीं निकले। उस समय मन्त्री लोग बड़े जोरसे चिल्ला उठे-यह कुमार अब दूध किसका पियेगा? ॥ ६२ ॥ इतनेमें इन्द्रने झट उसके मुखमें अपनी तर्जनी अँगुली देकर कहा कि 'मेरा दूध पियेगा।' समय पाकर वे ही महान् तेजस्वी राजा मान्धाता हुए। हे राजन्! उन नरेशकी उत्पत्तिका यही विस्तृत प्रसंग है ॥ ६३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते सप्तमस्कन्धे 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

(सत्यव्रतके त्रिशंकु नाम पड़नेका कारण) व्यासजी बोले-हे राजन्! वे महाराज मान्धाता सत्यप्रतिज्ञ और चक्रवर्ती नरेश हुए। सम्पूर्ण भूमण्डलपर उनकी विजयपताका फहरा

रही थी ॥ १ ॥ उनके डरसे लुटेरे और डाकू पर्वतोंकी गुफाओंमें छिप गये थे। इसी कारण इन्द्रने उन्हें त्रसद्दस्यु नामसे विख्यात कर दिया ॥ २ ॥ मान्धाताकी धर्मपत्नीका नाम बिन्दुमती था। वे शशबिन्दुकी लाड़ली पुत्री थीं। वे पतिव्रता, परम सुन्दरी एवं सभी शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न थीं ॥ ३ ॥ हे राजन्! मान्धाताने बिन्दुमतीके गर्भसे दो पुत्र उत्पन्न किये। एक पुत्र पुरुकुत्स नामसे परम प्रसिद्ध हुआ और दूसरेका नाम मुचुकुन्द पड़ा ॥ ४ ॥ पुरुकुत्ससे परम धार्मिक पुत्र अरण्यका जन्म हुआ। राजकुमार अरण्य पिताके अनन्य भक्त थे। इनके पुत्रका नाम बृहदश्व हुआ ॥ ५ ॥ बृहदश्वके धर्मात्मा एवं परामर्थज्ञानी हर्यश्व, हर्यश्वके त्रिधन्वा और त्रिधन्वाके अरुण हुए ॥ ६ ॥ अरुणका पुत्र सत्यव्रत नामसे प्रसिद्ध हुआ। उसके पास अटूट सम्पत्ति थी। वह स्वेच्छाचारी, कामी, मूर्ख और अत्यन्त लोभी निकला ॥ ७ ॥ वह दुराचारी राजा एक ब्राह्मणीमपर आसक्त हो गया और जिस दिन किसी ब्राह्मणके साथ उसका विवाह होने जा रहा था, उसी समय वह उस विप्रकन्याका विवाहके मण्डपसे अपहरण कर ले गया ॥ ८ ॥ हे राजन्! तब एक साथ सभी ब्राह्मण राजा अरुणके दरबारमें पहुँचे

गुहासु च ॥ इन्द्रेणास्य कृतं नाम त्रसद्दस्युरिति स्फुटम् ॥ २ ॥ तस्य बिंदुमती भार्या शशबिन्दोः सुताऽभवत् ॥ पतिव्रता सुरूपा च सर्वलक्षण-
संयुता ॥ ३ ॥ तस्यामुत्पादयामास मांधाता द्वौ सुतौ नृप ॥ पुरुकुत्सं सुविख्यातं मुचुकुन्दं तथाऽपरम् ॥ ४ ॥ पुरुकुत्सात्ततोऽरण्यः पुत्रः परम-
धार्मिकः ॥ पितृभक्तिरतश्चाभूद्बृहदश्वस्तदात्मजः ॥५॥ हर्यश्वस्तस्य पुत्रोऽभूद्धार्मिकः परमार्थवित् ॥ तस्यात्मजस्त्रिधन्वाऽभूदरुणस्तस्य चात्मजः
॥ ६ ॥ अरुणस्य सुतः श्रीमान्सत्यव्रत इति श्रुतः ॥ सोऽभूदिच्छाचरः कामो मंदात्मा ह्यतिलोलुपः ॥ ७ ॥ स पापात्मा विप्रभार्यां हृतवान्काम-
मोहितः ॥ विवाहे तस्य विघ्नं स चकार नृपतेः सुतः ॥ ८ ॥ मिलिता ब्राह्मणास्तत्र राजानमरुणं नृप ॥ ऊचुर्भृशं सुदुःखार्ता हा हताः स्मेति
चासकृत् ॥ ९ ॥ पप्रच्छ राजा तान्विप्रान्दुःखितान्पुरवासिनः ॥ किं कृतं मम पुत्रेण भवतामशुभं द्विजाः ॥१०॥ तन्निशम्य द्विजा वाक्यं राज्ञो
विनयपूर्वकम् ॥ तदोचुस्त्वरुणं विप्राः कृताशीर्वचना भृशम् ॥ ११ ॥ ब्राह्मणा ऊचुः ॥ राजंस्तव सुतेनाद्य विवाहे प्रहृता किल ॥ विवाहिता
विप्रकन्या बलेन बलिनांवर ॥ १२ ॥ व्यास उवाच ॥ श्रुत्वा तेषां वचस्तथ्यं राजा परमधार्मिकः ॥ पुत्रमाह वृथा नाम कृतं ते दुष्टकर्मणा ॥१३॥
गच्छ दूरं सुमन्दात्मन्दुराचार गृहान्मम ॥ न स्थातव्यं त्वया पाप विषये मम सर्वथा ॥१४॥ कुपितं पितरं प्राह क्व गच्छामीति वै मुहुः ॥ अरुण-

और बड़े दुःखित हो बार-बार हाहाकार करते हुए कहने लगे—हाय! हम मारे गये ॥९॥ इस प्रकार कष्टमें पड़े हुए उन अयोध्यावासी ब्राह्मणोंसे राजाने कहा—हे ब्राह्मणो! मेरे राजकुमारने आप लोगोंका क्या बिगाड़ा है? ॥ १० ॥ राजाकी नम्रता भरी वाणी सुनकर ब्राह्मणोंने आशीर्वाद देते हुए कहा—॥ ११ ॥ ब्राह्मण बोले—हे महाराज! आज ही आपके सत्यव्रत विवाहमण्डपसे एक ब्राह्मणकी विवाहित कन्याको हठात् हर ले गये हैं ॥१२॥ व्यासजी बोले—हे राजन्! परम धर्मात्मा राजा अरुणको जब मालूम हुआ कि ब्राह्मणोंकी बात सत्य है, तब अपने पुत्रको बुलवाकर डाँटते हुए बोले—तुम्हारा नाम सत्यव्रत है और तुमने ऐसा दुराचार किया? तुम्हारे इस कुकर्मके कारण तुम्हारा सत्यव्रत नाम व्यर्थ हो गया ॥१३॥ अरे दुर्बुद्धे! ओ दुराचारी! मेरे घरसे निकल जा। अरे पापी! तू मेरे राज्यमें कहीं भी पैर मत रखना ॥१४॥ अपने पिताको कुपित देखकर वह राजकुमार बार-बार कहने लगा कि मैं जाऊँ? तब

राजा अरुणने कहा कि तू जाकर चण्डालोंके साथ रह ॥ १५ ॥ क्योंकि चण्डाल ही द्विजातिवर्णकी महिलाओंका अपहरण करते हैं और वही कुकर्म तूने भी किया है। इसलिए उन्हीं लोगोंके साथ मौजसे जीवन बिता ॥ १६ ॥ अरे कुलकलङ्की ! तुझ जैसे कुपूतसे मैं पुत्रवान् नहीं बनना चाहता। अरे दुष्ट ! तूने मेरी कीर्ति नष्ट कर दी। इसलिए जहाँ तेरी इच्छा हो, वहाँ चला जा ॥१७॥ महात्मा और कुपित पिताकी बात सुनकर राजकुमार सत्यव्रत अयोध्या नगरीसे बाहर निकलकर चण्डालोंकी बस्तीमें चला गया ॥ १८ ॥ वहाँ जाकर वह चण्डालोंके साथ रहने लगा। दयाका अवतार और श्रीमान् सत्यव्रत कवच पहन और धनुष-बाण लेकर श्वपचोंके साथ दिन काटने लगा ॥ १९ ॥ महात्मा राजा अरुणने जब क्रोधके वशीभूत होकर अपने उस राजकुमारको निर्वासनका दण्ड दिया था, तब कुलगुरु वसिष्ठने ही उन्हें ऐसा करनेके लिए प्रेरित किया था ॥ २० ॥ इसलिए वसिष्ठके ऊपर राजकुमार सत्यव्रतका क्रोध बढ़ता ही गया। वह राजकुमार सोचता था कि ब्रह्मर्षि धर्मशास्त्रके ज्ञाता हैं। अतएव यदि वे चाहते तो राजाको ऐसा करनेसे रोक सकते थे ॥ २१ ॥ एक समय किसी अज्ञात कारण वश

स्तमथोवाच श्वपाकैः सह वर्तय ॥ १५ ॥ श्वपचस्य कृतं कर्म द्विजदारापहारणम् ॥ तस्मात्तैः सह संसर्गं कृत्वा तिष्ठ यथासुखम् ॥ १६ ॥ नाहं पुत्रेण पुत्रार्थी त्वया च कुलपांसन ॥ यथेष्टं व्रज दुष्टात्मन्कीर्तिनाशः कृतस्त्वया ॥ १७ ॥ स निशम्य पितुर्वाक्यं कुपितस्य महात्मनः ॥ निश्चक्राम पुरात्तस्मात्तरसा श्वपचान् ययौ ॥१८॥ सत्यव्रतस्तदा तत्र श्वपाकैः सह वर्तते ॥ धनुर्बाणधरः श्रीमान्कवची करुणालयः ॥१९॥ यदा निष्कासितः पित्रा कुपितेन महात्मना ॥ गुरुणाऽथ वसिष्ठेन प्रेरितोऽसौ महीपतिः ॥ २० ॥ तस्मात्सत्यव्रतस्तस्मिन्बभूव क्रोधसंयुतः ॥ वसिष्ठे धर्मशास्त्रज्ञे निवारणपराङ्मुखे ॥ २१ ॥ केनचित्कारणेनाथ पिता तस्य महीपतिः ॥ पुत्रार्थेऽसौ तपस्तप्तुं पुरं त्यक्त्वा वनं गतः ॥ २२ ॥ न ववर्ष तदा तस्मिन्विषये पाकशासनः ॥ समा द्वादश राजेंद्र तेनाधर्मेण सर्वथा ॥२३॥ विश्वामित्रस्तदा दारांस्तस्मिंस्तु विषये नृप ॥ संन्यस्य कौशिकीतीरे चचार विपुलं तपः ॥२४॥ कातरा तत्र संजाता भार्या वै कौशिकस्य ह ॥ कुटुम्बभरणार्थाय दुःखिता वरवर्णिनी ॥२५॥ बालकान्क्षुधयाऽऽक्रांतान्रुदतः पश्यती भृशम् ॥ याचमानांश्च नीवारान्कष्टमाप पतिव्रता ॥ २६ ॥ चिंतयामास दुःखार्ता तोकान्वीक्ष्य क्षुधातुरान् ॥ नृपो नास्ति पुरे ह्यद्य कं याचे वा करोमि किम् ॥ २७ ॥ न मे त्राताऽस्ति पुत्राणां पतिर्मे नास्ति सन्निधौ ॥ रुदंति बालकाः कामं धिङ्मे जीवनमद्य वै ॥ २८ ॥

सत्यव्रतके पिता राजा अरुण अयोध्या छोड़कर पुत्रकी कामनासे जंगलमें तप करने चले गये ॥ २२ ॥ तब हे राजा जनमेजय ! इस अधर्मके कारण इन्द्रने उनके राज्यमें लगातार बारह साल तक जल नहीं बरसाया ॥२३॥ हे राजन् ! उन्हीं दिनों विश्वामित्र अयोध्या नगरीमें अपनी धर्मपत्नी और पुत्रको छोड़कर कौशिकी नदीके किनारे उग्र तप कर रहे थे ॥ २४ ॥ तब विश्वामित्रकी स्त्री 'ऐसे अकालके समय अपने कुटुम्बियोंका भरण-पोषण मैं कैसे कर सकूँगी' इस चिन्तासे बड़ी अधीर हो उठी ॥ २५ ॥ उसके बालक भूखसे व्याकुल होकर खानेके लिए माँगते हुए रो रहे हैं, यह यह दृश्य देख-देखकर उस पतिव्रताको बड़ा कष्ट होता था ॥ २६ ॥ पुत्रोंको भूखसे बेचैन देखकर वह मन-ही-मन सोचने लगी कि इस समय तो अयोध्यानरेश भी यहाँ नहीं हैं। अब मैं किससे माँगूँ ? अथवा दूसरा कौन उपाय करूँ ? ॥ २७ ॥ मेरे रक्षक पतिदेव भी यहाँ नहीं हैं। बालक इस तरह रोते-चिल्लाते रहते हैं, तब मेरे जीवनको

धिक्कार है ॥ २८ ॥ मेरे पतिदेव जानते थे कि मेरे पास कुछ भी धन नहीं है—फिर भी वे तपस्या करने चले गये। धनके अभावमें मैं कितना कष्ट भोग रही हूँ, समर्थ होकर भी वे इस बातको नहीं समझते ॥ २९ ॥ पतिके अभावमें मैं किस उपायसे अपने बालकोंका भरण-पोषण करूँ? किसी दिन भूखसे तड़प-तड़पकर इनकी मृत्यु हो जायगी ॥ ३० ॥ मेरे लिए अब केवल एक उपाय शेष है, वह यह कि इनमेंसे एक पुत्र बेच दूँ। उसके बेचनेसे जो थोड़ा-बहुत धन मिले, उससे बाकी पुत्रोंकी रक्षा करूँ ॥ ३१ ॥ क्योंकि सब पुत्रोंको मार डालना अच्छा नहीं है। यह बुरा दिन काटनेके लिए मैं एक पुत्रको बेचूँगी ॥ ३२ ॥ उस पतिव्रताने मन-ही-मन ऐसा सङ्कल्प करके हृदयको कड़ा किया और अपने एक पुत्रके गलेमें कुश-की रस्सी बाँधकर घरसे निकली ॥ ३३ ॥ वह मुनि-पत्नी बाकी पुत्रोंके रक्षार्थ अपनी कोखसे उत्पन्न मझले पुत्रके गलेमें रस्सी बाँधकर घरसे चली ॥ ३४ ॥ तभी राजकुमार सत्यव्रतने

धनहीनां च मां त्यक्त्वा तपस्तप्तुं गतः पतिः ॥ न जानाति समर्थोऽपि दुःखितां धनवर्जिताम् ॥ २९ ॥ बालानां भरणं केन करोमि पतिना विना ॥ मरिष्यन्ति सुताः सर्वे क्षुधया पीडिता भृशम् ॥ ३० ॥ एकं सुतं तु विक्रीय द्रव्येण कियता पुनः ॥ पालयामि सुतानन्यानेष मे विहितो विधिः ॥ ३१ ॥ सर्वेषां मारणं नाद्धा युक्तं मम विपर्यये ॥ कालस्य कलनायाहं विक्रीणामि तथात्मजम् ॥ ३२ ॥ हृदयं कठिनं कृत्वा संचिंत्य मनसा सती ॥ सा दर्भरज्ज्वा बद्ध्वाऽथ गले पुत्रं विनिर्गता ॥ ३३ ॥ मुनिपत्नी गले बद्ध्वा मध्यमं पुत्रमौरसम् ॥ शेषस्य भरणार्थाय गृहीत्वा चलिता गृहात् ॥ ३४ ॥ दृष्टा सत्यव्रतेनार्ता तापसी शोकसंयुता ॥ पप्रच्छ नृपतिस्तां तु किं चिकीर्षसि शोभने ॥ ३५ ॥ रुदंतं बालकं कंठे बद्ध्वा नयसि काऽधुना ॥ किमर्थं चारुसर्वांगि सत्यं ब्रूहि ममाग्रतः ॥ ३६ ॥ ऋषिपत्न्युवाच ॥ विश्वामित्रस्य भार्याऽहं पुत्रोऽयं मे नृपात्मज ॥ विक्रेतुमौरसं कामं गमिष्ये विषमे सुतम् ॥ ३७ ॥ अन्नं नास्ति पतिर्मुक्त्वा गतस्तप्तुं नृप क्वचित् ॥ विक्रीणामि क्षुधार्तैनं शेषस्य भरणाय वै ॥ ३८ ॥ ॥ राजोवाच ॥ पतिव्रते रक्ष पुत्रं दास्यामि भरणं तव ॥ तावदेव पतिस्तेऽत्र वनाच्चैवागमिष्यति ॥ ३९ ॥ वृक्षे तवाश्रमाभ्याशे भक्ष्यं किञ्चिन्निरंतम् ॥ बंधयित्वा गमिष्यामि सत्यमेतद्ब्रवीम्यहम् ॥ ४० ॥ इत्युक्ता सा तदा तेन राज्ञा कौशिककामिनी ॥ विबंधं तनयं कृत्वा जगामाश्रम-

देखा कि एक तपस्विनी शोकाकुल भावसे चली जा रही है। तब उन्होंने पूछा—हे शोभने! आप क्या करना चाहती हैं? ॥ ३५ ॥ हे सर्वाङ्गसुन्दरी! आप क्यों इस रोते हुए बालक-का गला बाँधकर लिये जा रही हैं? आप मुझे सचसच बतायें ॥ ३६ ॥ ऋषिपत्नी बोली—हे राजकुमार! मैं महर्षि विश्वामित्रकी पत्नी हूँ और यह मेरा पुत्र है। उदर-पोषणके विषम सङ्कटमें पड़कर मैं अपने औरस पुत्रका बेचने जा रही हूँ ॥ ३७ ॥ हे राजकुमार! मेरे घरमें अन्न नहीं है और पतिदेव मुझे छोड़कर कहीं तपस्या करने चले गये हैं। सो भूखसे व्याकुल होकर बाकी पुत्रोंके रक्षार्थमें इसे बेचूँगी ॥३८॥ राजा सत्यव्रतने कहा—हे साध्वी! आप अपने पुत्रकी रक्षा करें। जबतक आपके पतिदेव जंगलसे तपस्या करके वापस नहीं आयेंगे, तबतकके लिए मैं आपके भरण-पोषणका प्रबन्ध कर दूँगा ॥ ३९ ॥ आपके आश्रमके पासवाले वृक्षपर मैं नित्य कुछ-न-कुछ खाद्य पदार्थ बाँध आया करूँगा। यह बात मैं सत्य कह रहा हूँ

॥ ४० ॥ राजाके इस तरह आश्वासन देनेपर महर्षि विश्वामित्रकी पत्नी पुत्रके गलेसे रस्सी खोलकर अपने आश्रमको लौट गयी ॥ ४१ ॥ गला बँधनेके कारण उस बालकका नाम 'गालव' पड़ गया और आगे चलकर वह बड़ा भारी तपस्वी हुआ। उधर ऋषिपत्नी अपने बालकोंके साथ सानन्द आश्रममें रहने लगी ॥ ४२ ॥ राजा सत्यव्रत भी भक्ति एवं दयासे पूर्ण होकर विश्वामित्र मुनिकी धर्मपत्नीका पालन-पोषण करने लगे ॥ ४३ ॥ वे नित्य वनमें जाकर जंगली हरिण, सूअर और भैंसोंको मारते थे और उनका मांस विश्वामित्रके तपोवनके पास-वाले पेड़में बाँध देते थे ॥ ४४ ॥ वह ऋषि-नारी नित्य वहाँ जाकर उस मांसको लाती और अपने पुत्रोंको खानेके लिए दे दिया करती थी। वह उत्तम खाद्य पदार्थ पाकर उसे परम तृप्ति प्राप्त होती थी ॥ ४५ ॥ उधर जब महाराज अरुण तप करने चले गये तो महर्षि वसिष्ठ अयोध्याके राज्य और रनिवासकी सँभाल करने लगे ॥ ४६ ॥ सत्यव्रत बड़े धर्मात्मा थे। इसलिए पिताकी आज्ञाका पालन करते हुए वे नगरसे बाहर जंगलमें जाकर आखेट किया करते थे ॥ ४७ ॥ अकस्मात् सत्यव्रतके मनमें किसी कारण महर्षि वसिष्ठजीके ऊपर क्रोध आ गया

मंडलम् ॥ ४१ ॥ सोऽभवद्गालवो नाम गलबंधान्महातपाः ॥ सा तु स्वस्याश्रमे गत्वा मुमोद बालकैर्वृता ॥ ४२ ॥ सत्यव्रतस्तु भक्त्या च कृपया च परिप्लुतः ॥ विश्वामित्रस्य च मुनेः कलत्रं तद्बभार ह ॥ ४३ ॥ वने स्थितान्मृगान्हत्वा वराहान्महिषांस्तथा ॥ विश्वामित्रवनाभ्याशे मांसं वृक्षे बबंध ह ॥४४॥ ऋषिपत्नी गृहीत्वा तन्मांसं पुत्रानदात्ततः ॥ निर्वृतिं परमां प्राप प्राप्य भक्ष्यमनुत्तमम् ॥४५॥ अयोध्यां चैव राज्यं च तथैवांतःपुरं मुनिः ॥ गते तप्तुं नृपे तस्मिन्वसिष्ठः पर्यरक्षत ॥ ४६ ॥ सत्यव्रतोऽपि धर्मात्मा ह्यतिष्ठन्नगराद्बहिः ॥ पितुराज्ञां समास्थाय पशुघ्नव्रतवान्वने ॥४७॥ सत्यव्रतो ह्यकस्माच्च कस्यचित्कारणान्नृपः ॥ वसिष्ठे चाधिकं मन्युं धारयामास नित्यदा ॥ ४८ ॥ त्यज्यमानं वने पित्रा धर्मिष्ठं च प्रियं सुतम् ॥ न वारयामास मुनिर्वसिष्ठः कारणेन ह ॥ ४९ ॥ पाणिग्रहणमंत्राणां निष्ठा स्यात्सप्तमे पदे ॥ जानन्नपि स धर्मात्मा विप्रदारपरिग्रहे ॥ ५० ॥ कस्मिंश्चिद्दिवसेऽरण्ये मृगाभावे महीपतिः ॥ वसिष्ठस्य च गां दोग्ध्रीमपश्यद्वनमध्यगाम् ॥ ५१ ॥ तां जघान क्षुधार्तस्तु कोधान्मोहाच्च दस्युवत् ॥ वृक्षे बबंध तन्मांसं नीत्वा स्वयमभक्षयत् ॥५२॥ ऋषिपत्नी सुतान्सर्वान्भोजयामास तत्तदा ॥ शंकमाना मृगस्येति न गोरिति च सुव्रत ॥५३॥

तो वह नित्य बढ़ता ही गया ॥ ४८ ॥ वे बार-बार अपने मनमें यही सोचते रहते थे कि जिस समय महाराज अरुणने मुझ धर्मपरायण तथा प्रिय पुत्रको वनवासका दण्ड दिया, तब मुनि वसिष्ठने उन्हें रोका क्यों नहीं ? ॥ ४९ ॥ वसिष्ठमुनि जानते हैं कि बिना 'सप्तपदी' (सात भाँवर) हुए विवाहकर्म पूरा नहीं होता, तब सप्तपदीके पहले ही जब मैंने विप्रकन्याका अपहरण किया तो ब्राह्मणकी विवाहिता कन्याका अपहरण नहीं हुआ ॥ ५० ॥ एक दिन सत्यव्रत जंगलमें शिकारके लिए घूम रहे थे, लेकिन उन्हें कोई पशु नहीं मिला। घूमते-घूमते जब वे जंगलके बीचमें पहुँचे तो वहाँ महर्षि वसिष्ठकी दुधार गाय दिखायी पड़ी ॥ ५१ ॥ वे भूखे थे और ऋषिके ऊपर क्रोध भी था। अतएव वे मोहमें पड़ गये और एक डाकूकी तरह वह गाय काट डाली। फिर उसमेंसे कुछ मांस विश्वामित्रकी धर्मपत्नीके लिए पेड़की डालमें बाँधकर बाकी मांस स्वयं खा गये ॥ ५२ ॥ हे संयमी जनमेजय ! विश्वामित्रकी पत्नीने अपने सभी पुत्रोंको

वह मांस खिला दिया। उसे तनिक भी सन्देह नहीं हुआ कि यह मृगका नहीं, बल्कि गौका मांस है ॥ ५३ ॥ जब वसिष्ठको यह ज्ञात हुआ कि सत्यव्रतने मेरी दुधार गायकी हत्या कर डाली है तो वे कुपित होकर उससे बोले—अरे दुरात्मा ! गौकी हत्या करके पिशाचकी तरह तूने यह कैसा पाप कर डाला ? ॥ ५४ ॥ गोवध, द्विजपत्नीका अपहरण और पिताके विकराल कोप—इन तीन अपराधोंके कारण तेरे मस्तकपर तीन शंकु अर्थात् कोढ़की तरह तीन रेखायें पड़ जायँगी ॥५५॥ फिर अन्यान्य अपराधोंके कारण वसिष्ठजीने उसको यह शाप दे दिया कि 'भूमण्डलपर तेरी त्रिशंकु नामसे प्रसिद्धि होगी। तू सम्पूर्ण प्राणियोंको अपना पैशाचिक रूप ही दिखा सकेगा' ॥ ५६ ॥ व्यासजी कहते हैं—हे राजन् ! इस प्रकार वसिष्ठजीके द्वारा शापग्रस्त होनेपर सत्यव्रतने कठिन तपस्या आरम्भ कर दी ॥५७॥ किसी एक मुनिपुत्रने उसे एक श्रेष्ठ देवीमन्त्र बता दिया था। सो परम कल्याणस्वरूपिणी प्रकृतिमयी भगवती जगदम्बाका ध्यान करते हुए वह उस मन्त्रका जप करने लगा ॥ ५८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

वसिष्ठस्तु हतां दोग्ध्रीं ज्ञात्वा क्रुद्धस्तमब्रवीत् ॥ दुरात्मन्किं कृतं पापं धेनुघातात्पिशाचवत् ॥ ५४ ॥ एवं ते शंकवः क्रूराः पतंतु त्वरितास्त्रयः ॥ गोवधाद्दारहरणात्पितुः क्रोधात्तथा भृशम् ॥५५॥ त्रिशंकुरिति नाम्ना वै भुवि ख्यातो भविष्यसि ॥ पिशाचरूपमात्मानं दर्शयन्सर्वदेहिनाम् ॥५६॥ ॥ व्यास उवाच ॥ एवं शप्तो वसिष्ठेन तदा सत्यव्रतो नृपः ॥ चचार च तपस्तीव्रं तस्मिन्नेवाश्रमे स्थितः ॥ ५७ ॥ कस्माच्चिन्मुनिपुत्रात्तु प्राप्य मंत्रमनुत्तमम् ॥ ध्यायन्भगवतीं देवीं प्रकृतिं परमां शिवाम् ॥ ५८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

जनमेजय उवच ॥ वसिष्ठेन च शप्तोऽसौ त्रिशंकुर्नृपतेः सुतः ॥ कथं शापाद्विनिर्मुक्तस्तन्मे ब्रूहि महामते ॥ १ ॥ व्यास उवाच ॥ सत्यव्रतस्तथा शप्तः पिशाचत्वमवाप्तवान् ॥ तस्मिन्नेवाश्रमे तस्थौ देवीभक्तिपरायणः ॥ २ ॥ कदाचिन्नृपतिस्तत्र जप्त्वा मंत्रं नवाक्षरम् ॥ होमार्थं ब्राह्मणान्गत्वा प्रणम्योवाच भक्तितः ॥ ३ ॥ भूमिदेवाः शृणुध्वं वै वचनं प्रणतस्य मे ॥ ऋत्विजो मम सर्वेऽत्र भवंतः प्रभवंतु ह ॥ ४ ॥ जपस्य च दशांशेन होमः कार्यो विधानतः ॥ भवद्भिः कार्यसिद्ध्यर्थं वेदविद्भिः कृपापरैः ॥५॥ सत्यव्रतोऽहं नृपतेः पुत्रो ब्रह्मविदांवराः ॥ कार्यं मम विधातव्यं सर्वथा सुखहेतवे ॥ ६ ॥ तच्छ्रुत्वा ब्राह्मणास्तत्र तमूचुर्नृपतेः सुतम् ॥ शप्तस्त्वं गुरुणा प्राप्तं पिशाचत्वं त्वयाऽधुना ॥ ७ ॥ न यागार्होऽसि

(हरिश्चन्द्रोपाख्यान) राजा जनमेजयने कहा—हे महामते ! वसिष्ठजीके शाप दे देनेपर वह राजकुमार त्रिशंकु उस शापसे कैसे मुक्त हुआ ? कृपया यह प्रसंग मुझे बताइए ॥१॥ व्यासजी बोले—हे राजन् ! शापके कारण सत्यव्रतमें पिशाचके सभी लक्षण आ गये थे। परन्तु उसी आश्रमपर उसने भगवतीकी आराधना आरम्भ कर दी ॥ २ ॥ एक समयकी बात है—सत्यव्रत नवाक्षर मन्त्रका जप समाप्त करके हवन करनेके लिये ब्राह्मणोंके पास गया और भक्तिपूर्वक उन्हें प्रणाम करके कहने लगा—॥३॥ 'हे भूदेवो ! मैं आपकी शरणमें आया हूँ। आप लोग मेरी बात सुनिये। इस समय आप सब मेरे यज्ञमें ऋत्विज होनेकी कृपा कीजिये ॥ ४ ॥ आपलोग वेदके ज्ञाता एवं परम कृपालु हैं। कार्यमें सफलता प्राप्त करनेके लिए विधिपूर्वक जपके दशांश हवनकी व्यवस्था आपपर निर्भर है ॥ ५ ॥ हे वेदज्ञशिरोमणि ब्राह्मणो ! मेरा नाम सत्यव्रत है। मैं एक राजकुमार हूँ। मैं सम्यक् प्रकारसे सुखी हो जाऊँ—एतदर्थ मेरे इस कार्यका सम्पादन आपलोगोंको

करना चाहिये' ॥ ६ ॥ राजकुमार सत्यव्रतकी बात सुनकर ब्राह्मणोंने उससे कहा--'भाई ! तुम्हारे गुरुदेव तुम्हें शाप दे चुके हैं। इस समय तुममें पूरी पैशाचिकता विद्यमान है ॥ ७ ॥ तुम्हारा वेदपर अधिकार नहीं रह गया है। अतएव तुम यज्ञ नहीं कर सकते। क्योंकि पैशाचिकता आ जानेपर प्राणी सब लोकोंमें निन्द्य समझा जाता है' ॥ ८ ॥ व्यासजी कहते हैं--हे जनमेजय ! ब्राह्मणोंकी यह बात सुनकर राजा सत्यव्रतके दुःखकी सीमा नहीं रही। उसने सोचा-'मेरे इस जीवनको धिक्कार है। वनमें रहकर मैं क्या करूँ ? ॥ ९ ॥ पिताने मुझे त्याग दिया है। गुरुसे मैं शापग्रस्त हूँ। राज्यपर मेरा किंचित् भी अधिकार नहीं रहा। घोर पैशाची वृत्ति मुझे घेरे हुए है। ऐसी स्थितिमें अब मैं क्या करूँ ? ॥१०॥ यों विचारकर उस राजकुमारने लकड़ी बटोरकर एक बहुत बड़ी चिता तैयार की और भगवती जगदम्बाका स्मरण करके वह उस चितापर बैठनेकी बात सोचने लगा ॥ ११ ॥ आग लगा देनेपर चिता प्रज्वलित हो उठी। राजकुमार सत्यव्रतने पहले स्नान किया। तदनन्तर चिताके सामने हाथ जोड़ और भगवती महामायाका स्मरण करके वह चितामें कूदनेके लिए प्रस्तुत हो गया ॥१२॥ राजकुमार मरनेपर

तस्मात्त्वं वेदेष्वनधिकारतः ॥ पिशाचत्वमनुप्राप्तं सर्वलोकेषु गर्हितम् ॥८॥ व्यास उवाच ॥ तन्निशम्य वचस्तेषां राजा दुःखमवाप ह ॥ धिग्जीवितमिदं मेऽद्य किं करोमि वने स्थितः ॥ ९ ॥ पित्रा चाहं परित्यक्तः शप्तश्च गुरुणा भृशम् ॥ राज्याद्भ्रष्टः पिशाचत्वमनुप्राप्तः करोमि किम् ॥१०॥ तदा पृथुतरां कृत्वा चितां काष्ठैर्नृपात्मजः ॥ सस्मार चंडिकां देवीं प्रवेशमनुचिंतयन् ॥ ११ ॥ स्मृत्वा देवीं महामायां चितां प्रज्वलितां पुरः ॥ कृत्वा स्नात्वा प्रवेशार्थं स्थितः प्रांजलिरग्रतः ॥१२॥ ज्ञात्वा भगवती तं तु मर्तुकामं महीपतिम् ॥ आजगाम तदाकाशं प्रत्यक्षं तस्य चाग्रतः ॥१३॥ दत्त्वाऽथ दर्शनं देवी तमुवाच नृपात्मजम् ॥ सिंहारूढा महाराज मेघगंभीरया गिरा ॥१४॥ देव्युवाच ॥ किं ते व्यवसितं साधो हुताशे मा तनुं त्यज ॥ स्थिरो भव महाभाग पिता ते जरसान्वितः ॥१५॥ राज्यं दत्त्वा वने तुभ्यं गंताऽस्ति तपसे किल ॥ विषादं त्यज हे वीर परश्वोऽहनि भूपते ॥१६॥ नेतुं त्वामागमिष्यन्ति सचिवाश्च पितुस्तव ॥ मत्प्रसादात्पिता च त्वामभिषिच्य नृपासने ॥ १७ ॥ जित्वा कामं ब्रह्मलोकं गमिष्यत्येष निश्चयः ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्त्वा तं तदा देवी तत्रैवांतरधीयत ॥ १८ ॥ राजपुत्रो विरमितो मरणात्पावकात्ततः ॥ अयोध्यायां तदाऽऽगत्य नारदेन महा-

उतारू है—यह जानकर स्वयं भगवती जगदम्बा उसके सामने आकर आकाशमें प्रकट हो गयीं ॥१३॥ हे महाराज ! उस समय भगवती सिंहपर सवार थीं। उन्होंने राजकुमार सत्यव्रतको दर्शन देकर मेघके समान गम्भीर वाणीमें कहा ॥ १४ ॥ देवी बोलीं—हे साधो ! तुम यह क्या कर रहे हो ? अग्निमें शरीरको मत जलाओ। हे महाभाग ! अभी शान्त रहो। अब तुम्हारे पिता वृद्ध हो चुके हैं ॥१५॥ हे वीर ! वे तुम्हें राज्य सौंपकर तपस्या करनेके लिये वनमें जाने ही वाले हैं। हे राजन् ! खेद करना छोड़ दो। आजसे तीसरे दिन तुम्हारे पिताके मंत्रीगण तुम्हें ले जानेके लिये आयेंगे। मेरी कृपाके वशीभूत राजा अपने राज्यपदपर तुम्हारा अभिषेक करेंगे ॥१६॥१७॥ इसके बाद तुम्हारे निष्काम पिता ब्रह्मलोक सिधारेंगे--यह बिल्कुल निश्चित है। व्यासजी कहते हैं—हे राजन्! सत्यव्रतसे ऐसा कहकर भगवती वहाँ ही अन्तर्धान हो गयीं ॥१८॥ राजकुमार जो चितामें जलनेके लिए तैयार था, रुक गया। उसी समय महात्मा नारदजी

अयोध्यामें पधारे ॥१९॥ उन्होंने आदिसे अन्ततक सत्यव्रतकी सारी बातें राजाको कह सुनायीं। जब उन महात्मा नरेशने सुना कि पुत्र इस प्रकार जल मरनेको तैयार था, तब उनके मनमें बड़ी ग्लानि हुई। वे तरह-तरहकी बातें सोचने लगे। फिर महाराज अरुणने मन्त्रियोंसे कहा-॥२०॥२१॥ 'आपलोग मेरे पुत्र सत्यव्रतके उग्र कार्यसे पूर्ण परिचित हैं। उस बुद्धिमान् पुत्रको मैंने वनमें जानेकी आज्ञा दे दी थी ॥२२॥ यद्यपि परमार्थकी अच्छी जानकारी रखनेवाला वह पुत्र राज्यका अधिकारी था, फिर भी मेरी आज्ञासे वह तुरंत जंगलमें चला गया। मुझे पता लगा है कि मेरा वह क्षमाशील और निर्धन कुमार अभी उस जंगलमें ही कालक्षेप कर रहा है ॥ २३ ॥ वसिष्ठजीने शाप देकर उसे पिशाचके समान बना दिया है। वह दुःखसे अत्यन्त घबराकर आगमें जल जानेके लिये तैयार हो गया था ॥ २४ ॥ परंतु भगवती अगदम्बाने उसे इस कार्यसे रोक दिया है। वह वहीं रहता है। अतएव आपलोग शीघ्र जाइये और मेरे उस पुत्रको आश्वासन देकर तुरंत यहाँ लानेका प्रयत्न कीजिये। मेरा वह औरस पुत्र प्रजाकी रक्षा करनेमें पूर्ण कुशल है। मैंने अब तपस्या करनेका निश्चय कर लिया है। अतः राज्यपर सत्यव्रतका

त्मना ॥ १९ ॥ वृत्तांतः कथितः सर्वो राज्ञे सत्वरमादितः ॥ श्रुत्वा राजाऽथ पुत्रस्य तं तथा मरणोद्यतम् ॥ २० ॥ खेदमाधाय मनसि शुशोच बहुधा नृपः ॥ सचिवानाह धर्मात्मा पुत्रशोकपरिप्लुतः ॥ २१ ॥ ज्ञातं भवद्भिरत्युग्रं पुत्रस्य मम चेष्टितम् ॥ त्यक्तो मया वने धीमान्पुत्रः सत्यव्रतो मम ॥ २२ ॥ आज्ञयाऽसौ गतः सद्यो राज्यार्हः परमार्थवित् ॥ स्थितस्तत्रैव विज्ञाने धनहीनः क्षमान्वितः ॥ २३ ॥ वसिष्ठेन तथा शप्तः पिशाचसदृशः कृतः ॥ सोऽद्य दुःखेन संतप्तः प्रवेष्टुं च हुताशनम् ॥ २४ ॥ उद्यतः श्रीमहादेव्या निषिद्धः संस्थितः पुनः ॥ तस्माद्गच्छन्तु तं शीघ्रं ज्येष्ठपुत्रं महाबलम् ॥ २५ ॥ आश्वास्य वचनैरत्र तरसैवानयंत्विह ॥ अभिषिच्य सुतं राज्ये औरसं पालनक्षमम् ॥ २६ ॥ वनं यास्यामि शांतोऽहं तपसे कृतनिश्चयः ॥ इत्युक्त्वा मंत्रिणः सर्वान्प्रेषयामास पार्थिवः ॥ २७ ॥ तस्यैवानयनार्थं हि प्रीतिप्रवणमानसः ॥ ते गत्वा तं समाश्वास्य मंत्रिणः पार्थिवात्मजम् ॥ २८ ॥ अयोध्यायां महात्मानं मानपूर्वं समानयन् ॥ दृष्ट्वा सत्यव्रतं राजा दुर्बलं मलिनांबरम् ॥ २९ ॥ जटाजूटधरं क्रूरं चिंतातुरमचिंतयत् ॥ किं कृतं निष्ठुरं कर्म मया पुत्रो विवासितः ॥ ३० ॥ राज्यार्हश्चातिमेधावी जानता धर्मनिश्चयम् ॥ इति संचिंत्य मनसा तमालिंग्य महीपतिः ॥ ३१ ॥ आसने स्वसमीपस्थे समाश्वास्योपवेशयत् ॥ उपविष्टं सुतं राजा प्रेमपूर्वमुवाच ह ॥ ३२ ॥ प्रेमगद्गदया वाचा नीतिशास्त्र-

अभिषेक करके मैं शान्तिपूर्वक वनमें चला जाऊँगा।' यों कहकर राजा अरुणने मंत्रियोंको भेज दिया ॥२५-२७॥ उस समय राजकुमारको लानेकी ही धुन उन्हें लगी थी। उनके मनमें सत्यव्रतके प्रति अपार प्रेम उमड़ रहा था। तदनन्तर मंत्रीगण गये और उन्होंने राजकुमार महात्मा सत्यव्रतको आश्वासन देते हुए सम्मानपूर्वक अयोध्यामें लाकर उपस्थित कर दिया। राजा अरुणने देखा, सत्यव्रत अत्यन्त दुर्बल हो गया है। उसके शरीरपर मैले-कुचैले वस्त्र हैं ॥२८॥२९॥ बढ़े हुए केशोंकी जटा बँध गयी है। वह अत्यन्त चिन्तातुर और भयंकर जान पड़ता है। तब राजाने सोचा-मैंने इस पुत्रको वनवासी बनाकर कितना निष्ठुर कर्म कर डाला है ॥ ३० ॥ धर्मको निश्चितरूपसे जानते हुए भी मैंने इस विद्वान् एवं राज्यके अधिकारी पुत्रकी कैसी दुर्दशा की है। हे राजन्! इस प्रकार मन-ही-मन सोचनेके पश्चात् महाराज अरुणने राजकुमार सत्यव्रतको हृदयसे लगा लिया ॥ ३१ ॥ सम्यक् प्रकारसे आश्वासन देकर उसे अपने

पास ही एक आसनपर बैठाया। जब राजकुमार बैठ गया, तब नीतिशास्त्रके पारगामी विद्वान् राजा अरुण प्रेमपूर्वक उससे प्रेम-गद्गद वाणीमें बोले। राजा अरुणने कहा—हे पुत्र! तुम्हारी बुद्धि धर्ममें अटल रहे। तुम विप्रोंका सदा सम्मान करना ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ न्यायपूर्वक मिले हुए धनको ही अपने खजानेमें रखना। ऐसा करो कि तुम्हारे प्रयत्नसे प्रजा निरंतर सुरक्षित रहे। तुम न कभी झूठ बोलना और न निंदित मार्गपर पैर रखना ॥३४॥ श्रेष्ठ पुरुषोंके आज्ञानुसार ही तुम्हें सब कार्य करना चाहिये। तपस्वी लोग तुमसे सदा सम्मान पाते रहें। दुष्टों और लुटेरोंका दमन करना। इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त किये रहना ॥ ३५ ॥ हे पुत्र! कार्यमें फसलता प्राप्त करनेके लिये राजाको चाहिये कि वह मंत्रियोंके साथ सदा आवश्यक मंत्रणा करता रहे ॥ ३६ ॥ हे पुत्र! राजा सबका आत्मा समझा जाता है। छोटे शत्रुकी भी वह उपेक्षा न करे। विनम्र मंत्री भी यदि शत्रुसे मिला हो तो उसपर विश्वास नहीं करना चाहिए ॥३७॥ शत्रु और मित्र—सर्वत्र सर्वदा गुप्तचर नियुक्त रखे जायँ। तुम सदा धर्ममें आस्था रखना। प्रतिदिन दान करना ॥३८॥ कोरी बात न करना। दुष्टोंका साथ कभी मत करना। भाँति-भाँतिके यज्ञोंमें

विशारदः ॥ राजोवाच ॥ पुत्र धर्मे मतिः कार्या माननीया मुखोद्भवाः ॥ ३३ ॥ न्यायागतं धनं ग्राह्यं रक्षणीयाः सदा प्रजाः ॥ नासत्यं क्वापि वक्तव्यं नामार्गे गमनं क्वचित् ॥ ३४ ॥ शिष्टप्रोक्तं प्रकर्तव्यं पूजनीयास्तपस्विनः ॥ हन्तव्या दस्यवः क्रूरा इन्द्रियाणां तथा जयः ॥३५॥ कर्तव्यः कार्यसिद्ध्यर्थं राज्ञा पुत्र सदैव हि ॥ मंत्रस्तु सर्वथा गोप्यः कर्तव्यः सचिवैः सह ॥ ३६ ॥ नोपेक्ष्योऽल्पोऽपि कृतिना रिपुः सर्वात्मना सुत ॥ न विश्वसेत्परासक्तं सचिवं च तथा नतम् ॥३७॥ चाराः सर्वत्र योक्तव्याः शत्रुमित्रेषु सर्वथा ॥ धर्मे मतिः सदा कार्या दानं दद्याच्च नित्यशः ॥३८॥ शुष्कवादो न कर्तव्यो दुष्टसंगं च वर्जयेत् ॥ यष्टव्या विविधा यज्ञाः पूजनीया महर्षयः ॥ ३९ ॥ न विश्वसेत्स्त्रियं क्वापि स्त्रैणद्यूतरतं नरम् ॥ अत्यादरो न कर्तव्यो मृगयायां कदाचन ॥४०॥ द्यूते मद्ये तथा गेये नूनं वारवधूषु च ॥ स्वयं तद्विमुखो भूयात्प्रजास्तेभ्यश्च रक्षयेत् ॥ ४१ ॥ ब्राह्मे मुहूर्ते कर्तव्यमुत्थानं सर्वथा सदा ॥ स्नानादिकं सर्वविधिं विधाय विधिवत्तथा ॥४२॥ पराशक्तेः परां पूजां भक्त्या कुर्यात्सुदीक्षितः ॥ पुत्रैतज्जन्म-साफल्यं पराशक्तेः पदार्चनम् ॥ ४३ ॥ सकृत्कृत्वा महापूजां देवीपादजलं पिबन् ॥ न जातु जननीगर्भे गच्छेदिति विनिश्चयः ॥ ४४ ॥ सर्वं दृश्यं महादेवी द्रष्टा साक्षी च सैव हि ॥ इति तद्भावभरितस्तिष्ठेन्निर्भयचेतसा ॥ ४५ ॥ कृत्वा नित्यविधिं सम्यग्गंतव्यं सदसि द्विजान् ॥ समाहूय च

संलग्न रहना। महर्षिगणका सदा सत्कार करते रहना ॥३९॥ स्त्री, जुआरी और नपुंसकपर कभी भी विश्वास न करना। शिकारमें अत्यन्त आदरबुद्धि रखना सर्वथा निषिद्ध है ॥ ४० ॥ जुआ, मदिरा, अश्लील गान और वेश्या—इनसे स्वयं बचना और प्रजाको भी इससे सदा बचाना ॥ ४१ ॥ सदा-सर्वदा ब्राह्म मुहूर्तमें उठ जाना। स्नान आदि सभी नित्यनियमोंसे निवृत्त होकर विधिपूर्वक परम आराध्या आद्या शक्ति भगवती जगदम्बाकी पूजा करना। दीक्षित होकर भक्तिके साथ उनका अर्चन करना। हे पुत्र! इन परा शक्तिके चरणोंकी आराधना करनी ही इस जन्मकी सफलता है ॥४२॥ ४३ ॥ जो एक बार भी भगवतीकी प्रधान पूजा करके चरणोदक पी लेता है, वह पुनः कभी माताके गर्भमें नहीं जा सकता—यह बिल्कुल निश्चित है ॥ ४४ ॥ सारा जगत् दृश्य है और भगवती जगदम्बा द्रष्टा एवं साक्षी हैं—इस प्रकारके भावसे भावित होकर निर्भीकतापूर्वक स्थित रहना ॥ ४५ ॥ प्रतिदिनके नित्य-नियमका सम्यक् प्रकारसे पालन

करके सभामें जाना और ब्राह्मणोंको बुलाकर उनसे धर्मशास्त्रसम्बन्धी निर्णीत विषय पूछना ॥ ४६ ॥ वेद और वेदाङ्गके पारगामी आदरणीय ब्राह्मणोंकी पूजा करके उन सुयोग्य पात्रोंको गो-सोना आदि दान देना ॥४७॥ किसी भी मूर्ख ब्राह्मणकी कभी पूजा न करना । कभी किसी मूर्ख ब्राह्मणको कुछ देना ही पड़ जाय तो पेटभर भोजनसे अधिक न देना ॥ ४८ ॥ हे पुत्र ! तुम किसी भी परिस्थितिमें लोभवश धर्मका उल्लङ्घन कभी मत करना । इसके सिवा तुम्हारा एक परम कर्तव्य यह है कि 'तुम्हारे द्वारा कभी ब्राह्मणोंका अपमान न होने पाये ॥ ४९ ॥ क्योंकि ब्राह्मण भूदेव हैं—पृथ्वीपर वे साक्षात् देवता माने जाते हैं । अतः उनका यत्नपूर्वक सम्मान करना ही वाञ्छनीय है । क्षत्रियोंके उन्नायक ब्राह्मण ही हैं—इसमें कोई संदेह नहीं है॥५०॥ जलसे अग्निकी, ब्राह्मणसे क्षत्रियकी और पत्थरसे लौहकी उत्पत्ति मानी गयी है । उनका सर्वव्यापी तेज अपनी योनिमें ही शान्त होता है ॥ ५१ ॥ अतएव कल्याणकी इच्छा रखनेवाले राजाको

प्रष्टव्यो धर्मशास्त्रविनिर्णयः ॥ ४६ ॥ संपूज्य ब्राह्मणान्पूज्यान्वेदवेदांतपारगान् ॥ गोभूहिरण्यादिकं च देयं पात्रेषु सर्वदा ॥ ४७ ॥ अविद्वान्ब्राह्मणः कोऽपि नैव पूज्यः कदाचन ॥ आहारादधिकं नैव देयं मूर्खाय कर्हिचित् ॥ ४८ ॥ न वा लोभात्त्वया पुत्र कर्तव्यं धर्मलंघनम् ॥ अतः परं न कर्तव्यं क्वचिद्विप्रावमाननम् ॥४९॥ ब्राह्मणा भूमिदेवाश्च माननीयाः प्रयत्नतः ॥ कारणं क्षत्रियाणां च द्विजा एव न संशयः ॥ ५० ॥ अद्भ्योऽग्निर्ब्रह्मणः क्षत्रमश्मनो लोहमुत्थितम् ॥ तेषां सर्वत्रगं तेजः स्वासु योनिषु शाम्यति ॥ ५१ ॥ तस्माद्राज्ञा विशेषेण माननीया मुखोद्भवाः ॥ दानेन विनयेनैव सर्वथा भूतिमिच्छता ॥ ५२ ॥ दंडनीतिः सदा कार्या धर्मशास्त्रानुसारतः ॥ कोशस्य संग्रहः कार्यो नूनं न्यायागतस्य ह ॥ ५३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

॥ व्यास उवाच ॥ एवं प्रबोधितः पित्रा त्रिशंकुः प्रणतो नृपः ॥ तथेति पितरं प्राह प्रेमगद्गदया गिरा ॥ १ ॥ विप्रानाहूय मंत्रज्ञान्वेदशास्त्रविशारदान् ॥ अभिषेकाय संभारान्कारयामास सत्वरम् ॥ २ ॥ सलिलं सर्वतीर्थानां समानाय्य विशांपतिः ॥ प्रकृतीश्च समाहूय सामंतान्भूपतींस्तथा ॥ ३ ॥ पुण्येऽह्नि विधिवत्तस्मै ददावासनमुत्तमम् ॥ अभिषिच्य सुतं राज्ये त्रिशंकुं विधिवत्पिता ॥ ४ ॥ तृतीयमाश्रमं पुण्यं जग्राह भार्यया

चाहिये कि वह विशेषरूपसे विनयपूर्वक दान देकर ब्राह्मणोंका सत्कार करे ॥ ५२ ॥ सदा धर्मशास्त्रके अनुसार दण्डनीतिका व्यवहार करते हुए न्यायसे प्राप्त धनका संग्रह करे ॥ ५३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा' भाषाटीकायामेकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

(राजा त्रिशंकुकी कथा) व्यासजी कहते हैं—हे राजन् ! इस प्रकार पिताके समझानेपर राजकुमार त्रिशंकुने हाथ जोड़कर प्रेमपूर्वक गद्गद वाणीमें पितासे कहा—॥ १ ॥ 'बहुत ठीक है । मैं ऐसा ही करूँगा ।' फिर महाराज अरुणने वेद-शास्त्रके पारगामी मन्त्रज्ञ ब्राह्मणोंको बुलाया और अभिषेककी सारी सामग्रियाँ तुरन्त एकत्रित करायीं ॥ २ ॥ सम्पूर्ण तीर्थोंका जल मँगवाया । मन्त्रिमण्डल तथा सभी सामन्त नरेश आमन्त्रित हुए । शुभ मुहूर्तमें राजाने अपने उस कुमारको विधि-विधानके साथ श्रेष्ठ राज्यासनपर आरूढ़ कर दिया ॥ ३ ॥ ४ ॥ यों पिता

अरुणने पुत्र त्रिशंकुका विधिवत् राज्याभिषेक करके अपनी धर्मपत्नीके साथ पवित्र वानप्रस्थाश्रममें प्रवेश किया। वे वनमें गङ्गाके तटपर चले गये और वहाँ उन्होंने कठिन तपस्या आरम्भ कर दी ॥५॥ आयु समाप्त हो जानेपर वे स्वर्गको चले गये। वहाँ देवताओंने भी उनका स्वागत किया। इन्द्रासनके समीप ही उन्हें स्थान मिला। वहाँ रहकर वे निरन्तर सूर्यके समान शोभा पाने लगे ॥ ६ ॥ राजा जनमेजयने कहा—हे प्रभो! आप अभी इस कथाके प्रसङ्गमें बता चुके हैं कि गुरुदेव वसिष्ठने अत्यन्त कुपित होकर सत्यव्रतको शाप दे दिया ॥ ७ ॥ फलस्वरूप सत्यव्रतमें पैशाचिकता आ गयी तो फिर इस पिशाचत्वसे उसका उद्धार कैसे हुआ? यही मेरे प्रश्नका विषय है ॥ ८ ॥ शापग्रस्त प्राणी सिंहासनपर बैठनेका अनधिकारी हो जाता है। सत्यव्रतसे दूसरा कौन ऐसा उत्तम कर्म बन गया, जिससे वसिष्ठ उसे शापमुक्त करनेको तैयार हो गये? ॥९॥ हे विप्रर्षे! आप शापसे मुक्त होनेका कारण बतानेके साथ ही कृपापूर्वक यह भी स्पष्ट करें कि ऐसी निन्द्य प्रकृतिवाले पुत्रको पिताने अपने पास फिर क्यों सम्मानपूर्वक बुला लिया? ॥१०॥ व्यासजी कहते हैं—हे राजन्! वसिष्ठका शाप लगते ही सत्यव्रतमें पिशाचके सभी लक्षण

युतः ॥ वने त्रिपथगाकूले चचार दुश्चरं तपः ॥ ५ ॥ काले प्राप्ते ययौ स्वर्गं पूजितस्त्रिदशैरपि ॥ इन्द्रासनसमीपस्थो रराज रविवत्सदा ॥ ६ ॥ राजोवाच ॥ पूर्वं भगवता प्रोक्तं कथायोगेन सांप्रतम् ॥ सत्यव्रतो वसिष्ठेन शप्तो दोग्ध्रीवधात्किल ॥ ७ ॥ कुपितेन पिशाचत्वं प्रापितो गुरुणा ततः ॥ कथं मुक्तः पिशाचत्वादित्येतत्संशयः प्रभो ॥ ८ ॥ न सिंहासनयोग्यो हि भवेच्छापसमन्वितः ॥ मुनिना मोचितः शापात्केनान्येन च कर्मणा ॥९॥ एतन्मे ब्रूहि विप्रर्षे शापमोक्षणकारणम् ॥ आनीतस्तु कथं पित्रा स्वगृहे तादृशाकृतिः ॥ १० ॥ व्यास उवाच ॥ वसिष्ठेन च शप्तोऽसौ सद्यः पैशाचतां गतः ॥ दुर्वेषश्चातिदुर्धर्षः सर्वलोकभयंकरः ॥ ११ ॥ यदैवोपासिता देवी भक्त्या सत्यव्रतेन ह ॥ तया प्रसन्नया राजन्दिव्यदेहः कृतः क्षणात् ॥ १२ ॥ पिशाचत्वं गतं तस्य पापं चैव क्षयं गतम् ॥ विपाप्मा चातितेजस्वी संभूतस्तत्कृपाऽमृतात् ॥१३॥ वसिष्ठोऽपि प्रसन्नात्मा जातः शक्तिप्रसादतः ॥ पिताऽपि च बभूवास्य प्रेमयुक्तस्त्वनुग्रहात् ॥ १४ ॥ राज्यं शशास धर्मात्मा मृते पितरि पार्थिवः ॥ ईजे च विविधैर्यज्ञैर्देवदेवीं सनातनीम् ॥ १५ ॥ तस्य पुत्रो बभूवाथ हरिश्चन्द्रः सुशोभनः ॥ लक्षणैः शास्त्रनिर्दिष्टैः संयुतश्चातिसुन्दरः ॥ १६ ॥ युवराजं सुतं कृत्वा त्रिशंकुः पृथिवीपतिः ॥ मानुषेण शरीरेण स्वर्गं भोक्तुं मनो दधे ॥ १७ ॥ वसिष्ठस्याश्रमं गत्वा प्रणम्य विधिवन्नृपः ॥ उवाच वचनं प्रीतः

आ गये। इससे वह अत्यन्त दुर्धर्ष, महान् कुरूप एवं सम्पूर्ण प्राणियोंके लिये भयप्रद हो गया ॥११॥ परन्तु उसने भगवती जगदम्बाकी भक्तिपूर्वक आराधना आरम्भ कर दी। हे राजन्! देवीके प्रसन्न होते ही उसकी आकृतिमें महान् परिवर्तन हो गया—वह दिव्यरूपसे शोभा पाने लगा ॥१२॥ उसकी पिशाचता सर्वथा नष्ट हो गयी। लेशमात्र भी पाप उसमें नहीं रहा और तेजकी सीमा नहीं रही। क्योंकि भगवतीकी अमृतमयी कृपा उसे सुलभ हो गयी थी ॥ १३ ॥ भगवतीकी कृपासे वसिष्ठ भी प्रसन्न हो गये तथा वह पिताका भी पूर्ण प्रेमपात्र बन गया ॥ १४ ॥ पिताके मर जानेपर वह धर्मात्मा नरेश राज्यका प्रबन्धक बना। उसने अनेक प्रकारके यज्ञों द्वारा सनातनस्वरूपा देवेश्वरी भगवती जगदम्बाका पूजन किया ॥ १५ ॥ राजा त्रिशंकुके पुत्र हरिश्चन्द्र हुए। उनकी आकृति असीम सुन्दर थी। शास्त्रोक्त सभी शुभ लक्षण उनमें विद्यमान थे ॥ १६ ॥ कुछ दिनों बाद अपने पुत्रको युवराज बनाकर मानव-शरीरसे ही स्वर्गका सुख

भोगनेकी इच्छा राजा त्रिशंकुको व्यग्र करने लगी ॥१७॥ तब वह नरेश वसिष्ठजीके आश्रमपर गया। विधिपूर्वक उन्हें प्रणाम करके प्रीति प्रदर्शित करते हुए हाथ जोड़कर उसने कहा ॥१८॥ राजा त्रिशंकुने कहा—सम्पूर्ण मन्त्रोंके रहस्यवेत्ता हे महाभाग! हे ब्रह्मपुत्र तापस! आप प्रसन्नतापूर्वक मेरी आदरयुक्त प्रार्थना सुननेकी कृपा करें ॥ १९ ॥ अब मैं स्वर्गका सुख भोगना चाहता हूँ। मेरी ऐसी इच्छा है कि उन दिव्य भोगोंको मैं इसी मानव-शरीरसे भोगूँ ॥ २० ॥ मैं चाहता हूँ कि स्वर्गमें अप्सराओंके साथ रहूँ, नन्दन वनमें विचरूँ और देवताओं तथा गन्धर्वोंका मधुर गायन सुनूँ। अतएव हे महामुने! आप मुझसे कोई ऐसा यज्ञ कराइये कि जिसके फलस्वरूप इसी शरीरसे मुझे स्वर्गलोकमें रहनेकी सुविधा प्राप्त हो जाय। हे मुनिश्रेष्ठ! आप सब कुछ कर सकते हैं। अतः मेरा यह कार्य करनेकी अवश्य कृपा कीजिये। देवलोकके लिये भी जो कठिन है, ऐसे महान् यज्ञको सम्पन्न कराकर आप शीघ्र ही मुझे स्वर्ग प्राप्त करा दीजिये ॥२१-२३॥ वसिष्ठजी बोले—राजन्! मनुष्यदेहसे स्वर्गमें स्थान पाना अत्यन्त दुर्लभ है। कारण, ऐसी स्पष्ट घोषणा है कि मर जानेपर ही पुण्यकर्मके प्रभावसे स्वर्गमें रहनेकी सुविधा

कृतांजलिपुटस्तदा ॥ १८ ॥ राजोवाच ॥ ब्रह्मपुत्र महाभाग सर्वमंत्रविशारद ॥ विज्ञप्तिं मे सुमनसा श्रोतुमर्हसि तापस ॥ १९ ॥ इच्छा मेऽद्य समुत्पन्ना स्वर्गलोकसुखाय च ॥ अनेनैव शरीरेण भोगान्भोक्तुममानुषान् ॥ २० ॥ अप्सरोभिश्च संवासः क्रीडितुं नंदने वने ॥ देवगंधर्वगानं च श्रोतव्यं मधुरं किल ॥ २१ ॥ याजय त्वं मखेनाशु तादृशेन महामुने ॥ यथाऽनेन शरीरेण वसे लोकं त्रिविष्टपम् ॥ २२ ॥ समर्थोऽसि मुनिश्रेष्ठ कुरु कार्यं ममाधुना ॥ प्रापयाशु मखं कृत्वा देवलोकं दुरासदम् ॥ २३ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ राजन्मानुषदेहेन स्वर्गे वासः सुदुर्लभः ॥ मृतस्य हि ध्रुवं स्वर्गः कथितः पुण्यकर्मणा ॥ २४ ॥ तस्माद्बिभेमि सर्वज्ञ दुर्लभाच्च मनोरथात् ॥ अप्सरोभिश्च संवासो जीवमानस्य दुर्लभः ॥ २५ ॥ कुरु यज्ञान्महाभाग मृतः स्वर्गमवाप्स्यसि ॥ व्यास उवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तस्य राजा परमदुर्मनाः ॥ २६ ॥ उवाच वचनं भूयो वसिष्ठं पूर्वरोषितम् ॥ न त्वं याजयसे ब्रह्मन्गर्वावेशाच्च मां यदि ॥ २७ ॥ अन्यं पुरोहितं कृत्वा यक्ष्येऽहं किल सांप्रतम् ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य वसिष्ठः कोपसंयुतः ॥ २८ ॥ शशाप भूपतिं चेति चंडालो भव दुर्मते ॥ अनेन त्वं शरीरेण श्वपचो भव सत्वरम् ॥ २९ ॥ स्वर्गकृन्तन पापिष्ठ सुरभीवधदूषित ॥ ब्रह्मपत्नीहरोच्छिन्नधर्ममार्गविदूषक ॥ ३० ॥ न ते स्वर्गगतिः पाप मृतस्यापि कथंचन ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्तो गुरुणा

मिलती है ॥ २४ ॥ अतएव हे सर्वज्ञ नरेश! तुम्हारे इस दुर्लभ मनोरथको पूर्ण करानेसे मैं डरता हूँ। क्योंकि जीवित पुरुषको अप्सराओंके साथ रहनेका सुअवसर प्राप्त हो जाय—यह कदापि सम्भव नहीं है। हे महाभाग! तुम यज्ञ करो, इस शरीरके शान्त हो जानेपर तुम्हें स्वर्ग मिलेगा। व्यासजी कहते हैं—हे राजन्! वसिष्ठजीकी बात सुनकर राजा त्रिशंकुका मन अत्यन्त उदास हो गया ॥ २५ ॥ २६ ॥ अतः उसने पहलेसे ही कुपित मुनिवरसे पुनः कहा—'ब्रह्मन्! आप यदि अभिमानवश मेरा यज्ञ नहीं कराना चाहते तो मैं किसी दूसरेको पुरोहित बनाकर यज्ञ सम्पन्न करूँगा'। त्रिशंकुका यह कथन सुनकर मुनिवर वसिष्ठने उसे शाप देते हुए कहा—'हे दुर्मते! तू अभी चाण्डाल हो जा। तेरे इसी शरीरमें अभी चाण्डाली वृत्ति बन जाय। ॥२७-२९॥ अरे स्वर्गको नष्ट करनेवाले पापी! अरे ओ गोघाती! अरे विप्रभार्यापहारी और धर्ममार्गके दूषक! मरनेपर भी तू किसी प्रकार स्वर्ग नहीं प्राप्त कर सकता।' व्यासजी कहते हैं—हे राजन्!

गुरुदेव वसिष्ठके मुखसे यह वचन निकलते ही उसी शरीरसे त्रिशंकु तुरन्त चण्डाल हो गया। उसके कानमें जो रत्नजटित कुण्डल थे, उनको पत्थर-जैसे हो जानेमें कुछ भी देर नहीं लगी। देहमें लगा हुआ सुगन्धपूर्ण चन्दन तुरन्त दुर्गन्धित हो गया। उसके पहने हुए दिव्य पीताम्बर काले रंगमें परिणत हो गये ॥ ३०–३३ ॥ महात्मा वसिष्ठके शापने उसे गजकर्ण बना दिया। हे राजन्! वसिष्ठजी सदा भगवती जगदम्बाकी उपासना किया करते थे। अतः उनके रोषका यह फल प्रकट हो गया ॥३४॥ इसीलिये भगवतीके भक्तका कभी भी अपमान नहीं करना चाहिये। मुनिवर वसिष्ठजी बड़ी निष्ठाके साथ गायत्रीका जप करते थे ॥ ३५ ॥ हे राजन्! उस समय अपना निन्दनीय शरीर देखकर राजा त्रिशंकु खिन्न हो गया। उसकी बड़ी दयनीय दशा हो गयी। अतः मुनिके आश्रमसे घर न लौटकर वह जंगलमें चला गया ॥ ३६ ॥ शोकसे विह्वल होकर उसने मन-ही-मन सोचा–'अब मैं क्या करूँ और कहाँ जाऊँ? मेरा यह शरीर सर्वथा निन्द्य हो गया ॥३७॥ मैं कोई भी ऐसा उपाय नहीं देखता कि जिसके प्रभावसे मेरा यह दुःख दूर हो जाय। ऐसी स्थितिमें मैं घर जाता हूँ तो चाण्डालके वेषमें देखकर स्त्री-पुरुष भी

राजंस्त्रिशंकुस्तत्क्षणादपि ॥३१॥ तत्र तेन शरीरेण बभूव श्वपचाकृतिः ॥ कुण्डलेऽश्ममये वापि जाते तस्य च तत्क्षणात् ॥३२॥ देहे चंदनगंधश्च विगंधो ह्यभवत्तदा ॥ नीलवर्णेऽथ संजाते दिव्ये पीताम्बरे तनौ ॥ ३३ ॥ गजवर्णोऽभवद्देहः शापात्तस्य महात्मनः ॥ शक्त्युपासकरोषेण फलमेतदभून्नृप ॥ ३४ ॥ तस्माच्छ्रीशक्तिभक्तो हि नावमान्यः कदाचन ॥ गायत्रीजपनिष्ठो हि वसिष्ठो मुनिसत्तमः ॥ ३५ ॥ दृष्ट्वा निंद्यं निजं देहं राजा दुःखमवाप्तवान् ॥ न जगाम गृहे दीनो वनमेवाभितो ययौ ॥३६॥ चिंतयामास दुःखार्तस्त्रिशंकुः शोकविह्वलः ॥ किं करोमि क्व गच्छामि देहो मेऽतीव निंदितः ॥ ३७ ॥ कर्तव्यं नैव पश्यामि येन मे दुःखसंक्षयः ॥ गृहे गच्छामि चेत्पुत्रः पीडितोऽद्य भविष्यति ॥३८॥ भार्याऽपि श्वपचं दृष्ट्वा नांगीकारं करिष्यति ॥ सचिवा नादरिष्यंति वीक्ष्य मामीदृशं पुनः ॥३९॥ ज्ञातयो बंधुवर्गश्च सङ्गतो न भजिष्यति ॥ सर्वैस्त्यक्तस्य मे नूनं जीवितान्मरणं वरम् ॥४०॥ विषं वा भक्षयित्वाऽद्य पतित्वा वा जलाशये ॥ कृत्वा वा कंठपाशं च देहत्यागं करोम्यहम् ॥ ४१ ॥ अग्नौ वा ज्वलिते देहं जुहोमि विधिवद्बलात् ॥ कृत्वा वाऽनशनं प्राणांस्त्यजामि दूषितान्भृशम् ॥ ४२ ॥ आत्महत्या भवेन्नूनं पुनर्जन्मनि जन्मनि ॥ श्वपचत्वं च शापश्च हत्यादोषाद्भवेदपि ॥४३॥ पुनर्विचार्य भूपालश्चेतसा समचिंतयत् ॥ आत्महत्या न कर्तव्या सर्वथैव मयाऽधुना ॥४४॥ भोक्तव्यं स्वकृतं कर्म देहेनानेन

मुझे स्वीकार नहीं करेंगे। इस दशामें देखकर मन्त्रीलोग भी मेरा अनादर करने लगेंगे ॥३८॥३९॥ जाति और कुटुम्बवाले मेरा साथ छोड़ देंगे। सबसे पृथक् होकर ही मुझे रहना पड़ेगा। ऐसी दशामें जीनेसे मर जाना ही अच्छा है ॥ ४० ॥ अब मैं विष खा लूँ, किसी जलाशयमें डूब मरूँ या गलेमें फाँसी लगाकर मर जाऊँ ॥ ४१ ॥ अथवा विधिवत् चिता जलाकर बरबस अपने आपको जला दूँ या अनशन करके अपने दूषित प्राणोंको त्याग दूँ' ॥ ४२ ॥ आत्महत्याका विचार आते ही दूसरा विचार यह आया कि 'आत्महत्या तो कर लूँगा, परन्तु यह निश्चय है कि आत्महत्या करनेसे मुझे जन्म-जन्मान्तरमें पुनः चाण्डाल होना पड़ेगा। आत्महत्या-दोषके परिणामस्वरूप मैं शापसे कभी मुक्त नहीं हो सकूँगा।' ॥ ४३ ॥ यों सोचनेके पश्चात् उस नरेशने पुनः सावधान होकर विचार किया कि 'इस समय आत्महत्या करना तो मेरे लिये सर्वथा अनुचित है। जंगलमें रहकर इसी शरीरसे अपना किया हुआ कर्म भोग लेना ही

ठीक है। क्योंकि भोग लेनेपर इस बुरे कर्मका फल समाप्त हो जायगा ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ भोगसे ही प्रारब्ध-कर्म समाप्त होते हैं। अन्यथा इनसे छुट्टी पाना सर्वथा असम्भव है। इसीलिये किये हुए शुभ और अशुभ कर्म तो मुझे भोग ही लेने चाहिये ॥ ४६ ॥ अतः अब मैं इस पवित्र आश्रमके समीप रहकर ही तीर्थोंका सेवन, भगवती जगदम्बाका स्मरण और संत पुरुषोंका सत्कार करूँगा ॥ ४७ ॥ वनमें रहकर इस प्रकार आचरण करनेसे मेरा संचित कर्म अवश्य ही समाप्त हो जायगा और यह भी सम्भव है कि भाग्यवश किसी महात्मा पुरुषसे कभी मिलनेका अवसर सुलभ हो जाय' ॥ ४८ ॥ इस प्रकार सोचकर राजा त्रिशंकु अपने नगरका परित्याग करके गङ्गाके तटपर चला गया और उसने वहीं रहनेकी व्यवस्था कर ली ॥ ४९ ॥ उस समय पिताके शापका कारण जानकर हरिश्चन्द्रके मनमें बड़ी अशान्ति छा गयी। उसने अपने मन्त्रियोंको जंगलमें त्रिशंकुके पास भेजा ॥ ५० ॥ मन्त्री शीघ्र उस नरेशके समीप पहुँचे और नम्रता-पूर्वक प्रणाम करके कहने लगे। उस समय चाण्डाल-वेषधारी त्रिशंकु बार-बार लम्बी साँस ले रहा था ॥ ५१ ॥ मन्त्री बोले—'हे राजन्! आपके पुत्रकी आज्ञासे हमलोग यहाँ आये हैं। हम

कानने ॥ भोगेनास्य विपाकस्य भविता सर्वथा क्षयः ॥ ४५ ॥ प्रारब्धकर्मणां भोगादन्यथा न क्षयो भवेत् ॥ तस्मान्मयाऽत्र भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥४६॥ कुर्वन्पुण्याश्रमाभ्याशे तीर्थानां सेवनं तथा ॥ स्मरणं चाम्बिकायास्तु साधूनां सेवनं तथा ॥४७॥ एवं कर्मक्षयं नूनं करिष्यामि वने वसन् ॥ भाग्ययोगात्कदाचित्तु भवेत्साधुसमागमः ॥४८॥ इति संचिंत्य मनसा त्यक्त्वा स्वनगरं नृपः ॥ गंगातीरे गतः कामं शोचंस्तत्रैव संस्थितः ॥४९॥ हरिश्चन्द्रस्तदा ज्ञात्वा पितुः शापस्य कारणम् ॥ दुःखितः सचिवांस्तत्र प्रेषयामास पार्थिवः ॥५०॥ सचिवास्तत्र गत्वाऽऽशु तमूचुः प्रश्रयान्विताः ॥ प्रणम्य श्वपचाकारं निःश्वसंतं मुहुर्मुहुः ॥ ५१ ॥ राजन्पुत्रेण ते नूनं प्रेषितान्समुपागतान् ॥ अवेहि सचिवांस्त्वं नो हरिश्चन्द्राज्ञया स्थितान् ॥५२॥ युवराजसुतः प्राह यत्तच्छृणुष्व नराधिप ॥ आनयध्वं नृपं यूयं संमान्य पितरं मम ॥ ५३ ॥ तस्माद्राजन्समागच्छ राज्यं प्रति गतव्यथः ॥ सेवां सर्वे करिष्यंति सचिवाश्च प्रजास्तथा ॥ ५४ ॥ गुरुं प्रसादयिष्यामः स यथा तु दयेत वै ॥ प्रसन्नोऽसौ महातेजा दुःखस्यांतं करिष्यति ॥ ५५ ॥ इति पुत्रेण ते राजन्कथितं बहुधा किल ॥ तस्माद्गमनमेवाशु रोचतां निजसद्मनि ॥ ५६ ॥ व्यास उवाच ॥ इति तेषां नृपः श्रुत्वा भाषितं श्वपचाकृतिः ॥ स्वगृहं गमनायासौ न मतिं कृतवानदः ॥५७॥ तानुवाच तदा वाक्यं व्रजन्तु सचिवाः पुरम् ॥ गत्वा पुरं महाभागा

राजा हरिश्चन्द्रके आज्ञापालक मंत्री हैं ॥५२॥ हे राजन्! आपके पुत्र हरिश्चन्द्र इस समय युवराजके पदपर प्रतिष्ठित हैं। उन्होंने जो कहा है, वह सुनिए। हमारे प्रति उनका कथन है कि तुम लोग मेरे पिताजीको सम्मानपूर्वक यहाँ ले आओ ॥५३॥ अतएव हे राजन्! अब आप सारी चिन्ताएँ छोड़कर अपने राज्यमें चलनेकी कृपा करें। सब मंत्री और प्रजावर्ग आपकी सेवा करेंगे ॥ ५४ ॥ हमलोग गुरु वसिष्ठको भी प्रसन्न करनेकी चेष्टा करेंगे, जिससे उनकी दया प्राप्त हो जाय। सम्भव है कि वे महान् तेजस्वी गुरुदेव प्रसन्न होकर आपका दुःख दूर कर दें ॥ ५५ ॥ हे राजन्! आपके पुत्रने इस बातको बार-बार दुहराया है। अतएव यदि बात जँच जाय तो इसी समय अपने महल लौटनेकी कृपा करिए' ॥५६॥ व्यासजी कहते हैं—हे राजन्! चाण्डालस्वरूपधारी उस राजा त्रिशंकुने मंत्रियोंकी बातें तो सुन लीं, परंतु अपने नगरको जानेकी उसके मनमें इच्छा नहीं उत्पन्न हो सकी ॥ ५७ ॥ उन्होंने मंत्रियोंसे कहा—'सचिवो! तुमलोग नगरको लौट

जाओ और मेरे कथनानुसार हरिश्चन्द्रसे कह दो–'पुत्र ! मैं नहीं आऊँगा । तुम सावधान होकर राज्यका भार सँभालो । तुम्हें अनेक यज्ञों द्वारा ब्राह्मणोंका सम्मान और देवताओंका पूजन करते रहना चाहिये ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ महात्माओंने इस श्वपच-वेषकी घोर निन्दा की है । इस शरीरसे मैं अयोध्या नहीं आऊँगा । अतः अब तुमलोग तुरन्त यहाँसे लौट जाओ । ॥ ६० ॥ मेरा पुत्र हरिश्चन्द्र महान् पराक्रमी पुरुष है । उसे राज्यासनपर बिठाकर राज्यका समुचित प्रबन्ध करनेका प्रयत्न करो । यही मेरी आज्ञा है' । इस प्रकार त्रिशंकुके उपदेश देनेपर मन्त्रियोंकी आँखोंमें आँसू भर आये । तदनन्तर वानप्रस्थ-जीवन व्यतीत करनेवाले राजा त्रिशंकुको प्रणाम करके वे तुरन्त वहाँसे लौट गये ॥६१॥६२॥ अयोध्यामें जाकर उन्होंने राजकुमार हरिश्चन्द्रको तिलकधारी नरेश बना दिया । उनके द्वारा एक परम पवित्र दिनको यह अभिषेकका कार्य सविधि सम्पन्न हुआ ॥ ६३ ॥ राजाके आज्ञानुसार मन्त्रियोंने जब हरिश्चन्द्रका अभिषेक कर दिया, तब उस परम तेजस्वी धर्मात्मा नरेशने राज्यकी बागडोर अपने हाथमें ले ली । उस समय भी पिताकी दयनीय दशापर उसके मनमें बड़ा खेद हो रहा था ॥ ६४ ॥

ब्रुवंतु वचनाच्च मे ॥ ५८ ॥ नागमिष्याम्यहं पुत्र कुरु राज्यमतंद्रितः ॥ मानयन्ब्राह्मणान्देवान्यजन्यज्ञैरनेकशः ॥ ५९ ॥ नाहं श्वपचवेषेण गर्हितेन महात्मभिः ॥ आगमिष्याम्ययोध्यायां सर्वे गच्छंतु माचिरम् ॥ ६० ॥ पुत्रं सिंहासने स्थाप्य हरिश्चंद्रं महाबलम् ॥ कुर्वंतु राज्यकर्माणि यूयं तत्र ममाज्ञया ॥ ६१ ॥ इत्यादिष्टास्ततस्ते तु रुरुदुश्चातुरा भृशम् ॥ सचिवा निर्ययुस्तूर्णं नत्वा तं च वनाश्रमम् ॥ ६२ ॥ अयोध्यायामुपागत्य पुण्येऽह्नि विधिपूर्वकम् ॥ अभिषेकं तदा चक्रुर्हरिश्चंद्रस्य मूर्ध्नि ते ॥ ६३ ॥ अभिषिक्तस्तु तेजस्वी सचिवैश्च नृपाज्ञया ॥ राज्यं चकार धर्मिष्ठः पितरं चिंतयन्भृशम् ॥ ६४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

॥ राजोवाच ॥ हरिश्चंद्रः कृतो राजा सचिवैर्नृपशासनात् ॥ त्रिशंकुस्तु कथं मुक्तस्तस्माच्चांडालदेहतः ॥ १ ॥ मृतो वा वनमध्ये तु गंगातीरे परिप्लुतः ॥ गुरुणा वा कृपां कृत्वा शापात्तस्माद्विमोचितः ॥ २ ॥ एतद्वृत्तांतमखिलं कथयस्व ममाग्रतः ॥ चरितं तस्य नृपतेः श्रोतुकामोऽस्मि सर्वथा ॥ ३ ॥ व्यास उवाच ॥ अभिषिक्तं सुतं कृत्वा राजा संतुष्टमानसः ॥ कालातिक्रमणं तत्र चकार चिंतयञ्छिवाम् ॥ ४ ॥ एवं गच्छति

इति श्रीदेवीभागवते सप्तमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा' भाषाटीकायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

(त्रिशंकुपर विश्वामित्रकी कृपा) राजा जनमेजय बोले—हे व्यासजी ! राजा त्रिशंकुके आदेशसे मन्त्रियोंने हरिश्चन्द्रको तो राजगद्दी दे दी, किन्तु स्वयं त्रिशंकु उस चण्डाल-शरीरसे कैसे छूटे ? ॥ १ ॥ गङ्गाजीके तटपर पवित्र जलमें स्नान करके क्या उन्होंने जंगलमें ही अपनी जान दे दी ? अथवा गुरु वसिष्ठने कृपा करके उन्हें शापमुक्त कर दिया ? यह उपाख्यान विस्तारके साथ आप मुझे बतलाइए । क्योंकि मैं महाराज त्रिशंकुके चरित्रको भली-भाँति सुनना चाहता हूँ ॥२॥३॥ व्यासजी बोले–हे राजन् ! अपने पुत्रका राज्याभिषेक हो जानेसे राजा त्रिशंकुका चित्त बहुत प्रसन्न हुआ और वे जङ्गलमें रहते हुए कल्याणस्वरूपिणी देवीका ध्यान करते हुए अपना समय बिताने लगे ॥ ४ ॥ इस तरह कुछ समय बीतनेके बाद

कौशिक (विश्वामित्र) मुनि तपस्या पूरी करके अपनी स्त्री और पुत्रोंको देखनेके लिए अपने आश्रममें आये ॥५॥ यहाँ आकर उन्होंने देखा कि स्त्री-पुत्र बड़े आनंदसे हैं तो उनको अपार हर्ष हुआ। जब उनकी पत्नी स्वागत करनेके लिये उनके सामने खड़ी हुई तो बुद्धिमान् ऋषिने उससे कहा—॥ ६ ॥ हे सुनयनी ! यह तो बताओ कि अकालके समय तुमने कैसे समय काटा ? घरमें अन्न नहीं था, तब तुमने किस उपायसे इन बालकोंको पाला ? ॥७॥ हे सुन्दरी ! मैं तो तपस्यामें फँसा हुआ था। इससे नहीं आ सका। हे प्राणप्रिये ! हे कल्याणी ! तुम्हारे पास धन भी नहीं था, तब तुमने क्या व्यवस्था की ? ॥ ८ ॥ वहाँपर जब मैंने सुना कि यहाँ अद्भुत अकाल पड़ा हुआ है, तब मुझे रह-रहकर बड़ी चिन्ता होने लगी। लेकिन मैं यह सोचकर यहाँ नहीं आया कि जब मैं स्वयं निर्धन हूँ, तब वहाँ जाकर ही क्या करूँगा ! ॥९॥ हे सुन्दर जाँघवाली ! उधर वनमें मैं भी एक दिन भूखसे बड़ा विकल हो गया और जब नहीं रहा गया तो रातसे समय चोरकी तरह एक चण्डालके घरमें घुसा ॥ १० ॥ वहाँ चण्डालको मैंने सोता हुआ पाया। तब भूखसे बेचैन हो रसोईघर खोजकर कुछ खानेके लिए उसमें पहुँचा ॥ ११ ॥ उसका बर्तन

काले तु तपस्तप्त्वा समाहितः ॥ द्रष्टुं दारान्सुतादींश्च तदाऽगात्कौशिको मुनिः ॥ ५ ॥ आगत्य स्वजनं दृष्ट्वा सुस्थितं मुदमाप्तवान् ॥ भार्यां पप्रच्छ मेधावी स्थितामग्रे सपर्यया ॥ ६ ॥ दुर्भिक्षे तु कथं कालस्त्वया नीतः सुलोचने ॥ अन्नं विना त्विमे बालाः पालिताः केन तद्वद ॥ ७ ॥ अहं तपसि संनद्धो नागतः शृणु सुन्दरि ॥ किं कृतं तु त्वया कान्ते विना द्रव्येण शोभने ॥ ८ ॥ मया चिंता कृता तत्र श्रुत्वा दुर्भिक्षमद्भुतम् ॥ नागतोऽहं विचार्यैवं किं करिष्यामि निर्धनः ॥ ९ ॥ अहमप्यति वामोरु पीडितः क्षुधया वने ॥ प्रविष्टश्चौरभावेन कुत्रचिच्छ्वपचालये ॥ १० ॥ श्वपचं निद्रितं दृष्ट्वा क्षुधया पीडितो भृशम् ॥ महानसं परिज्ञाय भक्ष्यार्थं समुपस्थितः ॥ ११ ॥ यदा भांडं समुद्घाट्य पक्वं श्वतनुजामिषम् ॥ गृह्णामि भक्षणार्थाय तदा दृष्टस्तु तेन वै ॥१२॥ पृष्टः कस्त्वं कथं प्राप्तो गृहे मे निशि सादरम् ॥ ब्रूहि कार्यं किमर्थं त्वमुद्घाटयसि भांडकम् ॥१३॥ इत्युक्तः श्वपचेनाहं क्षुधया पीडितो भृशम् ॥ तमवोचं सुकेशान्ते कामं गद्गदया गिरा ॥ १४ ॥ ब्राह्मणोऽहं महाभाग तापसः क्षुधयाऽर्दितः ॥ चौरभावमनुप्राप्तो भक्ष्यं पश्यामि भांडके ॥१५॥ चौरभावेन सम्प्राप्तोऽस्म्यतिथिस्ते महामते ॥ क्षुधितोऽस्मि ददस्वाज्ञां मांसमग्नि सुसंस्कृतम् ॥१६॥ विश्वामित्र उवाच ॥ श्वपचस्तु वचः श्रुत्वा मामुवाच सुनिश्चितम् ॥ भक्षं मा कुरु वर्णाग्र्य जानीहि श्वपचालयम् ॥१७॥ दुर्लभं खलु मानुष्यं तत्रापि

चोरकी तरह एक चण्डालके घरमें घुसा ॥ १० ॥ वहाँ चण्डालको मैंने सोता हुआ पाया। तब भूखसे बेचैन हो रसोईघर खोजकर कुछ खानेके लिए उसमें पहुँचा ॥ ११ ॥ उसका बर्तन खोलकर भोजन करनेके लिए मैंने ज्यों ही कुत्तेका पका हुआ मांस हाथमें लिया, त्यों ही चाण्डालकी दृष्टि मेरे ऊपर पड़ गयी ॥ १२ ॥ बड़ी नम्रताके साथ उसने पूछा—आप कौन हैं ? और किस लिए रातके समय मेरे घरमें घुसे हैं ? आपका मतलब क्या है ? आप मेरी हाँड़ीका ढक्कन क्यों खोल रहे हैं ? ॥ १३ ॥ हे सुन्दर केशोंवाली प्रिये ! जब चाण्डालने मुझसे यह बात पूछी, उस समय मुझे बड़ी तेज भूख लगी हुई थी। अतः मैंने गद्गद वाणीमें अपना अभिप्राय कह सुनाया ॥ १४ ॥ मैंने कहा—हे महाभाग ! मैं एक तपस्वी ब्राह्मण हूँ और भूखसे विकल होकर चोरी करनेके लिए आया हूँ। इस हाँड़ीमें कोई खानेकी चीज खोज रहा हूँ ॥ १५ ॥ हे महामति ! यद्यपि मैं चोरके रूपमें आया हूँ, तथापि आपका अतिथि हूँ। इस समय मैं बहुत भूखा हूँ। इसलिए आपने जो मांस पकाकर रखा है, उसे खानेके लिए मुझे अनुमति दीजिए ॥ १६ ॥ विश्वामित्र बोले—हे सुन्दरी ! मेरी बात सुनकर चाण्डालने मुझसे कहा—हे चारों

वर्णोंमें अग्रगण्य ब्राह्मण ! यह चाण्डालका घर है । अतएव आप मेरे यहाँका भोजन मत करिए ॥ १७ ॥ क्योंकि एक तो मनुष्ययोनिमें ही जन्म पाना बड़ा दुर्लभ होता है, मनुष्य होनेपर भी ब्राह्मण-क्षत्रिय और वैश्यके यहाँ जन्म लेना तो और भी कठिन है और उसमें भी ब्राह्मण-कुलमें उत्पन्न होना तो सर्वथा दुर्लभ होता है । क्या आप इस बातको नहीं जानते ? ॥ १८ ॥ जो लोग स्वर्गलोकमें जाना चाहते हों, वे कभी भी दूषित आहार न करें । मनु भगवान्‌ने कर्मके अनुसार सात जातियोंको 'अन्त्यज' मानकर अग्राह्य बतलाया है ॥१९॥ हे विप्र! मैंने चाण्डाल जातिमें जन्म लिया है । अतएव मैं कर्मके अनुसार अछूत हूँ, इसमें तनिक भी संशय नहीं है । हे द्विजवर ! मैं अपना धर्म समझकर आपको जो भोजन करनेसे रोक रहा हूँ, इससे आप यह मत समझिएगा कि मुझे अपने पदार्थके लिए लोभ है ॥ २० ॥ हे द्विजश्रेष्ठ! आपको वर्णसङ्करताका दोष न लगे । बस, यही मेरा अभिप्राय है । विश्वामित्र बोले—हे धर्मज्ञ ! तुम जो कह रहे हो, वह सच है । हे अन्त्यज ! तुम्हारी बुद्धि बड़ी स्वच्छ है ॥२१॥ अब मैं तुम्हें आपत्कालीन धर्मका सूक्ष्म विचार बतला रहा हूँ । हे मानद ! जिस किसी भी उपायसे शरीरकी रक्षा करनी

च द्विजन्मता ॥ द्विजत्वे ब्राह्मणत्वं च दुर्लभं वेत्सि किं न हि ॥१८॥ दुष्टाहारो न कर्तव्यः सर्वथा लोकमिच्छता ॥ अग्राह्या मनुना प्रोक्ताः कर्मणा सप्त चांत्यजाः ॥ १९ ॥ त्याज्योऽहं कर्मणा विप्र श्वपचो नात्र संशयः ॥ निवारयामि भक्ष्यात्त्वां न लोभेनांजसा द्विज ॥२०॥ वर्णसंकरदोषोऽयं मा यातु त्वां द्विजोत्तम ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ सत्यं वदसि धर्मज्ञ मतिस्ते विशदाऽन्त्यज ॥ २१ ॥ तथाप्यापदि धर्मस्य सूक्ष्ममार्गं ब्रवीम्यहम् ॥ देहस्य रक्षणं कार्यं सर्वथा यदि मानद ॥ २२ ॥ पापस्यान्ते पुनः कार्यं प्रायश्चित्तं विशुद्धये ॥ दुर्गतिस्तु भवेत्पापादनापदि न चापदि ॥ २३ ॥ मरणात्क्षुधितस्याथ नरको नात्र संशयः ॥ तस्मात्क्षुधापहरणं कर्तव्यं शुभमिच्छता ॥ २४ ॥ तेनाहं चौर्यधर्मेण देहं रक्षेऽप्यथांत्यज ॥ अवर्षणे च चौर्येण यत्पापं कथितं बुधैः ॥ २५ ॥ यो न वर्षति पर्जन्यस्तत्तु तस्मै भविष्यति ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ इत्युक्ते वचने कान्ते पर्जन्यः सहसाऽपतत् ॥ २६ ॥ गगनाद्धस्तिहस्ताभिर्धाराभिरभिकांक्षितः ॥ मुदितोऽहं घनं वीक्ष्य वर्षतं विद्युता सह ॥ २७ ॥ तदाऽहं तद्गृहं त्यक्त्वा निःसृतः परया मुदा ॥ कथय त्वं वरारोहे कालो नीतस्त्वया कथम् ॥ २८ ॥ कांतारे परमः क्रूरः क्षयकृत्प्राणिनामिह ॥ व्यास उवाच ॥ इति तस्य वचः

चाहिए॥ २२ ॥ ऐसा करते समय यदि कोई पाप हो जाय तो उससे छुटकारा पानेके लिए प्रायश्चित्त कर डाले । आपत्तिकालमें अधर्म करनेसे कुछ पाप नहीं होता, लेकिन आपत्ति-कालके अतिरिक्त साधारण समयमें जो लोग पापकर्म करते हैं तो उनको सद्गति नहीं प्राप्त होती ॥ २३ ॥ जो मनुष्य भूखसे मरते हैं, उन्हें नरक मिलता हैं—इसमें संदेह नहीं है । अतएव जो व्यक्ति अपना कल्याण चाहता हो, उसे चाहिए कि किसी भी तरह अपनी उदरज्वाला शान्त करे ॥ २४ ॥ अतएव हे अन्त्यज ! मैं भी चोरी करके अपने शरीरकी रक्षा करना चाहता हूँ । विद्वानोंने कहा है कि सूखेवाले अकालके समय जो लोग चोरी करते हैं ॥ २५ ॥ उनका पाप मेघको लगता है । क्योंकि वह पानी नहीं बरसाता । विश्वामित्र अपनी पत्नीसे बोले—हे प्रिये ! जैसे ही मैंने यह बात कही, तैसे ही एकाएक पानी बरसने लगा ॥ २६ ॥ हाथीके सूँड़की तरह मोटी धारवाला पानी आकाशसे बरस रहा था । इससे सभी प्राणी प्रसन्न थे । जब मैंने बादलसे खूब पानी बरसते और बिजली कड़कते देखा तो मेरे हर्षका ठिकाना नहीं रहा ॥२७॥ उसी समय मैं उस चाण्डालके घरसे बड़ी प्रसन्नतापूर्वक बाहर निकला । हे नितम्बिनी ! अब यह बताओ

कि तुमने अकालका वह भीषण समय वनमें कैसे काटा, जिसमें असंख्य प्राणी मर रहे थे ? व्यासजी बोले—हे राजन् ! अपने पतिकी बात सुनकर प्रियभाषिणी पत्नी बोली—॥ २८ ॥ २९ ॥ हे मुनिवर ! महान् अकालके समयको मैंने जैसे बिताया, सो बतला रही हूँ, सुनिए । जब आप तपस्या करने चले गये, तभी यहाँ दुर्भिक्ष पड़ गया ॥३०॥ अन्नके लिए मेरे छोटे-छोटे बच्चे बड़े दुःखित हुए । उन बालकोंको भूखा देखकर मैं तिन्नीकी खोजमें जङ्गल-जङ्गल फिरती रही । मुझे उस समय थोड़ी-सी तिन्नी मिल गयी । जिसे बच्चोंको खिला-खिलाकर मैंने कुछ महीने बिताये ॥३१॥३२॥ जब वह भी चुक गयी, तब मैंने सोचा कि जंगलमें तिन्नी नहीं मिल रही है और ऐसे दुर्भिक्षके समय भिक्षा भी नहीं मिल सकती ॥ ३३ ॥ उन दिनों पेड़ोंपर फल नहीं रह गये थे और धरतीमें कन्द-मूल भी नहीं था । बच्चे भूखसे विकल होकर रो रहे थे ॥ ३४ ॥ मैं सोचने लगी कि अब मैं क्या करूँ ? किसके पास जाऊँ ? भूखसे तड़पते हुए इन

श्रुत्वा पतिमाह प्रियंवदा ॥ २९ ॥ यथा शृणु मया नीतः कालः परमदारुणः ॥ गते त्वयि मुनिश्रेष्ठ दुर्भिक्षं समुपागतम् ॥ ३० ॥ अन्नार्थं पुत्रकाः सर्वे बभूवुश्चातिदुःखिता ॥ क्षुधितान्बालकान्वीक्ष्य नीवारार्थं वने वने ॥ ३१ ॥ भ्रांताऽहं चिंतयाऽऽविष्टा किंचित्प्राप्तं फलं तदा ॥ एवं च कतिचिन्मासा नीवारेणातिवाहिताः ॥ ३२ ॥ तदभावे मया कांत चिंतितं मनसा पुनः ॥ न भिक्षा किल दुर्भिक्षे नीवारा नापि कानने ॥ ३३ ॥ न वृक्षेषु फलान्यासुर्न मूलानि धरातले ॥ क्षुधया पीडिता बाला रुदंति भृशमातुराः ॥ ३४ ॥ किं करोमि क्व गच्छामि किं ब्रवीमि क्षुधार्दितान् ॥ एवं विचिंत्य मनसा निश्चयस्तु मया कृतः ॥३५॥ पुत्रमेकं ददाम्यद्य कस्मैचिद्धनिने किल ॥ गृहीत्वा तस्य मौल्यं तु तेन द्रव्येण बालकान् ॥३६॥ पालयेऽहं क्षुधार्तांस्तु नान्योपायोऽस्ति पालने ॥ इति संचिंत्य मनसा पुत्रोऽयं प्रहितो मया ॥ ३७ ॥ विक्रयार्थं महाभाग क्रंदमानो भृशातुरः ॥ क्रंदमानं गृहीत्वैनं निर्गताऽहं गतत्रपा ॥ ३८ ॥ तदा सत्यव्रतो मार्गे मामुद्वीक्ष्य भृशातुराम् ॥ पप्रच्छ स च राजर्षिः कस्माद्रोदिति बालकः ॥३९॥ तदाऽहं तमुवाचेदं वचनं मुनिसत्तम ॥ विक्रयार्थं नीयतेऽसौ बालकोऽद्य मया नृप ॥ ४० ॥ श्रुत्वा मे वचनं राजा दयार्द्रहृदयस्ततः ॥ मामुवाच गृहं याहि गृहीत्वैनं कुमारकम् ॥ ४१ ॥ भोजनार्थे कुमाराणामामिषं विहितं तव ॥ प्रापयिष्याम्यहं नित्यं यावन्मुनिसमागमः ॥ ४२ ॥ अहन्यहनि

बालकोंको क्या कहकर समझाऊँ ? बादमें मैंने यही निश्चय किया कि आज किसी धनी व्यक्तिके हाथ एक बालक बेंच डालूँ और उस धनसे बाकी बचे हुए बालकोंका पालन करूँ । क्योंकि उन भूखे बच्चोंके पालन-पोषणका कोई दूसरा उपाय नहीं रह गया था । अपने मनमें ऐसा सोचकर मैंने इस पुत्रको बेचनेका पक्का निश्चय किया ॥ ३५–३७ ॥ हे महाभाग ! उस समय यह बालक व्याकुल होकर रोने-चिल्लाने लगा । लेकिन मैं एक निर्लज्ज नारी बनकर इसके रोने-धोनेकी ओर ध्यान न देती और इसे जबर्दस्ती घसीटती हुई घरसे बाहर निकली ॥ ३८ ॥ रास्तेमें राजकुमार सत्यव्रत मिल गये । मुझे देखकर उन राजर्षिने पूछा कि यह बालक क्यों रो रहा है ? ॥ ३९ ॥ तब मैंने कहा—राजन् ! इस बालकको मैं बेचने जा रही हूँ, इसीसे यह रो रहा है ॥ ४० ॥ मेरी बात सुनकर राजकुमारका हृदय दयासे भर गया और उन्होंने कहा—इस बालकको लेकर आप अपने घर लौट जायँ ॥ ४१ ॥ जबतक मुनिवर विश्वामित्र लौट-

कर नहीं आयेंगे, तबतक मैं नित्य इन बच्चोंके भोजनके लिए मांसका प्रबन्ध कर दिया करूँगा ॥ ४२ ॥ उसी दिनसे दयालु राजा सत्यव्रत प्रतिदिन हरिण-सूअर आदि मारकर उनका मांस इस पेड़पर रखकर चले जाते थे ॥ ४३ ॥ हे स्वामिन्! उन्हींकी कृपासे मैं उस सङ्कटके सागरसे इन बालकोंको बचा सकी। लेकिन मेरे ही कारण राजा सत्यव्रतको वसिष्ठने शाप दे दिया ॥ ४४ ॥ बात यह हुई कि एक दिन जंगलमें उन्हें कोई पशु नहीं मिला। तब उन्होंने वसिष्ठजीकी दुधार गाय मार डाली। इससे वसिष्ठजी उनपर बहुत कुपित हुए ॥ ४५ ॥ उसी क्रोधके आवेशमें वसिष्ठने सत्यव्रतका 'त्रिशंकु' नाम रखकर अपने शापसे उन्हें चाण्डाल बना दिया ॥ ४६ ॥ हे महर्षि कौशिक! उनके ऊपर संकट पड़नेसे मुझे बड़ा क्लेश हो रहा है। क्योंकि वे अयोध्याके राजकुमार हमारा उपकार करने ही के कारण चाण्डाल हो गये हैं ॥ ४७ ॥ अतएव जैसे भी हो, अपने उत्कृष्ट तपोबलसे राजकुमारको इस संकटसे बचाइये ॥४८॥

भूपालो वृक्षेऽस्मिन्मृगसूकरान्॥ विन्यस्य याति हत्वाऽसौ प्रत्यहं दययाऽन्वितः ॥४३॥ तेनैव बालकाः कांत पालिता वृजिनार्णवात् ॥ वसिष्ठेनाथ शप्तोऽसौ भूपतिर्मम कारणात् ॥ ४४ ॥ कस्मिंश्चिद्दिवसे मांसं न प्राप्तं तेन कानने ॥ हता दोग्ध्री वसिष्ठस्य तेनासौ कुपितो मुनिः ॥ ४५ ॥ त्रिशंकुरिति भूपस्य कृतं नाम महात्मना ॥ कुपितेन वधाद्धेतोश्चांडालश्च कृतो नृपः ॥ ४६ ॥ तेनाहं दुःखिता जाता तस्य दुःखेन कौशिक ॥ श्वपचत्वमसौ प्राप्तो मत्कृते नृपनन्दनः ॥ ४७ ॥ येन केनाप्युपायेन भवता नृपतेः किल ॥ तस्माद्रक्षा प्रकर्तव्या तपसा प्रबलेन ह ॥ ४८ ॥ व्यास उवाच ॥ इति भार्यावचः श्रुत्वा कौशिको मुनिसत्तमः॥ तामाह कामिनीं दीनां सान्त्वपूर्वमरिंदम ॥४९॥ विश्वामित्र उवाच ॥ मोचयिष्यामि तं शापान्नृपं कमललोचने ॥ उपकारः कृतो येन कांताराद्रक्षिताऽसि वै ॥ ५० ॥ विद्यातपोबलेनाहं करिष्ये दुःखसंक्षयम् ॥ इत्याश्वास्य प्रियां तत्र कौशिकः परमार्थवित् ॥ ५१ ॥ चिंतयामास नृपतेः कथं स्याद्दुःखनाशनम् ॥ संविमृश्य मुनिस्तत्र जगाम यत्र पार्थिवः ॥ ५२ ॥ त्रिशंकुः पक्वणे दीनः संस्थितः श्वपचाकृतिः ॥ आगच्छंतं मुनिं दृष्ट्वा विस्मितोऽसौ नराधिपः ॥ ५३ ॥ दंडवन्निपपातोर्व्यां पादयोस्तरसा मुनेः ॥ गृहीत्वा तं करे भूपं पतितं कौशिकस्तदा ॥ ५४ ॥ उत्थाप्योवाच वचनं सांत्वपूर्वं द्विजोत्तमः ॥ मत्कृते त्वं महीपाल शप्तोऽसि मुनिना यतः ॥ ५५ ॥

व्यासजी बोले—हे शत्रु-सूदन! अपनी पत्नीकी बातें सुनकर मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्रजी उस दुःखिता महिलाको समझाते हुए कहने लगे ॥ ४९ ॥ विश्वामित्रजी बोले—हे कमलनयनी! जिन राजकुमार सत्यव्रतने तुम्हारी उस अन्न-संकटसे रक्षा करके उपकार किया है, उनको मैं अवश्य शापमुक्त करूँगा ॥ ५० ॥ अपनी वैज्ञानिक विद्या और तपस्याके प्रभावसे मैं उनका क्लेश दूर कर दूँगा। परमतत्त्ववेत्ता विश्वामित्रजी अपनी प्रियतमाको इस तरह ढाढ़स बँधाकर यह सोचने लगे कि किस तरह उनका दुःख दूर हो सकता है। भलीभाँति विचार-विमर्श करनेके बाद विश्वामित्रजी वहाँ गये, जहाँ राजा सत्यव्रत (त्रिशंकु) रहते थे ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ वे चाण्डालके रूपमें एक गरीबकी भाँति झोपड़ीमें रहते हुए अपना दिन काट रहे थे। राजा त्रिशंकु ऋषि विश्वामित्रको आते देखकर चकरा गये ॥ ५३ ॥ वे तुरन्त मुनिके चरणोंपर डण्डेकी भाँति लोट गये। जमीनपर पड़े हुए राजा त्रिशंकुको हाथ पकड़कर मुनि विश्वामित्रने उठाया और

उन्हें आश्वासन देते हुए कहा—हे राजन् ! मेरे ही कारण वसिष्ठमुनिने आपको शाप दिया है ॥५४॥५५॥ अतएव मैं वही कार्य करूँगा कि जिससे आपकी कामना पूर्ण हो सके। अब आप बतलाइए कि इस समय कौन-सा कार्य करूँ, जिससे आपका कल्याण हो ? राजा त्रिशंकु बोले—भगवन् ! मैंने यज्ञ करानेके लिए गुरु वसिष्ठजीसे प्रार्थना की थी ॥५६॥ मैंने कहा—हे मुनिवर ! मैं एक ऐसा उत्तम यज्ञ करना चाहता हूँ कि जिससे मेरी मनोवाञ्छा पूरी हो। आप उसके ऋत्विक् बनें। हे ब्रह्मर्षि ! आप कोई ऐसा उपाय करिए कि जिससे मैं सदेह स्वर्ग चला जाऊँ ॥ ५७ ॥ मैं इसी शरीरसे आनन्दभूमि इन्द्रलोकमें जाना चाहता हूँ। इसपर कुपित होकर वसिष्ठ मुनिने मुझे उत्तर दिया कि अरे दुर्बुद्धि! कहीं मनुष्यशरीरसे स्वर्ग मिलता है? मुझे तो सदेह स्वर्गमें जानेकी लालसा थी। अतः भगवान् वसिष्ठसे मैंने फिर कहा कि हे निष्पाप ! यदि आप ऐसा न करेंगे तो मैं किसी दूसरे व्यक्तिको अपना पुरोहित बनाकर वह सर्वश्रेष्ठ यज्ञ आरम्भ करूँगा। इसपर उन्होंने मुझे शाप देते हुए कहा—अरे पामर ! तू चाण्डाल हो जा ॥ ५८–६० ॥ हे मुनीश्वर ! इस प्रकार मैंने आपको शाप पानेका कारण कह सुनाया। अब एकमात्र

वांछितं ते करिष्यामि ब्रूमि किं करवाण्यहम् ॥ राजोवाच ॥ मया संप्रार्थितः पूर्वं वसिष्ठो मखहेतवे ॥ ५६ ॥ मां याजय मुनिश्रेष्ठ करोमि मखमुत्तमम् ॥ यथेष्टं कुरु विप्रेंद्र यथा स्वर्गं व्रजाम्यहम् ॥ ५७ ॥ अनेनैव शरीरेण शक्रलोकं सुखालयम् ॥ कोपं कृत्वा वसिष्ठोऽसौ मामाहेति सुदुर्मते ॥ ५८ ॥ मानुषेण हि देहेन स्वर्गवासः कुतस्तव ॥ पुनर्मयोक्तो भगवान्स्वर्गलुब्धेन चानघ ॥ ५९ ॥ अन्यं पुरोहितं कृत्वा यक्ष्येऽहं यज्ञमुत्तमम् ॥ तदा तेनैव शप्तोऽहं चांडालो भव पामर ॥ ६० ॥ इत्येतत्कथितं सर्वं कारणं शापसंभवम् ॥ मम दुःखविनाशाय समर्थोऽसि मुनीश्वर ॥ ६१ ॥ इत्युक्त्वा विररामासौ राजा दुःखरुजार्दितः ॥ कौशिकोऽपि निराकर्तुं शापं तस्य व्यचिंतयत् ॥ ६२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

॥ व्यास उवाच ॥ विचिंत्य मनसा कृत्यं गाधिसूनुर्महातपाः ॥ प्रकल्प्य यज्ञसंभारान्मुनीनामंत्रयत्तदा ॥ १ ॥ मुनयस्तं मखं ज्ञात्वा विश्वामित्रनिमंत्रिताः ॥ नागताः सर्व एवैते वसिष्ठेन निवारिताः ॥ २ ॥ गाधिसूनुस्तदाज्ञाय विमनाश्चातिदुःखितः ॥ आजगामाश्रमं तत्र यत्रासौ नृपतिः स्थितः ॥ ३ ॥ तमाह कौशिकः क्रुद्धो वसिष्ठेन निवारिताः ॥ नागता ब्राह्मणाः सर्वे यज्ञार्थं नृपसत्तम ॥ ४ ॥ पश्य मे तपसः सिद्धिं यथा

आप ही मेरा क्लेशके दूर करनेमें समर्थ हैं ॥ ६१ ॥ उस महान् कष्टकी पीडासे पीडित राजा त्रिशंकु इतना कहकर चुप हो गये। इधर विश्वामित्रजी उन्हें शापसे मुक्त करनेका उपाय सोचने लगे ॥ ६२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा' भाषाटीकायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

(विश्वामित्रके तपोबलसे त्रिशंकुका सदेह स्वर्गगमन) व्यासजी बोले—हे महाराज ! गाधितनय एवं महातपस्वी विश्वामित्रने सम्पूर्ण कृत्योंका निश्चय करके यज्ञकी सामग्री जुटायी और सभी ऋषियोंको निमन्त्रण भेज दिया ॥ १ ॥ विश्वामित्रकी ओरसे निमन्त्रण द्वारा मुनियोंको यद्यपि यज्ञकी सूचना मिल चुकी थी, तथापि वे लोग नहीं आये। क्योंकि वसिष्ठजीने उन्हें मना कर दिया था ॥ २ ॥ गाधितनय विश्वामित्र यह वृत्तान्त सुनकर बड़े दुखी हुए और उनका चित्त उदास हो गया। तब वे राजा 'त्रिशंकु'के आश्रममें आये ॥ ३ ॥ विश्वामित्रने

रोषपूर्वक उनसे कहा—हे नृपश्रेष्ठ ! वसिष्ठजीके मना करनेसे ब्राह्मणगण इस यज्ञमें नहीं आये ॥४॥ लेकिन हे महाराज ! आप मेरा तपोबल देखिए, मैं अभी सदेह स्वर्ग भेजकर आपकी अभिलाषा पूरी करूँगा ॥ ५ ॥ यह कहकर मुनिवर विश्वामित्रने हाथमें जल लिया और गायत्रीजपसे संचित सारा पुण्य त्रिशंकुको दे दिया ॥ ६ ॥ त्रिशंकुको अपना समस्त पुण्य देनेके बाद उनसे कहने लगे—हे राजर्षि ! आप इन्द्रलोकमें जाइए ॥ ७ ॥ हे सम्राट् ! बहुत दिनोंसे सञ्चित मेरे पुण्यबल द्वारा आप प्रसन्नतापूर्वक इन्द्रपुरीमें जायँ और उस देवभूमिमें आपका कल्याण हो ॥ ८ ॥ व्यासजी बोले—हे राजन् ! विप्रेन्द्र विश्वामित्रके इतना कहते ही राजा त्रिशंकु उनके तपोबलसे बड़ी तेजीसे उड़नेवाले पक्षीकी तरह वेगके साथ तुरन्त आकाशकी ओर उड़े ॥ ९ ॥ इस प्रकार उड़कर जब वे इन्द्रपुरीमें पहुँचे तो देवताओंने देखा कि चाण्डालवेशधारी कोई क्रूर व्यक्ति चला आ रहा है ॥ १० ॥ तब उन लोगोंने इन्द्रसे पूछा कि आकाशमार्गमें देवताकी तरह दुर्दर्श बड़ी तेजीके साथ जो व्यक्ति चला आ रहा हैं, वह कौन है ?—इसकी आकृति तो चाण्डाल जैसी है ॥ ११ ॥ तब इन्द्रने हड़बड़ीमें उठकर उस कुरूप मनुष्यकी ओर

त्वां सुरसद्मनि ॥ प्रापयामि महाराज वांछितं ते करोम्यहम् ॥ ५ ॥ इत्युक्त्वा जलमादाय हस्तेन मुनिसत्तमः ॥ ददौ पुण्यं तदा तस्मै गायत्रीजपसम्भवम् ॥ ६ ॥ दत्त्वाऽथ सुकृतं राज्ञे तमुवाच महीपतिम् ॥ यथेष्टं गच्छ राजर्षे त्रिविष्टपमतंद्रितः ॥ ७ ॥ पुण्येन मम राजेंद्र बहुकालार्जितेन च ॥ याहि शक्रपुरीं प्रीतः स्वस्ति तेऽस्तु सुरालये ॥८॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्तवति विप्रेंद्रे त्रिशंकुस्तरसा ततः ॥ उत्पपात यथा पक्षी वेगवांस्तपसो बलात् ॥ ९ ॥ उत्पत्य गगने राजा गतः शक्रपुरीं यदा ॥ दृष्टो देवगणैस्तत्र क्रूरश्चाण्डालवेषभाक् ॥ १० ॥ कथितोऽसौ सुरेन्द्राय कोऽयमायाति सत्वरः ॥ गगने देववद्वा यो दुर्दर्शः श्वपचाकृतिः ॥ ११ ॥ सहसोत्थाय शक्रस्तमपश्यत्पुरुषाधमम् ॥ ज्ञात्वा त्रिशंकुमपि स निर्भर्त्स्य तरसाऽब्रवीत् ॥ १२ ॥ श्वपच क्व समायासि देवलोके जुगुप्सितः ॥ याहि शीघ्रं ततो भूमौ नात्र स्थातुं त्वयोचितम् ॥ १३ ॥ इत्युक्तः स्खलितः स्वर्गाच्छक्रेणामित्रकर्शन ॥ निपपात तदा राजा क्षीणपुण्यो यथाऽमरः ॥ १४ ॥ पुनश्चुक्रोश भूपालो विश्वामित्रेति चासकृत् ॥ पतामि रक्ष दुःखार्तं स्वर्गाच्चलितमाशुगम् ॥ १५ ॥ तस्य तत्क्रंदितं राजन्पततः कौशिको मुनिः ॥ श्रुत्वा तिष्ठेति होवाच पतंतं वीक्ष्य भूपतिम् ॥ १६ ॥ वचनात्तस्य तत्रैव स्थितोऽसौ गगने नृप ॥ मुनेस्तपःप्रभावेण चलितोऽपि सुरालयात् ॥ १७ ॥ विश्वामित्रोऽप्यपः स्पृष्ट्वा चकारेष्टिं सुविस्तराम् ॥ विधातुं

देखा । जब उन्होंने पहचान लिया कि वे त्रिशंकु हैं तो तत्काल उन्हें डाँटते हुए इन्द्र कहने लगे—॥ १२ ॥ हे चाण्डाल ! तुम इस निन्दनीय शरीरसे देवलोकमें क्यों चले आ रहे हो ? तुम अभी पृथ्वीलोकको लौट जाओ । क्योंकि यहाँ निवास करनेके लिए तुम सर्वथा अनुपयुक्त हो ॥ १३ ॥ हे शत्रुओंको पीस देनेवाले राजा जनमेजय ! जब इन्द्रने ऐसा कहा तो वे स्वर्गसे वैसे ही नीचे गिरने लगे । जैसे पुण्य क्षीण हो जानेपर देवताओंका पतन हो जाता है ॥ १४ ॥ तब राजा त्रिशंकु वहींसे चिल्लाने लगे—हे विश्वामित्र ! हे विश्वामित्र ! मैं स्वर्गसे च्युत होकर बड़ी तेजीसे नीचे गिर रहा हूँ, आप मुझ दुखियाकी रक्षा करें ॥ १५ ॥ हे राजा जनमेजय ! त्रिशंकुका करुण-क्रन्दन सुनकर मुनिवर विश्वामित्रने जब उन्हें मर्त्यलोकमें गिरते देखा तो कहा—वहीं रुक जाइए ॥ १६ ॥ हे राजन् ! यद्यपि त्रिशंकु देवलोकसे निकल पड़े थे, तथापि विश्वामित्रके इतना कहते ही वे उनके तपोबलके प्रतापसे आकाशमें ही रुक गये ॥ १७ ॥

तदनन्तर विश्वामित्रने नयी सृष्टि द्वारा दूसरा स्वर्गलोक बनानेके लिए आचमन करके एक दीर्घकालीन यज्ञ आरम्भ किया ॥ १८ ॥ जब शचीपति इन्द्रको यह मालूम हुआ तो वे तुरंत गाधि-तनय विश्वामित्र मुनिके पास आये ॥ १९ ॥ इन्द्रने कहा—हे ब्रह्मन् ! यह आप क्या कर रहे हैं ? हे साधो ! आप क्यों इतना कुपित हो गये हैं ? हे मुनिराज ! आप दूसरी सृष्टिका विचार त्यागकर मुझे आज्ञा दीजिए, मैं आपका कौनसा कार्य करूँ ॥ २० ॥ विश्वामित्र बोले—हे विभो ! राजा त्रिशंकु देवलोकसे च्युत होकर बड़े दुःखित हैं। अतः आप प्रेमपूर्वक उनको अपने इन्द्रलोकमें ले जाइए ॥ २१ ॥ व्यासजी बोले—हे राजन् ! विश्वामित्रके निश्चयको देखकर इन्द्र बड़े भयभीत हुए। लेकिन विश्वामित्रकी दूसरी सृष्टि करनेकी उत्कट शक्तिको जानकर इन्द्रने उनकी बात स्वीकार कर ली ॥ २२ ॥ तब राजा त्रिशंकुका शरीर दिव्य बना तथा उन्हें एक अच्छे विमानपर बैठाकर इन्द्रने विश्वामित्रजीसे बिदा माँगी और उन्हें अपनी पुरीमें ले गये ॥ २३ ॥ इस प्रकार जब त्रिशंकु इन्द्रके साथ स्वर्ग चले गये, तब विश्वामित्रको बड़ा हर्ष हुआ और वे अपने आश्रममें शान्तिपूर्वक रहने लगे ॥ २४ ॥ इधर अयोध्यामें

नूतनां सृष्टिं स्वर्गलोकं द्वितीयकम् ॥१८॥ तस्योद्यमं तथा ज्ञात्वा त्वरितस्तु शचीपतिः ॥ तत्राजगाम सहसा मुनिं प्रति तु गाधिजम् ॥१९॥ किं ब्रह्मन्क्रियते साधो कस्मात्कोपसमाकुलः ॥ अलं सृष्ट्या मुनिश्रेष्ठ ब्रूहि किं करवाणि ते ॥२०॥ कौशिक उवाच ॥ स्वं निवासं महीपालं च्युतं त्वद्भवनाद्विभो ॥ नयस्व प्रीतियोगेन त्रिशंकुं चातिदुःखितम् ॥ २१ ॥ व्यास उवाच ॥ तस्य तं निश्चयं ज्ञात्वा तुराषाडतिशंकितः ॥ तपोबलं विदित्वोग्रमोमित्युवाच वासवः ॥ २२ ॥ दिव्यदेहं नृपं कृत्वा विमानरसंस्थितम् ॥ आपृच्छ्य कौशिकं शक्रोऽगमन्निजपुरीं तदा ॥ २३ ॥ गते शक्रे तु वै स्वर्गं त्रिशंकुसहिते ततः ॥ विश्वामित्रः सुखं प्राप्य स्वाश्रमे सुस्थिरोऽभवत् ॥ २४ ॥ हरिश्चंद्रोऽथ तच्छ्रुत्वा विश्वामित्रोपकारकम् ॥ पितुः स्वर्गमनं कामं मुदितो राज्यमन्वशात् ॥ २५ ॥ अयोध्याधिपतिः क्रीडां चकार सह भार्यया ॥ रूपयौवनचातुर्ययुक्तया प्रीतिसंयुतः ॥ २६ ॥ अतीतकाले युवती न सा गर्भवती ह्यभूत् ॥ तदा चिन्तातुरो राजा बभूवातीव दुःखितः ॥ २७ ॥ वसिष्ठस्याश्रमं गत्वा प्रणम्य शिरसा मुनिम् ॥ अनपत्यत्वजां चिंतां गुरवे समवेदयत् ॥ २८ ॥ दैवज्ञोऽसि भवान्कामं मंत्रविद्याविशारदः ॥ उपायं कुरु धर्मज्ञ संततेर्मम मानद ॥२९॥ अपुत्रस्य गतिर्नास्ति जानासि द्विजसत्तम ॥ कस्मादुपेक्षसे जानन्दुःखं मम च शक्तिमान् ॥ ३० ॥ कलविंकास्त्विमे धन्या ये शिशुं लालयंति हि ॥ मंदभाग्योऽहमनिशं चिंतयामि

जब राजा हरिश्चन्द्रको यह पता लगा कि महर्षि विश्वामित्रके तपोबलसे मेरे पिताको सदेह स्वर्ग मिला है—तब उनको अपार आनन्द प्राप्त हुआ और वे अपने राज्यका शासन करने लगे ॥ २५ ॥ अयोध्यानरेश हरिश्चन्द्र अपनी रूपवती, युवती और कामकेलिकी विज्ञ महारानीके साथ बड़े प्रेमपूर्वक विहार कर रहे थे ॥ २६ ॥ ऐसा करते-करते बहुत समय बीत गया। फिर भी वह युवती रानी गर्भवती नहीं हुई। इससे राजा बड़े चिन्तित और दुखी हुए ॥२७॥ तब वे वसिष्ठजीके आश्रममें गये और मस्तक झुकाकर उन्हें प्रणाम किया। तदनन्तर पुत्र न होनेके कारण जो मानसिक चिन्ता थी, उसे बताते हुए कहा—॥ २८ ॥ हे मानद ! हे धर्मज्ञ ! आप ज्योषित और मन्त्र दोनों विद्याओंके ज्ञाता हैं। अतः आप कोई ऐसा उपाय कर दीजिए कि जिससे मुझे सन्तान प्राप्त हो जाय ॥ २९ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! आप तो स्वयं जानते हैं कि अपुत्र व्यक्तिकी गति नहीं होती। आप मेरे कष्टको जानते हैं और इस कष्ट को दूर

करनेकी शक्ति भी आपमें है। तथापि ऐसी उपेक्षा आप क्यों कर रहे हैं ? ॥ ३० ॥ देखिए, ये गौरैया चिड़ियायें कितनी भाग्यशालिनी हैं कि अपने बच्चोंका लालन-पालन करती हैं। मैं ही एक ऐसा अभागा हूँ कि पुत्र न होनेके कारण दिन-रात चिन्तित रहता हूँ ॥ ३१ ॥ व्यासजी बोले—हे राजन् ! ब्रह्माजीके पुत्र वसिष्ठजी हरिश्चन्द्रकी दुःखभरी वाणी सुनकर भली-भाँति सोचनेके बाद उनसे बोले ॥ ३२ ॥ वसिष्ठजीने कहा—हे महाराज ! आप ठीक कह रहे हैं। इस संसारमें सन्तान न होनेके कष्टसे बढ़कर और कोई दूसरा कष्ट नहीं है ॥ ३३ ॥ अतएव हे राजेन्द्र ! आप प्रयत्नपूर्वक जलाधिनाथ वरुणदेवकी आराधना कीजिए, वे ही आपको सन्तति प्रदान करेंगे ॥३४॥ उन वरुणदेवसे बढ़कर और कोई दूसरा सन्तानदाता देवता नहीं है। अतः हे धर्मिष्ठ ! आप उन्हींकी आराधना करिए। इससे आपका मनोरथ अवश्य पूरा हो जायगा ॥ ३५॥ मनुष्योंको चाहिए कि वे भाग्य और पुरुषार्थ दोनोंका आदर करें। क्योंकि बिना उद्योगके लिए सफलता कैसे मिल सकती है ? ॥ ३६ ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! तत्त्वदर्शी पुरुषोंको चाहिए कि न्यायमार्गका अवलम्बन करके भरपूर उद्योग करें। ऐसा करनेसे अवश्य सफलता

दिवानिशम् ॥३१॥ व्यास उवाच ॥ इत्याकर्ण्य मुनिस्तस्य निर्वेदमिश्रितं वचः ॥ संचिंत्य मनसा सम्यक्तमुवाच विधेः सुतः ॥३२॥ वसिष्ठ उवाच ॥ सत्यं ब्रूषे महाराज संसारेऽस्मिन्न विद्यते ॥ अनपत्यत्वजं दुःखं यत्तथा दुःखमद्भुतम् ॥ ३३ ॥ तस्मात्त्वमपि राजेंद्र वरुणं यादसां पतिम् ॥ समाराधय यत्नेन स ते कार्यं करिष्यति ॥ ३४ ॥ वरुणादधिको नास्ति देवः संतानदायकः ॥ तमाराधय धर्मिष्ठ कार्यसिद्धिर्भविष्यति ॥ ३५ ॥ दैवं पुरुषकारश्च माननीयाविमौ नृभिः ॥ उद्यमेन विना कार्यसिद्धिः संजायते कथम् ॥३६॥ न्यायतस्तु नरैः कार्य उद्यमस्वत्त्वदर्शिभिः ॥ कृते तस्मिन्भवेत्सिद्धिर्नान्यथा नृपसत्तम ॥ ३७ ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा गुरोरमिततेजसः ॥ प्रणम्य निर्ययौ राजा तपसे कृतनिश्चयः ॥ ३८ ॥ गंगातीरे शुभे स्थाने कृतपद्मासनो नृपः ॥ ध्यायन्पाशधरं चित्ते चचार दुश्चरं तपः ॥ ३९ ॥ एवं तपस्यतस्तस्य प्रचेता दृष्टिगोचरः ॥ कृपयाऽभून्महाराज प्रसन्नमुखपंकजः ॥ ४० ॥ हरिश्चंद्रमुवाचेदं वचनं यादसां पतिः ॥ वरं वरय धर्मज्ञ तुष्टोऽस्मि तपसा तव ॥४१॥ राजोवाच ॥ अनपत्योऽस्मि देवेश पुत्रं देहि सुखप्रदम् ॥ ऋणत्रयापहारार्थमुद्यमोऽयं मया कृतः ॥ ४२ ॥ नृपस्य वचनं श्रुत्वा प्रगल्भं दुःखितस्य च ॥ स्मितपूर्वं ततः पाशी तमाह पुरतः स्थितम् ॥ ४३ ॥ वरुण उवाच ॥ पुत्रो यदि भवेद्राजन्गुणी मनसि वांछितः ॥ सिद्धे कार्ये ततः पश्चात्किं करिष्यसि मे प्रियम् ॥ ४४ ॥

मिलेगी। लेकिन इसके विपरीत चलनेसे कदापि सफलता नहीं मिल सकती ॥ ३७ ॥ अपरिमित तेजस्वी अपने गुरु वसिष्ठकी यह बात सुनकर राजा हरिश्चन्द्रने तप करनेका निश्चय किया और उन्हें प्रणाम कर चले गये ॥ ३८ ॥ तदनुसार वे गङ्गा नदीके किनारे एक शुभ स्थानमें पद्मासन लगाकर बैठ गये और पाशधारी वरुणदेवका मानसिक ध्यान करते हुए भीषण तप करने लगे ॥ ३९ ॥ हे समाट् ! इस तरह तपस्या करते-करते बहुत समय बाद वरुणदेवको दया आयी और वे प्रकट हुए। उस समय वरुणजीका मुखकमल प्रसन्नतासे खिला हुआ था ॥४०॥ उन जलाधिदेव वरुणने हरिश्चन्द्रको सम्बोधित करके कहा—हे धर्मके मर्मज्ञ ! मैं आपकी तपस्यासे प्रसन्न हूँ, आप मुझसे वर माँग लें। ४१॥ तब राजा हरिश्चन्द्रने कहा—हे देवराज ! मेरे कोई सन्तान नहीं है। सो आप मुझे आनन्ददायक पुत्र प्राप्त होनेका वरदान दीजिये। मैंने देव-ऋण, ऋषि-ऋण और पितृ-ऋणसे उऋण होनेके लिए ही यह तप किया है ॥ ४२ ॥

उस दुःखित राजाकी यह वाणी सुनकर मुसकराते हुए वरुणदेव अपने सामने खड़े राजा हरिश्चन्द्रसे कहने लगे ॥ ४३ ॥ वरुणदेव बोले—हे राजन् ! यदि आपकी इच्छाके अनुसार गुणवान् पुत्र उत्पन्न हो तो मनोरथ पूरा हो जानेके बाद आप मेरा कौनसा प्रिय कार्य करेंगे ? ॥ ४४ ॥ हे राजन् ! यदि आप उस पुत्रको बलिपशु बनाकर मेरा यज्ञ करें तो मैं आपको पुत्रप्राप्तिका वरदान दे दूँ । राजा हरिश्चन्द्र बोले—हे देव ! मुझे निपूता होनेके दोषसे बचा लीजिये । हे जलाधिपते ! मैं उस शिशुको पशु बनाकर आपका यज्ञ करूँगा । यह बात मैं आपसे सत्य कह रहा हूँ । हे मानद ! इस संसारमें मनुष्योंके लिए निःसन्तान होनेसे बढ़कर कोई दूसरा कष्ट कहीं है । अतः ऐसा कल्याणकारी पुत्र आप मुझे दीजिए कि जिससे मेरी शोकाग्नि शान्त हो जाय । वरुणदेवने कहा—हे राजन् ! आपको ऐसा ही पुत्र प्राप्त होगा । अब आप घर लौट जायँ, लेकिन अभी आपने मेरे सामने जो प्रतिज्ञा की है, उसे सत्य करिएगा ॥४५–४८॥ व्यासजी बोले—वरुणदेवके ऐसा कहनेपर राजा हरिश्चन्द्र घर चले गये और वरदान पानेका समस्त वृत्तान्त अपनी रानीको कह सुनाया ॥४९॥ राजा हरिश्चन्द्रके पूरी एक सौ रानियाँ थीं । वे सब बड़ी सुन्दरी

यदि त्वं तेन पुत्रेण मां यजेथाविशंकितः ॥ पशुबंधेन तेनैव ददामि नृपते वरम् ॥ ४५ ॥ राजोवाच ॥ देव मे माऽस्तु वंध्यत्वं यजिष्येऽहं जलाधिप ॥ पशुं कृत्वा सुतं पुत्रं सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ ४६ ॥ वंध्यत्वे परमं दुःखमसह्यं भुवि मानद ॥ शोकाग्निशमनं नॄणां तस्माद्देहि सुतं शुभम् ॥ ४७ ॥ वरुण उवाच ॥ भविष्यति सुतः कामं राजन्गच्छ गृहाय वै ॥ सत्यं तद्वचनं कार्यं यद्ब्रवीषि ममाग्रतः ॥ ४८ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्तो वरुणेनासौ हरिश्चंद्रो गृहं ययौ ॥ भार्यायै कथयामास वृत्तांतं वरदानजम् ॥ ४९ ॥ तस्य भार्याशतं पूर्णं बभूवातिमनोहरम् ॥ पट्टराज्ञी शुभा शैव्या धर्मपत्नी पतिव्रता ॥ ५० ॥ काले गतेऽथ सा गर्भं दधार वरवर्णिनी ॥ बभूव मुदितो राजा श्रुत्वा दोहदचेष्टितम् ॥ ५१ ॥ कारयामास विधिवत्संस्कारान्नृपतिस्तदा ॥ मासेऽथ दशमे पूर्णे सुषवे सा शुभे दिने ॥५२॥ ताराग्रहबलोपेते पुत्रं देवसुतोपमम् ॥ पुत्रे जाते नृपः स्नात्वा ब्राह्मणैः परिवेष्टितः ॥ ५३ ॥ चकार जातकर्मादौ ददौ दानानि भूरिशः ॥ राज्ञश्चातिप्रमोदोऽभूत्पुत्रजन्मसमुद्भवः ॥ ५४ ॥ बभूव परमोदारो धनधान्यसमन्वितः ॥ विशेषदानसंयुक्तो गीतवादित्रसंकुलः ॥ ५५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

थीं । उनमेंसे कल्याणी और प्रतिव्रता शैव्या ही उनकी मुख्य धर्मपत्नी एवं पटरानी थी ॥५०॥ कुछ समय बाद वह कुलीन महिला गर्भवती हुई । उसके गर्भवती होनेकी बात सुनकर राजाको अपार हर्ष हुआ ॥ ५१ ॥ तब राजाने उसका विधिवत् गर्भाधान, पुंसवन और सीमन्तोन्नयन आदि संस्कार कराया । दसवें महीनेमें महारानी शैव्याने शुभ दिन, शुभ नक्षत्र और जब शुभग्रह बली थे, उस शुभ मुहूर्तमें देवताओंके पुत्रकी तरह अतीव कान्तिमान् पुत्र प्रसव किया। उस पुत्रके जन्म लेनेपर राजा हरिश्चन्द्रने ब्राह्मणोंके साथ जाकर स्नान किया ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ सर्वप्रथम बालकका उन्होंने जातकर्मसंस्कार करके ब्राह्मणों और याचकोंको गुँहमाँगा दान दिया । पुत्रका जन्म होनेसे राजा बहुत प्रसन्न हुए ॥ ५४ ॥ उस समय वे बड़े उदार हो गये । जिसने धन माँगा, उसे धन दिया। जिसने खाद्य पदार्थ माँगा उसे खाद्य पदार्थ दिया और जिसने भूमि माँगी, उसे भूमि मिली । फिर समस्त अयोध्याराज्यमें गायन-वाद्यका आयोजन किया गया ॥५५॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा' भाषाटीकायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

(हरिश्चन्द्रोपख्यान) व्यासजी बोले—हे राजन् ! जब राजा हरिश्चन्द्रके यहाँ पुत्र-जन्मोत्सव मनाया जा रहा था, उसी समय सुन्दर ब्राह्मणका वेश धारण करके वरुणदेव वहाँ जा पहुँचे ॥ १ ॥ वे कहने लगे—आपका कल्याण हो, मैं वरुण देवता हूँ। मेरी बात सुनिये। हे राजन् ! आपको पुत्र हो गया है, अब तुरन्त उसके द्वारा मेरा यज्ञ करिए ॥ २ ॥ हे राजन् ! मेरे वरदानसे आज आपके निपूतेपनका दोष जाता रहा। अब जो बात आपने पहले कही थी, उसे सच कीजिए ॥ ३ ॥ वरुणदेवकी बात सुनकर राजा चिन्तित हो गये। उन्होंने सोचा कि कमलके समान कोमल मुखवाले ऐसे सुकुमार पुत्रके द्वारा मैं नरमेध यज्ञ कैसे करूँ ? ॥४॥ किन्तु स्वयं लोकपाले एवं पराक्रमी वरुणदेव ब्राह्मणका रूप धारण करके आये हुए हैं। यदि इनकी बात न मानूँ तो मेरा अनिष्ट होगा। क्योंकि आत्मकल्याणके इच्छुक व्यक्तिको चहिये कि वह देवताओंका अनादर कदापि न करे ॥५॥ लेकिन पुत्रस्नेहको दूर करना भी तो बड़ा टेढ़ा कार्य होता है। अब मैं ऐसा कौन-सा उपाय करूँ कि जिससे मुझे सन्तान-जनित सुख मिले ? ॥ ६ ॥ फिर धैर्य धारणपूर्वक राजा हरिश्चन्द्रने वरुणदेवको नमस्कार किया और विधिवत्

॥ व्यास उवाच ॥ प्रवृत्ते सदने तस्य राज्ञः पुत्रमहोत्सवे ॥ आजगाम तदा पाशी विप्रवेषधरः शुभः ॥१॥ स्वतीत्युक्त्वा नृपं प्राह वरुणोऽहं निशामय ॥ पुत्रो जातस्तवाधीश यजानेन नृपाशु माम् ॥ २ ॥ सत्यं कुरु वचो राजन्यत्प्रोक्तं भवता पुरा ॥ वंध्यत्वं तु गतं तेऽद्य वरदानेन मे किल ॥ ३ ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा राजा चिंतां चकार ह ॥ कथं हन्मि सुतं जातं जलजेन समाननम् ॥४॥ लोकपालः समायातो विप्रवेषेण वीर्यवान् ॥ न देवहेलनं कार्यं सर्वथा शुभमिच्छता ॥५॥ पुत्रस्नेहः सुदुश्छेद्यः सर्वथा प्राणिभिः सदा ॥ किं करोमि कथं मे स्यात्सुखं संततिसंभवम् ॥ ६ ॥ धैर्यमालंब्य भूपालस्तं नत्वा प्रतिपूज्य च ॥ उवाच वचनं श्लक्ष्णं युक्तं विनयपूर्वकम् ॥ ७ ॥ देवदेव तवानुज्ञां करोमि करुणानिधे ॥ वैदोक्तेन विधानेन मखं च बहुदक्षिणम् ॥ ८ ॥ पुत्रे जात दशाहेन कर्मयोग्यो भवेत्पिता ॥ मासेन शुद्धयेज्जननी दंपती तत्र कारणम् ॥ ९ ॥ सर्वज्ञोऽसि प्रचेतस्त्वं धर्मं जानासि शाश्वतम् ॥ कृपां कुरु त्वं वारीश क्षमस्व परमेश्वर ॥१०॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्तस्तु प्रचेतास्तं प्रत्युवाच जनाधिपम् ॥ स्वस्ति तेऽस्तु गमिष्यामि कुरु कार्याणि पार्थिव ॥ ११ ॥ आगमिष्यामि मासांते यष्टव्यं सर्वथा त्वया ॥ कृत्वोत्थानिकमाचारं पुत्रस्य नृप-

उनकी पूजा की। तत्पश्चात् बड़े विनम्रभावसे यह युक्तिसङ्गत वाक्य बोले ॥ ७ ॥ राजा हरिश्चन्द्रने कहा—हे देवाधिदेव ! मैं आपकी आज्ञाका पालन करूँगा। हे करुणानिधि ! मैं वैदिक विधिसे प्रचुर दक्षिणायुक्त आपका यज्ञ करूँगा ॥ ८ ॥ अभी यज्ञ न करनेका कारण यह है कि पुत्रजन्म होनेपर दस दिन बाद पिता और एक महीने बाद माता शुद्ध होकर शुभ-कर्म करनेकी अधिकारिणी होती है। अतः जबतक पति-पत्नी दोनों शुद्ध न हो लें, तबतक नरमेध यज्ञ कैसे होगा ? ॥ ९ ॥ हे वरुणदेव ! आप तो स्वयं सब बातोंके विज्ञ हैं और सनातनसे चले आये धर्मको जानते हैं। हे जलेश्वर ! हे परमेश्वर ! अभी आप महीने भरके लिये मुझे क्षमा करिए ॥ १० ॥ व्यासजी बोले—हे राजन् ! जब राजा हरिश्चन्द्रने यह कहा तो वरुणदेव बोले—हे महाराज ! आपका कल्याण हो। अब मैं जाता हूँ और आप अपने पुत्र-जन्मोत्सवका शेष कर्म पूर्ण करें ॥ ११ ॥ हे राजाधिराज ! एक महीनेके बाद मैं फिर आऊँगा। तब आप

इस बालकका जातकर्म-नामकरण आदि संस्कार करनेके बाद मेरा यज्ञ अवश्य कर दीजिएगा ॥ १२ ॥ जलाधिपति वरुणदेव ऐसी मधुर वाणी कहकर जब चले गये तो महाराज हरिश्चन्द्र बड़े प्रसन्न हुए ॥ १३ ॥ उन्होंने वेदज्ञ ब्राह्मणोंको तिलपर्वत तथा करोड़ों ऐसी गायें दान करके दीं, जिनके थन कलश जैसे बड़े थे और जो सोनेके आभूषणोंसे आभूषित थीं ॥ १४ ॥ अपने पुत्रका मुंह देखकर राजा हरिश्चन्द्रको महान् आनन्द प्राप्त हुआ और उन्होंने विधिवत् उस बालकका 'रोहित' नाम रखा ॥ १५ ॥ एक महीनेका समय पूरा होनेपर फिर ब्राह्मणका रूप धारण करके वरुणदेव राजमहलमें आये और बार-बार कहने लगे कि अब वह यज्ञ कीजिये ॥ १६ ॥ उन्हें देखकर राजा हरिश्चन्द्र शोकके समुद्रमें डूब गये। फिर भी उन्हें प्रणाम तथा अतिथिसत्कार करनेके बाद दोनों हाथ जोड़कर बोले— ॥ १७ ॥ हे देव ! मैं धन्य हूँ। आज आपने यहाँ पधारकर मेरा समूचा महल पवित्र कर दिया। हे जलाधिदेव ! आपकी अभिलाषाके अनुसार मैं विधिवत् यज्ञ करूँगा ॥ १८ ॥ लेकिन वेदवादी ब्राह्मणोंका कथन है कि यज्ञमें दन्तविहीन पशु श्रेष्ठ नहीं होता। अतः जब पुत्रके दाँत निकल आयेंगे, तब मैं आपका वह महायज्ञ करूँगा ॥ १९ ॥ व्यासजी

सत्तम ॥ १२ ॥ इत्युक्त्वा श्लक्ष्णया वाचा राजानं यादसां पतिः ॥ हरिश्चन्द्रो मुदं प्राप गते पाशिनि पार्थिवः ॥ १३ ॥ कोटिशः प्रददौ गास्ता घटोध्नीर्हेमपूरिताः ॥ विप्रेभ्यो वेदविद्भ्यश्च तथैव तिलपर्वतान् ॥ १४ ॥ राजा पुत्रमुखं दृष्ट्वा सुखमाप महत्तरम् ॥ नामास्य रोहितश्चेति चकार विधिपूर्वकम् ॥ १५ ॥ पूर्णे मासे ततः पाशी विप्रवेषेण भूपतेः ॥ आजगाम गृहे सद्यो यजस्वेति ब्रुवन्मुहुः ॥ १६ ॥ वीक्ष्य तं नृपतिर्देवं निमग्नः शोकसागरे ॥ प्रणिपत्य कृतातिथ्यं तमुवाच कृताञ्जलिः ॥ १७ ॥ दिष्ट्या देव त्वमायातो गृहं मे पावितं प्रभो ॥ मखं करोमि वारीश विधिवद्वांछितं तव ॥ १८ ॥ अदन्तो न पशुः श्लाघ्य इत्याहुर्वेदवादिनः ॥ तस्माद्दंतोद्भवे तेऽहं करिष्यामि महामखम् ॥ १९ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्तस्तेन वरुणस्तथेत्युक्त्वा ययावथ ॥ हरिश्चन्द्रो मुदं प्राप्य विजहार गृहाश्रमे ॥ २० ॥ पुनर्दन्तोद्भवं ज्ञात्वा प्रचेता द्विजरूपवान् ॥ आजगाम गृहे तस्य कुरु कार्यमिति ब्रुवन् ॥ २१ ॥ भूपालोऽपि जलाधीशं वीक्ष्य प्राप्तं द्विजाकृतिम् ॥ प्रणम्यासनसम्मानैः पूजयामास सादरम् ॥ २२ ॥ स्तुत्वा प्रोवाच वचनं विनयानतकंधरः ॥ करोमि विधिवत्कामं मखं प्रबलदक्षिणम् ॥ २३ ॥ बालोऽप्यकृतचौलोऽयं गर्भकेशो न संमतः ॥ यज्ञार्थे पशुकरणे मया वृद्धमुखाच्छ्रुतम् ॥ २४ ॥ तावत्क्षमस्व वारीश विधिं जानासि शाश्वतम् ॥ कर्तव्यः सर्वथा यज्ञो मुंडनांते शिशोः किल ॥ २५ ॥ तस्येति

बोले—हे राजन् ! जब राजा हरिश्चन्द्रने ऐसा कहा तो वरुणजी बोले—अच्छी बात है, मैं उसी समय आऊँगा। यह कहकर वे लौट गये। तब राजा हरिश्चन्द्र आनन्दित होकर गृहस्थाश्रमके सुखका आनन्द लेने लगे ॥ २० ॥ उसके बाद जब वरुणको पता चला कि राजकुमारके दाँत निकल आये हैं, तब वे फिर ब्राह्मणका स्वरूप धारण करके राजमहलमें पहुँचे और कहने लगे कि अब मेरा यज्ञ करिए ॥ २१ ॥ ब्राह्मणके वेशमें जलाधिनाथ वरुणदेवको आया देखकर राजाने प्रणाम किया और आसन तथा अर्घ्य-पाद्य आदि अर्पण करके उनकी पूजा की ॥ २२ ॥ फिर स्तुति करके अत्यन्त विनीति भावसे माथा नवाकर बोले—मैं आपका वह विपुल दक्षिणावाला यज्ञ विधिवत् करूँगा ॥ २३ ॥ किन्तु अभी इस बालकका 'चूड़ाकर्म' संस्कार नहीं हुआ है। मैंने बड़े-बूढ़ोंके मुखसे सुना है कि यज्ञके लिये पशु बनानेमें गर्भकालीन केशधारी बालक अग्राह्य होते हैं ॥ २४ ॥ अतः हे जलेश्वर ! आप सनातनसे चली आयी हुई विधिको तो जानते ही नहीं हैं।

सो चूडाकरण तककी अवधिके लिये क्षमा करिए। इस बालकका मुण्डनसंस्कार कर लेनेके बाद मैं अवश्य आपका यज्ञ करूँगा ॥ २५ ॥ राजाकी बात सुनकर वरुणदेवने कहा—हे राजन्! आप कोई न कोई बहाना करके मुझे बार-बार धोखा देते आ रहे हैं ॥२६॥ हे राजन्! इस समय आपके पास यज्ञकी सारी सामग्री एकत्रित है, लेकिन पुत्रके ममतारूपी बन्धनमें बंधे रहनेके कारण आप अब फिर मुझे धोखा दे रहे हैं ॥२७॥ अस्तु, मुण्डनसंस्कार हो जानेके बाद भी आप यदि मेरा यज्ञ नहीं करेंगे तो मैं कुपित होकर आपको भीषण शाप दे दूँगा ॥ २८ ॥ हे मानद! हे राजेन्द्र! इस समय तो मैं आपकी बात मानकर चला जा रहा हूँ। लेकिन हे इक्ष्वाकुवंशज! आप अपनी बातको असत्य न करिएगा ॥ २९ ॥ ऐसा कहकर वरुणदेव तुरन्त राजमहलसे चले गये। तब राजा भी अतीव प्रमुदित होकर अपने राजभवनमें आनन्द करने लगे ॥ ३० ॥ जब चूडाकरणसंस्कारसम्बन्धी महान् उत्सव मनाया जा रहा था, उसी समय वरुणदेव फिर बड़े वेगसे राजाके पास आये ॥३१॥ महारानी शैव्या अपनी गोदमें रोहितको लेकर राजा हरिश्चन्द्रकी बगलमें बैठी थीं और ज्योंही मुण्डन होने लगा, त्योंही वरुणदेव पहुँच

वचनं श्रुत्वा प्रचेताः प्राह तं पुनः ॥ प्रतारयसि मां राजन्पुनः पुनरिदं ब्रुवन् ॥ २६ ॥ अपि ते सर्वसामग्री वर्तते नृपतेऽधुना ॥ पुत्रस्नेहनिबद्धस्त्वं वंचयस्येव सांप्रतम् ॥ २७ ॥ क्षौरकर्मविधिं कृत्वा न कर्ताऽसि मखं यदि ॥ तदाऽहं दारुणं शापं दास्ये कोपसमन्वितः ॥ २८ ॥ अद्य गच्छामि राजेंद्र वचनात्तव मानद ॥ न मृषा वचनं कार्यं त्वयेक्ष्वाकुकुलोद्भव ॥ २९ ॥ इत्याभाष्य ययावाशु प्रचेता नृपतेर्गृहात् ॥ राजा परमसंतुष्टो ननंद भवने तदा ॥ ३० ॥ चूडाकरणकाले तु प्रवृत्ते परमोत्सवे ॥ संप्राप्तस्तरसा पाशी भवनं नृपतेः पुनः ॥ ३१ ॥ यदांके सुतमादाय राज्ञी नृपतिसन्निधौ ॥ उपविष्टा क्रियाकाले तदैव वरुणोऽभ्यगात् ॥ ३२ ॥ कुरु कर्मेति विस्पष्टं वचनं कथयन्नृपम् ॥ विप्ररूपधरः श्रीमान्प्रत्यक्ष इव पावकः ॥ ३३ ॥ नृपतिस्तं समालोक्य बभूवातीव विह्वलः ॥ नमश्चकार तं भीत्या कृतांजलिपुटः पुरः ॥ ३४ ॥ विधिवत्पूजयित्वा तं राजोवाच विनीतवान् ॥ स्वामिन्कार्यं करोम्यद्य मखस्य विधिपूर्वकम् ॥ ३५ ॥ वक्तव्यमस्ति तत्रापि शृणुष्वैकमना विभो ॥ युक्तं चेन्मन्यसे स्वामिंस्तद्ब्रवीमि तवाग्रतः ॥ ३६ ॥ ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यस्त्रयो वर्णा द्विजातयः ॥ संस्कृताश्चान्यथा शूद्रा एवं वेदविदो विदुः ॥ ३७ ॥ तस्मादयं सुतो मेऽद्य शुद्रवद्वर्तते शिशुः ॥ उपनीतः क्रियार्हः स्यादिति वेदेषु निर्णयः ॥ ३८ ॥ राज्ञामेकादशे वर्षे सदोपनयनं स्मृतम् ॥ अष्टमे ब्राह्मणानां च वैश्यानां

गये ॥३२॥ वे एक श्रीमान् ब्राह्मणका वेश धारण किये थे और साक्षात् अग्निदेवके समान तेजस्वी थे। वहाँ पहुँचते ही वरुणने राजासे साफ शब्दोंमें कहा कि अब यज्ञ आरम्भ कर दीजिए ॥३३॥ उन्हें देखते ही राजा हरिश्चन्द्र सकपका गये। डरते हुए उन्होंने नमस्कार किया और हाथ जोड़कर उनके आगे खड़े हो गये ॥३४॥ तदनन्तर उन्होंने वरुणकी विधिपूर्वक पूजा की और बड़ी दीनताके साथ कहने लगे—हे प्रभु! अब मैं विधिके साथ आपका यज्ञ करूँगा ॥३५॥ लेकिन इसके सम्बन्धमें मुझे आपसे कुछ कहना है। हे सर्वव्यापी देव! आप एकाग्रचित्तसे सुनें। मैं आपसे यह प्रार्थना कर रहा हूँ, यदि आप उसे उचित समझें तो स्वीकार कर लें ॥ ३६ ॥ बात यह है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—ये तीन वर्ण द्विज कहलाते हैं। इनका जबतक उपनयनसंस्कार नहीं होता, तबतक ये शूद्र रहते हैं। यह वैदिक विद्वानोंका कथन है ॥ ३७ ॥ इसलिए अभी तो मेरा यह पुत्र शूद्रके समान है। उपनयन संस्कार हो जानेके

बाद ही यह यज्ञ-यागादि कर्मोंका अधिकारी होगा। यही बात वेदोंमें भी कही गयी है कि ब्राह्मणोंका आठवें वर्ष, क्षत्रियोंका ग्यारहवें वर्ष और वैश्योंका बारहवें वर्षमें उपनयन हो जाना चाहिये ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ हे देवराज ! मैं उस उपनीत पशुसे आपका श्रेष्ठ यज्ञ करूँगा ॥ ४० ॥ हे धर्मके मर्मज्ञ ! हे विभो ! आप लोकपाल हैं। यदि आप मेरी प्रार्थनाको धर्मशास्त्रसम्मत समझें तो अपने लोकको लौट जायँ ॥४१॥ व्यासजी बोले—हरिश्चन्द्रकी बात सुनकर जलाधिदेव वरुणको दया आ गयी और वे स्वीकृति देकर चले गये। उनके चले जानेपर राजाका चेहरा प्रसन्नतासे खिल उठा ॥४२॥ वरुणदेवके चले जानेके बाद राजाके हर्षकी सीमा नहीं रही। राजकुमारकी प्राणरक्षा हो जानेसे उन्हें बड़ा आनन्द मिला और अलौकिक प्रसन्नता प्राप्त हुई ॥ ४३ ॥ हे राजा जनमेजय ! महाराज हरिश्चन्द्र अपना राजकाज देखने लगे। इस प्रकार समय कटते-कटते राजकुमारका दस वर्ष पूरा हो गया ॥४४॥ तब राजा हरिश्चन्द्रने वसिष्ठ आदि ब्राह्मणों और राजमन्त्रियोंकी सम्मतिके अनुसार अपने विभवके अनुरूप राजकुमारके उपनयनसंस्कारसम्बन्धी सामग्री जुटायी ॥४५॥ पुत्रका ग्यारहवाँ वर्ष लगते ही उन्होंने विधिपूर्वक उसके

द्वादशे किल ॥ ३९ ॥ दयसे यदि देवेश दीनं मां सेवकं तव ॥ तदोपनीय कर्ताऽस्मि पशुना यज्ञमुत्तमम् ॥४०॥ लोकपालोऽसि धर्मज्ञ सर्वशास्त्र-विशारद ॥ मन्यसे मद्वचः सत्यं तद्गच्छ भवनं विभो ॥ ४१ ॥ व्यास उवाच ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा दयावान्यादसां पतिः ॥ ओमित्युक्त्वा ययावाशु प्रसन्नवदनो नृपः ॥ ४२ ॥ गतेऽथ वरुणे राजा बभूवातिमुदान्वितः ॥ सुखं प्राप्य सुतस्यैवं राजा मुदमवाप ह ॥ ४३ ॥ चकार राजकार्याणि हरिश्चन्द्रस्तदा नृपः ॥ कालेन व्रजता पुत्रो बभूव दशवार्षिकः ॥ ४४ ॥ तस्योपवीतसामग्रीं विभूतिसदृशीं नृपः ॥ चकार ब्राह्मणैः शिष्टैरन्वितः सचिवैस्तथा ॥ ४५ ॥ एकादशे सुतस्याब्दे व्रतबंधविधौ नृपः ॥ विदधे विधिवत्कार्यं चित्ते चिन्तातुरः पुनः ॥४६॥ वर्तमाने तथा कार्ये उपनीते कुमारके ॥ आजगामाथ वरुणो विप्रवेषधरस्तदा ॥ ४७ ॥ तं वीक्ष्य नृपतिस्तूर्णं प्रणम्य पुरतः स्थितः ॥ कृतांजलिपुटः प्रीतः प्रत्युवाच सुरोत्तमम् ॥ ४८ ॥ देव दत्तोपवीतोऽयं पशुयोग्योऽस्ति मे सुतः ॥ प्रसादात्तव मे शोको गतो बंध्यापवादजः ॥ ४९ ॥ कर्तुमिच्छाम्यहं यज्ञं प्रभूतवरदक्षिणम् ॥ समये शृणु धर्मज्ञ सत्यमद्य ब्रवीम्यहम् ॥५०॥ समावर्तनकर्मांते करिष्यामि तवेप्सितम् ॥ ममोपरि दयां कृत्वा तावत्त्वं क्षंतुमर्हसि ॥ ५१ ॥ वरुण उवाच ॥ प्रतारयसि मां राजन्पुत्रप्रेमाकुलो भृशम् ॥ मुहुर्मुहुर्मतिं कृत्वा युक्तियुक्तां महामते ॥ ५२ ॥ गच्छाम्यद्य महाराज वचसा

उपनयनसंस्कारका श्रीगणेश किया, किन्तु उनका मन उद्विग्न था ॥४६॥ ज्यों ही राजकुमारका यज्ञोपवीत संस्कार होने लगा, त्यों ही वरुणदेव ब्राह्मणका रूप धारण करके वहाँ पहुँच गये ॥ ४७ ॥ राजाने उनको देखा, तैसे ही सिर नवाकर सामने खड़े हो गये और हाथ जोड़कर बड़े प्रेमपूर्वक वरुणदेवसे बोले—॥ ४८ ॥ हे देव ! यज्ञोपवीत हो जानेसे मेरा पुत्र पशुके योग्य हो गया है और आपकी कृपासे मेरा निःसन्तान होनेका शोक भी जाता रहा ॥४९॥ अब मैं चाहता हूँ कि पुष्कल दक्षिणावाला आपका उत्कृष्ट यज्ञ किसी उपयुक्त अवसरपर कर डालूँ। हे धर्मके ज्ञाता ! आज मैं आपसे सच्ची बात कह रहा हूँ, उसे सुन लीजिये ॥५०॥ समावर्तन संस्कारके बाद मैं आपका अभिलषित यज्ञ कर डालूँगा। तब तकके लिए आप मेरे ऊपर दया करके मुझे क्षमा करें ॥ ५१ ॥ वरुण बोले—हे महामति राजन् ! आप पुत्रप्रेमवश हर बार एक न एक तर्कसंगत बात कहकर बराबर मुझे धोखा देते चले आ रहे हैं ॥ ५२ ॥ अस्तु,

हे महाराज ! आज तो मैं आपके कथनानुसार चला जा रहा हूँ । लेकिन समावर्तन कर्मके बाद मैं फिर आऊँगा ॥ ५३ ॥ हे राजा जनमेजय ! ऐसा कहकर जब वरुणदेव चले गये तो राजा हरिश्चन्द्र हर्षित होकर आगेका काम करने लगे ॥५४॥ राजकुमार रोहित बड़े प्रतिभाशाली थे, इस लिए बार-बार वरुणदेवको आते देख और नरमेध यज्ञका प्रस्ताव जानकर वे चिन्तातुर हो उठे ॥५५॥ उन्होंने लोगोंसे पूछा कि पिताजीका शोक उत्तरोत्तर क्यों बढ़ता जा रहा है ? हे आयुष्मान् जनमेजय ! जब लोगोंने बतलाया कि आपको मारकर वरुणका यज्ञ होगा, तब रोहिताश्वने भाग जानेका निश्चय कर लिया ॥५६॥ मन्त्रिपुत्रोंसे सलाह करके उन्होंने यह दृढ़ सङ्कल्प किया और एक दिन अयोध्या नगरी छोड़कर वे वनको चल पड़े ॥ ५७ ॥ इस प्रकार पुत्रके भाग जानेपर महाराज हरिश्चन्द्र बड़े दुःखित हुए और राजकुमारको ढूँढ़ लानेके लिए अपने दूतोंको भेजा ॥५८॥ इस तरह कुछ समय बीता । तब एक दिन वरुण उनके घर पहुँचे और शोकसन्तप्त राजासे कहने लगे कि अब वह यज्ञ कर डालिए ॥५९॥ राजा हरिश्चन्द्रने सिर नवाकर कहा—हे देवदेव ! अब मैं क्या करूँ ? अपने प्राणके लोभसे व्याकुल होकर कुछ दिन

तव नोदितः ॥ आगमिष्यामि समये समावर्तनकर्मणि ॥ ५३ ॥ इत्युक्त्वा प्रययौ पाशी तमापृच्छ्य विशांपते ॥ राजा प्रमुदितः कार्यं चकार च यथोत्तरम् ॥५४॥ आगतं वरुणं दृष्ट्वा कुमारोऽतिविचक्षणः ॥ यज्ञस्य समयं ज्ञात्वा तदा चिंतातुरोऽभवत् ॥ ५५ ॥ शोकस्य कारणं राज्ञः पर्यपृच्छदितस्ततः ॥ ज्ञात्वाऽऽत्मवधमायुष्मन्गमनाय मतिं दधौ ॥ ५६ ॥ निश्चयं परमं कृत्वा संमंत्र्य सचिवात्मजैः ॥ प्रययौ नगरात्तस्मान्निर्गत्य वनमप्यसौ ॥ ५७ ॥ गते पुत्रे नृपः कामं दुःखितोऽभूद्भृशं तदा ॥ प्रेरयामास दूतान्स्वांस्तस्यान्वेषणकाम्यया ॥ ५८ ॥ एवं गतेऽथ कालेऽसौ वरुणस्तद्गृहं गतः ॥ राजानं शोकसंतप्तं कुरु यज्ञमिति ब्रुवन् ॥ ५९ ॥ राजा प्रणम्य तं प्राह देवदेव करोमि किम् ॥ न जाने क्वापि पुत्रो मे गतस्त्वद्य भयाकुलः ॥६०॥ सर्वत्र गिरिदुर्गेषु मुनीनामाश्रमेषु च ॥ अन्वेषितो मे दूतैस्तु न प्राप्तो यादसांपते ॥ ६१ ॥ आज्ञापय महाराज किं करोमि गते सुते ॥ न मे दोषोऽत्र सर्वज्ञ भाग्यदोषस्तु सर्वथा ॥ ६२ ॥ व्यास उवाच ॥ इति भूपवचः श्रुत्वा प्रचेताः कुपितो भृशम् ॥ शशाप च नृपं क्रोधाद्वंचितस्तु पुनः पुनः ॥ ६३ ॥ नृपतेऽहं त्वया यस्माद्वचसा च प्रवंचितः ॥ तस्माज्जलोदरो व्याधिस्त्वां तुदत्वतिदारुणः ॥ ६४ ॥ व्यास उवाच ॥ इति शप्तो महीपालः कुपितेन प्रचेतसा ॥ पीडितोऽभूत्तदा राजा व्याधिना दुःखदेन तु ॥ ६५ ॥ एवं शप्त्वा नृपं पाशी

पहले राजपुत्र न जाने कहाँ भाग गया है ॥ ६० ॥ हे जलजन्तुओंके अधिपति ! मैंने पहाड़की कन्दराओं और मुनियोंके आश्रमोंमें सर्वत्र अपने गुप्तचरोंको भेजकर ढुँढ़वाया, लेकिन कहीं भी उसका पता नहीं लगा ॥ ६१ ॥ हे महाराज ! अब आप ही बताइए कि पुत्रके भाग जानेपर मैं क्या करूँ ? हे सर्वज्ञ ! इसमें मेरा कुछ भी दोष नहीं है—यह एकमात्र मेरे दुर्भाग्यका दोष है ॥ ६२ ॥ व्यासजी बोले—राजाकी यह बात सुनकर वरुणदेव क्रोधसे तमतमा उठे । राजाके बारम्बार धोखा देनेसे उनकी क्रोधाग्नि भड़क उठी और उन्होंने राजाको शाप देते हुए कहा—॥ ६३ ॥ हे राजन् ! तरह-तरहकी बातोंसे आप मुझे बराबर धोखा देते आये हैं । इसलिये अतीव भयंकर जलोदर रोगसे आप क्लेश पायेंगे ॥ ६४ ॥ व्यासजी बोले—हे राजन् ! वरुणके कुपित होकर इस प्रकार शाप देनेसे महाराज हरिश्चन्द्र उस महान् कष्टदायक जलोदर रोगसे ग्रस्त हो गये ॥६५॥ इधर पाशधारी वरुणदेव राजाको इस प्रकार शाप देकर

अपने लोक लौट गये। उधर राजा उस भीषण रोगसे आक्रान्त होकर बड़े कष्टमें पड़ गये ॥ ६६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषाटीकायां पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

(हरिश्चन्द्रोपाख्यान) व्यासजी बोले—हे राजन्! वरुणदेवके चले जानेपर महाराज हरिश्चन्द्र जलोदर रोगसे अत्यन्त पीड़ित हुए। ज्यों-ज्यों दिन बीतता गया, त्यों-त्यों उनका कष्ट बढ़ता रहा। उनका क्लेश इतना बढ़ा कि वे ऊब उठे ॥ १ ॥ हे राजा जनमेजय! उधर जंगलमें जब राजकुमार रोहिताश्वको अपने पिताके जलोदर रोगसे उत्पन्न कष्टकी बातका पता लगा तो पितृप्रेमके कारण उन्होंने अयोध्या लौट जानेका विचार किया ॥ २ ॥ उधर जब देवराज इन्द्रको मालूम हुआ कि राजकुमारने एक वर्ष बीतनेपर अपने पिताका दर्शन करनेके लिए अयोध्या जानेका निश्चय किया है तो वे रोहितके पास पहुँचे ॥ ३ ॥ इन्द्रने तुरन्त एक ब्राह्मणका रूप धारण करके युक्तिपूर्वक राजकुमार रोहितको जानेसे रोका, जो अपने पिताके दर्शनके लिए बहुत व्यग्र था ॥ ४ ॥ इन्द्र बोले—हे राजपुत्र! आप राजनीतिकी पेंचीदी बातोंको नहीं जानते। इसीलिए अज्ञानतावश आपने व्यर्थ अयोध्या जानेका विचार किया है ॥ ५ ॥ हे

जगाम निजमास्पदम् ॥ राजा प्राप्य महाव्याधिं बभूवातीव दुःखितः ॥६६॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

॥ व्यास उवाच ॥ गतेऽथ वरुणे राजा रोगेणातीव पीडितः ॥ दुःखाद्दुःखं परं प्राप्य व्यथितोऽभूद्भृशं तदा ॥ १ ॥ कुमारोऽसौ वने श्रुत्वा पितरं रोगपीडितम् ॥ गमनाय मतिं राजंश्चकार स्नेहयंत्रितः ॥ २ ॥ संवत्सरे व्यतीते तु पितरं द्रष्टुमादरात् ॥ गंतुकामं तु तं ज्ञात्वा शक्रस्तत्राजगाम ह ॥ ३ ॥ वासवस्तु तदा रूपं कृत्वा विप्रस्य सत्वरः ॥ वारयामास युक्त्या वै कुमारं गंतुमुद्यतम् ॥ ४ ॥ इन्द्र उवाच ॥ राजपुत्र न जानासि राजनीतिं सुदुर्लभाम् ॥ अतः करोषि मूढस्त्वं गमनाय मतिं वृथा ॥ ५ ॥ पिता तव महाभाग ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ॥ कारयिष्यति होमं ते ज्वलितेऽथ विभावसौ ॥ ६ ॥ आत्मा हि वल्लभस्तात सर्वेषां प्राणिनां खलु ॥ तदर्थे वल्लभाः संति पुत्रदारधनादयः ॥७॥ आत्मनो देहरक्षार्थं हत्वा त्वां वल्लभं सुतम् ॥ हवनं कारयित्वाऽसौ रोगमुक्तो भविष्यति ॥ ८ ॥ तस्यात्त्वया न गंतव्यं राजपुत्र पितुर्गृहे ॥ मृते पितरि गंतव्यं राज्यार्थे सर्वथा पुनः ॥ ९ ॥ एवं निषेधितस्तत्र वासवेन नृपात्मजः ॥ वनमध्ये स्थितः कामं पुनः संवत्सरं नृप ॥ १० ॥ अत्यंतं दुःखितं श्रुत्वा हरिश्चंद्रं तदाऽऽत्मजः ॥ गमनाय मतिं चक्रे मरणे कृतनिश्चयः ॥ ११ ॥ तुराषाड् द्विजरूपेण तत्रागत्य च रोहितम् ॥ निवारयामास सुतं युक्तिवाक्यैः पुनः

महाभाग! जब आप वहाँ पहुँच जायँगे तो आपके पिता वेदज्ञ ब्राह्मणों द्वारा नरमेध यज्ञ आरम्भ करा देंगे। अग्नि प्रज्वलित हो जानेपर आपको बलिपशु बनाकर वे आपके मांससे आहुति देंगे ॥ ६ ॥ हे वत्स! सभी प्राणियोंको अपना जीवन बहुत प्रिय होता है। जीवनकी रक्षाके लिए ही पुत्र, स्त्री और धन आदि प्रिय लगते हैं ॥ ७ ॥ अपनी देह बचानेके लिए आप जैसे प्रिय पुत्रको भी मरवाकर वे होम करायेंगे। ऐसा करके वे जलोदर रोगसे मुक्त हो जायँगे ॥ ८ ॥ अतएव हे राजपुत्र! अभी आपका पिताके पास जाना उचित नहीं है। हाँ, यदि आपके पिता मर जायँ तो राज्य करनेके लिए अवश्य जाइएगा ॥ ९ ॥ हे राजा जनमेजय! इस प्रकार जब इन्द्रने राजकुमार रोहितको अयोध्या जानेसे रोका तो वे फिर एक साल तक वनमें रुके रह गये ॥१ ॥ राजपुत्रको जब पता चला कि उनके पिता महाराज हरिश्चन्द्र अब बहुत कष्टमें हैं, तब रोहितने निश्चय किया कि चाहे पिताजी हमारा बलिदान ही क्यों न कर दें, फिर भी मैं

उनका दर्शन करनेके लिए अवश्य जाऊँगा ॥ ११ ॥ तब फिर इन्द्र ब्राह्मणका रूप धारण करके वहाँ पहुँचे और राजकुमार रोहितको तरह-तरहकी युक्तिसंगत बातोंसे समझाकर रोक दिया। इसी प्रकार जब-जब उसके मनमें घर जानेका संकल्प उठता, तब-तब इन्द्र आकर उसे रोक देते थे ॥ १२ ॥ इधर राजा हरिश्चन्द्र जब कष्टसे बहुत अधीर हो गये, तब उन्होंने गुरु वसिष्ठजीसे कहा कि इस रोगसे छूटनेके लिए कोई निश्चित उपाय बतलाइए ॥ १३ ॥ ब्रह्माजीके पुत्र वसिष्ठजीने कहा—हे राजन्! अपने द्रव्यसे एक बालक खरीद लीजिए और उस 'क्रीतक' पुत्रसे आप वह नरमेध यज्ञ कर डालिए। ऐसा करनेसे आप शापमुक्त हो जायँगे ॥१४॥ हे नरशार्दूल! वेदके पराङ्गत ब्राह्मणोंने औरस-क्षेत्रज आदि दस प्रकारके पुत्र बतलाये हैं। अतएव आप द्रव्यसे एक बालक खरीदकर उसे अपना 'क्रीतक' पुत्र बना लीजिए ॥ १५ ॥ इससे वरुणदेव हर्षित होकर आपको रोगमुक्त कर देंगे। आपके राज्यका ही कोई ब्राह्मण धनके लोभसे अपना पुत्र बेंच देगा ॥ १६ ॥ महात्मा वसिष्ठकी बात सुनकर राजा हरिश्चन्द्र बहुत प्रसन्न हुए और अपने प्रधान मन्त्रीको वैसा पुत्र ढूँढनेके लिए भेजा ॥ १७ ॥ उसी राज्यमें 'अजीगर्त' नामके

पुनः ॥ १२ ॥ हरिश्चन्द्रोऽतिदुःखार्तो वसिष्ठं स्वपुरोहितम् ॥ प्रपच्छ रोगनाशाय तत्रोपायं सुनिश्चितम् ॥ १३ ॥ तमाह ब्रह्मणः पुत्रो यज्ञं कुरु नृपोत्तम ॥ क्रयक्रीतेन पुत्रेण शापमोक्षो भविष्यति ॥ १४ ॥ पुत्रा दशविधाः प्रोक्ता ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ॥ द्रव्येणानीय तस्मात्त्वं पुत्रं कुरु नृपोत्तम ॥ १५ ॥ वरुणोऽपि प्रसन्नः सन्सुखकारी भविष्यति ॥ लोभात्कोऽपि द्विजः पुत्रं प्रदास्यति स्वराष्ट्रजः ॥१६॥ एवं प्रमोदितो राजा वसिष्ठेन महात्मना ॥ प्रधानं प्रेरयामास तदन्वेषणकाम्यया ॥ १७ ॥ अजीगर्तो द्विजः कश्चिद्विषये तस्य भूपतेः ॥ तस्यासंश्च त्रयः पुत्रा निर्धनस्य विशेषतः ॥ १८ ॥ प्रधानेनाप्यसौ पृष्टः पुत्रार्थं दुर्बलो द्विजः ॥ गवां शतं ददामीति देहि पुत्रं मखाय वै ॥१९॥ शुनःपुच्छः शुनःशेपः शुनोलांगूल इत्यमी ॥ तेषामेकतमं देहि ददामि तु गवां शतम् ॥ २० ॥ अजीगर्तस्तु तच्छ्रुत्वा क्षुधया पीडितो भृशम् ॥ पुत्रं च कतमं तेभ्यो विक्रेतुं वै मनो दधे ॥ २१ ॥ कार्याधिकारिणं ज्येष्ठं मत्वा नासावदादमुम् ॥ कनिष्ठं नाप्यदान्माता ममैष इतिवादिनी ॥ २२ ॥ मध्यमं च शुनःशेपं ददौ गवां शतेन च ॥ आनिनाय पशुं चक्रे नरमेधे नराधिपः ॥ २३ ॥ रुदन्तं दुःखितं दीनं वेपमानं भृशातुरम् ॥ यूपे बद्धं निरीक्ष्यामुं चुक्रुशुर्मुनयस्तदा

एक निर्धन ब्राह्मण रहते थे। उनके तीन पुत्र थे ॥ १८ ॥ पुत्र खरीदनेको गये हुए प्रधानमन्त्रीने उस निर्धन ब्राह्मणके पास जाकर कहा कि मैं आपको एक सौ गाय दूँगा। आप अपना कोई पुत्र यज्ञके निमित्त मुझे दे दीजिए ॥ १९ ॥ 'शुनःपुच्छ', 'शुनःशेप' और 'शुनोलांगूल' नामके जो तीन पुत्र हैं, उनमेंसे कोई एक पुत्र मुझे दीजिये। उसके बदले मैं आपको एक सौ गायें दूँगा ॥ २० ॥ निर्धन अजीगर्त भूखसे व्याकुल थे। अतएव यह बात सुनते ही उन तीनों पुत्रोंमेंसे किसी एकको बेच डालनेकी बात सोचने लगे ॥ २१ ॥ ज्येष्ठ पुत्र पिण्डा-पानी देनेका अधिकारी होता है, यह सोचकर उसे नहीं बेचा। छोटे पुत्रको ममतामयी माताने यह कहकर नहीं दिया कि यह मेरा पुत्र है ॥ २२ ॥ अतः मँझले पुत्र 'शुनःशेप' को अजीगर्तने एक सौ गाय लेकर बेंच दिया। तब मन्त्री उसे राजाके पास ले आये और उन्होंने उसे 'नरमेध' यज्ञका पशु बनाया ॥ २३ ॥ जब शुनःशेप यज्ञीय स्तम्भमें वधके निमित्त बाँधा गया, उस

समय वह बुरी तरह रोने लगा। उस दीन, दुखी, आतुर तथा भयसे काँपते हुए बालकको देखकर ऋषिलोग चिल्ला उठे ॥ २४ ॥ तभी राजा हरिश्चन्द्रने नरमेध यज्ञमें वध करनेके लिए शुनःशेपको पशुरूपसे शामिता अर्थात् वधकर्ताको दे दिया। किन्तु उसने उस बालकपर हथियार नहीं चलाया ॥ २५ ॥ शमिता बोला—इस दीन, दुखी और अत्यन्त करुण स्वरसे विलाप करनेवाले बालकको लोभके वशीभूत होकर मैं नहीं मारूँगा ॥२६॥ यह कहकर शमिता (वधकर्ता) उस घृणित कार्यसे अलग हो गया। तब राजाने सभासदोंसे पूछा—हे ब्राह्मणो ! अब क्या किया जाय ? ॥ २७ ॥ शुनःशेप जब बड़े विचित्र ढंगसे चीखने लगा, तो अयोध्याकी जनता भी इस प्रसङ्गको लेकर हाहाकार करने लगी ॥ २८ ॥ तब बालकके पिता विप्र अजीगर्तने यज्ञस्थलमें खड़े होकर राजा हरिश्चन्द्रसे कहा—हे राजन् ! आप घबड़ायँ नहीं, मैं स्वयं आपका काम पूरा करूँगा ॥२९॥ मुझे धन चाहिए। अतएव आप जितना धन शमिताको देते, उससे दूना धन यदि मुझे दीजिए तो मैं अभी इस पशुका वध कर दूँगा, जिससे आपका यज्ञ पूरा हो जायगा ॥ ३० ॥ क्योंकि दुखिया और धनार्थी मनुष्यको कोई भी भला या बुरा काम करनेमें

॥ २४ ॥ शामित्राय पशुं चक्रे नरमेधे नराधिपः ॥ शमिता नाददे शस्त्रं तमालंभयितुं शिशुम् ॥ २५ ॥ नाहं द्विजसुतं दीनं रुदंतं करुणं भृशम् ॥ हनिष्यामि स्वलोभार्थमित्युवाचाप्यसौ तदा ॥२६॥ इत्युक्त्वा विररामासौ कर्मणो दुष्करादथ ॥ राजा सभासदः प्राह किं कर्तव्यमिति द्विजाः ॥२७॥ जातः किलकिलाशब्दो जनानां क्रोशतां तदा ॥ क्रंदमाने शुनःशेपे सभायां भृशमद्भुतम् ॥ २८ ॥ अजीगर्तस्तदोत्थाय तमुवाच नृपोत्तमम् ॥ राजन्कार्यं करिष्यामि तवाहं सुस्थिरो भव ॥२९॥ वेतनं द्विगुणं देहि हनिष्यामि पशुं किल ॥ कर्तव्यं मखकार्यं वै मया तेऽद्य धनार्थिना ॥३०॥ दुःखितस्य धनार्थस्य सदाऽसूया प्रसूयते ॥ व्यास उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य हरिश्चंद्रो मुदान्वितः ॥ ३१ ॥ तमुवाच ददाम्यद्य गवां शतमनुत्तमम् ॥ तदाकर्ण्य पिता तस्य पुत्रं हंतुं समुद्यतः ॥ ३२ ॥ लोभेनाकुलचित्तोऽसौ शामित्रे कृतनिश्चयः ॥ समुद्यतं च तं दृष्ट्वा जनाः सर्वे सभासदः ॥३३॥ चुक्रुशुर्भृशदुःखार्ता हाहेति जगदुर्वचः ॥ पिशाचोऽयं महापापी क्रूरकर्मा द्विजाकृतिः ॥ ३४ ॥ यत्स्वयं स्वसुतं हंतुमुद्यतः कुलपांसनः ॥ धिक्चांडाल किमेतत्ते पापकर्म चिकीर्षितम् ॥३५॥ हत्वा सुतं धनं प्राप्य किं सुखं ते भविष्यति ॥ आत्मा वै जायते पुत्र अंगाद्वै वेदभा-

हिचक नहीं होती। व्यासजी बोले—हे राजन् ! अजीगर्तकी यह बात सुनकर राजा हरिश्चन्द्र बहुत प्रसन्न हुए ॥३१॥ उन्होंने कहा—अभी एक सौ उत्तम गायें मैं आपको दूँगा। राजा हरिश्चन्द्रकी यह बात सुनकर अजीगर्त अपने पुत्र शुनःशेपका वध करनेको तैयार हो गये ॥ ३२ ॥ धनके लोभवश उनकी बुद्धि ठिकाने नहीं रही और उन्होंने शामिता (वधिक) बनना भी स्वीकार कर लिया। जब वे हथियार लेकर प्रहार करनेको उद्यत हुए, तब यज्ञस्थलमें उपस्थित सारी जनता मारे दुःखके हाय-हाय करती हुई कहने लगी कि ब्राह्मणके रूपमें यह पिशाच है, महापापी है और क्रूर कर्म करनेवाला कसाई है ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ यह ब्राह्मणकुलको कलंकित करता हुआ अपने बेटेकी हत्या करनेके लिए सन्नद्ध है। अरे चाण्डाल ! तुझे धिक्कार है। तू क्यों ऐसा पाप कर रहा है ? ॥ ३५ ॥ बेटेकी हत्या करके यदि अपार धनराशि भी मिलेगी तो उससे तुझे कौन-सा सुख मिलेगा ? वेदमें कहा गया है कि पुत्ररूपसे अपनी आत्मा

ही उत्पन्न होती है ॥ ३६ ॥ इसलिए अरे पापी ! तू किस कारण अपनी 'आत्मा'का वध करनेपर उतारू है ? यज्ञस्थलमें जब इस प्रकार कोलाहल मचा तो विश्वामित्रजीका हृदय दयासे भर आया और वे राजा हरिश्चन्द्रसे बोले। विश्वामित्रने कहा—हे राजन् ! शुनःशेप बहुत विकल होकर रो रहा है। अतएव इसे आप पाशमुक्त कर दें ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ऐसा करनेसे एक तो यज्ञ पूरा होगा और दूसरे आपका रोग भी अवश्य दूर हो जायगा। क्योंकि दयाके समान कोई दूसरा पुण्य नहीं है और हिंसासे बढ़कर कोई पाप नहीं है ॥ ३९ ॥ जिह्वा लोलुपोंके जिह्वास्वादके लिए यज्ञमें हिंसा करनेका विधिवाद बना, जिससे उनमें यज्ञ करनेकी प्रवृत्ति बढ़े। लेकिन जहाँतक हो सके, हिंसासे निवृत्ति रखना ही शास्त्रका आशय है। अपने शरीरकी रक्षाके लिए दूसरे जीवकी हत्या करना अनुचित है। हे महाराज ! जो मनुष्य अपना कल्याण चाहे, वह अपने जीवनकी रक्षाके लिए दूसरे जीवकी हिंसा न करे। लोग समस्त प्राणियोंके साथ दयाका बर्ताव करते हैं, जो कुछ मिल जाय उसीमें सन्तोष करते हैं और जो इन्द्रियोंको वशमें रखते हैं, उनके ऊपर भगवान् जगदीश्वर शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं। हे

षितम् ॥३६॥ तत्कथं पापबुद्धे त्वमात्मानं हंतुमिच्छसि ॥ एवं कोलाहले तत्र जाते कुशिकनंदनः ॥३७॥ समीपं नृपतेर्गत्वा तमुवाच दयापरः ॥ ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ राजन्नमुं शुनःशेपं रुदंतं भृशदुःखितम् ॥ ३८ ॥ क्रतुस्ते भविता पूर्णो रोगनाशश्च सर्वथा ॥ दयासमं नास्ति पुण्यं पापं हिंसासमं नहि ॥ ३९ ॥ रागिणां रोचनार्थाय नोदनेयं विचारय ॥ आत्मदेहस्य रक्षार्थं परदेहनिकृंतनम् ॥ ४० ॥ न कर्तव्यं महाराज सर्वतः शुभमिच्छता ॥ दयया सर्वभूतेषु संतुष्टो येन केन च ॥४१॥ सर्वेन्द्रियोपशांत्या च तुष्यत्याशु जगत्पतिः ॥ आत्मवत्सर्वभूतेषु चिंतनीयं नृपोत्तम ॥४२॥ जीवितव्यं प्रियं नूनं सर्वेषां सर्वदा किल ॥ त्वमिच्छसि सुखं कर्तुं देहं हत्वा त्वमुं द्विजम् ॥४३॥ कथं नेच्छेदसौ देहं रक्षितुं स्वसुखास्पदम् ॥ पूर्वजन्मकृतं वैरं नानेन सह ते नृप ॥४४॥ येनामुं हंतुकामस्त्वं द्विजपुत्रं निरागसम् ॥ यो यं हन्ति विना वैरं स्वकामः सततं पुनः ॥ ४५ ॥ हंतारं हंति तं प्राप्य जननं जननान्तरे ॥ जनकोऽस्य सुदुष्टात्मा येनासौ ते समर्पितः ॥४६॥ स्वात्मजो धनलोभेन पापाचारः सुदुर्मतिः ॥ एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोपि गयां व्रजेत् ॥४७॥ यजेत चाश्वमेधेन नीलं वा वृषमुत्सृजेत् ॥ देशमध्ये च यः कश्चित्पापकर्म समाचरेत् ॥४८॥ षष्ठांशस्तस्य पापस्य राजा भुंक्ते

नृपश्रेष्ठ ! समस्त प्राणियोंको आप अपने समान ही समझें ॥ ४०–४२ ॥ जैसे अपनेको अपनी देह प्यारी होती है, उसी तरह सभी जीवोंको अपने शरीरपर ममता होती है। अतएव सबको चाहिए कि लोकप्रिय बनकर अपना जीवन बिताये। आप इस ब्राह्मणकुमारकी हत्या करके रोग-मुक्त होकर अपने शरीरको बचाना चाहते हैं ॥ ४३ ॥ हे राजन् ! तब ब्राह्मण-तनय सुखके साधनस्वरूप अपना शरीर क्यों न बचाना चाहे ? हे महाराज ! लेकिन यदि यह ब्राह्मण कुमार मरा तो इस जन्ममें आपके इस अपकारको कभी नहीं सहन करेगा ॥४४॥ क्योंकि आप एक निरपराध ब्राह्मण-बालकको मार डालना चाहते हैं। जो व्यक्ति अपनी कामना-पूर्तिके लिए किसी ऐसे जीवका वध करता है, जिसके साथ उसका वैर-विरोध नहीं रहता तो दूसरी योनिमें जन्म लेकर वह जीव अपने हत्यारेको मारकर उससे पूर्वजन्मका बदला चुकाता है। इस बालकका पिता बड़ा ही निन्दनीय व्यक्ति है। इसीलिए उसने आपको इसे दे दिया ॥४५॥४६॥ अजीगर्त बड़ी ओछी प्रकृतिका और पापी मनुष्य है। तभी तो थोड़ेसे धनकी लालचमें अपने प्रिय पुत्रको उसने आपके हाथ बेंच डाला। कहाँ तो लोग चाहते हैं कि मेरे बहुतेरे

पुत्र पैदा हों, जिनमेंसे शायद कोई गया तीर्थ जाय ॥४७॥ कोई नील वृषभ (साँड़) छोड़े और कोई अश्वमेध यज्ञ करे। राज्यमें कोई व्यक्ति पाप करे तो उस पापकर्मका षष्ठांश राजाको भोगना पड़ता है, इसमें सन्देह नहीं है। अतएव प्रजाके पापकर्ममें लगनेपर राजाको चाहिए कि उसे वैसा करनेसे रोके ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ तब आप ही बताइए कि जब आपके राज्यमें रहनेवाला अजीगर्त अपने बेटेको बेचनेके लिए तैयार हुआ, तब आपने उसे रोका क्यों नहीं ? आप सूर्यवंशमें उत्पन्न हुए हैं और ज्ञानी हैं ॥ ५० ॥ हे पृथ्वीनाथ ! आप सदाचारी और आर्य होकर भी अनार्य लोगों जैसा काम करना चाहते हैं ? अब आप मेरी बात मानकर इस ऋषिकुमारको बन्धनमुक्त कर दें ॥ ५१ ॥ ऐसा करनेसे आपको सुख मिलेगा। आपके पिता महर्षि वसिष्ठके शापसे चाण्डाल हो गये थे ॥ ५२ ॥ तब मैंने उस चाण्डालके शरीरसे ही उन्हें स्वर्ग भेज दिया था। उस उपकारके सम्बन्धका विचार करके ही आप मेरा अनुरोध मान लीजिए ॥ ५३ ॥ यह ब्राह्मण-बालक अपने जीवनसे निराश होकर बड़े दैन्यभावसे रो रहा है। अतः आप इसे छोड़ दीजिए। आपके इस राजसूय यज्ञमें मैं

न संशयः ॥ निषेधनीयो राज्ञाऽसौ पापं कर्तुं समुद्यतः ॥ ४९ ॥ न निषिद्धस्त्वया कस्मात्पुत्रं विक्रेतुमुद्यतः ॥ सूर्यवंशे समुत्पन्नस्त्रिशंकुतनयः शुभः ॥ ५० ॥ आर्यस्त्वनार्यवत्कर्म कर्तुमिच्छसि पार्थिव ॥ मोचनान्मुनिपुत्रस्य करणाद्वचनस्य मे ॥ ५१ ॥ तव देहे सुखं राजन्भविष्यत्यविचारणात् ॥ पिता ते शापयोगेन चांडालत्वमुपागतः ॥ ५२ ॥ मयाऽसौ तेन देहेन स्वर्लोकं प्रापितः किल ॥ तेनैव प्रतियोगेन कुरु मे वचनं नृप ॥ ५३ ॥ मुंचैनं बालकं दीनं रुदंतं भृशमातुरम् ॥ याचितोऽसि मया नूनं यज्ञेऽस्मिन्राजसूयके ॥ ५४ ॥ प्रार्थनाभंगजं दोषं कथं त्वं नावबुध्यसे ॥ प्रार्थितं सर्वदा देयं मखेऽस्मिन्नृपसत्तम ॥ ५५ ॥ अन्यथा पापमेव स्यात्तव राजन्न संशयः ॥ व्यास उवाच ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा कौशिकस्य नृपोत्तमः ॥ ५६ ॥ प्रत्युवाच महाराजः कौशिकं मुनिसत्तमम् ॥ जलोदरेण गाधेय दुःखितोऽहं भृशं मुने ॥ ५७ ॥ तस्मान्न मोचयाम्येनमन्यत्प्रार्थय कौशिक ॥ न त्वया विग्रहः कार्यः कार्येऽस्मिन्मम सर्वथा ॥ ५८ ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं राज्ञो विश्वामित्रोऽतिकोपनः ॥ बभूव दुःखसंतप्तो वीक्ष्य दीनं द्विजात्मजम् ॥ ५९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

इसके प्राणोंकी भीख माँग रहा हूँ ॥ ५४ ॥ क्या आप नहीं जानते कि यज्ञकी पूर्तिके लिए प्रार्थीकी प्रार्थना पूर्ण की जानी चाहिए। उसकी पूर्ति न होनेपर दोष होता है। हे राजन् ! इस यज्ञका यही विधान है कि जो जिस वस्तुको माँगे, उसे मुँहमाँगी वस्तु अवश्य मिलनी चाहिए ॥ ५५ ॥ हे राजन् ! ऐसा न करनेसे बड़ा पाप होता है। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। व्यासजीने कहा—महर्षि विश्वामित्रकी बात सुनकर राजा हरिश्चन्द्रने महाराज विश्वामित्रको उत्तर दिया—हे गाधितनय ! हे महर्षि ! मैं जलोदर रोगके कारण बड़ा क्लेश भोग रहा हूँ ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ अतएव शुनःशेपको नहीं छोड़ सकता। हे कौशिक ! इसके सिवाय आप कोई दूसरी वस्तु माँग लें। मेरे इस कार्यमें आप किसी तरहका झगड़ा न खड़ा करें ॥ ५८ ॥ राजा हरिश्चन्द्रकी बात सुन और ब्राह्मण कुमार शुनःशेपकी दीनता देखकर महर्षि विश्वामित्र अत्यन्त कुपित हो उठे और उनका हृदय दुःखकी आगमें झुलसने लग गया ॥ ५९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषाटीकायां षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

(हरिश्चन्द्रोपाख्यान) व्यासजी बोले—हे राजन् ! बालकको रोते देखकर विश्वामित्रको बड़ी दया आयी और वे अतीव दुःखित शुनःशेपके पास जाकर कहने लगे—॥ १ ॥ बेटे ! मैं तुम्हें वरुणदेवका मन्त्र बतला रहा हूँ । तुम इस मन्त्रका मन ही मन जप करो । इसका जप करनेसे तुम्हारा कल्याण होगा ॥ २ ॥ शुनःशेप शोकसे अधीर था । विश्वामित्रकी बात सुनकर वह मन ही मन स्पष्ट अक्षरोंमें उनके बताये हुए मन्त्रको जपने लगा ॥ ३ ॥ हे राजा जनमेजय ! शुनःशेपके मन्त्र जपते ही करुणाके सागर वरुणदेव उसपर प्रसन्न होकर एकाएक उसके सामने प्रकट हो गये ॥ ४ ॥ वरुणदेवको देखकर सभी सभासद चकरा गये । उनके दर्शनसे आनन्दित होकर सब लोग उनकी स्तुति करने लगे ॥ ५ ॥ जलोदर रोगसे आतुर राजा हरिश्चन्द्र बड़े विस्मित होकर उनके पैरोंपर गिर पड़े । फिर खड़े हो तथा दोनों हाथ जोड़कर अपने सम्मुख खड़े वरुणकी स्तुति करने लगे ॥ ६ ॥ हरिश्चन्द्र बोले—हे देवदेव ! हे कृपासागर ! मेरा हृदय पापोंसे भरा हुआ है और मेरी बुद्धि कलुषित है । मैं अपराधी और बड़ा गरीब हूँ । लेकिन आप दीनदयालने यहाँ आकर मुझे पवित्र कर दिया ॥ ७ ॥ मैं पुत्रके

॥ व्यास उवाच ॥ रुदंतं बालकं वीक्ष्य विश्वामित्रो दयातुरः ॥ शुनःशेपमुवाचेदं गत्वा पार्श्वेऽतिदुःखितम् ॥ १ ॥ मंत्रं प्रचेतसः पुत्र मयोक्तं मनसा स्मरन् ॥ जपतस्तव कल्याणं भविष्यति ममाज्ञया ॥ २ ॥ विश्वामित्रवचः श्रुत्वा शुनःशेपः शुचाकुलः ॥ मंत्रं जजाप मनसा कौशिकोक्तं स्फुटाक्षरम् ॥ ३ ॥ जपतस्तत्र तस्याशु प्रचेतास्तु कृपाकरः ॥ प्रादुर्बभूव सहसा प्रसन्नो नृप बालके ॥ ४ ॥ दृष्ट्वा तमागतं सर्वे विस्मयं परमं गताः ॥ तुष्टुवुर्वरुणं देवं मुदिता दर्शनेन ते ॥५॥ राजाऽतिविस्मितः पादौ प्रणनाम रुजातुरः ॥ बद्धांजलिपुटो देवं तुष्टाव पुरतः स्थितम् ॥६॥ हरिश्चन्द्र उवाच ॥ देवदेव कृपासिंधो पापात्माऽहं सुमंदधीः ॥ कृतापराधः कृपणः पावितः परमेष्ठिना ॥ ७ ॥ मया ते पुत्रकामेन दुःखसंस्थेन हेलनम् ॥ कृतं क्षमाप्यं प्रभुणा कोऽपराधः सुदुर्मतेः ॥ ८ ॥ अर्थी दोषं न जानाति तस्मात्पुत्रार्थिना मया ॥ वंचितस्त्वं देवदेव भीतेन नरकाद्विभो ॥ ९ ॥ अपुत्रस्य गतिर्नास्ति स्वर्गो नैव च नैव च ॥ भीतोऽहं तेन वाक्येन तस्मात्ते हेलनं कृतम् ॥ १० ॥ नाज्ञस्य दूषणं चिंत्यं नूनं ज्ञानवता विभो ॥ दुःखितोऽहं रुजाक्रांतो वंचितः स्वसुतेन ह ॥११॥ न जानेऽहं महाराज पुत्रो मे क्व गतः प्रभो ॥ वंचयित्वा वने भीतो मरणान्मां कृपानिधे ॥ १२ ॥ प्रययौ द्रविणं दत्त्वा गृहीतो द्विजबालकः ॥ यज्ञोऽयं क्रीतपुत्रेण प्रारब्धस्तव तुष्टये ॥ १३ ॥ दर्शनं तव संप्राप्य गतं दुःखं

अभावसे दुःखित था और आपकी कृपासे पुत्र होनेपर मैंने आपकी बात ठुकरा दी । आप प्रभु हैं, अतः मेरा अपराध क्षमा कर दें । जिसकी बुद्धि ही भ्रष्ट हो गयी तो उसका कैसे भला होगा ? ॥८॥ हे देवदेव ! स्वार्थी मनुष्य दोष नहीं देखते । हे प्रभु ! मैं पुत्र पानेका स्वार्थी था । इसीलिए अपना दोष नहीं देख सका । मैंने नरकमें पड़नेके डरसे ही आपको धोखा दिया था ॥९॥ क्योंकि 'अपुत्र व्यक्तिकी गति नहीं होती और उसे स्वर्ग भी नहीं मिलता' । इसी शास्त्रोक्त वाक्यसे डरकर मैंने आपकी अवहेलना की है ॥ १० ॥ हे प्रभु ! मैं अज्ञानी हूँ, कष्टमें पड़ा हुआ हूँ, भयङ्कर रोगसे ग्रस्त हूँ और मेरे पुत्रने भी मुझे धोखा दे दिया है । अतएव मुझ अज्ञानीके अपराधका आप कुछ ख्याल न करें ॥ ११ ॥ हे महाराज ! हे प्रभो ! हे कृपाके सागर ! मुझे नहीं पता कि मेरा पुत्र कहाँ चला गया है ? ऐसा लगता है कि मारे जानेके डरसे वह मुझे धोखा देकर जंगलमें भाग गया है ॥ १२ ॥ तब मैंने धन देकर इस ब्राह्मणके बालकको खरीदा

और आपको सन्तुष्ट करनेके लिए इस 'क्रीतक' पुत्रसे मैंने नरमेध यज्ञ आरम्भ किया ॥ १३ ॥ आपका दर्शन मिल जानेसे मेरी सारी व्यथा दूर हो गयी और अब आपके प्रसन्न हो जानेसे जलोदर रोगजनित सारे कष्ट दूर भी हो जायँगे ॥१४॥ व्यासजी बोले—हे राजन् ! रोगग्रस्त महाराज हरिश्चन्द्रकी बातें सुनकर देवाधिदेव वरुण दयालु होकर कहने लगे ॥१५॥ वरुणदेव बोले—हे राजन् ! शुनःशेप बहुत दुखी होकर मेरी स्तुति कर रहा है। सो आप इसे बन्धनमुक्त कर दीजिए। अब आपका यज्ञ पूरा हो जायगा और आप जलोदर रोगसे भी मुक्त हो जायँगे ॥ १६ ॥ यह कहकर वरुणदेवने तुरन्त सभी सभासदोंके समक्ष राजाको नीरोग कर दिया ॥ १७ ॥ महात्मा वरुणने जब ऋषिकुमार शुनःशेपको बन्धनसे मुक्त करा दिया तो सारा यज्ञमण्डप वरुणदेवकी जयजयकारसे गूँज उठा ॥ १८ ॥ इतना भयङ्कर जलोदर रोग तत्काल दूर हो जानेसे राजा हरिश्चन्द्र बहुत प्रसन्न हुए। शुनःशेप भी यज्ञीय स्तम्भके बन्धनसे छूट गया और उसकी विकलता दूर हो गयी ॥ १९ ॥ तदनन्तर राजाने बड़ी नम्रताके साथ यज्ञकेअन्तिम कृत्योंको करके उसे पूरा किया। यज्ञ समाप्त हो गया तो शुनःशेपने हाथ जोड़कर

ममाद्भुतम् ॥ जलोदरकृतं सर्वं प्रसन्ने त्वयि सांप्रतम् ॥ १४ ॥ व्यास उवाच ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा राज्ञो रोगातुरस्य च ॥ दयावान्देवदेवेशः प्रत्युवाच नृपोत्तमम् ॥ १५ ॥ वरुण उवाच ॥ मुंच राजञ्छुनःशेपं स्तुवंतं मां भृशातुरम् ॥ यज्ञोऽयं परिपूर्णस्ते रोगमुक्तो भवात्मना ॥ १६ ॥ इत्युक्त्वा वरुणस्तूर्णं राजानं विरुजं तथा ॥ चकार पश्यतां तत्र सदस्यानां सुसंस्थितम् ॥ १७ ॥ विमुक्तोऽसौ द्विजः पाशाद्वरुणेन महात्मना ॥ जयशब्दस्ततस्तत्र संजातो मखमण्डपे ॥१८॥ राजा प्रमुदितः सद्यो रोगान्मुक्तः सुदारुणात् ॥ यूपान्मुक्तः शुनःशेपो बभूवातीव संस्थितः ॥१९॥ राजा त्विमं मखं पूर्णं चकार विनयान्वितः ॥ शुनःशेपस्तदा सभ्यानित्युवाच कृतांजलिः ॥ २० ॥ भो भो सभ्याः सुधर्मज्ञा ब्रुवंतु धर्मनिर्णयम् ॥ वेदशास्त्रानुसारेण यथार्थवादिनः किल ॥ २१ ॥ पुत्रोऽहं यस्य सर्वज्ञाः पिता मे कोऽग्रतः परम् ॥ भवतां वचनात्तस्य शरणं प्रव्रजाम्यहम् ॥२२॥ इत्युक्ते वचने तत्र सभ्याः प्रोचुः परस्परम् ॥ सभ्या ऊचुः ॥ अजीगर्तस्य पुत्रोऽयं कस्यान्यस्य भवेदसौ ॥ २३ ॥ अंगादंगात्समुद्भूतः पालितस्तेन भक्तितः ॥ अन्यस्य कस्य पुत्रोऽसौ प्रभवेदिति निश्चयः ॥ २४ ॥ तच्छ्रुत्वा वामदेवस्तु तानुवाच सभासदः ॥ विक्रीतस्तेन तातेन द्रव्यलोभात्सुतः किल ॥ २५ ॥ पुत्रोऽयं धनदातुश्च राज्ञस्तत्र न संशयः ॥ अथवा वरुणस्यैष पाशान्मुक्तोऽस्त्यनेन वै ॥ २६ ॥ अन्नदाता भयत्राता तथा विद्या-

सब सभासदोंसे कहा—॥ २० ॥ हे सदस्यो ! आपलोग धर्मशास्त्रके ज्ञाता हैं और आपको लोग यथार्थवादी कहते हैं। अतएव आप वेदशास्त्रानुकूल धर्मका निर्णय करिए ॥ २१ ॥ हे सर्वज्ञ महर्षियो ! अब मैं किसका पुत्र हुआ ? अब मेरा पिता कौन होगा ? आपलोग जिसे कहेंगे, मैं उसी पिताकी शरणमें जाऊँगा ॥ २२ ॥ शुनःशेपने जब यह कहा तो वे परस्पर परामर्श करने लगे। कुछ सभ्योंने कहा—यह बालक अजीगर्तका पुत्र है और उन्हींका पुत्र होकर रहेगा। अब यह किसी दूसरे व्यक्तिका पुत्र कैसे हो जायगा ? ॥२३॥ क्योंकि यह बालक अजीगर्तके वीर्यसे उत्पन्न हुआ है और उन्होंने ही प्रेमके साथ इसे पाला-पोसा है। तब यह बालक अजीगर्तके सिवाय और किसका हो सकता है ? ॥२४॥ इस निर्णयसे असहमत होकर महर्षि वामदेवने सभासदोंसे कहा कि जब अजीगर्तने धनकी लालचसे अपने बेटेको बेंच दिया ॥ २५ ॥ तब जिसने धन देकर खरीदा, उसीका यह पुत्र हुआ। अतएव यह या तो राजा हरिश्चन्द्रका

अथवा वरुणका पुत्र होगा। क्योंकि उन्होंने ही इसे बन्धन-मुक्त कराया है ॥ २६ ॥ यह शास्त्रवचन है कि जो अन्न देकर पालन करते हैं, किसी तरहके भयसे बचाते हैं, जो विद्यादान देते हैं, जो धन देकर खरीद लेते हैं और जो जन्म देते हैं—ये पाँचों व्यक्ति पिता होते हैं ॥ २७ ॥ उसके बाद उसे किसी सभासदने अजीगर्तका पुत्र, किसीने राजा हरिश्चन्द्रका पुत्र और किसीने वरुणका पुत्र बतलाया। इस प्रकार वे आपसमें कोई निर्णय नहीं कर सके ॥ २८ ॥ इस तरहकी सन्देहात्मक स्थितिमें जब वे लोग परस्पर झगड़ने लगे, तब महर्षि वसिष्ठ बोले। क्योंकि वे सभी ऋषियोंसे पूजित थे ॥ २९ ॥ वसिष्ठजीने कहा—हे महर्षियो ! अब आप लोग मेरा निर्णय सुनिए, जो वेदानुकूल है। जब पिताने अपने पुत्रकी ममता त्यागकर इस बालकको बेंच डाला ॥ ३० ॥ तब धन लेते ही उसके पिता-पुत्रका नाता टूट गया। जब कि महाराज हरिश्चन्द्रने इसे खरीदा, तब यह उनका क्रीतक पुत्र होगया ॥ ३१ ॥ बादमें राजाने जब शुनःशेपको बलिदानके खम्भेमें बाँध दिया, तब उनका भी सम्बन्ध जाता रहा। जब इसने वरुणदेव की स्तुति की, तब उन्होंने प्रसन्न होकर इसे बन्धन-मुक्त करा दिया ॥३२॥

प्रदश्च यः ॥ तथा वित्तप्रदश्चैव पंचैते पितरः स्मृताः ॥ २७ ॥ तदा केचित्पितुः प्राहुः केचिद्राज्ञस्तथाऽपरे ॥ वरुणस्येति संवादे निर्णयं न ययुश्च ते ॥ २८ ॥ इत्थं संदेहमापन्ने वसिष्ठो वाक्यमब्रवीत् ॥ सभ्यान्विवदतस्तत्र सर्वज्ञः सर्वपूजितः ॥२९॥ शृणुध्वं भो महाभागा निर्णयं श्रुतिसंमतम् ॥ निःस्नेहेन यदा पित्रा विक्रीतोऽयं सुतः शिशुः ॥ ३० ॥ सम्बन्धस्तु गतस्तस्य तदैव धनसंग्रहात् ॥ हरिश्चन्द्रस्य संजातः पुत्रोऽसौ क्रीत एव च ॥३१॥ यूपे बद्धो यदा राज्ञा तदा तस्य न वै सुतः ॥ वरुणस्तु स्तुतोऽनेन तेन तुष्टेन मोचितः ॥३२॥ तस्मान्नायं महाभाग ह्यसौ पुत्रः प्रचेतसः ॥ यो यं स्तौति महामन्त्रैः सोऽपि तुष्टो ददाति च ॥३३॥ धनं प्राणान्पशून्राज्यं तथा मोक्षं निजेप्सितम् ॥ कौशिकस्य सुतश्चायमरिष्टे येन रक्षितः ॥ ३४ ॥ मंत्रं दत्त्वा महावीर्यं वरुणस्यातिसङ्कटे ॥ व्यास उवाच ॥ श्रुत्वा वाक्यं वसिष्ठस्य बाढमूचुः सभासदः ॥ ३५ ॥ विश्वामित्रस्तु जग्राह तं करे दक्षिणे तदा ॥ एहि पुत्र गृहं मे त्वमित्युक्त्वा प्रेमपूरितः ॥ ३६ ॥ शुनःशेपो जगामाशु तेनैव सह सत्वरः ॥ वरुणस्तु प्रसन्नात्मा जगाम च स्वमालयम् ॥ ३७ ॥ ऋत्विजश्च तथा सभ्याः स्वगृहान्निर्ययुस्तदा ॥ राजाऽपि रोगनिर्मुक्तो बभूवातिमुदान्वितः ॥ ३८ ॥ प्रजास्तु पालया-

अतएव हे महर्षियो ! यह वरुणका भी पुत्र नहीं हो सकता। क्योंकि जो लोग महामन्त्रसे जिस देवताकी स्तुति करते हैं तो वह सन्तुष्ट होकर उस व्यक्तिको उसकी कमनाके अनुसार धन, प्राण, हाथी, घोड़े, गाय आदि पशु और मुक्ति प्रदान करता है। वास्तवमें प्राणसङ्कटके समय विश्वामित्रने इसकी रक्षा की है। अतः यह उन्हींका पुत्र हुआ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ क्योंकि उन्होंने भीषण सङ्कटके समय इसे अतीव शक्तिशाली वरुणमंत्र दिया है। व्यासजी बोले—हे राजन् ! महर्षि वसिष्ठका निर्णय सुनकर सभी सभासदोंने उसका समर्थन कर दिया ॥ ३५ ॥ यह निर्णय सुनकर विश्वामित्रका प्रेम उमड़ पड़ा और 'आओ पुत्र ! अब तुम मेरे आश्रमपर चलो'। यह कहकर उसका दाहिना हाथ थाम्ह लिया ॥ ३६ ॥ तब शुनःशेप भी तत्काल उनके साथ चल पड़ा। इससे वरुणदेवका भी हृदय प्रसन्न हुआ और वे वरुणलोकको चले गये ॥३७॥ ऋत्विक् और सभ्यगण भी अपने-अपने घर सिधारे। राजा हरिश्चन्द्रका जलोदर रोग

छूट गया, जिससे उन्हें अपार हर्ष हुआ ॥३८॥ अब वे बड़ी प्रसन्नतासे राज करने लगे। उधर राजकुमार रोहितने जब वरुणके आने और अपने पिताके रोगमुक्त होनेका वृत्तान्त सुना तो ऊबड़-खाबड़ जंगलों और पहाड़ोंको लाँघते हुए अपने राजमहलके पास आ पहुँचे। तब दूतोंने जाकर महाराज हरिश्चन्द्रको सूचना दी कि राजकुमार रोहित आ गये हैं ॥ ३९ ॥ ४० ॥ पुत्रके आगमनकी बात सुनकर राजा हरिश्चन्द्र बहुत प्रसन्न हुए और उसकी अगवानी करने गये। जब रोहितने देखा कि पिताजी आ रहे हैं तो उसका पितृप्रेम उमड़ पड़ा और साथ ही घबड़ाहट भी हुई ॥४१॥ तत्काल जमीनपर दण्डकी भाँति लोटकर दण्डवत् प्रणाम किया। दीर्घकालीन वियोगजनित शोकके कारण रोहितका मुँह आँसूसे भींग गया और राजाने राजकुमारको उठाकर हृदयसे लगा लिया ॥४२॥ उन्होंने बेटेका माथा सूँघा और कुशल-समाचार पूछा। फिर उसे जब गोदमें बैठाया तो राजाका सारा दुःख दूर हो गया ॥ ४३ ॥ प्रेमातिरेकवश जब महाराजके नेत्रोंसे गरम-गरम आँसू राजकुमारके मस्तकपर गिरने लगे तो मानों उसके ही द्वारा उन्होंने रोहितका राज्याभिषेक कर दिया। तदनन्तर अपने परम प्रिय राजकुमार रोहितके साथ

मास सुप्रसन्नेन चेतसा ॥ रोहिताख्यस्तु तच्छ्रुत्वा वृत्तांतं वरुणस्य ह ॥३९॥ आजगाम गृहं प्रीतो दुर्गमाद्वनपर्वतात् ॥ दूता राजानमभ्येत्य प्रोचुः पुत्रं समागतम् ॥४०॥ मुदितोऽसौ जगामाशु सम्मुखः कोसलाधिपः ॥ दृष्ट्वा पितरमायांतं प्रेमोद्रिक्तः सुसंभ्रमः ॥ ४१ ॥ दण्डवत्पतितो भूमावश्रुपूर्णमुखः शुचा ॥ राजाऽपि तं समुत्थाप्य परिरभ्य मुदान्वितः ॥ ४२ ॥ समाघ्राय सुतं मूर्ध्नि पप्रच्छ कुशलं पुनः ॥ उत्संगे तं समारोप्य मुदितो मेदिनीपतिः ॥ ४३ ॥ उष्णैर्नेत्रजलैः शीर्षण्यभिषेकमथाकरोत् ॥ राज्यं शशास तेनासौ पुत्रेणातिप्रियेण च ॥ ४४ ॥ वृत्तांतं नरमेधस्य कथयामास विस्तरात् ॥ राजसूयं क्रतुवरं चकार नृपसत्तमः ॥ ४५ ॥ वसिष्ठं पूजयित्वाऽथ होतारमकरोद्विभुः ॥ समाप्ते त्वथ यज्ञेशे वसिष्ठोऽतीव पूजितः ॥४६॥ शक्रस्य सदनं रम्यं जगाम मुनिरादरात् ॥ विश्वामित्रोऽपि तत्रैव वसिष्ठेन च संगतः ॥ ४७ ॥ मिलित्वा तौ स्थितौ देवसदने मुनिसत्तम ॥ विश्वामित्रोऽपि पप्रच्छ वसिष्ठं प्रतिपूजितम् ॥४८॥ वीक्ष्य विस्मयचित्तस्तं सभायां तु शचीपतेः ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ क्वेयं पूजा त्वया प्राप्ता महती मुनिसत्तम ॥ ४९ ॥ कृता केन महाभाग सत्यं ब्रूहि ममांतिके ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ यजमानोऽस्ति मे राजा हरिश्चन्द्रः प्रतापवान्

वे राज्यका शासन करने लगे ॥ ४४ ॥ बादमें उन्होंने नरमेधकी सारी बातें विस्तारके साथ बतलायीं। आगे चलकर राजा हरिश्चन्द्रने राजसूय यज्ञका आयोजन किया—जो सब यज्ञोंमें श्रेष्ठ माना जाता है ॥४५॥ महाराज हरिश्चन्द्रने गुरु वसिष्ठकी पूजा करके उन्हें उस यज्ञका 'होता' बनाया। उस सर्वश्रेष्ठ राजसूय यज्ञके समाप्त होनेपर उन्होंने वसिष्ठजीका बहुत बड़ा सम्मान किया ॥ ४६ ॥ तदनन्तर महर्षि वसिष्ठ बड़ी श्रद्धाके साथ इन्द्रकी रमणीक नगरी अमरावती पुरीमें गये। उसी समय विश्वामित्रजी भी वहाँ जा पहुँचे और दोनोंकी भेंट हो गयी ॥ ४७ ॥ दोनों ऋषिवर देवलोकमें एक साथ बैठे। विश्वामित्रने पूजा पाये हुए वसिष्ठजीको देखा तो उनके आश्चर्यका ठिकाना नहीं रहा और वे इन्द्रकी सभामें ही पूछने लगे। विश्वामित्रने कहा—हे महाभाग! आपको इतना बड़ा सम्मान कहाँ मिला? ॥४८॥४९॥ किसी महान् व्यक्तिके द्वारा आपकी पूजा हुई है? सो मुझे सच-सच बतलाइए। वसिष्ठजी बोले—मेरे परम प्रतापी यजमान राजा हरिश्चन्द्र

हैं ॥ ५० ॥ उन्होंने ही पुष्कल दक्षिणावाला राजसूय यज्ञ किया है। उनसे बढ़कर कोई दूसरा व्रती, सत्यवादी, दाता, धर्मात्मा और प्रजापालक राजा नहीं है। हे कौशिक! उन्हींके राजसूय यज्ञमें मेरी ऐसी पूजा हुई है ॥५१॥५२॥ हे ब्रह्मर्षि! बार-बार आप मुझसे सच-सच कहनेका क्यों अनुरोध कर रहे हैं? मैं यथार्थ कह रहा हूँ कि राजा हरिश्चन्द्र जैसा सत्यवादी, दानी, वीर और परम धार्मिक राजा न पहले हुआ है और न कोई भविष्यमें ही होगा ॥५३॥ व्यासजी बोले—हे राजन्! महर्षि वसिष्ठजीकी यह बात सुनकर विश्वामित्रजी क्रोधसे लाल-लाल आँखें निकालकर उनसे कहने लगे ॥५४॥ विश्वामित्र बोले—अरे, तुम ऐसे झूठे और कपटी राजाकी प्रशंसा कर रहे हो? उसने प्रतिज्ञा करके भी वरुणदेवको बार-बार धोखा दिया है ॥ ५५ ॥ हे महामति! मैंने इस जन्ममें तपस्या और वेदाध्ययन करके जो पुण्य सञ्चित किया है और आपने इस जन्ममें तपस्या और वेदाध्ययन करके जितना पुण्य उपार्जन किया है, उसकी शर्त लगा दें ॥ ५६ ॥ यदि मैं आपके उस बखाने हुए राजाको शीघ्र असत्यवादी, दान न देनेवाला और महादुष्ट न प्रमाणित कर दूँ तो मेरा आजन्म-सञ्चित सभी पुण्य नष्ट हो जाय। इसके

॥ ५० ॥ राजसूयः कृतस्तेन राज्ञा प्रवरदक्षिणः ॥ नेदृशोऽस्ति नृपश्चान्यः सत्यवादी धृतव्रतः ॥५१॥ दाता च धर्मशीलश्च प्रजारञ्जनतत्परः ॥ तस्य यज्ञे मया पूजा प्राप्ता कौशिकनन्दन ॥ ५२ ॥ किं पृच्छसि पुनः सत्यं ब्रवीम्यकृत्रिमं द्विज ॥ हरिश्चंद्रसमो राजा न भूतो न भविष्यति ॥ सत्यवादी तथा दाता शूरः परमधार्मिकः ॥५३॥ व्यास उवाच ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा विश्वामित्रोऽतिकोपनः ॥ बभूव क्रोधसंरक्तलोचनोऽप्यब्रवीच्च तम् ॥ ५४ ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ एवं स्तौषि नृपं मिथ्यावादिनं कपटप्रियम् ॥ वञ्चितो वरुणो येन प्रतिश्रुत्य वरं पुनः ॥५५॥ मम जन्मार्जितं पुण्यं तपसः पठितस्य च ॥ त्वदीयं वाऽतितपसो ग्लहं कुरु महामते ॥ ५६ ॥ अहं चेत्तं नृपं सद्यो न करोम्यतिसंस्तुतम् ॥ असत्यवादिनं काममदातारं महाखलम् ॥ ५७ ॥ आजन्म संचितं सर्वं पुण्यं मम विनश्यतु ॥ अन्यथा त्वत्कृतं सर्वं पुण्यं त्विति पणावहे ॥ ५८ ॥ ग्लहं कृत्वा ततस्तौ तु विवदंतौ मुनी तदा ॥ स्वाश्रमं स्वर्गलोकाच्च गतौ परमकोपनौ ॥ ५९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

॥ व्यास उवाच ॥ कदाचित्तु हरिश्चन्द्रो मृगयार्थं वनं ययौ ॥ अपश्यद्रुदतीं बालां सुन्दरीं चारुलोचनाम् ॥ १ ॥ तामपृच्छन्महाराजः कामिनीं करुणापरः ॥ पद्मपत्रविशालाक्षि किं रोदिषि वरानने ॥ २ ॥ केनासि पीडिताऽत्यर्थं किं ते दुःखं वदाशु मे ॥ का च त्वं विजने घोरे

विपरीत यदि आप उसे सत्यवादी, दानवीर और अत्यन्त साधु प्रमाणित न कर सकेंगे तो आपके जीवनभरमें सञ्चित सभी पुण्यकर्म नष्ट हो जायँगे। बस, यही हम दोनोंकी बाजी लग जाय ॥५७॥५८॥ इस तरह परस्पर बाजी लगाकर वे दोनों मुनि विवाद करते और गुस्सासे लाल-पीले होते हुए स्वर्गलोकसे अपने-अपने आश्रमको लौट आये ॥५९॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

(हरिश्चन्द्रका विश्वामित्रको राज्यदान) व्यासजी कहते हैं—हे राजन्! एक समयकी बात है—राजा हरिश्चन्द्र शिकार खेलने जंगलमें गये। वहाँ उन्होंने देखा कि मनोहर नेत्रोंवाली एक सुन्दरी स्त्री रो रही है ॥१॥ करुणावश उससे उन्होंने पूछा—'कमलपत्रके समान विशाल नेत्रोंवाली हे वरानने! तुम क्यों रो रही हो? अभी बताओ, किसने तुम्हें कष्ट दिया है?

तुम क्यों अपार दुःखमें पड़ी हो ? इस निर्जन वनमें रहनेवाली तुम कौन हो और तुम्हारे पिता एवं पति हैं ? ॥ २ ॥ ३ ॥ हे कान्ते ! मेरे राज्यमें तो राक्षस भी दूसरेकी स्त्रीको कष्ट नहीं पहुँचाते । हे सुन्दरी ! तुम्हें जो दुःख देता होगा, उसे मैं अभी मार डालूँगा ॥४॥ हे वरारोहे ! तुम अपना दुःख बताकर शान्तभावसे यहीं रहो । हे सुमध्यमे ! मेरे राज्यमें कोई भी दुराचारी नहीं रह सकता' ॥ ५ ॥ महाराज हरिश्चन्द्रकी यह बात सुनकर अपने मुखपर फैले हुए आँसुओंको पोंछनेके पश्चात् वह स्त्री उनसे कहने लगी ॥ ६ ॥ स्त्रीने कहा—हे राजन् ! मेरे लिये वनमें रहकर जो कठिन तपस्या कर रहे हैं, उन मुनिवर विश्वामित्रसे मैं अत्यन्त दुखी हूँ । वे मुझे बहुत सताते हैं ॥ ७ ॥ उत्तम व्रतका पालन करनेवाले हे राजन् ! आपके राज्यमें रहकर मेरे महान् कष्ट पानेका यही कारण है । उन मुनिसे अत्यन्त सतायी जानेवाली मैं कमना नामकी स्त्री हूँ—यही मेरा साधारण परिचय है ॥८॥ राजाने कहा—हे विशालाक्षी ! तुम अपने स्थानपर आनंदसे रहो । अब तुम्हें कष्टका सामना नहीं करना पड़ेगा । तपस्यामें तत्पर रहनेवाले उन मुनिको मैं मना कर दूँगा ॥ ९ ॥ इस प्रकार उस स्त्रीको आश्वासन देकर राजा हरिश्चन्द्र तुरन्त विश्वा-

कस्ते भर्ता पिताऽथवा ॥ ३ ॥ न बाधते च राज्ये मे राक्षसोऽपि परांगनाम् ॥ तं हन्मि तरसा कान्ते यस्त्वां सुन्दरि बाधते ॥ ४ ॥ ब्रूहि दुःखं वरारोहे स्वस्था भव कृशोदरि ॥ विषये मम पापात्मा न तिष्ठति सुमध्यमे ॥ ५ ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा नारी तमब्रवीन्नृपम् ॥ प्रमृज्याश्रूणि वदनाद्धरिश्चन्द्रं नृपोत्तमम् ॥ ६ ॥ नार्युवाच ॥ राजन्मां बाधतेऽत्यर्थं विश्वामित्रो महामुनिः ॥ तपः करोति यद्घोरं मदर्थं कौशिको वने ॥ ७ ॥ तेनाहं दुःखिता राजन्विषये तव सुव्रत ॥ विद्धि मां कमनां कांतां पीडितां मुनिना भृशम् ॥ ८ ॥ राजोवाच ॥ स्वस्था भव विशालाक्षि न ते दुःखं भविष्यति ॥ तमहं वारयिष्यामि मुनिं तापपरायणम् ॥ ९ ॥ इत्याश्वास्य स्त्रियं राजा तरसा मुनिसन्निधौ ॥ नत्वा प्रणम्य शिरसा तमुवाच महीपतिः ॥ १० ॥ स्वामिन्किं क्रियतेऽत्यर्थं तपसा देहपीडनम् ॥ किमर्थं ते समारम्भो ब्रूहि सत्यं महामते ॥ ११ ॥ वांछितं तव गाधेय करोमि सफलं किल ॥ उत्तिष्ठोत्तिष्ठ तरसा तपसाऽलमतः परम् ॥ १२ ॥ विषये मम सर्वज्ञ न कर्तव्यं सुदारुणम् ॥ लोकपीडाकरं घोरं तपः केनापि कर्हिचित् ॥ १३ ॥ इत्थं निषिध्य तं राजा विश्वामित्रं गृहं ययौ ॥ मनसा क्रोधमाधाय गतोऽसौ कौशिको मुनिः ॥१४॥ स गत्वा चिंतयामास नृप-

मित्रके पास गये, नम्रतापूर्व सिर झुकाकर उन्हें प्रणाम किया । साथ ही कहा—॥ १० ॥ 'मुनिवर ! आप इतनी कठिन तपस्यासे शरीरको क्यों संकटग्रस्त बना रहे हैं । हे महामते ! किस प्रयोजनको सिद्ध करनेके लिये आपकी यह तैयारी है ? यथार्थ बात बतानेकी कृपा करें ॥ ११ ॥ हे गाधिनन्दन ! मैं आपका अभिलषित कार्य पूर्ण करनेके लिये तैयार हूँ । अब इससे आगे तपस्या करनेका विचार छोड़कर आप इसी क्षण उठ जानेकी कृपा करें ॥१२॥ हे सर्वज्ञ मुने ! मेरे राज्यमें रहकर कभी किसीको भी इस प्रकारकी कठिन तपस्या नहीं करनी चाहिये । क्योंकि शरीरके लिए ऐसा तप महान् कष्टप्रद होता है ॥१३॥ इस प्रकार विश्वामित्रको तपस्यासे रोककर राजा हरिश्चन्द्र अपने घर चले गये । हरिश्चन्द्रकी इस रोकसे मुनिके मनमें क्रोध आ गया । वे अपने स्थानको चले गये । घर जाकर विश्वामित्रने सोचा कि मुझे तपस्यासे विरत करके राजाने बड़ा जघन्य कार्य किया है । उसी समय उन्हें वसिष्ठकी बात भी याद आ गयी

॥ १४ ॥ १५ ॥ तब वे बदला लेनेकी बात सोचने लगे। तरह-तरहसे सोचनेके पश्चात् उन्होंने एक भयंकर दानवको राजा हरिश्चन्द्रके पास जानेकी आज्ञा दी। मुनिने अपने प्रयाससे उस समय उस दानवको सूअरके रूपमें परिणत कर दिया। उसके शरीरकी आकृति बड़ी विशाल थी। वह महाकाल-जैसा जान पड़ता था। वह भयंकर शब्द करता हुआ राजा हरिश्चन्द्रके उपवनमें पहुँच गया। रक्षकोंको भयभीत करते हुए उसने मालतीकी झाड़ियों एवं जूहीकी लताओंको रौंदकर दाँतोंसे जमीन खोद डाली और बड़े-बड़े वृक्षोंको धराशायी कर दिया ॥१६-१९॥ चम्पक, केतकी, मल्लिका, कनेर तथा उशीरके कोमल पौधोंको उखाड़ फेंका ॥२०॥ मुचुकुन्द, अशोक, मौलसिरी, तिलक आदि वृक्षोंकी तो उसने भरपूर दुर्गति की ॥ २१ ॥ हाथमें शस्त्र लिये हुये उस उपवनकी रखवाली करनेवाले सभी रक्षक वहाँसे भाग चले। मालियोंने अत्यन्त डरकर 'हाय-हाय'की आवाजके साथ चिल्लाना आरम्भ कर दिया ॥२२॥ कालकी तुलना

कृत्यमसांप्रतम् ॥ वसिष्ठस्य च सम्वादं तपसः प्रतिषेधनम् ॥१५॥ कोपाविष्टेन मनसा प्रतीकारमथाकरोत् ॥ विचिंत्य बहुधा चित्ते दानवं घोरविग्रहम् ॥ १६ ॥ प्रेषयामास तद्देशं विधाय सूकराकृतिम् ॥ सोऽतिकायो महाकालः कुर्वन्नादं सुदारुणम् ॥१७॥ राज्ञश्चोपवने प्राप्तस्त्रासयन्रक्षकांस्तदा ॥ मालतीनां च खंडानि कनकानां तथैव च ॥ १८ ॥ यूथिकानां च वृंदानि कंपयंश्च मुहुर्मुहुः ॥ दन्तेन विलिखन्भूमिं समुन्मूलयते द्रुमान् ॥१९॥ चम्पकान्केतकीखंडान्मल्लिकानां च पादपान् ॥ करवीरानुशीरांश्च निचखान शुभान्मृदून् ॥ २० ॥ मुचुकुन्दानशोकांश्च बकुलांस्तिलकांस्तथा ॥ उन्मूल्य कदनं तत्र चकार सूकरो वने ॥२१॥ वाटिकारक्षकाः सर्वे दुद्रुवुः शस्त्रपाणयः ॥ हाहेति चुक्रुशुस्तत्र मालाकारा भृशातुराः ॥२२॥ बाणैः संताड्यमानोऽपि यदा त्रस्तो न वै मृगः ॥ रक्षकान्पीडयामास कोलः कालसमद्युतिः ॥ २३॥ ते तदाऽतिभयाक्रांता राजानं शरणं ययुः ॥ तमूचुस्त्रा हि त्राहीति वेपमाना भयाकुलाः ॥२४॥ तानागतान्समालोक्य भयार्तान्भूपतिस्तदा ॥ पप्रच्छ किं भयं कस्मान्मां ब्रुवंतु समागताः ॥२५॥ नाहं बिभेमि देवभ्यो राक्षसेभ्यश्च रक्षकाः ॥ कस्माद्भयं समुत्पन्नं तद्ब्रुवंतु ममाग्रताः ॥ २६ ॥ हन्मि चैकेन बाणेन तं शत्रुं दुर्भगं किल ॥ यो मेऽरातिः समुत्पन्नो लोके पापमतिः खलः ॥२७॥ देवो वा दानवो वाऽपि तं निहन्मि शरैः शितैः ॥ क्व तिष्ठति कियद्रूपः कियद्बलसमन्वितः ॥२८॥ मालाकारा ऊचुः ॥ न देवो न च दैत्योऽस्ति न यक्षो न च किन्नरः ॥ कश्चित्कोलो महाकायो राजंस्तिष्ठति कानने ॥२९॥ पुष्पवृक्षानतिमृदून्दंते-

करनेवाला वह सूअर जब बाणोंसे मारनेपर भी निर्भीकतापूर्वक रक्षकोंको पीड़ित करने लगा, तब तो उन रखवालोंके भयकी सीमा नहीं रही। वे भागकर राजा हरिश्चन्द्रकी शरणमें गये। भयसे अधीर होकर काँपते हुये उन्होंने कहा—॥२३॥२४॥ 'हमें बचाइये।' तब डरसे अत्यन्त घबराये हुये और समक्ष उपस्थित रक्षकोंको देखकर राजाने पूछा—'रक्षको! तुम्हें किससे क्या भय है? सो शीघ्र बताओ ॥२५॥ हे रक्षको! मैं देवतओंसे भी नहीं डरता। किसने तुम्हें भय पहुँचाया है, मेरे सामने सब हाल कहो। उस भाग्यहीन शत्रुको अभी एक ही बाणसे मैं मार डालता हूँ, जो पापी और खल शत्रु उत्पन्न हो गया हो ॥२६॥२७॥ फिर चाहे वह देवता या दानव कितना ही भीषण और कितना ही बलवान् क्यों न हो, मैं उसे अपने तीक्ष्ण बाणोंसे मार डालूँगा। मालियोंने कहा—हे राजन्! देवता, दानव, यक्ष अथवा किन्नर—इनमेंसे वह कोई नहीं है। वह बड़े विशाल शरीरवाला कोई एक सूअर उपवनमें आ घुसा है ॥२८॥२९॥ उस सूअरने अपने

मालियोंने कहा—हे राजन् ! देवता, दानव, यक्ष अथवा किन्नर—इनमेंसे वह कोई नहीं है । वह बड़े विशाल शरीरवाला कोई एक सूअर उपवनमें आ घुसा है । [illegible]

दाँतोंसे पुष्पोंके समस्त वृक्षोंको उखाड़ डाला है । उपवनमें पैठते ही उसने सारा उपवन तोड़-ताड़कर चौपट कर दिया है ॥३०॥ हे महाराज ! हमारे बाण, लाठी और पत्थरसे चोट पहुँचानेपर भी वह निर्भीकतापूर्वक हमें मारनेके लिये दौड़ पड़ा ॥ ३१ ॥ व्यासजी कहते हैं—हे राजन् ! महाराज हरिश्चन्द्र मालियोंका यह वचन सुनकर क्रोधसे तमतमा उठे । फिर उसी क्षण घोड़ेपर चढ़कर वे उपवनकी ओर चल पड़े ॥ ३२ ॥ हाथी, घोड़े, रथ और पैदल चलनेवाले सैनिकोंसे युक्त एक विशाल सेना साथ लेकर वे झट उस श्रेष्ठ उपवनमें पहुँच गये ॥ ३३ ॥ वहाँ उन्होंने विशाल शरीरवाले एक भयंकर सूअरको गुर्राते देखा। उसने उपवनको चौपट कर दिया था—यह देखकर राजा कुपित हो उठे ॥३४॥ तदनन्तर धनुषपर बाण चढ़ाकर उस पापी सूअरको मारनेके लिये बड़े वेगसे आगे बढ़े ॥ ३५ ॥ क्रोधसे व्याकुल उन धनुर्धर नरेशको देखकर वह सूअर अत्यन्त भयजनक शब्द करता हुआ तुरन्त सामने दौड़ आया ॥ ३६ ॥ उस विकृत मुखवाले

नोन्मूलयत्यसौ ॥ विदीर्णं तद्वनं सर्वं सूकरेणातिरंहसा ॥ ३० ॥ विशिखैस्ताडितोऽस्माभिर्दृषद्भिर्लकुटैस्तथा ॥ न बिभेति महाराज हंतुमस्मानुपाद्रवत् ॥ ३१ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तेषां राजा कोपसमाकुलः ॥ अश्वमारुह्य तरसा जगामोपवनं प्रति ॥ ३२ ॥ सैन्येन महता युक्तो गजाश्वरथसंयुतः ॥ पदातिवृंदसहितः प्रययौ वनमुत्तमम् ॥ ३३ ॥ तत्रापश्यन्महाकोलं घुर्घुरंतं भयानकम् ॥ वनं भग्नं च संवीक्ष्य राजा क्रोधयुतोऽभवत् ॥ ३४ ॥ चापे बाणं समारोप्य विकृष्य च शरासनम् ॥ तं हंतुं सूकरं पापं तरसा समुपाक्रमत् ॥ ३५ ॥ समालोक्य च राजानं चापहस्तं रुषाकुलम् ॥ संमुखोऽभ्यद्रवत्तूर्णं कुर्वञ्छब्दं सुदारुणम् ॥ ३६ ॥ तमायान्तं समालोक्य वराहं विकृताननम् ॥ मुमोच विशिखं तस्मिन्हंतुकामो महीपतिः ॥ ३७ ॥ वंचयित्वाऽथ तद्बाणं सूकरस्तरसा बलात् ॥ निर्जगाम महावेगात्तमुल्लंघ्य नृपं तदा ॥ ३८ ॥ गच्छन्तं तं समालोक्य राजा कोपसमन्वितः ॥ मुमोच विशिखांस्तीक्ष्णांश्चापमाकृष्य यत्नतः ॥ ३९ ॥ क्षणं दृष्टिपथं राज्ञः क्षणं चादर्शनं गतः ॥ कुर्वन्बहुविधारावं सूकरः समुपाद्रवत् ॥ ४० ॥ हरिश्चंद्रोऽतिकुपितो मृगस्यानुजगाम ह ॥ अश्वेन वायुवेगेन विकृष्य च शरासनम् ॥ ४१ ॥ इतस्ततस्ततः सैन्यमगमच्च वनान्तरम् ॥ एकाकी नृपतिः कोलं व्रजन्तं समुपाद्रवत् ॥ ४२ ॥ मध्याह्नसमये राजा सम्प्राप्तो विजने वने ॥ तृषितः

वराहपर दृष्टि पड़ते ही राजा उसे मारनेके लिए बाणोंका प्रयोग करने लगे ॥ ३७ ॥ उस समय उनके बाणोंको विफल करके बलपूर्वक बड़ी शीघ्रताके साथ वह सूअर वहाँसे निकल भागा ॥३८॥ उसने राजाकी बिल्कुल परवाह नहीं की। अब हरिश्चन्द्रके क्रोधकी सीमा नहीं रही । भागते हुए उस सूअरको देखकर उन्होंने धनुषपर यत्नपूर्वक तीक्ष्ण बाण चढ़ाये और खींच-खींचकर उसपर छोड़ने लगे ॥ ३९ ॥ कभी वह दिखाई पड़ता कभी ओझल हो जाता और कभी अनेक प्रकारके शब्द करता हुआ राजाके पास पहुँच जाता था ॥ ४० ॥ महाराज हरिश्चन्द्र क्रोधवश उस सूअरके पीछे पड़ गये । अब वे वायुकी तुलना करनेवाले शीघ्रगामी घोड़ेपर चढ़े और हाथमें धनुष लेकर उन्होंने उसका पीछा करना आरम्भ किया । एक वनसे दूसरे वनतक तो सेना साथ दे सकी । फिर वह पीछे रह गयी और अकेले राजा उस भागते हुए सूअरका पीछा करते रहे ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ठीक मध्याह्नकालमें राजा हरिश्चन्द्र एक निर्जन वनमें जा पहुँचे । भूख-

प्याससे उनका चित्त घबरा रहा था। उनका वाहन और वे बहुत थक गये थे ॥४३॥ सूअर आँखोंसे ओझल हो चुका था। अतः वे चिन्तासे अधीर हो गये। उस बीहड़ वनमें कौन रास्ता किधर जाता है, यह जाननेमें भी वे असमर्थ हो गये। उनकी दशा बड़ी ही दयनीय हो गयी थी। वे सोचने लगे—'अब क्या करें, किधर जायँ? इस बीहड़ निर्जन वनमें कौन मेरी सहायता करेगा तथा मार्ग भूल जानेसे मैं जा भी कहाँ सकता हूँ' ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ इस प्रकार महाराज हरिश्चन्द्र उस जनशून्य वनमें चिन्ता कर रहे थे। उनकी घबराहटकी सीमा नहीं थी। इतनेमें एक स्वच्छ जलवाली नदी उन्हें दिखाई पड़ी ॥४६॥ उसे देख वे बड़े हर्षित होकर घोड़ेसे उतर गये। अश्वको स्वादिष्ट जल पिलाया और स्वयं भी पीया ॥४७॥ जब जल पी लेनेपर उनका चित्त शान्त हो गया, तब वे नगरमें जानेका विचार करने लगे। परन्तु दिग्भ्रम होनेके कारण कुछ भी निश्चय नहीं कर पाये ॥ ४८ ॥ इतनेमें विश्वामित्र एक वृद्ध ब्राह्मणका रूप धारण करके उनके सामने आ गये। श्रेष्ठ ब्राह्मणको सामने देखकर राजाने आदरपूर्वक प्रणाम किया ॥ ४९ ॥ वे प्रणाम कर ही रहे थे कि विश्वामित्रने उनसे कहा—'हे महाराज! तुम्हारा कल्याण

क्षुधितोऽत्यर्थं बभूव श्रांतवाहनः ॥ ४३ ॥ सूकरोऽदर्शनं प्राप्तो राजा चिंतातुरोऽभवत् ॥ मार्गभ्रष्टोऽतिविपिने दारुणे दीनवत्स्थितः ॥ ४४ ॥ किं करोमि क्व गच्छामि न सहायोऽस्ति मे वने ॥ अज्ञातस्वपथः कुत्र व्रजामीति व्यचिंतयत् ॥ ४५ ॥ एवं चिंतयतस्तत्र विपिने जनवर्जिते ॥ राजा चिंतातुरोऽपश्यन्नदीं सुविमलोदकाम् ॥ ४६ ॥ वीक्ष्य तां मुदितो राजा पाययित्वा तुरङ्गकम् ॥ अश्वादुत्तीर्य विमलं पपौ पानीयमुत्तमम् ॥४७॥ जलं पीत्वा नृपस्तत्र सुखमाप महीपतिः ॥ इयेष नगरं गंतुं दिग्भ्रमेणातिमोहितः ॥ ४८ ॥ विश्वामित्रस्तु संप्राप्तो वृद्धब्राह्मणरूपधृक् ॥ ननाम वीक्ष्य राजा तं प्रीतिपूर्वं द्विजोत्तमम् ॥ ४९ ॥ तमुवाच गाधिराजः प्रणमंतं नृपोत्तमम् ॥ स्वस्ति तेऽस्तु महाराज किमर्थमिह चागतः ॥ ५० ॥ एकाकी विजने राजन्किं चिकीर्षितमत्र ते॥ ब्रूहि सर्वं स्थिरो भूत्वा कारणं नृपसत्तम ॥५१॥ राजोवाच ॥ सूकरोऽतिमहाकायो बलवान्पुष्पकाननम्॥ समुपेत्य ममर्दाशु कोमलान्पुष्पपादपान् ॥५२॥ तं निवारयितुं दुष्टं करे कृत्वा च कार्मुकम् ॥ ससैन्योऽहं स्वनगरान्निर्गतो मुनिसत्तम ॥५३॥ गतोऽसौ दृक्पथात्पापो मायावी क्वापि वेगवान् ॥ पृष्ठतोऽहमपि प्राप्तः सैन्यं क्वापि गतं मम ॥ ५४ ॥ क्षुधितस्तृषितश्चाहं सन्यभ्रष्टस्त्विहागतः ॥ न जाने पुरमार्गं च तथा सैन्यगतिं मुने ॥ ५५ ॥ पंथानं दर्शय विभो व्रजामि नगरं प्रति ॥ ममात्र भाग्ययोगेन प्राप्तस्त्वं विजने वने ॥ ५६ ॥

हो। यहाँ कैसे आनेका कष्ट किया? ॥५०॥ हे राजन्! किस अभिप्रायसे इस निर्जन वनमें तुम अकेले आ गये? हे राजेन्द्र! शान्तचित्त होकर अपने आगमनका कारण बतानेकी कृपा करो' ॥ ५१ ॥ राजा हरिश्चन्द्रने कहा—हे मुनिवर! एक स्थूल शरीरवाला बलवान् सूअर मेरे उपवनमें पहुँचकर पुष्पोंके कोमल वृक्षोंको रौंदने लगा ॥ ५२ ॥ उसीको रोकनेके लिये हाथमें धनुष लेकर मैं सेनासहित अपने नगरसे निकल पड़ा ॥ ५३ ॥ अब वह मायावी सूअर आँखोंसे ओझल हो गया है। पता नहीं, इतनी शीघ्रतासे वह कहाँ चला गया। मैं भी उसके पीछे लग गया था। तभी मेरी सेना किसी दूसरी ओर चली गयी ॥५४॥ सैनिकोंका साथ छूट जानेपर भूख और प्याससे आतुर होकर मैं यहाँ आ गया। हे मुने! मैं नगरमें जानेका मार्ग भूल गया हूँ। सेना किधर चली गयी—इसका भी मुझे पता नहीं है ॥५५॥ हे विभो! आप कृपया मार्ग बता दें, जिससे मैं नगरमें जा सकूँ। मेरे सौभाग्यसे ही इस जनशून्य वनमें आपका दर्शन हुआ है ॥ ५६ ॥

मैं अयोध्याका राजा हूँ। मेरा नाम हरिश्चन्द्र है। इस समय मैं राजसूय यज्ञके नियमका पालन करता हूँ। जिसकी जिस वस्तुकी इच्छा हो, वही वस्तु वह मुझसे पा सकता है ॥ ५७ ॥ हे ब्रह्मन्! हे द्विजवर! यदि आप यज्ञ करनेके लिये धन चाहते हों तो अयोध्या पधारनेकी कृपा करें। मैं आपको प्रचुर धन दूँगा ॥ ५८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते सप्तमस्कन्धे पाण्डेयराम-तेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा' भाषाटीकायामष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

(विश्वामित्रका दुर्व्यवहार) व्यासजी बोले—हे राजन्! राजा हरिश्चन्द्रकी यह बात सुनकर विश्वामित्र मुनिके मुखपर मुसकान छा गयी। वे उनसे कहने लगे—॥ १ ॥ हे राजन्! यह पुण्यमय पवित्र तीर्थ पापोंका नाश करनेवाला है। हे महाभाग! इसमें स्नान करके पितरोंका तर्पण करो ॥ २ ॥ हे भूपते! यह समय भी बहुत उत्तम है। इस शुभ अवसरपर इस परम पावन तीर्थमें स्नान करके अपनी शक्तिके अनुसार दान करो ॥ ३ ॥ स्वायम्भुव मनुने कहा है, जो व्यक्ति महान् पवित्र तीर्थमें पहुँचकर वहाँ स्नान किये बिना ही लौटकर चला जाता है,

अयोध्याधिपतिश्चाहं हरिश्चन्द्रोऽतिविश्रुतः ॥ राजसूयस्य कर्ता च वांछितार्थप्रदः सदा ॥ ५७ ॥ धनेच्छा यदि ते ब्रह्मन्यज्ञार्थं द्विजसत्तम ॥ आगन्तव्यमयोध्यायां दास्यामि विपुलं धनम् ॥ ५८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

॥ व्यास उवाच ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा भूपतेः कौशिको मुनिः ॥ प्रहस्य प्रत्युवाचेदं हरिश्चंद्रं तदा नृप ॥ १ ॥ राजंस्तीर्थमिदं पुण्यं पावनं पापनाशम् ॥ स्नानं कुरु महाभाग पितॄणां तर्पणं तथा ॥ २ ॥ कालः शुभतमोऽस्तीह तीर्थे स्नात्वा विशांपते ॥ दानं ददस्व शक्त्याऽत्र पुण्यतीर्थेऽतिपावने ॥ ३ ॥ प्राप्य तीर्थं महापुण्यमस्नात्वा यस्तु गच्छति ॥ स भवेदात्महा भूप इति स्वायंभुवोऽब्रवीत् ॥ ४ ॥ तस्मात्तीर्थवरे राजन्कुरु पुण्यं स्वशक्तितः ॥ दर्शयिष्यामि मार्गं ते गन्ताऽसि नगरं ततः ॥ ५ ॥ आगमिष्याम्यहं मार्गदर्शनार्थं तवानघ ॥ त्वया सहाद्य काकुत्स्थ तव दानेन तोषितः ॥ ६ ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं राजा मुनेः कपटमंडितम् ॥ वासांस्युत्तार्य विधिवत्स्नातुमभ्याययौ नदीम् ॥७॥ बंधयित्वा हयं वृक्षे मुनिवाक्येन मोहितः ॥ अवश्यंभावियोगेन तद्वशस्तु तदाऽभवत् ॥ ८ ॥ राजा स्नानविधिं कृत्वा संतर्प्य पितृदेवताः ॥ विश्वामित्रमुवाचेदं स्वामिन्दानं ददामि ते ॥ ९ ॥ यदिच्छसि महाभाग तत्ते दास्यामि सांप्रतम् ॥ गावो भूमिर्हिरण्यं च गजाश्वरथवाहनम् ॥ १० ॥ नादेयं मे

वह आत्मघाती होता है ॥ ४ ॥ अतएव हे राजन्! तुम इस उत्तम तीर्थमें अपनी शक्तिके अनुसार दान-पुण्य अवश्य करो। तुम्हारे दानसे सन्तुष्ट होकर मैं तुम्हें मार्ग दिखला दूँगा, तब तुम अपने नगरको चले जाना ॥ ५ ॥ ६ ॥ विश्वामित्रके इस वचनमें कपट भरा हुआ था। सो सुनकर महाराज हरिश्चन्द्रने अपने वस्त्र उतारे और विधिवत् स्नान करनेके लिए वे नदीके तटपर गये ॥ ७ ॥ घोड़ेको उन्होंने एक वृक्षमें बाँध दिया था। विश्वामित्रके कपट-वाक्यसे राजाकी बुद्धि विमोहित हो गयी थी, अथवा होनी टाली नहीं जा सकती—इसे सत्य करनेके लिये उस समय राजा मुनिके वशीभूत हो गये थे ॥ ८ ॥ उन्होंने विधिवत् स्नान करके पितरों और देवताओंका तर्पण किया। तदनन्तर विश्वामित्रसे कहा—हे स्वामिन्! मैं आपको दान देनेके लिये तैयार हूँ ॥ ९ ॥ हे महाभाग! आपकी जो इच्छा होगी वही दूँगा। गौ, पृथ्वी, सोना, हाथी, घोड़ा और रथ आदि वाहन—आप चाहे जो ले सकते हैं। मेरे पास कोई भी वस्तु अदेय

नहीं है। सर्वोत्तम राजसूय यज्ञमें बहुतेरे मुनिगण पधारे थे। उनके समक्ष इस व्रतका पालन करनेकी मैं प्रतिज्ञा कर चुका हूँ ॥ १० ॥ ११ ॥ अतएव हे मुने ! इस उत्तम तीर्थमें भाग्यवश आपका दर्शन प्राप्त हुआ है। आप जो भी वस्तु चाहते हों, उसके लिये आज्ञा दें। मैं आपका मनोरथ पूर्ण करनेके लिये प्रस्तुत हूँ' ॥ १२ ॥ विश्वामित्र बोले—हे राजन् ! तुम्हारी विपुल कीर्ति संसारमें व्याप्त है—इस बातकी जानकारी मुझे बहुत पहलेसे है। वसिष्ठने कहा था कि 'भूमण्डलपर कोई ऐसा दाता नहीं है। वे महाराज हरिश्चन्द्र सूर्यवंशमें उत्पन्न हुए हैं। उनके समान दानशील राजा न पहले हुआ है और न आगे होगा ॥ १३ ॥ १४ ॥ उनके पिताका नाम त्रिशंकु था। पृथ्वीपर वे परम उदार माने जाते हैं।' इसलिये हे राजन् ! मैं तुमसे प्रार्थना करता हूँ कि मेरे यहाँ पुत्रके विवाहकी समस्या उपस्थित है। हे महाभाग ! इस कार्यको सम्पन्न करनेके लिये मुझे धन देनेकी कृपा करिए। राजाने कहा—विप्रेन्द्र ! आप विवाह कीजिये। मैं आपके आज्ञानुसार धन देनेको तैयार हूँ। आप जितना धन चाहते हों, उतना दिया जायगा ॥ १५ ॥ १६ ॥ व्यासजी कहते हैं—हे राजन् ! इस प्रकार हरिश्चन्द्रके कहने-

किमप्यस्ति कृतमेतद्व्रतं पुरा ॥ राजसूये मखश्रेष्ठे मुनीनां सन्निधावपि ॥ ११ ॥ तस्मात्त्वमिह सम्प्राप्तस्तीर्थेऽस्मिन्प्रवरे मुने ॥ यत्तेऽस्ति वांछितं ब्रूहि ददामि तव वांछितम् ॥ १२ ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ मया पूर्वं श्रुता राजन्कीर्तिस्ते विपुला भुवि ॥ वसिष्ठेन च सम्प्रोक्ता दाता नास्ति महीतले ॥ १३ ॥ हरिश्चंद्रो नृपश्रेष्ठः सूर्यवंशे महीपतिः ॥ तादृशो नृपतिर्दाता न भूतो न भविष्यति ॥ १४ ॥ पृथिव्यां परमोदारस्त्रिशंकुतनयो यथा ॥ अतस्त्वां प्रार्थयाम्यद्य विवाहो मेऽस्ति पार्थिव ॥ १५ ॥ पुत्रस्य च महाभाग तदर्थं देहि मे धनम् ॥ राजोवाच ॥ विवाहं कुरु विप्रेन्द्र ददामि प्रार्थितं तव ॥१६॥ यदिच्छसि धनं कामं दाता तस्यास्मि निश्चितम् ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्तः कौशिकस्तेन वंचनातत्परो मुनिः ॥१७॥ उद्भाव्य मायां गांधर्वीं पार्थिवायाप्यदर्शयत् ॥ कुमारः सुकुमारश्च कन्या च दशवार्षिकी ॥ १८ ॥ एतयोः कार्यमप्यद्य कर्तव्यं नृपसत्तम ॥ राजसूयाधिकं पुण्यं गृहस्थस्य विवाहतः ॥ १९ ॥ भविष्यति तवाद्यैव विप्रपुत्रविवाहतः ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं राजा मायया तस्य मोहितः ॥ २० ॥ तथेति च प्रतिज्ञाय नोवाचाल्पं वचस्तथा ॥ तेन दर्शितमार्गोऽसौ नगरं प्रति जग्मिवान् ॥ २१ ॥ विश्वामित्रोऽपि राजानं वंचयित्वाऽऽश्रमं ययौ ॥ कृतोद्वाहविधिस्तावद्विश्वामित्रोऽब्रवीन्नृपम् ॥ २२ ॥ वेदीमध्ये नृपाद्य त्वं देहि दानं यथेप्सितम् ॥ राजोवाच ॥ किं तेऽभीष्टं द्विज ब्रूहि ददामि

पर उन्हें ठगनेके लिये पूर्ण प्रयत्नशील विश्वामित्रने गान्धर्वी माया सामने उपस्थित कर दी। तदनुसार एक सुकुमार पुत्र और दस वर्षकी कन्या—ये दोनों उन्हें दृष्टिगोचर होने लगे ॥ १७ ॥ १८ ॥ मुनिने कहा—'हे नृपश्रेष्ठ ! आज इन्हीं दोनोंका विवाह करना परम आवश्यक हो गया है। किसी गृहस्थके लड़के-लड़कीका विवाह करा दिया जाय तो उसका पुण्य राजसूय यज्ञसे भी बढ़कर होता है ॥ १९ ॥ इस समय तुम यदि इस विवाहकार्यको सम्पन्न कर देते हो तो अवश्य पुण्यके भागी बन जाओगे।' महाराज हरिश्चन्द्र विश्वामित्रकी मायासे अपनी विवेकशक्ति खो चुके थे ॥ २० ॥ उपर्युक्त बात सुनकर उन्होंने दान देनेकी प्रतिज्ञा कर ली और कहा—'बहुत अच्छा, मैंने जो कहा है, उसमें किंचिन्मात्र त्रुटि न होगी।' तब मुनिने मार्ग बता दिया और राजा उसी रास्ते अपने नगरको चले गये ॥ २१ ॥ उन्हें ठगकर विश्वामित्रने भी अपने आश्रमकी राह ली। दूसरे दिन हरिश्चन्द्रके पास पहुँचकर उन्होंने कहा—

॥ २२ ॥ हे राजन्! विवाह-वेदीका कार्य पूर्ण करनेके लिये इस सुअवसरपर आज तुम मुझे अभिलषित दान देनेकी कृपा करो।' राजा हरिश्चन्द्रने कहा—हे द्विजवर! आप क्या चाहते हैं, बताइये। मैं आपकी अभिलषित वस्तु अवश्य दूँगा ॥ २३ ॥ मेरे लिए यदि जगत्में कोई अदेय वस्तु है तो वह केवल यश है। क्योंकि जिसने धन पाकर यश नहीं कमाया, उसका जीवन व्यर्थ समझा जाता है ॥ २४ ॥ निर्मल यशके कारण परलोकमें सुख-सुविधाएँ प्राप्त होती हैं। विश्वामित्र बोले—हे महाराज! परम पुनीत विवाहके इस शुभ अवसरपर आप हाथी, घोड़ा, रथ और रत्नोंसे भरा-पूरा सम्पूर्ण राज्य वरको दहेजके रूपमें दे दीजिये। व्यासजी कहते हैं—हे राजन्! विश्वामित्रकी मायासे मोहित हो जानेके कारण महाराज हरिश्चन्द्रने उनकी बात सुनकर कुछ भी विचार नहीं किया और झट कह दिया—बहुत ठीक, सारा राज्य मैंने आपको दे दिया।' तब तुरन्त अत्यन्त कठोर हृदयवाले विश्वामित्र बोले—'हाँ, मैंने पा लिया ॥ २५–२७ ॥ परंतु हे राजेन्द्र! हे महामते! अब दानकी साङ्गताके लिए दक्षिणा भी तो चाहिये। क्योंकि मनुने कहा है कि बिना साङ्गताका दान निष्फल समझा जाता है ॥२८॥ अतएव दानको सफल

वांछितं किल ॥ २३ ॥ अदेयमपि संसारे यशःकामोऽस्मि सांप्रतम् ॥ व्यर्थं हि जीवितं तस्य विभवं प्राप्य येन वै ॥२४॥ नोपार्जितं यशः शुद्धं परलोकसुखप्रदम् ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ राज्यं देहि महाराज वराय सपरिच्छदम् ॥ २५ ॥ गजाश्वरथरत्नाढ्यं वेदीमध्येऽतिपावने ॥ व्यास उवाच ॥ मोहितो मायया तस्य श्रुत्वा वाक्यं मुनेर्नृपः ॥ २६ ॥ दत्तमित्युक्तवान्राज्यमविचार्य यदृच्छया ॥ गृहीतमिति तं प्राह विश्वामित्रोऽतिनिष्ठुरः ॥ २७ ॥ दक्षिणां देहि राजेन्द्र दानयोग्यां महामते ॥ दक्षिणारहितं दानं निष्फलं मनुरब्रवीत् ॥ २८ ॥ तस्माद्दानफलाय त्वं यथोक्तां देहि दक्षिणाम् ॥ इत्युक्तस्तु तदा राजा तमुवाचातिविस्मितः ॥ २९ ॥ ब्रूहि कियद्धनं तुभ्यं देयं स्वामिन्मयाऽधुना ॥ दक्षिणानिष्क्रयं साधो वद तावत्प्रमाणकम् ॥ ३० ॥ दानपूर्त्यै प्रदास्यामि स्वस्थो भव तपोधन ॥ विश्वामित्रस्तु तच्छ्रुत्वा तमाह मेदिनीपतिम् ॥ ३१ ॥ हेमभारद्वयं सार्धं दक्षिणां देहि साम्प्रतम् ॥ दास्यामीति प्रतिश्रुत्य तस्मै राजाऽतिविस्मितः ॥ ३२ ॥ तदैव सैनिकास्तस्य वीक्षमाणाः समागताः ॥ दृष्ट्वा महीपतिं व्यग्रं तुष्टुवुस्ते मुदान्विताः ॥ ३३ ॥ व्यास उवाच ॥ श्रुत्वा तेषां वचो राजा नोक्त्वा किंचिच्छुभाशुभम् ॥ चिंतयन्स्वकृतं कर्म ययावंतःपुरे

बनानेके लिये तुम यथोचित दक्षिणा देनेका प्रबन्ध करो।' हे राजन्! जब विश्वामित्रने यों कहा, तब हरिश्चन्द्रके आश्चर्यकी सीमा नहीं रही। वे उनसे कहने लगे—॥ २९ ॥ 'हे स्वामिन्! इस समय आपकी सेवामें कितना धन उपस्थित करना चाहिये? हे साधो! आप बतायें, जितनी दक्षिणा हो, उसे देनेके लिये मैं तत्पर हूँ। हे तपोधन! आप शान्त रहिये। दानकी पूर्तिके लिये मैं दक्षिणा अवश्य दूँगा।' राजा हरिश्चन्द्रकी बात सुनकर विश्वामित्र बोले—'हे राजन्! ढाई भार सोना दक्षिणामें दीजिये।' यह सुनकर विस्मयमुग्ध राजाने उत्तर दिया—'हाँ ठीक है, दूँगा।' ॥ ३०–३२ ॥ उसी समय राजा हरिश्चन्द्रके सैनिक आ पहुँचे। महाराजको देखकर उनके मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई, परन्तु उन्हें चिन्तित देखकर सैनिकोंने प्रार्थनापूर्वक उनसे चिन्ताका कारण पूछा ॥ ३३ ॥ व्यासजी कहते हैं—हे राजन्! सैनिकोंके पूछनेपर महाराज हरिश्चन्द्रने भला-बुरा कुछ भी उत्तर नहीं दिया। अपने किये हुए कार्यपर विचार करते हुए

वे अन्तःपुरमें चले गये ॥ ३४ ॥ वहाँ सोचा—अरे ! जिसमें अपना सर्वस्व चला जाय, ऐसा दान देना मैंने स्वीकार ही क्यों किया ? इस ब्राह्मणने तो ठगोंकी भाँति वाग्जालमें फँसाकर मुझे ठग लिया ॥३५॥ सामग्रियों सहित सम्पूर्ण राज्य उस ब्राह्मणको देनेके लिये मैं वचनबद्ध हो गया, फिर साथमें ढाई भार सोना दक्षिणा देनेकी भी प्रतिज्ञा कर ली ॥ ३६ ॥ मुनिका यह कपट मेरी समझमें नहीं आ सका । अकस्मात् उस तपस्वी ब्राह्मणके धोखेमें मैं पड़ गया ॥ ३७ ॥ निश्चय ही विधिका विधान समझमें नहीं आता । पता नहीं, अब भविष्यमें क्या होनेवाला है । इस प्रकार गहरी चिन्तामें पड़े हुए राजा हरिश्चन्द्र अन्तःपुरमें चले गये ॥३८॥ उन्हें चिन्ताग्रस्त और उदास देखकर रानीने चिन्ताका कारण पूछा और कहा—'प्रभो ! इस समय आप क्यों इतने उदास हैं ? कौनसी चिन्ता आपको सता रही है ? मुझे बतानेकी कृपा करें ॥ ३९ ॥ हे राजेन्द्र ! आपका पुत्र सकुशल है । राजसूय यज्ञमें आपको सफलता प्राप्त हो गयी है । फिर शोक क्यों करते हैं ? इसका कारण स्पष्ट करनेकी कृपा कीजिये ॥ ४० ॥ इस समय बलवान् अथवा निर्बल कोई कहीं भी आपका शत्रु नहीं है । वरुणदेव भी आपके व्यवहारसे

ततः ॥ ३४ ॥ किं मया स्वीकृतं दानं सर्वस्वं यत्समर्पितम् ॥ वंचितोऽहं द्विजेनात्र वने पाटच्चरैरिव ॥ ३५ ॥ राज्यं सोपस्करं तस्मै मया सर्वं प्रतिश्रुतम् ॥ भारद्वयं सुवर्णस्य सार्धं च दक्षिणा पुनः ॥ ३६ ॥ किं करोमि मतिर्भ्रष्टा न ज्ञातं कपटं मुनेः ॥ प्रतारितोऽहं सहसा ब्राह्मणेन तपस्विना ॥ ३७ ॥ न जाने दैवकार्यं वै हा दैव किं भविष्यति ॥ इति चिन्तापरो राजा गृहं प्राप्तोऽतिविह्वलः ॥ ३८ ॥ पतिं चिंतापरं दृष्ट्वा राज्ञो पप्रच्छ कारणम् ॥ किं प्रभो विमना भासि का चिंता ब्रूहि सांप्रतम् ॥ ३९ ॥ वनात्पुत्रः समायातो राजसूयः कृतः पुरा ॥ कस्माच्छोचसि राजेन्द्र शोकस्य कारणं वद ॥ ४० ॥ नारातिर्विद्यते क्वापि बलवान्दुर्बलोऽपि वा ॥ वरुणोऽपि सुसंतुष्टः कृतकृत्योऽसि भूतले ॥ ४१ ॥ चिंतया क्षीयते देहो नास्ति चिंतासमा मृतिः ॥ त्यज्यतां नृपशार्दूल स्वस्थो भव विचक्षण ॥ ४२ ॥ तन्निशम्य प्रियावाक्यं प्रीतिपूर्वं नराधिपः ॥ प्रोवाच किंचिच्चिन्तायाः कारणं च शुभाशुभम् ॥ ४३ ॥ भोजनं न चकारासौ चिंताविष्टस्तथा नृपः ॥ सुप्त्वाऽपि शयने शुभ्रे लेभे निद्रां न भूमिपः ॥ ४४ ॥ प्रातरुत्थाय चिंतार्तो यावत्संध्यादिकाः क्रियाः ॥ करोति नृपतिस्तावद्विश्वामित्रः समागतः ॥ ४५ ॥ क्षत्रा निवेदितो राज्ञे मुनिः सर्वस्वहारकः ॥ आगत्योवाच राजानं प्रणमंतं पुनः पुनः ॥ ४६ ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ राजंस्त्यज स्वराज्यं मे देहि वाचा प्रतिश्रुतम् ॥ सुवर्णं स्पृश राजेन्द्र

परम सन्तुष्ट हैं । जगत्में आप धन्यवादके पात्र माने जाते हैं ॥ ४१ ॥ परम बुद्धिमान् हे राजेन्द्र ! चिन्तासे शरीर क्षीण हो जाता है । चिन्ताके समान दूसरी कोई मृत्यु नहीं है । अतः आप इसे छोड़कर स्वस्थ हो जाइये ॥ ४२ ॥ हे राजन् ! पत्नीके वचन सुनकर महाराज हरिश्चन्द्रने प्रीतिपूर्वक उसे चिन्ताका कारण बतलाना चाहा, पर बता नहीं सके । उस समय उनका रोम-रोम चिन्तासे व्याप्त था । भोजन तक छूट गया । वे स्वच्छ शय्यापर सोये थे, परन्तु उन्हें नींद नहीं आ सकी ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ चिन्तातुर महाराज हरिश्चन्द्र प्रातःकाल उठकर जब सन्ध्या-वन्दन आदि क्रियायें सम्पन्न कर रहे थे, ठीक उसी समय विश्वामित्र वहाँ आ धमके ॥४५॥ उन सर्वस्वहारी मुनिके आनेकी सूचना द्वारपालोंने राजाके पास पहुँचायी । आज्ञा पाकर मुनि अन्दर आये । राजाने उन्हें बार-बार प्रणाम किया । उसी क्षण मुनि कहने लगे ॥ ४६ ॥ विश्वामित्र कहा—हे राजन् ! राज्यकी ममता छोड़कर अब इसे मुझे दे दो,

आज्ञा पाकर मुनि अन्दर आये। राजाने उन्हें बार-बार प्रणाम किया। उसी क्षण मुनि कहने लगे ॥ ४६ ॥ विश्वामित्र कहा—हे राजन्! राज्यकी ममता छोड़कर अब इसे मुझे दे दो,

क्योंकि तुम इसे मुझे दे चुके हो। हे राजेन्द्र! अब सांगताके लिए सुवर्ण-दक्षिणा देकर तुम्हें अपनी सत्यवादिता सिद्ध करनी चाहिये ॥४७॥ राजा हरिश्चन्द्र बोले—कुशिक-वंशको सुशोभित करनेवाले हे प्रभो! अब यह राज्य मेरा नहीं है। मैं इसे दे चुका। मैं यहाँसे अन्यत्र चला जाऊँगा, आप चिन्ता न करें ॥ ४८ ॥ हे ब्रह्मन्! हे विभो! हे द्विजवर! मेरा सर्वस्व आपकी सेवामें समर्पित है। आप इसपर अपना अधिकार कर लें। अभी इस समय दक्षिणावाला सुवर्ण देनेमें मैं असमर्थ हूँ। जिस समय मेरे पास धन आयेगा, उसी क्षण मैं आपकी दक्षिणा अवश्य चुका दूँगा ॥४९॥५०॥ इस प्रकार विश्वामित्रसे बातचीत करके राजा हरिश्चन्द्रने अपने पुत्र रोहित तथा भार्या माधवीसे कहा—'यह सम्पूर्ण राज्य इन ब्राह्मणदेवताको मैं दान कर चुका हूँ। ५१ ॥ हाथी, घोड़े, रथ, रत्न और सुवर्ण आदि सभी सामान इस दानके अन्तर्गत आ गये। केवल हम तीन व्यक्तियोंके शरीरोंको छोड़कर और सबका सब इन्हें समर्पित हो गया ॥ ५२ ॥ अतः हम लोगोंको अब अयोध्या छोड़कर किसी गहन वनमें चले चलना चाहिये। ये मुनि इस समृद्धिशाली राज्यका भलीभाँति उपभोग करें' ॥ ५३ ॥

सत्यवाग्भव साम्प्रतम् ॥ ४७ ॥ हरिश्चन्द्र उवाच ॥ स्वामिन्राज्यं तवेदं मे मया दत्तं किलाधुना ॥ त्यक्त्वाऽन्यत्र गमिष्यामि मा चिंतां कुरु कौशिक ॥ ४८ ॥ सर्वस्वं मम ते ब्रह्मन्गृहीतं विधिवद्विभो ॥ सुवर्णदक्षिणां दातुमशक्तोऽस्म्यधुना द्विज ॥ ४९ ॥ दानं ददामि ते तावद्यावन्मे स्याद्धनागमः ॥ पुनश्चेत्कालयोगेन तदा दास्यामि दक्षिणाम् ॥ ५० ॥ इत्युक्त्वा नृपतिः प्राह पुत्रं भार्यां च माधवीम् ॥ राज्यमस्मै प्रदत्तं वै मया वेद्यां सुविस्तरम् ॥ ५१ ॥ हस्त्यश्वरथसंयुक्तं रत्नहेमसमन्वितम् ॥ त्यक्त्वा त्रीणि शरीराणि सर्वं चास्मै समर्पितम् ॥५२॥ त्यक्त्वाऽयोध्यां गमिष्यामि कुत्रचिद्वनगह्वरे ॥ गृह्णात्विदं मुनिः सम्यग्राज्यं सर्वसमृद्धिमत् ॥ ५३ ॥ इत्याभाष्य सुतं भार्यां हरिश्चन्द्रः स्वमंदिरात् ॥ विनिर्गतः सुधर्मात्मा मानयंस्तं द्विजोत्तमम् ॥ ५४ ॥ व्रजंतं भूपतिं वीक्ष्य भार्यापुत्रावुभावपि ॥ चिंतातुरौ सुदीनास्यौ जग्मतुः पृष्ठतस्तदा ॥ ५५ ॥ हाहाकारो महानासीन्नगरे वीक्ष्य तांस्तथा ॥ चुक्रुशुः प्राणिनः सर्वे साकेतपुरवासिनः ॥ ५६ ॥ हा राजन्किं कृतं कर्म कुतः क्लेशः समागतः ॥ वंचितोऽसि महाराज विधिनाऽपंडितेन ह ॥ ५७ ॥ सर्वे वर्णास्तदा दुःखमाप्नुयुस्तं महीपतिम् ॥ विलोक्य भार्यया सार्धं पुत्रेण च महात्मना ॥५८॥ निनिंदुर्ब्राह्मणं तं तु दुराचारं पुरौकसः ॥ धूर्तोऽयमिति भाषंतो दुःखार्ता ब्राह्मणादयः ॥ ५९ ॥ निर्गत्य नगरात्तस्माद्विश्वामित्रः क्षितीश्वरम् ॥

हे राजन्! अपने पुत्र और पत्नीसे यों कहकर परम धार्मिक राजा हरिश्चन्द्र राजभवनसे निकल पड़े। उस समय भी विश्वामित्रके प्रति उन सदाचारी राजाके मुखसे आदरके ही शब्द निकल रहे थे ॥ ५४ ॥ उन्हें जाते देखकर उदास एवं चिन्तित पुत्र रोहित तथा रानी माधवी भी उनके साथ हो गयीं ॥ ५५ ॥ इन तीनोंकी यह स्थिति देखकर नगरमें हाहाकार मच गया। अयोध्यामें रहनेवाले सब प्राणियोंकी आँखें जल बरसाने लगीं और वे चीत्कार करके रोने लगे—हा राजन्! आपने यह क्या कर डाला? कहाँसे क्लेशकी यह घटा आपके ऊपर घिर आयी? हे महाराज! यह निश्चय है कि आप दैववश इस धूर्त ब्राह्मणके धोखेमें आ गये ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ महात्मा पुत्र तथा साध्वी रानीके सहित राजा हरिश्चन्द्रकी यह दशा देखकर सभी वर्णके लोग अत्यन्त दुःख प्रकट करने लगे ॥५८॥ पुरवासियोंने उस दुराचारी ब्राह्मण विश्वामित्रकी घोर निन्दा आरम्भ कर दी। ब्राह्मण लोग दुःखसे घबराकर कहने लगे—यह महान् धूर्त

है ॥ ५९ ॥ महाराज हरिश्चन्द्र नगरसे निकलकर जा रहे थे। इतनेमें विश्वामित्र आ गये और बड़ी निष्ठुरतासे कहने लगे–॥ ६० ॥ हे राजन् ! मेरी दक्षिणाका सुवर्ण अभी देकर जाओ, अथवा कह दो कि मैं नहीं दूँगा तो मैं वह सोना छोड़ दूँगा ॥ ६१ ॥ हे राजन् ! तुम्हारे हृदयमें राज्यका लोभ हो तो इसे भी वापस ले सकते हो। 'देनेके लिए प्रतिज्ञा कर चुका हूँ'— इसपर तुम्हारी मान्यता हो तो फिर देनेमें क्या हिचक है ?' ॥ ६२ ॥ विश्वामित्रके यह कहनेपर सत्यप्रतिज्ञ राजा हरिश्चन्द्रने अत्यन्त दीनता प्रकट करते हुए प्रणाम किया और हाथ जोड़कर कहने लगे ॥ ६३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते सप्तमस्कन्धे 'पीताम्बरा' भाषाटीकायामेकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

(राजा हरिश्चन्द्रका काशीगमन) राजा हरिश्चन्द्रने कहा—उत्तम व्रतका पालन करनेवाले हे मुनिवर ! मेरी प्रतिज्ञा है कि आपको बिना सुवर्ण दिये मैं भोजन नहीं करूँगा। आप विषाद न करें ॥ १ ॥ मेरा जन्म सूर्यवंशमें हुआ है। मैं एक क्षत्रिय-नरेश हूँ। मनुष्योंकी अभिलाषा पूर्ण करनेवाला राजसूय यज्ञ मेरे द्वारा सम्पन्न हो चुका है ॥ २ ॥ हे स्वामिन् ! हे

गच्छंतं तमुवाचेदं समेत्य निष्ठुरं वचः ॥ ६० ॥ दक्षिणायाः सुवर्णं मे दत्त्वा गच्छ नराधिप ॥ नाहं दास्यामि वा ब्रूहि मया त्यक्तं सुवर्णकम् ॥ ६१ ॥ राज्यं गृहाण वा सर्वं लोभश्चेद्धि विवर्तते ॥ दत्तं चेन्मन्यसे राजन्देहि यत्तत्प्रतिश्रुतम् ॥ ६२ ॥ एवं ब्रुवंतं गाधेयं हरिश्चन्द्रो महीपतिः ॥ प्रणिपत्य सुदीनात्मा कृतांजलिपुटोऽब्रवीत् ॥ ६३ ॥ इति श्रीदेवीभगवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

॥ हरिश्चन्द्र उवाच ॥ अदत्त्वा ते हिरण्यं वै न करिष्यामि भोजनम् ॥ प्रतिज्ञा मे मुनिश्रेष्ठ विषादं त्यज सुव्रत ॥ १ ॥ सूर्यवंशसमुद्भूतः क्षत्रियोऽहं महीपतिः ॥ राजसूयस्य यज्ञस्य कर्ता वांछितदो नृषु ॥ २ ॥ कथं करोमि नाकारं स्वामिन्दत्त्वा यदृच्छया ॥ अवश्यमेव दातव्यमृणं ते द्विजसत्तम ॥ ३ ॥ स्वस्थो भव प्रदास्यामि सुवर्णं मनसेप्सितम् ॥ कंचित्कालं प्रतीक्षस्व यावत्प्राप्स्याम्यहं धनम् ॥ ४ ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ कुतस्ते भविता राजन्धनप्राप्तिरतः परम् ॥ गतं राज्यं तथा कोशो बलं चैवार्थसाधनम् ॥ ५ ॥ वृथाऽऽशा ते महीपाल धनार्थे किं करोम्यहम् ॥ निर्धनं त्वां च लोभेन पीडयामि कथं नृप ॥ ६ ॥ तस्मात्कथय भूपाल न दास्यामीति सांप्रतम् ॥ त्यक्त्वाऽऽशां महतीं कामं गच्छाम्यहमतः परम् ॥ ७ ॥ यथेष्टं व्रज राजेन्द्र भार्यापुत्रसमन्वितः ॥ सुवर्णं नास्ति किं तुभ्यं ददामीति वदाधुना ॥ ८ ॥ व्यास उवाच ॥ गच्छन्वाक्यमिदं

द्विजसत्तम ! विप्रोंको इच्छानुसार दान देकर फिर मैं 'नाहीं' कैसे कर सकता हूँ ? आपका ऋण चुकाना मेरा परम कर्तव्य है ॥३॥ शान्त रहिये। मैं आपको अभीष्ट सुवर्ण अवश्य दूँगा। हाँ, जबतक मुझे धन न मिले, तबतक कुछ समयके लिये आप कृपया प्रतीक्षा करें ॥४॥ विश्वामित्र बोले–राजन् ! अब तुम्हें धन कहाँसे मिलेगा ? राज्य हाथसे चला गया। खजानोंपर तुम्हारा अधिकार नहीं रहा। अर्थ उपार्जन करनेकी साधनभूता सेना तुम्हारे पास नहीं रही ॥५॥ हे राजन् ! अब तुम्हें धनकी आशा करना बिल्कुल व्यर्थ है। मैं क्या करूँ ? तुम जैसे निर्धन व्यक्तिको धनके लोभसे मैं पीड़ित भी कैसे करूँ ? ॥ ६ ॥ अतएव हे राजन् ! कह दो, 'अब मैं नहीं दे सकूँगा।' तब मैं धन पानेकी अपनी बड़ी आशा छोड़कर चला जाऊँगा ॥७॥ हे राजेन्द्र ! 'मेरे पास सोना नहीं है, आपको क्या दूँ ?' यों कहकर स्त्री और पुत्रके साथ अब तुम्हें इच्छानुसार चले जाना चाहिये ॥ ८ ॥ व्यासजी कहते हैं–हे राजन् ! महाराज हरिश्चन्द्रने विश्वामित्र

मुनिकी यह बात सुनकर उत्तर दिया—'हे ब्रह्मन् ! आप धैर्य रखें। मैं आपको धन अवश्य दूँगा ॥९॥ हे द्विजवर! मेरे पास अब और कुछ भी नहीं बचा है—यह सत्य है, परन्तु स्त्रीका, मेरा और मेरे पुत्रका पवित्र शरीर तो अभी शेष है। इन्हें बेचकर मैं आपका ऋण अवश्य चुकाऊँगा ॥१०॥ हे द्विजेन्द्र ! हे प्रभो ! आप काशीपुरीमें किसी ग्राहकको खोजिए। स्त्री एवं पुत्र-सहित मैं उसकी सेवा करूँगा ॥ ११ ॥ हे मुने ! हम सब लोग उसके हाथ बिक जायँगे। आप हमारे मूल्यसे ढाई भार सोना लेकर संतुष्ट हो जायँ ॥ १२ ॥ ऐसा कहकर पत्नी और पुत्रके सहित राजा हरिश्चन्द्र उस काशीपुरीमें गये, यहाँ स्वयं भगवान् शंकर अपनी प्राणप्रिया उमाके साथ विराजते हैं ॥१३॥ मनमें आह्लाद उत्पन्न करनेवाली उस दिव्य पुरीको देखकर राजाने कहा—'यह पुरी बड़ी ही देदीप्यमान है। इसका दर्शन पाकर मैं कृतार्थ हो गया।' ॥१४॥ फिर वे गङ्गाके तटपर गये। वहाँ स्नान और देवताओंका तर्पण किया। देवार्चन-विधि सम्पन्न करके वे चारों

श्रुत्वा ब्राह्मणस्य च भूपतिः ॥ प्रत्युवाच मुनिं ब्रह्मन्धैर्यं कुरु ददाम्यहम् ॥ ९ ॥ मम देहोऽस्ति भार्यायाः पुत्रस्य च ह्यनामयः ॥ क्रीत्वा देहं तु तं नूनमृणं दास्यामि ते द्विज ॥ १० ॥ ग्राहकं पश्य विप्रेंद्र वाराणस्यां पुरि प्रभो ॥ दासभावं गमिष्यामि सदारोऽहं सपुत्रकः ॥ ११ ॥ गृहाण कांचनं पूर्णं सार्धं भारद्वयं मुने ॥ मौल्येन दत्त्वा सर्वान्नः संतुष्टो भव भूधर ॥ १२ ॥ इति ब्रुवञ्जगामाथ सह पत्न्या सुतान्वितः ॥ उमया कांतया सार्धं यत्रास्ते शंकरः स्वयम् ॥१३॥ यां दृष्ट्वा च पुरीं रम्यां मनसो ह्लादकारिणीम् ॥ उवाच स कृतार्थोऽस्मि पुरीं पश्यन्सुवर्चसम् ॥१४॥ ततो भागीरथीं प्राप्य स्नात्वा देवादितर्पणम् ॥ देवार्चनं च निर्वर्त्य कृतवान्दिग्विलोकनम् ॥१५॥ प्रविश्य वसुधापालो दिव्यां वाराणसीं पुरीम् ॥ नैषा मनुष्यभुक्तेति शूलपाणेः परिग्रहः ॥ १६ ॥ जगाम पद्भ्यां दुःखार्तः सह पत्न्या समाकुलः ॥ पुरीं प्रविश्य स नृपो विश्वासमकरोत्तदा ॥१७॥ ददृशेऽथ मुनिश्रेष्ठं ब्राह्मणं दक्षिणार्थिनम् ॥ तं दृष्ट्वा समनुप्राप्तं विनयावनतोऽभवत् ॥ १८ ॥ प्राह चैवांजलिं कृत्वा हरिश्चन्द्रो महामुनिम् ॥ इमे प्राणाः सुतश्चाथ प्रिया पत्नी मुने मम ॥ १९ ॥ येन ते कृत्यमस्त्याशु गृहाणाद्य द्विजोत्तम ॥ यच्चान्यत्कार्यमस्माभिस्तन्ममाख्यातुमर्हसि ॥ २० ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ पूर्णः स मासो भद्रं ते दीयतां मम दक्षिणा ॥ पूर्वं तस्य निमित्तं हि स्मर्यते स्ववचो यदि ॥ २१ ॥ राजोवाच ॥ ब्रह्मन्ना-

ओर घूमकर देखने लगे ॥ १५ ॥ उस दिव्य काशीपुरीमें जानेपर राजाने सोचा, यह पुरी त्रिशूलधारी भगवान् शंकरकी सम्पत्ति है। दुःखसे अधीर होकर अत्यन्त घबराये हुए राजा हरिश्चन्द्र पैदल ही चलकर नगरमें प्रविष्ट हुये थे। रानी साथ थी। काशीपुरीमें प्रवेश हो जानेपर महाराजका मन कुछ आश्वस्त-सा हो गया ॥ १६॥१७ ॥ इतनेमें दक्षिणा पानेकी अभिलाषा रखनेवाले मुनिवर विश्वामित्र सामने उपस्थित हो गये। मुनिको देखकर महाराज हरिश्चन्द्रने विनयपूर्वक नम्रता प्रदर्शित करते हुए दोनों हाथ जोड़ लिये और कहा—॥ १८ ॥ 'हे मुने ! ये मेरे प्राण, पुत्र और प्रिय पत्नी सबके सब आपकी सेवामें उपस्थित हैं ॥१९॥ इनमेंसे जिससे आपका काम सध सके, उसे ही आप शीघ्र स्वीकार कर लीजिये। हे मुनिवर! यदि हमसे अन्य कोई कार्य होनेकी सम्भावना हो तो वह भी बतानेकी कृपा करें' ॥ २० ॥ विश्वामित्र बोले—हे राजन् ! तुम्हारा कल्याण हो। आज महीना पूरा हो रहा है। तुम्हें यदि अपनी प्रतिज्ञा याद

हो तो प्रतिश्रुत दक्षिणा देनेका अभी प्रयास करो ॥२१॥ राजाने कहा—ज्ञान और तपके बलसे शोभा पानेवाले हे ब्रह्मन् ! आज अवश्य ही महीना पूरा हो जायगा, परन्तु अभी आधा दिन शेष है। तबतक आप प्रतीक्षा करें। दूसरे दिन न रुकियेगा ॥ २२ ॥ विश्वामित्र बोले— हे महाराज ! ऐसा ही हो। मैं फिर आ जाऊँगा। परन्तु यदि उस समय भी तुम न दे सके तो मैं तुम्हें शाप दे दूँगा ॥ २३ ॥ जब यों कहकर विश्वामित्र चले गये, तब राजा हरिश्चन्द्रने सोचा—'जिसे देनेकी प्रतिज्ञा कर चुका हूँ, वह दक्षिणा इन मुनिको मैं कैसे चुकाऊँ ? ॥ २४ ॥ कहाँसे मेरे धनी-मानी मित्र मिल जायँगे अथवा इतनी सम्पत्ति ही मुझे कहाँ मिल जायगी। किसी दुर्जन व्यक्तिके पास यदि धनका संग्रह हो भी तो मैं उससे माँगूँ कैसे ? ॥२५॥ धर्मशास्त्रोंमें राजाओंके लिए निश्चितरूपसे तीन वृत्तियाँ बतायी गयी हैं। किन्तु माँगना राजाका कर्त्तव्य नहीं है। यदि दक्षिणा चुकाये बिना ही प्राण त्याग दूँ तो ब्राह्मणकी वृत्ति अपहरण करनेके कारण मुझ अत्यन्त अधम एवं पापीको कीड़ेकी योनिमें जाना पड़ेगा। अथवा मैं प्रेत हो जाऊँगा। इससे अच्छा है कि अपनेको ही बेच डालूँ' ॥ २६ ॥ २७ ॥ सूतजी कहते हैं—राजा

द्यापि संपूर्णो मासो ज्ञानतपोबल ॥ तिष्ठत्येकदिनार्धं यत्तत्प्रतीक्षस्व नापरम् ॥ २२ ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ एवमस्तु महाराज आगमिष्याम्यहं पुनः ॥ शापं तव प्रदास्यामि न चेदद्य प्रयच्छसि ॥ २३ ॥ इत्युक्त्वाऽथ ययौ विप्रो राजा चाचिंतयत्तदा ॥ कथमस्मै प्रयच्छामि दक्षिणा या प्रतिश्रुता ॥ २४ ॥ कुतः पुष्टानि मित्राणि कुत्रार्थं सांप्रतं मम ॥ प्रतिग्रहः प्रदुष्टो मे तत्र याञ्चा कथं भवेत् ॥ २५ ॥ राज्ञां वृत्तित्रयं प्रोक्तं धर्मशास्त्रेषु निश्चितम् ॥ यदि प्राणान्विमुञ्चामि ह्यप्रदाय च दक्षिणाम् ॥२६॥ ब्रह्मस्वहा कृमिः पापो भविष्याम्यधमाधमः ॥ अथवा प्रेततां यास्ये वर एवात्मविक्रयः ॥ २७ ॥ सूत उवाच ॥ राजानं व्याकुलं दीनं चिंतयानमधोमुखम् ॥ प्रत्युवाच तदा पत्नी बाष्पगद्गया गिरा ॥२८॥ त्यज चिन्तां महाराज स्वधर्ममनुपालय ॥ प्रेतवद्वर्जनीयो हि नरः सत्यबहिष्कृतः ॥ २९ ॥ नातः परतरं धर्मं वदंति पुरुषस्य च ॥ यादृशं पुरुषव्याघ्र स्वसत्यस्यानुपालनम् ॥ ३० ॥ अग्निहोत्रमधीतं च दानाद्याः सकलाः क्रियाः ॥ भवंति तस्य वैफल्यं वाक्यं यस्यानृतं भवेत् ॥३१॥ सत्यमत्यंतमुदितं धर्मशास्त्रेषु धीमताम् ॥ तारणायानृतं तद्वत्पातनायाकृतात्मनाम् ॥ ३२ ॥ शताश्वमेधानादृत्य राजसूयं च पार्थिवः ॥ कृत्वा राजा सकृत्स्वर्गादसत्यवचनाच्च्युतः ॥ ३३ ॥ राजोवाच ॥ वंशवृद्धिकरश्चायं पुत्रस्तिष्ठति बालकः ॥ उच्यतां वक्तुकामाऽसि यद्वाक्यं गजगामिनि ॥ ३४ ॥

हरिश्चन्द्र व्याकुल होकर नीचा मुख किये हुए ऐसा सोच रहे थे। उनकी स्थिति अत्यन्त दयनीय थी। उस समय रानी गरम श्वास लेती हुई गद्गद वाणीमें कहने लगी—॥२८॥ 'महाराज ! चिन्ता छोड़कर अपने सत्यधर्मका पालन कीजिये। क्योंकि सत्यरूपी धर्मसे बहिष्कृत मनुष्य प्रेतके समान त्याज्य समझा जाता है ॥ २९ ॥ हे पुरुषव्याघ्र ! अपने सत्य वचनका पालन परम श्रेष्ठ धर्म है। पुरुषके लिये इससे बढ़कर कोई धर्म नहीं है ॥ ३० ॥ जिसकी बात मिथ्या हो उसके अग्निहोत्र, वेदाध्ययन और दान आदिकी सभी क्रियाएँ निष्फल हो जाती हैं। ॥ ३१ ॥ धर्मशास्त्रोंमें कहा गया है कि विवेकी पुरुषोंके उद्धारमें जैसे सत्य परम कारण है, वैसे ही दुराचारियोंके पतनमें असत्य ॥ ३२ ॥ सौ अश्वमेध और राजसूय यज्ञ करनेके पश्चात् एक बार झूठ बोल देनेसे एक राजाको स्वर्गसे च्युत हो जाना पड़ा था' ॥३३॥ राजा हरिश्चन्द्रने कहा—हे गजगामिनी ! वंशकी वृद्धि करनेवाला यह पुत्र विद्यमान है ही। अतः जो भी इच्छा हो,

कहो। मैं उसे करनेके लिये तैयार हूँ ॥ ३४ ॥ रानीने कहा—राजन्! आपकी वाणी असत्य नहीं होनी चाहिये। स्त्रियाँ पुत्र प्रसव कर देनेपर सफल हो जाती हैं। अतः आप मुझे धन लेकर दूसरेको दे दें और उसी वित्तसे ब्राह्मणकी दक्षिणा चुकानेकी कृपा करें ॥ ३५ ॥ व्यासजी कहते हैं—हे राजन्! पत्नीकी यह बात सुनकर राजा हरिश्चन्द्र अचेत हो गये। मूर्छा दूर होनेपर अत्यन्त दुखी होनेके कारण विलाप करते हुए कहने लगे—॥३६॥ हे भद्रे! यह बहुत ही दुःखद विषय है, जो तुम्हारे मुखसे ऐसी बातें निकल रही हैं। तुम्हारे मुसकान भरे वचन क्या मुझ पापीको याद नहीं हैं ॥३७॥ हा हा शुचिस्मिते! 'मैं तुमको बेच डालूँ'—तुम्हें ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये। हे भामिनी! तुम यह अप्रिय वचन कैसे कह रही हो? ॥ ३८ ॥ हे राजन्! स्त्रीके बेचनेकी बात सामने आनेपर महाराज हरिश्चन्द्रके धैर्यका बाँध टूट गया। उपर्युक्त बातें कहकर वे भूमिपर गिर पड़े और मूर्छा आ गयी ॥ ३९ ॥ उन्हें पृथ्वीकी गोदमें मूर्च्छित पड़े देखकर राजकुमारीके दुःखकी सीमा नहीं रही। उसने पतिदेवसे करुणापूर्वक यह वचन कहा—॥ ४० ॥ 'महाराज! किसकी असावधानीसे यह संकट उपस्थित हो गया, जिसके

पत्न्युवाच ॥ राजन्माभूदसत्यं ते पुंसां पुत्रफलाः स्त्रियः ॥ तन्मां प्रदाय वित्तेन देहि विप्राय दक्षिणाम् ॥ ३५ ॥ व्यास उवाच ॥ एतद्वाक्यमुपश्रुत्य ययौ मोहं महीपतिः ॥ प्रतिलभ्य च संज्ञां वै विललापातिदुःखितः ॥ ३६ ॥ महद्दुःखमिदं भद्रे यत्त्वमेवं ब्रवीषि मे ॥ किं तव स्मितसंलापा मम पापस्य विस्मृताः ॥ ३७ ॥ हा हा त्वया कथं योग्यं वक्तुमेतच्छुचिस्मिते ॥ दुर्वाच्यमेतद्वचनं कथं वदसि भामिनि ॥३८॥ इत्युक्त्वा नृपतिश्रेष्ठो न धीरो दारविक्रये ॥ निपपात महीपृष्ठे मूर्च्छयाऽतिपरिलुप्तः ॥ ३९ ॥ शयानं भुवि तं दृष्ट्वा मूर्च्छयाऽपि महीपतिम् ॥ उवाचेदं सुकरुणं राजपुत्री सुदुःखिता ॥ ४० ॥ हा महाराज कस्येदमपध्यानादुपागतम् ॥ यस्त्वं निपतितो भूमौ रंकवच्छरणोचितः ॥ ४१ ॥ येनैव कोटिशो वित्तं विप्राणामपवर्जितम् ॥ स एव पृथिवीनाथो भुवि स्वपिति मे पतिः ॥४२॥ हा कष्टं किं तवानेन कृतं दैव महीक्षिता ॥ यद्रिंद्रोपेंद्रतुल्योऽयं नीतः पापामिमां दशाम् ॥ ४३ ॥ इत्युक्त्वा साऽपि सुश्रोणी मूर्च्छिता निपपात ह ॥ भर्तुर्दुःखमहाभारेणासह्येनातिपीडिता ॥ ४४ ॥ शिशुर्दृष्ट्वा क्षुधाविष्टः प्राह वाक्यं सुदुःखितः ॥ तात तात प्रदेह्यन्नं मातर्मे देहि भोजनम् ॥ ४५ ॥ क्षुन्मे बलवती जाता जिह्वाग्रे मेऽतिशुष्यति ॥ ४६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते सप्तमस्कन्धे हरिश्चन्द्रोपाख्याने विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

परिणामस्वरूप शरणदाता होते हुए भी आप दरिद्रकी भाँति धरतीपर पड़े हैं ॥ ४१ ॥ जिन्होंने करोड़ोंकी सम्पत्ति ब्राह्मणोंको सुगमतापूर्वक दे डाली, वे ही पृथिवीपर शासन करनेवाले मेरे पतिदेव आज पृथ्वीपर पड़े हैं ॥ ४२ ॥ हा, महान् दुःखकी बात है। हे दैव! इन नरेशने तुम्हारा कौन-सा अप्रिय कार्य कर दिया, जिससे रूठकर तुमसे इन्द्र और उपेन्द्रकी तुलना करनेवाले महाराजके जीवनमें ऐसी दयनीय दशा उपस्थित कर दी? ॥ ४३ ॥ यह कहती हुई रानी भी मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ी। स्वामीके दुःखका भार उसे असह्य हो गया था। उससे वह अत्यन्त संतप्त थी ॥४४॥ उस समय कुमार रोहित भूखसे कष्ट पा रहा था। उसने माता और पिताकी ओर देखकर कहा—'पिताजी! मुझे अन्न दीजिये। माताजी! मुझे भोजन दो। मुझे बहुत जोरकी भूख लगी है। मेरी जीभ सूखी जा रही है' ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे 'पीताम्बरा' भाषाटीकायां विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

(एक ब्राह्मणके हाथ रानी और राजकुमारका विक्रय) सूतजी बोले-हे राजन् ! इतनेमें महान् तपस्वी विश्वामित्र आ पहुँचे। वे क्रोधमें यमराजकी तुलना कर रहे थे। अपनी दक्षिणाका धन माँगनेके लिये उनका आना हुआ था ॥ १ ॥ मुनिको देखकर राजा हरिश्चन्द्रको मूर्छा आ गयी। वे पुनः पृथ्वीपर गिर पड़े। तब विश्वामित्रने जलके छींटे देकर उनसे यह वचन कहा-॥ २ ॥ राजेन्द्र ! उठो और मेरी अभीष्ट दक्षिणा देनेका प्रयत्न करो। क्योंकि ऋणियोंका ऋणभार बराबर बढ़ता ही रहता है' ॥३॥ मुनिने ठंडे जलके जो छींटे दिये थे, उससे होशमें आकर उन्होंने विश्वामित्रकी ओर देखा। तब द्विजवर विश्वामित्र कुपित होकर आश्वासन देनेके साथ ही राजासे कहने लगे ॥ ४ ॥ विश्वामित्रने कहा—राजन् ! तुम्हें यदि धैर्य अभीष्ट हो तो मुझे दक्षिणा देनेकी कृपा करो। कारण, सत्यके प्रभावसे ही सूर्य तपते हैं। सत्यके ऊपर ही यह पृथ्वी स्थित है ॥ ५ ॥ सत्यपर परम धर्मकी मान्यता निर्भर है तथा स्वर्गकी प्रतिष्ठा

॥ सूत उवाच ॥ एतस्मिन्नंतरे प्राप्तो विश्वामित्रो महातपाः ॥ अंतकेन समः क्रुद्धो धनं स्वं याचितुं हृदा ॥ १ ॥ तमालोक्य हरिश्चन्द्रः पपात भुवि मूर्च्छितः ॥ स वारिणा तमभ्युक्ष्य राजानमिदमब्रवीत् ॥ २ ॥ उत्तिष्ठोत्तिष्ठ राजेंद्र स्वां ददस्वेष्टदक्षिणाम् ॥ ऋणं धारयतां दुःखमहन्यहनि वर्धते ॥ ३ ॥ आप्यायमानः स तदा हिमशीतेन वारिणा ॥ अवाप्य चेतनां राजा विश्वामित्रमवेक्ष्य च ॥४॥ पुनर्मोहं समापेदे ह्यथ क्रोधं ययौ मुनिः ॥ समाश्वास्य च राजानं वाक्यमाह द्विजोत्तमः ॥ ५ ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ दीयतां दक्षिणा सा मे यदि धैर्यमवेक्षसे ॥ सत्येनार्कः प्रतपति सत्ये तिष्ठति मेदिनी ॥ ६ ॥ सत्ये चोक्तः परो धर्मः स्वर्गः सत्ये प्रतिष्ठितः ॥ अश्वमेधसहस्रं तु सत्यं च तुलया धृतम् ॥ ७ ॥ अश्वमेधसहस्राद्धि सत्यमेकं विशिष्यते ॥ अथवा किं ममैतेन प्रोक्तेनास्ति प्रयोजनम् ॥ ८ ॥ मदीयां दक्षिणां राजन्न दास्यति भवान्यदि ॥ अस्ताचलगते ह्यर्के शप्स्यामि त्वामतो ध्रुवम् ॥ ९ ॥ इत्युक्त्वा स ययौ विप्रो राजा चासीद्भयातुरः ॥ दुःखीभूतोऽवनौ निःस्वो नृशंसं मुनिनाऽर्दितः ॥ १० ॥ सूत उवाच ॥ एतस्मिन्नंतरे तत्र ब्राह्मणो वेदपारगः ॥ ब्राह्मणैर्बहुभिः सार्धं निर्ययौ स्वगृहाद्बहिः ॥ ११ ॥ ततो राज्ञी तु तं दृष्ट्वा आयांतं तापसं स्थितम् ॥ उवाच वाक्यं राजानं धर्मार्थसहितं तदा ॥ १२ ॥ त्रयाणामपि वर्णानां पिता ब्राह्मण उच्यते ॥ पितृद्रव्यं हि पुत्रेण ग्रहीतव्यं न

भी सत्यसे ही है। यदि सौ अश्वमेध यज्ञ और सत्य तराजूके पृथक्-पृथक् पलड़ेपर रख दिये जायँ तो उन सौ अश्वमेध यज्ञोंसे सत्य बढ़ जायगा। अस्तु, इन सब बातोंके कहने-सुननेसे क्या प्रयोजन ॥ ६-८ ॥ मुझे तो तुम तुरन्त मेरी दक्षिणा दे दो। राजन् ! यदि दक्षिणा न मिली तो सूर्यके अस्ताचलपर पधारते ही मैं तुम्हें अवश्य शाप दे दूँगा ॥९॥ यों कहकर विश्वामित्र चले गये। भयसे घबराये हुए राजा हरिश्चन्द्रके दुःखका पार नहीं रहा। इस प्रकार मुनिद्वारा सताये जानेपर निर्धन राजा धरतीपर छटपटाने लगे ॥१०॥ सूतजी कहते हैं--उसी समय वेदपारंगत एक ब्राह्मण अपने घरसे बाहर निकले। बहुत-से ब्राह्मणोंकी मण्डली उनके साथ थी ॥११॥ उस समय वे तपस्वी ब्राह्मण इधर ही आ रहे थे। उन्हें सामने स्थित देखकर रानीने महाराज हरिश्चन्द्रसे धर्म और अर्थसे युक्त वचन कहा--॥ १२ ॥ 'हे प्रभो ! ब्राह्मण तीन वर्णोंके पिता कहे जाते हैं। पिताके धनपर पुत्रका अधिकार होता ही है--यह बिल्कुल निश्चित है।

अतः मेरी सम्मति है कि इनसे कुछ धनके लिये प्रार्थना की जाय।' राजा हरिश्चन्द्रने कहा—सुमध्यमे ! मैं क्षत्रिय हूँ। मुझे दान नहीं लेना है ॥ १३ ॥ १४ ॥ माँगना ब्राह्मणोंके लिए ही शोभा देता है, न कि क्षत्रियोंके लिये। ब्राह्मण चारों वर्णोंके गुरु हैं। उनकी तो सदा पूजा करनी चाहिये ॥१५॥ अतः गुरुसे याचना करना उचित नहीं है। क्षत्रिय तो इस नियमके अधिक पोषक होते हैं—दान देना, पढ़ना, यज्ञ करना, शरणमें आये हुएको अभय बनाना और प्रजाकी रक्षा करना—ये ही कर्म क्षत्रियके लिये विहित हैं। क्षत्रिय इस प्रकारका दीन वचन कभी न कहेगा कि 'मुझे कुछ दीजिये।' १६ ॥ १७ ॥ हे देवी ! 'मैं दाता हूँ' यह आस्था मेरे हृदयके कोने-कोनेमें भरी है। अतः कहींसे भी धनका उपार्जन करके ब्राह्मणोंको देनेके लिये मैं तत्पर हूँ ॥ १८ ॥ पत्नीने कहा—स्वामिन् ! कालके प्रभावसे पुरुषके सामने सम और विषम परिस्थिति आया ही करती है। काल ही मनुष्यको अपमानित और सम्मानित करता है। पुरुषके दाता और मँगता होनेमें भी कालकी ही महिमा है ॥ १९ ॥ एक विद्वान् एवं शक्तिशाली ब्राह्मण राजापर कुपित हो जाय, फलस्वरूप राजाको राज्यसे निकल जाना पड़े और वह सुखसे हाथ

संशयः ॥१३॥ तस्मादयं प्रार्थनीयो धनार्थमिति मे मतिः ॥ राजोवाच ॥ नाहं प्रतिग्रहं कांक्षे क्षत्रियोऽहं सुमध्यमे ॥१४॥ याचनं खलु विप्राणां क्षत्रियाणां न विद्यते ॥ गुरुर्हि विप्रो वर्णानां पूजनीयोऽस्ति सर्वदा ॥ १५ ॥ तस्माद्गुरुर्न याच्यः स्यात्क्षत्रियाणां विशेषतः ॥ यजनाध्ययनं दानं क्षत्रियस्य विधीयते ॥ १६ ॥ शरणागतानामभयं प्रजानां प्रतिपालनम् ॥ न चाप्येवं तु वक्तव्यं देहीति कृपणं वचः ॥ १७ ॥ ददामीत्येव मे देवि हृदये निहितं वचः ॥ अर्जितं कुत्रचिद्द्रव्यं ब्राह्मणाय ददाम्यहम् ॥ १८ ॥ पत्न्युवाच ॥ कालः समविषमकरः परिभवसम्मानमानदः कालः ॥ कालः करोति पुरुषं दातारं याचितारं च ॥ १९ ॥ विप्रेण विदुषा राजा क्रुद्धेनातिबलीयसा ॥ राज्यान्निरस्तः सौख्याच्च पश्य कालस्य चेष्टितम् ॥२०॥ राजोवाच ॥ असिना तीक्ष्णधारेण वरं जिह्वा द्विधा कृता ॥ न तु मानं परित्यज्य देहि देहीति भाषितम् ॥ २१ ॥ क्षत्रियोऽहं महाभागे न याचे किंचिदप्यहम् ॥ ददामि वाऽहं नित्यं हि भुजवीर्यार्जितं धनम् ॥ २२ ॥ पत्न्युवाच ॥ यदि ते हि महाराज याचितुं न क्षमं मनः ॥ अहं तु न्यायतो दत्ता देवैरपि सवासवैः ॥ २३ ॥ अहं शास्या च पत्या च रक्ष्या चैव महाद्युते ॥ मन्मौल्यं संगृहीत्वाथ गुर्वर्थः संप्रदीयताम् ॥ २४ ॥ एतद्वाक्यमुपश्रुत्य हरिश्चन्द्रो महीपतिः ॥ कष्टं कष्टमिति प्रोच्य विललापातिदुःखितः ॥ २५ ॥ भार्या च भूयः प्राहेदं क्रियतां वचनं मम ॥ विप्रशापाग्निदग्ध-

धो बैठे—यह सब कालकी ही तो करतूत है ॥ २० ॥ राजा बोले—तीखे धारवाली तलवारसे जीभके दो टुकड़े हो जाना ठीक है, परन्तु सम्मानका परित्याग करके 'दीजिये-दीजिये' कहना मैं उचित नहीं समझता ॥२१॥ हे महाभागे ! मैं क्षत्रिय हूँ। किसीसे कुछ भी माँग नहीं सकता। बल्कि अपने बाहुबलसे उपार्जित धन देनेके लिए मैं सदा तत्पर हूँ ॥ २२ ॥ पत्नीने कहा—महाराज ! यदि आपका मन याचना करनेमें समर्थ नहीं है तो मैं आपकी सम्पत्ति हूँ। इन्द्रसहित सभी देवताओंने न्यायपूर्वक मुझे आपको सौंपा है ॥२३॥ आप स्वामी बनकर मुझ आज्ञाकारिणी पत्नीकी रक्षामें सदा तत्पर रहे हैं। अतएव हे महाद्युते ! अब आप मेरा मूल्य लेकर गुरु विश्वामित्रकी दक्षिणा चुका दीजिये ॥ २४ ॥ हे राजन् ! पत्नीकी बात सुनकर हरिश्चन्द्रके दुःखका पार नहीं रहा। 'महान् कष्ट है, महान् कष्ट है' यों कहकर वे रो पड़े ॥ २५ ॥ तब रानीने उनसे फिर कहा—'आप मेरी यह प्रार्थना स्वीकार करनेकी कृपा कीजिये।

अन्यथा ब्राह्मणके शापरूपी अग्निसे भस्म हो जानेपर नीच योनिमें जन्म लेना पड़ेगा ॥ २६ ॥ जुआ खेलने, शराब पीने, राज्य बढ़ाने तथा भोग भोगनेके लिये तो आप ऐसा करते नहीं हैं। अतः मेरे सहयोगसे गुरुकी दक्षिणा चुकाकर आप अपने सत्यरूपी धर्मको सफल बनाइये' ॥२७॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषाटीकायामेकविंशोऽध्यायः ॥२१॥

व्यासजी कहते हैं—हे राजन्! रानीके द्वारा बार-बार प्रेरित किये जानेपर राजा हरिश्चन्द्रने कहा—'भद्रे! मैं अत्यन्त निष्ठुर होकर तुम्हें बेचनेकी बात स्वीकार करता हूँ ॥१॥ यदि ऐसे परम निर्दय वचन कहनेके लिए तुम्हारी वाणी तत्पर है तो जिसे नीच-से-नीच व्यक्ति भी नहीं कर सकते, वह जघन्य काम मेरे द्वारा होने जा रहा है' ॥ २ ॥ ऐसा कहकर महाराज हरिश्चन्द्र नगरमें चले गये। वहाँ तमाशा दिखानेका एक स्थान निश्चित था। वहीं अपनी धर्मपत्नीको उन्होंने बैठा दिया ॥ ३ ॥ उस समय महाराजकी आँखोंसे आँसू बरस रहे थे। कण्ठ रुँधा जाता था। वे बार-बार लोगोंको सम्बोधित करके बोले--'हे नागरिको! आप सब लोग मेरी बात सुननेकी कृपा करें। मेरी यह पत्नी मुझे प्राणोंके समान प्रिय है, परन्तु यदि किसीको

त्वान्नीचत्वमुपयास्यसि ॥ २६ ॥ न द्यूतहेतोर्न च मद्यहेतोन राज्यहेतोर्न च भोगहेतोः ॥ ददस्व गुर्वर्थमतो मया त्वं सत्यव्रतं त्वं सफलं कुरुष्व ॥ २७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते सप्तमस्कन्धे हरिश्चन्द्रोपाख्याने एकविंशोध्यायः ॥ २१ ॥

॥ व्यास उवाच ॥ स तया नोद्यमानस्तु राजा पत्न्या पुनः पुनः ॥ प्राह भद्रे करोम्येष विक्रयं ते सुनिर्घृणः ॥ १ ॥ नृशंसैरपि यत्कर्तुं न शक्यं तत्करोम्यहम् ॥ यदि ते भ्राजते वाणी वक्तुमीदृक्सुनिष्ठुरम् ॥ २ ॥ एवमुक्त्वा ततो राजा गत्वा नगरमातुरः ॥ अवतार्य तदा रंगे तां भार्यां नृपसत्तमः ॥ ३ ॥ बाष्पगद्गदकंठस्तु ततो वचनमब्रवीत् ॥ भो भो नागरिकाः सर्वे शृणुध्वं वचनं मम ॥४॥ कस्यचिद्यदि कार्यं स्याद्दास्या प्राणेष्टया मम ॥ स ब्रवीतु त्वरायुक्तो यावत्स्वं धारयाम्यहम् ॥ ५ ॥ तेऽब्रुवन्पंडिताः कस्त्वं पत्नीं विक्रेतुमागतः ॥ राजोवाच ॥ किं मां पृच्छथ कस्त्वं भो नृशंसोऽहममानुषः ॥ ६ ॥ राक्षसो वाऽस्मि कठिनस्ततः पापं करोम्यहम् ॥ व्यास उवाच ॥ तं शब्दं सहसा श्रुत्वा कौशिको विप्ररूपधृक् ॥ ७ ॥ वृद्धरूपं समास्थाय हरिश्चन्द्रमभाषत ॥ समर्पयस्व मे दासीमहं क्रेता धनप्रदः ॥ ८ ॥ अस्ति मे वित्तमतुलं सुकुमारी च मे प्रिया ॥ गृहकर्म न शक्नोति कर्तुमस्मात्प्रयच्छ मे ॥ ९ ॥ अहं गृह्णामि दासीं तु कति दास्यामि ते धनम् ॥ एवमुक्ते तु विप्रेण हरिश्चंद्रस्य भूपतेः ॥ १० ॥ विदीर्णं

इससे दासीका काम लेनेकी आवश्यकता हो तो कहे। मैं जो भी उचित धन चाहूँ, उतनेमें यह तुरन्त बिक सकती है।' वहाँ बहुतसे विद्वान् पुरुष थे। उन्होंने राजासे पूछा—'अजी, पत्नीको बेचनेके लिये आये हुए तुम कौन हो?' राजा बोले—आपलोग पूछते हैं कि 'तुम कौन हो?' तो सुनिये—'मैं मानवतारहित एक महान् क्रूर व्यक्ति हूँ, अथवा मुझे एक क्रूर राक्षस भी कहा जा सकता है। तभी तो ऐसे नीच कर्ममें मेरी प्रवृत्ति हुई है।' व्यासजी कहते हैं--हे राजन्! यह शब्द सुनकर विश्वामित्र बूढ़े ब्राह्मणका रूप धारण करके अकस्मात् सामने आ उपस्थित हुए और बोले--मैं धन देकर इस दासीको खरीदनेके लिये तैयार हूँ। अतः इसे मुझे दे दो ॥ ४-८ ॥ मेरे पास अपार धनराशि है। मेरी स्त्री परम सुकुमारी है। वह घरका काम नहीं सँभाल सकती। अतः इसे मुझे दे दो ॥९॥ मैं इस दासीको स्वीकार करता हूँ, परन्तु इसके लिये मुझको कितना धन देना पड़ेगा?' यों ब्राह्मणके कहनेपर महाराज हरिश्चन्द्रका हृदय दुःखसे विदीर्ण

हो गया। वे कुछ भी बोल नहीं सके। ब्राह्मणने कहा—तुम्हारी स्त्रीके कर्म, अवस्था, रूप और शीलके अनुसार यह धन देता हूँ, सो स्वीकार करो और स्त्रीको मुझे सौंप दो। धर्मशास्त्रोंमें स्त्री और पुरुषका जो मूल्य निर्दिष्ट है, वह इस प्रकार है—॥१०-१२॥ यदि स्त्री बत्तीसों लक्षणोंसे सम्पन्न, कार्यकुशल, शील एवं गुणोंसे युक्त हो तो उसका मूल्य एक करोड़ मुद्रा होता है। यदि ये सभी शुभलक्षण पुरुषमें हों तो उसका मूल्य दस करोड़ मुद्रा हो जाता है ॥ १३ ॥ ब्राह्मणकी बात सुनकर राजा हरिश्चन्द्र महान् दुःखसे व्यथित हो जानेके कारण चुप हो गये। उनके मुखसे कोई भी बात नहीं निकल सकी ॥ १४ ॥ तब ब्राह्मणने राजाके सामने मृगचर्मपर धन रखकर रानीके केशोंको हाथसे पकड़ा और उसे खींचना आरंभ कर दिया। ॥ १५ ॥ रानी बोलीं—आर्य! अभी मुझे छोड़िये, छोड़िये। जबतक मैं अपने पुत्रको भलीभाँति देख न लूँ, तबतकके लिए क्षमा करें। क्योंकि हे विप्र! फिर मुझे इस पुत्रका दर्शन दुर्लभ हो जायगा ॥ १६ ॥ तदनन्तर रानीने अपने प्रिय पुत्रसे कहा—'बेटा! देख, आज मैं तेरी माता महारानीसे दासी बन गयी। राजपुत्र! अब तू मेरा स्पर्श मत

तु मनो दुःखान्न चैनं किंचिदब्रवीत् ॥ विप्र उवाच ॥ कमणश्च वयोरूपशीलानां तव योषितः ॥११॥ अनुरूपमिदं वित्तं गृहाणापय मेऽबलाम् ॥ धर्मशास्त्रेषु यद्दृष्टं स्त्रियो मौल्यं नरस्य च ॥ १२ ॥ द्वात्रिंशल्लक्षणोपेता दक्षा शीलगुणान्विता ॥ कोटिमौल्यं सुवर्णस्य स्त्रियः पुंसस्तथार्बुदम् ॥ १३ ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तस्य हरिश्चन्द्रो महीपतिः ॥ दुःखेन महताविष्टो न चैनं किंचिदब्रवीत् ॥ १४ ॥ ततः स विप्रो नृपतेः पुरतो वल्कलोपरि ॥ धनं निधाय केशेषु धृत्वा राज्ञीमकर्षयत् ॥ १५ ॥ राज्ञ्युवाच ॥ मुंच मुंचार्य मां सद्यो यावत्पश्याम्यहं सुतम् ॥ दुर्लभं दर्शनं विप्र पुनरस्य भविष्यति ॥ १६ ॥ पश्येह पुत्र मामेवं मातरं दास्यतां गताम् ॥ मां मा स्प्राक्षी राजपुत्र न स्पृश्याऽहं त्वयाऽधुना ॥१७॥ ततः स बालः सहसा दृष्ट्वा कष्टां तु मातरम् ॥ समभ्यधावदम्बेति वदन्साश्रुविलोचनः ॥ १८ ॥ हस्ते वस्त्रं समाकर्षन्काकपक्षधरः स्खलन् ॥ तमागतं द्विजः क्रोधाद्बलमभ्याहनत्तदा ॥ १९ ॥ वदंस्तथापि सोऽम्बेति नैव मुंचति मातरम् ॥ राज्ञ्युवाच ॥ प्रसादं कुरु मे नाथ क्रीणीष्वेमं हि बालकम् ॥२०॥ क्रीताऽपि नाहं भविता विनैनं कार्यसाधिका ॥ इत्थं ममाल्पभाग्यायाः प्रसादं कुरु मे प्रभो ॥२१॥ ब्राह्मण उवाच ॥ गृह्यतां वित्तमेतत्ते दीयतां मम बालकः ॥ स्त्रीपुंसोर्धर्मशास्त्रज्ञैः कृतमेव हि वेतनम् ॥ २२ ॥ शतं सहस्रं लक्षं च कोटिमौल्यं तथापरैः ॥ द्वात्रिंशल्लक्षणोपेता दक्षा शीलगुणान्विता ॥२३॥

करना। कारण, अब मैं तेरे छूने योग्य नहीं रही ॥ १७ ॥ माताको संकटग्रस्त देखकर वह बालक 'माँ-माँ' कहता हुआ दौड़ पड़ा। उसकी आँखोंसे जलकी धाराएँ गिरने लगीं ॥ १८ ॥ जब कौवेके पंखके समान काले केशवाला वह राजकुमार रानीका वस्त्र पकड़कर गिरते-पड़ते साथ चलने लगा, तब ब्राह्मणने उसे पीट दिया। फिर भी वह बालक 'अम्बा, अम्बा' कहता माताको छोड़ न सका। रानीने कहा—नाथ! आप मुझपर कृपा करके इस बालकको भी खरीद लीजिये। क्योंकि मैं खरीदी जानेपर भी इसके बिना सुचारुरूपसे आपका कार्य नहीं कर सकूँगी। हे प्रभो! मैं मन्दभागिनी हूँ। अतः मुझपर इस प्रकारकी कृपा अवश्य करें ॥ १९--२१ ॥ सूतजी कहते हैं—तब ब्राह्मणने राजासे कहा—लो, यह मूल्य लेकर बालक मुझे दे दो। शास्त्रकारोंने स्त्री-पुरुषका मूल्य निर्धारित कर दिया है ॥ २२ ॥ जैसे सौ, हजार, लाख और करोड़। बत्तीस शुभ लक्षणों युक्त स्त्रीका मूल्य एक करोड़ और पुरुषका दस करोड़ मुद्रा होता है।

तब बालकका मूल्य भी सामने एक वस्त्रपर फेंककर माता सहित राजकुमारको ब्राह्मणने खरीदकर एक साथ बाँध दिया। फिर बड़े हर्षके साथ दोनोंको लेकर वह तुरंत अपने घरकी ओर चला ॥ २३--२५ ॥ उस समय रानीकी स्थिति बड़ी दयनीय थी। उसके नेत्र जलसे भर गये थे। उसने जाते समय राजाकी प्रदक्षिणा की और दोनों घुटनोंके सहारे झुककर प्रणाम किया। साथ ही वह यह वचन बोली — ॥ २६ ॥ 'यदि मैंने दान दिया हो, यज्ञ किया हो तथा मेरे व्यवहारसे ब्राह्मण तृप्त हुए हों तो उस पुण्यके प्रभावसे ये महाराज हरिश्चन्द्र मुझे पुनः शीघ्र ही पतिरूपसे प्राप्त हो जायँ' ॥२७॥ राजा रानीके प्रति प्राणोंसे भी बढ़कर गौरवबुद्धि रखते थे। ऐसी भार्याको पैरोंमें पड़ी देखकर वे हाहाकार करते हुए रो पड़े। उनकी सम्पूर्ण इन्द्रियोंपर घबराहट छा गयी ॥२८॥ वे कहने लगे 'सत्य और शील आदि गुणोंसे सम्पन्न यह भार्या मुझसे पृथक् होकर क्यों जा रही है? वृक्षकी छाया वृक्षको छोड़कर चली जाय— यह कदापि सम्भव नहीं है' ॥ २९ ॥ इस प्रकार परस्पर घनिष्ठ प्रणय प्रकट करके रानीसे यह कहनेके पश्चात् राजाने पुत्रके प्रति यह वचन कहा—बेटा! तू मुझे छोड़कर कहाँ जायगा?

कोटिमौल्यं स्त्रियः प्रोक्तं पुरुषस्य तथाऽर्बुदम् ॥ सूत उवाच ॥ तथैव तस्य तद्वित्तं पुरः क्षिप्तं पटे पुनः ॥ २४ ॥ प्रगृह्य बालकं मात्रा सहैकस्थमबंधयत् ॥ प्रतस्थे स गृहं क्षिप्रं तया सह मुदान्वितः ॥ २५ ॥ प्रदक्षिणां तु सा कृत्वा जानुभ्यां प्रणता स्थिता ॥ बाष्पपर्याकुला दीना त्विदं वचनमब्रवीत् ॥२६॥ यदि दत्तं यदि हुतं ब्राह्मणास्तर्पिता यदि ॥ तेन पुण्येन मे भर्ता हरिश्चन्द्रोऽस्तु वै पुनः ॥२७॥ पादयोः पतितां दृष्ट्वा प्राणेभ्योऽपि गरीयसीम् ॥ हाहेति च वदन्राजा विललापाकुलेंद्रियः ॥२८॥ वियुक्तेयं कथं जाता सत्यशीलगुणान्विता ॥ वृक्षच्छायाऽपि वृक्षं तं न जहाति कदाचन ॥ २९ ॥ एवं भार्यां वदित्वाऽथ सुसंबद्धं परस्परम् ॥ पुत्रं च तमुवाचेदं मां त्वं हित्वा क्व यास्यसि ॥ ३० ॥ कां दिशं प्रति यास्यामि को मे दुःखं निवारयेत् ॥ राज्यत्यागे न मे दुःखं वनवासे न मे द्विज ॥ ३१ ॥ यत्पुत्रेण वियोगो मे एवमाह स भूपतिः ॥ सद्भर्तृभोग्या हि सदा लोके भार्या भवंति हि ॥ ३२ ॥ मया त्यक्ताऽसि कल्याणि दुःखेन विनियोजिता ॥ इक्ष्वाकुवंशसंभूतं सर्वराज्यसुखोचितम् ॥ ३३ ॥ मामीदृशं पतिं प्राप्य दासीभावं गता ह्यसि ॥ ईदृशे मज्जमानं मां सुमहच्छोकसागरे ॥ ३४ ॥ को मामुद्धरते देवि पौराणाख्यानविस्तरैः ॥ सूत उवाच ॥ पश्यतस्तस्य राजर्षेः कशाघातैः सुदारुणैः ॥ ३५ ॥ घातयित्वा तु विप्रेशो नेतुं समुपचक्रमे ॥ नीयमानौ तु तौ दृष्ट्वा भार्यापुत्रौ

॥ ३० ॥ फिर मैं किस दिशामें जाऊँगा और कौन मेरा दुःख दूर करेगा? हे द्विजवर! राज्य छोड़ने तथा वनवासी होनेसे मैं दुखी नहीं हूँ ॥३१॥ किन्तु पुत्रवियोग बड़ा कष्टप्रद हो रहा है।' यों कहकर राजा हरिश्चन्द्र रानीको लक्ष्य करके कहने लगे--स्त्रियोंका कर्तव्य है कि वे संसारमें पतिके पास रहकर सदा उसके सुखकी सामग्री बनी रहें ॥ ३२ ॥ तब हे कल्याणी! दुःखको अपना साथी बनाकर तुम मुझसे अलग क्यों हो रही हो? इक्ष्वाकुके पुनीत वंशमें मेरा जन्म हुआ है। मेरे पास राज्योचित सम्पूर्ण सुखकी सामग्रियाँ थीं ॥ ३३ ॥ मुझ जैसे पतिको पाकर भी तुम दासी बन रही हो? देवी! मैं पुराण और इतिहासके विशद वाक्यका अनुसरण करके कहता हूँ कि ऐसे शोकरूपी अथाह समुद्रमें डूबे हुए मुझ व्यक्तिका अब कौन उद्धार करेगा? सूतजी कहते हैं--तदनन्तर हरिश्चन्द्रके सामने ही कोड़ेसे मारते हुए धनिक विप्रदेव राजकुमार और रानीको ले जानेके लिए तत्पर हो गये। स्त्री और पुत्रको जाते देखकर राजाके

दुःखकी सीमा नहीं रही ॥ ३४–३६ ॥ वे बार-बार लम्बी साँसें लेते हुए रोने लगे। अबतक जिसे वायु, सूर्य, चन्द्रमा तथा निम्न श्रेणीके मनुष्य नहीं देख सके थे, वही रानी आज दासी बन गयी। जिसके हाथोंकी उँगलियाँ बहुत ही मुलायम थीं, सूर्यवंशमें उत्पन्न वह बालक रोहित बिक गया। मुझ दुर्बुद्धिको धिक्कार है। हा प्रिये! हाय पुत्र! जिसकी करनीसे तुम्हारी यह दशा हुई, वह अधम मैं अभी जीवित हूँ–मुझे धिक्कार है। व्यासजी कहते हैं–हे राजन्! इस प्रकार राजा हरिश्चन्द्र विलाप कर रहे थे। इतनेमें ब्राह्मण देवता आँखोंसे ओझल हो गये ॥३७–४०॥ उसी समय महान् तपस्वी मुनिवर विश्वामित्र आ पहुँचे। उनका शिष्य साथ था। निष्ठुर स्वभाववाले वे मुनि देखनेमें बड़े ही क्रूर प्रतीत होते थे। विश्वामित्र बोले–हे राजन्! हे महाबाहो! यदि तुम्हारे हृदयमें सत्यकी तनिक भी मान्यता हो तो उस समय राजसूय यज्ञकी दक्षिणाका जो वचन दिया था, वह पूर्ण करो। हरिश्चन्द्रने कहा--हे निष्पाप राजर्षे! मैं आपको

स पार्थिवः ॥ ३६ ॥ विललापातिदुःखार्तो निःश्वस्योष्णं पुनः पुनः ॥ यां न वायुर्न वाऽऽदित्यो न चन्द्रो न पृथग्जनाः ॥ ३७ ॥ दृष्टवंतः पुरा पत्नीं सेयं दासीत्वमागता ॥ सूर्यवंशप्रसूतोऽयं सुकुमारकरांगुलिः ॥ ३८ ॥ संप्राप्तो विक्रयं बालो धिङ्मामस्तु सुदुर्मतिम् ॥ हा प्रिये हा शिशो वत्स ममानार्यस्य दुर्नयः ॥ ३९ ॥ दैवाधीनदशां प्राप्तो न मृतोऽस्मि तथापि धिक् ॥ व्यास उवाच ॥ एवं विलपतो राज्ञोऽग्रे विप्रोऽन्तरधीयत ॥४०॥ वृक्षगेहादिभिस्तुंगैस्तावादाय त्वरान्वितः ॥ अत्रांतरे मुनिश्रेष्ठस्त्वाजगाम महातपाः ॥ ४१ ॥ सशिष्यः कौशिकेंद्रोऽसौ निष्ठुरः क्रूरदर्शनः ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ या त्वयोक्ता पुरा राजन्राजसूयस्य दक्षिणा ॥ ४२ ॥ तां ददस्व महाबाहो यदि सत्यं पुरस्कृतम् ॥ हरिश्चन्द्र उवाच ॥ नमस्करोमि राजर्षे गृहाणेमां स्वदक्षिणाम् ॥४३॥ राजसूयस्य यागस्य या मयोक्ता पुराऽनघ ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ कुतो लब्धमिदं द्रव्यं दक्षिणार्थे प्रदीयते ॥ ४४ ॥ एतदाचक्ष्व राजेन्द्र यथा द्रव्यं त्वयाऽर्जितम् ॥ राजोवाच ॥ किमनेन महाभाग कथितेन तवानघ ॥४५॥ शोकस्तु वर्धते विप्र श्रुतेनानेन सुव्रत ॥ ऋषिरुवाच ॥ अशस्तं नैव गृह्णामि शस्तमेव प्रयच्छ मे ॥ ४६ ॥ द्रव्यस्यागमनं राजन्कथयस्व यथातथम् ॥ राजोवाच ॥ मया देवी तु सा भार्या विक्रीता कोटिसम्मितैः ॥ ४७ ॥ निष्कैः पुत्रो रोहिताख्यो बिक्रीतोऽर्बुदसंख्यया ॥ विप्रैकादश कोट्यस्त्वं सुवर्णस्य गृहाण मे ॥ ४८ ॥ सूत उवाच ॥ तद्वित्तं स्वल्पमालक्ष्य दारविक्रयसंभवम् ॥ शोकाभिभूतं राजानं कुपितः कौशिकोऽब्रवीत् ॥ ४९ ॥

प्रणाम करता हूँ। राजसूय यज्ञके अवसरपर मैंने जो प्रतिज्ञा की थी, वह आपकी दक्षिणा तैयार है। इसे स्वीकार कीजिये ॥ ४१--४३ ॥ विश्वामित्र बोले–हे राजेन्द्र! कहाँसे मिला हुआ यह धन दक्षिणामें दिया जा रहा है? जिस प्रकार तुमने धन उपार्जन किया हो, वह स्पष्ट बताओ। राजाने कहा–उत्तम व्रतका पालन करनेवाले हे विप्रवर! उसे कहनेसे क्या प्रयोजन है? हे निष्पाप महाभाग! उसके सुननेमें तो और शोक ही बढ़ेगा। ऋषि बोले–हे राजन्! मैं दूषित द्रव्य नहीं लेता, हमें पवित्र धन ही मिलना चाहिए ॥ ४४–४६ ॥ अतः द्रव्य आनेका यथार्थ मार्ग मुझे अवश्य बताओ। राजाने कहा--हे मुने! मैंने अपनी परम साध्वी स्त्रीको एक करोड़ मुहर लेकर बेच दिया है ॥ ४७ ॥ मेरे पुत्रका नाम रोहित है। उसे बेचनेपर मुझे दस करोड़ मुहरें मिल गयी हैं। हे विप्र! इस प्रकार मेरे पास ग्यारह करोड़ मुहरें जुटी हैं, आप इन्हें स्वीकार कीजिये ॥ ४८ ॥ सूतजी कहते हैं--स्त्री-पुत्रको बेचनेसे मिला हुआ धन विश्वा-

मित्रकी दृष्टिमें थोड़ा जान पड़ा ! अतः क्रोधमें भरकर वे शोकाकुल महाराज हरिश्चन्द्रसे कहने लगे ॥ ४९ ॥ ऋषिने कहा—हे राजन् ! राजसूय यज्ञकी दक्षिणा इतनी ही नहीं होती । अतः और धन उपार्जन करो, जिससे शीघ्र ही वह दक्षिणा पूर्ण हो सके ॥ ५० ॥ क्षात्र धर्मका पालन करनेसे विमुख हे राजन् ! तुम मेरी दक्षिणाको इतनेमें ही चुक जानेके योग्य मानते होओ तो मैं अभी अपना परम बल प्रकट करता हूँ ॥५१॥ देखो, मैं एक परम पवित्र अन्तःकरणवाला तपस्वी ब्राह्मण हूँ । मैंने श्रेष्ठ ग्रन्थोंका शुद्ध अध्ययन किया है । मैंने तपस्या की है । मेरे पास सभी शक्तियाँ हैं ॥ ५२ ॥ राजाने कहा—भगवन् ! मैं इसके अतिरिक्त भी दक्षिणा दूँगा, परन्तु कुछ समय प्रतीक्षा कीजिये । अभी मैंने पुत्र और स्त्रीको ही बेचा है । मैं स्वयं तो अभी शेष हूँ ॥ ५३ ॥ विश्वामित्र बोले—हे राजन् ! दिनका यह चौथा प्रहर व्यतीत हो रहा है । मेरी प्रतीक्षाका यही अन्तिम समय है ॥५४॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा' भाषाटीकायां द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

ऋषिरुवाच ॥ राजसूयस्य यज्ञस्य नैषा भवति दक्षिणा ॥ अन्यदुत्पादय क्षिप्रं संपूर्णा येन सा भवेत् ॥ ५० ॥ क्षत्रबंधो ममेमां त्वं सदृशीं यदि दक्षिणाम् ॥ मन्यसे तर्हि तत्क्षिप्रं पश्य त्वं मे परं बलम् ॥ ५१ ॥ तपसोऽस्य सुतप्तस्य ब्राह्मणस्यामलस्य च ॥ मत्प्रभावस्य चोग्रस्य शुद्धस्याध्ययनस्य च ॥ ५२ ॥ राजोवाच ॥ अन्यद्दास्यामि भगवन्कालः कश्चित्प्रतीक्ष्यताम् ॥ अधुनैवास्ति विक्रीता पत्नी पुत्रश्च बालकः ॥ ५३ ॥ ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ चतुर्भागः स्थितो योऽयं दिवसस्य नराधिप ॥ एष एव प्रतीक्ष्यो मे वक्तव्यं नोत्तरं त्वया ॥ ५४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

॥ व्यास उवाच ॥ तमेवमुक्त्वा राजानं निर्घृणं निष्ठुरं वचः ॥ तदादाय धनं पूर्णं कुपितः कौशिको ययौ ॥ १ ॥ विश्वामित्रे गते राजा ततः शोकमुपागतः ॥ श्वासोच्छ्वासं मुहुः कृत्वा प्रोवाचोच्चरधोमुखः ॥ २ ॥ वित्तक्रीतेन यस्यार्तिर्मया प्रेतेन गच्छति ॥ स ब्रवीतु त्वरायुक्तो यामे तिष्ठति भास्करः ॥ ३ ॥ अथाजगाम त्वरितो धर्मश्चांडालरूपधृक् ॥ दुर्गन्धो विकृतोरस्कः श्मश्रुलो दंतुरोऽघृणी ॥ ४ ॥ कृष्णो लंबोदरः स्निग्धः करालः पुरुषाधमः ॥ हस्तजर्जरयष्टिश्च शवमाल्यैरलंकृतः ॥ ५ ॥ चांडाल उवाच ॥ अहं गृह्णामि दासत्वे भृत्यार्थः सुमहान्मम ॥ क्षिप्रमाचक्ष्व मौल्यं

(राजाका चाण्डालके हाथ बिकना) व्यासजी कहते हैं—हे राजन् ! हरिश्चन्द्रसे इस प्रकारके करुणाशून्य एवं निष्ठुर वचन कहकर क्रोधी विश्वामित्रने उपस्थित सम्पूर्ण दक्षिणा ले ली और वे वहाँसे चल पड़े ॥ १ ॥ विश्वामित्रके चले जानेपर राजाके कष्टकी सीमा नहीं रही । वे बारम्बार साँसें खींचते हुए नीचा मुँह करके उच्चस्वरसे कहने लगे—॥ २ ॥ मैं धनसे बिक जानेवाला प्रेत हो गया हूँ । मुझसे जिसका दुःख दूर हो सके, वह अभी—सूर्यके चौथे पहरमें रहते ही मुझसे बात कर ले ॥ ३ ॥ इतनेमें धर्म चाण्डालका रूप धारण करके वहाँ आ गये । उस चाण्डालके शरीरसे दुर्गन्ध निकल रही थी । उसके बड़े-बड़े दाँत थे और बढ़ी हुई दाढ़ी थी । भयंकर छाती थी । वह अत्यन्त निर्दयी प्रतीत हो रहा था ॥ ४ ॥ उस अत्यन्त नीच पुरुषकी आकृति काले रंगकी थी । वह हाथमें एक पुरानी लाठी लिये था । मृत व्यक्तियोंकी मालाएँ उसकी शोभा बढ़ा रही थीं ॥ ५ ॥ चाण्डालने कहा—मैं तुम्हें दासके

पदपर नियुक्त करना चाहता हूँ। एक नौकरकी मुझे विशेष आवश्यकता है। बताओ, तुम्हारे लिये कितना मूल्य देना होगा ? ॥ ६ ॥ व्यासजी कहते हैं–हे राजन् ! उस चण्डालकी आँखें बड़ी ही डरावनी थीं। उसके अङ्ग-अङ्गमें निर्दयता भरी थी। इस प्रकारके दुराचारी चाण्डालको ऊटपटांग बात करते देखकर महाराज हरिश्चन्द्रने उससे पूछा–'अजी, तुम कौन हो ?' ॥ ७ ॥ चाण्डाल बोला--हे राजेन्द्र ! मैं एक चाण्डाल हूँ। यहाँ सब लोग मुझे प्रवीर कहते हैं। तुम सदा मेरी आज्ञामें रहोगे। मृत व्यक्तिका कफन लेना तुम्हारा काम होगा ॥ ८ ॥ इस प्रकार चाण्डालने जब राजा हरिश्चन्द्रसे कहा, तब वे उससे बोले--'मेरा तो ऐसा विचार है कि ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय—इनमेंसे कोई मुझे अपना दास बना ले ॥ ९ ॥ क्योंकि उत्तम पुरुषके साथ उत्तमका, मध्यमके साथ मध्यमका और अधमके साथ अधमका धर्म निभता है। यह विद्वज्जनोंका कथन है ॥ १० ॥ चाण्डाल बोला–हे राजन् ! क्या आपका यही धर्मज्ञान है ? आपने मेरे समक्ष बिना सोचे-विचारे यह बात कही है ॥ ११ ॥ जो मनुष्य सोचकर कोई बात कहता है, उसीको अभीष्ट फल प्राप्त होता

किमेतत्ते संप्रदीयते ॥ ६ ॥ व्यास उवाच ॥ तं तादृशमथालक्ष्य क्रूरदृष्टिं सुनिर्घृणम् ॥ वदन्तमतिदुःशीलं कस्त्वमित्याह पार्थिवः ॥ ७ ॥ ॥ चांडाल उवाच ॥ चांडालोऽहमिह ख्यातः प्रवीरेति नृपोत्तम ॥ शासने सर्वदा तिष्ठ मृतचैलापहारकः ॥ ८ ॥ एवमुक्तस्तदा राजा वचनं चेदमब्रवीत् ॥ ब्राह्मणः क्षत्रियो वापि गृह्णात्विति मतिर्मम ॥ ९ ॥ उत्तमस्योत्तमो धर्मो मध्यमस्य च मध्यमः ॥ अधमस्याधमश्चैव इति प्राहुर्मनीषिणः ॥१०॥ चांडाल उवाच ॥ एवमेव त्वया धर्मः कथितो नृपसत्तम ॥ अविचार्य त्वया राजन्नधुनोक्तं ममाग्रतः ॥११॥ विचारयित्वा यो ब्रूते सोऽभीष्टं लभते नरः ॥ सामान्यमेव तत्प्रोक्तमविचार्य त्वयाऽनघ ॥ १२ ॥ यदि सत्यं प्रमाणं ते गृहीतोऽसि न संशयः ॥ हरिश्चन्द्र उवाच ॥ असत्यान्नरके गच्छेत्सद्यः क्रूरे नराधमः ॥१३॥ ततश्चांडालता साध्वी न वरा मे ह्यसत्यता ॥ व्यास उवाच ॥ तस्यैवं वदतः प्राप्तो विश्वामित्रस्तपोनिधिः ॥१४॥ क्रोधामर्षविवृत्ताक्षः प्राह चेदं नराधिपम् ॥ चांडालोऽयं मनस्थं ते दातुं वित्तमुपस्थितः ॥ १५ ॥ कस्मान्न दीयते मह्यमशेषा यज्ञदक्षिणा ॥ ॥ राजोवाच ॥ भगवन्सूर्यवंशोत्थमात्मानं वेद्मि कौशिक ॥१६॥ कथं चांडालदासत्वं गमिष्ये वित्तकामतः ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ यदि चांडालवित्तं त्वमात्मविक्रयजं मम ॥ १७ ॥ न प्रदास्यसि चेत्तर्हि शप्स्यामि त्वामसंशयम् ॥ चांडालादथवा विप्राद्देहि मे दक्षिणाधनम् ॥ १८ ॥ विना चांडाल-

है, किन्तु आपने जो मनमें आया सो कह डाला ॥ १२ ॥ यदि सत्यको प्रमाण मानते हैं तो आप मेरे हाथ बिक गये। राजा हरिश्चन्द्रने कहा—असत्यभाषी अधम पुरुष क्रूर नरकमें जा पड़ता है ॥ १३ ॥ अतएव असत्यका आश्रय लेनेकी अपेक्षा चाण्डाल बन जाना मैं अच्छा समझता हूँ। व्यासजी कहते हैं–महाराज हरिश्चन्द्र चाण्डालसे यों बातें कर ही रहे थे कि तपोनिधि विश्वामित्र वहाँ आ पहुँचे ॥ १४ ॥ उनकी आँखें क्रोधसे चढ़ी हुई थीं। उन्होंने राजासे क्रूरतापूर्वक कहा—'यह चाण्डाल तुम्हारे मनके अनुसार धन देनेके लिए तैयार है। तब तुम इससे मूल्य लेकर मेरी वह शेष रकम क्यों नहीं चुका देते ?' राजाने कहा–हे भगवन् ! हे कौशिक ! मैं अपनेको सूर्यवंशमें उत्पन्न समझता हूँ। अतः धनके लोभसे चाण्डालकी दासता मैं कैसे करूँगा ? विश्वामित्र बोले–यदि तुम स्वयं चाण्डालके हाथ बिककर उससे प्राप्त धन मुझे नहीं

दोगे तो अभी मैं तुम्हें शाप दे दूँगा। चाण्डाल अथवा ब्राह्मण—किसीसे भी लेकर तुम मेरी दक्षिणाकी रकम अभी चुका दो ॥ १५-१८ ॥ इस समय चाण्डालके सिवा दूसरा कोई व्यक्ति तुम्हें धन नहीं दे सकता और धन पाये बिना मैं जाऊँगा नहीं—यह निश्चित है ॥ १९ ॥ हे मनुजेन्द्र ! यदि तुम अभी मेरा धन नहीं दोगे तो दिनके चौथे पहरकी आधी घड़ी और बीत जानेपर मैं शापरूपी अग्निसे तुम्हें भस्म कर दूँगा ॥ २० ॥ व्यासजी कहते हैं—हे राजन् ! उस समय महाराज हरिश्चन्द्र मृतकके समान निश्चेष्ट हो गये। उनके धैर्यका बाँध टूट चुका था। 'प्रसन्न होइये'—यों कहते हुए उन्होंने विश्वामित्रके दोनों चरण पकड़ लिये ॥ २१ ॥ हरिश्चन्द्रने कहा—हे विप्रर्षे ! मैं आपका अत्यन्त दुखी सेवक हूँ। मेरी स्थिति बड़ी दयनीय है। विशेषता यह है कि मैं आपका भक्त भी हूँ। चाण्डालके सम्पर्कमें रहना मेरे लिए महान् कष्टप्रद है। अतः मुझपर कृपा कीजिये ॥ २२ ॥ शेष धन चुकानेके लिए मैं आपके अधीन होकर सेवाकार्य सम्पन्न करूँगा। हे मुनिवर ! आपका ही सेवक बनकर रहूँगा और मेरा कार्य आपकी इच्छापर निर्भर रहेगा ॥ २३ ॥ विश्वामित्र बोले—महाराज ! बहुत

मधुना नान्यः कश्चिद्धनप्रदः ॥ धनेनाहं विना राजन्न यास्यामि न संशयः ॥ १९ ॥ इदानीमेव मे वित्तं न प्रदास्यसि चेन्नृप ॥ दिनेऽर्धघटिकाशेषे तत्त्वां शापाग्निना दहे ॥ २० ॥ व्यास उवाच ॥ हरिश्चन्द्रस्ततो राजा मृतवच्छ्रितजीवितः ॥ प्रसीदेति वदन्पादौ ऋषेर्जग्राह विह्वलः ॥ २१ ॥ हरिश्चन्द्र उवाच ॥ दासोऽस्म्यार्तोऽस्मि दीनोऽस्मि त्वद्भक्तश्च विशेषतः ॥ प्रसादं कुरु विप्रर्षे कष्टश्चांडालसंकरः ॥ २२ ॥ भवेयं वित्तशेषेण तव कर्मकरो वशः ॥ तवैव मुनिशार्दूल प्रेष्यश्चित्तानुवर्तकः ॥ २३ ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ एवमस्तु महाराज ममैव भव किंकरः ॥ किंतु मद्वचनं कार्यं सर्वदैव नराधिप ॥ २४ ॥ व्यास उवाच ॥ एवमुक्तेऽथ वचने राजा हर्षसमन्वितः ॥ अमन्यत पुनर्जातमात्मानं प्राह कौशिकम् ॥ २५ ॥ तवादेशं करिष्यामि सदैवाहं न संशयः ॥ आदेशय द्विजश्रेष्ठ किं करोमि तवानघ ॥ २६ ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ चांडालागच्छ मद्दासमौल्यं किं मे प्रयच्छसि ॥ गृहाण दासं मौल्येन मया दत्तं तवाधुना ॥ २७ ॥ नास्ति दासेन मे कार्यं वित्ताशा वर्तते मम ॥ व्यास उवाच ॥ एवमुक्ते तदा तेन श्वपचो हृष्टमानसः ॥ २८ ॥ आगत्य सन्निधौ तूर्णं विश्वामित्रमभाषत ॥ चांडाल उवाच ॥ दशयोजनविस्तीर्णे प्रयागस्य च मण्डले ॥ २९ ॥

ठीक, ऐसा ही हो। तुम मेरे ही सेवक बन जाओ। परन्तु हे राजन् ! शर्त यह है कि तुम्हें सदा मेरी आज्ञाका निर्विरोध पालन करना होगा ॥ २४ ॥ व्यासजी कहते हैं—हे राजन् ! विश्वामित्रके इस प्रकार कहनेपर राजा हरिश्चन्द्रका मुर्झाया हुआ मुख प्रसन्नतासे खिल उठा। उन्होंने समझा कि मेरा पुनर्जन्म हुआ है। वे विश्वामित्रसे कहने लगे— ॥ २५ ॥ 'पवित्र अन्तःकरणवाले हे द्विजवर ! मैं आपकी आज्ञाका निरन्तर पालन करूँगा—इसमें कोई संशय नहीं है। आज्ञा दीजिये, आपका कौनसा कार्य सम्पन्न करूँ ?' ॥ २६ ॥ विश्वामित्रने कहा—चाण्डाल ! इधर आओ, तुम मेरे इस नौकरका क्या मूल्य दोगे ? मूल्य लेकर इसे मैं दे देता हूँ ॥ २७ ॥ तुम स्वीकार कर लो। क्योंकि मुझे नौकरसे कोई प्रयोजन नहीं। मैं तो धन चाहता हूँ। व्यासजी कहते हैं—हे राजन् ! जब विश्वामित्रने इस प्रकार कहा, तब चाण्डालके मनमें प्रसन्नता आ गयी। उसने तुरन्त आकर मुनिसे कहा। चाण्डाल बोला—प्रयागकी सीमा

दस योजनके विस्तारमें है ॥२८॥२९॥ हे विप्रवर ! वहाँकी सारी भूमिको रत्नमयी बनाकर मैं आपको दे दूँगा । आपने इसे बेचकर मेरा महान् दुःख दूर कर दिया ॥३०॥ व्यासजी कहते हैं—हे राजन् ! तदनन्तर चाण्डालने सोना, मणि और मोतियोंसे युक्त हजारों प्रकारके रत्न उन द्विजश्रेष्ठ विश्वामित्रको दिये तथा उन्होंने स्वीकार कर लिया ॥३१॥ इससे राजा हरिश्चन्द्रका मुँह किंचिन्मात्र भी उदास नहीं हुआ । उन्होंने धैर्य धारण करके यह मान लिया कि विश्वामित्र मेरे स्वामी हैं, ये चाहे जो कर सकते हैं ॥३२॥ बस, मुझे तो वही कार्य करना है, जिसे करनेके लिये वे आज्ञा दें । ठीक उसी समय आकाशवाणी हुई-॥ ३३ ॥ 'हे महाराज ! तुम दक्षिणा देकर ऋणसे मुक्त हो गये ।' इसके बाद राजा हरिश्चन्द्रके मस्तकपर आकाशसे पुष्पवर्षा होने लगी ॥ ३४ ॥ इन्द्रसहित सम्पूर्ण शक्तिशाली देवता महाराजको बार-बार धन्यवाद देने लगे । तब अत्यन्त आनन्दनिमग्न होकर राजा हरिश्चन्द्रने विश्वामित्रसे कहा ॥ ३५ ॥ राजा बोले--हे महामते ! मेरे माता-पिता और बन्धु आप ही हैं । क्योंकि क्षणभरमें ही आपने मेरे ऋणरूपी बन्धनको काट दिया । आपकी कृपासे अब मैं उऋण हो गया ॥३६॥ हे महाबाहो !

भूमिं रत्नमयीं कृत्वा दास्ये तेऽहं द्विजोत्तम ॥ अस्य विक्रयणेनेयमार्तिश्च प्रहृता त्वया ॥ ३० ॥ व्यास उवाच ॥ ततो रत्नसहस्राणि सुवर्णमणिमौक्तिकैः ॥ चांडालेन प्रदत्तानि जग्राह द्विजसत्तमः ॥ ३१ ॥ हरिश्चंद्रस्तथा राजा निर्विकारमुखोऽभवत् ॥ अमन्यत तथा धैर्याद्विश्वामित्रो हि मे पतिः ॥३२॥ तत्तदेव मया कार्यं यदयं कारयिष्यति ॥ अथांतरिक्षे सहसा वागुवाचाशरीरिणी ॥ ३३ ॥ अनृणोऽसि महाभाग दत्ता सा दक्षिणा त्वया ॥ ततो दिवः पुष्पवृष्टिः पपात नृपमूर्धनि ॥३४॥ साधु साध्विति तं देवाः प्रोचुः सेंद्रा महौजसः ॥ हर्षेण महताऽऽविष्टो राजा कौशिकमब्रवीत् ॥ ३५ ॥ त्वं हि माता पिता चैव त्वं हि बंधुर्महामते ॥ यदर्थं मोचितोऽहं ते क्षणाच्चैवानृणीकृतः ॥३६॥ किं करोमि महाबाहो श्रेयो मे वचनं तव ॥ एवमुक्ते तु वचने नृपं मुनिरभाषत ॥३७॥ विश्वामित्र उवाच ॥ चांडालवचनं कार्यमद्यप्रभृति ते नृप ॥ स्वस्ति तेऽस्त्विति तं प्रोक्त्य तदादाय धनं ययौ ॥ ३८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे हरिश्चंद्रोपाख्याने त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

॥ शौनक उवाच ॥ ततः किमकरोद्राजा चांडालस्य गृहे गतः ॥ तद्ब्रूहि सूतवर्य त्वं पृच्छतः सत्वरं हि मे ॥१॥ सूत उवाच ॥ विश्वामित्रे गते विप्र श्वपचो हृष्टमानसः ॥ विश्वामित्राय तद्द्रव्यं दत्त्वा बद्ध्वा नरेश्वरम् ॥ २ ॥ असत्यो यास्यसीत्युक्त्वा दंडेनाताडयत्तदा ॥ दंडप्रहारसंभ्रां-

आपका वचन मेरे लिये कल्याणप्रद है । कहिये, कौनसा कार्य सम्पन्न करूँ ? इस प्रकार राजा हरिश्चन्द्रके कहनेपर उनके प्रति विश्वामित्र बोले ॥३७॥ विश्वामित्रने कहा--राजन् ! आजसे इस चाण्डालकी आज्ञाका पालन करना तुम्हारा परम कर्तव्य है । तुम्हारा कल्याण हो । यों कहकर विश्वामित्रने धन ले लिया और वे वहाँसे चल पड़े ॥ ३८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

(राजा हरिश्चन्द्रकी श्मशानपर नियुक्ति) शौनकने पूछा—हे परम आदरणीय सूतजी ! चाण्डालके घर जाकर राजा हरिश्चन्द्रने क्या किया ? आप मेरे इस प्रश्नका शीघ्र उत्तर देनेकी कृपा कीजिये ॥ १ ॥ सूतजी कहते हैं--हे द्विजवर ! विश्वामित्रके चले जानेपर चाण्डालका मन प्रसन्नतासे खिल उठा । उसने विश्वामित्रको निश्चित रकम दे दी और राजाको बाँध लिया ॥२॥

'तुम फिर झूठ बोलोगे ?'--यों कहकर उस चाण्डालने राजा हरिश्चन्द्रको डंडेसे मारा। डंडेकी चोट लगनेसे उनका चित्त तलमला उठा। उनकी इन्द्रियाँ व्याकुल हो गयीं ॥३॥ प्रिय बंधुओं-का वियोग तो उनके हृदयको संतप्त कर ही रहा था। चाण्डालने उन्हें अपने घर ले जाकर कारागारमें डाल दिया और स्वयं शान्तचित्त होकर सो गया ॥ ४ ॥ अब राजा हरिश्चन्द्रका समय चाण्डालके घर कारागारमें व्यतीत होने लगा। उन्होंने अन्न और जलका परित्याग कर दिया। वे निरन्तर मनमें सोचते थे—॥ ५ ॥ "मेरी दुर्बल स्त्री दयाकी पात्र है। दीन मुखवाले बालकको देखकर उसे असीम कष्ट होता होगा। वह मुझे याद करके सोचती होगी कि राजा हमें बन्धनसे मुक्त करेंगे ॥ ६ ॥ धन कमाकर प्रतिज्ञा की हुई रकम ब्राह्मणको चुका देंगे। रोते हुए पुत्रको तथा मुझको वे बुलायेंगे। तब मैं उनके पास चली जाऊँगी। फिर मेरा यह बालक 'पिताजी-पिताजी' कहकर रो पड़ेगा। तब वे इसे भी बुला लेंगे ॥७॥८॥ मृग-शावकके नेत्रोंके समान सुन्दर आँखोंवाली मेरी उस प्रियाको पता नहीं है कि मैं चाण्डाल हो गया हूँ। राज्य मेरे हाथसे निकल गया। इष्ट-मित्र सब अलग हो गये। मैंने स्त्री एवं पुत्रको

तमतीवव्याकुलेंद्रियम् ॥ ३ ॥ इष्टबंधुवियोगार्तमानीय निजपक्वणे ॥ निगडे स्थापयित्वा तं स्वयं सुष्वाप विज्वरः ॥ ४ ॥ निगडस्थस्ततो राजा वसंश्चांडालपक्वणे ॥ अन्नपाने परित्यज्य सदा वै तदशोचयत् ॥ ५ ॥ तन्वी दीनमुखी दृष्ट्वा बालं दीनमुखं पुरः ॥ मां स्मरंत्यसुखाविष्टा मोक्षयिष्यति नौ नृपः ॥ ६ ॥ उपात्तवित्तो विप्राय दत्त्वा वित्तं प्रतिश्रुतम् ॥ रोदमानं सुतं वीक्ष्य मां च संबोधयिष्यति ॥ ७ ॥ तातपार्श्वं व्रजामीति रुदंतं बालकं पुनः ॥ तात तातेति भाषंतं तथा संबोधयिष्यति ॥ ८ ॥ न सा मां मृगशावाक्षी वेत्ति चांडालतां गतम् ॥ राज्यनाशः सुहृत्त्यागो भार्यातनयविक्रयः ॥ ९ ॥ ततश्चांडालता चेयमहो दुःखपरंपरा ॥ एवं स निवसन्नित्यं स्मरंश्च दयितां सुतम् ॥ १० ॥ निनाय दिवसान्राजा चतुरो विधिपीडितः ॥ अथाह्नि पंचमे तेन निगडान्मोचितो नृपः ॥ ११ ॥ चांडालेनानुशिष्टश्च मृतचैलापहारणे ॥ क्रुद्धेन परुषैर्वाक्यैर्निर्भर्त्स्य च पुनः पुनः ॥ १२ ॥ काश्याश्च दक्षिणे भागे श्मशानं विद्यते महत् ॥ तद्रक्षस्व यथान्यायं न त्याज्यं तत्त्वया क्वचित् ॥ १३ ॥ इमं च जर्जरं दंडं गृहीत्वा याहि मा चिरम् ॥ वीरबाहोरयं दंड इति घोषस्व सर्वतः ॥ १४ ॥ सूत उवाच ॥ कस्मिंश्चिदथ काले तु मृतचैलापहारकः ॥ हरिश्चंद्रोऽभवद्राजा श्मशाने तद्वशानुगः ॥ १५ ॥ चांडालेनानुशिष्टस्तु मृतचैलापहारिणा ॥ राजा तेन समादिष्टो जगाम शवमंदिरम् ॥ १६ ॥

बेच दिया ॥९॥ फिर मुझे चाण्डालता स्वीकार करनी पड़ी। अहो ! यह कैसी विधिकी विडम्बना सामने आ गयी।" इस प्रकार महाराज हरिश्चन्द्र चाण्डालके घर रहते हुए निरन्तर स्त्री और पुत्रका स्मरण करते रहे ॥१०॥ दैवके विधानसे परम दुखी नरेशके यों चार दिन बीत गये। जब पाँचवाँ दिन आया, तब दोपहरके समय चाण्डालने उन्हें कारागारसे निकाला ॥११॥ फिर श्मशानपर मृत व्यक्तियोंसे कफन लेनेकी आज्ञा दी। उस क्रोधी चाण्डालने अत्यन्त कठोर वचनोंका प्रयोग करके बारम्बार डाँटते हुए हरिश्चन्द्रसे कहा—॥१२॥ 'देखो, काशीके दक्षिण भागमें एक विशाल श्मशानघाट है। तुम न्यायपूर्वक वहाँकी रखवाली करो। तुम्हें कभी भी वहाँसे हटना नहीं चाहिए ॥१३॥ इस पुराने डंडेको लेकर तुम अभी वहाँ चले जाओ। तुम्हें भली भाँति घोषित करना चाहिये कि यह दण्ड महाबाहु प्रवीरका है' ॥१४॥ सूतजी बोले—हे शौनक ! चाण्डालके आज्ञानुसार महाराज हरिश्चन्द्र मृतकोंका कफन लेनेके लिये श्मशानपर चले गये।

॥१५॥ वह भयानक श्मशानघाट काशीपुरीके दक्षिण भागमें था। वहाँ मुर्दे जलाये जाते थे, शवमाल्य बिखरा रहता था और अत्यन्त दुर्गन्धित धुआँ निकला करता था ॥१६॥ सर्वत्र भयंकर चीत्कार हो रहा था। सैकड़ों सियार अड्डा बनाये हुए थे। कुत्तों, गीधों और गीदड़ोंसे सारा स्थान भरा था ॥ १७ ॥ सर्वत्र मुर्दे-ही-मुर्दे दिखायी पड़ते थे। चारों ओर हड्डियाँ बिखरी पड़ी थीं। दुर्गन्धका पार नहीं था। अधजले मुर्दोंके मुख निकले हुए दाँतोंसे हँसते जैसे दीख रहे थे ॥१८॥१९॥ मृतकोंके बन्धु-बान्धव चिल्लाते थे, जिससे वहाँ भीषण कोलाहल मचा रहता था। पुत्र, मित्र, बन्धु, भाई, वत्स एवं प्रियाको सम्बोधित करके परिवारके मनुष्य कहते—'हा! आज तुम हमें छोड़कर जा रहे हो?' कुछ लोग दादा, नाना, पिता, पोता और बन्धु-बन्धवोंको लक्ष्य करके कहते—'हा! तुम कहाँ चले गये—लौट आनेकी कृपा करो।' प्राणियोंके इन हृदयविदारक शब्दोंसे वहाँका सभी स्थान सदा भरा रहता था ॥२०—२२॥ मांस, मज्जा और मेदके जलते समय साँय-साँयकी

पुर्यास्तु दक्षिणे देशे विद्यमानं भयानकम् ॥ शवमाल्यसमाकीर्णं दुर्गंधं बहुधूमकम् ॥ १७ ॥ श्मशानं घोरसन्नादं शिवाशतसमाकुलम् ॥ गृद्ध-गोमायुसंकीर्णं श्ववृन्दपरिवारितम् ॥ १८ ॥ अस्थिसंघातसंकीर्णं महादुर्गंधसंकुलम् ॥ अर्धदग्धशवास्यानि विकसद्दंतपंक्तिभिः ॥ १९ ॥ हसंतीवाग्निमध्यस्थकायस्यैवं व्यवस्थितिः ॥ नानामृतसुहृन्नादं महाकोलाहलाकुलम् ॥ २० ॥ हा पुत्र मित्र हा बंधो भ्रातर्वत्स प्रियाद्य मे ॥ हाप्यते भागिनेयाहं हा मातुल पितामह ॥ २१ ॥ मातामह पितः पौत्र क्व गतोऽस्येहि बांधव ॥ इति शब्दैः समाकीर्णं भैरवैः सर्वदेहिनाम् ॥ २२ ॥ ज्वलन्मांसवसामेदच्छूमिति ध्वनिसंकुलम् ॥ अग्नेश्चटचटाशब्दो भैरवो यत्र जायते ॥ २३ ॥ कल्पांतसदृशाकारं श्मशानं तत्सुदारुणम् ॥ स राजा तत्र संप्राप्तो दुःखादेवमशोचत ॥ २४ ॥ हा भृत्या मंत्रिणो यूयं क्व तद्राज्यं कुलोचितम् ॥ हा प्रिये पुत्र मे बाल मां त्यक्त्वा मंदभाग्यकम् ॥२५॥ ब्राह्मणस्य च कोपेन गता यूयं क्व दूरतः ॥ बिना धर्मं मनुष्याणां जायते न शुभं क्वचित् ॥ २६ ॥ यत्नतो धारयेत्तस्मात्पुरुषो धर्ममेव हि ॥ इत्येवं चिंतयंस्तत्र चांडालोक्तं पुनः पुनः ॥ २७ ॥ मलेन दिग्धसर्वांगः शवानां दर्शने व्रजन् ॥ लकुटाकारकल्पश्च धावंश्चापि ततस्ततः ॥ २८ ॥ अस्मिञ्छव इदं मौल्यं शतं प्राप्स्यामि चाग्रतः ॥ इदं मम इदं राज्ञ इदं चांडालकस्य च ॥ २९ ॥ इत्येवं चिन्तयन्राजा व्यवस्थां दुस्तरां गतः ॥

ध्वनि निकलती थी। अग्निमेंसे चट-चटानेका भयंकर शब्द होता था ॥२३॥ उस समय भय उत्पन्न करनेवाला वह श्मशानघाट ऐसा जान पड़ता था कि मानो प्रलयकाल ही उपस्थित हो। वहाँ पहुँचकर दुखी राजा हरिश्चन्द्र सोचने लगे—॥ २४ ॥ हा मेरे भृत्य तथा मंत्रीगण! तुम लोग कहाँ हो? कुलपरम्परासे प्राप्त मेरा रज्य कहाँ गया? हाय प्रिये! हाय पुत्र! मुझ अभागेको छोड़कर तुम चले गये? ॥२५॥ ब्राह्मणके कोपसे तुम लोग कहाँ गये? धर्मके बिना मनुष्यका कहीं भी कल्याण नहीं हो सकता ॥२६॥ अतएव मनुष्यको चाहिए कि यत्नपूर्वक धर्मको धारण करे। इन तथा चांडालकी बातोंपर वे बराबर विचार करते रहे ॥ २७ ॥ तब राजा हरिश्चन्द्र मुर्दोंको देखनेके लिये इधर-उधर घूमने लगे। उनके सम्पूर्ण शरीरपर मैल जम गयी थी। यत्र-तत्र दौड़ते हुए वे लकुटके समान प्रतीत होते थे ॥२८॥ इस शवसे यह मूल्य मिला, पुनः उससे सौ मुद्रा मूल्य मिलेगा। यह मेरा है, यह राजाका और यह चाण्डालका—इस प्रकारकी

दुस्तर व्यवस्थामें राजा व्यस्त रहने लगे। उनके शरीरपर एक ही पुराना वस्त्र था, जिसमें बहुत-सी गाँठें पड़ी थीं। एक गुदड़ी उनके पास थी। हाथ, पैर, मुख और उदर चिताकी राख एवं धूलसे धूसरित थे। हाथकी अँगुलियाँ तरह-तरहके मांस, रुधिर और मज्जासे सनी रहती थीं ॥२९-३१॥ मुर्दोंके पिण्डदानार्थ जो भात बनता था, उसीके बचे-खुचे भागसे वे अपनी भूख मिटा लेते थे। मुर्दोंकी माला पहनकर अपने मस्तकका शृङ्गार करते थे ॥३२॥ नित्य हाय-हाय करते हुए न वे दिनमें सोते थे और न रातमें ही। इस प्रकार महाराज हरिश्चन्द्रके बारह महीने सौ वर्षके समान बीते ॥३३॥ इति श्रीदेवीभागवते सप्तमस्कन्धे 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

(सर्पदंशसे रोहितकी मृत्यु) सूतजी कहते हैं—हे शौनक! एक दिन राजकुमार रोहित खेलनेके लिए काशीसे कुछ दूर बाहर चला गया। उसके साथ बहुतसे लड़के भी थे ॥ १ ॥ खेलनेके पश्चात् वह कुशा उखाड़ने लगा। अपनी शक्तिके अनुसार जड़ और अग्रभागसे युक्त बहुतसे कोमल कुश उसने उखाड़े ॥ २ ॥ 'इससे मेरे मालिक प्रसन्न होंगे' यह सोचकर दोनों

जीर्णैकपटसुग्रंथिकृतकंथापरिग्रहः ॥ ३० ॥ चिताभस्मरजोलिप्तमुखबाहूदरांघ्रिकः ॥ नानामेदोवसामज्जालिप्तपाण्यंगुलिः श्वसन् ॥ ३१ ॥ नानाशवौदनकृतक्षुन्निवृत्तिपरायणः ॥ तदीमाल्यसंश्लेषकृतमस्तकमंडनः ॥ ३२ ॥ न रात्रौ न दिवा शेते हाहेति प्रवदन्मुहुः ॥ एवं द्वादश मासास्तु नीता वर्षशतोपमाः ॥ ३३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

॥ सूत उवाच ॥ एकदा तु गतो रंतुं बालकैः सहितो बहिः ॥ वाराणस्या नातिदूरे रोहिताख्यः कुमारकः ॥१॥ क्रीडां कृत्वा ततो दर्भान्गृहीतुमुपचक्रमे ॥ कोमलानल्पमूलांश्च साग्राञ्छक्त्यनुसारतः ॥ २ ॥ आर्यप्रीत्यर्थमित्युक्त्वा हस्तयुग्मेन यत्नतः ॥ सलक्षणाश्च समिधो बर्हिरिध्मं सलक्षणम् ॥ ३ ॥ पलाशकाष्ठान्यादाय त्वग्निहोमार्थमादरात् ॥ मस्तके भारकं कृत्वा खिद्यमानः पदे पदे ॥ ४ ॥ उदकस्थानमासाद्य तदा बालस्तृषान्वितः ॥ भुवि भारं विनिक्षिप्य जलस्थाने तदा शिशुः ॥ ५ ॥ कामतः सलिलं पीत्वा विश्रम्य च मुहूर्तकम् ॥ वल्मीकोपरि विन्यस्तभारो हर्तुं प्रचक्रमे ॥ ६ ॥ विश्वामित्राज्ञया तावत्कृष्णसर्पो भयावहः ॥ महाविषो महाघोरो वल्मीकान्निर्गतस्तदा ॥७॥ तेनासौ बालको दष्टस्तदैव च पपात ह ॥ रोहिताख्यं मृतं दृष्ट्वा ययुर्बाला द्विजालयम् ॥ ८ ॥ त्वरिता भयसंविग्नाः प्रोचुस्तन्मातुरग्रतः ॥ हे विप्रदासि ते पुत्रः क्रीडां कर्तुं बहिर्गतः ॥९॥

हाथोंसे यत्नपूर्वक उसने कुशा उखाड़ी। उत्तम लक्षणवाली समिधाएँ और कुशका उसने पर्याप्त संग्रह कर लिया ॥ ३ ॥ अग्निहोत्रके लिये आदरपूर्वक पलाशकी लकड़ियाँ भी उसने तोड़ लीं। सबको लेकर एक बोझ बनाया और मस्तकपर रखकर वह पैदल ही चलने लगा। सुकुमार था ही, चलते-चलते थक गया ॥ ४ ॥ उस समय राजकुमार रोहितको प्यास भी लग गयी थी। अतः वह एक जलाशयपर पहुँचा। जलके समीप जमीनपर बोझ उतारकर उसने रख दिया ॥ ५ ॥ इच्छानुसार जल पीकर कुछ समयतक विश्राम किया। फिर वल्मीकके टीलेपर जो बोझ रक्खा हुआ था, उसे उठाने लगा ॥६॥ इतनेमें विश्वामित्रकी प्रेरणासे एक महान् विषधर काला सर्प बिलसे निकला। उसकी आकृति अत्यन्त भयंकर थी ॥७॥ उसने राजकुमार रोहितको काट लिया। उसके काटते ही वह जमीनपर गिर पड़ा और मर गया। यह देखकर साथी बालक ब्राह्मणके घर गये ॥ ८ ॥ भयके कारण उन बालकोंके हृदयमें बड़ी घबराहट

उत्पन्न हो गयी थी। अत्यन्त उतावलीके साथ रोहितकी माताके सामने जाकर वे कहने लगे—'हे विप्रदासी ! तुम्हारा पुत्र खेलनेके लिये बाहर गया था, हम सभी साथ थे। वहाँ सर्पने उसको डस लिया। इससे उसके प्राण निकल गये!' वज्रपातकी तुलना करनेवाली यह बात सुनते ही रानी मूर्छित होकर जमीनपर इस तरह गिर पड़ी, मानो जड़से कटा हुआ केलेका वृक्ष गिर पड़ा हो। तब ब्राह्मणने कुपित होकर रानीपर जलके छींटे दिये ॥९–११॥ क्षणभरमें रानीको जब चेत हो गया, तब ब्राह्मण उससे कहने लगा। ब्राह्मण बोला—अरी दुष्टे ! सायंकालके समय रोना अशुभसूचक है ॥१२॥ इससे घरमें दरिद्रता आती है। इसको जानती हुई भी तू क्यों रो रही है ? क्या तेरे हृदयमें तनिक भी लज्जाको स्थान नहीं है ? इस प्रकार ब्राह्मणके डाँटनेपर रानीने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। पुत्र-शोकसे संतप्त होकर वह बेचारी रोती ही रही। उसका मुख आँसुओंसे भींग रहा था। सिरके बाल इधर-उधर बिखरे थे। घोर दयनीय दशाको प्राप्त वह रानी धूलसे धूसरित हो गयी थी ॥ १३ ॥ १४ ॥ फिर क्रोधके आवेशमें आकर ब्राह्मणने रानीसे कहा—'दुष्टे! तुझे धिक्कार है। क्योंकि अपनी कीमत ले करके भी तू मेरा कार्य करनेमें आनाकानी कर रही है।

अस्माभिः सहितस्तत्र सर्पदष्टो मृतस्ततः ॥ इति सा तद्वचः श्रुत्वा वज्रपातोपमं तदा ॥ १० ॥ पपात मूर्छिता भूमौ छिन्नेव कदली यथा ॥ अथ तां ब्राह्मणो रुष्टः पानीयेनाभ्यषिंचत ॥ ११ ॥ मुहूर्ताच्चेतनां प्राप्ता ब्राह्मणस्तामथाब्रवीत् ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ अलक्ष्मीकारकं निंद्यं जानती त्वं निशामुखे ॥ १२ ॥ रोदनं कुरुषे दुष्टे लज्जा ते हृदये न किम् ॥ ब्राह्मणेनैवमुक्ता सा न किंचिद्वाक्यमब्रवीत् ॥ १३ ॥ रुरोद करुणं दीना पुत्र-शोकेन पीडिता ॥ अश्रुपूर्णमुखी दीना धूसरा मुक्तमूर्द्धजा ॥१४॥ अथ तां कुपितो विप्रो राजपत्नीमभाषत ॥ धिक्त्वां दुष्टे क्रयं गृह्य मम कार्यं विलुंपसि ॥ १५ ॥ अशक्ता चेत्कथं तर्हि गृहीतं मम तद्धनम् ॥ एवं निर्भर्त्सिता तेन क्रूरवाक्यैः पुनः पुनः ॥ १६ ॥ रुदती कारणं प्राह विप्रं गद्गदया गिरा ॥ स्वामिन्मम सुतो बालः सर्पदष्टो मृतो बहिः ॥ १७ ॥ अनुज्ञां मे प्रयच्छस्व द्रष्टुं यास्यामि बालकम्॥ दुर्लभं दर्शनं तेन संजातं मम सुव्रत ॥ १८ ॥ इत्युक्त्वा करुणं बाला पुनरेव रुरोद ह ॥ पुनस्तां कुपितो विप्रो राजपत्नीमभाषत ॥ १९ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ शठे दुष्टस-माचारे किं न जानासि पातकम् ॥ यत्स्वामिवेतनं गृह्य तस्य कार्यं विलुम्पसि ॥२०॥ नरके पच्यते सोऽथ महारौरवपूर्वके ॥ उषित्वा नरके कल्पं

यदि तू इस कामको नहीं कर सकती थी तो मुझसे धन ही क्यों लिया ?' इस प्रकार बारंबार निष्ठुर वाक्योंका प्रयोग करके ब्राह्मण रानीको डाँटने लगा ॥ १५ ॥ १६ ॥ रानीके नेत्रोंसे निरन्तर जल बह रहा था। उसने दुःखभरी वाणीमें अपने रोनेका कारण बताते हुए कहा—'स्वामिन्! मेरा बच्चा खेलने गया था, उसे सर्पने डस लिया। जिससे उसकी मृत्यु हो गयी ॥१७॥ हे सुव्रत ! मैं उस बालकको देखनेके लिए जाना चाहती हूँ। मुझे आज्ञा देनेकी कृपा कीजिये। क्योंकि अब उस पुत्रका दर्शन मेरे लिए परम दुर्लभ हो गया है' ॥ १८ ॥ यों करुणापूर्ण वचन कहकर रानी पुनः रोने लगी। तब उस क्रोधी ब्राह्मणने उससे फिर कहा ॥१९॥ ब्राह्मण बोला—नीच व्यवहारमें तत्पर रहनेवाली मूर्खे ! क्या तुझे पापकी जानकारी नहीं है ? देख, जो व्यक्ति स्वामीसे वेतन लेकर उसका कार्य सुचारु रूपसे नहीं करता, उसे अत्यन्त भयंकर रौरव नरकमें गिरना पड़ाता है। एक कल्प नरक भोगनेके पश्चात् मुर्गेकी यानिमें उसकी उत्पत्ति

होती है ॥२०॥२१॥ अथवा इस धार्मिक चर्चासे मुझे क्या मतलब। क्योंकि पापी, मूर्ख, क्रूर, मिथ्याभाषी और शठ प्राणियोंके ऊपर उपदेशका कुछ भी असर नहीं होता। जैसे ऊसरमें बीज बोनेपर वह व्यर्थ हो जाता है। यदि तुझे परलोकका कुछ भी भय हो तो आ और अपना काम कर ॥ २२ ॥ २३ ॥ उस समय इस प्रकार ब्राह्मणके कहनेपर काँपती हुई रानी बोली—'नाथ ! मुझपर कृपा कीजिये। आप प्रसन्न हो जायँ। मैं बालकको देख सकूँ, केवल इतने समयके लिये ही मुझे वहाँ जानेकी आज्ञा दे दीजिये।' यों कहकर रानी ब्राह्मणके पैरपर गिर पड़ी ॥ २४ ॥ २५ ॥ पुत्रके शोकसे अत्यन्त दुखी होनेके कारण वह करुण विलाप करके रो रही थी। तदनन्तर रोषसे आँखें लाल करके वह क्रोधी ब्राह्मण रानीसे पुनः कहने लगा ॥ २६ ॥ ब्राह्मण बोला—तेरे पुत्रसे मुझे क्या प्रयोजन ? तू पहले घरका काम कर। क्या तू मेरे क्रोधको नहीं जानती। विशेष रोयेगी तो कोड़े लगाऊँगा ? ॥ २७ ॥ इस प्रकार ब्राह्मणके कहनेपर रानी धैर्यपूर्वक उसके घरका काम करने लगी। पैर दबाने, मालिश करने आदि कार्योंके सम्पादनमें आधी रातका समय व्यतीत हो गया ॥ २८ ॥

ततोऽसौ कुक्कुटो भवेत् ॥ २१ ॥ किमनेनाथवा कार्यं धर्मसंकीर्तनेन मे ॥ यस्तु पापरतो मूर्खः क्रूरो नीचोऽनृतः शठः ॥ २२ ॥ तद्वाक्यं निष्फलं तस्मिन्भवेद्बीजमिवोषरे ॥ एहि ते विद्यते किंचित्परलोकभयं यदि ॥ २३ ॥ एवमुक्ताऽथ सा विप्रं वेपमानाऽब्रवीद्वचः ॥ कारुण्यं कुरु मे नाथ प्रसीद सुमुखो भव ॥ २४ ॥ प्रस्थापय मुहूर्तं मां यावद्द्रक्ष्यामि बालकम् ॥ एवमुक्त्वाऽथ सा मूर्ध्ना निपत्य द्विजपादयोः ॥ २५ ॥ रुरोद करुणं बाला पुत्रशोकेन पीडिता ॥ अथाह कुपितो विप्रः क्रोधसंरक्तलोचनः ॥ २६ ॥ विप्र उवाच ॥ किं ते पुत्रेण मे कार्यं गृहकर्म कुरुष्व मे ॥ किं न जानासि मे क्रोधं कशाघातफलप्रदम् ॥२७॥ एवमुक्ता स्थिता धैर्याद्गृहकर्म चकार ह॥ अर्धरात्रो गतस्तस्याः पादाभ्यंगादिकर्मणा ॥२८॥ ब्राह्मणेनाथ सा प्रोक्ता पुत्रपार्श्वं व्रजाधुना ॥ तस्य दाहादिकं कृत्वा पुनरागच्छ सत्वरम् ॥ २९ ॥ न लुप्येत यथा प्रातर्गृहकर्म ममेति च ॥ ततस्त्वेकाकिनी रात्रौ विलपंती जगाम ह ॥३०॥ दृष्ट्वा मृतं निजं पुत्रं भृशं शोकेन पीडिता ॥ यूथभ्रष्टा कुरंगीव विवत्सा सौरभी यथा ॥३१॥ वाराणस्या बहिर्गत्वा क्षणाद्दृष्ट्वा निजं सुतम् ॥ शयानं रंकवद्भूमौ काष्ठदर्भतृणोपरि ॥ ३२ ॥ विललापातिदुखार्ता शब्दं कृत्वा सुनिष्ठुरम् ॥ एहि मे संमुखं कस्माद्रोषितोऽसि वदाधुना ॥३३॥ आयास्यभिमुखो नित्यमंबेत्युक्त्वा पुनः पुनः॥ गत्वा स्खलत्पदा तस्य पपातोपरि मूर्च्छिता ॥३४॥

तब ब्राह्मणने रानीसे कहा—'अब तू पुत्रके पास जा सकती है। उसका दाहसंस्कार आदि करके बहुत शीघ्र लौटा आना। जिससे मेरे प्रातःकालीन कार्यमें बाधा न उपस्थित हो।' तब रानी अकेली ही उस आधी रातके समय रोती-बिलखती हुई पुत्रके पास गयी ॥ २९ ॥ ३० ॥ अपने मृत बालकको देखकर शोकसे उसका हृदय संतप्त हो उठा। वह ऐसी जान पड़ती थी, मानो झुण्डसे बिछड़ी हुई हिरनी अथवा बिना बछड़ेकी गाय हो ॥ ३१ ॥ काशीसे बाहर निकलनेपर तुरंत उसका मृत कुमार दिखायी पड़ा। काठ, कुशा और तृणके सहारे वह बालक जमीनपर कंगालकी भाँति पड़ा था ॥ ३२ ॥ उस समय दुःखके कारण अत्यन्त अधीर होकर परम कर्कश शब्दका प्रयोग करके चिल्लाती हुई रानी विलाप करने लगी—'बेटा ! तू मेरे सामने आ जा। बता तो इस समय तू क्यों रूठ गया है ? ॥ ३३ ॥ पहले तू बार बार 'अम्बा-अम्बा' कहकर मेरे सामने आया करता था !' यों कहकर रानी कुछ डग आगे बढ़ी और मूर्च्छित

होकर मृत पुत्रके ऊपर गिर पड़ी ॥ ३४ ॥ फिर सचेत होनेपर उसने दोनों हाथोंसे बालकको पकड़ लिया। उसके मुखसे अपना मुख सँटानेके पश्चात् अत्यन्त हृदय-विदारक शब्दोंका प्रयोग करके वह घिघियाकर रोने लगी ॥ ३५ ॥ हाथोंसे अपना मस्तक और छाती पीटकर वह इस प्रकार करुण विलाप कर रही थी—'हा पुत्र ! हा शिशो ! हा वत्स ! हा मेरे सुकुमार बच्चे ! तू कहाँ चला गया ? हा राजन् ! आप कहाँ चले गये ? यहाँ आकर अपने इस बालकको तो देख लें। प्राणोंसे भी बढ़कर प्रेमभाजन आपका पुत्र मरकर जमीनपर पड़ा है ॥३६-३८॥ फिर वह रानी कहीं बालकके प्राण तो नहीं लौट आये, इस भावनासे मृत पुत्रका मुख निहारने लगी। जब मुखकी चेष्टासे मालूम हो गया कि वह जीवित नहीं है, तब पुनः मूर्च्छित होकर गिर पड़ी ॥३९॥ सचेत होनेपर उसने पुनः हाथसे बालकका मुख पकड़ लिया और कहा—'बेटा ! तू इस भयंकर निद्राका त्याग कर दे। शीघ्र जग जा। आधी रातसे भी अधिक समय व्यतीत हो गया। सैकड़ों सियार बोल रहे हैं। भूत, प्रेत, पिशाच और डाकिनी आदिके झुण्डकी भयंकर ध्वनि श्रवणगोचर हो रही है ॥ ४० ॥ सूर्यास्त होते ही तेरे सभी मित्र घर चले

पुनः सा चेतनां प्राप्य दोर्भ्यामालिंग्य बालकम् ॥ तन्मुखे वदनं न्यस्य रुरोदार्तस्वनैस्तदा ॥ ३५ ॥ कराभ्यां ताडनं चक्रे मस्तकस्योदरस्य च ॥ हा बाल हा शिशो वत्स हा कुमारक सुंदर ॥ ३६ ॥ हा राजन्क गतोऽसि त्वं पश्येमं बालकं निजम् ॥ प्राणेभ्योऽपि गरीयांसं भूतले पतितं मृतम् ॥ ३७ ॥ तथाऽपश्यन्मुखं तस्य भूयो जीवितशंकया ॥ निर्जीववदनं ज्ञात्वा मूर्च्छिता निपपात ह ॥ ३८ ॥ हस्तेन वदनं गृह्य पुनरेवमभाषत ॥ शयनं त्यज हे बाल शीघ्रं जागृहि भीषणम् ॥ ३९ ॥ निशार्धं वर्धते चेदं शिवाशतनिनादितम् ॥ भूतप्रेतपिशाचादिडाकिनीयूथनादितम् ॥ ४० ॥ मित्राणि ते गतान्यस्तात्त्वमेकस्तु कुतः स्थितः ॥ सूत उवाच ॥ एवमुक्त्वा पुनस्तन्वी करुणं प्ररुरोद ह ॥ ४१ ॥ हा शिशो बाल हा वत्स रोहिताख्य कुमारक ॥ हे पुत्र प्रतिशब्दं मे कस्मात्त्वं न प्रयच्छसि ॥ ४२ ॥ तवाहं जननी वत्स किं न जानासि पश्य माम् ॥ देशत्यागाद्राज्यनाशात्पुत्र भर्त्रा स्वविक्रयात् ॥४३॥ यद्दासीत्वाच्च जीवामि त्वां दृष्ट्वा पुत्र केवलम् ॥ ते जन्मसमये विप्रैरादिष्टं यत्त्वनागतम् ॥४४॥ दीर्घायुः पृथिवीराजः पुत्रपौत्रसमन्वितः ॥ शौर्यदानरतिः सत्त्वी गुरुदेवद्विजार्चकः ॥४५॥ मातापित्रोस्तु प्रियकृत्सत्यवादी जितेन्द्रियः ॥ इत्यादि सकलं जातमसत्यमधुना सुत ॥४६॥ चक्रमत्स्यावातपत्रश्रीवत्सस्वस्तिकध्वजाः ॥ तव पाणितले पुत्र कलशश्चामरं तथा ॥ ४७ ॥ लक्षणानि

गये। केवल तू ही यहाँ कैसे रह गया ? सूतजी बोले—हे शौनक ! इस प्रकार विलाप करनेके बाद दुर्बल शरीरवाली रानी फिर रोने लगी ॥४१॥ हा शिशो ! तू निरा बालक है। हा सुकुमार वत्स ! तुझे लोग रोहित कहते हैं। अरे पुत्र ! तू मेरी बातका कुछ उत्तर क्यों नहीं देता ? ॥४२॥ हे वत्स ! मैं तेरी माता हूँ, क्या तू यह नहीं जानता ? मेरी ओर दृष्टि उठाकर देख। हमें अपने देशसे निकलना पड़ा, राज्यकी सत्ता हाथसे चली गयी, पतिदेवने मुझे दूसरेके हाथ बेच दिया और मैं दासीके कामपर नियुक्त हो गयी—इतनी विपत्तियोंका सामना करके भी मैं केवल तुझे देखकर जीवन काट रही थी। बेटा ! तेरे जन्मके समय ब्राह्मणोंने भविष्यकी बात बतायी थी। उन्होंने कहा था कि यह बालक दीर्घायु, पृथ्वीका शासक, पुत्र-पौत्रसे सम्पन्न, शूरवीर, दानी, पराक्रमी, ब्राह्मण, गुरु एवं देवताका उपासक, माता-पितासे प्रेम रखनेवाला, सत्यवादी और जितेन्द्रिय होगा। हे पुत्र ! उनके ये सभी वचन इस समय असत्य हो

गये ॥ ४३–४६ ॥ वत्स ! तेरे हाथके तलवेमें चक्र, मछली, छत्र, श्रीवत्स, स्वस्तिक, ध्वजा, कलश एवं चँवर आदिके चिह्न तथा अन्य भी जो शुभ लक्षण विद्यमान हैं, वे सबके-सब इस समय निष्फल सिद्ध हो रहे हैं ॥४७॥४८॥ पृथ्वीपर शासन करनेवाले हा राजन् ! आपका राज्य, मन्त्रिमंडल, सिंहासन, छत्र, तलवार और धन सब कहाँ चले गये ? ॥ ४९ ॥ हे पुत्र ! अयोध्याके गमनचुम्बी महल, हाथी, घोड़े, रथ और प्रजा–इन सबके साथ ही तू भी मुझे छोड़कर कहाँ चला गया ? ॥५०॥ हा कान्त ! हा राजन् ! आप यहाँ पधारकर अपने प्रिय पुत्रको देखें। जो खेलते-खेलते आपकी छातीपर चढ़कर उसे कुङ्कुमसे रँग देता था, जिसके शरीरमें लगे हुए कीचड़से कभी आपकी छाती मलिन हो जाती थी तथा कभी गोदमें बैठकर जो चपलताके कारण आपके मस्तकपर लगे हुए कस्तूरीमिश्रित चन्दनको मिटा दिया करता था, जिसके मिट्टीलगे मुखको स्नेहवश आप चूमा करते थे ॥५१–५३ ॥ उसीके मुखपर आज मैं देखती हूँ

तथाऽन्यानि त्वद्धस्ते यानि संति च ॥ तानि सर्वाणि मोघानि संजातान्यधुना सुत ॥ ४८ ॥ हा राजन्पृथिवीनाथ क्व ते राज्यं क्व मंत्रिणः ॥ क्व ते सिंहासनं छत्रं क्व ते खड्गः क्व तद्धनम् ॥४९॥ क्व साऽयोध्या क्व हर्म्याणि क्व गजाश्वरथप्रजाः ॥ सर्वमेतत्तथा पुत्र मां त्यक्त्वा क्व गतोऽसि रे ॥ ५० ॥ हा कांत हा नृपागच्छ पश्येमं स्वसुतं प्रियम् ॥ येन ते रिंगता वक्षः कुंकुमेनावलेपितम् ॥ ५१ ॥ स्वशरीररजःपंकैर्विशालं मलिनीकृतम् ॥ येन ते बालभावेन मृगनाभिविलेपितः ॥ ५२ ॥ भ्रंशितो भालतिलकस्तवांकस्थेन भूपते ॥ यस्य वक्त्रं मृदा लिप्तं स्नेहाद्वै चुम्बितं त्वया ॥ ५३ ॥ तन्मुखं मक्षिकालिंग्यं पश्ये कीटैर्विदूषितम् ॥ हा राजन्पश्य तं पुत्रं भुविस्थं रंकवन्मृतम् ॥ ५४ ॥ हा देव किं मया कृत्यं कृतं पूर्वभवान्तरे ॥ तस्य कर्मफलस्येह न पारमुपलक्षये ॥ ५५ ॥ हा पुत्र हा शिशो वत्स हा कुमारक सुन्दर ॥ एवं तस्या विलापं ते श्रुत्वा नगरपालकाः ॥ ५६ ॥ जागृतास्त्वरितास्तस्याः पार्श्वमीयुः सुविस्मिताः ॥ जना ऊचुः ॥ का त्वं बालश्च कस्यायं पतिस्ते कुत्र तिष्ठति ॥ ५७ ॥ एकैव निर्भया रात्रौ कस्मात्त्वमिह रोदिषि ॥ एवमुक्ताऽथ सा तन्वी न किंचिद्वाक्यमब्रवीत् ॥ ५८ ॥ भूयोऽपि पृष्टा सा तूष्णीं स्वब्धीभूता बभूव ह ॥ विललापातिदुःखार्ता शोकाश्रुप्लुतलोचना ॥ ५९ ॥ अथ ते शंकितास्तस्यां रोमांचिततनूरुहाः ॥ संत्रस्ताः प्राहुरन्योन्यमुद्धृतायुधपा-

कि मक्खियाँ भिनक रही हैं। हा राजन् ! वही आपका पुत्र आज मरकर अकिञ्चनकी भाँति धरतीपर पड़ा है। उसे देख तो लें ॥५४॥ हा दैव ! पूर्व-जन्ममें मेरे द्वारा कौन ऐसा कुकृत्य हो गया था कि जिसके फलभोगका मैं अन्त ही नहीं पा रही हूँ। हा पुत्र ! हा शिशो ! हा वत्स ! हा मेरे सुन्दर कुमार ! ऐसा कहकर रानी उच्च स्वरसे विलाप कर रही थी। रोनेके शब्द जब पहरेदारोंके कानमें पड़े तो उनकी नींद उचट गयी। अत्यन्त आश्चर्यमें पड़कर वे दौड़े हुए रानीके पास आये। पहरेदारोंने कहा–तुम कौन हो ? यह बालक किसका है और तुम्हारे पतिदेव कहाँ हैं ? ॥ ५५–५७ ॥ रातके समय निर्भीकतापूर्वक तुम अकेली ही कहाँसे आकर रो रही हो ? ऐसा कहनेपर वे रानीके मुखसे कुछ भी उत्तर नहीं पा सके ॥ ५८ ॥ दुबारा पूछनेपर भी वह चुप रही। उसके बाद वह फिर आँसू बहाती हुई बड़े दुःखके साथ रोने लगी ॥५९॥ तब रानीके प्रति पहरेदारोंके मनमें संदेह उत्पन्न हो गया। डरके कारण उनके शरीरके रोंगटे खड़े

हाथमें आयुध लेकर वे परस्पर कहने लगे ॥ ६० ॥ 'निश्चय ही यह स्त्री नहीं है, क्योंकि इसके मुखसे कोई बात नहीं निकलती। अवश्य ही यह बालकोंको खा जानेवाली

हो गये। हाथमें आयुध लेकर वे परस्पर कहने लगे ॥ ६० ॥ 'निश्चय ही यह स्त्री नहीं है, क्योंकि इसके मुखसे कोई बात नहीं निकलती। अवश्य ही यह बालकोंको खा जानेवाली पिशाची है। अतएव यत्न करके इसे मार डालना चाहिये ॥६१॥ यदि कोई आदरणीय स्त्री होती तो इस घोर रात्रिमें घरसे बाहर रहती ही क्यों ? हो न हो यह पिशाची किसीके पुत्रको खानेके लिए ही यहाँ ले आयी है।' ॥ ६२ ॥ यों आपसमें परामर्श करके कुछ लोगोंने तुरन्त रानीके केश पकड़ लिये, कुछ अन्य व्यक्तियोंने रानीकी दोनों भुजायें पकड़ लीं तथा कितनोंके हाथ रानीके गलेमें भिड़ गये ॥ ६३ ॥ 'अरी राक्षसी ! अब तू कहाँ जायगी' यों कहकर बहुतसे शस्त्रधारी नागरिक रानीको घसीटकर चाण्डालके स्थानपर चले गये और उसे सौंप दिया। ॥ ६४ ॥ साथ ही कहा—'चाण्डाल ! यह बच्चोंको खा जानेवाली राक्षसी है। हमने इसे पकड़ लिया है। तुम अभी कहीं बाहर लेजाकर इसको मार डालो, जानसे मार डालो' ॥६५॥ तब चाण्डालने रानीको देखकर कहा—'मैं इसे जानता हूँ। बहुतोंके मुखसे इसकी चर्चा सुनी है। प्रायः लोगोंके बच्चोंको यह खा जाया करती है, परन्तु इसके पहले किसीने भी इसे देखा नहीं

णयः ॥ ६० ॥ नूनं स्त्री न भवत्येषा यतः किंचिन्न भाषते ॥ तस्माद्वध्या भवेदेषा यत्नतो बालघातिनी ॥ ६१ ॥ शुभा चेत्तर्हि किं ह्यत्र निशार्धे तिष्ठते बहिः ॥ भक्षार्थमनया नूनमानीतः कस्यचिच्छिशुः ॥ ६२ ॥ इत्युक्त्वा तैर्गृहीता सा गाढं केशेषु सत्वरम् ॥ भुजयोरपरैश्चैव कैश्चापि गलके तथा ॥ ६३ ॥ खेचरी यास्यतीत्युक्तं बहुभिः शस्त्रपाणिभिः ॥ आकृष्य पक्वणे नीता चांडालाय समर्पिता ॥ ६४ ॥ हे चांडाल बहिर्दृष्टा ह्यस्माभिर्बालघातिनी ॥ वध्यतां वध्यतामेषा शीघ्रं नीत्वा बहिःस्थले ॥६५॥ चांडालः प्राह तां दृष्ट्वा ज्ञातेयं लोकविश्रुता ॥ न दृष्टपूर्वा केनापि लोकडिंभान्यनेकधा ॥ ६६ ॥ भक्षितान्यनया भूरि भवद्भिः पुण्यमर्जितम् ॥ ख्यातिर्वः शाश्वती लोके गच्छध्वं च यथासुखम् ॥ ६७ ॥ द्विजस्त्री-बालगोघाती स्वर्णस्तेयी च यो नरः ॥ अग्निदो वर्त्मघाती च मद्यपो गुरुतल्पगः ॥६८॥ महाजनविरोधी च तस्य पुण्यप्रदो वधः ॥ द्विजस्याऽपि स्त्रियो वाऽपि न दोषो विद्यते वधे ॥६९॥ अस्या वधश्च मे योग्य इत्युक्त्वा गाढबन्धनैः ॥ बद्ध्वा केशेष्वथाकृष्य रज्जुभिस्तामताडयत् ॥ ७० ॥ हरिश्चन्द्रमथोवाच वाचा परुषया तदा ॥ रे दास वध्यतामेषा दुष्टात्मा मा विचारय ॥७१॥ तद्वाक्यं भूपतिः श्रुत्वा वज्रपातोपमं तदा ॥ वेपमानोऽथ

था ॥६६॥ आपलोगोंने इसे पकड़कर बहुत बड़ा पुण्य कमाया है। आपकी कीर्ति जगत्में सदा बनी रहेगी। अच्छा, अब आपलोग सुखपूर्वक यहाँसे पधारें ॥६७॥ जो मनुष्य गौ, ब्राह्मण, स्त्री और बालकका वध करता हो, सुवर्ण चुराता हो, आग लगाता हो, रास्ता रूँधता हो, शराब पीता हो, गुरुकी शय्यापर सोता हो तथा श्रेष्ठ पुरुषोंका विरोध करता हो तो उसका वध करनेसे पुण्य होता है। ऐसे कार्यमें तत्पर रहनेवाली ब्राह्मणकी स्त्रीको भी मार डालनेमें दोष नहीं लगता। अतः इसका वध उचित ही है' ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ इस प्रकार कहकर चाण्डालने मजबूत बन्धनोंसे रानीको बाँध दिया। फिर उसने केश पकड़कर रस्सियोंसे बुरी तरह पीटा ॥ ७० ॥ इसके पश्चात् चाण्डालने कठोर वचनका प्रयोग करके हरिश्चन्द्रको बुलाया और उनसे कहा—'अरे दास ! तू बिना कुछ विचारे इस दुराचारिणी स्त्रीका तुरन्त वध कर डाल' ॥७१॥ चाण्डालका यह वचन वज्रपातकी तुलना कर रहा था। उसे सुनकर स्त्री-वधकी आशंकासे राजा

हरिश्चन्द्रका शरीर काँप उठा ॥७२॥ उन्होंने चाण्डालसे कहा–'मैं यह काम करनेमें असमर्थ हूँ ! मुझे कोई अन्य कार्य करनेकी आज्ञा दीजिये। इसके सिवा आपके बताये हुए असाध्य कार्यको भी मैं कर डालूँगा' ॥ ७३ ॥ राजा हरिश्चन्द्रकी यह बात सुनकर चाण्डालने उनसे यह वचन कहा—'अरे, तुम डरो मत। तलवार लेकर इसे मार डालो, क्योंकि इसका वध पुण्यप्रद है ॥ ७४ ॥ बालकोंको भय पहुँचानेवाली ऐसी राक्षसीकी कभी भी रक्षा नहीं करनी चाहिये।' चाण्डालकी उपर्युक्त बात सुनकर राजाने उत्तर दिया–॥७५॥ 'जिस-किसी प्रकारसे भी स्त्रीकी रक्षा करनी चाहिये। स्त्रीको कभी भी मारना उचित नहीं है। क्योंकि धर्मपरायण मुनियोंका कथन है कि स्त्रीवध महान् पाप है ॥७६॥ जो पुरुष जानकर अथवा अनजानमें भी स्त्रीकी हत्या करता है, उसे महाभयंकर रौरव नरकमें गिरकर यातना भोगनी पड़ती है' ॥ ७७ ॥ चाण्डालने कहा–अरे, इतना कहने-सुननेकी कोई आवश्यकता नहीं है। बिजलीके समान चमकनेवाली

चांडालं प्राह स्त्रीवधशंकितः ॥७२॥ न शक्तोऽहमिदं कर्तुं प्रेष्यं देहि ममापरम् ॥ असाध्यमपि यत्कर्म तत्करिष्ये त्वयोदितम् ॥ ७३ ॥ श्रुत्वा तदुक्तं वचनं श्वपचो वाक्यमब्रवीत् ॥ माभैषीस्त्वं गृहाणासिं वधोऽस्याः पुण्यदो मतः ॥ ७४ ॥ बालानामेव भयदा नेयं रक्ष्या कदाचन ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य राजा वचनमब्रवीत् ॥ ७५ ॥ स्त्रियो रक्ष्या प्रयत्नेन न हन्तव्याः कदाचन ॥ स्त्रीवधे कीर्तितं पापं मुनिभिर्धर्मतत्परैः ॥ ७६ ॥ पुरुषो यः श्रियं हन्याज्ज्ञानतोऽज्ञानतोऽपि वा ॥ नरके पच्यते सोऽथ महारौरवपूर्वके ॥ ७७ ॥ चांडाल उवाच ॥ मा वदासिं गृहाणैनं तीक्ष्णं विद्युत्समप्रभम् ॥ यत्रैकस्मिन्वधं नीते बहूनां तु सुखं भवेत् ॥ ७८ ॥ तस्य हिंसा कृता नूनं बहुपुण्यप्रदा भवेत् ॥ भक्षितान्यनया भूरि लोके डिंभानि दुष्टया ॥ ७९ ॥ तत्क्षिप्रं वध्यतामेषा लोकः स्वस्थो भविष्यति ॥ राजोवाच ॥ चांडालाधिपते तीव्रं व्रतं स्त्रीवधवर्जनम् ॥८०॥ आजन्मतस्ततो यत्नं न कुर्यां स्त्रीवधे तव ॥ चांडाल उवाच ॥ स्वामिकार्यं विना दुष्ट किं कार्यं विद्यतेऽपरम् ॥८१॥ गृहीत्वा वेतनं मेऽद्य कस्मात्कार्यं विलुम्पसि ॥ यः स्वामिवेतनं गृह्य स्वामिकार्यं विलुम्पति ॥८२॥ नरकान्निष्कृतिस्तस्य नास्ति कल्पायुतैरपि ॥ राजोवाच ॥ चांडालनाथ मे देहि प्राप्यमन्यत्सुदारुणम् ॥ ८३ ॥ स्वशत्रुं ब्रूहि तं क्षिप्रं घातयिष्याम्यसंशयम् ॥ घातयित्वा तु तं शत्रुं तव दास्यामि मेदिनीम् ॥ ८४ ॥ देव-

यह तीखी तलवार पड़ी है, इसे हाथमें ले लो। क्योंकि जिस एकके मार डालनेपर बहुतोंके सुखी होनेकी सम्भावना हो, उसकी हिंसा निश्चय ही पुण्यप्रद होती है ॥७८॥ यह दुष्ट संसारमें बहुतसे बच्चोंको खा चुकी है, अतएव इसको तुरन्त मार डालना चाहिये। इसके मरनेपर जगत्की अशान्ति समाप्त हो जायगी। राजा बोले—चाण्डालराज ! मैं जीवनपर्यन्त कभी भी स्त्री-वध न करनेकी प्रतिज्ञा कर चुका हूँ ॥७९॥८०॥ अतः इस स्त्री-वधरूपी घोर कार्यके लिये मेरे द्वारा प्रयत्न नहीं हो सकता। चाण्डालने कहा–दुष्ट ! मुझ स्वामीके इस कार्यको छोड़कर दूसरा क्या काम है ॥ ८१ ॥ तू वेतन लेकर मेरा काम क्यों नहीं करता ? जो स्वामीसे मूल्य लेकर उसका कार्य अधूरा रखता है, उसका हजारों कल्पोंतक नरकसे उद्धार नहीं होता। राजा बोले–चांडालनाथ ! मुझे कोई दूसरा कार्य करनेकी आज्ञा दीजिये, चाहे वह कितना ही कठिन हो ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ आप अपने किसी शत्रुको बतायें, मैं तुरन्त उसे मार

डालूँगा। उसे मारकर सारी पृथ्वी आपको सौंप दूँगा ॥ ८४ ॥ प्रधान देवताओं, नागों, सिद्धों और गन्धर्वोंसे युक्त इन्द्रको भी तीखे तीरोंसे मारकर मैं परास्त कर दूँगा ॥८५॥ महाराज हरिश्चन्द्रकी यह बात सुनकर चाण्डाल क्रोधसे तमतमा उठा। राजा काँपने लगे। उसने उनसे पुनः कहा ॥८६॥ चाण्डाल बोला—(नौकरोंके लिए जो बात कही गयी है, वैसा तेरा व्यवहार नहीं हुआ।) चाण्डालकी नौकरी करके तू देवताओंकी-सी बात करता है? अरे दास! अधिक कहनेसे क्या प्रयोजन है? तू मेरी निश्चित बात सुन। ओ निर्लज्ज! यदि तेरे हृदयमें किंचिन्मात्र भी पापका भय था तो चाण्डालके घरपर आकर तूने दासता ही क्यों स्वीकार की? ॥८७॥८८॥ अतः इस तलवारको उठा और तुरन्त इस स्त्रीके मस्तकको धड़से अलग कर दे। ऐसा कहकर चाण्डालने महाराज हरिश्चन्द्रके हाथमें तलवार पकड़ा दी ॥८९॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा' भाषाटीकायां पंचविंशोऽध्यायः ॥२५॥

देवोरगैः सिद्धैर्गंधर्वैरपि संयुतम् ॥ देवेन्द्रमपि जेष्यामि निहत्य निशितैः शरैः ॥ ८५ ॥ एतच्छ्रुत्वा ततो वाक्यं हरिश्चन्द्रस्य भूपतेः ॥ चांडालः कुपितः प्राह वेपमानं महीपतिम् ॥ ८६ ॥ चांडाल उवाच ॥ (नैतद्वाक्यं सुघटितं यद्वाक्यं दासकीर्तितम् ॥) चांडालदासतां कृत्वा सुराणां भाषसे वचः ॥ दास किं बहुना नूनं शृणु मे गदतो वचः ॥ ८७ ॥ निर्लज्ज तव चेदस्ति किंचित्पापभयं हृदि ॥ किमर्थं दासतां यातश्चांडालस्य तु वेश्मनि ॥ ८८ ॥ गृहाणैनं ततः खड्गमस्याश्छिन्धि शिरोऽम्बुजम् ॥ एवमुक्त्वाऽथ चांडालो राज्ञे खड्गं न्यवेदयत् ॥ ८९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तस्कन्धे हरिश्चन्द्रोपाख्याने पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

॥ सूत उवाच ॥ ततोऽथ भूपतिः प्राह राज्ञीं स्थित्वा ह्यधोमुखः ॥ अत्रोपविश्यतां बाले पापस्य पुरतो मम ॥ १ ॥ शिरस्ते छेदयिष्यामि हंतुं शक्नोति चेत्करः ॥ एवमुक्त्वा समुद्यम्य खड्गं हंतुं गतो नृपः ॥ २ ॥ न जानाति नृपः पत्नीं सा न जानाति भूपतिम् ॥ अब्रवीद्भृशदुःखार्ता स्वमृत्युमभिकांक्षती ॥ ३ ॥ स्त्र्युवाच ॥ चांडाल शृणु मे वाक्यं किंचित्त्वं यदि मन्यसे ॥ मृतस्तिष्ठति मे पुत्रो नातिदूरे बहिः पुरात् ॥ ४ ॥ तं दहामि हतं यावदानयित्वा तवांतिकम् ॥ तावत्प्रतीक्ष्यतां पश्चादसिना घातयस्व माम् ॥ ५ ॥ तेनाथ बाढमित्युक्त्वा प्रेषिता बालकं प्रति ॥ सा

(महाराज हरिश्चन्द्रका महारानी शैव्याको पहचानना) सूतजी कहते हैं—हे शौनक! तदनन्तर महाराज हरिश्चन्द्र नीचा मुँह करके रानीसे कहने लगे—'हे बाले! मैं एक पापी व्यक्ति हूँ, तुम मेरे सामने बैठ जाओ ॥ १ ॥ यदि मेरा हाथ काम दे सका तो मैं तुम्हारा सिर काटनेका विचार करता हूँ।' यों कहकर राजाने हाथमें तलवार ले ली और वे मारनेको तैयार हो गये ॥ २ ॥ अब तक न राजा रानीको पहचान सके थे और न रानी राजाको ही। उस समय अत्यन्त दुःखसे संतप्त होने कारण स्वयं मर जानेकी अभिलाषा रखनेवाली रानीने कहा। रानी बोली—चाण्डाल! यदि तुम्हें उचित जान पड़े तो मेरी एक बात सुननेकी कृपा करो। इस नगरसे बाहर थोड़ी ही दूरपर मेरा पुत्र मरा पड़ा है ॥ ३ ॥ ४ ॥ उस मरे हुए बालकको तुम्हारे पास लाकर उसका दाह कर दूँ, तबतकके लिये प्रतीक्षा करो। इसके बाद मुझे तलवारसे मार डालना ॥५॥ तब राजा हरिश्चन्द्रने रानीकी बात स्वीकार करके उसे बालकके पास जानेकी

आज्ञा दे दी। उस समय रानीके दुःखका पार नहीं था। अत्यन्त करुण विलाप करती हुई वह चली गयी ॥६॥ हा पुत्र! हा शिशो! यों बारम्बार कहती हुई रानी सर्पदंशसे मृत बालकको लेकर तुरन्त श्मशानघाटपर लौट आयी और उसने उसे जमीनपर लिटा दिया। उस समय रानीका प्रत्येक अङ्ग शोककी अग्निसे जल रहा था। उसका शरीर दुर्बल हो गया था। सिरके बाल धूलसे धूमिल हो गये थे ॥ ७ ॥ ८ ॥ 'हे राजन्! आपका प्रिय पुत्र मित्रोंके साथ खेल रहा था। उसे दुष्ट सर्पने काट लिया, जिससे उसके प्राणपखेरू उड़ गये। वही मरा हुआ बालक अब यहाँ जमीनपर पड़ा है। आप उसे देखते क्यों नहीं?' इस प्रकारके शब्द विलाप करते समय रानीके मुखसे निकल रहे थे। सो सुनकर राजा हरिश्चन्द्र शवके पास आये और उसके ऊपरका वस्त्र हटाया ॥९॥१०॥ तब भी राजा तरह-तरहसे विलाप करनेवाली रानीको पहचाननेमें असमर्थ रहे। क्योंकि बहुत दिनोंसे प्रवाससम्बन्धी असह्य दुःख भोगनेके कारण मानो रानीका अब दूसरा ही रूप हो गया था ॥११॥ महाराज हरिश्चन्द्रके केश पहले बहुत सुन्दर थे। वे अब भयानक जटाके रूपमें परिणत हो गये थे। ऐसा लगता था कि मानो सूखे हुए वृक्षकी छाल

जगामातिदुःखार्ता विलपन्ती सुदारुणम् ॥ ६ ॥ भार्या तस्य नरेन्द्रस्य सर्पदष्टं हि बालकम् ॥ हा पुत्र हा वत्स शिशो इत्येवं वदती मुहुः ॥ ७ ॥ कृशा विवर्णा मलिना पांसुध्वस्तशिरोरुहा ॥ श्मशानभूमिमागत्य बालं स्थाप्याविशद्भुवि ॥ ८ ॥ राजन्नद्य स्वबालं तं पश्यसीह महीतले ॥ रममाणं स्वसखिभिर्दष्टं दुष्टाहिना मृतम् ॥ ९ ॥ तस्या विलापशब्दं तमाकर्ण्य स नराधिपः ॥ शवसन्निधिमागत्य वस्त्रमस्याक्षिपत्तदा ॥ १० ॥ तां तथा रुदतीं भार्यां नाभिजानाति भूमिपः ॥ चिरप्रवाससंतप्तां पुनर्जातामिवाबलम् ॥ ११ ॥ साऽपि तं चारुकेशांतं पुरो दृष्ट्वा जटालकम् ॥ नाभ्यजानान्नृपवरं शुष्कवृक्षत्वचोपमम् ॥ १२ ॥ भूमौ निपतितं बालं दृष्ट्वाऽऽशीविषपीडितम् ॥ नरेन्द्रलक्षणोपेतमचिंतयदसौ नृपः ॥ १३ ॥ अस्य पूर्णेन्दुवद्वक्त्रं शुभमुन्नसमव्रणम् ॥ दर्पणप्रतिमोत्तुङ्गकपोलयुगशोभितम् ॥ १४ ॥ नीलान्केशान्कुञ्चिताग्रान्सान्द्रान्दीर्घांस्तरंगिणः ॥ राजीवसदृशे नेत्रे ओष्ठौ बिंबफलोपमौ ॥ १५ ॥ विशालवक्षा दीर्घाक्षो दीर्घबाहून्नतांसकः ॥ विशालपादो गंभीरः सूक्ष्मांगुल्यवनीधरः ॥१६॥ मृणालपादो गंभीरनाभिरुद्धतकंधरः ॥ अहो कष्टं नरेन्द्रस्य कस्याप्येष कुले शिशुः ॥१७॥ जातो नीतः कृतांतेन कालपाशाद्दुरात्मना ॥ सूत उवाच ॥ एवं दृष्ट्वाऽथ

हों ॥ १२ ॥ अतः रानी भी उन्हें नहीं पहचान सकीं। सर्पके विषसे ग्रस्त होकर मृत बालक धरतीपर पड़ा था। उसे देखकर महाराज हरिश्चन्द्र उसके राजोचित शुभ लक्षणपर विचार करने लगे—इसका मुख पूर्णिमाके चन्द्रमाकी तुलना कर रहा है। इसकी कितनी सुघड़ नासिका है। दर्पणके समान चमकीले और ऊँचे दोनों कपोल अनुपम शोभा दे रहे हैं ॥१३॥१४॥ इसके घुँघराले और काले केश कुछ भींगकर मस्तकके चारों ओर फैले हैं। आँखें ऐसी मालूम पड़ती हैं, मानो खिले हुए कमल हों। ओठोंकी छवि बिम्बाफलको तुच्छ कर रही है ॥१५॥ चौड़ी छाती, बड़े-बड़े नेत्र, लम्बी भुजाएँ और उँचे कन्धोंसे यह विचित्र शोभा पा रहा है। बड़े पैरोंमें छोटी-छोटी अंगुलियाँ हैं। यह कैसा गम्भीर जान पड़ता है। इसके चरण कमलके समान कोमल हैं और नाभि गहरी है। हा! दुःख तो इस बातका है कि यह बालक किस भाग्यहीन राजाके कुलमें उत्पन्न हुआ और शीघ्र ही दुरात्मा यमराजने अपने कालपाशसे इसे बाँध लिया।' सूतजी कहते हैं—माताकी गोदमें लेटे हुए उस मृत बालकको देखकर यों विचार करनेके उपरान्त महाराज हरिश्चन्द्रको पूर्वकालकी स्मृति हो आयी। तब वे 'हा-हा कहकर आँखोंसे आँसू

गिराने लगे। उनके मुखसे यह आवाज निकल पड़ी कि 'कहीं मेरे बच्चेकी ही तो यह दशा नहीं हो गयी है ॥ १६-१९ ॥ वह कहीं क्रूर यमराजके फंदेमें पड़ गया हो तो उसकी भी यही स्थिति हो सकती है।' इस प्रकार सोचकर राजा हरिश्चन्द्र कुछ समयके लिये वहीं ठहर गये ॥ २० ॥ तब रानी महान् दुःखके आवेशमें आकर कहने लगी। रानीने कहा—हा वत्स! किस पापके परिणामस्वरूप ऐसा महान् दारुण दुःख सामने आ उपस्थित हुआ है ॥२१॥ इसका कारण समझमें नहीं आता। हा नाथ! हा राजन्! आप मुझ अत्यन्त दुखिनीको छोड़कर कहाँ हैं? आपके चित्तमें कैसे शान्ति है? राज्य हाथसे निकल गया। सुहृद्वर्ग पृथक् हो गये। स्त्री और पुत्रको बेच देना पड़ा। हा दैव! तुमने राजर्षि हरिश्चन्द्रके सामने यह कैसी दारुण दशा उपस्थित कर दी? जब महाराज हरिश्चन्द्रने रानीकी यह बात सुनी, तब वे अपने स्थानसे चलकर उसके समीप आ गये ॥ २२-२४ ॥ क्योंकि जब उन्हें अपनी साध्वी पत्नी तथा

तं बालं मातुरंके प्रसारितम् ॥१८॥ स्मृतिमभ्यागतो राजा हाहेत्यश्रूण्यपातयत् ॥ सोऽप्युवाच च वत्सो मे दशामेतामुपागतः ॥१९॥ नीतो यदि च घोरेण कृतांतेनात्मनो वशम् ॥ विचारयित्वा राजाऽसौ हरिश्चन्द्रस्तथा स्थितः ॥२०॥ ततो राज्ञी महादुःखावेशादिदमभाषत ॥ राज्युवाच ॥ हा वत्स कस्य पापस्य त्वपध्यानादिदं महत् ॥ २१ ॥ दुःखमापतितं घोरं तद्रूपं नोपलभ्यते ॥ हा नाथ राजन्भवता मामपास्य सुदुःखिताम् ॥२२॥ कस्मिन्संस्थीयते स्थाने विश्रब्धं केन हेतुना॥ राज्यनाशः सुहृत्त्यागो भार्यातनयविक्रयः ॥ २३ ॥ हरिश्चन्द्रस्य राजर्षेः किं विधातः कृतं त्वया ॥ इति तस्या वचः श्रुत्वा राजा स्थानच्युतस्तदा ॥ २४ ॥ प्रत्यभिज्ञाय देवीं तां पुत्रं च निधनं गतम् ॥ कष्टं ममैव पत्नीयं बालकश्चापि मे सुतः ॥ २५ ॥ ज्ञात्वा पपात संतप्तो मूर्च्छामतिजगाम ह ॥ सा च तं प्रत्यभिज्ञाय तामवस्थामुपागतम् ॥२६॥ मूर्छिता निपपातार्ता निश्चेष्टा धरणीतले ॥ चेतनां प्राप्य राजेंद्रो राजपत्नी च तौ समम् ॥२७॥ विलेपतुः सुसन्तप्तौ शोकभारेण पीडितौ ॥ राजोवाच ॥ हा वत्स सुकुमारं ते वदनं कुञ्चितालकम् ॥ २८ ॥ पश्यतो मे मुखं दीनं हृदयं किं न दीर्यते ॥ तात तातेति मधुरं ब्रूवाणं स्वयमागतम् ॥ २९ ॥ उपगुह्य कदा वक्ष्ये वत्स वत्सेति सौहृदात् ॥ कस्य जानुप्रणीतेन पिंगेन क्षितिरेणुना ॥३०॥ ममोत्तरीयमुत्संगं तथांगं मलमेष्यति ॥ न वाऽलं मम संभूतं मनो हृदयनन्दन

मरे हुए पुत्रके विषयकी पूर्ण जानकारी हो गयी थी। वे कहने लगे—'हाय! महान् कष्ट है कि यह मेरी पत्नी ही है और यह बालक भी मेरा ही है ॥ २५ ॥ रहस्य खुल जानेपर उनके हृदयमें असीम ज्वाला उत्पन्न हो गयी। जिससे अचेत होकर वे पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ २६ ॥ राजा ऐसी दारुण दशको प्राप्त हैं—यह जानकर रानी भी बहुत दुखी होकर पृथ्वीपर गिर पड़ी। उसकी इन्द्रियाँ शिथिल हो गयीं और मूर्छाने उसे धर दबाया। फिर साथ ही राजा और रानी दोनोंको चेत हुआ। तब वे अत्यन्त सन्तप्त होकर विलाप करने लगे। राजाने कहा—हा वत्स! टेढ़ी अलकावलीसे कुछ घिरे हुए तुम्हारे सुन्दर मुखको मैं देखा करता था। आज यह मृत मुख मेरे कातर हृदयको विदीर्ण क्यों नहीं कर देता? तुम अपनी मधुर भाषामें 'पिताजी' कहकर स्वयं मेरे पास आ जाते थे ॥२७-२९॥ अब फिर कब मैं तुम्हें पाकर प्रेमवश 'वत्स-वत्स, कहकर पुकारूँगा। अब धूलिसे सने हुए किसके घुटने मेरी

चादर, गोद और शरीरको मैलसे भर देंगे। मन और हृदयको प्रफुल्लित करनेवाले हे पुत्र! तुम मेरा मनोरथ पूर्ण नहीं कर सके ॥३०॥३१॥ जिसने साधारण वस्तुकी भाँति तुम्हें बेच दिया था, उसी मुझ पिताको पाकर तुम पितावाले बने थे। मेरा सम्पूर्ण राज्य नष्ट हो गया। परिवारमें बहुतसे बन्धु-बान्धव थे, परन्तु किसीने साथ नहीं दिया। प्रतिकूल दैवके कारण ऐसी निर्दयी दशासे सम्पन्न मुझ व्यक्तिसे आज तुम्हारी भेंट हो गयी। आज विषधर सर्पके काटे हुए पुत्रके कमल जैसे मुखको देखता हुआ मैं बड़ी ही विषम परिस्थितिमें पड़ गया हूँ। इस प्रकार विलाप करके राजा हरिश्चन्द्रने मरे हुए पुत्रको उठा लिया। दुःखके कारण उनकी वाणी लड़खड़ा रही थी। राजाने पुत्रको छातीसे लगाया और स्वयं निश्चेष्ट होकर गिर पड़े। उन्हें मूर्छा आ गयी। उस समय पृथ्वीपर पड़े हुए राजाको देखकर रानीके मनमें ऐसा विचार उत्पन्न हुआ—ये परम आदरणीय पुरुष वाणीके स्वरसे ही पहचानमें आ जाते हैं। विद्वानोंके मनको आह्लादित करनेवाले चन्द्रमारूपी हरिश्चन्द्र ही हैं, इसमें अब सन्देह नहीं रहा। इनकी सुन्दर ऊँची नासिका तिलके पुष्पकी तुलना कर रही है। इन परम यशस्वी

॥३१॥ मयाऽसि पितृमान्पित्रा विक्रीतो येन वस्तुवत् ॥ गतं राज्यमशेषं मे सबांधवधनं महत् ॥ ३२ ॥ हीनदैवान्नृशंसेन दृष्टो मे तनयस्ततः ॥ अहं महाहिदष्टस्य पुत्रास्याननपङ्कजम् ॥ ३३ ॥ निरीक्षन्नद्य घोरेण विषेणाधिकृतोऽधुना ॥ एवमुक्त्वा तमादाय बालकं बाष्पगद्गदः ॥ ३४ ॥ परिष्वज्य च निश्चेष्टो मूर्च्छया निपपात ह ॥ ततस्तं पतितं दृष्ट्वा शैव्या चैवमचिंतयत् ॥३५॥ अयं स पुरुषव्याघ्रः स्वरेणैवोपलक्ष्यते ॥ विद्वज्जनमनश्चंद्रो हरिश्चंद्रो न संशयः ॥ ३६ ॥ तथाऽस्य नासिका तुङ्गा तिलपुष्पोपमा शुभा ॥ दन्ताश्च मुकुलप्रख्याः ख्यातकीर्तेर्महात्मनः ॥ ३७ ॥ श्मशानमागतः कस्माद्यद्येवं स नरेश्वरः ॥ विहाय पुत्रशोकं सा पश्यन्ती पतितं पतिम् ॥ ३८ ॥ प्रहृष्टा विस्मिता दीना भर्तृपुत्रार्तिपीडिता ॥ वीक्षन्ती सा तदाऽपतन्मूर्च्छया धरणीतले ॥ ३९ ॥ प्राप्य चेतश्च शनकैः सा गद्गदमभाषत ॥ धिक्त्वा दैव ह्यकरुण निर्मर्याद जुगुप्सित ॥४०॥ येनायममरप्रख्यो नीतो राजा श्वपाकताम् ॥ राज्यनाशं सुहृत्त्यागं भार्यातनयविक्रयम् ॥४१॥ प्रापयित्वाऽपि येनाद्य चांडालोऽयं कृतो नृपः ॥ नाद्य पश्यामि ते छत्रं सिंहासनमथापि वा ॥ ४२ ॥ चामरव्यजने वाऽपि कोऽयं विधिविपर्ययः ॥ यस्यास्य व्रजतः पूर्वं राजानो भृत्यतां गताः

महात्मा पुरुषके दाँत जान पड़ते हैं, मानो फूलोंकी अधखिली कलियाँ हों ॥३२–३७॥ यदि ऐसी बात है तो ये महाराज श्मशानघाटपर कैसे आये? अब पुत्रशोक छोड़कर रानी गिरे हुए पतिदेवको देखने लगी ॥ ३८ ॥ उस समय पुत्र और पति दोनोंके लिये दुःखसे अत्यन्त घबरायी हुई रानीके मनमें कभी भयंकर दुःखभरा आश्चर्य उत्पन्न हो जाता था और कभी प्रसन्नता आ जाती थी। उसके नेत्र पतिकी ओर गये, तैसे ही वह अचेत होकर जमीनपर गिर पड़ी ॥३९॥ धीरे-धीरे जब मूर्छा दूर हुई, तब वह गद्गद वाणीसे कहने लगी—'अरे निर्दय, मर्यादारहित एवं निन्दाके पात्र दैव! तुम्हें धिक्कार है ॥ ४० ॥ तुमने देवताके समान लब्धप्रतिष्ठ इन नरेशको चाण्डाल बना दिया। ये अपने राज्यसे च्युत हो गये, इष्टमित्रोंने इनका साथ छोड़ दिया और स्त्री-पुत्र भी इन्होंने बेच दिये ॥४१॥ तुम्हारे प्रभावसे ऐसी परिस्थितिमें पड़कर ये नरेश चाण्डाल हो गये। आज मैं इनका छत्र अथवा सिंहासन कुछ भी नहीं देखती।

पहले जिनके यात्रा करते समय राजा लोग सेवावृत्ति स्वीकार कर लेते थे तथा अपनी चादरोंसे पथपर पड़ी हुई धूल झाड़ देना उन राजाओंका काम था, वे ही ये महाराज आज दुःखसे व्यथित होकर इस अपवित्र श्मशानभूमिमें भटक रहे हैं। यहाँ सर्वत्र खोपड़ियाँ बिखरी हुई हैं। कहीं फूटे घड़े हैं तो कहीं फटे कपड़े। मृतकोंके शरीरसे उतरे सूत्रों तथा बिखरे बालोंसे यह जमीन कितनी भयानक लगती है। चर्बी गिरकर सूख गयी है, जिससे इसकी बड़ी क्रूर शोभा हो रही है ॥ ४३–४५ ॥ राखके ढेरों, अंगारों, अधजली हड्डियों और मज्जाओंसे इस स्थानकी भयंकरता अधिक बढ़ गयी है। गीध और सियार बोल रहे हैं। मोटे-ताजे क्षुद्र पक्षियोंकी भरमार है ॥ ४६ ॥ चिताके धुएँसे चारों ओर अन्धकार छाया हुआ है। मुर्दोंके मांस खाकर मस्त निशाचर सर्वत्र दृष्टिगोचर हो रहे हैं ॥ ४७ ॥ ऐसा कहकर रानी महाराज हरिश्चन्द्रके कण्ठसे लिपट गयी। दुःख एवं शोकसे रानीका सर्वाङ्ग व्याप्त था। उसने कातर वाणीमें पुनः विलाप आरम्भ करके कहा—हे राजन्! यह स्वप्न है अथवा सत्य, जिसे आप मान्यता दे रहे रहे हैं ॥४८॥४९॥ हे महाभाग! यह आप स्पष्ट बतानेकी कृपा करें। क्योंकि मेरे मनमें बड़ी घबराहट हो रही है।

॥ ४३ ॥ स्वोत्तरीयैः प्रकुर्वंति विरजस्कं महीतलम् ॥ सोऽयं कपालसंलग्ने घटीपटनिरन्तरे ॥ ४४ ॥ मृतनिर्माल्यसूत्रांतर्लग्नकेशसुदारुणे ॥ वसा-निष्पंदसंशुष्कमहापटलमण्डिते ॥ ४५ ॥ भस्मांगारार्धदग्धास्थिमज्जासंघट्टभीषणे ॥ गृध्रगोमायुनादार्ते पुष्टक्षुद्रविहंगमे ॥ ४६ ॥ चिताधूमायतपटे नीलीकृतदिगन्तरे ॥ कुणपास्वादनमुदा संप्रकृष्टनिशाचरे ॥ ४७ ॥ चरत्यमेध्ये राजेंद्रः श्मशाने दुःखपीडितः ॥ एवमुक्त्वाऽथ संश्लिष्य कंठे राज्ञो नृपात्मजा ॥ ४८ ॥ कष्टं शोकसमाविष्टा विललापार्तया गिरा ॥ राजन्स्वप्नोऽथ तथ्यं वा यदेतन्मन्यते भवान् ॥४९॥ तत्कथ्यतां महाभाग मनो वै मुह्यते मम ॥ यद्येतदेवं धर्मज्ञ नास्ति धर्मे सहायता ॥ ५० ॥ तथैव विप्रदेवादिपूजने सत्यपालने ॥ नास्ति धर्मः कुतः सत्यं नार्जवं नानृतांशता ॥ ५१ ॥ यत्र त्वं धर्मपरमः स्वराज्यादवरोपितः ॥ सूत उवाच ॥ इति तस्या वचः श्रुत्वा निःश्वस्योष्णं सगद्गदः ॥ ५२ ॥ कथयामास तन्वंग्यै यथा प्राप्तः श्वपाकताम् ॥ रुदित्वा सा तु सुचिरं निःश्वस्योष्णं सुदुःखिता ॥ ५३ ॥ स्वपुत्रमरणं भीरुर्यथावत्तं न्यवेदयत् ॥ श्रुत्वा राजा तथा वाक्यं निपपात महीतले ॥ ५४ ॥ मृतपुत्रं समानीय जिह्वया विलिहन्मुहुः ॥ हरिश्चन्द्रमथो प्राह शैव्या गद्गदया गिरा ॥ ५५ ॥ कुरुष्व स्वामिनः प्रेष्यं

हे धर्मज्ञ! यदि ऐसी बात है तो धर्म और सत्यके पालन तथा ब्राह्मणों और देवताओंके पूजन करनेसे हमें क्या सहायता मिली? अब धर्म, सत्य, सरलता और अनृशंसताके लिए तो कहीं स्थान ही नहीं है ॥५०॥५१॥ यही कारण है कि आप जैसे धर्मपरायण और सज्जन पुरुष अपने राज्यसे हाथ धो बैठे।' सूतजी कहते हैं—हे शौनक! रानीका यह वचन सुनकर राजाने बड़े जोरसे गरम श्वास छोड़ा ॥५२॥ साथ ही गिड़गिड़ाकर अपने चाण्डाल होनेकी सारी बातें रानीको कह सुनायीं। सो सुनकर उसके दुःखकी सीमा नहीं रही। बहुत देरतक वह रोती रही ॥ ५३ ॥ इसके बाद रानीने अपने पुत्रके मरणकी सारी बातें राजाको सुनायीं। सो सुनते ही राजा धड़ामसे धरतीपर गिर पड़े ॥ ५४ ॥ फिर उठकर उन्होंने मृत पुत्रको उठा लिया और बार-बार उसका मुँह चूमने लगे। तब धर्मपरायणा रानी शैव्याने गिड़गिड़ाकर महाराज हरिश्चन्द्रसे कहा—॥५५॥ हे राजन्! अब आप अपने स्वामीकी दासता सफल कीजिये। मेरा मस्तक

काटकर आप स्वामिद्रोही और असत्यवादी होनेसे बचिये ॥ ५६ ॥ हे राजेन्द्र ! आपकी वाणी असत्य नहीं होनी चाहिये तथा दूसरोंके प्रति द्रोह भी महान् पाप है ।' रानीकी यह बात सुनकर राजा पृथ्वीपर गिर पड़े और उन्हें मूर्च्छा आ गयी ॥५७॥ थोड़ी देरमें जब होश हुआ, तब अत्यन्त खेद प्रकट करते हुए वे विलाप करने लगे । राजा बोले–हे प्रिये ! तुम्हारे मुखसे ऐसा निष्ठुर वचन कैसे निकल गया ? भला जो बात कही भी नहीं जा सकती, उसे कार्यरूपमें कैसे परिणत किया जाय ? पत्नीने कहा–हे प्रभो ! मैंने भगवती गौरीकी आराधना की है। देवता और ब्राह्मण भी मुझसे सुपूजित हो चुके हैं ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ उनके आशीर्वादसे आप दूसरे जन्ममें पुनः मेरे पति होकर रहेंगे । रानीकी यह बात सुनकर राजा जमीनपर लुढ़क पड़े। उनके दुःखकी सीमा नहीं रही ॥६०॥ तदनन्तर राजाने फिर मृत पुत्रका मुँह चूमा । राजाने कहा–हा प्रिये ! अब बहुत दिनोंतक इस प्रकारका दुःख भोगना मुझे अभीष्ट नहीं है ॥ ६१ ॥ हे तन्वङ्गी ! मैं अब इस

छेदयित्वा शिरो मम ॥ स्वामिद्रोहो न तेऽस्त्वद्य माऽसत्यो भव भूपते ॥ ५६ ॥ माऽसत्यं तव राजेन्द्र परद्रोहस्तु पातकम् ॥ एतदाकर्ण्य राजा तु पपात भुवि मूर्च्छितः ॥ ५७ ॥ क्षणेन चेतनां प्राप्य विललापातिदुःखितः ॥ राजोवाच ॥ कथं प्रिये त्वया प्रोक्तं वचनं त्वतिनिष्ठुरम् ॥ ५८ ॥ यदशक्यं भवेद्वक्तुं तत्कर्म क्रियते कथम् ॥ पत्न्युवाच ॥ मया च पूजिता गौरी देवा विप्रास्तथैव च ॥ ५९ ॥ भविष्यसि पतिस्त्वं मे ह्यन्यस्मिञ्जन्मनि प्रभो ॥ श्रुत्वा राजा तदा वाक्यं निपपात महीतले ॥ ६० ॥ मृतस्य पुत्रस्य तदा चुचुम्ब दुःखितो मुखम् ॥ राजोवाच ॥ प्रिये न रोचते दीर्घं कालं क्लेशं मयाऽशितुम् ॥ ६१ ॥ नात्मायत्तोऽस्मि तन्वंगि पश्य मे मन्दभाग्यताम् ॥ चांडालेनाननुज्ञातः प्रवेक्ष्ये ज्वलनं यदि ॥ ६२ ॥ चांडालदासतां यास्ये पुनरप्यन्यजन्मनि ॥ नरकं च वरं प्राप्य खेदं प्राप्स्यामि दारुणम् ॥ ६३ ॥ तापं प्राप्स्यामि संप्राप्य महारौरवरौरवे ॥ मग्नस्य दुःखजलधौ वरं प्राणैर्वियोजनम् ॥ ६४ ॥ एकोऽपि बालको योऽयमासीद्वंशकरः सुतः ॥ मम दैवानुयोगेन मृतः सोऽपि बलीयसा ॥ ६५ ॥ कथं प्राणान्विमुंचामि परायत्तोऽस्मि दुर्गतः ॥ तथापि दुःखबाहुल्यात्त्यक्ष्यामि तु निजां तनुम् ॥ ६६ ॥ त्रैलोक्ये नास्ति तद्दुःखं नासिपत्रवने तथा ॥ वैतरण्यां कुतस्तद्वद्यादृशं पुत्रविप्लवे ॥ ६७ ॥ सोऽहं सुतशरीरेण दीप्यमाने हुताशने ॥ निपतिष्यामि तन्वङ्गि क्षन्तव्यं तन्ममाधुना ॥ ६८ ॥ न वक्तव्यं त्वया किंचिदतः कमललोचने ॥ मम वाक्यं च तन्वंगि निबोधाहतमानसा ॥ ६९ ॥

शरीरको बचाये रखनेमें असमर्थ हूँ । मेरी मन्दभाग्यता तो देखो–यदि मैं चाण्डालसे बिना आज्ञा लिये ही जलती हुई आगमें जल जाता हूँ, तब तो दूसरे जन्ममें भी मुझे इसकी नौकरी करनी पड़ेगी। मैं घोर नरकमें पड़कर भयंकर दुःख भोगूँगा ॥६२॥६३॥ भीषण रौरव नरकमें पड़नेपर अनेक संताप सामने आ जायँगे । तथापि दुःखसागरमें निमग्न मुझ अभागेका मर जाना ही अच्छा है ॥६४॥ वंशकी वृद्धि करनेवाला मेरा यह जो एक पुत्र था, वह भी आज बलवान् दैवके प्रकोपसे कालका ग्रास बन गया ॥ ६५ ॥ पराधीन होनेके कारण ऐसी दुर्दशा सामने आनेपर भी मैं कैसे प्राणोंका त्याग करूँ ? फिर भी इस असीम दुःखसे ऊबकर मैं अब अपना शरीर त्याग ही दूँगा ॥ ६६ ॥ तीनों लोकोंमें, असिपत्रवनमें और वैतरणीनदीमें भी उतना क्लेश नहीं है, जितना कि दुःख पुत्रशोकमें है ॥६७॥ दुर्बल शरीरवाली हे प्रिये ! मैं इस प्रज्वलित अग्निमें पुत्रकी देहके साथ स्वयं भी कूद पड़ूँगा । इसके लिये तुम मुझे क्षमा करना ॥ ६८ ॥ हे कमल-

लोचने ! हे तन्वङ्गी ! पुनः कुछ कहना तुम्हें उचित नहीं है। मनको निश्चिन्त करके तुम मेरी बात सुन लो ॥ ६९ ॥ हे शुचिस्मिते ! मेरी आज्ञाके अनुसार अब तुम ब्राह्मणके घर जाओ। यदि तुमने दान-हवन और ब्राह्मणोंको संतुष्ट किया है तो उसके फलस्वरूप दूसरे लोकमें अपने पुत्रके साथ फिर तुम्हारा और मेरा समागम होगा। इस लोकमें अभिलषित संगम अब कैसे हो सकेगा ? ॥७०॥७१॥ हे पवित्र मुसकानवाली प्रिये ! अब मैं इस लोकसे जा रहा हूँ। अतएव एकान्तमें हँसीके रूपमें मैंने तुमसे कभी कुछ अनुचित वचन कह दिया हो तो उन सब बातोंको क्षमा कर देना ॥७२॥ 'हे शुभे ! मैं राजाकी प्रेयसी भार्या हूँ।'—इस प्रकारके अभिमानमें आकर तुम्हें ब्राह्मण-देवताका तिरस्कार नहीं करना चाहिए। क्योंकि स्वामीको देवताके समान समझकर उन्हें सम्यक् प्रकारसे संतुष्ट करना ही तुम्हारा कर्तव्य है ॥ ७३ ॥ रानीने कहा—राजर्षे ! अब मैं भी आगकी लपटमें भस्म हो जाऊँगी। कारण, यह दुःखका भार मुझसे सहा नहीं जाता। हे भगवन् ! आपके साथ ही मेरी परलोकयात्रा भी निश्चित है ॥ ७४ ॥ निःसन्देह आपके साथ चलनेमें ही मेरा कल्याण है। हे मानद ! आपके साथ रहकर

अनुज्ञाताऽथ गच्छ त्वं विप्रवेश्म शुचिस्मिते ॥ यदि दत्तं यदि हुतं गुरवो यदि तोषिताः ॥ ७० ॥ संगमः परलोके मे निजपुत्रेण चेत्त्वया ॥ इह लोके कुतस्त्वेतद्भविष्यति समीप्सितम् ॥ ७१ ॥ यन्मया हसता किञ्चिद्रहसि त्वां शुचिस्मिते ॥ अशेषमुक्तं तत्सर्वं क्षंतव्यं मम यास्यतः ॥ ७२ ॥ राजपत्नीति गर्वेण नावज्ञेयः स मे द्विजः ॥ सर्वयत्नेन तोष्यः स्यात्स्वामी दैवतवच्छुभे ॥ ७३ ॥ राज्ञ्युवाच ॥ अहमप्यत्र राजर्षे निपतिष्ये हुताशने ॥ दुःखभारासहा देव सह यास्यामि वै त्वया ॥ ७४ ॥ त्वया सह मम श्रेयो गमनं नान्यथा भवेत् ॥ सह स्वर्गं च नरकं त्वया भोक्ष्यामि मानद ॥७५॥ श्रुत्वा राजा तदोवाच एवमस्तु पतिव्रते ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे हरिश्चन्द्रोपाख्याने षड्विंशोऽध्यायः ॥२६॥

॥ सूत उवाच ॥ ततः कृत्वा चितां राजा आरोप्य तनयं स्वकम् ॥ भार्यया सहितो राजा बद्धांजलिपुटस्तदा ॥ १ ॥ चिंतयन्परमेशानीं शताक्षीं जगदीश्वरीम् ॥ पञ्चकोशांतरगतां पुच्छब्रह्मस्वरूपिणीम् ॥२॥ रक्तांबरपरीधानां करुणारससागराम् ॥ नानायुधधरामंबां जगत्पालनतत्पराम् ॥ ३ ॥ तस्य चिंतयमानस्य सर्वे देवाः सवासवाः ॥ धर्मं प्रमुखतः कृत्वा समाजग्मुस्त्वरान्विताः ॥ ४ ॥ आगत्य सर्वे प्रोचुस्ते राजञ्छृणु

स्वर्ग और नरक—सभी कुछ मैं भोग लूँगी। रानीकी बात सुनकर महाराज हरिश्चन्द्रने कहा—हे पतिव्रते ! 'एवमस्तु' अर्थात् ऐसा ही हो ॥ ७५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

(राजा हरिश्चन्द्रका स्वर्गारोहण) सूतजी बोले—तदनन्तर राजा हरिश्चन्द्रने चिता तैयार की और उसपर अपने पुत्र रोहितको सुला दिया। फिर राजा-रानी दोनों हाथ जोड़कर जो जगत्की अधिष्ठात्री हैं, सौ आँखोंसे जिनकी अनुपम शोभा होती है, पञ्चकोशोंके भीतर जो सदा विराजमान रहती हैं, ब्रह्म जिनका स्वरूप है, जो लाल रंगके वस्त्र धारण करती हैं, जो करुणाकी सागर हैं, जिनकी भुजाओंमें भाँति-भाँतिके आयुध शोभा पाते हैं तथा जो जगत्के संरक्षणमें सदा तत्पर रहती हैं, उन परमेश्वरी जगदम्बाका ध्यान करने लगे ॥१—३॥ जब राजा ध्यानमें संलग्न थे, उसी समय इन्द्र सहित सम्पूर्ण देवता धर्मको आगे करके तुरन्त वहाँ पधारे ॥ ४ ॥ उन सबने आकर एक स्वरसे कहा—राजन् ! हे महाप्रभो ! सुनो, ये साक्षात् ब्रह्मा स्वयं

भगवान् धर्म साध्यगण, मरुद्गण, विश्वेदेव, चारणोंसहित लोकपाल, नाग, सिद्ध, गन्धर्वोंके साथ रुद्रगण, अश्विनीकुमार तथा ऐसे ही अन्य भी बहुतसे देवता यहाँ आकर उपस्थित हैं। धर्मपूर्वक त्रिलोकीसे मैत्री स्थापित करनेकी इच्छा रखनेके कारण जो 'विश्वामित्र' नामसे विख्यात हैं, वे मुनि भी पधारे हुए हैं और तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण करनेकी इच्छा प्रकट करते हैं।' धर्म बोले—हे राजन्! तुम्हें ऐसा साहस नहीं करना चाहिए। क्योंकि तुममें जो सहनशीलता, इन्द्रियोंको वशमें रखनेकी पूर्ण योग्यता तथा सत्त्व आदि सद्गुण हैं, उनसे परम सन्तुष्ट होकर मैं तुम्हारे सामने उपस्थित हूँ। इन्द्रने कहा—हे महाभाग हरिश्चन्द्र! मैं इन्द्र तुम्हारे सामने उपस्थित हूँ ॥ ५-९ ॥ हे राजन्! आज स्त्री-पुत्रसहित तुमने इस सनातन विश्वपर विजय प्राप्त कर ली है। सो रानी और राजकुमारको साथ लेकर अब तुम स्वर्गमें पधारनेकी कृपा करो ॥ १० ॥ तुम्हारे अतिरिक्त अन्य कोई कर्मठ मनुष्य स्वर्गपर विजय प्राप्त कर ले, यह परम दुष्कर कार्य है। सूतजी कहते हैं—तदनन्तर आकाशमें विराजमान होकर इन्द्रने चिताके मध्यभागमें सोये हुए राजकुमार रोहितपर अपमृत्युको दूर करनेवाले अमृतकी वर्षा आरम्भ

महाप्रभो ॥ अहं पितामहः साक्षाद्धर्मश्च भगवान्स्वयम् ॥ ५ ॥ साध्याः सविश्वेमरुतो लोकपालाः सचारणाः ॥ नागाः सिद्धा सगंधर्वा रुद्राश्चैव तथाऽश्विनौ ॥ ६ ॥ एते चान्येऽथ बहवो विश्वामित्रस्तथैव च ॥ विश्वत्रयेण यो मैत्रीं कर्तुमिच्छति धर्मतः ॥ ७ ॥ विश्वामित्रः स तेऽभीष्टमाहर्तुं सम्यगिच्छति ॥ धर्म उवाच॥ मा राजन्साहसं कार्षीर्धर्मोऽहं त्वामुपागतः ॥८॥ तितिक्षादमसत्त्वाद्यैस्त्वद्गुणैः परितोषितः ॥ इन्द्र उवाच ॥ हरिश्चन्द्र महाभाग प्राप्तः शक्रोऽस्मि तेऽन्तिकम् ॥९॥ त्वयाऽद्य भार्यापुत्रेण जिता लोकाः सनातनाः॥ आरोह त्रिदिवं राजन्भार्यापुत्रसमन्वितः ॥१०॥ सुदुष्प्रापं नरैरन्यैर्जितमात्मीयकर्मभिः ॥ सूत उवाच ॥ ततोऽमृतमयं वर्षमपमृत्युविनाशनम् ॥११॥ इन्द्रः प्रासृजदाकाशाच्चितामध्यगते शिशौ ॥ पुष्पवृष्टिश्च महती दुन्दुभिस्वन एव च ॥ १२ ॥ समुत्तस्थौ मृतः पुत्रो राज्ञस्तस्य महात्मनः॥ सुकुमारतनुः स्वस्थः प्रसन्नः प्रीतमानसः ॥ १३ ॥ ततो राजा हरिश्चन्द्रः परिष्वज्य सुतं तदा ॥ सभार्यः स्वश्रिया युक्तो दिव्यमाल्यांबरावृतः ॥ १४ ॥ स्वस्थः संपूर्णहृदयो मुदा परमया वृतः ॥ बभूव तत्क्षणादिंद्रो भूपं चैवमभाषत ॥ १५ ॥ सभार्यस्त्वं सपुत्रश्च स्वर्लोकं सद्गतिं पराम् ॥ समारोह महाभाग निजानां कर्मणां फलम् ॥ १६ ॥ हरिश्चन्द्र उवाच॥ देवराजाननुज्ञातः स्वामिना श्वपचेन हि॥ अकृत्वा निष्कृतिं तस्य नारोक्ष्ये वै सुरालयम् ॥१७॥ धर्म उवाच॥ तवैवं भाविनं क्लेश-

कर दी, साथ ही विपुल पुष्पोंकी वर्षा हुई और दुन्दुभियाँ बज उठीं ॥ ११ ॥ १२ ॥ महाराज हरिश्चन्द्र बड़े महात्मा पुरुष थे। अब उनके मरे हुए सुकुमार पुत्र रोहितमें चेतना आ गयी और स्वस्थ होकर वह प्रसन्नतापूर्वक उठ बैठा ॥ १३ ॥ तब राजाने अपने पुत्रको हृदयसे लगा लिया। उस समय रानी भी वहाँ थी ही। सारी सम्पत्तियाँ लौटकर उनके पास आ गयीं। दिव्य माला और वस्त्र महाराजको सुशोभित करने लगे ॥ १४ ॥ उनके मनमें अपार शान्ति छा गयी। उनके हृदयका कोना-कोना परम आनन्दसे भर गया। क्षणमात्रमें ही परिस्थितिमें इस प्रकार अद्भुत परिवर्तन हो गया। फिर इन्द्रने राजा हरिश्चन्द्रसे कहा—॥ १५ ॥ 'महाराज! अब तुम स्त्री और पुत्रके साथ स्वर्गमें चलो। यह सर्वोत्कृष्ट उत्तम गति तुम्हारे अपने ही कर्मोंका फल है' ॥१६॥ हरिश्चन्द्रने कहा—देवराज! चाण्डाल मेरा स्वामी है। मैंने उससे आज्ञा नहीं ली है। उससे छुट्टी पाये बिना मैं स्वर्गलोकमें नहीं जाऊँगा ॥ १७ ॥ धर्म बोले-

हे राजन् ! तुम्हारे भावी क्लेशके सम्बन्धमें विचार करके मैं ही मायामय चाण्डाल बन गया था। तुम्हें चाण्डालका जो स्थान दिखायी पड़ा था, वह भी मेरी ही माया थी ॥ १८ ॥ इन्द्रने कहा—हे हरिश्चन्द्र ! भूमण्डलके सम्पूर्ण मनुष्य जिसके लिये प्रार्थना करते हैं, उस परम पुनीत स्थानपर पधारो। क्योंकि पुण्यात्मा पुरुष ही उस पदके अधिकारी हो सकते हैं ॥१९॥ महाराज हरिश्चन्द्र बोले—देवराज ! आपको नमस्कार है। मेरी एक प्रार्थना सुननेकी कृपा कीजिये। अयोध्यामें रहनेवाले बहुतसे मानव मेरे दुःखसे परम दुखी होकर समय व्यतीत कर रहे हैं। उन्हें ऐसी स्थितिमें छोड़कर मैं स्वर्ग कैसे जाऊँगा ? गोवध, स्त्रीवध और मद्यपान ये घोर पाप हैं ॥ २० ॥ २१ ॥ अपने भक्तके त्यागको भी इन्हींके समान महापाप कहा गया है। अतः श्रद्धालु व्यक्तिका त्याग नहीं करना चाहिये। उसे छोड़नेवाला कैसे सुखी हो सकता है ? ॥ २२ ॥ अतएव हे इन्द्र ! उन श्रद्धालु मनुष्योंको छोड़कर मैं स्वर्ग नहीं जाऊँगा। अतएव आप सिधारनेकी कृपा करें। हे सुरेश्वर! यदि मेरे साथ ही उन सबके भी चलनेकी व्यवस्था हो तो मैं भी चला चलूँगा। उनके यदि नरकमें जाना हो तो वहाँ भी चला जाऊँगा। इन्द्रने कहा—

मवगम्यात्ममायया ॥ आत्मा श्वपचतां नीतो दर्शितं तच्च पक्वणम् ॥ १८ ॥ इन्द्र उवाच ॥ प्रार्थ्यते यत्परं स्थानं समस्तैर्मनुजैर्भुवि ॥ तदारोह हरिश्चन्द्र स्थानं पुण्यकृतां नृणाम् ॥ १९ ॥ हरिश्चन्द्र उवाच ॥ देवराज नमस्तुभ्यं वाक्यं चेदं निबोध मे ॥ मच्छोकमग्नमनसः कोसले नगरे नराः ॥ २० ॥ तिष्ठंति तानपास्यैवं कथं यास्याम्यहं दिवम् ॥ ब्रह्महत्या सुरापानं गोवधः स्त्रीवधस्तथा ॥२१॥ तुल्यमेभिर्महत्पापं भक्तत्यागादुदाहृतम् ॥ भजंतं भक्तमत्याज्यं त्यजतः स्यात्कथं सुखम् ॥ २२ ॥ तैर्विना न प्रयास्यामि तस्माच्छक्र दिवं व्रज ॥ यदि ते सहिताः स्वर्गं मया यांति सुरेश्वर ॥ २३ ॥ ततोऽहमपि यास्यामि नरकं वाऽपि तैः सह ॥ इन्द्र उवाच ॥ बहूनि पुण्यपापानि तेषां भिन्नानि वै नृप ॥ २४ ॥ कथं संघातभोज्यं त्वं भूप स्वर्गमभीप्ससि ॥ हरिश्चन्द्र उवाच ॥ भुंक्ते शक्र नृपो राज्यं प्रभावात्प्रकृतेर्ध्रुवम् ॥ २५ ॥ यजते च महायज्ञैः कर्म पूर्तं करोति च ॥ तच्च तेषां प्रभावेण मया सर्वमनुष्ठितम् ॥ २६ ॥ उपदादान्न संत्यक्ष्ये तानहं स्वर्गलिप्सया ॥ तस्माद्यन्मम देवेश किंचिदस्ति सुचेष्टितम् ॥ २७ ॥ दत्तमिष्टमथो जप्तं सामान्यं तैस्तदस्तु नः ॥ बहुकालोपभोज्यं च फलं यन्मम कर्मगम् ॥ २८ ॥ तदस्तु दिनमप्येकं तैः समं त्वत्प्रसादतः ॥ सूत उवाच ॥

हे राजन् ! अयोध्याके वे नागरिक भाँति-भाँतिके पुण्य और पाप कर चुके हैं। हे महीपाल ! स्वर्ग सर्वसाधारण जनताके उपभोगमें आ जाय, ऐसी इच्छा आप क्यों प्रकट करते हैं ? हरिश्चन्द्रने कहा—हे देवराज ! प्रजा ही राजाका अङ्ग है। उसीकी कृपासे राजाको राज्य-भोगका सुअवसर प्राप्त होता है ॥२३–२५॥ प्रजाकी सहायतासे ही बड़े बड़े यज्ञों द्वारा देवताओंकी उपासना तथा कुएँ-तालाब आदि धार्मिक प्रतिष्ठानोंकी स्थापनामें राजाको सफलता मिलती है। मैं भी उन नागरिकोंका बल पाकर ही सम्पूर्ण कार्य कर सकता हूँ ॥ २६ ॥ इसीलिए समयानुसार भेंट देनेवाले उन पुरवासियोंको स्वर्गके लोभसे मैं नहीं छोड़ सकता। अतएव हे देवेश ! मैंने जो कुछ भी उत्तम कार्य किया हो—दान, यज्ञ और जप आदि सामान्य कर्मोंके प्रभावसे मुझे जो भी फल मिलनेवाला हो तथा जिस उत्तम कर्मके फलस्वरूप बहुत दिनोंतक स्वर्ग भोगनेका जो मैं अधिकारी बनाया जाता होऊँ, वे सभी सुकृत बाँटकर एक दिन

भी उन नागरिकोंके साथ स्वर्गमें रहनेका मुझे अवसर मिल जाय—यह आपकी कृपापर निर्भर है। सूतजी कहते हैं—तब सब देवताओंके अधिष्ठाता इन्द्रने कहा—'ऐसा ही होगा' ॥२७–२९॥ यह कहकर राजाकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। इससे धर्म और गाधिनन्दन विश्वामित्रके मनमें प्रसन्नताकी सीमा नहीं रही। तदनन्तर वे सभी महानुभाव अयोध्यापुरीमें, जो चारों वर्णोंके लोगोंसे खचाखच भरी थी, पहुँच गये ॥३०॥ वहाँ जाकर देवराज इन्द्रने महाराज हरिश्चन्द्रके सामने ही सबसे कहा—'हे नागरिकजनो! तुम सब लोग परम दुर्लभ स्वर्गधाममें चलनेके लिये शीघ्र तैयार हो जाओ ॥३१॥ धर्मकी कृपासे ही तुम सभी व्यक्तियोंको ऐसा सुअवसर प्राप्त हुआ है।' तब धर्ममें अटूट श्रद्धा रखनेवाले महाराज हरिश्चन्द्रने भी उन नागरिकोंसे कहा—'हाँ, हम सब लोग अब एक साथ स्वर्गकी यात्रा करेंगे।' सूतजी कहते हैं—देवराज इन्द्रकी बात सुनकर राजा हरिश्चन्द्रके प्रति नागरिकोंके मनमें अपार श्रद्धा उत्पन्न हो गयी ॥३२॥३३॥ जो नागरिक सांसारिक कार्यसे विरक्त हो गये थे, वे गृहस्थीका भार अपने पुत्रोंको सौंपकर स्वर्ग जानेके लिए तैयार हो गये ॥ ३४ ॥ सबकी सवारीके लिये विमान आये हुए थे। उन लोगोंके शरीरोंमें सूर्यके समान

एवं भविष्यतीत्युक्त्वा शक्रस्त्रिभुवनेश्वरः ॥ २९ ॥ प्रसन्नचेता धर्मश्च विश्वामित्रश्च गाधिजः ॥ गत्वा तु नगरं सर्वे चातुर्वर्ण्यसमाकुलम् ॥ ३० ॥ हरिश्चन्द्रस्य निकटे प्रोवाच विबुधाधिपः ॥ आगच्छंतु जनाः शीघ्रं स्वर्गलोकं सुदुर्लभम् ॥३१॥ धर्मप्रसादात्संप्राप्तं सर्वैर्युष्माभिरेव तु ॥ हरिश्चंद्रोऽपि तान्सर्वाञ्जनान्नगरवासिनः ॥ ३२ ॥ प्राह राजा धर्मपरो दिवमारुह्यतामिति ॥ सूत उवाच ॥ तदिंद्रस्य वचः श्रुत्वा प्रीतास्तस्य च भूपतेः ॥३३॥ ये संसारेषु निर्विण्णास्ते धुरं स्वसुतेषु वै ॥ कृत्वा प्रहृष्टमनसो दिवमारुरुहुर्जनाः ॥ ३४ ॥ विमानवरमारूढाः सर्वे भास्वरविग्रहाः ॥ तदा संभूत-हर्षास्ते हरिश्चन्द्रश्च पार्थिवः ॥ ३५ ॥ राज्येऽभिषिच्य तनयं रोहिताख्यं महामनाः ॥ अयोध्याख्ये पुरे रम्ये हृष्टपुष्टजनान्विते ॥ ३६ ॥ तनयं सुहृदश्चापि प्रतिपूज्याभिनंद्य च ॥ पुण्येन लभ्यां विपुलां देवादीनां सुदुर्लभाम् ॥ ३७ ॥ संप्राप्य कीर्तिमतुलां विमाने स महीपतिः ॥ आसांचक्रे कामगमे क्षुद्रघंटाविराजिते ॥ ३८ ॥ ततस्तर्हि समालोक्य श्लोकमंत्रं तदा जगौ ॥ दैत्याचार्यो महाभागः सर्वशास्त्रार्थतत्त्ववित् ॥३९॥ शुक्र उवाच ॥ अहो तितिक्षामाहात्म्यमहो दानफलं महत् ॥ यदागतो हरिश्चन्द्रो महेंद्रस्य सलोकताम् ॥ ४० ॥ सूत उवाच ॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं हरिश्चंद्रस्य चेष्टितम् ॥ यः शृणोति च दुःखार्तः स सुखं लभतेऽन्वहम् ॥ ४१ ॥ स्वर्गार्थी प्राप्नुयात्स्वर्गं सुतार्थी सुतमाप्नुयात् ॥ भार्यार्थी

प्रभा उत्पन्न हो गयी। सबके हृदय आनन्दसे परिपूर्ण हो गये। महामना हरिश्चन्द्रने अपने पुत्र रोहितका अयोध्याके राज्यपर अभिषेक कर दिया। उस समय उस रमणीक पुरीमें कोई भी व्यक्ति दीन-हीन नहीं था ॥३५॥३६॥ फिर राजा अपने पुत्रसे मिले। उन्होंने सुहृदोंका सम्मान और अभिवादन किया। तत्पश्चात् जो पुण्यसे प्राप्त होनेवाली तथा देवताओंके लिये भी परम दुर्लभ है, उस विशद कीर्तिको प्राप्त करके इच्छानुसार चलनेवाले तथा क्षुद्रघण्टिकाओंसे सुशोभित विमानपर बैठ गये ॥३७॥३८॥ इस आश्चर्यमय दृश्यको देखकर महाभाग शुक्राचार्यने जो दैत्योंके आचार्य एवं सम्पूर्ण शास्त्रोंके प्रकाण्ड विद्वान् हैं, एक श्लोक कहा ॥३९॥ शुक्राचार्य बोले—तितिक्षा (सहिष्णुता) की महिमा और दानका फल सबसे श्रेष्ठ है। इसीके कारण राजा हरिश्चन्द्रको इन्द्रके लोकमें जानेकी सुविधा प्राप्त हो गयी ॥ ४० ॥ सूतजी कहते हैं—हे शौनक! इस प्रकार राजा हरिश्चन्द्रके चरित्रसम्बन्धी सम्पूर्ण प्रसङ्गका वर्णन मैंने

तुम्हारे सामने कर दिया। जो दुखी व्यक्ति इसे सुनता है, वह परम सुखी हो जाता है ॥ ४१ ॥ स्वर्गकी अभिलाषासे इसका श्रवण करनेवाला पुरुष स्वर्गको तथा पुत्रार्थी पुत्रको प्राप्त कर सकता है। इसके प्रभावसे स्त्रीकी इच्छा रखनेवाले स्त्री, धन पानेकी इच्छा रखनेवाले धन तथा राज्यके अभिलाषी राज्य पा सकते हैं ॥ ४२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

(भगवती दुर्गाके शताक्षी-शाकम्भरी आदि नामोंका इतिहास) राजा जनमेजयने कहा—हे मुने ! आपने राजर्षि हरिश्चन्द्रकी बड़ी अद्भुत कथा सुनायी। आपने बतलाया है कि उन परम धार्मिक नरेशने भगवती शताक्षीके चरणोंकी उपासना की थी ॥ १ ॥ वे कल्याणस्वरूपिणी भगवती शताक्षी कैसे हुईं ? आप इसका कारण बताकर मेरे जन्मको सफल बनानेकी कृपा कीजिये ॥ २ ॥ जिसे सुननेसे अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त हो रहा हो—भगवतीका गुणगान सुननेवाला कौन ऐसा शुद्धबुद्धि पुरुष होगा, जो उसे सुनकर तृप्त हो सके ॥ ३ ॥

प्राप्नुयाद्भार्यां राज्यार्थी राज्यमाप्नुयात् ॥ ४२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कधे हरिश्चन्द्रोपाख्याने सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

॥ जनमेजय उवाच ॥ विचित्रमिदमाख्यानं हरिश्चन्द्रस्य कीर्तितम् ॥ शताक्षीपादभक्तस्य राजर्षेर्धार्मिकस्य च ॥ १ ॥ शताक्षी सा कुतो जाता देवी भगवती शिवा ॥ तत्कारणं वद मुने सार्थकं जन्म मे कुरु ॥ २ ॥ को हि देव्या गुणाञ्छृण्वंस्तृप्तिं यास्यति शुद्धधीः ॥ पदे पदेऽश्वमेधस्य फलमक्षय्यमश्नुते ॥ ३ ॥ व्यास उवाच ॥ शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि शताक्षीसंभवं शुभम् ॥ तवावाच्यं न मे किंचिद्देवीभक्तस्य विद्यते ॥ ४ ॥ दुर्गमाख्यो महादैत्यः पूर्वं परमदारुणः ॥ हिरण्याक्षान्वये जातो रुरुपुत्रो महाखलः ॥ ५ ॥ देवानां तु बलं वेदो नाशे तस्य सुरा अपि ॥ नंक्ष्यंत्येव न संदेहो विधेयं तावदेव तत् ॥ ६ ॥ विमृश्यैतत्तपश्चर्यां गतः कर्तुं हिमालये ॥ ब्रह्माणं मनसा ध्यात्वा वायुभक्षो व्यतिष्ठत ॥ ७ ॥ सहस्रवर्षपर्यन्तं चकार परमं तपः ॥ तेजसा तस्य लोकास्तु संतप्ताः ससुरासुराः ॥८॥ ततः प्रसन्नो भगवान्हंसारूढश्चतुर्मुखः ॥ ययौ तस्मै वरं दातुं प्रसन्नमुखपङ्कजः ॥९॥ समाधिस्थं मीलिताक्षं स्फुटमाह चतुर्मुखः ॥ वरं वरय भद्रं ते यस्ते मनसि वर्तते ॥ १० ॥ तवाद्य तपसा तुष्टो वरदेशोऽहमागतः ॥ श्रुत्वा ब्रह्म-

व्यासजी कहते हैं—हे राजन् ! भगवती शताक्षीके प्रकट होनेका पावन चरित्र कहता हूँ, सुनो। तुम भगवतीके परम उपासक हो। अतः मेरी जानकारीमें कोई भी ऐसी कथा नहीं है, जो तुम्हें न सुनायी जा सके ॥ ४ ॥ प्राचीन समयकी बात है—दुर्गम नामका एक महान् दैत्य था। उसकी आकृति अत्यन्त भयंकर थी। हिरण्याक्षके वंशमें उस महाखलका जन्म हुआ था। उस महानीच दानवके पिता राजा रुरु थे ॥ ५ ॥ देवताओंका बल वेद है। वेदके लुप्त हो जानेपर देवता भी नहीं रहेंगे, इसमें कोई संशय नहीं है। अतः पहले वेदको ही नष्ट कर देना चाहिये ॥ ६ ॥ यों सोचकर वह दैत्य तपस्या करनेके विचारसे हिमालय पर्वतपर गया। मनमें ब्रह्माजीका ध्यान करके उसने आसन जमा लिया। वह केवल वायु पीकर रहता था ॥ ७ ॥ उसने एक हजार वर्षोंतक बड़ी कठिन तपस्या की। उसके तेजसे देवताओं और दानवोंसहित सम्पूर्ण प्राणी संतप्त हो उठे ॥८॥ तब विकसित कमलके समान सुन्दर मुखसे शोभा पानेवाले चतुर्मुख भगवान ब्रह्मा प्रसन्नतापूर्वक हंसपर बैठकर वर देनेके लिये दुर्गमके पास पधारे ॥ ९ ॥ उस समय दुर्गम समाधि लगाये बैठा था। उसकी आँखें मुँदी हुई थीं। ब्रह्माजीने उससे स्पष्ट

स्वरमें कहा—'तुम्हारा कल्याण हो। तुम्हारे मनमें जो वर पानेकी इच्छा हो, वह माँग लो ॥ १ ॥ मैं वरदाताओंका स्वामी हूँ। आज तुम्हारी तपस्यासे संतुष्ट होकर यहाँ आया हूँ।' हे राजन्! ब्रह्माजीके मुखसे निकली हुई वाणी सुनकर दुर्गम सावधान होकर उठा ॥ ११ ॥ उसने पितामहकी पूजा करके वर माँगते हुए कहा—'हे सुरेश्वर! मुझे सम्पूर्ण वेद देनेकी कृपा कीजिये। ब्राह्मणों तथा देवताओंके पास जितने मंत्र हों, वे सब मेरे पास आ जायँ। हे महेश्वर! साथ ही मुझे वह बल दीजिये कि जिससे मैं देवताओंको परास्त कर सकूँ ॥ १२ ॥ १३ ॥ दुर्गमकी यह बात सुनकर चारों वेदोंके परम अधिष्ठाता ब्रह्माजी 'ऐसा ही हो' यह कहकर सत्यलोकको चले गये ॥१४॥ तभी ब्राह्मणोंको समस्त वेद विस्मृत हो गये। स्नान, संध्या, नित्य होम, श्राद्ध, यज्ञ और जप आदि वैदिक क्रियाएँ नष्ट हो गयीं ॥१५॥ जिससे सारे भूमण्डलमें भीषण हाहाकार मच गया। ब्राह्मणगण आपसमें आश्चर्यपूर्वक कहने लगे—'यह क्या हो गया? यह क्या हो गया? अब वेदके अभावमें हमें क्या करना चाहिये।' इस प्रकार सारे संसारमें घोर अनर्थ उत्पन्न करनेवाली अत्यन्त भयंकर स्थिति उपस्थित हो गयी ॥१६॥१७॥ देवताओंको हविका

मुखाद्ब्राह्मणीं व्युत्थितः स समाधितः ॥ ११ ॥ पूजयित्वा वरं वव्रे वेदान्देहि सुरेश्वर ॥ त्रिषु लोकेषु ये मंत्रा ब्राह्मणेषु सुरेष्वपि ॥ १२ ॥ विद्यन्ते ते तु सान्निध्ये मम सन्तु महेश्वर ॥ बलं च देहि येन स्याद्देवानां च पराजयः ॥ १३ ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा तथाऽस्त्विति वचो वदन् ॥ जगाम सत्यलोकं तु चतुर्वेदेश्वरः परः ॥ १४ ॥ ततःप्रभति विप्रैस्तु विस्मृता वेदराशयः ॥ स्नानसंध्यानित्य-होमश्राद्धयज्ञजपादयः ॥ १५ ॥ विलुप्ता धरणीपृष्ठे हाहाकारो महानभूत् ॥ किमिदं किमिदं चेति विप्रा ऊचुः परस्परम् ॥ १६ ॥ वेदाभावात्तद-स्माभिः कर्तव्यं किमतः परम् ॥ इति भूमौ महानर्थे जाते परमदारुणे ॥ १७ ॥ निर्जराः सजरा जाता हविर्भागाद्यभावतः ॥ रुरोध स तदा दैत्यो नगरीममरावतीम् ॥ १८ ॥ अशक्तास्तेन ते योद्धुं वज्रदेहासुरेण च ॥ पलायनं तदा कृत्वा निर्गता निर्जराः क्वचित् ॥१९॥ निलयं गिरिदुर्गेषु रत्नसानुगुहासु च ॥ संस्थिताः परमां शक्तिं ध्यायंतस्ते परांबिकाम् ॥ २० ॥ अग्नौ होमाद्यभावात्तु वृष्ट्यभावोऽप्यभून्नृप ॥ वृष्टेरभावे संशुष्कं निर्जलं चापि भूतलम् ॥ २१ ॥ कूपवापीतडागाश्च सरितः शुष्कतां गताः ॥ अनावृष्टिरियं राजन्नभूच्च शतवार्षिकी ॥ २२ ॥ मृताः प्रजाश्च बहुधा गोमहिष्यादयस्तथा ॥ गृहे गृहे मनुष्याणामभवच्छवसंग्रहः ॥ २३ ॥ अनर्थे त्वेवमुद्भूते ब्राह्मणाः शांतचेतसः ॥ गत्वा हिमवतः पार्श्वे

भाग मिलना बंद हो गया। अतः निर्जर होते हुए भी वे सजर हो गये अर्थात् स्वभावतः जिनके पास बुढ़ापा नहीं आ सकता था, उन्हें अब बुढ़ापेने ग्रस लिया। फिर उस दैत्यके द्वारा अमरावती नामक नगरी घेर ली गयी ॥ १८ ॥ दुर्गमका शरीर वज्रके समान कठोर था। अतएव देवता उसके साथ युद्ध करनेमें असमर्थ होकर भाग चले। पर्वतकी कन्दराओं और शिखरोंपर—जहाँ कहीं भी स्थान मिला, वहीं रहकर वे परा शक्ति भगवती जगदम्बाका ध्यान करते हुए समय बिताने लगे ॥१९॥ २० ॥ हे राजन्! अग्निमें हवन न होनेके कारण वर्षा भी बन्द हो गयी। वर्षाके अभावमें घोर सूखा पड़ गया। पृथ्वीपर एक बूँद भी जल नहीं रहा ॥ २१ ॥ कुएँ, बावलियाँ, पोखरे और नदियाँ बिल्कुल सूख गयीं। हे राजन्! ऐसी अनावृष्टि सौ वर्षोंतक बनी रही ॥ २२ ॥ बहुत-सी प्रजा तथा गाय-भैंस आदि पशु प्राणोंसे हाथ धो बैठे। घर-घरमें मनुष्योंकी लाशें बिछ गयीं ॥ २३ ॥ इस प्रकारका भीषण और अनिष्टप्रद समय उपस्थित होनेपर

कल्याणस्वरूपिणी भगवती जगदम्बाकी उपासना करनेके विचारसे ब्राह्मणलोग हिमालय पर्वतपर गये ॥२४॥ समाधि, ध्यान और पूजाके द्वारा उन्होंने देवीकी आराधना की। वे निराहार रहते थे। उनका मन एकमात्र भगवतीमें लगा रहता था। देवीके शरणापन्न होकर वे स्तुति करने लगे-॥२५॥ 'हे परमेश्वरी! हम पामर जनोंपर दया करो। हे अम्बिके! हम सब तरहसे अपराधी हैं। तथापि हमपर कृपा न करना तुम्हें शोभा नहीं देता ॥ २६ ॥ सबके भीतर निवास करनेवाली हे देवेश्वरी! तुम्हारी प्रेरणाके अनुसार ही प्राणी सब कुछ करता है, अन्यथा वह कर ही क्या सकता है? ॥ २७ ॥ हे महेश्वरी! तुम बारम्बार क्या देख रही हो? तुम जैसा चाहो, वैसा करनेमें पूर्ण समर्थ हो ॥ २८ ॥ हे महेशानी! घोर संकट उपस्थित है। तुम इससे हमारा उद्धार करो। हे अम्बिके! जीवनके अभावमें हमारी स्थिति कैसे रह सकती है? ॥२९॥ अनन्त कोटि ब्रह्माण्डपर शासन करनेवाली हे महेश्वरी! हे जगदम्बिके! प्रसन्न हो जाओ, प्रसन्न हो जाओ। हम तुम्हें प्रणाम करते हैं ॥ ३० ॥ हे कूटस्थरूपा, चिद्रूपा, वेदान्तवेद्या तथा भुवनेशी! तुम्हें बारंबार नमस्कार है। सम्पूर्ण आगम-शास्त्र 'नेति नेति' वाक्योंसे जिनका संकेत करते हैं,

रिराधयिषवः शिवाम् ॥ २४ ॥ समाधिध्यानपूजाभिर्देवीं तुष्टुवुरन्वहम् ॥ निराहारास्तदासक्तास्तामेव शरणं ययुः ॥ २५ ॥ दयां कुरु महेशानि पामरेषु जनेषु हि ॥ सर्वापराधयुक्तेषु नैतच्छ्लाघ्यं तवांबिके ॥ २६ ॥ कोपं संहर देवेशि सर्वांतर्यामिरूपिणि ॥ त्वया यथा प्रेर्यतेऽयं करोति स तथा जनः ॥ २७ ॥ नान्या गतिर्जनस्यास्य किं पश्यसि पुनः पुनः ॥ यथेच्छसि तथा कर्तुं समर्थाऽसि महेश्वरि ॥ २८ ॥ समुद्धर महेशानि संकटात्परमोत्थितात् ॥ जीवनेन विनाऽस्माकं कथं स्यात्स्थितिरंबिके ॥२९॥ प्रसीद त्वं महेशानि प्रसीद जगदम्बिके ॥ अनन्तकोटिब्रह्मांडनायिके ते नमो नमः ॥ ३० ॥ नमः कूटस्थरूपायै चिद्रूपायै नमो नमः ॥ नमो वेदान्तवेद्यायै भुवनेश्यै नमो नमः ॥३१॥ नेति नेतीति वाक्यैर्या बोध्यते सकलागमैः ॥ तां सर्वकारणां देवीं सर्वभावेन सन्नताः ॥ ३२ ॥ इति संप्रार्थिता देवी भुवनेशी महेश्वरी ॥ अनंताक्षिमयं रूपं दर्शयामास पार्वती ॥ ३३ ॥ नीलांजनसमप्रख्यं नीलपद्मायतेक्षणम् ॥ सुकर्कशसमोत्तुङ्गवृत्तपीनघनस्तनम् ॥ ३४ ॥ बाणमुष्टिं च कमलं पुष्पपल्लवमूलकान् ॥ शाकादीन्फलसंयुक्ताननन्तरससंयुतान् ॥ ३५ ॥ क्षुत्तृड्जरापहान्हस्तैर्बिभ्रती च महाधनुः ॥ सर्वसौंदर्यसारं तद्रूपं लावण्यशोभितम् ॥ ३६ ॥ कोटिसूर्यप्रतीकाशं करुणारससागरम् ॥ दर्शयित्वा जगद्धात्री साऽनंतनयनोद्भवा ॥ ३७ ॥ मोचयामास लोकेषु वारिधाराः सहस्रशः ॥ नवरात्रं

उन सर्वकारणस्वरूपिणी भगवतीके हम सम्यक् प्रकारसे शरणागत हैं' ॥३१॥३२॥ इस प्रकार ब्राह्मणोंके प्रार्थना करनेपर भगवती पार्वतीने, जो 'भुवनेशी' एवं 'महेश्वरी' नामसे विख्यात हैं, अपनी अनन्त आँखोंसे सम्पन्न दिव्यरूपके दर्शन कराये ॥ ३३ ॥ उनका वह विग्रह कज्जलके पर्वतकी तुलना कर रहा था। आँखें ऐसी थीं, मानो कमल हों। कन्धे ऊपर उठे हुए थे। विशाल वक्षःस्थल था ॥३४॥ हाथोंमें बाणोंका मुट्ठा, कमलके पुष्प, पल्लव और मूल सुशोभित थे। जिनसे भूख, प्यास और बुढ़ापा दूर हो जाते हैं, ऐसे शाक आदि खाद्य-पदार्थोंको उन्होंने हाथमें धारण कर रखा था। अनन्त रसवाले फल भी हाथमें थे। महान् धनुषसे भुजा सुशोभित थी। सम्पूर्ण सुन्दरताका सारस्वरूप भगवतीका वह रूप बड़ा ही कमनीय था ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ करोड़ों सूर्योंके समान चमकनेवाला वह विग्रह करुणरसका अथाह समुद्र था। ऐसी झाँकी सामने उपस्थित करनेके पश्चात् जगत्की रक्षामें तत्पर रहनेवाली करुणार्द्रहृदया भगवती अपनी

आँखोंसे सहस्रों जलधाराएँ गिराने लगीं। इस तरह उनके नेत्रोंसे निकले हुए जलके द्वारा नौ राततक सारी त्रिलोकीमें वृष्टि होती रही ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ सब प्राणियोंको दुखी देखकर भगवती-की आँखोंसे आँसूके रूपमें वह जल गिरा था। इससे सब प्राणियोंको बड़ी तृप्ति प्राप्त हुई। सम्पूर्ण औषधियाँ भी तृप्त हो गयीं ॥३९॥ हे राजन्! उस जलसे नदी और समुद्र भर गये। जो देवता पहले लुक-छिपकर रहते थे, वे अब बाहर निकल आये ॥४०॥ तब सब देवता और ब्राह्मण एक साथ मिलकर भगवतीका स्तवन करने लगे—"वेदान्तके अध्ययनसे समझमें आनेवाली ब्रह्मस्वरूपिणी हे देवी! तुम्हें बार बार नमस्कार है ॥ ४१ ॥ अपनी मायासे जगत्को धारण करनेवाली तथा भक्तोंके लिए कल्पवृक्ष एवं श्रद्धालु व्यक्तियोंके कल्याणार्थ दिव्य विग्रह धारण करनेवाली हे देवी! तुम्हें अनेक प्रणाम है ॥४२॥ सदा तृप्त रहनेवाली और अनुपम रूपोंसे सुशोभित हे भुवनेश्वरी! तुम्हें नमस्कार है। हे देवी! तुमने हमारा सङ्कट दूर करनेके लिये सहस्रों नेत्रोंसे सम्पन्न अनुपम रूप धारण किया है ॥ ४३ ॥ अतएव तुम 'शताक्षी' इस नामसे विराजनेकी कृपा करो। हे माता! भूखसे अत्यन्त पीड़ित होनेके कारण तुम्हारी विशेष स्तुति करनेमें हम

महावृष्टिरभून्नेत्रोद्भवैर्जलैः ॥ ३८ ॥ दुःखितान्वीक्ष्य सकलान्नेत्राश्रूणि विमुञ्चती ॥ तर्पितास्तेन ते लोका ओषध्यः सकला अपि ॥ ३९ ॥ नदीनदप्रवाहास्तैर्जलैः समभवन्नृप ॥ निलीय संस्थिताः पूर्वं सुरास्ते निर्गता बहिः ॥ ४० ॥ मिलित्वा ससुरा विप्रा देवीं समभितुष्टुवुः ॥ नमो वेदांतवेद्ये ते नमो ब्रह्मस्वरूपिणि ॥ ४१ ॥ स्वमायया सर्वजगद्विधात्र्यै ते नमो नमः ॥ भक्तकल्पद्रुमे देवि भक्तार्थं देहधारिणि ॥ ४२ ॥ नित्यतृप्ते निरुपमे भुवनेश्वरि ते नमः ॥ अस्मच्छान्त्यर्थमतुलं लोचनानां सहस्रकम् ॥ ४३ ॥ त्वया यतो धृतं देवि शताक्षी त्वं ततो भव ॥ क्षुधया पीडिता मातः स्तोतुं शक्तिर्न चास्ति नः ॥ ४४ ॥ कृपां कुरु महेशानि वेदानप्याहरांबिके ॥ व्यास उवाच ॥ इति तेषां वचः श्रुत्वा शाकान्स्वकरसंस्थितान् ॥ ४५ ॥ स्वादूनि फलमूलानि भक्षणार्थं ददौ शिवा ॥ नानाविधानि चान्नानि पशुभोज्यानि यानि च ॥ ४६ ॥ काम्यानंतरसैर्युक्तान्यानवीनोद्भवं ददौ ॥ शाकंभरीति नामापि तद्दिनात्समभून्नृप ॥ ४७ ॥ ततः कोलाहले जाते दूत-वाक्येन बोधितः ॥ ससैन्यः सायुधो योद्धुं दुर्गमाख्योऽसुरो ययौ ॥ ४८ ॥ सहस्राक्षौहिणीयुक्तः शरान्मुंचंस्त्वरान्वितः ॥ रुरोध देवसैन्यं तद्य-द्देव्यग्रे स्थितं पुरा ॥ ४९ ॥ तथा विप्रगणं चैव रोधयामास सर्वतः ॥ ततः किलकिलाशब्दः समभूद्देवमंडले ॥ ५० ॥ त्राहि त्राहीति वाक्यानि

असमर्थ हैं ॥४४॥ हे अम्बिके! हे महेशानी! तुम दुर्गमनामक दैत्यसे वेदोंको छीन लेनेकी कृपा करो।" व्यासजी कहते हैं—हे राजन्! ब्राह्मणों और देवताओंका यह वचन सुनकर भगवती शिवाने अनेक प्रकारके शाक तथा स्वादिष्ट फल अपने हाथसे उन्हें खानेके लिये दिये। भाँति-भाँतिके अन्न सामने उपस्थित कर दिये और पशुओंके खाने योग्य कोमल एवं अनेक रसोंसे सम्पन्न नवीन तृण भी उन्हें देनेकी कृपा की। हे राजन्! उसी दिनसे भगवतीका एक नाम 'शाकम्भरी' भी पड़ गया ॥४५—४७॥ जगत्में कोलाहल मच जानेपर दूतके कहनेसे दुर्गम नामक दैत्य इस बातको समझ गया। उसने अपनी सेना सजायी और अस्त्र-शस्त्रसे सुसज्जित होकर युद्धके लिए चल पड़ा ॥ ४८ ॥ उसके पास एक सहस्र अक्षौहिणी सेना थी। देवताओंकी सारी सेना-को घेरकर वह दैत्य भगवतीके सामने खड़ा हो गया ॥ ४९ ॥ ब्राह्मण भी सब प्रकारसे घिर गये और देवताओंकी मण्डलीमें कोलाहल मच गया। सभी देवता और ब्राह्मण 'रक्षा करो—

रक्षा करो' इस प्रकारके शब्द उच्चारण करने लगे। तदनन्तर भगवती शिवाने उनकी रक्षा करनेके लिये चारों ओर अपना तेजोमय चक्र खड़ा कर दिया और वे स्वयं बाहर निकल आयीं। तब देवी और दैत्य–दोनोंमें लड़ाई छिड़ गयी ॥ ५०–५२ ॥ बाणोंकी वर्षासे सूर्य-मण्डल ढक गया। वे बाण जब परस्पर टकराते, तब अग्निकी प्रज्वलित चिनगारियाँ निकलने लगतीं ॥५३॥ धनुषके कठोर टंकोरसे दिशाओंमें बहरापन छा गया। तत्पश्चात् देवीके श्रीविग्रहसे बहुत-सी उग्र शक्तियाँ प्रकट हुईं ॥५४॥ कालिका, तारिणी, बाला, त्रिपुरा, भैरवी, रमा, बगला, मातङ्गी, त्रिपुरसुन्दरी, कामाक्षी, देवी, तुलजा, जम्भिनी, मोहिनी, छिन्नमस्ता, गुह्यकाली और दशसाहस्रबाहुका आदि नामवाली बत्तीस शक्तियोंके पश्चात् चौंसठ, और फिर अनगिनत शक्तियोंका प्रादुर्भाव हुआ। सबकी भुजाएँ आयुधोंसे सुशोभित थीं ॥ ५५–५७ ॥ युद्धस्थलमें मृदङ्ग आदि बाजे बजने लगे। उन शक्तियोंने दानवोंकी सैकड़ों अक्षौहिणी सेना नष्ट कर दी ॥ ५८ ॥

प्रोचुः सर्वे द्विजामराः ॥ ततस्तेजोमयं चक्रं देवानां परितः शिवा ॥५१॥ चकार रक्षणार्थाय स्वयं तस्माद्बहिः स्थिता ॥ ततः समभवद्युद्धं देव्या दैत्यस्य चोभयोः ॥५२॥ शरवर्षसमाच्छन्नं सूर्यमंडलमद्भुतम् ॥ परस्परशरोद्धर्षसमुद्भूताग्निसुप्रभम् ॥५३॥ कठोरज्याटणत्कारबधिरीकृतदिक्तटम् ॥ ततो देवीशरीरात्तु निगतास्तीव्रशक्तयः ॥५४॥ कालिका तारिणी बाला त्रिपुरा भैरवी रमा ॥ बगला चैव मातंगी तथा त्रिपुरसुन्दरी ॥ ५५ ॥ कामाक्षी तुलजा देवी जंभिनी मोहिनी तथा ॥ छिन्नमस्ता गुह्यकाली दशसाहस्रबाहुका ॥ ५६ ॥ द्वात्रिंशच्छक्तयश्चान्याश्चतुःषष्टिमिताः पराः ॥ असंख्यातास्ततो देव्यः समुद्भूतास्तु सायुधाः ॥५७॥ मृदंगशंखवीणादिनादितं संगरस्थलम् ॥ शक्तिभिर्दैत्यसैन्ये तु नाशितेऽक्षौहिणीशते ॥५८॥ अग्रेसरः समभवद्दुर्गमो वाहिनीपतिः ॥ शक्तिभिः सह युद्धं च चकार प्रथमं रिपुः ॥ ५९ ॥ महद्युद्धं समभवद्यत्राभूद्रक्तवाहिनी ॥ अक्षौहिण्यस्तु ताः सर्वा विनष्टा दशभिर्दिनैः ॥ ६० ॥ तत एकादशे प्राप्ते दिने परमदारुणे ॥ रक्तमाल्यांबरधरो रक्तगंधानुलेपनः ॥६१॥ कृत्वोत्सवं महांतं तु युद्धाय रथसंस्थितः ॥ संरंभेणैव महता शक्तीः सर्वा विजित्य च ॥ ६२ ॥ महादेवीरथाग्रे तु स्वरथं संन्यवेशयत् ॥ ततोऽभवन्महद्युद्धं देव्या दैत्यस्य चोभयोः ॥ ६३ ॥ प्रहरद्वयपर्यंतं हृदयत्रासकारकम् ॥ ततः पंचदशात्युग्रबाणान्देवी मुमोच ह ॥ ६४ ॥ चतुर्भिश्चतुरो वाहान्बाणेनैकेन सारथिम् ॥ द्वाभ्यां नेत्रे भुजौ द्वाभ्यां ध्वजमेकेन पत्रिणा ॥ ६५ ॥ पंचभिर्हृदयं तस्य विव्याध जगदंबिका ॥ ततो वमन्स रुधिरं ममार पुर

तब सेनाध्यक्ष दुर्गम स्वयं शक्तियोंके सामने उपस्थित होकर उनसे युद्ध करने लगा॥५९॥ जहाँ वह घोर युद्ध हो रहा था, वहाँ रक्त बहानेवाली नदी प्रकट हो गयी। दस दिनोंमें उस राक्षसकी वे सम्पूर्ण अक्षौहिणी सेनाएँ मर-खप गयीं ॥६०॥ तदनन्तर अत्यन्त भयंकर ग्यारहवाँ दिन उपस्थित हुआ। उस दिन दुर्गमने स्वयं लड़नेकी तैयारी की। उसने लाल रंगकी माला, लाल वस्त्र और लाल चन्दनसे शरीरको सजाया था ॥६१॥ महान् उत्सव मनाकर युद्धमें जानेके लिए वह रथपर बैठा और बड़े ही उत्साहके साथ सम्पूर्ण शक्तियोंपर उसने विजय प्राप्त कर ली ॥६२॥ इसके बाद वह देवीके रथके सामने अपना रथ ले गया। अब भगवती जगदम्बा और दुर्गम दैत्य–इन दोनोंमें भीषण युद्ध होने लगा ॥६३॥ हृदयको आतङ्कित करनेवाला वह युद्ध दो पहरतक होता रहा। इसके बाद देवीने दुर्गमपर पंद्रह कराल बाण चलाये ॥६४॥ उसके चार घोड़े चार बाणोंके लक्ष्य हुए और एक बाण सारथिको लगा। दो बाणोंने दोनों नेत्र, दोनों भुजाओंको और एक बाणने उसकी ध्वजा काटडाली ॥६५॥

जगदम्बाके पाँच बाण दुर्गमकी छातीमें जाकर घुस गये। फिर तो रुधिर वमन करता हुआ वह दैत्य भगवती परमेश्वरीके सामने प्राणोंसे हीन होकर गिर पड़ा ॥६६॥ उसके शरीरसे जो तेज [illegible] वह भगवतीके रूपमें जाकर समा गया। उस महान् पराक्रमी दैत्यके मर जानेपर त्रिलोकीके अन्तःकरणकी ज्वाला शान्त हो गयी ॥६७॥ तब ब्रह्मा प्रभृति समस्त देवता भगवान् विष्णु आ[illegible]को अगुआ बनाकर भक्तिपूर्वक गद्गद वाणीमें भगवती जगदम्बाकी स्तुति करने लगे ॥ ६८ ॥ देवगण बोले—भ्रमणशील जगत्का एकमात्र कारण हे भगवती परमेश्वरी ! हे शाकम्भरी ! हे शतलोचने ! तुम्हें अनेकशः नमस्कार है ॥६९॥ सम्पूर्ण उपनिषदोंमें प्रशंसित तथा दुर्गमनामक दैत्यकी संहारिणी एवं पञ्चकोशमें रहनेवाली कल्याणस्वरूपिणी भगवती हे माहेश्वरी ! तुम्हें नमस्कार है ॥ ७० [illegible]नीश्वरगण शान्तचित्तसे जिनका ध्यान करते हैं तथा जिनका विग्रह ही प्रणवका अर्थ है, उन भगवती भुवनेश्वरीकी हम उपासना करते हैं ॥ ७१ ॥ अनन्त कोटि ब्रह्माण्डोंकी जिनसे उत्पा[illegible] है, जो दिव्य विग्रहसे सुशोभित हैं एवं जिन्होंने ब्रह्मा-विष्णु आदिको प्रकट किया है, उन भगवती भुवनेश्वरीके चरणोंमें हम सर्वतोभावसे

ईशितुः ॥ ६६ ॥ तस्य तेजस्तु निर्गत्य देवीरूपे विवेश ह ॥ हते तस्मिन्महावीर्ये शांतमासीज्जगत्त्रयम् ॥६७॥ ततो ब्रह्मादयः सर्वे तुष्टुवुर्जगदंबिकाम् ॥ पुरस्कृत्य हरीशानौ भक्त्या गद्गदया गिरा ॥ ६८ ॥ देवा ऊचुः ॥ जगद्भ्रमविवर्तैककारणे परमेश्वरि ॥ नमः शाकंभरि शिवे नमस्ते शतलोचने ॥ ६९ ॥ सर्वोपनिषदुद्घुष्टे दुर्गमासुरनाशिनि ॥ नमो मायेश्वरि शिवे पंचकोशांतरस्थिते ॥ ७० ॥ चेतसा निर्विकल्पेन यां ध्यायंति मुनीश्वराः ॥ प्रणवार्थस्व[illegible]तां भजामो भुवनेश्वरीम् ॥ ७१ ॥ अनंतकोटिब्रह्मांडजननीं दिव्यविग्रहाम् ॥ ब्रह्मविष्ण्वादिजननीं सर्वभावैर्नता वयम् ॥ ७२ ॥ कः कुर्यात्पामरान्दृष्ट्वा रोदनं सकलेश्वरः ॥ सदयां परमेशानीं शताक्षीं मातरं विना ॥ ७३ ॥ व्यास उवाच ॥ इति स्तुता सुरैर्देवी ब्रह्मविष्ण्वादिभिर्वरैः ॥ पूजिता विविधैर्द्रव्यैः संतुष्टाऽभूच्च तत्क्षणे ॥ ७४ ॥ प्रसन्ना सा तदा देवी वेदानाहृत्य सा ददौ ॥ ब्राह्मणेभ्यो विशेषेण प्रोवाच पिकभाषिणी ॥ ७५ ॥ ममेयं तनुरुत्कृष्टा पालनीया विशेषतः ॥ यया विनाऽनर्थ एव जातो दृष्टोऽधुनैव हि ॥ ७६ ॥ पूज्याऽहं सर्वदा सेव्या युष्माभिः सर्वदैव हि ॥ नाऽतः परतरं किंचित्कल्याणायोपदिश्यते ॥ ७७ ॥ पठनीयं ममैतद्धि माहात्म्यं सर्वदोत्तमम् ॥ तेन तुष्टा भविष्यामि

मस्तक झुकाते हैं ॥७२॥ सबकी व्यवस्था करनेवाली माता शताक्षी दयासे परिपूर्ण हैं। इनके सिवा कोई भी राजा-महाराजा ऐसा नहीं है, जिसे संकटग्रस्त एवं दीन व्यक्तियोंको देखकर इतनी रुलाई आ सके ॥ ७३ ॥ व्यासजी कहते हैं—हे राजन् ! ब्रह्मा-विष्णु आदि आदरणीय देवताओंके इस प्रकार स्तवन एवं विविध द्रव्योंसे पूजन करनेपर भगवती जगदम्बा तुरंत सन्तुष्ट हो गयीं ॥ ७४ ॥ तब कोयलके समान मधुर भाषण करनेवाली उन देवीने प्रसन्नतापूर्वक दैत्य दुर्गमसे वेदोंको लेकर देवताओंको सौंप दिया। साथ ही ब्राह्मणोंसे विशेषरूपमें कहा—॥ ७५ ॥ 'जिसके अभावमें ऐसा अनर्थकारी समय सामने उपस्थित था, वह वेदवाणी मेरे शरीरसे प्रकट हुई है। सम्यक् प्रकारसे इसकी रक्षा करनी चाहिये। मेरी पूजामें सदा संलग्न रहना तुम्हारा परम कर्तव्य है, क्योंकि तुम मेरे सेवक हो। तुम्हारे कल्याणके लिये इससे श्रेष्ठ दूसरा कोई उपदेश नहीं है ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ मेरे इस उत्तम माहात्म्यका निरंतर पाठ करना। मैं

उससे प्रसन्न होकर तुम्हारे सम्पूर्ण संकट दूर करती रहूँगी ॥७८॥ मेरे हाथसे दुर्गम नामके दैत्यका वध हुआ है। अतः मेरा एक नाम 'दुर्गा' है। मैं 'शताक्षी' भी कहलाती हूँ। जो व्यक्ति मेरे इन नामोंका उच्चारण करता है, वह मायाको छिन्न-भिन्न करके मेरा स्थान प्राप्त कर लेता है ॥ ७९ ॥ विशेष कहनेकी आवश्यकता नहीं। साररूपमें मैं इतना ही कहूँगी कि सुरों और असुरों सभीको मेरी आराधना करनी चाहिए॥८०॥ व्यासजी कहते हैं—हे राजन्! सच्चिदानन्दस्वरूपिणी भगवती जगदम्बा इन वाक्योंसे देवताओंको परम सन्तुष्ट करके उनके सामने ही सहसा अन्तर्धान हो गयीं ॥ ८१ ॥ यह सम्पूर्ण परमोत्तम तथा गोपनीय रहस्य मैं तुम्हें सुना चुका। इसके प्रभावसे समस्त कल्याण सुलभ हो जाते हैं ॥ ८२ ॥ जो भक्तिपरायण और बड़भागी पुरुष निरन्तर इस अध्यायका श्रवण करता है, उसकी सम्पूर्ण कामनाएँ सिद्ध हो जाती हैं और अन्तमें वह देवीके परम धामको प्राप्त हो जाता है ॥ ८३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते सप्तमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा' भाषाटीकायामष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

हरिष्यामि तथाऽऽपदः ॥ ७८ ॥ दुर्गमासुरहंत्रीत्वाद्दुर्गेति मम नाम यः ॥ गृह्णाति च शताक्षीति मायां भित्त्वा व्रजत्यसौ ॥७९॥ किमुक्तेनात्र बहुना सारं वक्ष्यामि तत्त्वतः ॥ संसेव्याऽहं सदा देवाः सर्वैरपि सुरासुरैः ॥ ८० ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्त्वांतर्हिता देवी देवानां चैव पश्यताम् ॥ संतोषं जनयंत्येवं सच्चिदानंदरूपिणी ॥ ८१ ॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं रहस्यं परमं महत् ॥ गोपनीयं प्रयत्नेन सर्वकल्याणकारकम् ॥ ८२ ॥ य इमं शृणुयान्नित्यमध्यायं भक्तित[illegible] ॥ सर्वान्कामानवाप्नोति देवीलोके महीयते ॥८३॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधेऽष्टाविंशोऽध्यायः ॥२८॥

॥ व्यास उवाच ॥ इत्येवं सूर्यवंश्यानां राज्ञां चरितमुत्तमम् ॥ सोमवंशोद्भवानां च वर्णनीयं मया कियत् ॥ १ ॥ पराशक्तिप्रसादेन महत्त्वं प्रतिपेदिरे ॥ राजन्सुनिश्चितं विद्धि पराशक्तिप्रसादतः ॥२॥ यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा ॥ तत्तदेवावगच्छ त्वं पराशक्त्यंशसंभवम् ॥३॥ एते चान्ये च राजानः पराशक्तेरुपासकाः ॥ संसारतरुमूलस्य कुठारा अभवन्नृप ॥ ४ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन संसेव्या भुवनेश्वरी ॥ पलालमिव धान्यार्थी त्यजेदन्यमशेषतः ॥ [illegible] ॥ आमथ्य वेददुग्धाब्धिं प्राप्तं रत्नं मया नृप ॥ पराशक्तिपदांभोजं कृतकृत्योऽस्म्यहं ततः ॥ ६ ॥ पंचब्रह्मासना-

(भगवतीका तिरोधान [illegible] पुनः प्राकट्य) व्यासजी कहते हैं—हे राजन्! इस प्रकार सूर्यवंशी और चद्रवंशी राजाओंके कुछ उत्तम चरित्रका मैंने वर्णन कर दिया। अब और क्या कहूँ? ॥ १ ॥ हे मनुजेन्द्र! भगवती परा शक्तिकी कृपासे ही उन राजाओंने महती प्रतिष्ठा प्राप्त की थी। यह निश्चित समझना कि भगवतीके प्रसन्न होनेपर कुछ भी अलभ्य नहीं रह जाता ॥२॥ क्योंकि जो [illegible] भी विभूतियुक्त, ऐश्वर्ययुक्त, कान्तियुक्त और शक्तियुक्त पदार्थ है, उस-उसको तुम भगवतीके तेज अंशकी ही अभिव्यक्ति समझो ॥ ३ ॥ हे राजन्! ये तथा ऐसे ही [illegible] बहुतेरे नरेश भगवती जगदम्बाकी उपासना करके संसाररूपी वृक्षकी जड़ काटनेके लिये कुठारके समान हो चुके हैं ॥ ४ ॥ अतएव सम्यक् प्रकारसे भगवती भुवनेश्वरीकी सेवा करो। जैसे धान्य चाहनेवाला व्यक्ति पुआल छोड़ देता है, वैसे ही अन्य सब व्यवसायोंसे पृथक् रहो ॥ ५ ॥ हे राजन्! देवी परमा शक्ति हैं। इनके चरण-कमल दिव्य

रत्न हैं। वेदरूपी क्षीरसमुद्रका मन्थन करके इन्हें पा जानेके कारण मैं कृतार्थ हो गया ॥ ६ ॥ जब अन्य कोई भी देवता पञ्चब्रह्मके मञ्चपर बैठनेके लिये तैयार नहीं हो सका, तब महादेवीने उसपर बैठना स्वीकार कर लिया। एक समय ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और ईश्वर—ये चारों देवता खंभके रूपमें खड़े हुए। इनके ऊपर मञ्च तैयार हुआ। सदाशिव उन चारोंपर छप्पररूपसे विराजमान हुए—यही 'पञ्चब्रह्म-मञ्च' है ॥७॥ जो इन पाँचों देवताओंसे परेकी वस्तु है, उसे वेदमें 'अव्याकृत' कहते हैं। जिसमें सारा जगत् सूत्रमें मणियोंकी तरह ओतप्रोत है, उसी अव्याकृत शक्तिका नाम भगवती भुवनेश्वरी है ॥८॥ हे राजेन्द्र! उन भगवती भुवनेश्वरीके स्वरूपका ज्ञान प्राप्त किये बिना मनुष्य संसारसे मुक्त नहीं हो सकता। यदि मनुष्य चमड़ेकी तरह आकाशको समेट ले, तब भले ही यह सम्भव हो कि बिना भगवतीका ध्यान किये उसके दुःखोंका अन्त हो जायगा। श्वेताश्वतर-शाखाध्यायी महापुरुषोंने श्रुतिमें इस बातको स्पष्ट कर दिया है ॥ ९ ॥ १० ॥ ध्यान और जप करनेके पश्चात् उन पुरुषोंने परम दिव्य शक्ति भगवती जगदम्[illegible]जो अपने गुणोंसे सबके सामने व्यक्त नहीं होतीं, दर्शन प्राप्त किये थे।

रूढा नास्त्यन्या काऽपि देवता ॥ तत एव महादेव्या पंचब्रह्मासनं कृतम् ॥७॥ पंचभ्यस्त्वधिकं वस्तु वेदेऽव्यक्तमितीर्यते ॥ यस्मिन्नोतं च प्रोतं च सैव श्रीभुवनेश्वरी ॥ ८ ॥ तामविज्ञाय राजेंद्र नैव मुक्तो भवेन्नरः ॥ यदा चर्मवदाकाशं वेष्टयिष्यंति मानवाः ॥९॥ तदा शिवामविज्ञाय दुःखस्यांतो भविष्यति ॥ अतएव श्रुतौ प्राहुः श्वेताश्वतरशाखिनः ॥१०॥ ते ध्यानयोगानुगता अप[illegible]क स्वगुणैर्निगूढाम् ॥ तस्मात् सर्वप्रयत्नेन जन्मसाफल्यहेतवे ॥ ११ ॥ लज्जया वा भयेनापि भक्त्या वा प्रेमयुक्तया ॥ सर्वसं[illegible]त्यज्य मनो हृदि निरुध्य च ॥ १२ ॥ तन्निष्ठस्तत्परो भूयादिति वेदान्तडिंडिमः ॥ येन केन मिषेणापि स्वपंस्तिष्ठन्व्रजन्नपि ॥ १३ ॥ कीर्तयेत्सततं देवीं स वै मुच्येत बंधनात् ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन भज राजन्महेश्वरीम् ॥ १४ ॥ विराड्रूपां सूत्ररूपां तथांतर्यामिरूपिणीम् ॥ सोपानक्रमतः पूर्वं ततः शुद्धे तु चेतसि ॥ १५ ॥ सच्चिदानंदलक्ष्यार्थरूपां तां ब्रह्मरूपिणीम् ॥ आराधय परां शक्तिं प्रपंचोल्लासवर्जिताम् ॥ १६ ॥ तस्यां चित्तलयो यः स तस्या आराधनं स्मृतम् ॥ राजन्राज्ञां पराशक्तिभक्तानां चरितं मया ॥ १७ ॥ धार्मिकाणां सूर्यसोमवंशजानां मनस्विनाम् ॥ पावनं कीर्तिदं धर्मबुद्धिदं सद्गतिप्रदम् ॥ १८ ॥ कथितं पुण्यदं पश्चा-

अतः जन्म सफल करनेके लिए सम्यक् प्रकारसे प्रयत्न करके भगवती भुवनेश्वरीके ध्यानमें तत्पर हो जाना चाहिये ॥ ११ ॥ भय, भक्ति, लज्जा अथवा प्रेम—जिस किसी कारणसे भी इस कार्यमें लीन हो—यह वेदान्तकी स्पष्ट घोषणा है। जो जिस किसी भी बहाने सोते-बैठते अथवा चलते समय भगवतीका निरन्तर कीर्तन करता है, उसकी संसार-बन्धनसे मुक्ति हो जाती है। अतः हे राजन्! तुम भलीभाँति प्रयत्नशील होकर भगवती महेश्वरीकी उपासना करो ॥ १२--१४ ॥ भगवती परा शक्ति विराटरूप, सूत्ररूप, अन्तर्यामीरूप तथा सच्चिदानन्द ब्रह्मरूपसे विराजती हैं। अन्तःकरण शुद्ध हो जानेपर सोपानक्रमसे इनकी आराधना करो ॥ १५ ॥ ये भगवती जगदम्बा जगत्के प्रपञ्चसे आह्लादित नहीं होतीं। भगवतीमें चित्तको लीन करनेका जो कार्य है, वही उनकी 'आराधना' कहलाता है। हे राजन्! सूर्य और चन्द्रवंशमें उत्पन्न, भगवती परा शक्तिके उपासक, परम धार्मिक तथा मनस्वी जो राजे हो चुके हैं, उनका यह परम पावन चरित्र यश, धर्म, बुद्धि एवं पुण्य प्रदान करनेवाला है। मैंने इसका वर्णन कर दिया। इसके बाद तुम दूसरा कौन-सा प्रसंग सुनना चाहते हो? राजा जनमेजयने कहा—हे महामुने! तीसरे

स्कन्धके छठें अध्यायमें यह प्रसङ्ग आ चुका है कि मणिद्वीप-निवासिनी भगवती जगदम्बाने गौरी, लक्ष्मी और सरस्वतीको प्रकट करके उन्हें क्रमशः शंकर, विष्णु एवं ब्रह्माके पास रहनेकी आज्ञा प्रदान की। साथ ही यह भी कहने और सुननेमें आता है कि गौरी हिमालय तथा दक्ष-प्रजापतिकी कन्या हैं एवं महालक्ष्मी क्षीरसमुद्रकी। फिर मूलप्रकृति जगदम्बासे उत्पन्न इन देवियोंको दूसरोंकी कन्या होनेका अवसर कैसे प्राप्त हुआ? हे मुनिवर! इसका रहस्य बतलानेकी कृपा करें। यह बात मुझे असम्भव जान पड़ती है। अतः हे महामुने! मुझे सन्देह है। कृपया अपने ज्ञानरूपी खड्गसे इस संशयको काट दीजिए। क्योंकि आप मेरे संशयछेदनके लिए तत्पर हैं ॥१६-२२॥ व्यासजी कहते हैं—हे राजन्! सुनो, मैं यह परम अद्भुत रहस्य बतलाता हूँ। तुम भगवती जगदम्बाके अनन्य उपासक हो। अतः तुमसे भगवतीका कोई भी रहस्य छिपाने योग्य नहीं है ॥ २३ ॥ हे राजन्! जब भगवती जगदम्बाने तीनों देवियोंको तीनों देवताओंके पास रहनेकी व्यवस्था कर दी, तबसे वे देवता सृष्टिके कार्यमें संलग्न हो गये ॥ २४ ॥ हे मनुजेन्द्र! एक समयकी बात है कि

किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ जनमेजय उवाच ॥ गौरीलक्ष्मीसरस्वत्यो दत्ताः पूर्वं परांबया ॥ १९ ॥ हराय हरये तद्वन्नाभिपद्मोद्भवाय च ॥ तुषाराद्रेश्च दक्षस्य गौरी कन्येति विश्रुतम् ॥ २० ॥ क्षीरोदधेश्च कन्येति महालक्ष्मीरिति स्मृतम् ॥ मूलदेव्युद्भवानां च कथं कन्यात्वमन्ययोः ॥ २१ ॥ असंभाव्यमिदं भाति संशयोऽत्र महामुने ॥ छिंधि ज्ञानासिना तं त्वं संशयच्छेदतत्परः ॥ २२ ॥ व्यास उवाच ॥ शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि रहस्यं परमाद्भुतम् ॥ देवीभक्तस्य ते किंचिदवाच्यं न हि विद्यते ॥२३॥ देवीत्रयं यदा देवत्रयायादात्परांबिका ॥ तदाप्रभृति ते देवाः सृष्टिकार्याणि चक्रिरे ॥२४॥ कस्मिंश्चित्समये राजन्दैत्या हालाहलाभिधाः ॥ महापराक्रमा जातास्त्रैलोक्यं तैर्जितं क्षणात् ॥ २५ ॥ ब्रह्मणो वरदानेन दर्पिता रजताचलम् ॥ रुरुधुर्निजसेनाभिस्तथा वैकुण्ठमेव च ॥ २६ ॥ कामारिः कैटभारिश्च युद्धोद्योगं च चक्रतुः [illegible] सहस्रणामभूद्युद्धं महोत्कटम् ॥ २७ ॥ हाहाकारो महानासीद्देवदानवसेनयोः ॥ महताऽथ प्रयत्नेन ताभ्यां ते दानवा हताः ॥ २८ ॥ स्वस्वस्थानेषु गत्वा तावभिमानं च चक्रतुः ॥ स्वशक्त्योर्निकटे राजन्यद्वशादेव ते हताः ॥ २९ ॥ अभिमानं तयोर्ज्ञात्वा छलहास्यं च चक्रतुः ॥ महालक्ष्मीश्च गौरी च हास्यं दृष्ट्वा तयोस्तु तौ ॥ ३० ॥ देवावतीव संक्रुद्धौ मोहितावादिमायया ॥ दुरुत्तरं च ददतुरवमानपुरःसरम् ॥ ३[illegible] ततस्ते देवते तस्मिन्क्षणे त्यक्त्वा तु तौ पुनः ॥ अंतर्हिते

हालाहल नामसे प्रसिद्ध बहुतसे दैत्य उत्पन्न हुए। उन दैत्योंमें अपार बल था। उन्होंने क्षणभरमें ही त्रिलोकीपर विजय प्राप्त कर ली ॥२५॥ ब्रह्माजीसे वर पाकर वे अत्यन्त अभिमानी हो गये थे। बादमें उन्होंने अपने सैनिकोंके साथ कैलास और वैकुण्ठको घेर लिया ॥२६॥ तब भगवान् शंकर और विष्णु उनसे युद्ध करनेके लिये प्रस्तुत हो गये और बहुत लम्बे समयतक बड़ी तेजीके साथ युद्ध होता रहा ॥ २७ ॥ देवता और दानव—दोनोंकी सेनामें अत्यन्त हाहाकार मच गया। तब अत्यन्त प्रयत्न करनेपर भगवान् शंकर और विष्णु उन दानवोंको मारनेमें सफल हुए ॥ २८ ॥ हे राजन्! महाशक्तिके प्रभावसे ही उन्होंने दानवोंको मारा था, परन्तु वे अपने-अपने घर जाकर शक्तिकी अवहेलना करने लगे ॥२९॥ तब महागौरी तथा महालक्ष्मी दोनोंको हँसी आ गयी। इससे दोनों महान् ईश्वरोंको देवियोंका अभिमान देखकर क्रोध आ गया। जिससे उन्होंने अवहेलनापूर्वक अटपटे उत्तर दिये ॥ ३० ॥ ३१ ॥ उसी क्षण गौरी और

महालक्ष्मी दोनों महाशक्तियाँ शंकर और विष्णुसे अलग होकर अन्तर्धान हो गयीं। शक्तियोंके हटते ही चारों ओर हाहाकार मच गया ॥३२॥ वे दोनों प्रधान देवता शक्ति और तेजसे हीन होनेके कारण विक्षिप्त और अचल हो गये। उनमें कुछ सोचने और विचारनेकी शक्ति भी नहीं रही ॥ ३३ ॥ तब ब्रह्माजी चिन्तासे अधीर हो गये और सोचने लगे कि यह क्या हो गया ? वे दोनों प्रधान देवता इस प्रकार कार्य करनेमें असमर्थ क्यों हो गये ? ॥३४॥ सहसा क्यों इतना बड़ा संकट आ उपस्थित हुआ ? क्या इस निरपराध संसारका प्रलय हो जायगा ? ॥ ३५ ॥ ॥ जब कोई कारण ही नहीं दीखता, तब इसका प्रतीकार कैसे किया जाय ? तब घबराकर उन्होंने आँखें बन्द करके ध्यान किया ॥ ३६ ॥ अब यह बात उनकी समझमें आ गयी कि यह परा शक्तिके कोपका परिणाम है। हे राजेन्द्र ! इस अभिप्रायको जानते ही ब्रह्माजी सावधान हो गये ॥३७॥ तबसे भगवान् शंकर और विष्णुका जो कार्य था, उसकी सँभाल स्वयं ब्रह्माजीने अपने हाथमें ले ली। अपनी शक्तिके बलसे सम्पन्न होकर कुछ समयतक वे इस कार्यको सँभालते रहे ॥ ३८ ॥ तदनन्तर शंकर और विष्णुके कल्याणार्थ धर्मात्मा ब्रह्माजीने अपने

चाभवतां हाहाकारस्तदा ह्यभूत् ॥३२॥ निस्तेजस्कौ च निःशक्ती विक्षिप्तौ च विचेतनौ ॥ अवमानात्तयोः शक्त्योर्जातौ हरिहरौ तदा ॥ ३३ ॥ ब्रह्मा चिन्तातुरो जातः किमेतत्समुपस्थितम् ॥ प्रधानौ देवतामध्ये कथं कार्याक्षमावमू ॥३४॥ अकाण्डे किंनिमित्तेन संकटं समुपस्थितम् ॥ प्रलयो भविता किं वा जगतोऽस्य निरागसः ॥ ३५ ॥ निमित्तं नैव जानेऽहं कथं कार्या प्रतिक्रिया ॥ इति चिंतातुरोऽत्यर्थं दध्यौ मीलितलोचनः ॥३६॥ पराशक्तिप्रकोपात्तु जातमेतदिति स्म ह ॥ जानंस्तदा सावधानः पद्मजोऽभून्नृपोत्तम ॥ ३७ ॥ तस्तयोश्च यत्कार्यं स्वयमेवाकरोत्तदा ॥ स्वशक्तेश्च प्रभावेण कियत्कालं तपोनिधिः ॥ ३८ ॥ ततस्तयोस्तु स्वस्त्यर्थं मन्वादीन्स्वसुतानथ ॥ आह्वयामास धर्मात्मा सनकादींश्च सत्वरः ॥ ३९ ॥ उवाच वचनं तेभ्यः सन्नतेभ्यस्तपोनिधिः ॥ कार्यासक्तोऽहमधुना तपः कर्तुं न च क्षमः ॥४०॥ पराशक्तेस्तु तोषार्थं जगद्भारयुतोऽस्म्यहम् ॥ शिव-विष्णू च विक्षिप्तौ पराशक्तिप्रकोपतः ॥ ४१ ॥ तस्मात्तां परमां शक्तिं यूयं संतोषयंत्वथ ॥ अत्यद्भुतं तपः कृत्वा भक्त्या परमया युताः ॥ ४२ ॥ यथा तौ पूर्ववृत्तौ च स्यातां शक्तियुतावपि ॥ तथा कुरुत मत्पुत्रा यशोवृद्धिर्भवेद्धि वः ॥ ४३ ॥ कुले यस्य भवेज्जन्म तयोः शक्त्योस्तु तत्कुलम् ॥ पावयेज्जगतीं सर्वां कृतकृत्यं स्वयं भवेत् ॥ ४४ ॥ व्यास उवाच ॥ पितामहवचः श्रुत्वा गताः सर्वे

पुत्र मनु और सनक आदिको बुलाया। तभी सभी कुमार मस्तक झुकाये हुए सामने आकर खड़े हो गये ॥३९॥ तपोनिधि ब्रह्माजीने उनसे कहा—'इस समय मैं बहुतसे कार्योंमें व्यस्त हूँ। परमेश्वरीको संतुष्ट करनेके लिये तपस्या करनेकी क्षमता मुझमें नहीं है ॥४०॥ जगत्का सम्पूर्ण भार मुझपर लदा है। कारण, इस समय भगवती पराशक्ति परमेश्वरीके कोपके कारण शिव और विष्णुमें विक्षिप्तता आ गयी है ॥ ४१ ॥ अतएव परम भक्तिके साथ अद्भुत तप करके तुम उस पराशक्तिको प्रसन्न करो ॥४२॥ हे पुत्रो ! जैसे भी शिव और विष्णु अपनी शक्तियोंसे सम्पन्न हो सकें, तुम्हें वैसा ही उद्योग करना चाहिये। इससे जगत्में तुम्हारा यश फैलेगा ॥ ४३ ॥ जिस कुलमें महागौरी और महालक्ष्मी—ये दो शक्तियाँ जन्म लेंगी, वह कुल स्वयं कृतकृत्य होनेके साथ ही समस्त संसारको भी पावन बना सकता है ॥ ४४ ॥ व्यासजी कहते हैं—हे राजन् ! पितामह ब्रह्माजीकी बात सुनकर उनके दक्ष प्रभृति जितने परम पवित्र पुत्र थे, वे सबके

सब भगवती जगदम्बाकी आराधना करनेके लिये वनमें चले गये ॥४५॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृत 'पीताम्बरा' भाषाटीकायामेकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥२९॥

(सिद्धपीठ और वहाँ विराजनेवाली शक्तियोंकी नामावली) व्यासजी कहते हैं--हे राजन्! चतुर्मुख ब्रह्माकी आज्ञा पाकर वनमें गये हुए मुनिगण हिमालयके तटपर पहुँचे और चित्तको शान्त करके मायाबीज स्वरूप भगवती भुवनेश्वरीके मन्त्रका जप करते हुए तप करने लगे ॥ १ ॥ हे राजन्! उनके ध्यानका विषय भगवती परमा शक्ति थीं। एक लाख वर्षतक ध्यान करनेसे भगवती प्रसन्न होकर उनके सामने साक्षात् प्रकट हो गयीं ॥ २ ॥ पाश, अंकुश, वर और अभयमुद्राको उन्होंने अपने चारों हाथोंमें धारण कर रखा था। उनके नेत्र शोभा बढ़ा रहे थे। करुणाके रससे वे परिपूर्ण थीं। उनका विग्रह सत्, चित् और आनन्दमय था ॥ ३ ॥ सम्पूर्ण जगत्को उपन्न करनेवाली परमेश्वरीको देखकर पवित्र अन्तःकरणवाले वे मुनि उनकी स्तुति करने लगे—'हे देवी! तुम विश्वरूपा, वैश्वानररूपा, तेजोरूपा और सूत्ररूपा हो, तुम्हें नमस्कार है। तुम्हारा वह दिव्यरूप है, जिसमें समस्त लिङ्गदेह ओतप्रोत

वनांतरे ॥ रिराधयिषवः सर्वे दक्षाद्या विमलांतराः ॥ ४५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

॥ व्यास उवाच ॥ ततस्ते तु वनोद्देशे हिमाचलतटाश्रयाः ॥ मायाबीजजपासक्तास्तपश्चेरुः समाहिताः ॥ १ ॥ ध्यायतां परमां शक्तिं लक्षवर्षाण्यभून्नृप ॥ ततः प्रसन्ना देवी सा प्रत्यक्षं दर्शनं ददौ ॥ २ ॥ पाशांकुशवराभीतिचतुर्बाहुस्त्रिलोचना ॥ करुणारससम्पूर्णा सच्चिदानन्दरूपिणी ॥ ३ ॥ दृष्ट्वा तां सर्वजननीं तुष्टुवुर्मुनयोऽमलाः ॥ नमस्ते विश्वरूपायै वैश्वानरसुमूर्तये ॥ ४ ॥ नमस्तेजसरूपायै सूत्रात्मवपुषे नमः ॥ यस्मिन्सर्वे लिंगदेहा ओतप्रोता व्यवस्थिताः ॥ ५ ॥ नमः प्राज्ञस्वरूपायै नमोऽव्याकृतमूर्तये ॥ नमः प्रत्यक्स्वरूपायै नमस्ते ब्रह्ममूर्तये ॥६॥ नमस्ते सर्वरूपायै सर्वलक्ष्यात्ममूर्तये ॥ इति स्तुत्वा जगद्धात्रीं भक्तिगद्गदया गिरा ॥७॥ प्रणेमुश्चरणांभोजं दक्षाद्या मुनयोऽमलाः ॥ ततः प्रसन्ना सा देवी प्रोवाच पिकभाषिणी ॥ ८ ॥ वरं ब्रूत महाभागा वरदाऽहं सदा मता ॥ तस्यास्तु वचनं श्रुत्वा हरिविष्णवोस्तनोः शमम् ॥९॥ तयोस्तच्छक्तिलाभं च वव्रिरे नृपसत्तम ॥ दक्षोऽथ पुनरप्याह जन्म देवि कुले मम ॥ १० ॥ भवेत्तवाम्ब येनाहं कृतकृत्यो भवे इति ॥ जपं ध्यानं तथा पूजां स्थानानि विविधानि च ॥ ११ ॥ वद मे परमेशानि स्वमुखेनैव केवलम् ॥ देव्युवाच ॥ मच्छक्त्योरवमानाच्च जातावस्था तयोर्द्वयोः ॥१२॥ नैतादृशः प्रकर्तव्यो

होकर व्यवस्थित हैं ॥ ४ ॥ ५ ॥ प्राज्ञ, अव्याकृत, प्रत्यक् और परब्रह्मके स्वरूपको धारण करनेवाली हे देवी! तुम्हें बार-बार प्रणाम है ॥ ६ ॥ सर्वरूप और सर्वलक्ष्मीरूपमें शोभा पानेवाली तुम भगवतीको प्रणाम है।' इस प्रकार भक्तिपूर्वक गद्गद वाणीसे भगवती जगदम्बाकी स्तुति करके दक्षप्रभृति पुण्यात्मा मुनिगण देवीके चरण-कमलमें मस्तक झुकाये रहे। तब कोयलके समान मधुर वचन बोलनेवाली देवीने प्रसन्न होकर उनसे कहा—॥ ७ ॥ ८ ॥ हे महाभाग मुनियो! वर माँगो, मैं सदा वर देनेके लिये तैयार रहती हूँ। हे राजेन्द्र! भगवतीकी अमर वाणी सुनकर मुनियोंने कहा— हे देवी! आप यह कृपा करें कि जिससे शंकर तथा विष्णु इन महाभाग देवताओंको अपनी शक्तियाँ पुनः प्राप्त हो जायँ। फिर दक्षने प्रार्थना की—हे देवि! हे अम्बे! मेरे कुलमें तुम्हारा अवतार होना चाहिये, जिससे मैं कृतकृत्य हो जाऊँ। हे भगवती परमेश्वरी! तुम अपने मुखसे केवल जप, ध्यान, पूजा और अपने विविध स्थानों-

का परिचय देनेकी कृपा करो।' देवीने कहा—मेरी शक्तियोंका अपमान करनेसे ही शिव और विष्णुको ऐसी अप्रिय परिस्थिति प्राप्त हुई है ॥ ९–१२ ॥ इस प्रकार शक्तिरूपा मेरा अपराध कभी नहीं करना चाहिये। अच्छा, अब मेरी किंचित् कृपासे उनमें स्वस्थता और शक्ति आ जायगी ॥ १३ ॥ गौरी और लक्ष्मी नामक मेरी शक्तियोंका तुम्हारे एवं क्षीरसागरके यहाँ जन्म होगा। मेरे प्रेरणा करनेपर वे शक्तियाँ तुम दोनोंके पास चली जायँगी ॥ १४ ॥ मुझे सदा प्रसन्न करनेवाला मायाबीज ही मेरा प्रधान मन्त्र है। मेरे विराट् रूपका अथवा तुम्हारे सामने उपस्थित इस रूपका या सच्चिदानन्दमय रूपका ध्यान करना चाहिये ॥ १५ ॥ मेरी पूजा करनेके लिए उपयुक्त स्थान सारा जगत् ही है। तुम्हें चाहिये कि मेरी पूजा और ध्यानमें सदा संलग्न रहो ॥१६॥ व्यासजी कहते हैं–हे राजन्! यों कहकर मणिद्वीपमें विराजनेवाली भगवती जगदम्बा अन्तर्धान हो गयीं। तब दक्ष प्रभृति सभी मुनिगण ब्रह्माजीके पास लौट आये और उनको सम्मानपूर्वक सारा समाचार बतला दिया। हे राजन्! तब भगवान् विष्णु और शिव स्वस्थ हो गये। उनको अपने-अपने कार्यके सम्पादनकी शक्ति एवं योग्यता पुनः प्राप्त हो गयी

मेऽपराधः कदाचन ॥ अधुना मत्कृपालेशाच्छरीरे स्वस्थता तयोः ॥ १३ ॥ भविष्यति च ते शक्ती त्वद्गृहे क्षीरसागरे ॥ जनिष्यतस्तत्र ताभ्यां प्राप्स्यतः प्रेरिते मया ॥१४॥ मायाबीजं हि मन्त्रो मे मुख्यः प्रियकरः सदा ॥ ध्यानं विराट्स्वरूपं मेऽथवा त्वत्पुरतः स्थितम् ॥१५॥ सच्चिदानन्दरूपं वा स्थानं सर्वं जगन्मम ॥ युष्माभिः सर्वदा चाहं पूज्या ध्येया च सर्वदा ॥ १६ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्त्वांतर्दधे देवी मणिद्वीपाधिवासिनी ॥ दक्षाद्या मुनयः सर्वे ब्रह्माणं पुनराययुः ॥ १७ ॥ ब्रह्मणे सर्ववृत्तांतं कथयामासुरादरात् ॥ हरो हरिश्च स्वस्थौ तौ स्वस्वकार्यक्षमौ नृप ॥ १८ ॥ जातौ परांबाकृपया गर्वेण रहितौ तदा ॥ कदाचिदथ काले तु महः शाक्तमवातरत् ॥१९॥ दक्षगेहे महाराज त्रैलोक्येऽप्युत्सवोऽभवत् ॥ देवाः प्रमुदिताः सर्वे पुष्पवृष्टिं च चक्रिरे ॥ २० ॥ नेदुर्दुन्दुभयः स्वर्गे करकोणाहता नृप ॥ मनांस्यासन्प्रसन्नानि साधूनाममलात्मनाम् ॥ २१ ॥ सरितो मार्गवाहिन्यः सुप्रभोऽभूद्दिवाकरः ॥ मंगलायां तु जातायां जातं सर्वत्र मङ्गलम् ॥२२॥ तस्या नाम सतीं चक्रे सत्यत्वात्परसंविदः ॥ ददौ पुनः शिवायाथ तस्य शक्तिस्तु याऽभवत् ॥२३॥ सा पुनर्ज्वलने दग्धा दैवयोगान्मनोर्नृप ॥ जनमेजय उवाच ॥ अनर्थकरमेतत्ते श्रावितं वचनं

और उनकी कृपासे वे दोनों गर्वशून्य हो गये। हे महाराज! उसके बाद कुछ समय बीत जानेके पश्चात् भगवती जगदम्बाकी एक ज्योतिने दक्षके घर अवतार लिया। उस समय तीनों लोकोंमें बधाई बजने लगी। सम्पूर्ण देवता प्रसन्न होकर पुष्पोंकी वर्षा करने लगे ॥ १७–२० ॥ हे राजन्! स्वर्गके देवताओंने दुन्दुभियाँ बजानी आरम्भ कर दीं। पवित्र अन्तःकरणवाले साधुपुरुषोंका मन प्रसन्नतासे खिल उठा ॥ २१ ॥ नदियाँ निर्मल जलकी धारा बहाने लगीं। भगवान् भास्कर शुद्धरूपसे प्रकाश फैलाने लगे। मङ्गलमयी भगवतीके प्रकट होनेपर सम्पूर्ण जगत् मङ्गलमय हो गया ॥२२॥ परब्रह्मस्वरूपिणी भगवती जगदम्बाके सत्यांश होनेसे उन देवीका नाम 'सती' रख दिया गया। समयानुसार वे सती शिवकी पत्नी बनीं। क्योंकि पहले भी वे उनकी शक्ति रह चुकी थीं ॥२३॥ हे राजन्! दैवके प्रभावसे प्रभावित होकर सतीने अपने शरीरको दक्षके यज्ञमण्डपकी प्रज्वलित अग्निमें भस्म कर दिया। जनमेजयने कहा–हे मुने!

यह बड़ा ही अप्रिय प्रसंग आपने सुनाया ॥ २४ ॥ भला, जिनके नाम-स्मरणमात्रसे मनुष्य लौकिक अग्निके भयसे मुक्त हो जाते हैं, वैसी वे परम विभूति सती अग्निमें कैसे भस्म हो गयीं ? ॥ २५ ॥ किस प्रतिकूल कर्मके प्रभावसे दक्ष प्रजापतिके यहाँ ऐसी दुर्घटना घटी ? व्यासजी बोले—हे राजन् ! सतीके भस्म होनेका कारण सुनो। यह कथा बहुत प्राचीन है ॥ २६ ॥ एक समयकी बात है—मुनिवर दुर्वासा जम्बूनदके तटपर विराजनेवाली प्रधान देवता भगवती जगदम्बाके पास गये। वहाँ मुनिको भगवतीके साक्षात् दर्शन मिले। इसके बाद वे मायाबीज नामक मन्त्रका जप करने लगे ॥२७ ॥ इससे देवेश्वरीने प्रसन्न होकर मुनिको अपने गलेकी पुष्पमाला प्रसादस्वरूप दे दी। दिव्य पुष्पोंके परागसे परिपूर्ण होनेके कारण उस मालापर भ्रमर मँड़राते हुए गुनगुना रहे थे ॥ २८ ॥ मुनिने उस मालाको सिर झुकाकर ले लिया। इसके बाद वे परम तपस्वी मुनि वहाँसे तुरन्त निकले और आकाशमार्गसे होते हुए जहाँ सतीके पिता दक्ष प्रजापति विराजमान थे, देवीके दर्शनको वे वहाँ जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने भगवती सतीके चरणोंकी वन्दना की ॥ २९ ॥ ३० ॥ उस समय दक्षने मुनिसे पूछा—

मुने ॥ २४ ॥ एतादृशं महद्वस्तु कथं दग्धं हुताशने ॥ यन्नामस्मरणान्नृणां संसाराग्निभयं न हि ॥ २५ ॥ केन कर्मविपाकेन मनोर्दग्धं तदेव हि ॥ व्यास उवाच ॥ शृणु राजन्पुरा वृत्तं सतीदाहस्य कारणम् ॥२६॥ कदाचिदथ दुर्वासा गतो जांबूनदेश्वरीम् ॥ ददर्श देवीं तत्रासौ माया-बीजं जजाप सः ॥ २७ ॥ ततः प्रसन्ना देवेशी निजकण्ठगतां स्रजम् ॥ भ्रमद्भ्रमरसंसक्तां मकरंदमदाकुलाम् ॥ २८ ॥ ददौ प्रसादभूतां तां जग्राह शिरसा मुनिः ॥ ततो निर्गत्य तरसा व्योममार्गेण तापसः ॥ २९ ॥ आजगाम स यत्रास्ते दक्षः साक्षात्सतीपिता ॥ संदर्शनार्थमम्बाया ननाम च सतीपदे ॥ ३० ॥ पृष्टो दक्षेण स मुनिर्माला कस्यास्त्यलौकिकी ॥ कथं लब्धा त्वया नाथ दुर्लभा भुवि मानवैः ॥३१॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य प्रोवाचाश्रुयुतेक्षणः ॥ देव्याः प्रसादमतुलं प्रेमगद्गदितान्तरः ॥३२॥ प्रार्थयामास तां मालां तं मुनिं स सतीपिता ॥ अदेयं शक्तिभक्ताय नास्ति त्रैलोक्यमंडले ॥ ३३ ॥ इति बुद्ध्या तु तां मालां मनवे स समर्पयत् ॥ गृहीता शिरसा माला मनुना निजमंदिरे ॥ ३४ ॥ स्थापिता शयनं यत्र दंपत्योरतिसुन्दरम् ॥ पशुकर्मरतो रात्रौ मालागंधेन मोदितः ॥ ३५ ॥ अभवत्स महीपालस्तेन पापेन शङ्करे ॥ शिवे द्वेषमतिर्जातो देव्यां सत्यां

हे प्रभो ! यह दिव्य माला किसकी है ? जगत्के मनुष्योंके लिये यह परम दुर्लभ माला आपने कैसे प्राप्त कर ली ?' ॥ ३१ ॥ दक्ष प्रजापतिका यह वचन सुनकर मुनिवर दुर्वासाकी आँखें आँसुओंसे भर गयीं। प्रेमसे उनका हृदय विह्वल हो उठा। उन्होंने उत्तर दिया—'भगवती जगदम्बाका यह अनुपम प्रसाद है।' ॥ ३२ ॥ तब सतीके पिता दक्षने मुनिसे प्रार्थना की—'यह माला मुझे दे देनेकी कृपा कीजिये।' त्रिलोकीमें कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है, जो भगवती जगदम्बाके उपासकको न दी जा सके—यों विचारकर मुनिने वह पुष्पहार दक्षको दे दिया। दक्षने सिर झुकाकर माला ले ली। तदनन्तर अन्तःपुरमें पति-पत्नीके आनन्दके लिये जो अत्यन्त सुन्दर शय्या बिछी थी, उसपर उन्होंने उस मालाको रख दिया और उसकी सुगन्धिसे मस्त होकर उसी शय्यापर रात्रिके समय उन्होंने स्त्री-समागम किया ॥ ३३—३५ ॥ हे राजन् ! इस पापकर्मके प्रभावसे भगवान् शंकर तथा देवी सतीके प्रति दक्षके मनमें द्वेष उत्पन्न हो गया

॥ ३६ ॥ हे मनुजेन्द्र ! उस अपराधका परिणाम यह हुआ कि सतीने सतीधर्मको प्रदर्शित करनेके लिए दक्षसे उत्पन्न अपने शरीरको योगाग्निमें भस्म कर दिया ॥ ३७ ॥ फिर वही ज्योति हिमालयके घर प्रकट हुई । जनमेजयने पूछा–हे मुने ! जो प्राणोंसे भी अधिक प्रिय थीं, उन सतीके भस्म हो जानेपर उनके वियोगसे कातर होकर भगवान् शिवने क्या किया ? व्यासजी बोले–हे राजन् ! इसके उपरान्त जो कुछ हुआ, उसे पूर्णरूपसे कहनेमें मैं असमर्थ हूँ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ भगवान् शंकरकी कोपाग्निने त्रिलोकीमें प्रलय मचा दिया । जब वीरभद्र प्रकट हुए और भद्रकालीको साथ लेकर तीनों लोकोंको नष्ट करनेके लिए प्रस्तुत हो गये, तब ब्रह्मादि देवताओंने भगवान् शंकरकी शरण ली ॥ ४० ॥ ४१ ॥ दक्षको मार दिया गया था और उनका यज्ञ सब प्रकारसे नष्ट हो गया था । तब करुणाके सागर भगवान् शिवने देवताओंको अभय प्रदान किया । साथ ही बकरेका सिर जोड़कर दक्षके जीवित होनेकी व्यवस्था कर दी

तथा नृप ॥ ३६ ॥ राजंस्तेनापराधेन तज्जन्यो देह एव च ॥ सत्या योगाग्निना दग्धः सतीधर्मदिदृक्षया ॥ ३७ ॥ पुनश्च हिमवत्पृष्ठे प्रादुरासीत्तु तन्महः ॥ जनमेजय उवाच ॥ दह्यमाने सतीदेहे जाते किमकरोच्छिवः ॥३८॥ प्राणाधिका सती तस्य तद्वियोगेन कातरः ॥ व्यास उवाच ॥ ततः परं तु यज्जातं मया वक्तुं न शक्यते ॥३९॥ त्रैलोक्यप्रलयो जातः शिवकोपाग्निना नृप ॥ वीरभद्रः समुत्पन्नो भद्रकालीगणान्वितः ॥ ४० ॥ त्रैलोक्यनाशनोद्युक्तो वीरभद्रो यदाऽभवत् ॥ ब्रह्मादयस्तदा देवाः शङ्करं शरणं ययुः ॥ ४१ ॥ जाते सर्वस्वनाशेऽपि करुणानिधिरीश्वरः ॥ अभयं दत्तवांस्तेभ्यो वस्तवक्त्रेण तं मनुम् ॥४२॥ अजीवयन्महात्माऽसौ ततः खिन्नो महेश्वरः ॥ यज्ञवाटमुपागम्य रुरोद भृशदुःखितः ॥४३॥ अपश्यत्तां सतीं वह्नौ दह्यमानां तु चित्कलाम् ॥ स्कन्धेऽप्यारोपयामास हा सतीति वदन्मुहुः ॥४४॥ बभ्राम भ्रांतचित्तः सन्नानादेशेषु शंकरः ॥ तदा ब्रह्मादयो देवाश्चिंतामापुरनुत्तमाम् ॥४५॥ विष्णुस्तु त्वरया तत्र धनुरुद्यम्य मार्गणैः ॥ चिच्छेदावयवान्सत्यास्तत्तत्स्थानेषु तेऽपतन् ॥ ४६ ॥ तत्तत्स्थानेषु तत्रासीन्नानामूर्तिधरो हरः ॥ उवाच च ततो देवान्स्थानेष्वेतेषु ये शिवाम् ॥ ४७ ॥ भजंति परया भक्त्या तेषां किंचिन्न दुर्लभम् ॥ नित्यं सन्निहिता यत्र निजांगेषु परांबिका ॥ ४८ ॥ स्थानेष्वेतेषु ये मर्त्याः पुरश्चरणकर्मिणः ॥ तेषां मंत्राः प्रसिध्यंति मायाबीजं विशेषतः ॥४९॥ इत्यु-

॥ ४२ ॥ तत्पश्चात् वे महात्मा महेश्वर अत्यन्त उदास होकर यज्ञ-स्थलपर गये। उन्होंने देखा, सतीका चिन्मय शरीर अग्निमें जल गया था । तब 'हा सती !' इस शब्दको बार-बार दुहराते हुए शिवने उस शरीरको उठाकर अपने कन्धेपर रख लिया और पागल जैसे होकर वे देश-देशमें भटकने लगे । इससे ब्रह्मा आदि देवताओंके मनमें अत्यन्त चिन्ता व्याप्त हो गयी ॥ ४३-४५ ॥ उस समय भगवान् विष्णुने तुरन्त धनुष उठाया और भगवती सतीके अङ्गोंको काट डाला । जिससे वे अङ्ग विभिन्न स्थानोंपर गिरे ॥४६॥ तदनन्तर जहाँ कहीं भी वे शरीरके टुकड़े गिरे थे, वहीं शंकरजीकी अनेक मूर्तियाँ प्रकट हो गयीं । तब शिवने देवताओंसे कहा–'जो इन स्थानोंपर उत्तम भक्तिके साथ भगवती शिवाकी उपासना करेंगे, उनके लिये कुछ भी दुर्लभ नहीं रहेगा । क्योंकि जहाँ सतीने अपने अङ्ग त्यागे हैं, वहाँ जगदम्बा निरन्तर वास करेंगी ॥४७॥४८॥ इन स्थानोंमें रहकर जो मनुष्य पुरश्चरण करेंगे, उनके मन्त्र सिद्ध होनेमें कोई सन्देह नहीं है ।

ये स्थान मायाबीज मन्त्र-जपके लिये विशेष उपयोगी हैं ॥ ४९ ॥ हे राजेन्द्र ! ऐसा कहकर भगवान् शंकरने सतीके विरहसे अधीर हो उन-उन स्थानोंमें जप, ध्यान और समाधिमें संलग्न होकर समय व्यतीत किया ॥ ५० ॥ जनमेजयने पूछा—हे अनघ ! वे सिद्धपीठ कौन-कौनसे हैं, कितने हैं और उनके क्या नाम हैं ? मुझे बतानेकी कृपा कीजिये ॥ ५१ ॥ हे दयासिन्धो ! हे महामुने ! उन स्थानोंपर विराजनेवाली देवियोंके नाम भी कृपया बता दें, जिससे मैं कृतार्थ हो सकूँ ॥ ५२ ॥ व्यासजी कहते हैं—हे राजन् ! सुनो, मैं अब देवीपीठोंका परिचय देता हूँ, जिनके श्रवणमात्रसे मनुष्य पापमुक्त हो जाता है ॥ ५३ ॥ जिन-जिन पीठोंमें सिद्धि चाहनेवाले पुरुषोंके द्वारा देवीकी उपासना तथा ऐश्वर्य चाहनेवालोंके द्वारा ध्यान होना चाहिये,, उन स्थानोंको मैं तत्त्वपूर्वक बताता हूँ ॥ ५४ ॥ वाराणसीमें गौरीका मुख गिरा था। अतएव उस पीठस्थानमें रूप धारण करनेवाली देवीका नाम 'विशालाक्षी' है। नैमिषारण्य क्षेत्रमें विराजमान देवी 'लिङ्गधारिणी' नामसे प्रसिद्ध हुई ॥ ५५ ॥ उन देवीको प्रयागमें 'ललिता', गन्धमादन पर्वतपर 'कामुकी', मानसरोवरमें

क्त्वा शंकरस्तेषु स्थानेषु विरहातुरः ॥ कालं निन्ये नृपश्रेष्ठ जपध्यानसमाधिभिः ॥५०॥ जनमेजय उवाच ॥ कानि स्थानानि तानि स्युः सिद्धपीठानि चानघ ॥ कतिसंख्यानि नामानि कानि तेषां च मे वद ॥५१॥ तत्र स्थितानां देवीनां नामानि च कृपाकर ॥ कृतार्थोऽहं भवे येन तद्वदाशु महामुने ॥५२॥ ॥ व्यास उवाच ॥ शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि देवीपीठानि सांप्रतम् ॥ येषां श्रवणमात्रेण पापहीनो भवेन्नरः ॥५३॥ येषु येषु च पीठेषूपास्येयं सिद्धिकांक्षिभिः ॥ भूतिकामैरभिध्येया तानि वक्ष्यामि तत्त्वतः ॥५४॥ वाराणस्यां विशालाक्षी गौरीमुखनिवासिनी ॥ क्षेत्रे वै नेमिषारण्ये प्रोक्ता सा लिंगधारिणी ॥५५॥ प्रयागे ललिता प्रोक्ता कामुकी गंधमादने ॥ मानसे कुमुदा प्रोक्ता दक्षिणे चोत्तरे तथा ॥ ५६ ॥ विश्वकामा भगवती विश्वकामप्रपूरणी ॥ गोमन्ते गोमती देवी मन्दरे कामचारिणी ॥५७॥ मदोत्कटा चैत्ररथे जयन्ती हस्तिनापुरे ॥ गौरी प्रोक्ता कान्यकुब्जे रम्भा तु मलयाचले ॥५८॥ एकाम्रपीठे सम्प्रोक्ता देवी सा कीर्तिमत्यपि ॥ विश्वे विश्वेश्वरीं प्राहुः पुरुहूतां च पुष्करे ॥५९॥ केदारपीठे सम्प्रोक्ता देवी सन्मार्गदायिनी ॥ मन्दा हिमवतः पृष्ठे गोकर्णे भद्रकर्णिका ॥ ६० ॥ स्थानेश्वरी भवानी तु बिल्वके बिल्वपत्रिका ॥ श्रीशैले माधवी प्रोक्ता भद्रा भद्रेश्वरे तथा ॥ ६१ ॥ वाराहशैले तु जया कमला कमलालये ॥ रुद्राणी रुद्रकोट्यां तु काली कालंजरे तथा ॥ ६२ ॥ शालग्रामे महादेवी शिवलिंगे जलप्रिया ॥ महालिंगे

'कुमुदा', दक्षिणमें 'विश्वकामा' तथा उत्तरमें भगवतीको 'विश्वकामप्रपूरणी' कहते हैं। गोमन्तपर 'गोमती' तथा मन्दराचलपर वे 'कामचारिणी' नामसे विख्यात हैं ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ चैत्ररथमें देवीको 'मदोत्कटा', हस्तिनापुरमें 'जयन्ती', कान्यकुब्जमें 'गौरी' तथा मलयाचलपर 'रम्भा' कहा गया है ॥५८॥ एकाम्रपीठपर वे 'कीर्तिमती' कहलाती हैं। विश्वपीठमें वे 'विश्वेश्वरी' तथा पुष्करमें 'पुरुहूता' नामसे विख्यात हुई ॥ ५९ ॥ केदारपीठमें 'सन्मार्गदायिनी', हिमवान्पीठमें 'मन्दा' तथा गोकर्णपीठमें 'भद्रकर्णिका'—ये नाम देवीके हुए हैं ॥ ६० ॥ स्थानेश्वर पीठमें 'भवानी', बिल्वकपीठमें 'बिल्वपत्रिका', श्रीशैलपर 'माधवी' तथा भद्रेश्वरमें 'भद्रा' नामसे देवीकी प्रसिद्धि है ॥ ६१ ॥ वराहपर्वतपर 'जया', कमलालया पीठमें 'कमला', रुद्रकोटिमें 'रुद्राणी' तथा कालञ्जरमें वे 'काली' कहलाती हैं ॥ ६२ ॥ इन्हें शालग्रामपीठमें 'महादेवी', शिवलिङ्गमें 'जलप्रिया', महालिंगमें 'कपिला' और माकोटमें 'मुकुटेश्वरी' कहा जाता है

मायापुरीमें 'कुमारी', संतानपीठमें 'ललिताम्बिका', गयामें 'मंगला' तथा पुरुषोत्तमपीठमें उन्हें 'विमला' कहा गया है ॥६३॥६४॥ सहस्राक्षमें 'उत्पलाक्षी', हिरण्याक्षमें 'महोत्पला', विपाशामें 'अमोघाक्षी', पुण्ड्रकवर्धनपीठमें 'पाडला' ॥ ६५ ॥ सुपार्श्वमें 'नारायणी', त्रिकूटमें 'रुद्रसुन्दरी', विपुलक्षेत्रमें 'विपुला', मलयाचलपर भगवती 'कल्याणी' ॥ ६६ ॥ सह्याद्रि पर्वतपर 'एकवीरा', हरिश्चन्द्रपीठपर 'चन्द्रिका', रामतीर्थमें 'रमणा', यमुनापीठमें 'मृगावती' ॥ ६७ ॥ कोटितीर्थमें 'कोटवी', माधववनमें 'सुगन्धा', गोदावरीमें 'त्रिसंध्या', गंगाद्वारमें 'रतिप्रिया' ॥ ६८ ॥ शिवकुण्डमें 'शुभनन्दा', देविकातटपीठमें 'नन्दिनी', द्वारकामें 'रुक्मिणी', वृन्दावनमें 'राधा' ॥ ६९ ॥ मथुरामें 'देवकी', पातालमें 'परमेश्वरी', चित्रकूटमें 'सीता', विन्ध्याचल पर्वतपर 'विन्ध्यवासिनी' ॥७०॥ करवीर (कोल्हापुर) क्षेत्रमें 'महालक्ष्मी', विनायकक्षेत्रमें देवी 'उमा', वैद्यनाथ धाममें 'आरोग्या', महाकालपीठमें 'माहेश्वरी' ॥७१॥ उष्णतीर्थमें 'अभया', विन्ध्यपर्वतपर

तु कपिला माकोटे मुकुटेश्वरी ॥६३॥ मायापुर्यां कुमारी स्यात्संताने ललिताम्बिका ॥ गयायां मंगला प्रोक्ता विमला पुरुषोत्तमे ॥६४॥ उत्पलाक्षी सहस्राक्षे हिरण्याक्षे महोत्पला ॥ विपाशायाममोघाक्षी पाडला पुंड्रवर्धने ॥६५॥ नारायणी सुपार्श्वे तु त्रिकूटे रुद्रसुन्दरी ॥ विपुले विपुला देवी कल्याणी मलयाचले ॥ ६६ ॥ सह्याद्रावेकवीरा तु हरिश्चन्द्रे तु चन्द्रिका ॥ रमणा रामतीर्थे तु यमुनायां मृगावती ॥ ६७ ॥ कोटवी कोटतीर्थे तु सुगन्धा माधवे वने ॥ गोदावर्यां त्रिसन्ध्या तु गङ्गाद्वारे रतिप्रिया ॥६८॥ शिवकुंडे शुभानंदा नंदिनी देविकातटे ॥ रुक्मिणी द्वारवत्यां तु राधा वृन्दावने वने ॥ ६९ ॥ देवकी मथुरायां तु पाताले परमेश्वरी ॥ चित्रकूटे तथा सीता विंध्ये विंध्याधिवासिनी ॥ ७० ॥ करवीरे महालक्ष्मीरुमा देवी विनायके ॥ आरोग्या वैद्यनाथे तु महाकाले महेश्वरी ॥ ७१ ॥ अभयेत्युष्णतीर्थेषु नितम्बा विंध्यपर्वते ॥ मांडव्ये माण्डवी नाम स्वाहा माहेश्वरीपुरे ॥ ७२ ॥ छगलण्डे प्रचण्डा तु चंडिकाऽमरकण्टके ॥ सोमेश्वरे वरारोहा प्रभासे पुष्करावती ॥ ७३ ॥ देवमाता सरस्वत्यां पारावारा तटे स्मृता ॥ महालये महाभागा पयोष्ण्यां पिंगलेश्वरी ॥ ७४ ॥ सिंहिका कृतशौचे तु कार्तिके त्वतिशांकरी ॥ उत्पलावर्तके लोला सुभद्रा शोण-सङ्गमे ॥७५॥ माता सिद्धवने लक्ष्मीरनंगा भरताश्रमे ॥ जालन्धरे विश्वमुखी तारा किष्किंधपर्वते ॥७६॥ देवदारुवने पुष्टिर्मेधा काश्मीरमण्डले ॥ भीमा देवी हिमाद्रौ तु तुष्टिर्विश्वेश्वरी तथा ॥ ७७ ॥ कपालमोचने शुद्धिर्माता कायावरोहणे ॥ शंखोद्धरे धरा नाम धृतिः पिंडारके तथा ॥७८॥

'नितम्बा', माण्डव्यपीठमें 'माण्डवी' तथा माहेश्वरीपुरीमें ये देवी 'स्वाहा' नामसे विख्यात हैं ॥ ७२ ॥ छगलण्डमें 'प्रचण्डा', अमरकण्टकमें 'चण्डिका', सोमेश्वरपीठमें 'वरारोहा', प्रभास क्षेत्रमें 'पुष्करावती' ॥ ७३ ॥ सरस्वतीतीर्थमें 'देवमाता' तथा समुद्रतटपर 'पारावारा' नामसे उनकी प्रसिद्धि हुई । महालयमें 'महाभागा', पयोष्णीमें 'पिंगलेश्वरी' ॥ ७४ ॥ कृतशौचतीर्थमें 'सिंहिका', कीर्तिक्षेत्रमें 'अतिशाङ्करी', वर्तकतीर्थमें 'उत्पला', एवं सोनभद्रनद (शोण)के संगमपर 'सुभद्रा' तथा 'लोला' ॥७५॥ सिद्धवनमें 'माता लक्ष्मी', भरताश्रमतीर्थमें 'अनंगा', जालंधर पर्वतपर 'विश्वमुखी', किष्किन्धा पर्वतपर 'तारा' ॥ ७६ ॥ देवदारुवनमें 'पुष्टि', काश्मीर प्रदेशमें 'मेधा', हिमाद्रिपर्वतपर 'देवी भीमा', विश्वेश्वर क्षेत्रमें 'तुष्टि', ॥ ७७ ॥ कपालमोचनतीर्थमें 'शुद्धि', कायावरोहतीर्थमें 'माया', शंखोद्धारतीर्थमें 'धरा' तथा पिण्डारकतीर्थमें 'धृति' नामसे ये प्रसिद्ध हुई ॥ ७८ ॥ चन्द्रभागा नदीके तटपर 'कला', अच्छोद नामक क्षेत्रमें 'शिवधारिणी'

वेणा नदीके किनारे 'अमृता', बदरीवनमें 'उर्वशी' ॥७९॥ उत्तर कुरुप्रदेशमें 'औषधि', कुशद्वीपमें 'कुशोदका', हेमकूट पर्वतपर 'मन्मथा', कुमुदवनमें 'सत्यवादिनी', ॥८०॥ अश्वत्थतीर्थमें 'वन्दनीया', वैश्रवणालय क्षेत्रमें 'निधि', वेदवन तीर्थमें 'गायत्री', भगवान् शिवके संनिकट 'पार्वती' ॥ ८१ ॥ देवलोकमें 'इन्द्राणी', ब्रह्मलोकमें 'सरस्वती', सूर्यके बिम्बमें 'प्रभा', मातृकाओंमें 'वैष्णवी', सतियोंमें 'अरुन्धती' तथा रामा प्रभृति अप्सराओंमें 'तिलोत्तमा' नामसे वे देवी विख्यात हुईं। सम्पूर्ण प्राणियोंके चित्तमें सदा विराजनेवाली शक्तिको 'ब्रह्मकला' कहते हैं ॥८२॥८३॥ हे राजा जनमेजय! ये एक सौ आठ सिद्धपीठ और वहाँ विराजनेवाली उतनी ही देवियाँ कही गयीं। देवी सतीके अंगोंसे सम्बन्धित इन पीठोंका परिचय मैंने बता दिया ॥८४॥ भूमण्डलपर इनके अतिरिक्त जो प्रधान-प्रधान स्थान हैं, प्रसंगवश वे भी बता दिये गये ॥ ८५ ॥ जो पुरुष इन एक सौ आठ सिद्धपीठोंका स्मरण एवं श्रवण करता है, वह समस्त पापोंसे

कला तु चन्द्रभागायामच्छोदे शिवधारिणी ॥ वेणायाममृता नाम बदर्यामुर्वशी तथा ॥ ७९ ॥ औषधिश्चोत्तरकुरौ कुशद्वीपे कुशोदका ॥ मन्मथा हेमकूटे तु कुमुदे सत्यवादिनी ॥८०॥ अश्वत्थे वंदनीया तु निधिर्वैश्रवणालये ॥ गायत्री वेदवदने पार्वती शिवसन्निधौ ॥८१॥ देवलोके तथेंद्राणी ब्रह्मास्येषु सरस्वती ॥ सूर्यबिंबे प्रभा नाम मातृणां वैष्णवी मता ॥८२॥ अरुन्धती सतीनां तु रामासु च तिलोत्तमा ॥ चित्ते ब्रह्मकला नाम शक्तिः सर्वशरीरिणाम् ॥८३॥ इमान्यष्टशतानि स्युः पीठानि जनमेजय ॥ तत्संख्याकास्तदीशान्यो देव्यश्च परिकीर्तिताः ॥८४॥ सतीदेव्यंगभूतानि पीठानि कथितानि च ॥ अन्यान्यपि प्रसंगेन यानि मुख्यानि भूतले ॥ ८५ ॥ यः स्मरेच्छृणुयाद्वापि नामाष्टशतमुत्तमम् ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो देवीलोकं परं व्रजेत् ॥८६॥ एतेषु सर्वपीठेषु गच्छेद्यात्राविधानतः ॥ सन्तर्पयेच्च पित्रादीञ्छ्राद्धादीनि विधाय च ॥८७॥ कुर्याच्च महतीं पूजां भगवत्या विधानतः ॥ क्षमापयेज्जगद्धात्रीं जगदम्बां मुहुर्मुहुः ॥ ८८ ॥ कृतकृत्यं स्वमात्मानं जानीयाज्जनमेजय ॥ भक्ष्यभोज्यादिभिः सर्वान्ब्राह्मणान्भोजयेत्ततः ॥ ८९ ॥ सुवासिनीः कुमारीश्च बटुकादींस्तथा नृप ॥ तस्मिन्क्षेत्रे स्थिता ये तु चांडालाद्या अपि प्रभो ॥९०॥ देवीरूपाः स्मृताः सर्वे पूजनीयास्ततो हि ते ॥ प्रतिग्रहादिकं सर्वं तेषु क्षेत्रेषु वर्जयेत् ॥९१॥ यथाशक्ति पुरश्चर्यां कुर्यान्मंत्रस्य सत्तमः ॥ मायाबीजेन देवेशीं तत्तत्पीठाधिवासिनीम् ॥ ९२ ॥ पूजयेदनिशं राजन्पुरश्चरणकृद्भवेत् ॥ वित्तशाठ्यं न कुर्वीत देवीभक्तिपरो नरः ॥ ९३ ॥ य एवं कुरुते यात्रां

मुक्त होकर भगवतीके परम धाममें चला जाता है ॥ ८६ ॥ इन सभी तीर्थोंकी यात्रा विधिके अनुसार करनी चाहिये। वहाँ जाकर पितरोंका तर्पण और श्राद्ध करनेके पश्चात् भगवतीकी विशिष्ट पूजा विधिपूर्वक सम्पन्न करनी चाहिये। पूजनके उपरान्त भगवती जगदम्बाके सामने बार-बार अपराध क्षमा करानेका विधान है ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ हे राजा जनमेजय! सम्पूर्ण ब्राह्मणोंको भक्ष्य और भोज्य आदि पदार्थोंसे तृप्त करना चाहिए ॥ ८९ ॥ हे राजन्! सुवासिनी स्त्रियों, कुँआरी कन्याओं तथा ब्रह्मचारियोंको भोजन कराना उचित है। हे प्रभो! उस क्षेत्रमें रहनेवाले जो चाण्डाल हों, उन्हें भी देवीका रूप कहा गया है। अतः उन सबकी भी पूजा करनी चाहिए। उन सिद्धपीठोंमें सभी प्रकारका दानग्रहण निषिद्ध है ॥ ९० ॥ ९१ ॥ शक्तिके अनुसार मन्त्रका अनुष्ठान होना चाहिये। मायाबीज मन्त्रराज माना जाता है। समस्त पीठोंमें विराजनेवाली भगवती जगदम्बाका इस मंत्रसे पुरश्चरण करना चाहिये ॥ ९२ ॥

हे राजन् ! अनुष्ठान करनेवाले मनुष्यको चाहिये कि धन खर्च करनेमें कंजूसी न करके देवीके प्रति अटूट श्रद्धा रक्खे ॥ ९३ ॥ जो पुरुष इस प्रकार श्रीदेवीके सिद्धपीठोंकी प्रसन्नतापूर्वक यात्रा करता है, उसके पितर एक हजार कल्पोंतक श्रेष्ठ ब्रह्मलोकमें निवास करते हैं ॥ ९४ ॥ स्वयं वह भी आयु समाप्त होनेपर देवीके लोकमें स्थान पाता है। फिर उत्तम ज्ञान पाकर वह संसारसागरसे मुक्त हो जाता है ॥ ९५ ॥ इस अष्टोत्तरशतनामके जपसे बहुतेरे पुरुष सिद्धि पा चुके हैं। जहाँ यह अष्टोत्तरशतनाम स्वयं लिखा गया हो, अथवा रखी हुई पुस्तकमें अङ्कित हो ॥९६॥ वहाँ महामारी आदिके उपद्रवका भय नहीं रहता, बल्कि वहाँ इस प्रकार सौभाग्यमें वृद्धि होती है कि जैसे पर्वपर समुद्र बढ़ता है ॥ ९७ ॥ जो भगवतीकी भक्तिमें तत्पर होकर इस अष्टोत्तरशत नामका जप करता है, उसके लिये कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं रहती। उसका जीवन निश्चय ही सफल समझना चाहिये ॥ ९८ ॥ उस जापकके सामने देवतातक मस्तक झुकानेके लिए तैयार रहते हैं। क्योंकि वह जापक भगवतीका रूप माना जाता है। जो देवताओंके सर्वथा पूज्य हैं, श्रेष्ठ मानव उनकी पूजा करें—इसमें कहना ही

श्रीदेव्याः प्रीतमानसः ॥ सहस्रकल्पपर्यंतं ब्रह्मलोके महत्तरे ॥ ९४ ॥ वसंति पितरस्तस्य सोऽपि देवीपुरे तथा ॥ अंते लब्ध्वा परं ज्ञानं भवेन्मुक्तो भवांबुधेः ॥ ९५ ॥ नामाष्टशतजापेन बहवः सिद्धतां गताः ॥ यत्रैतल्लिखितं साक्षात्पुस्तके वापि तिष्ठति ॥ ९६ ॥ ग्रहमारीभयादीनि तत्र नैव भवन्ति हि ॥ सौभाग्यं वर्धते नित्यं यथा पर्वणि वारिधिः ॥ ९७ ॥ न तस्य दुर्लभं किंचिन्नामाष्टशतजापिनः ॥ कृतकृत्यो भवेन्नूनं देवीभक्तिपरायणः ॥९८॥ नमन्ति देवतास्तं वै देवीरूपो हि स स्मृतः ॥ सर्वथा पूज्यते देवैः किं पुनर्मनुजोत्तमैः ॥९९॥ श्राद्धकाले पठेदेतन्नामाष्टशतमुत्तमम् ॥ तृप्तास्तत्पितरः सर्वे प्रयान्ति परमां गतिम् ॥१००॥ इमानि मुक्तिक्षेत्राणि साक्षात्संविन्मयानि च ॥ सिद्धपीठानि राजेन्द्र संश्रयेन्मतिमान्नरः ॥१०१॥ पृष्टं यत्तत्त्वया राजन्नुक्तं सर्वं महेशितुः ॥ रहस्यातिरहस्यं च किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥१०२॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

॥ जनमेजय उवाच ॥ धराधराधीशमौलावाविरासीत्परं महः ॥ यदुक्तं भवता पूर्वं विस्तरात्तद्वदस्व मे ॥१॥ को विरज्येत मतिमान्पिबञ्छक्तिकथामृतम् ॥ सुधां तु पिबतां मृत्युः स नैतच्छृण्वतो भवेत् ॥ २ ॥ व्यास उवाच ॥ धन्योऽसि कृतकृत्योऽसि शिक्षितोऽसि महात्मभिः ॥ भाग्य-

क्या है ॥९९॥ श्राद्धके अवसरपर इस अष्टोत्तरशतनामका पाठ किया जाय तो श्राद्धकर्ताके सम्पूर्ण पितर तृप्त होकर उत्तम गति पा जाते हैं ॥ १०० ॥ हे राजेन्द्र ! ये मुक्तिक्षेत्र भगवतीके साक्षात् विग्रह हैं। सिद्धपीठ इनकी संज्ञा है। बुद्धिमान् मनुष्य इनका अवश्य सेवन करें ॥ १०१ ॥ हे राजन् ! तुमने भगवती परमेश्वरीके विषयमें जो कुछ पूछा था, वह सब रहस्य मैं बता चुका। अब पुनः क्या सुनना चाहते हो ? ॥ १०२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते सप्तमस्कन्धे 'पीताम्बरा' भाषाटीकायां त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

(तारकासुरके द्वारा सताये हुए देवताओं द्वारा भगवतीकी स्तुति) जनमेजयने कहा—हे मुने ! आप पहले कह चुके हैं कि हिमालयके शिखरपर महान् तेजका आविर्भाव हुआ था। उसको अब मुझे विस्तारके साथ बतलानेकी कृपा कीजिये ॥१॥ कौन बुद्धिमान् मनुष्य होगा, जो शक्तिकी कथाको सुनकर तृप्त हो सके। अमृत पीनेवालोंकी मृत्यु हो भी सकती है, किन्तु

यह कथा सुननेवाला प्राणी अमर हो जाता है ॥२॥ व्यासजी कहते हैं—हे राजन् ! तुम धन्य हो, कृतकृत्य हो और परम भाग्यशाली हो। महात्मा पुरुषोंने तुम्हें श्रेष्ठ शिक्षा प्रदान की है। इसीसे भगवती जगदम्बाके प्रति तुम्हारे हृदयमें ऐसी निष्कपट भक्तिका प्रादुर्भाव हुआ है ॥३॥ हे राजन् ! अब एक प्राचीन प्रसंग बता रहा हूँ। जब सतीका शरीर योगाग्निमें भस्म हो गया, तब भगवान् शिव देश-देशान्तरोंमें घूमते हुए अन्तमें किसी एक जगह जाकर ठहर गये ॥४॥ वहाँ मनको सब ओरसे खींचकर वे भगवती जगदम्बाका ध्यान करने लगे। उस समय त्रिलोकीके जितने चराचर प्राणी थे, प्रायः सभी सौभाग्यसे वञ्चित हो गये। द्वीपों और पर्वतोंसहित सारा संसार शक्तिहीन हो गया ॥ ५ ॥ ६ ॥ सबके हृदयमें बहनेवाला आनन्दमय रससोत बिलकुल सूख गया। सबके मुखपर उदासी छा गयी ॥ ७ ॥ सभी लोग दुःखरूपी समुद्रमें डूब गये। रोगोंने सबको धर दबाया। ग्रहों और देवताओंकी चाल विपरीत हो गयी ॥ ८ ॥ हे राजन् ! भगवती सतीकी अनुपस्थितिमें देवता और सब मानव प्रायः उच्छृङ्खल हो गये। उसी समय तारक नामसे प्रसिद्ध एक महान् असुर उत्पन्न हुआ ॥ ९ ॥ त्रिलोकीके अध्यक्ष

वानसि यद्देव्यां निर्व्याजा भक्तिरस्ति ते ॥ ३ ॥ शृणु राजन्पुरावृत्तं सतीदेहेऽग्निभर्जिते ॥ भ्रांतः शिवस्तु बभ्राम क्वचिद्देशे स्थिरोऽभवत् ॥ ४ ॥ प्रपञ्चभानरहितः समाधिगतमानसः ॥ ध्यायन्देवीस्वरूपं तु कालं निन्ये स आत्मवान् ॥५॥ सौभाग्यरहितं जातं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ शक्तिहीनं जगत्सर्वं साब्धिद्वीपं सपर्वतम् ॥ ६ ॥ आनन्दः शुष्कतां यातः सर्वेषां हृदयांतरे ॥ उदासीनाः सर्वलोकाश्चिंताजर्जरचेतसः ॥ ७ ॥ सदा दुःखोदधौ मग्ना रोगग्रस्तास्तदाऽभवन् ॥ ग्रहाणां देवतानां च वैपरीत्येन वर्तनम् ॥ ८ ॥ अधिभूताधिदैवानां सत्यभावन्नृपाभवन् ॥ अथास्मिन्नेव काले तु तारकाख्यो महासुरः ॥ ९ ॥ ब्रह्मदत्तवरो दैत्योऽभवत्त्रैलोक्यनायकः ॥ शिवौरसस्तु यः पुत्रः स ते हंता भविष्यति ॥१०॥ इति कल्पितमृत्युः स देवदेवैर्महासुरः ॥ शिवौरससुताभावाज्जगर्ज च ननंद च ॥११॥ तेन चोपद्रुताः सर्वे स्वस्थानात्प्रच्युताः सुराः ॥ शिवौरससुताभावाच्चिंतामापुर्दुरत्ययाम् ॥ १२ ॥ नांगना शंकरस्यास्ति कथं तत्सुतसंभवः ॥ अस्माकं भाग्यहीनानां कथं कार्यं भविष्यति ॥१३॥ इति चिंतातुराः सर्वे जग्मुर्वैकुण्ठमण्डले ॥ शशंसुर्हरिमेकांते स चोपायं जगाद ह ॥ १४ ॥ कुतश्चिंतातुराः सर्वे कामकल्पद्रुमा शिवा ॥ जागर्ति भुवनेशानी मणिद्विपाधिवासिनी

महाभाग ब्रह्माजीने उसे वर दे दिया था कि 'भगवान् शंकरका जो औरस पुत्र होगा, उसीके हाथ तुम्हारी मृत्यु हो सकेगी' ॥१०॥ फिर तो वह महान् असुर देवाधिदेव ब्रह्मा द्वारा कल्पित मृत्युका वर पाकर गरजने और डींग हाँकने लगा। कारण, भगवान् शंकरके औरस पुत्रकी तो कल्पना ही नहीं थी ॥ ११ ॥ इससे व्याकुल होकर सम्पूर्ण देवता अपने स्थानोंसे भाग चले। शिवका कोई औरस पुत्र नहीं था, इससे देवताओंके मनमें अपार चिन्ता समा गयी ॥१२॥ उन्होंने सोचा—'शंकरजीके तो पत्नी ही नहीं है, फिर पुत्रकी सम्भावना कैसे की जाय ? ऐसी स्थितिमें हम भाग्यहीनोंका कार्य किस प्रकार सम्पन्न होगा' ॥ १३ ॥ इस प्रकार चिन्तासे अत्यन्त आकुल होकर सभी देवता वैकुण्ठमें गये ! एकान्तमें उन्होंने भगवान् विष्णुको अपने दुःखकी कहानी सुनायी। तब श्रीहरिने उनको उपाय बताते हुए कहा—॥१४॥ 'तुम सब इतने चिन्तातुर क्यों हो रहे हो ? भगवती शिवा कामनाओंको पूर्ण करनेके लिये साक्षात्

कल्पवृक्ष हैं। मणिद्वीपमें विराजनेवाली वे भगवती भुवनेश्वरी सदा जागती रहती हैं ॥१५॥ हमलोगोंके दोषसे ही जगदम्बाने हमारी उपेक्षा कर रक्खी है–दूसरी कोई बात नहीं है। उनका यह कार्य हमें शिक्षा देनेके लिए ही समझना चाहिये ॥१६॥ जिस प्रकार माता बच्चेको डाँटे या त्याग करे, परन्तु प्रत्येक स्थितिमें वह उसपर करुणा ही रखती है। वैसे ही जगदम्बाको भी जानना चाहिये। गुण और दोषके अनुसार उन्हें कार्य करना पड़ता है ॥१७॥ पुत्र तो पद-पदपर अपराधी होते हैं। एक माताके सिवाय जगत्में दूसरा कौन है, जो उस अपराधको सह सके ॥ १८ ॥ अतः तुम सब लोग मनको शान्त तथा छल-कपटसे शून्य करके उन भगवती जगदम्बाकी शरण जाओ। देर करना अनुचित है। तुम्हारा कार्य वे अवश्य पूर्ण कर देंगी। हे राजन्! इस प्रकार देवताओंको उपदेश देनेके उपरान्त भगवान् विष्णु देवताओंके साथ वैकुण्ठसे चल पड़े ॥१९॥२०॥ गिरिराज हिमालयपर पहुँचते उन्हें देर नहीं लगी। वहाँ सभी देवताओंने देवीका भजन और आराधन आरम्भ कर दिया ॥२१॥ जिन्हें अम्बायज्ञकी विधि मालूम थी, वे अम्बायज्ञ करने लगे। हे राजन्! समस्त देवताओंके द्वारा उसी समय तृतीयादि

॥ १५ ॥ अस्माकमनयादेव तदुपेक्षाऽस्ति नान्यथा ॥ शिक्षैवेयं जगन्मात्रा कृताऽस्मच्छिक्षणाय च ॥१६॥ लालने ताडने मातुर्नाकारुण्यं यथाऽर्भके ॥ तद्वदेव जगन्मातुर्नियंत्र्या गुणदोषयोः ॥ १७ ॥ अपराधो भवत्येव तनयस्य पदे पदे ॥ कोऽपरः सहते लोके केवलं मातरं विना ॥१८॥ तस्माद्यूयं पराम्बां तां शरणं यात मा चिरम् ॥ निर्व्याजया चित्तवृत्त्या सा वः कार्यं विधास्यति ॥१९॥ इत्यादिश्य सुरान्सर्वान्महाविष्णुः स्वजायया ॥ संयुतो निर्जगामाशु देवैः सह सुराधिपः ॥ २० ॥ आजगाम महाशैलं हिमवंतं नगाधिपम् ॥ अभवंश्च सुराः सर्वे पुरश्चरणकर्मिणः ॥ २१ ॥ अम्बायज्ञविधानज्ञा अम्बायज्ञं च चक्रिरे ॥ तृतीयादिव्रतान्याशु चक्रुः सर्वे सुरा नृप ॥२२॥ केचित्समाधिनिष्णाताः केचिन्नामपरायणाः ॥ केचित्सूक्तपराः केचिन्नामपारायणोत्सुकाः ॥ २३ ॥ मंत्रपारायणपराः केचित्कृच्छ्रादिकारिणः ॥ अन्तर्यागपराः केचित्केचिन्न्यासपरायणाः ॥ २४ ॥ हृल्लेखया पराशक्तेः पूजां चक्रुरतंद्रिताः ॥ इत्येवं बहुवर्षाणि कालोऽगाज्जनमेजय ॥ २५ ॥ अकस्माच्चैत्रमासीयनवम्यां च भृगोर्दिने ॥ प्रादुर्बभूव पुरतस्तन्महः श्रुतिबोधितम् ॥ २६ ॥ चतुर्दिक्षु चतुर्वेदैर्मूर्तिमद्भिरभिष्टुतम् ॥ कोटिसूर्यप्रतीकाशं चन्द्रकोटिसुशीतलम् ॥२७॥ विद्युत्कोटिसमानाभमरुणं तत्परं महः ॥ नैव चोर्ध्वं न तिर्यक्च न मध्ये परिजग्रभत् ॥२८॥ आद्यंतरहितं तत्तु न हस्ताद्यंगसंयुतम् ॥ न च स्त्रीरूपमथवा न पुंरूपमथो-

व्रतका आयोजन बन गया ॥ २२ ॥ कुछ लोग समाधि लगाकर बैठ गये। कुछ देवताओंने नामजप आरम्भ कर दिया। कुछ व्यक्ति सूक्तपाठ करने लगे। कुछ लोगोंने मन्त्रका पारायण आरम्भ किया ॥ २३ ॥ कुछ कृच्छ्रव्रती, अन्तर्यागके अभ्यासी और न्यासपरायण बन गये ॥ २४ ॥ कुछ देवता सावधान होकर मायाबीज मन्त्रका प्रयोग करके भगवती परमेश्वरीकी पूजा करने लगे। हे जनमेजय! यों करते-करते बहुत समय बीत गया ॥२५॥ तदनन्तर अपने आप श्रुति द्वारा जानने योग्य एक सर्वोत्कृष्ट ज्योति सबके सामने प्रकट हो गयी। चैत्र शुक्लपक्षकी नवमी तिथि थी और शुक्रवार था ॥ २६ ॥ चारों वेद मूर्तिमान् होकर चारों दिशाओंमें उसकी स्तुति करने लगे। उस ज्योतिमें करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाश था। वह शीतल ऐसी थी, मानो करोड़ों चन्द्रमा उदित हों ॥२७॥ करोड़ों बिजलियोंके समान वह ज्योति चमक रही थी, वह न नीची और न तिरछी, बल्कि मध्यम श्रेणीकी थी ॥२८॥ आदि और अन्तसे रहित उस तेजमें

हाथ-पैर भी नहीं थे। स्त्री-पुरुष अथवा नपुंसक किसी भी रूपका स्पष्ट भान नहीं हो रहा था ॥ २९॥ हे राजन्! उस तेजके प्रकट होते ही देवताओंकी आँखे मुँद गयीं। फिर धैर्य धारण करके ज्यों ही वे उधर देखनेके लिए उद्यत हुए कि तुरन्त उन्हें एक परम दिव्य एवं मनोहर देवी दृष्टि गोचर हुई। उसके सभी अंग अत्यन्त सुन्दर थे। उसकी कुमार अवस्था थी। यौवन अभी-अभी खिल रहा था ॥ ३० ॥ ३१ ॥ विशाल वक्षःस्थल था। बजती हुई किंकिणी, करधनी और पायजेबसे उसकी विचित्र शोभा हो रही थी ॥ ३२ ॥ दिव्य सुवर्णके बाजूबंद, कड़े, कण्ठहार आदि आभूषण उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। बहुमूल्य मणियोंका चमचमाता हुआ हार उसके गलेमें लटक रहा था ॥ ३३ ॥ केतकीके नूतन पत्तोंके समान उज्ज्वल कपोलोंपर भ्रमरकी तुलना करनेवाले काले केश लहरा रहे थे। उसका कटिप्रदेश बड़ा ही सुघड़ था। रोमावलियाँ भी शोभा बढ़ा रही थीं ॥ ३४ ॥ कपूरके छोटे-छोटे टुकड़ोंसे युक्त पानके बीड़े उसके मुखमें भरे थे। कमल जैसे मुखपर सुवर्णमय कुण्डलकी मधुर ध्वनि निकल रही थी ॥ ३५ ॥ ललाटपर फैली हुई भौंहें ऐसी जान पड़ती थीं, मानो अष्टमीका चन्द्रमा हो। लाल

भयम् ॥२९॥ दीप्त्या पिधानं नेत्राणां तेषामासीन्महीपते ॥ पुनश्च धैर्यमालंब्य यावत्ते ददृशुः सुराः॥ ३० ॥ तावत्तदेव स्त्रीरूपेणाभादिव्यं मनोहरम् ॥ अतीव रमणीयांगीं कुमारीं नवयौवनाम् ॥ ३१ ॥ उद्यत्पीनकुचद्वंद्वनिंदितांभोजकुड्मलाम् ॥ रणत्किंकिणिकाजालसिंजन्मञ्जीरमेखलाम् ॥ ३२ ॥ कनकांगदकेयूरग्रैवेयकविभूषणाम् ॥ अनर्घ्यमणिसंभिन्नगलबंधविराजिताम् ॥३३॥ तनुकेतकसंराजन्नीलभ्रमरकुंतलाम् ॥ नितम्बबिम्बसुभगां रोमराजिविराजिताम् ॥ ३४ ॥ कर्पूरशकलोन्मिश्रतांबूलपूरिताननाम् ॥ कनत्कनकताटंकविटंकवदनांबुजाम् ॥ ३५ ॥ अष्टमीचन्द्रबिंबाभललाटामायतभ्रुवम् ॥ रक्तारविंदनयनामुन्नसां मधुराधराम् ॥३६॥ कुन्दकुड्मलदन्ताग्रां मुक्ताहारविराजिताम् ॥ रत्नसम्भिन्नमुकुटां चन्द्ररेखावतंसिनीम् ॥३७॥ मल्लिकामालतीमालाकेशपाशविराजिताम् ॥ काश्मीरबिंदुनिटिलां नेत्रत्रयविलासिनीम् ॥३८॥ पाशांकुशवराभीतिचतुर्बाहुं त्रिलोचनाम् ॥ रक्तवस्त्रपरीधानां दाडिमीकुसुमप्रभाम् ॥३९॥ सर्वशृङ्गारवेषाढ्यां सर्वदेवनमस्कृताम् ॥ सर्वाशापूरिकां सर्वमातरं सर्वमोहिनीम् ॥ ४० ॥ प्रसादसुमुखीमम्बां मन्दस्मितमुखांबुजाम् ॥ अव्याजकरुणामूर्तिं ददृशुः पुरतः सुराः ॥ ४१ ॥ दृष्ट्वा तां करुणामूर्तिं प्रणेमुः सादरं सुराः ॥ वक्तुं नाशक्नुवन्

कमलके समान नेत्र थे। ऊँची नासिका थी। ओठोंसे अमृत टपक रहा था ॥ ३६ ॥ कुन्दकी खिली हुई कलियों जैसे सुन्दर दाँत थे। मोतीकी माला उसके गलेको सुशोभित कर रही थी। मस्तकपर रत्न जटितमुकुट था, जिसमें चन्द्रमाकी रेखा अङ्कित थी ॥ ३७ ॥ मल्लिका और मालतीकी माला केशकी वेणीमें गुँथी थी, इससे परम मनोहरता छा रही थी। केसरकी बिंदीसे ललाट सुशोभित था। तीन नेत्र अपनी छटा छिटका रहे थे ॥३८॥ पाश, अंकुश, वर और अभयमुद्रासे युक्त चार भुजाएँ थीं। लाल रंगका दिव्य वस्त्र अनुपम शोभा दे रहा था। शरीरकी कान्ति ऐसी थी, मानो अनारका पुष्प हो ॥ ३९ ॥ शृंगारकी सभी वस्तुओंसे वे अलंकृत थीं। समस्त देवता उन्हें नमस्कार कर रहे थे। वे साधारण स्त्री नहीं थीं, किंतु सबकी आशा पूर्ण करनेवाली एवं सबको मोहित करनेमें समर्थ तथा सबको जन्म देनेवाली माता जगदम्बा थीं ॥४०॥ उनका मुखकमल प्रसन्नतासे खिला हुआ था। वे मुसकुरा रही थीं। ऐसी शुद्ध तथा करुणाकी साकार मूर्ति भगवती जगदम्बाके देवताओंने भली-भाँति दर्शन किये ॥ ४१ ॥ फिर वे आदरपूर्वक उन करुणामयी देवीको प्रणाम करने लगे। हर्षके आँसुओंसे उनके कण्ठ रुँध

गये थे ॥ ४२ ॥ अतः वे कुछ भी बोलनेमें असमर्थ थे। किसी प्रकार चित्तमें स्थिरता प्राप्त करनेपर वे नम्रतापूर्वक कंधे झुकाकर भगवती जगदम्बाकी स्तुति करने लगे। उस समय उनकी आँखें आनन्दके आसुओंसे भरी थीं ॥ ४३ ॥ देवताओंने कहा—देवीको नमस्कार है। महादेवी शिवाको सर्वदा नमस्कार है। प्रकृति एवं भद्राको नमस्कार तथा प्रणाम है। हमलोग नियमपूर्वक भगवती जगदम्बाको नमस्कार करते हैं ॥ ४४ ॥ उन अग्निजैसे वर्णवाली, ज्ञानसे जगमगानेवाली, दीप्तिमती, कर्मफल-प्राप्तिके हेतु सेवन की जानेवाली दुर्गादेवीकी हम शरणमें हैं। हे संसारसागरसे तारनेवाली ! तुम्हें नमस्कार है ॥४५॥ प्राणरूप एवं देवरूप देवोंने जिस प्रकाशमान वैखरी वाणीको उत्पन्न किया, उसीको अनेक प्रकारसे प्राणी बोलते हैं। वे कामधेनुतुल्य आनन्ददायिनी और अन्न तथा बल देनेवाली वाग्रूपिणी भगवती उत्तम स्तुतिसे संतुष्ट होकर हमारे समीप पधारें ॥ ४६ ॥ कालका भी नाश करनेवाली, वेदों द्वारा स्तुत, विष्णुशक्ति, स्कन्दमाता (शिवशक्ति), सरस्वती (ब्रह्मा-शक्ति), देवमाता, अदिति और दक्ष-कन्या सती, पापनाशिनी तथा कल्याणकारिणी भगवतीको हम प्रणाम करते हैं ॥ ४७ ॥

किंचिद्बाष्पपूरितलोचनाः ॥ ४२ ॥ कथंचित्स्थैर्यमालंब्य भक्त्या चानतकंधराः ॥ प्रेमाश्रूपूर्णनयनास्तुष्टुवुर्जगदम्बिकाम् ॥ ४३ ॥ देवा ऊचुः ॥ नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः ॥ नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्म ताम् ॥४४॥ तामग्निवर्णां तपसा ज्वलंतीं वैरोचनीं कर्मफलेषु जुष्टाम् ॥ दुर्गां देवीं शरणमहं प्रपद्ये सुतरसि तरसे नमः ॥ ४५ ॥ देवीं वाचमजनयंत देवास्तां विश्वरूपाः पशवो वदन्ति ॥ सा नो मन्द्रेषमूर्जं दुहाना धेनुर्वागस्मानुपसुष्टुतैतु ॥४६॥ कालरात्रिं ब्रह्मस्तुतां वैष्णवीं स्कंदमातरम् ॥ सरस्वतीमदितिं दक्षदुहितरं नमामः पावनां शिवाम् ॥४७॥ महालक्ष्म्यै च विद्महे सर्वशक्त्यै च धीमहि ॥ तन्नो देवी प्रचोदयात् ॥ ४८ ॥ नमो विराट्स्वरूपिण्यै नमः सूत्रात्ममूर्तये ॥ नमोऽव्याकृतरूपिण्यै नमः श्रीब्रह्ममूर्तये ॥ ४९ ॥ यदज्ञानाज्जगद्भाति रज्जुसर्पस्रगादिवत् ॥ यज्ज्ञानाल्लयमाप्नोति नुमस्तां भुवनेश्वरीम् ॥ ५० ॥ नुमस्तत्पदलक्ष्यार्थां चिदेकरसरूपिणीम् ॥ अखंडानन्दरूपां तां वेदतात्पर्यभूमिकाम् ॥ ५१ ॥ पञ्चकोशातिरिक्तां तामवस्थात्रयसाक्षिणीम् ॥ नुमस्त्वंपदलक्ष्यार्थां प्रत्यगात्मस्वरूपिणीम् ॥ ५२ ॥ नमः प्रणवरूपायै नमो ह्रींकारमूर्तये ॥ नानामंत्रात्मिकायै ते करुणायै नमो नमः ॥५३॥ इति स्तुता तदा देवैर्म-

हम महालक्ष्मीको जानते हैं, उन सर्वशक्तिरूपिणीका ही ध्यान करते हैं, वे देवी हमें उस विषयमें (ज्ञान-ध्यान) में प्रवृत्त करें ॥ ४८ ॥ विराट्रूप धारण करनेवाली देवीको नमस्कार है। सूक्ष्मरूपसे विराजनेवाली देवीको नमस्कार है। अव्याकृतरूपसे शोभा पानेवालीको नमस्कार है। श्रीब्रह्मकी मूर्ति धारण करनेवालीको नमस्कार है ॥४९॥ जिन्हें न जाननेके कारण रस्सीमें सर्पकी भाँति इस मिथ्या जगत्का भान होता है और जिनके जानते ही वह भ्रान्त-बुद्धि नष्ट हो जाती है, उन भगवती भुवनेश्वरीके चरणोंमें हम मस्तक झुकाते हैं ॥ ५० ॥ जो 'तत्' पदकी लक्ष्यार्थ हैं, जिनका रूप एकमात्र चिन्मय है, जो अखण्ड आनन्दकी मूर्तिमान् रूप हैं तथा वेदके तात्पर्यकी जो भूमिका मानी जाती हैं, उन भगवती भुवनेश्वरीको हम प्रणाम करते हैं ॥५१॥ जो पंचकोशसे अतिरिक्त हैं, तीनों अवस्थाओंकी साक्षिणी हैं, जिनसे 'त्वं' पदका बारम्बार लक्ष्य होता है तथा जो प्रत्यगात्म-स्वरूपा हैं, उन भगवती भुवनेश्वरीको हम प्रणाम करते हैं ॥५२॥ प्राणस्वरूपा देवीको नमस्कार है। ह्रींकार मूर्तिको नमस्कार है। हे करुणामयी देवी ! तुम्हें बार बार नमस्कार है ॥ ५३ ॥ इस प्रकार देवताओंके स्तुति करनेपर मणि-

द्वीपमें विराजनेवाली आनन्दनिमग्न भगवती जगदम्बा कोकिल जैसी मधुरवाणीमें यों बोलीं ॥ ५४ ॥ श्रीदेवीने कहा—आप सब देवता किस प्रयोजनसे यहाँ पधारे हैं, सो बताइये। मैं भक्तोंकी अभिलाषा पूर्ण करनेके लिये कल्पवृक्ष हूँ। वर देना मेरा स्वाभाविक गुण है ॥ ५५ ॥ मेरे रहते आप भक्तिपरायण देवताओंको क्या चिन्ता है? मैं अपने भक्तोंका इस दुःखमय संसारसागरसे उद्धार कर देती हूँ ॥ ५६ ॥ हे महाभाग देवताओ! आपको मेरी यह प्रतिज्ञा सत्य समझनी चाहिये। स्नेहसे विह्वल होकर भगवती जगदम्बा यों कह गयीं। उनकी वाणी सुनकर देवताओंका मन हर्षसे भर गया ॥५७॥ हे राजन्! अब वे निर्भय होकर अपना दुःख सुनाने लगे। देवता बोले—हे परमेश्वरी! त्रिलोकीमें कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है, जो ज्ञात न हो ॥ ५८ ॥ क्योंकि तुम सर्वज्ञा एवं सर्वसाक्षिस्वरूपिणी हो। हे शिवे! तारक नामवाला एक महान् दैत्य हमें दिन-रात कष्ट पहुँचा रहा है। शंकरके पुत्र द्वारा उसकी मृत्यु होनेकी बात ब्रह्माने निश्चित कर दी है। हे महेश्वरी! तुमसे छिपा नहीं है कि इस समय शिव विधुर-जीवन व्यतीत कर रहे हैं ॥ ५९ ॥ ६० ॥ हम अल्पबुद्धि व्यक्ति तुम-जैसी सर्वज्ञान-

णिद्वीपाधिवासिनी ॥ प्राह वाचा मधुरया मत्तकोकिलनिःस्वना ॥ ५४ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ वदंतु विबुधाः कार्यं यदर्थमिह संगताः ॥ वरदाऽहं सदा भक्तकामकल्पद्रुमाऽस्मि च ॥ ५५ ॥ तिष्ठन्त्यां मयि का चिन्ता युष्माकं भक्तिशालिनाम्॥ समुद्धरामि मद्भक्तान्दुःखसंसारसागरात्॥ ५६ ॥ इति प्रतिज्ञां मे सत्यां जानीथ विबधोत्तमाः॥ इति प्रेमाकुलां वाणीं श्रुत्वा संतुष्टमानसाः ॥५७॥ निर्भया निर्जरा राजन्नूचुर्दुःखं स्वकीयकम्॥ देवा ऊचुः ॥ नाज्ञातं किंचिदप्यत्र भवत्याऽस्ति जगत्त्रये ॥५८॥ सर्वज्ञया सर्वसाक्षिरूपिण्या परमेश्वरि ॥ तारकेणासुरेन्द्रेण पीडिताः स्मो दिवानिशम् ॥५९॥ शिवाङ्गजाद्वधस्तस्य निर्मितो ब्रह्मणा शिवे ॥ शिवाङ्गना तु नैवास्ति जानासि त्वं महेश्वरि ॥६०॥ सर्वज्ञपुरतः किं वा वक्तव्यं पामरैर्जनैः ॥ एतदुद्देशतः प्रोक्तमपरं तर्कयाम्बिके ॥ ६१ ॥ सर्वदा चरणांभोजे भक्तिः स्यात्तव निश्चला ॥ प्रार्थनीयमिदं मुख्यमपरं देहहेतवे ॥ ६२ ॥ इति तेषां वचः श्रुत्वा प्रोवाच परमेश्वरी ॥ मम शक्तिस्तु या गौरी भविष्यति हिमालये ॥६३॥ शिवाय सा प्रदेया स्यात्सा वः कार्यं विधास्यति॥ भक्तिर्मच्चरणांभोजे भूयाद्युष्माकमादरात् ॥ ६४ ॥ हिमालयो हि मनसा मामुपास्तेऽतिभक्तितः ॥ ततस्तस्य गृहे जन्म मम प्रियकरं मतम् ॥ ६५ ॥ व्यास उवाच ॥ हिमालयोऽपि तच्छ्रुत्वाऽत्यनुग्रहकरं वचः ॥ बाष्पैः संरुद्धकंठाक्षो महाराज्ञीं वचोऽब्रवीत् ॥६६॥ महत्तरं तं कुरुषे यस्यानुग्रहमिच्छसि ॥

सम्पन्न मातासे कह ही क्या सकते हैं। हे अम्बिके! हे देवी! तुम्हारे चरणकमलमें हमारी अविचल भक्ति हो। देहके रक्षार्थ दूसरी प्रार्थना यही है ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ हे राजन्! देवताओंकी बात सुनकर भगवती परमेश्वरीने कहा—देवताओ! मेरी शक्ति जो 'गौरी' नामसे विख्यात है, हिमालयके घर प्रकट होगी ॥ ६३ ॥ आप लोग ऐसा प्रयत्न करें कि जिससे भगवान् शिवके साथ उसका सम्बन्ध हो जाय। वही आप लोगोंका कार्य सिद्ध करेगी। शर्त यह है कि उसके चरणकमलमें आदरपूर्वक आप लोगोंकी भक्ति बनी रहे ॥६४॥ हिमालयका भी कर्तव्य है कि भक्तिके साथ मनसे मेरी उपासना करे। तब उनके घर गौरीका जन्म, जो मुझे अत्यन्त रुचिकर है, अवश्य होगा ॥ ६५ ॥ व्यासजी कहते हैं—हे राजन्! हिमालय भी परमेश्वरीके इस अत्यन्त कृपापूर्ण वचनको सुन रहे थे। वे गद्गदकण्ठ हो रहे थे। उनकी आँखें डबडबा आयी थीं। वे देवीके प्रति बोले—॥६६॥ 'हे जगदम्बे! मुझ जड़पर तुम्हारी कितनी

कृपा है, जो मुझे एक महान् व्यक्ति बनानेके प्रयत्नमें लगी हो। नहीं तो कहाँ मैं एक जड़ पर्वत और कहाँ तुम सत् एवं चिन्मयी भगवती ॥ ६७ ॥ हे अनघे! सैकड़ों जन्मोंके अश्वमेध यज्ञ तथा ध्यानसे सम्पन्न होकर भी मैं तुम्हारा पिता बन सकूँ—यह बिल्कुल असम्भव है ॥ ६८ ॥ यह तो तुम्हारी अहैतुकी कृपा है। अब जगत्में मेरा सुयश फैल जायगा। लोग कहेंगे कि जगदम्बा हिमालयकी पुत्री हैं। अहो, ये बड़े ही धन्य और भाग्यशाली हैं ॥ ६९ ॥ जिनके उदरमें करोड़ों ब्रह्माण्ड विराजमान हैं, वे ही भगवती जगदम्बा जिसके घर कन्यारूपसे प्रकट हुई हैं, उसकी तुलना जगत्में कौन कर सकता है? ॥ ७० ॥ मेरे पितर भी ऐसे पुण्यात्मा हैं, जिनके वंशमें मुझ-जैसा पुत्र उत्पन्न हुआ। मैं नहीं जानता कि उनके रहनेके लिये कौन-सा श्रेष्ठ स्थान बना है ॥ ७१ ॥ जिस प्रकार तुमने स्नेहपूर्ण कृपाके वश होकर मुझे गौरीके पिता होनेका सुअवसर प्रदान किया, वैसे ही सम्पूर्ण वेदान्तके सिद्धान्तभूत अपने स्वरूपका भी वर्णन करो ॥ ७२ ॥ हे परमेश्वरी! मुझे भक्तियुक्त योग और स्मृतिसम्मत ज्ञानका प्राप्त होना भी तुम्हारी ही कृपापर निर्भर है ॥७३॥ व्यासजी बोले—हे राजन्! हिमालयकी

नोचेत्क्वाहं जडः स्थाणुः क्व त्वं सच्चित्स्वरूपिणी ॥ ६७ ॥ असंभाव्यं जन्मशतैस्त्वत्पितृत्वं ममानघे ॥ अश्वमेधादिपुण्यैर्वा पुण्यैर्वा तत्समाधिजैः ॥ ६८ ॥ अद्य प्रपंचे कीर्तिः स्याज्जगन्माता सुताऽभवत् ॥ अहो हिमालयस्यास्य धन्योऽसौ भाग्यवानिति ॥ ६९ ॥ यस्यास्तु जठरे संति ब्रह्मांडानां च कोटयः ॥ सैव यस्य सुता जाता को वा स्यात्तत्समो भुवि ॥ ७० ॥ न जानेऽस्मत्पितॄणां किं स्थानं स्यान्निर्मितं परम् ॥ एतादृशानां वासाय येषां वंशेऽस्ति मादृशः ॥ ७१ ॥ इदं यथा च दत्तं मे कृपया प्रेमपूर्णया ॥ सर्ववेदान्तसिद्धं च त्वद्रूपं ब्रूहि मे तथा ॥ ७२ ॥ योगं च भक्तिसहितं ज्ञानं च श्रुतिसम्मतम् ॥ वदस्व परमेशानि त्वमेवाहं यतो भवेः ॥७३॥ व्यास उवाच ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा प्रसन्नमुखपंकजा ॥ वक्तुमारभताम्बा सा रहस्यं श्रुतिगूहितम् ॥ ७४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे देवीगीतायामेकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

॥ श्रीदेव्युवाच ॥ शृण्वन्तु निर्जराः सर्वे व्याहरंत्या वचो मम ॥ यस्य श्रवणमात्रेण मद्रूपत्वं प्रपद्यते ॥ १ ॥ अहमेवास पूर्वं तु तान्यत्किंचिन्नगाधिप ॥ तदात्मरूपं चित्संवित्परब्रह्मैकनामकम् ॥ २ ॥ अप्रतर्क्यमनिर्देश्यमनौपम्यमनामयम् ॥ तस्य काचित्स्वतः सिद्धा शक्तिर्मायेति विश्रुता ॥ ३ ॥ न सती सा नासती सा नोभयात्मा विरोधतः ॥ एतद्विलक्षणा काचिद्वस्तुभूताऽस्ति सर्वदा ॥४॥ पावकस्योष्णतेवेयमुष्णांशोरिव

यह बात सुनकर भगवती जगदम्बाका मुखकमल प्रसन्नतासे प्रफुल्लित हो गया। जिससे वे श्रुतियोंमें छिपे हुए रहस्यका प्रतिपादन करनेको उद्यत हो गयीं ॥ ७४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायामेकत्रिंशोऽध्यायः ॥३१ ॥

(हिमालयको भगवतीका ज्ञानोपदेश) श्रीदेवी बोलीं—मैं कह रही हूँ, समस्त देवगण मेरी बात सुन लें। इसके श्रवणमात्रसे मेरा सारूप्य प्राप्त हो जाता है ॥ १ ॥ हे पर्वतराज हिमालय! पहले केवल मैं ही थी। दूसरी किसी वस्तुकी सत्ता नहीं थी। उस समय मेरा रूप सत्, चित् एवं आनन्दमय परब्रह्म था ॥ २ ॥ वह रूप अप्रतर्क्य, अनिर्देश्य, अनौपम्य और अनामय है। उसी रूपसे कोई एक शक्ति स्वयं प्रकट हो गयी। उसका 'माया' नाम पड़ गया ॥ ३ ॥ वह माया न सती थी और न असती। इस सती और असतीके भेदसे शून्य वह

कोई एक विलक्षण वस्तु थी ॥ ४ ॥ अग्निमें जो प्रकाश और चन्द्रमामें जो चन्द्रिका है, वह उस मेरी शक्तिका ही अंश है। उस शक्तिको निश्चितरूपसे मेरी सहचरी समझना चाहिये ॥ ५ ॥ जीवोंका जीना और मरना उसी शक्तिके कर्म हैं। प्रलयके समय कुछ भी भेद नहीं रहा। सबके सब उसी शक्तिमें समा गये ॥ ६ ॥ अपनी उस शक्तिके सहयोगसे मैं बीजरूपमें परिणत हुई। वह शक्ति ही उस समय मेरा आधार और आवरण थी। इसीलिये उसका कुछ दोष मुझमें भी आ गया ॥ ७ ॥ मेरा बीजात्मकरूप चैतन्य ब्रह्मके सहयोगसे निमित्त तथा प्रपञ्चके परिणामसे 'समवायि कारण' कहलाने लगा ॥ ८ ॥ कुछ लोग शक्तिको 'तप' कहते हैं तथा दूसरे लोग 'तम' एवं 'जड़' भी कहा करते हैं। शैव-शास्त्रके तत्त्वदर्शी पुरुषोंने उस शक्तिके विषयमें परस्पर परामर्श करके कहा कि इसे 'ज्ञान', 'माया', 'प्रकृति', 'शक्ति' अथवा अजा भी कह सकते हैं ॥९॥ शैव सिद्धान्तका चिन्तन करनेवाले कुछ अन्य महापुरुषोंने कहा कि नहीं, यह 'अविद्या' कहलाती है ॥१०॥ इस प्रकार वेदोंमें उसका विविध नामोंसे वर्णन किया गया। उस शक्तिमें जड़ता और ज्ञाननाशकता स्पष्ट होनेसे उसका 'अमती' नाम युक्तिसंगत हो गया।

दीधितिः ॥ चन्द्रस्य चन्द्रिकैवेयं ममेयं सहजा ध्रुवा ॥ ५ ॥ तस्यां कर्माणि जीवानां जीवाः कालाश्च संचरे ॥ अभेदेन विलीनाः स्युः सुषुप्तौ व्यवहारवत् ॥ ६ ॥ स्वशक्तेश्च समायोगादहं बीजात्मतां गता ॥ स्वाधारावरणात्तस्या दोषत्वं च समागतम् ॥ ७ ॥ चैतन्यस्य समायोगान्निमित्तत्वं च कथ्यते ॥ प्रपञ्चपरिणामाच्च समवायित्वमुच्यते ॥८॥ केचित्तां तप इत्याहुस्तमः केचिज्जडं परे ॥ ज्ञानं मायां प्रधानं च प्रकृतिं शक्तिमप्यजाम् ॥९॥ विमर्श्य इति तां प्राहुः शैवशास्त्रविशारदाः ॥ अविद्यामितरे प्राहुर्वेदतत्त्वार्थचिंतकाः ॥ १० ॥ एवं नानाविधानि स्युर्नामानि निगमादिषु ॥ तस्या जडत्वं दृश्यत्वाज्ज्ञाननाशात्ततोऽसती ॥ ११ ॥ चैतन्यस्य न दृश्यत्वं दृश्यत्वे जडमेव तत् ॥ स्वप्रकाशं च चैतन्यं न परेण प्रकाशितम् ॥ १२ ॥ अनवस्थादोषसत्त्वान्न स्वेनापि प्रकाशितम् ॥ कर्मकर्त्रोर्विरोधः स्यात्तस्मात्तद्दीपवत्स्वयम् ॥ १३ ॥ प्रकाशमानमन्येषां भासकं विद्धि पर्वत ॥ अतएव च नित्यत्वं सिद्धसंवित्तनोर्मम ॥ १४ ॥ जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यादौ दृश्यस्य व्यभिचारतः ॥ संविदो व्यभिचारश्च नानुभूतोऽस्ति कर्हिचित् ॥ १५ ॥ यदि तस्याप्यनुभवस्तर्ह्ययं येन साक्षिणा ॥ अनुभूतः स एवात्र शिष्टः संविद्वपुः पुरा ॥ १६ ॥ अतएव च नित्यत्वं प्रोक्तं सच्छा-

॥ ११ ॥ चैतन्य दृश्य नहीं होता। उसमें यदि दृश्यता आ जाय तो उसे जड़ कहते हैं। क्योंकि चैतन्य स्वयं प्रकाश है। वह किसी दूसरेसे प्रकाशित नहीं होता ॥ १२ ॥ यदि कहें कि प्रकाश ही प्रकाशको प्रकाशित करता है तो ऐसा नहीं कह सकते। क्योंकि इसमें अनवस्था दोष आ जायगा। कर्म और कर्ता—ये परस्परविरोधी धर्म एकमें कैसे आ सकते हैं? अतएव मेरा रूप दीपकके समान स्वयंप्रकाश है ॥ १३ ॥ हे पर्वत! प्रकाशक दूसरोंको व्यक्त करनेमें उपयोगी होता है—यह समझ लो। अतएव मेरे संवित् शरीरकी नित्यता स्पष्ट सिद्ध है। यदि दृश्य मानें तो जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्थामें व्यभिचार-दोष आ जायगा। संवित् और व्यभिचारका कहीं एकमें ही अनुभव होना बिल्कुल असम्भव है ॥१४॥१५॥ यदि संवित्को अनुभवसिद्ध मानें तो जिस साक्षीसे वह अनुभूत होता है, वह साक्षी ही विशिष्ट माना जायगा और वही संवित् अर्थात् ज्ञानमय शरीरका रूप होगा ॥१६॥ अतएव उत्तम शास्त्रवेत्ता उसे नित्य कहते हैं।

दूसरेका प्रेमभाजन होनेसे उसमें आनन्दरूपता भी आ जाती है ॥१७॥ पहले मेरा अभाव था, सो नहीं। मैं तब भी थी। प्रेमीजन मेरे आस्पद थे। अन्य सभी वस्तुयें मिथ्या हैं। मैं उनका साथ नहीं देती—यह स्पष्ट है ॥ १८ ॥ अतएव मेरे रूपमें अपरिच्छिन्नता भी सिद्ध हो जाती है। ज्ञान कभी आत्माका धर्म नहीं होता। अन्यथा उसमें जड़ता आ सकती है ॥ १९ ॥ ज्ञानके किसी एक अंशमें जड़ता छिपी है—यह न कभी देखा गया और न देखा जा सकता है। ऐसे ही चिद्धर्मके विषयमें भी समझना चाहिये। एक चिद्धर्मसे दूसरा चित् क्या रहेगा ? ॥२०॥ इससे सिद्ध होता है कि आत्मा ज्ञानरूप, सुखरूप, सत्य, पूर्ण, असंग और द्वैतरहित है ॥ २१ ॥ वही आत्मा काम एवं कर्मसे सम्बन्ध रखनेवाली मायाके साथ होकर पूर्व अनुभूत संस्कार, काल-कर्मके विपाक एवं तत्त्वके अज्ञानवश सृष्टि करनेके विचारसे शरीर धारण कर लेता है। हे पर्वतराज ! यह मैंने अबुद्धिपूर्व सृष्टिक्रम बतलाया है ॥ २२ ॥ २३ ॥ हे हिमालय !

स्त्रकोविदैः ॥ आनन्दरूपता चास्याः परप्रेमास्पदत्वतः ॥१७॥ मा न भूवं हि भूयासमिति प्रेमात्मनि स्थितम् ॥ सर्वस्यान्यस्य मिथ्यात्वादसंगत्वं स्फुटं मम ॥१८॥ अपरिच्छिन्नताऽप्येवमत एव मता मम ॥ तच्च ज्ञानं नात्मधर्मो धर्मत्वे जडतात्मनः ॥१९॥ ज्ञानस्य जडशेषत्वं न दृष्टं न च संभवि ॥ चिद्धर्मत्वं तथा नास्ति चितश्चिन्न हि विद्यते ॥२०॥ तस्मादात्मज्ञानरूपा सुखरूपश्च सर्वदा ॥ सत्यः पूर्णोऽप्यसंगश्च द्वैतजालविवर्जितः ॥ २१ ॥ स पुनः कामकर्मादियुक्तया स्वीयमायया ॥ पूर्वानुभूतसंस्कारात् कालकर्मविपाकतः ॥ २२ ॥ अविवेकाच्च तत्त्वस्य सिसृक्षावान्प्रजायते ॥ अबुद्धिपूर्वः सर्गोऽयं कथितस्ते नगाधिप ॥ २३ ॥ एतद्धि यन्मया प्रोक्तं मम रूपमलौकिकम् ॥ अव्याकृतं तदव्यक्तं मायाशबलमित्यपि ॥ २४ ॥ प्रोच्यते सर्वशास्त्रेषु सर्वकारणकारणम् ॥ तत्त्वनामादिभूतं च सच्चिदानन्दविग्रहम् ॥ २५ ॥ सर्वकर्मघनीभूतमिच्छाज्ञानक्रियाश्रयम् ॥ ह्रींकारमन्त्रवाच्यं तदादितत्त्वं तदुच्यते ॥ २६ ॥ तस्मादाकाश उत्पन्नः शब्दतन्मात्ररूपकः ॥ भवेत्स्पर्शात्मको वायुस्तेजोरूपात्मकं पुनः ॥ २७ ॥ जलं रसात्मकं पश्चात्ततो गंधात्मिका धरा ॥ शब्दैकगुण आकाशो वायुः स्पर्शरवान्वितः ॥ २८ ॥ शब्दस्पर्शरूपगुणं तेज इत्युच्यते बुधैः ॥ शब्दस्पर्शरूपरसैरापो वेदगुणाः स्मृताः ॥२९॥ शब्दस्पर्शरूपरसगन्धैः पञ्चगुणा धरा ॥ तेभ्योऽभवन्महत्सूत्रं यल्लिंगं परिचक्षते ॥३०॥ सर्वात्मकं तत्संप्रोक्तं सूक्ष्मदेहोऽयमात्मनः ॥ अव्यक्तं कारणो देहः स चोक्तः पूर्वमेव हि ॥ ३१ ॥ यस्मिञ्जगद्बीजरूपं स्थितं लिंगोद्भवो यतः ॥ ततः

मैंने अपने जिस रूपका परिचय दिया है, वह रूप अलौकिक, अव्याकृत, अव्यक्त तथा मायाशबल भी है ॥ २४ ॥ समस्त शास्त्रोंमें इसे सम्पूर्ण कारणोंका कारण, तत्त्वोंका आदि तथा सच्चिदानन्दविग्रह बताया जाता है ॥ २५ ॥ कहते हैं कि यह दिव्य रूप सम्पूर्ण कर्मोंका समुदाय, इच्छापूर्वक ज्ञानका आश्रय तथा ह्रींकार-मन्त्रवाच्य आदितत्त्व है ॥ २६ ॥ मेरे इसी रूपसे शब्दतन्मात्रक आकाश, स्पर्शतन्मात्रक वायु तथा रूप-तन्मात्रक तेजकी क्रमशः उत्पत्ति हुई है ॥२७॥ इसके बाद रसात्मक जल उत्पन्न हुआ। फिर गन्धवाली पृथ्वी प्रकट हुई। आकाशमें केवल एक गुण हुआ—शब्द। स्पर्श और शब्द ये दो गुण वायुमें हुए ॥२८॥ विज्ञ पुरुष शब्द, स्पर्श और रूप—इन तीन गुणोंसे युक्त तेजको बताते हैं। शब्द, स्पर्श, रूप और रस—ये चार गुण जलके कहे गये हैं ॥२९॥ शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—इन पाँच गुणोंसे युक्त पृथ्वी हुई। उन्हींसे महत्तत्त्व उत्पन्न हुआ, जिसे लिङ्ग कहते हैं ॥३०॥ यही आत्माका सूक्ष्म शरीर

है। इसे सर्वात्मक कहते हैं। जिसमें यह जगत् बीजरूपसे स्थित रहता है, जिससे लिङ्ग-देहकी उत्पत्ति हुई है एवं जिसे पहले कह चुके हैं, वह अव्यक्त परब्रह्मका कारणशरीर है ॥ ३१ ॥ तदनन्तर पञ्चीकरणमार्गसे पाँच स्थूल भूत उत्पन्न हुए। अब उनकी स्थितिका वर्णन करते हैं। उपर्युक्त पाँचों भूतोंमें चार-चार भाग पृथक् किये गये। सबका एक इतर अंश था ही, उसे जोड़ देनेपर वे सभी पाँच-पाँच भागवाले बन गये ॥ ३२–३४ ॥ कार्यरूपमें परिणत होकर विराट् देह बन गया। यही परमात्माका स्थूल देह है। पाँचों भूतोंके सत्त्वांशसे श्रोत्र आदि पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ उत्पन्न हुईं ॥ ३५ ॥ हे राजेन्द्र ! वे सभी इन्द्रियाँ परस्पर सम्बद्ध रहीं। वृत्ति-भेदसे चार प्रकारवाला एक अन्तःकरण उत्पन्न हुआ ॥ ३६ ॥ जब संकल्प-विकल्पकी उलझनमें उलझा रहता है, तब अन्तःकरणको 'मन' कहते हैं। जिस समय संशयरहित सुनिश्चित वस्तु जाननेकी योग्यता प्राप्त हो जाती है, तब अन्तःकरण 'बुद्धि' हो जाता है ॥ ३७ ॥ अनुसंधान-वृत्तिके आनेपर अन्तःकरणकी 'चित्त' संज्ञा होती है और स्वरूपसे अहंकारवृत्ति उत्पन्न होनेपर इसी अन्तःकरणको 'अहङ्कार' कहते हैं ॥ ३८ ॥ फिर प्रत्येक पञ्चभूतमें जो राजस अंश थे, उनसे

स्थूलानि भूतानि पञ्चीकरणमार्गतः ॥ ३२ ॥ पञ्चसंख्यानि जायंते तत्प्रकारस्त्वथोच्यते ॥ पूर्वोक्तानि च भूतानि प्रत्येकं विभजेद्द्विधा ॥ ३३ ॥ एकैकं भागमेकस्य चतुर्धा विभजेद्गिरे ॥ स्वस्वेतरद्वितीयांशे योजनात्पञ्च पञ्च ते ॥ ३४ ॥ तत्कार्यं च विराड्देहः स्थूलदेहोऽयमात्मनः ॥ पञ्चभूत-स्थसत्त्वांशैः श्रोत्रादीनां समुद्भवः ॥ ३५ ॥ ज्ञानेन्द्रियाणां राजेन्द्र प्रत्येकं मिलितैस्तु तैः ॥ अन्तःकरणमेकं स्याद्वृत्तिभेदाच्चतुर्विधम् ॥ ३६ ॥ यदा तु संकल्पविकल्पकृत्यं तदा भवेत्तन्मन इत्यभिख्यम् ॥ स्याद् बुद्धिसंज्ञं च यदा प्रवेत्ति सुनिश्चितं संशयहीनरूपम् ॥ ३७ ॥ अनुसंधानरूपं तच्चित्तं च परिकीर्तितम् ॥ अहंकृत्यात्मवृत्त्या तु तदहंकारतां गतम् ॥ ३८ ॥ तेषां रजोंशैर्जातानि क्रमात्कर्मेन्द्रियाणि च ॥ प्रत्येकं मिलितैस्तैस्तु प्राणो भवति पंचधा ॥ ३९ ॥ हृदि प्राणो गुदेऽपानो नाभिस्थस्तु समानकः ॥ कंठदेशेऽप्युदानः स्याद्व्यानः सर्वशरीरगः ॥४०॥ ज्ञानेन्द्रियाणि पंचैव पंच कर्मेंद्रियाणि च ॥ प्राणादिपञ्चकं चैव धिया च सहितं मनः ॥४१॥ एतत्सूक्ष्मं शरीरं स्यान्मम लिंगं यदुच्यते ॥ तत्र या प्रकृतिः प्रोक्ता सा राजन्द्विविधा स्मृता ॥ ४२ ॥ सत्त्वात्मिका तु माया स्यादविद्या गुणमिश्रिता ॥ स्वाश्रयं या तु संरक्षेत्सा मायेति निगद्यते ॥ ४३ ॥ तस्यां यत्प्रतिबिंबं स्याद्बिंबभूतस्य चेशितुः ॥ स ईश्वरः समाख्यातः स्वाश्रयज्ञानवान्परः ॥ ४४ ॥ सर्वज्ञः सर्वकर्ता च सर्वानुग्रहकारकः ॥ अविद्यायां तु

क्रमशः विभिन्न कर्मेन्द्रियोंकी उत्पत्ति हुई। प्रत्येक इन्द्रियका परस्पर सम्बन्ध हो गया। इसके बाद उन्हींके राजस अंशसे पाँच प्रकारके प्राण उत्पन्न हुए ॥ ३९ ॥ 'प्राण' हृदयमें, 'अपान' गुदामें, 'समान' नाभिमें, 'उदान' कण्ठमें तथा 'व्यान' सम्पूर्ण शरीरमें इस प्रकार पाँच वायु विराजमान हुए ॥ ४० ॥ इस तरह पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ तथा बुद्धिसहित मन—ये सत्रह सूक्ष्म शरीरके रूपमें परिणत हो गये। यही सूक्ष्म शरीर लिङ्ग-शरीर कहलाता है। यों कारण, सूक्ष्म और लिङ्ग-शरीरके रूपका वर्णन करके अब जीव और ईश्वरके विभागका कारण कहा जाता है। हे राजन् ! उस समय जो प्रकृति नामसे विख्यात थी, उसके भी दो भेद हैं–॥ ४१ ॥ 'माया' और 'अविद्या'। शुद्ध सत्त्वप्रधान माया है और मलिनगुणप्रधाना अविद्या। जो अपने आश्रयमें आनेवालेकी रक्षा करती है, उसे माया कहते हैं ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ उस शुद्ध-सत्त्वप्रधाना मायाके साथ जो स्थित रहता है, वही

'ईश्वर' कहलाता है। उस ईश्वरको सबकी पूर्ण जानकारी रहती है ॥४४॥ वह सर्वज्ञानी, सबका उत्पादक तथा सबपर कृपा करनेवाला है। हे पर्वतराज! मलिन सत्त्वप्रधाना अविद्यामें जो ईश्वरका प्रतिबिम्ब पड़ा, उसे 'जीव' कहते हैं। जीवमें सुख और दुःखका भान हुआ करता है। पूर्वोक्त तीन शरीरोंसे ईश्वर और जीव—दोनोंका सम्बन्ध है। ये दोनों तीन नामके अभिमानी होनेसे तीन कहलाते हैं। जैसे—देहाभिमानी जीव 'प्राज्ञ' कहलाता है, सूक्ष्म-देहाभिमानी 'तैजस' और स्थूल-देहाभिमानी 'विश्व' ॥ ४५–४७ ॥ इसी प्रकार ईश, सूत्र और विराट्पदसे ईश्वर भी तीन नामसे प्रसिद्ध है। अर्थात् जीव 'व्यक्तिरूप' है और द्वितीय यानी ईश्वर 'समष्टिदेहाभिमानी' माना जाता है। वही सर्वेश्वर फिर स्वयं जीवोंपर कृपा करनेके लिए नाना भोगोंके आश्रयभूत इस विविध जगत्को उत्पन्न करता है। हे राजन्! वह ईश्वर मेरी ही शक्तिसे प्रेरित होकर निरन्तर कार्य करता रहता है ॥ ४८–५० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा' भाषाटीकायां द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

यत्किंचित्प्रतिबिंबं नगाधिप ॥ ४५ ॥ तदेव जीवसंज्ञं स्यात्सर्वदुःखाश्रयं पुनः ॥ द्वयोरपीह संप्रोक्तं देहत्रयमविद्यया ॥ ४६ ॥ देहत्रयाभिमानाच्चाप्यभून्नामत्रयं पुनः ॥ प्राज्ञस्तु कारणात्मा स्यात्सूक्ष्मदेही तु तैजसः ॥४७॥ स्थूलदेही तु विश्वाख्यस्त्रिविधः परिकीर्तितः ॥ एवमीशोऽपि संप्रोक्त ईशसूत्रविराट्पदैः ॥ ४८ ॥ प्रथमो व्यष्टिरूपस्तु समष्ट्यात्मा परः स्मृतः ॥ स हि सर्वेश्वरः साक्षाज्जीवानुग्रहकाम्यया ॥ ४९ ॥ करोति विविधं विश्वं नानाभोगाश्रयं पुनः ॥ मच्छक्तिप्रेरितो नित्यं मयि राजन्प्रकल्पितः ॥५०॥ इति श्रीदेवीभागवते सप्तमस्कन्धे देवीगीतायां द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥३२॥

॥ देव्युवाच ॥ मन्मायाशक्तिसंक्लृप्तं जगत्सर्वं चराचरम् ॥ साऽपि मत्तः पृथङ्माया नास्त्येव परमार्थतः ॥ १ ॥ व्यवहारदृशा सेयं विद्या मायेति विश्रुता ॥ तत्त्वदृष्ट्या तु नास्त्येव तत्त्वमेवास्ति केवलम् ॥ २ ॥ साऽहं सर्वं जगत्सृष्ट्वा तदंतः प्रविशाम्यहम् ॥ मायाकर्मादिसहिता गिरे प्राणपुरःसरा ॥ ३ ॥ लोकांतरगतिर्नोचेत्कथं स्यादिति हेतुना ॥ यथा यथा भवंत्येव मायाभेदास्तथा तथा ॥ ४ ॥ उपाधिभेदाद्भिन्नाऽहं घटाकाशादयो यथा ॥ उच्चनीचादिवस्तूनि भासयन्भास्करः सदा ॥ ५ ॥ न दुष्यति तथैवाहं दोषैर्लिप्ता कदापि न ॥ मयि बुद्ध्यादिकर्तृत्वं मध्यस्थैवापरे जनाः ॥ ६ ॥ वदंति चात्मा कर्मेति विमूढा न सुबुद्धयः ॥ अज्ञानभेदतस्तद्वन्मायाया भेदतस्तथा ॥ ७ ॥ जीवेश्वरविभागश्च कल्पितो माययैव

(भगवतीका विराटरूप दिखाना) देवीने कहा—हे हिमालय! मेरी मायाशक्तिने सम्पूर्ण चराचर जगत्की रचना की है। परमार्थदृष्टिसे विचार किया जाय तो वह माया भी मुझसे कोई भिन्न वस्तु नहीं है ॥ १ ॥ व्यवहारकी दृष्टिसे यही विद्या एवं माया नामसे प्रसिद्ध है। तत्त्वदृष्टिसे पृथक् कुछ नहीं है। दोनों तत्त्व एक ही हैं ॥ २ ॥ तत्त्व मैं हूँ, जो विलीन हो जाती हूँ। हे पर्वतराज! अपने माया एवं विद्यासंज्ञक कर्मके साथ प्राणोंको आगे करके मेरा प्रवेश होता है ॥ ३ ॥ कारण यह है कि यदि मैं ऐसा न करूँ तो प्राणियोंके जन्मने और मरनेकी परम्परा चालू नहीं रहे। मायाके भेदानुसार मेरे विभिन्न कार्य होते हैं ॥ ४ ॥ जैसे एक ही आकाश घटाकाश और महाकाश आदि अनेक नामोंसे व्यवहृत होता है, वैसे ही मैं एक होती हुई भी उपाधिभेदसे भिन्न हूँ। जिस प्रकार सूर्य उत्तम और निकृष्ट सभी वस्तुओंको प्रकाशित करता है, परन्तु वह दूषित नहीं होता। वैसे ही जीव और ईश्वरका विभाग माया

द्वारा कल्पित है। घटाकाश और महाकाशकी भाँति जीवात्मा और परमात्माके भेदको भी काल्पनिक मानना चाहिये ॥ ५-८ ॥ जैसे मायाके प्रभावसे ही जीव अनेक हैं, न कि अपनी स्वतन्त्रतासे। वैसे ही मायाकी अधीनता स्वीकार करनेवाले ब्रह्मादि शासकोंमें भी विविधताका भान होता है। देह और इन्द्रिय आदि संघातरूपी वासनाके भेदको उत्पन्न करनेवाली अविद्या जीवके भेदमें कारण है। हे हिमालय ! गुणसम्बन्धी वासनाके भेदको जो विभाजित करती है, वह माया है। हे धरणीधर! मुझमें यह सम्पूर्ण संसार ओतप्रोत है ॥९-१२॥ क्योंकि देहाभिमानी ईश्वर मैं हूँ। लिङ्गदेहाभिमानी विष्णु एवं स्थूल-देहाभिमानी ब्रह्मा मैं हूँ। विष्णु, रुद्र, गौरी, सरस्वती और लक्ष्मी मेरे रूप हैं ॥ १३ ॥ मैं सूर्य, चन्द्रमा एवं नक्षत्रगण हूँ। पशु, पक्षी, चाण्डाल, तस्कर, व्याध, क्रूरकर्मी, सत्कर्मी, महाजन, स्त्री, पुरुष और नपुंसक ये सब कुछ मैं ही हूँ— इसमें कोई संशय नहीं है ॥ १४ ॥ १५ ॥ जो कोई भी वस्तु जहाँ भी देखने एवं

तु ॥ घटाकाशमहाकाशविभागः कल्पितो यथा ॥८॥ तथैव कल्पितो भेदो जीवात्मपरमात्मनोः ॥ यथा जीवबहुत्वं च माययैव न च स्वतः ॥९॥ तथेश्वरबहुत्वं च मायया न स्वभावतः॥ देहेन्द्रियादिसंघातवासनाभेदभेदिता ॥१०॥ अविद्या जीवभेदस्य हेतुर्नान्यः प्रकीर्तितः ॥ गुणानां वासनाभेदभेदिता या धराधर ॥ ११ ॥ माया सा परभेदस्य हेतुर्नान्यः कदाचन ॥ मयि सर्वमिदं प्रोतमोतं च धरणीधर ॥१२॥ ईश्वरोऽहं च सूत्रात्माविराडात्माऽहमस्मि च॥ ब्रह्माऽहं विष्णुरुद्रौ च गौरी ब्राह्मी च वैष्णवी॥१३॥ सूर्योऽहं तारकाश्चाहं तारकेशस्तथाऽस्म्यहम् ॥ पशुपक्षिस्वरूपाऽहं चांडालोऽहं च तस्करः ॥१४॥ व्याधोऽहं क्रूरकर्माऽहं सत्कर्माऽहं महाजनः ॥स्त्रीपुन्नपुंसकाकारोऽप्यहमेव न संशयः ॥१५॥ यच्च किंचित्क्वचिद्वस्तु दृश्यते श्रूयतेऽपि वा ॥ अंतर्बहिश्च तत्सर्वं व्याप्याहं सर्वदा स्थिता ॥ १६ ॥ न तदस्ति मया त्यक्तं वस्तु किंचिच्चराचरम् ॥ यद्यस्ति चेत्तच्छून्यं स्याद्वंध्यापुत्रोपमं हि तत् ॥१७॥ रज्जुर्यथा सर्पमालाभेदैरेका विभाति हि ॥ तथैवेशादिरूपेण भाम्यहं नात्र संशयः ॥ १८ ॥ अधिष्ठानातिरेकेण कल्पितं तन्न भासते ॥ तस्मान्मत्सत्तयैवैतत्सत्तावान्नान्यथा भवेत् ॥ १९ ॥ हिमालय उवाच ॥ यथा वदसि देवेशि समष्ट्यात्मवपुस्त्विदम् ॥ तथैव द्रष्टुमिच्छामि यदि देवि कृपा मयि ॥ २० ॥ व्यास उवाच ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा सर्वे देवाः सविष्णवः ॥ ननंदुर्मुदितात्मानः पूजयंतश्च

सुननेमें आती है—चाहे वह भीतर हो या बाहर—उन सबमें व्यापकरूपसे सदा मैं ही स्थित रहती हूँ ॥१६॥ चराचर कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है, जो मुझसे अलग हो। यदि मुझसे रहित मानें यो उसके साथ बन्ध्यापुत्रका उदाहरण संगत हो सकता है॥१७॥ जिस प्रकार एक ही रस्सी भ्रमवश सर्प अथवा मालाके रूपमें प्रतीत होती है, वस्तुतः वह है एक रस्सी ही। वैसे ही ईशादिरूपसे मेरा केवल भान होता है-इसमें संदेह नहीं करना चाहिये ॥ १८ ॥ अधिष्ठानकी सत्ताके अतिरिक्त कल्पित वस्तुका भान नहीं होता। अतएव मेरी सत्तासे ही यह चराचर जगत् सत्तावान् है, अन्यथा यह कुछ नहीं है ॥१९॥ हिमालयने कहा-देवेशि! तुम अपने इस सर्वाभिमानी विराट् रूपका जैसा वर्णन करती हो, वैसे ही रूपको मैं देखना चाहता हूँ। मुझपर कृपा हो तो दिखा दो ॥ २० ॥ व्यासजी कहते हैं-हे राजन् ! हिमालयकी यह बात सुनकर सम्पूर्ण देवताओंका हृदय आनन्दसे भर गया। वे उनके वचनका आदर करते हुए बोले-'हम सब भी

यही चाहते हैं।' ॥ २१ ॥ तब देवताओंकी इच्छा जानकर भक्तोंकी कामना पूर्ण करनेवाली भगवती शिवाने अपना रूप सबके सामने प्रकट किया ॥ २२ ॥ फिर तो महादेवीके सर्वोत्तम विराट्रूपका देवता दर्शन करने लगे। उन्होंने देखा आकाश देवीका मस्तक था। चन्द्रमा और सूर्य नेत्र थे ॥२३॥ दिशाएँ कानके रूपमें परिणत थीं। वेद वाणी और वायु प्राण थे। विश्व हृदय था। पृथ्वी जाँघ थी ॥ २४ ॥ पाताल नाभि, ज्योतिश्चक्र छाती, महर्लोक ग्रीवा और जनलोक मुख था ॥ २५ ॥ सत्यलोकसे नीचे रहनेवाला तपोलोक ललाट था। इन्द्रप्रभृति बाँह थे। शब्द श्रोत्र था ॥२६॥ विद्वान् पुरुषोंका कथन है कि अश्विनीकुमार उस विराट्रूपिणी भगवतीकी नासिका थे। गन्ध घ्राण-इन्द्रिय था। अग्निमय मुख था। दिन और रात दोनों पलकें थीं ॥ २७ ॥ ब्रह्मा भौंहके स्थानमें थे। जल तालु था। रस जिह्वा बना था। यमराज दाढ़ थे ॥ २८ ॥ उन महेश्वरीके दाँत स्नेह थे, माया हँसी और सृष्टि कटाक्ष थे। लज्जा ओंठ थी।

तद्वचः ॥ २१ ॥ अथ देवमतं ज्ञात्वा भक्तकामदुघा शिवा ॥ अदर्शयन्निजं रूपं भक्तकामप्रपूरणी ॥ २२ ॥ अपश्यंस्ते महादेव्या विराड्रूपं परात्परम् ॥ द्यौर्मस्तकं भवेद्यस्य चंद्रसूर्यौ च चक्षुषी ॥२३॥ दिशः श्रोत्रे वचो वेदाः प्राणो वायुः प्रकीर्तितः ॥ विश्वं हृदयमित्याहुः पृथिवी जघनं स्मृतम् ॥ २४ ॥ नभस्तलं नाभिसरो ज्योतिश्चक्रमुरःस्थलम् ॥ महर्लोकस्तु ग्रीवा स्याज्जनलोको मुखं स्मृतम् ॥ २५ ॥ तपोलोको रराटिस्तु सत्यलोकादधः स्थितः ॥ इन्द्रादयो बाहवः स्युः शब्दः श्रोत्रं महेशितुः ॥२६॥ नासत्यदस्रौ नासे स्तो गंधो घ्राणं स्मृतो बुधैः ॥ मुखमग्निः समाख्यातो दिवारात्री च पक्ष्मणी ॥ २७ ॥ ब्रह्मस्थानं भ्रूविजृम्भोऽप्यापस्तालुः प्रकीर्तितः ॥ रसो जिह्वा समाख्याता यमा दंष्ट्राः प्रकीर्तिताः ॥ २८ ॥ दंताः स्नेहकला यस्य हासो माया प्रकीर्तिता ॥ सर्गस्त्वपांगमोक्षः स्याद्व्रीडोर्ध्वोष्ठो महेशितुः ॥ २९ ॥ लोभः स्यादधरोष्ठोऽस्या धर्ममार्गस्तु पृष्ठभूः ॥ प्रजापतिश्च मेढ्रं स्याद्याः सृष्टा जगतीतले ॥३०॥ कुक्षिः समुद्रा गिरयोऽस्थीनि देव्या महेशितुः ॥ नद्यो नाड्यः समाख्याता वृक्षाः केशाः प्रकीर्तिताः ॥३१॥ कौमारयौवनजरा वयोऽस्या गतिरुत्तमा ॥ बलाहकास्तु केशाः स्युः संध्ये ते वाससी विभोः ॥३२॥ राजञ्छ्रीजगदंबायाश्चंद्रमास्तु मनः स्मृतः ॥ विज्ञानशक्तिस्तु हरी रुद्रोऽन्तःकरणं स्मृतम् ॥३३॥ अश्वादिजातयः सर्वाः श्रोणिदेशे स्थिता विभोः ॥ अतलादिमहालोकाः कट्यधोभागतां गताः ॥ ३४ ॥ एतादृशं महारूपं ददृशुः सुरपुंगवाः ॥ ज्वालामालासहस्राढ्यं लेलिहानं च जिह्वया ॥ ३५ ॥ दंष्ट्राकटकटारावं वमंतं

॥ २९ ॥ उस विराट् महेश्वरीका निचला ओंठ लोभ था। अधर्ममार्ग पीठ कहलाता था। जो जगत्में स्रष्टा कहलाते हैं, वे प्रजापति ब्रह्मा उस विराट्रूपमें लिङ्ग थे ॥ ३० ॥ समुद्र पेट था, पर्वत हड्डी थे, उन महेश्वरीकी नाड़ियाँ नदी थीं, वृक्षोंके समूह केश थे ॥३१॥ समुचित रूपसे व्याप्त कुमार, यौवन और बुढ़ापा—ये भगवती महेश्वरीके आयु थे। मेघ सिरके बाल थे। प्रातः और सायं—दोनों संध्याएँ दो वस्त्र थीं ॥ ३२ ॥ हे राजन्! उस समय भगवती जगदम्बाका मन चन्द्रमा था। हरि विवेकशक्ति और रुद्र अन्तःकरण थे ॥ ३३ ॥ अश्वजातिसे सम्बन्ध रखनेवाले जितने प्राणी हैं, वे सभी महेश्वरीके कटिभाग थे। अतलसे लेकर पातालतक जितने महान् लोक हैं, वे जगदम्बाके कमरसे नीचेके भाग थे ॥३४॥ भगवती जगदम्बाके ऐसे विराट् रूपके उन श्रेष्ठ देवताओंने दर्शन किये। उनके शरीरसे हजारों प्रकारकी ज्वालाएँ निकल रही थीं। जीभसे बार-बार ओंठ चाटते रहना उनका स्वाभाविक गुण था।

॥ ३५ ॥ कटकटाकर चीखना और आँखों द्वारा आग बरसाना मानों कभी बन्द ही नहीं होता था। भाँति-भाँतिके आयुध उनके हाथोंमें शोभा पा रहे थे। उनका अत्यन्त शूरवीर वेष था और ब्राह्मण-क्षत्रिय उनके आहार थे ॥ ३६ ॥ वह विग्रह हजार मस्तक, हजार नेत्र और हजार चरणोंसे सम्पन्न था। करोड़ों बिजलियों और सूर्योंके समान उससे प्रभा फैल रही थी ॥३७॥ अत्यन्त भयंकर वह रूप था। अत्यन्त क्रूर आकृति थी। देखते ही हृदय और नेत्र आतङ्कित हो जाते थे। उस रूपको देखकर सब देवता 'हाहाकार' मचाने लगे ॥ ३८ ॥ उनके हृदय काँप उठे। उन्हें घोर मूर्छा आ गयी। उन्हें स्मरण भी न रहा कि यह भगवती जगदम्बा हैं ॥ ३९ ॥ उस समय उन महाविभुके चारों ओर जो वेद विराजमान थे, उन्होंने मूर्छित देवताओंको चेतना प्रदान की ॥ ४० ॥ जब देवता चेतमें आ गये, तब उन्होंने धैर्य धारण करके श्रेष्ठ श्रुतिको याद किया और आँसूसे भरी हुई आँखों तथा गद्गद वाणीमें स्तुति करनेके लिए प्रस्तुत हो गये। देवता बोले—हे माता! हम तुम्हारी दीन संतान हैं। अपराध क्षमा करके हमारी रक्षा करो ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ हे देवेशि! हम तुम्हारे रूपको देखकर डर गये हैं।

वह्निमक्षिभिः ॥ नानायुधधरं वीरं ब्रह्मक्षत्रौदनं च यत् ॥३६॥ सहस्रशीर्षनयनं सहस्रचरणं तथा ॥ कोटिसूर्यप्रतीकाशं विद्युत्कोटिसमप्रभम् ॥३७॥ भयंकरं महाघोरं हृदक्षणोस्त्रासकारकम् ॥ ददृशुस्ते सुराः सर्वे हाहाकारं च चक्रिरे ॥३८॥ विकंपमानहृदया मूर्च्छामापुर्दुरत्ययाम् ॥ स्मरणं च गतं तेषां जगदंबेयमित्यपि ॥ ३९ ॥ अथ ते ये स्थिता वेदाश्चतुर्दिक्षु महाविभोः ॥ बोधयामासुरत्युग्रं मूर्छातो मूर्च्छितान्सुरान् ॥ ४० ॥ अथ ते धैर्यमालंब्य लब्ध्वा च श्रुतिमुत्तमाम् ॥ प्रेमाश्रुपूर्णनयना रुद्धकंठास्तु निर्जराः ॥ ४१ ॥ बाष्पगद्गदया वाचा स्तोतुं समुपचक्रिरे ॥ देवा ऊचुः ॥ अपराधं क्षमस्वाम्ब पाहि दीनांस्त्वदुद्भवान् ॥ ४२ ॥ कोपं संहर देवेशि सभया रूपदर्शनात् ॥ का ते स्तुतिः प्रकर्तव्या पामरैर्निर्जरैरिह ॥ ४३ ॥ स्वस्याप्यज्ञेय एवासौ यावान्यश्च स्वविक्रमः ॥ तदर्वाग्जायमानानां कथं स विषयो भवेत् ॥४४॥ नमस्ते भुवनेशानि नमस्ते प्रणवात्मिके ॥ सर्ववेदान्तसंसिद्धे नमो ह्रींकारमूर्तये ॥४५॥ यस्मादग्निः समुत्पन्नो यस्मात्सूर्यश्च चन्द्रमाः ॥ यस्मादोषधयः सर्वास्तस्मै सर्वात्मने नमः ॥४६॥ यस्माच्च देवाः संभूताः साध्याः पक्षिण एव च ॥ पशवश्च मनुष्याश्च तस्मै सर्वात्मने नमः ॥ ४७ ॥ प्राणापानौ व्रीहियवौ तपः श्रद्धा ऋतं तथा ॥ ब्रह्मचर्यं विधिश्चैव यस्मात्तस्मै नमो नमः ॥ ४८ ॥ सप्त प्राणार्चिषो यस्मात्समिधः सप्त एव च ॥ होमाः सप्त तथा लोकास्तस्मै सर्वात्मने नमः ॥ ४९ ॥

हम-जैसे मन्दबुद्धि देवताओं द्वारा तुम्हारी कौन-सी स्तुति सम्पन्न हो सकती है? ॥ ४३ ॥ तुम्हारा पराक्रम कितना है और कैसा है—इसे तुम स्वयं भी नहीं जानतीं। तब वह पराक्रम हम आधुनिक देवताओंके जाननेका विषय कैसे हो सकता है? ॥ ४४ ॥ भूमण्डलपर शासन करनेवाली, प्रणवरूपसे सुशोभित, समस्त वेदान्तोंसे संसिद्ध तथा ह्रींकाररूपको धारण करनेवाली हे भगवती भुवनेश्वरी! तुम्हें बार-बार नमस्कार है ॥४५॥ जो अग्निका उद्गमस्थान हैं, जिनसे सूर्य एवं चन्द्रमा उत्पन्न हुए हैं तथा जिनसे ओषधियोंकी उत्पत्ति हुई है, उन सर्वस्वरूपिणी भगवतीको प्रणाम है ॥ ४६ ॥ जिससे समस्त देवता, साध्य, पक्षी, पशु तथा मनुष्य उत्पन्न हुए हैं, उन सर्वात्मिका भगवतीको प्रणाम है ॥ ४७ ॥ प्राण, अपान, व्रीहि, यव, तप, श्रद्धा, सत्य, ब्रह्मचर्य और विधि—ये जिनसे उत्पन्न हुए हैं, उन भगवतीको बार-बार नमस्कार है ॥४८॥ सातों प्राण, सात समिधाएँ, सात हवन तथा सात लोक—इनका जहाँसे उत्थान

होता है, उन सर्वस्वरूपिणी भगवतीके लिये बार-बार नमस्कार है ॥४९॥ जिनमें समुद्र, पर्वत, औषध और सम्पूर्ण रस उत्पन्न होते हैं, उन भगवतीको बार-बार नमस्कार है ॥५०॥ यज्ञ, दीक्षा, यूप, दक्षिणा, ऋचा, यजुष तथा साममन्त्रकी रचना करनेवाली सर्वात्मा भगवतीको बार-बार नमस्कार है ॥५१॥ हे माता! आगे-पीछे, अगल-बगल, नीचे-ऊपर चारों ओरसे तुम्हें बार-बार प्रणाम है ॥५२॥ हे देवेशि! इस अलौकिक रूपका संवरण करके हमें वही परम सुन्दर सौम्य रूप पुनः दिखानेकी कृपा करो ॥५३॥ व्यासजी कहते हैं—हे राजन्! भगवती जगदम्बा कृपाकी वारिधि हैं। देवताओंको डरे हुए देखकर उन्होंने अपना भयंकर रूप छिपा लिया और उसी क्षण उन्हें अपने मनोहर रूपके दर्शन कराये ॥५४॥ उस समय देवी पाश, अंकुश, वर और अभय-मुद्रा धारण किये हुए थीं। उनके सभी अङ्ग कोमल थे। आँखोंमें करुणा भरी थी। कमल-जैसा मुख मुसकानसे शोभा पा रहा था ॥५५॥ जब देवताओंने देवीके उस कमनीय रूपको देखा, तब उनका सारा भय भाग गया। शान्तचित्त होकर हर्षपूर्वक गद्गद वाणीसे वे भगवतीको प्रणाम करने लगे ॥५६॥ इति श्रीदेवीभागवते सप्तमस्कन्धे भाषाटीकायां त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३३॥

यस्मात्समुद्रा गिरयः सिंधवः प्रचरंति च ॥ यस्मादोषधयः सर्वा रसास्तस्मै नमो नमः ॥५०॥ यस्माद्यज्ञः समुद्भूतो दीक्षा यूपश्च दक्षिणाः ॥ ऋचो यजूंषि सामानि तस्मै सर्वात्मने नमः ॥५१॥ नमः पुरस्तात्पृष्ठे च नमस्ते पार्श्वयोर्द्वयोः ॥ अध ऊर्ध्वं चतुर्दिक्षु मातर्भूयो नमो नमः ॥५२॥ उपसंहर देवेशि रूपमेतदलौकिकम् ॥ तदेव दर्शयास्माकं रूपं सुन्दरसुन्दरम् ॥ ५३ ॥ व्यास उवाच ॥ इति भीतान्सुरान्दृष्ट्वा जगदंबा कृपार्णवा ॥ संहृत्य रूपं घोरं तद्दर्शयामास सुन्दरम् ॥ ५४ ॥ पाशांकुशवराभीतिधरं सर्वांगकोमलम् ॥ करुणापूर्णनयनं मंदस्मितमुखांबुजम् ॥ ५५ ॥ दृष्ट्वा तत्सुन्दरं रूपं तदा भीतिविवर्जिताः ॥ शांतचित्ताः प्रणेमुस्ते हर्षगद्गदनिःस्वनाः ॥५६॥ इति श्रीदेवीभागवते सप्तमस्कन्धे देवीगीतायां त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३३॥

॥ श्रीदेव्युवाच ॥ क्व यूयं मन्दभाग्या वै क्वेदं रूपं महाद्भुतम् ॥ तथापि भक्तवात्सल्यादीदृशं दर्शितं मया ॥ १ ॥ न वेदाध्ययनैर्न दानैस्तपसेज्यया ॥ रूपं द्रष्टुमिदं शक्यं केवलं मत्कृपां विना ॥२॥ प्रकृतं शृणु राजेन्द्र परमात्माऽत्र जीवताम् ॥ उपाधियोगात्संप्राप्तः कर्तृत्वादिकमप्युत ॥३॥ क्रिया करोति विविधा धर्माधर्मैकहेतवः ॥ नानायोनीस्ततः प्राप्य सुखदुःखैश्च युज्यते ॥ ४ ॥ पुनस्तत्संस्कृतिवशान्नानाकर्मरतः सदा ॥ नानादेहान्समाप्नोति सुखदुःखैश्च युज्यते ॥ ५ ॥ घटीयंत्रवदेतस्य न विरामः कदापि हि ॥ अज्ञानमेव मूलं स्यात्ततः कामः क्रियास्ततः ॥ ६ ॥ तस्मादज्ञा-

(पुनः ज्ञानोपदेश) श्रीदेवीने कहा—कहाँ तुम जैसे मन्दभाग्य प्राणी और कहाँ यह मेरा अद्भुत रूप। तथापि भक्तवत्सलताके कारण मैंने तुम्हें यह रूप दिखला दिया है। मेरी कृपाको छोड़कर वेदाध्ययन, योग, दान, तप और यज्ञ कोई भी साधन इस रूपको दिखानेमें समर्थ नहीं हो सकता ॥ १ ॥ २ ॥ हे राजन्! अब प्राकृत विषय अर्थात् ब्रह्मविद्याका जो उपदेश चल रहा था, उसे सुनो। परमात्मा ही उपाधिभेदसे जीवसंज्ञा प्राप्त करता है। फिर उसमें कर्तव्यगुण आ जाते हैं। धर्म-अधर्महेतुक नाना प्रकारके कर्म करनेकी उसमें क्षमता आ जाती है। जीव होनेके कारण वह नाना योनियोंमें जन्म लेकर सुख-दुःख भोगता है ॥ ३ ॥ ४ ॥ फिर अपने संस्कारोंके प्रभावसे अनेक योनियों तथा कर्मोंमें उसकी प्रवृत्ति हो जाती है। फलस्वरूप उसे भाँति-भाँतिके शरीर धारण करने पड़ते हैं। सुख-दुःखसे तो कभी भी उसे छुटकारा नहीं मिलता ॥ ५ ॥ घटी यन्त्रकी भाँति इस जीवको

कभी विश्राम करनेका अवसर ही नहीं मिलता। काम और क्रियाका क्रम निरन्तर चालू रहता है। इसमें कारण केवल 'अज्ञान' ही है ॥ ६ ॥ अतः अज्ञानका नाश करनेके लिये मनुष्यको सदा प्रयत्न करना चाहिये। अज्ञानका सर्वथा मिट जाना ही जीवनकी सफलता है ॥ ७ ॥ पुरुषार्थकी समाप्ति तथा जीवन्मुक्त दशाकी उपलब्धि अज्ञाननाशपर ही निर्भर है। इसीको श्रेष्ठ विद्या कहते हैं ॥ ८ ॥ हे हिमालय! अज्ञानसे उत्पन्न कर्म अज्ञानको दूर करनेमें सफल नहीं हो सकता। क्योंकि ये परस्परविरोधी धर्म हैं। बल्कि कर्म द्वारा अज्ञान नष्ट होनेकी आशा करना ही व्यर्थ है ॥ ९ ॥ क्योंकि अनर्थदायी कर्म अकस्मात् होते रहते हैं। राग-द्वेष आदि अनर्थोंका क्रम कभी बंद नहीं होता ॥ १० ॥ अतः मनुष्यका कर्तव्य है कि सारा प्रयत्न ज्ञानोपार्जनमें लगा दे। समुच्चयवादी कहते हैं—'कुर्वन्नेवेह कर्माणि'—इस श्रुतिके अनुसार कर्म आवश्यक है ॥ ११ ॥ साथ ही कैवल्यपदकी प्राप्तिमें साधक होनेके कारण ज्ञानकी भी आवश्यकता है। हितचिन्तक कर्म ज्ञानका सहायक होकर रहता है ॥ १२ ॥ पर उनका यह कहना ठीक नहीं है। कारण, दोनों परस्पर विरोधी हैं। क्योंकि हृदयकी ग्रन्थिका

ननाशाय यतेत नियतं नरः ॥ एतद्धि जन्मसाफल्यं यदा ज्ञानस्य नाशनम् ॥७॥ पुरुषार्थसमाप्तिश्च जीवन्मुक्तदशाऽपि च ॥ अज्ञाननाशने शक्ता विद्यैव तु पटीयसी ॥ ८ ॥ न कर्म तज्जं नोपास्तिर्विरोधाभावतो गिरे ॥ प्रत्युताशा ज्ञाननाशे कर्मणा नैव भाव्यताम् ॥९॥ अनर्थदानि कर्माणि पुनः पुनरुशंति हि ॥ ततो रागस्ततो द्वेषस्ततोऽनर्थो महान्भवेत् ॥ १० ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन ज्ञानं संपादयेन्नरः ॥ कुर्वन्नेवेह कर्माणीत्यतः कर्माप्यावश्यकम् ॥११॥ ज्ञानादेव हि कैवल्यमतः स्यात्तत्समुच्चयः ॥ सहायतां व्रजेत्कर्म ज्ञानस्य हितकारि च ॥१२॥ इति केचिद्वदंत्यत्र तद्विरोधान्न संभवेत् ॥ ज्ञानाद्धृद्ग्रंथिभेदः स्याद्धृद्ग्रंथौ कर्मसंभवः ॥ १३ ॥ यौगपद्यं न संभाव्यं विरोधात्तु ततस्तयोः ॥ तमःप्रकाशयोर्यद्वद्यौगपद्यं न संभवि ॥ १४ ॥ तस्मात्सर्वाणि कर्माणि वैदिकानि महामते ॥ चित्तशुद्ध्यंतमेव स्युस्तानि कुर्यात्प्रयत्नतः ॥ १५ ॥ शमो दमस्तितिक्षा च वैराग्यं सत्त्वसंभवः ॥ तावत्पर्यंतमेव स्युः कर्माणि न ततः परम् ॥१६॥ तदंते चैव संन्यस्य संश्रयेद्गुरुमात्मवान् ॥ श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठं च भक्त्या निर्व्याजया पुनः ॥ १७ ॥ वेदान्तश्रवणं कुर्यान्नित्यमेवमतंद्रितः ॥ तत्त्वमस्यादिवाक्यस्य नित्यमर्थं विचारयेत् ॥ १८ ॥ तत्त्वमस्यादिवाक्यं तु जीवब्रह्मैक्यबोधकम् ॥ ऐक्ये ज्ञाते निर्भयस्तु मद्रूपो हि प्रजायते ॥ १९ ॥ पदार्थावगतिः पूर्वं वाक्यार्थावगतिस्ततः ॥ तत्पदस्य च वाक्यार्थो गिरेऽहं परि-

छेदन करनेमें 'ज्ञान' साधक है और ग्रन्थिके बननेमें 'कर्म' ॥१३॥ फिर ये दोनों असहकारी होनेसे एक जगह वैसे ही नहीं रह सकते, जैसे अन्धकार और प्रकाशका साथ-साथ रहना नितान्त असम्भव है ॥ १४ ॥ हे महामते! सम्पूर्ण वैदिक कर्मोंकी चरम सीमा अन्तःकरणकी शुद्धि है। अतः उनको यत्नपूर्वक करना चाहिये ॥ १५ ॥ वे कर्म हैं—शम, दम, तितिक्षा, वैराग्य और सत्त्वसम्भव अर्थात् चित्तशुद्धि। इतने ही कर्म करने योग्य हैं। इसके बाद कुछ शेष नहीं रहता ॥ १६ ॥ उक्त कर्म करनेके पश्चात् ज्ञानी मनुष्य संन्यासी होकर श्रोत्रिय एवं ब्रह्मनिष्ठ गुरुके पास रहे और विशुद्ध भक्तिसे सम्पन्न होकर वेदान्तका श्रवण करे। सदा सावधान रहे। 'तत्त्वमसि' वाक्यके अर्थका विचार करे ॥ १७ ॥ १८ ॥ 'तत्त्वमसि' यह वाक्य जीव और ब्रह्मकी एकताका बोधक है। एकताका बोध होनेपर मनुष्य निर्भय होकर मेरा रूप बन जाता है ॥ १९ ॥ हे हिमालय! पहले पदार्थका ज्ञान होता है, तत्पश्चात् वाक्यार्थका।

'तत्'-पदका जो वाक्यार्थ है, वह मैं ही हूँ ॥ २० ॥ त्वं-पदका वाक्यार्थ जीव है—इसमें कोई संशय नहीं है। विद्वान् पुरुष 'असि' इस पदसे 'तत्' और 'त्वम्' दोनों पदोंकी एकता बतलाते हैं ॥ २१ ॥ वाच्यार्थ पृथक्-पृथक् होनेसे श्रुतिकथित इन दोनों पदोंमें एकता नहीं घट सकती। अतः लक्षणा कर लेनी चाहिये ॥ २२ ॥ दोनोंका लक्ष्यार्थ चित्त हो, तभी दोनोंकी एकता हो सकती है। इसका बोध हो जानेपर दोनोंमें स्वगत भेद समाप्त होकर एकता आ जाती है ॥ २३ ॥ वही यह देवदत्त है—अर्थात् किसी अन्य समय जिसे देखा था, विपरीत होनेपर भी उसे वही मान लेना लक्षणा कही जाती है। अतएव स्थूल देहसे रहित ब्रह्मको नर कहते हैं ॥ २४ ॥ पाँच महाभूतोंसे उत्पन्न स्थूल शरीर भोगोंका आश्रय होता है। उसे सम्पूर्ण कामोंके भोग भोगनेके लिये वृद्ध एवं रोगी होना पड़ता है ॥ २५ ॥ हे पर्वतराज ! मायाके प्रभावसे स्पष्ट प्रतीत होनेवाला यह जगत् बिल्कुल मिथ्या है। क्योंकि यह स्थूल शरीर मेरे ही आत्माका दूसरा रूप है ॥ २६ ॥ जो पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच प्राण एवं मन तथा बुद्धिसे युक्त है, उसे विज्ञपुरुष 'सूक्ष्मशरीर' कहते हैं ॥ २७ ॥ अपञ्चीकृत भूतसे उत्पन्न

कीर्तितः ॥ २० ॥ त्वंपदस्य च वाच्यार्थो जीव एव न संशयः ॥ उभयोरैक्यमसिना पदेन प्रोच्यते बुधैः ॥ २१ ॥ वाच्यार्थयोर्विरुद्धत्वादैक्यं नैव घटेत ह ॥ लक्षणाऽतः प्रकर्तव्या तत्त्वमोः श्रुतिसंस्थयोः ॥२२॥ चिन्मात्रं तु तयोर्लक्ष्यं तयोरैक्यस्य संभवः ॥ तयोरैक्यं तथा ज्ञात्वा स्वाभेदेनाद्वयो भवेत् ॥ २३ ॥ देवदत्तः स एवायमितिवल्लक्षणा स्मृता ॥ स्थूलादिदेहरहितो ब्रह्म संपद्यते नरः ॥ २४ ॥ पञ्चीकृतमहाभूतसंभूतः स्थूलदेहकः ॥ भोगालयो जराव्याधिसंयुतः सर्वकर्मणाम् ॥२५॥ मिथ्याभूतोऽयमाभाति स्फुटंमायामयत्वतः ॥ सोऽयं स्थूल उपाधिः स्यादात्मनो मे नगेश्वर ॥२६॥ ज्ञानकर्मेन्द्रिययुतं प्राणपंचकसंयुतम् ॥ मनोबुद्धियुतं चैतत्सूक्ष्मं तत्कवयो विदुः ॥ २७ ॥ अपञ्चीकृतभूतोत्थं सूक्ष्मदेहोऽयमात्मनः ॥ द्वितीयोऽयमुपाधिः स्यात्सुखादेरवबोधकः ॥२८॥ अनाद्यनिर्वाच्यमिदमज्ञानं तु तृतीयकः ॥ देहोऽयमात्मनो भाति कारणात्मा नगेश्वर ॥ २९ ॥ उपाधिविलये जाते केवलात्माऽवशिष्यते ॥ देहत्रये पञ्चकोशा अन्तःस्थाः संति सर्वदा ॥ ३० ॥ पंचकोशपरित्यागे ब्रह्मपुच्छं हि लभ्यते ॥ नेतिनेतीत्यादिवाक्यैर्मम रूपं यदुच्यते ॥३१॥ न जायते म्रियते तत्कदाचिन्नायं भूत्वा न बभूव कश्चित् ॥ अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥ ३२ ॥ हतं चेन्मन्यते हंतुं हतश्चेन्मन्यते हतम् ॥ उभौ तौ न विजानीतो नायं हंति न हन्यते ॥ ३३ ॥ अणोरणीयान्महतो महीयाना-

जा यह सूक्ष्म-शरीर है, इसे आत्माका शरीर मानते हैं। सुख-दुःखका अनुभव करनेवाला दूसरा स्थूल शरीर कहलाता है ॥ २८ ॥ अज्ञान अनादि और अनिर्वचनीय है। हे पर्वतराज ! इसी कारण आत्माके शरीरको तीसरा शरीर कहते हैं। जिस समय सूक्ष्म, स्थूल और कारण—ये तीनों उपाधियाँ समाप्त हो जाती हैं, उस समय केवल 'परमात्मा' ही शेष रह जाता है। तीनों देहोंके भीतर पञ्चकोश सदा स्थित रहते हैं ॥ २९ ॥ ३० ॥ पञ्चकोशका परित्याग करनेपर 'ब्रह्मपुच्छ'की उपलब्धि होती है। ब्रह्मपुच्छ मेरे उस रूपको कहते हैं, जिसका परिचय देते समय श्रुतियाँ 'नेति-नेति' कहकर रह जाती हैं ॥ ३१ ॥ आत्मा किसी कालमें न तो जन्मता है और न मरता ही है। यह कभी होकर फिर हुआ भी नहीं। क्योंकि यह अजन्मा, नित्य, सनातन और पुरातन है। शरीरके मारे जानेपर भी यह नहीं मारा जाता ॥ ३२ ॥ जो आत्माको मारनेवाला अथवा मरा हुआ मानता है, वे दोनों नहीं जानते। क्योंकि

यह न किसीको मारता है और न मरता है ॥ ३३ ॥ यह आत्मा अणुसे भी अणु और महान्‌से भी महान् है। प्राणीकी बुद्धिमें यह रहता है। संकल्प-विकल्पसे रहित पुरुष परमेश्वरकी कृपासे जब इसकी महिमा देख पाते हैं, तब उनका शोक समाप्त हो जाता है ॥ ३४ ॥ हे हिमालय ! आत्माको रथी समझना चाहिये। शरीर ही रथ है। बुद्धिको सारथि समझे। मन ही लगाम है ॥ ३५ ॥ इन्द्रिय और मनके साथ होकर इस रथका उपभोक्ता आत्मा इन्द्रियोंके विषयमें विचरता है—ऐसा विद्वान् पुरुष कहते हैं ॥ ३६ ॥ जो अज्ञानी, अमनस्वी और अपवित्रात्मा है, उसे परमधामकी प्राप्ति नहीं होती। उसे संसारमें बार-बार जन्म धारण करना पड़ता है ॥ ३७ ॥ जिन्हें ज्ञान सुलभ है, जो मनस्वी एवं पवित्र हैं, उन्हें वह उत्तम पद मिल जाता है, जहाँसे लौटकर फिर जगत्‌में जन्म नहीं लेना पड़ता ॥ ३८ ॥ जिसका बुद्धिरूपी सारथि चतुर है, जो मनरूपी लगामको सावधानीसे पकड़े हुए है, वही रथी मार्ग पूरा करके मेरे धाममें पहुँच पाता है ॥ ३९ ॥ इस विवेचनको सुन और जानकर स्वयं अपने आपको निश्चितरूपसे पहचान ले। फिर सावधानीके साथ एक आसनपर बैठकर आत्माका

त्माऽस्य जंतोर्निहितो गुहायाम् ॥ तमक्रतुः पश्यति वीतशोको धातुः प्रसादान्महिमानमस्य ॥ ३४ ॥ आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु ॥
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च ॥३५॥ इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान् ॥ आत्मेंद्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः ॥ ३६ ॥
यस्त्वविद्वान्भवति चामनस्कः सदाऽशुचिः ॥ न तत्पदमवाप्नोति संसारं चाधिगच्छति ॥ ३७ ॥ यस्तु विज्ञानवान्भवति समनस्कः सदा शुचिः ॥
स तु तत्पदमाप्नोति यस्माद्भूयो न जायते ॥३८॥ विज्ञानसारथिर्यस्तु मनःप्रग्रहवान्नरः ॥ सोऽध्वनः पारमाप्नोति मदीयं यत्परं पदम् ॥ ३९ ॥
इत्थं श्रुत्या च मत्या च निश्चित्यात्मानमात्मना ॥ भावयेन्मामात्मरूपां निदिध्यासनतोऽपि च ॥ ४० ॥ योगवृत्तेः पुरा स्वस्मिन्भावयेदक्षरत्रयम् ॥
देवीप्रणवसंज्ञस्य ध्यानार्थं मन्त्रवाच्ययोः ॥४१॥ हकारः स्थूलदेहः स्याद्रकारः सूक्ष्मदेहकः ॥ ईकारः कारणात्माऽसौ ह्रींकारोऽहं तुरीयकम् ॥४२॥
एवं समष्टिदेहेऽपि ज्ञात्वा बीजत्रयं क्रमात् ॥ समष्टिव्यष्ट्योरेकत्वं भावयेन्मतिमान्नरः ॥ ४३ ॥ समाधिकालात्पूर्वं तु भावयित्वैवमादृतः ॥ ततो
ध्यायेन्निलीनाक्षो देवीं मां जगदीश्वरीम् ॥ ४४ ॥ प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यंतरचारिणौ ॥ निवृत्तविषयाकांक्षो वीतदोषो विमत्सरः ॥४५॥
भक्त्या निर्व्याजया युक्तो गुहायां निःस्वने स्थले ॥ हकारं विश्वमात्मानं रकारे प्रविलापयेत् ॥ ४६ ॥ रकारं तैजसं देवमीकारे प्रविलापयेत् ॥

चिन्तन करे ॥ ४० ॥ हे राजन् ! पहले योगका अभ्यास करके अक्षरत्रय मन्त्रका चिन्तन करना चाहिये। यह मन्त्र देवीप्रणव कहलाता है ॥ ४१ ॥ इसके मन्त्र और अर्थ—दोनोंका ध्यान आवश्यक है। इस मन्त्रमें 'ह'कार स्थूलदेह 'र'कारको सूक्ष्मदेह एवं 'ई'कारको कारणदेह कहते हैं। 'ह्रीं' यह रूप स्वयं मैं हूँ ॥ ४२ ॥ बुद्धिमान् पुरुष यों समष्टि शरीरमें क्रमशः तीनों बीजोंको समझकर समष्टि और व्यष्टि-दोनों रूपोंमें एक मेरा ही चिन्तन करे ॥४३॥ ध्यानके पूर्व ही मेरे ऐसे स्वरूपकी धारणा कर लेना आवश्यक है। इसके बाद दोनों नेत्र बन्द करके मुझ भगवती जगदीश्वरीका ध्यान करे ॥ ४४ ॥ उस समय प्राण और अपान वायुको समान स्थितिमें रक्खे। दृष्टि नासिकाके अग्रभागसे विचलित न हो। ध्यानके समय विषयभोगकी आकांक्षा बिल्कुल नहीं उठनी चाहिये। न तो किसीमें दोष देखे और न किसीसे डाह करे ॥ ४५ ॥ विशुद्ध भक्तिसे सम्पन्न होकर किसी पर्वतकी गुफामें अथवा एकान्त स्थानमें

आसन लगाकर बैठना चाहिये। फिर विश्वमय 'ह'कारको 'र'कारमें, परम तेजस्वी दिव्य 'र'कारको 'ई'कारमें तथा परम ज्ञानस्वरूप 'ई'कारको 'ह्रीं'कारमें प्रविलापन करे ॥४६॥४७॥ अन्तमें मेरे सच्चिदानन्दमय अखण्ड रूपका, जो वाच्य और वाचकतासे रहित तथा द्वैतभावसे शून्य है, चिन्तन करे ॥ ४८ ॥ हे राजन्! इस प्रकार ध्यान करके श्रेष्ठ पुरुष मेरा साक्षात्कार कर लेता है। उसे मेरी सारूप्यता प्राप्त हो जाती है। क्योंकि उसकी बुद्धिमें फिर द्वैतभाव नहीं रहता ॥ ४९ ॥ इस प्रकारके योगसे सम्पन्न होकर जो मेरे इस सर्वोत्तम रूपके दर्शन प्राप्त कर लेता है, उसका कर्मसम्बन्धी अज्ञान तुरन्त नष्ट हो जाता है ॥ ५० ॥ इति श्रीदेवीभागवते सप्तमस्कन्धे 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

(विविध योगोंका वर्णन) हिमालयने कहा—हे भगवती महेश्वरी! अब तुम ज्ञान प्रदान करनेवाले साङ्गोपाङ्ग योगका वर्णन करो, जिसके साधनसे मैं तुम्हारे तत्त्वदर्शनका पूर्ण अधिकारी बन सकूँ ॥ १ ॥ श्रीदेवी कहने लगीं—हे गिरिराज! योग न आकाशमें है, न पृथ्वीमें है न पातालमें ही है। योगके विशारद लोग कहते हैं कि जीव और आत्माकी जो एकता है, वही योग

ईकारं प्राज्ञमात्मानं ह्रींकारे प्रविलापयेत् ॥ ४७ ॥ वाच्यवाचकताहीनं द्वैतभावविवर्जितम् ॥ अखंडं सच्चिदानन्दं भावयेत्तच्छिखांतरे ॥ ४८ ॥ इति ध्यानेन मां राजन्साक्षात्कृत्य नरोत्तमः ॥ मद्रूप एव भवति द्वयोरप्येकता यतः ॥ ४९ ॥ योगयुक्त्याऽनया दृष्ट्वा मामात्मानं परात्परम् ॥ अज्ञानस्य सकार्यस्य तत्क्षणे नाशको भवेत् ॥ ५० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे देवीगीतायां चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

॥ हिमालय उवाच ॥ योगं वद महेशानि सांगं संवित्प्रदायकम् ॥ कृतेन येन योग्योऽहं भवेयं तत्त्वदर्शने ॥ १ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ न योगो नभसः पृष्ठे न भूमौ न रसातले ॥ ऐक्यं जीवात्मनोराहुर्योगं योगविशारदाः ॥२॥ तत्प्रत्यूहाः षडाख्याता योगविघ्नकरानघ ॥ कामक्रोधौ लोभमोहौ मदमात्सर्यसंज्ञकौ ॥ ३ ॥ योगांगैरेव भित्त्वा तान्योगिनो योगमाप्नुयुः ॥ यमं नियममासनप्राणायामौ ततः परम् ॥४॥ प्रत्याहारं धारणाख्यं ध्यानं सार्धं समाधिना ॥ अष्टांगान्याहुरेतानि योगिनां योगसाधने ॥५॥ अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यं दयाऽऽर्जवम् ॥ क्षमा धृतिर्मिताहारः शौचं चेति यमा दश ॥ ६ ॥ तपः संतोष आस्तिक्यं दानं देवस्य पूजनम् ॥ सिद्धांतश्रवणं चैव ह्रीर्मतिश्च जपो हुतम् ॥ ७ ॥ दशैते नियमाः प्रोक्ता मया पर्वत-नायक ॥ पद्मासनं स्वस्तिकं च भद्रं वज्रासनं तथा ॥८॥ वीरासनमिति प्रोक्तं क्रमादासनपंचकम् ॥ ऊर्वोरुपरि विन्यस्य सम्यक्पादतले शुभे ॥९॥

है ॥ २ ॥ हे निष्पाप हिमालय! उस योगमें विघ्न करनेवाले छः दोष हैं। उनके नाम हैं—काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर ॥३॥ अतएव योगी साधक योगके अङ्गों द्वारा उन विघ्नोंका उच्छेद करके योगमें सफलता प्राप्त करे। योगके ये आठ अङ्ग हैं—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। योग-साधकोंको इनका साधन अवश्य करना चाहिये ॥४॥५॥ 'यम' दस कहे गये हैं—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, दया, सरलता, क्षमा, धृति, परिमित आहार और पवित्रता ॥ ६ ॥ हे पर्वतराज! मेरे द्वारा नियम भी दस बतलाये गये हैं—तप, संतोष, आस्तिकभाव, दान, देवताओंका पूजन, शास्त्रसिद्धान्तका श्रवण, बुरे कामोंमें लज्जा, सद्बुद्धि, जप और हवन ॥७॥ पद्मासन, स्वस्तिकासन, भद्रासन, वज्रासन और वीरासन—क्रमशः ये पाँच आसन बतलाये गये हैं। दोनों पैरोंके दोनों तलुओंको जाँघोंपर रखे, हाथोंको पीठकी ओर ले जाकर दाहिने हाथसे दाहिने पैरके अंगूठेको और बायें हाथसे

बायें पैरके अंगूठेको पकड़े। योगीके हृदयमें प्रसन्नता उत्पन्न करनेवाला यह 'पद्मासन' बतलाया गया है॥८-१०॥ जाँघ और घुटनोंके बीचमें पैरके तलुओंको अच्छी तरह रख तथा शरीरको सीधा रखकर बैठ जानेको योगीजन 'स्वस्तिकासन' कहते हैं॥११॥ अण्डकोशकी शिराके नीचे सीवनके दोनों ओर दोनों एड़ियोंको अच्छी तरह अण्डकोशके नीचे रख तथा दोनों पैरोंका हाथोंसे पकड़कर बैठनेका नाम योगियोंने 'भद्रासन' बतलाया है। योगीगण इस आसनका विशेष आदर करते हैं। दोनों पैर क्रमशः दोनों जाँघोंपर रखकर दोनों घुटनोंके निचले भागमें सीधी अँगुलीवाले दोनों हाथ स्थापन करके बैठनेको 'वज्रासन' कहा गया है। योगीजन एक जाँघके नीचे एक पैरको रख तथा शरीरको सीधा रखकर बैठते हैं, उसे 'वीरासन' कहते हैं॥१२-१४॥ सोलह बार प्रणवका उच्चारण कर सके, उतने समयमें इडा यानी बायीं नासिकाके द्वारा बाहरकी वायुको खींचे। यह 'पूरक' प्राणायाम है। फिर इस पूरित वायुको चौंसठ बार प्रणवका उच्चारण करनेमें जितना समय लगे, उतने समयतक सुषुम्णामें रोके रखे। इसे 'कुम्भक' प्राणायाम कहते हैं। तदनन्तर बत्तीस बार प्रणवके उच्चारणमें जितना समय लगे,

अंगुष्ठौ च निबध्नीयाद्धस्ताभ्यां व्युत्क्रमात्ततः॥ पद्मासनमिति प्रोक्तं योगिनां हृदयङ्गमम्॥ १०॥ जानूर्वोरंतरे सम्यक्कृत्वा पादतले शुभे॥ ऋजुकायो विशेद्योगी स्वस्तिकं तत्प्रचक्षते॥ ११॥ सीवन्याः पार्श्वयोर्न्यस्य गुल्फयुग्मं सुनिश्चितम्॥ वृषणाधः पादपार्ष्णी पार्ष्णिभ्यां परिबन्धयेत्॥ १२॥ भद्रासनमिति प्रोक्तं योगिभिः परिपूजितम्॥ ऊर्वोः पादौ क्रमान्न्यस्य जान्वोः प्रत्यङ्मुखांगुली॥ १३॥ करौ विदध्यादाख्यातं वज्रासनमनुत्तमम्॥ एकं पादमधः कृत्वा विन्यस्योऽरुं तथोत्तरे॥ १४॥ ऋजुकायो विशेद्योगी वीरासनमितीरितम्॥ इडयाऽऽकर्षयेद्वायुं बाह्यं षोडशमात्रया॥ १५॥ धारयेत्पूरितं योगी चतुःषष्ट्या तु मात्रया॥ सुषुम्नामध्यगं सम्यग्द्वात्रिंशन्मात्रया शनः॥ १६॥ नाड्या पिङ्गलया चैव रेचयेद्योगवित्तमः॥ प्राणायाममिमं प्राहुर्योगशास्त्रविशारदाः॥१७॥ भूयो भूयः क्रमात्तस्य बाह्यमेवं समाचरेत्॥ मात्रावृद्धिक्रमेणैव सम्यग्द्वादश षोडश॥१८॥ जपध्यानादिभिः सार्धं सगर्भं तं विदुर्बुधाः॥ तदपेतं विगर्भं च प्राणायामं परे विदुः॥ १९॥ क्रमादभ्यस्यतः पुंसो देहे स्वेदोद्गमोऽधमः॥ मध्यमः कंपसंयुक्तो भूमित्यागः परो मतः॥२०॥ उत्तमस्य गुणावाप्तिर्यावच्छीलनमिष्यते॥ इन्द्रियाणां विचरतां विषयेषु निरर्गलम्

उतने समयमें धीरे-धीरे पिंगला अर्थात् दक्षिण नासिकाके द्वारा उसको बाहर निकाले। इसे 'रेचक' प्राणायाम कहा जाता है। योगशास्त्रके जानकार पुरुष इसीको 'प्राणायाम' कहते हैं॥१५-१७॥ इस प्रकार पुनः पुनः बाहरकी वायुको लेकर पूरक, कुम्भक और रेचक प्राणायामका अभ्यास करे और क्रमशः मात्रा (प्रणवके उच्चारणका समय) बढ़ाता रहे। इस प्रकारका प्राणायाम पहले बारह बार, तदनन्तर सोलह बार और फिर क्रमशः और भी अधिक बार करे॥ १८॥ प्राणायाम दो प्रकारके होते हैं-'सगर्भ' और 'विगर्भ'। जो इष्टके जप-ध्यानादिसे युक्त होता है, उसे ज्ञानीजन सगर्भ कहते हैं और जप-ध्यानादिसे रहित प्राणायामको विगर्भ जानना चाहिये॥१९॥ इस प्रकार प्राणायामका अभ्यास करते समय शरीरमें पसीना आ जाय तो उसे 'अधम', कम्प उत्पन्न होनेपर 'मध्यम' और भूमि त्यागकर पृथ्वीसे ऊपर उठ जानेको 'उत्तम' प्राणायाम कहते हैं। जबतक उत्तम प्राणायामतक न पहुँच जाय, तबतक अभ्यास करते रहना चाहिये॥२०॥ इन्द्रियाँ स्वच्छन्दरूपसे अपने-अपने विषयोंमें विचरती हैं। उनको बलपूर्वक विषयोंसे हटानेका नाम 'प्रत्याहार' है। अंगूठे, एड़ी, घुटने, जाँघ, गुदा, लिङ्ग, नाभि, हृदय, ग्रीवा, कण्ठ,

भ्रूमध्य (भौंहोंके बीच) और मस्तक–इन बारह स्थानोंमें प्राणवायुको विधिपूर्वक धारण किये रखनेको 'धारणा' कहा जाता है। मनको चेतन आत्मामें समाहित करके उसमें अपने अभीष्ट देवताका ध्यान करनेको 'ध्यान' अर्थात् जीवात्मा और परमात्मामें नित्य समत्वभाव कहा गया है। दोनोंके ऐक्यको मुनियोंने 'समाधि' बतलाया है। यह 'अष्टाङ्गयोग' कहा गया। अब तुम्हारे लिये मैं श्रेष्ठ 'मन्त्रयोग'का वर्णन करती हूँ ॥ २१–२६ ॥ हे पर्वतराज ! इस पञ्चभूतात्मक शरीरको (पिण्ड-ब्रह्माण्डकी उक्तिके अनुसार) 'विश्व' कहा जाता है। चन्द्र, सूर्य और अग्निके तेजसे युक्त होनेपर (इडा-पिंगला-सुषुम्णामें योगसाधनसे) जीव-ब्रह्मकी एकता होती है ॥ २७ ॥ इस शरीरमें साढ़े तीन करोड़ नाड़ियाँ हैं। उनमें दस मुख्य हैं। उन दसमें भी तीनको सबसे मुख्य बतलाया गया है ॥ २८ ॥ ये मेरुदण्डमें चन्द्र, सूर्य और अग्निरूपा होकर रहती हैं। बायीं ओर श्वेतवर्ण चन्द्ररूपिणी 'इडा' नामकी नाड़ी स्थित है ॥ २९ ॥ यह साक्षात्

॥२१॥ बलादाहरणं तेभ्यः प्रत्याहारोऽभिधीयते ॥ अङ्गुष्ठगुल्फजानूरुमूलाधारलिंगनाभिषु ॥ २२ ॥ हृद्ग्रीवाकंठदेशेषु लम्बिकायां ततो नसि ॥ भ्रूमध्ये मस्तके मूर्ध्नि द्वादशांते यथाविधि ॥ २३ ॥ धारणं प्राणमरुतो धारणेति निगद्यते ॥ समाहितेन मनसा चैतन्यांतरवर्तिना ॥ २४ ॥ आत्मन्यभीष्टदेवानां ध्यानं ध्यानमिहोच्यते ॥ समत्वभावना नित्यं जीवात्मपरमात्मनोः ॥ २५ ॥ समाधिमाहुर्मुनयः प्रोक्तमष्टांगलक्षणम् ॥ इदानीं कथये तेऽहं मंत्रयोगमनुत्तमम् ॥ २६ ॥ विश्वं शरीरमित्युक्तं पञ्चभूतात्मकं नग ॥ चन्द्रसूर्याग्नितेजोभिर्जीवब्रह्मैक्यरूपकम् ॥२७॥ तिस्रः कोट्यस्तदर्धेन शरीरे नाडयो मताः ॥ तासु मुख्या दश प्रोक्तास्ताभ्यस्तिस्रो व्यवस्थिताः ॥२८॥ प्रधाना मेरुदण्डेऽत्र चन्द्रसूर्याग्निरूपिणी ॥ इडा वामे स्थिता नाडी शुभ्रा तु चन्द्ररूपिणी ॥ २९ ॥ शक्तिरूपा तु सा नाडी साक्षादमृतविग्रहा ॥ दक्षिणे या पिंगलाख्या पुंरूपा सूर्यविग्रहा ॥ ३० ॥ सर्वतेजोमयी सा तु सुषुम्ना वह्निरूपिणी ॥ तस्या मध्ये विचित्राख्ये इच्छाज्ञानक्रियात्मकम् ॥ ३१ ॥ मध्ये स्वयंभूलिंगं तु कोटिसूर्यसमप्रभम् ॥ तदूर्ध्वं मायाबीजं तु हरात्मा बिंदुनादकम् ॥ ३२ ॥ तदूर्ध्वं तु शिखाकारा कुण्डली रक्तविग्रहा ॥ देव्यात्मिका तु सा प्रोक्ता मदभिन्ना नगाधिप ॥ ३३ ॥ तद्बाह्ये हेमरूपाभं वादिसांतचतुर्दलम् ॥ द्रुतहेमसमप्रख्यं पद्मं तत्र विचिंतयेत् ॥३४॥ तदूर्ध्वं त्वनलप्रख्यं षड्दलं हीरकप्रभम् ॥ वादिलांतषड्वर्णेन स्वाधिष्ठानमनुत्तमम् ॥ ३५ ॥ मूलमाधारषट्कोणं मूलाधारं ततो विदुः ॥ स्वशब्देन परं लिंगं स्वाधिष्ठानं ततो विदुः ॥ ३६ ॥ तदूर्ध्वं

अमृतमयी तथा शक्तिरूपा है। दाहिनी ओर 'पिङ्गला' नामकी नाड़ी है। यह पुरुषरूपा सूर्यमूर्ति है ॥३०॥ इनके बीचमें सर्वतेजोमयी अग्निरूपिणी सुषुम्णा नामकी नाड़ी है। इसके मध्यमें विचित्रा नामकी नाड़ी है। उसमें इच्छा-ज्ञान-क्रियात्मक करोड़ों सूर्योंके सदृश प्रभासम्पन्न 'स्वयंभू लिङ्ग' है। उसके ऊपर हीं मायाबीज है तथा उसके ऊपर लाल वर्णवाली शिखाके आकारकी कुण्डलिनी है। हे हिमालयराज ! वह देवात्मिका कुण्डलिनी मुझसे भिन्न नहीं है ॥ ३१–३३ ॥ इसके बाहरी भागमें स्वर्णवर्णकी आभावाले कमलका ध्यान करना चाहिये। इसके चार दल हैं। उनमें व, श, ष, स, इन चार अक्षरोंका ध्यान करे। यह 'मूलाधार' चक्र है ॥ ३४ ॥ इसके ऊपर षट्कोण (छः कोनोंवाले) कमलका ध्यान करे। यह अग्निके सदृश दलोंसे युक्त हीरेके समान चमकदार है। यह ब, भ, म, य, र, ल–इन छः अक्षरोंसे सम्पन्न उत्कृष्ट 'स्वाधिष्ठान' चक्र है। 'स्व' शब्दसे इसे 'परम लिङ्ग' रूप जानना चाहिये ॥३५॥३६॥ इसके

ऊपर नाभिदेशमें अत्यन्त प्रभासे युक्त मेघ तथा बिजलीके समान कान्तिवाला 'मणिपूरक' नामका अत्यन्त तेजोमय चक्र है ॥३७॥ मणिके सदृश प्रभा होनेसे इसे 'मणिपद्म' भी कहते हैं। यह दस दलोंसे युक्त है और ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ–इन दस अक्षरोंसे समन्वित है ॥ ३८ ॥ यह कमल विष्णु द्वारा अधिष्ठित होनेके कारण विष्णुके दर्शनका साधन है। इसके ऊपर सूर्यके समान प्रभासे सम्पन्न 'अनाहत' चक्र है। यह क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ--इन बारह अक्षरोंसे युक्त है। इसके मध्यमें दस हजार सूर्योंके समान प्रभावाला 'बाणलिङ्ग' विराजित है ॥३९॥४०॥ किसी भी आघातके बिना इसमें शब्द होता रहता है। अतः शब्द-ब्रह्ममय इस चक्रको मुनिगण 'अनाहत' कहते हैं ॥४१॥ यह चक्र आनन्द-सदन है और इसमें परम पुरुष अधिष्ठित रहता है। इसके ऊपर 'विशुद्ध' नामक सोलह दलोंसे युक्त कमल है। यह अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ऌ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः—इन सोलह स्वरोंसे सम्पन्न है। इसका अत्यन्त प्रभासे युक्त धूम्रवर्ण है। इसमें हंसस्वरूप परमात्माके दर्शनसे जीव विशुद्ध आत्मस्वरूपको प्राप्त हो जाता है ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ इसीसे इसको 'विशुद्धाख्य' चक्र

नाभिदेशे तु मणिपूरं महाप्रभम् ॥ मेघाभं विद्युदाभं च बहुतेजोमयं ततः ॥ ३७ ॥ मणिवद्भिन्नं तत्पद्मं मणिपद्मं तथोच्यते ॥ दशभिश्च दलैर्युक्तं डादिफांताक्षरान्वितम् ॥ ३८ ॥ विष्णुनाऽधिष्ठितं पद्मं विष्ण्वालोकनकारणम् ॥ तदूर्ध्वेनाहतं पद्ममुद्यदादित्यसन्निभम् ॥ ३९ ॥ कादिठांतदलैरर्कपत्रैश्च समधिष्ठितम् ॥ तन्मध्ये बाणलिंगं तु सूर्यायुतसमप्रभम् ॥ ४० ॥ शब्दब्रह्ममयं शब्दानाहतं तत्र दृश्यते ॥ अनाहताख्यं तत्पद्मं मुनिभिः परिकीर्तितम् ॥ ४१ ॥ आनन्दसदनं तत्तु पुरुषाधिष्ठितं परम् ॥ तदूर्ध्वं तु विशुद्धाख्यं दलं षोडशपङ्कजम् ॥ ४२ ॥ स्वरैः षोडशभिर्युक्तं धूम्रवर्णं महाप्रभम् ॥ विशुद्धं तनुते यस्माज्जीवस्य हंसलोकनात् ॥४३॥ विशुद्धं पद्ममाख्यातमाकाशाख्यं महाद्भुतम् ॥ आज्ञाचक्रं तदूर्ध्वं तु आत्मनाऽधिष्ठितं परम् ॥ ४४ ॥ आज्ञासंक्रमणं तत्र तेनात्रेति प्रकीर्तितम् ॥ द्विदलं हक्षसंयुक्तं पद्मं तत्सुमनोहरम् ॥ ४५ ॥ कैलासाख्यं तदूर्ध्वं तु रोधिनी तु तदूर्ध्वतः ॥ एवं त्वाधारचक्राणि प्रोक्तानि तव सुव्रत ॥४६॥ सहस्रारयुतं बिंदुस्थानं तदूर्ध्वमीरितम् ॥ इत्येतत्कथितं सर्वं योगमार्गमनुत्तमम् ॥४७॥ आदौ पूरकयोगेनाप्याधारे योजयेन्मनः ॥ गुदमेढ्रांतरे शक्तिस्तामाकुंच्य प्रबोधयेत् ॥ ४८ ॥ लिंगभेदक्रमेणैव बिंदुचक्रं च प्रापयेत् ॥ शंभुना तां

कहा जाता है। इस महान् अद्भुत कमलको 'आकाशचक्र' भी कहते हैं। इसके ऊपर परमात्माका अधिष्ठानस्वरूप 'आज्ञाचक्र' है ॥४४॥ इसमें परमात्माकी आज्ञाका संक्रमण होता है। इसीसे इसको 'आज्ञाचक्र' कहा जाता है। यह द्विदल है और ह, क्ष--दो अक्षरोंसे युक्त एवं अत्यन्त मनोहर है ॥ ४५ ॥ इसके ऊपर 'कैलास' नामक चक्र है और उसके ऊपर 'रोहिणी'चक्र है। हे सुव्रत ! इस प्रकार आधार-चक्रोंका तुम्हारे सामने वर्णन किया गया ॥ ४६ ॥ उसके और ऊपर 'सहस्र'चक्र है–यह बिन्दुमूल परमात्माका स्थान है। इसीसे इसको शून्य कहते हैं। इसमें सहस्र दल हैं। यह सर्वश्रेष्ठ योगमार्ग कहा गया ॥ ४७ ॥ अब क्या करना चाहिये सो बताती हूँ। पहले पूरक प्राणायामके द्वारा आधारमें मन लगावे। तदनन्तर गुदा और मेढ्रके बीचमें वायुके द्वारा कुण्डलिनी शक्तिको समेटकर उसे जागृत करे ॥ ४८ ॥ फिर लिंग-भेदनक्रमके द्वारा स्वयम्भूलिंगसे आरम्भ करके चक्रोंके द्वारा उस कुण्डलिनीशक्तिको 'शून्य-

चक्र'के सहस्रारतक ले जाय । पश्चात् उस परा शक्तिका सहस्रारमें स्थित परमेश्वर शम्भुके साथ ऐक्यभावसे ध्यान करे ॥ ४९ ॥ वहाँ शिव-शक्तिके सम्मिलनसे लाक्षारसके सदृश बहनेवाले अमृतको लेकर योगमें सिद्धि प्रदान करनेवाली माया नामकी शक्तिको पान करावे ॥ ५० ॥ फिर उस अमृतधाराके द्वारा षट्चक्रोंमें स्थित देवताओंको परितृप्त करे । तदनन्तर उपर्युक्त मार्गसे ही साधक उस कुण्डलिनी शक्तिको मूलाधारतक वापस लौटा लाये ॥ ५१ ॥ इस प्रकार जो साधक प्रतिदिन अभ्यास करते हैं, उनके लिये पहलेके दूषित समस्त मन्त्र सिद्ध हो जाते हैं । इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥ ५२ ॥ इसीसे साधक बुढ़ापा-मृत्यु आदि दुःखोंसे युक्त भवबन्धनसे छूट जाता है और उसे मुझ जगज्जननी देवीमें जो महान् गुण हैं, वे सम्पूर्ण गुण प्राप्त हो जाते हैं—इसमें कुछ भी संदेह नहीं है । हे तात ! इस प्रकार वायुके धारण करनेका श्रेष्ठ योग तुमसे कहा गया ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ अब तुम मेरे द्वारा सावधानीके साथ चित्तधारण नामक योग सुनो । दिशा, काल और देश आदिके द्वारा अपरिच्छिन्न मेरे देवीस्वरूपमें चित्त स्थिर करके तन्मय हो जानेपर बहुत शीघ्र जीवब्रह्मके एकत्वका ज्ञान प्राप्त हो जाता है। कदाचित्

परां शक्तिमेकीभूतां विचिंतयेत् ॥ ४९ ॥ तत्रोत्थितामृतं यत्तु द्रुतलाक्षारसोपमम् ॥ पाययित्वा तु तां शक्तिं मायाख्यां योगसिद्धिदाम् ॥ ५० ॥ षट्चक्रदेवतास्तत्र संतर्प्यामृतधारया ॥ आनयेत्तेन मार्गेण मूलाधारं ततः सुधीः ॥ ५१ ॥ एवमभ्यस्यमानस्याप्यहन्यहनि निश्चितम् ॥ पूर्वोक्ता-दूषिता मन्त्राः सर्वे सिद्ध्यन्ति नान्यथा ॥ ५२ ॥ जरामरणदुःखाद्यैर्मुच्यते भवबन्धनात् ॥ ये गुणाः संति देव्या मे जगन्मातुर्यथा तथा ॥५३॥ ते गुणाः साधकवरे भवन्त्येव न चान्यथा ॥ इत्येवं कथितं तात वायुधारणमुत्तमम् ॥ ५४ ॥ इदानीं धारणाख्यं तु शृणुष्वावहितो मम ॥ दिक्का-लाद्यनवच्छिन्नदेव्यां चेतो विधाय च ॥ ५५ ॥ तन्मयो भवति क्षिप्रं जीवब्रह्मैक्ययोजनात् ॥ अथवा समलं चेतो यदि क्षिप्रं न सिद्ध्यति ॥५६॥ तदाऽवयवयोगेन योगी योगान्समभ्यसेत् ॥ मदीयहस्तपादादावंगे तु मधुरे नग ॥ ५७ ॥ चित्तं संस्थापयेन्मन्त्री स्थानं स्थानजयात्पुनः ॥ विशुद्ध-चित्तः सर्वस्मिन्रूपे संस्थापयेन्मनः ॥ ५८ ॥ यावन्मनो लयं याति देव्यां संविदि पर्वत ॥ तावदिष्टमनुं मन्त्री जपहोमैः समभ्यसेत् ॥५९॥ मन्त्रा-भ्यासेन योगेन ज्ञेयज्ञानाय कल्पते ॥ न योगेन विना मन्त्रो न मन्त्रेण विना हि सः ॥६०॥ द्वयोरभ्यासयोगो हि ब्रह्मसंसिद्धिकारणम् ॥ तमः-परिवृते गेहे घटो दीपेन दृश्यते ॥ ६१ ॥ एवं मायावृतो ह्यात्मा मनुना गोचरीकृतः ॥ इति योगविधिः कृत्स्नः सांगः प्रोक्तो मयाऽधुना ॥

चित्तमें मलदोष रहनेके कारण शीघ्र सिद्धि न प्राप्त हो तो योगी साधकको अवश्य योगका अभ्यास करना चाहिये ॥५५॥५६॥ हे पर्वतराज ! मेरे हस्त-चरणादि मधुर एवं मनोहर अङ्गोंमें चित्तको स्थिर करके एक-एक अङ्गको जय (पूर्णरूपसे अभ्यस्त) करता हुआ फिर विशुद्ध चित्तसे मेरे समग्ररूपमें मनको स्थिर करे और मेरे समस्त रूपका ध्यान करे ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ हे हिमालय ! जबतक मेरे स्वरूपमें मनका लय न हो जाय । तबतक इष्टमन्त्रका जप और हवन आदि करता रहे ॥ ५९ ॥ मन्त्राभ्यासयोगके द्वारा ज्ञेय तत्त्वका ज्ञान हो जाता है । योगके बिना मन्त्रकी सिद्धि नहीं होती और मन्त्रके बिना योग सिद्ध नहीं होता ॥६०॥ अतएव मन्त्र और योग दोनोंका समन्वयात्मक अभ्यास ही ब्रह्म-संसद्धिमें सहायक होता है । जिस घरमें अन्धेरा छाया हुआ हो, उसमें घड़ा दिखाई नहीं देता । परन्तु दीपक जलानेपर वह दिखाई देने लगता है ॥ ६१ ॥ इसी प्रकार मायासे आवृत आत्मा भी मन्त्रके द्वारा दृष्टिगोचर होने लगता है ।

हे पर्वतराज ! इस प्रकार मैंने समस्त अङ्गों सहित सारी योगविधि तुम्हें बतला दी । पर यह विद्या अनुभवी गुरुके उपदेशसे ही जानी जा सकती है । वैसे करोड़ों शास्त्रोंके द्वारा इसकी उपलब्धि नहीं हो सकती । अतएव योगसिद्ध गुरुदेवकी संनिधिमें रहकर ही इसका अभ्यास करना चाहिये ॥६२॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे भाषाटीकायां पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

(देवीके द्वारा ब्रह्मनिरूपण) श्रीदेवीजी कहने लगीं—हे पर्वतराज ! इस प्रकार योगयुक्त होकर मुझ ब्रह्मस्वरूपा देवीका ध्यान करे । यह ध्यान आसनपर भलीभाँति बैठकर अहैतुकी भक्तिके साथ करना चाहिये ॥ १ ॥ उस ब्रह्मका क्या स्वरूप है—यह बतलाया जा रहा है । जो प्रकाशस्वरूप, सबके अत्यन्त समीप स्थित, हृदयरूपिणी गुफामें स्थित होनेके कारण 'गुहाचर' नामसे प्रसिद्ध और महान् पद अर्थात् परम प्राप्य पद है । जितने भी चेष्टा करनेवाले, श्वास लेनेवाले, आँखोंको खोलने-मूँदनेवाले प्राणी हैं, सब उस ब्रह्ममें ही समर्पित हैं—उसीमें स्थित हैं ॥ २ ॥ सत्, असत् सब कुछ वही है और वही सबके द्वारा वरण करने योग्य तथा सर्वोत्कृष्ट है । वह समस्त प्रजाके ज्ञानसे परे है—अर्थात् किसीकी बुद्धिमें आनेवाला नहीं है । यह तुम जानो । जो परम प्रकाशरूप है, जो सूक्ष्मसे भी अत्यन्त सूक्ष्म है, जिसमें सम्पूर्ण लोक और उन लोकोंमें निवास करनेवाले प्राणी स्थित हैं ॥ ३ ॥ वही

गुरूपदेशतो ज्ञेयो नान्यथा शास्त्रकोटिभिः ॥ ६२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे पंचत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

॥ श्रीदेव्युवाच ॥ इत्यादियोगयुक्तात्मा ध्यायेन्मां ब्रह्मरूपिणीम् ॥ भक्त्या निर्व्याजया राजन्नासने समुपस्थितः ॥ १ ॥ आविः सन्निहितं गुहाचरं नाम महत्पदम् ॥ अत्रैतत्सर्वमर्पितमेजत्प्राणमिषच्च यत् ॥ २ ॥ एतज्ज्ञानथ सदसद्वरेण्यं परं विज्ञानाद्यद्वरिष्ठं प्रजानाम् ॥ यदर्चिमद्यदणुभ्योऽणु च यस्मिंल्लोका निहिता लोकिनश्च ॥ ३ ॥ यदेतदक्षरं ब्रह्म स प्राणस्तदु वाङ्मनः ॥ तदेतत्सत्यममृतं तद्वेद्धव्यं सौम्य विद्धि ॥ ४ ॥ धनुर्गृहीत्वौपनिषदं महास्त्रं शरं ह्युपासानिशितं संधयीत ॥ आयम्य तद्भावगतेन चेतसा लक्ष्यं तदेवाक्षरं सौम्य विद्धि ॥ ५ ॥ प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते ॥ अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत् ॥ ६ ॥ यस्मिन्द्यौश्च पृथिवी चांतरिक्षमोतं मनः सह प्राणैश्च सर्वैः ॥ तमेवैकं जानथात्मानमन्या वाचो विमुंचथा अमृतस्यैष सेतुः ॥ ७ ॥ अरा इव रथनाभौ संहता यत्र नाड्यः ॥ स एषोंतश्चरते बहुधा जायमानः ॥ ८ ॥

'अक्षर ब्रह्म' है, वही सबका प्राण है, वही सबकी वाणी है और वही सबका मन है । वह परम सत्य और अमृत—अविनाशी तत्त्व है । हे सौम्य ! उस वेधने योग्य लक्ष्यका तुम वेधन करो और मन लगाकर उसमें तन्मय हो जाओ ॥४॥ हे सौम्य ! उपनिषद्में कथित महान् अस्त्ररूप धनुष लेकर उसपर उपासना द्वारा तीक्ष्ण किया हुआ बाण संधान करो और फिर भावानुगत चित्तके द्वारा उस बाणको खींचकर उस अक्षररूप ब्रह्मको ही लक्ष्य बनाकर उसका वेधन करो ॥५॥ प्रणव (ॐ) धनुष है, जीवात्मा बाण है और ब्रह्मको उसका लक्ष्य कहा जाता है । प्रमादरहित तथा अत्यन्त तत्परतासे साधन-संलग्न होकर उसका वेधन करना चाहिये और बाणके समान उसमें तन्मय हो जाना चाहिये ॥६॥ जिस ब्रह्ममें स्वर्ग, पृथ्वी, अन्तरिक्ष (स्वर्ग और पृथ्वीके बीचका आकाश), सम्पूर्ण प्राणोंके सहित इन्द्रिययुक्त मनबुद्धिरूप अन्तःकरण ओत-प्रोत है, उस एकमात्र परमात्माको ही जाने, दूसरी सब बातोंको छोड़ दे । यही अमृतरूप परमात्माके पास पहुँचनेवाला पुल है ॥ ७ ॥ संसारसमुद्रसे पार होकर अमृतस्वरूप परमात्माको प्राप्त करनेका यही सुलभ साधन है । जिस प्रकार रथके चक्केमें अरे लगे होते हैं, उसी प्रकार शरीरकी सम्पूर्ण

नाड़ियाँ हृदयमें एकत्र स्थित हैं। उस हृदयमें ही विविध रूपोंमें प्रकट होनेवाला परब्रह्म संचरण करता और अन्तर्यामीरूपसे वर्तमान रहता है ॥ ८ ॥ इस आत्माका 'ॐ' जपके साथ ध्यान करो। इससे अज्ञानमय अन्धकारसे सर्वथा परे और संसारसमुद्रसे उस पार जो ब्रह्म है, उसको पा जाओगे। तुम्हारा कल्याण हो। जो सदा जागनेवाला और सब ओरसे सब कुछ जाननेवाला है, जिसकी जगत्में यह महिमा है, वह सबका आत्मा ब्रह्म ब्रह्मलोकस्वरूप दिव्य आकाशमें स्थित है॥९॥ वह मनोमय है और सबके प्राण तथा शरीरका नियमन करता है। सब प्राणियोंके हृदयका आश्रय करके वह अन्नमय स्थूल शरीरमें स्थित है। जो आनन्दस्वरूप, अमृत एवं अविनाशी ब्रह्म सर्वत्र प्रकाशित है, उसको धीर-बुद्धिमान् पुरुष विज्ञानके द्वारा भलीभाँति देख लेते हैं ॥ १० ॥ उस कार्य-कारणरूप पुरुषोत्तमको देख लेनेपर जीवके हृदयकी गाँठ (अविद्या) खुल जाती है, सारे संशय नष्ट हो जाते हैं और सब शुभाशुभ कर्म क्षीण हो जाते हैं ॥ ११ ॥ वह निर्मल और निष्कल ब्रह्म प्रकाशमय परकोश तथा दिव्य परम धाममें विराजित है। वह शुभ्र, सर्वथा विशुद्ध और सम्पूर्ण प्रकाशमय वस्तुओंका भी प्रकाशक है। उसे आत्मज्ञानी पुरुष

ओमित्येव ध्यायथात्मानं स्वस्ति वः पाराय तमसः परस्तात् ॥ दिव्ये ब्रह्मपुरे व्योम्नि आत्मा संप्रतिष्ठितः ॥ ९ ॥ मनोमयः प्राणशरीरनेता प्रतिष्ठितोऽन्ने हृदयं सन्निधाय ॥ तद्विज्ञानेन परिपश्यंति धीरा आनन्दरूपममृतं यद्विभाति ॥ १० ॥ भिद्यते हृदयग्रंथिश्छिद्यंते सर्वसंशयाः ॥ क्षीयंते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे ॥ ११ ॥ हिरण्मये परे कोशे विराजं ब्रह्म निष्कलम् ॥ तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिस्तद्यदात्मविदो विदुः ॥१२॥ न तत्र सूर्यो भाति न चंद्रतारकं नेमा विद्युतो भांति कुतोऽयमग्निः ॥ तमेव भांतमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥१३॥ ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्ताद्ब्रह्म पश्चाद्ब्रह्म दक्षिणतश्चोत्तरेण ॥ अधश्चोर्ध्वं च प्रसृतं ब्रह्मैवेदं विश्वं वरिष्ठम् ॥ १४ ॥ एतादृगनुभवो यस्य स कृतार्थो नरोत्तमः ॥ ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति ॥१५॥ द्वितीयाद्वै भयं राजंस्तदभावाद्बिभेति न ॥ न तद्वियोगो मेऽप्यस्ति मद्वियोगोऽपि तस्य न ॥१६॥ अहमेव स सोऽहं वै निश्चितं विद्धि पर्वत ॥ मद्दर्शनं तु तत्र स्याद्यत्र ज्ञानी स्थितो मम ॥ १७ ॥ नाहं तीर्थे न कैलासे वैकुण्ठे वा न कर्हिचित् ॥

ही जानते हैं ॥१२॥ उस स्वप्रकाशरूप तथा परमधामस्वरूप परमात्मामें न यह सूर्य प्रकाशित होता है, न चन्द्रमा या तारे ही प्रकाशित होते हैं और न वहाँ ये बिजलियाँ ही चमकती हैं, फिर इस अग्निकी तो बात ही क्या है? उसके प्रकाशित होनेपर उसीके प्रकाशसे सब प्रकाशित होते हैं—उसीके प्रकाशसे यह सम्पूर्ण जगत् प्रकाशित है ॥१३॥ वह अमृतस्वरूप ब्रह्म ही आगे है। ब्रह्म ही पीछे है और ब्रह्म ही दाहिनी तथा बायीं ओर है। वही नीचे-ऊपर फैला हुआ है। यह सम्पूर्ण विश्व सर्वश्रेष्ठ ब्रह्म ही है॥१४॥ जो श्रेष्ठ पुरुष इस प्रकार अनुभव करते हैं, वे ही कृतार्थ हैं। वे ब्रह्मको प्राप्त पुरुष नित्य प्रसन्न अन्तःकरण रहते हैं। न तो वे कोई शोक करते हैं और न किसी विषयकी आकांक्षा ही रखते हैं ॥१५॥ हे पर्वतराज! भय दूसरेसे हुआ करता है। द्वैतभाव न रहनेपर भय नहीं रहता। वास्तविक बात यह है कि मेरा कभी उस ज्ञानीसे वियोग नहीं होता और उसका मुझसे वियोग नहीं होता॥ १६ ॥ हे पर्वतराज! तुम यह निश्चित समझो कि वह मैं हूँ और मैं वह है। जहाँ ऐसा ज्ञानी रहता है, वहीं मेरे दर्शन हो सकते हैं ॥ १७ ॥ मैं न तीर्थमें निवास करती हूँ, न कैलासमें और न वैकुण्ठमें ही। मैं तो अपने ज्ञानी भक्तके

हृदयकमलमें ही रहती हैं ॥ १८ ॥ जो मेरे ज्ञानपरायण भक्तकी पूजा करता है, वह मेरी पूजासे कोटिगुना अधिक फल पाता है। जिसका चित्त चित्स्वरूप ब्रह्ममें लय हो गया, उसका सारा कुल पवित्र हो गया। उसकी जननी कृतकृत्य हो गयी और पृथ्वी उसको धारण करके पुण्यवती हो गयी। हे पर्वतश्रेष्ठ! तुमने जो ब्रह्मज्ञानके सम्बन्धमें पूछा था, वह मैंने बता दिया ॥ १९ ॥ इसको भक्तिसम्पन्न तथा शीलवान् ज्येष्ठ पुत्रसे कहना चाहिये और इसी प्रकारके शिष्यको बतलाना चाहिये, किसी दूसरेको नहीं। जिसकी इष्टदेवमें परा भक्ति होती है और जैसी देवतामें भक्ति होती है, वैसी ही गुरुमें होती है। ऐसे महात्माजनके लिये ही श्रेष्ठ पुरुष इस ब्रह्मविद्याका उपदेश करते हैं। जिसके द्वारा इस ब्रह्मविद्याका उपदेश होता है, वह परमेश्वर ही है ॥ २०–२३ ॥ इस विद्याका बदला नहीं चुकाया जा सकता। इसलिये गुरुके समीप शिष्य सदा ऋणी ही रहता है। इस प्रकार ब्रह्म-जन्मदाता अर्थात् ब्रह्मको प्राप्त करा देनेवाला गुरु जन्मदाता माता-पितासे भी अधिक पूज्य होता है ॥ २४ ॥ क्योंकि पितासे प्राप्त जीवन तो नष्ट हो जाता है, परन्तु ब्रह्मरूप

वसामि किंतु मज्ज्ञानिहृदयांभोजमध्यमे ॥१८॥ मत्पूजाकोटिफलदं सकृन्मज्ज्ञानिनोऽर्चनम् ॥ कुलं पवित्रं तस्यास्ति जननी कृतकृत्यका ॥ १९ ॥ विश्वंभरा पुण्यवती चिल्लयो यस्य चेतसः ॥ ब्रह्मज्ञानं तु यत्पृष्टं त्वया पर्वतसत्तम ॥ २० ॥ कथितं तन्मया सर्वं नातो वक्तव्यमस्ति हि ॥ इदं ज्येष्ठाय पुत्राय भक्तियुक्ताय शीलिने ॥२१॥ शिष्याय च यथोक्ताय वक्तव्यं नान्यथा क्वचित् ॥ यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ ॥ २२ ॥ तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशंते महात्मनः ॥ येनोपदिष्टा विद्येयं स एव परमेश्वरः ॥२३॥ यस्यायं सुकृतं कर्तुमसमर्थस्ततो ऋणी ॥ पित्रोरप्यधिकः प्रोक्तो ब्रह्मजन्मप्रदायकः ॥ २४ ॥ पितृजातं जन्म नष्टं नेत्थं जातं कदाचन ॥ तस्मै न द्रुह्येदित्यादि निगमोऽप्यवदन्नग ॥ २५ ॥ तस्माच्छास्त्रस्य सिद्धांतो ब्रह्मदाता गुरुः परः ॥ शिवे रुष्टे गुरुस्त्राता गुरौ रुष्टे न शंकरः ॥ २६ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन श्रीगुरुं तोषयेन्नग ॥ कायेन मनसा वाचा सर्वदा तत्परो भवेत् ॥ २७ ॥ अन्यथा तु कृतघ्नः स्यात्कृतघ्ने नास्ति निष्कृतिः ॥ इन्द्रेणाथर्वणायोक्ता शिरश्छेदप्रतिज्ञया ॥ २८ ॥ अश्विभ्यां कथने तस्य शिरश्छिन्नं च वज्रिणा ॥ अश्वीयं तच्छिरो नष्टं दृष्ट्वा वैद्यौ सुरोत्तमौ ॥ २९ ॥ पुनः संयोजितं स्वीयं ताभ्यां मुनिशिरस्तदा ॥ इति

जन्म कभी नष्ट नहीं होता। अतः हे पर्वतराज! 'तस्मै न द्रुह्येत् कृतमस्य जानन्'—इस श्रुतिरूप शास्त्रसिद्धान्तके अनुसार ब्रह्मदाता परम गुरुसे कभी द्रोह न करे। ब्रह्मदाता गुरु सबसे श्रेष्ठ है। शिवके रुष्ट होनेपर गुरु बचा लेते हैं, पर गुरुके रुष्ट होनेपर शिव नहीं बचा पाते ॥ २५ ॥ २६ ॥ इसलिये हे पर्वतराज! तन-मन-वचनसे सब प्रकार सदा तत्पर रहकर गुरुको संतुष्ट करना चाहिये। ऐसा न होनेपर कृतघ्न होना पड़ता है और कृतघ्नका कहीं भी निस्तार नहीं होता। पूर्व समयकी बात है। इन्द्रसे अथर्वण मुनिने ब्रह्मविद्याकी याचना की। इन्द्रने कहा—'मैं यह विद्या देता हूँ, पर इसे तुम किसी दूसरेको दोगे तो मैं तुम्हारा सिर काट लूँगा।' मुनिने इसके लिये प्रतिज्ञा की ॥२७॥२८॥ अश्विनीकुमारोंने मुनिसे विद्या माँगी और सिर काटनेवाली बात बतलानेपर अश्विनीकुमारोंने कहा कि 'इन्द्र सिर काट देगा तो हम फिरसे जोड़ देंगे।' इसपर मुनिने उनको ब्रह्मविद्या प्रदान कर दी, तब इन्द्रने उनका सिर काट

डाला। तदनन्तर देववैद्य अश्विनीकुमारोंने सिर कटा देखकर उसे उनका फिरसे जोड़कर मुनिको जीवित किया था। इस प्रकार बड़े संकटसे संपादित होनेवाली 'ब्रह्मविद्या'को जिसने प्राप्त कर लिया, वही धन्य है और वही कृतकृत्य है ॥ २९ ॥ ३० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥३६॥

(भक्तिके भेद एवं ज्ञानप्राप्तिकी महिमा) हिमालयने कहा—हे माता ! आप अपनी वह भक्ति बतानेकी कृपा कीजिये, जिससे मुझ स्वार्थपरायण साधारण मनुष्यके हृदयमें भी सुगमतापूर्वक ज्ञानोदय हो जाय ॥१॥ देवी बोलीं—हे राजेन्द्र ! मोक्षप्राप्तिके साधनभूत मेरे तीन मार्ग परम प्रसिद्ध हैं—कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग ॥२॥ इन तीनोंमें यह भक्तियोग सम्यक् प्रकारसे सम्पन्न किया जा सकता है। क्योंकि यह परम सुलभ एवं मनके अनुकूल है तथा शरीर एवं चित्तको भी किसी प्रकारका कष्ट नहीं पहुँचाता ॥ ३ ॥ मनुष्योंके गुणभेदके

संकटसंपाद्या ब्रह्मविद्या नराधिप ॥ लब्धा येन स धन्यः स्यात्कृतकृत्यश्च भूधर ॥ ३० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे देवीगीतायां षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

॥ हिमालय उवाच ॥ स्वीयां भक्तिं वदस्वांब येन ज्ञानं सुखेन हि ॥ जायेत मनुजस्यास्य मध्यमस्याविरागिणः ॥ १ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ मार्गास्त्रयो मे विख्याता मोक्षप्राप्तौ नगाधिप ॥ कर्मयोगो ज्ञानयोगो भक्तियोगश्च सत्तम ॥ २ ॥ त्रयाणामप्ययं योग्यः कर्तुं शक्योऽस्ति सर्वथा ॥ सुलभत्वान्मानसत्वात्कायचित्ताद्यपीडनात् ॥३॥ गुणभेदान्मनुष्याणां सा भक्तिस्त्रिविधा मता ॥ परपीडां समुद्दिश्य दंभं कृत्वा पुरःसरम् ॥ ४ ॥ मात्सर्यक्रोधयुक्तो यस्तस्य भक्तिस्तु तामसी ॥ परपीडादिरहितः स्वकल्याणार्थमेव च ॥५॥ नित्यं सकामो हृदयं यशोर्थी भोगलोलुपः ॥ तत्तत्फलसमावाप्त्यै मामुपास्तेऽतिभक्तितः ॥ ६ ॥ भेदबुद्ध्या तु मां स्वस्मादन्यां जानाति पामरः ॥ तस्य भक्तिः समाख्याता नगाधिप तु राजसी ॥ ७ ॥ परमेशार्पणं कर्म पापसंक्षालनाय च ॥ वेदोक्तत्वादवश्यं तत्कर्तव्यं तु मयाऽनिशम् ॥ ८ ॥ इति निश्चितबुद्धिस्तु भेदबुद्धिमुपाश्रितः ॥ करोति प्रीयते कर्म भक्तिः सा नग सात्त्विकी ॥ ९ ॥ परभक्तेः प्रापिकेयं भेदबुद्ध्यवलंबनात् ॥ पूर्वप्रोक्ते ह्युभे भक्तो न परप्रापिके मते ॥१०॥ अधुना

अनुसार वह भक्ति भी तीन प्रकारकी मानी जाती है। जो दूसरेको दुखी बनानेके उद्देश्यसे दम्भपूर्वक डाह एवं क्रोधसे भरकर भक्ति करता है, उसकी वह भक्ति तामसी होती है। हे गिरिराज हिमालय ! जो दूसरेको कष्ट तो नहीं देता, परन्तु अपना ही कल्याण चाहता है तथा जिसका हृदय कामनासे कभी खाली नहीं होता, यश एवं भोगकी लालसा बनी रहती है तथा जो फल पानेकी इच्छासे ही श्रद्धापूर्वक मेरी उपासना करता है, उस मन्दबुद्धि मानवके द्वारा की हुई भक्ति राजसी होती है ॥४—७॥ जो अपना कर्म परमात्माको अर्पण कर देता है, पापको धो बहानेके लिये ही कर्म करता है, वेदकी आज्ञाके अनुसार मुझे निरन्तर सत्कर्ममें लगे रहना चाहिये—यों मनमें निश्चित करके अभेदबुद्धिका आश्रय लेकर मेरी प्रसन्नताके लिये कर्म करता है, उसकी भक्ति सात्त्विकी होती है ॥८॥९॥ सेव्य-सेवककी भेदबुद्धिसे की हुई सात्त्विकी भक्ति मेरी प्राप्तिमें सहायक होती है। पूर्वोक्त राजस और तामस भक्तिसे मैं प्राप्त नहीं हो सकती ॥१०॥ अब मैं

श्रेष्ठ भक्तिका विवेचन करती हूँ, सुनो—निरन्तर मेरे गुणोंका श्रवण और नामका कीर्तन करता रहे ॥११॥ मैं कल्याण एवं गुणमय रत्नोंका भण्डार हूँ। मुझमें चित्तको तैलधाराकी भाँति सदा लगाये रखे॥ १२ ॥ मनमें कभी हेतु अथवा अहेतुकी कल्पना ही न उठे। सामीप्य, सायुज्य, सालोक्य और सार्ष्टि—इन चार प्रकारकी मुक्तियोंकी एषणाओंका कभी मनमें उदय ही न हो ॥ १३ । मेरी सेवासे बढ़कर कभी किसी कामको श्रेष्ठ न समझे। सेव्य-सेवकभावकी ऐसी गहरी छाप हो कि जिससे वह कैवल्य मोक्ष भी न चाहे ॥ १४ ॥ अटूट श्रद्धाके साथ सावधान होकर केवल मेरा ही चिन्तन करे। मुझमें और अपनेमें निरन्तर अभेदबुद्धि रखे ॥ १५ ॥ 'सभी जीव मेरे रूप हैं'—ऐसी धारणा सदा बनाये रखे। अपने और परायेमें एक समान प्रीति रखे ॥ १६ ॥ चैतन्य परब्रह्म समानरूपसे सर्वत्र विराजमान है—यह जानकर अभेद दृष्टि रखे। सम्पूर्ण रूपोंमें सर्वत्र सदा मुझे विराजमान समझकर प्रणाम एवं भजन करे। हे पर्वतराज

परभक्तिं तु प्रोच्यमानां निबोध मे ॥ मद्गुणश्रवणं नित्यं मम नामानुकीर्तनम् ॥११॥ कल्याणगुणरत्नानामाकरायां मयि स्थिरम् ॥ चेतसा वर्तनं चैव तैलधारासमं सदा ॥१२॥ हेतुस्तु तत्र को वापि न कदाचिद्भवेदपि ॥ सामीप्यसार्ष्टिसायुज्यसालोक्यानां न चैषणा ॥ १३ ॥ मत्सेवातोऽधिकं किंचिन्नैव जानाति कर्हिचित् ॥ सेव्यसेवकताभावात्तत्र मोक्षं न वांछति ॥ १४ ॥ परानुरक्त्या मामेव चिंतयेद्यो ह्यतंद्रितः ॥ स्वाभेदेनैव मां नित्यं जानाति न विभेदतः ॥ १५ ॥ मद्रूपत्वेन जीवानां चिंतनं कुरुते तु यः ॥ यथा स्वस्यात्मनि प्रीतिस्तथैव च परात्मनि ॥ १६ ॥ चैतन्यस्य समानत्वान्न भेदं कुरुते तु यः ॥ सर्वत्र वर्तमानानां सर्वरूपां च सर्वदा ॥ १७ ॥ नमते यजते चैवाप्याचांडालांतमीश्वर ॥ न कुत्रापि द्रोहबुद्धिं कुरुते वेदवर्जनात् ॥ १८ ॥ मत्स्थानदर्शनश्रद्धा मद्भक्तदर्शने तथा ॥ मच्छास्त्रश्रवणे श्रद्धा मंत्रतंत्रादिषु प्रभो ॥ १९ ॥ मयि प्रेमाकुलमती रोमांचिततनुः सदा ॥ प्रेमाश्रुजलपूर्णाक्षः कंठगद्गदनिःस्वनः ॥ २० ॥ अनन्येनैव भावेन पूजयेद्यो नगाधिप ॥ मामीश्वरीं जगद्योनिं सर्वकारणकारणम् ॥ २१ ॥ व्रतानि मम दिव्यानि नित्यनैमित्तिकान्यपि ॥ नित्यं यः कुरुते भक्त्या वित्तशाठ्यविवर्जितः ॥ २२ ॥ मदुत्सवदिदृक्षा च मदुत्सवकृतिस्तथा ॥ जायते यस्य नियतं स्वभावादेव भूधर ॥२३॥ उच्चैर्गायंश्च नामानि ममैव खलु नृत्यति ॥ अहंकारादिरहितो देहतादात्म्यवर्जितः ॥२४॥ प्रारब्धेन यथा यच्च क्रियते तत्तथा भवेत् ॥ न मे चिंतास्ति तत्रापि देहसंरक्षणादिषु ॥२५॥ इति भक्तिस्तु या प्रोक्ता परा भक्तिस्तु सा स्मृता ॥

हिमालय ! चाण्डालतक भगवतीका रूप है—ऐसी भावना होनी चाहिये। भेद त्यागकर कहीं भी द्वेषभाव न रखे ॥ १७ ॥ १८ ॥ हे राजन् ! मेरे स्थानके दर्शन करने, मेरे भक्तसे मिलने, मेरे शास्त्रके सुनने तथा मेरे मन्त्र-तन्त्रादिमें श्रद्धा रखे ॥ १९ ॥ मेरे प्रति प्रेमके आसू बहते रहें। गद्गद कण्ठ होनेसे शब्द निकलना बन्द हो जाय। इस प्रकार हे पर्वतराज ! अनन्यभावसे मेरी पूजा करे ॥ २० ॥ हे पर्वतराज ! मैं जगत्को उत्पन्न करनेवाली परमेश्वरी हूँ। मैं सम्पूर्ण कारणोंकी मूल कारण हूँ ॥ २१ ॥ मेरे नित्य और नैमित्तिक सभी व्रत दिव्य हैं। धनके व्ययमें कंजूसी न करके भक्तिके साथ निरन्तर मेरे व्रतोंका पालन करे ॥२२॥ हे हिमालय! मेरे उत्सव देखनेकी अभिलाषा करना तथा उत्सव मनाना पुरुषका स्वभाव ही बन जाय ॥२३॥ उच्च स्वरसे मेरे नामोंका कीर्तन और नृत्य करे। मनमें अहङ्कार न आने दे। शारीरिक अभिमान छोड़ दे ॥ २४ ॥ मैंने जैसा कर्म किया था, वही प्रारब्धके अनुसार प्राप्त हो रहा है, यह

माने। शरीरके जाने अथवा रहनेकी कुछ चिन्ता न करे ॥ २५ ॥ उपर्युक्त प्रकारसे जो मेरी भक्ति की जाती है, उसे 'परा भक्ति' कहते हैं। जिसमें देवीके अतिरिक्त अन्य देवताका स्मरणतक न हो, वह परा भक्ति है। हे हिमालय ! इस प्रकारकी विशुद्ध भक्ति जिसके हृदयमें उत्पन्न हो जाती है, वह उसी क्षण मेरे चिन्मय रूपमें स्थान पानेका अधिकारी बन जाता है ॥२६॥२७॥ भक्तिकी जो पराकाष्ठा है, उसीको 'ज्ञान' कहते हैं। वैराग्यकी भी चरम सीमा ज्ञान ही है। क्योंकि ज्ञान प्राप्त हो जानेपर भक्ति और वैराग्य दोनों स्वयं सिद्ध हो जाते हैं ॥ २८ ॥ हे हिमालय ! यदि भक्ति करनेपर भी मेरे किसी भक्तको ज्ञान प्राप्त न हो तो वह मेरे दिव्य मणिद्वीपमें जाता है ॥ २९ ॥ वहाँ जाकर भोगोंमें आसक्त न होता हुआ वह अपना समय बिताता है। हे गिरिवर ! अन्तमें उसे मेरे रूपका सम्यक् प्रकारसे ज्ञान हो जाता है ॥३०॥ उस ज्ञानके प्रभावसे वह सदाके लिए मुक्त हो जाता है। ज्ञान मुक्तिका अचूक साधन है—इसमें कोई सन्देह नहीं। सभी मेरे रूप हैं और मैं सबमें विराजमान हूँ—मेरे इस रहस्यको जो समझ जाता है, उसके प्राण उत्क्रमण नहीं कर सकते। जो सबमें ब्रह्मका ही ज्ञान रखता है, वह

यस्यां देव्यतिरिक्तं तु न किंचिदपि भाव्यते ॥२६॥ इत्थं जाता परा भक्तिर्यस्य भूधर तत्त्वतः ॥ तदैव तस्य चिन्मात्रे मद्रूपे विलयो भवेत ॥२७॥ भक्तेस्तु या पराकाष्ठा सैव ज्ञानं प्रकीर्तितम् ॥ वैराग्यस्य च सीमा सा ज्ञाने तदुभयं यतः ॥ २८ ॥ भक्तौ कृतायां यस्यापि प्रारब्धवशतो नग ॥ न जायते मम ज्ञानं मणिद्वीपं स गच्छति ॥ २९ ॥ तत्र गत्वाऽखिलान्भोगाननिच्छन्नपि चर्च्छति ॥ तदन्ते मम चिद्रूपज्ञानं सम्यग्भवेन्नग ॥ ३० ॥ तेन मुक्तः सदैव स्याज्ज्ञानान्मुक्तिर्न चान्यथा ॥ इहैव यस्य ज्ञानं स्याद्धृद्गतप्रत्यगात्मनः ॥ ३१ ॥ मम संवित्परतनोस्तस्य प्राणा व्रजंति न ॥ ब्रह्मैव संस्तदाप्नोति ब्रह्मैव ब्रह्म वेद यः ॥३२॥ कण्ठचामीकरसममज्ञानात्तु तिरोहितम् ॥ ज्ञानादज्ञाननाशेन लब्धमेव हि लभ्यते ॥ ३३ ॥ विदिताऽविदितादन्यन्नगोत्तम वपुर्मम ॥ यथादर्शे तथाऽऽत्मनि यथा जले तथा पितृलोके ॥ ३४ ॥ छायातपौ यथा स्वच्छौ विविक्तौ तद्वदेव हि ॥ मम लोके भवेज्ज्ञानं द्वैतभावविवर्जितम् ॥ ३५ ॥ यस्तु वैराग्यवानेव ज्ञानहीनो म्रियेत चेत् ॥ ब्रह्मलोके वसेन्नित्यं यावत्कल्पं ततः परम् ॥ ३६ ॥ शुचीनां श्रीमतां गेहे भवेत्तस्य जनिः पुनः ॥ करोति साधनं पश्चात्ततो ज्ञानं हि जायते ॥ ३७ ॥ अनेकजन्मभी राजञ्ज्ञानं स्यान्नैकजन्मना ॥

ब्रह्मका चिन्तन करते-करते स्वयं भी ब्रह्मरूप हो जाता है ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ जैसे सुवर्णका हार गलेमें है, किन्तु भ्रमवश समझ लिया जाता है कि वह खो गया। फिर, बुद्धि ठीक हो जानेपर भ्रम मिटते ही वह मिल जाता है, क्योंकि वह मिला हुआ तो पहलेसे था ही ॥३३॥ ऐसे ही हे पर्वतराज ! वस्तुतः मैं सर्वरूप हूँ, अज्ञानसे ही पृथक्ता प्रतीत होती है। मेरे चित्-रूपी शरीरमें घट आदि कार्य मायारूपसे अभिन्न हैं। जैसे दर्पणमें परछाहीं पड़ती है, वैसे ही इस शरीरमें आत्माकी परछाहींका अनुभव होता है। जिस तरह जलमें परछाहीं पहलेसे स्पष्ट दीखती है। वैसे ही पितृलोकके विषयमें भी स्पष्ट अनुभव होता है ॥ ३४ ॥ जैसे धूप और छायाका भेद स्पष्ट दीखता है, वैसे ही मेरे मणिद्वीपमें द्वैतशून्य ज्ञान प्राप्त होता है ॥ ३५ ॥ जिसके हृदयमें वैराग्य उत्पन्न हो गया, परन्तु ज्ञानका पूर्णोदय नहीं हो सका और मर गया तो वह ब्रह्मलोकमें स्थान पाता है। एक कल्पतक ब्रह्मलोकमें रहनेके बाद उसका पुनः युद्ध आचरणवाले श्रीमान् पुरुषोंके घरमें जन्म होता है। तत्पश्चात् साधनाके द्वारा वह ज्ञान प्राप्त कर लेता है ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ हे राजन् ! अनेक जन्मोंके सत्प्रयत्नसे ज्ञानकी उपलब्धि होती है।

अतः ज्ञान प्राप्त करनेके लिये भलीभाँति यत्न करना चाहिये ॥ ३८ ॥ प्रयत्नमें शिथिलता रहनेसे बड़ी भारी हानि होती है। क्योंकि यदि मनुष्य-जन्म मिल भी गया तो वर्णोंमें श्रेष्ठ ब्राह्मण और उसमें भी वेदपाठी होना महान् दुर्लभ है ॥ ३९ ॥ साथ ही शम, दम, तितिक्षा आदि छः सम्पत्तियाँ, योगसिद्धि तथा उत्तम गुरु—इन सबका मिलना तो सुलभ है ही नहीं ॥ ४० ॥ इन्द्रियोंमें कार्य करनेकी क्षमता आ जाय और शरीरमें सदा पवित्रता बनी रहे—यह भी सहज नहीं है। जब अनेक जन्मोंके पुण्य सहायक होते हैं, तब पुरुषके मनमें मुक्त होनेकी इच्छा उत्पन्न होती है ॥ ४१ ॥ जो मनुष्य इस प्रकारके सफल साधनोंसे सम्पन्न होनेपर भी ज्ञानकी प्राप्तिके लिये प्रयत्न नहीं करता, उसका जन्म लेना व्यर्थ है ॥ ४२ ॥ अतएव हे राजन्! भक्तिके अनुसार ज्ञान-प्राप्तिके लिये यत्न करनेमें तत्पर हो जाना चाहिये। ज्ञानमार्गपर चलते समय एक-एक पदपर अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है। दूधमें छिपे हुए घृतकी भाँति प्रत्येक

ततः सर्वप्रयत्नेन ज्ञानार्थं यत्नमाश्रयेत् ॥ ३८ ॥ नोचेन्महान्विनाशः स्याज्जन्मैतद्दुर्लभं पुनः ॥ तत्रापि प्रथमे वर्णे वेदप्राप्तिश्च दुर्लभा ॥ ३९ ॥ शमादिषट्कसंपत्तिर्योगसिद्धिस्तथैव च ॥ तथोत्तमगुरुप्राप्तिः सर्वमेवात्र दुर्लभम् ॥ ४० ॥ तथेंद्रियाणां पटुता संस्कृतत्वं तनोस्तथा ॥ अनेकजन्मपुण्यैस्तु मोक्षेच्छा जायते ततः ॥ ४१ ॥ साधने सफलेऽप्येवं जायमानेऽपि यो नरः ॥ ज्ञानार्थं नैव यतते तस्य जन्म निरर्थकम् ॥ ४२ ॥ तस्माद्राजन्यथाशक्त्या ज्ञानार्थं यत्नमाश्रयेत् ॥ पदे पदेऽश्वमेधस्य फलमाप्नोति निश्चितम् ॥ ४३ ॥ घृतमिव पयसि निगूढं भूते भूते च वसति विज्ञानम् ॥ सततं मंथयितव्यं मनसा मंथानभूतेन ॥ ४४ ॥ ज्ञानं लब्ध्वा कृतार्थः स्यादिति वेदांतडिंडिमः ॥ सर्वमुक्तं समासेन किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ४५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे देवीगीतायां सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

॥ हिमालय उवाच ॥ कानि स्थानानि देवेशि द्रष्टव्यानि महीतले ॥ मुख्यानि च पवित्राणि देवीप्रियतमानि च ॥ १ ॥ व्रतान्यपि तथा यानि तुष्टिदान्युत्सवा अपि ॥ तत्सर्वं वद मे मातः कृतकृत्यो यतो नरः ॥ २ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ सर्वं दृश्यं मम स्थानं सर्वे काला व्रतात्मकाः ॥ उत्सवाः सर्वकालेषु यतोऽहं सर्वरूपिणी ॥३॥ तथापि भक्तवात्सल्यात्किंचित्किंचिदथोच्यते ॥ शृणुष्वावहितो भूत्वा नगराज वचो मम ॥४॥ कोला-

प्राणीमें विज्ञान रहता है। सो मनरूपी मथानीसे निरन्तर मथकर उसे प्राप्त कर ले। वेदान्तने डुग्गी पीटकर यह घोषणा कर दी है कि ज्ञान प्राप्त कर लेनेपर मानव कृतार्थ हो जाता है। हे हिमालय! ये सब बातें मैंने संक्षेपसे कह दीं। अब आगे और क्या सुनना चाहते हो? ॥४३–४५॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषाटीकायां सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

(देवीतीर्थ, व्रत, उत्सव तथा पूजनके प्रकार) हिमालयने पूछा—हे देवेशि! आपको परम प्रिय लगनेवाले पवित्र, प्रसिद्ध एवं दर्शनीय स्थान भूमण्डलपर कितने हैं? यह बताइये ॥ १ ॥ हे माताजी! इसीके साथ, आपको संतुष्ट करनेवाले जो व्रत एवं उत्सव हों, उन सबको भी मुझे बतानेकी कृपा कीजिये, जिससे मेरा मानव-जीवन सफल हो जाय ॥ २ ॥ श्रीदेवी बोलीं—दृष्टिगोचर होनेवाले सभी स्थान मेरे हैं। सम्पूर्ण कालको मेरा व्रत समझना चाहिये तथा सभी समय मेरे उत्सव मनाये जा सकते हैं। क्योंकि मैं सर्वरूपिणी जो ठहरी ॥३॥ फिर भी

हे पर्वतराज ! मैं भक्तवत्सलतावश कतिपय स्थानोंका परिचय देती हूँ । तुम सावधान होकर सुनो ॥ ४ ॥ 'कोलापुर' नामका एक परम प्रसिद्ध स्थान है, जहाँ 'लक्ष्मी' सदा निवास करती हैं । दूसरे स्थानका नाम 'मातृपुर' है, उस पुरीमें भगवती 'रेणुका' रहती हैं ॥५॥ 'तुलजापुर' मेरा तीसरा स्थान है। ऐसे ही एक स्थानका नाम 'सप्तशृङ्ग' है। 'हिंगुला' 'ज्वालामुखी' 'भ्रामरी', 'रक्तदन्तिका' और 'दुर्गा' इन देवियोंके साथ इन्हींके नामसे वे प्रसिद्ध हैं ॥६॥७॥ भगवती 'विन्ध्याचली' देवीका सर्वोत्तम स्थान 'विन्ध्य पर्वत'पर है । 'अन्नपूर्णाका स्थान' और 'कांचीपुर स्थान' अत्यन्त श्रेष्ठ माने जाते हैं ॥८॥ देवी 'भीमा' और 'विमला' के उत्तम स्थान इन्हींके नामसे विख्यात हैं । 'श्रीचन्द्रला'का महान् स्थान 'कर्णाटक' देशमें है। ऐसे ही एक 'कौशिकी' स्थान है ॥ ९ ॥ 'नीलाम्बा' देवीका स्थान 'नील पर्वत'के शिखरपर है । 'जाम्बूनदेश्वरी' श्रीनगरके पास रहती हैं ॥१०॥ भगवती 'गुह्यकाली'का महान् स्थान 'नैपाल' देशमें हैं। भगवती मीनाक्षीका स्थान 'चिदम्बरम्'में हैं ॥ ११ ॥ 'देवी सुन्दरी'का परम उत्तम स्थान 'वेदारण्य'में है । भगवती 'पराशक्ति' 'एकाम्बर' नामक सुप्रसिद्ध स्थानमें हैं ॥ १२ ॥ भगवती

पुरं महास्थानं यत्र लक्ष्मीः सदा स्थिता ॥ मातुःपुरं द्वितीयं च रेणुकाधिष्ठितं परम् ॥ ५ ॥ तुलजापुरं तृतीयं स्यात्सप्तशृङ्गं तथव च ॥ हिंगुलाया महास्थानं ज्वालामुख्यास्तथैव च ॥ ६ ॥ शाकंभर्याः परं स्थानं भ्रामर्याः स्थानमुत्तमम् ॥ श्रीरक्तदन्तिकास्थानं दुर्गास्थानं तथैव च ॥ ७ ॥ विंध्याचलनिवासिन्याः स्थानं सर्वोत्तमोत्तमम् ॥ अन्नपूर्णामहास्थानं कांचीपुरमनुत्तमम् ॥८॥ भीमादेव्याः परं स्थानं विमलास्थानमेव च ॥ श्रीचन्द्रलामहास्थानं कौशिकीस्थानमेव च ॥ ९ ॥ नीलांबायाः परं स्थानं नीलपर्वतमस्तके ॥ जांबूनदेश्वरीस्थानं तथा श्रीनगरं शुभम् ॥ १० ॥ गुह्यकाल्या महास्थानं नेपाले यत्प्रतिष्ठितम् ॥ मीनाक्ष्याः परमं स्थानं यच्च प्रोक्तं चिदम्बरे ॥११॥ वेदारण्यं महास्थानं सुन्दर्या समधिष्ठितम् ॥ एकांबरं महास्थानं पराशक्त्या प्रतिष्ठितम् ॥ १२ ॥ मदालसा परं स्थानं योगेश्वर्यास्तथैव च ॥ तथा नीलसरस्वत्याः स्थानं चीनेषु विश्रुतम् ॥ १३ ॥ वैद्यनाथे तु बगलास्थानं सर्वोत्तमं मतम् ॥ श्रीमच्छ्रीभुवनेश्वर्या मणिद्वीपं मम स्मृतम् ॥१४॥ श्रीमत्त्रिपुरभैरव्याः कामाख्यायोनिमण्डलम् ॥ भूमण्डले क्षेत्ररत्नं महामायाऽधिवासितम् ॥ १५ ॥ नातः परतरं स्थानं क्वचिदस्ति धरातले ॥ प्रतिमासं भवेद्देवी यत्र साक्षाद्रजस्वला ॥ १६ ॥ तत्रत्या देवता सर्वाः पर्वतात्मकतां गताः ॥ पर्वतेषु वसंत्येव महत्यो देवता अपि ॥ १७ ॥ तत्रत्या पृथिवी सर्वा देवीरूपा स्मृता बुधैः ॥ नातः परतरं

'मदालसा' और 'योगेश्वरी'का स्थान इन्हींके नामसे प्रसिद्ध है । देवी 'नीलसरस्वती'का स्थान 'चीन देश'में है ॥१३॥ देवी 'बगला'का सर्वोत्कृष्ट स्थान वैद्यनाथधाममें है । मैं सर्वैश्वर्यसम्पन्न भगवती 'भुवनेश्वरी' हूँ । मेरा स्थान 'मणिद्वीप' पर्वतपर कहा गया है ॥१४॥ जब शंकरजी सतीका शरीर लेकर घूम रहे थे । उस समय सतीका योनिभाग जहाँ गिरा, वह स्थान 'कामरू' नामके देशसे प्रसिद्ध हो गया । वहीं भगवती 'त्रिपुरसुन्दरी'का स्थान है। महामायासे सुशोभित यह स्थान जगत्में जितने क्षेत्र हैं, उन सबका रत्न है। धरातलमें इससे बढ़कर प्रसिद्ध स्थान कहीं कोई भी नहीं है । वह इतना जीता-जागता स्थान है कि प्रत्येक मासमें देवी वहाँ रजस्वला हुआ करती हैं ॥१५॥१६॥ उस समय वहाँके रहनेवाले सभी प्रधान देवता उस पर्वतपर चले आते और वहाँ ठहरनेकी व्यवस्था कर लेते हैं ॥ १७ ॥ विद्वान् पुरुषोंका कथन है कि उस अवसरपर वहाँकी सम्पूर्ण भूमि देवीमय हो जाती है। अतः इस 'कामाख्यायोनि-मण्डल' से श्रेष्ठ अन्य कोई

स्थान नहीं है ॥ १८ ॥ हे हिमालय ! सम्पूर्ण ऐश्वर्योंसे सम्पन्न 'पुष्कर'क्षेत्र भगवती 'गायत्री'का उत्तम स्थान कहा गया है। 'अमरकण्टक' क्षेत्रमें भगवती 'चण्डिका'का स्थान है। 'प्रभास'क्षेत्रमें भगवती 'पुष्करेक्षिणी' रहती हैं ॥१९॥ 'नौमिषारण्य' परम प्रसिद्ध स्थान है। वहाँ सम्पूर्ण शुभ लक्षणोंसे शोभा पानेवाली भगवती '[illegible]' विराजती हैं। 'पुष्कराक्ष'में देवी पुरुहूताका तथा 'आषाढी'में देवी 'रति'का उत्तम धाम है ॥ २० ॥ 'चण्डमुण्डी' नामक स्थानमें चण्ड और मुण्डका वध करनेवाली परमेश्वरी 'दण्डिनी' विराजती हैं। 'भारभूति'में देवी 'भूति'का तथा 'नाकुल'में देवी 'नकुलेश्वरी'का धाम है ॥ २१ ॥ 'हरिश्चन्द्र' नामक स्थानमें भगवती 'चन्द्रका' एवं 'श्रीशैल' पर्वतपर भगवती 'शांकरी' रहती हैं। 'जप्येश्वर'में देवी 'त्रिशूला' और 'आम्रकेश्वर'में देवी 'सूक्ष्मा' विराजती हैं ॥२२॥ महाकाल नामक क्षेत्रमें भगवती 'शांकरी', 'मध्यम' संज्ञक स्थानमें 'शर्वाणी' तथा 'केदार' नामसे प्रसिद्ध महान् क्षेत्रमें देवी 'मार्गदायिनी' शोभा पाती हैं ॥२३॥ 'भैरव' नामक स्थानमें भगवती 'भैरवी'का तथा 'गया'में भगवती 'मङ्गला'का स्थान कहा गया है। देवी 'स्वायम्भुवी' नाकुलमें, ॥२४॥ 'कनखल'में देवी

स्थानं कामाख्यायोनिमण्डलात् ॥ १८ ॥ गायत्र्याश्च परं स्थानं श्रीमत्पुष्करमीरितम् ॥ अमरेशे चण्डिका स्यात्प्रभासे पुष्करेक्षिणी ॥ १९ ॥ नैमिषे तु महास्थाने देवी सा लिङ्गधारिणी ॥ पुरुहूता पुष्कराक्षे आषाढौ च रतिस्तथा ॥२०॥ चण्डमुंडी महास्थाने दण्डिनी परमेश्वरी ॥ भारभूतौ भवेद्भूतिर्नाकुले नकुलेश्वरी ॥ २१ ॥ चन्द्रिका तु हरिश्चंद्रे श्रीगिरौ शांकरी स्मृता ॥ जप्येश्वरे त्रिशूला स्यात्सूक्ष्मा चाम्रातकेश्वरे ॥ २२ ॥ शांकरी तु महाकाले शर्वाणी मध्यमाभिधे ॥ केदाराख्ये महाक्षेत्रे देवी सा मार्गदायिनी ॥ २३ ॥ भैरवाख्ये भैरवी सा गयायां मंगला स्मृता ॥ स्थाणुप्रिया कुरुक्षेत्रे स्वायंभुव्यपि नाकुले ॥ २४ ॥ कनखले भवेदुग्रा विश्वेशी विमलेश्वरे ॥ अट्टहासे महानन्दा महेंद्रे तु महांतका ॥ २५ ॥ भीमे भीमेश्वरी प्रोक्ता स्थाने वस्त्रापथे पुनः ॥ भवानी शांकरी प्रोक्ता रुद्राणी त्वर्धकोटिके ॥२६॥ अविमुक्ते विशालाक्षी महाभागा महालये ॥ गोकर्णे भद्रकर्णी स्याद्भद्रा स्याद्भद्रकर्णके ॥२७॥ उत्पलाक्षी सुवर्णाक्षे स्थाण्वीशा स्थाणुसंज्ञके ॥ कमलालये तु कमला प्रचण्डा छगलंडके ॥२८॥ कुरण्डले त्रिसंध्या स्यान्माकोटे मुकुटेश्वरी ॥ मंडलेशे शांडकी स्यात्काली कालंजरे पुनः ॥२९॥ शंकुकर्णे ध्वनिः प्रोक्ता स्थूला स्यात्स्थूलकेश्वरे ॥ ज्ञानिनां हृदयांभोजे हृल्लेखा परमेश्वरी ॥३०॥ प्रोक्तानीमानि स्थानानि देव्याः प्रियतमानि च ॥ तत्तत्क्षेत्रस्य माहात्म्यं श्रुत्वा पूर्वं नगोत्तम ॥३१॥

'उग्रा'का, विमलेश्वरमें विश्वेशीका, अट्टहास नामक स्थानमें 'महानन्दा'का, 'महेन्द्र' पर्वतपर 'महान्तका'का, ॥२५॥ 'भीमा' पर्वतपर भगवती 'भीमेश्वरी'का, 'वस्त्रापथ' नामक स्थानमें भगवती 'शांकरी'का, 'अर्द्धकोटि' पर्वतपर 'रुद्राणी'का ॥२६॥ 'अविमुक्त' (काशी) क्षेत्रमें 'विशालाक्षी'का, 'महालय'में 'महाभागा'का, 'गोकर्ण'में 'भद्रकर्णी'का, 'भद्राकर्णक'में 'भद्रास्या'का ॥२७॥ 'सुवर्णाक्ष' नामक स्थानमें 'उत्पलाक्षी'का, 'स्थाणु' नामक स्थानमें 'स्थाण्वीशा'का, 'कमलालय'में 'कमला'का, 'छगलण्डक'में 'प्रचण्डा'का, ॥ २८॥ कुरण्डल'में 'त्रिसंध्या'का, 'माकोट'में 'मुकुटेश्वरी'का, 'मण्डलेश'में 'शाण्डकी'का 'कालंजर' पर्वतपर 'काली'का, 'शङ्कुकर्ण' पर्वतपर भगवती 'ध्वनि'का तथा 'स्थूलकेश्वर' पर्वतपर देवी 'स्थूला'का धाम कहा गया है। परमेश्वरी 'हृल्लेखा' सम्पूर्ण ज्ञानी पुरुषोंके हृदयरूपी कमलपर विराजमान रहती हैं ॥२९॥३०॥ हे पर्वत हिमालय ! उपर्युक्त सभी स्थान देवीको परम प्रिय हैं। पहले इन सम्पूर्ण क्षेत्रोंका माहात्म्य सुने

॥ ३१ ॥ तत्पश्चात् शास्त्रोक्त विधिसे देवीकी पूजामें लग जाय। अथवा हे नगराज! ये सम्पूर्ण क्षेत्र काशीमें विराजमान हैं ॥ ३२ ॥ अतः देवीमें श्रद्धा रखनेवाला पुरुष निरन्तर काशीमें रहनेका प्रयत्न करे। वहीं रहकर उक्त स्थानोंका दर्शन करते हुए देवीके मन्त्रका जप एवं उनके चरण-कमलका ध्यान करे॥ ३३ ॥ इस पुण्यमय कर्मके प्रभावसे पुरुष संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाता है। हे हिमालय! जो पुरुष प्रातःकाल उठकर भगवतीके इन नामोंका उच्चारण करता है, उसके सम्पूर्ण पाप उसी क्षण तुरन्त भस्म हो जाते हैं। द्विजमात्रका यह कर्तव्य है कि श्राद्धके अवसरपर सर्वप्रथम इन नामोंका पाठ करे। ऐसा करनेसे उसके समस्त पितर मुक्त होकर परमपद पा जाते हैं ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ उत्तम व्रतका पालन करनेवाले हे हिमालय! अब तुम्हारे सामने व्रतोंकी चर्चा करती हूँ ॥ ३६ ॥ ये सभी व्रत स्त्री और पुरुष—प्रायः सबको यत्नपूर्वक करने चाहिये। जो तृतीयाव्रत है, उसके तीन नाम हैं—अनन्ततृतीया

तदुक्तेन विधानेन पश्चाद्देवीं प्रपूजयेत् ॥ अथवा सर्वक्षेत्राणि काश्यां संति नगोत्तम ॥ ३२ ॥ अतस्तत्र वसेन्नित्यं देवीभक्तिपरायणः ॥ तानि स्थानानि संपश्यञ्जपन्देवीं निरन्तरम् ॥ ३३ ॥ ध्यायंस्तच्चरणांभोजं मुक्तो भवति बंधनात् ॥ इमानि देवीनामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत् ॥३४॥ भस्मीभवंति पापानि तत्क्षणान्नग सत्वरम् ॥ श्राद्धकाले पठेदेतान्यमलानि द्विजाग्रतः ॥ ३५ ॥ मुक्तास्तत्पितरः सर्वे प्रयांति परमां गतिम् ॥ अधुना कथयिष्यामि व्रतानि तव सुव्रत ॥ ३६ ॥ नारीभिश्च नरैश्चैव कर्तव्यानि प्रयत्नतः ॥ व्रतमनन्ततृतीयाख्यं रसकल्याणिनीव्रतम् ॥ ३७ ॥ आर्द्रानन्दकरं नाम्ना तृतीयाया व्रतं च यत् ॥ शुक्रवारव्रतं चैव तथा कृष्णचतुर्दशी ॥३८॥ भौमवारव्रतं चैव प्रदोषव्रतमेव च ॥ यत्र देवो महादेवो देवीं संस्थाप्य विष्टरे ॥ ३९ ॥ नृत्यं करोति पुरतः सार्धं देवैर्निशामुखे ॥ तत्रोपोष्य रजन्यादौ प्रदोषे पूजयेच्छिवाम् ॥ ४० ॥ प्रतिपक्षं विशेषेण तद्देवीप्रीतिकारकम् ॥ सोमवारव्रतं चैव ममातिप्रियकृन्नग ॥ ४१ ॥ तत्रापि देवीं संपूज्य रात्रौ भोजनमाचरेत् ॥ नवरात्रद्वयं चैव व्रतं प्रीतिकरं मम ॥ ४२ ॥ एवमन्यान्यपि विभो नित्यनैमित्तिकानि च ॥ व्रतानि कुरुते यो वै मत्प्रीत्यर्थं विमत्सरः ॥ ४३ ॥ प्राप्नोति मम सायुज्यं स मे भक्तः स मे प्रियः ॥ उत्सवानपि कुर्वीत दोलोत्सवमुखान्विभो ॥ ४४ ॥ शयनोत्सवं तथा कुर्यात्तथा जागरणोत्सवम् ॥ रथोत्सवं च मे कुर्याद्दमनो-

व्रत, रसकल्याणिनी व्रत एवं आर्द्रानन्दकरी व्रत। शुक्रवार और चतुर्दशीको भी देवीका व्रत किया जाता है ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ भौमवारको भी देवीव्रत कहते हैं। प्रदोष देवीका वह व्रत है, जिस समय आधी रातमें भगवान् शंकर अपनी प्रेयसी प्रियाको आसनपर बैठाकर उनके सामने देवताओंके साथ नृत्य करते हैं। उस दिन उपवास करके सायंकालके प्रदोषमें देवीकी पूजा करनी चाहिये ॥ ३९ ॥ ४० ॥ देवीको विशेषरूपसे संतुष्ट करनेवाला यह व्रत प्रतिपक्षमें मनाया जाता है। हे हिमालय! सोमवारका व्रत भी मुझे बहुत प्रिय है ॥ ४१ ॥ इस व्रतमें दिनभर उपवास करके देवीका पूजन करनेके पश्चात् रात्रिमें भोजन करना चाहिये। चैत्र और आश्विन-दोनोंके नवरात्र मुझे परम प्रिय हैं ॥ ४२ ॥ हे राजन्! इसी प्रकार अन्य भी अनेक नित्य और नैमित्तिक व्रत हैं। जो राग-द्वेषसे रहित होकर मेरी प्रसन्नताके लिये इन व्रतोंका अनुष्ठान करता है, उसे मेरा सायुज्यपद प्राप्त हो जाता है। उस पुरुषको मैं अपना भक्त एवं

प्रिय मानती हूँ। हे राजन्! व्रतोंके अवसरपर झूला सजाकर मेरे उत्सव मनाने चाहिये ॥४३॥४४॥ शयनोत्सव, जागरणोत्सव, रथोत्सव तथा दमनोत्सव आदि अनेक उत्सव हैं। इन्हें मनाना आवश्यक है ॥ ४५ ॥ श्रावण महीनेमें एक पवित्रोत्सव होता है। उससे मैं बहुत प्रसन्न होती हूँ। मेरा भक्त सदा इस व्रतका पालन करे। ऐसे ही अन्य भी बहुत-से महोत्सव हैं, जिन्हें मनाना चाहिये ॥ ४६ ॥ उत्सवके अवसरपर मेरे भक्तोंको प्रसन्नतापूर्वक भोजन करावे। सुवासिनी स्त्रियोंको भोजन कराया जाय। कुमारी कन्याओं और ब्रह्मचारियोंको मेरा ही स्वरूप समझकर उन्हें भी भोजन करावे ॥ ४७ ॥ खुले हाथसे धन व्यय करते हुए ब्राह्मणकी कुमारी कन्याओं तथा ब्रह्मचारियोंकी पुष्प आदिसे पूजा करे। जो इस प्रकार सावधान होकर प्रीतिपूर्वक प्रतिवर्ष मेरा पूजन करता है, वह धन्य, कृतकृत्य तथा निःसंदेह मेरा प्रेमपात्र है। संक्षेपमें मैंने यह सारी बातें बतला दीं। यह प्रसङ्ग मेरे लिये बहुत ही प्रिय है। जो मेरा अनुशासन न मानता हो तथा मेरे प्रति जिसकी श्रद्धा न हो, उसके सामने यह प्रसङ्ग कभी नहीं कहना चाहिये ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे

त्सवमेव च ॥ ४५ ॥ पवित्रोत्सवमेवापि श्रावणे प्रीतिकारकम् ॥ मम भक्तः सदा कुर्यादेवमन्यान्महोत्सवान् ॥ ४६ ॥ मद्भक्तान्भोजयेत्प्रीत्या तथा चैव सुवासिनीः ॥ कुमारीर्बटुकांश्चापि मद्बुद्ध्या मद्गतांतरः ॥ ४७ ॥ वित्तशाठ्येन रहितो यजेदेतान्सुमादिभिः ॥ य एवं कुरुते भक्त्या प्रतिवर्षमतंद्रितः ॥ ४८ ॥ स धन्यः कृतकृत्योऽसौ मत्प्रीतेः पात्रमंजसा ॥ सर्वमुक्तं समासेन मम प्रीतिप्रदायकम् ॥ ४९ ॥ नाशिष्याय प्रदातव्यं नाभक्ताय कदाचन ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे देवीगीतायामष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

॥ हिमालय उवाच ॥ देवदेवि महेशानि करुणासागरेऽम्बिके ॥ ब्रूहि पूजाविधिं सम्यग्यथावदधुना निजम् ॥ १ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ वक्ष्ये पूजाविधिं राजन्नंबिकाया यथा प्रियम् ॥ अत्यंतश्रद्धया सार्धं शृणु पर्वतपुंगव ॥२॥ द्विविधा मम पूजा स्याद्बाह्या चाभ्यंतराऽपि च ॥ बाह्याऽपि द्विविधा प्रोक्ता वैदिकी तांत्रिकी तथा ॥३॥ वैदिक्यर्चाऽपि द्विविधा मूर्तिभेदेन भूधर ॥ वैदिकी वैदिकैः कार्या वेददीक्षासमन्वितैः ॥४॥ तंत्रोक्तदीक्षावद्भिस्तु तांत्रिकी संश्रिता भवेत् ॥ इत्थं पूजारहस्यं च न ज्ञात्वा विपरीतकम् ॥५॥ करोति यो नरो मूढः स पतत्येव सर्वथा ॥ तत्र या वैदिकी प्रोक्ता प्रथमा तां वदा-

पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायामष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

(देवीपूजनके विविध प्रसंग) हिमालयने कहा—हे देवेश्वरी! हे महेशानी! हे करुणानिधे! हे अम्बिके! अब अपने पूजनकी समुचित विधि बतानेकी कृपा कीजिये ॥ १ ॥ श्रीदेवीजी कहती हैं—हे राजन्! हे पर्वतराज! जगदम्बाको यथार्थरूपमें प्रसन्न करनेवाले पूजनकी विधि मैं बताती हूँ। तुम अत्यन्त श्रद्धालु होकर इसका श्रवण करो ॥ २ ॥ मेरी पूजा दो प्रकारकी है—बाह्य और आभ्यन्तर। बाह्य पूजाके भी दो प्रकार बताये गये हैं—'वैदिकी' और 'तान्त्रिकी' ॥ ३ ॥ हे हिमालय! मूर्तिभेदसे वैदिकी पूजा भी दो प्रकारसे सम्पन्न होती है। वैदिक मन्त्रोंके अध्ययनशील पुरुष वेदके मन्त्रोंका उच्चारण करके जो पूजा करते हैं, वह 'वैदिकी' तथा तन्त्रोक्त मन्त्रोंसे जो पूजा सम्पन्न होती है, उसे 'तान्त्रिकी' पूजा कहते हैं। इस प्रकार

पूजा-रहस्यको न समझकर जो अज्ञानी मानव उलटे ही ढंगसे पूजनमें संलग्न होता है, वह सर्वथा पतनोन्मुख है। सर्वप्रथम जो वैदिकी पूजा है, उसका प्रकार बताती हूँ ॥ ४-६ ॥ हे हिमालय ! तुम मेरे जिस महान् रूपका साक्षात् दर्शन कर चुके हो, जिसमें अनन्त मस्तक, नेत्र और चरण थे ॥ ७ ॥ जो सम्पूर्ण शक्तियोंसे सम्पन्न, सर्वश्रेष्ठ एवं परम प्रेरक था, उसी रूपका निरन्तर पूजन, नमन, ध्यान और स्मरण करना चाहिए ॥ ८ ॥ हे पर्वतराज ! प्रथम पूजाका यही रूप बताया गया है। तुम चित्तको शान्त करके सावधान हो तथा दम्भ एवं अहंकारसे शून्य होकर उसी रूपकी शरणमें जाओ। यज्ञशील बनकर पूजामें पूरी तत्परता रखना। जिससे चित्तके द्वारा वही रूप दीखता रहे। जप और ध्यानकी शृंखला कभी टूटे नहीं ॥ ९ ॥ १० ॥ अनन्य एवं प्रेमपूर्ण भक्तिसे मेरे उपासक बनकर यज्ञोंके द्वारा मेरा पूजन तथा तप एवं दानके द्वारा मुझे ही संतुष्ट करनेका प्रयत्न करो ॥ ११ ॥ यों करनेसे मेरी कृपा तुम्हें संसार-बन्धनसे अवश्य मुक्त कर देगी। जो सदा मुझपर निर्भर रहते हैं तथा जिनका चित्त निरन्तर मुझमें लगा रहता है, वे मेरे उत्तम भक्त माने जाते हैं। मेरी

म्यहम् ॥ ६ ॥ यन्मे साक्षात्परं रूपं दृष्टवानसि भूधर ॥ अनंतशीर्षनयनमनंतचरणं महत् ॥ ७ ॥ सर्वशक्तिसमायुक्तं प्रेरकं यत्परात्परम् ॥ तदेव पूजयेन्नित्यं नमेद्ध्यायेत्स्मरेदपि ॥ ८ ॥ इत्येतत्प्रथमार्चायाः स्वरूपं कथितं नग ॥ शांतः समाहितमना दंभाहंकारवर्जितः ॥ ९ ॥ तत्परो भव तद्याजी तदेव शरणं व्रज ॥ तदेव चेतसा पश्य जप ध्यायस्व सर्वदा ॥ १० ॥ अनन्यया प्रेमयुक्तभक्त्या मद्भावमाश्रितः ॥ यज्ञैर्यज तपोदानैर्मामेव परितोषय ॥ ११ ॥ इत्थं ममानुग्रहतो मोक्ष्यसे भवबंधनात् ॥ मत्परा ये मदासक्तचित्ता भक्तवरा मताः ॥ १२ ॥ प्रतिजाने भवादस्मादुद्धराम्यचिरेण तु ॥ ध्यानेन कर्मयुक्तेन भक्तिज्ञानेन वा पुनः ॥ १३ ॥ प्राप्याहं सर्वथा राजन्न तु केवलकर्मभिः ॥ धर्मात्संजायते भक्तिर्भक्त्या संजायते परम् ॥ १४ ॥ श्रुतिस्मृतिभ्यामुदितं यत्स धर्मः प्रकीर्तितः ॥ अन्यशास्त्रेण यः प्रोक्तो धर्माभासः स उच्यते ॥ १५ ॥ सर्वज्ञात्सर्वशक्तेश्च मत्तो वेदः समुत्थितः ॥ अज्ञानस्य ममाभावादप्रमाणा न च श्रुतिः ॥ १६ ॥ स्मृतयश्च श्रुतेरर्थं गृहीत्वैव च निर्गताः ॥ मन्वादीनां श्रुतीनां च ततः प्रामाण्यमिष्यते ॥ १७ ॥ क्वचित्कदाचित्तन्त्रार्थं कटाक्षेण परोदितम् ॥ धर्मं वदन्ति सोंशस्तु नैव ग्राह्योऽस्ति वैदिकैः ॥ १८ ॥

प्रतिज्ञा है कि मैं तुरन्त इस भवसागरसे उनका उद्धार कर दूँ। हे राजन् ! मैं ध्यानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग अथवा ज्ञानयोग—इनमेंसे किसीके द्वारा भी प्राप्त हो सकता हूँ, न कि केवल कर्मयोगसे ही। कर्म निरर्थक नहीं हैं। क्योंकि सत्कर्मके प्रभावसे पापका उच्छेद होकर धार्मिक भावना जाग जाती है। धर्मसे भक्तिका प्रादुर्भाव होता है और भक्ति परब्रह्मका ज्ञान प्राप्त होनेमें प्रमुख साधन है ॥ १२-१४ ॥ श्रुति और स्मृतिमें प्रतिपादित सत्कर्म ही धर्म कहा गया है। अन्य शास्त्रोंमें कथित धर्मको केवल धर्माभास कहते हैं ॥ १५ ॥ मैं ज्ञान एवं सब कुछ करनेकी योग्यतासे सम्पन्न हूँ। मुझसे उत्पन्न होनेके कारण वेदमें भी ये सभी सद्गुण हैं। वेदसे उत्पन्न श्रुति भी अप्रामाणिक नहीं है ॥ १६ ॥ श्रुतिके ही अर्थको लेकर स्मृतियोंका प्रकाशन हुआ है, जो मनुस्मृति आदिके नामसे विख्यात हैं। अतः श्रुतियों और स्मृतियोंकी प्रामाणिकता स्वयं सिद्ध है ॥ १७ ॥ स्मृतियों और पुराणोंमें कटाक्ष करते हुए

कहीं-कहीं वेदके विरुद्ध कुछ अंश पाये जाते हैं और उसे भी धर्म बताया गया है, सो वैदिक विद्वानोंको चाहिये कि उस अंशको न मानें ॥ १८ ॥ क्योंकि अन्य शास्त्रकर्ताओंके वाक्य अज्ञानमूलक हैं। सो अज्ञानदोषसे दूषित होनेके कारण वे प्रामाणिक नहीं माने जा सकते ॥ १९ ॥ अतएव मोक्षकी अभिलाषा करनेवाले पुरुषको सद्धर्मकी प्राप्तिके लिए सर्वथा वेदका आश्रय लेना चाहिये। जैसे जगत्में राजाकी आज्ञाको कभी कोई नहीं टाल सकता, वैसे ही मुझ सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र शासिकाकी आज्ञा जो श्रुति है, उसे मनुष्य कैसे अमान्य कर सकते हैं? मेरी आज्ञाका पालन हो—एतदर्थ मैंने ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि वर्णोंको उत्पन्न किया है। अब मेरी वाणी जो श्रुति है, उसका अभिप्राय समझ लीजिए। हे हिमालय! जब-जब धर्मकी हानि और अधर्मकी वृद्धि होती है, तब-तब मेरे अवतार हुआ करते हैं। हे राजन्! इसीलिए देवताओं और दैत्योंका विभाग हुआ है ॥ २०–२३ ॥ जो लोग मुझसे सम्बन्ध रखनेवाले सद्धर्म और सत्-शिक्षाके अनुसार व्यवहार नहीं करते, उनके लिये मैंने नरकोंकी सृष्टि कर रखी है। वे नरक ऐसे वीभत्स हैं कि सुननेमात्रसे ही हृदय काँप उठता है ॥ २४ ॥ वेदमें कहे गये धर्मका परित्याग

अन्येषां शास्त्रकर्तॄणामज्ञानं प्रभवत्वतः ॥ अज्ञानदोषदुष्टत्वात्तदुक्तेर्न प्रमाणता ॥१९॥ तस्मान्मुमुक्षुधर्मार्थं सर्वदा वेदमाश्रयेत् ॥ राजाज्ञा च यथा लोके हन्यते न कदाचन ॥२०॥ सर्वेशान्या ममाज्ञा सा श्रुतिस्त्याज्या कथं नृभिः ॥ मदाज्ञारक्षणार्थं तु ब्रह्मक्षत्रियजातयः ॥ २१ ॥ मया सृष्टास्ततो ज्ञेयं रहस्यं मे श्रुतेर्वचः ॥ यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भूधर ॥ २२ ॥ अभ्युत्थानमधर्मस्य तदा वेषान्बिभर्म्यहम् ॥ देवदैत्यविभागश्चाप्यत एवाभवन्नृप ॥२३॥ ये न कुर्वन्ति तद्धर्मं तच्छिक्षार्थं मया सदा ॥ संपादितास्तु नरकास्त्रासो यच्छ्रवणाद्भवेत् ॥२४॥ यो वेदधर्ममुज्झित्य धर्मान्यं समाश्रयेत् ॥ राजा प्रवासयेद्देशान्निजादेतानधर्मिणः ॥ २५ ॥ ब्राह्मणैर्न च संभाष्याः पंक्तिग्राह्या न च द्विजैः ॥ अन्यानि यानि शास्त्राणि लोकेऽस्मिन्विविधानि च ॥ २६ ॥ श्रुतिस्मृतिविरुद्धानि तामसान्येव सर्वशः ॥ वामं कापालकं चैव कौलकं भैरवागमः ॥२७॥ शिवेन मोहनार्थाय प्रणीतो नान्यहेतुकः ॥ दक्षशापाद्भृगोः शापाद्दधीचस्य च शापतः ॥ २८ ॥ दग्धा ये ब्राह्मणवरा वेदमार्गबहिष्कृताः ॥ तेषामुद्धरणार्थाय सोपानक्रमतः सदा ॥ २९ ॥ शैवाश्च वैष्णवाश्चैव सौराः शाक्तास्तथैव च ॥ गाणपत्या आगमाश्च प्रणीताः शंकरेण तु ॥३०॥ तत्र वेदविरुद्धोंशोऽप्युक्त एव क्वचित्क्वचित् ॥ वैदिकैस्तद्ग्रहे दोषो न भवत्येव कर्हिचित् ॥ ३१ ॥ सर्वथा वेदभिन्नार्थे नाधिकारी द्विजो भवेत् ॥ वेदाधिकारहीनस्तु भवेत्त-

करके जो अन्य अधर्मका आश्रय लेते हैं, राजाको चाहिये कि उन अधार्मिक व्यक्तियोंको अपने राज्यसे निकाल दे ॥ २५ ॥ ब्राह्मण लोग उन अधार्मिकोंसे न बात करें और न उन्हें अपनी पंक्तिमें बैठावें। इस जगत्में तरह-तरहके अन्य जितने शास्त्र हैं, वे सभी श्रुति और स्मृतिसे विरुद्ध होनेके कारण तामस कहे जाते हैं। उन शास्त्रोंके नाम हैं—वाम, कापाल, कौलक और भैरवागम ॥२६॥२७॥ शिवजीने मोहमें डालनेके लिये इन शास्त्रोंका प्रतिपादन किया है—इसके सिवाय दूसरा कोई कारण नहीं है। इसके अतिरिक्त दक्ष प्रजापतिके शाप, महर्षि भृगुके शाप और महर्षि दधीचके शापसे जो उच्चकोटिके ब्राह्मण पथभ्रष्ट हो गये थे। उनके उद्धारार्थ सोपानके क्रमसे शंकरजीने शैव, वैष्णव, सौर, शाक्त और गाणपत्य आगमका निर्माण किया ॥ २८–३० ॥ उनमें कहीं-कहीं वेदसे अविरुद्ध अंश भी है। वेदज्ञ पुरुष उस अंशको ग्रहण कर लें तो कोई दोष नहीं है ॥ ३१ ॥ वेदसे भिन्न अर्थको स्वीकार करनेके लिये

द्विज सर्वथा अनधिकारी होता है। अतएव वैदिक पुरुष सम्यक् प्रकारसे प्रयत्न करके वेदका ही आश्रय ले। यही शाश्वत धर्म है। इसके साथ रहनेवाले ज्ञानसे ही परब्रह्म प्रकाशित हो सकता है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ जो सम्पूर्ण इच्छाओंका त्याग करके मेरी ही शरण आ गये हैं, समस्त प्राणियोंपर दया करते हैं, मान एवं अहंकारसे रहित हैं ॥ ३४ ॥ जिनका चित्त मुझमें अनुरक्त रहता है, प्राण भी मुझमें लगे रहते हैं, जिनके द्वारा मेरे स्थानोंकी चर्चा होती रहती है। ऐसे संन्यासी, वानप्रस्थी, गृहस्थ तथा ब्रह्मचारी यदि भक्तिपूर्वक मेरे विराट्रूपकी सदा उपासना करते हैं तो निरन्तर मुझमें लगे रहनेवाले उन पुरुषोंके अज्ञानजन्य अन्धकारको ज्ञानमय सूर्यके प्रकाश द्वारा मैं तुरन्त नष्ट कर देती हूँ—इसमें कोई सन्देह नहीं है। हे हिमालय! इस प्रकार वेदके सिद्धान्तपर निर्भर रहनेवाली मेरी प्रथम पूजा सम्पन्न होती है। इसका स्वरूप मैंने संक्षेपमें बताया है ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ अब दूसरी पूजाका प्रसंग बतलाती हूँ। मूर्ति, वेदी, सूर्य अथवा चन्द्रमाका मण्डल ॥३८॥ जल, बाणाकार चिह्न, यन्त्र, महान् चित्रपट अथवा हृदयरूपी कमलपर मुझ परमेश्वरीका ध्यान करके पूजन करे ॥३९॥ मेरे सगुणरूपका

त्राधिकारवान् ॥ ३२ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन वैदिको वेदमाश्रयेत् ॥ धर्मेण सहितं ज्ञानं परं ब्रह्म प्रकाशयेत् ॥ ३३ ॥ सर्वैषणाः परित्यज्य मामेव शरणं गताः ॥ सर्वभूतदयावंतो मानाहंकारवर्जिताः ॥३४॥ मच्चित्ता मद्गतप्राणा मत्स्थानकथने रताः ॥ संन्यासिनो वनस्थाश्च गृहस्था ब्रह्मचारिणः ॥ ३५ ॥ उपासंते सदा भक्त्या योगमैश्वरसंज्ञितम् ॥ तेषां नित्याविवियुक्तानामहमज्ञानजं तमः ॥ ३६ ॥ ज्ञानसूर्यप्रकाशेन नाशयामि न संशयः ॥ इत्थं वैदिकपूजायाः प्रथमाया नगाधिप ॥ ३७ ॥ स्वरूपमुक्तं संक्षेपाद्द्वितीयाया अथो ब्रुवे ॥ मूर्तौ वा स्थंडिले वापि तथा सूर्येन्दुमण्डले ॥३८॥ जलेऽथ वा बाणलिंगे यंत्रे वाऽपि महापटे ॥ तथा श्रीहृदयांभोजे ध्यात्वा देवीं परात्पराम् ॥ ३९ ॥ सगुणां करुणापूर्णां तरुणीमरुणारुणाम् ॥ सौंदर्यसारसीमां तां सर्वावयवसुन्दरीम् ॥ ४० ॥ शृंगाररससम्पूर्णां सदा भक्तार्तिकातराम् ॥ प्रसादसुमुखीमंबां चंद्रखंडशिखंडिनीम् ॥ ४१ ॥ पाशांकुशवराभीतिधरामानन्दरूपिणीम् ॥ पूजयेदुपचारैश्च यथावित्तानुसारतः ॥ ४२ ॥ यावदांतरपूजायामधिकारो भवेन्न हि ॥ तावद्बाह्यामिमां पूजां श्रयेज्ज्ञाते तु तां त्यजेत् ॥ ४३ ॥ आभ्यंतरा तु या पूजा सा तु संविल्लयः स्मृतः ॥ संविदेव परं रूपमुपाधिरहितं मम ॥ ४४ ॥ अतः

ध्यान यों करना चाहिये—देवी करुणासे परिपूर्ण है, इनकी तरुण अवस्था है। संध्याकी लालिमा-जैसे ललित वर्णसे ये शोभा पा रही हैं। इनका श्रीविग्रह सुन्दरताकी सीमा है। इनके सम्पूर्ण अङ्ग परम मनोहर हैं ॥ ४० ॥ कोई भी ऐसा शृंगार नहीं है, जो इनमें न हो। भक्तोंके दुःखसे ये सदा दुखी रहा करती हैं। इन जगदम्बाका मुखमण्डल प्रसन्नतासे भरा रहता है। मुकुटपर बाल-चन्द्रमा तथा मयूरपंख शोभा बढ़ा रहे हैं ॥ ४१ ॥ इन्होंने पाश, अंकुश, वर और अभयमुद्राको धारण कर रखा है। ये आनन्दमय रूपसे सुशोभित हैं। इस प्रकार ध्यान करके वित्तके अनुसार सामग्रियाँ जुटाकर उनसे मेरी पूजाका कार्य सम्पन्न करे ॥४२॥ जबतक अन्तःपूजाका अधिकार न मिले, तबतक तो बाह्यपूजा ही करनी चाहिए। अधिकारी होते ही बाह्य पूजा छोड़कर अन्तःपूजामें लग जाय ॥४३॥ क्योंकि मेरी जो आभ्यन्तर पूजा है, वह थोड़े समय बाद ज्ञानमें लीन हो जाती है—ऐसा कथन है। उपाधिशून्य ज्ञान ही मेरा परम रूप है ॥ ४४ ॥ अतः मेरे

ज्ञानमय रूपमें अपने आश्रयहीन चित्तको लगा देना चाहिये। इस ज्ञानमय रूपके अतिरिक्त यह प्रपञ्चमय जगत् सर्वथा असत् है ॥ ४५ ॥ इसीलिए जन्म और मृत्युकी क्रियाको शान्त करनेके उद्देश्यसे एकनिष्ठ होकर मेरा चिन्तन करना चाहिये ॥ ४६ ॥ मैं सर्वसाक्षिणी एवं आत्मस्वरूपिणी हूँ। ध्यानयोगपूर्वक चित्तसे मेरा स्मरण करना चाहिये। हे हिमालय ! इसके बाद बाह्य-पूजाका प्रसंग विस्तारपूर्वक मेरे द्वारा वर्णित होगा। तुम अपने मनको सावधान करके सुनो ॥ ४७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते सप्तमस्कन्धे भाषाटीकायामेकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

(पूजनविधान और फलश्रुति) श्रीदेवी कहती हैं—हे हिमालय ! प्रातःकाल उठकर अपने मस्तकमें जो ब्रह्मरन्ध्र है, उसमें एक स्वच्छ सहस्रदल कमलका चिन्तन करे। ध्यान यों होना चाहिये—'यह कमल कपूरके समान श्वेत वर्णका है। मेरे लौकिक गुरुके समान आकारवाले महाभाग गुरुदेव इस कमलके आसनपर विराजमान हैं ॥ १ ॥ इनका मुख परम प्रसन्न है। तरह-तरहके आभूषण इनकी शोभा बढ़ा रहे हैं। इनकी शक्ति भी साथ बैठी हैं।' ध्यानोपरान्त प्रणाम करके पण्डितजन कुण्डलिनीमें देवीका ध्यान करें—॥ २ ॥ ये ही देवी

संविदि मद्रूपे चेतः स्थाप्यं निराश्रयम् ॥ संविद्रूपातिरिक्तं तु मिथ्या मायामयं जगत् ॥ ४५ ॥ अतः संसारनाशाय साक्षिणीमात्मरूपिणीम् ॥ भावयेन्निर्मनस्केन योगयुक्तेन चेतसा ॥ ४६ ॥ अतः परं बाह्यपूजाविस्तारः कथ्यते मया ॥ सावधानेन मनसा शृणु पर्वतसत्तम ॥ ४७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे देवीगीतायामेकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

॥ देव्युवाच ॥ प्रातरुत्थाय शिरसि संस्मरेत्पद्ममुज्ज्वलम् ॥ कर्पूराभं स्मरेत्तत्र श्रीगुरुं निजरूपिणम् ॥ १ ॥ सुप्रसन्नं लसद्भूषाभूषितं शक्तिसंयुतम् ॥ नमस्कृत्य ततो देवीं कुण्डलीं संस्मरेद्बुधः ॥ २ ॥ प्रकाशमानां प्रथमे प्रयाणे प्रतिप्रयाणेऽप्यमृतायमानाम् ॥ अंतः पदव्यामनुसंचरंतीमानन्दरूपामबलां प्रपद्ये ॥ ३ ॥ ध्यात्वैवं तच्छिखामध्ये सच्चिदानन्दरूपिणीम् ॥ मां ध्यायेदथ शौचादिक्रियाः सर्वाः समापयेत् ॥ ४ ॥ अग्निहोत्रं ततो हुत्वा मत्प्रीत्यर्थं द्विजोत्तमः ॥ होमांते स्वासने स्थित्वा पूजासंकल्पमाचरेत् ॥ ५ ॥ भूतशुद्धिं पुरा कृत्वा मातृकान्यासमेव च ॥ हृल्लेखामातृकान्यासं नित्यमेव समाचरेत् ॥ ६ ॥ मूलाधारे हकारं च हृदये च रकारकम् ॥ भ्रूमध्ये तद्वदीकारं ह्रींकारं मस्तके न्यसेत् ॥ ७ ॥

प्रथम प्रयाणमें अर्थात् जब ब्रह्मरन्ध्रपर पधारी थीं, तब इनका रूप एक प्रकाश-पुञ्ज जैसा था। फिर कुण्डलिनीमें पधारनेपर ये अमृतस्वरूपिणी बन गयी हैं। अन्तःपदमें अर्थात् सुषुम्णा नाड़ीमें विराजते समय ये ही परम शक्ति एक अबला स्त्रीके रूपमें दर्शन दे रही हैं। इनका रूप परम आनन्दमय है। अतः मैं इनकी शरण ग्रहण करता हूँ ॥ ३ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार ध्यान करनेके पश्चात् कुण्डलिनी शिखाके मध्यमें मुझ सच्चिदानन्दरूपिणी देवीका ध्यान करे। ये सभी क्रियाएँ संध्या-वन्दनके अन्तमें पूर्ण करनी चाहिये ॥ ४ ॥ इसके बाद श्रेष्ठ द्विज मुझे प्रसन्न करनेके लिये अग्निहोत्र करें। होम करनेके उपरान्त अपने आसनपर बैठकर मेरी पूजामें संलग्न हो जायँ ॥ ५ ॥ पहले भूतशुद्धि करके फिर मातृकान्यास करना चाहिये। मातृकान्यासमें पहले 'र' इस मायाबीजका उल्लेख अनिवार्य है। पूजामें प्रतिदिन यह न्यास होना चाहिये ॥ ६ ॥ मूलाधारमें हकार, हृदयमें रकार, भ्रूमध्यमें ईकार तथा

मस्तकमें ह्रींकारका न्यास करे ॥ ७ ॥ तत्-तत् मन्त्रोंके कथनानुसार अन्य सभी न्यासोंकी विधि सम्पन्न करनी चाहिये। ऐसी कल्पना करे कि 'मेरे इस शरीरमें ही एक दिव्य पीठ है। धर्म आदि सभी सत्कर्म मूर्तिमान् होकर एक साथ विराजमान हैं' ॥ ८ ॥ तत्पश्चात् विज्ञ पुरुष यों ध्यान करे–'प्राणायामके प्रभावसे मेरा हृदयरूपी कमल खिल उठा है। यह पञ्चप्रेतासन है। इस दिव्य आसनपर महादेवी विराजमान हैं।' ॥ ९ ॥ हे हिमालय! ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर और सदाशिव–ये पाँचों देवता 'पञ्चमहाप्रेत' कहे जाते हैं। मेरे पादमूलमें ये रहते हैं–अर्थात् मेरे मंचके ये चार पाये हैं और फलक–पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश–इन पाँच भूतों तथा जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीया एवं अतीत–इन पाँच अवस्थाओंके ये व्यवस्थापक हैं। मेरा चिन्तनमय रूप तो अव्यक्त है ॥ १० ॥ ११ ॥ मैं इन अवस्थाओंसे सर्वथा परे हूँ। शक्तितन्त्रमें ब्रह्मा प्रभृतिका विष्टररूपसे परिणत होना प्रसिद्ध है। यों निरन्तर ध्यान करके मानसिक भोगसामग्रियोंसे मेरी पूजा और जप सम्पन्न करे ॥ १२ ॥ फिर मुझ श्रीदेवीको जप अर्पण करके अर्घ्य देनेकी व्यवस्था करे। सर्वप्रथम पूजाके सभी पात्र सामने

तत्तन्मंत्रोदितानन्यान्न्यासान्सर्वान्समाचरेत् ॥ कल्पयेत्स्वात्मनो देहे पीठं धर्मादिभिः पुनः ॥ ८ ॥ ततो ध्यायेन्महादेवीं प्राणायामैर्विजृम्भिते ॥ हृदंभोजे मम स्थाने पञ्चप्रेतासने बुधः ॥ ९ ॥ ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः ॥ एते पंच महाप्रेताः पादमूले मम स्थिताः ॥ १० ॥ पंचभूतात्मका ह्येते पञ्चावस्थात्मका अपि ॥ अहं त्वव्यक्तचिद्रूपा तदतीताऽस्मि सर्वदा ॥ ११ ॥ ततो विष्टरतां याताः शक्तितंत्रेषु सर्वदा ॥ ध्यात्वैवं मानसैर्भोगैः पूजयेन्मां जपेदपि ॥ १२ ॥ जपं समर्प्य श्रीदेव्यै ततोऽर्घ्यस्थापनं चरेत् ॥ पात्रासादनकं कृत्वा पूजाद्रव्याणि शोधयेत् ॥ १३ ॥ जलेन तेन मनुना चास्त्रमंत्रेण देशिकः ॥ दिग्बंधं च पुरा कृत्वा गुरून्नत्वा ततः परम् ॥ १४ ॥ तदनुज्ञां समादाय बाह्यपीठे ततः परम् ॥ हृदिस्थां भावितां मूर्तिं मम दिव्यां मनोहराम् ॥१५॥ आवाहयेत्ततः पीठे प्राणस्थापनविद्यया ॥ आसनावाहने चार्घ्यं पाद्याद्याचमनं तथा ॥ १६ ॥ स्नानं वासोद्वयं चैव भूषणानि च सर्वशः ॥ गंधं पुष्पं यथायोग्यं दत्त्वा देव्यै स्वभक्तितः ॥ १७ ॥ यन्त्रस्थानामावृतीनां पूजनं सम्यगाचरेत् ॥ प्रतिवारमशक्तानां शुक्रवारो नियम्यते ॥१८॥ मूलदेवीप्रभारूपाः स्मरर्तव्या अंगदेवताः ॥ तत्प्रभापटलव्याप्तं त्रैलोक्यं च विचिंतयेत् ॥ १९ ॥ पुनरावृत्ति-

रख ले। पूजामें काम आनेवाली वस्तुओंको अस्त्रमन्त्र अर्थात् 'ॐफट्' इस मन्त्रका उच्चारण करके शुद्ध करे ॥ १३ ॥ दिग्बन्ध भी इसी मन्त्रसे करना चाहिये। यह सब कृत्य समाप्त करके गुरुदेवको प्रणाम करे। फिर मेरी आज्ञाके अनुसार बाह्यपूजाकी तैयारी करनी चाहिये। हे राजन्! साधकके हृदयमें मेरी जो दिव्य मनोहर मूर्ति बसी हो, उसीका बाह्य पीठपर आवाहन करे। फिर, वेदमन्त्र द्वारा प्राणप्रतिष्ठा करना आवश्यक है। आसन, आवाहन, अर्घ्य, पाद्य, आचमन, स्नान और वस्त्रदान—ये विधियाँ क्रमशः सम्पन्न करे। दो वस्त्र अर्पण किये जायँ। भूषणोंसे मूर्तिका शृंगार करे। सब प्रकारकी गन्ध-पुष्प आदि यथायोग्य वस्तुएँ अपनी भक्तिके अनुसार देवीको अर्पण करे ॥ १४–१७ ॥ इसके बाद मन्त्रमें लिखित आवरणदेवताओंका सविधि पूजन होना चाहिये। जो प्रतिदिन पूजा न कर सकते हों, वे शुक्रवारको पूजा करनेका अनिवार्य नियम बना लें ॥ १८ ॥ अब उपर्युक्त आवरण

देवताओंके प्रसंग बताती हूँ—पहले मूल देवीकी भावना करे। ये देवी परम प्रकाशमय हैं। इनका प्रकाशपुञ्ज समस्त त्रिलोकीमें व्याप्त है ॥ १९ ॥ यों चिन्तन करके आसन-पाद्य आदि उपचारोंसे अङ्गदेवताओंको सुपूजित करनेके उपरान्त पुनः मुझ मूल देवीकी पूजा करनी चाहिये। पुष्प, चन्दन, धूप, वस्त्र, नैवेद्य, तर्पण, ताम्बूल और दक्षिणा आदिसे मुझे संतुष्ट करना आवश्यक है। तुम्हारे बनाये हुए सहस्रनामसे मैं बहुत प्रसन्न होती हूँ ॥ २० ॥ २१ ॥ हे राजा जनमेजय! कवच तथा 'अहं रुद्रेभिः' इस सूक्त एवं 'देव्यथर्वशीर्ष'के मन्त्रों और महाविद्यासंज्ञक प्रधान मन्त्रोंसे बार-बार मुझे प्रसन्न करे। इसके बाद पूजकको चाहिये कि अपना हृदय प्रेम-रससे स्निग्ध करके मुझ जगदम्बाके प्रति अपराध क्षमा करानेके लिये प्रार्थना करे ॥ २२ ॥ २३ ॥ उस समय सम्पूर्ण अङ्गोंके पुलकित होनेसे आँखोंमें आँसू आ जाय। कण्ठसे बोला न जा सके। बारम्बार नाच और गाकर मुझे संतुष्ट करे ॥ २४ ॥ सम्पूर्ण वेद और पुराण मेरे ही सुयशका बखान करते हैं। कारण, मैं उनकी अधिष्ठात्री हूँ। अतः उन वेदों एवं पुराणोंके सहयोगसे मुझे संतुष्ट करना चाहिये ॥२५॥ अपना सर्वस्व—यहाँतक कि अपने शरीरको

सहितां मूलदेवीं च पूजयेत् ॥ गंधादिभिः सुगंधैस्तु तथा पुष्पैः सुवासितैः ॥ २० ॥ नैवेद्यैस्तर्पणैश्चैव तांबूलैर्दक्षिणादिभिः ॥ तोषयेन्मां त्वत्कृतेन नाम्नां साहस्रकेण च ॥ २१ ॥ कवचेन च सूक्तेनाहं रुद्रेभिरिति प्रभो ॥ देव्यथर्वशिरोमंत्रैर्हृल्लेखोपनिषद्भवैः ॥२२॥ महाविद्यामहामंत्रैस्तोषयेन्मां मुहुर्मुहुः ॥ क्षमापयेज्जगद्धात्रीं प्रेमार्द्रहृदयो नरः ॥ २३ ॥ पुलकांकितसर्वांगैर्बाष्परुद्धाक्षिनिःस्वनः ॥ नृत्यगीतादिघोषेण तोषयेन्मां मुहुर्मुहुः ॥ २४ ॥ वेदपारायणैश्चैव पुराणैः सकलैरपि ॥ प्रतिपाद्या यतोऽहं वै तस्मात्तैस्तोषयेत्तु माम् ॥२५॥ निजं सर्वस्वमपि मे सदेहं नित्यशोऽर्पयेत् ॥ नित्यहोमं ततः कुर्याद्ब्राह्मणांश्च सुवासिनीः ॥२६॥ वटुकान्पामरानन्यान्देवीबुद्ध्या तु भोजयेत् ॥ नत्वा पुनः स्वहृदये व्युत्क्रमेण विसर्जयेत् ॥२७॥ सर्वं हृल्लेखया कुर्यात्पूजनं मम सुव्रत ॥ हृल्लेखा सर्वमंत्राणां नासिका परमा स्मृता ॥ २८ ॥ हृल्लेखदर्पणे नित्यमहं तत्प्रतिबिंबिता ॥ तस्माद्धृल्लेखया दत्तं सर्वमंत्रैः समर्पितम् ॥ २९ ॥ गुरुं संपूज्य भूषाद्यैः कृतकृत्यत्वमावहेत् ॥ य एवं पूजयेद्देवीं श्रीमद्भुवनसुंदरीम् ॥ ३० ॥ न तस्य दुर्लभं किंचित्कदाचित्क्वचिदस्ति हि ॥ देहांते तु मणिद्वीपं मम यात्येव सर्वथा ॥ ३१ ॥ ज्ञेयो देवीस्वरूपोऽसौ देवा नित्यं नमंति तम् ॥ इति ते कथितं

भी मुझे अर्पण कर दे। तदनन्तर नित्यहोम करे। ब्राह्मण तथा सुहागिन स्त्रियोंको भोजन कराया जाय ॥२६॥ छोटे-छोटे अबोध बालकोंको भी देवीका रूप मानकर उन्हें भोजन कराना चाहिये। नमस्कारके पश्चात् अपने हृदयमें जिस क्रमसे आवाहन आदि किया हो, ठीक उसके विपरीत क्रमसे विसर्जन करे ॥ २७ ॥ हे उत्तम व्रतका आचरण करनेवाले हिमालय! मेरी सारी पूजा हृल्लेखा 'ह्रीं' मन्त्रसे सम्पन्न हो जाती है। क्योंकि यह मन्त्र सम्पूर्ण मन्त्रोंका अधिष्ठाता कहा गया है ॥२८॥ यह मन्त्र दर्पण-सा है। मेरा प्रतिबिम्ब निरन्तर इसमें झलकता रहता है। अतः इस मन्त्रका उच्चारण करके दिया हुआ पदार्थ सम्पूर्ण मन्त्रोंसे अर्पित समझा जाता है। फिर भूषण आदि श्रेष्ठ सामग्रियोंसे गुरुदेवको भलीभाँति पूजा करके स्वयं कृतकृत्य हो जाय। जो इस प्रकार मुझ त्रिभुवनसुन्दरी देवीकी उपासना करता है, उसके लिये कभी कोई वस्तु न दुर्लभ रहती है और न कभी रह सकती है। आयु समाप्त होनेपर वह बड़भागी व्यक्ति सीधे मेरे

मणिद्वीपमें जा पहुँचता है। उसे मेरा स्वरूप ही समझना चाहिये। देवता लोग नित्य उस द्वीपको प्रणाम करते हैं। हे राजन्! इस प्रकार महादेवीकी पूजाका प्रसंग मैं तुम्हें सुना चुकी ॥ २९–३२ ॥ तुम इन सभी विषयोंपर भलीभाँति विचार करके अपने अधिकारके अनुसार मेरे पूजनमें संलग्न हो जाओ। इसके उत्तम प्रभावसे तुम कृतकृत्य हो जाओगे ॥ ३३ ॥ यह प्रसंग मेरा गीताशास्त्र कहलाता है। जो मेरी आज्ञा न मानता हो, मेरे प्रति जिसकी श्रद्धा न हो तथा जो धूर्त एवं दुष्ट विचारका हो, उसके सामने कभी इस प्रसंगका विवेचन नहीं करना चाहिये ॥ ३४ ॥ ऐसे अनधिकारी व्यक्तिके समक्ष इस प्रसंगको उपस्थित करना ठीक वैसे ही है, जैसे कोई अपनी माताके गोप्य स्थान स्तनको उघाड़कर दिखा रहा हो। अतएव यत्नपूर्वक निरन्तर इस रहस्यको गोप्य रखना परम आवश्यक है ॥ ३५ ॥ जो आज्ञाकारी बड़ा पुत्र तथा शिष्य श्रद्धालु, सुशील, सुन्दर तथा देवीभक्त हो, उसीको इसका उपदेश करना चाहिये ॥ ३६ ॥ श्राद्धके अवसरपर ब्राह्मणोंके समीप इसका पाठ किया जाय तो श्राद्धकर्ताके समस्त पितर तृप्त होकर परम धामके अधिकारी बन जाते

राजन्महादेव्याः प्रपूजनम् ॥३२॥ विमृश्यैतदशेषेणाप्यधिकारानुरूपतः ॥ कुरु मे पूजनं तेन कृतार्थस्त्वं भविष्यसि ॥३३॥ इदं तु गीताशास्त्रं मे नाशिष्याय वदेत्क्वचित् ॥ नाभक्ताय प्रदातव्यं न धूर्ताय च दुर्हृदे ॥ ३४ ॥ एतत्प्रकाशनं मातुरुद्घाटनमुरोजयोः ॥ तस्मादवश्यं यत्नेन गोपनीयमिदं सदा ॥ ३५ ॥ देयं भक्ताय शिष्याय ज्येष्ठपुत्राय चैव हि ॥ सुशीलाय सुवेषाय देवीभक्तियुताय च ॥ ३६ ॥ श्राद्धकाले पठेदेतद्ब्राह्मणानां समीपतः ॥ तृप्तास्तत्पितरः सर्वे प्रयांति परमं पदम् ॥३७॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्त्वा सा भगवती तत्रैवान्तरधीयत ॥ देवाश्च मुदिताः सर्वे देवीदर्शनतोऽभवन् ॥३८॥ ततो हिमालये जज्ञे देवी हैमवती तु सा ॥ या गौरीति प्रसिद्धाऽऽसीद्दत्ता सा शंकराय च ॥ ३९ ॥ ततः स्कंदः समुद्भूतस्तारकस्तेन पातितः ॥ समुद्रमंथने पूर्वं रत्नान्यासुर्नराधिप ॥ ४० ॥ तत्र देवैः स्तुता देवी लक्ष्मीप्रात्यर्थमादरात् ॥ तेषामनुग्रहार्थाय निर्गता तु रमा ततः ॥४१॥ वैकुण्ठाय सुरैर्दत्ता तेन तस्य शमोऽभवत् ॥ इति ते कथितं राजन्देवीमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ ४२ ॥ गौरीलक्ष्म्योः समुद्भूतिविषयं सर्वकामदम् ॥ न वाच्यं त्वेतदन्यस्मै रहस्यं कथितं यतः ॥४३॥ गीता रहस्यभूतेयं गोपनीया प्रयत्नतः ॥ सर्वमुक्तं समासेन यत्पृष्टं तत्त्वयाऽ-

हैं ॥ ३७ ॥ व्यासजी कहते हैं—हे राजन्! इस प्रकार कहकर भगवती जगदम्बा वहीं अन्तर्धान हो गयीं। उनके दर्शन पाकर सम्पूर्ण देवता आनन्दविभोर हो गये ॥ ३८ ॥ तदनन्तर भगवती सती हिमालयके घर जन्म धारण करके हैमवती नामसे प्रसिद्ध हुईं। ये वे ही देवी हैं, जो पहले गौरी कहलाती थीं और भगवती भुवनेश्वरीने जिन्हें शंकरजीको सौंपा था ॥ ३९ ॥ इसके बाद स्वामिकार्तिकेयका जन्म हुआ और उनके हाथ तारकासुरकी जीवनलीला समाप्त हुई। (अब लक्ष्मीके पुनः प्राकट्यका प्रसंग बताया जाता है) हे राजन्! पूर्व समयकी बात है—जब समुद्रका मन्थन हो रहा था, तब बहुतसे रत्न निकले ॥ ४० ॥ उस समय लक्ष्मीको प्रकट करनेके लिये देवताओंने आदरपूर्वक भगवती जगदम्बाकी स्तुति की। तब उनपर कृपा करनेके लिये देवी ही पुनः लक्ष्मीरूपसे प्रकट हो गयीं ॥ ४१ ॥ अतएव देवताओंके अनुरोधसे भगवान् विष्णुके साथ रहनेका सौभाग्य

लक्ष्मीको प्राप्त हो गया। हे राजन्! देवीके इस उत्तम माहात्म्यका वर्णन मैंने तुम्हारे सामने कर दिया ॥ ४२ ॥ गौरी और लक्ष्मीकी उत्पत्तिका यह प्रसंग सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है। अन्य किसी साधारण व्यक्तिके सामने यह रहस्य नहीं प्रकट करना चाहिये ॥४३॥ क्योंकि यह रहस्य सम्यक् प्रकारसे गुप्त रखनेकी वस्तु है। हे निष्पाप राजन्! तुमने जो

नघ ॥ ४४ ॥ पवित्रं पावनं दिव्यं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे देवीगीतायां चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

खशरद्व्यश्वि (२२५०) पद्यैस्तु द्वैपायनमुखच्युतैः ॥ श्रीमद्भागवतस्यास्य सप्तमस्कन्ध ईरितः ॥ १ ॥

कुछ पूछा था, वह सब मैंने संक्षेपमें बता दिया। यह चरित्र स्वयं पवित्र, दूसरोंको भी पवित्र करनेवाला तथा दिव्य है। अब आगे कौन-सा प्रसंग सुनना चाहते हो? ॥ ४४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे पाण्डेयरामतेजशास्त्रिकृतायां 'पीताम्बरा'भाषाटीकायां चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

भगवान वेदव्यासके मुखसे निकले बाईस सौ पचास श्लोकों द्वारा इस सप्तम स्कन्धको कहा गया है ॥ १ ॥

॥ समाप्तोऽयं सप्तमः स्कन्धः ॥

इति श्रीमद्देवीभागवत भा० टी० सप्तम स्कन्ध

धर्मराज V. 20. 13f
No पाठक

बाग बोज शाणवा: V. 28. 7

पर्वतीय मुच्छा: V. 32. 7

बुद्धविद्या V. 11. 22